श्रीः ।

# न्यायप्रकाश.

( न्यायशास्त्र )

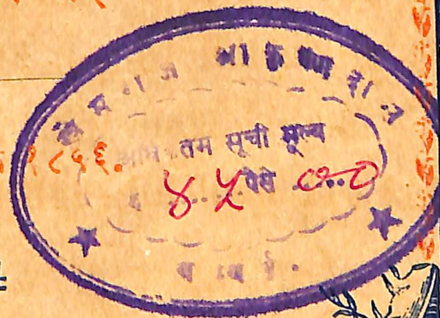
श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामिउद्धवानन्दगिरिपूज्यपादशिष्य
स्वामि चिद्घनानन्दगिरि विरचित.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

संवत् १९९१ शाके १८५६.



1934



मुद्रक और प्रकाशक-

**गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,**

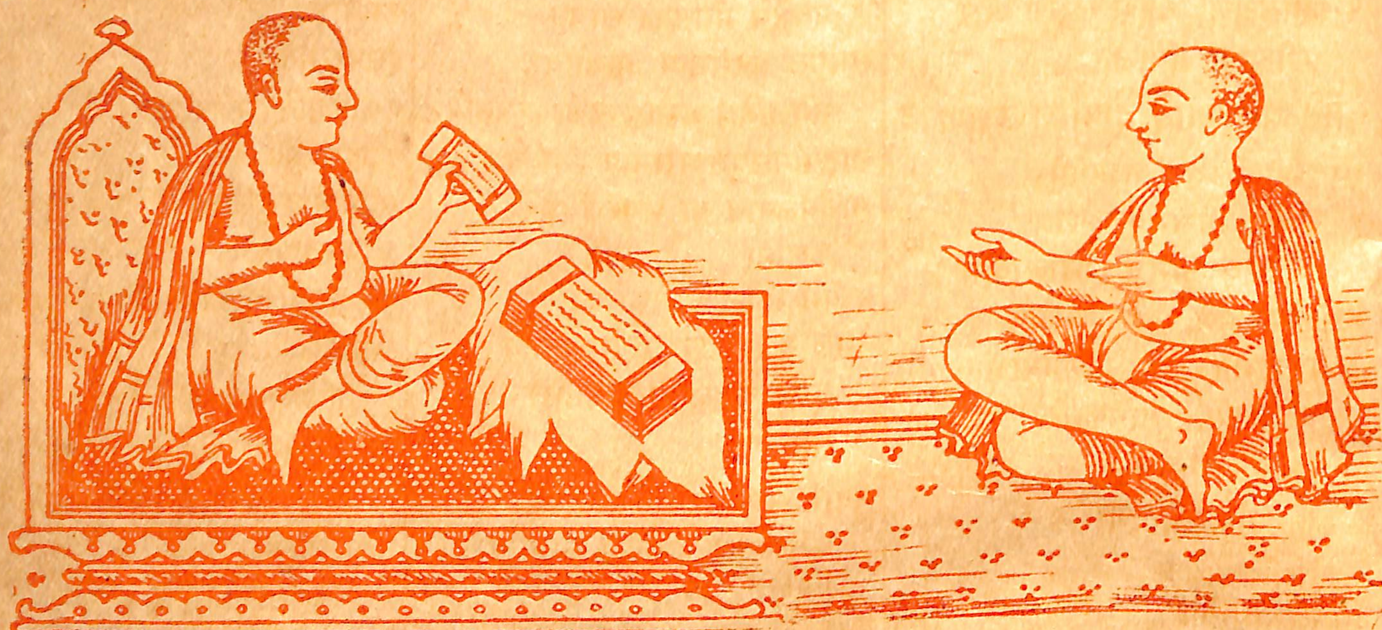
मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.







श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी उद्धवानन्द गिरि-
पूज्यपादशिष्य—



स्वामी चिद्घनानन्दजी. ग्रन्थकर्ता ।

॥ श्रीः ॥

# न्याय प्रकाशकी–विषयानुक्रमणिका ।



## द्वितीयपरिच्छेदः ।

## द्रव्योंका विस्तृत निरूपण ।

विषयः पृष्ठः । विषयः पृष्ठः । विषय. पृष्ठ.

## संस्कारनिरूपणम् ।



## चतुर्थ परिच्छेदः ।

## अवशिष्ट पदार्थोंका निरूपण ।

### कर्मपदार्थ । ४९५



### सामान्य पदार्थ ।



### उदयनाचार्यके कह जातिबाधक दोषे ।



### विशेषपदार्थ ।



### समवायपदार्थ ।

विषय. पृष्ठ.



हेत्वाभास ।



उपाधि ।



उपमान निरूपण ।



शब्दप्रमाणनिरूपण ।



शक्तिज्ञानके उपाय ।



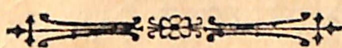
लक्षणावृत्तिका निरूपण ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः । श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः ॥

# अथ न्यायप्रकाश ।



Keshwanand Kohel Bhattan Street, NABHA

प्रथमपरिच्छेदः ।

मंगलाचरण ॥

**दोहा-गुरुगणपति गिरिजापती, श्रीपति करों प्रणाम ।**
**लखि गौतम कणभुक मतो, रचों ग्रन्थ अभिराम ॥ १ ॥**

श्रीगुरुवोंकूं प्रणाम करिकै तथा सर्वविघ्नोंके नष्ट करणेहारे गणपतिकूं प्रणाम करिकै तथा पार्वतीके पति श्रीमहादेवकूं प्रणाम करिकै तथा लक्ष्मीके पति श्रीविष्णुकूं प्रणाम करिकै, गौतममुनि प्रणीत न्यायशास्त्रके प्रमाणादिक षोडशपदार्थोंकूं तथा कणादमुनिप्रणीत वैशेषिक-शास्त्रके द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंकूं भलीप्रकारतैं निश्चय करिकै मैं इस अभिराम कहिये अति-सुंदरग्रन्थकूं करूं हुं ॥ १ ॥

ग्रन्थका प्रयोजन ।

कुसुमांजलि, लीलावती आदिक न्यायके ग्रन्थ बहुत विद्यमान हैं, तिन ग्रन्थोंके अध्ययनतैं हीं अधिकारी पुरुषोंकूं तिन द्रव्यादिक पदार्थोंका बोध होइ सके है, यातैं इस न्यायप्रकाश-नामा ग्रन्थके करणेका कोई प्रयोजन नहीं है, ऐसी शंकाके प्राप्त हुए; अब इस ग्रन्थकरणेके प्रयोजनकूं कथन करैं हैं—

**अनयासहि जे चहत हैं, ता मतको विज्ञान ।**
**ता हित मैं भाषा करों, न्यायप्रकाश सुनाम ॥ २ ॥**

**अनयासहि इति**—यद्यपि तिन कुसुमांजलि लीलावती आदिक ग्रन्थोंके अध्ययनतैं अधिकारी पुरुषोंकूं तिन द्रव्यादिक पदार्थोंका बोध होइ सके है, तथापि ते सर्वग्रन्थ संस्कृत-वाणी विषे हैं, यातैं व्याकरण काव्य कोश आदिक साधनसंपन्न पुरुषोंकूं हीं तिन संस्कृत-ग्रन्थोंतैं बोध होइ सके है। तिन व्याकरणादिक साधनोंतैं रहित पुरुषोंकूं तिन संस्कृतग्रन्थोंतैं पदार्थोंका बोध होइ सकै नहीं और तिन व्याकरणादिक साधन ग्रन्थोंके पठन करणेविषे अत्यंत आयास होवै है यातैं जे अधिकारी जन तिन व्याकरणादिक ग्रन्थोंके पठनजन्य आयासतैं विना हीं तिन न्याय वैशेषिक शास्त्रके पदार्थोंके जानणेकी इच्छा करै हैं, तिन

अधिकारी जनोंके हित वासतै अर्थात् तिन अधिकारी जनोंकूं सुखै नहीं तिन पदार्थोंके बोध करावणे वासतै मैं इस न्यायप्रकाशनामा प्राकृत भाषा ग्रन्थकूं उद्देश, लक्षण, परीक्षा इन तीनोंके कथन पूर्वक करूं हूं इति ॥ २ ॥

उद्देश, लक्षण और परीक्षाका स्वरूप ।

उद्देश, लक्षण, परीक्षा इन तीनोंका क्या स्वरूप है? ऐसी शंकाके प्राप्तहुए; अब यथाक्रमतैं तिन उद्देशादिकोंका स्वरूप वर्णन करेहैं । अथ उद्देशलक्षणम्—**नाममात्रेण वस्तुसंकीर्त्तनम् उद्देशः** । अर्थ यह—नाममात्रसैं जो वस्तुका कथन है सो उद्देश कहीये है । जैसे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इस प्रकारके द्रव्यादिक नाममात्रसैं जो द्रव्यादिक पदार्थोंका कथन है सो उद्देश कहीये है इति । अथ लक्षणलक्षणम्—**असाधारणधर्मः लक्षणम्** । अर्थ यह—जिस वस्तुका जो असाधारणधर्म होवै है सो असाधारणधर्म तिस वस्तुका लक्षण कह्या जावै है । जैसे गंधगुण केवल पृथिवी मात्रविषे हीं रहे है । ता पृथिवीतैं भिन्न जलादिकोंविषे सो गंधगुण रहता नहीं । यातैं पृथिवीमात्रका असाधारणधर्म होणेतैं सो गंधवत्त्व ता पृथिवीका लक्षण है । ऐसे शीतस्पर्शवत्त्व जलका लक्षण है और उष्णस्पर्शवत्त्व तेजका लक्षण है । इस प्रकार जो जो जिस जिस पदार्थका असाधारणधर्म होवै है सो सो असाधारणधर्म तिस तिस पदार्थका लक्षण रूपहीं जानणा । तहां ता लक्षणरूप धर्मविषे जो लक्ष्यता अवच्छेदक धर्मका समनियतपणा है अर्थात् ता लक्ष्यता अवच्छेदकधर्मका जो व्याप्यपणा तथा व्यापकपणा है । यहहीं ता लक्षणरूप धर्म विषे असाधारणपणा है । जैसे गंधवत्त्वरूपलक्षणकी पृथिवीविषे रही जा लक्ष्यता है । ता लक्ष्यताका अवच्छेदकधर्म पृथिवीत्व है । ता पृथिवीत्व धर्मका व्याप्यपणा तथा व्यापकपणा ता गंधवत्त्वरूप धर्म विषे है । यह हीं ता गंधवत्त्वरूप धर्मविषे असाधारणपणा है । तहां जहां जहां गंधवत्त्व रहैहै तहां तहां पृथिवीत्व रहे है । इस रीतिसैं ता गंधवत्त्व विषे ता पृथिवीत्व धर्मका व्याप्यपणा प्रतीत होवै है । और जहां जहां पृथिवीत्व धर्म रहे है तहां तहां गंधवत्त्व रहे है । इस रीतिसैं ता गंधवत्त्व विषे ता पृथिवीत्व धर्मका व्यापकपणा प्रतीत होवै है । तहां जिस वस्तुके वाचकशब्दका प्रथम उच्चारण होवै है सो वस्तु व्याप्य कह्या जावै है और जिस वस्तुके वाचकशब्दका पश्चात् उच्चारण होवै है सो वस्तु व्यापक कह्या जावै है इति । अथ परीक्षालक्षणम्—**लक्षितस्यैतल्लक्षणं सम्भवति न वा इति विचारः परीक्षा** । अर्थ यह—इस लक्षितवस्तुका यह लक्षण सम्भवता है अथवा नहीं सम्भवता है? इस प्रकारका जो विचार है सो परीक्षा कहिये है । जैसे—पृथिवी आदिक लक्षितवस्तुवोंका सो गंधवत्त्वादिकलक्षण सम्भवता है अथवा नहीं सम्भवता है, या प्रकारका जो विचार है सो परीक्षा कहीये है ॥ इति ॥

उद्देश, लक्षण और परीक्षाका प्रयोजन ।

उद्देश, लक्षण, परीक्षा इन तीनोंका क्या प्रयोजन है? ऐसी शंकाके प्राप्तहुए, अब तिनोंके प्रयोजनका निरूपण करे हैं—तहां उद्देशका तौ अनुमानविषे पक्षका ज्ञान प्रयोजन है और

लक्षणका तिस पक्षविषे इतर पदार्थोंके भेदका ज्ञान प्रयोजन है और परीक्षाका तिस लक्षणविषे अतिव्याप्ति आदिक दोषोंका परिहार प्रयोजन है । जैसे-पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा जलम् । अर्थ यह-पृथिवी जलादिक इतर पदार्थोंके भेदवाली है गन्धवाली होणेतैं । जो जो वस्तु जलादिकपदार्थोंके भेदवाला नहीं होवै है सो सो वस्तु गंधवाला भी नहीं होवै है । जैसे जलादिकवस्तु हैं इति । इस अनुमानविषे पृथिवी इस प्रकारके उद्देशका पृथिवीरूपपक्षका ज्ञान हीं प्रयोजन है और ता गंधवत्त्वरूपलक्षणका तिस पृथिवीरूप पक्षविषे जलादिक इतर पदार्थोंका भेदज्ञान हीं प्रयोजन है, अथवा यह पृथिवी; पृथिवी इस प्रकारके व्यवहारका विषय होणे योग्य है गन्धवाली होणेतैं । इस प्रकारका व्यवहार ता लक्षणका प्रयोजन है । इस प्रकारकी रीति आगे सर्वत्र जानि लेणी ॥ इति ॥

अतिव्याप्त्यादि दोषोंका लक्षण ।

लक्षणविषे अतिव्याप्ति आदिक दोषोंका परिहार ता परीक्षाका प्रयोजन कह्या । ते अतिव्याप्ति आदिक दोष कितने होवै हैं तथा तिन दोषोंका क्या स्वरूप है ? ऐसी शंकाके प्राप्तहुए; अब तिन अतिव्याप्ति आदिक दोषोंका स्वरूप वर्णन करे हैं-तहां अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असम्भव यह तीन दोष होवैहैं । तिन तीनों दोषों विषे एक भी दोष जिस लक्षणविषे होवै है सो लक्षण दुष्ट कह्या जावै है । ता दुष्टलक्षणतैं तिस लक्ष्यवस्तुकी सिद्धि होवै नहीं और तिन तीनों दोषोंतैं जो लक्षण रहित होवै है सो लक्षण अदुष्ट कह्या जावै है । ता अदुष्ट लक्षणतैं हीं ता लक्ष्यवस्तुकी सिद्धि होवै है, इति॥ अथ अतिव्याप्तिलक्षणम्-लक्ष्यवृत्तित्वे सति अलक्ष्यवृत्तित्वम् अतिव्याप्तिः । अर्थ यह-आपणे लक्ष्यविषे वर्त्तिके जो अलक्ष्यविषे वर्त्तणा है सो अतिव्याप्ति दोष कह्या जावै है । जैसे शृंगवाली गौ होवै है, या प्रकारका गौका लक्षण किसी पुरुषनैं कऱ्या सो यह शृंगित्वरूप गौका लक्षण अतिव्याप्ति दोषवाला है । काहेतैं ? जैसे गौवां शृंगवाली होवै हैं तैसे महिष अजादिक पशु भी शृंगवाले होवै हैं । यातैं यह शृंगित्वरूप लक्षण आपणे लक्ष्यरूप गौवोंविषे वर्त्तता हूआ अलक्ष्यरूप महिष अजादिकोंविषे भी वर्त्ते है। यातैं यह शृंगित्वरूप लक्षण अतिव्याप्तिदोषवाला है । इति । अथ अव्याप्तिलक्षणम्-लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् अव्याप्तिः । अर्थ यह-आपणे लक्ष्यके एक देशविषे जो अवृत्तिपणा है सो अव्याप्ति दोष कह्या जावै है । जैसे किसी पुरुषनैं कपिला गौ होवै है, इस प्रकारतैं गौका कपिलत्वरूप लक्षण कऱ्या सो कपिलत्वलक्षण अव्याप्तिदोषवाला है । काहेतैं ? सो कपिलत्वलक्षण आपणे लक्ष्यरूप सर्व गौवां विषे रहता नहीं, किंतु किसीक गौविषे हीं सो कपि लत्व रहे है । यातैं लक्ष्यके एकदेशविषे अवृत्तिहोणेतैं सो कपिलत्वलक्षण अव्याप्तिदोषवाला है, इति ॥ अथ असंभवलक्षणम्-लक्ष्यमात्रावृत्तित्वम् असंभवः । अर्थ यह-आपणे लक्ष्यमात्रविषे जो नहीं वर्त्तणा है सो असंभवदोष कह्या जावै है। जैसे किसी पुरुषनैं

एकशफवाली गौ होवै है इस प्रकारतैं एकशफवत्त्व गौका लक्षण कऱ्या सो यह एकशफवत्त्वरूप गौका लक्षण असंभवदोषवाला है। काहेतैं? पादविषे स्थित जो खुर है ताका नाम शफ है। सो किसी भी गौविषे एकशफ होता नहीं। किंतु सर्वगौवोंके पादोंविषे दो शफ होवै हैं। अश्वगर्धभादिकोंविषे हीं एकशफ होवै है। यातैं सो एकशफवत्वरूप गौका लक्षण आपणे लक्ष्यमात्रविषे अवृत्तिहोणेतैं असंभवदोषवाला है इति। यातैं शृंगित्व, कपिलत्व, एकशफवत्त्व यह तीनों गौके लक्षण यथाक्रमतैं अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असंभव इन तीन दोषोंवाले होणेतैं आपणे लक्ष्यरूप गौकी सिद्धि करिसकै नहीं। किंतु तिन अतिव्याप्ति आदिक तीन दोषोंतैं रहित जो सास्नादिमत्त्वरूप लक्षण है सो लक्षणहीं ता गौरूप लक्ष्यकी सिद्धि करि सके है। तहां गलेके नीचे जो चर्म लटके है ताका नाम सास्ना है। आदि शब्द करिकै शृंगादिकोंका ग्रहण करणा। यातैं ता सास्नावाले कुक्कुटादिकोंविषे तथा ता सास्नातैं रहित शृंगवाली महिष अजादिकों विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। इस प्रकारके अतिव्याप्ति; अव्याप्ति, असंभवरूप तीन दोषोंका जो परिहार है सोई हीं ता परीक्षाका प्रयोजन है। इस प्रकारका उद्देश तथा लक्षण तथा परीक्षा तीनों इस न्यायप्रकाशनाम ग्रंथविषे कथन कऱ्ये हैं। यातैं इस ग्रंथतैं अधिकारीजनोंकूं तिन द्रव्यादिकपदार्थोंका तत्त्वज्ञान अवश्य होवैंगा। यह वार्त्ता श्रीभाष्यकारनैं भी कथन करी है। तहां भाष्यवचनम्—**त्रिविधा चास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिरुद्देशो लक्षणं परीक्षा चेति।** अर्थ यह—उद्देश तथा लक्षण तथा परीक्षा यह तीन प्रकारकी इस न्याय वैशेषिकशास्त्रकी प्रवृत्ति होवै है, इति ॥

अथ चतुष्टय अनुबंधनिरूपणम् ।

बुद्धिमान् पुरुषोंकी जिस शास्त्रके अध्ययनकरणेविषे प्रवृत्ति होवै है तिस शास्त्रके अभिधेय १, प्रयोजन २, अधिकारी ३, सम्बन्ध ४ इन च्यारि अनुबंधोंकूं देखिकै हीं प्रवृत्ति होवै है। तिन च्यारि अनुबंधोंके ज्ञानतैं विना बुद्धिमान् पुरुषोंकी तिस शास्त्रके अध्ययनकरणे विषे प्रवृत्ति होवै नहीं। यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषे भी कही है। तहां श्लोक—**सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते। शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥** अर्थ यह—श्रोता पुरुषकूं ज्ञातहै प्रयोजन जिस शास्त्रका तथा ज्ञात हैं संबंध जिस शास्त्रका, ऐसे शास्त्रके हीं श्रवणकरणेकूं सो श्रोता पुरुष प्रवृत्त होवै हैं। यातैं श्रोता पुरुषोंकी तिस शास्त्रविषे प्रवृत्ति करावणे वासतै शास्त्रकर्त्ता विद्वान् पुरुषनैं तिस शास्त्रके आदिविषे सो संबंध तथा प्रयोजन अवश्य करिकै कहणा, इति। ते चतुष्टय अनुबंध इस ग्रंथविषे कथन कऱ्ये नहीं। यातैं बुद्धिमान् पुरुषोंकी इस ग्रंथके अध्ययन करणे विषे प्रवृत्ति नहीं होवैंगी। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब द्वितीयदोहे विषे अधिकारीके कथन करिकै सूचन कऱ्येहूए चतुष्टय अनुबंधोंकूं कथन करेहैं, अथवा "लखि गौतम कणभुक मतो, रचों ग्रंथ अभिराम" इस पूर्व उक्तवचन करिकै इस न्यायप्रकाशनामा

ग्रंथकूं न्याय वैशेषिकशास्त्रकी प्रकरणरूपता कथन करी है और जे चतुष्टय अनुबंध शास्त्रके होवै हैं ते चतुष्टय अनुबंध हीं तिस शास्त्रके प्रकरणोंके होवै हैं। यातैं तिन चतुष्टय अनुबंधोंकूं कथन करे हैं। १ अथ अभिधेयलक्षणम्—**शास्त्रजप्रमानिवर्त्त्याज्ञानगोचरः अभिधेयः।** अर्थ यह—जिस शास्त्रजन्य प्रमाज्ञान करिकै निवृत्त होणे योग्य अज्ञानका जो पदार्थ विषय होवै है सो पदार्थ तिस शास्त्रका अभिधेय कह्या जावै है, जैसे न्यायशास्त्रके अध्ययनतैं पूर्व इस पुरुषकूं द्रव्यादिकपदार्थोंका अज्ञान रहे हैं सो अज्ञान तिस न्याय शास्त्रके अध्ययनजन्य यथार्थज्ञानतैं निवृत्त होइ जावै है। यातैं ते द्रव्यादिक पदार्थ इस न्यायशास्त्रके अभिधेय हैं। इस अभिधेयकूं हीं विषय कहे हैं इति। २ अथ प्रयोजनलक्षणम्—**यमर्थमधिकृत्य पुरुषः प्रवर्त्तते तत्प्रयोजनम्।** अर्थ यह—जिस अर्थके प्राप्तिका उद्देशकरिकै यह पुरुष ताके साधनोंविषे प्रवर्त्त होवै है सो अर्थ प्रयोजन कह्या जावै है इति। सो प्रयोजन भी दो प्रकारका होवै है, एकतो मुख्य प्रयोजन होवै है, दूसरा गौण प्रयोजन होवै है। अथ मुख्यप्रयोजनलक्षणम्—**इतरेच्छाऽनधीनेच्छाविषयः मुख्यम्।** अर्थ यह—इतरवस्तुविषयक इच्छाके नहीं अधीन जो इच्छा है ता इच्छाका जो विषय होवै सो मुख्य प्रयोजन कह्या जावै है। जैसे सुखाविषे तथा दुःखाभावविषे जो लोकोंकूं इच्छा होवै है सा इच्छा किसी अन्य वस्तुविषयक इच्छाके अधीन नहीं होवै है, किंतु तिन दोनोंविषे स्वतः हीं लोकोंकी इच्छा होवै है। यातैं सुख तथा दुःखाभाव यह दोनों मुख्य प्रयोजन कह्ये जावै हैं इति। अथ गौणप्रयोजनलक्षणम्—**मुख्यप्रयोजनेच्छाधीनेच्छाविषयः गौणम्।** अर्थ यह—मुख्यप्रयोजन विषयक इच्छाके अधीन जा इच्छा है ता इच्छाका जो विषय होवै है सो गौणप्रयोजन कह्या जावै है। जैसे मुख्य प्रयोजनरूप सुखके तथा दुःखाभावके जे साधन हैं तिन साधनोंविषे जो लोकोंकी इच्छा होवै है सो सुख हमारेकूं होवै तथा दुःखाभाव हमारेकूं होवै, इस प्रकारकी सुखविषयक तथा दुःखाभावविषयक इच्छाके अधीन हीं तिन साधनोंविषे इच्छा होवै है, स्वतः तिन साधनोंविषे इच्छा होवै नहीं। यातैं ते सुखके साधन तथा दुःखाभावके साधन गौण प्रयोजन कह्ये जावै हैं इति। सो ईहां प्रसंगविषे आत्यंतिकदुःखकी निवृत्तिरूप निःश्रेयस इस न्यायशास्त्रका मुख्य प्रयोजन है। इसी निःश्रेयसकूं अपवर्ग, मुक्ति, मोक्ष, परमपुरुषार्थ, बंधनिवृत्ति इत्यादिक नामों करिकै कथन करे हैं और तिस निःश्रेयसका साधनरूप जो तत्त्वज्ञान है सो तत्त्वज्ञान इस न्याय शास्त्रका गौणप्रयोजन है इति। ३ अथ अधिकारिलक्षणम्—**द्विविधप्रयोजनप्राप्तिकामः अधिकारी।** अर्थ यह—मुख्य गौण भेदकरिकै कथन कर्येहूए दो प्रकारके प्रयोजनकी कामनावाला पुरुष इस न्यायशास्त्रका अधिकारी कह्या जावै है इति। ४ और सम्बन्ध—तौं अनेकप्रकारका होवै है। तहां अभिधेयका तथा शास्त्रका प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव संबंध है। ईहां द्रव्यादिक पदार्थरूप अभिधेय तौं प्रतिपाद्य है और

यह न्यायशास्त्र ताका प्रतिपादक है १ । और पदार्थ तत्त्वज्ञानका तथा शास्त्रका जन्यजनकभाव संबंध है, तहां पदार्थतत्त्वज्ञान तौं जन्य है और विचारद्वारा यह न्याय शास्त्र ताका जनक है २ । और निःश्रेयसका तथा शास्त्रका प्रयोज्य प्रयोजकभाव संबंध है । तहां निःश्रेयस तौं प्रयोज्य है और तत्त्वज्ञानद्वारा यह न्यायशास्त्र ताका प्रयोजक है ३ । और निःश्रेयसका तथा पदार्थतत्त्वज्ञानका प्रयोज्य प्रयोजकभाव संबंध है । तहां निःश्रेयस तौं प्रयोज्य है । और पदार्थतत्त्वज्ञान ताका प्रयोजक है ४ । और द्रव्यादिक पदार्थोंका तथा तत्त्वज्ञानका विषय विषयीभाव संबंध है । तहां द्रव्यादिकपदार्थ तौं विषय है और तत्त्वज्ञान विषयी है ५ । और निःश्रेयसरूप फलका तथा अधिकारीका प्राप्य प्रापकभाव संबंध है । तहां सो फल तौं प्राप्य है और अधिकारी ताका प्रापक है ६ । और अधिकारीका तथा विचारका कर्तृकर्त्तव्यभाव संबंध है । तहां अधिकारी तौं कर्त्ता है और विचार कर्त्तव्य है । ७ इस प्रकारके अनेक संबंध संभव होइसके हैं । यातैं इस प्रकारके अभिधेय, प्रयोजन, अधिकारी, संबंध इन च्यारि अनुबंधोंकूं देखिकै बुद्धिमान् पुरुषकी इस ग्रंथके अध्ययनकरणे विषे प्रवृत्ति अवश्य होवैंगी ।

इति चतुष्टय अनुबन्ध निरूपणम् ॥

---

अथ मंगलवादप्रारंभः ।

ग्रंथके आदिविषे चतुष्टय अनुबंधोंके निरूपणका तौं तिस ग्रंथविषे अधिकारीजनोंकी प्रवृत्ति हीं फल है । यातैं सफल होणेतैं ग्रंथके आदिविषे तिन चतुष्टय अनुबंधोंका निरूपण करणा युक्त है । परंतु ग्रंथके आदिविषे गुरु ईश्वरका नमस्कारादिरूप मंगलकरणेका कोई फल है नहीं, यातैं सो मंगलकरणा उचित नहीं है, ऐसी शंकाके प्राप्तहुए; अब मतभेद करिकै तिस मंगलके फलका निरूपण करे हैं । तहां—प्राचीन नैयायिक तौं यह कहे हैं—जिस ग्रंथविषे जो मंगल कऱ्या है तिस ग्रंथकी समाप्ति हीं तिस मंगलका फल है, परंतु सो मंगल ज्ञानरूप होणेतैं शीघ्र विनाशवान् है और ता ग्रंथकी समाप्ति कोई काल पीछे होवैंगी ऐसे शीघ्र विनाशवान् मंगलकूं कालान्तरविषे होणेहारी समाप्तिकी जनकता किसी व्यापारतैं विना साक्षात् संभवै नहीं, यातैं मध्यविषे ता मंगलजन्य कोई व्यापार कल्पना कऱ्या चाहिये । सो व्यापार ग्रंथ समाप्तिके प्रतिबंधक दुरितरूप विघ्नोंका ध्वंसरूप हीं है । सो मङ्गलजन्य विघ्नोंका ध्वंस ता ग्रंथसमाप्तिरूप कार्यके अव्यवहितपूर्वक्षणविषे रहे है, यातैं सो मंगल ता विघ्नध्वंसद्वारा ता ग्रंथसमाप्तिका कारण है । जैसे यागरूपक्रिया कालांतरभावी स्वर्गका स्वजन्यधर्मरूप अपूर्वद्वारा कारण होवै है इति । और चिंतामणिकारादिक नवीन नैयायिक तौं यह कहे हैं—ग्रंथकी समाप्ति ता मंगलका फल नहीं है, किंतु ग्रन्थसमाप्तिके प्रतिबंधक जे दुरितरूप विघ्न हैं तिन विघ्नोंका ध्वंसमात्र हीं ता मंगलका फल है और सा ग्रन्थकी समाप्ति तौं तिस विघ्नाभाव-

घटित अदृष्टबुद्धिस्फूर्त्ति आदिक आपणे कारणसामग्रीतैं हीं होवै है। और सो मंगलतौं तिस समाप्तिके कारणरूप विघ्नध्वंसका कारण होणेतैं तिस समाप्तिके प्रति अन्यथासिद्ध हीं है। तहां जिस कार्यके प्रति जितनी कारण सामग्री होवै है तिस कारण सामग्रीतैं जो वस्तु भिन्न होवै है सो वस्तु तिस कार्यके प्रति अन्यथा सिद्ध होवै है। यह वार्ता आगे षष्ठ परिच्छेदविषे स्पष्ट होवैंगी। किंवा जे प्राचीनपुरुष ता मंगलकूं विघ्नध्वंसद्वारा समाप्तिका कारण माने हैं तिनोंके मतविषे विघ्नध्वंस समाप्ति दोनोंविषे मंगलकी कार्यता मानणेमें गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है। और केवल विघ्नध्वंसमात्रविषे ता मंगलकी कार्यता मानणेमें ता गौरवदोषकी प्राप्ति होती नहीं, किंतु लाघवरूप गुणकी हीं प्राप्ति होवै है। या कारणतैं भी ता मंगलका सो विघ्नध्वंसमात्र हीं फल मानणा उचित है॥

**शंका**–जो कदाचित् ता मंगलका विघ्नध्वंसमात्र हीं फल होवै तौं जिस पुरुषविषे स्वतः हीं विघ्नोंका अत्यंताभाव है। तिस पुरुषनैं कन्या हूआ सो मंगल निष्फल हीं होवैंगा। **समाधान**–विघ्नोंके अत्यंताभाववाले पुरुषनैं कन्या जो मङ्गल है तिस मंगलकी निष्फलताविषे हमारेकूं भी इष्टापत्ति है अर्थात् तिस स्थलविषे सो मंगल निष्फल हीं है॥ **शंका**–तिस मंगलकूं जो निष्फल मानौंगे तौं निष्फल अर्थ विषे पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं। यातैं तिस मङ्गलविषे पुरुषकी प्रवृत्ति हीं नहीं होवैंगी। **समाधान**–ग्रंथसमाप्तिके प्रतिबंधकरूप पापविशेषका नाम विघ्न है। तिन विघ्नोंका तथा तिन विघ्नोंके अभावका किसी भी पुरुषकूं प्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु सर्वपुरुषोंकूं ताके विषे संशय हीं रहे है। यातैं ता स्वतःसिद्ध विघ्नोंके अत्यंताभाववाले पुरुषकी भी हमारे विषे ते विघ्न हैं अथवा नहीं हैं, या प्रकारतैं स्वनिष्ठविघ्नोंकी शंका करिकै तिन शंकितविघ्नोंकी निवृत्ति करणे वासतै ता मंगलविषे प्रवृत्ति संभवै है। संशयनिश्चयसाधारण तिन विघ्नोंका ज्ञानमात्र हीं ता मंगलविषे प्रवर्त्तक है सो संशयरूप विघ्नोंका ज्ञान तिस विघ्नरहितपुरुषविषे भी विद्यमान है। यातैं तिस विघ्न अत्यंताभाववान् पुरुषकी भी ता मंगलविषे प्रवृत्ति बनि सके है। और जो कदाचित् ता संशयज्ञानकूं प्रवृत्तिका कारण नहीं मानिये तौंभी तिस विघ्नरहित पुरुषकी शिष्टाचारतैं हीं ता मंगलविषे प्रवृत्ति होवैंगी। तात्पर्य यह, पूर्व जे जे शिष्ट पुरुष हुए हैं ते सर्व स्वकृतग्रंथके आदिविषे मंगलकूं करते आये हैं। यातैं हमारेकूं भी ग्रंथके आदिविषे सो मंगलकरणा उचित है। या प्रकारके शिष्टाचारतैं तिस पुरुषकी ता मंगलविषे प्रवृत्ति संभव होइसके है। तहां **यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥** इस गीतावचन विषे श्रीकृष्णभगवान्नैं शिष्टपुरुषोंके आचारतैं लोकोंकी प्रवृत्ति कथन करी है।

**शंका**–विघ्नोंके अत्यंताभाववाले पुरुषकृत मंगलकूं जो निष्फल मानोंगे तौं ता मंगलविषे विघ्नध्वंसकी कारणताकूं कथनकरणेहारा वेदका वचन अप्रमाणरूप होवैंगा। **समाधान**–

विघ्नोंके विद्यमानहूए हीं सो वेदवचन ता मंगलविषे विघ्नध्वंसकी कारणताकूं कथन करे है । तिन विघ्नोंके अत्यन्ताभावहूए सो वेदवचन ता मङ्गलविषे विघ्नध्वंसकी कारणताकूं कथन करता नहीं । यातैं ता वेदवचनविषे अप्रमाणरूपता प्राप्त होवै नहीं । तात्पर्य यह—ता विघ्नध्वंसविषे जैसे ता मङ्गलकूं कारणता है तैसे ता विघ्नरूपप्रतियोगीकूं भी स्वध्वंसविषे कारणता है । जिस स्थलविषे सो प्रतियोगी विघ्नरूप कारण है नहीं और मंगलरूपकारण विद्यमान है तिस स्थलविषे ता मङ्गलरूप कारणतैं ता विघ्नध्वंसरूप कार्यके नहीं उत्पन्नहूए भी ता मङ्गलविषे ता विघ्नध्वंसकी कारणताका बाध होवै नहीं । जैसे कुलालरूप कारणके विद्यमानहूए भी दूसरे मृत्तिकादण्डचक्रादिक कारणोंके अभावहूए तिस कुलालतैं घटरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं । ता करिकै तिस कुलालविषे ता घटकी कारणताका बाध होवै नहीं । काहेतैं ? जिस कार्यकी उत्पत्तिविषे जितनैं कारण अपेक्षित होवैं हैं । तितनैं सर्वकारण जबी एकठे होवैं हैं तबीहीं तिस कार्यकी उत्पत्ति होवै है । किंचित् न्यून कारणोंतैं तिस कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं यातैं ता मंगलविषे विघ्नध्वंसकी कारणताकूं कथनकरणेहारा सो वेदवचन अप्रमाणरूप नहीं है । इस कारणतैं हीं पापरहित पुरुषनैं आपणेविषे पापकी भ्रांतिकरिकै ता पापकी निवृत्ति वासतै कऱ्या जो प्रायश्चित्त है ता प्रायश्चित्तकूं निष्फलताके हूएभी तिस प्रायश्चित्तविषे पापके निवृत्तिकी कारणताकूं कथन करणेहारे वेदवाक्यकूं अप्रमाणता होवै नहीं ॥

**शंका**—ता मंगलविषे ता विघ्नध्वंसकी कारणता सम्भवै नहीं । काहेतैं ? **सर्वे विघ्नाः शमं यान्ति गणेशस्तवपाठतः** । अर्थ यह—गणेशके स्तोत्रपाठतैं सर्वविघ्न निवृत्त होवैं हैं । इस शास्त्रवचननैं गणेशके स्तोत्रपाठविषे भी ता विघ्नध्वंसकी कारणता कथन करी है और धर्मशास्त्रविषे कथन कऱ्ये जे प्रायश्चित्त हैं तिन प्रायश्चित्तोंतैं भी तिन दुरितरूप विघ्नोंका ध्वंस होवै है । तिस स्तोत्रपाठजन्य विघ्नध्वंस विषे तथा प्रायश्चित्तजन्य विघ्नध्वंसविषे मंगलकूं कारणताका अभाव होणेतैं ता मङ्गलविषे ता विघ्नध्वंसकी कारणता सम्भवै नहीं । जो कदाचित् ता मङ्गलतैं विना अन्य किसी उपायतैं सो विघ्नोंका ध्वंस नहीं होता तौं ता मङ्गलविषे तिस विघ्नध्वंसकी कारणता सम्भवती । परन्तु सो विघ्नोंका ध्वंस तौं ता मङ्गलतैं विना अन्य उपायों करिकै भी होइसके है । यातैं ता मङ्गलविषे विघ्नध्वंसकी कारणता सम्भवै नहीं । **समाधान**—सर्व विघ्नध्वंसोंविषे ता मङ्गलकूं कारणता नहीं है, किन्तु विजातीयविघ्नध्वंसविषे तौं ता मङ्गलकूं कारणता है और विजातीयविघ्नध्वंसविषे ता गणेशस्तोत्रपाठकूं कारणता है और विजातीयविघ्नध्वंसविषे ता प्रायश्चित्तकूं कारणता है । यातैं ता स्तोत्रपाठजन्य तथा ता प्रायश्चित्तजन्य विघ्नध्वंसविषे ता मङ्गलकूं अकारणता हूए भी ता विजातीय विघ्नध्वंसके प्रति कारणता होणेतैं ता मङ्गलविषे विघ्नध्वंसकी कारणताका अभाव सिद्ध होवै नहीं ॥

**शंका**–जो कदाचित् विघ्नध्वंसमात्र हीं ता मङ्गलका फल होवै तौं ग्रन्थसमाप्तिकी कामनावाले पुरुषकी तिस मङ्गलविषे प्रवृत्ति नहीं होणी चाहिये और ता समाप्तिकामनावाले पुरुषकी भी ता मङ्गलविषे प्रवृत्ति प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है । यातैं समाप्तिके साधन विघ्नध्वंसकी साधनताज्ञानतैं हीं ता मङ्गलविषे प्रवृत्ति कहणी होवैगी । सो तबी होवै जबी ता विघ्नध्वंसविषे ता समाप्तिकी साधनता सिद्ध होवै । सो विघ्नध्वंसविषे ता समाप्तिकी साधनता हीं सम्भवती नहीं । काहेतैं ? जिस पुरुषविषे स्वतः हीं विघ्नोंका अत्यन्ताभाव है तिस पुरुषकृत ग्रन्थकी भी समाप्ति होवै है । तिस समाप्तिविषे ता विघ्नध्वंसकूं कारणता है नहीं ।

**समाधान**–सर्व ग्रन्थकर्त्ता पुरुषों विषे ता विघ्नध्वंसकूं हीं समाप्तिकी कारणता नहीं है । किंतु किसी ग्रन्थकर्त्ताविषे तौं ता विघ्नध्वंसकूं हीं समाप्तिकी कारणता है और किसी ग्रंथकर्त्ता विषे तौं विघ्नोंके अत्यंताभावकूं हीं समाप्तिकी कारणता है । और किसी ग्रंथकर्त्ताविषे तौं विघ्नोंके प्रागभावकूं हीं ता समाप्तिकी कारणता है और विघ्नोंका भेदरूप अन्योन्याभाव तौं तिन विघ्नोंके विद्यमान हूए भी पुरुषविषे रहे है । यातैं ता विघ्नोंके अन्योन्याभावकूं ता समाप्तिकी कारणता कहां भी संभवती नहीं । यातैं ता विघ्न अत्यंताभावजन्य समाप्तिविषे तथा ता विघ्नप्रागभावजन्य समाप्तिविषे ता विघ्नध्वंसकूं अकारणताहूए भी स्वजन्य समाप्तिके प्रति कारणता होणेतैं ता विघ्नध्वंसविषे ता समाप्तिकी कारणताका अभाव सिद्ध होवै नहीं ॥

**शंका**–विघ्नोंका ध्वंस तथा विघ्नोंका अत्यंताभाव तथा विघ्नोंका प्रागभाव इन तीनों अभावोंकूं जो समाप्तिका कारण मानोंगे तौं कारणताका अवच्छेदकधर्म एक सिद्ध नहीं होवैगा । किंतु विघ्नप्रध्वंसाभावत्व, विघ्न अत्यंताभावत्व, विघ्नप्रागभावत्व यह तीनों धर्म ता कारणताके अवच्छेदक होवैंगे और एक अनुगतधर्मविषे जो कारणताका अवच्छेदकपणा संभव होइसकै तौं नाना धर्मोंविषे ता कारणताका अवच्छेदकपणा मानणा गौरवदोषयुक्त है ।

**समाधान**–ग्रंथ समाप्तिके प्रति जो विघ्नाभावकूं कारणता है सो विघ्नध्वंसत्व विघ्न अत्यंताभावत्व विघ्नप्रागभावत्वरूपतैं कारणता नहीं है । किंतु विघ्नसंसर्गाभावत्वरूपतैं हीं तिस विघ्नाभावकूं ता समाप्तिके प्रति कारणता है । सो विघ्न संसर्गाभावत्व धर्म ता विघ्नध्वंसविषे तथा विघ्न अत्यंताभावविषे तथा विघ्नप्रागभावविषे इन तीनोंविषे रहे है । अन्योन्याभावतैं भिन्न अभावका नाम संसर्गाभाव है । इन अभावोंका स्वरूप आगे चतुर्थपरिच्छेदविषे स्पष्ट होवैगा । यातैं ता कारणता अवच्छेदकधर्मका अननुगम नहीं है । किंतु सो संसर्गाभावत्व एकहीं धर्म ता कारणताका अवच्छेदक है । तहां जो धर्म जिस कारणताके न्यूनदेशविषे तथा अधिकदेशविषे नहीं रहे है । किंतु ता कारणताके समान देशविषे रहे है । सो धर्म हीं तिस कारणताका अवच्छेदक होवै है । अर्थात् अन्यतैं व्यावर्त्तक होवै है । जैसे प्रसंगाविषे सा ग्रंथसमाप्तिकी कारणता तिन उक्त तीन अभावोंविषे रहे है और सो संसर्गाभावत्वधर्म भी

तिन तीनों अभावोंविषे रहे है । यातैं सो संसर्गाभावत्वधर्म ता कारणताका अवच्छेदक कह्या जावै है इति । अथवा सर्वत्र विघ्नोंके अत्यंताभावकूं हीं ता समाप्तिकी कारणता है । विघ्नोंके ध्वंसकूं तथा विघ्नोंके प्रागभावकूं तथा विघ्नध्वंसद्वारा मंगलकूं ता समाप्तिकी कारणता है नहीं । काहेतैं ? जिस वस्तुका जहां प्रध्वंसाभाव रहे है अथवा प्रागभाव रहे है तिस वस्तुका तहां अत्यंताभाव भी रहे है । ता ध्वंसप्रागभावका ता अत्यंताभावके साथि विरोध है नहीं । यातैं जिस ग्रंथकर्त्ता पुरुषविषे तिन विघ्नोंका प्रध्वंसाभाव रहे है अथवा प्रागभाव रहे है तिस ग्रंथकर्त्ता पुरुषविषे भी तिन विघ्नोंका अत्यंताभाव अवश्य रहे है । ता विघ्न अत्यंताभाव करिकै हीं सा मंगलस्थलीय समाप्ति भी होइसके है । यातैं ता ग्रंथसमाप्तिके प्रति सो मंगल तथा ता मंगलजन्य-विघ्नध्वंस तथा सो विघ्नोंका प्रागभाव यह तीनों अन्यथा सिद्धहीं हैं इति । अब मंगलकूं विघ्न-ध्वंसद्वारा समाप्तिका कारण मानणेहारे पूर्व उक्त प्राचीन नैयायिकोंके मतविषे वादी शंका करे है ॥

अन्वय व्यतिरेकका लक्षण—जो कदाचित् ता मंगलकूं विघ्न ध्वंसद्वारा समाप्तिके प्रति कारणता होवै तौं तिस निर्विघ्न समाप्तिकेवासतै ग्रंथके आदिविषे सो मंगलकरणा बनैं । परंतु ता मंगलकूं ग्रंथसमाप्तिके प्रति कारणता हीं नहीं सिद्ध होवै हैं । काहेतैं ? कार्यकारणका अन्वय सहचारज्ञान तथा व्यतिरेक सहचारज्ञान यह दोनों हीं ता कारणताके निश्चायक होवै हैं तिन दोनोंका हीं ता मंगलविषे अभाव है और अन्वयव्यभिचारज्ञान तथा व्यतिरेकव्यभिचारज्ञान यह दोनों ता कारणता निश्चयके प्रतिबंधक होवै है । ते दोनों ता मंगलविषे विद्यमान हैं । तहां—**कारणसत्त्वे कार्यसत्त्वम् अन्वयसहचारः** । अर्थ यह—कारणके विद्यमानहूए नियमतैं जो कार्यकी उत्पत्ति है । सो 'अन्वयसहचार' कह्या जावै है । जैसे मृत्तिका कुलाल दंड चक्र आदिककारणोंके विद्य-मानहूए नियमतैं घटरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै है । यातैं ते मृत्तिकादिक कारण अन्वय सहचार-वाले हैं इति । **कारणाभावे कार्याभावः व्यतिरेकसहचारः** । अर्थ यह—कारणके अभावहुए जो नियमतैं कार्यका अभाव है, सो व्यतिरेक सहचार कह्या जावै है । जैसे तिन मृत्तिकादिक कारणोंके अभावहुए नियमतैं ता घटरूप कार्यका अभाव होवै है अर्थात् अनुत्पत्ति होवै है । यातैं ते मृत्तिकादिक कारण व्यतिरेक सहचारवाले हैं इति ॥

मंगलनिष्ठ सफलताका साधक अनुमान—**कारणसत्त्वे कार्याभावः अन्वयव्यभिचारः** । अर्थ यह—कारणके विद्यमानहूए जो कार्यका अनुत्पत्तिरूप अभाव है सो 'अन्वयव्यभिचार' कह्या जावै है इति । **कारणाभावे कार्यसत्त्वं व्यतिरेकव्यभिचारः** । अर्थ यह—कारणके अभावहूए भी जो कार्यकी उत्पत्ति है सो 'व्यतिरेक व्यभिचार' कह्या जावै है इति । तहां कादंबरी आदिक ग्रंथोंविषे तौं सो मंगल कऱ्या भी है तौं भी तिन ग्रंथोंकी समाप्ति हूई नहीं । यातैं ता

मंगलविषे यह अन्वय व्यभिचारका ज्ञान अन्वयसहचारज्ञानके प्रतिबंधद्वारा ता कारणता निश्चयका बाधक है और नास्तिकग्रंथोंविषे सो मंगल तौं कन्या नहीं, तौं भी तिन ग्रंथोंकी समाप्ति होइ गई है। यातैं ता मंगलविषे यह व्यतिरेक व्यभिचारका ज्ञान ता व्यतिरेक सहचार-ज्ञानके प्रतिबंधद्वारा ता कारणतानिश्चयका बाधक है। तात्पर्य यह—ता अन्वय व्यतिरेक व्यभि-चारज्ञानरूप प्रतिबंधकके विद्यमानहूए ता मंगलविषे सो अन्वयव्यतिरेकसहचारका निश्चय होवै नहीं ता निश्चयतैं बिना ता मंगलविषे समाप्तिकी कारणता सिद्ध होवै नहीं । यातैं सो मंगल ता समाप्तिका कारण हीं नहीं है इति । ऐसी वादीकी शंकाके प्राप्तहूए, अब अनुमानप्रमाणकरिकै ता मंगलविषे विघ्नध्वंसद्वारा समाप्तिकी कारणता सिद्धकरणे वासतै प्रथम अनुमानप्रमाणकरिकै ता मंगलविषे सफलता सिद्ध करे हैं । सो अनुमान यह है—**मंगलं सफलम् अविगीत-शिष्टाचारविषयत्वात् दर्शादिवत्** । अर्थ यह—सो मंगल किसी फलवाला होणे योग्य है, अविगीतशिष्टाचारका विषय होणेतैं । जो जो वस्तु अविगीत शिष्टाचारका विषय होवै है, सो सो वस्तु किसी फलवाला हीं होवै है । जैसे दर्शादिककर्म ता अविगीतशिष्टाचारका विषय होणेतैं स्वर्गादिक फलवाला हीं है तैसे सो मंगल भी ता अविगीत शिष्टाचारका विषय होणेतैं किसी फलवाला अवश्य होवैंगा इति । तहां इस अनुमान विषे मंगल तौं पक्ष है और सफलत्व साध्य है और अविगीतशिष्टाचारविषयत्व हेतु है और दर्शादिक कर्म विशेष दृष्टान्त है । इस प्रकारकी अनुमानकी रीति आगे भी सर्वत्र जानि लेणी ॥ अनुमानके हेतुपर विचार—अब **अविगीतशिष्टाचारविषयत्वात्** इस हेतुविषे स्थित अविगीतादिकपदोंका प्रयोजन वर्णन करे हैं। तहां इस उक्त अनुमानविषे 'विषयत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते तौं इस हेतुका सुखविषे व्यभिचार होता । काहेतैं ? **अहं सुखी** इस प्रकारके ज्ञानका विषयत्व ता सुख विषे भी है। परंतु सो सफलत्वरूप साध्य ता सुखविषे है नहीं । जिस कारणतैं सो सुख आप हीं फलरूप है। किसी अन्य फलका जनक नहीं है । यातैं सफलत्वरूप साध्यके अभाववाले सुखविषे वृत्ति होणेतैं सो विषयत्वरूपहेतु व्यभिचारी ही होवै है । ता साध्याभाववद्वृत्तित्वरूप व्यभिचारदोषकी निवृत्तिकरणे वासतै ता हेतुविषे **आचार** यह पद कथन कन्या है अर्थात् 'आचारविषयत्वात्' यह पद कथन कन्या है। यद्यपि क्रियाविशेषका नाम आचार है तथापि सा क्रिया सविषयक होवै नहीं । यातैं ईहां आचारपदकरिकै ता क्रियाका ग्रहण नहीं करणा । किंतु विषयत्वपदकी समीपतातैं ता आचारपदकरिकै प्रयत्नरूप कृतिका हीं ग्रहण करणा । सा कृति ज्ञान इच्छाकी न्यांई सवि-षयक हीं होवै है। ता कृतिकी विषयता ता सुखरूप फलविषे है नहीं । यातैं ता सुखविषे ता सफलत्वरूप साध्यकी न्यांई ता आचारविषयत्वरूप हेतुका भी अभावहोणेतैं सो व्यभि

चार दोष होवै नहीं। यद्यपि सुखरूप फलका उद्देश करिकै हीं ता फलके साधनविषे पुरुषकी प्रवृत्ति होवै है, यातैं उद्देश्यता रूपतैं ता कृतिका विषयत्व तिस फलविषे भी विद्यमान होणेतैं पुनः ता सुखरूप फलविषे सो आचारविषयत्वरूपहेतु व्यभिचारी हीं होवै है। तथापि ईहां विधेयतारूपतैं ही सो कृतिका विषयत्व ग्रहण करणा। सो विधेयतारूपतैं कृतिविषयत्व ता फलविषे रहता नहीं, किंतु ता फलके साधनोंविषे हीं रहे है। यातैं सो विधेयतारूपतैं आचारविषयत्वरूप हेतु व्यभिचारी नहीं। किंवा 'आचारविषयत्वात्' इतनामात्र हेतु कहणेतैं यद्यपि ता सुखरूप फलविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं तथापि नास्तिकपुरुषकृत चैत्यवंदनादिकोंविषे ता हेतुका व्याभिचार होवै है। काहेतैं? सो विधेयतारूपतैं कृतिविषयत्वरूप हेतु तौं तिस चैत्यवंदनविषे भी है, परंतु तिस चैत्यवंदनविषे सो सफलत्वरूप साध्य है नहीं। यातैं ता सफलत्वरूप साध्यके अभाववाले चैत्यवंदनादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं सो आचारविषयत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवै है। ता व्यभिचारदोषकी निवृत्तिकरणे वासतै ता हेतुविषे 'शिष्ट' यह पद कथन कऱ्या है॥

शिष्टका लक्षण—तहां **फलसाधनतांशे भ्रान्तिरहितत्वं शिष्टत्वम्।** अर्थ यह—फल अंशविषे तथा ता फलके साधनता अंशविषे जो भ्रांतितैं रहितपणा है ताका नाम शिष्टत्व है। तहां तिस कर्मके फलभावतैं रहित वस्तुविषे जा तिस कर्मका फलत्व बुद्धि है तथा तिस कर्मका फलरूप वस्तुविषे जा तिस कर्मका अफलत्व बुद्धि है। सा फल अंशविषे भ्रांति कही जावै है और तिस फलके असाधनविषे जा तिस फलकी साधनता बुद्धि है और तिस फलके साधनविषे जा तिस फलकी असाधनता बुद्धि है सा साधनता अंशविषे भ्रान्ति कही जावै है ऐसा भ्रांतितैं रहित पुरुषका नाम शिष्ट है। ऐसा शिष्टत्व तिन फलसाधनता अंशविषे भ्रांतिवाले नास्तिकपुरुषोंविषे है नहीं। यातैं चैत्यवंदनादिकों विषे ता सफलत्वरूपसाध्यकी न्यांई ता शिष्टाचारविषयत्वरूप हेतुका भी अभावहोणेतैं सो शिष्टाचार विषयत्वरूप हेतु ता चैत्यवंदनादिकोंविषे व्यभिचारी होवै नहीं॥ शिष्टका दूसरा लक्षण—और केईक ग्रन्थकार तौं ता शिष्टका यह लक्षण करे हैं—**वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तृत्वं शिष्टत्वम्।** अर्थ यह—वेदके प्रमाणताका जो अंगीकार है ताका नाम शिष्टत्व है। या प्रकारका शिष्टत्व तिन नास्तिक पुरुषोंविषे रहता नहीं। काहेतैं? ते नास्तिक वेदकी प्रमाणताकूं अंगीकार करते नहीं। यातैं ता नास्तिक पुरुषकृत चैत्यवंदनादिकोंविषे ता शिष्टाचारविषयत्वरूप हेतुका भी अभाव होणेतैं सो हेतु तहां व्यभिचारी होवै नहीं इति। सो यह शिष्टत्वका निर्वचन असंगत है। काहेतैं? इस प्रकारके शिष्टत्वघटितहेतुका यद्यपि ता चैत्यवंदनादिकोंविषे व्यभिचार नहीं है तथापि वेदकी प्रमाणताकूं अंगीकारकरणेहारे किसी आस्तिकपुरुषनैं प्रमादके वशतैं तिस कर्मके करणे योग्य कालका उल्लंघन करिकै रात्रिकालविषे कऱ्या जो दर्शादिक कर्म है तिस

कर्मका कोईभी फल होता नहीं । और सो उक्त शिष्टाचारविषयत्वरूप हेतु तौं तिस कर्मविषे भी है । यातैं ता सफलत्वरूप साध्यके अभाववाले तिस दर्शादिक कर्मविषे वृत्ति होणेतैं सो शिष्टाचार विषयत्वरूपहेतु तहां व्यभिचारी हीं होवैंगा और पूर्वउक्त फलसाधनतांशविषे भ्रांति रहितत्वरूप शिष्टत्व जो अंगीकार करिये तौं कालका उल्लंघन करिकै जिस पुरुषनैं प्रमादतैं रात्रिकालविषे सो दर्शादिक कर्म कऱ्या है तिस प्रमादी पुरुषविषे सो शिष्टत्व है नहीं । काहेतैं ? जिस फलकी प्राप्ति वासतै जिस कालविषे जो कर्म वेदनैं विधान कऱ्या है सो कर्म तिस कालविषे कऱ्या हूआ हीं तिस फलका हेतु होवै है । अन्यकाल विषे कऱ्या हूआ सो कर्म तिस फलका हेतु होवै नहीं । यातैं तिस फलके असाधनरूप तिस कर्म विषे तिस फलकी साधनताबुद्धिरूप भ्रांतिवाला होणेतैं सो प्रमादी आस्तिक पुरुष ता पूर्व उक्त शिष्टत्ववाला नहीं है । यातैं तिस प्रमादी आस्तिकपुरुषविषे ता पूर्व उक्त शिष्टत्वघटित हेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति । किंवा 'शिष्टाचारविषयत्वात्' इतनामात्र हेतु कहणेतैं यद्यपि चैत्यवंदनादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं ॥ अविगीतत्वका लक्षण—तथापि **श्येनेनाभिचरन् यजेत** । इस वेदवचननैं शत्रुके नाश करणे वासतै विधान कऱ्या जो श्येनयाग है तिस यागविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार हीं होवै है । काहेतैं ? तिस श्येनयागविषे सो सफलत्वरूप साध्य तौं है नहीं । और सो उक्त शिष्टाचार विषयत्वरूप हेतु तहां भी है । यातैं ता सफलत्वरूप साध्यके अभाववाले श्येनयागविषे वृत्ति होणेतैं सो शिष्टाचार विषयत्वरूप हेतु तहां व्यभिचारीहीं होवै है । ता व्यभिचार दोषकी निवृत्ति करणे वासतैं ता हेतुविषे 'अविगीत' यह पद कथन कऱ्या है । तहां **बलवदनिष्टाननुबन्धित्वम् अविगीतत्वम्** । अर्थ यह—बलवान् अनिष्टका जो अजनकपणा है सो अविगीतत्व कह्या जावै है । यह अविगीतपणा ता शिष्ट पुरुषके कृतिरूप आचारका विशेषण जानणा अर्थात् अविगीत ऐसा जो शिष्ट पुरुषोंका आचार है ता आचारका विषय होणेतैं । इस प्रकारका अविगीतशिष्टाचारविषयत्वरूपहेतु ता श्येनयागविषे है नहीं । काहेतैं ? जो पुरुष शत्रुके मारणे वासतै श्येनयागकूं करे है तिस पुरुषका सो शत्रु तौं मरे है, परंतु ता श्येनयागकर्त्ता पुरुषकूं परलोकविषे नरककी प्राप्ति भी अवश्य करिकै होवै है । या प्रकार धर्मशास्त्रविषे कथन कऱ्या है । यातैं सो श्येनयाग विषयक शिष्टपुरुषोंका आचार बलवान् अनिष्टका अजनक नहीं है । किंतु ता नरकरूपबलवान् अनिष्टका जनक हीं है । यातैं ता श्येनयागविषे ता सफलत्वरूप साध्यकी न्यांई ता अविगीतशिष्टाचारविषयत्वरूप हेतुका भी अभाव होणेतैं तहां उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं ॥

**शंका**-श्येनयागविषे ता उक्त हेतुके व्यभिचारकी निवृत्तिकरणे वासतै जो ता हेतुविषे 'अविगीत' यह पद कथन कऱ्या है सो पद व्यर्थ हीं है । काहेतैं ? सो श्येनयाग भी शत्रुका मरणरूप इष्टका साधन होणेतैं सफल हीं है । ऐसे सफल श्येनयागविषे शिष्टाचार विषयत्वरूप

हेतुके विद्यमान हूए भी सो व्यभिचारदोष होवै नहीं । साध्यके अभाववालेविषे जो हेतु रहे है सो हेतु हीं व्यभिचारी होवै है । समाधान—मंगलं सफलम् अविगीतशिष्टाचार-विषयत्वात् । इस पूर्वउक्त अनुमान विषे ता मंगलरूप पक्षविषे सफलपद करिकै केवल इष्ट साधनत्वरूप फलत्व साध्यका ग्रहण नहीं करणा, किन्तु तिस मङ्गलाचरणविषे बुद्धिमान् पुरुषोंकी प्रवृत्ति करावणे वासतै ता सफलपद करिकै बलवान् अनिष्टका अजनक इष्ट साधनत्वरूप सफलत्व साध्यका हीं ग्रहण करणा । काहेतैं ? विष करिकै मिश्रितमोदकोंविषे क्षुधाकी निवृत्तिरूप इष्टकी साधनताका ज्ञान इस पुरुषकूं है भी, तौं भी इस पुरुषकी तिन मोदकोंके भक्षणविषे प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं केवल इष्ट साधनताज्ञानमात्र ता प्रवृत्तिका कारण नहीं है, किंतु सो बलवान् अनिष्टका अजनक इष्टसाधनताज्ञान हीं ता प्रवृत्तिका कारण होवै है । सो बलवान् अनिष्टका अजनक इष्ट साधनताज्ञान तिन विषमिश्रितमोदकोंविषे है नहीं । किंतु तिन मोदकोंविषे मरणरूप बलवान् अनिष्टकी जनकताज्ञान हीं है । यातैं क्षुधातुर बुद्धिमान् पुरुषोंकी तिन मोदकोंके भक्षणविषे प्रवृत्ति होवै नहीं । ऐसा प्रवृत्तिविषे उपयोगी बलवान् अनिष्टका अजनक इष्ट साधनत्वरूप सफलत्व साध्य तिस श्येनयाग विषे है नहीं और पूर्व उक्त रीतिसैं सो शिष्टाचार विषयत्वरूप हेतु तौं तिस श्येनयागविषे भी है । यातैं ता हेतु-विषे अविगीत पदके नहीं कथनतैं ता व्यभिचारदोषकी प्राप्ति अवश्य होवैंगी । ता व्यभिचार दोषकी निवृत्तिकरणे वासतै ता हेतुविषे 'अविगीत' यह पद अवश्य कह्या चाहिये इति ।

मंगलनिष्ठ समाप्तिफलकत्वका साधक अनुमान—इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै तिस मङ्गलविषे सफलत्व हीं सिद्ध होवै है । तहां तिस मङ्गलका कौन फल है अर्थात् जैसे दर्शादिक कर्मका स्वर्गरूप अदृष्टफल होवै है तैसे ता मङ्गलका भी कोई अदृष्ट फल है अथवा जैसे कारीरी यागका जलकी वृष्टिरूप दृष्टफल होवै है तैसे ता मङ्गलका भी कोई दृष्टफल है ? इस प्रकारकी फलविशेषकी जिज्ञासाके प्राप्त हूए जिस कर्मका दृष्टफल संभव होइ सकै है तिस कर्मका अदृष्टफल-कल्पना करना अनुचित है । यह शास्त्रकारोंका न्याय है और ग्रन्थके आदिविषे सो ग्रन्थकर्त्ता पुरुष यह प्रारम्भ कऱ्या हूआ हमारा ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त होवै, इस प्रकारकी कामना करिकै हीं ता मङ्गलविषे प्रवर्त्त होवै है । यातैं ता ग्रन्थकर्त्ता पुरुषकी कामनाका विषयरूप करिकै भी सा ग्रन्थकी समाप्ति हीं पूर्वप्राप्त है । स्वर्गादिक वा पशुपुत्रादिक पूर्व प्राप्त हैं नहीं । यातैं ता मङ्गलका सो निर्विघ्न ग्रन्थकी समाप्तिरूप दृष्टि फल हीं मानणा योग्य है । इस अभिप्रायतैं तिस मङ्गलविषे ता ग्रन्थसमाप्तिरूप दृष्टफलकी हेतुताकूं परिशेषानुमानकरिकै सिद्ध करे है । ता अनुमानका यह आकार है । मंगलं समाप्तिफलकं समाप्त्यन्याफलकत्वे सति सफलत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा घटादिः । अर्थ यह—सो मङ्गल समाप्तिरूप फलका हीं जनक है ता समाप्तितैं अन्यफलका अजनक हूआ फलका जनक होणेतैं जो जो वस्तु ता

समाप्तिरूप फलका जनक नहीं होवै है सो सो वस्तु ता समाप्तितैं अन्य फलका अजनक हूवा फलका जनक भी नहीं होवै है। जैसे घटादिक पदार्थ हैं इति। इस प्रकारके परिशेषानुमानतैं ता मङ्गलविषे विघ्नध्वंसद्वारा ग्रन्थसमाप्तिरूप दृष्ट फलकी कारणता हीं सिद्ध होवै है इति। अनुमेय श्रुतितैं ता मङ्गलविषे समाप्ति फलकत्वकी सिद्धि—और केईक ग्रन्थकार तौं ता मङ्गलविषे ग्रन्थसमाप्तिकी कारणतामें श्रुति हीं प्रमाण कहे हैं। सा श्रुति यह है—**ग्रन्थसमाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्।** अर्थ यह—ग्रन्थके निर्विघ्नसमाप्तिकी कामनावाला पुरुष ता ग्रन्थके आदिविषे मङ्गलकूं करै इति। ता मङ्गलबोधक श्रुतिका साधक अनुमान—यद्यपि यह श्रुति इदानींकालविषे किसी वेदकी शाखाविषे प्रत्यक्ष देखणेमें आवती नहीं तथापि शिष्टपुरुषोंके आचारतैं ता श्रुतिका अनुमान कऱ्या जावै है। इदानींकालविषे ता श्रुतियुक्त कोईक वेदकी शाखा उच्छिन्न होइ गई है। यातैं सा श्रुति इदानींकालविषे देखणेमें आवती नहीं। ता अनुमानका यह आकार है—**मंगलं वेदबोधितकर्त्तव्यताकम् अलौकिक धर्मशास्त्रानिषिद्धशिष्टाचारविषयत्वात् दर्शादिवत्।** अर्थ यह—वेदनैं बोधन करी है कर्त्तव्यता जिसकी ताका नाम वेदबोधित कर्त्तव्यताक है। ऐसा वेदबोधित कर्त्तव्यताक मङ्गल है अलौकिक तथा धर्मशास्त्रकरिकै अनिषिद्ध ऐसे शिष्टाचारका विषय होणेतैं। जो जो वस्तु ऐसे शिष्टाचारका विषय होवै है सो सो वस्तु वेदकरिकै बोधित कर्त्तव्यतावाला हीं होवै है। जैसे दर्शादिक कर्म हैं इति। तहां इस अनुमानविषे मङ्गल तौं पक्ष है और वेदबोधितकर्त्तव्यताकत्व साध्य है और अलौकिक धर्मशास्त्रानिषिद्ध शिष्टाचार विषयत्व हेतु है और दर्शादिककर्म दृष्टान्त है। तहां इस हेतुविषे भी पूर्वउक्त हेतुकी न्यांई विषयत्व-पदकी समीपतातैं आचारपदकरिकै प्रयत्नरूप कृतिका हीं ग्रहण करणा, क्रियाका ग्रहण करणा नहीं। लक्षणके अलौकिकका प्रयोजन—ईहां 'धर्मशास्त्रानिषिद्धशिष्टाचारविषयत्वात्' इतना मात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'अलौकिक' यह पद नहीं कथन करते तौं भोजनादिक लौकिकव्यवहारों विषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन भोजनादिकों विषे धर्मशास्त्र करिकै अनिषिद्ध ऐसा जो शिष्टपुरुषोंका आचार है ताका विषयत्वरूप हेतु तौ है। परंतु सो वेदबोधित कर्त्तव्यताकत्वरूप साध्य तहां है नहीं। यातैं ता वेदबोधित-कर्त्तव्यताकत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन भोजनादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं सो धर्मशास्त्रानिषिद्ध शिष्टाचारविषयत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैगा। ता व्यभिचारदोषकी निवृत्तिकरणे वासतै ता उक्त हेतुविषे 'अलौकिक' यह पद कथन कऱ्या है। तहां—**विधिमन्तरा रागादिप्राप्तभिन्नः अलौकिकः।** अर्थ यह—शास्त्रकी आज्ञातैं विना हीं केवल रागादिकों करिकै जो वस्तु प्राप्त होवै है ता वस्तुका नाम लौकिक है। ता लौकिकपदार्थतैं जो पदार्थ भिन्न होवै है ता पदार्थकूं अलौकिक कहे हैं इति। इस प्रकारकी अलौकिकता ता भोजनादि-

विषयक आचार विषे है नहीं किन्तु तिन भोजनादिकोंकी कर्त्तव्यता प्राणीमात्रकूं शास्त्रकी आज्ञातैं विना हीं केवल रागमात्र करिकै हीं प्राप्त है। यातैं तिन भोजनादिक लौकिक व्यवहारोंविषे ता वेदबोधितकर्त्तव्यताकत्वरूप साध्यकी न्यांई ता अलौकिक धर्मशास्त्रानिषिद्ध शिष्टाचारविषयत्वरूप हेतुका भी अभाव होणेतैं तिन भोजनादिकोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं। लक्षणमें 'धर्मशास्त्राविरुद्ध' डालनेका विचार—किंवा ता अनुमानविषे 'अलौकिकशिष्टाचारविषयत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'धर्मशास्त्रानिषिद्ध' यह पद नहीं कथन करते तौ प्रमादीपुरुषकृत रात्रिश्राद्धविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? ता रात्रिश्राद्धविषे सो अलौकिकशिष्टाचारविषयत्वरूप हेतु तौ है। परंतु सो वेदबोधितकर्त्तव्यताकत्वरूपसाध्य तहां है नहीं। यातैं ता उक्तसाध्यके अभाववाले ता रात्रिश्राद्धविषे वृत्ति होणेतैं सो अलौकिकशिष्टाचारविषयत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैगा। ता व्यभिचारदोषकी निवृत्ति करणेवासतै ता हेतुविषे 'धर्मशास्त्रानिषिद्ध' यह पद कथन कऱ्या है। सो रात्रिश्राद्धविषयक शिष्टपुरुषका आचार धर्मशास्त्रकरिकै अनिषिद्ध नहीं है किंतु ता धर्मशास्त्रकरिकै निषिद्ध हीं है, यातैं तिस रात्रिश्राद्धविषे ता वेदबोधितकर्त्तव्यताकत्वरूप साध्यकी न्यांई ता अलौकिकधर्मशास्त्रानिषिद्ध शिष्टाचारविषयत्वरूप हेतुका भी अभाव होणेतैं ता रात्रिश्राद्धविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं। लक्षणके शिष्टपदका प्रयोजन—किंवा 'अलौकिकधर्मशास्त्रानिषिद्धआचारविषयत्वात्।' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'शिष्ट' यह पद नहीं कथन करते तौ बौद्धादिकनास्तिकपुरुषोंकृत चैत्यवंदनादिककर्मविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? तिन चैत्यवंदनादिकोंविषे सो अलौकिकधर्मशास्त्रानिषिद्ध आचारविषयत्वरूप हेतु तौ है। परंतु सो वेदबोधितकर्त्तव्यताकत्वरूपसाध्य तहां है नहीं। यातैं ता उक्तसाध्यके अभाववाले चैत्यवंदनादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं सो अलौकिकधर्मशास्त्रानिषिद्ध आचारविषयत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैगा। ता व्यभिचारदोषकी निवृत्तिकरणेवासतै ता हेतुविषे 'शिष्ट' यह पद कथन कऱ्या है। शिष्टका विचार—तहां—वेदोक्तकर्मकर्तृत्वं शिष्टत्वम्। अर्थ यह—वेदनैं कथन कऱ्ये जे संध्योपासनादि कर्म हैं तिन कर्मोंका जो कर्त्तापणा है ताका नाम शिष्टत्व है इति। इस प्रकारका जो शिष्टका लक्षण करीये सो संभवता नहीं। काहेतैं ? इस लक्षणविषे स्थित जो वेदशब्द है ता वेदशब्दकरिकै सर्ववेदोंका ग्रहण करणा अथवा यत्किंचित्वेदका ग्रहण करणा। तहां प्रथमपक्षविषे तौ यह लक्षण असंभवदोषवाला हीं होवै है। काहेतैं ? सर्ववेदों उक्तकर्मोंका कर्त्तापणा किसीभी पुरुषविषे संभवता नहीं। यातैं कोई भी शिष्ट नहीं होवैगा। और द्वितीयपक्षविषे तौं तिन बौद्धादिक नास्तिकोंविषे भी ता शिष्टके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है। काहेतैं ? **न हिंस्यात्सर्वाभूतानि**—इस वेदवचननैं सर्वभूतोंके हिंसाका निषेध कऱ्या है। ता यत्किंचित् वेद-

उक्त अहिंसारूपकर्मका कर्त्तापणा तिन नास्तिकों विषे भी है । तिन नास्तिकों विषे ता उक्त शिष्टके लक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है । यातैं सो वेदोक्त कर्म कर्तृत्वरूप शिष्टत्व संभवता नहीं किंतु **वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तृत्वं शिष्टत्वम्** । अर्थ यह—ऋगादिक सर्ववेद प्रमाणरूप हैं या प्रकारतैं जो सर्ववेदोंके प्रमाणताका अंगीकार है ताका नाम शिष्टत्व है । इस प्रकारका शिष्टत्व तिन नास्तिकोंविषे है नहीं । यातैं तिन नास्तिकोंकृत चैत्यवंदनादिकोंविषे ता वेद-बोधित कर्त्तव्यताकत्वरूप साध्यकी न्यांई ता अलौकिक धर्मशास्त्रानिषिद्ध शिष्टाचारविषयत्व रूप हेतुका भी अभाव होणेतैं तहां ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं । इस प्रकारके उक्त अनुमान प्रमाण करिकै सिद्ध करी जा उक्त श्रुति है सा श्रुति हीं ता मंगलनिष्ठसमाप्तिकी कारणताविषे प्रमाण है इति ॥ नास्तिक ग्रन्थविषे मंगलका अनुमान—इस प्रकारतैं केईक ग्रन्थकार तौं ता मंगलविषे ग्रंथसमाप्तिकी कारणताकूं ता पूर्वउक्त अनुमानप्रमाण करिकै सिद्ध करे हैं । और केईक ग्रंथकार तौं ता उक्त शिष्टाचार करिकै अनुमान करी हूई ता उक्त श्रुतिकरिकै सिद्ध करे हैं । इतनैं ग्रंथ करिकै ता मंगलविषे विघ्नध्वंसद्वारा ग्रन्थसमाप्तिकी कारणता मतभेदसैं अनुमानप्रमाण करिकै वा उक्तश्रुतिप्रमाण करिकै सिद्ध करी । अब ता मङ्गलविषे पूर्व उक्त अन्वयव्यतिरेकव्यभिचारकी निवृत्ति करे हैं । इस प्रकारतैं ता मङ्गलविषे समाप्तिकी कारणताके सिद्धहूए जिस नास्तिकग्रंथविषे मङ्गलतैं विना हीं समाप्ति हूई है तिस नास्तिकग्रंथविषे भी तिस समाप्तिरूपकार्यतैं ता मङ्गलरूपकारणका अनुमान कऱ्या जावै है । जैसे पर्वतादिकोंविषे धूमरूपकार्यकूं देखि करिकै ता धूमके कारण-रूप अग्निका अनुमान कऱ्या जावै है तैसे ता समाप्तिरूप कार्यतैं ता मङ्गलरूप कारणका अनुमान कऱ्या जावै है । ता अनुमानका यह आकार है—**अयं नास्तिकः कृतमङ्गलकः विघ्नध्वंसपूर्वकपरिसमाप्तिमत्त्वात् चैत्रपुरुषवत्** । अर्थ यह—यह नास्तिकपुरुष पूर्व मङ्गलका कर्त्ता है विघ्नोंके ध्वंसपूर्वक ग्रंथकी समाप्तिवाला होणेतैं । जो जो पुरुष विघ्नोंके ध्वंसपूर्वक ग्रंथकी समाप्तिवाला होवै है सो सो पुरुष पूर्व मङ्गलका कर्त्ता हीं होवै है । जैसे चैत्रनामा पुरुष है । ईहां जिस चैत्रनामा पुरुषनैं ग्रंथके आदिविषे मङ्गलकूं करिकै तिस ग्रंथकी समाप्ति करी है सो चैत्रनामा पुरुष हीं दृष्टांतरूप जानणा । इस प्रकार ग्रंथकी समाप्तिरूप कार्यतैं तिस नास्तिक ग्रंथकर्त्ताका जन्मांतरका मङ्गल अनुमान कऱ्या जावै है, सो जन्मांतरका मङ्गल हीं विघ्नध्वंसद्वारा ता नास्तिकके ग्रंथसमाप्तिका कारण होवै है इति ॥

आस्तिकोंके मंगल रहित समाप्त ग्रन्थोंमें मंगलका साधन—और जिस आस्तिक पुरुषके ग्रंथविषे ता मङ्गलतैं विना हीं समाप्ति देखणे विषे आवै तिस आस्तिकपुरुषविषे सो जन्मांतरका मंगल अनुमान करणा नहीं किंतु इसी जन्मका मंगल अनुमान करणा अर्थात् इसी जन्मविषे तिस आस्तिकपुरुषनैं ग्रंथके आरंभकालविषे गुरुईश्वरका नमस्कारादिरूप मङ्गल कऱ्या है परंतु सो

मङ्गल ता ग्रंथके आदि विषे श्लोकादिरूपतैं लिख्या नहीं । सो मङ्गल हीं विघ्नध्वंसद्वारा ता समाप्तिका कारण होवै है । अथवा तिस आस्तिकपुरुषनैं आपणेविषे किसी प्रमाणतैं स्वतःसिद्ध विघ्नोंके अत्यंताभावकूं निश्चय करिकै सो मङ्गल कऱ्या नहीं इस प्रकारकी कल्पना करणी । यातैं ता मङ्गलविषे पूर्वकथन कऱ्या हूआ कारणता निश्चयका बाधक व्यतिरेकव्यभिचारज्ञान प्राप्त होवै नहीं, किंतु ता मङ्गलविषे समाप्तिकी कारणताका निश्चायक अन्वयसहचारज्ञान हीं प्राप्त होवै इति ॥

समंगल असमाप्त ग्रन्थोंविषे मंगलनिष्ठ असाङ्गत्वकी कल्पना—और जिन कादंबरी आदिक ग्रंथोंविषे ता मङ्गलके विद्यमानहूए भी ग्रंथकी समाप्ति नहीं हूई तिन कादंबरी आदिक ग्रंथोंविषे ता मङ्गलका असांगत्व हीं कल्पना करणा । तहां जिन अंगों करिकै संपन्न हूआ सो मङ्गल विघ्नध्वंसद्वारा ता समाप्तिरूप कार्यका जनक होवै है तिन अंगोंतैं रहितपणेका नाम असांगत्व है । जैसे वृष्टि वासतै कारीरी यागके कीयेहूए भी जबी सा वृष्टि नहीं होवै है तबी कारीरी याग विषे असांगत्व कल्पना कऱ्या जावै है, तैसे ता मङ्गलके कीयेहूए भी जहां ग्रंथकी समाप्ति नहीं होवै है तहां ता मङ्गलका असांगत्व हीं कल्पना करणा । जिस कारणतैं तिन सर्व अंगों करिकै संपन्न हूआ हीं सो मङ्गल ता समाप्तिका जनक होवै है इति ॥

साङ्गमंगलयुत असमाप्त ग्रंथविषे अतिबलवान् वा प्रचुर विघ्नकी कल्पना—और ता सर्व अङ्गसंपन्न-मङ्गलके हूए भी ता ग्रंथकी समाप्ति नहीं भई । या प्रकारका निर्णय जो कदाचित् किसी प्रकारतैं होइ जावै तौं तिस स्थलविषे ता ग्रंथके समाप्तिका प्रतिबंधक कोई एक बलवान् विघ्न जानणा अथवा प्रचुरविघ्न प्रतिबंधक जानणे । तहां बहुतका नाम प्रचुर है ॥

शंका—तिस बलवान् विघ्नकी तथा प्रचुरविघ्नोंकी सो मङ्गल क्युं नहीं निवृत्ति करता ?
समाधान—ग्रंथसमाप्तिके प्रतिबंधक जितनैंकी दुरितरूप विघ्न हैं तिन विघ्नोंतैं जो मङ्गल न्यून संख्यावाला नहीं होवै है, किंतु तिन विघ्नोंके समानसंख्यावाला होवै है अथवा अधिक संख्यावाला होवै है । सो प्रचुरमंगल हीं तिन प्रचुरविघ्नोंका तथा एक बलवान् विघ्नका नाश करे है इस कारणतैं हीं ग्रंथकर्त्ता पुरुष ग्रंथके आदिविषे गुरु ईश्वरादिकोंके नमस्कारादिरूप बहुत मङ्गल करैं हैं और जिस ग्रंथविषे एक हीं मङ्गल करिकै विघ्नध्वंस पूर्वक ता ग्रंथकी समाप्ति देखणे विषे आवै तहां सो एक हीं मङ्गल अति बलवान् जानणा । जैसे प्रचुरमङ्गल प्रचुर विघ्नोंका तथा बलवान् एक विघ्नका नाश करे है तैसे सो अतिबलवान् एक मंगल भी तिन प्रचुरविघ्नोंका तथा ता बलवान् एक विघ्नका नाश करे है । इस प्रकारका सो प्रचुरमंगल तथा अतिबलवान् मंगल तिन कादंबरी आदिक ग्रंथोंविषे है नहीं । या कारणतैं तिन कादंबरी आदिक ग्रंथोंकी विघ्नध्वंसपूर्वकसमाप्ति नहीं भई इति । मध्यमें मंगल करनेका कारण—किंवा ता प्रचुर मंगलके तथा अतिबलवान् मंगलके विद्यमान हूए भी ता ग्रंथकी समाप्ति नहीं हूई । या प्रकारका निश्चय जो कदाचित् किसी प्रकारतैं होइ जावै तौं तहां इस प्रकारकी कल्पना करणी ।

ता मंगलतैं पूर्वस्थित जितनैंकी समाप्तिके प्रतिबंधक विघ्न थे ते सर्व विघ्न तौं तिस मंगल करिकै नाश होइ जावै हैं, परंतु तिस मंगलतैं पश्चात् कोई दुरितरूप विघ्न उत्पन्न हूआ है सो विघ्न हीं तिस समाप्तिका प्रतिबंधक होवै है। इस कारणतैं हीं ग्रंथकर्त्ता पुरुष तिस विघ्नकी निवृत्ति वास्तै ता ग्रंथके मध्यविषे भी ता मंगलकूं करे हैं। यातैं तिन कादंबरी आदिक ग्रंथोंविषे सो अन्वयव्यभिचारज्ञान ता मंगलनिष्ठ समाप्तिकी कारणताका बाधक नहीं है, किंतु सो पूर्व उक्त व्यतिरेकसहचारज्ञान हीं ता कारणताका निश्चायक है, इति ॥

मंगलरूपकारण तथा समाप्तिरूपकारणका सामानाधिकरण्यनिरूपण—सो जन्मान्तरका मंगल अथवा इस जन्मका मंगल विघ्नध्वंसद्वारा ता ग्रंथसमाप्तिका कारण तबी सिद्ध होवै, जबी ता मंगलका तथा ता समाप्तिरूपकार्यका एक अधिकरणविषे वृत्तिपणा होवै। एक अधिकरणविषे वृत्तिपदार्थोंका हीं कार्यकारणभाव होवै है। भिन्न भिन्न अधिकरणविषे वृत्तिपदार्थोंका सो कार्यकारणभाव होता नहीं। जो भिन्नभिन्न अधिकरणवृत्ति पदार्थोंका भी कार्यकारणभाव होता होवै तौं देशांतरवृत्ति कुलालतैं एतद्देशस्थघटकी उत्पत्ति होणी चाहिये। सो होती नहीं, यातैं भिन्नभिन्न देशवृत्ति पदार्थोंका कार्यकारणभाव संभवता नहीं। और सो मंगल तथा ग्रंथसमाप्ति यह दोनों भी एक अधिकरणवृत्ति नहीं है। किंतु भिन्नभिन्न अधिकरण वृत्ति हैं। काहेतैं ? ग्रंथके अंत्यका जो वर्ण है ताका नाम समाप्ति है अथवा ता अंत्यवर्णका जो ध्वंस है ताका नाम समाप्ति है। इसी अंत्य वर्णकूं शास्त्रविषे चरमवर्ण कहे हैं। सो ककारादिरूप चरमवर्णके शब्दरूप होणेतैं आपणे समवायिकारणरूप आकाशविषे हीं रहैंगा। और ता चरमवर्णका ध्वंस भी स्वप्रतियोगीचरमवर्णके समवायिकारणरूप आकाशविषे हीं रहैंगा। इस रीतिस सा चरमवर्णरूप समाप्ति वा चरमवर्णका ध्वंसरूप समाप्ति आकाशविषे हीं रहे है। और सो गुरु ईश्वरादिकोंका स्मरणादिरूप मंगल तौं ज्ञानरूप होणेतैं ता ग्रंथकर्त्ता पुरुषके आत्माविषे रहे है। यातैं समाप्तिके अधिकरणतैं भिन्न अधिकरणविषे वृत्ति होणेतैं सो मंगल ता समाप्तिका कारण संभवै नहीं। ऐसी वादीकी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता मंगलविषे समाप्तिकी कारणताके सिद्ध करणे वास्तै ता मंगलरूप कारणका तथा समाप्तिरूप कार्यका सामानाधिकरण्य निरूपण करे हैं। तहां स्वजनक विघ्नध्वंसोत्पत्ति अवच्छेदकतारूप संबंध करिकै सा समाप्ति ता ग्रंथकर्त्ता पुरुषके शरीरविषे रहे है। और ता शरीरविषे अवच्छेदकतासंबंध करिकै सो ज्ञानरूप मंगल भी रहे है। ईहां स्वशब्द करिकै ता ग्रंथसमाप्तिका ग्रहण करणा। तिस समाप्तिका जनक जो विघ्नध्वंस है तिस विघ्नध्वंसकी उत्पत्ति शरीरअवच्छिन्न आत्माविषे हीं होवै है, केवल आत्माविषे होवै नहीं। यातैं सो शरीर ता समाप्तिके जनक विघ्नध्वंसके उत्पत्तिका अवच्छेदक है इस रीतिसैं सा ग्रंथसमाप्ति स्वजनकविघ्नध्वंसोत्पत्ति अवच्छेदकतारूप परंपरासंबंध करिकै तिस शरीरविषे रहे है और सो ज्ञानरूप मंगल भी

ता शरीर अवच्छिन्न आत्माविषे हीं होवै है, केवल आत्माविषे होवै नहीं । यातैं सो ज्ञानरूप मंगल भी ता अवच्छेदकतासंवन्ध करिकै तिस शरीरविषे हीं रहे है । इस प्रकार स्वजनक विघ्नध्वंसोत्पत्ति अवच्छेदकता संबंध करिकै ता शरीरविषे रही हूई समाप्तिके प्रति तिस शरीरविषे अवच्छेदकता संबंध करिकै रह्या हूआ सो मंगल कारण होवै है । ईहां स्वजनक विघ्नध्वंसोत्पत्ति अवच्छेदकतारूप संबन्ध तौं ता समाप्तिनिष्ठ कार्यताका अवच्छेदकसंबंध है और अवच्छेदकतारूप संबंध तौं ता मङ्गलनिष्ठकारणताका अवच्छेदक संबंध है । तहां कारणके अधिकरणविषे जिस संबंध करिकै सो कार्य रहे है सो संबंध कार्यताका अवच्छेदक संबंध कह्या जावै है और तिस कार्यके अधिकरणविषे जिस संबंध करिकै सो कारण रहे है सो संबंध कारणताका अवच्छेदक संबंध कह्या जावै है । जैसे द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षविषे उद्भूत रूपकूं कारणता होवै है तहां विषयतासंबंध करिकै सो चाक्षुषप्रत्यक्ष घटादिक द्रव्योंविषे रहे है तिन घटादिक द्रव्योंविषे सो उद्भूतरूप समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं सो विषयतासंबंध तौं ता कार्यताका अवच्छेदकसंबंध है और सो समवाय ता कारणताका अवच्छेदक संबंध है । यह रीति आगे वक्ष्यमाणसंबंधोंविषे भी जानि लेणी । अथवा अवच्छेदकतासंबंध करिकै सा समाप्ति ता ग्रन्थकर्त्ता पुरुषके शरीरविषे रहे है । काहेतैं? ता चरमवर्णरूप समाप्तिकी उत्पत्ति वा ता चरमवर्णका ध्वंसरूप समाप्तिकी उत्पत्ति ता शरीरावच्छिन्न आकाशविषे हीं होवे है, केवल आकाशविषे होवै नहीं । यातैं ता अवच्छेदकतारूप संबंध करिकै सा समाप्ति तिस शरीरविषे हीं रहे है और तिस शरीरविषे स्वजन्य विघ्नध्वंसावच्छेदकतारूप संबंध करिकै सो मंगल भी रहे है । ईहां स्वशब्द करिकै ता मङ्गलका ग्रहण करणा । तिस मङ्गलकरिकै जन्य जो विघ्नध्वंस है सो ध्वंस ता शरीरावच्छिन्न आत्माविषे हीं होवै है, केवल आत्माविषे होवै नहीं । यातैं सो मङ्गल स्वजन्यविघ्नध्वंसावच्छेदकतारूपपरंपरासंबंध करिकै ता शरीर विषे रहे है । इस प्रकार अवच्छेदकतासंबंध करिकै ता शरीरविषे रही हुई समाप्तिके प्रति ता शरीरविषे स्वजन्यविघ्नध्वंसावच्छेदकतारूप संबंध करिकै रह्या हूआ सो मङ्गल कारण होवै है। ईहां अवच्छेदकतारूप संबंध तौं ता कार्यताका अवच्छेदकसंबंध है और स्वजन्यविघ्नध्वंसावच्छेदकतारूप संबंध ता कारणताका अवच्छेदक संबंध है । अथवा स्वप्रतियोगिचरमवर्णानुकूलकृतिमत्त्वरूप संबंध करिकै सा समाप्ति ता ग्रन्थकर्त्ता पुरुषके आत्मा विषे रहे है और तिसी आत्मा विषे सो मङ्गल भी आश्रयतारूपसंबंध करिकै रहै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता चरमवर्णका ध्वंसरूप समाप्तिका ग्रहण करणा । तिस चरमवर्णध्वंसरूप समाप्तिका प्रतियोगी जो चरमवर्ण है ता वर्णका निमित्तकारणरूप जा प्रयत्नरूपकृति है सा कृति ता ग्रन्थकर्त्ता पुरुषके आत्माविषे समवायसंबंध करिकै रहे है और ता आत्माविषे सो ज्ञानरूप मङ्गल भी आश्रयतारूपसंबंध करिकै रहे है । यातैं स्वप्रतियोगिचरमवर्णानुकूलकृतिमत्त्वरूप परंपरासंबंध करिकै

आत्माविषे रही हूई ता समाप्तिके प्रति ता आत्माविषे आश्रयतारूप संबंधकरिकै रह्या हूआ सो मङ्गल कारण होवै है। ईहां स्वप्रतियोगिचरमवर्णानुकूल कृतिमत्त्वरूपसंबंध तौं कार्यताका अवच्छेदक संबंध है और आश्रयतारूप संबंध ता कारणताका अवच्छेदकसंबंध है इति। इस प्रकारके उक्त संबंधों करिकै जन्मान्तरके मङ्गलकूं वा इस जन्मके मङ्गलकूं विघ्नध्वंस द्वारा ता ग्रन्थसमाप्तिकी कारणता संभव होइ सके है इति॥ नवीन नैयायिकोंके मतमें विघ्नध्वंस तथा सामानाधिकरण्य—और जे नवीननैयायिक ता मङ्गलकूं समाप्तिका कारण नहीं मानते। किंतु ता मङ्गलजन्य विघ्नध्वंसकूं हीं ता समाप्तिका कारण माने हैं ते नवीन नैयायिक तौं तिस विघ्नध्वंसरूप कारणका तथा ता समाप्तिरूप कार्यका इस प्रकारतैं सामानाधिकरण्य कथन करे हैं; स्वप्रतियोगि चरमवर्णानुकूल कृतिमत्त्वरूप संबंध करिकै सा समाप्ति ता ग्रन्थ-कर्त्ता पुरुषके आत्माविषे रहे है और ता आत्माविषे सो विघ्नोंका ध्वंस भी विशेषणतारूप संबंध करिकै रहे है। ईहां 'स्व' शब्द करिकै ता चरमवर्णका ध्वंसरूप समाप्तिका ग्रहण करणा। दूसरा सो पूर्वउक्त अर्थ हीं जानि लेणा और अभावमात्र आपणे अधिकरणविषे विशेषणता संबंध करिकै हीं रहे है। यातैं सो विघ्नोंका प्रध्वंसाभाव भी ता आत्माविषे विशे-षणतारूपसंबंध करिकै हीं रहे है। यातैं स्वप्रतियोगिचरमवर्णानुकूलकृतिमत्त्वरूपपरंपरासंबंध करिकै ता आत्माविषे रही हुई समाप्तिके प्रति तिसी आत्माविषे विशेषणतारूप संबंध करिकै रह्या हूआ सो विघ्नध्वंस कारण होवै है। इसी प्रकारके संबंध करिकै विघ्नोंके अत्यंताभावकूं तथा विघ्नोंके प्रागभावकूं भी ता समाप्तिकी कारणता जानि लेणी। ईहां स्वप्रतियोगी चरमवर्णा-नुकूलकृतिमत्त्वरूप सम्बन्ध तौं ता कार्यताका अवच्छेदक संबंध है और विशेषणतारूप संबंध ता कारणताका अवच्छेदक संबंध है इति। इस उक्तप्रकारतैं ता मंगलरूपकारणका तथा ता विघ्नध्वंस पूर्वक समाप्तिरूप कार्यका ता ग्रंथकर्त्ता पुरुषके शरीरविषे अथवा आत्माविषे सामानाधिकरण्य बनि सके है। यातैं ता मंगलविषे विघ्नध्वंसद्वारा ता ग्रंथसमाप्तिकी कारणता निर्दोष है इति॥

श्लोकादि रूपसे मंगलके लिखनेका फल—**शंका**; पूर्व उक्त रीतिसैं ता मङ्गलविषे ग्रन्थ समाप्तिकी कारणताके सिद्ध हुए, ग्रन्थकर्त्ता पुरुषनैं ता ग्रन्थकी निर्विघ्नसमाप्ति वासतै ता ग्रन्थके आदिविषे सो मङ्गल यद्यपि करणा योग्य है तथापि तिस मङ्गलकूं ग्रन्थके आदिविषे श्लोकादिरूप करिकै लिखणेका कोई प्रयोजन नहीं है। **समाधान**—जिस ग्रन्थके आदिविषे जो ग्रन्थकर्त्ता पुरुष श्लोकादिरूप करिकै मंगलकूं नहीं लिखे है तिस ग्रन्थकर्त्ता पुरुषविषे आस्तिक-पुरुष नास्तिकपणेकी शंका करिकै ता ग्रन्थविषे प्रवृत्त होते नहीं। यातैं तिस ग्रन्थविषे आस्तिक पुरुषोंकी प्रवृत्ति करावणेवासतै ता ग्रन्थकर्त्ता पुरुषनैं तिस ग्रन्थके आदिविषे श्लोकादिरूप करिकै ता मङ्गलकूं अवश्य करिकै लिखणा। किंवा मन करिकै कर्या हूआ सो ईश्वर-स्मरणादिरूपमङ्गल तिस मङ्गलकर्त्ता पुरुषकूं हीं प्रतीत होवै है। दूसरे किसी पुरुषकूं प्रतीत होता

नहीं और ग्रन्थके आदिविषे श्लोकादिरूप करिकै लिख्या हूआ सो मङ्गल दूसरे पुरुषोंकूं भी प्रतीत होवै है यातैं इस हमारे मङ्गलकूं देखिकै हमारे शिष्य परशिष्यादिक भी स्वकृतग्रन्थके आदिविषे ता मङ्गलकूं करैं या प्रकारकी आपणे शिष्य परशिष्यादिकोंकी शिक्षावासतै भी ता ग्रन्थकर्त्ता पुरुषनैं ता ग्रन्थके आदिविषे श्लोकादिरूप करिकै सो मङ्गल अवश्य करिकै लिखणा इति ॥

वैशेषिक तथा न्यायसूत्रमें प्रथम मंगल—**शंका**; वैशेषिकशास्त्रका कर्त्ता जो कणादमुनि है; तिसनैं तिस शास्त्रके आदिविषे श्लोकादिरूप करिकै कोई मङ्गल लिख्या नहीं तथा न्यायशास्त्रका कर्त्ता जो गौतममुनि है तिसनैं भी तिस शास्त्रके आदिविषे श्लोकादिरूप करिकै कोई मङ्गल लिख्या नहीं । यातैं तिन मुनियोंविषे भी नास्तिकपणेकी शंका करिकै आस्तिक पुरुषोंकी तिनोंके शास्त्रविषे प्रवृत्ति नहीं होवैंगी । **समाधान**—कणादमुनि प्रणीत वैशेषिक शास्त्रके आदिविषे—**अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः** । यह सूत्र कथन कर्या है। तिस सूत्रके आदिविषेस्थित जो 'अथ' यह शब्द है सो अथशब्द हीं ता मङ्गलका बोधक है। काहेतैं ? स्मृतिविषे ॐकारकूं तथा अथशब्दकूं मङ्गलरूपता हीं कथन करी है । तहां श्लोक—**ॐकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ** ॥ अर्थ यह—ॐकार तथा अथशब्द यह दोनों पूर्व ब्रह्माके कण्ठकूं भेदन करिकै निकसे हैं, ते तिस कारणतैं दोनों शब्द मङ्गलके हीं बोधक हैं इति । अथवा जहां ईश्वरके नामोंकी गिणती करी है तहां धर्म भी ईश्वरका नाम कह्या है । यातैं ता उक्त सूत्रविषे जो धर्मशब्द है सो धर्मशब्द परमेश्वरका स्मारक होणेतैं मङ्गलरूप हीं है और गौतममुनिप्रणीत न्यायशास्त्रके आदिविषे तौं **प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टांत-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः** । यह षोडशपदार्थोंका प्रतिपादक सूत्र कथन कर्या है । तिस सूत्रके आदि विषे स्थित जो प्रमाण यह शब्द है सो प्रमाणशब्द भी परमेश्वरका हीं नाम कह्या है । यातैं परमेश्वरका स्मारक होणेतैं सो प्रमाणशब्द भी मङ्गलरूप हीं है । इस प्रकारके ईश्वरवाचक शब्दरूप मङ्गलकूं देखिकै आस्तिक पुरुषोंकी तिस न्यायवैशेषिक शास्त्रविषे प्रवृत्ति संभव है इति ।

त्रिविध मंगलका वर्णन—**शंका**; गुरु ईश्वरादिकोंके तांई जो नमस्कार करणा है तिसकूं हीं मङ्गलरूपता सम्भवै है । ता नमस्कारतैं विना केवल ता गुरु ईश्वरके स्मरणमात्रकूं मङ्गलरूपता सम्भवती नहीं । **समाधान**—सो मङ्गल केवल नमस्काररूप हीं नहीं होवै है। किंतु सो मङ्गल तीन प्रकारका होवै है । तहां एक तौं वस्तुनिर्देशरूप मङ्गल होवै है और दूसरा नमस्काररूप मङ्गल होवै है और तीसरा आशीर्वादरूप मङ्गल होवै है। अब इन तीनोंके लक्षणकूं कहे हैं । तहां—**नमस्कारादिमन्तरा परमेश्वरस्य संकीर्त्तनं वस्तुनिर्देशः** । अर्थ यह—नमस्कारादिकोंतैं विना हीं केवल परमेश्वररूप वस्तुका जो

संकीर्त्तन है ताका नाम वस्तुनिर्देशरूप मङ्गल है । यद्यपि नमस्काररूपमङ्गलविषे तथा आशीर्वादरूपमङ्गलविषे भी ता ईश्वररूपवस्तुका संकीर्त्तन होवै है तथापि तहां नमस्कार पूर्वक अथवा इष्ट अर्थकी प्रार्थनापूर्वक हीं ता ईश्वररूप वस्तुका संकीर्त्तन होवै है । यातैं इस वस्तुनिर्देशरूप मङ्गलके लक्षणविषे 'नमस्कारादिमन्तरा' इस पदके कहणे करिकै इस लक्षणकी ता नमस्काररूप मङ्गलविषे तथा आशीर्वादरूप मङ्गलविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । **स्वापकर्षबोधानुकूलः स्वीयव्यापारविशेषः नमस्कारः ।** अर्थ यह—नमस्कारके योग्य जे गुरु ईश्वरादिक हैं तिनोंतैं नमस्कारकर्त्ता पुरुषविषे जो न्यूनता है ता न्यूनताका लोकोंके प्रति बोधनकरणेहारा जो नमस्कारकर्त्ता पुरुषका शरीरमनवाणीकृत व्यापारविशेष है ताका नाम नमस्काररूप मङ्गल है इति । **परमेश्वरात्स्वस्य स्वशिष्यस्य वा वाञ्छितार्थप्रार्थनम् आशीर्वादः ।** अर्थ यह—ग्रन्थकर्त्ता पुरुषकूं वांछित जो अर्थ है तथा आपणे शिष्यकूं वांछित जो अर्थ है ता अर्थके प्राप्तिकी जो परमेश्वरतैं प्रार्थना करणी है ताका नाम आशीर्वादरूप मङ्गल है इति । यातैं ता वैशेषिक शास्त्रविषे तथा न्यायशास्त्रविषे ता नमस्काररूप मङ्गलके तथा आशीर्वादरूप मङ्गलके अभावहूए भी सो वस्तुनिर्देशरूप मङ्गल ता शास्त्रविषे भी विद्यमान है इति । मङ्गलका सामान्य लक्षण—**लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः ।** अर्थ यह—लक्षण प्रमाण इन दोनोंतैं हीं वस्तुकी सिद्धि होवै है । यह शास्त्रकारोंका नियम है । तहां मङ्गलका स्वरूप तौं पूर्व उक्त रीतिसैं प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै सिद्ध है । परन्तु तिस मङ्गलका लक्षण कौन है ? ऐसी शंकाके प्राप्तहूए । अथवा पूर्व वस्तुनिर्देशादिक तीन प्रकारके मङ्गलके भिन्नभिन्न लक्षणकथन कऱ्ये । ते तीनों विशेषलक्षण तबी सम्भवैं जबी ता मङ्गलका कोई एक सामान्यलक्षण सिद्ध होवै । ता सामान्यलक्षणतैं विना ते विशेषलक्षण सम्भवते नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता मङ्गलका सामान्यलक्षण कथन करे हैं । तहां—**विघ्नभिन्नत्वे सति विघ्नध्वंसप्रतिबन्धकाभावभिन्नत्वे च सति प्रारिप्सितविघ्नध्वंसासाधारणकारणं मङ्गलम् ।** अर्थ यह—विघ्नोंतैं भिन्न हूवा तथा विघ्नध्वंसके प्रतिबन्धका भावतैं भिन्न हूवा जो प्रारम्भकी इच्छाके विषयभूत कार्यके विघ्नध्वंसका असाधारणकारण होवै है सो मङ्गल कहियै है । तहां सो उक्त मङ्गल विघ्नोंतैं भिन्न भी है तथा विघ्नध्वंसरूप कार्यका जनक जो प्रतिबन्धकाभाव है तिसतैं भी भिन्न है तथा प्रारम्भकी इच्छाका विषयभूत जो ग्रन्थ है ताके प्रतिबन्धक विघ्नोंके ध्वंसका असाधारणकारण भी है । यातैं ता मङ्गलका यह उक्तलक्षण सम्भवै है । तहां इस उक्त लक्षण विषे 'विघ्नभिन्नत्वे सति' यह पद जो नहीं कथन करते तौं तिन विघ्नोंविषे हीं ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ते विघ्न ता विघ्नध्वंसके जनक प्रतिबन्धकाभावतैं भिन्न भी है तथा प्रारिप्सितविघ्नध्वंसका असाधारण कारण भी हैं । तहां जैसे घटके ध्वंसविषे मुद्गरप्रहारादिक असाधारणकारण होवै हैं तैसे सो घटरूप प्रतियोगी भी

ता स्वध्वंसविषे असाधारण कारण होवै है तैसे तिन विघ्नोंके ध्वंसविषे ते विघ्नरूप प्रतियोगी भी असाधारणकारण होवै हैं । तिन विघ्नोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'विघ्नभिन्नत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां आपणा भेद आपणे विषे रहता नहीं किंतु आपणेतैं भिन्न वस्तुवोंविषे सो आपणाभेद रहे है । यातैं तिन विघ्नोंका भेद तिन विघ्नोंविषे रहता नहीं. यातैं तिन विघ्नोंविषे ता मंगलके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा ता उक्तलक्षणविषे 'विघ्नध्वंसप्रतिबंधकाभावभिन्नत्वे सति' यह पद जो नहीं कथन करते तौं तिस विघ्नध्वंसप्रतिबंधकाभावविषे हीं ता मंगलके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? प्रतिबंधकके विद्यमान हूए किसी भी कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं, यातैं सो प्रतिबंधकाभाव भी कार्यकी उत्पत्तिविषे कारण होवै है । और सो विघ्नोंका ध्वंस भी एक कार्यरूप है यातैं ता विघ्नध्वंसकी उत्पत्तिविषे भी सो प्रतिबंधकाभाव कारण हीं है । और सो प्रतिबंधकाभाव तिन विघ्नोंतैं भिन्न भी है ऐसे विघ्नध्वंसके कारणभूत प्रतिबंधकाभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'विघ्नध्वंसप्रतिबन्धकाभावभिन्नत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । सो विघ्नध्वंसप्रतिबंधकाभाव आपणेतैं भिन्न है नहीं, यातैं ताके विषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ता उक्तमंगलके लक्षणविषे 'प्रारिप्सित' यह पद जो नहीं कथन करते तौं कारीरी यागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो कारीरीयाग तिन विघ्नोंतैं भिन्न भी है तथा ता विघ्नध्वंसप्रतिबंधकाभावतैं भी भिन्न है तथा वृष्टिके प्रतिबंधक जे विघ्न हैं तिनोंके ध्वंसका असाधारण कारण भी है । ऐसे कारीरीयाग विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'प्रारिप्सित' यह पद कथन कऱ्या है । तहां प्रारंभकरणेकी इच्छाका विषय जो कार्य है ताका नाम प्रारिप्सित है, सो ईहां प्रसंगविषे ग्रंथहीं प्रारिप्सित कार्य है । ताके प्रतिबंधकविघ्नोंके ध्वंसका असाधारणकारण सो मङ्गल हीं है, कारीरीयाग है नहीं । यातैं 'प्रारिप्सित' इस पदके कथन करणेतैं तिस कारीरी यागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा ता मङ्गलके लक्षणविषे 'असाधारण' यह पद जो नहीं कथन करते तौं ता लक्षणकी काल अदृष्टादिक साधारण कारणोंविषे अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ते काल अदृष्टादिक तिन विघ्नोंतैं भिन्न भी हैं तथा ता विघ्नध्वंसप्रतिबंधकाभावतैं भी भिन्न हैं तथा ता प्रारिप्सित ग्रंथके प्रतिबंधकविघ्नोंके ध्वंसका कारण भी हैं। ऐसे काल अदृष्टादिकोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'असाधारण' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ईश्वर १, ता ईश्वरका ज्ञान २, इच्छा ३, प्रयत्न ४, देश ५, काल ६, अदृष्ट ७, प्रागभाव ८, प्रतिबंधकाभाव ९ यह नव कार्यमात्रके प्रति साधारणकारण होवै हैं अर्थात् इन नव कारणोंतैं विना कोई भी कार्य उत्पन्न होता नहीं । ता लक्षणविषे कारणके असाधारणविशेषणके कहणेतैं तिन काल अदृष्टादिक साधारणकारणोंविषे ता उक्त मङ्गलके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं ॥

इति मङ्गलवादः समाप्तः ॥

मोक्षका विषय ।

तत्त्वज्ञानसे मोक्ष–अब इस ग्रंथविषे कथनकरणेयोग्य जे द्रव्यादिक पदार्थ हैं तिन पदार्थोंके निरूपणका जिस प्रकारतैं तत्त्वज्ञानविषे उपयोग है तथा तिस तत्त्वज्ञानकूं जिस प्रकारतैं मोक्षकी साधनता है सो सर्वप्रकार विस्तारतैं निरूपण करे हैं । तहां श्रुतिविषे केवल तत्त्वज्ञानतैं हीं मोक्षकी प्राप्ति कथन करी है । तहां श्रुति–**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय** । अर्थ यह–तिस आत्माकूं जानिकै हीं यह अधिकारी पुरुष आत्यंतिक दुःखकी निवृत्तिरूप मोक्षकूं प्राप्त होवै है । तिस मोक्षकी प्राप्तिवासतै ता आत्मज्ञानतैं विना दूसरा कोई उपाय है नहीं, किंतु सो एक आत्मज्ञान हीं ता मोक्षके प्राप्तिका उपाय है इति । इत्यादिक अनेक श्रुतियोंविषे केवल आत्मज्ञानतैं हीं मोक्षकी प्राप्ति कथन करी है ।

**शंका;** काशी मरणसे मुक्ति–केवल एक आत्मज्ञानतैं हीं मुक्ति होवै है अन्य किसी उपायतैं नहीं होवै है । यह नियम संभवता नहीं । काहेतैं ? श्रुतिस्मृतियोंविषे ता मुक्तिकी प्राप्तिवासतै तिस तत्त्वज्ञानतैं विना दूसरे भी अनेक उपाय कथन करे हैं । तहां **काशीमरणान्मुक्तिः** । अर्थ यह–इस अधिकारी पुरुषकूं श्रीकाशीविषे मरणेतैं मुक्तिकी प्राप्ति होवै इति । यह श्रुति तौ काशीमरणतैं हीं मुक्तिकी प्राप्ति कथन करे है । ज्ञानकर्मसे मोक्ष–**उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः । तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते शाश्वती गतिः** । अर्थ यह–जैसे आकाशविषे पक्षीयोंका दोनों पक्षों करिकै हीं गमन होवै है, एक पक्षकरिकै गमन होवै नहीं तैसे इस अधिकारी पुरुषकूं ज्ञान कर्म इन दोनों करिकै हीं मोक्षकी प्राप्ति होवै है, केवल एक कर्म करिकै अथवा केवल एक ज्ञान करिकै सा मोक्षकी प्राप्ति होवै नहीं इति । इत्यादिक वचनोंविषे तौ ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयतैं हीं मुक्तिकी प्राप्ति कथन करी है । और **कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः** । अर्थ यह–जनकादिक कर्म करिकै हीं मोक्षकूं प्राप्त होते भये हैं इति । इत्यादिक वचनोंविषे केवल कर्मो करिकै हीं मुक्तिकी प्राप्ति कथन करी है । ब्रह्मज्ञान, प्रयागमरण, गोमती स्नान वा कृष्णके पासकी मृत्युसे मोक्ष–**ब्रह्मज्ञानेन मुच्यन्ते प्रयागमरणेन वा । अथवा स्नानमात्रेण गोमत्याः कृष्णसन्निधौ** ॥ अर्थ यह–यह अधिकारी पुरुष ब्रह्मज्ञान करिकै मुक्तिकूं प्राप्त होवै हैं, अथवा प्रयागविषे मरणकरिकै मुक्तिकूं प्राप्त होवै हैं, अथवा श्रीकृष्णभगवान्‌के समीप गोमतीतीर्थके स्नानमात्र करिकै मुक्तिकूं प्राप्त होवै हैं इति । इस शास्त्रके वचनविषे ब्रह्मज्ञानतैं तथा प्रयागमरणतैं तथा गोमतीके स्नानतैं मुक्तिकी प्राप्ति कथन करी है । सगुण उपासनादिसे मुक्तिका पूर्वपक्ष तथा तत्त्वज्ञानमेंके उपयोगसे समाधान–कितनेकी श्रुतियोंविषे सगुण ब्रह्मकी उपासनातैं भी मुक्तिकी प्राप्ति कथन करी है । यातैं आत्मज्ञानतैं हीं मुक्ति होवै है, अन्य उपायतैं नहीं होवै है यह नियम संभवता नहीं । **समाधान–नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय** । यह पूर्व उक्त श्रुति ता मोक्षकी

प्राप्तिविषे ता आत्मज्ञानतैं विना दूसरे कर्म उपासनादिक सर्व उपायोंका निषेध करे है। यातैं जैसे ता आत्मज्ञानरूप तत्त्वज्ञानकूं साक्षात् मोक्षकी साधनता है तैसे तिन कर्मादिकोंकूं साक्षात् मोक्षकी साधनता नहीं है, किंतु तिस तत्त्वज्ञानविषे हीं तिन कर्मादिकोंकूं साधनता है। तहां काशीविषे मरणेतैं इस पुरुषकूं महादेवके उपदेशतैं तत्त्वज्ञान होवै है। तिस तत्त्वज्ञानतैं मुक्तिकी प्राप्ति होवै है। इस प्रकार निष्कामकर्म भी तत्त्वज्ञानके प्रतिबंधक दुरितोंके ध्वंसद्वारा तिस तत्त्वज्ञानके हीं कारण हैं। तैसे सो प्रयागमरण तथा गोमतीस्नान तथा सगुणब्रह्मकी उपासना इत्यादिक भी तत्त्वज्ञानके हीं साधन हैं। साक्षात् मुक्तिके साधन नहीं हैं। एक तत्त्वज्ञानहीं साक्षात् मुक्तिका साधन है। तिस तत्त्वज्ञानविषे ते काशीमरणादिक उपाय उपयोगी हैं। इस प्रकारके परंपरा उपयोगकूं अंगीकार करिकै हीं शास्त्रविषे तिन काशीमरणादिकोंकूं मुक्तिका साधन कह्या है। यातैं केवल तत्त्वज्ञानतैं मोक्ष मानणेविषे तिन वचनोंका विरोध होवै नहीं। किंवा जो वादी केवल कर्मोंकूं हीं मोक्षका साधन माने है, तिस वादीसैं यह पूछा चाहिये—संन्यासीके प्रति शास्त्रनैं विधान कर्‍ये जे भिक्षा अटनादिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूं मोक्षकी साधनता है अथवा गृहस्थके प्रति शास्त्रनैं विधान कर्‍ये जे अग्निहोत्रादिक कर्म हैं तिन कर्मोंकूं मोक्षकी साधनता है ? तहां संन्यासीके कर्मोंकूं मोक्षकी साधनता है यह प्रथमपक्ष जो वादी अंगीकार करै तौं संन्यासीके भिक्षा अटनादिक कर्मोंविषे गृहस्थकूं अधिकार है नहीं। यातैं ता गृहस्थकी मुक्ति नहीं होणी चाहिये और शास्त्रविषे तौं ता गृहस्थकी भी मुक्ति कथन करी है। तहां शास्त्रवचनम्—**कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ॥** अर्थ यह—जनकादिक गृहस्थ पुरुष निष्काम कर्मों करिकै हीं मोक्षकूं प्राप्त होते भये हैं और श्राद्धादिककर्मकूं करणेहारा तथा सत्यवादी ऐसा गृहस्थ भी मुक्तिकूं प्राप्त होवै है इति। जो संन्यासीके कर्मकूं हीं मोक्षकी साधनता मानोंगे तौं गृहस्थकी मुक्तिकूं कथन करणेहारे यह सर्ववचन व्यर्थ होवैंगे। यातैं तिन संन्यासीके कर्मोंकूं मोक्षकी साधनता संभवती नहीं। और गृहस्थके कर्मोंकूं हीं मोक्षकी साधनता है यह द्वितियपक्ष जो वादी अंगीकार करै तौं तिस गृहस्थके अग्निहोत्रादिक कर्मोंविषे संन्यासीकूं अधिकार है नहीं। यातैं ता संन्यासीकी मुक्ति नहीं होणी चाहिये और तिन संन्यासीयोंकूं मुक्तिकी प्राप्ति श्रुतिस्मृतियोंविषे प्रसिद्ध हीं है। यातैं गृहस्थके कर्मोंकूं भी मोक्षकी साधनता संभवती नहीं और जैसे स्वर्गादिक सुखविषे विलक्षणता है तैसे मुक्तिविषे कोई विलक्षणता है नहीं। जिस विलक्षणताकूं लैके विजातीय मुक्तिके प्रति तौं संन्यासीके कर्मोंकूं कारणता होवै और विजातीयमुक्तिके प्रति गृहस्थके कर्मोंकूं कारणता होवै। यातैं तिन कर्मोंकूं साक्षात् मोक्षकी साधनता संभवै नहीं। किंवा—**तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन।** अर्थ यह—अधिकारी ब्राह्मण इस आत्माकूं

वेदाध्ययन यज्ञ दान तप इत्यादि कर्मों करिकै जानणेकी इच्छा करे हैं इति। इस श्रुतिविषे तिन यज्ञदानादिक कर्मोंकूं आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाकी अथवा ता आत्मज्ञानकी हीं कारणता कथन करी है, मोक्षकी कारणता कथन करी नहीं । और **न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके ऽमृतत्वमानशुः** । अर्थ यह—पूर्वले विद्वान् पुरुष अग्निहोत्रादिक कर्मकरिकै तथा पुत्रादिक प्रजाकरिकै तथा सुवर्णादिक धनकरिकै मोक्षकूं नहीं प्राप्त होते भये हैं किंतु तिन कर्मादिकोंके त्यागपूर्वक तत्त्वज्ञान करिकै हीं मोक्षकूं प्राप्त होते भये हैं इति। यह श्रुति ता मोक्षकी प्राप्तिवासतै तिन कर्मोंका निषेध करे है। या कारणतैं भी ते कर्म मोक्षके साधन नहीं हैं, किंतु सो एक तत्त्वज्ञान हीं ता मोक्षका साधन है यह अर्थसिद्ध भया इति।

तत्त्वज्ञानका स्वरूप—तहां आत्माकूं देह इंद्रियादिक सर्व अनात्मपदार्थोंतैं जो भिन्न करिकै जानणा है ताका नाम तत्त्वज्ञान है। ईहां आत्मशब्दकरिकै जीवात्माका तथा ईश्वररूप परमात्माका दोनोंका ग्रहण करणा । एकका ग्रहण करणा नहीं । काहेतैं ? **आत्मानं चेद्विजानीयादह(य)मस्मीति पुरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्** । इस श्रुतिविषे जीवात्माका ज्ञान हीं मोक्षका कारण कह्या है। और—**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति** । इस श्रुतिविषे परमात्माका ज्ञान हीं मोक्षका कारण कह्या है। तहां जो केवल जीवात्माके ज्ञानकूं हीं मोक्षका कारण मानिये तौं परमात्माके ज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारी सा उक्त श्रुति असंगत होवैंगी और जो केवल परमात्माके ज्ञानकूं हीं मोक्षका कारण मानिये तौं जीवात्माके ज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारी सा उक्त श्रुति असंगत होवैंगी। यातैं एक एकका ज्ञान मोक्षका कारण नहीं है किंतु जीवात्माका तथा परमात्माका दोनोंका देहादिक इतर पदार्थोंतैं भिन्न रूपकरिकै जो ज्ञान है सो तत्त्वज्ञान हीं ता मोक्षका कारण है इति॥

तत्वज्ञानके साधन श्रवणादिक—ऐसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीन साधनों करिकै हीं होवै है। तहां श्रुति—**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः** । अर्थ यह—बृहदारण्यक उपनिषद्विषे याज्ञवल्क्य मुनिनैं आपणी मैत्रेयी स्त्रीके प्रति यह वचन कह्या है, हे मैत्रैयी ! आत्मा द्रष्टव्य है अर्थात् आत्मसाक्षात्कार मोक्षरूप इष्टका साधन है। यातैं मुमुक्षुजनोंनैं सो आत्मसाक्षात्कार अवश्य करिकै संपादन करणा । तहां तिस आत्मसाक्षात्कारके कौन साधन हैं ? ऐसी शंकाके प्राप्तहूए सो याज्ञवल्क्यमुनि तिन साधनोंकूं कथन करे है—हे मैत्रेयी ! यह आत्मा श्रोतव्य है तथा मंतव्य है तथा निदिध्यासितव्य है। अर्थात् आत्माका श्रवण तथा मनन तथा निदिध्यासन ता आत्मसाक्षात्काररूप इष्टका साधन है । यातैं ता आत्मसाक्षात्कारकी इच्छावान् पुरुषनैं श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीनों अवश्य करिकै संपादन करणे इति। इस श्रुतिनैं आत्मतत्त्वसाक्षात्कारकी प्राप्ति वासतै श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीन साधन विधान करे हैं॥

अब यथाक्रमतैं तिन श्रवणादिक तीनोंके लक्षणकूं कहे हैं। तहां—**श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठगुरुमुखात् श्रुतिवाक्यार्थविज्ञानं श्रवणम्** । अर्थ यह—जो गुरु श्रोत्रिय होवै अर्थात् नाना प्रकारकी युक्तियों करिकै शिष्यके संशय निवृत्तकरणेविषे समर्थ होवै तथा जो गुरु ब्रह्मनिष्ठ होवै अर्थात् आत्मतत्त्वसाक्षात्कारवाला होवै, ऐसे श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखतैं जो श्रुतिवाक्योंके अर्थका जानणा है ताका नाम श्रवण है इति । **साधकबाधकप्रमाणोपन्यासरूपयुक्तिभिस्तदर्थानुचिन्तनं मननम्** । अर्थ यह—तिस श्रवण कर्‍ये हूए अर्थके साधक जे प्रमाण हैं तथा तिस अर्थतैं विपरीत अर्थके बाधक जे प्रमाण हैं तिन प्रमाणोंकी स्फुर्तिरूप युक्तियों करिकै जो श्रवण कर्‍येहूए अर्थका पुनः पुनः चिन्तन है ताका नाम मनन है इति । इस प्रकारका श्रवणमननका स्वरूप श्रुतिविषे भी कथन कर्‍या है। तहां श्रुति—**श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः** । अर्थ यह—आत्मा श्रुतिवाक्योंकरिकै श्रवण करणे योग्य है और साधकबाधकप्रमाणोंकी स्फुर्त्तिरूप युक्तियों करिकै मनन करणेयोग्य है इति । **श्रुतार्थस्य नैरन्तर्येण दीर्घकालमनुसन्धानं निदिध्यासनम्** । अर्थ यह—श्रवण कर्‍येहूए अर्थका जो निरन्तरता करिकै दीर्घकालपर्यंत अनुसंधान है ताका नाम निदिध्यासन है इति । इस प्रकारके श्रवण मनन निदिध्यासन करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं तिस तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होवै है । निष्कामकर्म, आत्मशुद्धि, वैराग्यआदिके विषे पूर्वपूर्वकी उत्तरके प्रति साधना । तहां—वैराग्यतैं रहित विषयासक्त पुरुषकी तिन श्रवणादिकों विषे प्रवृत्ति सम्भवै नहीं । यातैं इस अधिकारी पुरुषनैं तिन श्रवणादिकोंकी प्राप्तिवासतै प्रथम वैराग्यकूं सम्पादन करणा । तहां इस लोकके तथा स्वर्गादिक लोकोंके जितनैंकी विषयजन्य सुख हैं तथा तिन सुखोंके जितनैंकी साधन हैं तिन सर्वोंकी इच्छातैं रहितपणेका नाम वैराग्य है । ऐसा वैराग्य अशुद्ध आत्माविषे होवै नहीं किंतु शुद्ध आत्माविषे हीं सो वैराग्य होवै है । यातैं ता वैराग्यकी प्राप्तिवासतै इस अधिकारीपुरुषनैं आत्माकी शुद्धि सम्पादन करणी । तहां पाप कर्मोंका जो क्षय है ताका नाम आत्मशुद्धि है । सा आत्मशुद्धि निष्कामकर्मोंतैं विना होवै नहीं । यातैं ता आत्मशुद्धिवासतै इस अधिकारीपुरुषनैं ते निष्कामकर्म अवश्य करणे । यातैं यह क्रम सिद्ध भया निष्काम कर्मोंकरिकै सा आत्मशुद्धि होवै है । ता आत्मशुद्धितैं विषयोंविषे वैराग्य होवै है। ता वैराग्यतैं श्रवणादिकोंविषे प्रवृत्ति होवै है । तिन श्रवणादिकों करिकै तत्त्वज्ञान होवै है । ता तत्त्वज्ञानकरिकै निःश्रेयसरूप मोक्ष होवै है इति ॥

मोक्षके भेद तथा उसकी प्राप्तिके क्रम—**शङ्का**; जैसे काशीमरणादिकोंकूं साक्षात् मोक्षकी साधनता नहीं है तैसे तिस तत्त्वज्ञानकूं भी साक्षात् मोक्षकी साधनता नहीं है । काहेतैं ? तत्त्वज्ञानी पुरुषोंकी भी संसारविषे अवस्थिति देखणेमें आवे है । सो तत्त्वज्ञान जो साक्षात् मोक्षका साधन होवै तौ तिन तत्त्वज्ञानी पुरुषोंकी संसारविषे अवस्थिति नहीं होणी चाहिये ॥

**समाधान**--सो मोक्षरूप निःश्रेयस दो प्रकारका होवै है। तहां एक तौं परमोक्ष होवै है, दूसरा अपरमोक्ष होवै है। तहां जीवन्मुक्तिकानाम अपरमोक्ष है और विदेहमुक्तिकानाम परमोक्ष है। तहां श्रवणा दिकसाधनोंकरिकै निश्चय कऱ्या है आत्माका वास्तवस्वरूप जिसनैं तथा निरंतर ज्ञानाभ्यासकरिकै निवृत्त होइ गया है देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप मिथ्याज्ञान जिसका ऐसा जो प्रारब्धकर्मकूं भोक्ता हूआ तत्त्ववेत्ता पुरुष है तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं सो जीवन्मुक्तिरूप अपरमोक्षतौं तिस तत्त्वज्ञानतैं अनंतरहीं प्राप्त होवै है और दूसरा विदेहमुक्तिनामा जो परमोक्ष है सो परमोक्ष तौं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तिस तत्त्वज्ञानतैं उत्तर होवै नहीं। किंतु क्रम करिकै होवै है सो क्रम न्यायशास्त्रविषे गौतममुनिनैं यह कह्या है। तहां सूत्र-**दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः**। अर्थ यह—दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष, मिथ्याज्ञान इन पांचोंके मध्यविषे पूर्वपूर्वकी अपेक्षा करिकै जो उत्तर उत्तर है तिस उत्तर उत्तरके अभाव हूए जो तिस उत्तरउत्तरतैं अव्यवहितपूर्ववृत्तिका अभाव है। तिसतैं सो परमोक्षनामा अपवर्ग प्राप्त होवै है। ईहां यह तात्पर्य है—मैं मनुष्य हूं, मैं ब्राह्मण हूं, मैं बधिर हूं, मैं अंध हूं इस प्रकारका जो देहइंद्रियादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप भ्रम है ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ता मिथ्याज्ञानतैं इष्टवस्तुविषे रागरूप तथा अनिष्टवस्तुविषे द्वेषरूप दोष उत्पन्न होवै है। ता रागद्वेषरूप दोषतैं धर्म अधर्मरूप प्रवृत्ति होवै है। तिस धर्म अधर्मरूप प्रवृत्तितैं शरीरका संबंधरूप जन्म होवै है। तिस जन्मतैं दुःख होवै है। इस प्रकारकी परंपरा करिकै सो मिथ्याज्ञान हीं इस आत्माकूं संसारका कारण है और जबी इस अधिकारी पुरुषकूं पूर्व उक्त श्रवणादिक साधनों करिकै देह इन्द्रियादिक सर्वपदार्थोंतैं आत्माभिन्न है या प्रकारका तत्त्वज्ञान होवै है। तबी तिस तत्त्वज्ञानतैं मैं मनुष्यहूं, मैं ब्राह्मण हूं इत्यादिक वासनासहित सर्वमिथ्याज्ञान निवृत्त होइ जावै हैं। ता वासनासहित मिथ्याज्ञानकी निवृत्तितैं ता वासनासहित रागद्वेषरूप दोषका अभाव होवै है। ता रागद्वेषरूप दोषके अभावतैं ता धर्म अधर्मरूप प्रवृत्तिकी अनुत्पत्ति होवै है। ता धर्म अधर्मरूप प्रवृत्तिकी अनुत्पत्तितैं प्रारब्धकर्मका फलरूप इस देहतैं अन्यदेहका संबंधरूप जन्मका अभाव होवै है। ता शरीरसंबंधरूप जन्मके अभावतैं एकविंशति दुःखोंका नाश होवै है। यह एकविंशतिदुःखोंकी आत्यंतिक निवृत्ति हीं परमोक्ष है। इस प्रकारकी उक्त परंपरा करिकै हीं तिस तत्त्वज्ञानकूं ता विदेहमुक्तिनामा परमोक्षके प्रति कारणता है इति। कर्मनाश—**शंका**—तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं ता तत्त्वज्ञानतैं उत्तरभावी पुण्यपापरूप कर्म करिकै जन्मकी प्राप्ति मत होवो तथापि तिस तत्त्वज्ञानतैं पूर्व अनेकजन्मोंविषे कऱ्ये हूए पुण्यपापकर्मों करिकै तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं भी जन्मकी प्राप्ति अवश्य होवैंगी। काहेतैं? स्मृतिविषे भोग करिकै हीं तिन कर्मोंका नाश कह्या है। तहां स्मृति--**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि** ॥ अर्थ

यह—कर्‍या हूआ शुभ कर्म तथा अशुभ कर्म अवश्य करिकै भोग्या जावै है । भोगतैं विना शतकोटिकल्पों करिकै भी सो शुभ अशुभ कर्म नाश होवै नहीं इति । यातैं तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं भी तिन पूर्वले संचितकर्मोंके वशतैं जन्मकी प्राप्ति अवश्य होवैगी । **समाधान**—केवल भोग करिकै हीं ता शुभ अशुभ कर्मका नाश होवै है अन्य उपाय करिकै नहीं होवै है यह नियम सर्वत्र संभवता नहीं। काहेतैं? **धर्मेण पापमपनुदति।** अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष धर्मकरिकै पापकूं निवृत्त करै । इस श्रुतिविषे फल भोगतैं विना हीं केवल धर्म करिकै हीं तिस पापकी निवृत्ति कथन करी है और धर्मशास्त्रविषे मनु याज्ञवल्क्यादिक ऋषियोंनैं तिस तिस पापकी निवृत्तिवासतै अनेक प्रायश्चित्त कथन करे हैं । तिन प्रायश्चितों करिकै भी फल भोगतैं विना हीं तिन पापोंकी निवृत्ति होवै है। इस प्रकार धर्मकी भी फल भोगतैं विना हीं निवृत्ति शास्त्रविषे कथन करी है । तहां श्लोक—**कर्मनाशाजलस्पर्शात् करतोयाविलङ्घनात् । गण्डिकाबाहुतरणाद्धर्मः क्षरति कीर्त्तनात् ।** अर्थ यह—कर्मनाशानदीके जलके स्पर्शकरणेतैं धर्म नष्ट होइ जावै है तथा करतोयानदीके पारले किनारे जाणेतैं भी सो धर्म नष्ट होइ जावै है तथा गंडिका नदीकूंबाहुसैं तरणेतैं भी सो धर्म नष्ट होइ जावै है। तथा कर्‍येहूए धर्मका लोकोंके आगे कीर्त्तन करणेतैं भी सो धर्म नष्ट होइ जावै है इति । इस प्रकार सुखदुःखरूप फलके भोगतैं विना हीं उक्त प्रायश्चित्तादिक उपायोंकरिकै जैसे तिन शुभ अशुभ कर्मोंका नाश श्रुतिस्मृतिरूपशास्त्रनैं कथन कर्‍या है ।तैसे तिस श्रुतिस्मृतिरूपशास्त्रनैं तत्त्वज्ञान करिकै भी तिन शुभ अशुभरूप सर्वसंचितकर्मोंका नाश कथन कर्‍या है। तहां श्रुति—**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।** अर्थ यह—अस्मदादिक जीवोंकी अपेक्षा करिकै पर जे ब्रह्मादिक हैं ते ब्रह्मादिक भी अवर कहीये निकृष्ट हैं जिसतैं ताका नाम परावर है । ऐसे परावररूप परमात्माके दर्शनहूए इस तत्त्ववेत्ता पुरुषके पूर्वले शुभ अशुभरूप सर्व संचितकर्म नाशकूं प्राप्त होवै हैं इति । तहां स्मृति—**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।** अर्थ यह—हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित महान् अग्नि काष्ठोंके समूहकूं भस्म करे है तैसे तत्त्वज्ञानरूप अग्नि सर्वसंचितकर्मोंकूं नाश करे है । इति । इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृति वचन तत्त्वज्ञान करिकै पूर्वले सर्वकर्मोंके नाशकूं कथन करे हैं । जो कदाचित् केवल भोग करिकै हीं ता शुभ अशुभ कर्मका नाश होता होवै तौं यह पूर्व उक्त सर्ववचन असंगत होवैंगे । यातैं 'अवश्यमेव भोक्तव्यं' इस पूर्व उक्त स्मृतिविषे जो भोगशब्द कथन कर्‍या है सो भोगशब्द प्रायश्चित्त तत्त्वज्ञानतैं आदिलेके जितनैंकी शुभ अशुभ कर्मके नाशक हैं तिन सर्वोंका उपलक्षण है । अथवा प्रारब्धकर्मोंका भोगतैं विना नाश होता नहीं । किंतु केवल भोग करिकै हीं नाश होवै है। यातैं सो पूर्व उक्त स्मृतिवचन तिन प्रारब्धकर्मोंपरि हीं है संचितकर्मोंपर है नहीं, इस प्रकारतैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके पूर्वले सर्वकर्मोंका तिस तत्त्वज्ञान करिकै नाश होइ

जावै है और जिन प्रारब्ध कर्मोंनैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषका शरीर उत्पन्न कऱ्या हैं ते प्रारब्धकर्म तौं फलके भोग करिकै हीं नाश होवै हैं। अन्य किसी उपायतैं नाश होवै नहीं। तिन प्रारब्ध कर्मोंके नाशतैं अनंतर तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं एकविंशति दुःखोंकी आत्यंतिक-निवृत्तिरूप परमोक्ष प्राप्त होवै है। इति। इसपर मतान्तर—और केइक ग्रंथकार तौं यह कहे हैं। जैसे प्रारब्धकर्मोंका फलभोगतैं विना नाश होवै नहीं। तैसे तिन संचितकर्मोंका भी फलभोगतैं विना केवलतत्त्वज्ञानकरिकै नाश होवै नहीं। किंतु तिन संचितकर्मोंका भी फलके भोग करिकै हीं नाश होवै है। यातैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष तिस तत्त्वज्ञानके प्रभावतैं तिस कालविषे अनेकप्रकारके शरीरोंकूं धारण करि लेवे है। जिन अनेकप्रकारके शरीरोंकूं शास्त्रविषे कायव्यूह नाम करिकै कथन करे हैं। तहां अनेकजन्मोंके पूर्वले कर्मोंके मध्यविषे जिस जिस शुभ अशुभ कर्मका सुखदुःखरूपफल जिस जिस शरीरविषे भोगणा है तिस तिस कर्मका सुखदुःखरूपफल तिस तिस शरीरविषे एक हीं कालविषे भोग लेवै है। तिसतैं अनंतर सो तत्त्ववेत्ता पुरुष ता परमोक्षकूं प्राप्त होवै है इति। परंतु यह मत पूर्वउक्त तत्त्वज्ञानतैं कर्मोंके नाशकूं कथन करणेहारी श्रुतिस्मृतितैं विरुद्धहोणेतैं श्रद्धेय नहीं है इति। अब तिन एकविंशतिदुःखोंका स्वरूप—वर्णन करे हैं। एक शरीर तथा श्रोत्रादिक षट्इन्द्रिय तथा श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके षट्विषय तथा श्रोत्रादिक षट्इन्द्रियजन्य षट्ज्ञानरूप बुद्धियां तथा सुख तथा दुःख यह एकविंशति दुःख कहे जावै हैं अर्थात् शरीर १, श्रोत्रइन्द्रिय २, त्वक् इन्द्रिय ३, चक्षु इन्द्रिय ४, रसन इन्द्रिय ५, घ्राण इन्द्रिय ६, मन इन्द्रिय ७, श्रोत्र इन्द्रियके शब्दादिक विषय ८, त्वक् इन्द्रियके स्पर्शादिक विषय ९, चक्षु इन्द्रियके रूपादिक विषय १०, रसन इन्द्रियके रसादिक विषय ११, घ्राण इन्द्रियके गंधादिक विषय १२, मन इन्द्रियके सुखदुःखादिक विषय १३, श्रोत्र इन्द्रियजन्य शब्दादिविषयक श्रावणज्ञान १४, त्वक् इन्द्रियजन्य स्पर्शादि विषयक त्वाचज्ञान १५, चक्षु इन्द्रियजन्य रूपादिविषयक चाक्षुष ज्ञान १६, रसनइंद्रियजन्य रसादिविषयकरासनज्ञान १७, घ्राणइंद्रियजन्य गंधादिविषयक घ्राणजज्ञान १८, मनइंद्रियजन्य सुखदुःखादिविषयक मानसज्ञान १९, सुख २०, दुःख २१। यह एकविंशति दुःख कहे जावै हैं। दुःखशब्दके अर्थ—तहां पापकर्मकरिकै जन्य तथा 'अहं दुःखी' इस प्रकारकी प्रतीतिका विषय तथा आत्माका विशेषगुण ऐसा जो दुःखत्वजातिवाला प्रसिद्ध दुःख है सो दुःख हीं ता दुःखशब्दका मुख्य अर्थ है और ता दुःखत्व जातितैं रहित जे शरीरादिक बीस हैं ते शरीरादिक बीसतैं साक्षात् वा परंपराकरिकै ता मुख्य दुःखके जनक हैं। यातैं ते शरीरादिक बीस ता दुःखशब्दका गौण अर्थ है। यातैं ता मुख्य-दुःखकी न्यांई तिन शरीरादिकोंकूं भी दुःखशब्दकरिकै कथन कऱ्या है। जैसे जिस पुरुषनैं साक्षात् विषका हीं भक्षण कऱ्या है तिस पुरुषविषे भी इसनैं विषका भक्षण कऱ्या है या

प्रकारतैं विष शब्दका प्रयोग होवै है। और जिस पुरुषनैं विषयुक्त मधुका भक्षण कर्‍या है तिस पुरुषविषे भी इसनैं विषका भक्षण कर्‍या है या प्रकारतैं विषपदका प्रयोग होवै है अर्थात् जैसे विषविषे तथा ता विषयुक्त मधुविषे ता विषपदका प्रयोग समान होवै है तैसे ता मुख्यदुःखविषे तथा ता दुःखके जनक शरीरादिकोंविषे सो दुःखपदका प्रयोग संभवै है। यातैं ईहां शरीरादिक एकविंशोंका ता दुःख शब्दकरिकै कथन संभवै है। स्वर्गादिक सुख विषेभी दुःखकी जनकता-**शंका**-ते शरीरइंद्रियादिक दुःखके जनक हैं। यातैं तिन शरीरादिकोंविषे यद्यपि गौणदुःखरूपता संभवै है तथापि स्वर्गादिक सुखविषे सा गौणदुःखरूपता भी संभवती नहीं। काहेतैं? **यन्न दुःखेन संभिन्नं** इत्यादिकश्रुतिनैं ता स्वर्गके सुखकूं ता दुःखतैं रहित कह्या है। **समाधान**-सो स्वर्गका सुख दुःखतैं रहित नहीं है। किंतु आदिकालविषे तथा मध्यकालविषे तथा अंतकालविषे सो स्वर्गका सुख दुःख करिकै हीं व्याप्त है। तहां सो स्वर्गसुख बहुत धनके खरच करिकै तथा शरीरके आयास करिकै पुरुषोंकूं प्राप्त होवै है। यातैं सो स्वर्गका सुख आदिकालविषे भी दुःख करिकै व्याप्त होवै। और स्वर्गविषे प्राप्तहूए पुरुषोंकूं आपणेतैं अधिक भोगवाले देवतावोंकूं देखिकै ईर्षाजन्य दुःख होवै है। तथा इंद्रादिक देवतावोंकी पराधीनता जन्य दुःख होवै। तथा नीचै पतनकी भीति जन्य दुःख होवै है यातैं सो स्वर्गका सुख मध्यकालविषे भी ता दुःखकरिकै व्याप्त है और जबी तिन स्वर्गी पुरुषोंका पुण्यक्षयतैं अनंतर नीचै पतन होवै है तबी तिन पुरुषोंकूं ता स्वर्गसुखके वियोगजन्य दुःख होवै है। यातैं सो स्वर्गका सुख अंतकालविषे भी ता दुःखकरिकै व्याप्त है। इस प्रकार मधुविषमिलित अन्नके भोजनजन्य तृप्तिकी न्यांई बहुत दुःखोंकरिकै व्याप्त होणेतैं सो स्वर्गका सुख भी दुःखरूप हीं है जबी स्वर्गका सुख भी अनेकदुःखों करिकै व्याप्त हूआ तबी इस लोकके विषयजन्य सुखकी क्या वार्त्ता है? और **यन्न दुःखेन संभिन्नं** यह श्रुतितौं सकाम पुरुषोंकूं यज्ञादिककर्मोंविषे प्रवृत्त करणेवासतै ता स्वर्गकी स्तुति करे है, यातैं सा श्रुति अर्थवादरूप है ता अर्थवादरूप श्रुतितैं ता स्वर्गसुखविषे सर्व दुःखोंतैं रहितपणा सिद्ध होवै नहीं। अथवा सा श्रुति पूर्वउक्त अवश्यभावी दुःखोंतैं अतिरिक्त व्याधिजन्य दुःखोंके अभावकूं कथन करे है। सर्व दुःखोंके अभावकूं कथन करै नहीं, यातैं ता श्रुतिका भी विरोध होवै नहीं। नव दुःखोंका विषय विषे अन्तर्भाव हूएभी उनका भिन्न फल-**शंका**-यद्यपि ता मुख्य दुःखकी जनकता करिकै तिन शरीरादिकोंविषे गौणदुःखरूपता संभवै है तथापि एकविंशति दुःख संभवते नहीं। किंतु ते षट्इंद्रिय तथा षट्विषय यह द्वादश प्रकारके हीं दुःखसंभवै हैं। काहेतैं? शरीर तथा षट्प्रकारका बुद्धिरूपज्ञान तथा सुखदुःख इन नवोंका विषयत्वरूप करिकै हीं संग्रह होइ सके है तहां शरीरतौं चक्षुइंद्रियजन्य ज्ञानका तथा त्वकूइंद्रियजन्यज्ञानका विषय हैं और ते षट्प्रकारके ज्ञान तथा सुखदुःख यह अष्ट मन इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय हैं।

**समाधान**—वास्तवतैं विचार करिकै देखिये तौं षट्इंद्रिय षट्विषय यह द्वादश प्रकारका हीं दुःख संभवै है, शरीर षट्बुद्धि सुखदुःख इन नवोंका षट्प्रकारके विषयविषे हीं अंतर्भाव संभवै है । तथापि शरीर तथा षट्प्रकारके बुद्धिरूपज्ञान इन सातोंविषे ता मुख्य दुःखकी असाधारण-कारणता होणेतैं अन्य घटादिकविषयोंकी अपेक्षाकरिकै तिनोंकूं प्रधानता है । इस अर्थके सूचनकरणे वासतै तथा मुख्यता करिकै तौं सो दुःख हीं परित्याग करणे योग्य है, तिस दुःखतैं अन्य शरीरादिक वीस तौं ता दुःखके संबंधीपणे करिकै परित्याग करणे योग्य हैं । इस अर्थके सूचनकरणे वासतै शरीर षट्बुद्धि सुख दुःख इन नवोंका ता विषयतैं पृथक् कथन कऱ्या है ।

विषयोंके नाशविषे मोक्षरूपताको असंभवकी **शंका**—शरीर षट्इन्द्रिय, षट् ज्ञान, सुख दुःख यह पञ्चदश दुःख तौं तिस तिस जीवात्माके सम्बन्धवाले हैं । यातैं तत्त्वज्ञानकरिकै तिस तिस जीवात्माके मुक्तहूए तिन पंचदश दुःखोंकी निवृत्ति तौं सम्भव होइ सके है, परन्तु शब्दस्पर्शादिक षट्प्रकारके विषय तौं तिस तिस आत्माके सम्बन्धवाले हैं नहीं । यातैं तिस तिस आत्माके मुक्तहूए तिन शब्दस्पर्शादिक षट्प्रकारके विषयोंकी निवृत्ति संभवती नहीं, किंवा जिस चैत्रनामा पुरुषके श्रोत्रादिक इंद्रियोंके शब्द स्पर्शादिक सर्वविषय नष्ट होइ गये हैं तिस चैत्र पुरुषका मोक्ष हूआ कोई भी अंगीकार करता नहीं । यातैं शब्दादिक विषयोंके नाशविषे मुक्तिरूपता मानणी अत्यंत विरुद्ध है । किंवा तिन विषयोंके नाशविषे मोक्षरूपता संभवती भी नहीं । काहेतैं ? तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके जे शब्दस्पर्शादिक विषय हैं ते विषय अनित्य हैं । यातैं तिनोंका नाश यद्यपि संभवै है तथापि तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषय जे शब्दत्व स्पर्शत्वादिक जातियां हैं तथा मनका विषय जो आत्मा है ते सर्वविषय नित्य हैं । यातैं तिनोंका नाशहीं संभवता नहीं ॥ **समाधान**—ईहां विषयपद करिकै तिस तिस शब्दादिकविषयोंके रागका ही ग्रहण करणा । सो राग उत्कट इच्छारूप होणेतैं ता आत्माके संबंधवाला हीं है तथा अनित्य भी है । यातैं शरीरादिकोंकी न्यांई तिन रागरूप षट्विषयोंकी भी निवृत्ति संभव होई सके है तथा तिन रागरूप विषयोंके नाशविषे मुक्ति रूपता भी संभवै है इति ॥

नित्य हुए भी विशेषणके नाशविषे श्रोत्रमनके नाशका वर्णन—**शंका**—पूर्वकथन कऱ्ये हूए शरीरादिक एकविंशति दुःखोंविषे आकाशरूप श्रोत्र इंद्रिय तथा मन यह दोनों सिद्धान्तविषे नित्य हैं, यातैं तिन दोनोंका नाश कहणा संभवता नहीं । किंतु शरीरादिक ओगनीस दुःखोंका हीं नाश संभवै है । **समाधान**—जिस विशेषण करिकै विशिष्ट हूआ सो श्रोत्र तथा मन ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा दुःखका हेतु होणेतैं दुःखरूप होवै है । तिस विशिष्टरूप श्रोत्रमनका मुक्तिकालविषे तिस विशेषणके नाशकरिकै नाश होइ जावै है । अब इस अर्थकूं स्पष्टकरिकै निरूपण करे हैं । तहां कर्णगोलकविषे स्थित जो आकाश है ताका नाम श्रोत्र इंद्रिय है, केवल आकाशका नाम श्रोत्र नहीं हैं । सो कर्णगोलकरूप विशेषणविशिष्ट आकाशरूप श्रोत्र इंद्रिय शत्रु पुरुषके

दुर्वचनोंके ज्ञानद्वारा इस श्रोता पुरुषके आत्माविषे दुःखकी उत्पत्ति करे है । यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा दुःखका जनक होणेतैं सो श्रोत्रइंद्रिय दुःखरूप हीं है और विदेहमुक्तिदशाविषे तिस कर्णगोलकरूप विशेषणका नाश होइ जावै है । यातैं तिस मुक्तिकालविषे स्वरूपतैं विद्यमान हूआ भी सो आकाशरूप श्रोत्र ता कर्णगोलकरूप विशेषणके अभावतैं ता शब्दज्ञानकी उत्पत्ति द्वारा आत्माविषे दुःखकी उत्पत्ति करे नहीं । इस रीतिसैं ता मुक्तिदशाविषे ता कर्णगोलक-रूप विशेषणके नाश हूए तत् विशिष्ट श्रोत्रइंद्रियका भी नाश कह्या जावै है। इस प्रकार सो मन भी आत्माके साथि संयोगसंबंधरूप व्यापार करिकै विशिष्ट हूआ ता आत्माविषे ज्ञानकी उत्पत्ति द्वारा दुःखका जनक होणेतैं दुःखरूप होवै है, सो आत्माके साथि मनका संयोग संबंध ता मोक्षकालविषे होवै नहीं । यातैं ता परमोक्षकालविषे स्वरूपतैं विद्यमान हूआ भी सो मन ता संयोगसंबंधरूप व्यापारके अभावतैं ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा ता आत्माविषे दुःखकूं उत्पन्न करै नहीं ॥ विभु आत्माका मुक्तिकालविषे भी मन संयोग हुए भी दुःखाभाव—**शंका**—ता मोक्षकालविषे जो आत्मा मनका संयोगसंबंध नहीं अंगीकार करैंगे तौं ता मोक्षकालविषे तिस मुक्त आत्माविषे विभुपणा नहीं संभवैगा । काहेतैं ? **सर्वमूर्त्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम्।** अर्थ यह—पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच द्रव्योंकूं मूर्त्त द्रव्य कहे हैं । तिन सर्व मूर्त्त द्रव्योंके साथि जो संयोगीपणा है यह हीं आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारोंविषे विभुपणा है । यातैं ता मुक्त आत्माके विभुपणेकी सिद्धि-वासतै ता मोक्षदशाविषे ता मुक्त आत्माका तिस मनके साथि संयोगसंबंध अवश्य मानणा होवैगा । समाधान—ता मुक्तिकालविषे तिस मुक्त आत्माका ता मनके साथि संयोगसंबंध रहो तथापि तिस संयोगकूं ज्ञानकी उत्पत्तिविषे व्यापाररूपता है नहीं । किंतु पुरीतति नामा नाडीतैं बाह्यदेशावच्छिन्न जो आत्मा मनका संयोग है सोई हीं ता ज्ञानकी उत्पत्तिविषे व्यापार होवै है । इसी कारणतैं हीं सुषुप्ति अवस्थाविषे ता पुरीततिनामा नाडीविषे प्रविष्टहूए मनका आत्माके साथि संयोगसंबंधके हूएभी ता पुरीततितैं बाह्यदेशावच्छिन्न आत्ममनसंयो-गके अभावतैं किसी भी ज्ञानकी उत्पत्ति होवै नहीं और ता मोक्षदशाविषे शरीरका अभाव होणेतैं ता शरीरका अवयवरूपपुरीततिका भी अभाव होवै है । यातैं ता मोक्षकालविषे आत्ममनसंयोगके विद्यमानहूए भी ता पुरीततितैं बाह्यदेशावच्छिन्न आत्ममनसंयोगके अभा-वतैं तहां ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा दुःखकी उत्पत्ति होवै नहीं इति। और यहां केईक ग्रंथकार तौं ता सुषुप्तिविषे ज्ञानकी उत्पत्तिके निवृत्तकरणेवासतै त्वचाके साथि मनका संयोग हीं ज्ञान-मात्रका निमित्तकारण माने हैं । सो मन ता सुषुप्तिअवस्थाविषे तिस त्वचातैं रहित पुरीततिविषे प्रवेश करि जावै है । तिस कालविषे तिस मनका ता त्वचाके साथि संयोग रहता नहीं । यातैं ता सुषुप्तिअवस्थाविषे कोई भी ज्ञान उत्पन्न होता नहीं । और जाग्रत् स्वप्न अवस्थाविषे

ता मनका तिस त्वचाके साथि संयोगसंबंध होवै है। यातैं ता जाग्रत् स्वप्नविषे अनेक ज्ञान उत्पन्न होवै हैं। यातैं सो त्वचाके संगवाला मननहीं ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा ता दुःखका जनक होणेतैं दुःखरूप होवै है। और ता मोक्षदशाविषे तिस त्वचाका नाश होइ जावै है। यातैं ता मोक्षकालविषे स्वरूपतैं विद्यमान हूआ भी सो मन ता त्वचासंयोगरूप व्यापारके अभावतैं ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा दुःखकूं उत्पन्न करै नहीं। ईहां त्वचाशब्दकरिकै त्वक्इंद्रियका ग्रहण करणा इति। और केईक ग्रंथकार तौं ता सुषुप्तिविषे ज्ञानकी उत्पत्तिके निवृत्त करणे वासतै चर्मके साथि मनके संयोगकूं ता ज्ञानमात्रका निमित्त कारण माने हैं। तहां सुषुप्तिअवस्थाविषे ता पुरीततिविषे प्रविष्टहूए मनका ता चर्मके साथि संयोग रहता नहीं। यातैं ता सुषुप्तिविषे कोई भी ज्ञान उत्पन्न होता नहीं। और जाग्रत् स्वप्न अवस्थाविषे ता मनका तिस चर्मके साथि संयोग संबंध होवै है। यातैं ता जाग्रत् स्वप्नविषे अनेक ज्ञान उत्पन्न होवै हैं। ईहां चर्मशब्दकरिकै त्वक्इंद्रियके रहणेका गोलक ग्रहण करणा। तहां पुरीतति विषे जैसे सो त्वक्इंद्रिय नहीं रहे है तैसे ता त्वक्इंद्रियका गोलक भी नहीं रहे है। इस प्रकारके गोलकरूप चर्मका भी ता मोक्षदशाविषे अभाव हीं है। यातैं ता मोक्षदशाविषे स्वरूपतैं विद्यमानहूआ भी सो मन ता चर्मसंयोगरूप व्यापारके अभावतैं ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा ता दुःखकूं उत्पन्न करै नहीं इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—श्रोत्र इंद्रिय तथा मन यह दोनों स्वरूपतैं नित्यहूए भी जिस जिस कर्णगोलकादिरूप उक्त विशेषणकरिकै विशिष्टहूए ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा दुःखके जनक होणेतैं दुःखरूप होवै हैं ता मोक्षकालविषे तिसतिस कर्णगोलकादिरूप विशेषणके अभावहूए तत्‌विशिष्ट श्रोत्रमनरूप दुःखका भी नाश संभवै है इति। परमुक्ति तथा उसके कारणका अन्तिम सिद्धान्त—इस प्रकारके शरीरादिक एकविंशति दुःखोंकी जा आत्यंतिक निवृत्ति है सोई हीं परमोक्ष है। इस प्रकारका मोक्ष पूर्व उक्त रीतिसैं एक तत्त्वज्ञान करिकै हीं होवै है। अन्य किसी उपाय करिकै होवै नहीं॥

आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिरूप मोक्ष—**शंका**—ता तत्त्वज्ञानतैं विना हीं आपणे आपणे कारणों करिकै तिन शरीरादिक दुःखोंकी ध्वंसरूपनिवृत्ति संभव होइ सके है। ता दुःखनिवृत्ति वासतैं तत्त्वज्ञानका संपादन करणा व्यर्थ है। **समाधन**—संसार दशाविषे आपणे आपणे कारणों करिकै यद्यपि तिन शरीरादिक दुःखोंकी निवृत्ति होवै है तथापि ता दुःखनिवृत्तिविषे आत्यंतिकपणा होता नहीं। यातैं सा दुःखकी निवृत्ति मुक्तिरूप कही जावै नहीं। और पूर्वउक्त रीतिसैं तत्त्वज्ञानकरिकै जा शरीरादिक दुःखोंकी निवृत्ति होवै है ता दुःखनिवृत्तिविषे हीं सो आत्यंतिकपणा रहे है। यातैं सा आत्यंतिकदुःखकी निवृत्ति हीं मुक्ति कही जावै है। अब इस उक्त अभिप्राय करिकै हीं ता मुक्तिका लक्षण कथन करे हैं। **स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनदुःखध्वंसः मुक्तिः**। अर्थ यह—ईहां स्वशब्दकरिकै

दुःखध्वंसका ग्रहण करणा । तिस दुःखध्वंसके अधिकरणविषे वर्त्तणेहारा जो दुःखका प्रागभाव है तिस दुःखप्रागभावके असमानकालवृत्ति जो दुःखध्वंस है ताका नाम मुक्ति है। तहां शुक वामदेवादिक मुक्तपुरुषोंविषे जो शरीरादिकदुःखोंका ध्वंस है सो दुःखध्वंस स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावके असमानकाल वृत्ति हीं है । यातैं ता दुःखध्वंसविषे मुक्तिरूपता सम्भवै है । तहां–' दुःखध्वंसः मुक्तिः ' अर्थात् दुःखका जो ध्वंस है ताका नाम मुक्ति है इतनामात्र हीं जो ता मुक्तिका लक्षण करते तौं इस संसार कालविषे अस्मदादिक बद्धजीवोंविषे भी सो शरीरादिक यत्किंचित् दुःखोंका ध्वंस होवै है। ता दुःखध्वंसविषे तिस मुक्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणेवासतै ता लक्षणविषे ' स्वसमानाधिकरण-दुःखप्रागभावासमानकालीन ' यह दुःखध्वंसका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां संसारकाल-विषे बद्धपुरुषोंके शरीरादिक दुःखोंका जो ध्वंस होवै है सो दुःखध्वंस ता दुःखध्वंसके अधिकरणविषे वर्त्तणेहारे दुःखप्रागभावके असमानकालवृत्ति नहीं है। किंतु जिस बद्ध पुरुषविषे सो दुःखध्वंस रहे है तिस बद्धपुरुषविषे आगे उत्पन्न होणेहारे शरीरादिक अनेक दुःखोंके प्रागभाव भी रहे हैं ता दुःखप्रागभावके समानकालवृत्ति हीं सो दुःखध्वंस होवै हैं। यातैं ता विशेषणके कहणेतैं ता बद्धपुरुषके दुःखध्वंसविषे ता मुक्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' दुःखप्रागभावासमानकालीनदुःखध्वंसः मुक्तिः ' इतनामात्र हीं जो ता मुक्तिका लक्षण करते, ता लक्षणविषे स्वसमानाधिकरण यह दुःखप्रागभावका विशेषण नहीं कथन करते तौं शुकवामदेवादिकोंके ता दुःखध्वंसरूपमुक्तिविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होती। काहेतैं ? तत्त्वज्ञानतैं रहित बद्धजीवोंविषे रहेहूए जे शरीरादिकदुःखोंके प्राग-भाव हैं तिन दुःखप्रागभावोंके समानकालवृत्ति हीं सा शुकवामदेवादिकोंकी दुःखध्वंसरूपमुक्ति है। ता अव्याप्तिदोषके निवृत्त करणेवासतै हीं 'स्वसमानाधिकरण' यह दुःखप्रागभावका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां तिन शुकवामदेवादिक मुक्तपुरुषोंके आत्माविषे किसी भी दुःखका प्रागभाव नहीं है। यातैं तिन शुकवामदेवादिक मुक्तपुरुषोंकी सा दुःखध्वंसरूप मुक्ति स्वसमानाधि-करण दुःख प्रागभावके समानकालवृत्ति नहीं है । यातैं ता मुक्तिविषे ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—यद्यपि शरीरादिक एकविंशतिदुःखोंका ध्वंस आपणे आपणे कारण करिकै होवै है तथापि तिस दुःखध्वंसविषे विशेषणरूप जो 'स्वसमानाधिकरण-दुःखप्रागभावासमानकालीनत्वरूप ' आत्यंतिकपणा है सो आत्यंतिकत्वरूपविशेषण पूर्व उक्त रीतिसैं तत्त्वज्ञान करिकै हीं सिद्ध होवै है अन्य उपाय करिकै सिद्ध होवै नहीं, या कारणतैं ता एकविंशतिदुःखोंकी आत्यंतिकनिवृत्तिरूप मुक्तिकूं तत्त्वज्ञानकरिकै साध्य कहे हैं इति ।

नवीन नैयायिकोंके यहां दुरितध्वंसरूप मुक्ति—औंर नवीन नैयायिक तौं या प्रकारका मोक्ष माने है दुःखका ध्वंस मुक्ति नहीं है किंतु पापरूपदुरितका ध्वंस हीं मुक्ति है । काहेतैं ? प्रत्यक्षयोग्य

ऐसा जो विभुद्रव्यका विशेषगुण है सो विशेषगुण स्व उत्तरवृत्ति तथा स्वसमानाधिकरण ऐसे योग्यविभुविशेषगुण करिकै नाश होवै है। जैसे विभु आत्मा विषे उत्पन्न भये जे प्रत्यक्ष-योग्य ज्ञान इच्छादिक विशेष गुण हैं ते विशेषगुण स्व उत्तर वृत्ति तथा स्वसमानाधिकरण ऐसे ज्ञान इच्छादिक विशेषगुणोंकरिकै नाश होइ जावैं हैं तथा जैसे विभु आकाशविषे उत्पन्न भया जो प्रत्यक्षयोग्य शब्दरूप विशेषगुण है सो शब्द स्व उत्तरवृत्ति तथा स्वसमानाधिकरण ऐसे द्वितीय शब्दरूप विशेषगुण करिकै नाश होइ जावै है। तात्पर्य यह—एक क्षणविषे विभु आत्मा विषे कोई ज्ञान उत्पन्न होवै है और द्वितीय क्षणविषे तिसी आत्माविषे कोई इच्छा उत्पन्न होवै है सो इच्छारूप योग्यविभुविशेषगुण ता ज्ञानरूप योग्यविभुविशेषगुणका नाशक है। यातैं तृतीयक्षणविषे सो ज्ञानगुण नाश होइ जावै है। यह रीति सर्व योग्यविभुविशेषगुणोंविषे जानि लेणी। यह सर्व अर्थ आगे पंचमपरिच्छेदविषे विस्तारतैं कथन करैंगे। इस प्रकार सो दुःख भी ता विभुआत्माका प्रत्यक्षयोग्य विशेषगुण है। यातैं सो दुःख भी स्व उत्तरवृत्ति इच्छादिक विशेषगुणों करिकै आपे हीं नाश होइ जावैंगा। ता दुःखके नाशविषे तिस तत्त्व-ज्ञानका कोई भी उपयोग नहीं है। और सो पापरूपदुरित यद्यपि विभु आत्माका विशेष-गुण तौं है तथापि प्रत्यक्षयोग्य नहीं है। यातैं ता पापरूपदुरितका स्व उत्तरवृत्ति इच्छादिक विशेषगुणों करिकै नाश संभवै नहीं किंतु तत्त्वज्ञान करिकै हीं ता पापरूपदुरितका नाश संभवै है। यह वार्त्ता श्रुतिस्मृतिविषे भी कथन करी है। तहां श्रुति—**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे**। अर्थ यह—तिस परमात्माके साक्षात्कारहूए इस तत्त्ववेत्ता पुरुषके सर्वकर्म नष्ट होइ जावैं हैं इति। तहां स्मृति—**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा**। अर्थ यह—हे अर्जुन! यह तत्त्वज्ञानरूप अग्नि अग्निकी न्यांई सर्वकर्मोंकूं भस्म करि देवै है इति। इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंविषे तत्त्वज्ञान करिकै पापरूप दुरितोंकी हीं निवृत्ति कथन करी है। दुःखकी निवृत्ति कथन करी नहीं। यातैं सो पापरूप दुरितोंका ध्वंस हीं मुक्ति है दुःख-ध्वंस मुक्ति नहीं है। **शंका**—तिस तत्त्वज्ञानतैं विना अन्य किसी उपाय करिकै जो तिन पापरूप दुरितोंकी निवृत्ति नहीं होती तौं तिस तत्त्वज्ञानकूं ता दुरितध्वंसरूप मुक्तिविषे कार-णता होती, परंतु सो पापोंका ध्वंस तौं ता तत्त्वज्ञानतैं विना हीं प्रायश्चित्तरूप उपाय करिकै भी होइसके है। यातैं व्यतिरेकव्यभिचारवाला होणेतैं सो तत्त्वज्ञान ता दुरितध्वंसरूप मुक्तिके प्रति कारण होइ सकै नहीं। **समाधान**—यद्यपि प्रायश्चित्त करिकै भी ता पापकी निवृत्ति होवै है तथापि ता प्रायश्चित्त करिकै तिन पापरूप दुरितोंकी आत्यंतिक निवृत्ति होवै नहीं किंतु तत्त्वज्ञान करिकै हीं सा आत्यंतिक निवृत्ति होवै है। यातैं यह मुक्तिका लक्षण सिद्ध होवै है—**स्वसमानाधिकरणदुरितप्रागभावासमानकालीनदुरितध्वंसः मुक्तिः**। अर्थ यह—इहां 'स्व' इस शब्द करिकै ता दुरितध्वंसका ग्रहण करणा। तिस दुरितध्वंसके अधिकरणविषे वर्त्तणे

हारा जो दुरितका प्रागभाव है तिस प्रागभावके असमानकालवृत्ति जो दुरितध्वंस है ताका नाम मुक्ति है । तहां—' दुरितध्वंसः मुक्तिः ' इतनामात्र हीं जो मुक्तिका लक्षण करते तौं तत्त्वज्ञानतैं रहित बद्धपुरुषोंविषे जो प्रायश्चित्त करिकै दुरितोंका ध्वंस हूआ है तिस दुरितध्वंसविषे ता मुक्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्ति करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्वसमानाधिकरणदुरितप्रागभावासमानकालीन ' यह ता दुरितध्वंसका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां जिस बद्ध आत्माविषे सो प्रायश्चित्तजन्यदुरितध्वंस रहे है तिस बद्धआत्माविषे अगे उत्पन्न होणेहारे अनेक दुरितोंके प्रागभाव रहे हैं। यातैं सो प्रायश्चित्तजन्य दुरित ध्वंस तिन दुरितप्रागभावोंके समानकालवृत्ति हीं हैं, असमानकालवृत्ति नहीं है । यातैं ता विशेषणके कहणेतैं तिस प्रायश्चित्तजन्यदुरितध्वंसविषे ता मुक्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा ' दुरितप्रागभावासमानकालीनदुरितध्वंसः मुक्तिः ' इतना मात्र हीं जो ता मुक्तिका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' स्वसमानाधिकरण ' यह ता दुरितप्रागभावका विशेषण नहीं कथन करते तौं शुकवामदेवादिक मुक्त आत्मावोंके ता दुरितध्वंसरूप मुक्तिविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होती । काहेतैं ? तिन शुकवामदेवादिक मुक्तपुरुषोंतैं अन्यबद्धपुरुषोंके आत्माविषे रह्येहूए जे दुरितोंके प्रागभाव हैं तिन दुरितप्रागभावोंके समानकालवृत्ति हीं सा शुकवामदेवादिकोंकी दुरितध्वंसरूप मुक्ति है, असमान कालवृत्ति नहीं है । ता अव्याप्तिदोषके निवृत्त करणेवासतैं हीं ता लक्षणविषे ' स्वसमानाधिकरण ' यह ता दुरितप्रागभावका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां तिन शुकवामदेवादिक मुक्तपुरुषोंके आत्माविषे किसी भी दुरितका प्रागभाव है नहीं । यातैं तिन शुकवामदेवादिकोंकी सा दुरितध्वंसरूप मुक्ति स्वसमानाधिकरण दुरितप्रागभावके असमानकालवृत्ति हीं है, समानकाल वृत्ति नहीं । यातैं ता विशेषणके कहणेतैं ता मुक्तिविषे तिस उक्तलक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति । तहां इतनै ग्रन्थकरिकै प्राचीन नैयायिकोंकी तथा नवीननैयायिकोंकी भिन्नभिन्न मुक्ति निरूपण करी ॥ अब प्रसंगतैं अन्य शास्त्रवाल्योंकी मुक्तिका भी निरूपण करे हैं । तहां मुक्तिदशाविषे आत्यन्तिकदुःखकी निवृत्ति होवै है । यह वार्त्ता सर्वशास्त्रवाले माने हैं ता मुक्तिकालविषे ता मुक्तपुरुषकूं दुःखकी प्राप्ति कोई भी शास्त्रवाला मानता नहीं । परंतु तिस दुःखध्वंसके मुक्तिपणेविषे शास्त्रकारोंका परस्पर विवाद है । सो दिखावै हैं । मीमांसकोंका मोक्ष—तहां मीमांसक तौं यह मोक्ष माने हैं । **यन्न दुःखेन संभिन्नम्** । इस श्रुतिनैं स्वर्गसुखकूं दुःखतैं रहित कह्या है और **अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति** । इस श्रुतिनैं ता स्वर्गसुखकूं नाशतैं रहित कह्या है । यातैं अग्निहोत्रादिककर्मों करिकै जो ता स्वर्गसुखकी प्राप्ति है यह हीं मुक्ति है इति । और भट्टपाद प्रभाकर मुरारीमिश्र यह तीनों भी मीमांसक कहावै हैं । भट्टपादकी मुक्ति—तहां भट्टपाद तौं यह मोक्ष माने हैं । नित्यसुखकी जो

अभिव्यक्ति है सोई हीं मुक्ति है । तहां सुखकी अभिव्यक्ति तौं संसारदशाविषे भी होवै है । ताके विषे ता मुक्तिके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तिकरणे वासतै ता सुखका नित्य यह विशेषण कथन कर्‍या है । ता नित्यसुखकी ता संसारदशाविषे अभिव्यक्ति होवै नहीं, किंतु मोक्षदशाविषे हीं अभिव्यक्ति होवै है । तहां-नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म । अर्थ यह-यह आत्मा नित्यविज्ञानस्वरूप है तथा नित्य आनंदस्वरूप है यह श्रुति हीं तिस नित्य-सुखविषे तथा नित्यविज्ञानविषे प्रमाणरूप है । तात्पर्य यह-जडबोधस्वरूप आत्माविषे सो नित्यसुख तथा नित्यज्ञान यद्यपि संसारदशाविषे भी रहे है तथापि ता संसार-दशाविषे सो नित्यसुख तथा नित्यज्ञान प्रतीत होवै नहीं । जबी यह अधिकारीपुरुष आत्मज्ञान तथा कर्म इन दोनोंका अनुष्ठान करे है तबी तिस ज्ञानकर्मके समुच्चयतैं सो नित्यसुख तथा नित्यज्ञान प्रादुर्भावकूं प्राप्त होवै है । तिसतैं अनन्तर विषयविशेषकी अपेक्षातैं रहित तिस नित्यज्ञान करिकै तिस नित्यसुखकी अभिव्यक्ति होवै है । सा नित्यसुखकी अभिव्यक्ति हीं मुक्ति है इति । भट्टपादके अनुयायीका मत-और तिस भट्टपादका अनुयायी कोईक ग्रन्थकार तौं यह कहे है । मानसज्ञानकरिकै जो तिस नित्यसुखकी अभिव्यक्ति है सा नित्यसुखकी अभिव्यक्ति हीं मुक्ति है इति । भट्टपादका दूसरा अनुयायी- और तिसी भट्टपादका अनुयायी दूसरा कोई ग्रन्थकार तौं यह कहे हैं । जैसे नैयायिक दुःखाभावकूं मुक्ति माने हैं तैसे दुःखाभावमात्र हीं मुक्ति है इति । और प्रभाकर-तौं यह मोक्ष कहे है । आत्मज्ञानपूर्वक जो वैदिककर्मोंका अनुष्ठान है तिस अनुष्ठानतैं मूलसहित धर्म अधर्मके क्षय-निमित्तक जो देह इन्द्रियादिकोंके सम्बन्धका अत्यन्त उच्छेद है सोई हीं मुक्ति है इति । और मुरारीमिश्र-तौं यह मुक्ति माने है । दुःखोंका जो अत्यन्ताभाव है सोई हीं मुक्ति है । शंका-दुःखके अत्यंताभावविषे मुक्तिपणा सम्भवता नहीं । काहेतैं ? जो पदार्थ जिस अधिकरणविषे कदाचित् भी नहीं रहे है । तिस पदार्थका हीं तिस अधिकरणविषे अत्यंताभाव होवै है । जैसे वायुविषे कदाचित् भी रूप रहता नहीं । यातैं ता वायुविषे ता रूपका अत्यं-ताभाव है, तैसे आत्माविषे जो कदाचित् भी दुःख नहीं रहता होवै तौं आत्माविषे ता दुःखका अत्यंताभाव संभवै । परंतु आत्माविषे तौं संसारदशाविषे सो दुःख रहे है । यातैं ता आत्माविषे तिन दुःखोंका अत्यंताभाव संभवता नहीं । किंवा दुःखके अत्यंताभावकूं जो मुक्तिरूप मानोंगे तौं घटादिक पदार्थोंविषे सो दुःखका अत्यंताभाव स्वभावतैं हीं रहे है । यातैं ते घटादिक भी मुक्त कह्यो चाहिये । किंवा दुःखके अत्यंताभावकूं जो मुक्तिरूप मानोंगे तौं ता मुक्तिविषे पुरुष प्रयत्न करिकै साध्यता नहीं होवैगी । काहेतैं ? सो अत्यंताभाव नित्य हीं होवै है । और जो जो पदार्थ नित्य होवै है सो सो पदार्थ किसी पुरुषप्रयत्न करिकै साध्य होता नहीं । जैसे आत्मा नित्य होणेतैं किसी पुरुषप्रयत्न करिकै साध्य नहीं है

तैसे सो दुःखका अत्यंताभावरूप मुक्ति भी नित्य होणेतैं किसी पुरुष प्रयत्न करिकै साध्य नहीं होवैंगी । ता करिकै मुक्तिकी प्राप्तिवासतै मुमुक्षुजनोंका प्रयत्न व्यर्थ होवैंगा । यातैं ता दुःखके अत्यंताभावविषे मुक्तिरूपता संभवै नहीं । **समाधान**—तिन दुःखोंका जो नित्य अत्यंताभाव है सो नित्यअत्यंताभाव ईहां मुक्तिरूपकरिकै विवक्षित नहीं है । किंतु तिन दुःखोंका सामयिक अत्यंताभाव हीं ईहां मुक्तिरूपकरिकै विवक्षित है । तहां प्रतियोगीके आगमनहूए जो अभाव नष्ट होइ जावै है और ता प्रतियोगिके निर्गमनहूए जो अभाव पुनः उत्पन्न होवै है सो उत्पत्तिविनाशवान् अभाव सामयिक अभाव कह्या जावै है । जैसे भूतलविषे जो घटका अभाव है सो सामयिकअभाव कह्या जावै है । तिस भूतलविषे ता घटके आगमनहूए सो घटाभाव नष्ट होइ जावै है और ता भूतलपैं तिस घटके निर्गमनहूए सो घटाभाव पुनः उत्पन्न होवै है । यातैं उत्पत्तिविनाशवान् होणेतैं सो घटाभाव सामयिकाभाव कह्या जावै है । इस प्रकार तिन दुःखोंके सामयिकअत्यंताभावकूं मुक्तिरूप मानणेविषे ते पूर्वउक्तदोष होवै नहीं । तहां इस प्रकारके दुःखात्यंताभावविषे मुक्तिरूपता श्रुतिविषे तथा सूत्रविषे भी कथन करी है । तहां श्रुति—**दुःखेनात्यन्तविमुक्तश्चरति** । अर्थ यह—सो तत्त्ववेत्ता पुरुष दुःखोंसैं अत्यंत विमुक्तहूआ विचरे है इति । तहां सूत्रं—**तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः** । अर्थ यह—तिन दुःखोंका जो अत्यंताभाव है सोई हीं अपवर्ग कहिये मोक्ष है इति॥ सांख्यकी मुक्ति—और सांख्यशास्त्रवाले तौं यह मुक्ति माने हैं सत्त्व रज तम यह तीन गुणरूप तथा नित्य तथा एक तथा परिणामी ऐसी जा प्रधाननामा जडप्रकृति है और कार्यकारणभावतैं रहित तथा नित्य कूटस्थ अकर्ता ऐसा जो चेतन पुरुष है तिस प्रकृतिपुरुषके विवेकतैं इस पुरुषका अनादि अविवेक निवृत्त होइ जावै है । तिसतैं अनंतर तिस विवेकवान् पुरुषके प्रति निवृत्तहूआ है अधिकार जिसका ऐसी जा सा प्रकृति है तिस प्रकृतिकी पुनः तिस पुरुषके भोग वासतै प्रवृत्ति होवै नहीं । तिसतैं अनंतर त्रिविध दुःखोंके अत्यंतनिरोधपूर्वक तिस पुरुषका जो वास्तव अकर्ता उदासीन कूटस्थरूप करिकै अवस्थान है सोई हीं मुक्ति है इति ॥ योगकी मुक्ति—और योगशास्त्रवाले पातंजल तौं यह मुक्ति माने हैं । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश यह पंचक्लेशरूप तथा जाति आयुष् भोग रूप जितनाकी परतंत्रतारूप बंध है तिस बंधकी अष्टांगयोगकरिकै निवृत्तिहूएतैं अनंतर जो स्वतंत्रताकी प्राप्ति है सोई हीं मुक्ति है इति । पाशुपतोंकी मुक्ति—और पाशुपतमतवाले तौं यह मुक्ति माने हैं । पाशुपतशास्त्रविषे कथन करे जे पशुपतिके पूजन अर्चनादिक हैं तिन पूजन अर्चनादिक पाशुपतधर्मोंके अनुष्ठानतैं इस जीवरूप पशुके बंधनरूप पाशकी निवृत्तिहूएतैं अनंतर इस जीवका जो पुनरावृत्तितैं रहित ता पशुपतिके समीप गमन है सोई हीं इस जीवकी मुक्ति है इति वैष्णवोंकी मुक्ति—और वैष्णव तौं यह मुक्ति माने हैं । विष्णुके प्रतिपादक नारद-

पंचरात्रादिक शास्त्रोंविषे कथन कऱ्ये जे विष्णुभक्तोंके धर्म हैं तिन धर्मोंके अनुष्ठानतैं उत्पन्न भया जो विष्णुका प्रसाद है तिस विष्णुके प्रसादतैं इस जीवका जो पुनरावृत्तितैं रहित ता विष्णु-लोकविषे गमन है सोई हीं इस जीवकी मुक्ति है इति । हैरण्यगर्भोंकी मुक्ति- और हैरण्यगर्भ तौं यह मुक्ति माने हैं । पंचाग्निविद्यादिक उपासनावोंकरिकै इस जीवात्माकूं अर्चिरादिमार्गद्वारा जा पुनरावृत्तितैं रहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति है सोई हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है इति । एकदण्डी वेदांतियोंकी मुक्ति- और एकदण्डी वेदांती तौं यह मुक्ति माने हैं ' अहं ब्रह्मास्मि ' इस प्रकारका जो जीवब्रह्मके अभेदका साक्षात्कार है तिस साक्षात्कारतैं अनादिअविद्याके निवृत्तहूए सर्व उपाधियोंतैं रहित केवल शुद्ध आत्माकी स्वप्रकाशज्ञानसुखरूपतैं जा स्थिति है सोई हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है इति । त्रिदण्डी वेदान्तियोंकी मुक्ति-और त्रिदण्डी वेदांती तौं यह मुक्ति माने हैं । अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि । इत्यादिक श्रुति वचन तौं जीवब्रह्मके अभेदकूं कथन करे हैं और जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम्, द्वासुपर्णासयुजा सखाया, द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये । इत्यादिक श्रुति वचन ता जीवब्रह्मके भेदकूं कथन करे हैं । तहां ता जीवब्रह्मका जो केवल अभेद हीं मानिये तौं ते भेदबोधकवचन असंगत होवैंगे । और ता जीवब्रह्मका जो केवल भेद हीं मानिये तौं ते पूर्वउक्त अभेदबोधक वचन असंगत होवैंगे यातैं तिन दोनों प्रकारके वाक्योंकी प्रमाणता वासतै ता जीवब्रह्मका भेद अभेद दोनों मान्ये चाहिये । जबी यह अधिकारीपुरुष आत्मज्ञान तथा कर्म इन दोनोंका अनुष्ठान करे है तबी ता ज्ञानकर्मके समुच्चयके अभ्यासतैं ता कारणरूप ब्रह्मविषे इस कार्यरूप जीवका कर्मवासना-सहित भेदअंशकी निवृत्तिरूप लय होवै है सोई हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है इति । और केईक ग्रन्थकार-तौं यह मुक्ति माने हैं । अस्थूलमनण्वहस्वमदीर्घम् । इत्यादिक श्रुति वचन तौं ता ब्रह्मकी निर्विकार अवस्थाकूं कथन करे हैं और यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । इत्यादिक श्रुतिवचन तौं ता ब्रह्मकी सविकार अवस्थाकूं कथन करे हैं । तहां तिस ब्रह्मकूं जो केवल निर्विकार अवस्थावाला मानिये तौं ता ब्रह्मकी सविकार अवस्थाकूं कथन करणे-हारे श्रुतिवचन असंगत होवैंगे और ता ब्रह्मकूं जो केवल सविकार अवस्थावाला मानिये तौं ता ब्रह्मकी निर्विकार अवस्थाकूं कथन करणेहारे श्रुतिवचन असंगत होवैंगे । यातैं तिन दोनों प्रकारके वाक्योंकी प्रमाणता वासतै ता ब्रह्मकी सविकार तथा निर्विकार यह दोनों अवस्था मानी चाहिये । जैसे समुद्रकी सतरंग निस्तरंग यह दो अवस्था होवै हैं तैसे ता ब्रह्मकी भी सविकार निर्विकार यह दोनों अवस्था होवै हैं । तहां ज्ञानकर्मके समुच्चय अभ्या-सतैं ता सविकार अवस्थाका परित्याग करिकै इस जीवात्माकूं जो तिस निर्विकार अवस्थाकी प्राप्ति है सोई हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है इति । और रामानुजमतवाले-तौं यह मुक्ति माने हैं । श्रीभगवान् वासुदेवविषे रह्या हूआ जो सर्व जगत्का कर्तृत्वधर्म है तिस सर्वकर्तृत्व-

धर्मकूं छोडिके दूसरे जितनैंकी ता भगवान्के सर्वज्ञत्वादिक कल्याणगुण हैं तिन सर्व ज्ञत्वादिक गुणोंकी प्राप्ति पूर्वक इस जीवात्माकूं जो ता भगवान्के यथार्थस्वरूपका अनुभव है सोई हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है इति । और मध्वमतवाले—तौं यह मुक्ति माने हैं । जगत् कर्तृत्व लक्ष्मी श्रीवत्स इन तीनोंकूं छोडिकै दूसरे जितनैंकी विष्णुभगवान्के निरतिशय आनंदादिक धर्म हैं तिन धर्मोंके सदृशधर्मोंकी जा इस जीवकूं प्राप्ति है सोई हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है । सा मुक्ति भी सालोक्य १, सामीप्य २, सारूप्य ३, सायुज्य ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारकी होवै है । तहां जिस वैकुण्ठलोकविषे विष्णुभगवान् रहे है तिस लोककी जो इस जीवकूं प्राप्ति है ताका नाम सालोक्य है । और तिस लोकविषे भी इस जीवात्माकूं तिस विष्णुभगवान्के समीपताकी जो प्राप्ति है ताका नाम सामीप्य है । और तिस समीपताके प्राप्त हुए भी इस जीवात्माकूं तिस विष्णुभगवान्के समानरूपकी जा प्राप्ति है ताका नाम सारूप्य है । और तिस विष्णुभगवान्के स्वरूपविषे जो इस जीवात्माका लय है ताका नाम सायुज्य है इति ॥ और वल्लभ मतवाले—तौं यह मुक्ति माने हैं । गोलोक-विषे दो भुजावाले कृष्णभगवान्के साथि ताके अंशरूप जीवोंकूं जो रासलीलाका अनुभव है सोई हीं इस जीवकी मुक्ति है इति ॥ और व्याकरणशास्त्रवाले—तौं यह मुक्ति माने हैं परा १, पश्यंती २, मध्यमा ३, वैखरी ४, यह च्यारि प्रकारकी वाणी होवै है । तिस च्यारि प्रकारकी वाणीविषे जा प्रथम परा नामा वाणी है सा परा ब्रह्मरूप है । ऐसी ब्रह्मरूप परा वाणीका जो दर्शन है सोई हीं इस जीवकी मुक्ति है इति ॥ और रसेश्वरवादि—तौं यह मुक्ति कहे हैं । पारद रसके पान करिकै जरामरणादिकोंतैं रहित इस देहकी स्थिरताके हूए जो जीवन्मुक्ति है सोई हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है इति ॥ और शून्यवादी माध्यमिक—तौं यह मुक्ति माने हैं । यह सर्वजगत् शून्यहीं है । भ्रांतिदर्शन करिकै सत्रूप प्रतीत होवै है । वास्त-वतैं कोई भी वस्तु सत् नहीं है । इस प्रकारकी शून्यभावनाके परिपाक पर्यंत जो शून्यरूप आत्माका तत्त्वज्ञान है तिस तत्त्वज्ञानतैं जो शून्यभावकी प्राप्ति है सोई हीं मुक्ति है इति ॥ और देहात्मवादी चार्वाक—तौं यह मुक्ति माने हैं । विधिनिषेधतैं रहित होइके जो स्वतंत्रता है यह हीं मुक्ति है । अथवा इस शरीररूप आत्माका जो मरण है सोई हीं मुक्ति है इति ॥ और विज्ञानवादी योगाचार—तौं यह मुक्ति माने है । दो प्रकारका विज्ञान होवै है । एक तौं आलयविज्ञान होवै है, दूसरा प्रवृत्तिविज्ञान होवै है, सो दोनों प्रकारका विज्ञान क्षणिक होवै है । तहां घटपटादिविषयाकार जो ' अयं घटः, अयं पटः ' इत्यादिक विज्ञान है सो विज्ञान तौं प्रवृत्तिविज्ञान कह्या जावै है । और तिस प्रवृत्तिविज्ञानका उपादानकारणरूप तथा घटपटादिक पदार्थोंकूं नहीं विषय करणेहारा ऐसा जो अहं अहं इस प्रकारका विज्ञान है सो विज्ञान आलयविज्ञान कह्या जावै है । तिस आलयविज्ञानतैं अतिरिक्त सर्वपदार्थ तुच्छ हैं

तहां संसारकालविषे वर्त्तमान जे प्रवृत्तिविज्ञान हैं तिनोंके उच्छेद हूए जो केवल आलय-विज्ञानकी धारा है सोई हीं मुक्ति है इति ॥ और अर्हतमतवाले—तौं यह मुक्ति माने हैं। जैसे पंजरविषे बंध्या हूआ जो शुकपक्षी है सो शुकपक्षी ता पंजरके नष्ट हूए स्वतंत्र हूआ आकाशविषे गमन करे है तैसे आर्हतशास्त्र उक्त तप करिकै तथा आत्मएकाकारसमाधि करिकै अष्टविध कर्मरूप बंधके ध्वंसहूएतैं अनंतर सुखैकरूप तथा निरावरणज्ञानरूप आत्माका जो स्वतंत्र होइकै निरंतर ऊर्ध्वगमन है अथवा अलौकिक आकाशविषे गमन है सोई हीं इस आत्माकी मुक्ति है। तहां अष्टविधकर्मोंका स्वरूप तथा अलौकिक आकाशका स्वरूप आगे द्वितीय परिच्छेदविषे आर्हतमतके निरूपणविषे स्पष्ट करिकै कहेंगे इति ॥ तहां मीमांसकमततैं आदि लैकै अर्हतके मत पर्यंत जितनीकी वादीयोंकी मुक्तियां कथन करीयां है तिन मुक्तियोंविषे बृहतन्याय ग्रन्थोंमें दूषण कथन कर्‍ये है। ते दूषण ग्रन्थवृद्धिके भयतैं ईहां लिख्ये नहीं। किंतु तिन सर्व वादीयोंके मुक्तिमात्रका स्वरूप ईहां निरूपण कर्‍या है ॥

इति मुक्तिवादः समाप्तः ॥

---

सर्व पदार्थोंका संक्षिप्त विवेचन।

अब इस ग्रन्थविषे वक्ष्यमाण द्रव्यादिक पदार्थोंके ज्ञानका जिस प्रकारतैं तिस तत्त्वज्ञान विषे उपयोग है सो प्रकार निरूपण करे हैं। तहां आत्मा देहइंद्रियादिक सर्व अनात्म-पदार्थोंतैं भिन्न है। या प्रकारके तत्त्वज्ञानतैं आत्यंतिक दुःखकी निवृत्तिरूप मोक्षकी प्राप्ति पूर्व कथन करी थी। सो तत्त्वज्ञान तिन देहइंद्रियादिक सर्वअनात्मपदार्थोंके ज्ञानतैं विना संभवता नहीं। काहेतैं ? जो जो अभावविषयकज्ञान होवै है सो सो अभावज्ञान ता अभावके प्रतियोगी विषयकज्ञानकारिकै हीं जन्य होवै है, ता प्रतियोगीके ज्ञानतैं विना ता अभावका ज्ञान होता नहीं। जैसे घटरूप प्रतियोगीके ज्ञानहूए हीं भूतलादिकोंविषे ता घटके अभावका ज्ञान होवै है। ता घटरूप प्रतियोगीके ज्ञानतैं विना ता घटके अभावका ज्ञान होता नहीं, तैसे आत्माविषे देहइंद्रियादिक सर्वअनात्मपदार्थोंके अन्योन्याभावरूप भेदकूं विषय करणेहारा जो तत्त्वज्ञान है सो तत्त्वज्ञान भी तिन देह इंद्रियादिक सर्व अनात्मपदार्थरूप प्रतियोगीके ज्ञानतैं विना संभवता नहीं। यातैं तिस तत्त्वज्ञानकी सिद्धि वासतै ते देहइंद्रियादिक सर्व अनात्मपदार्थ जान्ये चाहियें और तिन देहइंद्रियादिक सर्व अनात्मपदार्थोंका ज्ञान द्रव्यादिकपदार्थोंके निरूपण-कीयेतैं विना संभवता नहीं। यातैं तिन द्रव्यादिकपदार्थोंका निरूपण अवश्य कर्‍या चाहिये। तहां प्रथम संक्षेप करिकै निरूपण कर्‍येहूए पदार्थोंका पश्चात् विस्तारतैं निरूपण करणेविषे श्रोता पुरुषोंकूं तिन पदार्थोंका बोध सुखैन होवै है। यातैं श्रोतापुरुषोंकूं सुखपूर्वक बोध वासतैं तिन द्रव्यादिक पदार्थोंका प्रथम संक्षेपतैं निरूपण करे हैं। सबका सामान्य लक्षण—तहां ज्ञेयत्वं प्रमेयत्वं अभिधेयत्वं अस्तित्वं पदार्थलक्षणम्। अर्थ यह—द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंके

ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, अभिधेयत्व, अस्तित्व यह च्यारों असाधारणधर्म होणेतें लक्षणरूप हैं। तहां ज्ञानकी विषयताकूं ज्ञेयत्व कहे हैं। और प्रमाज्ञानकी विषयताकूं प्रमेयत्व कहे हैं। यद्यपि जीवात्माके ज्ञानकी विषयता तथा प्रमाकी विषयता तिन सर्वपदार्थोंविषे हैं नहीं तथापि सर्वज्ञ ईश्वर आत्माके ज्ञानकी विषयता तथा प्रमाकी विषयता तिन सर्वपदार्थोंविषे है, सा विषयता हीं तिन द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंका लक्षण है। और इस पदतें श्रोताकूं इस अर्थका बोध होवो या प्रकारकी जा पदनिष्ठ ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति है ता शक्तिका नाम अभिधा है। ता अभिधाकी विषयताकूं अभिधेयत्व कहे हैं। यद्यपि घटपटादिक पदोंकी अभिधाका विषयत्व तिन द्रव्यादिक सर्वपदार्थोंविषे है नहीं तथापि पदार्थमात्रके वाचक जे सर्वादिकपद हैं तिन सर्वादिकपदोंकी अभिधाका विषयत्व तिन द्रव्यादिक सर्व पदार्थोंविषे है। सोई हीं तिन द्रव्यादिकपदार्थोंका लक्षण है। और कालके संबंधका नाम अस्तित्व है। सो भी तिन द्रव्यादिक सर्व पदार्थोंविषे रहे है इति ॥ कणादके पदार्थ–ते पदार्थ कणादमुनिकृत वैशेषिकशास्त्रविषे तौं द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६, अभाव ७ इस भेद करिकै सप्त प्रकारके होवै हैं। अथवा सो पदार्थ भाव १, अभाव २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां प्रथम भावपदार्थ तौं द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है और दूसरा अभावपदार्थ तौं संसर्गाभाव १, अन्योन्याभाव २ इस भेदकरिकै दो प्रकारका होवै है। तहां प्रथम संसर्गाभाव तौं प्रागभाव १, प्रध्वंसाभाव २, अत्यंताभाव ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। और दूसरा अन्योन्याभाव तौं एक हीं प्रकारका होवै है इति। तहां इन सप्तपदार्थोंविषे प्रथम द्रव्य पदार्थ–तौं पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५, काल ६, दिशा ७, आत्मा ८, मन ९ इस भेद करिकै नव प्रकारका होवै है । तिन नव द्रव्योंविषेभी पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, मन ५ यह पांच द्रव्य तौं मूर्त्तद्रव्य कहे जावै हैं और आकाश १, काल २, दिशा ३, आत्मा ४, यह च्यारि अमूर्त्त द्रव्य कहे जावै हैं तथा विभु कहे जावै हैं। और पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारोंके परमाणु तथा आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन यह सर्व नित्यद्रव्य कहे जावै हैं। और द्व्यणुकादिकार्यरूप पृथिवी तथा जल तथा तेज तथा वायु यह सर्व अनित्यद्रव्य कहे जावै हैं । तहां तिन नवद्रव्योंविषे प्रथम पृथिवीरूपद्रव्य–नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणुरूप पृथिवी तौं नित्य होवै है और द्व्यणुकादि कार्यरूप पृथिवी अनित्य होवै है। सा अनित्य पृथिवी भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारकी होवै है। तहां सो पार्थिवशरीर योनिज १, अयोनिज २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां शुक्रशोणितके संमेलनजन्य जो शरीर है सो शरीर योनिज कहा जावै है। सो योनिज शरी-

भी जरायुज १, अण्डज २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां मनुष्यादिक शरीर जरायुज कह्ये जावै हैं और पक्षीसर्पादिक शरीर अण्डज कह्ये जावै हैं और ता योनिज शरीरतैं भिन्न जो शरीर है सो शरीर अयोनिज कह्या जावै है। सो अयोनिजशरीर भी स्वेदज १, उद्भिज्ज २, अदृष्टविशेषजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां कृमिदंशादिक शरीर स्वेदज कहे जावै हैं और वृक्षादिक उद्भिज्ज कहे जावै हैं और मनु आदिकोंके शरीर अदृष्टविशेषजन्य कह्ये जावै हैं और गन्धका ग्राहक घ्राणरूप पार्थिव इंद्रिय एक हीं प्रकारका होवै है और मृत्पाषाणादिरूप पार्थिवविषय तौं नानाप्रकारका होवै है इति ॥ १ ॥ और दूसरा जलरूप द्रव्य—भी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणुरूप जल तौं नित्य होवै है और द्व्यणुकादिकार्यरूप जल अनित्य होवै है। सो अनित्य जल भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां जलीयशरीर अयोनिज हीं होवै है। ते जलीयशरीर वरुणलोकविषे प्रसिद्ध हैं और रसका ग्राहक रसनइंद्रिय जलीयइंद्रिय कह्या जावै है और सरित् समुद्रादिक जलीयविषय कह्ये जावै है इति ॥ २ ॥ और तीसरा तेजरूप द्रव्य—भी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणुरूप तेज तौं नित्य होवै है और द्व्यणुकादिकार्यरूप तेज अनित्य होवै है। सो अनित्य तेज भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां तैजसशरीर तौं अयोनिज हीं होवै है। ते तैजसशरीर सूर्यलोकविषे प्रसिद्ध हैं और रूपका ग्राहक चक्षुइंद्रिय तैजसइंद्रिय कह्या जावै है और तैजसविषय तौं भौम १, दिव्य २, औदर्य ३, आकरज ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। तहां प्रसिद्ध अग्निका नाम भौम है और विद्युतादिकोंका नाम दिव्य है और जठराग्निका नाम औदर्य है और सुवर्णादिकोंका नाम आकरज है। अथवा उद्भूतरूप उद्भूतस्पर्शवान् १, अनुद्भूतरूप अनुद्भूतस्पर्शवान् २, उद्भूतस्पर्श अनुद्भूतरूपवान् ३, उद्भूतरूप अनुद्भूतस्पर्शवान् ४ इस भेद करिकै सो तेज च्यारि प्रकारका होवै है इति ॥ ३ ॥ और चौथा वायुरूप द्रव्य—भी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणुरूप वायु तौं नित्य होवै है और द्व्यणुकादि कार्यरूप वायु अनित्य होवै है। सो अनित्य वायु भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३, इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां वायवीय शरीर तौं अयोनिज हीं होवै है। ते वायवीय शरीर वायुलोकविषे हीं प्रसिद्ध हैं और स्पर्शका ग्राहक त्वक्इंद्रिय वायवीय इंद्रिय कह्या जावै है। और वृक्षादिकोंके कंपनका हेतु वायु तथा शरीरविषे विचरणेहारा प्राणवायु वायवीय विषय कह्या जावै है इति ॥ ४ ॥ और पंचमा आकाशरूप द्रव्य—तौं एक हीं होवै है तथा नित्य होवै है तथा विभु होवै है। ता आकाशका पृथिवी आदिकोंकी न्याईं कोई शरीर तथा विषय होता नहीं।

परंतु ता आकाशका भी इंद्रिय तौं होवै है । सो शब्दका ग्राहक श्रोत्रइंद्रिय है इति ॥ ५ ॥ और षष्ठा कालरूप द्रव्य—भी एक हीं होवै है तथा नित्य होवै है तथा विभु होवैहै इति ॥ ६ ॥ और सप्तमा दिशारूप द्रव्य—भी एक हीं होवै है तथा नित्य होवै है तथा विभु होवै है इति ॥ ७ ॥ और अष्टमा आत्मारूप द्रव्य—तौं जीवात्मा १, ईश्वरात्मा २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां जीवात्मा तौं अनेक होवै है तथा नित्य होवै हैं तथा विभु होवै हैं। औरईश्वर आत्मा तौंएक हीं होवै है तथा नित्य होवै है तथा विभु होवै है इति । और नवमा मनरूप द्रव्य—भी ता जीवात्माकी न्याई अनेक होवै है तथा नित्य होवै है तथा अणु होवै है इति ॥ ९ ॥ इति संक्षेपतैं द्रव्यनिरूपणम् ॥ १ ॥

और दूसरा गुणपदार्थ—तौं रूप १, रस २, गंध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमाण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, विभाग ९, परत्व १०, अपरत्व ११, गुरुत्व १२, द्रवत्व १३, स्नेह १४, शब्द १५, बुद्धि १६, सुख १७, दुःख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म २२, अधर्म २३, संस्कार २४ इस भेद करिकै चौवीस प्रकारका होवै है। इन चौवीसगुणोंविषे प्रथम रूप गुण—तौं शुक्ल १, नील २, रक्त ३, पीत ४, हरित ५, कपिश ६, चित्र ७ इस भेद करिकै सप्त प्रकारका होवै है, सो रूपगुण पृथिवी जल तेज इन तीनद्रव्योंविषे हीं रहे है। तहां पृथिवीविषे तौं सो सप्तप्रकारका हीं रूप रहे है और जल तेज इन दोनोंविषे केवल शुक्लरूप हीं रहे है । सो रूप जलतेजके परमाणुरूप नित्यद्रव्यविषे तौं नित्य होवै है और अन्यत्र अनित्य होवै है इति ॥ १ ॥ और रसगुण—तौं मधुर १, अम्ल २, लवण ३, कटु ४, कषाय ५, तिक्त ६ इस भेद करिकै षट् प्रकारका होवै है । सो रस पृथिवी जल इन दो द्रव्योंविषे हीं रहे है । तहां पृथिवीविषे तौं सो षट् प्रकारका हीं रस रहे है और जलविषे एक मधुररस रहे है । सो रस भी परमाणुरूप नित्य जलविषे तौं नित्य होवै है और अन्यत्र अनित्य होवै है इति ॥ २ ॥ और गंधगुण—तौं सौरभ १, असौरभ २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । सो गंधगुण एक पृथिवी विषे हीं रहे है तथा अनित्य हीं होवै है इति ॥ ३ ॥ और स्पर्शगुण—तौं शीत १, उष्ण २, अनुष्णाशीत ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। सो स्पर्शगुण पृथिवी जल तेज वायु इन च्यारि द्रव्योंविषे रहे है तहां जलविषे तौं शीतस्पर्श रहे है और तेजविषे उष्णस्पर्श रहे है और पृथिवी वायु इन दोनोंविषे अनुष्णाशीतस्पर्श रहे है। सो स्पर्श परमाणुरूप नित्य जलविषे तथा परमाणुरूप नित्यतेजविषे तथा परमाणुरूप नित्यवायुविषे नित्य होवै है और अन्यत्र अनित्य होवै है इति ॥ ४ ॥ और संख्यागुण—तौं एकत्व द्वित्व त्रित्व इत्यादिक भेद करिकै अनेकप्रकारका होवै है। सो संख्यागुण पृथिवी आदिक नव द्रव्यों विषे रहे है। तहां एकत्व संख्या तौं नित्यद्रव्योंविषे नित्य होवै है और अनित्यद्रव्योंविषे अनित्य होवै है और द्वित्व त्रित्व आदिकसंख्या तौं सर्वत्र अनित्य हीं होवै है इति ॥ ५ ॥ और परिमाणगुण—तौं

अणुत्व १, महत्त्व २, दीर्घत्व ३, ह्रस्वत्व ४ इस भेदकरिकै च्यारि प्रकारका होवै है । सो च्यारि प्रकारका परिमाण परम १, मध्यम २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । सो परिमाण भी पृथिवी आदिक नव द्रव्योंविषे हीं रहे है । तहां पृथिवी जल तेज वायु इन च्यारोंके परमाणुवोंविषे तथा मनविषे परमअणुत्व तथा परमह्रस्वत्व परिमाण रहे है। और तिन पृथिवी आदिक च्यारोंके द्व्यणुकोंविषे मध्यमअणुत्व तथा मध्यमह्रस्वत्व परिमाण रहे है और आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारोंविषे तौं परममहत्त्व तथा परमदीर्घत्व परिमाण रहे है और घटादिकद्रव्योंविषे तौं मध्यम महत्त्व तथा मध्यमदीर्घत्व परिमाण रहे है । यह परिमाण नित्यद्रव्योंविषे तौं नित्य होवै है और अनित्य द्रव्योंविषे अनित्य होवै है । सो अनित्यपरिमाण भी संख्याजन्य १, परिमाणजन्य २, प्रचयजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है इति ॥ ६॥ और पृथक्त्वगुण—तौं एकपृथक्त्व, द्विपृथक्त्व, त्रिपृथक्त्व इत्यादिक भेद करिकै अनेक प्रकारका होवै है। सो पृथक्त्वगुण भी पृथिवी आदिक नवद्रव्यों विषे हीं रहे है । तहां एकपृथक्त्व तौं नित्यद्रव्योंविषे नित्य होवै है और अनित्य द्रव्योंविषे अनित्य होवै है और द्विपृथक्त्व त्रिपृथक्त्व आदिक तौं सर्वत्र अनित्य हीं होवै हैं इति ॥ ७॥ और संयोगगुण—तौं अन्यतरकर्मजसंयोग १, उभयकर्मजसंयोग २, संयोगजसंयोग ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । सो संयोगगुण भी पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है तथा सर्वत्र अनित्य हीं होवै है । और सो क्रियाजन्य संयोग भी अभिघाताख्य संयोग १, नोदनाख्य संयोग २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है इति ॥ ८॥ और विभागगुण—तौं अन्यतरकर्मज विभाग १, उभयकर्मज विभाग २, विभागजविभाग ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है और सो विभागज विभाग भी कारणमात्रविभागजन्य १, कारणाकारणविभागजन्य २, इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । सो यह विभाग भी पृथिवीआदिक नव द्रव्योंविषे हीं रहे है तथा सर्वत्र अनित्य हीं होवै है इति ॥ ९ ॥ और परत्व अपरत्व—यह दोनों गुण तौं दैशिक परत्व १, कालिक परत्व २; दैशिक अपरत्व १, कालिक अपरत्व २ इस भेद करिकै दो दोप्रकारके होवै हैं । ते परत्व अपरत्व दोनों गुण पृथिवी जल तेज वायु मन इन पांच मूर्त्त द्रव्योंविषे रहे हैं । ताके विषे भी कालिकपरत्व अपरत्व तौं जन्यमूर्त्तद्रव्यविषे हीं रहे है । ते परत्व अपरत्व दोनों गुण अनित्य हीं होवै हैं इति ॥ १० ॥ ११ ॥ और गुरुत्वगुण—तौं रत्तिक माषक तोलक इत्यादिक भेद करिकै अनेक प्रकारका होवै है और सो गुरुत्व गुण पृथिवी जल इन दो द्रव्योंविषे हीं रहे है । ताके विषे भी परमाणुरूप नित्य पृथिवी जलविषे सो गुरुत्व नित्य होवै है और द्व्यणुकादिरूप अनित्यपृथिवीजलविषे सो गुरुत्व अनित्य होवै है । यह गुरुत्वगुण अति इंद्रिय हीं होवै है इति ॥ १२ ॥ और द्रवत्वगुण—तौं सांसिद्धक १, नैमित्तिक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । सो द्रवत्वगुण पृथिवी जल तेज इन

तीन द्रव्योंविषे हीं रहे है । तहां जलविषे तौं सांसिद्धक द्रवत्व रहे है और घृत जतु आदिक पृथिवीविषे तथा सुवर्णादिक तेजविषे नैमित्तिकद्रवत्व रहे है । तहां सो द्रवत्व जलके परमाणुवोंविषे तौं नित्य होवै है और अन्यत्र अनित्य होवै है इति ॥ १३ ॥ और स्नेहगुण—तौं प्रकृष्ट १, अपकृष्ट २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है, सो स्नेहगुण एक जलविषे हीं रहे है । तहां तैलादिकोंके अन्तर्वर्त्ति जलविषे तौं प्रकृष्टस्नेह रहे है और कूपादिकोंके जलविषे अपकृष्ट स्नेह रहे है । सो स्नेह परमाणुरूप नित्य जलविषे तौं नित्य होवै है और द्वयणुकादिरूप अनित्य जल विषे अनित्य होवै है इति ॥१४॥ और शब्दगुण—तौं ध्वनिरूप शब्द १, वर्णरूप शब्द २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। सो दो प्रकारका शब्द भी संयोगज शब्द १ विभागज शब्द २, शब्दज शब्द ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । सो यह शब्द गुण एक आकाशविषे हीं रहे है तथा अनित्य हीं होवै है इति ॥ १५ ॥ और ज्ञानरूप बुद्धिगुण—तौं एक आत्माविषे हीं रहे है । और सा बुद्धि नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां ईश्वर आत्माकी बुद्धि तौं नित्य होवै है तथा प्रत्यक्षरूप हीं होवै है तथा एक होवै है । और जीवात्माकी बुद्धि तौं अनित्य होवै है तथा प्रत्यक्ष परोक्ष दोनोंरूप होवै है तथा नाना होवै है अर्थात् सा अनित्यबुद्धि अनुभूति १, स्मृति २, इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां अनुभूति स्मृति यह दो प्रकारकी बुद्धि भी यथार्थ १, अयथार्थ २ इस भेदकरिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां प्रथम यथार्थ अनुभव तौं प्रत्यक्ष १, अनुमिति २, उपमिति ३, शाब्द ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै है। इन च्यारोंविषे प्रथम प्रत्यक्ष तौं घ्राणज १, रासन २, चाक्षुष ३, स्पार्शन ४, श्रावण ५, मानस ६ इस भेद करिकै षट् प्रकारका होवै है और सो षट्प्रकारका हीं प्रत्यक्ष सविकल्पक १, निर्विकल्पक २ इस भेदकरिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। तथा लौकिक १, अलौकिक २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है और सो अलौकिकप्रत्यक्ष भी सामान्यलक्षणसन्निकर्षजन्य १, ज्ञानलक्षणसन्निकर्षजन्य २, योगजधर्मलक्षणसन्निकर्षजन्य ३ इस भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है। और दूसरा अयथार्थ अनुभव तौं संशय १, विपर्यय २, तर्क ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है इति ॥ १६ ॥ और सुखगुण—तौं केवल जीवात्माविषे हीं रहे है सो सुखगुण वैषयिक १, आभिमानिक २, मानोरथिक ३, आभ्यासिक ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। यह सर्वसुख अनित्य हीं होवै है इति ॥ १७॥ और दुःखगुण—भी केवल जीवात्माविषे हीं रहे है। सो दुःख भी ता सुखकी न्याईं च्यारि प्रकारका हीं होवै है तथा अनित्य होवै है इति॥ १८॥ और इच्छागुण—तौं नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । सो इच्छागुण केवल आत्माविषे हीं रहे है। तहां ईश्वर आत्माविषे तौं सा इच्छा नित्य होवै है तथा एक होवै है और जीवात्माविषे सा इच्छा अनित्य होवै है तथा फल इच्छा १, उपाय इच्छा २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी

होवै है इति ॥ १९ ॥ और द्वेषगुण—तौं केवल जीवात्माविषे हीं रहे है। सो द्वेष भी दुःख-द्वेष १, दुःखोपायद्वेष २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। यह द्वेषगुण अनित्य हीं होवै है इति ॥ २० ॥ और कृतिरूप प्रयत्नगुण—तौं नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। सो प्रयत्नगुण भी केवल आत्माविषे हीं रहे है। तहां ईश्वर आत्माविषे तौं सो प्रयत्न नित्य होवै है तथा एक होवै है। और जीवात्माविषे सो प्रयत्न अनित्य होवै है तथा प्रवृत्ति १, निवृत्ति २, जीवनयोनि ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है इति ॥ २१॥ और धर्म अधर्म यह दोनों गुण—तौं केवल जीवात्माविषे हीं रहे हैं तथा अनित्य होवै हैं तथा अतिइंद्रिय होवै हैं इति ॥ २२ ॥ २३ ॥ और संस्कार गुण—तौं वेग १, स्थिति-स्थापक २, भावना ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां प्रथम वेगरूप संस्कार तौं पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंविषे रहे है। और दूसरा स्थितिस्थापक नामा संस्कार तौं केवल पृथिवीविषे हीं रहे है। और किसी ग्रन्थकारके मतविषे तौं सो स्थितिस्थापक पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारोंविषे रहे है और भावनारूप संस्कार तौं केवल जीवात्माविषे हीं रहे है तथा अतिइंद्रिय होवै है। और सो वेगरूप संस्कार भी कर्मज-वेग १, वेगजवेग २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। यह संस्कारगुण अनित्य हीं होवै है इति ॥ २४ ॥ विशेषगुण—इन चौवीस गुणोंविषे रूप १, रस २, गंध ३, स्पर्श ४, स्नेह ५, सांसिद्धकद्रवत्व ६, शब्द ७, बुद्धि ८, सुख ९, दुःख १०, इच्छा ११, द्वेष १२, प्रयत्न १३, धर्म १४, अधर्म १५, भावना १६ यह षोडश गुण विशेषगुण कहे जावै हैं ॥ सामान्यगुण—और संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, परत्व ६, अपरत्व ७, नैमित्तिकद्रवत्व ८, गुरुत्व ९, वेग १० यह दशगुण सामान्य गुण कहे जावै हैं ॥ और स्थितिस्थापक तौं जिस मतविषे केवल पृथिवीमात्रविषे रहे है तिस मतविषे सो स्थितिस्थापक विशेषगुण है। और जिस मतविषे सो स्थितिस्थापक पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारोंविषे रहे है। तिस मतविषे सो स्थितिस्थापक सामान्यगुण है।

इति संक्षेपतैं गुणनिरूपणम् ॥ २ ॥

और तीसरा कर्मपदार्थ—तौं उत्क्षेपण १, अपक्षेपण २, आकुंचन ३, प्रसारण ४, गमन ५ इस भेद करिकै पांच प्रकारका होवै है। सो कर्म पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्त द्रव्योंविषे हीं रहे है तथा सो सर्वकर्म अनित्य हीं होवै है। इति संक्षेपतैं कर्मनिरूपणम् ॥ ३ ॥

और चतुर्थ जातिरूपसामान्य—पदार्थ तौं द्रव्य गुण कर्म इन तीन पदार्थोंविषे रहे है। सो सामान्य पर १, अपर २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां द्रव्य गुण कर्म इन

तीनोंविषे रहणेहारी सत्ता जाति तौ परसामान्य कह्या जावै है और नव- द्रव्योंविषे रहणेहारी द्रव्यत्वजाति तथा चौवीसगुणोंविषे रहणेहारी गुणत्वजाति तथा पांच प्रकारकरके कर्मविषे रहणेहारी कर्मत्वजाति इत्यादिक सर्वजाति अपरसामान्य कह्ये जावै हैं । यह सर्वजातिरूप सामान्य नित्य हीं होवै हैं। इति संक्षेपतैं सामान्यनिरूपणम् ॥ ४ ॥

और पंचमा विशेष पदार्थ—तौं नित्य द्रव्योंविषे हीं रहे है तथा नित्य होवै है । ते परमाणु आदिक नित्यद्रव्य अनेक हैं । यातैं ते विशेष भी अनेक हीं होवै हैं । इति सामान्यतैं विशेष निरूपणम् ॥ ५ ॥

और षष्ठा समवाय पदार्थ—है । तहां अवयव अवयवी इन दोनोंका तथा गुण गुणि इन दोनोंका तथा क्रिया क्रियावान् इन दोनोंका तथा जाति व्यक्ति इन दोनोंका तथा विशेष नित्यद्रव्य इन दोनोंका जो परस्परसंबंध है ताकूं समवाय कहे हैं । सो समवाय एक हीं होवै है तथा नित्य होवै है तथा अतिइंद्रिय होवै है । इति संक्षेपतैं समवायनिरूपणम्॥६॥

और सप्तमा अभाव पदार्थ—तौं संसर्गाभाव १, अन्यो न्याभाव २ इस भेदकरिकै दो प्रकारका होवै है । तहां प्रथम संसर्गाभाव तौं प्राचीनोंके मतविषे प्रागभाव १, प्रध्वंसाभाव २, अत्यन्ताभाव ३, सामयिकाभाव ४ इस भेदकरिकै च्यारि प्रकारका होवै है । और नवीनोंके मतविषे प्रागभाव १, प्रध्वंसाभाव २, अत्यंताभाव ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां अत्यंताभाव अन्योन्याभाव यह दो अभाव तौं नित्य होवै हैं और दूसरे सर्व अभाव अनित्य होवै हैं । तिन अनित्य अभावोंविषे भी प्रागभाव तौं उत्पत्तितैं रहित अनादि होवै है तथा नाशवान् होवै है । और प्रध्वंसाभाव तौं उत्पत्तिवाला होवै है तथा नाशतैं रहित अनंत होवै है । और सामयिकाभाव तौं उत्पत्तिवाला भी होवै तथा नाशवाला भी होवै है । इति संक्षेपतैं अभावनिरूपणम् ॥ ७ ॥

इति संक्षेपतैं द्रव्यादि सप्तपदार्थनिरूपणम् ।

---

न्यायशास्त्रके पदार्थ—तहां पूर्व कणादमुनि प्रणीत वैशेषिकशास्त्रके द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंका संक्षेपतैं निरूपण कऱ्या । अब गौतममुनिप्रणीत न्यायशास्त्रके प्रमाणादिक षोडश पदार्थोंका संक्षेपतैं निरूपण करे हैं। तहां प्रमाण १, प्रमेय २, संशय ३, प्रयोजन ४, दृष्टान्त ५, सिद्धांत ६, अवयव ७, तर्क ८, निर्णय ९, वाद १०, जल्प ११, वितंडा १२, हेत्वाभास १३, छल १४, जाति १५, निग्रहस्थान १६ यह षोडश पदार्थ कह्ये जावै हैं। तहां प्रथम प्रमाणपदार्थ—तौं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४, इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। तिन

च्यारोंके मध्यविषे प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण तौं बाह्य १, अंतर २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां सो बाह्यप्रत्यक्ष भी घ्राण १, रसन २, चक्षु ३, त्वक् ४, श्रोत्र ५ इस भेद करिकै पांच प्रकारका होवै है। और मन अंतरप्रत्यक्ष कह्या जावै है। और दूसरा अनुमानप्रमाण भी पूर्ववत् १, शेषवत् २, सामान्यतो दृष्ट ३, इस भेद करिकै तीनप्रकारका होवै है। और सो तीन प्रकारका अनुमान भी स्वार्थ १, परार्थ २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। और तीसरा उपमान प्रमाण भी सादृश्यविशिष्ट पिंडज्ञान १, वैधर्म्यविशिष्ट पिंडज्ञान २, असाधारणधर्मविशिष्ट पिंडज्ञान ३ इस भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है। और चतुर्थ शब्द प्रमाण तौं दृष्टार्थक १, अदृष्टार्थक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है इति ॥ १ ॥ ७२ ॥ और दूसरा प्रमेयपदार्थ—तौं आत्मा १, शरीर २, इंद्रिय ३, अर्थ ४, बुद्धि ५, मन ६, प्रवृत्ति ७, दोष ८, प्रेत्यभाव ९, फल १०, दुःख ११, अपवर्ग १२ इस भेद करिकै द्वादशप्रकारका होवै है। ता द्वादशविध प्रमेयके मध्यविषे प्रथम आत्मारूप प्रमेय—तौं जीवात्मा १, ईश्वरात्मा २ इस भेद करिकै दोप्रकारका होवै है। तहां जीवात्मा तौं नाना होवै है और ईश्वरात्मा एक होवै है। ते दोनों आत्मा नित्य होवै हैं तथा विभु होवै है ॥ १ ॥ और शरीररूप प्रमेय—तौं जरायुज १, अंडज २, स्वेदज ३, उद्भिज्ज ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है ॥ २ ॥ और इंद्रियरूपप्रमेय— तौं घ्राण १, रसन २, चक्षु ३, त्वक् ४, श्रोत्र ५, मन ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है ॥ ३ ॥ और अर्थरूपप्रमेय—तौं रूप १, रस २, गंध ३, स्पर्श ४, शब्द ५, बुद्धि ६, सुख ७, दुःख ८, इच्छा ९, द्वेष १०, प्रयत्न ११ इस भेद करिकै एकादशप्रकारका होवै है। अथवा सो अर्थरूप प्रमेय—द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है ॥ ४ ॥ और बुद्धिरूप प्रमेय—तौं नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां ईश्वरात्माकी बुद्धि तौं नित्य होवै है तथा एक होवै है तथा प्रत्यक्षरूप हीं होवै है और जीवात्माकी बुद्धि अनित्य होवै है। सा अनित्यबुद्धि भी अनुभव १, स्मृति २ इस भेदकरिकै दोप्रकारकी होवै है। सा दोनों प्रकारकी अनित्यबुद्धि यथार्थ १, अयथार्थ २ इस भेद करिकै पुनः दो दो प्रकारकी होवै है। तहां यथार्थ अनुभव तौं प्रत्यक्ष १, अनुमिति २, उपमिति ३, शाब्द ४, इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है और अयथार्थ अनुभव तौं संशय १, विपर्यय २, तर्क ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है ॥ ५ ॥ और मनरूपप्रमेय—तौं नाना होवै है तथा नित्य होवै है तथा अणु होवै है ॥ ६ ॥ और प्रवृत्तिरूपप्रमेय—तौं वागारंभ १, बुद्ध्यारम्भ २, शरीरारंभ ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है ॥ ७ ॥ और दोषरूप प्रमेय—तौं राग १,

द्वेष २, मोह ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां प्रथम रागरूप दोष तौं काम १, मत्सर २, स्पृहा ३, तृष्णा ४, लोभ ५, माया ६, दम्भ ७ इस भेद करिकै सप्त प्रकारका होवै है। और दूसरा द्वेषरूप दोष तौं क्रोध १,ईर्ष्या २,असूया ३, द्रोह ४, अमर्ष ५, अभिमान ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है। और तीसरा मोहरूप दोष तौं विपर्यय १, संशय २, तर्क ३, मान ४, प्रमाद ५, भय ६, शोक ७ इस भेद करिकै सप्त प्रकारका होवै है ॥ ८ ॥ प्रेत्यभाव—और मरणतैं अनंतर जो जन्म है ताका नाम प्रेत्यभाव है ॥ ९ ॥ और फलरूप प्रमेय—तौं मुख्य १, गौण २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है ॥ १० ॥ और दुःखरूप प्रमेय—तौं अहं दुःखी इस प्रकारकी प्रतीति करिकै सर्वप्राणियोंकूं प्रसिद्ध है ॥ ११ ॥ अपवर्ग--और शरीरादिक एकविंशतिदुःखोंकी जा आत्यंतिक निवृत्ति है ताका नाम अपवर्ग है इति ॥ १२ ॥ २ ॥ छ ॥ और तीसरा संशयरूपपदार्थ—तौं साधारणधर्मवद्धर्मिज्ञानजन्य १, असाधारणधर्मवद्धर्मिज्ञानजन्य २, विप्रतिपत्तिवाक्यजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है और सो संशय बहिर्विषयक १, अन्तर्विषयक २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। तहां बहिर्विषयक संशय भी दृश्यमान धर्मिक १, अदृश्यमान धर्मिक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है इति ॥ ३ ॥ छ ॥ और चतुर्थ प्रयोजनपदार्थ—तौं मुख्य १, गौण २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है इति ॥ ४ ॥ छ ॥ और पञ्चमा दृष्टांतपदार्थ—तौं साधर्म्य १, वैधर्म्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है इति ॥ ५ ॥ छ ॥ और षष्ठा सिद्धान्तपदार्थ—तौं सर्वतन्त्र-सिद्धान्त १, प्रतितंत्रसिद्धान्त २, अधिकरणसिद्धांत ३, अभ्युपगमसिद्धान्त ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै है इति ॥ ६ ॥ छ ॥ और सप्तमा अवयवपदार्थ—तौं प्रतिज्ञा १, हेतु २, उदाहरण ३, उपनय ४, निगमन ५ इस भेद करिकै पंचप्रकारका होवै है । तहां सो दूसरा हेतु अवयव भी अज्ञातव्यतिरेक व्याप्तिकहेतुबोधक १, अप्रतीतान्वयव्याप्तिकहेतुबोधक २, प्रतीतान्वयव्यतिरेकव्याप्तिकहेतुबोधक ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। और तीसरा उदाहरणरूप अवयव तौं अन्वयव्याप्तिबोधक १, व्यतिरेकव्याप्तिबोधक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। और चौथा उपनयरूप अवयव भी अन्वयी १, व्यतिरेकी २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है इति ॥ ७ ॥ छ ॥ और अष्टमा तर्कपदार्थ—तौं आत्माश्रय १, अन्योन्याश्रय २, चक्रका ३, अनवस्था ४, प्रमाणबाधितार्थप्रसंग ५ इस भेद करिकै पञ्चप्रकारका होवै है । तहां आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रका यह तीन तर्क तौं उत्पत्ति १, स्थिति २, ज्ञप्ति ३ इस भेद करिकै तीन तीन प्रकारके होवै हैं अथवा सो तर्कपदार्थ व्याघात १, आत्माश्रय २, इतरेतराश्रय ३, चक्रकाश्रय ४, अनवस्था ५, प्रतिबन्दी ६,

कल्पनालाघव ७, कल्पनागौरव ८, उत्सर्ग ९, अपवाद १०, वैजात्य ११ इस भेद करिकै एकादशप्रकारका होवै है । सो तर्कपदार्थ विषयपरिशोधक १, व्याप्तिग्राहक २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है इति ॥ ८ ॥ छ ॥ निर्णय—और प्रमाणका फलरूप जो निश्चयात्मक ज्ञान है ताका नाम निर्णय है इति ॥ ९ ॥ छ ॥ और तत्त्ववस्तुके जाणणेकी इच्छावान् पुरुषोंकी जा परस्पर प्रश्नउत्तररूप कथा है ताका नाम वाद है इति ॥१०॥छ॥ और जल्प—परस्पर जीतणेकी इच्छावान् पुरुषोंकी जा दोनों पक्षके स्थापन करणेवाली कथा है ताका नाम जल्प है इति॥११॥छ॥ वितण्डा—और परस्पर जीतणेकी इच्छावान् पुरुषोंकी जा स्वपक्षस्थापनतैं रहित कथा है ताका नाम वितंडा है इति ॥१२॥छ॥ और हेत्वाभास पदार्थ—तौं व्यभिचारी १, विरुद्ध २, असिद्ध ३, सत्प्रतिपक्ष ४, बाधित ५ इस भेद करिकै पंचप्रकारका होवै है । तहां प्रथम व्यभिचारी हेत्वाभास तौं साधारण १, असाधारण २, अनुपसंहारी ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है और असिद्धहेत्वाभास भी स्वरूपासिद्ध १, आश्रयासिद्ध २, व्याप्यत्वासिद्ध ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है इति ॥१३॥छ॥ और छलपदार्थ—तौं वाक्छल१,सामान्यछल२,उपचारछल३इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है इति॥१४॥छ॥ जाति—और असत् उत्तरका नाम जाति है । सो जाति पदार्थ तौं साधर्म्यसमा १, वैधर्म्यसमा २, उत्कर्षसमा ३, अपकर्षसमा ४, वर्ण्यसमा ५, अवर्ण्यसमा ६, विकल्पसमा ७, साध्यसमा ८, प्राप्तिसमा ९, अप्राप्तिसमा १०, प्रसंगसमा ११, प्रतिदृष्टांतसमा १२, अनुत्पत्तिसमा १३, संशयसमा १४, प्रकरणसमा १५, हेतुसमा १६, अर्थापत्तिसमा १७, अविशेषसमा १८, उपपत्तिसमा १९, उपलब्धिसमा २०, अनुपलब्धिसमा २१, नित्यसमा २२, अनित्यसमा २३, कार्यसमा २४ इस भेद करिकै चौवीसप्रकारका होवै है इति॥१५॥छ॥ निग्रहस्थान—और पराजयका जो हेतु होवै सो निग्रहस्थान कह्या जावै है सो निग्रहस्थान पदार्थ तौं प्रतिज्ञाहानि १, प्रतिज्ञांतर २, प्रतिज्ञाविरोध ३, प्रतिज्ञासंन्यास ४, हेत्वंतर ५, अर्थांतर ६, निरर्थक ७, अपार्थक ८, अविज्ञातार्थ ९, अप्राप्तकाल १०, न्यून ११, अधिक १२, पुनरुक्त १३, अननुभाषण १४, अज्ञान १५, अप्रतिभा १६, विक्षेप १७, मतानुज्ञा १८, पर्य्यनुयोज्योपेक्षण १९, निरनुयोज्यानुयोग २०, अपसिद्धांत २१, हेत्वाभास २२ इस भेद करिकै बावीस प्रकारका होवै है इति ॥ १६ ॥ छ ॥ इति संक्षेपतैं प्रमाणादिक षोडशपदार्थनिरूपणम् ।

तहां पूर्वग्रन्थ करिकै कणादमुनिप्रणीत वैशेषिकशास्त्रके द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंका तथा गौतम मुनिप्रणीत न्यायशास्त्रके प्रमाणादिक षोडशपदार्थोंका संक्षेपतैं निरूपण कऱ्या ॥

आगेके परिच्छेदोंके विषय ।

अब इस न्यायप्रकाशग्रंथविषे आगे जिस क्रमतैं तिन द्रव्यादिक पदार्थोंका विस्तारतैं निरूपण करणा है तिस क्रमकूं निरूपण करे हैं। तहां इस न्यायप्रकाश ग्रंथके द्वितीयपरिच्छेद विषे तौं पृथिवीआदिक नवद्रव्योंका विस्तारतैं निरूपण करैंगे तथा तम विषे तथा सुवर्णविषे तिन नवद्रव्येंतैं अतिरिक्त द्रव्यरूपताका खंडन करैंगे ॥ २ ॥ और तृतीय परिच्छेदविषे तौं रूपादिक चौवीस गुणोंका विस्तारतैं निरूपण करैंगे ॥ ३ ॥ और चतुर्थपरिच्छेदविषे तौं कर्म १, सामान्य २, विशेष ३, समवाय ४, अभाव ५ इन पांच पदार्थोंका विस्तारतैं निरूपण करैंगे तथा शक्ति सादृश्य आदिकोंविषे तिन सप्तपदार्थोंतैं अतिरिक्त पदार्थ रूपताका खंडन करैंगे ॥ ४ ॥ और पंचम परिच्छेदविषे तौं द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंके साधर्म्य वैधर्म्य कथन करैंगे तथा पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके साधर्म्य वैधर्म्य कथन करैंगे तथा रूपादिक चौवीसगुणोंके साधर्म्य वैधर्म्य कथन करैंगे। तहां समानधर्मकूं साधर्म्य कहे हैं और विरुद्धधर्मकूं वैधर्म्य कहे हैं ॥ ५ ॥ और तृतीयपरिच्छेदविषे सामान्यतैं कथन कर्‌या जो बुद्धिरूपगुणक है तिस ज्ञानरूप बुद्धिगुणका षष्ठ परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करैंगे। अर्थात् ता षष्ठ परिच्छेदविषे प्रत्यक्ष प्रमाणजन्य प्रत्यक्षप्रमाका निरूपण करैंगे तथा अनुमानप्रमाणजन्य अनुमितिप्रमाका निरूपण करैंगे तथा उपमानप्रमाणजन्य उपमितिप्रमाका निरूपण करैंगे तथा शब्दप्रमाणजन्य शाब्दीप्रमाका निरूपण करैंगे तथा स्मृतिज्ञानका निरूपण करैंगे तथा संशय विपर्यय तर्करूप अयथार्थ अनुभवका निरूपण करैंगे तथा प्रामाण्यवादका निरूपण करैंगे ॥ ६ ॥ और सप्तमे परिच्छेदविषे तौं न्यायशास्त्रके प्रमाणादिक षोडश पदार्थोंका विस्तारतैं निरूपण करैंगे तथा तिन षोडशपदार्थोंका पूर्व उक्त द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंविषे अंतर्भाव निरूपण करैंगे तथा दीधितिकार शिरोमणि भट्टाचार्यनैं कणादमुनिउक्त द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंविषे कितनैंकी पदार्थोंकूं खंडन करिकै कितनैंकी पदार्थ अधिक माने हैं ते सर्व पदार्थ निरूपण करैंगे इति ॥ ७ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानन्दगिरिणा विरचिते न्यायप्रकाशे मङ्गलमुक्तिवादनिरूपणपूर्वक-संक्षेपतो द्रव्यादिपदार्थनिरूपणं नाम प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीविश्वेश्वराय नमः ॥

इति प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ।



ॐ श्रीगणेशाय नमः । गुरुभ्यो नमः ॥
श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः । श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः ॥

# द्वितीयपरिच्छेदः ।



द्रव्योंका विस्तृत निरूपण ।

तहां पूर्व प्रथमपरिच्छेदविषे संक्षेपतैं निरूपण कऱ्येहूए पृथिवी आदिक नवद्रव्योंका अब इस द्वितीयपरिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करे हैं । द्रव्यलक्षण—तहां लक्षणप्रमाणकरिकै हीं वस्तुकी सिद्धि होवै है । ता लक्षणप्रमाणतैं विना किसी भी वस्तुकी सिद्धि होवै नहीं । इस प्रकारके न्यायकूं अंगीकार करिकै तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंकी सिद्धि करणे वासतै प्रथम तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंका सामान्यलक्षण कथन करे हैं । तहां **समवायिकारणं द्रव्यम्** १, अथवा **गुणाश्रयः द्रव्यम्** २, अथवा **द्रव्यत्वजातिमत् द्रव्यम्** ३, अथवा **गुणकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवत् द्रव्यम्** ४ ॥

लक्षणोंका अर्थ—अब यथाक्रमतैं इन च्यारि लक्षणोंका अर्थ निरूपण करे हैं—

तहां प्रथम—**समवायिकारणं द्रव्यम्** । इस प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । कार्यका जो समवायिकारण होवै सो द्रव्य कह्या जावै है । तहां पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं यथायोग्य द्रव्यरूप कार्यका वा गुणरूपकार्यका वा कर्मरूप कार्यका समवायिकारणपणा होवै है । गुण-कर्मादिक पदार्थोंविषे सो कार्यका समवायिकारणपणा होता नहीं । यातैं यह समवायिकारण त्वरूप द्रव्यका लक्षण संभवै है । तहां मनरूपद्रव्यविषे तौं कोई भी कार्यद्रव्य समवायसंबंध-करिकै उत्पन्न होता नहीं । किंतु गुण तथा कर्म समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होवै हैं । यातैं ता मनरूप द्रव्यविषे द्रव्यरूप कार्यका समवायिकारणपणा नहीं है, किंतु ता मनविषे केवल गुणरूप कार्यका तथा कर्मरूप कार्यका हीं समवायिकारणपणा है । और आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारि विभुद्रव्योंविषे कोई भी द्रव्य समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होता नहीं तथा कर्म भी उत्पन्न होता नहीं, किंतु गुण हीं समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होवै है । यातैं तिन च्यारि विभुद्रव्योंविषे केवल गुणरूप कार्यका हीं समवायिकारणपणा है । और पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि द्रव्योंविषे तौं द्रव्यरूप कार्य तथा गुणरूपकार्य तथा कर्मरूप कार्य यह तीनों समवाय संबंध करिकै उत्पन्न होवै हैं । यातैं तिन पृथिवी आदिक च्यारि द्रव्योंविषे द्रव्यरूप कार्यका तथा गुणरूप कार्यका तथा कर्मरूप कार्यका समवायिकारणपणा है । तिन पृथिवी आदिक च्यारिद्रव्योंविषे भी शरीरघटादिक अंत्यावयवीरूप जे पृथिवी आदिक हैं तिनोंविषे कोई भी द्रव्य समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होता नहीं, किंतु गुण तथा कर्म उत्पन्न होवै है । यातैं तिन शरीरघटादिरूप अंत्यावयवीयोंविषे द्रव्यरूप कार्यका समवायि-

कारणपणा नहीं है, किंतु केवल गुणरूप कार्यका तथा कर्मरूप कार्यका समवायिकारणपणा है। ता अंत्यावयवीका स्वरूप आगे पृथिवी निरूपणविषे कथन करैंगे । इस प्रकारतें तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं सो समवायिकारणपणा विद्यमान है । समवायिकारण—तहां जिस द्रव्यविषे जो कार्य समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होवै सो द्रव्य तिस कार्यका समवायिकारण कह्या जावै है। जैसे तंतुवोंविषे पटरूप कार्य समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होवै है यातैं ते तन्तु ता पटका समवायिकारण है तथा सो पट स्वनिष्ठरूपादिक गुणोंका तथा कर्मका समवायिकारण है। तहां 'समवायिकारणं द्रव्यम्' इस प्रथमलक्षणविषे 'समवायि' यह पद जो नहीं कथन करते, किंतु 'कारणं द्रव्यम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रव्यका लक्षण करते तौं रूपादिक गुणोंविषे भी ता द्रव्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतें? तन्तु आदिक अवयवोंविषे स्थित जे रूपादिक गुण हैं ते रूपादिकगुण पटादिक अवयवीयोंविषे स्थित रूपादिक गुणोंके कारण होवै हैं तथा ते रूपादिक गुण स्वविषयक प्रत्यक्षज्ञानके तथा स्वध्वंसके भी कारण होवै हैं। तिन रूपादिकगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता द्रव्यके लक्षणविषे 'समवायि' यह कारणका विशेषण कथन कऱ्या है। ता समवायिविशेषणके कहणेतैं तिन रूपादिकगुणोंविषे ता द्रव्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। काहेतें? ते तन्तुनिष्ठ रूपादिकगुण तिन पटनिष्ठ रूपादिक गुणोंके समवायिकारण नहीं है, किंतु असमवायिकारण हैं तथा ते रूपादिक गुण स्वप्रत्यक्षके तथा स्वध्वंसके समवायिकारण नहीं हैं किंतु निमित्त कारण हैं इति ॥ असमवायिकारण—तहां जो पदार्थ जिस कार्यके समवायिकारणविषे समवायसंबंध करिकै वा स्वाश्रयसमवायसंबंध करिकै स्थित हूआ तिस कार्यका जनक होवै है सो पदार्थ तिस कार्यका असमवायिकारण कह्या जावै है। जैसे तन्तुवोंका संयोग पटरूप कार्यके समवायिकारणरूप तन्तुवोंविषे समवायसंबंध करिकै स्थित हूआ ता पटरूप कार्यका जनक होवै है, यातैं सो तन्तुवोंका संयोग ता पटरूप कार्यका असमवायिकारण कह्या जावै है। और जैसे तिन तन्तुवोंके रूपादिक गुण ता पटगतरूपादिक गुणोंके समवायिकारणरूप ता पटविषे स्वाश्रयसमवायसंबंध करिकै स्थित हूए तिस पटके रूपादिक गुणोंके जनक होवै हैं। यातैं ते तन्तुवोंके रूपादिक गुण तिन पटगतरूपादिक गुणोंके असमवायिकारण कह्ये जावै है। ईहां द्वितीयसंबंधविषे स्वशब्दकरिकै तन्तुवोंके रूपादिकगुणोंका ग्रहण करणा । तिन रूपादिकगुणोंका आश्रयभूत जे तन्तु हैं तिन तन्तुवोंविषे सो पट समवायसम्बन्ध करिकै रहे है यातैं तिन तन्तुवोंके रूपादिक गुणोंकी स्वाश्रयसमवायरूप परंपरासंबंध करिकै ता पटविषे स्थिति संभवै है इति ॥ निमित्तकारण—और समवायिकारण तथा असमवायिकारण इन दोनोंतैं भिन्न जे कारण हैं ते निमित्तकारण कह्ये जावै हैं। जैसे ता पटरूप कार्यके तुरी वेम तंतुवाय आदिक सर्व कारण निमित्तकारण कह्ये जावै हैं

तथा घटरूप कार्यके दंड चक्र कुलाल आदिक सर्व निमित्तकारण कहे जावै हैं । तहां एक कार्यका समवायिकारण तथा असमवायिकारण एक हीं होवै है और निमित्तकारण अनेक होवै हैं । ताके विषे भी समवायिकारणता तौं एक द्रव्यपदार्थविषे हीं होवै है, गुणादिकपदार्थोंविषे होवै नहीं । और असमवायिकारणता तौं गुण कर्म इन दो पदार्थोंविषे हीं होवै है, द्रव्यादिक पदार्थोंविषे होवै नहीं । और निमित्तकारणता तौं द्रव्यादिक सर्वपदार्थोंविषे होवै है इति ॥ १ ॥ इतनैं पर्यंत 'समवायिकारणं द्रव्यम्' इस प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण कऱ्या ॥

अब द्वितीय–**गुणाश्रयो द्रव्यम्** । इस द्वितीयलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो पदार्थ समवायसंबंध करिकै रूपादिक गुणोंका आश्रय होवै है सो पदार्थ द्रव्य कह्या जावै है । यद्यपि कालिकसंबंध करिकै ते रूपादिक गुण कर्मादिक पदार्थोंविषे भी रहे हैं तथापि समवायसंबंध करिकै ते रूपादिक गुण तिन कर्मादिक पदार्थोंविषे रहते नहीं, किंतु पृथिवीआदिक नव द्रव्योंविषे हीं ते रूपादिक गुण समवायसंबंध करिकै रहे हैं । यातैं तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंका यह समवायसंबंध करिकै गुणोंका आश्रयत्वरूप लक्षण संभवै है । तहां पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके मध्यविषे जिस जिस द्रव्यविषे जे जे गुण रहे हैं ते ते गुण तिस तिस द्रव्यके निरूपणविषे कथन करैंगे । गुणाश्रयपणेपर शंका–तथा उत्तरमें लक्षणका परिष्कार–'गुणाश्रयत्व' यह उक्त द्रव्यका लक्षण अव्याप्तिदोषवाला होणेतैं असंगत है । काहेतैं ? जो जो द्रव्य जिस जिस क्षणविषे उत्पन्न होवै है सो सो कार्य द्रव्य तिस तिस उत्पत्तिक्षणविषे रूपादिक गुणोंतैं रहित हूआ हीं उत्पन्न होवै है । तिस उत्पत्ति क्षणतैं द्वितीयक्षणविषे तिस कार्यद्रव्यविषे ते रूपादिकगुण उत्पन्न होवै हैं । काहेतैं ? जो जो भावकार्य होवै है सो सो समवायिकारण असमवायिकारण निमित्तकारण इन तीन कारणोंकरिकै जन्य होवै है । यह न्यायशास्त्रकारोंका नियम है । और सो तीन प्रकारका कारण भी कार्यकी उत्पत्तिक्षणतैं अव्यवहित पूर्वक्षणविषे वर्त्तमान हूआ हीं ता कार्यका जनक होवै है । और ते रूपादिकगुण भी भावकार्य हैं । यातैं तिन रूपादिकगुणोंकी उत्पत्तिक्षणतैं पूर्वक्षणविषे ते तीनों कारण अवश्य चाहियें । तहां घटादिक द्रव्योंकी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीयक्षणविषे जो ता घटके रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति मानिये तौं तिन रूपादिक गुणोंकी उत्पत्तिक्षणतैं प्रथम क्षणविषे तिन रूपादिक गुणोंका समवायिकारणरूप सो घट विद्यमान है तथा कपालके रूपादिक असमवायिकारण भी विद्यमान है तथा देशकालादिक निमित्तकारण भी विद्यमान है । यातैं तिन तीनों कारणोंतैं ता घटकी उत्पत्तितैं द्वितीयक्षणविषे तिस घटके रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति संभव होइ सके है । और ता घटकी उत्पत्तिक्षणविषे हीं जो ता घटके रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति मानिये तौं तिन रूपादिक गुणोंकी उत्पत्तिक्षणतैं पूर्व क्षणविषे सो घटरूप समवायि-

कारण है नहीं। यातैं ता घटरूप समवायिकारणके अभावतैं ता घटके उत्पत्तिक्षणविषे ताके रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति हीं संभवै नहीं। जो कदाचित् ता घटकी उत्पत्तिक्षण विषे ताके रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति होवैंगी तौं समवायिकारणतैं विना हीं केवल असमवायिकारण करिकै तथा निमित्तकारण करिकै तिन रूपादिकगुणोंकी उत्पत्ति होवैंगी। सो सिद्धांततैं विरुद्ध है। जिस कारणतैं सिद्धांतविषे भावकार्यकी उत्पत्ति तीन कारणोंकरिकै हीं अंगीकार करी है किंवा एककाल विषे उत्पन्नहूए द्रव्यगुणोंका जो उपादान उपादेय भाव मानिये तौं एककालविषे उत्पन्नहूए गौके दो शृंगोंका भी परस्पर उपादानउपादेय भाव होणा चाहिये। जैसे एककालविषे उत्पत्तिवाले होणेतैं तिन दोनों शृंगोंका परस्पर उपादानउपादेयभाव होता नहीं तैसे एककालविषे उत्पत्तिवाले होणेतैं तिन द्रव्यगुणोंका परस्पर उपादान उपादेयभाव संभवता नहीं। और जो कोई ऐसा कहै, जे समवायिअसमवायिनिमित्तरूप तीन कारण तिन घटपटादिकद्रव्योंके जनक हैं ते हीं तीनों कारण तिन घटापटादिक द्रव्योंके रूपादिकगुणोंके भी जनक हैं। यातैं तिन घटादिक द्रव्योंकी उत्पत्तिक्षणविषे हीं ताके रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति मानणेविषे सो पूर्वउक्त समवायिकारणका अभावरूप दोष प्राप्त होवै नहीं। सो यह कहणा भी सम्भवता नहीं। काहेतैं? तिन घटपटादिक द्रव्योंके कारण हीं जो तिनोंके रूपादिक गुणोंके कारण होवैं तौं तिन घटपटादिक द्रव्योंका तथा तिनोंके रूपादिक गुणोंका परस्पर भेद सिद्ध नहीं होवैगा। किंतु ते घटपटादिक द्रव्य तथा रूपादिकगुण अभिन्न हीं होवैंगे। काहेतैं? कारणोंका भेद हीं कार्योंके भेदका साधक होवै है। जैसे तन्तुआदिक कारणों करिकै जन्य पटरूपकार्यतैं तिन तन्तुआदिक कारणोंतैं भिन्न कपालादिक कारणोंतैं जन्य घटरूप कार्य भिन्न होवै है और सो गुणगुणीका अभेद न्यायसिद्धान्तविषे अङ्गीकार नहीं है, किंतु ता गुणगुणीका भेद हीं अङ्गीकार है। यातैं तिन घटपटादिक द्रव्योंके कारण तिन घटादिकोंके रूपादिक गुणोंके कारण होइ सकते नहीं, किंतु तिन घटादिक द्रव्योंके कारणोंतैं ताके रूपादिक गुणोंके कारण भिन्न हीं मान्ये चाहियें। इस उक्तरीतिसैं ते घटपटादिक द्रव्य आपणे उत्पत्तिक्षणविषे रूपादिक गुणोंतैं रहित हूए हीं उत्पन्न होवै हैं तथा कर्मतैं भी रहित हूए उत्पन्न होवै हैं। अर्थात् ता उत्पत्तिक्षणविषे ते घटपटादिक द्रव्य निर्गुण तथा निष्क्रिय उत्पन्न होवै हैं। ऐसे उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटपटादिक द्रव्योंविषे सो गुणाश्रयत्वरूप लक्षण है नहीं। यातैं सो लक्षण अव्याप्तिदोषवाला होणेतैं दुष्ट है। ऐसे दुष्टलक्षण करिकै ता द्रव्यकी सिद्धि होइ सकै नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्त हूए अब ता उक्तलक्षणका अन्यप्रकारतैं वर्णन करे हैं। **गुणसमानाधिकरणसत्ताभिन्नजातिमत् द्रव्यम्।** अर्थ यह—जिस अधिकरणविषे ते रूपादिकगुण समयवायसंबंधकरिकै रहे हैं तिसी अधिकरणविषे जा जाति समवायसंबंधकरिकै रहे है सा जाति गुणसमानाधिकरण कही

जावै है। ऐसी गुणसमानाधिकरण तथा सत्ताजातितैं भिन्न जा जाति है ता जातिवाला पदार्थ द्रव्य कह्या जावै है। सा ऐसी जाति द्रव्यत्व जाति है। काहेतैं पृथिवी आदिक नव द्रव्योंविषे हीं ते रूपादिक गुण समवायसंबंधकरिकै रहे हैं और सा द्रव्यत्वजाति भी तिन नवद्रव्योंविषे हीं समवायसम्बन्ध करिकै रहे है। यातैं सा द्रव्यत्वजाति गुणसमानाधिकरण कही जावै है और सा द्रव्यत्वजाति सत्ताजातितैं भिन्न भी है। ऐसी द्रव्यत्वजाति-वाले ते पृथिवी आदिक नवद्रव्य हैं। ऐसी द्रव्यत्वजाति तिन उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटादिक निर्गुणद्रव्योंविषे भी रहे है। यातै तिनोंविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं। तहां 'सत्ताभिन्नजातिमत् द्रव्यम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रव्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणसमानाधिकरण' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणविषे तथा कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? रूपादिक चौवीसगुणोंविषे रहणेहारी गुणत्वजाति तथा उत्क्षे-पणादिक पंचकर्मोंविषे रहणेहारी कर्मत्वजाति भी ता सत्ताजातितैं भिन्न है। यातैं सत्तातैं भिन्न गुणत्व जातिवाले गुणविषे तथा सत्तातैं भिन्न कर्मत्वजातिवाले कर्मविषे ता उक्तलक्षणकी अति-व्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणसमानाधिकरण' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां गुणविषे तथा कर्मविषे समवायसंबंध करिकै कोई भी गुण रहता नहीं। यातैं सा गुणत्वजाति तथा कर्मत्वजाति गुणसमानाधिकरण नहीं है। यातैं ता गुणकर्मविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'गुणसमानाधिकरण-जातिमत् द्रव्यम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रव्यका लक्षण करते, ता लक्षणविषे 'सत्ताभिन्न' यह पद नहीं कथन करते तौं ता लक्षणकी पुनः भी ता गुणकर्मविषे अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे ते रूपादिक गुण भी समवायसम्बन्धकरिकै रहे हैं और तिन नवद्रव्योंविषे सा सत्ताजाति भी समवायसम्बन्ध करिकै रहे है। यातैं सा सत्ताजाति भी गुणसमानाधिकरण है। ऐसी गुणसमानाधिकरण सत्ताजातिवाला जैसे सो द्रव्य है तैसे सो गुणकर्म भी ता सत्ता जातिवाला है। ता गुणकर्मविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'सत्ताभिन्न' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सा सत्ताजाति ता सत्ताजातितैं भिन्न है नहीं, यातैं ता सत्ताजातिकूं लेके ता लक्षणकी तिस गुणकर्मविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं॥ **शंका**-'गुणसमाना-धिकरणसत्ताभिन्नजातिमत् द्रव्यम्' इस उक्तलक्षणकी भी गुणविषे अतिव्याप्ति होवै है। काहेतैं? **एकं रूपं रसात् पृथक्**। अर्थ यह—एकत्व संख्यावाला रूपगुण रसगुणतैं पृथक् है। यह प्रतीति रूपगुणविषे एकत्वसंख्यारूप गुणकूं तथा पृथक्त्वरूप गुणकूं विषय करे है। यातैं ता प्रतीतिके बलतैं ता रूपगुणविषे भी सो एकत्वसंख्यागुण तथा पृथक्त्वगुण अवश्य मानणा होवैंगा और ता रूपगुणविषे गुणत्वजाति भी रहे है। यातैं सा गुणत्वजाति ता एकत्वसंख्या-

रूप गुणके तथा पृथक्त्वरूपगुणके समानाधिकरण है तथा सा गुणत्वजाति सत्ताजातितैं भिन्न भी है। ऐसी गुणसमानाधिकरण सत्ताभिन्न गुणत्वजातिवाले ते रूपादिक गुण हैं, यातैं तिन रूपादिक गुणोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है। **समाधान—एकं रूपं रसात् पृथक्** यह प्रतीति तिस रूपगुण विषे समवायसंबंध करिकै ता एकत्वसंख्या गुणकूं तथा पृथक्त्व गुणकूं विषय करती नहीं। काहेतैं ? सो गुणपदार्थ समवायसंबंध करिकै एक द्रव्य-पदार्थविषे हीं रहे है। गुणादिक पदार्थों विषे समवायसंबंध करिकै सो गुण रहता नहीं। किंतु जिस घटादिरूप द्रव्यविषे सो रूपगुण समवायसंबंध करिकै रहे है तिसी घटादिरूप द्रव्यविषे सो एकत्वसंख्या गुण तथा पृथक्त्वगुण भी समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं ता रूपगुणका ता एकत्वसंख्या पृथक्त्व गुणके साथि समानाधिकरण्य संबंध है। ता सामानाधिकरण्य संबंध करिकै ता रूपगुणविषे रह्ये हूए ता एकत्व पृथक्त्व गुणकूं हीं सा प्रतीति विषय करे है। यातैं तिन रूपादिक गुणोंविषे ता उक्तद्रव्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥ २॥

तृतीय—अब **द्रव्यत्वजातिमत् द्रव्यम्**। इस तृतीय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। जो पदार्थ समवायसंबंध करिकै द्रव्यत्व जातिवाला होवै है सो पदार्थ द्रव्य कह्या जावै है। तहां समवायसंबंध करिकै सा द्रव्यत्वजाति पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है, गुणादिक पदार्थोंविषे रहती नहीं। यातैं यह द्रव्यत्वजातिमत्त्वरूप द्रव्यका लक्षण भी संभवै है। द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि—यह द्रव्यत्वजातिमत्त्वरूप द्रव्यका लक्षण तथा पूर्वउक्त द्रव्यत्वजाति-घटितद्रव्यका लक्षण तथा आगे वक्ष्यमाण द्रव्यत्वजातिघटित द्रव्यका लक्षण तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि होवै। ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धितैं विना ते लक्षण संभवते नहीं ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब प्रत्यक्षप्रमाण करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करे हैं। तहां परस्परविलक्षण जे पृथिवी आदिक नवद्रव्य हैं तिनों विषे 'इदं द्रव्यम् इदं द्रव्यम्' या प्रकारकी एकाकार प्रतीति होवै है अर्थात् एकधर्मप्रकारक प्रतीति होवै है। ता एकाकार प्रतीतिविषे कोई एक विषय कारण मान्या चाहिये। तहां परस्पर विलक्षण पृथिवी आदिक व्यक्तियोंकूं तौ ता एकाकार प्रतीतिविषे कारणता संभवती नहीं, किंतु तिन पृथिवी जलादिक नवद्रव्योंविषे अनुगत होइकै रही हूई जा द्रव्यत्वजाति है सा एक विषयरूप द्रव्यत्वजाति हीं ता एकाकार प्रतीतिका कारण है। यातैं 'इदं द्रव्यम् इदं द्रव्यम्' यह प्रत्यक्ष हीं ता द्रव्यत्वजाति विषे प्रमाण है। **शंका—**परमाणु आदिक अतिइंद्रिय द्रव्यों-विषे 'इदं द्रव्यम् इदं द्रव्यम्' इस प्रकारकी प्रत्यक्ष प्रतीति किसीभी जीवकूं होती नहीं। यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाणतैं तिन अतिइंद्रिय द्रव्योंविषे ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैगी, किंवा शास्त्रसंस्कारोंतैं रहित पुरुषोंकूं सुवर्णरूप्यादिक पदार्थोंविषे हीं 'इदं द्रव्यम्' इस प्रकारकी प्रतीति होवै है, घटादिक द्रव्योंविषे 'इदं द्रव्यम्' या प्रकारकी प्रतीति होती नहीं। यातैं

'इदं द्रव्यम्' इस प्रकारकी प्रत्यक्ष प्रतीतितैं ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि संभवै नहीं ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब अनुमानप्रमाण करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करे हैं। ता अनुमानका यह आकार है—द्रव्यवृत्तिर्या संयोगस्य विभागस्य वा समवायिकारणता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् तन्तुवृत्तिकारणतावत्। अर्थ यह—पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे रही हूई जा संयोगगुणरूप कार्यकी अथवा विभागगुणरूप कार्यकी समवायिकारणता है सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणेयोग्य है, कारणता होणेतैं। जा जा कारणता होवै है सा सा किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है। निरवच्छिन्न कोई कारणता होती नहीं। जैसे तंतुवोंविषे रही हूई पटकी समवायिकारणता तन्तुत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न होवै है तैसे सा द्रव्यनिष्ठकारणता भी किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवैगी। तहां तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे स्थित जा संयोगविभागरूप कार्यकी समवायिकारणता है ता कारणताका द्रव्यत्वजाति हीं अवच्छेदक होवै है। अन्य कोई धर्म अवच्छेदक होवै नहीं। काहेतैं? जो धर्म जिस धर्मके न्यूनदेशविषे तथा अधिकदेशविषे नहीं रहे है, किंतु समानदेशविषे रहे है सो धर्म हीं तिस धर्मका अवच्छेदक होवै है, अर्थात् अन्यधर्मोंतैं भिन्न करणेहारा होवै है। अवच्छेद्यधर्मतैं न्यून अधिक देशविषे वर्त्तणेहारा धर्म ताका अवच्छेदक होवै नहीं। इस प्रकारका अवच्छेदक धर्मका लक्षण ईहां द्रव्यत्वजातिविषे हीं घटे है, दूसेर किसी धर्मविषे घटता नहीं। काहेतैं? ता संयोगविभागरूप कार्यकी समवायिकारणता भी तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है। गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे रहै नहीं और सा द्रव्यत्वजाति भी तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे रहै नहीं। यातैं ता कारणताके समानदेशवृत्ति होणेतैं सा द्रव्यत्वजाति हीं ता कारणताका अवच्छेदक होवै है और गुणमात्रविषे वृत्ति गुणत्वजाति तथा कर्ममात्रविषे वृत्तिकर्मत्वजाति ता द्रव्यवृत्ति कारणताके समानाधिकरण हीं नहीं है। यातैं सा गुणत्वजाति तथा कर्मत्वजाति भी ता कारणताका अवच्छेदक होवै नहीं। ता अवच्छेद्यधर्मके समानाधिकरण धर्म हीं ताका अवच्छेदक होवै है। और पृथिवीमात्रविषे वृत्ति पृथिवीत्वजाति तथा जलमात्रविषे वृत्ति जलत्वजाति तथा तेजमात्रविषे वृत्ति तेजस्त्वजाति इत्यादिक द्रव्यविभाजक जातियां यद्यपि ता द्रव्यवृत्ति कारणताके अधिकरणविषे हीं रहे हैं तथापि ते पृथिवीत्वादिक जातियां ता कारणतातैं न्यूनदेशविषे वृत्ति हैं। यातैं ते पृथिवीत्वादिक जातियां भी ता कारणताके अवच्छेदक होवै नहीं और सत्ताजाति यद्यपि नवद्रव्योंविषे रहे है तथापि सा सत्ताजाति ता द्रव्यतैं भिन्न गुणकर्मविषे भी रहे है यातैं ता द्रव्यवृत्ति कारणतातैं अधिकदेशवृत्ति होणेतैं सा सत्ताजाति भी ता कारणताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं। परिशेषतैं द्रव्यमात्रवृत्ति सा द्रव्यत्वजाति हीं ता द्रव्यवृत्ति कारणताका अवच्छेदक होवै है।

**शंका**—ता द्रव्यवृत्ति कारणताका गुणत्वजाति हीं अवच्छेदक होइ सके है । काहेतें ? पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं सा संयोगविभागगुणकी समवायिकारणता रहे है और सा गुणत्वजाति भी तिन नवद्रव्योंविषे हीं रहे है । यद्यपि समवायसम्बन्ध करिकै सा गुणत्वजाति गुणविषे हीं रहे है, ता द्रव्यविषे रहती नहीं तथापि स्वाश्रयाश्रयत्वरूप परम्परासम्बन्ध करिकै सा गुणत्वजाति ता द्रव्यविषे भी रहे है । ईहां स्वशब्दकरिकै ता गुणत्वजातिका ग्रहण करणा। तिस गुणत्वजातिका आश्रय रूपादिक गुण हैं । तिन रूपादिक गुणोंका आश्रय ते पृथिवी आदिक नवद्रव्य हैं । इस प्रकारके स्वाश्रयाश्रयत्वरूप परम्परासम्बन्ध करिकै तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे रही हूई जा गुणत्वजाति है सा गुणत्वजाति हीं ता द्रव्यवृत्ति कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै सिद्ध होवैगी । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि सम्भवै नहीं । **समाधान**—साक्षात् सम्बन्ध करिकै सम्बद्ध धर्मका जहां किसी प्रमाण करिकै बाध होवै है तहां हीं परम्परासम्बन्ध करिकै सम्बद्ध धर्मकूं सो अनुमितिज्ञान विषय करे है और जहां साक्षात् सम्बन्ध करिकै सम्बद्ध धर्मका किसी प्रमाण करिकै बाध नहीं होवै है तहां परम्परा सम्बन्ध करिकै सम्बद्ध धर्मकूं सो अनुमितिज्ञान विषय करता नहीं । सो ईहां प्रसंगविषे पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे साक्षात् समवायसंबंध करिकै संबद्ध ता द्रव्यत्वजातिरूप धर्मका कोई भी प्रमाण बाधक नहीं है । यातैं ता साक्षात्संबद्ध द्रव्यत्वधर्मकूं छोडिकै सो अनुमितिज्ञान ता उक्त परंपरासंबंध करिकै संबद्ध ता गुणत्वजातिरूप धर्मकूं विषय करैंगा नहीं, किंतु ता द्रव्यत्वजातिकूं हीं सो अनुमितिज्ञान विषय करैंगा। यातैं ता उक्त अनुमान करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी हीं सिद्धि होवै है, ता गुणत्वजातिकी सिद्धि होवै नहीं ॥ **शंका**—इस उक्त अनुमान करिकै नवद्रव्यवृत्ति एकद्रव्यत्व धर्मकी सिद्धि होवै है । परंतु ता द्रव्यत्व धर्मविषे जातिरूपता इस अनुमान करिकै सिद्ध होती नहीं । यातैं जैसे आकाशत्व कालत्व दिशात्व सामान्यत्व विशेषत्व समवायत्व अभावत्व इत्यादिक धर्म जातिरूप नहीं हैं, किंतु उपाधिरूप हैं तैसे सो-द्रव्यत्वधर्म भी जातिरूप नहीं होवैंगा, किंतु उपाधिरूप हीं होवैंगा । **समाधान**—कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै अथवा कार्यताका अवच्छेदकरूप करिकै अथवा प्रतिबंधकताका अवच्छेदकरूप करिकै अथवा प्रतिबध्यताका अवच्छेदकरूप करिकै अथवा पदकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै जो धर्म सिद्ध होवै है । तिस धर्मके जातिपणेविषे जो कोई दोष बाधक नहीं होवै है तौं सो धर्म जातिरूप हीं होवै हैं यह न्यायशास्त्रकारोंका सिद्धांत है । ते जातिपणेके बाधकदोष आगे चतुर्थपरिच्छेदविषे सामान्यनिरूपणाविषे कथन करैंगे । सो ईहां ता द्रव्यत्वरूप धर्मके जातिपणेविषे कोई भी दोष बाधक नहीं है । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै सो द्रव्यत्वधर्म जातिरूप हीं सिद्ध होवैंगा ॥ **शंका**—जैसे संयोग विभाग

यह दोनों गुण द्रव्यविषे रहे हैं तैसे रूपादिक गुण भी ता द्रव्यविषे हीं रहे हैं। तिन रूपादिक गुणोंका परित्याग करिकै संयोगविभागरूप गुणकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धिकरणेविषे कौन कारण है? **समाधान**—जैसे संयोग विभाग यह दोनों गुण पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे रहे हैं तैसे ते रूपादिकगुण तिन नवद्रव्योंविषे रहते नहीं, किंतु केईक गुण तौं एक द्रव्यविषे हीं रहे हैं। जैसे शब्दबुद्धि आदिक गुण हैं और केईक गुण तौं दो द्रव्योंविषे हीं रहे हैं, जैसे रसादिकगुण हैं। और केईक गुण तौं तीन द्रव्योंविषे हीं रहे हैं, जैसे रूपादिक गुण हैं। और केईक गुण तौं च्यारिद्रव्योंविषे हीं रहे हैं, जैसे स्पर्शादिक हैं। और केईक गुण तौं पांचद्रव्योंविषे हीं रहे हैं, जैसे परत्व अपरत्वादिक गुण हैं। यातैं तिन रूपादिक गुणोंकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जो द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करिये तौं सा द्रव्यत्वजाति तिन नवद्रव्योंविषे सिद्ध नहीं होवैगी, किंतु एक दो तीन च्यारि पांच द्रव्योंविषे हीं सिद्ध होवैगी। और संयोग विभाग यह दोनों गुण तौं तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे हैं। यातैं तिन दोनोंकी कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै सा द्रव्यत्वजाति तिन नवद्रव्योंविषे हीं सिद्ध होवै है। इस कारणतैं तिन रूपादिक गुणोंका परित्याग करिकै ता संयोगविभागकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करी है॥ **शंका**—जैसे संयोग विभाग यह दोनों गुण तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे रहे हैं तैसे संख्या परिमाण पृथक्त्व यह तीन गुण भी तिन नवद्रव्योंविषे हीं रहे है। यातैं तिन तीनोंगुणोंकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि होइ सके है। तिन तीनों गुणोंका परित्याग करिकै केवल संयोगविभागरूप गुणकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करणेविषे कौन कारण है? **समाधान**—संख्या परिमाण पृथक्त्व यह तीनों गुण यद्यपि ता संयोगविभागकी न्यांई तिन नवद्रव्योंविषे हीं रहे हैं तथापि ते तीनों गुण नित्य भी होवै हैं तथा अनित्य भी होवै हैं। तहां नित्यद्रव्योंविषे वृत्ति एकत्व संख्या तौं नित्य होवै है और द्वित्वादिक सर्वसंख्या अनित्य हीं होवै है। तैसे नित्यद्रव्योंविषे वृत्ति परिमाण तौं नित्य होवै है और अनित्यद्रव्योंविषे वृत्तिपरिमाण अनित्य होवै है। तैसे नित्यद्रव्योंविषे वृत्ति एकपृथक्त्व तौं नित्य होवै है और द्विपृथक्त्वादिक सर्व अनित्य होवै है। इस प्रकारतैं ते संख्या परिमाण पृथक्त्व तीनों नित्य भी होवै हैं तथा अनित्य भी होवै हैं। और नित्य अनित्य दोनोंविषे वर्त्तणेहारा धर्म कार्यताका अवच्छेदक होता नहीं। यातैं नित्य अनित्य दोनों विषे वर्त्तणेहारे संख्यात्व परिमाणत्व पृथक्त्वत्व यह तीनों धर्म ता द्रव्यकी कार्यताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं इस कारणतैं संख्या परिमाण पृथक्त्व इन तीनों गुणोंकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि

नहीं करी और संयोग विभाग यह दोनों गुण तौं अनित्य हीं होवै हैं नित्य होवै नहीं । यातैं ता संयोगविभागरूप कार्यकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करी है ॥ **शंका**—तौं भी एक संयोगरूप गुणकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै हीं ता द्रव्यत्व जातिकी सिद्धि होइ सके है। ताके विषे विभाग गुणका ग्रहण करणा निष्फल है । **समाधान**—केईक ग्रन्थकार आकाशादिक विभुद्रव्योंके संयोगकूं नित्य माने हैं। तिनोंके मतविषे जैसे संख्यात्व परिमाणत्वादिक धर्म नित्य अनित्य दोनोंविषे रहे हैं तैसे सो संयोगत्व धर्म भी नित्य अनित्य दोनोंविषे रहे है । यातैं तिन संख्यात्व परिमाणत्वादिक धर्मोंकी न्याईं सो संयोगत्व धर्म भी ता कार्यताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं । तिनोंके मतविषे ता संयोगकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि होइ सकै नहीं । और विभाग गुणकूं तौं कोई भी ग्रन्थकार नित्य मानता नहीं, किंतु ता विभागकूं सर्व अनित्य माने हैं। या कारणतैं ता विभागकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करी है इति ॥ और केईक ग्रन्थकार तौं या प्रकारतैं ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि करे हैं—जिन अवयवोंविषे जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै रहे है तिन अवयवोंविषे ता द्रव्यतैं भिन्न दूसरे द्रव्यकी उत्पत्ति होती नहीं । जैसे एक पटका आश्रयभूत तंतुवोंविषे दूसरे पटकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं तिन अवयवोंविषे समवायसंबंध करिकै द्रव्यांतरकी उत्पत्तिविषे ता प्रथम द्रव्यकूं समवायसंबंध करिकै प्रतिबंधक मान्या चाहिये इस प्रकार ता द्रव्यविषे रही हूई जा द्रव्यांतरकी प्रतिबंधकता है ता प्रतिबंधकताका अवच्छेदकरूप करिकै हीं ता द्रव्यत्वजातिकी सिद्धि होइ सके हैं इति । इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे सिद्ध हूई जा द्रव्यत्वजाति है ता द्रव्यत्वजातिवाला पदार्थ द्रव्य कह्या जावै है इति ॥ ३ ॥

चतुर्थ—इतनैं पर्यंत 'द्रव्यत्वजातिमत् द्रव्यम्' इस तृतीय लक्षणका अर्थ निरूपण कऱ्या। अब **गुणकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवत् द्रव्यम्** । इस चतुर्थलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां जो पदार्थ गुण कर्म इन दोनों पदार्थोंतैं भिन्न होवै है तथा जातिरूप सामान्यवाला होवै है सो पदार्थ द्रव्य कह्या जावै है । तहां ते पृथिवीआदिक नवद्रव्य गुणकर्मतैं भिन्न भी हैं तथा जातिरूप सामान्यवाले भी हैं । यातैं यह उक्त द्रव्यका लक्षण संभवै है । ईहां 'सामान्यवत् द्रव्यम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रव्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणकर्मभिन्नत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ता द्रव्यकी न्याईं ते गुणकर्म भी ता जातिरूप सामान्यवाले हीं है । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणकर्मभिन्नत्वे सति' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां ते गुणकर्म ता गुणकर्मतैं भिन्न हैं नहीं । यातैं ता गुणकर्मविषे ता उक्त लक्षणकी

अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'गुणकर्मभिन्नं द्रव्यम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रव्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'सामान्यवत्' यह पद नहीं कथन करते तौं सामान्य विशेष समवाय अभाव इन च्यारोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सो द्रव्य ता गुणकर्मतैं भिन्न है तैसे ते सामान्यादिक च्यारि भी ता गुणकर्मतैं भिन्न हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'सामान्यवत्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते सामान्यादिक पदार्थ ता जातिरूप सामान्यवाले हैं नहीं, यातैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं॥ **शंका**—'सामान्यवत्' इस पदके कहणे करिकै भी ता उक्त लक्षणकी सामान्य, विशेष, समवाय इन तीनोंविषे अतिव्याप्ति होवै है। काहेतैं ? जिस द्रव्यगुणकर्मविषे समवायसंबंध करिकै सो जातिरूप सामान्य रहे है तिसी द्रव्यगुणकर्मविषे समवायसंबंध करिकै ते सामान्यादिक तीन भी रहे हैं। यातैं सामानाधिकरण्य संबंध करिकै ते सामान्यादिक तीन पदार्थ भी ता जातिरूप सामान्यवाले हीं हैं तथा गुण कर्मतैं भिन्न भी हैं॥ **समाधान**—ता उक्त लक्षणविषे 'सामान्यवत्' इस पद करिकै समवायसंबंध करिकै सामान्यवाले पदार्थका ग्रहण करणा। तहां सो जातिरूप सामान्य तिन सामान्य विशेषादिक पदार्थोंविषे समवायसंबंध करिकै रहता नहीं यातैं ता उक्तलक्षणकी तिन सामान्यविशेषादिकोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥ ४॥ इस प्रकारके उक्त च्यारी लक्षणों करिकै लक्षित जो द्रव्य पदार्थ है सो द्रव्यपदार्थ पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५, काल ६, दिशा ७, आत्मा ८, मन ९ इस भेद करिकै नव प्रकारका होवै है॥

### पृथिवी द्रव्य निरूपण।

अब इन नवद्रव्योंके मध्यविषे उद्देश क्रमके अनुसार प्रथम पृथिवीरूप द्रव्यका निरूपण करे हैं। प्रथम लक्षण-तहां—**गन्धवती पृथिवी १**। अथवा द्वितीय-**पृथिवीत्वजातिमती पृथिवी॥२॥**

अब इन दोनों लक्षणोंविषे प्रथमलक्षणका अर्थ—निरूपण करे हैं। तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै गन्धगुणवाला होवै है सो द्रव्य पृथिवी कह्या जावै है। यद्यपि कालिक संबंध करिकै सो गन्धगुण कालविषे भी रहे है तथा जलादिकोंविषे भी रहे है तथा दैशिकसंबंध करिकै सो गन्धगुण दिशाविषे भी रहे है तथापि समवाय संबंध करिकै सो गन्धगुण एकपृथिवीविषे हीं रहे है। तिन कालदिशादिकोंविषे रहे नहीं। यातैं ता गंधवत्स्वरूप पृथिवीके लक्षणकी तिन कालादिकोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं और न्यायशास्त्रविषे कालकूं तथा दिशाकूं जो सर्व पदार्थोंकी आधारता कही है सो भी समवायसंबंध करिकै तिन सर्वपदार्थोंकी आधारता नहीं कही किंतु कालिकसंबंध करिकै तौं ता कालकूं सर्वपदार्थोंकी आधारता है और दैशिकसंबंध करिकै ता दिशाकूं सर्वपदार्थोंकी आधारता है और ता कालदिशाविषे रहणेहारे जे संख्यादिक पञ्चगुण हैं तथा विशेष पदार्थ है तथा द्रव्यत्वजाति सत्ताजाति है तिनोंकी हीं ता कालदिशाकूं

समवायसम्बन्ध करिकै आधारता है । यातैं ता समवायसंबंध करिकै गन्धवत्त्वरूप लक्षणकी तिन कालादिकोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं ॥ शंका—ता गन्धवत्त्वरूप पृथिवीके लक्षणकी सुरभि असुरभि कपालजन्य घटविषे तथा उत्पन्नविनष्ट घटविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटविषे अव्याप्ति हीं होवै है । काहेतैं ? सौरभ गन्धवाला जो सुरभि कपाल है तथा असौरभ गन्धवाला जो असुरभि कपाल है तिन सुरभि असुरभि कपालों करिकै जन्य जो घट है सो घट गन्धतैं रहित हीं होवै है । काहेतैं ? तिन कपालादिक अवयवोंका गन्ध हीं तिन घटादिक अवयवीयोंके गन्धका असमवायिकारण होवै है तहां तिस घटविषे जबी एक कपालके सौरभगन्ध करिकै सौरभगन्ध उत्पन्न होणे लगेगा तबी द्वितीय कपालका असौरभगंध ता सौभर गन्धकी उत्पत्तिविषे प्रतिबन्धक होवैंगा और तिस घटविषे जबी एक कपालके असौरभगन्ध करिकै असौरभगन्ध उत्पन्न होणे लगेगा तबी ता द्वितीय कपालका सौरभगन्ध ता असौरभ गन्धकी उत्पत्तिविषे प्रतिबंधक होवैंगा इस प्रकार परस्पर प्रतिबध्य प्रतिबंधक भाव करिकै ता घटविषे कोई भी गन्ध उत्पन्न नहीं होवैंगा । ईहां जो कोई पुरुष इस उक्त शंकाका ऐसा समाधान करै—ता सुरभि असुरभि कपालजन्य घट विषे जो कोई भी गंध नहीं उत्पन्न होता होवै तौ लोकोंकूं घ्राण इंद्रिय करिकै ता घटके गंधका ज्ञान जो होवै है सो नहीं होणा चाहिये और सर्व लोकोंके अनुभव सिद्ध अर्थका केवल युक्तिमात्रतैं अभाव कहणा अत्यंत विरुद्ध है । यातैं ता सर्व लोकोंके अनुभवके बलतैं ता घटविषे किसी गंधकी उत्पत्ति अवश्य मानी चाहिये । तहां जैसे श्वेत नील पीत रक्त रूपवाली तंतुवोंतैं उत्पन्न भया जो पट है ता पटविषे यद्यपि पूर्व उक्त रीतिसैं परस्पर प्रतिबध्य प्रतिबंधक भाव करिकै एक शुक्लरूपकी वा नीलादिक रूपकी तौं उत्पत्ति होवै नहीं तथापि ते तंतुवोंके श्वेत नील पीतादिक रूप मिलिकै ता पटविषे एक चित्र रूपकी उत्पत्ति करै हैं । तैसे ते कपालके सौरभ असौरभ गंध भी मिलिकै ता घटविषे एक चित्र गंधकूं उत्पन्न करैंगे । ता घटविषे केवल सौरभ गंधकी उत्पत्ति विषे तथा केवल असौरभ गंधकी उत्पत्तिविषे हीं तिन कपालोंके सौरभ असौरभ गंधकूं परस्पर प्रतिबध्य प्रतिबंधकभाव है । ता घटविषे एक चित्रगंधकी उत्पत्तिविषे कोई भी प्रतिबंधक नहीं है इति । सो यह समाधान भी संभवता नहीं । काहेतैं ? ता सुरभि असुरभि कपालजन्य घटविषे लोकोंकूं जा गंधकी प्रतीति होवै है सा प्रतीति जो कदाचित् ता घटविषे गंधकी उत्पत्ति मानणेतैं विना नहीं सिद्ध होती तौं तिस प्रतीतिके बलतैं ता घटविषे ता चित्र गंधकी उत्पत्ति अंगीकार करते परंतु सा प्रतीति तौं तिन कपालोंके गंध करिकै हीं सिद्ध होइ सकै है अर्थात् स्वाश्रयसमवेतत्व संबंध करिकै सो कपालोंका गंध हीं ता घटविषे प्रतीत होवै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता कपालके सौरभ असौरभ गंधका ग्रहण करणा । ता गंधका आश्रयभूत जे कपाल हैं तिन कपालोंविषे सो घट सम-

वायसंबंध करिकै रहे है। इस प्रकारके परंपरासबंध करिकै सो कपालोंका गंध हीं ता घट-विषे प्रतीत होवै है। ता प्रतीति वासतै ता घटविषे चित्रगंधका अंगीकार करणा निष्फल है॥ **शंका**—ता सुरभि असुरभि कपाल जन्य घटविषे जो चित्रगंध नहीं अंगीकार करौंगे तौं नीलपीतादिक रूपवाली तंतुवोंतैं उत्पन्नहूए पटविषे चित्ररूप भी नहीं अंगीकार कऱ्या चाहिये तथा कोमल कठिन स्पर्शवाले तंतुआदिक अवयवोंतैं उत्पन्न भये जे पटादिक हैं तिन पटादिकोंविषे चित्रस्पर्श भी नहीं अंगीकार कऱ्या चाहिये । **समाधान**—तिस पटविषे जो चित्ररूप नहीं अंगीकार करिये तौं तिस पटका चाक्षुष प्रत्यक्ष हीं नहीं होवैगा। काहेतैं? द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूप कारण होवै है। ता महत्त्वसमानाधि करण उद्भूतरूपतैं विना ता द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं । या कारणतैं हीं परमाणु वायु आकाश काल दिशा आत्मा मन चक्षु आदिक इंद्रिय इत्यादिकोंका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता नहीं। तहां परमाणुवोंविषे यद्यपि उद्भूतरूप तौं है तथापि महत्त्व परिमाण है नहीं। यातैं महत्त्व-समानाधिकरण उद्भूतरूपके अभावतैं तिन परमाणुवोंका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै नहीं और वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन पांचों द्रव्योंविषे यद्यपि महत्त्व परिमाण तौं है तथापि तिन पांचोंविषे उद्भूतरूप है नहीं। यातैं महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपके अभावतैं तिन पांचोंका भी चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै नहीं और मनविषे तौं महत्त्व भी नहीं है तथा उद्भूतरूप भी नहीं है। यातैं ता महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपके अभावतैं ता मनकाभी चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं और चक्षु रसन घ्राण इन तीन इंद्रियोंविषे तौ महत्त्व भी है तथा रूप भी है परंतु उद्भूतरूप नहीं है किंतु अनुद्भूतरूप है। और त्वक् श्रोत्र इन दो इंद्रियोंविषे तौं केवल महत्त्व हीं है, रूप है नहीं। यातैं महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपके अभावतैं तिन इंद्रियोंका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं। किंवा जैसे सो महत्त्व समानाधिकरण उद्भूतरूप द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे कारण होवै है तैसे सो महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूप ता द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षविषे भी कारण होवै है । यातैं ता महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपके अभावतैं तिन उक्त परमाणु वायु आकाशादिकोंका जैसे चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होवै है तैसे तिन परमाणु वायु आदिकोंका त्वाच प्रत्यक्ष भी होवै नहीं। ईहां यह तात्पर्य है—सामानाधिकरण्य संबंध करिकै महत्त्वपरिमाण विशिष्ट उद्भूतरूप जिस द्रव्यविषे रहे है तिसी द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष तथा त्वाचप्रत्यक्ष होवै है। और जिस द्रव्यविषे ता महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपका अभाव होवै है तिस द्रव्यका चाक्षुष-प्रत्यक्ष तथा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं। सो महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपका अभावरूप विशिष्टा-भाव कहां तौं ता महत्त्वरूप विशेषणके अभावतैं होवै है और कहां तौं ता उद्भूतरूपविशेष्यके अभावतैं होवै है और कहां तौं ता महत्त्वरूप विशेषणके तथा ता उद्भूतरूप विशेष्यके दोनोंके अभावतैं होवै है तहां पृथिवी जल तेज इन तीनोंके परमाणुवोंविषे सो उद्भूतरूप

विशेष्य तौं है, परंतु सो महत्त्वरूप विशेषण है नहीं । यातैं तिन परमाणुवोंविषे विशेषणाभाव प्रयुक्त विशिष्टाभाव है । और वायु आकाश काल दिशा आत्मा इन पांचोंविषे सो महत्त्वरूप विशेषण तौं है, परंतु सो उद्भूतरूप विशेष्य है नहीं । यातैं तिन वायुआदिक पांचों विषे विशेष्याभाव प्रयुक्त विशिष्टाभाव है । ईहां वायुशब्द करिकै परमाणु द्व्यणुक रूप वायुतैं भिन्न वायुका ग्रहण करणा । ता परमाणु द्व्यणुकरूप वायुविषे तौं ता महत्त्वरूप विशेषणका भी अभाव है और मनविषे तौं सो महत्त्वरूप विशेषण भी नहीं है तथा सो उद्भूतरूप विशेष्य भी नहीं है । यातैं ता मनविषे विशेषणविशेष्य उभयाभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव है । और चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे सो महत्त्वरूप विशेषण तौं है, परंतु सो उद्भूतरूप विशेष्य है नहीं । यातैं तिन इंद्रियोंविषेभी विशेष्याभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव है । इस रीतिसैं महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपहीं ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे तथा त्वाचप्रत्यक्षविषे कारण होवै है । तहां शुक्ल नील पीतादिरूपवाली तंतुवोंतैं उत्पन्न हूए पटविषे जो चित्ररूप नहीं अंगीकार करीये तौं ता महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपकारणके अभावतैं ता पटका प्रत्यक्ष हीं नहीं होवैगा और ता पटका भी सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष होवै है । या कारणतैं तिस पटविषे ता चित्ररूपकी उत्पत्ति अंगीकार करी है । इस प्रकार कोमलकठिनस्पर्शवाले अवयवोंतैं उत्पन्नहूए पटादिकों विषे चित्रस्पर्श भी अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये । काहेतैं ? जैसे महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपकूं द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे तथा त्वाचप्रत्यक्षविषे कारणता है तैसे ता द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षविषे उद्भूतस्पर्शकूं भी कारणता है । जो कदाचित् ता पटविषे चित्रस्पर्श नहीं अंगीकार करीये तौं ता पटका त्वाचप्रत्यक्ष हीं नहीं होवैगा । यातैं ता पटके त्वाचप्रत्यक्ष वासतै चित्ररूपकी न्यांई सो चित्रस्पर्श भी अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये और जैसे ता रूपकूं तथा स्पर्शकूं द्रव्यके प्रत्यक्षज्ञानाविषे कारणता है तैसे ता गंधगुणकूं द्रव्यके प्रत्यक्ष ज्ञानविषे कारणता है नहीं । यातैं चित्ररूपस्पर्शकी न्यांई ता घटविषे चित्रगंधका अंगीकार करणा निष्फल है । इस रीतिसैं सुरभि असुरभि कपालजन्य घट निर्गंध हीं होवै है । ता घटरूप पृथिवीविषे ता गंधवत्त्वरूपलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है, किंवा जो घट एकक्षणविषे उत्पन्न होईके द्वितीयक्षणविषे नष्ट होइ गया है ता उत्पन्नविनष्ट घटविषे भी ता गंधवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । काहेतैं ? प्रथम क्षणविषे तौं द्रव्य निर्गुण हीं उत्पन्न होवै है, द्वितीय क्षणविषे ता द्रव्यविषे रूपादिक गुण उत्पन्न होवै हैं । यह वार्ता पूर्व द्रव्यके लक्षण निरूपणविषे युक्तिसहित कथन करि आये हैं । यातैं उत्पत्तिक्षणविषे तौं ता घटविषे सो गंधगुण है नहीं । और जिस द्वितीय क्षणविषे ता घटविषे गंधगुणनैं उत्पन्न होणा था तिस द्वितीय क्षणविषे सो घट नष्ट हीं होई गया । ऐसे उत्पन्नविनष्ट घटादिरूप पृथिवीविषे भी ता गंधवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटादिरूप पृथिवीविषे

भी ता गंधवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब 'गंधवती पृथिवी' इस उक्त लक्षणका अन्य प्रकारतैं निर्वचन करे हैं । **गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमती पृथिवी ।** अर्थ यह—गंधगुणके समानाधिकरण तथा द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला द्रव्य पृथिवी कह्या जावै है । तहां गंधगुण समवायसंबंध करिकै पृथिवीविषे हीं रहे है । जलादिकोंविषे रहै नहीं और पृथिवीत्व जाति भी समवायसंबंध करिकै ता पृथिवीविषे हीं रहे है, जलादिकोंविषे रहै नहीं । यातैं सा पृथिवीत्व जाति गंधसमानाधिकरण कही जावै है तथा सा पृथिवीत्वजाति द्रव्यत्वजातिका साक्षात् व्याप्य भी है । ऐसी पृथिवीत्वजाति सर्व पृथिवीविषे रहे है । यातैं ता सुरभि असुरभि कपालजन्य घटरूप पृथिवीविषे तथा ता उत्पन्नविनष्ट घटादिरूप पृथिवीविषे तथा ता उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटादिरूप पृथिवीविषे इस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । तहां 'द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमती पृथिवी' इतनामात्र हीं जो ता पृथिवीका लक्षण कथन करते ता लक्षणविषे 'गंधसमानाधिकरण' यह पद नहीं कथन करते तौं जलादिक द्रव्योंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जा जाति द्रव्यत्वजातिके अधिकरणरूप देशतैं न्यूनदेशविषे रहे है सा जाति हीं ता द्रव्यत्वजातिकी व्याप्यजाति कही जावै है । जैसे द्रव्यत्वजातिके रहणेका देशरूप जे पृथिवीआदिक नव द्रव्य हैं ता नवद्रव्यरूप देशतैं न्यूनदेशरूप जा पृथिवी है ता पृथिवीमात्रविषे रहणेहारी पृथिवीत्व जाति ता द्रव्यत्वजातिकी साक्षाद्व्याप्य जाति कही जावै है । तैसे जलत्व तेजस्त्व वायुत्व इत्यादिक जातियां भी ता द्रव्यत्वजातिकी साक्षात्व्याप्य जातियां हैं । तिन जलत्वादिक जातियोंवाले जलादिक द्रव्योंविषे तिस लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'गंधसमानाधिकरण' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां जिन जलादिक द्रव्योंविषे ते जलत्वादिक जातियां रहे हैं तिन जलादिक द्रव्योंविषे सो गंधगुण रहता नहीं और जिस पृथिवीविषे सो गंधगुण रहे है तिस पृथिवीविषे ते जलत्वादिक जातियां रहैं नहीं । यातैं ते जलत्वादिक जातियां ता गंधगुणके समानाधिकरण नहीं हैं, किंतु सा पृथिवीत्वजाति हीं ता गंधगुणके समानाधिकरण है । यातैं तिन जलत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन जलादिक द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'गंधसमानाधिकरणजातिमती पृथिवी' इतनामात्र हीं जो ता पृथिवीका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं द्रव्यत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके ता लक्षणकी पुनः तिन जलादिकोंविषे अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जिस पृथिवीविषे सो गंधगुण रहे है तिसी पृथिवीविषे सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति भी रहे है । यातैं सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति भी ता पृथिवीत्व जातिकी न्यांई गंध-

समानाधिकरण हीं हैं, ऐसी गंधसमानाधिकरण द्रव्यत्वजातिवाले तथा सत्ताजातिवाले ते जलादिक द्रव्य भी हैं । यातैं तिन जलादिक द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्य' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या हे । तहां सा द्रव्यत्वजाति ता द्रव्यत्व जातिका व्याप्य है नहीं । तथा सा सत्ताजाति भी ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य है नहीं, उलटा सा सत्ताजाति गुणकर्मरूप अधिक देशविषे वृत्तिहोणेतैं ता द्रव्यत्वजातिकी व्यापकजाति है । यातैं ता विशेषणके कहणेतैं ता द्रव्यत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके ता लक्षणकी तिन जलादिक द्रव्योंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'गन्धसमानाधिकरण द्रव्यत्व व्याप्य जातिमती पृथिवी' इतनामात्र हीं जो ता पृथिवीका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद नहीं कथन करते तौं गंधसमानाधिकरण तथा द्रव्यत्वका व्याप्य ऐसी जा घटत्वजाति है ता घटत्वजातिकूं लैके केवल घटरूप पृथिवीविषे तौं सो लक्षण घटता, परंतु पटादिक पृथिवीविषे सा घटत्वजाति है नहीं । यातैं ता पटादिक रूप पृथिवीविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होती । ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते घटत्वादिक जातियां ता द्रव्यत्व जातिके साक्षात् व्याप्य नहीं हैं, किंतु पृथिवीत्वजातिके हीं साक्षात् व्याप्य हैं । पृथिवीत्व जलत्वादिक द्रव्य विभाजक जातियां हीं ता द्रव्यत्वजातिके साक्षात् व्याप्यजातियां है । यातैं 'साक्षात्' इस पदके कहणे करिकै तिन घटत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन पटादिकोंविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥ इतनैं पर्यंत 'गन्धवती पृथिवी' इस प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण कऱ्या ॥

द्वितीय लक्षण—अब **पृथिवीत्वजातिमती पृथिवी** । इस द्वितीय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै पृथिवीत्वजातिवाला होवै है सो द्रव्य पृथिवी कह्या जावै है । तहां समवायसंबंध करिकै सा पृथिवीत्वजाति केवल पृथिवीविषे हीं रहे है जलादिक द्रव्योंविषे रहै नहीं यातैं यह पृथिवीत्व जातिमत्त्वरूप पृथिवीका लक्षण संभवै है ॥ पृथिवीत्वजातिकी सिद्धि—यह पृथिवीत्व जातिमत्त्व रूप पृथिवीका लक्षण तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता पृथिवीत्व जातिकी सिद्धि होवै । ता पृथिवीत्वजातिकी सिद्धितैं विना सो लक्षण संभवता नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्त हूए; अब प्रत्यक्ष प्रमाण करिकै ता पृथिवीत्वजातिकी सिद्धि करे हैं—तहां नील पीतादिक रूपकरिकै परस्परविलक्षण पृथिवीविषे 'इयं पृथिवी इयं पृथिवी' या प्रकारकी एकाकारप्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है सा एकाकार प्रतीति तिन परस्परविलक्षण पार्थिव व्यक्तियों करिकै संभवती नहीं, किंतु तिन सर्वव्यक्तियोंविषे अनुगत एक पृथिवीत्वजाति करिकै हीं सा

एकाकार प्रतीति होवै है। यातैं 'इयं पृथिवी इयं पृथिवी' इस प्रकारका प्रत्यक्ष प्रमाण ही ता पृथिवीत्व जातिका साधक है इति ॥ अनुमान—अतिइन्द्रिय परमाणुद्व्यणुक रूप पृथिवी विषे तथा घ्राण इंद्रिय रूप पृथिवीविषे 'इयं पृथिवी' या प्रकारकी प्रत्यक्षप्रतीति किसीकूं भी होती नहीं । यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै ता अतिइंद्रिय पृथिवीविषे सा पृथिवीत्वजाति सिद्ध नहीं होवैंगी किंवा शास्त्रसंस्कारोंतैं रहित पुरुषोंकूं प्रसिद्ध भूमिविषे हीं 'इयं पृथिवी' या प्रकारकी प्रतीति होवै है । घृत जतु मणि मोती हीरा इत्यादिक पार्थिव वस्तुवोंविषे 'इयं पृथिवी' या प्रकारकी प्रतीति होती नहीं । यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सर्व पृथिवीविषे ता पृथिवीत्वजातिकी सिद्धि होई सकै नहीं ऐसी शंकाके प्राप्त हूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै सर्वपृथिवीविषे ता पृथिवीत्वजातिकी सिद्धि करे हैं । ता अनुमानका यह आकार है—पृथिवीवृत्तिर्या गन्धसमवायिकारणता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् तन्तुवृत्तिकारणतावत् ॥ अर्थ यह—पृथिवीविषे रही हूई जा गंधगुणकी समवायिकारणता है सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणे योग्य है, कारणता होणेतैं । जा जा कारणता होवै है सा सा किसी धर्मकरिकै अवच्छिन्न हीं होवै है । निरवच्छिन्न कोई कारणता होती नहीं । जैसे तंतुवोंविषे रही हूई पटकी समवायिकारणता तंतुत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न होवै है तैसे सा पृथिवी वृत्ति गंधकी समवायिकारणता भी किसी धर्म करिकै अवश्य अवच्छिन्न होवैंगा सो ऐसा धर्म पृथिवीत्वजाति हीं है । काहेतैं ? ता पृथिवीमात्रवृत्ति गंधगुणकी समवायिकारणतातैं जो धर्म अधिकदेशविषे तथा न्यूनदेशविषे नहीं रहे है किंतु ता कारणताके समान देशविषे हीं रहे है सो धर्महीं ता कारणताका अवच्छेदक होवैंगा। सो ऐसा धर्म पृथिवीत्वजाति हीं है। यातैं ता उक्त अनुमान विषे ता गन्धगुणकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता पृथिवीत्वजातिकी हीं सिद्धि होवै है । यद्यपि ता पृथिवीविषे द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति भी रहे है तथापि सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गन्धकी समवायिकारणताके पृथिवीरूप देशतैं अधिक जलादिरूप देशविषे भी रहे है । यातैं सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति भी ता कारणताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं और जलत्व तेजस्त्व वायुत्व इत्यादिक जातियां तौ तिस कारणताके पृथिवीरूप अधिकरणविषे हीं रहतीयां नहीं । यातैं ते जलत्वादिक जातियां भी ता कारणताके अवच्छेदक होइ सकै नहीं । यद्यपि घटत्वपटत्वादिकजातियां ता घटपटादिरूप पृथिवीविषे हीं रहे हैं, जलादिकोंविषे रहैं नहीं तथापि ते घटत्व पटत्वादिक जातियां सर्व पृथिवीमात्रविषे रहैं नहीं, किंतु यत्किंचित् घटादिरूप पृथिवीविषे हीं रहे हैं । और ता गंधगुणकी समवायिकारणता तौ सर्वपृथिवीविषे रहे है । यातैं ता कारणताके देशतैं न्यूनदेशविषे वृत्ति होणेतैं ते घटत्व पटत्वादिक जातियां भी ता कारणताके अवच्छेदक होइ सकै नहीं । पारि-

शेषतैं सर्वपृथिवीविषे रहणेहारी सा पृथिवीत्वजाति हीं ता कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै सिद्ध होवै है । यातैं ता उक्त अनुमान प्रमाण करिकै परमाणु द्व्यणुकादिरूप अतिइंद्रिय पृथिवीविषे तथा प्रसिद्ध पृथिवीविषे ता पृथिवीत्वजातिकी सिद्धि संभवै है । ऐसी पृथिवीत्व जातिवाला द्रव्य पृथिवी कह्या जावै है इति ॥ २ ॥

अव्याप्ति अतिव्याप्ति निवारण—**शंका**—'गंधवती पृथिवी' यह जो पृथिवीका लक्षण पूर्व कथन कन्या था ता लक्षणकी जलविषे तथा वायु विषे अतिव्याप्ति होवै है तथा पाषाण मणि मुक्ता हीरक इत्यादिक पृथिवीविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै है । काहेतैं ? यह जल सुगंधवाला है, यह जल दुर्गंधवाला है तथा यह वायु सुगंधवाला है, यह वायु दुर्गंधवाला है इस प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । ता प्रत्यक्ष प्रतीतिके बलतैं ता जलविषे तथा वायुविषे सो गंधगुण अवश्य अंगीकार कन्या चाहिये । जो कदाचित् ता जलवायूविषे सो गंध गुण नहीं होवै तौं सर्वलोकोंकूं तहां गंधकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये । यातैं ता जलविषे तथा ता वायुविषे ता गन्धवत्त्वरूप पृथिवीके लक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है, किंवा पाषाण मणि मुक्ता हीरक इत्यादिक पृथिवीविषे जो कदाचित् सो गंधगुण रहता होवै तौं सर्व लोकोंकूं तहां गंध प्रतीत होणा चाहिये और तिन पाषाणादिकों-विषे किसीकूं भी सो गंध प्रतीत होता नहीं । यातैं तिन पाषाणादिकोंविषे सो गंधगुण है नहीं और ते पाषाणादिक भी पृथिवीरूप तौं है यातैं तिस पाषाणादिरूप पृथिवीविषे ता गंधवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । **समाधान**—ना जलविषे तथा वायुविषे जो समवायसंबंध करिकै सो गंधगुण रहता होवै तौं सर्व जलविषे तथा सर्व वायुविषे सो गंधगुण लोकोंकूं प्रतीत होणा चाहिये और सर्वजलविषे तथा सर्ववायुविषे लोकोंकूं सो गंधगुण प्रतीत होता नहीं, किंतु किसी जलविशेषविषे तथा किसी वायुविशेषविषे हीं लोकोंकूं सो गंधगुण प्रतीत होवै है । यातैं यह जान्या जावै है—जिस जलके साथि तथा जिस वायुके साथि कस्तूरी कुसुमादिक गंधवान् पृथिवीका संयोग संबंध होवै है तिस जलविषे तथा तिस वायुविषे हीं लोकोंकूं गंधकी प्रतीति होवै है । और जिस जलके साथि तथा जिस वायुके साथि ता कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवीका संयोगसंबंध नहीं होवै है । तिस जलविषे तथा तिस वायुविषे लोकोंकूं सा गंधकी प्रतीति होती नहीं । इस प्रकारके अन्वयव्यतिरेक करिकै सो कस्तूरी कुसुमादिक पृथिवीका गंध हीं स्वाश्रयसंयुक्तत्व संबंध करिकै ता जलविषे तथा वायुविषे प्रतीत होवै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता गंधगुणका ग्रहण करणा । तिस गंधगुणका आश्रयरूप जा कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवी है ता पृथिवीके संयोग संबंधवाला सो जल तथा वायु है । इस प्रकारके परंपरासंबंध करिकै सो कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवीका गंध हीं ता जलविषे तथा वायुविषे प्रतीत होवै है । स्वभावतैं ता जलवायुविषे सो गंधगुण है नहीं ॥ **शंका**—जिस जलवायुविषे लोकोंकूं गंधकी

प्रतीति होवै है तिस जलवायुविषे जो कदाचित् कस्तूरीकुसुमादिक गंधवान् पृथिवीका संयोग-सम्बन्ध होवै तौं सर्वलोकोंकूं ता जलवायुविषे ता कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवीका चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होणा चाहिये और सो प्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं सो गंध ता जलवायुका हीं है। **समाधान**—तिस जलविषे ता कस्तूरी कुसुमादिक पृथिवीके अत्यंत सूक्ष्म अंश मिल्ये होवै हैं। या कारणतैं लोकोंकूं तिन गन्धवाले सूक्ष्म अंशोंका चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं। इस प्रकार सो वायु भी दूर देशविषे स्थित कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवीके सूक्ष्म अंशोंकूं उठाइ ले आवै है। ते पृथिवीके अंश अत्यंत सूक्ष्म हैं। यातैं लोकोंकूं तिनोंका चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं, केवल घ्राण इंद्रिय करिकै तिनोंके गन्धका हीं प्रत्यक्ष होवै है॥ **शंका**—जो कदाचित् कस्तूरी कुसुमादिक पृथिवीके सूक्ष्म अंशोंकूं सो वायु उठाइ ले आवता होवै तौं अनेक सूक्ष्मअंशोंके निकसणे करिकै तिन पुष्पोंविषे तौं अनेक च्छिद्र होणे चाहियें और तिन कस्तूरी आदिकोंविषे न्यूनता होणी चाहिये सो होता नहीं। यातैं ता वायुविषे हीं सो गन्ध अंगीकार कर्‍या चाहिये। **समाधान**—तिन कस्तूरी कुसुमादिक विषयोंके भोक्ता जे जीव हैं तिन जीवोंके अदृष्टविशेषके वशतैं तिन कस्तूरी कुसुमादिकोंविषे अन्य अन्य अंशोंकी उत्पत्ति होती जावै है अर्थात् जितनैं सूक्ष्म अंशोंकूं सो वायु उठाय ले जावै है तितनैं हीं सूक्ष्म अंशोंकी तिन भोक्ता जीवोंके अदृष्टके वशतैं पुनः उत्पत्ति होवै है। यातैं तिन कुसुमोंविषे तौं सच्छिद्रता होवै नहीं तथा तिन कस्तूरी आदिकोंविषे न्यूनता होवै नहीं॥ **शंका**—जो कदाचित् भोक्ता जीवोंके अदृष्टविशेषतैं पुनः दूसरे अंशोंकी उत्पत्ति होती होवै तौं कर्पूरविषे भी न्यूनता नहीं होणी चाहिये और ता कर्पूरविषे न्यूनता तौं प्रत्यक्ष देखणे विषे आवै है। **समाधान**—जैसे तिन कस्तूरीकुसुमादिकोंविषे भोक्ता जीवोंके अदृष्टविशेष विद्यमान हैं तैसे तिन कर्पूरादिकोंविषे भोक्ता जीवोंके ते अदृष्ट विशेष हैं नहीं। यातैं तिन कर्पूरादिकोंविषे अन्य अंशोंकी उत्पत्ति होती नहीं, किंतु क्षण क्षणविषे न्यूनता हीं होती जावै है। इस रीतिसैं सो पृथिवीका गंध हीं ता जलवायुविषे प्रतीत होवै है। स्वभावतैं ता जलवायुविषे सो गंधगुण नहीं है। यातैं ता गंधवत्त्वरूप पृथिवीके लक्षणकी ता जलवायुविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥ पाषाणादिकविषे गन्धवत्त्व—अब पाषाण मणि मुक्ता हीरकादिक पृथिवीविषे ता गंधवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्तिकूं निवृत्त करे हैं। तहां जो वादी तिन पाषाणादिकोंविषे ता गंधवत्त्वरूप पृथिवीके लक्षणकी अव्याप्तिकूं कथन करे है ता वादीसैं यह पूछा चाहिये—तिन पाषाणादिकोंविषे पृथिवीपणेकूं न अंगीकार करिकै तिन पाषाणादिकोंविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति कहता हैं अथवा तिन पाषाणादिकोंविषे पृथिवीपणेकूं अंगीकार करिकै ता लक्षणकी तहां अव्याप्ति कहता हैं? तहां जो वादी प्रथमपक्ष अंगीकार करै सो संभवता नहीं। काहेतैं? ते पाषाणादिक जबी पृथिवीरूप हीं नहीं भये तबी तिन

पाषाणादिकोंविषे ता गंधवत्त्वरूप पृथिवीके लक्षणकी अव्याप्ति कहणी अत्यंत असंगत है। काहेतैं ? जो लक्षण आपणे लक्ष्यके एकदेश विषे रहिकै एकदेशविषे नहीं रहे है सो लक्षण हीं अव्याप्तिदोषवाला होवै है; जैसे कपिलत्वरूप गौका लक्षण किसी एक गौविषे हीं रहे है, सर्व गौवोंविषे रहता नहीं। यातैं सो कपिलत्व लक्षण अव्याप्तिदोषवाला कह्या जावै है। तैसे यह गंधवत्त्वरूप पृथिवीका लक्षण पृथिवीपणेतैं रहित पाषाणादिक अलक्ष्यवस्तुवोंविषे न वर्त्तणे करिकै अव्याप्ति दोषवाला होवै नहीं। जो कदाचित् अलक्ष्यविषे न वर्त्तणे करिकै भी लक्षण अव्याप्ति दोषवाला होता होवै तौं सर्व सत्लक्षण ता अव्याप्ति दोषवाले हीं होवैंगे। जिस कारणतैं कोई सत्लक्षण अलक्ष्यविषे रहता नहीं। और जो वादी द्वितीयपक्ष अंगीकार करै, सो भी संभवता नहीं। काहेतैं ? तिन पाषाणादिकोंविषे पृथिवीपणेके अंगीकार कीये हूए ता पृथिवीत्व रूप हेतु करिकै तिन पाषाणादिकोंविषे ता गंधगुणकी भी अवश्य अनुमिति होवैंगी। ता अनुमानका यह आकार है—**पाषाणादयः गन्धवन्तः पृथिवीत्वात् प्रसिद्धपृथिवीवत्।** अर्थ यह—पाषाण मणि मुक्ता हीरकादिक गंधगुणवाले हैं, पृथिवीत्व धर्मवाले होणेतैं। जो जो द्रव्य पृथिवीत्व धर्मवाला होवै है सो सो द्रव्य गंधगुणवाला हीं होवै। जैसे प्रसिद्धकस्तूरी कुसुमादिक द्रव्य पृथिवीत्व धर्मवाले होणेतैं ता गंधगुणवाले भी हैं। तैसे ते पाषाणादिक भी ता पृथिवीत्वधर्मवाले होणेतैं ता गंधगुणवाले अवश्य होवैंगे। इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै तिन पाषाणादिकोंविषे ता गंधगुणकी सिद्धि होइ सके है। **शंका**—जो कदाचित् तिन पाषाणादिकोंविषे गंध होवै तौं जैसे कस्तूरीकुसुमादिकोंका गंध लोकोंकूं घ्राण इंद्रिय करिकै प्रतीत होवै है। तैसे तिन पाषाणादिकोंका गंध भी लोकोंकूं घ्राण इंद्रिय करिकै प्रतीत होणा चाहिये और प्रतीत होता नहीं। यातैं तिन पाषाणादिकोंविषे सो गंधगुण है नहीं। **समाधान**—तिन पाषाणादिकोंविषे स्थित जो गंध है सो गंध कस्तूरी कुसुमादिकोंके गंधकी न्यांई उद्भूत नहीं है, किंतु सो गंध अनुद्भूत है और उद्भूतगंधका हीं घ्राण इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है। अनुद्भूतगंधका घ्राण इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं तिन पाषाणादिकोंके गंधका लोकोंकूं घ्राण इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं। किंतु पृथिवीत्वरूप हेतुकरिकै ता गंधका अनुमितिज्ञान हीं होवै है। **शंका**—जिस पृथिवीत्वरूप हेतु करिकै तिन पाषाणादिकोंविषे गंधगुणकी सिद्धि करो हो तिन पाषाणादिकोंके पृथिवीपणे विषे हीं कोई प्रमाण है नहीं तौं तिस पृथिवीत्वरूप हेतु करिकै तिन पाषाणादिकोंविषे ता गंधगुणकी सिद्धि तौं अत्यंत दूर है ऐसी शंकाके प्राप्तहूए, अब तिन पाषाणादिकोंविषे युक्ति करिकै पृथिवीपणा सिद्ध करे हैं, तहां अत्यंत अग्निके संयोग करिकै ते पाषाणादिक जबी भस्म भावकूं प्राप्त होवै हैं तबी तिन पाषाणादिकोंके भस्मविषे सर्व लोकोंकूं घ्राण इंद्रिय करिकै गन्धका प्रत्यक्ष होवै है और जिस पदार्थविषे सो गंधगुण प्रतीत होवै है सो पदार्थ पृथिवी

हीं होवै है। इस अर्थ विषे किसी भी वादींका विवाद नहीं है। यातैं सो पाषाणादिकोंका भस्म गंधगुणवाला होणेतैं पृथिवीरूप हीं अंगीकारकरणा होवैंगा, इस प्रकार तिन पाषाणादिकोंके भस्मविषे पृथिवीरूपताके सिद्ध हूए तिस भस्मके आरंभक अवयवोंविषे भी पृथिवी रूपता हीं अंगीकार करणी होवैंगी। काहेतैं? अवयवोंका गंधगुण हीं अवयवीके गंधगुणका असमवायिकारण होवै है। जो कदाचित् ता भस्मके आरंभक अवयवोंविषे सो गंधगुण नहीं अंगीकार करियै तौं ता भस्मरूप अवयवीविषे भी ता गंधगुणकी उत्पत्ति नहीं होवैंगी और ता भस्मविषे तौं सो गंधगुण प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है। यातैं ता भस्मके आरंभक अवयवोंविषे भी सो गंधगुण अवश्य मानणा होवैंगा और तिस गंधगुणरूप हेतुतैं तिन अवयवोंविषे ता भस्मकी न्याईं पृथिवीपणा भी अवश्य मानणा होवैंगा इस प्रकारतैं ता भस्मके आरंभक अवयवोंविषे पृथिवीपणेके सिद्ध हूए तिन पाषाणादिकोंके आरंभक अवयवोंविषे भी सो पृथिवीपणा हीं अंगीकार करणा होवैंगा। काहेतैं? यह शास्त्रकारोंका नियम है॥ **यद्द्रव्यं यद्द्रव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयम्।** अर्थ यह—जो द्रव्य जिस द्रव्यके ध्वंस करिकै जन्य होवै है सो द्रव्य तिस द्रव्यके उपादान कारणका हीं उपादेय होवै है। जैसे एकशत हस्तपरिमित महापटके ध्वंस करिकै जन्य जो दशहस्तपरिमित खण्डपट है सो खण्डपट तिस महापटके उपादानकारणरूप तंतुवोंका हीं उपादेय होवै है अर्थात् जे तन्तु ता महापटके उपादानकारण हैं ते हीं तन्तु ता खण्डपटके भी उपादान कारण हैं। तैसे ईहां प्रसंगविषे सो भस्मरूप द्रव्य भी तिन पाषाणादिक द्रव्योंके ध्वंस करिकै जन्य है। यातैं सो भस्मरूप द्रव्य भी तिन पाषाणादिक द्रव्योंके उपादान कारणका हीं उपादेय होवैंगा अर्थात् जे अवयव तिन पाषाणादिक द्रव्योंके उपादानकारण हैं ते हीं अवयव तिस भस्मरूप द्रव्यके उपादान कारण होवैंगे। यातैं तिन अवयवों करिकै जन्य भस्मविषे जैसे पृथिवीपणा अंगीकार है तैसे तिन अवयवों करिकै जन्य तिन पाषाणादिकोंविषे भी सो पृथिवीपणा अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये। इस प्रकारकी युक्ति करिकै तिन पाषाणादिकोंविषे पृथिवीपणा हीं सिद्ध होवै है। ता पृथिवीपणेके सिद्धहूए तिन पाषाणादिकोंविषे ता पृथिवीत्वरूप हेतु करिकै ता गंधगुणका अनुमान संभवै है। यातैं ता गंधवत्त्वरूप पृथिवीके लक्षणकी तिस पाषाण मणि मुक्ता हीरकादिक पृथिवीविषे अव्याप्ति होवै नहीं इति।

पृथिवीके गुण—इस प्रकारके उक्त दो लक्षणोंकरिकै लक्षित जा पृथिवी है ता पृथिवीविषे रूप १, रस २, गंध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमाण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, विभाग ९, परत्व १०, अपरत्व ११, गुरुत्व १२, द्रवत्व १३, वेगस्थितिस्थापकनामा संस्कार १४ यह चतुर्दश गुण रहे हैं। नित्यानित्यविभाग—ऐसी चतुर्दश गुणोंवाली सा पृथिवी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां परमाणुरूप

पृथिवी तौं नित्य कही जावै और द्व्यणुकादिक कार्यरूप सर्व पृथिवी अनित्य कही जावै है । सो कार्यरूप अनित्य पृथिवी हीं अवयवी कही जावै है । दोनोंका लक्षण—अब प्रसंगतैं नित्य वस्तुका तथा अनित्य वस्तुका लक्षण निरूपण करे हैं । तहां **प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगी नित्यः ।** अर्थ यह—जो पदार्थ प्रागभावका अप्रतियोगी हूआ ध्वंसका अप्रतियोगी होवै है सो पदार्थ नित्य कह्या जावै है । तहां परमाणु आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन, सामान्य, विशेष, समवाय, अन्योन्याभाव, अत्यंताभाव तथा नित्यगुण इत्यादिक जितनैंकी नित्य पदार्थ अंगीकार कन्ये हैं तिन परमाणुआदिक नित्य पदार्थोंकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं तिन नित्य पदार्थोंविषे प्रागभावका प्रतियोगीपणा होता नहीं उत्पत्तिवाले घटादिक पदार्थोंविषे हीं सो प्रागभावका प्रतियोगीपणा होवै है । और तिन परमाणु आदिक नित्यपदार्थोंका विनाश भी होता नहीं । यातैं तिन नित्यपदार्थोंविषे प्रध्वंसाभावका भी प्रतियोगीपणा होता नहीं । विनाशवान् घटादिक पदार्थोंविषे हीं सो प्रध्वंसाभावका प्रतियोगीपणा होवै है । यातैं यह उक्तनित्यवस्तुका लक्षण संभवै है । तहां 'प्रागभावाप्रतियोगी नित्यः ।' इतनामात्र हीं जो ता नित्यका लक्षण करते । ता लक्षणविषे 'ध्वंसाप्रतियोगी' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रागभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? न्यायसिद्धांतविषे ता प्रागभावकूं उत्पत्तितैं रहित अनादि मान्या है । यातैं सो प्रागभाव ता प्रागभावका प्रतियोगी नहीं है और सिद्धांतविषे ता प्रागभावकूं नित्य मान्या नहीं । यातैं ता अनित्य प्रागभावविषे ता नित्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'ध्वंसाप्रतियोगी' यह पद कथन कन्या है । तहां ता प्रागभावविषे ध्वंसका अप्रतियोगीपणा नहीं है, किंतु घटादिक प्रतियोगीकी उत्पत्तितैं अनंतर ते घटादिक कार्योंके प्रागभाव नष्ट होइ जावै हैं । यातैं सो प्रागभाव ता ध्वंसका प्रतियोगी हीं है । यातैं ता लक्षणविषे 'ध्वंसाप्रतियोगी' इस पदके कहणेतैं तिस प्रागभावविषे ता नित्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'ध्वंसाप्रतियोगी नित्यः' इतनामात्र हीं जो ता नित्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? नैयायिकोंनै ध्वंसका ध्वंस अंगीकार कन्या नहीं । किंतु ता ध्वंसकूं अनंत मान्या है । यातैं ध्वंसका अप्रतियोगीपणा ता ध्वंसविषे भी है । और सिद्धांतविषे सो ध्वंस नित्य नहीं है । यातैं ता अनित्य ध्वंसविषे नित्यके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति' यह विशेषण कथन कन्या है । तहां ता ध्वंसविषे प्रागभावका अप्रतियोगीपणा नहीं है । किंतु घटादिक कार्योंकी न्यांई उत्पत्तिवाला होणेतैं सो ध्वंस प्रागभावका प्रतियोगी हीं होवै है, यातैं ता विशेषणके कहणेतैं ता प्रध्वंसाभावविषे ता नित्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । तहां—**प्रागभावप्रतियोगि-**

**त्वध्वंसप्रतियोगित्वान्यतरवत्त्वान् अनित्यः ।** अर्थ यह—प्रागभावका जो प्रतियोगीपणा है तथा प्रध्वंसाभावका जो प्रतियोगीपणा है तिन दोनोंविषे एकवाला जो पदार्थ है सो पदार्थ अनित्य कह्या जावै है अर्थात् जो पदार्थ एक प्रागभावका प्रतियोगी है अथवा एक ध्वंसका प्रतियोगी है अथवा प्रागभाव ध्वंस दोनोंका प्रतियोगी है सो पदार्थ अनित्य कह्या जावै है । ईहां केवल प्रागभावका प्रतियोगित्व हीं जो अनित्यका लक्षण करते तौं प्रागभावविषे सो प्रागभावका प्रतियोगित्व है नहीं, यातैं ता प्रागभावविषे सो अनित्यत्व नहीं होता और प्रागभावविषे भी सो अनित्यत्व अंगीकार है । यातैं ता लक्षणविषे ध्वंसके प्रतियोगित्वकूं भी अनित्यत्व कह्या है सो ध्वंसका प्रतियोगित्व तिस प्रागभावविषे भी है । यातैं सो प्रागभाव भी अनित्य हीं है, किंवा केवल ध्वंसका प्रतियोगित्व हीं जो अनित्यका लक्षण करते तौं ध्वंसविषे सो ध्वंसका प्रतियोगित्व है नहीं । यातैं ता ध्वंसविषे सो अनित्यत्व नहीं होता और सिद्धान्तविषे ता ध्वंसविषे भी सो अनित्यत्व हीं अंगीकार है । यातैं ता लक्षणविषे प्रागभावके प्रतियोगित्वकूं भी अनित्यत्व कह्या है सो प्रागभावका प्रतियोगित्व ता ध्वंसविषे भी है, यातैं सो ध्वंस भी अनित्यत्व हीं है यातैं यह सिद्ध भया । प्रागभावविषे तौं केवल ध्वंसका प्रतियोगित्वरूप अनित्य है और प्रध्वंसाभावविषे तौं केवल प्रागभावका प्रतियोगित्वरूप अनित्यत्व है और घटादिकपदार्थोंविषे प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका दोनोंका प्रतियोगित्वरूप अनित्यत्व है इति । इस प्रकार सा परमाणुरूप पृथिवी तौं नित्य है और द्व्यणुकादिक कार्यरूप सर्व पृथिवी अनित्य है इति ॥ अनित्या पृथिवीके विभाग—सा अनित्य पृथिवी भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारकी होवै है ।

### शरीरका विषय ।

तहां जो पदार्थ प्रथम सामान्यरूपतैं जान्या जावै है तिसी पदार्थकी पश्चात् विशेषरूपतैं जानणेकी इच्छा होवै है, यातैं आगे वक्ष्यमाण पार्थिव जलीय तैजस वायवीय रूप शरीर इंद्रिय विषयोंके निरूपण करणेवासतै प्रथम तिन सर्व शरीरोंका तथा तिन सर्व इंद्रियोंका तथा तिन सर्व विषयोंका कोई सामान्य लक्षण अवश्य निरूपण कऱ्या चाहिये । तहां प्रथम पार्थिव जलीय तैजस वायवीय इन च्यारि प्रकारके शरीरोंका सामान्य लक्षण निरूपण करे हैं ॥ **अंत्यावयवित्वे सति चेष्टाश्रयः शरीरम् ।** अर्थ यह—जो द्रव्य अंत्य अवयवी हूआ चेष्टाका आश्रय होवै है सो द्रव्य शरीर कह्या जावै है । जैसे मनुष्य पशु पक्षी कृमि वृक्ष इत्यादिक शरीर अंत्य अवयवी भी हैं तथा चेष्टाका आश्रय भी हैं । यातैं तिन मनुष्यादिक देहोंविषे शरीरपणा युक्त है । चेष्टाका लक्षण—तहां **हिताहितप्राप्तिपरिहारार्था क्रिया चेष्टा ।** अर्थ यह—हितकी प्राप्ति वासतै तथा अहितकी निवृत्ति वासतै जा क्रियाविशेष है ता क्रिया-विशेषका नाम चेष्टा है । इस प्रकारकी चेष्टा तिन मनुष्यादिक शरीरोंविषे प्रसिद्ध हीं है ।

शरीरके लक्षणपर विचार—तहां—'चेष्टाश्रयः शरीरम्' इतनामात्र हीं जो ता शरीरका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अंत्यावयवित्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं हस्तपादादिक अवयवों-विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? ता शरीरकी न्यांई ते हस्तादिक अवयव भी ता चेष्टाका आश्रय हीं हैं परंतु ते हस्तादिक अवयव शरीर कहे जाते नहीं । ऐसे अशरीर-रूप हस्तादिक अवयवों विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै तिस चेष्टाके आश्रयका 'अंत्यावयवी' यह विशेषण कथन कन्या है । तहां तिन हस्तपादादिक अवयवों विषे सो अंत्यावयवी पणा है नहीं, यातैं तिन हस्तादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'अंत्यावयवी शरीरम्' इतनामात्र हीं जो ता शरीरका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'चेष्टाश्रयः' यह पद नहीं कथन करते तौं घटपटादिक पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? जैसे मनुष्यादिक शरीर अंत्यावयवी हैं तैसे ते घटपटादिक भी अन्त्यावयवी हीं हैं । तिन घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'चेष्टाश्रयः' यह पद कथन कन्या है । ते घटादिक पदार्थ ता चेष्टाका आश्रय नहीं है । यातैं तिन घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

अन्त्यावयवीका लक्षण—तहां अन्त्यावयवीके स्वरूप जान्येतें विना ता अन्त्यावयवीघटित शरीरका लक्षण जान्या जावै नहीं । यातैं ता अन्त्यावयवीका लक्षण निरूपण करे हैं ।

**अवयवजन्यत्वे सति अवयव्यजनकः अन्त्यावयवी ।** अर्थ यह—जो द्रव्य अवयवों करिकै जन्य हूआ दूसरे किसी अवयवीका जनक नहीं होवै है सो द्रव्य अन्त्यअवयवी कह्या जावै है । जैसे यह मनुष्यादिक शरीर हस्तपादादिक अवयवों करिकै जन्य भी हैं तथा आपणेविषे समवाय सम्बन्ध करिकै दूसरे अवयवीका अजनक भी हैं । यातैं ते मनुष्यादिक शरीर अन्त्यावयवी कह्ये जावै हैं । इसी प्रकार घटपटादिक द्रव्य भी कपाल तंतु आदिक अवयवों करिकै जन्य भी हैं तथा आपणेविषे समवायसम्बन्ध करिकै दूसरे अवयवीका अजनक भी हैं । यातैं ते घटपटादिक द्रव्य भी अन्त्यावयवी कहे जावै हैं । तहां 'अवयवी अजनकः अन्त्यावयवी' इतनामात्र हीं जो ता अन्त्यावयवीका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अवयवजन्यत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाशादिक द्रव्योंविषे तथा गुण कर्मादिक पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ते आकाशादिक आपणेविषे समवायसम्बन्ध करिकै किसी भी अवयवीके जनक नहीं हैं, परन्तु ते आकाशादिक अन्त्यावयवी हैं नहीं । यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'अवयवजन्यत्वे सति' यह विशेषण कथन कन्या है । तहां ते आकाशादिक द्रव्य तथा गुण कर्मादिक पदार्थ अवयवीके अजनक हूए भी अवयवों करिकै जन्य नहीं हैं । यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा

' अवयवजन्यः अन्त्यावयवी ' इतनामात्र हीं जो ता अन्त्यावयवीका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' अवयवी अजनकः ' यह पद नहीं कथन करते तौं हस्तादिक अवयवोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ते हस्तादिक अवयव भी आपणे आपणे अवयवों करिकै जन्य हीं हैं, परन्तु ते हस्तादिक अवयव अन्त्यावयवी कहे जाते नहीं। तिन हस्तादिक अवयवोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणवीषे ' अवयवी अजनकः ' यह पद कथन कऱ्या है तहां तिन हस्तादिक अवयवोंविषे अवयवीका अजनकपणा नहीं है, किंतु शरीरादिक अवयवीका जनकपणा हीं है। यातैं तिन हस्तादिक अवयवों विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'अवयवजन्यत्वे सति अजनकः अंत्यावयवी' इतनामात्र हीं जो ता अंत्यावयवीका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' अवयवी ' यह पद नहीं कथन करते तौं यह लक्षण असंभव दोषवाला हीं होता। काहेतैं? जितनैंकी शरीरघटादिक अंत्यावयवी हैं ते सर्व अंत्यावयवी स्वनिष्ठगुणक्रियादिकोंके जनक हीं हैं। कोई भी अंत्यावयवी अजनक नहीं है। जे उत्पन्नविनष्ट घटादिक हैं ते यद्यपि स्वनिष्ठगुणक्रियाके जनक होवैं नहीं। तथापि ते घटादिक भी स्वध्वंसादिकोंके जनक हीं होवै हैं। ता असम्भव दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'अवयवी' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते घटादिक अंत्यावयवी स्वनिष्ठगुणकर्मादिकोंके जनक हूए भी किसी अवयवीके जनक होवैं नहीं। यातैं ता अंत्यावयवीके लक्षणविषे लक्ष्यमात्र अवृत्तित्वरूप असम्भवदोष प्राप्त होवै नहीं इति।

अवयव अवयवीका स्वरूप—तहां अवयव अवयवी इन दोनों पदार्थों करिकै घटित जो पूर्व उक्त अंत्यावयवीका लक्षण है ता लक्षणका ज्ञान तबी होवै जबी प्रथम अवयव अवयवी इन दोनोंका ज्ञान होवै। तिन दोनोंके ज्ञानतैं विना ता अंत्यावयवीका ज्ञान सम्भवै नहीं। या कारणतैं ता अवयवका तथा अवयवीका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां **द्रव्यसमवायिकारणम् अवयवः।** अर्थ यह—द्रव्यका जो समवायिकारण होवै है सो अवयव कह्या जावै है। जैसे तंतु पटरूप द्रव्यके समवायिकारण हैं तथा कपाल घटरूप द्रव्यके समवायिकारण हैं तथा हस्तपादादिक शरीररूप द्रव्यके समवायिकारण हैं। यातैं ते तंतु तथा कपाल तथा हस्तपादादिक अवयव कहे जावैं हैं। तहां 'समवायिकारणं अवयवः' इतनामात्र हीं जो ता अवयवका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' द्रव्य ' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाशादिक द्रव्योंविषे ता अवयवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ते आकाशादिक द्रव्य भी शब्दादिक गुणोंके समवायिकारण हीं हैं परंतु तिन आकाशादिकोंविषे अवयवरूपता अंगीकार नहीं है तिन आकाशादिकोंविषे ता अवयवके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे ' द्रव्य ' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन आकाशादिकोंविषे किसी द्रव्यकी समवायिकारणता है नहीं। यातैं तिन आकाशादिक द्रव्योंविषे ता अवयवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै

नहीं । किंवा 'द्रव्यकारणं अवयवः ' इतनामात्र हीं जो ता अवयवका लक्षण करते ता लक्षण विषे ' समवायि ' यह पद नहीं कथन करते तौ तंतुआदिक अवयवोंका संयोगभी पटादिक द्रव्योंका असमवायिकारण होवै है तथा काल दिशा ईश्वर प्रागभाव इत्यादिक भी तिन पटादिक द्रव्योंके निमित्त कारण होवै हैं । तिन सर्वकारणोंविषे ता अवयवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'समवायि ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन अवयवसंयोगादिक कारणोंविषे ता द्रव्यकी समवायिकारणता है नहीं, यातैं तिन कारणोंविषे ता अवयवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । तहां **जन्यद्रव्यं अवयवी** । अर्थ यह–जन्य ऐसा जो द्रव्य है सो अवयवी कह्या जावै है । तहां पृथिवीके द्व्यणुकतैं आदिलैके जितनैंकी उत्पत्तिवाले पार्थिव द्रव्य हैं तथा जलके द्व्यणुकतैं आदिलैके जितनैंकी उत्पत्तिवाले जलीय द्रव्य हैं । तथा तेजके द्व्यणुकतैं आदि लैके जितनैं की उत्पत्तिवाले तैजस द्रव्य हैं । तथा वायुके द्व्यणुकतैं आदि लैकै जितनैंकी उत्पत्ति वाले वायवीय द्रव्य हैं ते सर्वजन्य द्रव्य अवयवी कहे जावै हैं । तहां 'द्रव्यं अवयवी, इतनामात्र हीं जो ता अवयवीका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' जन्य ' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंविषे ता अवयवीके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता द्रव्यका ' जन्य ' यह विशेषण कथन कऱ्या है । किंवा 'जन्यं अवयवी' इतनामात्र हीं जो ता अवयवीका लक्षण करते ता लक्षण विषे'द्रव्यम्' यह पद नहीं कथन करते तौं उत्पत्तिवाले गुणकर्मादिकोंविषे ता अवयवीके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै 'द्रव्यम्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन गुणकर्मादिकोंविषे सो द्रव्यपणा है नहीं । यातैं तिन गुणकर्मादिकोंविषे ता अवयवीके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । शरीरके योनिज अयोनिज भेद–इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो शरीर योनिज १, अयोनिज २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां–**शुक्रशोणितयोः परस्परमेलनजन्यं शरीरं योनिजम्** । अर्थ यह–पुरुषका वीर्यरूप जो शुक्र है तथा स्त्रीका वीर्यरूप जो शोणित है तिस शुक्रशोणित दोनोंके परस्परमेलन करिकै जन्य जो शरीर है सो शरीर योनिज कह्या जावै है इति । **योनिजाभिन्नं शरीरं अयोनिजम्** । अर्थ यह–तिस योनिज शरीरतैं भिन्न जो शरीर है सो अयोनिज कह्या जावै है इति । तहां सो योनिज शरीर भी जरायुज १, अंडज २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । जरायुज–तहां माताके उदरविषे बालककूं आवरण करणेहारा जो चर्मविशेष है ताका नाम जरायु है ता जरायुतैं जो शरीर उत्पन्न होवै है सो शरीर जरायुज कह्या जावै है । जैसे मनुष्य गौ अश्व महिष श्वान इत्यादिक शरीर जरायुज कहे जावे हैं । अंडज–और प्रथम स्त्रीके उदरतैं उत्पन्न भया जो अंड है तिस अंडतैं जो शरीर उत्पन्न होवै है सो शरीर अंडज कह्या जावै है । जैसे पक्षी सर्पादिक शरीर अंडज

कह्ये जावै हैं । और सो अयोनिज शरीर–भी स्वेदज १, उद्भिज्ज २, अदृष्टविशेषजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । स्वेदज–तहां जे शरीर जलादिरूप स्वेदतैं उत्पन्न होवैं हैं ते शरीर स्वेदज कह्ये जावै हैं । जैसे कृमि, दंश, यूक इत्यादिक शरीर स्वेदज कह्ये जावै हैं । तिन कृमि आदिक शरीरोंकी उत्पत्ति केवल अधर्मसहकृत परमाणुवोंतैं हीं होवै है । उद्भिज्ज–और जे शरीर पृथिवीकूं भेदन करिकै आपणे आपणे बीजतैं उत्पन्न होवै हैं ते शरीर उद्भिज्ज कह्ये जावै हैं । जैसे वृक्ष लता वनस्पति इत्यादिक शरीर उद्भिज्जशरीर कह्ये जावै हैं । अदृष्टविशेषजन्य–और जे शरीर केवल पुण्यपापरूप अदृष्टविशेष करिकै हीं जन्य होवै हैं ते शरीर अदृष्टविशेष जन्य कह्ये जावै हैं । जैसे स्वर्गविषे स्थित देवताशरीर तथा नरकविषे स्थित नारकी शरीर अदृष्टविशेषजन्य कह्ये जावै हैं । तहां पुण्यविशेष सहकृत परमाणुवोंतैं तौ तिन देवताशरीरोंकी उत्पत्ति होवै है । और पापविशेष सहकृत परमाणुवोंतैं तिन नारकी शरीरोंकी उत्पत्ति होवै है । देवशरीर–**शंका**–देवताशरीर अयोनिज हीं होवै हैं । इस अर्थविषे कौन प्रमाण है । **समाधान**–देवताशरीरोंके अयोनिजपणेविषे साक्षात् वेदकी श्रुति हीं प्रमाण है । तहां श्रुति–**ब्रह्मणो मानसा मन्वादयः पुत्राः** । अर्थ यह–मनु आदिक ब्रह्माके मानसपुत्र हैं अर्थात् अदृष्टविशेषके वशतैं ते मनुआदिक ब्रह्माके केवल संकल्पमात्रतैं हीं उत्पन्न होवै हैं । मनुष्यादिक शरीरोंकी न्याईं शुक्रशोणितके मेलनादिकोंतैं ते मनुआदिकोंके शरीर उत्पन्न होवै नहीं । यह श्रुति तिन देवतादिकोंके शरीरोंकूं अयोनिज हीं कहे है । **शंका–योनिं विना न शरीरम्** । अर्थ यह–शुक्रशोणितका मेलनरूप योनितैं विना शरीरकी उत्पत्ति नहीं होवै है । यह श्रुति सर्वशरीरोंकूं योनिज कहती हूई ता अयोनिज शरीरका निषेध हीं करे है । यातैं या श्रुतितैं विरुद्ध हूई सा पूर्वउक्त श्रुति ता अयोनिज शरीरकूं कैसे सिद्ध करैंगी ? **समाधान**–'योनिं विना न शरीरम्' इस श्रुति विषे स्थित जो योनिशब्द है सो योनिशब्द शुक्रशोणितके मेलनरूप योनिका वाचक नहीं है, किंतु सो योनिशब्द कारणका वाचक है अर्थात् कारणतैं विना किसी भी शरीरकी उत्पत्ति होती नहीं, यह अर्थ तिस श्रुतिका सिद्ध होवै है । और ते देवतादिकोंके शरीर भी अदृष्टादिक कारणों करिकै जन्य हीं हैं, यातैं तिन दोनों श्रुतियोंका परस्पर विरोध होवै नहीं । अथवा 'योनिं विना न शरीरम्' इस उक्त श्रुतिविषे स्थित योनिशब्द करिकै ता शुक्रशोणितके मेलनरूप योनिका हीं ग्रहण करणा । परंतु ता श्रुतिविषे स्थित शरीरशब्द करिकै ता शरीरमात्रका ग्रहण करणा नहीं, किंतु ता शरीर पद करिकै केवल मनुष्य पशु पक्षी आदिक जरायुज अंडज शरीरोंका हीं ग्रहण करणा । ता करिकै शुक्रशोणितके मेलनरूप योनितैं विना मनुष्यादिक शरीरोंकी उत्पत्ति नहीं होवै है यह तिस श्रुतिका अर्थ सिद्ध होवै है । यातैं भी तिन दोनों श्रुतियोंका विरोध होवै नहीं इति, वृक्षादिकोंको सप्राणत्वादिकी सिद्धि–**शंका**–जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, दंश इत्यादिक शरीरोंविषे लोकोंकूं शरीर-

रूपता प्रतीत होवै है तैसे वृक्ष लता वनस्पति आदिकोंविषे किसीकूं शरीररूपता प्रतीत होती नहीं । यातैं जैसे मनुष्य पशु आदिक देह जीवात्माका शरीररूप हैं तैसे ते वृक्षादिक किसी जीवात्माका शरीररूप नहीं हैं ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै तिन वृक्षादिकोंविषे शरीरपणा सिद्ध करे हैं । ता अनुमानका यह आकार है—**वृक्षः शरीरम् आध्यात्मिकवायुसम्बन्धवत्त्वात् मनुष्यादिदेहवत्** । अर्थ यह—यह वृक्षलतादिक शरीररूप होणे योग्य हैं, प्राणवायुके संबंधवाले होणेतैं । जो जो द्रव्य प्राणवायुके संबंधवाला होवै है सो सो द्रव्य शरीररूप हीं होवै है, जैसे यह मनुष्यादिक देह ता प्राणवायुके संबंधवाले होणेतैं शरीररूप हीं हैं तैसे ते वृक्षलतादिक भी ता प्राणवायुके संबंधवाले होणेतैं शरीररूप हीं होवैंगे इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै तिन वृक्षलतादिकोंविषे शरीरपणा हीं सिद्ध होवै है । **शंका**—जैसे मनुष्यादिक शरीरोंविषे सो प्राणवायुका संबंध प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है तैसे तिन वृक्षादिकोंविषे सो प्राणवायुका संबंध प्रत्यक्ष प्रतीत होता नहीं, यातैं तिस प्राणवायुके संबंधतैं तिन वृक्षादिकोंविषे सो शरीरपणा कैसे सिद्ध होवैंगा, किंतु नहीं सिद्ध होवैंगा। काहेतैं ? जो हेतु जिस पक्षविषे ज्ञात होवै है सो हेतु हीं तिस पक्षविषे आपणे साध्यकी सिद्धि करे है। जैसे पर्वतरूप पक्षविषे ज्ञात हूआ धूमरूपहेतु हीं ता पर्वतविषे अग्निरूप साध्यकी सिद्धि करे है, कोई भी अज्ञातहेतु आपणे साध्यकी सिद्धि करता नहीं ॥ प्राणका अनुमान—**समाधान**—तिन वृक्षलतादिकोंविषे यद्यपि सो प्राणवायुका संबंध प्रत्यक्ष प्रतीत होता नहीं तथापि वृद्धिआदिक हेतुवों करिकै ता प्राणवायुके संबंधका अनुमान होवै है । ता अनुमानका यह आकार है—**वृक्षः आध्यात्मिकवायुसंबन्धवान् वृद्धिमत्त्वात् भग्नक्षतावयवसंरोहणवत्त्वात् वा मनुष्यादिशरीरवत्** । अर्थ यह—यह वृक्ष प्राणवायुके संबंधवाला है, वृद्धिवाला होणेतैं अथवा भग्न क्षत अवयवोंके संरोहणवाला होणेतैं । जो जो द्रव्य वृद्धिवाला होवै है अथवा भग्नक्षत अवयवोंके संरोहणवाला होवै है सो सो द्रव्य ता प्राणवायुके संबंधवाला हीं होवै है। जैसे यह मनुष्यादिक शरीर हैं । तात्पर्य यह—जैसे मनुष्यादिक शरीरोंविषे जबी कोई हस्तपादादिक अवयव टूट जावैं है तबी सो अवयव किंचित् काल पीछै पुनः पूर्वकी न्यांई जुडि जावै है, याकूं भग्नअवयव संरोहण कहेतैं । और मनुष्यादिक शरीरविषे जबी खड्गादिक शस्त्रके लगणे करिकै मांसका विश्लेषरूप घाव पडि जावै है तबी सो घाव भी कोई काल पाइकै पुनः पूर्वकी न्यांई मिलि जावै है, याकूं क्षत अवयव संरोहण कहे हैं । इस प्रकारका भग्न अवयवोंका संरोहण तथा क्षत अवयवोंका संरोहण जैसे मनुष्यादिक शरीरों विषे होवै है तैसे तिन वृक्षादिकोंविषे भी होवै है और दिनदिनविषे अवयवोंका उपचयरूप वृद्धि तथा अपचयरूप क्षय जैसे मनुष्यादिक शरीरोंविषे होवै है तैसे सो वृद्धिक्षय तिन वृक्षादिकोंविषे भी होवै है । यातैं ते वृक्षादिक भी मनुष्यादिक शरीरोंकी न्यांई ता प्राणवायुके संबंध-

वाले हीं हैं ता प्राणवायुके संबंधवाले होणेतैं हीं ते वृक्षादिक तिन मनुष्यादिक शरीरोंकी न्यांई शरीररूप हीं है । इस प्रकारके उक्त अनुमान प्रमाण करिकै तिन वृक्षलतादिकोंविषे शरीरपणा हीं सिद्ध होवै है इति ॥ शास्त्रप्रमाण—किंवा केवल अनुमान प्रमाण करिकै हीं तिन वृक्षादिकोंविषे शरीरपणा सिद्ध नहीं है, किंतु शास्त्र प्रमाण करिकैं भी तिन वृक्षादिकोंविषे शरीरपणा हीं सिद्ध होवै है । तहां श्लोक—**नर्मदातीरसंजाताः सरलार्जुनपादपाः । नर्मदातोयसंस्पर्शात्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ १ ॥ गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रान्निर्जित्य वादतः । श्मशाने जायते वृक्षः कङ्कगृध्रोपसेवितः ॥ २ ॥** अर्थ यह—श्रीनर्मदानदीके तीर ऊपरि उत्पन्न हूए सरलार्जुन नामा वृक्ष ता नर्मदानदीके जलके स्पर्शतैं उत्पन्न हूए धर्म करिकै परमगतिकूं प्राप्त होवै हैं इति ॥ १ ॥ और आपणे गुरुके प्रति हुंकार करणे करिकै तथा तुंकार करणे करिकै तथा ब्राह्मणोंकूं विवादसैं जीतणे करिकै उत्पन्न हूए पापके वशतैं यह पुरुष श्मशानभूमिविषे वृक्षशरीरकूं प्राप्त होवै है । जो वृक्ष मांस अहारी कंकगृध्रादिक पक्षीयों करिकै सर्वदा सेवित होवै है इति ॥ २ ॥ तहां प्रथम श्लोकविषे तौं नर्मदाके जलस्पर्शतैं उत्पन्न भये धर्म विशेषके वशतैं ता वृक्षका वृक्षावच्छिन्न जीवात्माकूं उत्तमगतिकी प्राप्ति कथन करी, सा उत्तमगतिकी प्राप्ति ता वृक्षकूं तिस जीवात्माका शरीररूप मानणेविषे हीं संभवै है । काहेतैं ? शरीरावच्छिन्न जीवात्माकूं हीं ता शरीरसैं गंगाजलादिकोंके स्पर्शतैं उत्पन्नहूए धर्मविशेष करिकै शुभगतिकी प्राप्ति होवै है । घटावच्छिन्न आत्माकूं गंगाजलादिकोंके स्पर्शतैं धर्मविशेषकी उत्पत्ति तथा ता धर्मतैं शुभगतिकी प्राप्ति होती नहीं । यातैं तिस वृक्षविषे तिस जीवात्माकी शरीररूपता अवश्य मानी चाहिये । और द्वितीय श्लोकविषे गुरुब्राह्मणोंके तिरस्कारकरणेतैं उत्पन्नहूए पापके दुःखरूप फलके भोगणे वासतै ता जीवात्माकूं श्मशानभूमिविषे वृक्ष देहकी प्राप्ति कथन करी है, तहां ता वृक्षकूं जो शरीररूप नहीं मानिये तौं तिस वृक्षावच्छिन्न जीवात्माविषे ता पापकर्मके दुःखरूपफलका भोग नहीं संभवैंगा । काहेतैं ? शरीरावच्छिन्न आत्माविषे हीं सो सुखदुःखका साक्षात्काररूप भोग होवै है, घटावच्छिन्न आत्माविषे सो भोग होता नहीं । और यत्अवच्छिन्न आत्माविषे सो भोग होवै है सो शरीर हीं होवै है या कारणतैं हीं शास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं—**भोगायतनं शरीरम्** । यह शरीरका लक्षण कथन कऱ्या है । यातैं शास्त्रप्रमाण करिकै भी तिन वृक्षलतादिकोंविषे शरीररूपता हीं सिद्ध होवै है इति । इतनैंपर्यंत शरीरका लक्षण निरूपण कऱ्या ।

### इंद्रिय निरूपण ।

इंद्रियका लक्षण । अब घ्राण, रसन, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, मन इन षट् इंद्रियोंके साधारण लक्षणकूं कथन करे हैं । तहां—**शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयः इन्द्रियम्** । अर्थ यह—जो द्रव्य शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषगुणोंका अनाश्रय हूआ ज्ञानका

कारणरूप मनके संयोगका आश्रय होवै है सो द्रव्य इंद्रिय कह्या जावै है । ऐसे घ्राणादिक षट्इंद्रिय हैं तहां घटादिकोंविषे रह्येहूए जे रूपरसादिक गुण हैं ते रूपादिकगुण शब्दगुणतैं इतर भी हैं तथा उद्भूतभी हैं तथा विशेषगुण भी हैं ऐसे शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषगुणोंका आश्रयरूप ते घटादिक द्रव्य हैं और ते घ्राणादिक षट्इंद्रिय तौं तिन शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषणगुणोंका अनाश्रयरूप हीं हैं और ज्ञानका कारणरूप जो मनका संयोग है तिस संयोगका भी ते घ्राणादिक षट्इंद्रिय आश्रयरूप हैं। यातैं तिन घ्राणादिक षट्इंद्रियोंका यह उक्तलक्षण संभवै है ।

प्रत्यक्षकी रीति–तहां प्रथम जीवात्माका मनके साथि संयोग संबंध होवै है, तिसतैं अनंतर तिस आत्मसंयुक्त मनका तिन घ्राणादिक इंद्रियोंके साथि संयोगसंबंध होवै है, तिसतैं अनंतर तिस मन संयुक्त घ्राणादिक इंद्रियोंका गंधादिक अर्थोंके साथि यथायोग्य संयोगसंयुक्तसमवायादिरूप संबंध होवै है, तिसतैं अनंतर तिन गंधादिक अर्थोंका प्रत्यक्षज्ञान होवै है । इस प्रकारकी प्रणालिकातैं विना किसी भी अर्थका प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । इस रीतिसैं सो इंद्रियमनका संयोग भी ता ज्ञानका कारण होवै है ता संयोगका आश्रयपणा तिन घ्राणादिक सर्व इंद्रियोंविषे है ।

इंद्रियलक्षणपर विचार–तहां ' ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयः इन्द्रियम् ' इतनामात्र हीं जो ता इंद्रियका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे इंद्रियमनका संयोग ता प्रत्यक्षज्ञानका कारण होवै है तैसे आत्ममनका संयोग भी ता ज्ञानका कारण है । तिस ज्ञानके कारणरूपमनके संयोगका आश्रयपणा जैसे ता मनकूं है तैसे आत्माकूं भी है । यातैं आत्माविषे ता इंद्रियके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी, ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षण विषे 'शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां शब्दतैं इतर जे ज्ञान सुखदुःखादिरूप उद्भूतविशेष गुण हैं तिन गुणोंका सो आत्माआश्रयरूप हीं है अनाश्रयरूप नहीं हैं यातैं ता विशेषणके कहणे करिकै ता आत्मा विषे तिस लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयः इंद्रियम् ' इतनामात्र हीं जो ता इंद्रियका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयः ' इतना पद नहीं कथन करते तौं कालदिशाविषे तथा गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? कालविषे तथा दिशाविषे कोई भी विशेषगुण रहता नहीं, किंतु संख्यादिक पंच सामान्यगुण हीं रहे हैं और गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे तौं कोई भी गुण रहता नहीं । यातैं ते काल दिशा, तथा गुणकर्मादिक पदार्थ तिन शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषगुणोंका अनाश्रय हीं हैं । तिन काल, दिशादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयः ' यह विशेष्यभाग कथन कऱ्या है । तहां तिन कालादिकोंविषे ज्ञानके

कारणरूप मन संयोगका आश्रयपणा है नहीं। यातैं तिन कालदिशादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'उद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयः इन्द्रियम्' इतनामात्र हीं जो ता इंद्रियका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'शब्देतर' यह पद नहीं कथन करते तौं श्रोत्रइंद्रियविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होती। काहेतैं? ता आकाशरूप श्रोत्रइंद्रियविषे ता उद्भूतविशेषगुणका अनाश्रयपणा नहीं है। किन्तु सो श्रोत्रइंद्रिय शब्दरूप उद्भूतविशेषगुणका आश्रयरूप हीं है। ता श्रोत्र इंद्रियविषे ता लक्षणकी अव्याप्तिकं निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता उद्भूतविशेषगुणका 'शब्देतर' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां श्रोत्रइंद्रियविषे यद्यपि ता शब्दरूप उद्भूतविशेषगुणका आश्रयपणा है। तथापि ता शब्दतैं इतर रूपादिक उद्भूतविशेषगुणोंका आश्रयपणा है नहीं। यातैं ता श्रोत्रइंद्रियविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'शब्देतरविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयः इंद्रियम्' इतनामात्र हीं जो ता इंद्रियका लक्षण करते। ता लक्षणविषे 'उद्भूत' यह पद नहीं कथन करते तौं श्रोत्र मन इन दोनों इंद्रियोंविषे तौं सो लक्षण घटता, परंतु घ्राण रसन चक्षु त्वक् इन च्यारि इंद्रियोंविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति हीं होती। काहेतैं? तिन च्यारि इंद्रियोंविषे शब्दतैं इतर विशेषगुणोंका अनाश्रयपणा नहीं है, किंतु अनुद्भूतरूपादिक विशेषगुणोंका आश्रयपणा हीं है। ता अव्याप्तिदोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे तिन विशेषगुणोंका 'उद्भूत' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां तिन घ्राणादिक च्यारि इंद्रियोंकूं यद्यपि अनुद्भूतरूपादिक विशेषगुणोंका आश्रयपणा है तथापि उद्भूत रूपादिक विशेषगुणोंका आश्रयपणा है नहीं। यातैं तिन घ्राणदिक च्यारि इंद्रियोंविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'शब्देतरोद्भूतगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयः इंद्रियम्' इतनामात्र हीं जो ता इंद्रियका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विशेष' यह पद नहीं कथन करते तौं यह लक्षण किसी भी इंद्रियविषे घटता नहीं। यातैं लक्ष्यमात्रविषे अवृत्तिहोणेतैं सो लक्षण असंभव दोषवाला होता। काहेतैं? शब्दतैं इतर तथा उद्भूत ऐसे जे संयोगादिक सामान्यगुण है तिनोंका अनाश्रयपणा किसी भी इंद्रियविषे नहीं है, किंतु ते सर्वइंद्रिय तिन संयोगादिक गुणोंका आश्रय रूप हीं हैं। ता असंभवदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विशेष' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते संयोगादिक विशेषगुण नहीं है, किन्तु सामान्य गुण हैं। यातैं ता विशेषपदके कहणे करिकै तिन संयोगादिक सामान्य गुणोंकूं लेकै ता लक्षणविषे असंभव दोषकी प्राप्ति होवै नहीं। किंवा 'शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति कारणमनःसंयोगाश्रयः इंद्रियम्' इतनामात्र हीं जो ता इंद्रियका लक्षण करते ता लक्षण विषे 'ज्ञान' यह पद नहीं कथन करते तौं कालदिशाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता कालमनका संयोग वा दिशामनका संयोग भी आपणे ध्वंसका कारण हीं है

ता कारणरूप मनः संयोगका आश्रयपणा ता कालदिशाविषे भी है तथा ता कालदिशा-विषे शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषगुणोंका अनाश्रयपणा भी है । ता कालदिशाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे ' ज्ञान ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो काल मनका संयोग वा दिशा मनका संयोग स्वध्वंसके प्रति कारण हूआ भी ज्ञानका कारण है नहीं । यातैं ता लक्षणकी कालदिशाविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा ' शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणसंयोगाश्रयः इन्द्रियम् ' इतनामात्र हीं जो ता इंद्रियका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' मनः ' यह पद नहीं कथन करते तौं चक्षुइंद्रियके आरंभक अवयवोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? प्राचीन नैयायिकोंनैं घटा-दिकोंके परिमाणके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता चक्षुइंद्रियके अवयवोंका तथा तिन घटादिक द्रव्योंके अवयवोंका संयोग भी कारण मान्या है ता ज्ञानके कारण रूपसंयोगका आश्रयपणा तिन चक्षुइंद्रियके अवयवोंकूं भी है तथा शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषगुणोंका अनाश्रयपणा भी है । ऐसे चक्षुइंद्रियके अवयवोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे ' मनः ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन चक्षुके अवयवोंकूं ज्ञानके कारणरूप मनके संयोगका आश्रयपणा है नहीं यातैं ता मन पदके कहणे करिकै तिन चक्षु इंद्रियके अवयवोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं और नवीननैयायिक तौं ता मनपदके कहणेका यह प्रयो-जन कथन करे हैं ता लक्षणविषे जो मन पद नहीं कथन करते तौं कालविषे ता लक्षणकी अति-व्याप्ति होती । काहेतैं ? 'काले रूपं नास्ति' कालविषे रूप नहीं हैं । यह चाक्षुष प्रत्यक्ष ता काल विषे रूपाभावकूं विषय करे है और जो जो प्रत्यक्षज्ञान होवै है सो सो इंद्रिय अर्थके संबंध करिकै हीं जन्य होवै हैं ता इंद्रिय अर्थके संबंधतैं विना सो प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । यातैं ता रूपाभावके साथि जो चक्षुइंद्रियका चक्षुःसंयुक्तविशेषणतासंबंध है सो संबंध हीं ता रूपाभावके प्रत्यक्षविषे कारण है तहां चक्षुके संयोगवाला होणेतैं चक्षुः संयुक्त जो काल है ता कालविषे सो रूपाभाव विशेषण है । इस प्रकारके चक्षुःसंयुक्त विशेषणतारूप परंपरासंबंधका घटक जो चक्षुका कालके साथि संयोगसंबंध है सो संयोगसंबंध भी ता परंपरासंबंधके घटकतारूप करिकै ता रूपाभावके प्रत्यक्षविषे कारण हीं है । ऐसे ज्ञानके कारणरूप संयोगका आश्रयरूप काल है तथा सो काल शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषगुणोंका अनाश्रय भी है इस प्रकारतैं ता कालविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'मनः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता कालविषे ज्ञानके कारणरूप मनके संयोगका आश्रयपणा है नहीं । यातैं ता कालविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । शंका—ज्ञानकारणमनः संयो-गाश्रयः इंद्रियम् ' इतनामात्र ता इंद्रियके लक्षणकरणेतैं आत्माविषे ता लक्षणकी अति-व्याप्ति होती थी । ता अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षण विषे ' शब्देतरोद्भूत-

विशेषगुणानाश्रयत्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या था । सा अतिव्याप्ति तौं ' आत्मान्यत्वे सति' इतनें लघुविशेषणके कहणेतें हीं निवृत्त होइ जावै है । यातें ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे ' शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ' यह अतिगुरुभूत विशेषण कहणा व्यर्थ है । समाधान—सुषुप्तिअवस्थाविषे ज्ञानके उत्पत्तिकी आपत्तिके निवृत्त करणे वासतै जे नैयायिक चर्ममनके संयोगकूं ज्ञानका कारण माने हैं तिन नैयायिकोंके मतविषे ता इंद्रियके लक्षणकी ता चर्मविषे अतिव्याप्ति होवैंगी । काहेतें ? सो चर्म आत्मातैं अन्य भी है तथा ज्ञानका कारणरूप जो चर्ममनका संयोग है ता संयोगका आश्रयरूप भी है ता चर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे आत्मान्यत्वरूप लघुविशेषणका परित्याग करिकै शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रत्वरूप गुरुतर विशेषण कथन कऱ्या है ता चर्मविषे शब्दतैं इतर उद्भूतविशेषगुणोंकी अनाश्रयता नहीं है किंतु आश्रयता हीं है । यातैं ता चर्मविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । ईहां त्वकूइन्द्रिके रहणेका स्थान जो त्वचा है ताका नाम चर्म है और जिन नैयायिकोंके मतविषे सो चर्ममनका संयोग ज्ञानमात्रका कारण नहीं है किंतु पुरीततितैं बाह्यदेशावच्छिन्न आत्ममनका संयोग हीं ता ज्ञानमात्रका कारण है । तिन नैयायिकोंके मतविषे तौं ' आत्मान्यत्वे सति ज्ञानकारण मनःसंयोगाश्रयः इन्द्रियम् ' यह लघुभूत हीं इंन्द्रियका लक्षण संभवै है । यह दोनों मत पूर्व प्रथमपरिच्छेदविषे मुक्तिनिरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति । इतनैं पर्यंत घ्राणादिक षट्इंद्रियोंका साधारण लक्षण कथन कऱ्या ॥

विषय निरूपण ।

अब पार्थिव जलीय तैजस वायवीय इन च्यारिप्रकारके विषयोंका साधारण लक्षण कथन करे हैं । विषयका लक्षण—तहां **शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सति भोगोपयोगी विषयः** । अर्थ यह—जो द्रव्य शरीरइंद्रियोंतैं भिन्न हूआ भोगका उपयोगी होवै है सो द्रव्य विषय कह्या जावै है । जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारोंके द्व्यणुकरूप कार्योंतैं आदि लैकै स्थूलरूप पृथिवी, जल, तेज, वायु पर्यंत सर्वकार्य द्रव्य शरीरइंद्रियतैं भिन्न भी हैं तथा जीवोंके भोगका उपयोगी भी हैं । यातैं तिन द्व्यणुकादिस्थूलपर्यंत कार्यद्रव्यरूप विषयोंका सो उक्तलक्षण संभवै है । भोगका लक्षण—तहां **सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारः भोगः** । अर्थ यह—'अहं सुखी' या प्रकारका जो सुखका साक्षात्कार है । तथा 'अहं दुःखी' या प्रकारका जो दुःखका साक्षात्कार है ताका नाम भोग है । ऐसे भोगका जो उपयोगी होवै है सो द्रव्य विषय कह्या जावै है ॥

विषयके लक्षणविषे विचार—तहां ' भोगोपयोगी विषयः ' इतनामामात्र हीं जो ता विषयका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं शरीरइंद्रियोंविषे ही ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? जैसे तिन विषयोंतैं विना सो भोग नहीं सिद्ध होवै है तैसे तिन शरीरइन्द्रियोंतैं विनाभी सो भोग सिद्ध होता

नहीं । यातैं ता भोगका उपयोगीपणा तिन शरीरइंद्रियोंविषे भी है तिन शरीरइन्द्रियों-विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सति' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां आपणा भेद आपणे स्वरूपविषे रहता नहीं । यातैं तिस शरीर इंद्रियविषे ता शरीरइंद्रियका भेद है नहीं । यातैं ता शरीरइंद्रियविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'शरीरेन्द्रियभिन्नः विषयः' इतनामात्र हीं जो ता विषयका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'भोगोपयोगी' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणुरूप नित्य-द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ते परमाणुरूप नित्यद्रव्य ता शरीर-इंद्रियतैं भिन्न हीं हैं । ता अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षण विषे 'भोगोपयोगी' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन परमाणुरूप नित्य द्रव्योंविषे सो भोगका उपयोगीपणा है नहीं । यातैं तिन परमाणुरूप नित्यद्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं ॥ इहां यह तात्पर्य है सर्वकार्यमात्रकी उत्पत्ति जीवोंके पुण्यपापरूप अदृष्टके अधीन होवै है । तहां जिस कार्यकी उत्पत्ति जिस जीवके पुण्यपापरूप अदृष्टके अधीन होवै है सो कार्य तिस जीवा-त्माके भोगकूं साक्षात् वा परंपरा करिकै उत्पन्न करे है, जिस कारणतैं बीज प्रयोजन इन दोनोंतैं विना किसी भी कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं । किंतु ता बीजप्रयोजन करिकै हीं सर्व कार्यकी उत्पत्ति होवै है । तहां जीवोंका पुण्यपापरूप अदृष्ट तौं तिन कार्योंकी उत्पत्ति विषे बीज है और तिन जीवोंके प्रति भोगकी प्राप्ति तिन कार्योंकी उत्पत्तिका प्रयोजन है । इस रीतिसैं द्व्यणुकतैं आदिलैकै ब्रह्मांडपर्यंत जितनैंकी कार्यद्रव्य हैं ते सर्व कार्यद्रव्य जीवोंके पुण्यपापरूप अदृष्टकरिकै जन्य होणेतैं तिन जीवोंकूं साक्षात् या परंपराकरिकै ता भोगकी प्राप्ति अवश्य करे हैं । यातैं ते द्व्यणुकतैं आदि लैकै ब्रह्मांडपर्यंत सर्व कार्य द्रव्य विषयरूप हीं हैं ॥

कार्यद्रव्योंविषे शरीर इन्द्रिय और विषय इन विभागोंका विचार—**शंका**—इस उक्त प्रकारक द्व्यणु-कतैं आदि लैके ब्रह्माण्डपर्यंत सर्वकार्यद्रव्योंकूं विषयरूपताके प्राप्तहूए ता सर्वकार्यके मध्यवर्ती शरीरइंद्रियरूप कार्यकूंभी विषयरूपता हीं प्राप्त होवैगी । यातैं पूर्वकथन कऱ्या हूआ शरीर इन्द्रिय विषय यह तीन प्रकारका विभाग सिद्ध नहीं होवैगा । **समाधान**—वास्तवतैं विचार करिकै देखीये तौं शरीर इंद्रिय इन दोनोंविषे भी विषयरूपता हीं सिद्ध होवै है ता विषयतैं भिन्नरूपता सिद्ध होवै नहीं तथापि ग्रंथकारोंनैं शरीर इंद्रिय विषय इन तीनोंका जो भिन्नभिन्न निरूपण कऱ्या है सो श्रोतापुरुषोंकी बुद्धिके वृद्धि वासतै निरूपण कऱ्या है । किंवा इसतैं भी जो सूक्ष्म विचार करिकै देखिये तौं परमाणुरूप नित्य द्रव्योंविषे भी सो विषयपणा हीं सिद्ध होवै है । काहेतैं ? 'शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सति भोगोपयोगी विषयः' इस पूर्वउक्त विषयके लक्षणविषे 'भोगोपयोगी' इस पद करिकै साक्षात्भोगकी साधनता विवक्षित है अथवा साक्षात् परंपरा-साधारण भोगकी साधनता विवक्षित है । तहां जो साक्षात्भोगकी साधनता विवक्षित होवै तौं

द्व्यणुकादिकोंविषे भी सो विषयपणा सिद्ध नहीं होवैगा। काहेतें? साक्षात् भोगकी साधनता तौं तिन द्व्यणुकादिकोंविषे भी नहीं है और जो साक्षात् परंपरासाधारण भोगकी साधनता विवक्षित होवै तौं परंपरासैं भोगकी साधनता जैसे तिन द्व्यणुकादिकोंविषे है तैसे तिन परमाणुवोंविषे भी है। यातैं तिन द्व्यणुकादिकोंकी न्यांई ते परमाणु भी विषयरूप हीं सिद्ध होवे है। इसी कारणतैं ही कितनेंकी न्यायग्रन्थोंविषे कार्यरूप पृथिवीजलादिकोंका सो शरीरइंद्रिय विषयरूपतैं विभाग नहीं कऱ्या है, किंतु सामान्यतैं ही तिन पृथिवीजलादिकोंका सो शरीर इंद्रियविषयरूपतैं विभाग कऱ्या है इति। तहां इतनैं पर्यंत सामान्यतैं शरीर इंद्रिय विषय इन तीनोंका निरूपण कऱ्या ॥

पार्थिवशरीरादि तीनोंका स्वरूपवर्णन।

अब पार्थिवशरीर, पार्थिवइंद्रिय, पार्थिवविषय इन तीनोंका स्वरूपवर्णन करे हैं। ताके विषे भी प्रथम पार्थिवशरीरका वर्णन—करे हैं। तहां—**गन्धववत् शरीरं पार्थिवशरीरम्।** अर्थ यह—जो शरीर समवायसंबंध करिकै गन्धगुणवाला होवै है सो शरीर पार्थिवशरीर कह्या जावै है, जैसे मनुष्य पशु पक्षी कृमि वृक्ष इत्यादिक शरीर समवायसंबंध करिकै ता गंधगुणवाले हैं यातैं ते मनुष्यादिक शरीर पार्थिवशरीर कहे जावै हैं। लक्षण—यद्यपि उत्पन्न विनष्ट शरीरविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न शरीरविषे तथा सुरभिअसुरभि अवयवजन्य शरीरविषे ता गंधगुणका अभाव होणेतैं इस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्वउक्त पृथिवीके लक्षणकी न्यांई ईहां भी—**गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत् शरीरं पार्थिवशरीरम्।** इस प्रकार पृथिवीत्व जातिघटित लक्षणके करणेतैं ता शरीरविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं, तहां इस लक्षणविषे 'शरीरम्' यह पद पार्थिव इंद्रियविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है, दूसरे पदोंका फल तौं पूर्व उक्त पृथिवीके लक्षणकी न्यांई जानि लेणा इति ॥ पार्थिवशरीरके भेद—सो उक्त पार्थिवशरीर योनिज १, अयोनिज २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां सो योनिज पार्थिव शरीर भी जरायुज १, अंडज २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है और सो अयोनिज पार्थिव शरीर भी स्वेदज १, उद्भिज्ज २, अदृष्टविशेषजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां मनुष्यपशु आदिक शरीर तौं जरायुज कहे जावै हैं। और पक्षी सर्पादिक शरीर अंडज कहे जावै हैं। और कृमिदंशादिक शरीर स्वेदज कहे जावै हैं। और वृक्षलतादिक शरीर उद्भिज्ज कहे जावै हैं और मनुआदिकोंके शरीर अदृष्टविशेषजन्य कहे जावै हैं। इन योनिज अयोनिज शरीरोंका विस्तारतैं निरूपण तौं पूर्व शरीरसामान्यनिरूपणविषे करि आये हैं सो ईहां भी जानि लेणा ॥ पार्थिवपणेका अनुमान—मनुष्यादिक शरीरोंविषे पार्थिवपणेविषे कौन प्रमाण है? ऐसी शंकाके प्राप्त हूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै तिन मनुष्यादिक शरीरोंविषे पार्थिवपणा सिद्ध करे हैं। तहां इन मनुष्यादिक शरीरोंविषे गंध प्रतीत होवै है तथा

शुक्लरूपतें इतर नीलादिकरूप भी प्रतीत होवै हैं । सो गंधगुण तथा नीलादिकरूप पृथिवीतैं विना अन्य किसी द्रव्यविषे रहते नहीं किंतु केवल एक पृथिवीविषे हीं रहे हैं। यातैं ता गंधगुण करिकै अथवा नीलादिकरूप करिकै इन मनुष्यादिक शरीरोंविषे पार्थिवपणेका हीं अनुमान होवै है। ता अनुमानका यह आकार है—**मनुष्यादिशरीरं पार्थिवं गन्धवत्त्वात् नीलादिरूपवत्त्वात् वा प्रसिद्धपृथिवीवत्** । अर्थ यह—यह मनुष्यादिक शरीर पार्थिव होणेयोग्य हैं । गंधगुणवाले होणेतैं अथवा नीलादिकरूपवाले होणेतैं । जो जो द्रव्य गंधगुणवाला होवै है अथवा नीलादिक रूपवाला होवै है सो सो द्रव्य पार्थिव हीं होवै है । जैसे यह प्रसिद्ध कस्तूरीकुसुमादिक द्रव्य गंधगुणवाले होणेतैं अथवा नीलादिक रूपवाले होणेतैं पार्थिवरूप हीं हैं तैसे यह मनुष्यादिक शरीर भी ता गंधगुणवाले होणेतैं अथवा नीलादिक रूपवाले होणेतैं पार्थिव हीं होवैंगे, इस प्रकारके अनुमान करिकै तिन मनुष्यादिक शरीरोंविषे सो पार्थिवपणा हीं सिद्ध होवै है । **शंका**—तिन मनुष्यादिक शरीरोंविषे जैसे पृथिवीका असाधारणधर्मरूप गंध प्रतीत होवै है तैसे जलका असाधारणधर्मरूप स्वेद भी प्रतीत होवै है तथा तेजका असाधारणधर्मरूप उष्णता भी प्रतीत होवै है तथा वायुका असाधारणधर्मरूप सदा गतिमत्त्व भी प्रतीत होवै है तथा आकाशका असाधारणधर्मरूप अवकाश भी प्रतीत होवै है । यातैं जैसे ता गंधवत्त्वरूप हेतु करिकै इन मनुष्यादिक शरीरोंविषे पार्थिवपणेकी सिद्धि होवै है तैसे तिन स्वेदउष्णतादिरूप हेतुवों करिकै इन मनुष्यादिक शरीरोंविषे जलीयतैजसादिरूपता भी सिद्ध होइ सके है । यातैं इन मनुष्यादिकशरीरोंविषे जलीयतैजसादिरूपता हीं क्यूं नहीं होवै ? **समाधान**—मरणमूर्च्छादिक अवस्थावोंविषे स्वेदउष्णतादिकोंके नाशहूए भी इन मनुष्यादिक शरीरोंकी शरीररूप करिकै प्रत्यभिज्ञा होवै है तथा गंधगुणकी तथा नीलादिक रूपोंकी भी तहां प्रतीति होवै है । यातैं इन मनुष्यादिक शरीरोंविषे सो पार्थिवपणा हीं संभवै है, जलीय तैजसादिरूपता संभवै नहीं । **शंका**—इन मनुष्यादिक शरीरोंविषे जो केवल पार्थिवपणा हीं अंगीकार करौंगे, जलीय तैजसादिरूपता नहीं अंगीकार करौंगे तौं इन मनुष्यादिक शरीरोंकूं जो शास्त्रविषे पांचभौतिकपणा कथन कऱ्या है सो असंगत होवैगा । **समाधान**—मनुष्यादिक शरीरोंकूं शास्त्रविषे पांचभौतिक कह्या है । यह वार्त्ता यद्यपि सत्य है तथापि पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंचभूत तिन मनुष्यादिक शरीरोंके उपादान कारण होवै हैं । इस प्रकारके अभिप्राय करिकै ता शास्त्रनैं तिन शरीरोंविषे सो पांचभौतिकपणा नहीं कथन कऱ्या है, किंतु यह मनुष्यादिक शरीर तिन पंचभूतों करिकै हीं जन्य होवै हैं । इस अभिप्राय करिकै तिन शरीरोंविषे शास्त्रनैं सो पांचभौतिकपणा कथन कऱ्या है । तहां मनुष्यादिक पार्थिवशरीरोंविषे तौं एक पृथिवी हीं पादानकारणउ होवै है और दूसरे जलादिक च्यारि भूत निमित्तकारण होवै हैं । तैसे वरुण-

लोकविषे स्थित जलीयशरीरोंविषे तौं एक जल हीं उपादानकारण होवै है । दूसरे पृथिवी आदिक च्यारि भूत निमित्तकारण होवै हैं । तैसे सूर्यलोकविषे स्थित तैजसशरीरोंविषे तौं एक तेज हीं उपादानकारण होवै है । दूसरे पृथिवीआदिक च्यारि भूत निमित्त कारण होवै हैं । तैसे वायुलोकविषे स्थित वायवीयशरीरोंविषे तौं एकवायु हीं उपादानकारण होवै है । दूसरे पृथिवी-आदिक च्यारिभूत निमित्तकारण होवै हैं इति । इतनेंपर्यंत पार्थिवशरीरका निरूपण कऱ्या ॥

अब पार्थिवइंद्रियका निरूपण—करे है । तहां **गन्धवदिन्द्रियं पार्थिवेन्द्रियम्** । अर्थ यह—जो इंद्रिय समवायसंबंध करिकै गंधगुणवाला होवै है सो इंद्रिय पार्थिव इंद्रिय कह्या जावै है । तहां समवायसंबंध करिकै गंधगुणवाला एक घ्राण इंद्रिय हीं है । यातैं सो घ्राणइंद्रिय पार्थिवइन्द्रिय कह्या जावै है । यद्यपि सुरभि असुरभि अवयवजन्य घ्राणइंद्रियविषे तथा उत्पन्नविनष्ट घ्राणइंद्रियविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घ्राणइंद्रियविषे ता गंधगुणका अभाव होणेतैं इस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्व उक्त पृथिवीके लक्षणकी न्याईं ईहां भी **गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमदिन्द्रियं पार्थिवेन्द्रियम्** । इस प्रकार पृथिवीत्वजातिघटित लक्षणके करणेतैं ता घ्राणइंद्रियविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । तहां इस लक्षणविषे 'इंद्रियम्' यह पद पार्थिवशरीर विषयोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वास्तै है । दूसरे पदोंका फल सो पूर्व उक्त हीं जानि लेणा । सो यह घ्राणइंद्रिय नासिकाके अग्रभागविषे रहे है तथा सौरभ असौरभ गंधकूं ग्रहण करे है । घ्राणविषे गन्धका अनुमान—यह उक्तघ्राण इंद्रियका लक्षण तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम ता घ्राण इंद्रियविषे किसी प्रमाण करिकै सो गंधगुण सिद्ध होवै ता गंधगुणकी सिद्धितैं विना सो उक्तलक्षण संभवता नहीं ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता घ्राणइंद्रियविषे गंधगुणकी सिद्धि करे हैं । तहां सो घ्राणइंद्रिय कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवीके गंधगुणकूं ग्रहण करे है । यातैं यह जान्या जावै है—सो घ्राणइंद्रिय भी ता गंध गुणवाला हीं है । काहेतैं ? यह शास्त्रकारोंका नियम है । **यदिन्द्रियं रूपादिपञ्चसु मध्ये यं गुणं गृह्णाति तदिन्द्रियं तद्गुणयुक्तम्** । अर्थ यह—जो इंद्रिय रूप रस गंध स्पर्श शब्द इन पांचगुणोंके मध्यविषे जिस गुणकूं ग्रहण करे है सो इंद्रिय तिस गुणवाला हीं होवै है । जैसे चक्षु रसन घ्राण त्वक् श्रोत्र यह पांचों इंद्रिय यथा क्रमतैं तिन रूपादिक गुणोंकूं ग्रहणकरेहैं । यातैं यह पांचों इंद्रिय यथाक्रमतैं तिन रूपादिकगुणों वाले हीं हैं । यातैं यह अनुमान सिद्ध भया—**घ्राणेन्द्रियं गन्धवत् गन्धग्राहकेन्द्रियत्वात् चक्षुरादिवत्** । अर्थ यह—सो घ्राण इंद्रिय गंधगुणवाला होणे योग्य है गन्धका ग्राहक इंद्रिय होणेतैं जो जो इंद्रिय रूपादिक पांचोंगुणोंके मध्यविषे जिस गुणकूं ग्रहण करेहै सो सो इंद्रिय तिस गुणवाला हीं होवै है जैसे चक्षु आदिक इंद्रिय रूपादिक गुणोंके ग्राहक होणेतैं तिन रूपादिक गुणोंवाले हीं है तैसे यह घ्राणइंद्रिय भी गंधगुणका ग्राहक होणेतैं तिस गंधगुणवाला हीं

होवैंगा । इस प्रकारके अनुपान प्रमाण करिकै ता घ्राण इंद्रियविषे गंधगुणकी सिद्धि होवै है । और ता गंधगुणरूप हेतुकरिकै कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवीकी न्यांई ता घ्राणइंद्रियविषे पार्थिपणा हीं सिद्ध होवै है । घ्राणके पार्थिवपणेका अनुमान—अथवा ता घ्राण इंद्रियविषे पार्थिवपणेकी सिद्धि इस प्रकारके अनुमान करिकै करणी । घ्राणेन्द्रियं पार्थिवं रूपादिषु मध्ये गन्धस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् कुङ्कुमगन्धाभिव्यञ्जकगोघृतवत् वायूपनीतसुरभिपार्थिवभागवत् वा । अर्थ यह—सो घ्राणइंद्रिय पार्थिव होणे योग्य है । रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इन च्यारोंके मध्यविषे केवल गंधका हीं अभिव्यंजक होणेतैं । जो जो द्रव्य रूपादिक च्यारोंके मध्यविषे एक गंधगुणका हीं अभिव्यंजक होवै है सो सो द्रव्य पार्थिव हीं होवै है । जैसे कुङ्कुमविषे मिलाया हूवा गौका घृत ता कुङ्कुमके रूप, रस, गंध, स्पर्श इन च्यारोंके मध्यविषे केवल एक गंधगुणका हीं अभिव्यंजक होवै है रूप, रस, स्पर्श इन तीन गुणोंका अभिव्यंजक होवै नहीं । यातैं ता गौके घृतविषे सो पार्थिवपणा प्रत्यक्ष सिद्ध है अथवा कस्तूरीकुसुमादिक पार्थिव द्रव्योंतैं वायुनैं उठाएहूए जे सुरभि पार्थिवभाग है ते सुरभि पार्थिवभाग स्वनिष्ठरूपादिक च्यारोंके मध्यविषे केवल एक गंधके हीं अभिव्यंजक होवै हैं । रूप, रस, स्पर्श इन तीनोंके अभिव्यंजक होते नहीं । यातैं तिन सुरभिपार्थिव भागोंविषे सो पार्थिवपणा निश्चित हीं है । तैसे सो घ्राणइंद्रिय भीं कस्तूरीकुसुमादिक पार्थिवद्रव्योंके रूपादिक च्यारोंके मध्यविषे केवल एक गंधगुणका हीं अभिव्यंजक होवै है । रूप, रस, स्पर्श इन तीनोंका अभिव्यंजक होवै नहीं । यातैं ता घ्राणइंद्रियविषे भी सो पार्थिवपणा अवश्य मान्या चाहिये । पदकृत्य-ईहां प्रत्यक्षज्ञान रूप अभिव्यक्तिके करावणेहारे पदार्थकूं अभिव्यंजक कहे हैं । तहां इस उक्त अनुमानविषे 'रूपादिषु मध्ये गंधस्याभिव्यंजकत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'एव' यह पद नहीं कथन करते तौं मृत्तिकाका पात्रविशेषरूप जो नवीन शराव है ता शरावविषे पायाहूआ जल ता शरावके गंधका अभिव्यंजक होवै है । ता जलविषे सो हेतु व्यभिचारी होता और मनतैं विना किसी भी वस्तुका ज्ञान होता नहीं । यातैं सो मन भी ता गंधका अभिव्यंजक है । ता मन विषे भी सो हेतु व्यभिचारी होता अर्थात् ता जलविषे तथा मनविषे सो पार्थिवत्वरूप साध्य तौ नहीं परंतु रूपादिकोंके मध्यविषे गंधका अभिव्यंजकत्वरूप हेतु ता जलमनविषे भी है । यातैं पार्थिवत्वरूप साध्यके अभाववाले ता जलविषे तथा मनविषे वृत्तिहोणैतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'एव' यह पद कथन कन्या है । सो 'एव' पद ता गंधगुणतैं भिन्न रूप, रस, स्पर्श, इन तीनोंके अभिव्यक्तिका निषेध करे है । तहां सो नवशरावका जल केवल ता शरावके गंधका हीं अभिव्यंजक नहीं होवै है, किंतु सक्तुवोंविषे पाया हूआ सो नवशरावका जल तिन सक्तुवोंके रसका भी अभिव्यंजक होवै है । और सो मन भी केवल एक गंधका हीं अभिव्यंजक नहीं होवै है, किंतु रूपादिकोंका भी

अभिव्यंजक होवै है। यातैं ता 'एव' पदघटित हेतुके कहणेतैं ता नवशरावके जलविषे तथा मनविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता अनुमानविषे ' गंधस्यैवाभिव्यंजकत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे ' रूपादिषु मध्ये ' यह पद नहीं कथन करते तौं सो हेतु स्वरूपासिद्धि दोषवाला होता । तहां पक्षविषे जो हेतुका नहीं वर्त्तणा है ताका नाम स्वरूपासिद्धि है। काहेतैं ? सो घ्राणइंद्रिय केवल एक गंधमात्रका हीं अभिव्यंजक नहीं है। किंतु ता गंधवृत्ति गंधत्वजातिका तथा ता गंधके अभावका भी अभिव्यंजक है । ता स्वरूपासिद्धिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' रूपादिषु मध्ये' यह पद कथन कऱ्या है । अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श इन च्यारोंके मध्यविषे सो घ्राणइंद्रिय एक गंधगुणका हीं अभिव्यंजक होवे है, रूपादिक तीनोंका अभिव्यंजक होवै नहीं। यातैं ता घ्राणइंद्रियकूं गंधत्वजातिका तथा गंधाभावका अभिव्यञ्जकपणा हूए भी ता असिद्धि दोषकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ **शंका**—जैसे सो घ्राणइंद्रिय रूपादिकोंके मध्यविषे केवल गंधका हीं अभिव्यञ्जक है तैसे ता गंधके साथि जो घ्राणइंद्रियका स्वसंयुक्त समवायरूप सन्निकर्ष है सो सन्निकर्ष भी केवल ता गंधका हीं अभिव्यंजक है। रूपादिकोंका अभिव्यंजक नहीं है और सो सन्निकर्ष पार्थिवपदार्थ नहीं है। यातैं ता पार्थिवत्वरूप साध्यके अभाववाले ता सान्निकर्षविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । **समाधान**—ता हेतुके शरीरविषे ' द्रव्यत्वे सति ' इस पदका भी निवेश करणा । अर्थात् ' द्रव्यत्वे सति रूपादिषु मध्ये गंधस्यैवाभिव्यंजकत्वात् ' इतना हेतु कथन करणा । तहां ता घ्राणइंद्रियके सन्निकर्षविषे सो द्रव्यत्वधर्म है नहीं, यातैं ता सन्निकर्षविषे इस उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं ॥ **शंका**—सो उक्त हेतु यद्यपि ता घ्राणइंद्रियरूप पक्षविषे तौं विद्यमान है तथापि ता कुंकुमामिश्रित गोघृतरूप दृष्टांतविषे सो हेतु है नहीं। काहेतैं ? सो गौका घृत जैसे कुंकुमके गंधका आभिव्यंजक है तैसे स्वनिष्ठरूपादिकोंका भी अभिव्यंजक हीं है। केवल गंधमात्रका हीं अभिव्यंजक नहीं है । **समाधान**—ता घृतरूप दृष्टांतविषे ता उक्त हेतुकी असिद्धिके निवृत्त करणेवासतै ता हेतुके शरीरविषे ' परकीय ' यह पद भी कथन करणा अर्थात् ' द्रव्यत्वे सति परकीयरूपादिषु मध्ये गंधस्यैवाभिव्यंजकत्वात्' इतना हेतु कथन करणा। तहां सो घृत यद्यपि आपणे रूपादिकोंका अभिव्यंजक है तथापि ता कुंकुमके रूपादिकोंके मध्यविषे केवल गंधमात्रका हीं अभिव्यंजक है, ता कुंकुमके रूपादिकोंका अभिव्यंजक है नहीं। यातैं ता हेतुविषे तिन रूपादिकोंका परकीयत्वविशेषणके कहणेतैं ता गोघृतरूप दृष्टांतविषे ता हेतुकी अप्रसिद्धि होवै नहीं ॥ **शंका**—ता हेतुके शरीरविषे ' परकीय' इस पदके कहणे करिकै ता हेतुका शरीर बडा होवैंगा यातैं शरीरकृतगौरवदोषकी प्राप्ति होवैंगी । **समाधान**—इसी गौरवदोषके निवृत्त करणे वासतै ता पूर्वउक्त अनुमानविषे 'वायूपनीतसुरभिपार्थिवभागवत्' यह द्वितीयदृष्टांत कथन कऱ्या है। तहां वायुनैं देशांतरविषे प्राप्त कऱ्येहूए जे कस्तूरीकुसुमादिक पृथिवीके सूक्ष्म सुरभि

भाग हैं तिनोंके रूपादिक गुण किसीकूं भी प्रत्यक्ष होते नहीं किंतु तिनोंका केवल गन्धमात्रही प्रत्यक्ष होवै है। यातैं ते सुरभिपार्थिवभाग स्वकीयरूपादिकोंके अभिव्यंजक नहीं हैं किंतु स्वकीयगंधमात्रके हीं अभिव्यंजक हैं। यातैं ता उक्तहेतुविषे 'परकीय' इस पदके नहीं कहणे करिकै भी तिस सुरभिपार्थिवभागरूप दृष्टांतविषे ता उक्तहेतुकी असिद्धि होवै नहीं इति। इस प्रकारके उक्त अनुमान करिकै ता घ्राणइंद्रियविषे पार्थिवपणा हीं सिद्ध होवै है।

इंद्रियमात्रका साधक अनुमान—**सति कुड्ये चित्रम्।** अर्थ यह—आधाररूप भित्तिके विद्यमानहूये हीं ता भित्तिऊपरि चित्र लिख्ये जावै हैं। ता भित्तिके अभावहूए ताके ऊपरि चित्र भी लिख्ये जावै नहीं। यह न्याय लोकविषे प्रसिद्ध है। तैसे ईहां प्रसंगविषे प्रथम किसी प्रमाण करिकै जबी तिन घ्राणादिक षट्इन्द्रियोंकी सिद्धि होवै तिसतैं अनंतर हीं तिन घ्राणादिक इन्द्रियोंविषे सा पार्थिवादिरूपता सिद्ध होवैंगी। तिन घ्राणादिकइंद्रियोंकी सिद्धितैं विना तिन घ्राणादिक इंद्रियोंविषे सा पार्थिवादिरूपता सिद्ध होवैंगी नहीं यातैं। तिन घ्राणादिक षट्इंद्रियोंकी किसी प्रमाणकरिकै अवश्य सिद्धि करी चाहिये ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब अनुमान प्रमाणकरिकै तिन घ्राणादिक षट्इंद्रियोंकी सिद्धि करे हैं। ता अनुमानका यह आकार है—**रूपाद्युपलब्धिः करणसाध्या क्रियात्वात् छिदिक्रियावत्।** अर्थ यह—रूपकी उपलब्धि तथा रसकी उपलब्धि तथा गंधकी उपलब्धि तथा स्पर्शकी उपलब्धि तथा शब्दकी उपलब्धि तथा सुखदुःखकी उपलब्धि यह षट्प्रकारकी ज्ञानरूप उपलब्धियां किसी करणकरिकै साध्य होणे योग्य हैं, क्रियारूप होणेतैं। जा जा क्रिया होवै है सा सा क्रिया किसी करण करिकै अवश्य साध्य होवै है जैसे छेदनरूपक्रिया कुठाररूप करणकरिकै साध्य है। सो क्रियापणा तिन रूपादिक उपलब्धियोंविषे भी है यातैं ते उपलब्धियां भी किसी करण करिकै अवश्य साध्य होवैंगीयां इति। तहां इस अनुमान करिकै रूपउपलब्धिका करणरूप करिकै चक्षुइंद्रियकी सिद्धि होवै है। और रसउपलब्धिका करणरूप करिकै रसनइंद्रियकी सिद्धि होवै है और गंधउपलब्धिका करणरूप करिकै घ्राणइंद्रियकी सिद्धि होवै है और स्पर्श उपलब्धिका करणरूप करिकै त्वक्इंद्रियकी सिद्धि होवै है और शब्दउपलब्धिका करणरूप करिकै श्रोत्रइंद्रियकी सिद्धि होवै है और सुख दुःख उपलब्धिका करणरूप करिकै मनइंद्रियकी सिद्धि होवै है। इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै तिन घ्राणादिक षट्इंद्रियोंकी सिद्धिहूए तिन घ्राणादिक इंद्रियोंविषे पार्थिवादिरूपकी सिद्धि करणी संभवै है इति। इतनैंपर्यंत पार्थिवइंद्रियका निरूपण कऱ्या।

### पार्थिव विषय।

अब पार्थिवविषयका निरूपण करे हैं। तहां **गन्धवद्विषयः पार्थिवविषयः।** अर्थ यह—जो विषय समवायसंबंध करिकै गंधगुणवाला होवै है सो विषय पार्थिवविषय कह्या जावै है। तहां पार्थिवद्व्यणुकतैं आदिलैके जितनाकी मृत पाषाण कस्तूरी कुसुम इत्यादिक पार्थिव

द्रव्य हैं ते सर्व समवायसंबंध करिकै गंधगुणवाले होणेतैं पार्थिवविषय कहे जावै हैं। यद्यपि सुरभिअसुरभिअवयवजन्य घटादिक पार्थिव विषयोंविषे तथा उत्पन्नविनष्ट घटादिक पार्थिव-विषयोंविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटादिक पार्थिवविषयोंविषे ता गंध गुणका अभाव होणेतैं इस लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै हैं तथापि पूर्वउक्त पृथिवीके लक्षणकी न्याईं ईहां भी **गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमद्विषयः पार्थिवविषयः।** इस प्रकार पृथिवीत्वजातिघटित लक्षणके करणेतैं ता घटादिकरूप पार्थिवविषयविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं। तहां इस लक्षणविषे 'विषयः' यह पद पार्थिवशरीरइंद्रियविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानिलेणा।

इति पार्थिवविषयनिरूपणम्॥

---

परमाणु विषय।

परमाणुओंका लक्षण—पूर्व परमाणुरूप पृथिवीकूं नित्य कह्या था तथा आगे परमाणुरूप जलकूं तथा परमाणुरूप तेजकूं तथा परमाणुरूप वायुकूं नित्य कहणा है। तहां तिन पर-माणुवोंविषे नित्यरूपता तवी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी लक्षण करिकै तथा किसी प्रमाण करिकै तिन परमाणुवोंकी सिद्धि होवै। तिन परमाणुवोंकी सिद्धितैं विना तिनों विषे नित्यपणा कहणा संभवता नहीं। यातैं तिन परमाणुवोंका कोई लक्षण तथा प्रमाण अवश्य कह्या चाहिये ऐसी शंकाके प्राप्त हूए, अब प्रथम तिन परमाणुवोंका लक्षण निरूपण करे हैं। **मनोभिन्नत्वे सति परमाणुत्वपरिमाणवान् परमाणुः।** अर्थ यह—जो द्रव्य मनतैं भिन्न हूआ समवायसंबंध करिकै परम अणुत्व परिमाणवाला होवै है सो द्रव्य परमाणु कह्या जावै है। तहां पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारोंके परमाणु मनतैं भिन्न भी हैं तथा समवायसंबंध करिकै परमअणुत्व परिमाणवाले भी हैं। यातैं तिन परमाणुवोंका सो उक्त-लक्षण संभवे है। पदकृत्य—तहां 'परमाणुत्वपरिमाणवान् परमाणुः' इतनामात्रहीं जो तिन परमाणुवोंका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'मनोभिन्नत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं सो मन भी तिन परमाणुवोंकी न्याईं परमअणुत्वपरिमाणवाला हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे 'मनोभिन्नत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां मनविषे ता मनका भेद संभवता नहीं यातैं ता मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'मनोभिन्नत्वे सति अणु-त्वपरिमाणवान् परमाणुः' इतनामात्र हीं जो ता परमाणुका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'परम' यह पद नहीं कथन करते तौं द्व्यणुकरूप कार्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? दो परमाणुवोंके संयोगतैं उत्पन्न भया जो द्व्यणुकरूप कार्य है सो द्व्यणुक मनतैं भिन्न

भी है तथा अणुत्वपरिमाणवाला भी है। ता द्व्यणुकविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता अणुत्वपरिमाणका 'परम' यह विशेशण कथन कऱ्या है तहां ता द्व्यणुक विषे मध्यम अणुत्व परिमाणके विद्यमानहूए भी परम अणुत्व परिमाण ता द्व्यणुकविषे रहता नहीं। यातैं ता द्व्यणुकविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'मनोभिन्नत्वे सति परिमाणवान् परमाणुः' इतनामात्रहीं जो ता परमाणुका लक्षण करते ता लक्षणविषे परमाणुत्व यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणु मन इन दोनोंकूं छोडिकै सर्व द्रव्यमात्रविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? सो परिमाण गुण पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहै है। तथा ते पृथिवीआदिक अष्टद्रव्य मनतैं भिन्न भी हैं। ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'परमअणुत्व' यह परिमाणका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे परिमाणके विद्यमानहूए भी सो परम अणुत्व परिमाण केवल परमाणु मन विषे हीं रहे है। दूसरे किसी द्रव्य विषे सो परमअणुत्व परिमाण रहता नहीं। यातैं तिन परमाणुवोंतैं भिन्न द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'मनोभिन्नः परमाणुः' इतनामात्र हीं जो ता परमाणुका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'परमाणुत्वपरिमाणवान्' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणु मनतैं भिन्न द्रव्यगुणादिक सर्वपदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'परमाणुत्वपरिमाणवान्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता परमाणुमनतैं भिन्न दूसरा कोई भी पदार्थ ता परमाणुत्वपरिमाणवाला नहीं है। यातैं तिन द्रव्यादिक पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। इतनैंपर्यंत तिन परमाणुवोंका लक्षण निरूपण कऱ्या ॥

परमाणुओंकी सिद्धि—अब अनुमान प्रमाण करिकै तिन परमाणुवोंकी सिद्धि करे हैं। तहां भित्ति आदिकोंविषे स्थित छिद्रद्वारा जो गृहविषे सूर्यके किरण पडे हैं तिन किरणोंविषे स्थितहूए जो सर्वतैं सूक्ष्म रज प्रतीत होवै हैं सो रज त्र्यणुक कह्या जावै है, इसी त्र्यणुककूं त्रसरेणु भी कहे हैं तथा त्रुटि भी कहे हैं। **तत् त्र्यणुकं अवयवजन्यं चाक्षुषद्रव्यत्वात् घटवत्।** अर्थ यह—सो त्र्यणुक अवयवोंकरिकै जन्य होणेयोग्य है चाक्षुषद्रव्य होणेतैं। अर्थात् चक्षुइंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानका विषय द्रव्य होणेतैं। जो जो चाक्षुषद्रव्य होवै है सो सो अवयवोंकरिकै जन्य हीं होवै है। जैसे घट चाक्षुषद्रव्य है यातैं कपालरूप अवयवों करिकै जन्य भी है, तैसे सो त्र्यणुक भी चाक्षुष द्रव्य है। यातैं सो त्र्यणुक भी अवयवोंकरिकै जन्य हीं होवैगा। तहां इस अनुमानविषे 'द्रव्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतु विषे 'चाक्षुष' यह पद नहीं कथन करते तौं सो हेतु आकाशादिक नित्य द्रव्योंविषे व्यभिचारी होता। काहेतैं ? आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन, परमाणु इन नित्यद्रव्योंविषे सो अवयवजन्यत्वरूप साध्य तौं है नहीं परंतु सो द्रव्यत्वरूप हेतु तिन आकाशादिकों

विषे भी है । यातैं ता अवयवजन्यत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन आकाशादिक नित्य-द्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं सो द्रव्यत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषकी निवृत्ति करणेवासतै ता हेतुविषे 'चाक्षुष' यह द्रव्यका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां तिन आकाशादिक द्रव्योंविषे महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपके अभावतैं सो चाक्षुषत्व है नहीं । यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता अनुमानाविषे 'चाक्षुषत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'द्रव्य' यह पद नहीं कथन करते तौं चाक्षुषज्ञानके विषय गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? तिन गुणकर्मादिकोंविषे सो अवयवजन्यत्वरूप साध्य तौं है नहीं । परंतु सो चाक्षुषत्वरूप हेतु तिन गुणकर्मादिकों विषे भी विद्यमान है । यातैं ता अवयवजन्यत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन गुणकर्मादिकों विषे वृत्ति होणेतैं सो चाक्षुषत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता हेतुविषे 'द्रव्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन गुणकर्मा-दिकोंविषे सो द्रव्यत्व है नहीं । यातैं तिन गुणकर्मादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै तिस त्र्यणुकके अवयव सिद्ध होवै हैं । ते त्र्यणुकके अवयव हीं द्व्यणुक कह्ये जावै हैं । काहेतैं ? परस्परसंयुक्त तीन द्व्यणुकोंतैं हीं त्र्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै है । यातैं ते तीन द्व्यणुक ता त्र्यणुकरूप कार्यके आरंभक अवयव हैं इस प्रकार ता द्व्यणुककी सिद्धितैं अनंतर पुनः या प्रकारका अनुमान करणा । **सद्व्यणुकः अवयवजन्यः महदारम्भकत्वात् कपालवत्** । अर्थ यह–सो द्व्यणुक भी अवयवों करिकै जन्य होणे योग्य है, महत्त्वपरिमाणवाले त्र्यणुकरूप द्रव्यका आरंभक होणेतैं । जो जो द्रव्य महत्त्वपरिमाणवाले द्रव्यका आरंभक होवै है सो सो द्रव्य अवयवोंकरिकै जन्य हीं होवै है । जैसे कपालरूप द्रव्य महत्त्वपरिमाणवाले घटरूप द्रव्यका आरंभक है । यातैं सो कपालरूप द्रव्य कपालिकारूप अवयवोंकरिकै जन्य हीं है, तैसे महत्त्वपरिमाणवाले त्र्यणुकरूप द्रव्यका आरंभकपणा तिन द्व्यणुकोंविषे भी है । यातैं ते द्व्यणुक भी किसी अवयवोंकरिकै जन्य हीं होवैंगे इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै ता द्व्यणुकके अवयव सिद्ध होवै हैं । ते द्व्यणुकके आरंभक अवयव हीं परमाणु कह्ये जावै हैं । काहेतैं ? परस्पर संयुक्त दो परमाणुवोंतैं हीं ता द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै है । यातैं ते दोनों परमाणु हीं ता द्व्यणुकके आरंभक अवयव हैं और ते परमाणु किसी अवयव करिकै जन्य होते नहीं, किंतु ते परमाणु अजन्य हीं होवै हैं । अवयव जन्यकी –**शंका**–जैसे उक्त अनुमान प्रमाण करिकै ता द्व्यणुकरूप कार्यविषे अवयवजन्यत्व सिद्ध कऱ्या है तैसे ता अनुमान प्रमाण करिकै तिन परमाणुवोंविषे भी सो अवयवजन्यत्व हीं सिद्ध होवै है । ता अनुमानका यह आकार है । **परमाणुः अवयवजन्यः कार्यद्रव्यसमवायित्वात् कपालवत्** । अर्थ यह–सो पर-

माणु अवयवोंकरिकै जन्य होणे योग्य है। द्वचणुकरूप कार्यद्रव्यका समवायिकारण होणेतैं जो जो द्रव्य कार्यद्रव्यका समवायिकारण होवै है सो सो द्रव्य अवयवोंकरिकै जन्य हीं होवै है, जैसे कपाल घटरूप कार्यद्रव्यका समवायिकारण होणेतैं कपालिकारूप अवयवोंकरिकै जन्य हीं होवै हैं तैसे ते परमाणु भी ता द्वचणुकरूप कार्यद्रव्यका समवायिकारण होणेतैं किसी अवयवोंकरिकै अवश्य जन्य होवैंगे इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै तिन परमाणुवोंविषे भी सो अवयवजन्यत्व हीं सिद्ध होवै है। यातैं ते परमाणु अवयवोंकरिकै जन्य नहीं होवै हैं, यह करणा असंगत है । निरवयवत्वका साधक–**समाधान**–इस प्रकारके अनुमान करिकै जो तिन परमाणुवोंविषे अवयवजन्यत्व अंगीकार करिये तौं तिन परमाणुवोंके आरंभक अवयवोंविषे भी ता परमाणुरूप कार्यद्रव्यका समवायिकारणत्वरूप हेतु करिकै अवयवजन्यत्व हीं सिद्ध होवैंगा, आगे तिन अवयवोंविषे भी ता हेतुकरिकै अवयवजन्यत्व हीं सिद्ध होवैंगा। इस प्रकारतैं विश्रामतैं रहित अवयवोंकी धारा मानणेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी । ता अनवस्थादोषकी निवृत्ति करणे वासतैं जबी दूर जाइकै किसी अवयवोंकूं अवयवोंकरिकै जन्य नहीं मानोंगे तबी तिन अजन्य अवयवोंविषे हीं सो कार्यद्रव्यका समवायित्वरूप हेतु व्यभिचारी होवैंगा । बीजांकुर न्यायतैं अनवस्थाविषे अदोषरूपता–**शंका**–जैसे बीजतैं अंकुर होवै है ता अंकुर तैं पुनः बीज होवै है ता बीजतैं पुनः अंकुर होवै हैं । इस प्रकार विश्रामतैं रहित तिन बीज अंकुरोंकी धारा मानणेविषे जो अनवस्था प्राप्त होवै है सा अनवस्था किसी भी शास्त्रवालेनैं दोषरूप मानी नहीं । तथा जैसे पुण्यपापरूप अदृष्टतैं शरीर उत्पन्न होवै है ता शरीरतैं पुनः अदृष्ट उत्पन्न होवै है, ता अदृष्टतैं पुनः शरीर उत्पन्न होवै है। या प्रकार विश्रामतैं रहित तिन अदृष्टशरीरोंकी धारा मानणेविषे जो अनवस्था प्राप्त होवै है सा अनवस्था भी किसी शास्त्रकारनैं दोषरूप मानी नहीं तैसे तिन परमाणुवोंके अवयवोंकी विश्रामतैं रहित धारा मानणेविषे जो अनवस्थाकी प्राप्ति होवै है सा अनवस्था भी दोषरूप नहीं होवैंगी । दूसरा **समाधान**–जा अनवस्था किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै सिद्ध होवै है सा अनवस्था हीं दोषरूप नहीं होवै है और जिस अनवस्थाविषे कोई भी प्रमाण नहीं होवै है सा अनवस्था तौं दोषरूप हीं होवै है। तहां तिन बीज अंकुरोंकी अनवस्थाविषे जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है तथा तिन दृष्ट शरीरोंकी अनवस्थाविषे जैसे शास्त्रप्रमाण है तैसे तिन परमाणुवोंके अवयवोंकी अनवस्थाविषे कोई प्रमाण है नहीं, उलटा प्रत्यक्षप्रमाणका विरोध हीं ता अनवस्थाका बाधक है सो प्रकार दिखावै है। तहां जो वादी किसी द्रव्यविषे अवयवोंके धाराका विश्राम नहीं अंगीकार करिकै तिन अवयवोंकी अनवस्था अंगीकार करै है तिस वादीके मतविषे सुमेरुपर्वतका तथा सर्षपके दाणेका तुल्यपरिमाण होणा चाहिये । काहेतैं ? द्रव्यनिष्ठ परिमाणके उत्कर्षका तथा अपकर्षका प्रयोजक ता द्रव्यके आरंभक अवयवोंकी संख्या हीं होवै है । तहां न्यूनसंख्या-

वाले अवयवोंकरिकै आरब्धद्रव्यतैं अपकर्षपरिमाणवाला होवै है और अधिकसंख्यावाले अवयवोंकरिकै आरब्धद्रव्य उत्कर्षपरिमाणवाला होवै है । सा परिमाणके उत्कर्ष अपकर्षका प्रयोजक अवयवोंकी अधिकन्यूनसंख्या अवयवोंकी अनवस्थामानणेविषे संभवती न हीं । काहेतैं ? जैसे सो सुमेरुपर्वत असंख्यात अवयवों करिकै आरब्ध है तैसे सो सर्षपका दाणा भी असंख्यात अवयवों करिकै आरब्ध है । यातैं ता सुमेरुपर्वतका तथा ता सर्षपके दाणेका तुल्य परिमाण होणा चाहिये । सो प्रत्यक्ष प्रमाणतैं विरुद्ध है और ता सुमेरुपर्वतके अवयवोंकी धारा तथा ता सर्षपके अवयवोंकी धारा जो परमाणुपर्यंत हीं अंगीकार करिये ता परमाणुतैं आगे सा अवयवधारा नहीं अंगीकार करीये तौं सो मेरुसर्षपकी तुल्यतारूप दोष प्राप्त होवै नहीं । काहेतैं ? सो सर्षपका दाणा तौं न्यूनसंख्यावाले अवयवों करिकै आरब्ध है और सो सुमेरुपर्वत अधिकसंख्यावाले अवयवों करिकै आरब्ध है । या कारणतैं ता सर्षपके दाणेविषे तौं अपकर्ष परिमाण है और ता सुमेरुपर्वतविषे उत्कर्ष परिमाण है ॥

महत्त्वकी प्राप्तिरूप दोष—किंवा विश्रामतैं रहित अवयवोंकी अनवस्था मानणेविषे केवल मेरु सर्षपकी तुल्यतारूप दोष हीं नहीं प्राप्त होवै है, किंतु तिन परमाणुवोंविषे महत्त्वकी प्राप्तिरूप दोष भी प्राप्त होवै है। काहेतैं ? जो द्रव्य सावयव द्रव्य करिकै आरब्ध होवै है सो द्रव्य महत्त्व परिमाणवाला हीं होवै है, जैसे त्र्यणुकरूप द्रव्य द्व्यणुकरूप सावयवद्रव्य करिकै आरब्ध है । यातैं सो त्र्यणुक ता महत्त्वपरिमाणवाला भी है, तैसे अवयवोंकी अनवस्थापक्षविषे सो परमाणु भी सावयवद्रव्य करिकै हीं आरब्ध होवैंगा । यातैं सो परमाणु भी ता त्र्यणुककी न्यांई ता महत्त्वपरिमाणवाला अवश्य होवैंगा सो अत्यंत विरुद्ध है । काहेतैं ? तिन परमाणुवोंविषे जो महत्त्वपरिमाण अंगीकार करीये तौं तिन परमाणुवोंका भी ता त्र्यणुककी न्यांई चाक्षुष प्रत्यक्ष होणा चाहिये और तिन परमाणुवोंका चाक्षुषप्रत्यक्ष किसीकूं भी होता नहीं, या कारणतैं भी तिन अवयवोंकी अनवस्था अंगीकार करणे योग्य नहीं है, किंतु मेरु, सर्षप, घट, पट इत्यादिक जितनैंकी अवयवी हैं तिनोंके अवयवोंकी धाराका किसीबिषे विश्राम अंगीकार कऱ्या चाहिये। और जिसविषे ता अवयवधाराका विश्राम होवै है सोई हीं परमाणु हैं ॥ नित्यत्वपर—शंका—सुमेरु आदिक अवयवीयोंके अवयवधाराका जहां विश्राम होवै है सो परमाणुरूप होवौ तथापि ता विश्रामके आश्रयरूप परमाणुवोंके नित्यपणेविषे कोई प्रमाण नहीं है ॥ समाधान—तिस अवयवधाराके विश्रामका अवधिभूत जे परामाणु हैं तिन परमाणुवोंकूं जो अनित्य मानिये तौं असमवेतभावकार्यकी उत्पत्ति मानणी होवैंगी अर्थात् ता परमाणुरूप भावकार्यकी समवायिकारणतैं विना हीं उत्पत्ति मानणी होवैंगी सो अत्यंत विरुद्ध है। काहेतैं ? जो जो भावकार्य होवै है सो सो समवायिकारण, असमवायिकारण, निमित्त कारण इन तीन कारणोंकरिकै हीं जन्य होवै है । समवायिकारणतैं विना कोई भी भावकार्य उत्पन्न होता नहीं । तहां प्रध्वंसा

भावरूपकार्य तौं समवायिकारणतैं तथा असमवायिकारणतैं विना हीं केवल निमित्तकारणमात्रतैं हीं उत्पन्न होवै है । यातैं इहां भावकार्यविषे हीं तीन कारणों करिकै जन्यता कथन करी है और ते परमाणु भी भावरूप हैं । यातैं तिन परमाणुवोंकूं जो अनित्य मानिये तौं समवायिकारणतैं विना हीं तिन परमाणुरूपभावकार्यकी उत्पत्ति मानणी होवैंगी और इस असमवेत भावकार्यकी उत्पत्ति प्रसंगरूप दोषके निवृत्त करणे वासतै जो तिन परमाणुवोंकूं भी द्व्यणुकादिकोंकी न्यांई किसी अवयवों करिकै जन्य मानिये तौं सो पूर्व उक्त मेरुसर्षपविषे तुल्यपरिमाणकी प्राप्तिरूप दोष प्राप्त होवैंगा और तिन परमाणुवोंकूं नित्यमानणेविषे ते दोनों दोष प्राप्त होवै नहीं । यातैं तिन परमाणुवोंकूं नित्य हीं मानणा योग्य है ॥ अणुत्वपर—**शंका**—इस प्रकारकी युक्ति करिकै तिन परमाणुवोंविषे नित्यरूपताकी सिद्धि होवौ तथापि तिन परमाणुवोंके परमअणुत्वविषे कौन प्रमाण है ॥ **समाधान**—जैसे महत्त्वपरिमाणकी तारतम्यताका आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे विश्राम होवै है तैसे अणुत्वपरिमाणकी तारतम्यताका भी किसीविषे विश्राम मान्या चाहिये, सो अणुत्वपरिमाणके तारतम्यताका विश्राम परमाणुवोंविषे हीं होवै है । यातैं तिन परमाणुवोंविषे सो परमअणुत्व संभवै है । तात्पर्य यह—व्रीहियवादिकोंके महत्त्वपरिमाणतैं घटादिकोंका महत्त्वपरिमाण अधिक होवै और तिन घटादिकोंके महत्त्वपरिमाणतैं मठादिकोंका महत्त्वपरिमाण अधिक होवै है । और तिन मठादिकोंके महत्त्वपरिमाणतैं पर्वतादिकोंका महत्त्वपरिमाण अधिक होवै है इस प्रकार ता महत्त्वपरिमाणकी सापेक्ष न्यूनअधिकताका आकाशादिक विभुद्रव्योंके महत्त्वपरिमाणविषे जाइकै विश्राम होवै है । तिन आकाशादिकोंके महत्त्वपरिमाणतैं अधिक किसीभी द्रव्यका महत्त्वपरिमाण होवै नहीं । या कारणतैं तिन आकाशादिकोंके महत्त्व परिमाणकूं परममहत्त्वकहे हैं । तैसे—घटादिकोंके परिमाणतैं व्रीहियवादिकोंकापरिमाण अल्प होवै है । और तिस व्रीहियवादिकोंके परिमाणतैं भी सर्षपका पीरमाण अल्प होवै है और तिस सर्षपके परिमाणतैं भी त्र्यणुकका परिमाण अल्प होवै है । इस प्रकार ता अणुत्वपरिमाणकी सापेक्ष न्यूनअधिकताका तिन परमाणुवोंके परिमाणविषे जाइकै विश्राम होवै है । तिस परमाणुके अणुत्व परिमाणतैं अधिक किसीभी द्रव्यका अणुत्व परिमाण होवै नहीं । यातैं शास्त्रवेत्ता पुरुष तिस परमाणुके अणुत्वपरिमाणकूं परमअणुत्व कहेहैं । इस प्रकारकी युक्ति करिकै तिन परमाणुवोंविषे परमअणुत्व सिद्ध होवै है । त्र्यणुकपर विश्रामकी—**शंका**—ता अणुत्वपरिमाणके तारतम्यताका त्र्यणुकविषे हीं विश्राम क्युं नहीं होवै । **समाधान**—पूर्व चाक्षुषद्रव्यत्वरूप हेतुकरिकै ता त्र्यणुकविषे अवयवजन्यता सिद्ध करि आये हैं । तथा महदारंभकत्वरूप हेतु करिकै ता त्र्यणुकके अवयवरूप द्व्यणुकोंविषे भी सा अवयवजन्यता सिद्ध करि आये हैं । यातैं ता त्र्यणुकविषे तथा द्व्यणुकविषे तिस अणुत्वपरिमाणकी तारतम्यताका विश्राम होवै नहीं ।

यातैं परमाणुकूं तथा द्व्यणुककूं न अंगीकार करिकै ता त्र्यणुकविषे तिस अणुत्वपरिमाणकी तारतम्यताका विश्राम मानणेहारे दीधितिकारका मत असंगत है इति ।

शास्त्रप्रमाण—इतनैंपर्यंत अनुमानप्रमाण करिकै तिन परमाणुवोंकी सिद्धि करी । अब शास्त्रप्रमाणकरिकै भी तिन परमाणुवोंकी सिद्धि करे हैं । तहां स्मृति—**जालसूर्यमरीचिस्थं यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । तस्य षष्ठतमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥** अर्थ यह—भित्ति आदिकोंविषे स्थित छिद्र द्वारा गृहविषे जे सूर्यके किरण पडे हैं तिन किरणोंविषे जे सूक्ष्मरज प्रतीत होवै हैं ते रज त्र्यणुक कह्ये जावै हैं । तिस त्र्यणुकरूप रजका जो षष्ठभाग है सो परमाणु कह्या जावै है इति । यह स्मृति वचन तिन परमाणुवोंविषे प्रमाणरूप है । तथा **यस्मान्नाल्पतरोऽस्ति यः परमोल्पस्तत्र निवर्त्तते । यतश्च नाल्पीयोस्ति तं परमाणुं प्रचक्ष्महे । चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा । परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥** इत्यादिक अनेक शास्त्रोंके वचन तिन परमाणुवोंविषे प्रमाणरूप हैं । यातैं पूर्व उक्त लक्षण प्रमाणके विद्यमान हूए ते नित्यपरमाणु अवश्य अंगीकार करणेयोग्य हैं इति ॥ १ ॥ इति पृथिवी निरूपणं समाप्तम् ॥

जलका निरूपण ।

अब जलका निरूपण करे हैं । लक्षण—तहां **शीतस्पर्शवत् जलम् । अथवा जलत्वजातिमत् जलम् । २ ।** पहिलेका विवेचन—अब इन दोनों लक्षणोंविषे प्रथम लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै शीतस्पर्शवाला होवै है सो द्रव्य जल कह्या जावै है । तहां समवायसंबंधकरिकै सो शीतस्पर्श एकजलमात्रविषे हीं रहे है ता जलतैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्य विषे रहता नहीं । यातैं यह शीतस्पर्शवत्त्वरूप जलका लक्षण संभवै है । तहां 'स्पर्शवत् जलम्' इतनामात्र हीं जो ता जलका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'शीत' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी, तेज, वायु इन तीन द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे जलविषे सो स्पर्शगुण रहे है तैसे पृथिवी, तेज, वायु इन तीनों विषे भी सो स्पर्शगुण रहे है ता अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे तिस स्पर्शका 'शीत' यह विषेशण कथन कर्‍या है । तहां पृथिवी, तेज, वायु इन तीनोंविषे यद्यपि सो स्पर्शगुण रहे है तथापि सो स्पर्श शीत नहीं है । किंतु पृथिवी वायु इन दोनों विषे तौं अनुष्णाशीत स्पर्श रहे है और तेजविषे उष्णस्पर्श रहे है यातैं पृथिवी, तेज, वायु इन तीनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं ।

शीतस्पर्शवत्त्वपर **शंका**—यह शीतस्पर्शवत्त्वरूप जलका लक्षण संभवता नहीं । काहेतैं ? यह पुष्प शीतल है यह चंदन शीतल है यह शिलातल शीतल है या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है ता प्रतीतितैं तिस पुष्पचंदनादिक पृथिवीविषे भी सो शीतस्पर्श सिद्ध होवै है । यातैं पृथिवीरूप तिन पुष्पचंदनाशिलादिकोंविषे ता जलके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है तथा

चंद्रमारूप तेजविषे भी सो शीतस्पर्श प्रतीत होवै है । यातैं ता चंद्रमारूप तेजविषे भी ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है, किंवा यह शीतस्पर्शवत्त्व रूप जलका लक्षण केवल ता अतिव्याप्ति दोषवाला हीं नहीं है, किंतु किसी जलविशेषविषे अव्याप्तिदोषवाला भी है । काहेतैं? किसी पर्वततैं निकस्याहूआ कोई जल अत्यंत उष्ण होवै है, ता उष्णजलविषे ता शीतस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । इस प्रकार अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति इन दोनों दोषोंवाला होणेतैं सो शीतस्पर्शवत्त्वरूप जलका लक्षण संभवता नहीं । उसका—**समाधान**—जलके संयोगसंबंध हूए हीं तिन पुष्प, चंदन, शिलातल, चंद्रमा आदिकोंविषे सो शीतस्पर्श प्रतीत होवै है । ता जलके संयोगसंबंधके अभावहूए तिन पुष्पादिकोंविषे सो शीतस्पर्श प्रतीत होता नहीं । इस प्रकारके अन्वयव्यतिरेक करिकै सो जलका शीतस्पर्श हीं स्वसमवायिसंयोग संबंध करिकै तिन पुष्पचंदनादिकोंविषे प्रतीत होवै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता शीतस्पर्शका ग्रहण करणा । ता शीतस्पर्शका समवायिकारण जो जल है ता जलका तिन पुष्पचंदनादिक पार्थिव द्रव्योंके साथि संयोगसंबंध है । इस प्रकारके परंपरासंबंध करिकै सो जलका शीतस्पर्श हीं तिन पुष्पचंदनादिकोंविषे प्रतीत होवै है, कोई समवायसंबंध करिकै तिन पुष्पचंदनादिकोंविषे सो शीतस्पर्श नहीं है । यातैं तिस पुष्पचंदनादिक पार्थिवद्रव्याविषे तथा चंद्रादिरूप तैजसद्रव्यविषे ता शीतस्पर्शवत्त्वरूप जलके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । और किसी पर्वतके जलविषे जो उष्णता प्रतीत होवै है सो भी उष्णस्पर्शवाले अग्निके संयोगसंबंधतैं हीं प्रतीत होवै है अर्थात् ता जलविषे मिल्ये हूए जे अग्निके सूक्ष्म अंश हैं तिन अंशोंके उष्णस्पर्श करिकै सो जलका शीतस्पर्श अभिभवकूं प्राप्त होवै है । यातैं सो जलका शीतस्पर्श लोकोंकूं प्रतीत होता नहीं, किंतु स्वसमवायि संयोगसंबंध करिकै सो अग्निका उष्ण स्पर्श हीं ता जलविषे प्रतीत होवै है, ईहां स्वशब्द करिकै ता उष्णस्पर्शका ग्रहण करणा ता उष्णस्पर्शका समवायिकारण जो अग्नि है ता अग्निका संयोगसंबंध तिस जलके साथि है । इस प्रकारके परंपरासंबंध करिकै सो अग्निका उष्णस्पर्श हीं ता जलविषे प्रतीत होवै है या कारणतैं हीं तिस तप्तकुंडतैं बाह्यनिकासिके किसी पात्रविषे राख्याहूआ सो जल किंचित्काल पीछे शीतल होइ जावै है । यातैं ता जलविषे तिस शीतस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं ।

### शीतस्पर्श वत्त्वलक्षणका अन्य प्रकारतैं निरूपण ।

जो जल प्रथमक्षणविषे उत्पन्न होइके द्वितीयक्षणविषे नष्ट होइ गया है ता उत्पन्नविनष्ट जलविषे तिस शीतस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैगी । काहेतैं ? प्रथमक्षणविषे तौं द्रव्य निर्गुण हीं उत्पन्न होवै है यह वार्त्ता पूर्व द्रव्यके लक्षणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं यातैं प्रथम उत्पत्तिक्षणविषे तौं ता जलविषे सो शीतस्पर्शगुण उत्पन्न होवै नहीं और जिस द्वितीयक्षण विषे ता जलविषे ता शीतस्पर्शगुणनैं उत्पन्न होणा था तिस द्वितीयक्षणविषे सो जल नष्ट हीं होइ

गया ऐसे उत्पन्नविनष्ट जलविषे ता शीतस्पर्शका अभाव होणेतैं ता लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैंगी तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न जलविषे भी ता शीतस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैंगी । ऐसी शंकाके प्राप्त हूए अब—ता शीत स्पर्शवत्त्वरूप लक्षणका अन्य प्रकारतैं निर्वचन करे हैं—**शीतस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् जलम् ।** अर्थ यह—शीतस्पर्शके समानाधिकरण ऐसी जा द्रव्यत्वजातिकी व्याप्य जाति है ता जातिवाला द्रव्य जल कह्या जावै है । तहां श्रीगंगादिकोंके जलविषे सो शीतस्पर्श समवायसंबंध करिकै रहे है और ता जलविषे जलत्वजाति भी समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं सा जलत्वजाति ता शीतस्पर्शके समानाधिकरण कही जावै है तथा सा जलत्वजाति द्रव्यत्व जातिका व्याप्य भी है ऐसी जलत्वजाति सर्वजलों विषे रहे है अर्थात् ता उत्पन्नविनष्ट जलविषे तथा ता उत्पत्ति क्षणावच्छिन्नजलविषे भी सा जलत्वजाति रहे है । यातैं इस उक्तलक्षणकी ता उत्पन्नविनष्ट जलविषे तथा ता उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न जलविषे अव्याप्ति होवै नहीं । तहां 'जातिमत् जलम्' इतनामात्र हीं जो ता जलका लक्षण करते तौं गुणपदार्थविषे तथा कर्मपदार्थविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो जल जलत्वादिक जातिवाला है । तैसे सो गुणकर्मभी सत्ताजातिवाला है तथा गुणत्वकर्मत्व जातिवाला है ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'द्रव्यत्वव्याप्य' यह जातिका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां सत्ताजाति तथा गुणत्वकर्मत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य नहीं हैं । काहेतैं ? जा जाति जिस जातिके किंचित् अधिकरण विषे रहे है, किंचित् अधिकरणविषे नहीं रहे है सा जाति हीं तिस जातिका व्याप्य होवै है । जैसे पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे रहणेहारी द्रव्यत्वजातिके जलरूप किंचित् अधिकरणविषे तौं जलत्वजाति रहे है और पृथिवी आदिक किंचित् अधिकरणविषे सा जलत्वजाति रहती नहीं । यातैं सा जलत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्यजाति कही जावै है । इस प्रकार पृथिवीत्व, तेजस्त्व, वायुत्व, आत्मत्व, मनस्त्व यह जातियां भी ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य जातियां कही जावै हैं । और जा जाति जिस जातिके किंचित् अधिकरण विषे भी रहती नहीं । सा जाति तिस जातिका व्याप्यजाति कही जावै नहीं । जैसे गुणमात्रवृत्ति गुणत्वजाति तथा कर्ममात्रवृत्ति कर्मत्वजाति किसी भी द्रव्य विषे रहती नहीं । यातैं सा गुणत्वजाति तथा कर्मत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्यजाति कही जावै नहीं । और सत्ता जाति यद्यपि नवद्रव्योंविषे रहे है तथापि सा सत्ताजाति ता द्रव्यत्वजातितैं गुणकर्मरूप अधिक देशविषे भी रहे है । यातैं सा सत्ताजाति भी ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य नहीं है । यातैं ता जलके लक्षणविषे 'द्रव्यत्वव्याप्य' या विशेषणके कहणे करिकै ता सत्ताजातिकूं लैके तथा ता गुणत्वकर्मत्वजातिकूं लैके ता लक्षणकी ता गुणकर्मविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् जलम्' इतनामात्र ता जलके लक्षण करणेतैं यद्यपि ता लक्षणकी

ता गुणकर्मविषे अतिव्याप्ति नहीं होवै है तथापि ता लक्षणकी आत्मा, मन इन दोनों विषे अतिव्याप्ति होवै है । काहेतें ? जैसे सा जलत्वजाति ता द्रव्यत्व जातिका व्याप्य है तैसे सा आत्मत्व, मनस्त्व जाति भी ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य हीं है । ऐसी द्रव्यत्व-व्याप्य आत्मत्व-जातिवाले आत्माविषे तथा मनस्त्वजातिवाले मनविषे ता जलके लक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्पर्शसमानाधिकरण' यह ता जातिका विशेषण कथन कन्या है । तहां आत्माविषे तथा मनविषे सो स्पर्शगुण रहता नहीं । यातैं सा आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजाति स्पर्शसमानाधिकरण नहीं हैं यातैं ता आत्मत्वजातिकूं लैके आत्माविषे तथा ता मनस्त्वजातिकूं लैके मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा 'स्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् जलम्' इतनामात्रहीं जो ता जलका लक्षण करते ता लक्षणविषे ता स्पर्शका 'शीत' यह विशेषण नहीं कथन करते । तौं पृथिवी, तेज वायु इन तीनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो स्पर्शगुण पृथिवी जल तेज वायु इन च्यारोंविषे रहे है । यातैं जैसे सा जलत्वजाति ता स्पर्शके समानाधिकरण है तैसे सा पृथिवीत्व तेजस्त्व वायुत्व जाति भी ता स्पर्शके समानाधिकरण हीं है, ऐसी स्पर्श समानाधिकरण पृथिवीत्व तेजस्त्व वायुत्व जातिकूं लैकै ता पृथिवी तेज वायुविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता स्पर्शका 'शीत' यह विशेषण कथन कन्या है तहां सो पृथिवी तेज वायुका स्पर्श शीत नहीं है, किंतु तेजका तौं उष्णस्पर्श होवै है और पृथिवी वायुका अनुष्णाशीत स्पर्श होवै है । यातैं पृथिवीत्व तेजस्त्व वायुत्व जातियां ता स्पर्शगुणके समानाधिकरण हूईयां भी ता शीतस्पर्शगुणके समानाधिकरण हैं नहीं । काहेतैं ? जिस जलविषे सो शीतस्पर्श रहे है तिस जलविषे ते पृथिवीत्वादिक जातियां नहीं रहे हैं और जिन पृथिवी आदिकोंविषे ते पृथिवीत्वादिक जातियां रहे हैं तिन पृथिवी आदिकोंविषे सो शीतस्पर्श नहीं रहे है । इस रीतिसैं ते पृथिवीत्वादिक जातियां ता शीतस्पर्शके समानाधिकरण नहीं है । यातैं ता स्पर्शका शीतविशेषणके कहणेतैं तिन पृथिवी आदिकोंविषे ता जलके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'शीतस्पर्शसमानाधिकरण जातिमत् जलम्' इतनामात्र हीं जो ता जलका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्रव्यत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं सत्ताजातिकूं लैकै गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती तथा द्रव्यत्वजातिकूं लैके पृथिवी आदिक सर्वद्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जिस जलविषे सो शीतस्पर्श गुण रहे है तिस जलविषे सा सत्ताजाति तथा द्रव्यत्व जाति भी रहे है । यातैं सा सत्ताजाति तथा द्रव्यत्वजाति भी ता शीतस्पर्शके समानाधिकरण हीं है ता सत्ताजातिकूं लैके गुणकर्मविषे तथा ता द्रव्यत्वजातिकूं लैके पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे

'द्रव्यत्वव्याप्य' यह ता लक्षणघटकजातिका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सा सत्ताजाति तथा द्रव्यत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिके अन्यूनदेशवृत्ति होणेतैं ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य नहीं है। यातैं ता जलके लक्षणकी ता गुणकर्मविषे तथा तिन पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं। यातैं सो पूर्व उक्त जलका लक्षण निर्दोष है इति। इतनैं पर्यंत 'शीतस्पर्शवत् जलम्' इस प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण कऱ्या॥

द्वितीयलक्षणका निरूपण। अब **जलत्वजातिमत् जलम्**। इस द्वितीयलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै जलत्वजातिवाला होवै है सो द्रव्य जल कह्या जावै है। तहां समवायसंबंध करिकै सा जलत्वजाति केवल जलमात्रविषे हीं रहे है। ता जलतैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे रहै नहीं। यातैं सो जलत्वजातिमत्त्वरूप जलका लक्षण संभवै है इति। जलत्वजातिकी सिद्धि—**शंका**—यह जलत्वजातिमत्त्वरूप जलका लक्षण तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि होवै। ता जलत्वजातिकी सिद्धितैं विना सो जलका लक्षण संभवता नहीं। यातैं किसी प्रमाण करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि अवश्य करी चाहिये। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब प्रत्यक्षप्रमाण—करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि करे हैं। तहां नदी, कूप, तडाग, समुद्र इत्यादिकोंके जलोंविषे 'इदं जलं इदं जलम्' या प्रकारकी एकधर्मप्रकारक एकाकार प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है। सा एकाकारप्रतीति तिन सर्वजलोंविषे अनुगत जलत्वजातिरूप एकविषय करिकै हीं होवै है। यातैं 'इदं जलं इदं जलम्' यह लोकोंका प्रत्यक्ष हीं ता जलत्वजातिविषे प्रमाण है इति। अनुमान—'इदं जलम्' या प्रकारकी प्रतीति यद्यपि प्रसिद्ध नदीकूपादिकोंके जलोंविषे तौं होवैं है। तथापि परमाणुरूप अतिइंद्रियजलविषे तथा रसनइंद्रियरूप अतिइंद्रिय जलविषे सा प्रतीति किसीकूं भी होती नहीं। यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै तिस अतिइंद्रिय जलविषे ता जलत्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब अनुमानप्रमाण करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि करे हैं ता अनुमानका यह आकार है। **जलनिष्ठा या स्नेहसमवायिकारणता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् पटनिष्ठकार्य्यता निरूपित तंतुनिष्ठसमवायिकारणतावत्**। अर्थ यह—जलविषे रही हूई जा स्नेहगुणकी समवायिकारणता है सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणे योग्य है। कारणता होणेतैं जा जा कारणता होवै है सा सा कारणता किसी धर्मकरिकै अवच्छिन्न हीं होवै है, निरवच्छिन्न कोई कारणता होती नहीं। जैसे तंतुवोंविषे रही हूई पटकी समवायिकारणता तंतुत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न होवै तैसे सा जलनिष्ठ स्नेहगुणकी समवायिकारणता भी किसी धर्मकरिकै अवच्छिन्न अवश्य होवैंगी। ता कारणताका अवच्छेदकधर्म सा जलत्वजाति हीं संभवै है दूसरा कोईधर्म ता कारणताका अवच्छेदक संभवता नहीं। काहेतैं? जो धर्म जिस

कारणताके न्यूनदेशविषे तथा अधिकदेशविषे नहीं रहे है । किंतु ता कारणताके समानदेशविषे रहे है, सो धर्म हीं ता कारणताका अवच्छेदक होवै है ता कारणतातैं न्यून अधिकदेशविषे वर्त्तणेहारा धर्म ता कारणताका अवच्छेदक होवै नहीं । तहां ता स्नेहगुणकी समवायिकारणता केवल एकजलमात्रविषे हीं रहे है । ता जलतैं भिन्न दूसरे किसी द्रव्यविषे रहै नहीं । और सा जलत्वजाति भी केवल ता जलमात्रविषे हीं रहै है । ता जलतैं भिन्न दूसरे किसी द्रव्यविषे रहै नहीं । यातैं ता जलत्वजातिविषे हीं ता स्नेहकी समवायिकारणताका अवच्छेदकपणा संभवै है । यद्यपि ता जलविषे सत्ताजाति तथा द्रव्यत्वजाति भी रहे है तथापि सा सत्ताजाति तथा द्रव्यत्वजाति केवल जलमात्रविषे हीं नहीं रहे है । किंतु पृथिवीआदिकोंविषे भी रहैं है । यातैं अधिकदेशवृत्ति होणेतैं सा सत्ताजाति तथा द्रव्यत्वजाति ता कारणताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं ॥

नित्यजलविषे जलत्वजातिकी सिद्धि— **शंका**—इस प्रकारके अनुमान करिकै यद्यपि द्व्यणुकादिरूप जन्य जलविषे ता जलत्वजातिकी सिद्धि होइ सके है तथापि परमाणुरूप नित्यजल विषे ता जलत्वजातिकी सिद्धि होइ सकती नहीं । काहेतैं ? परमाणुरूप नित्यजलविषे रहणेहारा सो स्नेहगुण नित्य हीं होवै है और द्व्यणुकादिरूप अनित्यजलविषे रहणेहारा सो स्नेहगुण अनित्य होवै है । और जो धर्म नित्य अनित्य दोनोंविषे रहे है सो धर्म कार्यताका अवच्छेदक होता नहीं । जैसे नित्यअनित्य परिमाणविषे रहणेहारा परिमाणत्व धर्म द्रव्यनिरूपित कार्यताका अवच्छेदक होवै नहीं तैसे सो स्नेहत्वधर्म भी ता नित्य अनित्यस्नेहविषे वृत्ति होणेतैं ता जलनिरूपित कार्यताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं । किंतु जन्यस्नेहत्वरूप धर्म हीं ता कार्यताका अवच्छेदक होवैगा । ता जन्यस्नेहकी समवायिकारणता केवल जन्यजलविषे हीं है । परमाणुरूप नित्य जलविषे है नहीं । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै ता परमाणुरूप नित्यजलविषे ता जलत्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैगी । **समाधान**— द्व्यणुकादिरूप जन्य जलविषे जन्य स्नेहकी समवायिकारणता रहे है । यह वार्त्ता तौ निर्विवाद है, यातैं प्रथम जन्यस्नेहकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जन्य जलत्व जातिकी सिद्धि करणी अर्थात् जन्यजलमात्रवृत्ति जलत्वजातिकी सिद्धि करणी । तिसतैं अनंतर ता जन्यजलत्वजाति करिकै अवच्छिन्न जन्यजलकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जन्य अजन्य सर्वजलवृत्ति शुद्ध जलत्वजातिकी सिद्धि करणी । तहां जैसे द्व्यणुकादिक अनित्य जलविषे द्व्यणुकादिक जन्य जलकी समवायिकारणता है । तैसे ता परमाणुरूप नित्य जलविषे भी ता द्व्यणुकरूप जन्य जलकी समवायिकारणता है यातैं ता परमाणुरूप नित्यजलविषे तथा द्व्यणुकादिरूप अनित्यजल विषे ता जन्य जलकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि संभवै है ॥ **शंका**—अंत्यावयवी रूपजलविषे

ता जन्यजलकी समवायिकारणता है नहीं। यातैं ता जन्य जलकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता अंत्यावयवीरूप जलविषे ता जलत्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैगी। **समाधान**—किसी भी जलविषे सो अंत्यावयवीपणा होता नहीं। किंतु सर्वजलमात्रविषे दूसरे जलके संयोग करिकै बृहत् जलके उत्पत्ति करणेकी योग्यता प्रत्यक्षसिद्ध है॥ फलोपधायकत्व और स्वरूप योग्य कारणताका लक्षण—**शंका**—जलमात्रविषे जो जन्यजलकी समवायिकारणता अंगीकार करैंगे तौं वरुणलोकविषे स्थित जलीयशरीरतैं भी किसी जन्य जलकी उत्पत्ति होणी चाहिये। तथा रसन इंद्रिय रूप जलतैं भी किसी जन्य जलकी उत्पत्ति होणी चाहिये और तिस शरीरइंद्रियरूप जलतैं किसी जन्य जलकी उत्पत्ति होती नहीं॥ **समाधान**—ता जलीय शरीरविषे तथा जलीय इंद्रियविषे यद्यपि ता जन्यजलकी फलोपधायकत्वरूप कारणता नहीं है तथापि स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता विद्यमान है ईहां यह तात्पर्य है सा कारणता दो प्रकारकी होवै है एक तौं फलोपधायकत्वरूप कारणता होवै है दूसरी स्वरूप योग्यत्वरूप कारणता होवै है। तहां **अव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसंबन्धेन फलविशिष्टत्वं फलोपधायकत्वम्**। अर्थ यह—कार्यरूप फलतैं अव्यवहित पूर्ववृत्तित्वरूप संबंध करिकै जो तिस फल करिकै विशिष्टपणा है ताका नाम फलोपधायकत्वरूप कारणता है। जैसे घटकी उत्पत्तिकालविषे कुलालके हस्तविषे स्थित जो दंड है ता दंडविषे ता अव्यवहितपूर्ववृत्तित्वरूप संबंध करिकै ता घटरूप फल करिकै विशिष्टपणा है यह हीं ता दंडविषे फलोपधायकत्वरूप कारणता है इति। तहां **कारणतावच्छेदकधर्मवत्त्वं स्वरूपयोग्यत्वम्**। अर्थ यह—कारणताका अवच्छेदक जो धर्म है ता धर्मवत्त्वका नाम स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता है जैसे ता दंड विषे रही हूई जा घटकी कारणता है ता कारणताका अवच्छेदक धर्म दंडत्व है सो दंडत्व धर्म जैसे ता कुलालके हस्तविषे स्थित दंडविषे रहे है तैसे सो दंडत्वधर्म वनविषे स्थित दंडविषे भी रहे है। सो कारणतावच्छेदक दंडत्वधर्मवत्त्व हीं ता वनविषे स्थित दंडविषे ता घटकी स्वरूप-योग्यत्व रूप कारणता है इति। तैसे ईहां प्रसंगविषे परमाणुआदिक जलविषे जा द्व्यणुकादिक जन्य जलकी समवायिकारणता है सा कारणता तौं फलोपधायकत्वरूप कारणता है और ता जलीय शरीरविषे तथा जलीयइंद्रियविषे जा तिस जन्यजलकी कारणता है सा कारणता स्वरूप-योग्यत्वरूप कारणता है ऐसी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणताके विद्यमानहूए भी दूसरे सहकारी कारणोंके अभावहूए ता जलीयशरीर इंद्रियतैं किसी जन्यजलकी उत्पत्ति होती नहीं जैसे ता वनविषे स्थित दंडविषे ता स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणताके विद्यमान हूए भी दूसरे कुलाल चक्र मृत्तिका आदिक सहकारी कारणोंके अभावहूए ता दंडतैं किसी घटकी उत्पत्ति होती नहीं। यातैं ता जलीय शरीरइंद्रियविषे भी ता जन्यजलकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणताका अवच्छे-दकरूप करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि संभवै है॥ नित्य पदार्थ विषे स्वरूप योग्यताकी—

**शंका**—जलीयशरीर इंद्रियतैं किसी भी जन्यजलकी उत्पत्ति होती नहीं तौ भी ता जलीय शरीर इंद्रियविषे ता जन्यजलकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता अंगीकार करिकै जलमात्रविषे जैसे ता जन्यजलकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जलत्वजातिकी सिद्धि करते हो तैसे परमाणुरूप नित्यजलविषे ता जन्यस्नेहकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता अंगीकार करिकै ता नित्य अनित्यरूप जलमात्रविषे ता जन्यस्नेहकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धिकरणेविषे कौन बाधक है ॥ इसका **समाधान**—किंतु कोई भी बाधक नहीं उलटा ता उक्तरीतिसैं जलत्वजातिकी सिद्धि करणे विषे हीं कल्पनागौरवरूप बाधक है सो दिखावै हैं। तहां प्रथम तौं जन्यस्नेहकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जन्यजलवृत्ति जलत्वजातिकी सिद्धि करणी, तिसतैं अनंतर ता जन्यजलत्वावच्छिन्न जन्यजलकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जलमात्रवृत्ति शुद्ध जलत्वजातिकी सिद्धि करणी । तथा जलीय अंत्यावयवीकूं न मानिकै जलीय शरीर इंद्रिय विषे जन्यजलकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता कल्पना करणी । इस प्रकारका कल्पनागौरव रूप दोष प्राप्त होवै है और परमाणुरूप नित्यजलविषे ता जन्यस्नेहकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणताकूं अंगीकार करिकै ता नित्यअनित्य रूप जलमात्रविषे जो ता जन्यस्नेहकी समवायि कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि करीये तौं ता गौरवदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । दूसरा—**समाधान**—ता परमाणुरूप नित्यजलविषे जो ता जन्यस्नेहकी स्वरूप योग्यत्वरूप कारणताकूं अंगीकार करीये तौं तिस परमाणुरूप नित्य जलविषे अवश्य करिकै कोई कालमें ता जन्यस्नेहकी उत्पत्ति होवैगी। काहेतै ? यह शास्त्रकारोंका नियम है। **नित्यस्य स्वरूपयोग्यत्वे फलावश्यं भावानियमः** । अर्थ यह—नित्यपदार्थविषे जो किसी कार्यके उत्पत्तिकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता अंगीकार करीये तौं तिस नित्यपदार्थतैं ता कार्यरूप फलकी उत्पत्ति अवश्य करिकै होवैगी । काहेतैं ? नित्य पदार्थका कबी भी नाश होता नहीं, किसी काल पाइकै दूसरी कारणसामग्रीकी सहायतातैं ता नित्यपदार्थतैं तिस कार्यकी उत्पत्ति अवश्य करिकै होवैगी । और अनित्यपदार्थविषे ता स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणताके अंगीकार कीये हूए भी ता कार्यके उत्पत्तिका अवश्यनियम संभवता नहीं । जैसे वनविषे स्थित काष्ठरूप दंडोंविषे ता घटरूप कार्यके उत्पत्तिकी स्वरूपयोग्यताके हूए भी ता कुलालचक्रमृत्तिकादिक सामग्रीके अविद्यमानहूए ता घटरूप कार्यकी उत्पत्ति कीयेतैं विना हीं ते दंड अग्नि-आदिकों करिकै नष्ट होइ जावै हैं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—परमाणुरूप नित्यजलविषे ता जन्यस्नेहकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणताकूं अंगीकार करिकै जो ता जलत्वजातिकी सिद्धि-करीये तौं तिन जलपरमाणुवोंविषे कोईकालमें अवश्य करिकै ता स्नेहगुणकी उत्पत्ति होवैगी। सो न्यायसिद्धांतविषे अंगीकार है नहीं। यातैं ता जन्यस्नेहकी समवायिकारणताका अवच्छेदक

रूप करिकै ता जलत्वजातिकी सिद्धि करणी संभवती नहीं । किंतु ता पूर्वउक्तरीतिसैं जन्य जलकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै हीं ता जलत्वजातिकी सिद्धि संभवै है इति । और केईक ग्रंथकार तौं 'नित्यस्य स्वरूपयोग्यत्वे फलावश्यं भावनियमः' इस उक्त नियमकूं नहीं अंगीकार करिकै ता जन्यस्नेहकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै हीं ता नित्यअनित्यरूप जलमात्रविषे ता जलत्वजातिकी सिद्धि करे हैं इति । इस पूर्वउक्त प्रकारतैं ता जलत्वजातिके सिद्धहूए सो जलत्वजातिमत्त्वरूप जलका लक्षण संभवै है इति ॥ २ ॥

जलके गुण—इस प्रकार शीतस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकरिकै तथा जलत्वजातिमत्वरूप लक्षण करिकै लक्षित जो जल है, ता जलविषे रूप १, रस २, स्पर्श ३, संख्या ४, परिमाण ५, पृथक्त्व ६, संयोग ७, विभाग ८, परत्व ९, अपरत्व १०, गुरुत्व ११, द्रवत्व १२, स्नेह १३, वेग १४ यह चतुर्दश गुण रहे हैं । जलके भेद—इस प्रकारके चतुर्दशगुणोंवाला सो जल नित्य १ अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है तहां परमाणुरूप जल तौं नित्य कह्या जावै है और द्व्यणुकादिकार्यरूप सर्व जल अनित्य कह्या जावै है तथा अवयवी कह्या जावै है। और सो अवयवीरूप अनित्यजल भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है ।

जलीय शरीर—अब जलीय शरीरका निरूपण करे हैं—तहां **शीतस्पर्शवत् शरीरं जलीयशरीरम्** । अर्थ यह—जो शरीर समवायसंबन्धकारिकै शीतस्पर्शवाला होवै है सो शरीर जलीय शरीर कह्या जावै है। यद्यपि उत्पन्नविनष्ट जलीयशरीरविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न जलीयशरीरविषे ता शीतस्पर्शका अभाव होणेतैं ? तिस उक्तलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्वउक्त जलके लक्षणकी न्यांई ईहां भी—**शीतस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् शरीरं जलीयशरीरम्** । इस प्रकार जलत्वजातिघटित लक्षणके करणेतैं ता जलीयशरीरविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । तहां इस लक्षणविषे 'शरीरम्' यह पद जलीय इंद्रिय विषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। दूसरे पदोंका फल सो पूर्व उक्त हीं जानिलेणा । ऐसे शीतस्पर्शवाले जलीय शरीर वरुणलोकविषे हीं प्रसिद्ध हैं ते जलीय शरीर केवल अयोनिज हीं होवै हैं । जलीय शरीरविषे भोगायतन न होनेकी—**शंका**—ऐसा जलीयशरीरोंविषे मुख, दंत, कर, पाद, नख, लोम इत्यादिक अवयव संभवते नहीं और तिन मुखादिक अवयवोंतैं विना आहारविहारादिक संभवते नहीं तिन आहार विहारादिकोंतैं विना तिन शरीरोंविषे भोगायतनपणा संभवता नहीं, ता भोगायतनपणेके अभावहूए तिन जलीयशरीरोंविषे शरीरपणा हीं नहीं सिद्ध होवैगा । जिस कारणतैं शास्त्रविषे भोगायतनकूं हीं शरीर कह्या है । उसका—**समाधान**—तिन वरुणलोकविषेस्थितजलीयशरीरोंविषे पृथिवीआदिक भूतोंका भाग भी मिल्या हूआ रहे है यातैं हिमकरकादिकोंकी न्यांई घनीभूत होइकै दृढताकूं प्राप्तहूए तिन

जलीयशरीरोंविषे ते मुखदंतादिक अवयव संभव होइ सके हैं तथा तिन अवयवोंकरिकै आहार विहारादिक भी संभव होइ सके हैं तिन आहारविहारादिकोंके संभवहूए तिन जलीयशरीरोंविषे भोगायतनपणे करिकै शरीररूपता भी संभवै है और तिन जलीयशरीरोंविषे केवल जलकूं हीं उपादानकारणता है पृथिवीआदिक भूतोंकूं निमित्त कारणता है । यातैं तिन शरीरोंकूं जलीय शरीर कहे हैं । इस प्रकारकी व्यवस्था आगे वक्ष्यमाण तैजसशरीरोंविषे तथा वायवीय शरीरोंविषे भी जानिलेणी इति ।

जलीय इंद्रिय ।

अब जलीय इंद्रियका निरूपण करे हैं । तहां—**शीतस्पर्शवदिन्द्रियं जलीयेन्द्रियम्** । अर्थ यह—जो इंद्रिय समवायसंबंध करिकै शीतस्पर्शवाला होवै है सो इंद्रिय जलीय इंद्रिय कह्या जावै है, ऐसा शीतस्पर्शवाला जलीयइंद्रिय रसनइंद्रिय है । लक्षण—यद्यपि उत्पन्नविनष्ट रसन इंद्रियविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न रसनइंद्रियविषे ता शीतस्पर्शका अभाव होणेतैं तिस उक्तलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्व उक्त जलके लक्षणकी न्यांई ईहां भी **शीत स्पर्शसमानाधिकरण द्रव्यत्वव्याप्यजातिमदिन्द्रियं जलीयेन्द्रियम्** । इस प्रकार जलत्व जातिघटित लक्षणके करणेतैं ता रसनइंद्रियविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । तहां इस लक्षणविषे 'इंद्रियम्' यह पद जलीय शरीरविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानि लेणा । सो रसनइन्द्रिय जिह्वाके अग्रभाग विषे रहे है तथा मधुरादिक षट्रसोंकूं ग्रहण करे है । रसनविषे जलीयत्वकी सिद्धि—सो रसन इंद्रिय जलीय इंद्रिय है । याके विषे कौन प्रमाण है । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमान प्रमाण—करिकै ता रसनइंद्रियविषे जलीयपणा सिद्ध करे हैं ता अनुमानका यह आकार है ॥ **रसनेन्द्रियं जलीयं गन्धाद्यव्यञ्जकत्वे सति रसव्यञ्जकत्वात् सक्तुरसाभिव्यञ्जको-दकवत्** । अर्थ यह—सो रसनइंद्रिय जलीय होणीयोग्य है । गंधादिक गुणोंका अव्यंजक हूआ रसगुणका व्यंजक होणेतैं । जो जो द्रव्य गंधादिक गुणोंका अव्यंजक हूआ रसगुणका व्यंजक होवै है सो सो द्रव्य जलीय हीं होवै हैं । जैसे यह प्रसिद्ध उदक सक्तुके गंधादिकोंका अव्यंजक हूआ ता सक्तुके रसमात्रका हीं व्यंजक होवै है । यातैं इस उदकविषे जलीयरूपता भी प्रसिद्ध हीं है । तैसे सो रसनइंद्रिय भी अन्नादिक पदार्थोंके गंधादिकोंका अव्यंजक हूआ केवल रसमात्रका हीं व्यंजक होवै है । यातैं ता रसनइंद्रियविषे सो जलीयपणा भी अवश्य मान्या चाहिये । तहां इस अनुमानविषे 'रसव्यञ्जकत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'गंधाद्यव्यञ्जकत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं मनविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? ता मनतैं विना किसी भी वस्तुका ज्ञान होता नहीं । यातैं सो मन भी ता रसका व्यंजक हीं है, परंतु ता मनविषे सो जलीयत्वरूप

साध्य है नहीं। यातैं ता जलीयत्वरूप साध्यके अभाववाले मनविषे वृत्ति होणेतैं सो रसव्यंजकत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा ता व्यभिचारदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे 'गन्धाद्यव्यञ्जकत्वेसति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता मनविषे सो गन्धादिकोंका अव्यञ्जकपणा नहीं है, किंतु व्यञ्जकपणा हीं है यातैं ता मनविषे तिस हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। किंवा 'गन्धाद्यव्यञ्जकत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते तौं कर्मसामान्यादिक पदार्थोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? ते कर्म सामान्यादिकपदार्थ तिन गंधादिक गुणोंके अव्यञ्जक कहीं हैं परंतु तिन कर्मसामान्यादिक पदार्थोंविषे सो जलीयत्वरूप साध्य है नहीं। यातैं ता जलीयत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन कर्म सामान्यादिक पदार्थोंविषे वृत्ति होणेतैं सो गन्धादिकोंका अव्यञ्जकत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा। ता व्यभिचार दोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता हेतुविषे 'रसव्यञ्जकत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन कर्मसामान्यादिक पदार्थोंविषे सो रसगुणका व्यञ्जकपणा है नहीं। यातैं तिन कर्मादिकोंविषे ता हेतुकाव्यभिचार होवै नहीं। किंवा 'गन्धाद्यव्यञ्जकत्वे सति रसव्यञ्जकत्वात्' इस उक्त हेतुका भी रसनइन्द्रियके सन्निकर्षविषे व्यभिचार हीं होवै है। काहेतैं? जैसे सो रसन इंद्रिय गंधादिकोंका अव्यञ्जकहूआ रसका व्यंजक होवै है। तैसे ता रसनइंद्रियका जो रसके साथि स्वसंयुक्तसमवायरूप सन्निकर्ष है सो सन्निकर्ष भी तिन गंधादिकोंका अव्यञ्जक हूआ ता रसमात्रका हीं व्यञ्जक होवै है। परंतु ता सन्निकर्षविषे सो जलीयत्वरूप साध्य है नहीं। यातैं ता जलीयत्वरूप साध्यके अभाववाले ता सन्निकर्षविषे वृत्ति होणेतैं सो रसव्यंजकत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा। ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता उक्तहेतुविषे 'द्रव्यत्वे सति' यह पद भी कथन करणा। अर्थात् 'द्रव्यत्वे सति गन्धाद्यव्यञ्जकत्वे सति रसव्यञ्जकत्वात्' इतनाहेतु कथन करणा। तहां तिस सन्निकर्षविषे सो द्रव्यत्वधर्म है नहीं। यातैं ता सन्निकर्षविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं। इस प्रकारके अनुमान करिकै ता रसनइंद्रियविषे सो जलीयपणा हीं सिद्ध होवै है इति॥

जलीय विषय।

अब जलीयविषयका निरूपण करे हैं। लक्षण—तहां **शीतस्पर्शवद्विषयः जलीयविषयः।** अर्थ यह—जो विषय समवायसंबंधकरिकै शीतस्पर्शवाला होवै है सो विषय जलीयविषय कह्या जावै है। तहां द्व्यणुकरूप जलतैं आदिलैके नदी, समुद्र, कूप, तडाग, हिम, करका इत्यादिक सर्व जल समवायसंबंध करिकै शीतस्पर्शवाले होणेतैं जलीयविषय कहे जावै हैं। दूसरी तरहसे लक्षण—यद्यपि उत्पन्नविनष्ट जलीयविषयविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न जलीय विषयविषे ता शीतस्पर्श गुणका अभाव होणेतैं इस उक्तलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्वउक्त जलके लक्षणकी न्यांई इहां भी **शीतस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्य-**

**जातिमद्विषयः जलीयविषयः** । इस प्रकार जलत्वजातिघटित लक्षणके करणेतैं ता जलीय विषयविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । तहां इस लक्षणविषे ' विषय! ' यह पद जलीय शरीर इंद्रियविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है । दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानि लेणा । तहां हिमकरादिकोंकी उत्पत्ति विलक्षण दिव्य तेजके संयोग करिकै होवै हैं ॥ हिमकरकादिविषे जलीयपणेका निर्णय—**शंका**—हिम, करका इन दोनों विषे जलरूपता संभवती नहीं । काहेतैं ? जल विषे कठिनस्पर्श रहता नहीं किंतु पृथिवीविषे हीं सो कठिनस्पर्श रहे है । और तिन हिमकरकादिकोंविषे कठिनस्पर्श सर्वकूं प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है । यातैं ते हिमकर कादिक पृथिवी रूप हीं हैं । किंवा जलविषे सांसिद्धिकद्रवत्व हीं रहै है । नैमित्तिक द्रवत्व रहता नहीं । पृथिवी तेजविषे हीं सो नैमित्तिकद्रवत्व रहे है सो सांसिद्धिकद्रवत्व तिन हिम करकादिकोंविषे है नहीं । किंतु तिन हिमकरकादिकोंविषे सो नैमित्तिकद्रवत्व हीं है । तहां अग्निआदिक तेजके संबंधतैं जो द्रवत्व होवै है । सो द्रवत्व नैमित्तिकद्रवत्व कह्या जावै है । जैसे घृत, जतु, सुवर्ण आदिकोंका द्रवत्व है ऐसे नैमित्तिकद्रवत्ववाले होणेतैं भी ते हिमकरकादिक पृथिवीरूप हीं सिद्ध होवै हैं ॥ **समाधान**—ते हिमकरकादिक जबी सूर्यादिक तेजकी उष्णता करिकै विलीन होवै हैं तबी तिन हिमकरकादिकोंविषे जल-रूपता प्रत्यक्ष हीं प्रतीत होवै है । और जो द्रव्य जिस द्रव्यके ध्वंसकरिकै जन्य होवै है सो द्रव्य तिस द्रव्यके उपादानकारणरूप अवयवोंका हीं उपादेय होवै है । यह नियम पूर्व पृथिवीनिरूपण विषे कथन करि आये हैं । यातैं तिन हिमकरकादिकोंके ध्वंस करिकै जन्य जो जल है तिस जलके जे उपादानकारणरूप अवयव हैं ते हीं अवयव तिन हिमकरकादिकोंके उपादानकारण हैं । यातैं एक अवयवों करिकै जन्य होणेतैं ते हिमकरकादिक भी ता प्रसिद्ध जलकी न्यांई जलरूप हीं मानणे योग्य हैं, किंवा पूर्वकथन कन्या जो शीतस्पर्शवत्त्वरूप जलका लक्षण है सो लक्षण भी तिन हिमकरकादिकोंविषे अतिप्रसिद्ध हीं है या कारणतैं भी तिन हिमकरकादिकों विषे जलरूपता हीं सिद्ध होवै है और तिस हिमकरकादिरूप जलविषे यद्यपि प्रसिद्ध जलकी न्यांई सांसिद्धिक द्रवत्व हीं रहे है तथापि सो सांसिद्धिक द्रवत्वजीवोंके पुण्यपापरूप अदृष्टविशेषतैं प्रतिबद्ध होइ जावै है । यातैं ता कालविषे लोकोंकूं सो द्रवत्व प्रतीत होता नहीं । इसी कारणतैं हीं ता अदृष्टरूपप्रतिबंधके निवृत्तहूएतैं अनंतर तेजके संयोगरूप पाकतैं विना भी तिन हिमकरकादिकोंविषे पुनः सो द्रवत्व लोकोंकूं प्रतीत होवै है । जो कदाचित् तिन हिमकरकादिकोंविषे पार्थिवरूपता होवै तौ जैसे घृतजतुआदिक पार्थिववस्तुवोंविषे अग्नि आदिक तेजके संयोगरूप पाकतैं हीं नैमित्तिक द्रवत्व होवै है । तैसे तिन हिमक-रकादिकोंविषे भी ता अग्नि आदिक तेजके संयोगरूप पाकतैं हीं सो नैमित्तिकद्रवत्व होणा चाहिये । सो ऐसा देखणे विषेआवता नहीं । किंतु जहां अग्निसूर्यादिक किसी भी

तेजका संबंध नहीं होवै है। तहां भी तिन हिमकरकादिकोंविषे सो द्रवत्व प्रतीत होवै है। यातैं तिन हिमकरकादिकोंविषे नैमित्तिक द्रवत्व नहीं है, किंतु सांसिद्धिक द्रवत्व है हीं। और तिन हिमकरकादिकोंविषे जो कठिनताकी प्रतीति होवै है सा प्रतीति तौं ता प्रतिबंधके वशतैं तिन हिमकरकादिकोंके सांसिद्धिक द्रवत्वके नहीं ग्रहणहूएतैं भ्रांतिरूप हीं है, प्रमारूप सा प्रतीति नहीं है अथवा तिन हिमकरकादिकोंविषे मिल्येहूए पार्थिव भागकी हीं सा कठिनता प्रतीत होवै है, जैसे सुवर्णरूप तेजविषे मिल्येहूए पार्थिवभागका हीं पीतरूप तथा गुरुत्व प्रतीत होवै है ॥ और केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं। ता जलके साथि विलक्षणदिव्य तेजके संयोगतैं हीं तिन हिमकरकादिकोंकी उत्पत्ति होवै है। तहां तिन जलोंविषे तिस दिव्यतेजके प्रवेशतैं अनंतर तिन जलोंका सो सांसिद्धिक द्रवत्व नष्ट होइ जावै है। तिसतैं अनंतर सूर्यादिक तेजकी उष्णताके संयोग करिकै सो दिव्य तेजका संयोग निवृत्त होइ जावै है। तिसतैं अनंतर तिन जलोंविषे पुनः ता सांसिद्धिक द्रवत्वकी उत्पत्ति होवै है इति। सर्व प्रकार करिकै ते हिमकरकादिक जलरूप हीं हैं इति ॥ २ ॥ इति जलनिरूपणं समाप्तम् ॥

तेजका वर्णन।

अब तेजका निरूपण करे हैं। लक्षण—तहां **उष्णस्पर्शवत् तेजः ॥ १ ॥ अथवा तेजस्त्वजातिमत् तेजः ॥ २ ॥**

प्रथम—अब इन दोनों लक्षणोंविषे प्रथम लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै उष्णस्पर्शवाला होवै है सो द्रव्य तेज कह्या जावै है। तहां समवायसंबंध करिकै सो उष्णस्पर्श केवल तेजविषे हीं रहे है। ता तेजतैं भिन्न पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे सो उष्णस्पर्श रहता नहीं। यातैं यह उष्णस्पर्शवत्त्वरूप तेजका लक्षण संभवै है। तहां 'स्पर्शवत् तेजः' इतनामात्र हीं जो तेजका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'उष्ण' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी, जल, वायु इन तीनों द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो तेजरूप द्रव्य ता स्पर्शगुणवाला है तैसे ते पृथिवीआदिक तीन द्रव्य भी ता स्पर्शगुणवाले हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता स्पर्शका 'उष्ण' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सो उष्णस्पर्श केवल तेजविषे हीं रहे है। ता तेजतैं भिन्न पृथिवी आदिकोंविषे सो उष्णस्पर्श रहता नहीं। यातैं तिन पृथिवीआदिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। लक्षणविषे—**शंका**—यह उष्णस्पर्शवत्त्वरूप तेजका लक्षण अतिव्याप्ति दोष करिकै तथा अव्याप्तिदोष करिकै दूषित होणेतैं संभवता नहीं। तहां यह जल उष्ण है, यह वायु उष्ण है, यह पृथिवी उष्ण है या प्रकारकी प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है। ते तीनों प्रतीतियां यथाक्रमतैं जलके उष्णताकूं तथा वायुके उष्णताकूं तथा पृथिवीके उष्णताकूं विषय करे हैं। यातैं ता उष्णस्पर्शवत्त्वरूप तेजके लक्षणकी तिन जलादिकोंविषे अतिव्याप्ति

होवै है और चंद्रमा, विद्युत, रत्न, सुवर्ण, चक्षुइंद्रिय यह सर्व तैजस द्रव्य हैं । परंतु तिन चंद्रादिकोंविषे सो उष्णस्पर्श प्रतीत होता नहीं । यातैं तिन चंद्रादिक तैजस पदार्थोंविषे ता उष्णस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति होवै है । उसका—**समाधान**—उष्णस्पर्शवाले तेजके संयोगसंबंध हूए हीं तिन जलादिकोंविषे सा उष्णता प्रतीत होवै है, ता तेजके संयोग संबंधके अभावहूए तिन जलादिकोंविषे सा उष्णता प्रतीत होवे नहीं । या प्रकारके अन्वयव्यतिरेक करिकै सो तेजका उष्णस्पर्श हीं स्वसमवायिसंयोगसंबंध करिकै तिन जलादिकोंविषे प्रतीत होवै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता उष्णस्पर्शका ग्रहण करणा । ता उष्णस्पर्शका समवायिकारण जो तेज है ता तेजका संयोगसंबंध तिन जलादिकोंविषे है । इस प्रकारके परंपरासंबंध करिकै सो तेजका उष्णस्पर्श हीं तिन जलादिकोंविषे प्रतीत होवै है । स्वभावतैं तिन जलादिकोंविषे सो उष्णस्पर्श नहीं है । यातैं तिन जलादिकोंविषे ता उष्णस्पर्शवत्त्वरूप तेजके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा चंद्रादिकतैजस पदार्थोंविषे इस उक्तलक्षणकी अव्याप्ति भी होवै नहीं । काहेतैं ? तिन चंद्रादिक तैजसपदार्थोंविषे भी सो उष्णस्पर्श विद्यमान हीं है, परंतु जलादिकोंके शीतादिक स्पर्श करिकै अभिभवकूं प्राप्तहूआ सो उष्णस्पर्श प्रतीत होता नहीं । तहां चंद्रमंडलके मध्यवर्ति जो शीतस्पर्शवाला जल है, ता जलके शीतस्पर्श करिकै अभिभवकूं प्राप्तहूआ सो चंद्रके किरणोंका उष्णस्पर्श प्रतीत होता नहीं, किंतु सो जलका शीतस्पर्श हीं तहां प्रतीत होवै है । इस प्रकार विद्युतरूप तेजका उष्णस्पर्श भी तत्अंतर्वर्ति जलके शीतस्पर्श करिकै अभिभवकूं प्राप्तहूआ प्रतीत होता नहीं । किंतु ता जलका हीं सो शीतस्पर्श तहां प्रतीत होवै है । इस प्रकार रत्नरूप तेज विषे भी पार्थिवभाग मिल्या होवै है । ता पार्थिवभागके अनुष्णाशीतस्पर्श करिकै अभिभवकूं प्राप्तहूआ सो रत्नरूप तेजका उष्णस्पर्श तिस रत्नकी किरणोंविषे प्रतीत होता नहीं । तैसे सुवर्णरूप तेजविषे भी पीतरूपका तथा गुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभाग मिल्या रहे है । ता पार्थिवभागके अनुष्णाशीत स्पर्श करिकै अभिभवकूं प्राप्तहूआ सो सुवर्णरूप तेजका उष्णस्पर्श प्रतीत होता नहीं और चक्षुइंद्रियरूप तेजविषे तौं सो उष्णस्पर्श अनुद्भूत रहे है । यातैं ता उष्णस्पर्शका प्रत्यक्ष होता नहीं, उद्भूत स्पर्शका हीं प्रत्यक्ष होवै है । यातैं तिन चंद्रादिक तैजसद्रव्योंविषे ता उष्णस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति । उत्पन्नविनष्ट तेजविषे लक्षणके अव्याप्तिकी—**शंका**—जो तेज एकक्षणविषे उत्पन्न होइकै द्वितीयक्षणविषे नष्ट होइ गया है तिस उत्पन्नविनष्ट तेजविषे ता उष्णस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । काहेतैं ? प्रथम क्षणविषे तौं द्रव्य निर्गुण हीं उत्पन्न होवै है । यातैं उत्पत्तिक्षणविषे तौं तिस तेजविषे कोई भी गुण होवै नहीं और जिस द्वितीय क्षणविषे तिस तेजविषे ता उष्णस्पर्शनैं उत्पन्न होणा था तिस द्वितीय क्षणविषे सो तेज आप हीं नष्ट होइगया ऐसे उत्पन्नविनष्ट तेजविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न

तेजविषे ता उष्णस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता उक्तलक्षणका अन्य प्रकारतैं निर्वचन करे हैं । तहां **उष्णस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् तेजः** । अर्थ यह—उष्णस्पर्शके समानाधिकरण ऐसी जा द्रव्यत्वजातिका व्याप्यजाति है ता जातिवाला द्रव्य तेज कह्या जावै है । तहां सो उष्णस्पर्श गुण समवाय संबंध करिकै अग्निसूर्यादिक तेजविषे हीं रहे है और तेजस्त्वजाति भी समवायसंबंध करिकै तिस अग्निसूर्यादिक तेजविषे हीं रहे है । यातैं सा तेजस्त्वजाति ता उष्णस्पर्शके समानाधिकरण कही जावै है और सा तेजस्त्वजाति द्रव्यत्वजातिका व्याप्य भी है, ऐसी तेजस्त्वजाति सर्वतेजविषे रहे है अर्थात् सा तेजस्त्वजाति ता उत्पन्नविनष्ट तेजविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न तेजविषे भी रहे है । यातैं ता उत्पन्नविनष्ट तेजविषे तथा ता उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न तेजविषे इस तेजस्त्वजातिघटित लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । पदकृत्य—तहां 'जातिमत् तेजः' इतनामात्र हीं जो तेजका लक्षण करते तौं गुणविषे तथा कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो तेज तेजस्त्वादिक जातिवाला है तैसे सो गुणकर्म भी गुणत्वकर्मत्व जातिवाला हीं है । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता जातिका 'द्रव्यत्वव्याप्य' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां ते गुणत्वकर्मत्व जाति द्रव्यविषे अवृत्ति होणेतैं ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्यजाति कही जावैं नहीं, यातैं ता गुणकर्मविषे तिस लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् तेजः' इतनामात्र ता तेजका लक्षण करणेतैं यद्यपि ता गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं तथापि आत्माविषे तथा मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है । काहेतैं ? जैसे तेजस्त्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्यजाति है तैसे आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजाति भी ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्यजाति है । ता आत्मत्वजातिकूं लैके आत्माविषे तथा ता मनस्त्वजातिकूं लैके मन विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता जातिका 'स्पर्शसमानाधिकरण' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां आत्माविषे तथा मनविषे सो स्पर्शगुण रहता नहीं, यातैं सा आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजाति ता स्पर्शके समानाधिकरण नहीं है, यातैं ता आत्मत्वजातिकूं तथा मनस्त्वजातिकूं लैके ता आत्माविषे तथा मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'स्पर्शसमानाधिकरण-द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् तेजः' इतनामात्र हीं जो ता तेजका लक्षण करते ता लक्षणविषे ता स्पर्शका 'उष्ण' यह विशेषण नहीं कथन करते तौं पृथिवी, जल, वायु इन तीनों द्रव्यों विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो स्पर्शगुण जैसे तेजविषे रहे है तैसे पृथिवी, जल, वायु इन तीन द्रव्योंविषे भी सो स्पर्शगुण रहे है । यातैं तेजस्त्वजातिकी न्यांई पृथिवीत्व, जलत्व, वायुत्व यह तीनों जातियां भी ता स्पर्शके समानाधिकरण हीं हैं तथा द्रव्यत्व

जातिका व्याप्य भी है । ऐसी पृथिवीत्व जलत्व वायुत्व जातिकूं लैके यथाक्रमतैं ता पृथिवी-जलवायुविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे स्पर्शका 'उष्ण' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां सो उष्णस्पर्श केवल तेज विषे हीं रहे है, तिन पृथिवी आदिकोंविषे रहता नहीं । यातैं ते पृथिवीत्वादिक तीन जातियां स्पर्शके समानाधिकरण हूईयां भी ता उष्णस्पर्शके समानाधिकरण हैं नहीं । यातैं तिन पृथिवीत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन पृथिवी आदिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा 'उष्णस्पर्शसमानाधिकरणजातिमत् तेजः' इतनामात्र हीं जो ता तेजका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्रव्यत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं द्रव्यत्वजातिकूं लैके पुनः तिन पृथिवी आदिक सर्व द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जिस तेजविषे सो उष्णस्पर्श रहे है तिस तेजविषे सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति भी रहे है । यातैं तेजस्त्वजातिकी न्यांई सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति भी ता उष्णस्पर्शके समानाधिकरण हीं है । ता द्रव्यत्वजातिकूं लैके पृथिवी आदिक सर्वद्रव्योंविषे तथा ता सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्म विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'द्रव्यत्वव्याप्य' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां सा द्रव्यत्वजाति ता द्रव्यत्वजातितैं न्यूनदेशवृत्ति नहीं है और सा सत्ताजाति तौं ता द्रव्यत्वजातितैं अधिकदेशवृत्ति है । यातैं सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य नहीं है । जा जाति जिस जातितैं न्यूनदेशवृत्ति होवै है सा जाति हीं तिस जातिका व्याप्य होवै है । यह वार्त्ता पूर्व बहुतवार कहि आये हैं । यातैं ता द्रव्यत्वजातिकूं तथा सत्ताजातिकूं लैके ता तेजके लक्षणकी तिन पृथिवीआदिकोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥ तहां इतनैंपर्यंत 'उष्णस्पर्शवत् तेजः' इस प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण कऱ्या ॥

द्वितीय लक्षणका निर्वचन—अब **तेजस्त्वजातिमत् तेजः** । इस द्वितीयलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै तेजस्त्वजातिवाला होवै है सो द्रव्य तेज कह्या जावै है, तहां समवायसंबंध करिकै सा तेजस्त्वजाति केवल तेजविषे हीं रहे है ता तेजतैं भिन्न पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे सा तेजस्त्वजाति रहती नहीं । यातैं यह तेजस्त्वजातिमत्त्वरूप तेजका लक्षण संभवै है । तेजस्त्वजातिकी सिद्धि—यह तेजस्त्वजातिमत्त्वरूप तेजका लक्षण तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि होवै । ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धितैं विना सो लक्षण संभवता नहीं । यातैं ता लक्षणकी सिद्धि वासतै किसी प्रमाण करिकै ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि अवश्य करी चाहिये । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब प्रत्यक्ष-प्रमाण करिकै ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि करे हैं—तहां अग्नि, प्रदीप, सूर्य, चंद्र, विद्युत् इत्यादिक

तेजोंविषे 'इंद तेजः इंद तेजः' या प्रकारकी एकधर्म प्रकारक एकाकार प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है सा एकाकारप्रतीति तिन सर्वतेजोंविषे अनुगत होइकै रही हूई तेजस्त्वजातिकूं हीं विषय करे है। यातैं ता तेजस्त्वजातिविषे 'इंद तेजः' इस प्रकारका प्रत्यक्ष हीं प्रमाण है इति। अनुमान— इस प्रकारके प्रत्यक्षप्रमाण करिकै यद्यपि प्रसिद्ध अग्निसूर्यादिक तेजोंविषे ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि संभवै है तथापि परमाणुरूप अतिइंद्रिय तेजविषे तथा चक्षुइंद्रियरूप अतिइंद्रिय तेजविषे 'इदं तेजः' या प्रकारका प्रत्यक्ष किसी भी जीवकूं होता नहीं। यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै ता अतिइंद्रिय तेजविषे ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाणकारिकै सर्वतेजविषे ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि करे हैं। ता अनुमानका यह आकार है—**तेजोनिष्ठा या उष्णस्पर्शसमवायिकारणता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् तन्तुनिष्ठकारणतावत्**। अर्थ यह—तेजविषे रही हूई जा उष्णस्पर्शकी समवायि कारणता है सा कारणता किसीधर्म करिकै अवच्छिन्न होणेयोग्य है, कारणता होणेतैं। जा जा कारणता होवै है सा सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है, निरवच्छिन्न कोई कारणता होती नहीं। जैसे तंतुवोंविषे रहीहूई पटकी समवायिकारणता तंतुत्वधर्मकरिकै अवच्छिन्न होवै है तैसे सा तेजविषे रही हूई उष्णस्पर्शकी समवायिकारणता भी किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न अवश्य होवैंगी। ता कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता तेजस्त्वजातिकी हीं सिद्धि होवै है। अन्य किसी जातिकी सिद्धि होवै नहीं। तहां तेजमात्रवृत्ति कारणतातैं अधिकदेशवृत्ति होणेतैं द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति ता कारणताका अवच्छेदक होइसकै नहीं, किंतु तेजमात्रविषे वृत्ति तेजस्त्वजातिहीं ता कारणताका अवच्छेदक होवै है। इस प्रकारके अनुमानप्रमाणकरिकै ता उष्णस्पर्शकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै सर्वतेज विषे ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि संभवै है। तेजस परमाणुकों विषे तेजस्त्व जातिकी असिद्धिकी— **शंका**—इस उक्त अनुमान प्रमाण करिकै भी परमाणुरूप नित्यतेजविषे ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि होइ सकै नहीं। काहेतैं? ता परमाणुरूप तेजविषे सो उष्णस्पर्श नित्य होवै है और द्व्यणुकादिकार्यरूप सर्वतेजविषे सो उष्णस्पर्श अनित्य होवै है। ऐसे नित्य अनित्य उष्णस्पर्शविषे रहणेहारा सो उष्णस्पर्शत्व धर्म तेजनिरूपित कार्यताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं, किंतु जन्य उष्णस्पर्शत्व धर्म हीं ता कार्यताका अवच्छेदक होवैगा। ता जन्य उष्णस्पर्शकी समवायिकारण ता द्व्यणुकादिरूपजन्य तेजविषे हीं रहे है, परमाणुरूप नित्यतेजविषे रहती नहीं। यातैं तिस परमाणुरूप नित्य तेजविषे ता उक्त अनुमान करिकै ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी। इसका—**समाधान**—पूर्व उक्त जलत्व जातिके सिद्धिकी न्यांई ईहां भी प्रथम जन्य उष्णस्पर्शकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूपकरिकै द्व्यणुकादिकजन्यतेजवृत्ति तेजस्त्वजातिकी सिद्धि करणी। तिसतैं अनंतर ता जन्यतेजस्त्वजाति करिकै अवच्छिन्न जन्यतेजकी समवायिकारण-

ताका अवच्छेदकरूप करिकै नित्यअनित्यरूप सर्वतेजविषे ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि करणी । तहां जैसे द्व्यणुकादिरूप अनित्यतेजविषे त्र्यणुकादिरूप जन्यतेजकी समवायिकारणता है तैसे परमाणुरूप नित्यतेजविषे भी ता द्व्यणुकरूप जन्यतेजकी समवायिकारणता है । यातैं ता जन्यतेजकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि सर्वतेज विषे होइ सके है। यद्यपि सूर्यलोकविषे स्थित तैजसशरीरादिक अंत्यावयवी तेजतैं तथा चक्षु-इंद्रियरूप तेजतैं किसी भी जन्यतेजकी उत्पत्ति होती नहीं, तथापि ता अंत्यावयवीरूप तेज विषे तथा ता चक्षुइंद्रियरूप तेजविषे भी ता जन्यतेजकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता विद्यमान है। यातैं तिस तेजविषे भी ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि संभवै है, अथवा परमाणुरूप नित्यतेज विषे हीं ता जन्य उष्णस्पर्शकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणताकूं अंगीकार करिकै नित्य अनित्यरूप सर्वतेजविषे ता जन्य उष्णस्पर्शकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता तेजस्त्वजातिकी सिद्धि करणी । इन दोनों प्रकारोंविषे शंका समाधान तौं पूर्व जलत्वजातिके निरूपणविषे करि आये हैं, सो ईहां भी योजना करि लेणें । इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै तेजस्त्वजातिके सिद्ध हूए सो तेजस्त्वजातिमत्त्वरूप तेजका लक्षण संभवै है इति ॥ २ ॥

तेजके गुण—इस प्रकारके उक्त दो लक्षणों करिकै लक्षित जो तेज है ता तेजरूप द्रव्यविषे रूप १, स्पर्श २, संख्या ३, परिमाण ४, पृथकत्व ५, संयोग ६, विभाग ७, परत्व ८, अपरत्व ९, द्रवत्व १०, वेग ११ यह एकादशगुण रहे हैं ॥

तेजके भेद—इस प्रकारके एकादश गुणोंवाला सो तेजद्रव्य नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां परमाणुरूप तेज तौं नित्य कह्या जावै है और द्व्यणुकादि कार्यरूप सर्वतेज अनित्य कह्या जावै है तथा अवयवी कह्या जावै है। सो अवयवीरूप अनित्यतेज भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है ॥

तैजसशरीर—अब तैजस शरीरका निरूपण करे हैं। तहां **उष्णस्पर्शवत् शरीरं तैजसशरीरम्** । अर्थ यह—जो शरीर समवायसंबंध करिकै उष्णस्पर्शवाला होवै है सो शरीर तैजस शरीर कह्या जावै है । ऐसे उष्णस्पर्शवाले तैजस शरीर सूर्यलोकविषे हीं प्रसिद्ध हैं । लक्षण—यद्यपि उत्पन्न विनष्ट तैजस शरीरविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न तैजस शरीरविषे ता उष्णस्पर्शगुणका अभाव होणेतैं इस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्व उक्त तेजके लक्षणकी न्याई ईहां भी **उष्णस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत् शरीरं तैजसशरीरम्** । इस प्रकार तेजस्त्वजाति घटित लक्षणके करणेतैं तिस तैजसशरीरविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । तहां इस लक्षणविषे 'शरीरम्' यह पद तैजस-इंद्रियविषयविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है । दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानिलेना । यह तैजस शरीर केवल अयोनिज हीं होवै है इति ॥

तैजस इंद्रिय ।

अब तैजस इंद्रियका निरूपण करे हैं। लक्षण—तहां **उष्णस्पर्शवदिन्द्रियं तैजसेन्द्रियम्** । अर्थ यह—जो इंद्रिय समवायसंबंध करिकै उष्णस्पर्शवाला होवै है सो इंद्रिय तैजसइंद्रिय कह्या जावै है ऐसा उष्णस्पर्शवाला तैजस इंद्रिय चक्षुइंद्रिय है । यद्यपि उत्पन्नविनष्ट चक्षुइंद्रियविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न चक्षुइंद्रियविषे ता उष्णस्पर्शगुणका अभाव होणेतैं ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्वउक्त तेजके लक्षणकी न्यांई ईहां भी—**उष्णस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमदिन्द्रियं तैजसेन्द्रियम्** । इस प्रकार तेजस्त्वजातिघटित लक्षणके करणेतैं ता चक्षुइंद्रियविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । तहां इस लक्षणविषे ' इन्द्रियम् ' यह पद तैजसशरीरविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है । दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानिलेणा । सो यह चक्षुइंद्रिय कृष्ण ताराके अग्रभागविषे रहे है तथा रूपादिकोंकूं ग्रहण करे है। चक्षुके तैजस होणेविषे प्रमाण—सो चक्षुइंद्रिय तैजस है इस उक्त अर्थविषे कौन प्रमाण है ? ऐसी शंकाके प्राप्त हूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै ता चक्षुइन्द्रियविषे तैजसपणा सिद्धि करे हैं । ता अनुमानका यह आकार है—**चक्षुरिन्द्रियं तैजसं परकीयस्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति परकीयरूपव्यञ्जकत्वात् प्रदीपवत्** । अर्थ यह—सो चक्षुइंद्रिय तैजस होणेयोग्य है, परकीयस्पर्शादिकोंका नहीं व्यञ्जक हूआ परकीय रूपका व्यञ्जक होणेतैं । जो जो द्रव्य परकीयस्पर्शादिकोंका अव्यञ्जक हूआ परकीयरूपका व्यंजक होवै है सो सो द्रव्य तैजस हीं होवै है । जैसे प्रदीप घटादिक द्रव्योंके स्पर्शादिकोंका अव्यंजक हूआ तिन घटादिकोंके रूपकाहीं व्यंजक होवै है । यातैं सो प्रदीप तैजस हीं है, तैसे सो चक्षुइंद्रिय भी घटादिकद्रव्योंके स्पर्शादिकोंका अव्यञ्जक हूआ तिन घटादिकोंके रूपका हीं व्यञ्जक होवे है । यातैं सो चक्षुइंद्रिय भी तैजस हीं होवैगा । लक्षणका पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे ' परकीयरूपव्यञ्जकत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे ' परकीयस्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं मनविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? मनतैं विना कोई भी ज्ञान उत्पन्न होता नहीं । यातैं ता मनविषे सो परकीयरूपका व्यञ्जकत्वरूप हेतु तौं है, परंतु सो तैजसत्वरूप साध्य ता मनविषे है नहीं । यातैं तैजसत्वरूप साध्यके अभाववाले मनविषे वृत्ति होणेतैं सो परकीयरूप व्यञ्जकत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' परकीयस्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता मनविषे परकीयस्पर्शादिकोंका अव्यञ्जकपणा नहीं है । किंतु व्यञ्जकपणा हीं हैं। यातैं ता मनविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ' परकीयस्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे ' परकीयरूपव्यञ्जकत्वात् ' यह पद नहीं कथन

करते तौं परकीयस्पर्शादिकोंके अव्यञ्जक आकाशादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'परकीयरूपव्यञ्जकत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है। तिन आकाशादिकोंविषे सो परकीयरूपका व्यञ्जकपणा है नहीं। यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। किंवा ता हेतु विषे जो प्रथम 'परकीय' यह पद नहीं कथन करते किंतु 'स्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति परकीयरूपव्यञ्जकत्वात्' इतनामात्र हीं हेतु कथन करते तौं सो हेतु प्रदीपरूप दृष्टांतविषे अवृत्ति होता। काहेतैं? सो प्रदीप आपणे स्पर्शादिकोंका व्यञ्जक हीं है अव्यञ्जक नहीं है, ता प्रदीपरूप दृष्टांतविषे ता उक्त-हेतुकी अव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे प्रथम परकीय पद कथन कऱ्या है। तहां सो प्रदीप यद्यपि स्वकीयस्पर्शादिकोंका व्यंजक है तथापि परकीयस्पर्शादिकोंका व्यंजक नहीं हैं। यातैं ता प्रदीपविषे ता हेतुकी अव्याप्ति होवै नहीं किंवा ता उक्तहेतुविषे जो द्वितीय 'परकीय' यह पद नहीं कथन करते किंतु 'परकीयस्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति रूपव्यञ्जकत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? ते घटादिक पार्थिवपदार्थ परकीयस्पर्शादिकोंके अव्यंजक हूए स्वकीयरूपके व्यञ्जक हीं हैं। ता व्यभिचार दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे सो द्वितीयपरकीय पद कथन कऱ्या है। तहां ते घटादिक स्वकीयरूपके व्यंजक हूए भी परकीयरूपके व्यंजक होवैं नहीं। यातैं तिन घटादिकों-विषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। अथवा ता उक्त अनुमान विषे प्रदीपकूं दृष्टांत नहीं करणा किंतु ता प्रदीपादिक तेजकी प्रभाकूं दृष्टांत करणा। ता प्रभाके स्पर्शका प्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं सा प्रभा आपणे स्पर्शादिकोंका व्यंजक नहीं है। यातैं ता उक्तहेतुविषे प्रथम परकीय पद नहीं देणा, किंतु 'स्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति परकीयरूपव्यञ्जकत्वात्' इतनामात्र हीं हेतु करणा, किंवा 'स्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति परकीयरूपव्यञ्जकत्वात्' इस हेतुका भी चक्षुइंद्रियके सन्निकर्षविषे व्यभिचार होवै है। काहेतैं? घटादिकअर्थोंके साथि चक्षुइंद्रियका जो संयोगस्वसंयुक्तसमवाय आदिक सन्निकर्ष है सो सन्निकर्ष भी घटादिकोंके स्पर्शादिकोंका अव्यंजक हूआ तिन घटादिकोंके रूपका हीं व्यंजक होवै है। परंतु ता सन्निकर्षविषे सो तैजस्वरूप साध्य है नहीं। ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'द्रव्यत्वे सति' यह पद भी पूरण करणा अर्थात् 'द्रव्यत्वे सति स्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति परकीयरूप व्यञ्जकत्वात्, इतना हेतु कथन करणा। ता सन्निकर्षविषे सो द्रव्यपणा है नहीं। यातैं ता सन्निकर्षविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै तिस चक्षुइंद्रियविषे तैजसपणा हीं सिद्ध होवै है इति। तहां उच्छृंखलनामा कोईक ग्रन्थकार—ता चक्षुइंद्रियकूं अप्राप्य प्रकाशकारी माने है और न्यायसिद्धान्तविषे ता चक्षुइंद्रियकूं प्राप्य प्रकाशकारी मान्या है। तहां जो इंद्रिय संयोगादिक सम्बन्धसैं विषयदेशविषे प्राप्त होइकै ता

विषयकूं प्रकाश करे है सो इंद्रिय तौं प्राप्य प्रकाशकारी कह्या जावै है और जो इंद्रिय संयोगादिक सम्बन्धसैं ता विषयदेशविषे न प्राप्त होइकै आपणे स्थानविषे स्थित हूआ हीं ता विषयकूं प्रकाश करे है सो इंद्रिय अप्राप्य प्रकाशकारी कह्या जावै है। तहां सो चक्षुइंद्रिय अप्राप्य प्रकाशकारी है। यातैं यह प्रसिद्धपार्थिव गोलक हीं चक्षुइंद्रिय है। ता गोलकतैं भिन्न कोई तैजसचक्षुइंद्रिय नहीं है। इस प्रकारके ता उच्छृंखलके मतका खण्डन करणे वास्तै प्रथम ता उच्छृंखलके मतका उपपादन करे हैं। तहां सो चक्षुइंद्रिय प्राप्य प्रकाशकारी नहीं है, किंतु अप्राप्य प्रकाशकारी हीं है। काहेतैं ? सो चक्षुइंद्रिय जो कदाचित् प्राप्य प्रकाशकारी होवै तौं जैसे रसनादिक इंद्रिय आपणे गोलकके साथि सम्बन्धवाले पदार्थकूं हीं ग्रहण करे हैं तैसे सो चक्षुइंद्रिय भी आपणे गोलकके साथि सम्बन्धवाले पदार्थकूं हीं ग्रहण करैंगा। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु सो चक्षुइंद्रिय आपणे गोलकतैं अत्यंत दूर सूर्यचन्द्रादिक पदार्थोंकूं भी ग्रहण करे है। या कारणतैं सो चक्षुइंद्रिय प्राप्य प्रकाशकारी नहीं है, किंतु अप्राप्य प्रकाशकारी हीं है। किंवा सो चक्षुइंद्रिय जो कदाचित् प्राप्य प्रकाशकारी होवैंगा तौं सो चक्षुइंद्रिय आपणेतैं अधिक परिमाणवाले वस्तुकूं ग्रहण नहीं करैंगा किंतु आपणे तुल्यपरिमाणवाले वस्तुकूं हीं ग्रहण करैंगा। जैसे परशु करिकै छेदन करणे योग्य जो महान्‌काष्ठ है तिस महान्‌काष्ठकूं नखकुन्तनी छेदन करिसकै नहीं, किंतु सो नखकुन्तनी आपणे तुल्य परिमाणवाले नखोंकूं हीं छेदन करे है। तैसे सो चक्षुइंद्रिय भी आपणे तुल्यपरिमाणवाले वस्तुकूं हीं ग्रहण करैंगा। आपणेतैं अधिक महान् पर्वतादिकोंकूं ग्रहण नहीं करि सकैंगा और सो चक्षुइंद्रिय महान् पर्वतादिकोंकूं भी ग्रहण करे है। या कारणतैं भी सो चक्षुइंद्रिय प्राप्यप्रकाशकारी नहीं है। किंवा सो चक्षुइंद्रिय जो कदाचित् प्राप्यप्रकाशकारी होवै तौं वृक्षकी शाखाका तथा चंद्रमाका एक कालविषे ग्रहण नहीं होणा चाहिये। काहेतैं ? चंद्रमाकी अपेक्षा करिकै सा शाखा अत्यंत समीप है और ता शाखाकी अपेक्षा करिकै सो चंद्रमा अत्यंत दूर है। यातैं सो चक्षुइंद्रिय प्रथम ता शाखाकूं प्राप्त होइकै ता शाखाकूं ग्रहण करैंगा। तिसतैं अनंतर ता चंद्रमाकूं प्राप्त होइकै ता चंद्रमाकूं ग्रहण करैंगा। एककालविषे तिन दोनोंकूं ग्रहण करैंगा नहीं और नेत्रोंकूं खोलता हूआ हीं यह पुरुष ता शाखाकूं तथा चंद्रमाकूं एकहीं कालविषे देखे है। या कारणतैं भी सो चक्षुइंद्रिय प्राप्यप्रकाशकारी नहीं है, किंतु सो चक्षुइंद्रिय अप्राप्यप्रकाशकारी हीं है। ता चक्षुइंद्रियकूं अप्राप्यप्रकाशकारी मानणेविषे ते पूर्व उक्त दोष प्राप्त होवै नहीं इति। इसका खण्डन—सो यह उच्छृंखलका मत अत्यंत असंगत है। काहेतैं ? सो चक्षुइंद्रिय वस्तुकूं प्राप्त होइकै हीं प्रकाश करे है। अप्राप्त होइकै प्रकाश करता नहीं। यातैं सो पार्थिवगोलकचक्षुरूप नहीं है किंतु ता गोलकतैं भिन्न हीं कोई तैजस

चक्षु है और ता चक्षुइंद्रियके प्राप्यप्रकाशकारीपणे विषे जो पूर्व वादीनैं गोलकसंबद्ध वस्तुके ग्रहणकी आपत्तिरूप दूषण कह्या था सो दूषण भी संभवता नहीं । काहेतैं? जैसे प्रदीपकी प्रभा आपणे अधिष्ठानरूप प्रदीपके संबंधतैं रहित घटादिक पदार्थोंकूं प्राप्त होइकै तिन घटादिकपदार्थोंकूं प्रकाश करे है । तैसे सो तैजसचक्षुइंद्रिय भी आपणे गोलकरूप अधिष्ठानके संबंधतैं रहित सूर्यचंद्रमादिक पदार्थोंकूं प्राप्त होइकै तिन पदार्थोंकूं ग्रहण करैगा । याके विषे किंचित्मात्र भी बाधक नहीं है किंवा ता चक्षुइंद्रियके प्राप्यप्रकाशकारीपणेविषे ता पूर्ववादीनैं जो अधिकपरिमाणवाले वस्तुका अग्रहणरूप दोष कथन कऱ्या था सो दोष भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जैसे प्राप्यप्रकाशकारी प्रदीपकी प्रभा आपणेतैं अधिकपरिमाणवाले पर्ववादिकोंकूं भी प्रकाश करे है तैसे गोलकतैं निकस्या हूआ सो महत्त्वपरिमाणवाला तैजसचक्षुइंद्रिय भी आपणेतैं अधिक परिमाणवाले पर्वतादिकोंकूं ग्रहण करैगा । याके विषे कोई भी बाधक नहीं है और प्राप्यप्रकाशकारी इंद्रिय आपणेतैं अधिकपरिमाणवाले द्रव्यकूं नहीं ग्रहण करे है । या प्रकारके नियमका तौ त्वक्इंद्रियविषे हीं व्यभिचार है । काहेतैं ? सो प्राप्यप्रकाशकारी त्वक्इंद्रिय आपणेतैं अधिकपरिमाणवाले भी भित्तिआदिक द्रव्योंकूं ग्रहण करे है । तैसे सो प्राप्यप्रकाशकारी चक्षु इंद्रिय भी आपणेतैं अधिकपरिमाणवाले पर्वतादिक द्रव्योंकूं ग्रहण करैगा । याकै विषे किंचित्मात्र भी बाधक नहीं है किंवा ता पूर्ववादीनैं चक्षुइंद्रियके प्राप्यप्रकाशकारीपणेविषे जो शाखाचंद्रमाके एककालग्रहणकी अनुपपत्तिरूप दूषण कथन कऱ्या था सो दूषण भी संभवता नहीं । काहेतैं ? शाखाका तथा चंद्रमाका एक कालविषे ग्रहण होता नहीं, किंतु सो चक्षुइंद्रिय प्रथमक्षणविषे शाखाकूं प्राप्त होइकै ता शाखाकूं ग्रहण करे है और द्वितीय क्षण विषे चंद्रमाकूं प्राप्त होइकै ता चंद्रमाकूं ग्रहण करे है परंतु सो क्षणरूप काल अत्यंतसूक्ष्म है, यातैं लोकोंकूं ऐसा भ्रम होवै है । हम एक हीं कालविषे शाखाकूं तथा चंद्रमाकूं देखते हैं । यद्यपि सो चंद्रमा ता शाखातैं अत्यंत दूर है तथापि जैसे सूर्यका किरणरूप तेज अत्यंत वेगवाला है एकक्षणमात्रविषे सर्वब्रह्मांडमें पसरि जावै है तैसे सो चक्षुरूप तेज भी अत्यंत वेगवाला है । यातैं प्रथम ता शाखाकूं प्राप्त होइकै शीघ्र हीं ता चंद्रमाकूं प्राप्त होवै है । ता करिकै लोकोंकूं ता शाखाचंद्रमाके एककाल ग्रहणकी भ्रांति होवै है । यातैं अप्राप्यप्रकाशकारी होणेतैं पार्थिवगोलकतैं भिन्न कोई तैजसचक्षुइंद्रिय नहीं है यह उच्छृंखलका मत अत्यंत असंगत है इति । और शालिकाचार्यका तौ यह मत है—प्रसिद्ध चक्षुइंद्रिय तथा बाह्यसूर्यादिकोंका आलोक यह दोनों मिलिकै एक नवीन चक्षुइंद्रियका आरंभ करे हैं । ता चक्षुइंद्रियका एक हीं कालविषे तिन शाखाचंद्रादिक पदार्थोंके साथि संबंध है । यातैं ता चक्षुइंद्रिय करिकै एक हीं कालविषे ता शाखाचंद्रमाका ज्ञान संभवै है इति । उसका खण्डन—सो यह शालिकाचार्यका मत भी असंगत है । काहेतैं ? चक्षु बाह्य आलोक करिकै रचित सो चक्षु-

इंद्रिय जैसे अग्रभागविषे होवै है तैसे पृष्ठभागविषे भी सो चक्षुइंद्रिय अवश्य होवैंगा। यातैं पृष्ठभागविषे स्थित पदार्थोंका भी ता चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष ज्ञान होणा चाहिये और पृष्ठभागविषे स्थित पदार्थोंका सो प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं। तहां पृष्ठदेशविषे स्थित सो आलोक ता चक्षुइंद्रियकूं नहीं उत्पन्न करे है और अग्रदेशविषे स्थित सो आलोक ता चक्षुइंद्रियकूं उत्पन्न करे है। इस प्रकारके अर्थकी सिद्धिविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। यातैं सो शालिकाचार्यका मत अत्यंत असंगत है इति ॥

तैजस विषय—अब तैजसविषयका निरूपण करे हैं। लक्षण—तहां **उष्णस्पर्शवद्विषयः तैजसविषयः**। अर्थ यह—जो विषय समवायसंबंधकरिकै उष्णस्पर्शवाला होवै है सो विषय तैजसविषय कह्या जावै है। तहां द्व्यणुकरूप तेजतैं आदि लैके अग्निसूर्यविद्युतादिक तेजपर्यंत सर्व कार्यरूप तेज समवायसंबंध करिकै ता उष्णस्पर्शवाला होणेतैं तैजसविषय कह्या जावै है। जातिघटित लक्षण—यद्यपि उत्पन्नविनष्ट तैजसविषयविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न तैजसविषय विषे ता उष्णस्पर्शगुणका अभाव होणेतैं इस उक्तलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्व उक्त तेजके लक्षणकी न्यांई ईहां भी—**उष्णस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमद्विषयः तैजसविषयः**। इस प्रकार तेजस्त्वजाति घटित लक्षणके करणेतैं ता तैजसविषयविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं। तहां इस लक्षणविषे 'विषयः' यह पद तैजस शरीर इंद्रियविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानिलेणा इति ॥

तैजस विषयक भेद—सो तैजसविषय भी भौम १, दिव्य २, औदर्य ३, आकरज ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै है। अब यथाक्रमतैं इन च्यारोंका स्वरूप वर्णन करे हैं। भौम—तहां **पार्थिवमात्रेन्धनं तेजः भौमम्**। अर्थ यह—काष्ठादिक पार्थिवपदार्थ हैं इंधन जिसके ऐसा जो तेज है सो तेज भौम कह्या जावै है। ऐसा भौम नामा तेज यह प्रसिद्ध अग्नि है तथा खद्योतगत तेजादिक हैं इति। दिव्य—**अबिन्धनं तेजः दिव्यम्**। अर्थ यह—जलमात्र है इन्धन जिसका ऐसा जो तेज है सो तेज दिव्य कह्या जावै है। ऐसा दिव्य तेज विद्युत् सूर्य चंद्र तारागण इत्यादिक हैं इति। औदर्य—**पार्थिवजलोभयेन्धनं तेजः औदर्यम्**। अर्थ यह—पार्थिव अन्न तथा जल यह दोनों हैं इन्धन जिसका ऐसा जो तेज है सो तेज औदर्य कह्या जावै है अर्थात् भोजन कऱ्ये हूए अन्नके तथा पान कऱ्येहूए जलके जीर्णताका हेतुभूत जो तेज है जिस तेजकूं जठराग्नि कहे हैं तिस तेजका नाम औदर्य है इति। आकरज—**अनुभयेन्धनं तेजः आकरजम्**। अर्थ यह—पृथिवी जल यह दोनों जिस तेजके इंधनरूप नहीं हैं सो तेज आकरज कह्या जावै है, जैसे सुवर्ण रजत ताम्र मणि इत्यादिक तेज आकरज कहे जावै हैं।

तहां आकरनाम खानिका है। तिस खानितैं जो तेज उत्पन्न होवै है सो तेज आकरज कह्या जावै है। ऐसे खानितैं उत्पन्नहोणेहारे ते सुवर्णरजतादिक तेज प्रसिद्ध हैं इति ॥

सुवर्ण रजतादिकोंविषे तैजसत्वकी सिद्धि—सुवर्णरजतादिक तैजसद्रव्य हैं इस अर्थका साधक कोईभी प्रमाण नहीं है। उलटा अनुमानप्रमाणकरिकै तिन सुवर्णरजतादिकोंविषे पार्थिवपणा हीं सिद्ध होवै है। ता अनुमानका यह आकार है—सुवर्णं पार्थिवं पीतरूपवत्त्वात् हरिद्रावत्। अर्थ यह—सुवर्ण पार्थिवद्रव्य होणे योग्य है, पीतरूपवाला होणेतैं। जो जो द्रव्य पीतरूपवाला होवै है सो सो द्रव्य पार्थिव हीं होवै है जैसे हरिद्रा पीतरूपवाली है। यातैं सा हरिद्रा पार्थिव हीं है। तैसे सो सुवर्ण भी पीतरूपवाला है, यातैं सो सुवर्णभी पार्थिवद्रव्य हीं होवैगा। ऐसी शंकाके प्राप्त हूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता सुवर्णविषे तैजसपणा सिद्ध करे हैं। ता अनुमानका यह आकार है—सुवर्णं तैजसम् असति प्रतिबन्धके अत्यन्ताग्निसंयोगे सति अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा घृतादिपृथिवी। अर्थ यह—सो सुवर्ण तैजसद्रव्य होणेयोग्य है, प्रतिबंधकके अविद्यमानहूए अत्यंत अग्निके संयोगहूए उच्छेदतैं रहित द्रवत्वका अधिकरण होणेतैं। जो जो द्रव्य तैजस नहीं होवै है सो सो द्रव्य प्रतिबंधकके अविद्यमानहूए अत्यंत अग्निसंयोगके हूए उच्छेदतैं रहित द्रवत्वका अधिकरण भी नहीं होवै है। जैसे घृतजतु आदिक पृथिवी तैजसद्रव्य नहीं है यातैं सा पृथिवी जलरूप प्रतिबंधकके अविद्यमानहूए अत्यंत अग्निसंयोगके हूए उच्छेदतैं रहित द्रवत्वका अधिकरण भी नहीं है, किंतु जलरूप प्रतिबंधकके अविद्यमानहूए अत्यंत अग्निके संयोगहूए ता घृतजतुरूप पृथिवीका सो द्रवत्व उच्छिन्न होइ जावै है। और सुवर्णविषे तौं ता जलादिरूप प्रतिबंधकके अविद्यमानहूए अत्यंत अग्निसंयोगके हूए भी ता द्रवत्वका उच्छेद होता नहीं। जो सुवर्ण पार्थिव होता तौं घृतजतुरूप पृथिवीकी न्यांई ता सुवर्णका सो द्रवत्व उच्छिन्न होइ जाता। यातैं सो सुवर्ण पार्थिव नहीं है, किंतु तैजसद्रव्य हीं है। पदकृत्य—तहां इस उक्त अनुमानविषे 'अत्यन्ताग्निसंयोगे सति अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'असति प्रतिबन्धके' यह पद नहीं कथन करते तौं जलके मध्यविषे स्थित घृतविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? अत्यंत अग्निसंयोगके हूए भी जलके मध्यविषे स्थित घृतका सो द्रवत्व नाश होता नहीं; परंतु ता घृतविषे सो तैजसत्वरूप साध्य है नहीं। यातैं तैजसत्वरूप साध्यके अभाववाले घृतविषे वृत्ति होणेतैं सो उक्तहेतु व्यभिचारी हीं होवैगा ता व्यभिचारदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे 'असति प्रतिबन्धके' यह पद कथन कर्या है। तहां तिस अत्यंत अग्निके संयोगवाले घृतविषे प्रतिबन्धकका अभाव नहीं है, किंतु जलरूप प्रतिबंधक हीं तहां विद्यमान है। यातैं ता उक्त हेतुका ता घृतविषे व्यभिचार होवै नहीं। किंवा 'असति प्रतिबन्धके अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात्'

इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'अत्यन्ताग्निसंयोगे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं जिस घृतविषे सो अत्यन्तअग्निसंयोग नहीं हूआ है तिस घृतविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? जलरूप प्रतिबंधकके अविद्यमानहूए भी सो घृत उच्छेदतैं रहित द्रवत्वका अधिकरण हीं है, परंतु ता घृतविषे सो तैजसत्वरूप साध्य है नहीं । यातैं तैजसत्वरूप साध्यके अभाववाले ता घृतविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'अत्यन्ताग्निसंयोगे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता अत्यंत अग्निसंयोगतैं रहित घृतविषे ता तैजसत्वसाध्यकी न्यांई सो अत्यंत अग्निसंयोगघटितहेतु भी नहीं है । यातैं ता घृतविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं । किंवा इस उक्त हेतुविषे जो 'अत्यंत' यह पद नहीं कथन करते तौं पुनः ता घृतविषे सो हेतु व्यभिचारी होता । काहेतैं ? ता जलरूप प्रतिबंधकके अविद्यमान हूए भी तथा परमाणुद्व्यणुकरूप अग्निके संयोग हूए भी अथवा महान् अग्निका एकक्षणमात्र संयोग हूए भी ता घृतका द्रवत्व उच्छिन्न होता नहीं । यातैं तैजसत्वरूप साध्यके अभाववाले ता घृतविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे 'अत्यन्त' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो परमाणुद्व्यणुकरूप अग्निका संयोग तथा महान् अग्निका एकक्षणमात्र संयोग अत्यन्ताग्निसंयोग कह्या जावै नहीं । किंतु महान् अग्निका चिरकालपर्यंत संयोग हीं अत्यंताग्निसंयोग कह्या जावै है । ऐसे अत्यंताग्निसंयोगके हूए जलरूपप्रतिबंधकतैं रहित घृतजतुआदिक पार्थिवपदार्थोंका द्रवत्व नष्ट हीं होइ जावै है । यातैं ता घृतविषे तिस उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं ॥ **शंका**—इस उक्त हेतुका भी जलपरमाणुवों विषे व्यभिचारी हीं होवै है । काहेतैं ? ता अत्यंत अग्निसंयोगके विद्यमान हूए भी तिन जलपरमाणवोंका द्रवत्व नष्ट होता नहीं । जिस कारणतैं सो जलपरमाणुवोंका द्रवत्व नित्य है, नित्यवस्तुका कदाचित् भी नाश होवै नहीं । यात तैजसत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन जलपरमाणुवोंविषे वृत्ति होणेतैं सो उक्तहेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । यद्यपि ता उक्तहेतुविषे 'पृथिवीत्वात्' इस पदके कहणे करिकै अर्थात् 'असति प्रतिबन्धके अत्यन्ताग्निसंयोगे सति अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणपृथिवीत्वात्' इस प्रकार पृथिवीत्वपदघटित हेतुके कहणे करिकै ता पृथिवीत्वके अभाववाले तिन जलपरमाणुवोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं । तथापि ता पृथिवीत्वपदके कहणे करिकै ता हेतुकी कहीं भी प्रसिद्धि नहीं होवैंगी । काहेतैं ? ऐसी कोई पृथिवी है नहीं, जिस पृथिवी का द्रवत्व जलादिरूप प्रतिबंधकके अभाव हूए अत्यंतअग्निसंयोग करिकै नाश नहीं होवै है, किंतु नाशही होवैहै यातैं ता पृथिवीत्व पदकरिकै तिन जलपरमाणुवोंविषे ता उक्तहेतुके व्यभिचारकी निवृत्ति करणी संभवती नहीं । **समाधान**—ता उक्तहेतुविषे स्थित द्रवत्वपद करिकै जन्यद्रवत्वका ग्रहण

करणा अथवा ता द्रवत्वपद करिकै नैमित्तिकद्रवत्वका ग्रहण करणा । सो जन्यद्रवत्व तथा नैमित्तिकद्रवत्व तिन जलपरमाणुवोंविषे रहता नहीं, किंतु तिन जलपरमाणुवोंविषे नित्यद्रवत्व-रहे है तथा सांसिद्धिक द्रवत्व रहे है। यातैं ता उक्त हेतुका तिन जलपरमाणुवोंविषे व्यभिचार-होवै नहीं ॥ शंका—तिस तैजससुवर्णके साथि मिल्या हूआ जो पीतरूप गुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभाग है सो पार्थिवभाग भी तिस अत्यन्तअग्निसंयोगकालविषे ता सुवर्णकी न्यांई द्रवीभूत हीं होवै है। यातैं सो उक्तहेतु ता पार्थिवभागविषे भी है, परन्तु ता पार्थिवभाग-विषे सो तैजसत्वरूप साध्य है नहीं। यातैं तैजसत्वरूप साध्यके अभाववाले ता पार्थिव-भागविषे वृत्तिहोणेतैं सो उक्तहेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । समाधान—जैसे जलके मध्यविषे स्थित जो मसीका चूर्ण है सो चूर्ण द्रवीभूत होवै नहीं, किंतु सो जल हीं द्रवीभूत होवै है परन्तु ता द्रवीभूत जलके संयोगतैं ता मसीके चूर्णविषे द्रवीभूतपणेके भ्रांति होवै है तैसे तैजससुवर्णविषे स्थित जो पीतरूपगुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभाग है सो पार्थिवभाग ता अत्यन्तअग्निसंयोगतैं द्रवीभूत होता नहीं । किंतु सो तैजससुवर्ण हीं द्रवीभूत होवै है, परंतु ता द्रवीभूततैजससुवर्णके संयोगतैं ता पार्थिवभागविषे द्रवीभूतपणेकी भ्रांति होवै है । यातैं ता पार्थिवभागविषे तैजसत्वरूप साध्यकी न्यांई सो हेतुभी नहीं है। यातैं ता उक्तहेतुका ता पार्थिवभागविषे व्यभिचार होवै नहीं । इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै ता सुवर्णविषे तैजसपणा हीं सिद्ध होवै है इति ॥ और केईकग्रन्थकार—तौं इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै ता सुवर्णविषे तैजसपणा सिद्ध करे हैं। अत्यन्ताग्निसंयोगिपीतिम गुरुत्वाश्रयः विजातीयरूपप्रतिबन्धकद्रवद्रव्यसंयुक्तः अत्यन्ताग्निसंयोगे सत्यपि पूर्वरूपविजातीय-रूपानधिकरणत्वे सति पृथिवीत्वात् जलमध्यस्थपीतपटवत् । अर्थ यह—अत्यन्त अग्निसंयोगवाला ऐसा जो सुवर्णविषे मिल्या हूआ पीतिमगुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभाग है सो पार्थिवभाग आपणेतैं विजातीय तथा रूपके उत्पत्तिका प्रतिबन्धक ऐसे द्रवत्वधर्म-वाले द्रव्यकरिकै संयुक्त है, अत्यन्तअग्निसंयोगके विद्यमान हूए भी पूर्वरूपतैं विजातीय-रूपका अनधिकरण हूआ पृथिवीरूप होणेतैं । जो जो द्रव्य अत्यन्तअग्निसंयोगके विद्य-मानहूए भी पूर्वरूपतैं विजातीयरूपका अनधिकरण पृथिवीरूप होवै है सो सो द्रव्य आपणेतैं विजातीय तथा रूपके उत्पत्तिका प्रतिबंधक ऐसे द्रवत्वधर्मवाले द्रव्य करिकै युक्त हीं होवै है। जैसे जलके मध्यविषे स्थित पीतपट अत्यन्त अग्निसंयोगके विद्यमानहूए भी पूर्वले पीतरूपतैं विजातीय नीलादिरूपका अनधिकरण हूआ पृथिवीरूप है । यातैं सो पीतपट आपणेतैं विजातीय तथा नीलादिक रूपके उत्पत्तिका प्रतिबन्धक ऐसे द्रवत्व धर्मवाले जलरूप द्रव्य करिकै भी युक्त है। तैसे सो पीतिम गुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभाग भी अत्यन्त अग्निसंयोगके विद्यमान हूए भी पूर्वले पीतरूपतैं विजातीय नीलादिकरूपका अनधिकरण

हूआ पृथिवीरूप है । यातैं सो पीतिम गुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभाग भी आपणेतैं विजातीय तथा नीलादिकरूपके उत्पत्तिका प्रतिबन्धक ऐसे द्रवत्व धर्मवाले द्रव्य करिकै अवश्य युक्त होवैंगा । सो ऐसा पीतरूप गुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभागतैं विजातीय तथा ता पार्थिवभागविषे नीलादिकरूपकी उत्पत्तिका प्रतिबन्धक तथा द्रवत्व गुणवाला तैजससुवर्ण हीं सिद्ध होवै है । पृथिवी वा जल वा वायु आदिक सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं ? ता उक्त अनुमानविषे पक्षरूप जो पीतिम गुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिवभाग है ता पार्थिवभागतैं पृथिवीविषे विजातीय रूपता नहीं है, किंतु पृथिवीत्व जाति करिकै सजातीयरूपता हीं है । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै ता पृथिवीकी भी सिद्धि होवै नहीं । यद्यपि ता पक्षभूत पार्थिव भागतैं जल विजातीय है तथा सो जल द्रवत्व गुणवाला भी है तथापि ता जलका तहां सम्भव हीं नहीं है । काहेतैं ? ता जलविषे सांसिद्धिक द्रवत्व हीं रहै है । नैमित्तिक द्रवत्व रहता नहीं और सुवर्णविषे सो सांसिद्धिक द्रवत्व किसीकूं भी अनुभव होता नहीं, किन्तु अग्निरूप तेजके संयोगजन्य नैमित्तिक द्रवत्व हीं ता सुवर्णविषे प्रतीत होवै है । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै ता जलकी भी सिद्धि सम्भवै नहीं । तैसे ता अनुमान करिकै वायु आकाशादिक द्रव्योंकी भी सिद्धि सम्भवै नहीं । काहेतैं ? ते वायु आकाशादिक द्रव्य यद्यपि ता पक्षभूत पार्थिवभागतैं विजातीय तौं हैं तथापि ते वायु आकाशादिक द्रव्य द्रवत्व गुणवाले नहीं हैं तथा रूपगुणतैं भी रहित हैं । रूपवान् द्रव्य हीं पाकज रूपादिकोंकी उत्पत्तिविषे प्रतिबन्धक होवै है । रूपरहित द्रव्य प्रतिबन्धक होवै नहीं । जो कदाचित् रूपरहित द्रव्यके संयोगकूं भी तिन पाकज रूपादिकोंके उत्पत्तिका प्रतिबन्धक मानिये तौं किसी भी स्थलविषे तेजके संयोगरूप पाक करिकै पृथिवीविषे विजातीय रूपरसादिकोंकी उत्पत्ति नहीं होणी चाहिये । जिस कारणतैं ते रूपरहित वायु आकाशादिक प्रतिबन्धक द्रव्य सर्व देशकालविषे विद्यमान हीं हैं किसी भी देशकालविषे तिनोंका अभाव नहीं है और आम्रफलादिरूप पृथिवीविषे तेजके संयोगरूप पाक करिकै पूर्वरूप रसादिकोंके नाशपूर्वक विजातीय रूप रसादिकोंकी उत्पत्ति सर्व लोकोंकूं अनुभव सिद्ध है, यातैं यह जान्या जावै है--ते रूपरहित वायु आकाशादिक द्रव्य तिन पाकज रूप रसादिकोंके उत्पत्तिका प्रतिबन्धक होते नहीं । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै पृथिवी, जल, वायु आदिक द्रव्योंकी सिद्धि सम्भवै नहीं । किन्तु परिशेषतैं ता तैजस सुवर्णकी हीं सिद्धि सम्भवै है । पदकृत्य—तहां ता उक्त अनुमानविषे ' पूर्वरूपविजातीयरूपानधिकरणत्वे सति पृथिवीत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे ' अत्यन्ताग्निसंयोगे सत्यपि ' यह पद नहीं कथन करते तौं अत्यन्त अग्निसंयोगतैं रहित घटविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? जिस घटविषे सो अत्यन्त अग्निसंयोग नहीं हूआ है सो घट पूर्वरूपतैं विजातीय रूपका

अनधिकरण भी है तथा पृथिवीरूप भी है । परन्तु ता घटविषे सो विजातीय रूप प्रतिबन्धक द्रवद्रव्य संयुक्तत्वरूप साध्य है नहीं । यातैं ता साध्यके अभाववाले ता घटविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'अत्यन्ताग्निसंयोगे सत्यपि' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिस घटविषे जैसे सो साध्य नहीं है तैसे सो अत्यन्ताग्निसंयोग घटित हेतु भी नहीं है । यातैं ता घटविषे तिस उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं किंवा ता उक्त हेतुविषे जो 'अत्यन्त' यह पद नहीं कथन करते तौं जिस घटविषे परमाणुद्व्यणुकरूप अग्निका संयोग हूआ है अथवा महान् अग्निका एक क्षणमात्र संयोग हूआ है तिस घटविषे ता तेजसंयोगतैं पूर्वरूपतैं विजातीयरूपकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता घटविषे सो हेतु तौं विद्यमान है परंतु सो उक्तसाध्य ता घटविषे है नहीं । यातैं ता साध्यके अभाववाले तिस घटविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता उक्तहेतुविषे 'अत्यंत' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता घटविषे स्थित जो परमाणुद्व्यणुकरूप अग्निका संयोग है अथवा महान् अग्निका एकक्षणमात्रसंयोग है सो अग्निसंयोग अत्यन्ताग्निसंयोग कह्या जावै नहीं । यातैं ता घटविषे जैसे सो उक्तसाध्य नहीं है तैसे सो अत्यंत अग्निसंयोग घटितहेतु भी नहीं है । यातैं ता घटविषे तिस उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं । किंवा ता उक्तअनुमानविषे 'अत्यन्ताग्निसंयोगे सत्यपि पूर्वरूपविजातीयरूपानधिकरणत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'पृथिवीत्वात्' यह पद नहीं कथन करते तौं ता हेतुका जलपरमाणुवोंविषे व्यभिचार होता । काहेतैं ? तिन जलपरमाणुवोंविषे अत्यन्तअग्निसंयोगके हूए भी पूर्वरूपतैं विजातीयरूपकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं सो हेतु तौं तिन जल परमाणुवोंविषे है, परंतु तिन जलपरमाणुवोंविषे सो विजातीयरूप प्रतिबंधकद्रव द्रव्यसंयुक्तत्वरूप साध्य है नहीं । यातैं ता साध्यके अभाववाले तिन जलपरमाणुवोंविषे वृत्ति होणेतैं सो उक्त हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता उक्त हेतुविषे 'पृथिवीत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन जलपरमाणुवोंविषे सो पृथिवीत्व है नहीं, यातैं ता पृथिवीत्वघटितहेतुका भी अभाव होणेतैं तिन जलपरमाणुवोंविषे तिस उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति । इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै तिस तैजस सुवर्णकी सिद्धि संभवै है । तात्पर्य यह—पार्थिवद्रव्यके साथि जो अत्यन्तअग्निसंयोग है सो अत्यन्तअग्निसंयोग ता पार्थिवद्रव्यके साथि विजातीय तथा रूपके उत्पत्तिका प्रतिबंधक तथा द्रवत्वगुणवाला ऐसे द्रव्यके संयोगसंबंधतैं विना ता पार्थिवद्रव्यविषे पूर्वरूपतैं विजातीयरूपकूं अवश्य करिकै उत्पन्न करे है । जैसे तंडुलादिक पार्थिवद्रव्योंके साथि जो अत्यंतअग्निका संयोग है सो अत्यंतअग्निसंयोग जलरूप प्रतिबंधकतैं विना तिन तंडुलादिक पार्थिवद्रव्योंविषे पूर्वशुक्लादिरूपतैं विजातीय नीलादिक रूपकी उत्पत्ति अवश्य करे है और सुवर्णविषे स्थित जो

पीतरूपवाला तथा गुरुत्ववाला पार्थिवभाग है ता पार्थिवभागके साथि अनेकवार ता अत्यंतअग्निसंयोगके हूए भी ता पूर्वले पीतरूपतैं विजातीय नीलादिक रूपकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता पार्थिवभागके साथि ता पार्थिवभागतैं विजातीय तथा पूर्वपीतरूपतैं विजातीय नीलादिक रूपकी उत्पत्तिका प्रतिबंधक तथा द्रवत्वगुणवाला ऐसे किसी द्रव्यका संयोगसंबंध अवश्य अंगीकार करणा होवैंगा । तहां पूर्वउक्त रीतिसैं पृथिवी जल वायु आदिक द्रव्योंकूं तौं ता विजातीयरूपकी उत्पत्तिविषे प्रतिबंधकता संभवती नहीं । परिशेषतैं तेजरूप द्रव्यकूं हीं ता विजातीय रूपके उत्पत्तिका प्रतिबंधक मानणा होवैंगा । सो प्रतिबंधक तेज हीं सुवर्णरूप है इति॥ सुवर्णादिको तैजस होने विषे श्रुति प्रमाण—किंवा केवल इस पूर्व उक्त अनुमान प्रमाण करिकै हीं ता सुवर्णविषे तैजसरूपता सिद्ध नहीं है । किंतु **अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यम्** इत्यादिक श्रुति प्रमाणतैं भी ता सुवर्णविषे तैजसरूपता हीं सिद्ध होवै है । इस प्रकारकी उक्तरीतिसैं रजत ताम्रादिकोंविषे भी तैजसद्रव्यरूपता जानि लेणी इति । अन्य ग्रन्थकारोंके मतसे तेजका भेद—और कितनैंकी न्यायग्रंथोंविषे तौं उद्भूतरूपस्पर्श १, अनुद्भूतरूपस्पर्श २, उद्भूतस्पर्शानुद्भूतरूप ३, उद्भूतरूपानुद्भूतस्पर्श ४ इस भेद करिकै सो पूर्वउक्त तेजद्रव्य च्यारि प्रकारका कथन कऱ्या है। तहां जिस तेजका रूप तथा स्पर्श दोनों उद्भूत होवै है सो तेज उद्भूतरूप स्पर्श कह्या जावै है । जैसे यह प्रसिद्ध सूर्य अग्निरूप तेज है । ता सूर्यअग्निरूप तेजका भास्वररूप तथा उष्णस्पर्श सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है १॥ और जिस तेजका रूप तथा स्पर्श दोनों अनुद्भूत होवै हैं सो तेज अनुद्भूतरूप स्पर्श कह्या जावै है । जैसे चक्षुइंद्रियरूप तेज है । ता चक्षुइंद्रियरूप तेजका शुक्लभास्वररूप तथा उष्णस्पर्श किसीकूं भी प्रत्यक्ष होता नहीं, तहां जे रूपस्पर्शादिक प्रत्यक्षज्ञानके योग्य होवै हैं ते रूपस्पर्शादिक उद्भूत कह्ये जावै हैं और जे रूपस्पर्शादिक प्रत्यक्षज्ञानके अयोग्य होवै हैं ते रूपस्पर्शादिक अनुद्भूत कह्ये जावै हैं २ ॥ और जिस तेजका स्पर्श तौ उद्भूत होवै है और रूप अनुद्भूत होवै है सो तेज उद्भूतस्पर्शानुद्भूतरूप कह्या जावै है । जैसे अग्निआदिकों करिकै तप्येहूए जलविषे स्थित जो तेज है ता तेजका उष्णस्पर्श तौ उद्भूत होणेतैं त्वक्इंद्रिय करिकै जान्या जावै है । और शुक्लभास्वररूप अनुद्भूत होणेतैं चक्षुइंद्रिय करिकै जान्या जावै नहीं, या कारणतैंहीं तिस तेजका वायुकी न्याई चाक्षुषप्रत्यक्ष तथा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं । काहेतैं ? प्राचीननैयायिकोंके मतविषे तौं बाह्यद्रव्यके प्रत्यक्ष विषे महत्त्वसमानाधिकरणउद्भूतरूप कारण होवै है, सो उद्भूतरूप जैसे वायुविषे नहीं है तैसे तिस तेज विषे भी नहीं है । यातैं जैसे ता वायुका चक्षुइंद्रिय करिकै तथा त्वक् इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष नहीं होवै है तैसे ता तेजका भी चक्षुइंद्रिय करिकै तथा त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं किंतु जैसे वायुके स्पर्शमात्रका त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तैसे तिस तेजके उष्णस्पर्शमात्रका हीं त्वक् इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है और जे मीमांसक तथा नवीननैया-

यिक द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे तौं महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपकूं कारण माने हैं और द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षविषे महत्त्वसमानाधिकरणउद्भूतस्पर्शकूं कारण माने हैं तिन मीमांसकोंके मतविषे तथा तिन नवीन नैयायिकोंके मतविषे जैसे वायु चाक्षुषप्रत्यक्षका अविषयहूआ भी त्वाचप्रत्यक्षका विषय हीं है तैसे सो तप्तजलविषे स्थित तेज भी चाक्षुषप्रत्यक्षका अविषयहूआ भी त्वाचप्रत्यक्षका विषय हीं है ३ ॥ और जिस तेजका रूप तौं उद्भूत होवै है और स्पर्श अनुद्भूत होवै है सो तेज उद्भूतरूपानुद्भूतस्पर्श कह्या जावै है। जैसे प्रदीपादिकोंकी प्रभारूप तेज है। ता प्रभारूप तेजका शुक्लभास्वररूप तौं उद्भूत है और उष्णस्पर्श अनुद्भूत है। या कारणतैं हीं ता प्रभारूप तेजका केवल चाक्षुषप्रत्यक्ष हीं होवै है, त्वाच प्रत्यक्ष होवै नहीं। और जे नैया-यिक बाह्यद्रव्यके प्रत्यक्षविषे महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूप उद्भूतस्पर्श दोनोंकूं कारण माने हैं तिन नैयायिकोंके मत विषे तौं ता प्रभाका चाक्षुषप्रत्यक्ष भी होता नहीं। यह सर्व वार्त्ता आगे वायुनिरूपणविषे स्पष्ट करिकै कहैंगे ४ ॥ तेजविशेषोंमें सुवर्णादिका अन्तर्भाव—**शंका**; इस पूर्व उक्त च्यारि प्रकारके तेजविषे ता सुवर्णरजतादिरूप तेजका किस तेज विषे अंतर्भाव है? **समाधान**—ता सुवर्णरूप तेजका उद्भूतरूपस्पर्शनामा प्रथमतेजविषे हीं अंतर्भाव है। अनुद्भूत-रूपस्पर्शनामा द्वितीय तेजविषे ता सुवर्णका अंतर्भाव नहीं है। काहेतैं?ता सुवर्णकूं जो अनुद्भूत-रूपवाला मानिये तौं ता सुवर्णका चाक्षुषप्रत्यक्ष नहीं होवैगा और ता सुवर्णका चाक्षुषप्रत्यक्ष तौं सर्वलोकोंकूं अनुभव सिद्ध है। यातैं सो सुवर्ण अनुद्भूतरूपवाला नहीं है, किंतु उद्भूतरूपवाला हीं है और ता सुवर्णकूं जो अनुद्भूतस्पर्शवाला मानिये तौं ता सुवर्णका त्वाचप्रत्यक्ष नहीं होवैगा। और ता सुवर्णका त्वाचप्रत्यक्ष भी सर्वलोकोंकूं अनुभवसिद्ध है। यातैं सो सुवर्ण अनुद्भूतस्पर्श-वाला भी नहीं है, किंतु सो सुवर्ण उद्भूतस्पर्शवाला हीं है। यातैं ता सुवर्णरूप तेजका ता उद्भूत-रूपस्पर्श नामा प्रथमतेजविषे हीं अंतर्भाव संभवै है। **शंका**—ता सुवर्णरूप तेजविषे जो कदा-चित् उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श रहता होवै तौं जैसे सूर्य-अग्निरूप तेजका शुक्ल भास्वररूप तथा उष्णस्पर्श सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है तैसे ता सुवर्णरूप तेजका भी सो शुक्लभास्वररूप तथा उष्णस्पर्श सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष प्रतीत होणा चाहिये, सो प्रतीत होता नहीं। यातैं ता सुवर्ण रूप तेजका ता प्रथमतेजविषे अंतर्भाव संभवता नहीं, किंतु ता द्वितीयतेजविषे हीं अंतर्भाव संभवै है। **समाधान**—ता सुवर्णरूप तेजविषे ता उद्भूतरूपस्पर्शके विद्यमान हूए भी ता रूपस्पर्शका जो नहीं ग्रहण होवै है सो बलवान् सजातीय पार्थिवरूप स्पर्शकृत अभिभव करिकै नहीं होवै है। तहां तैजससुवर्णविषे मिल्या हूआ जो पीतिमगुरु-त्वका आश्रयभूत पार्थिव भाग है, तिस पार्थिवभागविषे जो पीतरूप रहै है तथा अनुष्णाशीत स्पर्श रहै है सो पीतरूप तथा अनुष्णाशीतस्पर्शरूपत्व जाति करिकै तथा स्पर्शत्वजाति करिकै ता सुवर्णरूप तेजके रूपस्पर्शके सजातीय है, तथा ता सुवर्णरूप तेजके रूपस्पर्शतैं

सो पार्थिवभागका रूपस्पर्श बलवान् भी है। ता रूपस्पर्शविषे बलवान्‌पणा प्रत्यक्षज्ञानरूप कार्यके बलतैं हीं जान्या जावै है अर्थात् दोनों प्रकारके रूपस्पर्शविषे जिस रूपस्पर्शका प्रत्यक्षज्ञान होवै है सो रूपस्पर्श तौं बलवान् कह्या जावै है और जिस रूपस्पर्शका प्रत्यक्षज्ञान नहीं होवै है सो रूपस्पर्श दुर्बल कह्या जावै है। सो इस प्रकारका बलवान्‌पणा ता पार्थिवभागके रूपस्पर्शविषे हीं है। ता सुवर्णरूप तेजके रूपस्पर्शविषे हैं नहीं। ऐसे बलवान् तथा सजातीय पार्थिवरूप स्पर्शकृत अभिभवतैं तिस तैजससुवर्णके रूपस्पर्शका ग्रहण होता नहीं। भास्वरेतर शुक्लके ग्रहणकी शंका-**बलवत्सजातीयग्रहणकृतमग्रहणम् अभिभवः।** अर्थ यह—बलवान् तथा सजातीय ऐसी वस्तुके ग्रहण करिकै जो वस्तुका अग्रहण है, यह हीं तिस वस्तुका अभिभव है। सो ईहां प्रसङ्गविषे ता बलवान् तथा सजातीय पार्थिवभागके रूपस्पर्शके ग्रहण करिकै जो तैजस सुवर्णके रूपस्पर्शका अग्रहण है सो अग्रहण हीं ता तैजससुवर्णके रूपस्पर्शका अभिभव है। इस प्रसंगविषे ग्रहणशब्द करिकै सर्वत्र प्रत्यक्ष ज्ञानका हीं ग्रहण करणा। तहां सूर्यप्रदीपादिक प्रकाशविषे ता पार्थिवभागके पीतरूपका ग्रहण होवै है। यातैं तहां ता तैजससुवर्णके भास्वरशुक्लरूपका ग्रहण मत होवो, परन्तु अन्धकारविषे ता पार्थिवभागके ता पीतरूपका ग्रहण होता नहीं। यातैं ता बलवत्सजातीयग्रहणकृत अग्रहणरूप अभिभवके अभाव हूए ता अंधकार विषे ता तैजससुवर्णके तिस भास्वरशुक्लरूपका ग्रहण होणा चाहिये, और होता नहीं। इसका समाधान—ता बलवत्सजातीय ग्रहणकृत अग्रहणकूं हम अभिभवरूपता नहीं मानते। जिस करिकै अंधकारविषे ता तैजस सुवर्णके भास्वरशुक्लरूपके प्रत्यक्षकी प्राप्ति होवै। किंतु **बलवत्सजातीयसम्बन्धकृतमग्रहणम् अभिभवः।** अर्थ यह—बलवान् तथा सजातीय ऐसी वस्तुके संबंध करिकै जो वस्तुका अग्रहण है यह हीं तिस वस्तुका अभिभव है। या प्रकारके अभिभवकूं हम अंगीकार करे हैं, तहां ता तैजस सुवर्णके रूपस्पर्शविषे ता पार्थिवभागके रूपस्पर्शका स्वसमवायिसंयुक्त समवायरूप संबंध ता अंधकारविषे भी विद्यमान है। यातैं ता उक्त अभिभवके विद्यमान हूए अन्धकारविषे ता सुवर्णके भास्वरशुक्लरूपके प्रत्यक्षकी प्राप्ति होइसके नहीं। तहां इस उक्त संबंधविषे स्वशब्द करिकै ता पार्थिवभागके पीतरूपका तथा अनुष्णाशीतस्पर्शका ग्रहण करणा। ता रूपस्पर्शका समवायिकारण सो पार्थिवभाग है। तिस पार्थिवभागके संयोगसंबंधवाला सो तैजससुवर्ण है। ता तैजस सुवर्णविषे ता भास्वरशुक्लरूपका तथा उष्णस्पर्शका समवायसंबंध है। इस प्रकारके परंपरासंबंध करिकै जो ता तैजस सुवर्णके रूपस्पर्शविषे ता पार्थिवभागके रूपस्पर्शकी स्थिति है यह ही ता तैजस सुगर्णके रूपस्पर्शका अभिभव है, ता अभिभव करिकै तिस तैजस सुवर्णके भास्वरशुक्ल रूपका तथा उष्णस्पर्शका प्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु ता पार्थिवभागके पीतरूपका तथा अनुष्णाशीतस्पर्शका हीं प्रत्यक्ष होवै है। इस प्रकारके अभिभव करिकै ता

तैजससुवर्णके भास्वरशुक्लरूपके तथा उष्णस्पर्शके अग्रहणतूए भी सो सुवर्ण उद्भूतरूपस्पर्शवाला हीं है । अनुद्भूतरूप स्पर्शवाला नहीं है । अन्धकारमें भी दीखनेकी शंका—ता सुवर्णकूं जो उद्भूतरूपस्पर्शवाला तैजसद्रव्य मानोंगे तौं अन्धकारविषेभी ता सुवर्णका चाक्षुषप्रत्यक्ष होणाचाहिये। काहेतें? महत्त्वपरिमाणवाले तथा उद्भूतरूप स्पर्शवाले तैजसद्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे दूसरे तेजके संयोगकी अपेक्षा होती नहीं । जैसे सूर्य प्रदीपादिक तेजके चाक्षुष प्रत्यक्षविषे दूसरे किसी तेजके संयोगकी अपेक्षा होती नहीं तैसे ता सुवर्णरूप तेजके चाक्षुष प्रत्यक्षविषे भी दूसरे किसी तेजके संयोगकी अपेक्षा नहीं होवैगी । यातैं अंधकारविषे भी ता सुवर्णका चाक्षुष प्रत्यक्ष होणा चाहिये और अंधकारविषे ता सुवर्णका चाक्षुष प्रत्यक्ष किसीकूं भी होता नहीं । यातैं सो सुवर्ण तैजसद्रव्य नहीं है । इसका समाधान—रूपकूं न विषय करणेहारा ऐसा द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु रूपकूं विषय करणेहारा हीं द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है । यातैं यह अर्थ सिद्ध होवै है—ता द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षविषे ता रूपके चाक्षुष प्रत्यक्षकी आलोकसंयोगादिरूप सामग्री भी कारण होवै है । तहां तैजससुवर्णके भास्वर शुक्लरूपका तौं पूर्वउक्त रीतिसैं ता पार्थिव पीतरूपकरिकै अभिभव होइ रह्या है । यातैं ता भास्वर शुक्लरूपका तौं चाक्षुष प्रत्यक्ष सम्भवता नहीं और जिस पार्थिवपीतरूप करिकै ता सुवर्णका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है ता पीतरूपके चाक्षुष प्रत्यक्षकी सामग्री जो आलोकसंयोग है सो आलोकसंयोग ता अंधकारविषे है नहीं । यातैं ता अंधकारविषे ता सुवर्णरूप तेजका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता नहीं । **शंका**—जैसे काष्ठादिरूप पृथिवीके रक्तपीतादिरूप करिकै अभिभवकूं प्राप्त हूआ भी अग्निका भास्वर शुक्लरूप आपणेकूं तथा अन्य पदार्थोंकूं प्रकाश करे है तैसे ता पार्थिव भागके पीतरूप करिकै अभिभवकूं प्राप्त हूआ भी सो तैजस सुवर्णका भास्वर शुक्लरूप आपणेकूं तथा स्वसमीपवर्त्ति अन्य पदार्थोंकूं अवश्य करिकै प्रकाश करैगा । **समाधान**—ता काष्ठादिक पृथिवीके रक्तपीतादिक रूपोंनैं ता अग्निके भास्वर रूपका अभिभव नहीं कऱ्या किंतु ता भास्वर रूपके शुक्लत्वका अभिभव कऱ्या है । यातैं सो अग्निका भास्वर रूप आपणेकूं तथा स्वसमीपवर्त्ति अन्यपदार्थोंकूं प्रकाश करे है और ईहां सुवर्णविषे तौं ता पार्थिव पीतरूपनैं शुक्लत्व भास्वरत्व दोनोंका अभिभव कऱ्या है । यातैं सो तैजस सुवर्णका भास्वर शुक्लरूप आपणेकूं तथा अन्यपदार्थोंकूं प्रकाश करता नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—सो सुवर्ण उद्भूतअभिभूतरूपस्पर्श नामा तेज है अर्थात् उद्भूत तथा अभिभूत हैं रूप स्पर्श दोनों जिस तेजके, ऐसा तेजरूप सो सुवर्ण है इति । और केईक ग्रन्थकार—तौं ता सुवर्णरूप तेजकूं पूर्वउक्त च्यारि प्रकारके तेजविषे चतुर्थ तेजरूप माने हैं अर्थात् उद्भूत अभिभूतरूप अनुद्भूतस्पर्श ता सुवर्णकूं माने हैं । तहां उद्भूत है तथा अभिभूत है रूप जिस तेजका तथा अनुद्भूत है स्पर्श जिस तेजका, ता तेजका नाम उद्भूत अभिभूतरूप अनुद्भूत

स्पर्श है । ऐसा तेजरूप सो सुवर्ण है । इस मतविषे सो सुवर्ण केवल चाक्षुष प्रत्यक्षका हीं विषय है, त्वाच प्रत्यक्षका विषय नहीं है । सर्व प्रकारतैं सो सुवर्ण तैजस द्रव्यरूप हीं है । इस रीतिसैं रजतताम्रादिकोंविषे भी तैजस द्रव्यरूपता जानि लेणी इति ॥ ३ ॥

इति तेजनिरूपणं समाप्तम् ॥

---

वायुका निरूपण ।

अब वायुरूप चतुर्थ द्रव्यका निरूपण करे हैं । वायुके लक्षण—तहां रूपरहितस्पर्शवान् वायुः १ । अथवा अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवान् वायुः २ । अथवा वायुत्वजातिमान् वायुः ३ । प्रथम—अब इन तीन लक्षणोंविषे प्रथम लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो द्रव्य रूपगुणतैं रहित हूआ स्पर्शगुणवाला होवै है सो द्रव्य वायु कह्या जावै है । तहां सो वायु रूपगुणतैं रहित भी है तथा समवाय सम्बन्ध करिकै स्पर्शगुणवाला भी है । यातैं यह रूपरहितस्पर्शवत्त्वरूप वायुका लक्षण सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'रूपरहितः वायुः' इतना मात्र हीं जो वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'स्पर्शवान्' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाशादिकोंविषे ता वायुके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो वायु रूपतैं रहित है तैसे आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन यह पांचों द्रव्य तथा गुणकर्मादिक सर्वपदार्थ भी ता रूपतैं रहित हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्पर्शवान्' यह पद कथन कऱ्या है, तहां ते आकाशादिक द्रव्य तथा गुणकर्मादिक पदार्थ ता रूपगुणतैं रहित हूए भी ता स्पर्शगुणवाले हैं नहीं । यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'स्पर्शवान् वायुः' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'रूपरहित' यह पद नहीं कहते तौं पृथिवी जल तेज इन तीनों द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो वायु स्पर्शगुणवाला है तैसे ते पृथिवी आदिक तीन द्रव्य भी ता स्पर्शगुणवाले हीं हैं, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'रूपरहित' यह पद कथन कऱ्या है, तहां ते पृथिवी जल तेज रूप तीन द्रव्य ता स्पर्शगुणवाले हूए भी रूपगुणतैं रहित नहीं हैं किंतु रूपगुणवाले हीं हैं । यातैं तिन पृथिवी आदिक तीन द्रव्योंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । लक्षणका अन्य प्रकारसे निर्वचन—जो वायु प्रथमक्षणविषे उत्पन्न होइकै द्वितीयक्षणविषे नाशकूं प्राप्तहूआ है ता उत्पन्नविनष्ट वायुविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । काहेतैं ? प्रथमक्षण विषे तौं द्रव्य निर्गुण हीं उत्पन्न होवै है यह वार्त्ता पूर्व विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । यातैं उत्पत्तिक्षणविषे तौं ता वायुविषे सो स्पर्शगुण संभवता नहीं और जिस द्वितीयक्षणविषे ता वायुविषे स्पर्शगुणनै उत्पन्न होणा था तिस द्वितीयक्षणविषे सो वायु आप हीं नष्ट होइ गया । यातैं ता उत्पन्नविनष्ट वायुविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायुविषे ता रूपरहितस्पर्शवत्त्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । ऐसी

शंकाके प्राप्तहूए; अब ता उक्तलक्षणका अन्यप्रकारतैं निर्वचन करे हैं—रूपरहितस्पर्शव-द्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् वायुः । अर्थ यह—रूपतैं रहित स्पर्शवाले द्रव्यविषे रहणे-हारी ऐसी जा द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्यजाति है ता जातिवाला द्रव्य वायु कह्या जावै है । ऐसी वायुत्वजाति हीं है । काहेतैं ? सा वायुत्वजाति रूपतैं रहित स्पर्शगुणवाले वायुविषे हीं रहे हैं तथा नवद्रव्योंविषे रहणेहारी द्रव्यत्वजातिका सा वायुत्वजाति साक्षात्व्याप्य भी है । ऐसी वायुत्वजातिवाला सो उत्पन्नविनष्ट वायु भी है तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायु भी है । यातैं ता वायुविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । पदकृत्य—तहां 'द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजा-तिमान् वायुः' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' रूपरहितस्पर्शव द्वृत्ति ' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी, जल, तेज, आत्मा, मन इन पांचोंद्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सा वायुत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य है तैसे पृथिवीत्व जलत्व तेजस्त्व आत्मत्व मनस्त्व यह पांचोंजातियां भी ता द्रव्यत्वजातिके साक्षात्व्याप्य हीं हैं । ऐसी पृथिवीत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता जातिका ' रूपरहितस्पर्शवद्वृत्ति ' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां ते पृथिवीत्वादिक पांचों जातियां रूपरहित स्पर्शवाले द्रव्यविषे वृत्ति नहीं हैं, यातैं तिन पृथिवीत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' रूपरहित स्पर्शवद्वृत्तिजातिमान् वायुः ' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्रव्य-त्वसाक्षाद्व्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं सत्ताजातिकूं लैके द्रव्य गुण कर्म इन तीनों पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती तथा द्रव्यत्वजातिकूं लैके पृथिवी आदिक अष्ट द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? रूपरहितस्पर्शवाले वायुरूप द्रव्यविषे सा सत्ताजाति तथा द्रव्यत्वजाति समवायसंबंध करिकै रहे है, यातैं सा सत्ताजाति तथा द्रव्यत्व जाति रूपरहितस्पर्शवत्वृत्ति कही जावै है । ऐसी सत्ताजाति द्रव्य गुण कर्म इन तीनों पदार्थोंविषे रहे है तथा ऐसी द्रव्यत्वजाति पृथिवीआदिक सर्वद्रव्योंविषे रहे है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ' द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्य ' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां जा जाति ता द्रव्यत्वजातिके देशतैं न्यूनदेशविषे रहे है सा जाति हीं ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य जाति होवै है । ऐसी द्रव्यत्वजातिकी व्याप्यता ता सत्ताजातिविषे तथा द्रव्यत्व जातिविषे है नहीं । यातैं ता सत्ताजातिकूं लैके तथा द्रव्यत्वजातिकूं लैके ता लक्षणकी तिन द्रव्यादिकोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' स्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् वायुः' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' रूपरहित' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी जल तेज इन तीनों द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ।

काहेतैं ? जैसे सा वायुत्वजाति स्पर्शगुणवाले वायुविषे रहे है तैसे पृथिवीत्व, जलत्व, तेजस्त्व यह तीन जातियां भी यथाक्रमतैं ता स्पर्शगुणवाले पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंविषे रहे हैं तथा ता वायुत्वजातिकी न्यांई द्रव्यत्वजातिके साक्षात्व्याप्य भी हैं। ऐसी पृथिवीत्वादिक तीन जातियोंकूं लैके तिन पृथिवीआदिक तीन द्रव्योंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'रूपरहित' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते पृथिवीआदिक तीन द्रव्य रूपतैं रहित नहीं हैं, किंतु रूपवाले हीं हैं। यातैं ते पृथिवीत्वादिक जातियां रूपरहित स्पर्शवाले द्रव्यविषे वृत्ति नहीं हैं। यातैं तिन पृथिवीत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन पृथिवी आदिक तीन द्रव्योंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'रूपरहितवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् वायुः' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'स्पर्शवत्' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे तथा मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे रूपरहितवायुविषे वायुत्वजाति रहे है तैसे रूपरहित आत्माविषे आत्मत्वजाति रहे है तथा रूपरहित मनविषे मनस्त्वजाति रहे है। और सा आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजाति वायुत्वजातिकी न्यांई ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य भी है। ऐसी आत्मत्वजातिकूं तथा मनस्त्वजातिकूं लैके आत्माविषे तथा मनविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे 'स्पर्शवत्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता आत्माविषे तथा मनविषे सो स्पर्शगुण रहता नहीं। यातैं सा आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजाति स्पर्शगुणवाले द्रव्यविषे रहती नहीं। यातैं ता आत्मत्वजातिकूं तथा मनस्त्वजातिकूं लैके ता आत्माविषे तथा मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा इस उक्त लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद जो नहीं कथन करते किंतु 'रूपरहितस्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमान् वायुः' इतनामात्र हीं ता वायुका लक्षण करते तौं रूपरहितस्पर्शवाले प्राणवायुविषे वर्त्तणेहारी तथा द्रव्यत्वजातिका व्याप्य ऐसी प्राणत्वजातिकूं लैके ता प्राणवायुविषे तौं सो लक्षण घटता, परंतु परमाणु आदिरूप वायुविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होती, जिस कारणतैं सा प्राणत्वजाति सर्ववायुविषे रहती नहीं। ता अव्याप्तिदोषकेनिवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा प्राणत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य हूई भी ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य है नहीं, किंतु ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात् व्याप्य जा वायुत्वजाति है ता वायुत्वजातिका साक्षात् व्याप्य सा प्राणत्वजाति है। यातैं ता साक्षात्पदके कहणे करिकै ता प्राणत्वजातिकूं लैके ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति॥ १॥

द्वितीयलक्षणका निरूपण—तहां इतनें पर्यंत 'रूपरहितस्पर्शवान् वायुः' इस प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण कऱ्या। अब अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवान् वायुः इस द्वितीय लक्षणका

अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो स्पर्श अग्निआदिकतेजके संयोगरूप पाककरिके जन्य नहीं होवै है सो स्पर्श अपाकज कह्या जावै है और जो स्पर्श उष्णभावतैं तथा शीतभावतैं रहित होवै है सो स्पर्श अनुष्णाशीत कह्या जावै है । ऐसे अपाकज तथा अनुष्णाशीत स्पर्शवाला जो द्रव्य होवै है सो द्रव्य वायु कह्या जावै है । तहां अपाकज तथा अनुष्णाशीत ऐसा स्पर्श केवल वायुविषे हीं रहे है, पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे रहता नहीं । यातैं सो अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्वरूप वायुका लक्षण सम्भवै है । पदकृत्य—तहां ' स्पर्शवान् वायुः ' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' अनुष्णाशीत ' यह पद नहीं कथन करते तौं जलविषे तथा तेजविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो वायु स्पर्शगुणवाला है तैसे सो जल तेज भी ता स्पर्शगुणवाला हीं है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अनुष्णाशीत' यह ता स्पर्शका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां जलविषे तथा तेजविषे सो अनुष्णाशीतस्पर्श रहता नहीं, किंतु जलविषे तौं शीतस्पर्श रहे है और तेजविषे उष्णस्पर्श रहे है, वायुविषे हीं सो अनुष्णाशीतस्पर्श रहे है । यातैं जलविषे तथा तेजविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'अनुष्णाशीतस्पर्शवान् वायुः इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' अपाकज ' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवीविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं? जैसे वायुविषे सो अनुष्णाशीत-स्पर्श रहे है तैसे पृथिवीविषे भी सो अनुष्णाशीतस्पर्श हीं रहे है । यद्यपि किसी किसी पृथिवीविषे तथा किसी किसी वायुविषे उष्णस्पर्श तथा शीतस्पर्श भी प्रतीत होवै है, तथापि सो उष्णस्पर्श तथा शीतस्पर्श अग्निके तथा जलके सम्बन्धतैं हीं प्रतीत होवै है, स्वभावतैं ता पृथिवीविषे तथा वायुविषे सो उष्णस्पर्श तथा शीतस्पर्श है नहीं । किंतु सो अनुष्णाशीत-स्पर्श हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता अनुष्णाशीत स्पर्शका ' अपाकज ' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां यद्यपि ता पृथिवीविषे वायुकी न्यांई सो अनुष्णाशीतस्पर्श हीं रहे है तथापि सो पृथिवीका अनुष्णाशीतस्पर्श अपाकज होता नहीं, किंतु अग्निआदिक तेजके संयोगरूप पाक करिके जन्य हीं होवै है । वायुका हीं सो अनुष्णाशीतस्पर्श अपाकज होवै है । यातैं ता पृथिवीविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' अपाकजस्पर्शवान् वायुः ' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' अनुष्णाशीत ' यह पद नहीं कथन करते तौं पुनः जलविषे तथा तेजविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं? जैसे सो वायु अपाकजस्पर्शवाला होवै है तैसे सो जलतेज भी ता अपाकजस्पर्शवाला हीं होवै है । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' अनुष्णाशीत ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता जलतेजविषे सो अनुष्णाशीत-स्पर्श रहता नहीं । यातैं ता जलतेजविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

लक्षणका अन्य प्रकारसे निर्वचन—जो वायु प्रथमक्षणविषे उत्पन्न होइकै द्वितीय क्षणविषे नाशकूं प्राप्त हूआ है तिस उत्पन्नविनष्ट वायुविषे इस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है। काहेतैं? प्रथम क्षणविषे तौं द्रव्य निर्गुण हीं उत्पन्न होवै है। यातैं ता उत्पत्तिक्षणविषे तौं ता वायुविषे कोई भी गुण उत्पन्न होता नहीं और जिस द्वितीयक्षणमें ता वायुविषे ता स्पर्शगुणनैं उत्पन्न होणा था तिस द्वितीयक्षणविषे सो वायु आपहीं नष्ट होइ गया। ऐसे उत्पन्नविनष्ट वायुविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायुविषे सो अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वरूप लक्षण है नहीं। यातैं ता वायुविषे तिस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है किंवा जिस पटादिरूप पृथिवीविषे ता तेजसंयोगरूप पाक करिकै सो अनुष्णाशीत स्पर्श नहीं उत्पन्न हूआ है तिस पटादिरूप पृथिवीविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति भी होवै है। इस प्रकार अव्याप्तिदोष करिकै तथा अतिव्याप्तिदोष करिकै युक्त होणेतैं सो पूर्वउक्त लक्षण संभवता नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता उक्तलक्षणका अन्यप्रकारतैं निर्वचन करे हैं। **अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवन्मात्रवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् वायुः।** अर्थ यह—अपाकज ऐसा जो अनुष्णाशीतस्पर्श है ता स्पर्शवाले द्रव्यमात्रविषे रहणेहारी ऐसी जा द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य जाति है ता जातिवाला द्रव्य वायु कह्या जावै है, ऐसी वायुत्व जाति हीं है; सा वायुत्वजाति ता उत्पन्नविनष्ट वायुविषे भी रहे है तथा ता उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायु विषेभी रहे है। यातैं ता वायुविषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं और सा वायुत्वजाति ता पटादिरूप पृथिवीविषे रहती नहीं। यातैं ता पटादिरूप पृथिवीविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्ति भी होवै नहीं। तहां 'जातिमान् वायुः' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते तौं गुणपदार्थविषे तथा कर्मपदार्थविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो वायु वायुत्वजातिवाला है तैसे सो गुणकर्म भी गुणत्वकर्मत्वजातिवाला हीं है। ता अतिव्याप्ति-दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे ता लक्षणघटक जातिका 'द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्य' यह विशेषण कथन कर्‍या है। तहां सा गुणत्वजाति तथा कर्मत्वजाति केवल गुणविषे तथा कर्मविषे हीं रहे है, किसी भी द्रव्यविषे रहती नहीं। यातैं सा गुणत्वकर्मत्वजाति ता द्रव्यत्व जातिका व्याप्य कही जावै नहीं। यातैं ता गुणत्वकर्मत्वजातिकूं लेके ता गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् वायुः' इतना मात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते तौं आत्माविषे तथा मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सा वायुत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य है तैसे आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजातिभी ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य है, ऐसी आत्मत्वजातिकूं लेके आत्माविषे तथा मनस्त्वजातिकूं लेके मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अति-व्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्पर्शवन्मात्रवृत्ति' यह ता जातिका विशे-

षण कथन कऱ्या है। तहां आत्माविषे तथा मन विषे सो स्पर्शगुण रहता नहीं। यातैं सा आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजाति ता स्पर्शगुणवाले द्रव्यमात्रविषे रहती नहीं। यातैं ता आत्मत्वजातिकूं लैके तथा मनस्त्वजातिकूं लैके आत्माविषे तथा मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'स्पर्शवन्मात्रवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् वायुः' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते तौं जल, तेज इन दोनों द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सो वायु स्पर्शगुणवाला है तैसे जल, तेज यह दोनों द्रव्य भी ता स्पर्शगुणवाले हीं है। यातैं ता वायुत्वजातिकी न्यांई जलत्व,तेजस्त्व यह दोनों जातियां भी ता स्पर्शगुणवाले जल तेज इन दोनों द्रव्योंविषे यथाक्रमतैं रहे हैं। ऐसी स्पर्शगुणवाले द्रव्यमात्रविषे रहणेहारी जलत्व तेजस्त्व जातिकूं लैके जल तेज विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे ता स्पर्शका 'अनुष्णाशीत' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ता जलविषे तथा तेजविषे सो अनुष्णाशीतस्पर्श रहता नहीं, किंतु ता जलविषे तौं शीतस्पर्श रहे है और ता तेजविषे उष्णस्पर्श रहे है। यातैं सा जलत्वजाति तथा तेजस्त्वजाति ता अनुष्णाशीतस्पर्शवाले द्रव्यविषे रहती नहीं। यातैं ता जलत्वजातिकूं लैके जलविषे तथा ता तेजस्त्वजातिकूं लैके तेजविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'अनुष्णाशीतस्पर्शवन्मात्रवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् वायुः' इतनामात्र हीं जो ता वायुका लक्षण करते ता लक्षणविषे ता स्पर्शका 'अपाकज' यह विशेषण नहीं कथन करते तौं पृथिवीविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे वायुविषे सो अनुष्णाशीतस्पर्श रहे है तैसे पृथिवीविषे भी सो अनुष्णाशीतस्पर्श हीं रहे है। यातैं ता वायुत्व जातिकी न्यांई सा पृथिवीत्वजाति भी ता अनुष्णाशीतस्पर्शवाले द्रव्यविषे हीं रहे हैं तथा ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य भी है। ऐसी पृथिवीत्वजातिकूं लैके ता पृथिवीविषे तिस लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे ता स्पर्शका 'अपाकज' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां पृथिवी विष रह्या हुआ सो अनुष्णाशीतस्पर्श अपाकज होता नहीं किंतु पाकज होवै है। वायुका सो अनुष्णाशीत स्पर्श हीं अपाकज होवै है। यातैं सा पृथिवीत्वजाति अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवाले द्रव्यविषे रहती नहीं। यातैं ता पृथिवीत्व जातिकूं लैके ता पृथिवीविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ता उक्तलक्षणविषे 'मात्र' यह पद जो नहीं कथन करते तौं पृथिवीत्वजातिकूं लैके ता लक्षणकी पृथिवीविषे अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जिस पटादिरूप पृथिवीविषे सो पाकज स्पर्श नहीं होवै है तिस पटादिरूप पृथिवीविषे भी सा पृथिवीत्व जाति रहे है। यातैं सा पृथिवीत्वजाति ता अपाकजअनुष्णाशीतस्पर्शवाली पटादिरूप पृथिवीविषे वृत्ति भी है तथा द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य भी है। ऐसी पृथिवीत्व जातिकूं लैके पृथिवी

विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे 'मात्र' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा पृथिवीत्वजाति केवळ अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवाली पटादिक पृथिवीविषे हीं नहीं रहे है किंतु पाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवाले पृथिवी परमाणुवोंविषे भी सा पृथिवीत्व जाति रहे है। यातैं सा पृथिवीत्वजाति अपाकजअनुष्णाशीत-स्पर्शवत्मात्रवृत्ति नहीं है किंतु सा वायुत्वजाति हीं ता अपाकजअनुष्णाशीतस्पर्शवत्मात्र-वृत्ति है। यातैं ता मात्रपदके कहणे करिकै ता पृथिवीत्वजातिकूं लैके पृथिवीविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ता पूर्वउक्त लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद जो नहीं कथन करते तौं पटत्वजातिकूं लैके ता वायुके लक्षणकी पटविषे अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? पटविषे जो अनु-ष्णाशीतस्पर्श रहे है सो अपाकज हीं होवै है। यातैं सा पटत्वजाति ता अपाकज अनुष्णा शीतस्पर्शवाले पटमात्रविषे वृत्ति भी है तथा ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य भी है, ऐसी पटत्वजाति-वाले पटविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा पटत्वजाति ता द्रव्यत्वजातितैं न्यूनदेशवृत्ति होणेतैं ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य हूई भी ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य कही जावै नहीं किंतु ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य तौं पृथिवीत्वजाति है ता पृथिवीत्वजातिका साक्षात् व्याप्य सा पटत्वजाति है। यातैं ता साक्षात्पदके कहणे करिकै ता पटत्वजातिकूं लैके पट विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं॥

### साक्षाद्व्याप्यत्वका लक्षण।

अब प्रसंगतैं ता साक्षात्व्याप्यत्वका लक्षण कहे हैं। **तद्व्याप्याव्याप्यत्वे सति तद्व्याप्यत्वं तत्साक्षाद्व्याप्यत्वम्**। अर्थ यह—जा जाति जिस जातिके व्याप्यजातिका अव्याप्य हूई जिस जातिका व्याप्य होवै है सा जाति हीं तिस जातिका साक्षात्व्याप्य कही जावै है। जैसे पृथिवीत्वजाति द्रव्यत्वजातिके व्याप्य जलत्वादिक जातियोंका अव्याप्य हूई ता द्रव्यत्व जातिका व्याप्य होवै है। यातैं सा पृथिवीत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य कही जावै है, तैसे जलत्वजाति भी ता द्रव्यत्वजातिके व्याप्य पृथिवीत्वादिक जातियोंका अव्याप्य हूई ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य होवै है। यातैं सा जलत्वजाति भी ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात् व्याप्य कही जावै है। इस प्रकार तेजस्त्व, वायुत्व, आत्मत्व, मनस्त्व इन च्यारी जातियोंविषे भी ता द्रव्यत्वजातिकी साक्षात्व्याप्यरूपता जानि लेणी। किंवा जैसे पृथिवीत्व जलत्वादिक जातियां ता द्रव्यत्वजातिके साक्षात्व्याप्य हैं तैसे द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व यह तीनों जातियां सत्ताजातिके साक्षात्व्याप्य हैं तथा रूपादिकगुणोंविषे रहणेहारी रूपत्व रसत्वादिक जातियां ता गुणत्वजातिके साक्षात्व्याप्य हैं तथा उत्क्षेपण अपक्षेपणादिक कर्मविषे रहणेहारी उत्क्षे-

पणत्व अपक्षेपणत्वादिक जातियां ता कर्मत्वजातिके साक्षात्व्याप्य हैं । पदकृत्य—तहां 'तद्व्याप्यत्वं तत्साक्षाद्व्याप्यत्वम् ' इतनामात्र हीं जो ता साक्षात्व्याप्यत्वका लक्षण करते ता लक्षण विषे ' तद्व्याप्याव्याप्यत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौ द्रव्यत्वजातिके न्यून देशवृत्ति होणेतैं ता द्रव्यत्वजातिके व्याप्य जे घटत्व पटत्वादिक जातियां हैं तिन घटत्वपटत्वादिक जातियोंकूं भी ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्यपणा होणा चाहिये । सो सिद्धान्तविषे अंगीकार है नहीं अर्थात् ता द्रव्यत्वजातिके साक्षात्व्याप्यपणेतैं रहित तिन घटत्वपटत्वादिक जातियोंविषे ता साक्षात्व्याप्यत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'तद्व्याप्याव्याप्यत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा घटत्वपटत्वादिक जाति ता द्रव्यत्वजातिके व्याप्य जातिका अव्याप्य नहीं है किंतु ता द्रव्यत्वजातिके व्याप्य पृथिवीत्वजातिका व्याप्य हीं सा घटत्वपटत्वादिक जाति है । यातैं ता घटत्वपटत्वादिक जातिविषे ता द्रव्यत्वजातिके साक्षात्व्याप्यताके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' तद्व्याप्याव्याप्यत्वं तत्साक्षाद्व्याप्यत्वम् ' इतनामात्रहीं जो ता साक्षात्व्याप्यत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' तद्व्याप्यत्वम् ' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणत्व कर्मत्व जातिकूं भी ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्यत्व होणा चाहिये। काहेतैं ? सा गुणत्वजाति तथा कर्मत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिके व्याप्यपृथिवीत्वादिक जातियोंका अव्याप्य हीं है और ता गुणत्वकर्मत्वजातिविषे ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्यत्व सिद्धांत विषे अंगीकार है नहीं अर्थात् ता द्रव्यत्वजातिके साक्षात्व्याप्यपणेतैं रहित ता गुणत्वकर्मत्व जातिविषे ता द्रव्यत्वके साक्षात्व्याप्यपणेके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' तद्व्याप्यत्वम् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां जा जाति जिस जातिके न्यूनदेशविषे रहे है सा जाति हीं तिस जातिका व्याप्य होवै है । जैसे पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे वृत्तिद्रव्यत्वजातिकी अपेक्षा करिकै पृथिवीरूप न्यूनदेशविषे वृत्ति पृथिवीत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य कही जावै है और सा गुणत्वकर्मत्व जाति तौं ता द्रव्यत्वजातिके द्रव्यरूप अधिकरणविषे रहती हीं नहीं, किंतु ता द्रव्यतैं भिन्न गुणकर्मविषे हीं सा गुणत्व कर्मत्व जाति रहे है । यातैं सा गुणत्व कर्मत्व जाति ता द्रव्यत्व जातिका व्याप्य कहीं जावै नहीं यातैं 'तद्व्याप्यत्वम्' इस पदके कहणे करिकै ता गुणत्वकर्मत्व जातिविषे ता द्रव्यत्वजातिके साक्षात्व्याप्यत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । किंवा ता उक्त वायुके लक्षणविषे ' जाति ' यह पद जो नहीं कथन करते तौं वायु पट दोनों विषे रहणेहारा जो द्वित्वसंख्यारूप धर्म है ता द्वित्वधर्मकूं लैके ता लक्षणकी ता पटविषे अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो द्वित्वधर्म ता अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवाले वायुपटरूप द्रव्यविषे हीं रहे है तथा सो द्वित्वधर्म ता द्रव्यत्वजातिका साक्षात्व्याप्य भी है । ऐसा सो द्वित्वधर्म जैसे

ता वायुविषे रहे है तैसे ता पटविषे भी रहे है । यातैं ता पटविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'जाति' यह पद कथन कन्या है । तहां ता द्वित्वधर्मविषे जातिरूपता है नहीं । यातैं ता द्वित्वधर्मकूं लैके ता उक्त लक्षणकी ता पटविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं । इस प्रकारका जातिपदका फल सर्वजातिघटित लक्षणोंका जानि लेणा इति २ ॥ तहां इतनैं पर्यंत 'अपाकजानुष्णशीतस्पर्शवान् वायुः' इस द्वितीयलक्षणका अर्थ निरूपण कन्या ॥

तृतीय लक्षणका निरूपण—अब **वायुत्वजातिमान् वायुः** इस तृतीयलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै वायुत्वजातिवाला होवै है सो द्रव्य वायु कह्या जावै है । तहां समवायसम्बन्ध करिकै सा वायुत्व जाति केवल वायुविषे हीं रहे है, अन्य किसी पदार्थविषे रहै नहीं । यातैं यह वायुत्व जातिमत्त्वरूप वायुका लक्षण सम्भवै है। वायुत्व जातिकी सिद्धि—यह वायुत्वजातिमत्त्वरूप वायुका लक्षण तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता वायुत्वजातिकी सिद्धि होवै । ता वायुत्वजातिकी सिद्धितैं विना सो लक्षण सम्भवता नहीं । यातैं ता लक्षणकी सिद्धि वासतै किसी प्रमाण करिकै ता वायुत्व जातिकी सिद्धि अवश्य करी चाहिये, ऐसी शंकाके प्राप्त हूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै ता वायुत्वजातिकी सिद्धि करे हैं । तहां ता रूपरहित वायुका प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । यातैं 'अयं वायुः, अयं वायुः' इस प्रकारकी एकाकार प्रत्यक्षप्रतीति करिकै तौं ता वायुत्वजातिकी सिद्धि संभवती नहीं, किंतु ता पूर्वउक्त अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै हीं ता वायुत्वजातिकी सिद्धि होवै है । इसीपर अनुमान—ता अनुमानका यह आकार है । **वायुनिष्ठा या उक्तस्पर्शसमवायिकारणता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् पटनिष्ठकार्य्यतानिरूपितन्ततुनिष्ठकारणतावत्।** अर्थ यह—ता वायुविषे रही हूई जा अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शकी समवायिकारणता है सा कारणता किसी धर्मकरिकै अवच्छिन्न होणेयोग्य है, कारणता होणेतैं । जा जा कारणता होवै है सा सा कारणता किसीधर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवैं है, निरवच्छिन्न कोई कारणता होती नहीं । जैसे तंतुवोंविषे रही हूई पटकार्य्यकी समवायिकारणता तंतुत्वरूपधर्म करिकै अवच्छिन्न होवै है तैसे सा वायुनिष्ठ समवायिकारणता भी किसीधर्मकरिकै अवश्य अवच्छिन्न होवैंगी । सो ता कारणताका अवच्छेदक धर्म वायुत्वजाति हीं संभवै है। ता वायुत्वजातितैं भिन्न कोई धर्म ता कारणताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं । काहेतैं ? जो धर्म जिस कारणताके अधिकदेशविषे तथा न्यूनदेशविषे नहीं रहे है किंतु समान देशविषे रहेहै सो धर्म हीं तिस कारणताका अवच्छेदक होवै है । ता कारणतातैं अधिकन्यूनदेशविषे वर्त्तणेहारा धर्म ता कारणताका अव-

च्छेदक होइ सकै नहीं । तहां ता स्पर्शकी समवायिकारणता भी ता वायुमात्रविषे हीं रहे हैं और सा वायुत्वजाति भी ता वायुमात्रविषे हीं रहे है । यातैं ता कारणताके समानदेशवृत्ति होणैंत सा वायुत्वजाति हीं ता कारणताका अवच्छेदक होवै है । सत्ताजाति तथा द्रव्यत्व-जाति ता कारणतातैं अधिकदेशवृत्ति होणैंतैं ता कारणताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं । इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै ता वायुत्वजातिकी सिद्धि संभवे है । परमाणुविषे वायुत्वजातिकी असिद्धिकी शंका—सा अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शकी समवायिकारणता यद्यपि द्व्यणुकादि-रूप जन्यवायुविषे तौं है तथापि परमाणुरूप नित्यवायुविषे सा कारणता है नहीं । जिस कारणतैं ता परमाणुरूप नित्यवायुविषे सो स्पर्श नित्य हीं होवै है और नित्यपदार्थका कोई भी समवायिकारण होता नहीं । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै द्व्यणुकादिरूप अनि-त्यवायुविषे हीं ता वायुत्वजातिकी सिद्धि होवैंगी, परमाणुरूप नित्यवायुविषे ता वायुत्व-जातिकी सिद्धि होवैंगी नहीं । इसका समाधान—पूर्वउक्त जलत्व जातिके सिद्धिकी न्यांई ईहां भी ता उक्त अनुमान करिकै प्रथम जन्यवायुविषे हीं ता वायुत्वजातिकी सिद्धि करणी । तिसतैं अनंतर ता जन्यवायुत्वावच्छिन्न जन्य वायुकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै नित्यअनित्यरूप सर्ववायुविषे ता वायुत्व जातिकी सिद्धि करणी । तहां जैसे द्व्यणुका-दिरूप अनित्यवायुविषे त्र्यणुकादिरूप जन्यवायुकी समवायिकारणता है तैसे परमाणुरूप नित्यवायुविषे भी ता द्व्यणुकरूप जन्यवायुकी समवायिकारणता विद्यमान है । यातैं ता जन्यवायुकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै सर्ववायुविषे ता वायुत्वजातिकी सिद्धि संभवै है । यद्यपि त्वक्इंद्रियरूप वायुतैं तथा शरीरादिरूप अन्त्यावयवी वायुतैं किसी भी वायुकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता त्वक्इंद्रिय शरीरादिरूप वायुविषे ता जन्यवायुकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता वायुत्व जातिकी सिद्धि संभवती नहीं । तथापि जैसे वनविषे स्थित दंडविषे घटरूप कार्यकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता रहे है । तैसे ता त्वक्इंद्रियरूप वायुविषे तथा शरीरादिरूप अंत्यावयवी वायुविषे भी ता जन्यवायुकी स्वरू-पयोग्यत्वरूप कारणता रहे है । यातैं ता त्वक्इंद्रियशरीरादिरूप वायुविषे भी ता वायुत्व-जातिकी सिद्धि संभवै है, अथवा ता अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै हीं ता नित्यअनित्यरूप सर्ववायुविषे ता वायुत्वजातिकी सिद्धि करणी । यद्यपि परमाणुरूप नित्यवायुविषे ता स्पर्शकी फलोपधायकत्वरूप कारणता नहीं है तथापि ता परमाणुरूप नित्यवायुविषे ता स्पर्शकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता विद्यमान नहीं है । यातैं तिस परमाणुरूप नित्यवायुविषे भी ता वायुत्वजातिकी सिद्धि संभवै है । तहां इन जातिके साधक दोनों प्रकारोंविषे शंकासमाधान तौं पूर्व जलत्वजातिकी सिद्धिविषे कथन करि आये हैं । सो ईहां भी यथायोग्य योजना करिलेणे तथा फलोपधायकत्व स्वरूपयोग्यत्व इन दोनों

कारणताका स्वरूप भी तहां कथन करि आये हैं सो ईहां भी जानि लेणा । इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै ता वायुत्वजातिके सिद्ध हूए ता वायुत्वजाति घटित 'वायुत्वजातिमान् वायुः' यह पूर्व उक्त वायुका लक्षण संभवै है इति ॥ ३ ॥

वायुके गुण—इस प्रकारके तीन लक्षणों करिकै लक्षित जो वायुरूप द्रव्य है ता वायुविषे स्पर्श १ संख्या २, परिमाण ३, पृथक्त्व ४, संयोग ५, विभाग ६, परत्व ७, अपरत्व ८, वेगनामा संस्कार ९ यह नव गुण रहे हैं ॥

वायुके भेद—ऐसे नवगुणोंवाला सो वायु भी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां परमाणुरूपवायु तौं नित्यवायु कह्या जावै है और द्व्यणुकादिक कार्यरूप सर्व वायु अनित्यवायु कह्या जावै है सो अनित्य वायु हीं अवयवी कह्या जावै है । सो अवयवीरूप अनित्य वायु भी शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है ॥

वायवीय शरीर—अब प्रथम वायवीयशरीरका निरूपण करे हैं । **रूपरहितस्पर्शवत् शरीरं वायवीयशरीरम्** । अर्थ यह—जो शरीर रूपगुणतैं रहित हूआ स्पर्शगुणवाला होवै है सो शरीर वायवीय शरीर कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां 'स्पर्शवत् शरीरं वायवीयशरीरम्' इतनामात्र हीं जो ता वायवीयशरीरका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'रूपरहित' यह पद नहीं कथन करते तौं पार्थिव जलीय तैजस इन तीन शरीरोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो वायवीय शरीर ता स्पर्शगुणवाला है तैसे ते पार्थिव जलीय तैजस शरीर भी ता स्पर्शगुणवाले हीं हैं। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे 'रूपरहित' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते पार्थिवादिक शरीर ता रूपगुणतैं रहित नहीं हैं किंतु ता रूपगुणवाले हीं हैं । यातैं तिन पार्थिवादिक शरीरोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'रूपरहितस्पर्शवत् वायवीयशरीरम्' इतनामात्र हीं जो ता वायवीयशरीरका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'शरीरम्' यह पद नहीं कथन करते तौं त्वकूइंद्रियरूप वायुविषे तथा विषयरूप वायुविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'शरीरम्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो शरीरपणा ता त्वकूइंद्रियरूप वायुविषे तथा विषयरूप वायुविषे है नहीं । यातैं ता वायवीयइंद्रियविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। वायवीय शरीरका दूसरा लक्षण—अथवा ता वायवीय शरीरका यह दूसरा लक्षण करणा—**अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवत् शरीरम्वायवीयशरीरम्** । अर्थ यह—जो शरीर अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवाला होवै है सो शरीर वायवीय शरीर कह्या जावै है। पद कृत्य—तहां इस लक्षणविषे 'अपाकाज' यह पद पार्थिव शरीरविषे इस लक्षणकी अति-

व्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और 'अनुष्णाशीत' यह पद जलीयतैजसशरीरोंविषे ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और 'शरीरम्' यह पद वायवीय इंद्रिय विषय विषे ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। इन अपाकजआदिक पदोंका फल पूर्व वायुके लक्षणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं। जातिघटित लक्षण—यद्यपि उत्पन्नविनष्ट वायवीय शरीरविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायवीयशरीरविषे ता स्पर्शगुणका अभाव होणेतैं तिन उक्त दोनों लक्षणोंकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्वउक्त वायुके लक्षणकी न्यांई ईहां भी **रूपरहितस्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत् शरीरं वायवीयम्।** अथवा **अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवन्मात्रवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत् शरीरं वायवीय शरीरम्।** इस प्रकार वायुत्वजातिघटित लक्षणके करणेतैं ता उन्पन्न विनष्ट वायवीयशरीरविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायवीय शरीरविषे तिन दोनों लक्षणोंकी अव्याप्ति होवै नहीं। पदकृत्य—तहां इन दोनों लक्षणोंविषे 'शरीरम्' यह पद वायवीय इंद्रियविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै है। दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानिलेणा इति। ऐसा वायवीय शरीर पिशाचादिकोंका होवै है। ते वायवीयशरीर वायुलोकविषे प्रसिद्ध हीं हैं। ते वायवीयशरीर केवल अयोनिज हीं होवै हैं इति ॥

वायवीय इन्द्रिय—अब वायवीयइंद्रियका निरूपण करे हैं। लक्षण—तहां **रूपरहितस्पर्शवदिन्द्रियं वायवीयेन्द्रियम्।** अर्थ यह—जो इंद्रिय रूपगुणतैं रहित हूआ स्पर्श गुणवाला होवै है सो इंद्रिय वायवीय इंद्रिय कह्या जावै है। ऐसा वायवीयइंद्रिय त्वक् इंद्रिय है। सो त्वक्इंद्रिय नख, केश, लोम, पुरीतति आदिकोंकूं छोडिके सर्वशरीरविषे व्यापक होवै है तथा शीतउष्ण कोमलकठिन स्पर्शादिकोंकूं ग्रहण करे है। पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे 'रूपरहित' यह पद पार्थिव जलीय तैजस इंद्रियविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और 'स्पर्शवत्' यह पद आकाशरूप श्रोत्र इंद्रियविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। जिस कारणतैं सो आकाशरूप श्रोत्रइंद्रिय ता त्वक्इंद्रियकी न्यांई रूपगुणतैं रहित नहीं है परंतु सो श्रोत्रइंद्रिय ता स्पर्शगुणवाला नहीं है यातैं 'स्पर्शवत्' या पदके कहणेतैं ता श्रोत्रइंद्रियविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। और 'इंद्रियम्' यह पद रूपरहित स्पर्शवाले वायवीयशरीरविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है इति। द्वितीय लक्षण—अथवा ता वायवीय इंद्रियका यह द्वितीयलक्षण करणा। **अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवदिन्द्रियं वायवीयेन्द्रियम्।** अर्थ यह—जो इंद्रिय अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवाला होवै है सो इंद्रिय वायवीयइंद्रिय कह्या जावै है। ऐसा अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवाला इंद्रिय त्वक्इंद्रिय है। यातैं सो त्वक्इंद्रिय वायवीय इंद्रिय कह्या जावै है। पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे 'अपाकज' यह पद पार्थिवघ्राण इंद्रियविषे ता लक्षणकी

अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और अनुष्णाशीत यह पद जलीय रसन इंद्रियविषे तथा तैजस चक्षुइंद्रियविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और 'इन्द्रियम्' यह पद वायवीयशरीर विषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है इति ।

जातिघटित लक्षण—यद्यपि इन दोनों लक्षणोंकी उत्पन्नविनष्ट त्वकूइंद्रियविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न त्वकूइंद्रियविषे ता स्पर्शगुणका अभाव होणेतैं अव्याप्ति हीं होवै है तथापि ता पूर्वउक्त वायुके लक्षणकी न्याईं ईहां भी **रूपरहितस्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमदिन्द्रियं वायवीयेन्द्रियम्** अथवा **अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवन्मात्रवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमदिन्द्रियम् वायवीयेन्द्रियम्** । इस प्रकार वायुत्वजाति घटित लक्षणके करणेतैं ता उत्पन्नविनष्ट त्वकूइंद्रियविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न त्वकू इंद्रियविषे तिन दोनों लक्षणोंकी अव्याप्ति होवै नहीं । जिस कारणतैं सा वायुत्वजाति ता उत्पन्नविनष्ट त्वकूइंद्रियविषे तथा ता उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न त्वकूइंद्रियविषे विद्यमान हीं है । पदकृत्य—तहां इन दोनों लक्षणोंविषे 'इन्द्रियम्' यह पद वायवीय शरीरविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है । दूसरे पदोंका फल सो पूर्वउक्त हीं जानिलेणा इति ।

इन्द्रियविषे वायवीयपणेकी सिद्धि—सो त्वकूइंद्रिय वायवीयइंद्रिय है याके विषे कौन प्रमाण है ? ऐसी शंकाके प्राप्त हूए अब अनुमानप्रमाण करिकै ता त्वकूइंद्रियविषे वायवीयत्वसिद्ध करे हैं । अनुमान—**त्वगिन्द्रियम् वायवीयम् द्रव्यत्वे सति रूपादिषु पञ्चसु मध्ये स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् अङ्गसङ्गिसलिलशैत्याभिव्यञ्जकव्यजनपवनवत्** । अर्थ यह—सो त्वकूइंद्रिय वायवीय होणेयोग्य है; द्रव्य रूप हूआ रूपादिक पांचगुणोंके मध्यविषे एकस्पर्शगुणका हीं अभिव्यंजक होणेतैं । जो जो द्रव्य रूपादिक पांच गुणोंके मध्यविषे एकस्पर्शगुणका हीं अभिव्यंजक होवै है सो सो द्रव्य वायवीय हीं होवै है । जैसे शरीरसंबंधी स्वेदादिरूप जलके शीतस्पर्शका अभिव्यंजक व्यजनका पवन है अर्थात् सो व्यजनका पवन ता स्वेदादिरूप जलके रूपादिक गुणोंका अभिव्यंजक होवै नहीं । किन्तु केवल ता जलके शीतस्पर्शका हीं अभिव्यंजक होवै है । यातैं ता व्यजनपवनविषे सो वायवीयत्व प्रसिद्ध हीं है । तैसे सो त्वकूइंद्रिय भी पृथिवी आदिक द्रव्योंके रूपादिक पांचगुणोंके मध्यविषे केवल एकस्पर्शगुणका हीं अभिव्यंजक होवै है । तिन रूपादिकोंका अभिव्यंजक होवै नहीं । यातैं ता त्वकूइंद्रियविषे भी सो वायवीयत्वहीं मान्या चाहिये । पदकृत्य—तहां इस उक्त अनुमानविषे 'स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'रूपादिषु पञ्चसु मध्ये' यह पद नहीं कथन करत तौं सो हेतु स्वरूपासिद्धिरूप दोषवाला होता । काहेतैं ? पक्षविषे जो हेतुका अभाव है ताका नाम स्वरूपासिद्धि है । तहां सो त्वकूइंद्रिय

केवल स्पर्शका हीं अभिव्यंजक नहीं होवै है, किंतु ता स्पर्शवृत्ति स्पर्शत्वजातिका तथा ता स्पर्शके अभावका भी अभिव्यंजक होवै है । यातैं सो स्पर्शमात्रका अभिव्यंजकत्वरूपहेतु ता त्वक्इंद्रियरूपपक्षविषे वर्त्तता नहीं । ता स्वरूपासिद्धिदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे 'रूपादिषु पंचसु मध्ये' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो त्वक्इंद्रिय स्पर्शत्वजाति स्पर्शाभावादिकोंका अभिव्यंजक हूआ भी रूपरसादिकोंका अभिव्यंजक है नहीं । यातैं ता हेतुविषे स्वरूपासिद्धिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं । किंवा ता उक्त हेतुविषे 'एव' यह पद जो नहीं कथन करते तौं ता हेतुका मनविषे व्यभिचार होता । काहेतैं ? मनतैं विना कोई भी ज्ञान होता नहीं, यातैं सो मन ता स्पर्शका भी अभिव्यञ्जक हीं है, परंतु ता मनविषे सो वायवीयत्व रूप साध्य है नहीं । यातैं ता वायवीयत्वरूप साध्यके अभाववाले मनविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'एव' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो मन केवल एकस्पर्शका हीं अभिव्यंजक नहीं होवै है, किंतु रूपरसादिकोंका भी अभिव्यंजक होवै है । यातैं ता स्पर्शतैं भिन्नरूपादिकोंके अभिव्यक्तिकी निवृत्ति करणेहारे ता एव शब्दके कहणे करिकै ता मनविषे तिस उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्तहेतुविषे 'द्रव्यत्वे सति' यह पद जो नहीं कथन करते तौं ता हेतुका त्वक्इंद्रियके सान्निकर्षविषे व्यभिचार होता । काहेतैं ? ता स्पर्शके साथि त्वक्इंद्रियका जो संयुक्तसमवायसंबंधरूप सन्निकर्ष है सो सन्निकर्ष भी केवल ता स्पर्शका हीं अभिव्यंजक होवै है, रूपादिकोंका अभिव्यंजक होवै नहीं, परंतु ता सन्निकर्षविषे सो वायवीयत्वरूप साध्य है नहीं । यातैं ता वायवीयत्वरूप साध्यके अभाववाले ता सन्निकर्षविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणेवासतै ता हेतुविषे 'द्रव्यत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता संबंधरूप सान्निकर्षविषे सो द्रव्यत्व है नहीं । यातैं ता सान्निकर्ष विषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं । इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै ता त्वक् इंद्रियविषे वायवीयत्व हीं सिद्ध होवै है इति ॥

### वायवीय विषय ।

अब वायवीय विषयका निरूपण करे हैं । लक्षण—तहां **रूपरहितस्पर्शवद्विषयः वायवीयविषयः** । अर्थ यह—जो विषय रूपगुणतैं रहित हूआ स्पर्शगुणवाला होवै है सो विषय वायवीयविषय कह्या जावै है। पदकृत्य—तहां 'स्पर्शवद्विषयः वायवीयविषयः' इतनामात्र हीं जो ता वायवीयविषयका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'रूपरहित' यह पद नहीं कथन करते तौं पार्थिव जलीय तैजस विषयोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो वायवीयविषय ता स्पर्श गुणवाला है तैसे ते पार्थिव जलीय तैजस विषय भी ता स्पर्शगुणवाले हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'रूपरहित' यह पद

कथन कन्या है, तहां ते पार्थिवादिक विषय रूपतैं रहित नहीं हैं किंतु रूपगुणवाले हीं हैं । यातैं तिन पार्थिवादिक विषयोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा 'रूपरहितः वायवीयविषयः' इतनामात्र हीं जो ता वायवीयविषयका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'स्पर्शवत्' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपगुणतैं रहित आकाशादिक द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्पर्शवत्' यह पद कथन कन्या है। तहां ते आकाशादिक द्रव्य रूपतैं रहित हूए भी स्पर्शगुणवाले हैं नहीं। यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा 'रूपरहितस्पर्शवान् वायवीयविषयः' इतनामात्र हीं जो ता वायवीयविषयका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विषय' यह पद नहीं कथन करते तौं वायवीय शरीरविषे तथा वायवीयइंद्रियविषे तथा परमाणुरूप नित्यवायुविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, जिस कारणतैं ते वायवीय शरीर इंद्रिय परमाणु भी रूपगुणतैं रहित स्पर्श गुणवाले हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'विषयः' यह पद कथन कन्या है। तहां तिन वायवीय शरीर इंद्रिय परमाणुवोंविषे सो विषयपणा है नहीं। यातैं तिनोंविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

दूसरा लक्षण—अथवा ता वायवीयविषयका यह दूसरा लक्षण करणा । **अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवद्विषयः वायवीयविषयः।** अर्थ यह—जो विषय अपाकजअनुष्णाशीतस्पर्शवाला होवै है सो विषय वायवीय विषय कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे अपाकज यह पद पार्थिवविषयविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और 'अनुष्णाशीत' यह पद जलीयतैजसविषयोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और 'विषय' यह पद वायवीयशरीरइंद्रियादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है इति ॥

जातिघटितलक्षण—यद्यपि इन उक्त दोनों लक्षणोंकी उत्पन्नविनष्ट वायवीयविषयविषे तथा उत्पत्ति क्षणावच्छिन्न वायवीयविषयविषे ता स्पर्शगुणका अभाव होणेतैं अव्याप्ति हीं होवै है तथापि पूर्वउक्त वायुके लक्षणकी न्यांई इहां भी **रूपरहितस्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमद्विषयः वायवीयविषयः** अथवा **अपाकजानुष्णाशीतस्पर्शवन्मात्रवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमद्विषयः वायवीयविषयः।** इस प्रकार वायुत्व जाति घटित दोनों लक्षणोंके करणेतैं ता उत्पन्नविनष्ट वायवीयविषयविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायवीय विषयविषे तिन दोनों लक्षणोंकी अव्याप्ति होवै नहीं।जिसकारणतैं ता उत्पन्नविनष्ट वायवीय विषयविषे तथा उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न वायवीयविषयविषे सा वायुत्वजाति विद्यमान

हीं है । तहां इन दोनों लक्षणोंविषे 'विषय' यह पद वायवीयशरीरइंद्रियादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और दूसरे पदोंका फल तौं सो पूर्व उक्त हीं जाणि लेना इति ॥

विषयभेद—तहां ध्वाणुकरूप वायुतैं आदिलेके प्राणादिक महान् वायुपर्यन्त सर्व जन्य वायु विषयरूप वायु हीं जानणा । यद्यपि भाष्यादिक ग्रन्थविषे सो अनित्यवायु शरीर १, इंद्रिय २, विषय ३, प्राण ४ इस भेदकरिकै च्यारिप्रकारका कथन कऱ्या है, प्राण—तथापि ता प्राणरूप वायुका विषयरूप वायु विषे हीं अन्तर्भाव होइसकै है । यातैं ईहां सो अनित्यवायु च्यारि प्रकारका नहीं कथन कऱ्या है किंतु तीन प्रकारका हीं कथन कऱ्या है । लक्षण—तहां **शरीरान्तःसञ्चारी वायुः प्राणः** ॥ अर्थ यह—शरीरके अन्तर विचरणेहारा जो वायु है सो वायु प्राण कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां 'वायुः प्राणः' इतनामात्र हीं जो ता प्राणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'शरीरान्तःसंचारी' यह पद नहीं कथन करते तौं बाह्यवायुविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'शरीरान्तःसंचारी' यह पद कथन कऱ्या है । सो बाह्यवायु शरीरके अन्तरसंचार करता नहीं, किंतु शरीरतैं बाह्यसंचार करे है । यातैं ता बाह्य वायुविषे ता प्राणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'शरीरान्तःसंचारी प्राणः' इतनामात्र हीं जो ता प्राणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'वायु' यह पद नहीं कथन करते तौं शरीरके अन्तरविचरणेहारे रुधिरादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'वायु' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन रुधिरादिकोंविषे सो वायुपणा है नहीं । यातैं तिन रुधिरादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । प्राणके भेद—ता प्राणरूप वायुका विषयरूप वायुविषे अंतर्भाव होवो । तथापि अपानादिक वायु ता विषयरूपवायुतैं भिन्न हीं सिद्ध होवैंगे । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब तिन अपानादिकोंका ता प्राणवायुविषे अंतर्भाव सिद्ध करे हैं । ते अपानादिक वायु ता प्राणवायुतैं भिन्न नहीं हैं, किन्तु तिन अपानादिकोंका ता प्राणवायु-विषे हीं अन्तर्भाव है अर्थात् सो एक हीं अन्तर्वायु स्थानरूप उपाधिके भेदतैं अथवा क्रियारूप उपाधिके भेदतैं प्राण १, अपान २, समान ३, उदान ४, व्यान ५ इन पांच-संज्ञाकूं प्राप्त होवै है । यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषे भी कही है । तहां श्लोक—**हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः । उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः ॥** अर्थ यह—हृदयस्थानविषे रह्या हूआ सो अन्तर्वायु प्राणसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और गुदास्थान-विषे रह्या हूआ सो अन्तर्वायु अपानसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और नाभिस्थानविषे रह्या हूआ सो अंतर्वायु समानसंज्ञाकूं प्राप्त होवै और कंठदेशविषे स्थित हूआ सो अंतर्वायु उदान

संज्ञाकूं प्राप्त होवै है और सर्वशरीरविषे स्थित हूआ सो अन्तर्वायु व्यानसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है । इस प्रकार हृदयादिक पंचस्थानोंके भेदतैं सो एक हीं अंतर्वायु प्राणादिक पंचसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है इति । अब क्रियारूप उपाधिके भेदतैं ता प्राणादिक संज्ञाका भेद निरूपण करे हैं । तहां मुखनासिकाद्वारा निर्गमनप्रवेशनरूप क्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु प्राणसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और मलादिकोंका अधोनयनरूप क्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु अपान-संज्ञाकूं प्राप्त होवै है और भोजन कर्‍येहूए अन्नके रसादिरूप परिणाम करणे वासतै जठराग्निका प्रज्वलनरूप क्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु समानसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और अन्नादि-कोंका ऊर्द्धनयनरूप क्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु उदानसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और सर्व नाडीयोंके मुखोंविषे अन्नके सूक्ष्मरसका विस्तरणरूपक्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु व्यान-संज्ञाकूं प्राप्त होवै । इस प्रकार क्रियारूप उपाधिके भेदतैं सो एक हीं अंतर्वायु प्राणादिक पंच-संज्ञाकूं प्राप्त होवै है इति । **शंका**—इस उक्त रीतिसैं तिन अपानादिक वायुवोंका ता प्राण-वायुविषे अंतर्भाव होवो । तथापि शास्त्रविषे कथन कर्‍ये जे नाग १, कूर्म २, कृकल ३, देवदत्त ४, धनञ्जय ५ यह पंचवायु हैं ते पंचवायु तौं ता प्राणवायुतैं पृथक् हीं होवैंगे । ऐसी शंकाके प्राप्त हूए अब तिन नागादिक पंचवायुवोंका भी ता प्राणवायुविषे अंतर्भाव वर्णन करे हैं । तहां जैसे क्रियाके भेदतैं सो एक हीं अंतर्वायु प्राणादिक पंचसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है तैसे क्रियाके भेदतैं सो एक हीं अंतर्वायु नागादिक पंचसंज्ञाकूं भी प्राप्त होवै है । यह वार्त्ता भी शास्त्रविषे कथन करी है । तहां श्लोक—**उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः । कृकलः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे । न जहाति मृतं चापि पोषहेतुर्धनञ्जयः ॥** अर्थ यह—उद्गाररूप क्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु नागसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और नेत्रोंके उन्मी-लनरूप क्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु कूर्मसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और क्षुतरूपक्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु कृकलसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और विजृंभणरूप क्रियाके करणेतैं सो अन्तर्वायु देवदत्त संज्ञाकूं प्राप्त होवै है और पोषणरूपक्रियाके करणेतैं सो अंतर्वायु धनंजयसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है । सो धनंजयवायु मृतकशरीरका भी परित्याग करता नहीं, इस रीतिसैं ते नागादिक पंच वायु भी ता प्राणके हीं अंतर्भूत हैं । यातैं ता प्राणवायुका विषयवायुविषे अंतर्भाव होणेतैं सो अनित्य-वायु शरीर इंद्रिय विषय इस भेद करिकै तीन हीं प्रकारका सिद्ध होवै है इति ॥

वायुविषे प्रमाण—यह पूर्व उक्त दो प्रकारका वा तीन प्रकारका वा च्यारिप्रकारका वायुका विभाग तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता वायुकी सिद्धि होवै । ता वायुकी सिद्धितैं विना सो विभाग संभवता नहीं और वस्तुकी सिद्धि लक्षण प्रमाण दोनों करिकै हीं होवै है । तहां यद्यपि ता वायुका लक्षण पूर्व कथन कर्‍या है तथापि ता वायुकी सिद्धि करणे-हारा कोई प्रमाण पूर्व कथन कर्‍या नहीं । यातैं ता वायुकी सिद्धि करणेहारा कोई प्रमाण

भी अवश्य कह्या चाहिये सो वायुकी सिद्धि करणेहारा कौन प्रमाण है ? ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब मतभेदसैं ता वायुविषे प्रमाणका निरूपण करे हैं । प्राचीन नैयायिक–तहां प्रथम प्राचीन नैयायिकोंके मतका निरूपण करे हैं। सो वायु प्रत्यक्षज्ञानका विषय नहीं है। काहेतैं? जो ज्ञान इंद्रियकरिकै जन्य होवै है सो ज्ञान प्रत्यक्ष कह्या जावै है। तहां घ्राण, रसन, श्रोत्र इन तीन इंद्रियोंविषे तौं द्रव्यके प्रत्यक्ष करणेकी योग्यता हीं नहीं है। यातैं तिन घ्राणादिक तीन इंद्रियोंकरिकै तौं किसी भी द्रव्यका प्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु तिन घ्राणादिक इंद्रियोंकरिकै गंधादिक गुणोंका हीं प्रत्यक्ष होवै है। यातैं तिन घ्राणादिक तीन इंद्रियों करिकै तौं ता वायुका प्रत्यक्ष संभवता नहीं और चक्षु, त्वक्, मन इन तीन इंद्रियोंकरिकै तौं ता द्रव्यका प्रत्यक्ष होवै है । ताके विषे भी मनरूप इंद्रिय करिकै तौं अंतरआत्मारूप द्रव्यका हीं प्रत्यक्ष होवै है । ता मन करिकै बाह्य पृथिवी आदिक द्रव्योंका प्रत्यक्ष होता नहीं और सो वायु भी बाह्य द्रव्य है । यातैं ता मनरूप इंद्रिय करिकै भी ता वायुका प्रत्यक्ष संभवै नहीं । परिशेषतैं चक्षु त्वक् इन दोनों इंद्रियोंकरिकै हीं ता वायुका प्रत्यक्ष कहणा होवैगा सो भी संभवता नहीं ॥

बाह्यद्रव्योंके प्रत्यक्षकी सामग्री–काहेतैं ? जिस बाह्यद्रव्यविषे महत्त्वपरिमाण, उद्भूतरूप, उद्भूतस्पर्श यह तीनों गुण रहे हैं तिस बाह्यद्रव्यका हीं चक्षुइंद्रिय करिकै वा त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्षज्ञान होवै है और जिस बाह्यद्रव्यविषे ते तीनों गुण नहीं रहे हैं किंतु एक रहे है वा दो रहे हैं तिस बाह्यद्रव्यका चक्षुइंद्रिय करिकै वा त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं । जैसे आकाश, काल, दिशा इन तीन द्रव्योंविषे महत्त्वपरिमाणके विद्यमानहूए भी उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श यह दोनों गुण हैं नहीं । यातैं तिन आकाशादिक तीनोंका चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं और पृथिवी जल तेज इन तीनोंके परमाणुवोंविषे तथा द्व्यणुकोंविषे उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श यह दोनों विद्यमान हैं परंतु सो महत्त्वपरिमाण है नहीं। यातैं तिन परमाणुद्व्यणुकोंका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं और घ्राण रसन चक्षु इन तीन इंद्रियोंविषे महत्त्वपरिमाणके विद्यमानहूए भी उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श यह दोनों हैं नहीं। यातैं तिन घ्राणादिक तीन इंद्रियोंका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं और मन विषे तौं महत्त्व, उद्भूतरूप, उद्भूतस्पर्श यह तीनों नहीं हैं। यातैं ता मनका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं और घटपटादिक द्रव्योंविषे महत्त्व उद्भूतरूप उद्भूतस्पर्श यह तीनों विद्यमान हैं । यातैं तिन घटपटादिक द्रव्योंका चाक्षुषप्रत्यक्ष तथा त्वाचप्रत्यक्ष दोनों होवै है । सिद्धनियम–यातैं यह नियम सिद्ध भया । **विषयतासंबन्धेन बहिर्द्रव्यप्रत्यक्षं प्रति समवायसंबन्धेन महत्त्वविशिष्टोद्भूतरूपमुद्भूतस्पर्शश्च कारणम् ।** अर्थ यह–विषयता सम्बन्ध करिकै विषयविषे उत्पन्न होणेहारा जो बाह्यद्रव्यविषयक प्रत्यक्ष है ता प्रत्यक्षज्ञानके प्रति ता बाह्यद्रव्यविषे समवायसम्बन्ध करिकै रह्या हूआ महत्त्वविशिष्ट

उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श दोनों कारण होवै हैं। जैसे 'अयं घटः' यह प्रत्यक्षज्ञान समवाय-सम्बन्ध करिकै तौं आत्माविषे उत्पन्न होवै है और विषयतासम्बन्ध करिकै ता घटरूप विषयविषे भी उत्पन्न होवै है और ता घटविषे ते महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श दोनों समवायसम्बन्ध करिकै रहे हैं । यातैं विषयता संबंध करिकै ता घटरूप बाह्यविषे उत्पन्नहूए 'अयं घटः' इस प्रत्यक्षविषे ता घटविषे समवायसम्बंध करिकै रह्ये हूए ते महत्त्व विशिष्ट उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श दोनों कारण होवै हैं। ईहां विषयतासम्बंध तौं कार्यताका अवच्छेदक सम्बन्ध है और समवायसम्बन्ध कारणताका अवच्छेदक सम्बन्ध है। सो महत्त्व विशिष्ट उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श दोनों ता वायुविषे हैं नहीं । यातैं ता वायुका चक्षुइन्द्रिय करिकै वा त्वक्इन्द्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै नहीं । यद्यपि ता वायुविषे महत्त्वविशिष्ट उद्भूत स्पर्श तौं हैं तथापि उद्भूतरूप ता वायुविषे है नहीं। यातैं उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श दोनोंका अभाव ता वायुविषे कथन कर्या है। जैसे एक चैत्रनामा पुरुषके विद्यमान हूए भी मैत्रनामा पुरुषके अभावहूए ईहां चैत्र मैत्र दोनों नहीं हैं या प्रकारतैं दोनोंके अभावका व्यवहार होवै है, तैसे ता वायुविषे उद्भूतस्पर्शके विद्यमान हूए भी उद्भूतरूपके अभावहूए उद्भूतरूप उद्भूत-स्पर्श दोनों तहां नहीं हैं । या प्रकारतैं तिन दोनोंके अभावका व्यवहार सम्भवै है, किंवा जैसे ता महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूप उद्भूतस्पर्शरूप कारणके अभावहूए ता वायुका चक्षुइन्द्रिय करिकै वा त्वक्इन्द्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । तैसे ता कारणके अभावहूए प्रदीपादिकोंकी प्रभाका तथा तप्तजलविषे स्थित तेजका भी चक्षुइन्द्रिय करिकै वा त्वक्इन्द्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं। काहेतैं ? ता प्रभाविषे यद्यपि मनत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूप तौं है तथापि ता प्रभाविषे उद्भूतस्पर्श है नहीं और ता तप्त जलविषे स्थित तेजविषे यद्यपि महत्त्वविशिष्ट उद्भूतस्पर्श तौ है तथापि ता तेजविषे सो उद्भूतरूप है नहीं। यातैं ता उक्तकारणके अभावतैं ता प्रभाका तथा तेजका चक्षुइन्द्रिय करिकै वा त्वक्इन्द्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । किंतु जैसे ता वायुके स्पर्शमात्रका त्वक्इन्द्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तैसे ता तेजके भी उष्णस्पर्शमात्रका त्वक्इन्द्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है। शंका—वायुकूं मैं स्पर्श करता हूं तथा प्रभाकूं मैं देखता हूं तथा तप्तजलविषे स्थित तेजकूं मैं स्पर्श करता हूं या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है और अनुभवसिद्ध अर्थका केवल युक्तिमात्रतैं बाध होइ सकता नहीं। यातैं ता लोकोंके अनुभवतैं ता वायुविषे तौं त्वाचप्रत्यक्षकी विषयता मानी चाहिये और ता प्रभाविषे चाक्षुष प्रत्यक्षकी विषयता मानी चाहिये और ता तप्तजलविषे स्थित तेजविषे त्वाचप्रत्यक्षकी विषयता मानी चाहिये । समाधान—केवल लोकोंके अनुभवमात्रतैं किसी अर्थकी सिद्धि होवै नहीं, किंतु यथार्थ अनुभवतैं हीं अर्थकी सिद्धि होवै है । जो कदाचित् अनुभवमात्रतैं अर्थकी सिद्धि होती होवै तौं रूपरहित आकाशविषे 'नीलम् नभः' या

प्रकारका अनुभव सर्वलोकोंकूं होवै है । ता अनुभवतैं ता आकाशविषे भी नीलरूपकी सिद्धि होणी चाहिये और 'नीलम् नभः' या प्रकारके भ्रमरूप अनुभवतैं कोई भी बुद्धिमान् पुरुष ता आकाशविषे नीलरूपकूं अंगीकार करता नहीं । यातैं ता भ्रमरूप अनुभवतैं किसी भी अर्थकी सिद्धि होती नहीं, किंतु यथार्थ अनुभवतैं हीं अर्थकी सिद्धि होवै है । तहां वायुकूं मैं स्पर्श करता हूं प्रभाकूं मैं देखता हूं तप्तजलविषे स्थित तेजकूं मैं स्पर्श करता हूं यह पूर्वउक्त अनुभव भी यथार्थरूप नहीं हैं, किंतु भ्रमरूप है । यातैं तिन भ्रमरूप अनुभवों करिकै तिन वायु आदिकोंविषे प्रत्यक्षज्ञानकी विषयता सिद्ध होवै नहीं । यातैं इन्द्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाण करिकै ता वायुकी सिद्धि सम्भवै नहीं, किन्तु अनुमान प्रमाण करिकै हीं ता वायुकी सिद्धि होवै है । ता अनुमान—का यह आकार है । वायुके चलायमानहूए लोकोंकूं जो अनुष्णाशीतस्पर्श त्वकूइंद्रिय करिकै प्रतीत होवै है, **स स्पर्शः किञ्चिदाश्रितः गुणत्वात् रूपवत्** । अर्थ यह—सो स्पर्श किसी द्रव्यके आश्रित होणे योग्य है, गुण होणेतैं । जो जो गुण होवै है, सो सो किसी द्रव्यके आश्रित हीं होवै है, निराश्रयगुण होता नहीं । जैसे रूपगुण गुणरूप होणेतैं पृथिवी जल तेजरूप द्रव्यके आश्रित होवै है, तैसे सो स्पर्श भी गुणरूप होणेतैं किसी द्रव्यके आश्रित अवश्य होवैगा । इस प्रकारके अनुमान करिकै ता स्पर्शगुणविषे किंचित् द्रव्यके आश्रितत्व सिद्धहूए ता किंचित् पद करिकै सो वायुरूप द्रव्य हीं ग्रहण किया जावै है । **शंका**—ता अनुमानविषे 'स स्पर्शः किञ्चिदाश्रितः' इस प्रतिज्ञावाक्यविषे स्थित जो 'किंचित्' यह पद है सो किंचित्पद नियमपूर्वक एक अर्थका वाचक होवै नहीं, किंतु प्रसङ्गके अनुसार सो किंचित्पद सर्वपदार्थोंका वाचक होवै है । यातैं ता किञ्चित्पद करिकै केवल वायुमात्रका ग्रहण संभवता नहीं, किंतु ता किञ्चित्पद करिकै पृथिवीआदिकोंका भी ग्रहण संभवै है । **समाधान**—यद्यपि ता किञ्चित्पदकरिकै प्रसङ्गके अनुसार सर्व पदार्थोंका ग्रहण होवै है तथापि ईहां ता किंचित्पद करिकै एक वायुमात्रका हीं ग्रहण संभवै है । ता वायुतैं भिन्न अन्य किसी पदार्थका ता किञ्चित्पद करिकै ग्रहण संभवता नहीं । काहेतैं ? ते रूपादिक गुण समवायसंबंध करिकै केवल द्रव्यपदार्थविषे हीं रहे हैं । ता द्रव्यपदार्थतैं भिन्न गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन षट्पदार्थोंविषे ते रूपादिकगुण रहते नहीं । यातैं ता स्पर्शगुणका आश्रयरूप करिकै तिन गुणादिक षट्पदार्थोंका तौं ता किञ्चित्पद करिकै ग्रहण कीया जावै नहीं और द्रव्यपदार्थविषे भी पृथिवीरूप द्रव्यका तौं ता किञ्चित्पद करिकै ग्रहण होइ सकता नहीं । काहेतैं ? जो पार्थिवद्रव्य उद्भूतस्पर्शवाला होवै है सो पार्थिवद्रव्य उद्भूतरूपवाला भी अवश्य होवै है और जो पार्थिवद्रव्य महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपवाला तथा उद्भूतस्पर्शवाला होवै है सो पार्थिवद्रव्य चक्षुइंद्रियकरिकै वा त्वक्इंद्रिय करिकै अवश्य प्रतीत होवै है ।

सो ऐसा उद्भूतरूपवाला तथा उद्भूतस्पर्शवाला कोई पार्थिवद्रव्य तहां प्रतीत होता नहीं। जिस पार्थिव द्रव्यका सो अनुष्णाशीत स्पर्श त्वक्इंद्रिय करिकै ग्रहण होवै। यातैं ता किञ्चित्-पद करिकै ता पृथिवीरूप द्रव्यका तौं ग्रहण संभवता नहीं, और ता किञ्चित्पद करिकै जो जलरूप द्रव्यका तथा तेजरूप द्रव्यका ग्रहण करीये सो भी संभवता नहीं। काहेतैं? ता जलविषे तथा तेजविषे सो अनुष्णाशीतस्पर्श रहता नहीं किंतु ता जलविषे तौं शीतस्पर्श रहे है और तेजविषे उष्णस्पर्श रहे है। यातैं ता अनुष्णाशीतस्पर्शका आश्रयरूप करिकै ता जलतेजका भी ता किञ्चित्पद करिकै ग्रहण कऱ्या जावै नहीं और आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारिद्रव्योंका जो ता किञ्चित्पद करिकै ग्रहण करीये सो भी संभवता नहीं।काहेतैं?यह आकाशादिक च्यारोंद्रव्य विभु हैं। तहां सर्व मूर्त्तद्रव्योंके साथि जा द्रव्यका संयोग होवै है सो द्रव्य विभु कह्या जावै है। ऐसे आकाशादिक च्यारि विभुद्रव्योंका जो ता किञ्चित्पद करिकै ग्रहण करिये तौं ता अनुष्णाशीतस्पर्शका सर्वत्र त्वाचप्रत्यक्ष होणा चाहिये और वायुके प्रवेशतैं रहित गुफादिक स्थानोंविषे स्थित पुरुषकूं ता अनुष्णाशीत स्पर्शका त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं ता अनुष्णाशीत स्पर्शका आश्रयरूप करिकै तिन आकाशादिक विभु द्रव्योंका भी ता किञ्चित् पद करिकै ग्रहण होइ सकै नहीं। यद्यपि जो जो गुण विभु द्रव्यके आश्रित रहे है सो सो गुण सर्वत्र प्रतीत होवै है या प्रकारका नियम संभवता नहीं। काहेतैं? शब्दगुण आकाशरूप विभुद्रव्यके आश्रित रहे है और ज्ञान सुख दुःख आदिकगुण आत्मारूप विभुद्रव्यके आश्रित रहे हैं, परंतु ते शब्द ज्ञान सुख दुःखादिक गुण सर्वत्र प्रतीत होते नहीं तथापि ते गुण दो प्रकारके होवै हैं एक तौं व्याप्यवृत्ति गुण होवै हैं और दूसरे अव्याप्यवृत्ति गुण होवै हैं। तहां ते शब्दादिक गुण तौं अव्याप्यवृत्ति गुण हैं अर्थात् आपणे आश्रयरूप द्रव्यके किञ्चित् देशविषे रहे हैं किञ्चित्देशविषे नहीं रहे हैं। यातैं विभु द्रव्यके आश्रित हूए भी ते शब्दादिकगुण सर्वत्र प्रतीत होते नहीं। और सो स्पर्शगुण तौं व्याप्य वृत्ति गुण है। अर्थात् आपणे आश्रयरूप द्रव्यके सर्व देशविषे रहे है। यातैं ता स्पर्शकूं आकाशादिक विभुद्रव्योंके आश्रित अङ्गीकार कीये हूए ता स्पर्शकी सर्वत्र प्रतीति अवश्य प्राप्त होवैंगी। तहां व्याप्यवृत्ति गुणोंका तथा अव्याप्यवृत्ति गुणोंका निरूपण आगे पञ्चम परिच्छेद विषे गुणोंके साधर्म्यवैधर्म्य निरूपणविषे स्पष्ट करिकै करेंगे। यातैं ता किंचित्पद कारिकै तिन आकाशादिक विभुद्रव्योंका भी ग्रहण किया जावै नहीं और ता किंचित्पद करिकै जो मनरूप द्रव्यका ग्रहण करिये सो भी संभवता नहीं। काहेतैं?सो मन अतिइंद्रिय है अर्थात् महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपउद्भूतस्पर्शके अभाववाला होणेतैं सो मन चक्षुइंद्रिय जन्य ज्ञानका वा त्वक् इंद्रिय जन्य ज्ञानका विषय है नहीं ऐसे अतिइंद्रिय मनके आश्रितहूआ सो अनुष्णाशीत स्पर्श भी अतिइंद्रिय हीं होवैगा। और ता स्पर्शका तौं त्वक्इंद्रियकरिकै सर्वकूं प्रत्यक्ष होवै है। यातैं

ता स्पर्शका आश्रयरूप करिकै ता मनका भी ता किंचित्पद करिकै ग्रहण हो इसकै नहीं, किंतु परिशेषतैं ता किंचित्पदकरिकै ता वायुरूप द्रव्यका हीं ग्रहण करणा होवैंगा इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिके हीं ता वायुकी सिद्धि होवै है इति । किंवा केवल इस उक्त अनुमान करिकै हीं ता वायुकी सिद्धि नहीं होवै है । किंतु दूसरे भी अनेक अनुमानों करिकै ता वायुकी सिद्धि हो इसकै है सो दिखावै हैं—रूपवाले पार्थिवादिक द्रव्योंके अभिघाताख्य संयोगतैं विना हीं जो पर्णादिकोंविषे विलक्षण शब्दविशेष होवै है सो शब्द वेगवाले वायुके संयोग संबंधतैंहीं होवै है यातैं ता पर्णादिकोंके शब्द विशेषतैं भी ता वायुका अनुमान होवै है, किंवा गुरुत्व धर्मवाले जे तृण, तूल, मेघ विमान आदिक हैं तिन तृणादिकोंकी जा आकाशविषे अधःपतनका अभावरूप धृति है सा धृतिभी ता स्पर्शवेगवाले वायुके संयोग करिकै हीं होवै है । यातैं तिन तृणादिकोंकी धृतितैं भी ता वायुका हीं अनुमान होवै है, किंवा रूपवाले पार्थिवादिक द्रव्यके अभिघाताख्य संयोगतैं विना हीं वृक्षकी शाखादिकोंविषे जो चलनरूप कर्म होवै है सो कर्म भी ता स्पर्शवेगवाले वायुरूप द्रव्यके संयोग करिकै हीं होवै है । यातैं तिन शाखादिकोंके चलनरूप कर्मतैं भी ता वायुका हीं अनुमान होवै है । इत्यादिक अनेक अनुमानों करिकै ता वायुकी सिद्धि संभवै है । यातैं सो वायु किसी भी इंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानका विषय नहीं है, किंतु पूर्वउक्त अनुमानप्रमाणजन्य अनुमितिज्ञानका हीं सो वायु विषय है इति ॥

और केईक ग्रन्थकर्त्ता नैयायिक—तौं यह कहे हैं । बाह्य द्रव्यके प्रत्यक्षविषे महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपकूं तथा उद्भूतस्पर्शकूं दोनोंकूं कारणता नहीं है, किंतु महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपकूं हीं कारणता है । काहेतैं ? कार्यके अभावविषे कारणका अभाव प्रयोजक होवै है । तहां ता द्रव्यप्रत्यक्षरूप कार्यके अभावविषे ता उद्भूतरूप कारणके अभावकूं प्रयोजक मानणेमें लाघव है । और जे वादी ता द्रव्य प्रत्यक्षविषे ता रूपस्पर्श दोनोंकूं कारण माने हैं, तिनोंके मतविषे ता रूपस्पर्श दोनोंके अभावकूं ता प्रत्यक्षके अभावविषे प्रयोजक मानणेमें गौरवदोष प्राप्त होवै है । यातैं सो पूर्वउक्त प्राचीनोंका मत समीचीन नहीं है । ईहां यह तात्पर्य है—ता द्रव्यके चाक्षुष प्रत्यक्षविषे तथा त्वाचप्रत्यक्षविषे ता महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपकूं कारणता हूए भी ता द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षविषे उद्भूतस्पर्शकूं भी कारणता होवै है अर्थात् ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्ष विषे तौं केवल महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपकूं हीं कारणता होवै है । और ता द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षविषे तौं ता महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपकूं तथा उद्भूतस्पर्शकूं दोनोंकूं कारणता होवै है । यातैं ता वायुविषे उद्भूतस्पर्शके विद्यमान हूए भी ता उद्भूतरूपके अभावतैं ता वायुका चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाच प्रत्यक्ष होता नहीं । और प्रदीपचंद्रादिकोंकी प्रभाविषे ता उद्भूतस्पर्शके अभावहूए भी सो उद्भूत रूप विद्यमान है यातैं ता प्रभाका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं । और

पार्थिव त्र्यणुकविषे ता उद्भूतस्पर्शके अभावहूए भी सो उद्भूतरूप रहे है। यातैं ता त्र्यणुकका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है त्वाच प्रत्यक्ष होता नहीं और तप्तजलविषे स्थित तेजविषे ता उद्भूतस्पर्शके विद्यमानहूए भी सो उद्भूतरूप है नहीं। यातैं ता तेजका वायुकी न्यांई चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं किंतु ता तेजके उष्णस्पर्शमात्रका हीं त्वाचप्रत्यक्ष होवै है। यातैं सो वायु प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सिद्ध नहीं है, किंतु पूर्व उक्त अनुमानप्रमाण करिकै हीं सो वायु सिद्ध है इति ॥

नव्य न्याय तथा मीमांसाके मतसे बाह्य द्रव्यके प्रत्यक्षकी सामग्री—और नवीन नैयायिक तथा मीमांसक तौं ता वायुकूं त्वक्इंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानका विषय हीं माने है। तिनोंका यह अभिप्राय है—बाह्य द्रव्यके प्रत्यक्षविषे महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूप तथा उद्भूतस्पर्श दोनों कारण नहीं हैं तथा केवल महत्त्वविशिष्ट उद्भूत रूप भी कारण नहीं है, किंतु ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे तौं महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूप कारण है और ता द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षविषे महत्त्वविशिष्ट उद्भूतस्पर्श कारण है। ता द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षविषे ता उद्भूतरूपकी अपेक्षा होवै नहीं तहां वायुविषे सो रूपगुण रहता नहीं। यातैं ता महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपके अभावतैं ता वायुका चाक्षुषप्रत्यक्ष मत होवो परंतु ता वायुविषे सो महत्त्वविशिष्ट उद्भूतस्पर्श विद्यमान है। यातैं ता वायुके त्वाचप्रत्यक्ष होणेविषे कोई भी बाधक नहीं है। यातैं सो वायु त्वक्इंद्रियजन्य प्रत्यक्षका विषयहीं है, किंवा जैसे ता वायुका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है तैसे ता तप्तजलविषे स्थित तेजका भी त्वाचप्रत्यक्ष होवै है तथा ता प्रभाका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है। काहेतैं? ता द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षका कारणभूत जो महत्त्वविशिष्ट उद्भूतस्पर्श है सो उद्भूतस्पर्श जैसे ता वायुविषे रहे है तैसे ता तेजविषे भी सो उद्भूतस्पर्श रहे है और ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारणभूत जो महत्त्व विशिष्ट उद्भूतरूप है सो उद्भूतरूप जैसे घटपटादिक द्रव्योंविषे रहे है तैसे ता प्रभाविषे भी सो उद्भूतरूप रहे है। यातैं ता तप्तजलविषे स्थित तेजके त्वाचप्रत्यक्षविषे तथा ता प्रभाके चाक्षुष प्रत्यक्षविषे कोई भी बाधक नहीं है; उलटा मैं वायुकूं स्पर्श करता हूं, मैं तप्तजलविषे स्थित तेजकूं स्पर्श करता हूं, मैं प्रभाकूं देखता हूं यह सर्वलोकोंका अनुभव भी ता अर्थका साधक है और जो वादी इन उक्त प्रतीतियोंकूं भ्रमरूप माने है ता वादीसैं यह पूछा चाहिये—तिन उक्त प्रतीतियोंविषे सा भ्रमरूपता किसी युक्ति प्रमाणतैं विना हीं है अथवा किसी युक्ति प्रमाण करिकै सिद्ध है? तहां सो वादी जो प्रथमपक्ष अंगीकार करै तौं ता वादीनैं जैसे तिन उक्त प्रतीतियोंविषे भ्रमरूपता अंगीकार करी है तैसे मैं घटकूं स्पर्श करता हूं, मैं पटकूं देखता हूं इत्यादिक प्रतीतियोंविषे भी सा भ्रमरूपता अंगीकार करी चाहिये और इन प्रतीतियोंविषे सा भ्रमरूपता ता वादीकूं भी अंगीकार नहीं है। यातैं सो प्रथमपक्ष तौं संभवता नहीं और सो वादी जो द्वितीयपक्ष अंगीकार करै सो भी संभवता नहीं। काहेतैं? जिस प्रतीतिके उत्तरकालविषे

विरोधी प्रतीति होवै है सा प्रतीति हीं भ्रांतिरूप होवै है। जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' या प्रकारकी प्रतीतिहूएतैं अनंतर 'नेदं रजतम्'या प्रकारकी विरोधी प्रतीति होवै है। यातैं'इदं रजतम्' यह प्रतीति भ्रांतिरूप कही जावै है। इस प्रकारकी विरोधी प्रतीति तिन उक्तप्रतीतियोंतैं अनंतर होती नहीं। यातैं ते प्रतीतियां भ्रमरूप नहीं है इति ॥ ४ ॥ इति वायुनिरूपणं समाप्तम् ॥

परमाणुवादियोंके यहां जगकी उत्पत्ति ।

तहां पूर्व द्व्यणुकादिकार्यरूप पृथिवी जल तेज वायुकूं अवयवीरूप कह्या था। तहां केईक नास्तिकवादी ता अवयवीकूं अंगीकार करते नहीं, किंतु परमाणुवोंके समूहरूप पुंजकूं हीं घट पटादिरूप माने हैं। तिन नास्तिकोंके मतके खंडन करणे वासतै प्रथम ता द्व्यणुकादि कार्यरूप पृथिवी जल तेज वायुके उत्पत्तिविनाश क्रमकूं कथन करे हैं। तहां प्रलयकालविषे पृथिवी जल तेज वायु इन च्यारि द्रव्योंके असंख्यातपरमाणु किसी भी द्व्यणुकादिरूप कार्यद्रव्यका नहीं आरंभ करतेहूए तथा कंपायमानहूए पृथक् पृथक् स्थित होवै हैं। तिसतैं अनंतर सृष्टिके आदिकालविषे परमेश्वरकी चिकीर्षा उत्पन्न होवै अर्थात् कार्यरूप द्रव्योंके उत्पत्ति करणेकी इच्छा उत्पन्न होवै है ॥ १ ॥ ता चिकीर्षाके वशतैं तिन सर्वपरमाणुवोंविषे क्रिया उत्पन्न होवै है ॥ २ ॥ तिस क्रियारूप हेतुतैं तिन सजातीय दो दो परमाणुवोंका परस्पर संयोग उत्पन्न होवै है ॥ ३ ॥ अर्थात् पृथिवीके परमाणुवोंका तौं पृथिवीके परमाणुवों साथि संयोग होवै है और जलके परमाणुवोंका जलके परमाणुवोंके साथि संयोग होवै है और तेजके परमाणुवोंका तेजके परमाणुवोंके साथि संयोग होवै है और वायुके परमाणुवोंका वायुके परमाणुवोंके साथि संयोग होवै है। इस प्रकार सजातीय परमाणुवोंके क्रियाजन्य संयोगतैं द्व्यणुकरूप कार्य उत्पन्न होवै हैं अर्थात् पृथिवीत्वादिरूप करिकै सजातीय दो परमाणुवोंके संयोगतैं सो द्व्यणुकरूप कार्य उत्पन्न होवै है। तहां असंख्यात परमाणुवोंके मध्यविषे दो दो परमाणुवोंके संयोगतैं उत्पन्न हूए ते द्व्यणुकरूप कार्य भी असंख्यात हीं उत्पन्न होवै हैं ॥ ४ ॥ भावकार्य्योंके कारण—जो जो भाव कार्य होवै है सो सो भाव कार्य समवायिकारण, असमवायिकारण, निमित्तकारण इन तीन कारणों करिकै हीं जन्य होवै है। यह न्यायशास्त्रकारोंका नियम है। भाव कहनेका तात्पर्य्य—तहां प्रध्वंसा भावरूप कार्य केवल निमित्तकारण करिकै हीं जन्य होवै है। समवायिकारण करिकै वा असमवायिकारण करिकै सो प्रध्वंसाभाव जन्य होता नहीं। यातैं ता नियमविषे कार्यमात्रका ग्रहण कऱ्या नहीं किंतु भावकार्यका ग्रहण कऱ्या है। सा भावकार्यरूपता ता द्व्यणुकविषे भी है। यातैं सो द्व्यणुकरूप कार्य भी तिन तीनों कारणोंकरिकै हीं जन्य होवैगा। द्व्यणुकोत्पत्तिके कारण—तहां ता द्व्यणुकरूप कार्यका ते दोनों परमाणु तौं समवायिकारण हैं और तिन दोनों परमाणुवोंका जो क्रियाजन्य परस्परसंयोगसंबंध है सो दो परमाणुवोंका संयोग ता

द्व्यणुकरूप कार्यका असमवायिकारण है और परमेश्वर १, ता परमेश्वरका ज्ञान २, ता परमेश्वरकी इच्छा ३, ता परमेश्वरकी प्रयत्नरूप कृति ४, काल ५, दिशा ६, प्रागभाव ७, जीवोंके पुण्यपापरूप अदृष्ट ८, प्रतिबन्धका भाव ९ यह नव ता द्व्यणुकरूप कार्यके निमित्त कारण हैं। कार्यमात्रके निमित्त कारण—किंवा यह उक्त परमेश्वरादिक नव केवल ता द्व्यणुकरूप कार्यके हीं निमित्त कारण नहीं हैं, किंतु सर्व कार्यमात्रविषे इन नवोंकूं निमित्तकारणरूपता है। या कारणतैं हीं इन नवोंकूं साधारण कारण कहे हैं। इस प्रकारके तीन कारणों करिकै तिन द्व्यणुकरूप कार्योंकी उत्पत्तितैं अनंतर तिन द्व्यणुकोंविषे पुनः क्रिया उत्पन्न होवै है ॥५॥ ता क्रियातैं तिन सजातीय तीन तीन द्व्यणुकोंका परस्पर संयोगसम्बन्ध होवै है॥६॥ता संयोगतैं त्र्यणुकरूप कार्य उत्पन्न होवै हैं ॥७॥ ते त्र्यणुक कार्य भी असंख्यात हीं उत्पन्न होवै हैं। तहां तिस त्र्यणुकरूप कार्यका ते तीन द्व्यणुक तौ समवायिकारण हैं और तिन तीन द्व्यणुकोंका परस्परसंयोग सम्बन्ध ता त्र्यणुकरूप कार्यका असमवायिकारण है और ते पूर्वउक्त परमेश्वरादिक नव ता त्र्यणुकरूप कार्यका निमित्तकारण हैं। इस प्रकार तिन त्र्यणुकरूप कार्योंकी उत्पत्तितैं अनंतर तिन त्र्यणुकोंविषे भी पुनः क्रिया उत्पन्न होवै है ॥ ८ ॥ ता क्रियातैं तिन सजातीय च्यारिच्यारि त्र्यणुकोंका परस्पर संयोगसंबंध होवै है ॥ ९ ॥ ता संयोगतैं चतुरणुकरूप कार्य उत्पन्न होवै हैं ॥ १० ॥ ते चतुरणुक भी असंख्यात हीं उत्पन्न होवै हैं। तहां ता चतुरणुकरूप कार्यका ते च्यारि त्र्यणुक तौ समवायिकारण होवै हैं और तिन च्यारि त्र्यणुकोंका परस्परसंयोगसंबंध असमवायिकारण होवै है और ते पूर्व उक्त परमेश्वरादिक नव निमित्त कारण होवै हैं। इस प्रकार ते पंच चतुरणुक मिलिकै दूसरे पंचाणुकनामा स्थूलतर कार्यकूं उत्पन्न करे हैं ॥ १० ॥ और ते पंचाणुकनामा स्थूलतर कार्यरूप अवयव मिलिकै दूसरे स्थूलतम कार्यकूं उत्पन्न करे हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार पूर्वपूर्व कारणकी अपेक्षा करिकै उत्तरउत्तर स्थूलकार्यकी उत्पत्तिक्रम करिकै महान्पृथिवी, महान्जल, महान्तेज, महान्वायु उत्पन्न होवै है। जैसे परमाणुरूप समवायिकारणकी अपेक्षाकरिकै ता द्व्यणुकरूप कार्यविषे द्विगुणस्थूलता होवै है और ता द्व्यणुकरूप समवायिकारणकी अपेक्षा करिकै ता त्र्यणुकरूप कार्यविषे त्रिगुणस्थूलता होवै है और ता त्र्यणुकरूप समवायिकारणकी अपेक्षा करिकै ता चतुरणुकरूप कार्यविषे चतुर्गुणस्थूलता होवै है। इस प्रकार महान्पृथिवी आदिक कार्यपर्यन्त पूर्वपूर्व समवायिकारणकी अपेक्षा करिकै उत्तर उत्तरकार्यविषे स्थूलताकी आधिकता जानि लणी। तहां पूर्वपूर्व समवायिकारणतैं उत्तर उत्तर कार्य भिन्न हीं होवै है, जैसे ता परमाणुरूप समवायिकारणतैं सो द्व्यणुकरूप कार्य भिन्न होवै है और ता द्व्यणुकरूप समवायिकारणतैं सो त्र्यणुकरूप कार्य भिन्न होवै है। इस प्रकार महान् पृथिवी आदिक कार्यपर्यंत पूर्वपूर्व समवायिकारणतैं उत्तरउत्तर कार्य भिन्न हीं उत्पन्न

होवै है और पूर्वपूर्व समवायिकारणरूप द्रव्यके रूपादिक गुण उत्तरउत्तर कार्यद्रव्यके रूपादिक गुणोंकूं उत्पन्न करे हैं । जैसे तंतुरूप समवायिकारणके रूपादिकगुण, पटरूप कार्यके रूपादिक गुणोंकूं उत्पन्न करे हैं । तैसे ता परमाणुरूप समवायिकारणके रूपादिक गुण ता द्व्यणुकरूप कार्यके रूपादिक गुणोंकूं उत्पन्न करे है और ता द्व्यणुकरूप समवायिकारणके रूपादिक गुण ता त्र्यणुकरूप कार्यके रूपादिक गुणोंकूं उत्पन्न करे हैं । इस प्रकार महान् पृथिवी आदिक कार्यद्रव्य पर्यंत पूर्वपूर्व समवायिकारणके रूपादिकगुण उत्तरउत्तर कार्यद्रव्यके रूपादिक गुणोंकूं उत्पन्न करे हैं । यद्यपि पाकजरूपरसादिक तथा द्वित्वादिक तथा संयोगविभाग इत्यादिक गुण कारणके गुणोंतैं उत्पन्न नहीं होते किंतु आपणे आश्रयद्रव्यविषे समवेत तेजःसंयोगादिकों करिकै हीं उत्पन्न होवै हैं । तथापि जे रूपादिकगुण कारणके गुणोंतैं उत्पन्न होवै हैं तिन रूपादिक गुणोंका हीं ईहां ग्रहण करणा । तहां जे गुण कारणके गुणोंतैं उत्पन्न होवै हैं तथा जे गुण कारणके गुणोंतैं नहीं उत्पन्न होवै हैं ते सर्वगुण आगे पंचमपरिच्छेदविषे गुणोंके साधर्म्य वैधर्म्य निरूपणविषे स्पष्ट करिकै कहेंगे ॥

तीन परमाणुओंसे द्व्यणुककी शंका—जैसे दो परमाणु ता द्व्यणुकरूप कार्यका आरंभ करे है तैसे तीन परमाणु ता द्व्यणुकरूप कार्यका आरंभ क्युं नहीं करते ? और जैसे तीन द्व्यणुक ता त्र्यणुकरूप कार्यका आरंभ करे है तैसे दो द्व्यणुक ता त्र्यणुकरूप कार्यका आरंभ क्युं नहीं करते? इसका समाधान—तीन परमाणुवोंकूं जो ता द्व्यणुकरूप कार्यका आरंभक मानिये तौं एक तौं गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है । काहेतें ? दो परमाणुवोंकी अपेक्षा करिकै तीन परमाणु अधिक होवै हैं । तिन दो परमाणुवोंतैं हीं जो ता द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति होइ सकै तौं तीन परमाणुवोंतैं ता द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति मानणेविषे ता गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है और दूसरा तीन परमाणुवोंतैं ता द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति मानणेविषे कोई प्रमाण भी नहीं है । यातैं तीन परमाणुवोंकूं ता द्व्यणुकरूप कार्यकी आरंभकता संभवती नहीं, किंतु लाघवतैं ते दो परमाणु हीं ता द्व्यणुकरूप कार्यका आरंभक होवै हैं, तीन द्व्यणुकोंसे त्र्यणुकोत्पत्तिमें गौरवकी शंका—जैसे तीन परमाणुवोंविषे ता द्व्यणुकरूप कार्यकी आरंभकता मानणेविषे गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है ता गौरवदोषकी निवृत्ति करणे वासतै लाघवतैं दो परमाणुवोंविषे हीं ता द्व्यणुकरूप कार्यकी आरंभकता अंगीकार करी है तैसे तीन द्व्यणुकोंविषे ता त्र्यणुकरूप कार्यकी आरम्भकता मानणेविषे भी ता गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है । यातैं ता गौरवदोषकी निवृत्ति करणे वासतै लाघवतैं दो द्व्यणुकोंविषे हीं ता त्र्यणुकरूप कार्यकी आरंभकता मानी चाहिये । इसका समाधान—यद्यपि दो द्व्यणुकोंतैं ता त्र्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति मानणेविषे लाघव है तथापि दो द्व्यणुकोंतैं ता त्र्यणुकरूप कार्यकी जो उत्पत्ति मानिये तौं ता त्र्यणुकरूप कार्यविषे महत्त्वपरिमाण नहीं होवैगा । ता महत्त्वपरिमाणके अभावहूए ता त्र्यणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष नहीं

होवैंगा । काहेतैं ? कार्यके महत्त्वपरिमाणविषे ता कार्यके समवायिकारणका महत्त्वपरिमाण अथवा ता समवायिकारणकी बहुत्वसंख्या असमवायिकारण होवै है, जैसे तंतुरूप समवायि, कारणका महत्त्वपरिमाण पटरूप कार्यके महत्त्वपरिमाणका असमवायिकारण होवै है और सो समवायिकारणका परिमाण जो कार्यके परिमाणकूं उत्पन्न करे है सो आपणे समान जाति वाले तथा आपणेतैं उत्कृष्ट ऐसे परिमाणकूं हीं उत्पन्न करे है जैसे तंतुरूप कारणका महत्त्वपरिमाण महत्त्वत्वरूप करिकै आपणे समान जातिवाले तथा आपणेतैं उत्कृष्ट ऐसे पटके महत्वपरिमाणकूं ऊपन्न करे है । तहां ता द्वयणुकरूप कारणविषे तौं सो महत्त्वपरिमाण है नहीं, किंतु अणुत्व-परिमाण है । या कारणतैं हीं तिन परमाणुवोंकी न्याई ता द्वयणुकका भी प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । तहां ता द्वयणुकरूप कारणके अणुत्वपरिमाणतैं जो ता त्र्यणुकरूप कार्यके परि-माणकी उत्पत्ति मानिये तौं सो त्र्यणुकका परिमाण ता द्वयणुकके अणुत्वपरिमाणकी अपेक्षा करिकै अणुतर होवैंगा और सिद्धांतविषे ता त्र्यणुककूं महत्त्वपरिमाणवाला हीं मान्या है । या कारणतैं हीं ता त्र्यणुकका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है । यातैं सो त्र्यणुकका महत्त्वपरिमाण ता द्व्यणुकरूप समवायिकारणके परिमाणजन्य नहीं है, किंतु ता द्वयणुकरूप कारणविषे स्थित जा बहुत्वसंख्या है ता बहुत्वसंख्यातैं हीं सो त्र्यणुकका महत्त्व परिमाण जन्य होवै है । सा बहुत्वसंख्या दो विषे रहती नहीं । किन्तु तीन च्यारि पंच षट् इत्यादिकोंविषे हीं सा बहुत्वसंख्या रहे है । यातैं ता त्र्यणुकरूप कार्यविषे महत्त्वपरिमाणकी उत्पत्ति वासतै तीन द्व्यणुकोंतैं हीं ता त्र्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति मानी चाहिये ॥

परमाणुओंकी क्रियाका असमवायिकारण—जो जो भावकार्य होवै है सो सो भावकार्य समवायिकारण असमवायिकारण निमित्तकारण इन तीन कारणों करिकै हीं जन्य होवै है । यह नियम पूर्व कथन कऱ्या था सो नियम सम्भवता नहीं । काहेतैं ? जैसे ते द्व्यणुकादिक भाव कार्य हैं तैसे सृष्टिके आदिकालविषे तिन परमाणुवोंके संयोगका जनक सा परमाणुवोंकी क्रिया भी भावकार्य है, परन्तु ता क्रियाका कोई असमवायिकारण प्रतीत होता नहीं, किंतु ते परमाणु तौं ता क्रियाके समवायिकारण हैं और ते पूर्वउक्त परमेश्वरादिक नव ता क्रियाके निमित्तकारण है । यातैं सा परमाणुवोंकी क्रिया जैसे असमवायिकारणतैं विना हीं उत्पन्न होवै है । तैसे ते द्व्यणुकादिक भावकार्य भी ता असमवायिकारणतैं विना हीं उत्पन्न होवैंगे । ऐसी शंकाके प्राप्त हूए अब मतभेदसैं ता क्रियाके असमवायिकारणका निरूपण करे हैं । दूसरे ग्रन्थकार—तहां केईक ग्रन्थकार तौं यह कहे हैं । तिन परमाणुवोंके साथि जो प्रयत्नवाले ईश्वरका संयोगसंबंध है सो संयोगसम्बन्ध हीं ता क्रियाका असमवायिकारण है इति । और केईक ग्रन्थकार तौं यह कहे हैं । पुण्यपापरूप अदृष्टवाले जीवात्माका जो तिन परमाणुवोंके साथि संयोगसम्बन्ध है सो संयोगसम्बन्ध हीं ता क्रियाका असमवायिकारण है इति ।

तात्पर्य यह—ईश्वरात्मा तथा जीवात्मा यह दोनों विभु हैं । और सर्वमूर्त्त द्रव्योंके साथि जा द्रव्यका संयोगसंबंध होवै है सो द्रव्य विभु कह्या जावै है । और ते पृथिवीआदिकोंके परमाणु भी मूर्त्तद्रव्य हैं । यातैं ता सृष्टिके आदिकालविषे तिन परमाणुवोंके साथि ता ईश्वरात्माका तथा जीवात्माका सो संयोगसंबंध विद्यमान हीं है । सो संयोगसंबंध हीं ता क्रियाका असमवायिकारण है इति । और केईक ग्रन्थकार तौं यह कहे हैं । एकपरमाणुके साथि दूसरे परमाणुका जो नोदनाख्य संयोग है सो संयोग हीं ता परमाणुकी क्रियाका असमवायिकारण है ।

अनवस्थादोषकी शंका—ता नोदनाख्य संयोगविषे ता क्रियाकी असमवायिकारणता मानणेमें अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी । काहेतैं ? जिस द्वितीय परमाणुके नोदनाख्य संयोगतैं ता प्रथम परमाणुविषे क्रिया उत्पन्न भई है सो द्वितीय परमाणुका नोदनाख्य संयोग भी तिस द्वितीय-परमाणुकी क्रिया करिकै हीं जन्य होवैंगा । और सा द्वितीयपरमाणुकी क्रिया भी तिस द्वितीय-परमाणुके साथि तृतीय परमाणुके नोदनाख्य संयोग करिकै जन्य होवैंगी । और सो तृतीय-परमाणुका नोदनाख्य संयोग भी ता तृतीयपरमाणुकी क्रिया करिकै जन्य होवैंगा । और सा तृतीयपरमाणुकी क्रिया भी ता तृतीयपरमाणुके साथि चतुर्थपरमाणुके नोदनाख्य संयोग करिकै जन्य होवैंगी । इस प्रकार क्रियावोंकी तथा नोदनाख्य संयोगोंकी परम्परा मानणेविषे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैंगी । यातैं एक परमाणुके साथि दूसरे परमाणुके नोदनाख्य संयोगविषे ता परमाणुके क्रियाकी असमवायिकारणता सम्भवती नहीं । इसका समाधान—जैसे बीजतैं अंकुर उत्पन्न होवै है । ता अंकुरतैं पुनः बीज उत्पन्न होवै है । ता बीजतैं पुनः अंकुर उत्पन्न होवे है ता अंकुरतैं पुनः बीज उत्पन्न होवै है । या प्रकारकी बीज अंकुरोंकी अनवस्थाकूं शास्त्रका रोंनैं दोषरूप नहीं मान्या है । तथा जैसे शरीरतैं पुण्यपापरूप अदृष्ट उत्पन्न होवै है ता अदृ-ष्टतैं पुनः शरीर उत्पन्न होवै है ता शरीरतैं पुनः अदृष्ट उत्पन्न होवै है । या प्रकारकी शरीर अदृष्टोंकी अनवस्थाकूं शास्त्रकारोंनैं दोषरूप नहीं मान्या है । तैसे तिन परमाणुवोंके क्रिया-वोंकी तथा नोदनाख्य संयोगोंकी अनवस्थाकूं भी दोषरूपता नहीं है । मूलअर्थके नाशकरणे हारी अनवस्थाकूं हीं शास्त्रकार दोषरूप माने हैं । यातैं एकपरमाणुके साथि दूसरे परमाणुके नोदनाख्य संयोगविषे ता परमाणुके क्रियाकी असमवायिकारणता संभवै है इति । और केईक ग्रन्थकारतौं यह कहे हैं । तिन परमाणुवोंविषे जो वेगाख्य संस्कारनामा गुण है सो वेग हीं ता परमाणुकी क्रियाका असमवायिकारण है । जैसे बाणादिकोंके द्वितीयादिक क्रियावोंका वेग असमवायिकारण होवै है तैसे ता परमाणुके क्रियाका भी सो वेग हीं असम-वायिकरण है । वेगविषे असमवायिकारणता न होनेकी शंका—तिन परमाणुवोंके वेगकूं जो तिन परमाणुवोंके क्रियाकी असमवायिकारणता मानोंगे तौं कल्पनागौरवदोषकी प्राप्ति होवैंगी । काहेतैं ? जैसे प्रथम नोदनाख्य संयोगतैं बाण विषे क्रिया उत्पन्न होवै है । ता क्रियातैं

ता बाणविषे वेग उत्पन्न होवे है । ता वेगतैं ता बाण विषे पुनः दूसरी क्रिया उत्पन्न होवै है । ता दूसरी क्रियातैं ता बाणविषे पुनः दूसरा वेग उत्पन्न होवै है । इसप्रकार जब पर्यंत ता बाणका भूमिविषे पतन नहीं होवै है तब पर्यंत ता बाणविषे क्रियावोंकी परंपरा तथा वेगोंकी परंपरा कल्पना करणी होवै है । तैसे सो परमाणुवोंके क्रियाका असमवायिकारण रूप वेग भी तिन परमाणुवोंकी दूसरी क्रियाकरिकै जन्य होवैंगा, और सा दूसरी क्रिया भी किसी दूसरे वेगकरिकै जन्य होवैंगी और सो दूसरा वेग पुनः तीसरी क्रिया करिकै जन्य होवैंगा । इस प्रकार प्रलयके आदिक्षणतैं लैकै सृष्टिकालपर्यंत सर्व परमाणुवोंविषे क्रियावोंकी परंपरा तथा वेगोंकी परंपरा कल्पना करणी होवैंगी । ऐसी कल्पना गौरवदोष करिकै युक्त है । यातैं ता वेगविषे ता परमाणुके क्रियाकी असमवायिकारणता संभवै नहीं । इसका समाधान—सो कल्पनागौरव सर्वत्र दोषरूप होवै नहीं, किंतु जो कल्पनागौरव निष्फल होवै है सो कल्पनागौरव हीं दोषरूप होवै है । फलका जनक कल्पनागौरव दोषरूप होता नहीं । सो द्व्यणुकादिककार्यकी उत्पत्तिरूपफल ईहांभी विद्यमान है । यातैं ता फलका जनक होणेतैं सो कल्पनागौरव दोषरूप नहीं है । यातैं तिस तिस परमाणुनिष्ठ वेगकूं तिस तिस परमाणुके क्रियाकी असमवायिकारणता संभवै है इति । पृथिवी आदि चारों कार्य्यद्रव्योंके विनाशका क्रम— इतनैं पर्यंत पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि कार्यद्रव्योंके उत्पत्तिका क्रम कथन कऱ्या । अब तिन च्यारों कार्यद्रव्योंके विनाशका क्रम कथन करे हैं । इस प्रकार उत्पन्नहूए ते कार्य द्रव्य कोईकाल पर्यंत स्थित होवै हैं । तिसतैं अनंतर ता परमेश्वरकी पुनः संजिहीर्षा उत्पन्न होवै है अर्थात् तिन उत्पन्नहूए कार्यद्रव्योंके संहार करणेकी इच्छा उत्पन्न होवै है॥ १ ॥ता संजिहीर्षाके वशतैं तिन पृथिवी आदिक च्यारि द्रव्योंके परमाणुवोंविषे पुनः क्रिया उत्पन्न होवै है ॥ २ ॥ ता क्रियातैं तिन दो दो परमाणुवोंका परस्पर विभाग होवै है ॥ ३ ॥ ता विभागतैं तिन दो दो परमाणुवोंके संयोगका नाश होवै है ॥ ४ ॥ ता संयोगके नाशतैं तिन द्व्यणुकरूप कार्योंका नाश होवै है ॥ ५ ॥ तिन द्व्यणुकरूप समवायिकारणोंके नाशहूए तिन त्र्यणुकरूप कार्योंका नाश होवै है ॥ ६ ॥ तिन त्र्यणुकरूप समवायिकारणोंके नाशहूए तिन चतुरणुकरूप कार्योंका नाश होवै है॥ ७ ॥इस प्रकार पूर्वपूर्व समवायिकारणके नाशकरिकै उत्तरउत्तर कार्यके नाशक्रम करिकै महान्पृथिवीका तथा महान्जलका तथा महान्तेजका तथा महान्वायुका नाश होवै है । और तिन द्व्यणुकादिक कार्यद्रव्योंके नाशहूए तिनोंके रूपादिक गुण भी आपे हीं नाश होइ जावै हैं । इस प्रकारतैं जो द्व्यणुकादिक सर्वकार्यद्रव्योंका नाश है ताकूं शास्त्रविषे अवांतरप्रलय कहे हैं । तात्पर्य यह—प्रलय दो प्रकारका होवै है । एक तौ अवांतरप्रलय होवै है और दूसरा महाप्रलय होवै है । अवान्तर प्रलयका लक्षण—तहां **सर्वकार्यद्रव्यध्वंसः अवान्तरप्रलयः** । अर्थ यह—द्व्यणुकरूप पृथिवीतैं आदिलेके महान्पृथिवीपर्यंत जितनाकी पृथिवी

रूप कार्यद्रव्य है तथा द्व्यणुकरूप जलतैं आदिलैके महान्‌जलपर्यंत जितनाकी जलरूप कार्यद्रव्य है तथा द्व्यणुकरूप तेजतैं आदिलैके महान्‌तेजपर्यंत जितनाकी तेजरूप कार्यद्रव्य है तथा द्व्यणुकरूप वायुतैं आदिलैके महान्‌वायुपर्यंत जितानकी वायुरूप कार्यद्रव्य है तिन सर्व कार्यद्रव्योंका जो पूर्वउक्त रीतिसैं ध्वंस है सो ध्वंस अवान्तर प्रलय कह्या जावै है। पदकृत्य—तहां यत्किंचित् घटादिरूप द्रव्योंका ध्वंस तौं इदानींकालविषे भी विद्यमान है। यातैं इदानींकालविषे भी सो अवान्तर प्रलय व्यवहार होणा चाहिये। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'सर्व' यह पद कथन कऱ्या है। तहां इदानींकालविषे यत्किंचित्‌कार्यद्रव्यके नाशहूए भी सर्वकार्यद्रव्योंका नाश है नहीं। यातैं इदानींकालविषे ता अवांतरप्रलयके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा ता लक्षणविषे 'कार्य' यह पद जो नहीं कथन करते किंतु 'सर्वद्रव्यध्वंसः अवान्तरप्रलयः' इतनामात्र हीं जो लक्षण करते तौं सो लक्षण आपणे लक्ष्यमात्रविषे अवृत्ति होणेतैं असम्भवदोषवाला होता। काहेतैं? ता अवान्तरप्रलय विषे भी परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंका ध्वंस होता नहीं, किंतु अनित्यद्रव्योंका हीं ध्वंस होवै है। ता असंभवदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता द्रव्यका 'कार्य' यह विशेषण कथन कऱ्या है। किंवा 'सर्वकार्यध्वंसः अवान्तरप्रलयः' इतनामात्र हीं जो ता अवांतरप्रलयका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्रव्य' यह पद नहीं कथन करते तौं सो लक्षण पुनः असंभवदोषवाला होता। काहेतैं? तिन परमाणुआदिक नित्यद्रव्योंविषे स्थित रूपादिकगुण ता अवान्तरप्रलय विषे भी रहे हैं। ता असंभवदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे 'द्रव्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता अवान्तरप्रलयविषे गुणकर्मरूप कार्यके विद्यमान हूए भी कोई कार्यद्रव्य रहता नहीं। यातैं ता लक्षणविषे असंभव दोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति॥

महाप्रलय—तहां **सर्वभावकार्यध्वंसः महाप्रलयः**। अर्थ यह—अनित्यद्रव्य तथा अनित्य गुण तथा कर्म इन तीनोंका नाम भावकार्य है। तिन सर्व भावकार्योंका जो ध्वंस है सो महाप्रलय कह्या जावै है॥ लक्षणका पदकृत्य—तहां यत्किंचित्‌भावकार्यका ध्वंस तौं इदानींकाल विषे भी विद्यमान है। यातैं इदानीं कालविषे भी सो महाप्रलयव्यवहार होणा चाहिये। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'सर्व' यह पद कथन कऱ्या है। तहां इदानींकालविषे ता यत्किंचित्‌भावकार्यके ध्वंसके विद्यमान हूए भी सर्वभावकार्योंका ध्वंस है नहीं, यातैं ता सर्वपदके कहणे करिकै इदानीं कालविषे ता महाप्रलयके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा 'सर्वकार्यध्वंसः महाप्रलयः' इतनामात्र हीं जो ता महाप्रलयका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'भाव' यह पद नहीं कथन करते तौं सो लक्षण असंभवदोषवाला होता। काहेतैं? सिद्धांतविषे ध्वंसका ध्वंस अंगीकार कऱ्या नहीं, किंतु ता ध्वंसकूं अनंत मान्या है। ऐसा ध्वंसरूप कार्य ता प्रलयकालविषे भी विद्यमान है। ता ध्वंसरूपकार्यके विद्य-

मानहूए तहां सर्वकार्यका ध्वंस संभवता नहीं। ता असंभव दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षण विषे ता कार्यका 'भाव' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ता ध्वंसरूप कार्यविषे सा भावरूपता है नहीं, किंतु अभावरूपता हीं है। ऐसे अभावरूप ध्वंसरूप कार्यके विद्यमानहूए भी ता महाप्रलयविषे कोई भावकार्य रहता नहीं। यातैं ता लक्षण विषे असंभवदोषकी प्राप्ति होवै नहीं, किंवा 'सर्वभावध्वंसः महाप्रलयः' इतनामात्र हीं जो ता महाप्रलयका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'कार्य' यह पद नहीं कथन करते तौं सो लक्षण पुनः असंभवदोषवाला होता। काहेतैं ? ता महाप्रलयविषे भी परमाणु आकाशादिक नित्यभाव पदार्थ विद्यमान हीं होवै हैं। तिन नित्य पदार्थोंका ध्वंस संभवता नहीं। ता असंभवदोषके निवृत्ति करणे वासतै ता लक्षणविषे 'कार्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन नित्य पदार्थोंविषे कार्यरूपता है नहीं। यातैं तिन नित्यपदार्थोंके विद्यमानहूए भी ता महाप्रलयकालविषे कोई भावकार्य रहता नहीं। यातैं ता लक्षणविषे असंभवदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति। सृष्टिरचनाविषे वेदप्रमाण-

**शंका**—इस पूर्व उक्त जगत्की सृष्टिविषे तथा प्रलयविषे कौन प्रमाण है ? **समाधान**—साक्षात् वेदभगवान्की श्रुति हीं ता सृष्टिप्रलयविषे प्रमाण रूप है। तहां श्रुति—**धाता यथापूर्वमकल्पयत्।** अर्थ यह—सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्वसृष्टिके सदृश हीं इस सृष्टिकूं उत्पन्न करता भया। इस श्रुतिनें पूर्वपूर्व सृष्टिकी सादृश्यता उत्तरउत्तरसृष्टिविषे कथन करी है। सो मध्यविषे प्रलयतैं विना संभवै नहीं। यातैं यह उक्त श्रुति हीं ता सृष्टिप्रलयविषे प्रमाणरूप है इति ॥

प्रवाहरूपसे नित्यमाननेवाला मीमांसक—और मीमांसक तौं यह कहे हैं। जैसे बीजतैं अंकुर उत्पन्न होवै है ता अंकुरतैं पुनः बीज उत्पन्न होवै है ता बीजतैं पुनः अंकुर उत्पन्न होवै है इस प्रकारतैं सो बीज अंकुरका प्रवाह अनादि होवै है। यह बीज सर्वतैं प्रथम है तथा यह अंकुर सर्वतैं प्रथम है या प्रकारका निर्णय तहां कऱ्या जाता नहीं। काहेतैं ? जिस बीजकूं सर्वतैं प्रथम मानिये सो बीज भी किसी अंकुर करिकै हीं जन्य मानणा होवैगा तथा जिस अंकुरकूं सर्वतैं प्रथम मानिये सो अंकुभी किसी बीज करिकै हीं जन्य मानणा होवैगा। यातैं किसी भी बीजविषे तथा किसी भी अंकुरविषे सर्वतैं प्रथमरूपता नहीं है। इस प्रकारके बीजांकुरन्याय करिकै यह संसार भी प्रवाहरूपतैं अनादि है तथा अनंत है। यातैं इस जगत्के सृष्टिप्रलयविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। जो कदाचित् इस जगत्का प्रलय अंगीकार करीये तौं—**अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति।** इत्यादिक श्रुतियोंविषे चातुर्मास्यादिक यज्ञ करणेहारे पुरुषोंकूं जो नाशतैं रहित स्वर्गादिक सुखकी प्राप्ति कथन करी है सो सर्व असंगत होवैगा। यातैं इस जगत्का प्रलय होता नहीं इति ॥

प्रलयपर प्राचीन नैयायिक—तहां पूर्व प्रलयकालविषे परमेश्वरकी संजिहीर्षाके वशतैं द्व्यणुकादिक कार्यद्रव्योंका नाश कथन कऱ्या। ताके विषे प्राचीननैयायिकोंका तौं यह मत है

किसी कार्यद्रव्यका तौं असमवायिकारणके नाशतैं नाश होवै है और किसी कार्यद्रव्यका समवायिकारणके नाशतैं नाश होवै है। जो कदाचित् सर्वत्र समवायिकारणके नाशतैं हीं कार्य द्रव्यका नाश अंगीकार करीये तौं द्व्यणुकरूप कार्यद्रव्यका नाश नहीं होवैंगा । काहेतैं ? ता द्व्यणुकरूप कार्यद्रव्यके समवायिकारणरूप जे दो परमाणु हैं ते परमाणु नित्य हैं । तिन नित्य परमाणुवोंका कदाचित् भी नाश होवै नहीं। यातैं तिन द्व्यणुकरूप कार्यद्रव्योंका तौं ता संयोग-रूप असमवायिकारणके नाशतैं हीं नाश होवै है । तहां तिन दो परमाणुवोंका संयोग हीं ता द्व्यणुकका असमवायिकारण है । सो संयोग पूर्वउक्त रीतिसैं तिन परमाणुवोंकी क्रियाजन्य विभागतैं नाश होइ जावै हैं और त्र्यणुकरूप कार्यतैं आदिलैके महान्कार्यपर्यंत जितनेकी कार्य-द्रव्य हैं तिनोंका तौं ता द्व्यणुकादिरूप समवायिकारणके नाशतैं हीं नाश होवै है। जिस कारणतैं ते द्व्यणुकादिक समवायिकारण अनित्य हीं है इस प्रकार ता कार्यद्रव्यरूप जगत्की स्थिति-कालविषे भी किसी कार्यद्रव्यका तौं असमवायिकारणके नाशतैं नाश होवै है और किसी कार्यद्रव्यका समवायिकारणके नाशतैं नाश होवै है । तहां जिस स्थलविषे तंतुरूप समवायि-कारणके विद्यमान हूए भी तिन तंतुवोंके संयोगमात्रका नाश होवै है तिस स्थलविषे तौं तंतुसंयोग-रूप असमवायिकारणके नाशतैं हीं ता पटरूपकार्यद्रव्यका नाश होवै है और जहां अग्निआ-दिकोंकरिकै तिस तंतुरूप समवायिकारणका हीं नाश होवै है तहां तिस तंतुरूप समवायिकारणके नाशतैं हीं ता पटरूप कार्यद्रव्यका नाश होवै है और जे वादी सर्वत्र असमवायिकारणके नाशकूं हीं ता कार्यद्रव्यके नाशका हेतु माने हैं तिन वादीयोंके मतविषे ता तंतु आदिक समवायिकारणके नाशस्थलविषे ते पटादिककार्यद्रव्य दो क्षणपर्यंत निराश्रय रहैंगे। काहेतैं ? एकक्षणविषे तौं तिन तंतुवोंका नाश होवैंगा और द्वितीयक्षणविषे ता तंतुसंयोगका नाश होवैंगा और तृतीयक्षणविषे ता पटरूप कार्यद्रव्यका नाश होवैंगा । यह तिनोंके मतविषे महान् गौरवदोष होवै है सो गौरवदोष हम प्राचीनोंके मतविषे होवै नहीं। काहेतैं ? हमारे मतविषे तौं ता तंतुरूप समवायि-कारणके नाश क्षणतैं उत्तरक्षणविषे हीं ता पटरूप कार्य द्रव्यका तथा ता तंतुसंयोगरूप असमवायिकारणका नाश होवै है इति ॥

इसीपर नवीन नैयायिक—और नवीननैयायिकोंका तौं यह मत है । किसी द्व्यणुकरूप कार्य-द्रव्यका तौं असमवायिकारणके नाशतैं नाश मानणा और किसी त्र्यणुकादिरूप कार्यद्रव्यका समवायिकारणके नाशतैं नाश मानणा । याकेविषे महान् गौरव प्राप्त होवै है अर्थात् ता कार्यद्रव्यके नाशकी कारणताके असमवायिकारणनाशत्व समवायिकारणनाशत्व यह दो धर्म अवच्छेदक होवैं हैं । यातैं सो प्राचीनोंका मत समीचीन नहीं और सर्वत्र असमवायिकारणके नाशकूं हीं जो कार्यद्रव्यके नाशका कारण मानिये तौं ता कार्यद्रव्यके नाशकी कारणताका असमवायिकारणनाशत्वरूप एक हीं धर्म अवच्छेदक होवै है। यातैं लाघवतैं सर्वत्र असमवायि-

कारणके नाशतैं हीं ता कार्यद्रव्यका नाश मान्या चाहिये और जिस स्थलविषे अवयवरूप समवायिकारणका नाश होवै है तिस स्थलविषे भी ता अवयवसंयोगरूप असमवायिकारणका नाश तौं अवश्य होवै है, जिस कारणतैं आश्रयभूत द्रव्यके नाशतैं अनन्तर ता द्रव्यके आश्रितरूपादिक गुणोंका भी अवश्य नाश होवै है। यातैं ता प्रलयकालविषे जैसे ता द्वयणुक-रूप कार्यद्रव्यका ता परमाणुसंयोगरूप असमवायिकारणके नाशतैं नाश होवै है तैसे तिन त्र्यणुकादिक कार्यद्रव्योंका भी तिन द्वयणुकादिक अवयवोंके संयोगरूप असमवायिकारणके नाशतैं हीं नाश होवै है। इस प्रकार ता कार्यद्रव्यरूप जगत्‌की स्थितिकालविषे भी सर्वत्र अवयवसंयोगरूप असमवायिकारणके नाशतैं हीं घटपटादिक कार्यद्रव्योंका नाश होवै है इति।

ईश्वरकी चिकीर्षा और जिहीर्षाका विचार–**शंका**: पूर्व परमेश्वरकी चिकीर्षातैं कार्यद्रव्योंकी उत्पत्ति कथन करी थी तथा परमेश्वरकी संजिहीर्षातैं तिन कार्यद्रव्योंका विनाश कथन कऱ्या था। सो सम्भवता नहीं। काहेतैं ? न्यायमतविषे ता परमेश्वरकी इच्छाकूं नित्य मान्या है तथा एक मान्या है तथा सर्व पदार्थ विषयक मान्या है। यातैं सृष्टिके आदिकालविषे तथा प्रलयके आरंभकालविषे ता इच्छाकी उत्पत्ति सम्भवती नहीं और ता एक इच्छाविषे चिकीर्षा, संजिहीर्षा या प्रकारका भेद भी सम्भवता नहीं तथा ता सर्वजगत् विषयक इच्छाविषे केवल उत्पत्तिमात्र विषयकत्व तथा संहारमात्रविषयकत्व भी सम्भवता नहीं। **समाधान**–सा परमेश्वरकी इच्छा यद्यपि नित्य है तथा एक है तथा सर्ववस्तुविषयक है तथापि विशेषणकी उत्पत्ति करिकै ता इच्छाविषे उत्पत्ति व्यवहार होवै है तथा ता विशेषणके भेद करिकै ता इच्छाविषे चिकीर्षा संजिहीर्षा या प्रकारका भेद व्यवहार होवै है। तहां ता कार्यद्रव्यके उत्पत्तिकी सामग्री रूप विशेषण करिकै विशिष्ट हूई सा परमेश्वरकी इच्छा चिकीर्षा कही जावै है। कोई उत्पत्तिमात्रके विषयकरणेतैं सा इच्छा चिकीर्षा कही जावै नहीं और ता कार्यद्रव्यके संहारकी सामग्रीरूप विशेषण करिकै विशिष्ट हूई सा परमेश्वरकी इच्छा संजिहीर्षा कही जावै है। कोई संहारमात्रके विषयकरणेतैं सा इच्छा संजिहीर्षा कही जावै नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया–जैसे धनरूप विशेषणके उत्पन्नहूए 'देवदत्तो धनी जातः' अर्थात् देवदत्त-नामा पुरुष धनी उत्पन्न हूआ है। इस प्रकारतैं ता देवदत्तनामा पुरुषविषे उत्पत्तिव्यवहार होवै है वास्तवतैं ता देवदत्तनामा पुरुषकी उत्पत्ति नहीं हूई है, किंतु ता धनरूप विशेषणकी हीं उत्पत्ति हूई है तैसे ता सामग्रीरूप विशेषणकी उत्पत्ति करिकै हीं ता परमेश्वरकी इच्छाविषे सृष्टिकालविषे परमेश्वरकी चिकीर्षा उत्पन्न होवै है तथा प्रलयके प्रारंभकाल विषे परमेश्वरकी संजिहीर्षा उत्पन्न होवै है। इस प्रकारका उत्पत्तिव्यवहार होवै है वास्तवतैं ता परमेश्वरके इच्छाकी उत्पत्ति होती नहीं, किंतु ता सामग्रीरूप विशेषणकी हीं उत्पत्ति होवै है और ता उत्पत्तिकी सामग्रीरूप विशेषणके तथा ता संहारकी सामग्रीरूप विशेषणके भेद करिकै हीं

ता परमेश्वरकी इच्छाविषे चिकीर्षा संजिहीर्षा या प्रकारका भेद व्यवहार होवै है । वास्तवतैं ता इच्छाका भेद नहीं है । यातैं ते पूर्वउक्त दोष ईहां प्राप्त होवै नहीं इति ॥

अवयवीकूं नहीं मानणेहारे बौद्धोंका शंका समाधानके रूपमें मतप्रतिपादन—तहां द्व्यणुकादिक कार्यद्रव्य रूप अवयवीकूं नहीं मानणेहारे जिस बौद्धवादीके मतके खंडन करणे वास्तै पूर्व ता द्व्यणुकादिक कार्यद्रव्यरूप अवयवीकी उत्पत्ति कथन करी थी । अब ता बौद्धका मत निरूपण करे हैं । पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि द्रव्योंके द्व्यणुकोंतैं आदिलेके महान् पृथिवी आदिक पर्यंत जे कार्यद्रव्यरूप अवयवी नैयायिकोंनैं अंगीकार करे हैं तिन अवयवीयों विषे कोई भी प्रमाण नहीं है । **शंका**—हे बौद्ध ! ‘अयं घटः अयं पटः’ या प्रकारकी प्रत्यक्ष-प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है, सा प्रत्यक्षप्रतीति हीं तिन घटपटादिक अवयवीयोंविषे प्रमाण है । यातैं ता अवयवीविषे प्रमाणका अभाव कहणा असंगत है । **समाधान**—हे नैयायिक । ‘अयं घटः अयं पटः’ इत्यादिक प्रतीति जो कदाचित् घटपटादिक अवयवीयोंतैं विना नहीं सिद्ध होती तौं ता प्रतीतिके बलतैं तिन घटपटादिक अवयवीयोंकी कल्पना करणी होती, परंतु ते प्रतीतियां तौं तिन घटपटादिकोंकूं अवयवीरूप मानणे करिकै भी सिद्ध होइ सके हैं अर्थात् परस्परसंयोगविशिष्ट जो परमाणुवोंका समूहरूप पुंज है ता परमाणुपुंजकूं हीं ते प्रतीतियां विषय करे हैं । ता परमाणुपुंजतैं भिन्न किसी घटपटादिरूप अवयवीकूं ते प्रतीतियां विषय करतीयां नहीं । यातैं ‘अयं घटः अयं पटः’ इत्यादिक प्रतीतियोंतैं भी ता अवयवीकी सिद्धि होवै नहीं । **शंका**—हे बौद्ध ! ‘अयंघटः’ यह प्रतीति जो कदाचित् पृथिवीपरमाणु-वोंके पुंजकूं विषय करती होवै तौं जैसे तिन पार्थिवपरमाणुवोंका पुंजरूप घट है तैसे तिन पार्थिवपरमाणुवोंका पुंजरूप मृत्तिकापिंड भी है । यातैं ता मृत्तिकापिंडविषे भी ‘अयं घटः’ यह प्रतीति होणी चाहिये और होती नहीं । **समाधान**—हे नैयायिक ! ता मृत्तिकापिंडविषे तथा घटविषे यद्यपि सा परमाणुपुंजरूपता समान है तथापि ता घटरूप परमाणुपुंजका जिस प्रकारका परस्परसंयोगसंबंध है तिस प्रकारका परस्पर संयोगसंबंध ता मृत्तिकापिंड-रूप परमाणुपुंजका है नहीं, किन्तु तिसतैं विलक्षण हीं संयोगसंबंध है और ता मृत्तिका-पिंडरूप परमाणुपुंजका जिस प्रकारका परस्पर संयोगसंबंध है तिस प्रकारका संयोगसंबंध ता घटरूपपरमाणुपुंजका है नहीं, किंतु तिसतैं विलक्षण हीं है । इस प्रकार पटादिरूप परमाणु-पुंजका भी परस्पर विलक्षण विलक्षण हीं संयोगसंबंध है । यातैं ता विलक्षण संयोगसंबंध-विशिष्ट परमाणुपुंजविषे तौं ‘अयं घटः’ या प्रकारकी हीं प्रतीति होवै है, अयं मृत्तिकापिण्डः’ या प्रकारकी प्रतीति होती नहीं और ता विलक्षणसंयोगसंबंधविशिष्ट परमाणुपुंजविषे तौं ‘अयं मृत्तिकापिण्डः’ या प्रकारकी हीं प्रतीति होवै है, ‘अयं घटः’ या प्रकारकी प्रतीति होवै नहीं । इस प्रकार घटपटादिक सर्वद्रव्योंविषे परमाणुपुंजरूपताके समानहूए भी तिस तिस

संयोगसंबंधकी विलक्षणतातैं 'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक भिन्नभिन्न प्रतीतिकी विषयता संभवै है। **शंका—हे बौद्ध !** जिन परमाणुवोंके पुंजकूं तुमनैं घटादिरूप मान्या है ते परमाणु महत्त्व-परिमाणतैं रहित होणेतैं अतिइंद्रिय हैं अर्थात् इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय नहीं हैं। यातैं तिन अति इंद्रिय परमाणुवोंके पुंजरूप घटादिकोंका भी प्रत्यक्ष नहीं होणा चाहिये और तिन घटादिकोंका तौं चक्षुइंद्रियकरिकै तथा त्वक्इंद्रिय करिकै सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष होवै है। **समाधान—हे नैयायिक !** यद्यपि एकपरमाणुका प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि तिन बहुतपरमाणुवोंके समूहका प्रत्यक्ष संभवै है। जैसे चक्षुइंद्रियतैं दूरदेशविषे स्थित जो एककेश है ता एककेशका यद्यपि ता चक्षु-इंद्रियकरिकै प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि तिन बहुत केशोंके समूहका ता चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तैसे एक परमाणुका यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि तिन बहुत परमाणु-वोंके समूहरूप घटपटादिकोंका प्रत्यक्ष सम्भवै है। **शंका—हे बौद्ध !** तिन परमाणुवोंके पुञ्जकूं हीं जो घटपटादिरूप मानोंगे तौं 'एको घटः स्थूलः'। अर्थ यह—यह घट एक है तथा स्थूल है या प्रकारकी प्रतीति तुमारे मतविषे अनुपपन्न होवैगी। काहेतैं ? ते परमाणु अनेक हैं। यातैं तिन अनेक परमाणुवोंविषे एकत्वकूं विषयकरणेहारो प्रतीति सम्भवती नहीं और ते परमाणु अणुत्वपरिमाणवाले हैं। यातैं तिन अणुत्वपरिमाणवाले परमाणुवोंविषे स्थूलताकूं विषयकरणेहारि प्रतीति सम्भवै नहीं अर्थात् ता प्रतीतिविषे प्रमारूपता संभवै नहीं और 'एको घटः स्थूलः' या प्रकारकी प्रतीति तौं सर्वलोकोंकूं होवै है। **समाधान—हे नैयायिक !** जैसे 'एको महान् धान्यराशिः' अर्थ यह—धान्योंका समूहरूपराशि एक है तथा महान् है या प्रकारकी प्रतीति होवै है। तैसे ता परमाणुपुञ्जरूप घटविषे 'एको घटः स्थूलः' यह प्रतीति भी संभवै है। तात्पर्य यह—ते धान्यव्यक्तियां यद्यपि अनेक हैं तथा सूक्ष्म हैं तथापि तिन सर्वधान्यव्यक्तियोंका जो समूह है अर्थात् तिन सर्वधान्यव्यक्तियों करिकै विशिष्ट जो तिन सर्वधान्यवृत्ति संख्याविशेषरूप समूह हैं सो समूह एक हीं है। यातैं ता एक समूहकूं लैके ता धान्यराशिविषे एकत्वकी प्रतीति होवै है और तिन सर्वधान्यव्यक्तियोंका जो परस्पर संयोगसंबंध है अर्थात् एकधान्यसंयुक्त द्वितीयधान्यका जो तृतीयधान्यके साथि संयोगसंबंध है तथा ता द्वितीयधान्यसंयुक्त तृतीयधान्यका जो चतुर्थधान्यके साथि संयोगसंबंध है तथा ता तृतीयधान्यसंयुक्त चतुर्थ धान्यका जो पंचमधान्यके साथि संयोग संबंध है। या प्रकारका जो तिन सर्वधान्यव्यक्तियोंका परस्परसंयोगसंबंध विशेष है सो संयोगविशेष हीं ता धान्यराशिविषे महत्त्व है। ता महत्त्वकूं लैके ता धान्यराशिविषे महान्-पणेकी प्रतीति होवै है। तैसे ता घटपटादिरूप परमाणुपुञ्जविषे भी तिन सर्वपरमाणवों करिकै विशिष्ट तिन सर्व परमाणुवृत्तिसंख्याविशेषरूप समूहके एकत्वकूं लैके 'एको घटः' या प्रकारकी एकत्वविषयक प्रतीति होवै है और तिन सर्व परमाणुवोंके परस्पर संयोगसंबंधविशेषरूप

महत्त्वकूं लेके 'स्थूलो घटः' या प्रकारकी स्थूलताविषयक प्रतीति होवै है । इस प्रकार घटापटादिकोंकूं परमाणुवोंका पुंजरूप माननेविषे भी 'एको घटः स्थूलः' या प्रकारकी प्रतीति संभवै है । **शंका**—हे बौद्ध ! जो तूं घटपटादिकोंकूं परमाणुवोंका पुञ्जरूप मानैंगा तौं कपालोंतैं घट उत्पन्न होवै है और तंतुवोंतैं पट उत्पन्न होवै है या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । सा प्रतीति तुमारे मतविषे अनुपपन्न होवैंगी । **समाधान**—हे नैयायिक ! यह जो तुमारी शंका है सो हमारे सिद्धांतके अज्ञानतैं है । काहेतैं ? जैसे घटपटादिकोंकूं हम परमाणुवोंका पुञ्जरूप मानते हैं तैसे तिन कपालोंकूं तथा तंतुवोंकूं भी हम परमाणुवोंका पुञ्जरूप हीं मानते हैं । यातैं ता कपालरूप परमाणुपुञ्जतैं तौं ता घटरूप परमाणुपुञ्जकी उत्पत्ति होवै है और ता तंतुरूप परमाणुपुंजतैं ता पटरूप परमाणुपुञ्जकी उत्पत्ति होवै है । इस प्रकारका हमारा सिद्धांत हीं है, परंतु हमारे मतविषे ते कपालतंतु आदिक तथा घटपटादिक अवयवीरूप नहीं हैं । यातैं कपालोंतैं घट उत्पन्न होवै है, तंतुवोंतैं पट उत्पन्न होवै है या प्रकारकी प्रतीति हमारे मतविषे अनुपपन्न नहीं है किंतु सा प्रतीति संभवै है । यातैं यह घटपटादिक सर्वपदार्थ परमाणुवोंका पुञ्जरूप हीं हैं । तिन परमाणुवोंतैं भिन्न कोई अवयवी नहीं है यह सिद्ध भया इति ॥

बौद्धमतका खण्डन—सो यह बौद्धका मत अत्यन्त असंगत है । काहेतैं ? ते परमाणु इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय होणेतैं अतिइंद्रिय हीं है । ऐसे अतिइंद्रिय परमाणुवोंका समूहरूप जे घटपटादिक द्रव्य हैं तिन घटपटादिकोंका भी किसी इंद्रिय करिकै प्रत्यक्षज्ञान होवैंगा नहीं । तात्पर्य यह—स्वभावतैं प्रत्यक्षके अयोग्य जे परमाणु हैं तिन परमाणुवोंविषे परस्पर संयोग-संबंध मात्र करिकै प्रत्यक्षकी योग्यता संभवै नहीं । जो कदाचित् प्रत्यक्षके अयोग्य पदार्थोंविषे भी परस्परसंयोगमात्र करिकै प्रत्यक्षकी योग्यता होती होवै तौं स्वभावतैं प्रत्यक्षके अयोग्य जे पिशाचादिक हैं तिन पिशाचादिकोंका भी परस्परसंयोगमात्र करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये और तिन पिशाचादिकोंका कदाचित् भी प्रत्यक्ष होता नहीं । यातैं स्वभावतैं प्रत्यक्षके अयोग्य तिन परमाणुवोंका परस्परसंयोगमात्र करिकै प्रत्यक्ष संभवता नहीं किंवा ता बौद्धनैं जो पूर्व दूरदेशस्थ केशका दृष्टांत कह्या था सो दृष्टांत भी ता दार्ष्टांतिकरूप परमाणुवोंतैं विषम है । काहेतैं ? जैसे परमाणु स्वभावतैं अतिइंद्रिय हैं तैसे सो दूरदेशस्थ एककेश स्वभावतैं अतिइंद्रिय नहीं है किंतु समीपदेशविषे स्थितहूए ता एक केशका भी चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है और दूरदेशविषे स्थित ता एक केशका जो नहीं प्रत्यक्ष होवै है सो भी दूरत्वदोषरूप प्रतिबंधके वशतैं नहीं होवै है और ते परमाणु तौं चक्षुके समीपदेशविषे स्थित हूए भी प्रत्यक्ष होते नहीं । यातैं ते परमाणु स्वभावतैं हीं प्रत्यक्षके अयोग्य हैं ऐसे अतिइंद्रिय परमाणुवोंका समूहरूप ते घटपटादिक पदार्थ कदाचित् भी प्रत्यक्ष नहीं होवैंगे । **शंका**—हे नैयायिक ! तिन परमणुवोंकूं अतिइंद्रिय होणेतैं तिन परमाणुवोंका पुंज भी अति-

इंद्रिय हीं होवै है, परंतु ता अदृश्य परमाणुपुंजतैं एक दृश्यपरमाणुपुंज उत्पन्न होवै है, तिस घटपटादिरूप दृश्यपरमाणुपुंजकूं हीं 'अयंघटः अयंपटः'या प्रकारका प्रत्यक्षज्ञान विषय करे है। यद्यपि तुम नैयायिकोंके मतविषे ते परमाणु नित्य हैं । तथापि क्षणभंगवादी हम बौद्धोंके मतविषे तिन परमाणुवोंकी भी उत्पत्ति तथा विनाश अंगीकार कऱ्या है । जिस कारणतैं **यत् सत् तत् क्षणिकं यथा विद्युत्** । अर्थ यह—जो जो भावपदार्थ होवै है सो सो क्षणिक हीं होवै है। जैसे भावपदार्थ होणेतैं विद्युत् क्षणिक है । या प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै सर्व भाव पदार्थोंकूं हम क्षणिक हीं मानते हैं। यातैं ता अदृश्यपरमाणुपुंजतैं ता दृश्य परमाणुपुंजकी उत्पत्ति संभवै है । **समाधान**—हे बौद्ध ! अदृश्यद्रव्यकूं दृश्य द्रव्यकी उपादानकारणता संभवती नहीं, जो कदाचित् अदृश्यद्रव्यतैं भी दृश्यद्रव्यकी उत्पत्ति मानिये तौं अदृश्य चक्षुइंद्रियतैं उत्पन्न हूई ऊष्मादिसंततिकूं भी कदाचित् दृश्यता होणी चाहिये । और सा ऊष्मादिसंतति किसीकूं भी दिखाई देती नहीं । यातैं ता अदृश्यपरमाणुपुंजतैं ता दृश्यपरमाणुपुंजकी उत्पत्ति कहणी अत्यंत विरुद्ध है । **शंका**—हे नैयायिक ! जो कदाचित् अदृश्य द्रव्यतैं दृश्यद्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती होवै तौं अग्नि करिकै अत्यंततप्तहूए जे तैलादिक हैं तिन तैलादिकोंविषे स्थित अदृश्य अग्नितैं दृश्य अग्निकी उत्पत्ति नहीं होणी चाहिये । और ता अदृश्यअग्नितैं ता दृश्य अग्निकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है । यातैं जैसे ता अदृश्य अग्नितैं ता दृश्यअग्निकी उत्पत्ति होवै है तैसे ता अदृश्यपरमाणुपुंजतैं ता दृश्यपरमाणुपुंजकी उत्पत्ति भी संभवै है। **समाधान**—हे बौद्ध ! तहां भी अदृश्य अग्नितैं ता दृश्यअग्निकी उत्पत्ति होती नहीं, किंतु तिन तप्ततैलादीकोंविषे स्थित जे दृश्यअग्निके अवयव हैं तिन अवयवोंतैं हीं ता स्थूल अग्निकी उत्पत्ति होवै है॥ **शंका**—हे नैयायिक ! जो कदाचित् अदृश्यद्रव्यतैं दृश्यद्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती होवै तौं तुमारे मतविषे भी अदृश्य द्व्यणुकतैं दृश्य त्र्यणुककी उत्पत्ति नहीं होणी चाहिये और अदृश्य द्व्यणुकतै दृश्य त्र्यणुककी उत्पत्ति तुम नैयायिकोंनैं अंगीकार करी है। तैसे हमारे मतविषेभी अदृश्यपरमाणुपुंजतैं दृश्य परमाणुपुंजकी उत्पत्ति संभवै है। **समाधान**—हे बौद्ध ! हम नैयायिक किसी भी वस्तुविषे स्वभावतैं दृश्यपणा वा अदृश्यपणा कहते नहीं किंतु प्रत्यक्षज्ञानके जितनैंकी आलोकसंयोग महत्त्व उद्भूतरूप इत्यादिककारण हैं ता कारणसमुदायवाले पदार्थविषे तौं हम दृश्यपणा कहे हैं और ता कारणसमुदायके अभाववाले पदार्थविषे हम अदृश्यपणा कहे हैं। तहां त्र्यणुकविषे तौं सो कारणसमुदाय विद्यमान है यातैं ता त्र्यणुककूं तौं हम दृश्य माने हैं और द्व्यणुकविषे महत्त्वपरिमाण है नहीं । यातैं ता महत्त्व घटित कारणसमुदायके अभावतैं ता द्व्यणुककूं हम अदृश्य माने हैं। या प्रकारकी दृश्य अदृश्य पणेकी व्यवस्था जैसे हमारे मतविषे संभवै हैं तैसे तुमारे मतविषे सा व्यवस्था संभवती नहीं। काहेतैं ? तुमारे मतविषे परमाणुवोंतैं भिन्न कोई अवयवी अंगीकार कऱ्या नहीं जिसविषे सो

महत्त्वपरिमाण होवै और परमाणुवोंविषे तौं सो महत्त्व है नहीं। यातैं तुमारे मतविषे जैसे सो प्रथमपरमाणुवोंका पुंज ता महत्त्वके अभावतैं अदृश्य है तैसे ता अदृश्य परमाणुपुंजतैं उत्पन्न हूआ सो द्वितीयपरमाणुपुंज भी ता महत्त्वके अभावतैं अदृश्य हीं होवैगा। यातैं तुम बौद्धोंके मतविषे घटपटादिरूप परमाणुपुंजका 'अयं पटः अयं घटः' या प्रकारका प्रत्यक्ष नहीं होणा चाहिये और तिन घटपटादिकोंका प्रत्यक्षज्ञान सर्वलोकोंकूं होवै है। यातैं तिन परमाणुवोंतैं भिन्न हीं ते घटपटादिक अवयवी अंगीकार कर्‍ये चाहिये, किंवा जो बौद्ध घटपटादिक द्रव्योंकूं परमाणुवोंका पुंजरूप हीं माने है तिस बौद्धके मतविषे 'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक ज्ञानकी विषयता अनेक परमाणुवोंविषे कल्पना करणी होवै है। याके विषे महान् गौरवदोष प्राप्त होवै है और तिन परमाणुरूप अवयवोंतैं भिन्न जो घटपटादिरूप अवयवीकूं अंगीकार करीये तौं 'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक ज्ञानोंकी विषयता एकघटपटादिक व्यक्तिविषे कल्पना करणी होवै है याके विषे अत्यंत लाघव है। या कारणतैं भी तिन परमाणुवोंतैं भिन्न हीं ते घटपटादिक अवयवी अंगीकार कर्‍ये चाहिये। यातैं सो परमाणुपुंजवादी बौद्धका मत अत्यंतविरुद्ध है इति।

### आकाश निरूपण।

अब पंचमें आकाशरूप द्रव्यका निरूपण करे हैं। लक्षण—तहां **शब्दसमवायिकारणम् आकाशम्**। अर्थ यह—जो द्रव्य शब्दगुणका समवायिकारण होवै है सो द्रव्य आकाश कह्या जावै है। तहां सो शब्दगुण समवायसंबंध करिकै एक आकाश विषे हीं उत्पन्न होवै है पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे उत्पन्न होवै नहीं। यातैं ता आकाशविषे शब्दगुणकी समवायिकारणता संभवै है इति। आकाशके गुण—ता आकाशविषे संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, शब्द ६ यह षट्गुण रहे हैं। आकाश एक है उपाधि भेदसे भेद भासे है—और जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु यह पूर्वउक्त च्यारिद्रव्य नित्य अनित्य भेद करिकै तथा शरीर इंद्रिय विषय भेद करिकै नाना होवै हैं तैसे यह आकाश नानारूप नहीं है, किंतु सो आकाश एक हीं होवै है। ता आकाशके नानापणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। यद्यपि घटाकाश मठाकाश या प्रकारके लोकव्यवहारतैं ता आकाशविषे भी नानापणा प्रतीत होवै है तथापि सो लोकव्यवहार घटमठादिक उपाधियोंके भेद करिके होवै है। यातैं ता उपाधिकृत भेद व्यवहारतैं ता आकाशके भेदकी सिद्धि होवै नहीं। यातैं सो आकाश वास्तवतैं एक हीं है इति॥

### विभुत्व तथा नित्यत्वकी सिद्धि।

किंवा ता आकाशका गुण जो शब्द है सो शब्द सर्वत्र प्रतीत होवै हैं। और स्वाश्रयभूत द्रव्यतैं विना कोई भी गुण स्वतंत्र रहता नहीं, किंतु द्रव्यके आश्रितहूए हीं सर्वगुण रहे हैं। यातैं जहां जहां सो शब्दगुण प्रतीत होवै है तहां तहां सर्वत्र सो आकाशरूप द्रव्य

अंगीकार कऱ्या चाहिये। सा सर्वत्र आकाशकी स्थिति ता आकाशके विभुपणेतैं विना संभवती नहीं। या कारणतैं सो आकाशद्रव्य विभु मान्या चाहिये। और जो जो द्रव्य विभु होवै है सो सो द्रव्य नित्य हीं होवै है। जैसे आत्मा विभु होणेतैं नित्य है तैसे विभु होणेतैं सो आकाश भी नित्य हीं होवैगा इति। किंवा केवल इस उक्त युक्तिः करिकै हीं ता आकाशविषे विभुपणा तथा नित्यपणा सिद्ध नहीं है, किंतु साक्षात् श्रुतिप्रमाण करिकै भी सिद्ध है। इसमें श्रुतिप्रमाण—तहां श्रुति—**आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः**। अर्थ यह—यह आत्मा आकाशकी न्यांई सर्वगत है अर्थात् विभु है तथा नित्य है। यह श्रुति आकाशके दृष्टांततैं आत्माकूं विभुरूप तथा नित्यरूप कहती भई है। सो ता दृष्टांतरूप आकाशकूं विभुरूप तथा नित्यरूप माननेतैं विना संभवै नहीं। यातैं यह श्रुति ता आकाशकूं भी विभुरूप तथा नित्यरूप कहे है। यातैं इस श्रुति प्रमाणतैं भी ता आकाशकूं विभुरूप तथा नित्यरूप मान्या चाहिये इति ॥

आकाशके एकत्व विभुत्व और नित्यत्वका निरूपण।

पूर्व आकाशकूं एक कह्या तथा विभु कह्या तथा नित्य कह्या। सो आकाशविषे एकत्व क्या है तथा विभुत्व क्या है तथा नित्यत्व क्या है? ऐसी शंकाके प्राप्तहूए, अब यथाक्रमतैं तिन तीनोंका निरूपण करे हैं। तहां प्रथम मत भेदेस एकत्वका निरूपण—करे हैं। तहां केईक ग्रंथकार तौं ता एकत्वका यह लक्षण करे हैं। एकत्वका प्रथम लक्षण—**एकत्वसंख्यायोगि एकत्वम्**। अर्थ यह-जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै एकत्वसंख्यावाला होवै है सो द्रव्य एक कह्या जावै है। सा एकत्वसंख्या समवायसंबंध करिकै ता आकाशविषे हीं रहे है, पृथिवीआदिकों-विषे रहता नहीं। या कारणतैं सो आकाश एक है अर्थात् ता आकाशविषे सो एकत्वसंख्या योगित्व हीं एकत्व है इति। सो यह एकत्वका लक्षण संभवता नहीं। काहेतैं? जैसे सो आकाश एकत्वसंख्यावाला है तैसे घट भी ता एकत्व संख्यावाला है। यातैं ता आकाशकी न्यांई ते घटादिक भी एक कह्े चाहिये अर्थात् ता एकत्वके लक्षणकी घटादिकोंविषे अतिव्याप्ति होवैगी। यातैं सो एकत्वका लक्षण समीचीन नहीं है। या प्रकारके अतिव्याप्ति दोषकूं ता पूर्वलक्षणविषे देखि करिकै केईक ग्रंथकार ता एकत्वका यह लक्षण करे हैं। द्वितीय लक्षण—**द्वित्वाद्यभाववत् एकम्**। अर्थ यह—जो द्रव्य द्वित्व, त्रित्व आदिक संख्याके अभाववाला होवै है सो द्रव्य एक कह्या जावै है। तहां सो द्वित्वादिक संख्याका अभाव केवल आकाश-विषे हीं है। पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे सो द्वित्वादिक संख्याका अभाव है नहीं, किंतु सा द्वित्वादिक संख्या हीं रहे है। यातैं सो आकाश एक कह्या जावै है अर्थात् ता आकाश-विषे सो द्वित्वादि अभाववत्त्व हीं एकत्व है इति। सो यह एकत्वका लक्षण भी संभवता नहीं। काहेतैं? घट अकाश इन दोनोंविषे रहणेहारा जो द्वित्व है सो द्वित्व ता आकशविषे भी रहे

है । यातैं तिन द्वित्वादिकोंका अभाव ता आकाशविषे संभवता नहीं अर्थात् यह एकत्वका लक्षण भी असंभव दोषवाला होणेतैं समीचीन नहीं है । या प्रकारके असंभव दोषकूं पूर्वलक्षणविषे देखि करिकै केईक ग्रन्थकार ता एकत्वका या प्रकारका लक्षण करे हैं । तृतीय लक्षण— **सजातीयमात्रवृत्तिद्वित्वाभाववत् एकम्** । अर्थ यह—समानजातिवाले द्रव्यमात्रविषे रहणेहारा जो द्वित्व है ता द्वित्वके अभाववाला द्रव्य एक कह्या जावै है । यद्यपि सो घट आकाशवृत्ति द्वित्व ता आकाशविषे रहे है तथापि सो द्वित्व सजातीयद्रव्यमात्रवृत्ति नहीं है, किंतु घटत्व आकाशत्व रूपतैं विजातीय जो घट तथा आकाश है तिन दोनोंविषे हीं सो द्वित्व रहे है और आकाशत्वरूप करिकै ता आकाशके सजातीय कोई पदार्थ है नहीं । यातैं सो आकाश सजातीयमात्रवृत्ति द्वित्वके अभाववाला हीं है । यह हीं ता आकाशविषे एकत्व है इति । सो यह एकत्वका लक्षण भी संभवता नहीं । काहेतैं ? आकाशत्वरूप करिकै ता आकाशके सजातीय दूसरे आकाशका अभाव होणेतैं तिन दोनों आकाशोंविषे रहणेहारा सो द्वित्व हीं अप्रसिद्ध है । ता द्वित्वरूप प्रतियोगीके अप्रसिद्ध होणेतैं ता द्वित्वका अभाव भी अप्रसिद्ध हीं होवैगा । यातैं यह एकत्वका लक्षण भी असंभव दोषवाला होणेतैं समीचीन नहीं । इस प्रकारके असंभव दोषकूं ता पूर्वलक्षणविषे देखि करिकै केईक ग्रंथकार ता एकत्वका या प्रकारका लक्षण करे हैं॥ चतुर्थ लक्षण—**स्वप्रतियोगिकभेदासमानाधिकरणाकाशत्ववत्त्वं एकत्वम्** । अर्थ यह-ईहां स्वशब्द करिकै आकाशका ग्रहण करणा । सो आकाश है प्रतियोगी जिसका ऐसा जो अन्योन्याभावरूप भेद है सो भेद एक आकाशकूं छोडिकै दूसरे पृथिवी आदिक सर्व पदार्थोंविषे रहे है और तिन पृथिवी आदिकोंविषे आकाशत्वधर्म रहता नहीं, किन्तु सो आकाशत्वधर्म केवल ता आकाशविषे हीं रहे है । यातैं सो आकाशत्वधर्म ता आकाशप्रतियोगिक भेदके असमानाधिकरण है, ऐसे आकाशत्व धर्मवाला सो आकाश है यह हीं ता आकाशविषे एकत्व है । या प्रकारका एकत्व पृथिवी, जल, तेज, वायु, आत्मा, मन इत्यादिक पदार्थोंविषे है नहीं । काहेतैं? परमाणुरूप नित्यपृथिवी आदिकोंविषे द्व्यणुकादिरूप अनित्य पृथिवी आदिकोंका भेद रहे है तथा शरीर इंद्रियरूप पृथिवी आदिकोंविषे विषयरूप पृथिवीआदिकोंका भेद रहे है, तहां पृथिवीत्वादिक धर्म विद्यमान हीं हैं । यातैं ते पृथिवीत्वादिक धर्म ता पृथिवी आदिक प्रतियोगिक भेदके असमानाधिकरण नहीं हैं किंतु समानाधिकरण हीं हैं । यातैं नानाव्यक्तिरूप तिन पृथिवी आदिकोंविषे ता एकत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । यह हीं एकत्वका लक्षण निर्दोष है । इस प्रकारका एकत्वका लक्षण आगे कालदिशाविषे भी जानि लेणा । तहां ता लक्षणविषे स्वशब्द करिकै कालका वा दिशाका ग्रहण करणा और आकाशत्वपदके स्थानविषे कालत्व, दिशात्व या प्रकारके पदका प्रवेश करणा इति । अब विभुत्वका निरूपण करे हैं— तहां लक्षण—**सर्वमूर्त्तद्रव्यसंयोगिविभु** । अर्थ यह—जो द्रव्य सर्वमूर्त्तद्रव्योंके साथि संयोग

संबंधवाला होवै है सो द्रव्य विभु कह्या जावै है। तहां पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच द्रव्योंकानाम मूर्त्त द्रव्य है ऐसे सर्व मूर्त्तद्रव्योंके साथि जो आकाशका संयोगसंबंध है यह हीं ता आकाश विषे विभुपणा है। या प्रकारका विभुपणेका लक्षण आगे काल, दिशा, आत्मा इन तीन द्रव्योंविषे भी जानि लेणा इति॥

मूर्त द्रव्यका लक्षण।

अब प्रसंगतैं मूर्त्तद्रव्यका लक्षण कहे हैं। **परिच्छिन्नपरिमाणवत्त्वम् मूतर्त्वम्। अथवा क्रियाऽऽश्रयत्त्वम् मूर्त्तत्त्वम्।** अर्थ यह—परम महत्त्व परिमाणवाले जे आकाश, काल, दिशा, आत्मा यह च्यारि विभु द्रव्य हैं तिन विभुद्रव्योंविषे नहीं वर्त्तणेहारा जो परिमाण है ता परिमाणका नाम परिच्छिन्न परिमाण है, ऐसा परिच्छिन्नपरिमाण तिन पृथिवी आदिक पांच द्रव्योंविषे हीं रहे है। सो परिच्छिन्न परिमाणवत्त्व हीं तिन पांचों द्रव्योंविषे मूर्त्तपणा है इति। अथवा कर्मरूप क्रिया समवायसम्बन्ध करिकै तिन पृथिवी आदिक पांचद्रव्योंविषे हीं रहे है। आकाशादिक च्यारि विभु द्रव्योंविषे सा क्रिया समवायसम्बन्ध करिकै रहती नहीं। यातैं समवायसम्बन्ध करिकै क्रियावत्त्व हीं तिन पृथिवी आदिक पांचद्रव्योंविषे मूर्त्तपणा है इति। ऐसे मूर्त्तद्रव्योंके साथि जो आकाशका संयोगसम्बन्ध है सोई हीं ता आकाशविषे विभुपणा है और नित्यत्वका लक्षण तौं पूर्व पृथिवीनिरूपणविषे कथन करि आये हैं। सो ईहां भी जानि लेणा तथा आगे काल, दिशा, आत्मा, मन इत्यादिक सर्व नित्यपदार्थोंविषे जानि लेणा इति॥

आकाशके नित्यत्वपर शङ्का—पूर्व आकाशकूं नित्य कह्या सो सम्भवता नहीं। काहेतैं? **आत्मन आकाशः सम्भूतः।** इस—श्रुतिविषे ता आकाशकी आत्मातैं उत्पत्ति कथन करी है और जो जो पदार्थ जन्य होवै है सो सो पदार्थ अनित्य हीं होवै है। जैसे घटादिक पदार्थ जन्य होणेतैं अनित्य हीं है तैसे सो आकाश भी जन्य होणेतैं अनित्य हीं होवैगा। इसका समाधान—ता उक्त श्रुतिविषे स्थित जो सम्भूत यह पद है ता सम्भूतपदका उत्पत्ति अर्थ नहीं है। किंतु ता सम्भूतपदका अभिव्यक्ति हीं अर्थ है। जो कदाचित् ता सम्भूत पद करिकै आकाशके उत्पत्तिका ग्रहण करिये तौं ता आकाशकूं नित्य कहणेहारी **आकाशवत्सर्वगतश्चनित्यः।** इस पूर्व उक्त श्रुतिका इस श्रुतिके साथि विरोध होवैगा। यातैं इस श्रुतिविषे स्थित सम्भूतपद करिकै उत्पत्तिका ग्रहण नहीं करणा, किंतु अभिव्यक्तिका हीं ग्रहण करणा। सा अभिव्यक्ति नित्यपदार्थकी भी सम्भवै है। जैसे मीमांसकोंके मतविषे वर्णात्मक नित्यशब्दकी कंठ तालु आदिक स्थानोंतैं अभिव्यक्ति होवै है तैसे हम नैयायिकोंके मतविषे भी ब्रह्माण्डरूप उपाधिके वशतैं ता नित्यआकाशकी अभिव्यक्ति सम्भवै है। यातैं उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं सो आकाश नित्य हीं है इति॥

आकाश काल और दिशाविषे जातिरूपताका खण्डन—तहां जैसे पृथिवीत्व, जलत्व, तेजस्त्व, वायुत्व, आत्मत्व, मनस्त्व यह षट्धर्म अनेक पृथिवीआदिक व्यक्तियोंविषे समवेत होणेतैं जातिरूप हैं तैसे आकाशत्व, कालत्व, दिशात्व यह तीन धर्म जातिरूप नहीं हैं । काहेतैं ? अनेकव्यक्तियोंविषे समवायसंबंध करिकै रहणेहारा जो नित्य धर्म है ताकूं जाति कहे हैं । तहां आकाश, काल, दिशा यह तीनोंद्रव्य पृथिवीआदिक द्रव्योंकी न्यांई अनेकव्यक्तिरूप नहीं हैं, किन्तु एक एक व्यक्तिरूप हैं और एकव्यक्तिविषे वृत्तिपणा भी ता जातिपणेका बाधक हीं होवै है । यातैं एकव्यक्तिमात्रविषे वृत्ति होणेतैं ते आकाशत्वादिक धर्म जातिरूप नहीं हैं । तात्पर्य यह, एक धर्मप्रकारक जा एकाकार प्रतीति है सा एकाकार प्रतीति हीं ता जातिका साधक होवै है । जैसे नीलपीतादिरूप करिकै परस्परविलक्षण अनेकघटव्यक्तियों विषे 'अयं घटः अयं घटः' या प्रकारकी एकघटत्वधर्म प्रकारक एकाकारप्रतीति होवै है । सा एकाकारप्रतीति हीं तिन सर्वघटोंविषे घटत्वजातिका साध कहे हैं । सा एकाकारप्रतीति अनेकव्यक्तियोंविषे हीं होवै है एकव्यक्तिविषे होवै नहीं । यातैं ता एकाकारप्रतीतिरूप साधकके अभावतैं ते आकाशत्वादिक धर्म जातिरूप नहीं हैं, किन्तु उपाधिरूप हैं । तहां जातितैं भिन्न धर्मका नाम उपाधि है, ता उपाधिका विस्तारतैं निरूपण आगे चतुर्थ परिच्छेद विषे सामान्यपदार्थके निरूपणविषे करेंगे । यद्यपि कालत्व दिशात्व इन दोनोंविषे जातिरूपताका खण्डन करणा, आगे कालदिशाके निरूपणविषे हीं उचित था । ईहां आकाशनिरूपण विषे उचित नहीं है तथापि तीनवार लिखनेतैं ग्रंथकी वृद्धिरूप गौरव होवै है । यातैं लाघवतैं ईहां आकाशनिरूपणविषे हीं तिन कालत्व दिशात्व दोनोंविषे जातिरूपताका खण्डन कऱ्या है । संगति और असंगतिका विचार—यद्यपि याके विषे लाघव है तथापि आकाशके निरूपणविषे कालत्व दिशात्व विषे जातिरूपताका खण्डन करणा यह असंगत अर्थका कथनरूप दोष प्राप्त होवै है और बुद्धिमान् पुरुषनैं असंगत अर्थका कथन नहीं करणा, किंतु पूर्व उत्तर अर्थके साथि संबंधरूप संगतिवाले अर्थका हीं कथन करणा । यह सर्वशास्त्रवाले पुरुषोंका सिद्धांत है । समाधान—आकाशके निरूपणविषे जो कालत्व दिशात्वविषे जातिरूपताका खण्डन कऱ्या है । सो असंगत अर्थका कथन नहीं है, किंतु प्रसंग संगतितैं ता अर्थका कथन कऱ्या है तहां **स्मृतस्योपेक्षानर्हत्वं प्रसङ्गसङ्गतिः** । अर्थ यह—एक अर्थके निरूपणविषे किसी हेतुतैं स्मरण हूआ जो अन्य अर्थ है ता अन्य अर्थकी उपेक्षा नहीं करणी, किंतु ता अन्य अर्थका भी तहां निरूपण करणा, याका नाम प्रसङ्ग सङ्गति है । सा प्रसंगसंगति ईहां भी विद्यमान है । काहेतैं ? आकाशत्व, कालत्व, दिशात्व इन तीनोंविषे जो जातिपणेका निषेध कऱ्या है सो अनेक समवेतत्वाभावरूप एकहेतु करिकै हीं कऱ्या है । यातैं ता एकहेतुक अनुमितिकी विषयता करिकै ता आकाशत्वके निरूपणविषे कालत्व, दिशात्व,

इन दोनोंकी भी स्मृति होवै है। यातैं इन दोनोंका भी ईहां निरूपण करणा योग्य है। इस प्रकारकी प्रसङ्गसङ्गति करिके ईहां आकाशके निरूपणाविषे ता कालत्व दिशात्वविषे जातिपणेका खण्डन कऱ्या है। इति॥

आकाशकी सिद्धि—लक्षण प्रमाण इन दोनों करिकै हीं वस्तुकी सिद्धि होवै है। तहां ता आकाशका लक्षण तौं पूर्व कथन कऱ्या, परंतु ता आकाशविषे कोई प्रमाण कथन कऱ्या नहीं। यातैं ता आकाशविषे कोई प्रमाण भी अवश्य कह्या चाहिये। तहां उद्भूतरूप उद्भूतस्पर्शके अभावतैं ता आकाशविषे प्रत्यक्षप्रमाण तौं सम्भवता नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमान प्रमाण—करिकै ता आकाशकी सिद्धि करे हैं। ता अनुमानका यह आकार है। **शब्दः पृथिव्याद्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितः अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति द्रव्याश्रितत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथारूपम्।** अर्थ यह—शब्द गुण पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंतैं भिन्न किसी द्रव्यके आश्रित होणे योग्य है। पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंके अनाश्रित हूआ किसी द्रव्यके आश्रित होणेतैं जो जो धर्म पृथिवी, जल, तेज, वायु, काल, दिशा, आत्मा, मन इन अष्टद्रव्योंतैं भिन्न किसी द्रव्यके आश्रित नहीं होवै है सो सो धर्म इन अष्टद्रव्योंके अनाश्रित हूआ किसी द्रव्यके आश्रित भी नहीं होवै है। जैसे रूपगुण पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंतैं भिन्न किसी द्रव्यके आश्रित नहीं है, किंतु सो रूपगुण तिन अष्टद्रव्योंविषे पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंके हीं आश्रित है। यातैं सो रूपगुण तिन पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंके अनाश्रित हूआ किसी द्रव्यके आश्रित भी नहीं है, किंतु तिन अष्टद्रव्योंविषे पृथिवी आदिक तीन द्रव्योंके आश्रित हूआ हीं द्रव्यके आश्रित हैं। पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'द्रव्याश्रितत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपादिक गुणोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? ते रूपादिक गुण भी द्रव्यके हीं आश्रित रहे हैं। ता द्रव्यरूप आश्रयतैं विना कोई भी गुण स्वतंत्र रहता नहीं। यातैं सो द्रव्याश्रितत्वरूप हेतु तौं तिन रूपादिक गुणोंविषे है, परन्तु सो पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंतैं अतिरिक्त द्रव्यके आश्रितत्वरूप साध्य तिन रूपादिक गुणोंविषे है नहीं, जिस कारणतैं ते रूपादिक गुण तिन पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंके हीं आश्रित हैं। ता व्यभिचार दोषकी निवृत्ति करणे वास्तै ता उक्त हेतुविषे 'अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन रूपादिक गुणोंविषे जैसे सो पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंतैं अतिरिक्त द्रव्यका आश्रितत्वरूप साध्य नहीं है तैसे सो अष्टद्रव्यानाश्रितत्वविशिष्टद्रव्याश्रितत्वरूप हेतु भी नहीं है। यातैं ता उक्त हेतुका तिन रूपादिक गुणोंविषे व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्त अनुमानविषे विषे 'अष्टद्रव्यानाश्रितत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतुकहते ता हेतुविषे 'द्रव्याश्रितत्वात्' यह

पद नहीं कथन करते तौं रूपत्वादिक जातियोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं?ते रूपत्वादिक जातियां केवलरूपादिक गुणोंविषे हीं रहे हैं, किसी भी द्रव्यके आश्रितरहतीयां नहीं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंविषे सो अष्टद्रव्यानाश्रितत्वरूप हेतु तौं है, परन्तु सो अष्टद्रव्योंतैं अतिरिक्त द्रव्यके आश्रितत्वरूप साध्य है नहीं। यातैं ता उक्त साध्यके अभाववाली तिन रूपत्वादिक जातियोंविषे वृत्ति होणेतैं सो अष्टद्रव्यानाश्रितत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा। ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'द्रव्याश्रितत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन रूपत्वादिक जातियोंविषे सो द्रव्याश्रितत्व है नहीं । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति ॥ इस प्रकारके परिशेष अनुमान करिकै ता शब्दगुणका आश्रयरूप करिकै पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंतैं अतिरिक्त सो नवमा आकाशरूप द्रव्यहीं सिद्ध होवै है। अब प्रसंगतैं ता परिशेषानुमानका लक्षण—कहे हैं। **प्रसक्तस्य प्रतिषेधेऽन्यत्राप्रसंगात्परिशिष्यमाणे सम्प्रत्ययः परिशेषः** । अर्थ यह—प्राप्त अर्थके निषेध कीये हूए तिसतैं अन्य अर्थ विषे अप्राप्तितैं परिशेषतैं रह्ये हूए अर्थविषे जो अनुमितिज्ञानकी विषयता है ताका नाम परिशेष है ॥

इसकी प्रकृतमें संकलना—जैसे ईहां प्रसंगविषे रूपादिक गुणोंकी न्यांई सो शब्द भी गुणरूप है। यातैं सो शब्द किसी द्रव्यके आश्रित अवश्य होवैंगा। तहां रूपादिक गुणोंकी न्यांई ता शब्दविषेभी पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंका आश्रितत्व प्राप्त भया ता प्राप्त अर्थका तौं 'अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति' इस वचन करिकै निषेध करि दीया और ता शब्दविषे गुणकर्मादिक पदार्थोंके आश्रितत्वकी तौं प्राप्ति हीं नहीं है, परिशेषतैं ता शब्दविषे रह्या हूआ जो आकाशरूप द्रव्यका आश्रितत्व है सो आकाशआश्रितत्व हीं ता अनुमितिज्ञानका विषय होवै है। यह हीं ता अनुमान विषे परिशेषपणा है इति ॥

स्वरूपासिद्धिका निराकरण—तहां पक्षविषे जो हेतुका अभाव है ताका नाम स्वरूपासिद्धिदोष है । और जो हेतु विशेषणविशेष्य भाग घटित होवै है ता हेतुविषे सो स्वरूपासिद्धिदोष कहां तौं ता पक्षविषे विशेषण भागके अभावतैं होवै है और कहां विशेष्यभागके अभावतैं होवै है । और कहां ता विशेषणभाग तथा विशेष्यभाग दोनोंके अभावतैं होवै है और ता पूर्व उक्त परिशेषानुमानविषे 'अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति द्रव्याश्रितात्' यह हेतु भी ता विशेषणविशेष्यभाग घटित है। तहां 'अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति' यह तौं विशेषणभाग है और 'द्रव्याश्रितत्वात्' यह विशेष्यभाग है । विशेष सिद्धिका निराकरण—तहां जो वादी ता उक्त हेतुविषे विशेष्यासिद्धि दोषकी शंका करै अर्थात् ता शब्दविषे द्रव्याश्रितत्व है नहीं या प्रकारकी जो वादी शंका करै ता विशेष्यासिद्धिदोषकी शंकाके निवृत्त करणे वासतै अब अनुमान प्रमाण करिकै ता शब्दविषे द्रव्याश्रितत्वसिद्ध करे हैं । शब्दः

**द्रव्यसमवेतः गुणत्वात् संयोगवत्** । अर्थ यह—सो शब्द किसी द्रव्याविषे समवायसंबंध-करिकै रहे है, गुण होणेतैं । जो जो गुण होवै है सो सो गुण किसी द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै अवश्य रहे है । जैसे संयोग गुणरूप होणेतैं पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रहे है तैसे गुणरूप होणेतैं सो शब्द भी किसी द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै अवश्य रहैगा, द्रव्यतैं विना स्वतंत्र कोई भी गुण रहता नहीं । इस प्रकारके अनुमानकरिकै ता शब्दविषे द्रव्याश्रितत्व हीं सिद्ध होवै है । यातैं सो उक्त हेतु ता विशेष्यासिद्धि दोषवाला नहीं है इति । विशेषणासिद्धिका निराकरण—अब ता उक्त हेतुविषे विशेषणासिद्धि दोषकी शंकाके निवृत्त करणे वासतैं ता शब्दविषे अनुमानप्रमाण करिकै अष्टद्रव्यानाश्रितत्वकूं सिद्ध करे हैं—**शब्दः अष्टद्रव्यानाश्रितः श्रोत्रग्राह्यत्वात् शब्दत्ववत्** । अर्थ यह—सो शब्द समवायसंबंध करिकै पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंके आश्रित नहीं है, श्रोत्रइंद्रिय जन्यज्ञानका विषय होणेतैं । जो जो पदार्थ श्रोत्रइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय होवै है सो सो पदार्थ पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंके आश्रित भी नहीं होवै है । जैसे शब्दत्वजाति श्रोत्रइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय है । यातैं सा शब्दत्व जाति पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंके आश्रित भी नहीं है । तैसे यह शब्द भी ता श्रोत्रइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय है । यातैं यह शब्द भी तिन पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंके अनाश्रित हीं होवैगा । यातैं 'अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति द्रव्याश्रितत्वात्' यह पूर्व उक्त हेतु ता विशेषणासिद्धि-रूप दोषवाला नहीं है इति ॥

### शब्दकी गुणरूपताकी सिद्धि ।

ता शब्दविषे जबी किसी प्रमाण करिकै गुणरूपता सिद्ध होवै तबी हीं ता गुणत्वरूप हेतुतैं ता शब्दविषे आकाशरूप द्रव्यका आश्रितत्व सिद्ध होवै । सो शब्दकी गुणरूपता विषे हीं कोई प्रमाण नहीं है ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता शब्दविषे गुणरूपताकूं सिद्ध करे हैं । **शब्दः गुणः चक्षुर्ग्रहणायोग्यबाहिरिन्द्रियग्राह्यजातिमत्त्वात् स्पर्शवत्** । अर्थ यह—सो शब्द गुणरूप होणेयोग्य है, चक्षुइंद्रियकरिकै ग्रहणकरणेकूं अयोग्य तथा बाह्य इंद्रिय करिकै ग्रहणकरणेकूं योग्य ऐसी जातिवाला होणेतैं । जो जो पदार्थ ऐसी जातिवाला होवै है सो सो पदार्थ गुणरूप हीं होवै है । जैसे चक्षुइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं अयोग्य तथा बाह्य त्वकूइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं योग्य ऐसी जा स्पर्शत्व जाति है ता स्पर्शत्वजातिवाला स्पर्श है । यातैं सो स्पर्श गुणरूप भी है तैसे चक्षुइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं अयोग्य तथा श्रोत्ररूप बाह्यइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं योग्य ऐसी जा शब्दत्वजाति है ता शब्दत्वजातिवाला सो शब्द भी हैं । यातैं सो शब्द भी गुणरूप हीं होवैगा । पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'बाहिरिन्द्रियग्राह्यजातिमत्त्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'चक्षुर्ग्रहणायोग्य' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? चक्षुइंद्रियरूप तथा त्वकूइंद्रियरूप बाह्यइंद्रिय करिकै ग्रहणकरणे योग्य जे घटत्वपटत्वादिक जातियां हैं तिन घट-

त्वादिक जातियोंवाले तौं ते घटादिक पदार्थ हैं परंतु ते घटादिक पदार्थ गुणरूप हैं नहीं । यातैं ता गुणत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन घटादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं सो बहिरिन्द्रिय ग्राह्य जातिमत्त्वरूप हेतु व्यभिचारी होवैंगा । ता व्यभिचारदोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता हेतुविषे 'चक्षुग्रहणायोग्य' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ते घटत्वपटत्वादिक जाति चक्षुइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं अयोग्य नहीं हैं, किंतु ता चक्षुइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं योग्य हीं हैं । यातैं तिन घटत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन घटादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता अनुमानविषे 'चक्षुर्ग्रहणायोग्यजातिमत्त्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'बाहिरिन्द्रियग्राह्य' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्मा विषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? चक्षुइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं अयोग्य ऐसी जा आत्मत्वजाति है सा आत्मत्वजातिरूप हेतु तौं ता आत्माविषे है परंतु ता आत्माविषे सो गुणत्वरूप साध्य है नहीं। यातैं ता गुणत्वरूप साध्यके अभाववाले आत्माविषे वृत्ति होणेतैं सो चक्षुर्ग्रहणायोग्य जातिमत्त्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतु विषे 'बहिरिन्द्रियग्राह्य' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सा आत्मत्वजाति यद्यपि चक्षुइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं अयोग्य है तथापि सा आत्मत्वजाति बाह्यइंद्रियों करिकै ग्रहण करी जावै नहीं, किंतु मनरूप अंतरइंद्रिय करिकै हीं सा आत्मत्वजाति ग्रहण करी जावै है। यातैं ता आत्मत्वजातिकूं लैके ता आत्माविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्त अनुमानविषे 'चक्षुर्ग्रहणायोग्यबहिरिंद्रियग्राह्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे 'जातिमत्त्वात्' यह पद नहीं कथन करते तौं रसत्वादिक जातियोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? ते रसत्वादिक जातियां चक्षुइंद्रिय करिकै ग्रहण करणेकूं अयोग्य भी हैं तथा रसनादिक बाह्यइंद्रियोंकरिकै ग्रहण करणेकूं योग्य भी हैं। यातैं तिन रसत्वादिक जातियोंविषे सो उक्तहेतु तौं है, परंतु सो गुणत्वरूप साध्य तिन रसत्वादिक जातियोंविषे है नहीं। यातैं ता गुणत्वरूप साध्यके अभाववाली तिन रसत्वादिक जातियोंविषे वृत्ति होणेतैं सो उक्तहेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे 'जातिमत्त्वात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन च्यारिपदार्थोंविषे कोई भी जाति समवायसंबंध करिकै रहती नहीं, किंतु द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंविषे हीं सा जाति समवायसंबंध करिकै रहे हैं। यातैं तिन रसत्वादिक जातियों विषे ता जातिघटित हेतुका अभाव होणेतैं व्यभिचार होवै नहीं। इस प्रकारके अनुमानप्रमाणकरिकै ता शब्दविषे गुणरूपता हीं सिद्ध होवै है । यातैं ता शब्दगुणका आश्रयरूप करिकै ता आकाश रूप द्रव्यकी सिद्धि संभवै है इति । आकाशविषे रूपकी शंका—पूर्व आकाशविषे संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग शब्द यह षट्गुण कथन कऱ्ये थे, सो संभवता नहीं । काहेतैं ? 'दधि-

धवलमाकाशम्।' अर्थ यह—दधिके समान धवल रूपवाला आकाश है। या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है। सा प्रतीति ता आकाशविषे रूपगुणकूं विषय करे है। यातैं ता प्रतीतिके बलतैं ता आकाशविषे सप्तमारूपगुण भी अंगीकार कऱ्या चाहिये। इसका समाधान—जैसे लोहितरूपतैं रहित स्फटिकविषे 'लोहितः स्फटिकः' इस प्रकारकी जा प्रतीति होवै है सा प्रतीति ता स्फटिकविषे लोहितरूपवाले जपाकुसुमादिकोंके संबंधतैं हीं होवै है, तैसे रूप-रहित आकाश विषे जा धवलरूपकी प्रतीति होवै है सा प्रतीति भी ता आकाशविषे स्थित धवलरूपवाली सूर्यचंद्रादिकोंकी प्रभाके संबंधतैं हीं होवै है। यातैं जैसे 'लोहितः स्फटिकः' यह प्रतीति औपाधिक है तैसे 'दधिधवलमाकाशम्' यह प्रतीति भी औपाधिक हीं है अर्थात् जैसे जपाकुसुमादिकोंका लोहितरूप स्वसमवायिसंयोगसंबंध करिकै ता स्फटिक-विषे प्रतीति होवै है तैसे सो प्रभाका धवलरूप भी स्वसमवायिसंयोगसंबंध करिकै ता आकाशविषे प्रतीत होवै हैं ईहां दृष्टांतविषे स्वशब्दकरिकै लोहितरूपका ग्रहण करणा। ता लोहितरूपका समवायिकारणरूप जे जपाकुसुमादिक हैं तिन जपाकुसुमादिकोंका संयोगसंबंध ता स्फटिकके साथि है और दार्ष्टांतिकविषे ता स्वशब्दकरिकै धवलरूपका ग्रहण करणा। ता धवलरूपका समवायिकारण जो प्रभामण्डल है ता प्रभामंडलका संयोगसंबंध ता आकाशके साथि है। इस प्रकारके परंपरासम्बन्ध करिकै सो प्रभा-मंडलका धवलरूप हीं ता आकाशविषे प्रतीत होवै है, परंतु ता आकाशविषे समवायसंबंध करिकै कोई भी रूप रहता नहीं। आकाशके नीलरूपकी शंका—धवलरूपवाले प्रभामंडलके संबंधतैं ता आकाशविषे धवलरूपकी प्रतीतिकूं औपाधिकपणा रहो, परंतु 'नीलं नभः' अर्थ यह—नीलरूपवाला आकाश है या प्रकारकी प्रतीति भी सर्व लोकोंकूं होवै है। ता प्रतीतिविषे औपाधिकपणा नहीं होवैगा। काहेतैं? ता निर्मल आकाशविषे किसी भी नीलरूपवाले द्रव्यका संबंध है नहीं, जिस करिकै सा प्रतीति औपाधिक होवै। यातैं 'नीलं नभः' इस प्रतीतिके बलतैं ता आकाशविषे सो नीलरूप अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये। इसका समाधान—जैसे 'दधिधवलमाकाशम्' यह पूर्व उक्त प्रतीति औपाधिक है तैसे 'नीलं नभः' यह प्रतीति भी औपाधिक हीं है। काहेतैं? भूगोलके मध्यवर्त्ती जो सुमेरु पर्वत है तिस सुमेरुके पूर्वादिक च्यारि दिशावोंविषे च्यारि शृंग हैं। तहां पूर्वदिशाका तौं पद्मरागमय शृंग है और दक्षिणदिशाका इंद्रनीलमय शृंग है और पश्चिमदिशाका रजतमय शृंग है और उत्तरदिशाका सुवर्णमय शृंग है। तहां ता सुमेरुके दक्षिणशिखरविषे स्थित जो इंद्रनीलमय शृंग है सो शृंग श्याम-वर्णवाला है। ऐसे श्यामवर्णवाले इंद्रनीलमय शृंगका इस खंडके साथि संबंध है। यातैं ता इंद्रनीलमय शृंगकी श्यामप्रभा इस खण्डावच्छिन्न आकाशविषे व्याप्त होईकै रही है। ता प्रभाका श्यामरूप हीं स्वसमवायिसंयोगसंबंध करिकै ता आकाशविषे प्रत.त होवै है और

अन्यखंडोंविषे तौ तिन पद्मरागादिक तीन शृंगोंकी प्रभाके संबंधतैं सो आकाश यथाक्रमतैं रक्त श्वेत पीत प्रतीत होवै है । यातैं 'नीलं नभः' यह प्रतीति भी औपाधिक हीं है । यह पातंजलशास्त्र उक्त रीतिसैं समाधान कऱ्या इति । और केईकग्रंथकार तौं ता उक्त शंकाका या प्रकारतैं समाधान करे हैं—जैसे पीतरूतैं रहित जो शंख है ता शंखविषे पित्तदोषवाले पुरुषकूं 'पीतः शंखः' या प्रकारकी प्रतीति होवै है । तहां तिस पुरुषके नेत्रविषे स्थित जो पीतरूपवाला पित्तद्रव्य है ता पित्तद्रव्यका सो पीतरूपता शंखविषे आरोपण कऱ्या जावै है । तैसे रूपतैं रहित आकाशविषे नीलरूपकूं देखणेहारे जे पुरुष हैं तिन पुरुषोंके नेत्रोंविषे स्थित जा श्यामता है सा श्यामता ता आकाशविषे आरोपण करी जावै है । या कारणतैं हीं ता नेत्रोंकी श्यामतातैं रहित कपिलाक्ष पुरुष ता आकाशविषे श्यामताकूं देखते नहीं । यातैं 'नीलं नभः' यह प्रतीति भी औपाधिक हीं है इति । आकाशके भेदोंकी शंका—जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु यह च्यारि द्रव्य शरीर इंद्रिय विषय इस भेद करिकै तीन प्रकारके होवै हैं तैसे यह आकाश भी तीन प्रकारका है अथवा नहीं ? इसका समाधान—तिन पृथिवी आदिकोंकी न्यांई ता आकाशका शरीर तथा विषय तौं होता नहीं, परंतु ता आकाशका भी इंद्रिय तौं होवै है। सो आकाशका इंद्रिय श्रोत्र इंद्रिय है। लक्षण—तहां **शब्दधीजनकमिन्द्रियं श्रोत्रम्** । अर्थ यह—शब्दविषयक ज्ञानका जनक जो इंद्रिय है सो इंद्रिय श्रोत्र कह्या जावै है। तहां शब्दका प्रत्यक्षज्ञान केवल श्रोत्रइंद्रिय करिकै हीं होवै है, अन्य किसी इंद्रिय करिकै होता नहीं । यातैं यह शब्दधीजनकत्वरूप श्रोत्रइंद्रियका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'इन्द्रियं श्रोत्रम्' इतनामात्र हीं जो ता श्रोत्रइंद्रियका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'शब्दधीजनकम्' यह पद नहीं कथन करते तौं चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं श्रोत्रकी न्यांई ते चक्षुआदिक भी इंद्रियरूप हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'शब्दधीजनकम्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते चक्षुआदिक इंद्रिय शब्दविषयक ज्ञानके जनक हैं नहीं । यातैं तिन चक्षुआदिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'शब्दधीजनकं श्रोत्रम्' इतनामात्र हीं जो ता श्रोत्रइंद्रियका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'इन्द्रियम्' यह पद नहीं कथन करते तौं कालादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? ते कालादिक कार्यमात्रके जनक हैं। यातैं ता शब्दविषयक ज्ञानके भी कालादिक जनक हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'इन्द्रियम्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन कालदिशादिक साधारणकारणोंविषे इंद्रियरूपता है नहीं । यातैं तिन कालादिकोंविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । **शङ्का**—इस उक्त लक्षणकी भी मनविषे अतिव्याप्ति होवै है। काहेतैं ? सो मन सर्व ज्ञानोंका जनक है । यातैं ता

शब्दविषयक ज्ञानका भी सो मन जनक हीं है और सो मन न्यायमतविषे इंद्रियरूप भी है। **समाधान**—सो मन यद्यपि सर्वज्ञानोंका जनक होणेतैं ता शब्दविषयक ज्ञानका भी जनक हीं है तथापि सो मन इंद्रियत्वरूपतैं तिन सर्वज्ञानोंका जनक नहीं है, किंतु मनस्त्वरूपतैं सो मन तिन सर्वज्ञानोंका जनक है। केवल अंतरसुखदुःखादिकोंके ज्ञानका हीं सो मन इंद्रियत्वरूपतैं जनक है और ईहां लक्षणविषे इंद्रियत्वरूपतैं शब्दधीजनक इंद्रियकूं हीं श्रोत्ररूपता विवक्षित है। सा इंद्रियत्वरूपतैं शब्दविषयक ज्ञानकी जनकता ता मनविषे है नहीं। यातैं ता मनविषे ता उक्त श्रोत्र इंद्रियके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

दूसरा लक्षण--अथवा **शब्दसमवायिकारणमिन्द्रियं श्रोत्रम्**। अर्थ यह—जो इंद्रिय शब्दगुणका समवायिकारण होवै है सो इंद्रिय श्रोत्रइंद्रिय कह्या जावै है। तहां श्रोत्रइंद्रियविषे समवायसंबंध करिकै उत्पन्नहूए शब्दका हीं ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै ग्रहण होवै है। यातैं ता श्रोत्रइंद्रियविषे ता शब्दकी समवायिकारणता सम्भवै है इति॥

उपाधिभेदसे श्रोत्र इन्द्रिय भेद; **शंका**—पूर्व आकाशविषे एकत्व सिद्ध कऱ्या था और यह श्रोत्रइंद्रिय तौ चैत्रमैत्रादिक पुरुषोंके भेदतैं भिन्न भिन्न हैं। ऐसे भिन्न भिन्न श्रोत्रइंद्रिय एक आकाशरूप कैसे होवैंगे? **समाधान**—सो आकाश यद्यपि वास्तवतैं एक हीं है तथापि सो आकाश कर्णशष्कुलीरूप उपाधिके भेदतैं भिन्न भिन्न श्रोत्ररूप होवै है अर्थात् चैत्रनामा पुरुषकी कर्णशष्कुलीरूप उपाधि करिकै अवच्छिन्न हूआ सो आकाश ता चैत्रपुरुषका श्रोत्र होवै है और मैत्रनामा पुरुषकी कर्णशष्कुलीरूप उपाधि करिकै अवच्छिन्न हूआ सो आकाश ता मैत्रपुरुषका श्रोत्र होवै है। इस प्रकार एक हीं आकाशविषे कर्णशष्कुलीरूप उपाधिके भेदतैं भिन्न भिन्न श्रोत्ररूपता सम्भवै है। श्रोत्रको आकाशरूपताकी सिद्धि—ता श्रोत्र इंद्रियकूं किस रीतिसैं आकाशरूपता है। ऐसी शंकाके प्राप्त हूए, अब अनुमानरूप युक्ति करिकै ता श्रोत्रइंद्रियविषे आकाशरूपता सिद्ध करे हैं। इसका अनुमान—तहां जो जो इंद्रिय रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द इन पांचगुणोंके मध्यविषे जिस जिस गुणकूं ग्रहण करे है सो सो इंद्रिय तिस तिस गुणवाला अवश्य होवै है जैसे चक्षु, रसन, घ्राण, त्वक् यह च्यारों इंद्रिय यथा क्रमतैं रूप, रस, गंध, स्पर्श इन च्यारोंगुणोंका ग्रहण करे हैं। यातैं ते चक्षुआदिक च्यारि इंद्रिय यथाक्रमतैं तिन रूपादिक च्यारिगुणोंवाले हीं हैं, तैसे सो श्रोत्रइंद्रिय भी शब्दगुणका ग्रहण करे है। यातैं सो श्रोत्रइंद्रिय भी ता शब्दगुणवाला अवश्य होवैगा और सो शब्दगुण एक आकाशविषे हीं रहे है, अन्यकिसी द्रव्यविषे रहता नहीं। यातैं ता शब्दगुणवाला होणेतैं सो श्रोत्रइंद्रिय आकाश रूप हीं सिद्ध होवै है इति॥

नवीनोंका मत—ईहां नवीननैयायिकोंका यह मत है-शब्द गुणका समवायिकारणरूप आकाशनामा द्रव्य कोई है नहीं, किंतु प्राचीननैयायिकोंनैं भी ता शब्दगुणका निमित्त कारण रूप

करिके अंगीकार कऱ्या जो ईश्वर है सो ईश्वर हीं ता शब्दका समवायिकारण है। इसपर शंका—ता ईश्वरकी न्यांई जीवात्मा हीं ता शब्दका समवायिकारण क्युं नहीं होवै ? सो जीवात्मा ता शब्दका समवायिकारण नहीं है और सो ईश्वर ता शब्दका समवायिकारण है। इस अर्थका साधक कोई युक्ति है नहीं। इसका समाधान—ता जीवात्माकूं जो शब्दका समवायिकारण मानिये तौं ता जीवात्माके सुखदुःखादिक गुण जैसे 'अहं सुखी अहं दुःखी' या प्रकारके मानसप्रत्यक्षके विषय होवै हैं तैसे सो शब्द भी ता मानसप्रत्यक्षका विषय होणा चाहिये और सो शब्द मानसप्रत्यक्षका विषय होता नहीं, किंतु सो शब्द श्रोत्रप्रत्यक्षका हीं विषय होवै है। यातैं ता जीवात्माविषे ता शब्दगुणकी समवायिकारणता संभवती नहीं॥ काल और दिशाको शब्दके समवायिकारण होनेकी शंका—सो जीवात्मा ता शब्दगुणका समवायिकारण मत होवो तथापि काल दिशा यह दोनों द्रव्य ता शब्दगुणके समवायिकारण क्युं नहीं होवैं ? आकाशादिकोंका ईश्वरमें अन्तर्भाव मानकर समाधान—हम नवीनोंके मतविषे जैसे सो आकाश पृथक्‌द्रव्य नहीं है तैसे ते काल दिशा भी पृथक्‌द्रव्य नहीं हैं, किंतु आकाश, काल, दिशा इन तीनों द्रव्योंका ता ईश्वरविषे हीं अन्तर्भाव है॥ **शंका**—ता आकाशरूप द्रव्यकूं जो नहीं अंगीकार करौंगे तौं कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाशकूं श्रोत्ररूपता कैसे सम्भवैंगी ? **समाधान**—हम नवीनोंके मतविषे कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाशकूं श्रोत्ररूपता नहीं है, किंतु ता कर्णशष्कुली अवच्छिन्न ईश्वरकूं हीं श्रोत्ररूपता है। यातैं ता ईश्वरतैं भिन्न कोई आकाशनामा द्रव्य नहीं है इति ॥

शब्दकूं पृथिवीमात्रका गुण मानणेहारे स्वतन्त्रोंका मत—और स्वतन्त्रोंका तौं यह मत है। सो शब्द जो कदाचित् केवल आकाशमात्रका हीं गुण होवै तौं ता शब्दका समवायिकारणरूप करिके ता आकाशकी सिद्धि होवै, परन्तु सो शब्द ता आकाशका गुण नहीं है, किंतु सो शब्द मृदंग भेरी आदिक पृथिवीका हीं गुण है। यातैं ते मृदंग भेरी आदिक हीं ता शब्दके समवायिकारण हैं, किंवा ते प्राचीननैयायिक भी तिन मृदंग भेरी आदिकोंकूं ता शब्दका निमित्तकारण तौं माने हीं हैं और लोकविषे भी यह शब्द मृदंगका है, यह शब्द भेरीका है या प्रकारकी हीं प्रतीति होवै है। यह शब्द आकाशका है, या प्रकारकी प्रतीति लोकविषे होती नहीं। यातैं प्राचीननैयायिकोंनैं जिन मृदंग भेरी आदिकोंकूं जिस शब्दका निमित्त कारण मान्या है तिन मृदंग भेरी आदिकोंकूं हीं हम स्वतंत्र ता लौकिक प्रतीतिके बलतैं ता शब्दका समवायिकारण मानते हैं और जे प्राचीन नैयायिक तिन भेरी मृदंगादिकोंकूं ता शब्दका निमित्तकारण मानिके आकाशकूं ता शब्दका समवायिकारण माने हैं तिन नैयायिकोंके मतविषे महान् गौरवदोष प्राप्त होवै है॥ **शंका**—तुम स्वतंत्रोंके मतविषे ता शब्दके ग्रहण करणेहारे इंद्रियका क्या स्वरूप है ? तहां ता शब्दग्राहक इंद्रियका यह प्रसिद्ध पार्थिव कर्णशष्कुली हीं स्वरूप है, या प्रकारका उत्तर जो स्वतंत्र कहे तौं बधिर पुरुषकी भी सा कर्णशष्कुली

तौं प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है । यातैं ता बधिरपुरुषकूं भी ता शब्दका प्रत्यक्ष होणा चाहिये । तहां सो स्वतंत्र जो यह कहै, जिन प्राचीन नैयायिकोंके मतविषे ता कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाशकूं हीं श्रोत्रइंद्रियरूप मान्या है तथा जिन नवीननैयायिकोंके मतविषे ता कर्ण-शष्कुली अवच्छिन्न ईश्वरकूं हीं श्रोत्रइंद्रियरूप मान्या है तिन नैयायिकोंके मत विषे भी ता आकाशरूप श्रोत्रइंद्रियका तथा ता ईश्वररूप श्रोत्रइंद्रियका नाश होता नहीं । यातैं बधिर-पुरुषविषे भी ता श्रोत्रइंद्रियके विद्यमान हूए ता बधिर पुरुषकूं शब्दका प्रत्यक्ष क्यूं नहीं होता, किंतु होणा चाहिये । तहां ता बधिरपुरुषविषे शब्दके प्रत्यक्षकी आपत्तिरूप दोषके निवृत्त करणे वासतै तुम नैयायिकोंनैं यह कहणा होवैंगा, ता बधिर पुरुषके शरीरविषे कोई दोषविशेष विद्यमान है । सो दोषविशेष हीं ता शब्दके प्रत्यक्षका प्रतिबंधक है । यातैं ता श्रोत्रइंद्रियके विद्यमान हूए भी ता दोषविशेषविषे शब्दप्रत्यक्षके प्रतिबंधकताकी कल्पना जैसे तुम नैया-यिकोंके मतविषे है तैसे सा कल्पना हम स्वतन्त्रोंके मतविषे भी है । यातैं ता कर्णशष्कुली-मात्रकूं श्रोत्रइंद्रियरूपता मानणे विषेभी ता बधिरपुरुषकूं ता शब्दके प्रत्यक्षकी आपत्ति होवै नहीं । सो यह स्वतन्त्रका कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? अर्थके साथि इंद्रियके सम्बंधतैं विना कोई भी प्रत्यक्ष होता नहीं । यातैं मृदंगादिक पृथिवीविषे समवेत ता शब्दके प्रत्यक्ष वासतै ता शब्दके साथि ता कर्णशष्कुलीरूप श्रोत्रइंद्रियका कोई संबंध कह्या चाहिये । तहां सो स्वतंत्र ता श्रोत्रइंद्रियका ता शब्दके साथि जो ' स्वसंयोगीसंयुक्तसमवाय ' यह सम्बन्ध कथन करे तौं पूर्वसिद्ध संयोगादिक षट्सन्निकर्षोंतैं अधिक इस सप्तम सन्निकर्षकी कल्पना करणेविषे गौरवदोषकी प्राप्ति होवैंगी । ईहां स्वशब्दकरिकै ता कर्ण-शष्कुलीरूप श्रोत्रइंद्रियका ग्रहण करणा । तिसके संयोगवाला जो आत्मा है ता आत्माके संयोगवाला सो मृदंग है । ता मृदंगादिरूप पृथिवीविषे ता शब्दका समवायसम्बन्ध है । तहां संयोगवालेकूं हीं संयोगी तथा संयुक्त कहे है । **समाधान**—हे नैयायिक ! ता पार्थिवकर्ण-शष्कुलीमात्रकूं हीं जो हम श्रोत्रइंद्रिय मानैं; तौं हमारे मतविषे ता अधिकसन्निकर्षकी कल्पनारूप दोष प्राप्त होवै, परंतु हम स्वतंत्र ता कर्णशष्कुलीमात्रकूं श्रोत्ररूप मानते नहीं, किंतु चैत्रमैत्रादिक पुरुषोंका जो ता कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आत्मा है तिस आत्माकूं हीं हम तिन चैत्रमैत्रादिक पुरुषोंका श्रोत्रइंद्रियरूप मानते हैं । यातैं ता अधिकसंबंधकी कल्पना हमारे मतविषे होवै नहीं, किंतु ता भेरी मृदंगादिक पृथिवीविषे समवेतशब्दके साथि ता आत्मारूप श्रोत्रइंद्रियका संयुक्त समवायसम्बन्ध पूर्वसिद्ध हीं है । **शङ्का**—हे स्वतंत्र ! आत्माकूं हीं जो तुम श्रोत्रइंद्रियरूप मानौंगे तौं एक हीं आत्माविषे ता शब्द प्रत्यक्षरूप क्रियाका कर्त्तापणा तथा करणपणा प्राप्त होवैंगा । सो अत्यन्त विरुद्ध है । काहेतैं ? एक हीं वस्तुविषे एक हीं क्रियाका कर्त्तापणा तथा करणपणा कहां भी देखणेविषे आवता नहीं, किंतु सो

कर्त्ता करण भिन्न भिन्न हीं देखणेविषे आवै है। जैसे छेदनरूप क्रियाका पुरुष तौं कर्त्ता होवै है और कुठार करण होवै है। **समाधान**—हे नैयायिक ! जैसे 'स्वात्मानं वेत्ति' अर्थ यह—यह पुरुष आपणे आत्माकूं जानता है इत्यादिक प्रतीतियोंविषे एक हीं आत्माकूं ज्ञानरूप क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा होवै है, ता कर्मपणेका तथा कर्त्तापणेका परस्परविरोध होता नहीं। तैसे ता एक हीं आत्माविषे सो कर्त्तापणा तथा करणपणा मानणेविषे भी कोई विरोध होवै नहीं, किंवा जे नैयायिक ता शब्दकूं आकाशका गुण माने हैं तथा कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाशकूं हीं श्रोत्रइंद्रियरूप माने हैं तिन नैयायिकोंके मतविषे ता शब्दके प्रत्यक्षवासतै ता श्रोत्रइंद्रियका ता शब्दके साथि समवायसम्बन्ध मानणा होवै है। सो समवाय सम्बन्ध हमारेकूं मानणा होता नहीं। यह भी हमारे मतविषे तिन नैयायिकोंके मततैं लाघव है। **शङ्का**—हे स्वतन्त्र ! जो तुम आत्माकूं श्रोत्रइंद्रियरूप मानौंगे तौं किसी वस्तु करिकै ता कर्णशष्कुलीके पिधानदशाविषे भी ता शब्दका प्रत्यक्ष होणा चाहिये। **समाधान**—हे नैयायिक ! ता कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाशकूं श्रोत्रइंद्रियरूप मानणेहारे जो तुम नैयायिक हो तिस तुमारे मतविषे भी किसी वस्तुकरिकै व्यवधानकूं प्राप्तहूए ता श्रोत्ररूप आकाशविषे ता शब्दकी उत्पत्तिहोणेविषे कोई बाधक है नहीं। परंतु ता श्रोत्रकरिकै ता शब्दका प्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं ता व्यवधान करणेहारे वस्तुविषे ता शब्दके प्रत्यक्षकी प्रतिबन्धकता कल्पना करणी होवैगी। तैसे हम स्वतन्त्र भी ता कर्णशष्कुलीके पिधान करणेहारे वस्तुविषे ता शब्दके प्रत्यक्षकी प्रतिबन्धकता कल्पना करते हैं। यातैं ता कर्णशष्कुलीके पिधान-दशाविषे ता शब्दके प्रत्यक्षकी आपत्ति हमारे मतविषे होवै नहीं इति ॥

शब्दकूं पृथिवीआदि पंचभूतोंका गुण मानणेहारे वेदान्ती—और वेदान्तशास्त्रका तौं यह मत है। केवल आकाश हीं ता शब्दगुणका आश्रयभूत नहीं है, किंतु आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी यह पांचोंभूत हीं ता शब्दगुणका आश्रयरूप हैं। ईहां यह अभिप्राय है—मायाविशिष्ट परमेश्वरतैं प्रथम आकाश उत्पन्न होवै है। ता आकाशविषे एक शब्दगुण रहे है और ता आकाशतैं वायु उत्पन्न होवै है। ता वायुविषे शब्द स्पर्श यह दो गुण रहे हैं और ता वायुतैं अग्नि उत्पन्न होवै है। ता अग्निविषे शब्द स्पर्श रूप यह तीन गुण रहे हैं और ता अग्नितैं जल उत्पन्न होवै है। ता जलविषे शब्द स्पर्श रूप रस यह च्यारिगुण रहे हैं और ता जलतैं पृथिवी उत्पन्न होवै है। ता पृथिवीविषे शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह पांचगुण रहे हैं। इस रीतिसैं आकाशादिक पांचभूतोंविषे हीं सो शब्दगुण रहे है। यह वेदान्तशास्त्रका मत आत्मपुराणके दशमआध्यायविषे तैत्तिरीयउपनिषदके व्याख्यानविषे हमनैं विस्तारतैं निरूपण कर्या है। सो तहांसैं जानि लेणा इति ॥ ५ ॥ इति आकाशनिरूपणं समाप्तम् ॥

काल निरूपण ।

अब कालरूप षष्ठ द्रव्यका निरूपण करे हैं—पहिला लक्षण—तहां **विभुत्वे सति दिगसमवेतपरत्वासमवायिकारणाधिकरणं कालः ॥ १ ॥** दूसरा लक्षण—अथवा **परत्वानाश्रयत्वे सति विजातीयपरत्वासमवायिकारणसंयोगाश्रयः कालः ॥ २ ॥** तीसरा लक्षण—अथवा **अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः ॥ ३ ॥**

प्रथम लक्षणका निरूपण—अब इन तीन लक्षणोंविषे प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां जो द्रव्य विभु होवै है तथा दिशाविषे असमवेत ऐसा जो परत्वका असमवायिकारण है ताका अधिकरण होवै है सो द्रव्य काल कह्या जावै है। तहां कनिष्ठभ्राताकी अपेक्षा करिकै ज्येष्ठभ्राताविषे कालिकपरत्व रहे है। ता परत्वगुणका समवायिकारण तौं सो ज्येष्ठशरीर है और ता ज्येष्ठशरीरके साथि जो कालका संयोगसंबंध है सो संयोगसंबंध ता परत्वका असमवायिकारण है और सो संयोगरूप असमवायिकारणदिशाविषे समवायसंबंध करिकै रहता नहीं, किंतु ता ज्येष्ठशरीरविषे तथा कालविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं ता परत्वके असमवायिकारणरूप संयोगका सो काल आधार है तथा सो काल विभु भी है। यातैं यह उक्त कालका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'दिगसमवेतपरत्वासमवायिकारणाधिकरणं कालः' इतनामात्र हीं जो ता कालका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विभुत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं ता ज्येष्ठशरीरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सो काल ता संयोगरूप असमवायिकारणका अधिकरण है तैसे सो ज्येष्ठशरीर भी ता संयोगका अधिकरण हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विभुत्वे सति' यह पद कथन कर्‌या है। तहां ता ज्येष्ठ शरीर विषे सो विभुपणा है नहीं। यातैं ता ज्येष्ठशरीरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'विभुत्वे सति परत्वासमवायिकारणाधिकरणं कालः' इतनामात्र हीं जो ता कालका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'दिगसमवेत' यह पद नहीं कथन करते तौं दिशाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? समीपदेशविषे स्थित घटकी अपेक्षा करिकै दूरदेशविषे स्थित घटविषे दैशिकपरत्व रहे है। ता परत्वका समवायिकारण तौं सो घट है और ता घटके साथि जो दिशाका संयोगसंबंध है सो संयोगसंबंध ता परत्वका असमवायिकारण है। ता संयोगका अधिकरण सा दिशा भी है और सा दिशा विभु भी है। ता दिशाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'दिगसमवेत' यह ता असमवायिकारणका विशेषण कथन कर्‌या है। तहां ता घटके साथि जो दिशाका संयोगसंबंध है सो संयोगसंबंध यद्यपि ता घटविषे स्थित परत्वका असमवायिकारण तौं है तथापि सो संयोग ता दिशाविषे असमवेत नहीं है, किंतु ता दिशाविषे सो संयोगसंबंध समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं ता दिशाविषे

ता कालके लक्षणका अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'विभुत्वे सति दिगसमवेतासमवायिकारणाधिकरणं कालः' इतनामात्र हीं जो ता कालका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'परत्व' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? आत्माके साथि जो मनका संयोगसंबंध है सो संयोगसंबंध ता आत्माविषे रहणेहारे ज्ञानादिक गुणोंका असमवायिकारण भी है और सो संयोग ता आत्मामनविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है, ता दिशाविषे रहता नहीं। यातैं सो असमवायिकारणरूप आत्ममनःसंयोग दिशा विषे असमवेत भी है। ऐसे संयोगरूप असमवायिकारणका अधिकरण सो आत्मा है तथा सो आत्मा विभु भी है। ता आत्माविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'परत्व' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो आत्ममनःसंयोग यद्यपि ज्ञानादिकोंका असमवायिकारण है तथापि परत्वका असमवायिकारण नहीं है। यातैं ता संयोगकी अधिकरणताकूं लैके आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। इस रीतिसैं सो प्रथम कालका लक्षण सम्भवै है इति ॥ १ ॥

द्वितीय लक्षण निरूपण—अब **परत्वानाश्रयत्वे सति विजातीयपरत्वासमवायिकारणसंयोगाश्रयः कालः**। इस द्वितीय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांचमूर्त्त द्रव्योंविषे हीं परत्व, अपरत्व यह दोनों गुण रहे है। आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारि विभुद्रव्योंविषे ते परत्व अपरत्व दोनों गुण रहते नहीं। यातैं सो काल ता परत्वगुणका अनाश्रय भी है और कनिष्ठभ्राताकी अपेक्षा करिकै ज्येष्ठ भ्राताविषे विजातीय परत्व रहे है अर्थात् दैशिकपरत्वतैं विलक्षण कालिकपरत्व रहे है। सा दैशिकपरत्व अपरत्वतैं कालिकपरत्व अपरत्वविषे विलक्षणता आगे तृतीय परिच्छेदविषे परत्व अपरत्व गुणके निरूपणविषे स्पष्ट करिकै कहैंगे। और ता ज्येष्ठशरीरके साथि जो कालका संयोगसम्बन्ध है सो संयोग ता विजातीयपरत्वका असमवायिकारण है। ता संयोगका आश्रयरूप सो काल है। यातैं यह उक्त कालका लक्षण भी सम्भवै है। पदकृत्य—तहां 'विजातीयपरत्वासमवायिकारणसंयोगाश्रयः कालः' इतनामात्र हीं जो ता कालका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'परत्वानाश्रयत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं ता ज्येष्ठ शरीरविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता ज्येष्ठशरीरविषे स्थित जो कालिक परत्व है ता परत्वका असमवायिकारण ता शरीरके साथि कालका संयोगसम्बन्ध है। ता संयोगसम्बन्धकी आश्रयता जैसे कालविषे है तैसे ता ज्येष्ठशरीरविषे भी है। ता ज्येष्ठशरीरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'परत्वानाश्रयत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो ज्येष्ठशरीर ता परत्वगुणका अनाश्रय नहीं है किंतु ता परत्वगुणका आश्रयरूप हीं है। यातैं ता ज्येष्ठशरीरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा इस उक्तलक्षणविषे 'विजातीय' यह पद जो नहीं कथन करते तौं

दिशाविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? समीपदेशवृत्ति घटकी अपेक्षा करिकै दूरदेशविषे स्थित घटविषे रह्या हूआ जो दैशिकपरत्व है ता परत्वका असमवायिकारण ता घटके साथि दिशाका संयोगसम्बन्ध है। ता संयोगसम्बन्धकी आश्रयता ता दिशाविषे भी है और सा दिशा ता परत्वगुणका अनाश्रय भी है। ता दिशाविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विजातीय' यह परत्वका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ता कालिकपरत्वविषे जो ता दैशिकपरत्वतैं विलक्षणता है यह हीं ता परत्वविषे विजातीयपणा है। ऐसा विजातीयपणा ता दैशिकपरत्व विषे है नहीं, किंतु ता कालिकपरत्वविषे हीं है। यातैं ता दिशाविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा इस लक्षणविषे 'विजातीयपरत्व' यह पद जो नहीं कथन करते, किंतु 'परत्वानाश्रयत्वे सति असमवायिकारणसंयोगाश्रयः कालः' इतनामात्र हीं जो ता कालका लक्षण करते तौं आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? सो आत्मा ता परत्वगुणका अनाश्रय भी है और ता आत्मवृत्ति ज्ञानादिक गुणोंका असमवायिकारण जो आत्ममनःसंयोग है ता संयोगका सो आत्मा आश्रय भी है। ता आत्माविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विजातीयपरत्व' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो आत्ममनःसंयोग यद्यपि ज्ञानादिक गुणोंका असमवायिकारण है तथापि ता विजातीय परत्वका असमवायिकारण नहीं है। यातैं ता आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। इस रीतिसैं ता कालका सो द्वितीयलक्षण भी सम्भवै है इति ॥ २ ॥

तृतीय लक्षणका निरूपण—अब **अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः।** इस तृतीय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां अतीत भविष्यत् वर्त्तमान इस प्रकारका जो व्यवहार है तिस व्यवहारका जो हेतु होवै है सो काल कह्या जावै है। तहां अतीत भविष्यत् वर्त्तमान इस प्रकारका जो शब्द है ताका नाम व्यवहार है। अथवा अतीत भविष्यत् वर्त्तमान इस प्रकारका जो ज्ञान है ताका नाम व्यवहार है। सो इस प्रकारका व्यवहार ता काल करिकै हीं होवै है। यातैं यह अतीतादि व्यवहारका हेतुत्वरूप कालका लक्षण संभवै है॥

लक्षणके हेतुशब्दसे किसी कारणके ग्रहण न होनेकी शंका—'अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः' इस उक्त लक्षणविषे स्थित जो हेतुशब्द है सो हेतुशब्द केवल कारणमात्रका वाचक होवै है। सो कारण समवायी असमवायी निमित्त इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। सो ईहां ता हेतुशब्दकरिकै समवायिकारणका ग्रहण करणा अथवा ता हेतुशब्दकरिकै असमवायिकारणका ग्रहण करणा अथवा ता हेतुशब्दकरिकै निमित्तकारणका ग्रहण करणा। तहां ता हेतुशब्दकरिकै जो समवायिकारणका ग्रहण करौगे तौं शब्दका नाम व्यवहार है। इस

पक्षविषे तौं ता शब्दके समवायिकारणरूप आकाशविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । और ज्ञानका नाम व्यवहार है । इस पक्षविषे ता ज्ञानके समवायिकारणरूप आत्माविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । यातैं ता हेतुशब्दकरिकै समवायिकारणका ग्रहण कऱ्या जावै नहीं । और ता हेतुशब्दकरिकै जो असमवायिकारणका ग्रहण करौंगे तौं शब्दका नाम व्यवहार है, इस पक्षविषे तौं कंठ तालु आदिकोंके साथि जो आकाशका संयोग है सोई हीं ता शब्दका असमवायिकारण है । ता संयोगविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । और ज्ञानका नाम व्यवहार है इस पक्षविषे तौं आत्माके साथि जो मनका संयोगसंबंध है सोई हीं ता ज्ञानका असमवायिकारण है । ता आत्ममनःसंयोगविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । यातैं ता हेतुशब्द करिकै असमवायिकारणका भी ग्रहण कऱ्या जावै नहीं । और ता हेतुशब्दकरिकै जो निमित्तकारणका ग्रहण करौंगे तौं जैसे सो काल ता अतीतादिक व्यवहारका निमित्तकारण है तैसे दिशा ईश्वर अदृष्ट आदिक भी ता व्यवहारके निमित्तकारण हैं । यातैं तिन दिशा ईश्वर अदृष्टादिकोंविषे ता कालके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । यातैं ता हेतुशब्द करिकै ता निमित्तकारणका भी ग्रहण कऱ्या जावै नहीं । असाधारण निमित्तके ग्रहणसे समाधान—ता उक्तलक्षणविषे स्थित हेतुशब्द करिकै हमारेकूं समवायिकारण वा असमवायिकारण वा साधारण निमित्तकारण विवक्षित नहीं है, किंतु असाधारण निमित्तकारण हीं विवक्षित है । सो अतीतादिक व्यवहारोंका असाधारण निमित्तकारणपणा केवल ता कालविषे हीं हैं । दूसरे किसी पदार्थविषे है नहीं । यातैं ता उक्त कालके लक्षणकी कहां भी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ ३ ॥ इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणों करिकै ता कालकी सिद्धि संभवै है । कालविषे प्रमाण—लक्षण प्रमाण इन दोनों करिकै हीं वस्तुकी सिद्धि होवै है, ता लक्षणप्रमाणतैं विना किसी भी वस्तुकी सिद्धि होवै नहीं । यातैं ता कालकी सिद्धि करणे वासतै ता कालका कोई लक्षण तथा प्रमाण अवश्य कहणा होवैंगा । तहां पूर्व ता कालका लक्षण तौं कथन कऱ्या, परंतु ता कालविषे कोई प्रमाण कथन कऱ्या नहीं । तहां उद्भूतरूप उद्भूतस्पर्शके अभावतैं ता कालविषे प्रत्यक्षप्रमाण तौं संभवता नहीं । यातैं ता कालकी सिद्धिवासतै ता प्रत्यक्षतैं भिन्न हीं कोई प्रमाण कह्या चाहिये । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता कालकी सिद्धि करे हैं । तहां कनिष्ठभ्राताकी अपेक्षा करिकै ज्येष्ठभ्राताविषे ‘ अयं परः ’ या प्रकारकी परत्वबुद्धि होवै है और ता ज्येष्ठभ्राताकी अपेक्षा करिकै कनिष्ठभ्राताविषे ‘ अयं अपरः ’ या प्रकारकी अपरत्वबुद्धि होवै है । सा परत्वअपरत्वबुद्धि यथाक्रमतैं ता ज्येष्ठकनिष्ठविषे स्थित कालिक परत्वअपरत्वकूं हीं विषय करे है । यातैं ‘ अयं परः अयं अपरः ’ या प्रकारकी प्रत्यक्षप्रतीतिके बलतैं सो कालिकपरत्व अपरत्व अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये । यातैं यह

अनुमान सिद्ध भया॥ दूसरा अनुमानका स्वरूप—**ज्येष्ठकनिष्ठशरीरनिष्ठे परत्वापरत्वे असमवायिकारणजन्ये जन्यगुणत्वात् रूपवत्** । अर्थ यह—ता ज्येष्ठशरीरविषे स्थित जो परत्व गुण है तथा ता कनिष्ठशरीरविषे स्थित जो अपरत्वगुण है सो परत्वअपरत्वगुण असमवायिकारण करिकै जन्य होणे योग्य है, जन्यगुण होणेतैं। जो जो जन्यगुण होवै है सो सो असमवायिकारण करिकै जन्य हीं होवै है, जैसे पटनिष्ठ रूपगुण जन्यगुण होणेतैं असमवायिकारण करिकै जन्य हीं है। तहां तंतुवोंका रूप हीं ता पटके रूपका असमवायिकारण है । तैसे सो परत्व अपरत्व गुण भी जन्यगुण होणेतैं किसी असमवायिकारण करिकै अवश्य जन्य होवैगा, तहां ता परत्व अपरत्वका कालपिंडके संयोगतैं विना दूसरा तौं कोई असमवायिकारण संभवता नहीं, किंतु ता ज्येष्ठशरीरके साथि तथा कनिष्ठशरीरके साथि जो कालका संयोगसंबंध है सो संयोगसंबंध हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण है। ता असमवायिकारणरूप संयोगका आश्रयरूपकरिकै ता कालकी सिद्धि संभवै है ॥ हेतुके पदोंकी उपयोगिता—तहां इस कालके साधक अनुमान विषे 'गुणत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'जन्य' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणुनिष्ठ रूपादिक नित्यगुणोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन नित्यगुणों विषे सो गुणत्वरूप हेतु तौं रहे है, परंतु सो असमवायिकारणजन्यत्वरूप साध्य तहां रहता नहीं । यातैं ता साध्यके अभाववाले तिन नित्यगुणोंविषे वृत्ति होणेतैं सो गुणत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैगा। ता व्यभिचारदोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता हेतुविषे 'जन्य' यह गुणका विशेषण कथन कन्या है । तहां तिन नित्यगुणोंविषे जैसे सो असमवायिकारण जन्यत्वरूप साध्य नहीं है तैसे सो जन्यगुणत्वरूप हेतु भी नहीं है। यातैं तिन नित्यगुणोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता अनुमानविषे 'जन्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'गुण' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रध्वंसाभावविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? सो घटादिकोंका प्रध्वंसाभाव समवायिकारण करिकै तथा असमवायिकारणकरिकै जन्य होता नहीं किंतु केवल निमित्तकारण करिकै हीं जन्य होवै है। यातैं ता प्रध्वंसाभाव विषे सो जन्यत्वरूप हेतु तौं है परंतु सो असमवायिकारणजन्यत्वरूप साध्य तहां है नहीं। ता साध्यके अभाववाले ता प्रध्वंसाभावविषे वृत्ति होणेतैं सो जन्यत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैगा। ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'गुण' यह पद कथन कन्या। तहां ता प्रध्वंसाभावविषे जैसे सो असमवायिकारणजन्यत्वरूप साध्य नहीं है तैसे सो जन्य त्वगुणत्वरूप हेतु भी तहां नहीं है। यातैं ता प्रध्वंसाभावविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। पिण्डगत रूप रस गन्धको परत्वापरत्वके असमवायिकारण होनेकी शंका—ता ज्येष्ठ शरीरविषे स्थित जो कालिकपरत्व है तथा ता कनिष्ठ शरीरविषे स्थित जो कालिकअपरत्व है ता परत्व अपरत्वका जो कदाचित् ता ज्येष्ठकनिष्ठशरीरके साथि कालका संयोग असमवायिकारण होवै

तौं ता संयोगका आश्रयरूप करिकै ता कालकी सिद्धि होवै, परंतु ता परत्व अपरत्वका सो कालका संयोग असमवायिकारण नहीं है, किंतु ता ज्येष्ठकनिष्ठ शरीरविषे स्थित जे रूप, रस, गंध यह तीनगुण हैं तिन तीनों गुणोंविषे कोई एक गुण ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण होवैंगा । यातैं ता पूर्वउक्त अनुमान करिकै ता कालकी सिद्धि संभवै नहीं । वायुविषे रूपादिके विना परत्वादिके रहनेसे समाधान--तिन रूपादिक तीन गुणोंकूं ता परत्वअपरत्वकी असमवायिकारणता संभवती नहीं । काहेतैं? ते रूपादिक तीनगुण वायुविषे हैं नहीं और ता वायुविषे भी सो कालिकपरत्वअपरत्व तौं उत्पन्न होवै है । यातैं ते रूपादिक तीनगुण ता परत्वअपरत्वके असमवायिकारण नहीं हैं। जो कदाचित् ते रूपादिकगुण ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण होते तौं तिन रूपादिक तीनगुणोंतैं रहित वायुविषे सो परत्वअपरत्व नहीं गुण उत्पन्न होता ॥ स्पर्शको परत्वापरत्वके असमवायिकारण होनेकी शंका—जैसे ता ज्येष्ठकनिष्ठ पिंडविषे स्पर्शगुण रहे है तैसे ता वायुविषे भी सो स्पर्शगुण रहे है। यातैं सर्वत्र सो स्पर्शगुण हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण होवो । विनिगमनाभावसे समाधान—जिस द्रव्यविषे सो स्पर्शगुण रहे है तिस द्रव्य विषे संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग यह पांचोंगुणभी अवश्य रहे हैं । तिन षट् गुणोंविषे कौन गुण ता परत्व अपरत्वका असमवायिकारण है। यह निश्चय होइ सकता नहीं । काहेतैं?तिन स्पर्शादिक षट् गुणोंके मध्यविषे एकस्पर्शगुण हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण है, दूसरे संख्यादिक पंचगुण ता परत्वअपरत्वके असमवायिकारण नहीं हैं। या प्रकारके अर्थका निश्चायक कोई युक्ति नहीं है तथा तिन संख्यादिक पंचगुणोंविषे हीं कोई एकगुण ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण है। सो स्पर्शगुण ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण नहीं है । या प्रकारके अर्थका निश्चायक भी कोई युक्ति नहीं है। ऐसी एक अर्थके सिद्ध करणेहारी युक्तिका जो अभाव है ताकूं शास्त्रविषे विनिगमनाविरह कहे हैं और जहां सो विनिगमनाविरह होवै है तहां सर्वोंकूं हीं सा कारणता प्राप्त होवै है । यातैं तिन स्पर्शादिक अनेकगुणोंविषे ता परत्व-अपरत्वकी असमवायिकारणता माननेतैं ता एककालसंयोगविषे ता परत्वअपरत्वकी असमवायिकारणता माननेविषे अत्यन्त लाघव है। यातैं सो कालपिंडका संयोग हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण मानणा उचित है । पृथिवीके संयोगको परत्वादिके कारण माननेकी शंका—ता ज्येष्ठकनिष्ठ पिण्डके साथि जो पृथिवीका संयोगसंबन्ध है सो संयोग हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण होवैंगा । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै ता कालकी सिद्धि संभवै नहीं। नक्षत्रादिकोंके परत्वादिसे समाधान—ता पृथिवीके संयोगकूं जो परत्वअपरत्वका असमवायिकारण मानिये तौं सर्वदा आकाशविषे विचरणेहारे नक्षत्रादिकोंके साथि ता पृथिवीका संयोग है नहीं। यातैं तिन नक्षत्रादिकोंविषे ता परत्वअपरत्वकी उत्पत्ति नहीं होणी चाहिये और तिन नक्षत्रादिकोंविषे भी ता परत्वअपरत्वकी उत्पत्ति होवै है। यातैं सो पृथिवीका संयोग ता परत्व

अपरत्वका असमवायिकारण नहीं है। आत्मादिके संयोगको ही असमवायिकारण होनेकी शंका— आकाश, दिशा, आत्मा, मन इन च्यारोंके मध्यविषे आकाशके साथि वा दिशाके साथि वा आत्माके साथि वा मनके साथि जो तिस ज्येष्ठकनिष्ठ पिण्डका संयोगसम्बन्ध है सो संयोग हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण होवो। यातैं ता संयोगका आश्रयरूप करिकै कालकी कल्पना करणी व्यर्थ है। विनिगमनाभावसे समाधान—आकाश दिशा आत्मा मन इन च्यारों द्रव्योंके मध्यविषे एकद्रव्यका संयोग ता परत्वअपरत्वका असमवायि कारण है। दूसरे तीन द्रव्योंका संयोग ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण नहीं है। इस रीतिसैं ता एक द्रव्यके संयोगविषे ता परत्वअपरत्वके असमवायिकारणताका निश्चयकरावणेहारी कोई युक्ति है नहीं। यातैं विनिगमनाविरहतैं तिन आकाशादिक च्यारोंद्रव्योंके संयोगकूं तुल्यरूप करिकैं ता परत्वअपरत्वकी असमवायिकारणता प्राप्त होवैगी ॥ कालपिण्डके संयोगके असमवायिकारणता—तिसकी अपेक्षा करिकै एक कालके संयोगकूं ता परत्वअपरत्वकी असमवायिकारणता माननेविषे अत्यन्त लाघव है। यातैं सो कालपिण्डसंयोग हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण है। ऐसे संयोगका आश्रयरूप करिकै ता कालकी सिद्धि सम्भवै है इति ॥

अन्य ग्रन्थकारोंका कालविषयकअनुमान—और केईकग्रंथकार तौं इस प्रकारके अनुमानकरिकै ता कालकी सिद्धि करे हैं—तहां सूर्यकी बहुत क्रियावों करिकैं विशिष्ट पिण्डके ज्ञानतैं कालिक परत्वकी उत्पत्ति होवै है और ता सूर्यकी अल्पक्रियावों करिकै विशिष्ट पिण्डके ज्ञानतैं कालिक अपरत्वकी उत्पत्ति होवै है अर्थात् यह पिण्ड इस पिण्डकी अपेक्षा करिकै सूर्यकी बहुत क्रियावोंवाला है। या प्रकारके विशिष्टज्ञानतैं ता पिण्डविषे कालिकपरत्वकी उत्पत्ति होवै है और यह पिण्ड इस पिण्डकी अपेक्षा करिकै सूर्यकी अल्पक्रियावोंवाला है। या प्रकारके विशिष्टज्ञानतैं ता पिण्डविषे कालिक अपरत्वकी उत्पत्ति होवै है। यह न्यायशास्त्रका सिद्धांत है। यातैं यह अनुमान सिद्ध होवै है। अनुमानका स्वरूप—**तद्विशिष्टज्ञानं विशेषणविशेष्योभयसंबन्धघटकसापेक्षं साक्षात्संबन्धाभावे सति विशिष्टज्ञानत्वात् लोहितस्फटिक इति ज्ञानवत्** ॥ अर्थ यह—यह शरीरादिरूप पिण्ड सूर्यकी बहुत क्रियावोंवाला है या प्रकारका जो ता कालिकपरत्वका निमित्तकारण रूप विशिष्टज्ञान है सो विशिष्टज्ञान ता क्रिया रूप विशेषण तथा पिण्डरूप विशेष्य दोनोंके संबंधका घटक जो कोई पदार्थ है ता पदार्थकी अपेक्षावाला होणेयोग्य है। ता विशेषणविशेष्य दोनोंके साक्षात् सम्बन्धके अभावहूए विशिष्टज्ञान होणेतैं। जो जो ज्ञान विशेषणविशेष्य दोनोंके साक्षात्सम्बन्धके अभावहूए विशिष्टज्ञान होवै है सो सो ज्ञान ता विशेषणविशेष्य दोनोंके सम्बन्धका घटक जो कोई पदार्थ है ता पदार्थकी अपेक्षावाला भी अवश्य होवै है, जैसे लोहितस्फटिक यह विशिष्टज्ञान है। तहां इस ज्ञानविषे शुक्लवर्णवाला

स्फटिक तौं विशेष्य है और रक्तवर्णरूप लोहित विशेषण है । तहां सो लोहितरूप विशेषण साक्षातूसम्बन्ध करिकै तौं ता स्फटिकविषे रहता नहीं अर्थात् संयोग समवाय इन दोनों सम्बन्धोंका नाम साक्षातूसम्बन्ध है । ऐसे साक्षात्संबंध करिकै सो लोहितरूप विशेषण ता स्फटिकविषे रहता नहीं । किंतु जपाकुसुमादिक द्रव्योंविषे हीं सो लोहितरूप समवायरूप साक्षातसंबंध करिकै रहे है तिन जपाकुसुमादिक द्रव्यका ता स्फटिकके साथि संयोगसंबंध होवै है । यातैं स्वसमवायिसंयोगरूप परंपरासंबंध करिकै सो लोहितरूप ता स्फटिकविषे प्रतीत होवै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता लोहितरूपका ग्रहण करणा । ता लोहितरूपका समवायि कारणरूप सो जपाकुसुमादिक द्रव्य है, ता जपाकुसुमादिक द्रव्यका संयोगसंबंध ता स्फटिकके साथि है । इस प्रकार ता लोहितरूप विशेषणका ता स्फटिकरूपविशेष्यके साथि जो स्वसमवायिसंयोगरूप परंपरासंबंध है ता संबंधका घटक सो जपाकुसुमादिक द्रव्य है । यातैं लोहित स्फटिक यह विशिष्टज्ञान ता लोहितरूप विशेषणके तथा ता स्फटिकरूप विशेष्यके संयोगसमवायरूप साक्षात् संबंधके अभावहूए भी विशिष्टज्ञानरूप है । यातैं सो विशिष्टज्ञान ता विशेषणविशेष्य दोनोंके उक्तसंबंधके घटक ता जपाकुसुमादिक द्रव्यकी अपेक्षावाला भी है । तैसे यह पिंड सूर्यकी बहुत क्रियावोंवाला है या प्रकारके विशिष्टज्ञानविषे भी ते सूर्यकी बहुत क्रिया तौं विशेषणरूप हैं और सो शरीरादिरूप पिंड विशेष्यरूप है । तहां ता क्रियारूप विशेषणका ता पिंडरूप विशेष्यके साथि संयोगसमवायरूप साक्षात् संबंध तौं है नहीं, किन्तु स्वसमवायिसंयुक्त संयोगरूप परंपरासंबंध हीं है । ईहां स्वशब्द करिकै ता रविक्रियारूप विशेषणका ग्रहण करणा । ता क्रियाका समवायिकारण सो सूर्य है ता सूर्यके संयोगवाला सो काल है, ता कालका संयोगसंबंध ता पिंडविषे है । इस प्रकार ता रविक्रियारूप विशेषणका ता पिंडरूप विशेष्यके साथि जो स्वसमवायिसंयुक्तसंयोगरूप परंपरासंबंध है ता परंपरासंबंधका घटक सो काल है । यातैं यह पिंड सूर्यकी बहुत क्रियावोंवाला है या प्रकारका जो विशिष्टज्ञान है सो विशिष्टज्ञान ता क्रियारूप विशेषणका ता पिंडरूप विशेष्यके साथि संयोगसमवायरूप साक्षातूसंबंधके अभावहूए भी विशिष्टज्ञानरूप है । यातैं सो विशिष्टज्ञान ता विशेषणविशेष्य दोनोंके संबंधका घटक जो कालरूप द्रव्य है ता कालकी अपेक्षावाला भी अवश्य होवैंगा इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै भी ता कालकी सिद्धि संभवै है ॥

अनुमानके पदोंपर विचार—तहां इस उक्त अनुमानविषे 'विशिष्टज्ञानत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'साक्षात्सबन्धाभावे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं 'रूपवान् घटः' या प्रकारके ज्ञानविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? ता ज्ञानविषे सो विशिष्टज्ञानत्वरूप हेतु तौं है परंतु सो विशेषणविशेष्य दोनोंके संबंधघटकपदार्थकी अपेक्षावत्त्वरूप साध्य है नहीं । जिस कारणतैं सो रूपविशेषण ता घटरूप विशेष्यविषे समवायरूप साक्षातूसंबंध करिकै

हीं रहे है किसी पदार्थघटित परंपरासंबंध करिकै रहता नहीं, ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'साक्षात् संबन्धाभावे सति' यह पद कथन कऱ्या है, तहां 'रूपवान् घटः' इस ज्ञानविषे ता रूपविशेषणका ता घटरूप विशेष्यके साथि साक्षात्संबंधका अभाव नहीं है, किंतु समवायरूप साक्षात्संबंध हीं है । यातैं 'रूपवान् घटः' इस विशिष्टज्ञानविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति ॥

कालविषे स्मृति प्रमाण—किंवा केवल इस उक्त अनुमानप्रमाण करिकै हीं सो काल सिद्ध नहीं है, किंतु श्रुतिस्मृतिरूप प्रमाण करिकै भी सो काल सिद्ध है। तहां श्रुति—**कलनात्सर्वभूतानां स कालः परिकीर्त्तितः** । अर्थ यह—सर्वजन्यपदार्थोंके आयुषकी संख्याकरणेतैं सो काल कह्या जावै है इति । तहां स्मृति—**कालः कलयतामहम्** । अर्थ यह—जन्य पदार्थोंके आयुषकी संख्या करावणेहाऱ्योंके मध्यविषे काल मैं हूं इति ॥

कालके गुण—इस प्रकारके उक्त लक्षणप्रमाण करिकै सिद्ध जो काल है ता कालविषे संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५ यह पांच गुण रहे हैं । काल एक विभु और नित्य है—ऐसा कालनामा द्रव्य भी पूर्वउक्त आकाशकी न्यांई एक है तथा विभु है तथा नित्य है । तहां ता कालकूं नाना मानणेविषे एक तौं गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है, सा गौरवदोषकी प्राप्ति ताकालकूं एकमानणेविषे होती नहीं । यातैं लाघवतैं ता कालकूं एक हीं मान्या चाहिये और ता कालके नानापणेविषे कोई प्रमाण भी नहीं है । या कारणतैं भी ता कालकूं एक हीं मान्या चाहिये इति ॥

उक्तबातोंमें प्रमाण—और ता कालका कार्यरूप जो कालिकपरत्व अपरत्व है ता परत्वअपरत्वरूप कार्यकी सर्वत्र प्रतीति होवै है और कार्यकी उत्पत्ति कारणतैं विना होती नहीं । यातैं जहां जहां ता परत्व अपरत्वकी प्रतीति होवै है तहां तहां सर्वत्र ता कालका संयोग अंगीकार कऱ्या चाहिये । सो सर्वत्र संयोग ता कालके विभु मानणेतैं विना संभवता नहीं । यातैं ता कालकूं विभु मान्या चाहिये । इस प्रकारकी युक्ति करिकै ता कालविषे विभुत्व हीं सिद्ध होवै है इति । और जो जो द्रव्य विभु होवै है सो सो द्रव्य नित्य हीं होवै है । जैसे विभु होणेतैं आत्मा नित्य है, तैसे विभु होणेतैं सो काल भी नित्य हीं मान्या चाहिये, किंवा ता कालकी उत्पत्तिविषे तथा विनाशविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । यातैं भी ता कालकूं नित्य हीं मान्या चाहिये इति । तहां पूर्व आकाशके निरूपणविषे जो आकाशके एकत्वका तथा विभुत्वका लक्षण कऱ्या था सोई हीं लक्षण ईहां कालके एकत्वका तथा विभुत्वका भी जानिलेणा और नित्यत्वका लक्षण तौं पूर्व पृथिवीनिरूपणविषे कथन करि आये हैं । सोई हीं लक्षण ईहां कालके नित्यत्वका भी जानिलेणा । कालको जगत्की आधारता—किंवा 'कालः सर्ववान्' अर्थ यह—काल सर्वपदार्थोंवाला है । या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै

है । ता प्रतीतिके बलतैं ता कालकूं सर्व पदार्थोंकी अधिकरणता सिद्ध होवै है । यातैं सो काल सर्वजगत्‌का आधाररूप है अर्थात् कालिकसंबंध करिकै ते सर्वपदार्थ ता कालविषे रहे हैं । यातैं ता कालविषे ता कालिकसंबंध करिकै सर्वजगत्‌की आधारता संभवै है इति । निमित्तकारणता—किंवा सो काल कार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण है । ता कालतैं विना कोई भी कार्य उत्पन्न होता नहीं । काहेतैं ? 'इदानीं घटो भवति।' अर्थ यह—इस कालविषे घट उत्पन्न होवै है । इत्यादिक प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । ता प्रतीतिके बलतैं ता कालकूं घटादिक सर्व कार्योंके प्रति निमित्तकारणता सिद्ध होवै है । यातैं सो काल सर्वकार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण है । **शंका**—'इदानीं घटो भवति' इत्यादिक प्रतीतियों करिकै ता कालकूं घटादिक सर्वकार्योंकी निमित्तकारणता कैसे सिद्ध होवै है ? **समाधान**—'इदानीं घटो भवति ।' अर्थ यह—इस कालविषे घट उत्पन्न होवै है तथा 'अद्य मठो भविष्यति' अर्थ यह—आजदिनविषे मठ उत्पन्न होवैगा तथा 'श्वः पटो भविता' अर्थ यह—कलदिनविषे पट उत्पन्न होवैगा इत्यादिक प्रतीतियां सर्व लोकोंकूं होवैं हैं । तिन प्रतीतियोंनैं तिस तिस घट मठ पटादिरूप कार्यविशेषके उत्पत्तिका अधिकरण रूपकरिकै सो सो 'इदानीम् अद्य श्वः' रूपकालविशेष विषय करता है और जो जो पदार्थ जिस जिस कार्यके उत्पत्तिका अधिकरणरूप करिकै व्यवहारका विषय होवै है सो सो पदार्थ तिस तिस कार्यके उत्पत्तिका नियमसैं हेतु होवै है । जैसे 'तन्तुषु पट उत्पद्यते' अर्थ यह—तन्तुवोंविषे पट उत्पन्न होवै है । इस प्रकारकी प्रतीतितैं ते तन्तु ता पटके उत्पत्तिका अधिकरणरूप करिकै व्यवहारका विषय होवै है । यातैं ते तन्तु ता पटके उत्पत्तिका भी हेतु है । तैसे सो काल भी तिस तिस कार्यके उत्पत्तिका अधिकरणरूप करिकै व्यवहारका विषय होवै है । यातैं सो काल तिस तिस कार्यके उत्पत्तिका हेतु भी अवश्य होवैगा और जो जो पदार्थ जिस जिस कार्यके उत्पत्तिका हेतु होवै है सो सो पदार्थ तिस तिस कार्यका भी नियमसैं हेतु होवै है । जैसे ते तन्तु ता पटके उत्पत्तिका हेतु होणेतैं ता पटरूप कार्यका भी हेतु हीं हैं तैसे सो काल भी तिन घटपटादिक कार्योंकी उत्पत्तिका हेतु होणेतैं तिन घटपटादिक कार्योंका भी अवश्य हेतु होवैगा । इस प्रकारकी युक्ति करिकै तिस तिस घटपटादिरूप कार्यविशेषके प्रति तिस तिस इदानीं अद्य श्वः रूप कालविशेषकूं कारणता सिद्ध होवै है । विशेषोंके कार्य्यकारणभावके साथ सामान्योंका भी कार्य्यकारण भाव—और यह शास्त्रकारोंका नियम है । **यद्विशेषयोः कार्यकारणभावः असति बाधके तत्सामान्ययोरपि कार्यकारणभावः** । अर्थ यह—जिन विशेषपदार्थोंका परस्पर कार्यकारण भाव होवै है किसी बाधकके नहीं विद्यमानहूए तिन सामान्यपदार्थोंका भी परस्पर कार्यकारणभाव होवै है । जैसे घ्राणइंद्रियकूं घ्राणज प्रत्यक्षके प्रति हीं कारणता है और रसनइंद्रियकूं रासनप्रत्यक्षके प्रति हीं कारणता है और चक्षुइंद्रियकूं चाक्षुषप्रत्यक्षके

प्रति हीं कारणता है और त्वकूइंद्रियकूं त्वाचप्रत्यक्षके प्रति हीं कारणता है और श्रोत्र-इंद्रियकूं श्रौत्रप्रत्यक्षके प्रति हीं कारणता है और मनइंद्रियकूं मानसप्रत्यक्षके प्रति हीं कारणता है । इस प्रकार घ्राणादिक विशेषइंद्रियोंका तथा घ्राणजादिक विशेषप्रत्यक्षोंका परस्पर कार्यकारणभाव प्रसिद्ध है और तिन इंद्रियोंका तथा तिन प्रत्यक्षज्ञानोंका सामान्यतैं कार्यकारणभाव मानणेविषे कोई बाधक है नहीं । यातैं इंद्रियत्वधर्मावच्छिन्न इंद्रियकूं प्रत्यक्षत्वधर्मावच्छिन्न प्रत्यक्षज्ञानके प्रति कारणता है । या प्रकारका सामान्यकार्यकारणभाव भी तहां अवश्य होवै है । या कारणतैं हीं **इन्द्रियजन्यज्ञानं प्रत्यक्षम्** । इस प्रकारका जन्य-प्रत्यक्षका लक्षण शास्त्रोंविषे कह्या है । तैसे पूर्वउक्त प्रतीतियोंके बलतैं तिस तिस घटमठपटादि-रूप कार्य विशेषके प्रति तिस तिस इदानीं अद्य श्वः रूप कालविशेषकूं कारणता अवश्य मानणी होवै है । तैसे तिस तिस ऋतुरूप कालविशेषविषे होणेहारे जे आतप वर्षा आम्रादिक फल इत्यादिक कार्यविशेष हैं तिस तिस कार्यविशेषके प्रति तिस तिस ऋतुरूप कालविशेषकूं कारणता अवश्य मानणी होवै है । इस प्रकार तिस तिस कार्यविशेषके प्रति तिस तिस काल-विशेषकूं कारणताके सिद्धहूए तिनोंके सामान्यकार्यकारणभावविषे कोई बाधक है नहीं । यातैं ‘ यद्विशेषयोः कार्यकारणभावः ’ इस पूर्व उक्त नियमके बलतैं कार्यत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न कार्यमात्रके प्रति कालत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न कालकूं अवश्य कारणता मानणी होवैगी । इस प्रकारकी युक्ति करिकै ता कालकूं सर्व कार्यमात्रकी कारणता सिद्ध होवै है । सा सर्वकार्यमात्रकी कारणता भी निमित्तकारणतारूप हीं जानणी । अर्थात् कार्यमात्रके प्रति सो काल निमित्तकारण है । द्वित्वादिकोंको लेकर कालके निमित्त माननेमें शंका—कार्यमात्रके प्रति ता कालकूं निमित्तकारणरूप कह्या । सो सम्भवता नहीं । काहेतैं ? ता कालविषे समवाय-सम्बन्धकरिकै उत्पन्न होणेहारे जे द्वित्व, द्विपृथक्त्व, संयोग, विभाग यह गुण हैं तिन गुणोंके प्रति सो काल समवायिकारण हीं है और समवायिकारण, असमवायिकारण इन दोनों कारणोंतैं भिन्न जो कारण है ताकूं निमित्तकारण कह्या है । यातैं तिन द्वित्वादिक गुणोंके प्रति समवायिकारणरूप कालकूं तिन द्वित्वादिक गुणोंके प्रति निमित्तकारणता नहीं सम्भवैगी, किंतु तिन द्वित्वादिकोंकूं छोडिकै अन्यकार्यमात्रविषे हीं ता कालकूं निमित्तकारणता कहणी होवैगी । यातैं कार्यमात्रके प्रति सो काल निमित्तकारण है यह कहणा असंगत है ।

कालिकसम्बन्धसे समाधान—ता कालकूं सर्वकार्यमात्रके प्रति जो निमित्तकारणता है सो कालिकसम्बन्ध करिकै हीं है । यातैं स्ववृत्तिद्वित्वादिकोंके प्रति समवायसंबंध करिकै ता कालकूं समवायिकारणताके हूए भी ता कालकूं कालिकसंबंध करिकै तिन द्वित्वादि-कोंके प्रति निमित्तकारणताविषे कोई भी बाधक नहीं है । यातैं सो काल कालिकसंबंध करिकै सर्वकार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण हीं है इति । कालके भेदाविषे शंका—कालके भेदविषे

कोई प्रमाण है नहीं, यातैं सो काल एक है । यह वार्त्ता जो पूर्व कथन करी थी, सो संभवती नहीं । काहेतैं ? अतीत, वर्त्तमान, भविष्यत्, क्षण, पल, घटिका, मुहूर्त्त, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर इत्यादिक कालका भेद सर्वलोकोंकूं प्रतीत होवै है । ता लोकप्रतीतिके बलतैं हीं सो कालका भेद सिद्ध होवै है । यातैं सो काल एक नहीं है किंतु नाना है ।

उपाधिभेदसे समाधान--जैसे वास्तवतैं भेदतैं रहित एक हीं पुरुष पाक पाठ इत्यादिक क्रियारूप उपाधिके भेदतैं पाचक पाठक इत्यादिक नाना संज्ञाकूं प्राप्त होवै है तैसे वास्तवतैं भेदतैं रहित सो एक हीं काल उपाधिके भेदतैं अतीतादिरूप नाना संज्ञाकूं प्राप्त होवै है । तहां सूर्यादिकोंकी क्रिया हीं ता कालका उपाधि होवै है, यह प्राचीन नैयायिकोंका मत है । और जन्यवस्तुमात्र हीं ता कालका उपाधि होवै है, यह नवीननैयायिकोंका मत है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया—पूर्व व्यतीत हूई जा सूर्यकी क्रिया है ता अतीतक्रियारूप विशेषण करिकै विशिष्ट हूआ सो काल अतीत काल कह्या जावै है और वर्तमान जा सूर्यकी क्रिया है ता वर्तमान क्रियारूप विशेषण करिकै विशिष्ट हूआ सो काल वर्त्तमानकाल कह्या जावै है और आगे होणेहारी जा सूर्यकी क्रिया है ता भविष्यत् क्रिया रूप विशेषण कारिकै विशिष्ट हूआ सो काल भविष्यत्काल कह्या जावै है । इस प्रकार तिन नवीन नैयायिकोंके मतविषे ता क्रियाके स्थानविषे जन्यवस्तुका प्रवेश करिकै ता कालविषे अतीतादिरूपता जानिलेणी अर्थात् अतीतजन्यवस्तुविशिष्ट काल अतीतकाल कह्या जावै है और वर्त्तमानजन्यविशिष्टकाल वर्त्तमान कह्या जावै है और भविष्यत्जन्यवस्तु-विशिष्टकाल भविष्यत्काल कह्या जावै है । इस प्रकार सो एक हीं काल ता अतीतादिरूप क्रिया करिकै विशिष्ट हूआ अथवा ता अतीतादिरूप जन्यवस्तुकरिकै विशिष्ट हूआ तिन अतीतादिक संज्ञावोंकूं प्राप्त होवै है । सो संज्ञाका भेद संज्ञीके एकताकूं निवृत्त करै नहीं । जैसे पाचक पाठक इत्यादिक संज्ञाका भेद संज्ञी पुरुषके एकताकूं निवृत्त करै नहीं इति । अब ता कालका उपाधि-रूप क्रिया विषे तथा जन्यवस्तुविषे अतीतत्व वर्तमानत्व भविष्यत्त्वका निरूपण करै हैं ॥

भूतकालका लक्षण—तहां **वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगित्वं अतीतत्वम्** । अर्थ यह—इदानींकाल-विषे वर्त्तमान जो ध्वंस है ता ध्वंसका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम अतीतत्व है । तहां इस वर्त्त-मान कालतैं पूर्व जितनीकी सूर्यकी क्रिया उत्पन्न होइकै नाश हूई हैं तथा जितनैंकी जन्यपदार्थ उत्पन्न होइकै नाश हूए हैं तिन सर्वक्रियावोंका ध्वंस तथा तिन सर्वजन्यपदार्थोंका ध्वंस इस वर्त्त-मानकालविषे विद्यमान है । ता वर्त्तमानध्वंसका प्रतियोगीपणा तिन क्रियावोंविषे तथा तिन जन्य-पदार्थोंविषे रहे है । यह हीं तिन क्रियावोंविषे तथा तिन जन्यपदार्थोंविषे अतीतपणा है इति ।

वर्तमानका लक्षण—**स्वध्वंसप्रागभावानाधिकरणकालवृत्तित्वं वर्त्तमानत्वम्** । अर्थ यह—ता क्रियाके तथा ता जन्यपदार्थके ध्वंसका तथा प्रागभावका अनधिकरणभूत जो काल है ता कालविषे जो ता क्रियाका तथा ता जन्यपदार्थका वर्त्तणा है यह हीं ता क्रियाविषे तथा

ता जन्यपदार्थविषे वर्त्तमानपणा है । तहां उत्पत्तिक्षणतैं लैके विनाशक्षणपर्यंत जितनैं कालविषे सा क्रिया तथा सो जन्यपदार्थ विद्यमान है तितना काल ता क्रियाके तथा ता जन्यपदार्थके प्रागभावका अधिकरण नहीं है। काहेतैं? ता क्रियारूप प्रतियोगीकी तथा ता जन्यपदार्थरूप प्रतियोगीकी उत्पत्ति करिकै ता क्रियाका प्रागभाव तथा ता जन्यपदार्थका प्रागभाव नष्ट होइ गया है और सो काल ता क्रियाके तथा ता जन्यपदार्थके प्रध्वंसाभावका भी अधिकरण नहीं है। जिस कारणतैं ता क्रियाका तथा ता जन्य पदार्थका सो प्रध्वंसाभाव आगे विनाशक्षणविषे उत्पन्न होणेहारा है ऐसे स्वध्वंसके तथा स्वप्रागभावके अनधिकरणभूतकालविषे जो ता क्रियाका तथा ता जन्यपदार्थका वर्तणा है यह हीं ता क्रियाविषे तथा ता जन्यपदार्थविषे वर्त्तमानपणा है इति।

भविष्यका लक्षण—वर्त्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वं भविष्यत्त्वम् । अर्थ यह--जे जे क्रिया तथा जे जे जन्यपदार्थ इस वर्त्तमानकालतैं आगे उत्पन्न होणेहारे हैं तिस तिस क्रियाका तथा तिस तिस जन्यपदार्थका इस वर्त्तमानकालविषे प्रागभाव रहे है ता वर्त्तमानप्रागभावका प्रतियोगीपणा तिस तिस क्रिया विषे तथा तिस तिस जन्यपदार्थविषे है। यह हीं तिस क्रिया विषे तथा तिस जन्यपदार्थविषे भविष्यत्पणा है इति। किंवा जैसे सो एक हीं काल ता उक्तक्रियादिरूप उपाधिके भेदतैं अतीत, वर्त्तमान, भविष्यत् इस प्रकारके व्यवहारका विषय होवै है तैसे सो एकहीं काल ता उपाधिके संबंधतैं क्षणादिक व्यवहारका भी विषय होवै है। अब क्षणकी उपाधिका वर्णन करे हैं । प्रथमक्षणकी उपाधिका लक्षण—तहां, **स्वजन्यविभागप्रागभावावच्छिन्नकर्म प्रथमक्षणोपाधि**। अर्थ यह—जिस क्रियारूप कर्मनैं जिस विभागकूं उत्पन्न कर्‍या है तिस विभागके प्रागभाव करिकै विशिष्ट हूआ जो सोई कर्म है सो विभाग प्रागभाव विशिष्टकर्म प्रथमक्षणका उपाधि है । तहां घटादिक मूर्त्तद्रव्योंविषे जो क्रियारूप कर्म उत्पन्न होवै है सो कर्म द्वितीयक्षणविषे ता घटका पूर्वदेशतैं विभाग उत्पन्न करे है । ता विभागकी उत्पत्ति क्षणविषे ता विभागका प्रागभाव नाश होई जावै है। यातैं स्वजन्यविभागके प्रागभाव विशिष्टहूआ सो कर्म एक हीं क्षण रहे है । यद्यपि सो कर्म आपणे उत्पत्तिक्षणतैं लैके पंचम क्षणविषे नाश होवै है तथापि तितनैंकाल पर्यंत सो विभाग प्रागभावरूप विशेषण रहता नहीं, किंतु ता कर्मकी उत्पत्तिके द्वितीयक्षणविषे हीं सो विभागका प्रागभाव नाश होई जावै है। और यद्यपि सो विभागप्रागभावरूप विशेषण अनादिहोणेतैं ता कर्मरूप विशेष्यकी उत्पत्तितैं पूर्व हीं विद्यमान था तथापि ता पूर्वकालविषे सो कर्मरूप विशेष्य नहीं था और विशेषण विशेष्य दोनोंके विद्यमान हूए हीं विशिष्ट व्यवहार होवै है। एकके विद्यमान हूए सो विशिष्ट व्यवहार होता नहीं, सा विभाग प्रागभावरूप विशेषणकी विद्यमानता तथा ता कर्मरूप विशेष्यकी विद्यमानता ता कर्मकी उत्पत्तिक्षणविषे हीं होवै है । यातैं जिस क्षणविषे सो कर्म उत्पन्न होवै है तिसी क्षणविषे सो कर्म ता स्वजन्यविभागप्रागभावरूप विशेषण करिकै विशिष्ट

होवै है । तिस क्षणतैं पूर्वक्षणविषे तथा उत्तरक्षणविषे सो कर्म ता विभागप्रागभावरूप विशेषण करिकै विशिष्ट होता नहीं । यातैं ता स्वजन्य विभागप्रागभाव विशिष्टकर्मविषे प्रथमक्षणकी उपाधिरूपता सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'विभागप्रागभावावच्छिन्नकर्म प्रथमक्षणोपाधि' इतनामात्रहीं जो ता प्रथमक्षणके उपाधिका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'स्वजन्य' यह विभागका विशेषण नहीं कथन करते तौं च्यारिक्षणपर्यंत रहणेहारे ता कर्मविषे एकक्षण उपाधिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? ता घटविषे स्थित एक क्रियाके नाशतैं अनन्तर ता घटविषे उत्पन्न होणेहारी जा दूसरी क्रिया है ता दूसरी क्रिया करिकै जन्य जो ता घटका पूर्वदेशतैं विभाग है ता विभागका प्रागभाव अनादि होणेतैं ता प्रथमक्रियाके विद्यमानकालविषे भी ता घटविषे स्थित है । यातैं ता द्वितीय क्रियाजन्य विभागके प्रागभावविशिष्ट हूई सा प्रथमक्रिया च्यारिक्षणपर्यंत रहै है । ता क्रियाविषे ता उक्तक्षणउपाधिके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्वजन्य' यह पद कथन कर्‌या है । तहां ता द्वितीयक्रियाजन्यविभागविषे ता प्रथमक्रिया करिकै जन्यत्व है नहीं । यातैं ता विभागके प्रागभावकूं लैके च्यारिक्षणपर्यंतस्थायी प्रथमक्रियाविषे ता एकक्षण उपाधिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥ द्वितीयक्षणविषे तद्व्यवहारोपपादक उपाधि—इस प्रकारतैं प्रथमक्षणविषे क्षणव्यवहारके उपपादन हूए भी द्वितीयक्षणविषे ता क्षणव्यवहारका उपपादन कैसे होवैंगा ? जिस कारणतैं ता द्वितीयक्षणविषे ता क्रियाजन्य विभागके उत्पन्न हूए ता विभागका प्रागभाव संभवता नहीं । तहां जो यह कहो ता द्वितीयक्षणविषे प्रथमक्रियातैं भिन्न दूसरी क्रिया ता घटविषे उत्पन्न होवै है सा दूसरी क्रिया हीं ता प्रथमक्रियाकी न्यांई स्वजन्य विभागके प्रागभावकरिकै विशिष्ट हूई ता दूसरेक्षणका उपाधि होवै है । सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतें ? एक हीं घटविषे क्षणक्षणविषे दूसरी दूसरी क्रियाकी उत्पत्ति मानणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । यातैं ता स्वजन्यविभागप्रागभावविशिष्ट कर्मरूप उपाधिके अभावतैं ता द्वितीयक्षणविषे सो क्षणव्यवहार नहीं होवैंगा ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब ता द्वितीयक्षणविषे भी ता क्षणव्यवहारका उपपादक उपाधिका वर्णन करे हैं । द्वितीय क्षणकी उपाधिका लक्षण—**स्वजन्यविभागनाश्यपूर्वसंयोगविशिष्टस्वजन्यविभागः द्वितीयक्षणोपाधिः** । अर्थ यह—ईहां दोनों स्वशब्दोंकरिकै ता कर्मरूप क्रियाका ग्रहण करणा, ता क्रिया करिकै जन्य जो विभाग है ता विभाग करिकै नाश होणेयोग्य जो पूर्वसंयोग है ता पूर्वसंयोग करिकै विशिष्ट ऐसा जो सो क्रियाजन्य विभाग है सो पूर्वसंयोगविशिष्ट विभाग ता द्वितीयक्षणका उपाधि है । ईहां यह तात्पर्य है—प्रथमक्षणविषे घटविषे क्रिया उत्पन्न होवै है और द्वितीयक्षणविषे ता घटका पूर्वदेशतैं विभाग उत्पन्न होवै है । ता घटगतविभागगुणका सा घटकी क्रिया असमवायिकारण होवै है । यातैं सो विभाग ता क्रियाकरिकै जन्य कह्या जावै है और तृतीयक्षणविषे सो विभाग

ता घटका जो पूर्वदेशके साथि संयोग है ता संयोगका नाश करे है। यातें सो पूर्वसंयोग ता विभाग करिकै नाश्य कह्या जावै है। ऐसे पूर्वसंयोग करिकै विशिष्ट हूआ सो क्रियाजन्य विभाग एकक्षणमात्र हीं रहे है क्षणतैं अधिक रहता नहीं, यद्यपि सो क्रियाजन्यविभाग उत्तरसंयोग करिकै नाश्य होणतैं तीन क्षणपर्यंत रहे है तथापि ता विभागरूप विशेष्यकी स्थितिपर्यंत सो पूर्वसंयोगरूप विशेषण रहता नहीं, किन्तु सो पूर्वसंयोग ता विभागकी उत्पत्तितैं द्वितीयक्षणविषे नाश होइ जावै है और यद्यपि सो पूर्वसंयोगरूप विशेषण ता विभागरूप विशेष्यकी उत्पत्तितैं पूर्व भी रहे है तथापि ता पूर्वकालविषे सो विभाग उत्पन्न हूआ नहीं और विशेषण विशेष्य दोनोंके विद्यमानहूए हीं सो विशिष्टव्यवहार होवै है। एकके विद्यमानहूए सो विशिष्टव्यवहार होवै नहीं सा पूर्वसंयोगरूप विशेषणकी विद्यमानता तथा ता विभागरूप विशेष्यकी विद्यमानता ता द्वितीयक्षणविषे हीं होवै है, ता द्वितीयक्षणतैं पूर्वक्षणविषे तथा उत्तरक्षणविषे होवै नहीं। यातैं जिस द्वितीयक्षणविषे सो विभाग उत्पन्न हूआ है तिस द्वितीयक्षणविषे हीं सो विभाग ता पूर्वसंयोग करिकै विशिष्ट होवै है तिस क्षणतैं पूर्वक्षणविषे तथा उत्तरक्षणविषे सो विभाग ता पूर्वसंयोग करिकै विशिष्ट होता नहीं। यातैं ता पूर्वसंयोगविशिष्टविभागविषे ता द्वितीयक्षणकी उपाधिरूपता संभवै है इति ॥ २ ॥ तृतीय क्षणविषे व्यवहारोपपादक उपाधि—अब तृतीयक्षणविषे भी ता क्षणव्यवहारके उपपादक उपाधिका वर्णन करे हैं। लक्षण—**पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्नोत्तरसंयोगप्रागभावः तृतीयक्षणोपाधिः**। अर्थ यह—पूर्वसंयोगके नाशकरिकै विशिष्ट जो उत्तरसंयोगका प्रागभाव है सो तृतीयक्षणका उपाधि है। ईहां यह तात्पर्य है—प्रथमक्षणविषे ता घटविषे क्रिया उत्पन्न होवै है और द्वितीयक्षणविषे ता क्रिया करिकै ता घटका पूर्वदेशके साथि विभाग उत्पन्न होवै है और ता घटका जो पूर्वदेशके साथि संयोग है ता संयोगका नाश करणेहारा सो क्रियाजन्य विभाग हीं है। यातैं तृतीयक्षण विषे ता विभागकरिकै ता पूर्वसंयोगका नाश होवै है और चतुर्थक्षणविषे तिस घटका ता क्रियाजन्य जो उत्तरदेशके साथि संयोग होणा है तिस उत्तरसंयोगका प्रागभाव ता तृतीयक्षणविषे तिस घटविषे विद्यमान है और सो पूर्वसंयोगका नाश भी ता तृतीयक्षणविषे विद्यमान है। यातैं ता पूर्वसंयोगनाशरूप विशेषण करिकै विशिष्ट हूआ सो उत्तरसंयोगका प्रागभाव एकक्षणपर्यंत हीं रहे है, एकक्षणतैं अधिककाल रहता नहीं। काहेतैं? जिस प्रागभावके प्रतियोगीका उत्पादक जा कारणसामग्री है सा कारणसामग्री हीं ता प्रागभावका नाश होवै है। यातैं जिस चतुर्थक्षण विषे ता उत्तरसंयोगरूप प्रतियोगीकी उत्पत्ति होवै है तिस चतुर्थक्षणविषे हीं ता उत्तरसंयोगके प्रागभावका नाश होवै है। यद्यपि सो प्रागभाव अनादि है यातैं जिस तृतीयक्षणविषे ता पूर्वसंयोगका नाश हूआ है तिस तृतीयक्षणतैं पूर्वकालविषे भी सो उत्तरसंयोगका प्रागभाव रहे है तथापि तिस पूर्वकालविषे सो पूर्वसंयोगका नाशरूप विशेषण था नहीं और यद्यपि सो पूर्व-

संयोगका नाशरूप प्रध्वंसाभाव अनंत है यातैं जिस चतुर्थक्षणविषे ता उत्तरसंयोगके प्रागभावका नाश हूआ है तिस चतुर्थक्षणतैं उत्तरकालविषे भी सो पूर्वसंयोगका नाश रूप विशेषण रहैंगा तथापि ता उत्तर कालविषे सो उत्तर संयोगका प्रागभावरूप विशेष्य रहता नहीं और विशेषण विशेष्य दोनोंके विद्यमान हूए हीं सो विशिष्टव्यवहार होवे है। एकके विद्यमान हूए सो विशिष्टव्यवहार होता नहीं । सा पूर्वसंयोगनाशरूप विशेषणकी विद्यमानता तथा उत्तरसंयोगप्रागभावरूप विशेष्यकी विद्यमानता तिस तृतीयक्षणविषे हीं होवै है । तिस तृतीयक्षणतैं पूर्वकालविषे तथा उत्तरकालविषे ता विशेषणविशेष्य दोनोंकी विद्यमानता होवै नहीं । यातैं ता पूर्वसंयोगके नाशविशिष्ट उत्तरसंयोगके प्रागभावविषे ता तृतीयक्षणकी उपाधिरूपता सम्भवै है इति ॥ ३ ॥

चतुर्थ क्षणविषे क्षणव्यवहारोपपादकोपाधि—अब चतुर्थक्षणविषे ता क्षणव्यवहारके उपपादक उपाधिका निरूपण करे हैं । लक्षण—**उत्तरसंयोगावच्छिन्नकर्म चतुर्थक्षणोपाधि** । अर्थ यह—जिस क्रियारूप कर्म करिकै ता घटका जो उत्तरदेशके साथि संयोग हूआ है तिस उत्तरसंयोग करिकै विशिष्ट हूआ सो कर्म चतुर्थक्षणका उपाधि होवै है । इहां यह तात्पर्य है—प्रथमक्षणविषे घटादिक मूर्त्तद्रव्यविषे क्रिया उत्पन्न होवै है और द्वितीयक्षणविषे ता क्रिया करिकै ता घटका पूर्वदेशतैं विभाग उत्पन्न होवै है और तृतीयक्षणविषे ता विभाग करिकै ता घटका पूर्वदेशके साथि संयोग नाश होवै है और चतुर्थक्षणविषे ता क्रियाकरिकै ता घटका उत्तरदेशके साथि संयोग उत्पन्न होवै है सो उत्तरसंयोग हीं ता क्रियाका नाशक है । यातैं ता उत्तरसंयोग करिकै पंचमक्षणविषे सा क्रिया नष्ट होइ जावै है और जिस चतुर्थक्षणविषे ता क्रियाजन्य उत्तरसंयोग उत्पन्न हूआ है तिस चतुर्थक्षणविषे सा क्रिया विद्यमान है। यातैं ता उत्तरसंयोगरूप विशेषणकरिकै विशिष्ट हूआ सो क्रियारूप कर्म ता एकचतुर्थक्षणविषे हीं रहे है । ता चतुर्थक्षणतैं पूर्वकालविषे तथा उत्तरकालविषे रहता नहीं । यद्यपि जिस चतुर्थक्षणविषे सो उत्तरसंयोग उत्पन्न हूआ है तिस चतुर्थक्षणतैं पूर्व भी तीन क्षणरूप कालविषे सो कर्मरूप विशेष्य रहे है तथापि तिस पूर्वकालविषे सो उत्तर-संयोगरूप विशेषण है नहीं और यद्यपि सो उत्तरसंयोगरूप विशेषण ता चतुर्थक्षणतैं लैके द्वितीयक्रियाजन्य विभागपर्यंत रहे है तथापि तितनैं कालपर्यंत सो कर्मरूप विशेष्य रहता नहीं और विशेषण, विशेष्य दोनोंके विद्यमानहूए हीं सो विशिष्टव्यवहार होवै है । एकके विद्यमानहूए सो विशिष्टव्यवहार होता नहीं, सा उत्तरसंयोगरूप विशेषणकी विद्यमानता तथा ता कर्मरूप विशेष्यकी विद्यमानता ता एकचतुर्थक्षणविषे हीं होवै है । ता चतुर्थक्षणतैं पूर्वक्षणविषे तथा उत्तरक्षणविषे तिन दोनोंकी विद्यमानता होवै नहीं । यातैं ता उत्तरसंयोग-विशिष्ट कर्मविषे ता चतुर्थक्षणकी उपाधिरूपता सम्भवै है इति ॥ ४ ॥

उत्तरक्षणतैं अनन्तर क्षणव्यवहारपर शंका—ता उत्तरसंयोगतैं अनन्तर सा क्रिया नाश होइ जावै है । यातैं ता उत्तरसंयोगतैं अनन्तर क्षणव्यवहार नहीं होवैंगा । इसका समाधान—ता एकक्रियाके नाशहूए भी दूसरी क्रियाकी उत्पत्ति करिकै पूर्वकी न्यांई सो क्षणव्यवहार सम्भव होइ सके है । इस रीतिसैं तृतीयचतुर्थादिक क्रियावों करिकै भी सो क्षणव्यवहार सम्भव होइ सके है । पलादि व्यवहार—इस प्रकार क्रियादिरूप उपाधिके सम्बन्ध करिकै ता एक हीं कालविषे सो प्रथम द्वितीयादिक्षण व्यवहार सम्भव होइ सके है । इस प्रकारके क्षणोंके समूह करिकै ता कालविषे पलव्यवहार होवै है और तिन साठपलोंके समूह करिकै ता कालविषे घटिकाव्यवहार होवै है । और तिन दो घटिकावों करिकै ता कालविषे मूहूर्त्तव्यवहार होवै है और तिन साढेतीन मुहूर्त्तों करिकै ता कालविषे प्रहर व्यवहार होवै है और तिन च्यारि-प्रहरों करिकै ता कालविषे दिन व्यवहार होवै है । तथा रात्रिव्यवहार होवै है और तिन पंचदश दिनरात्रियों करिकै ता कालविषे पक्षव्यवहार होवै है और तिन दो पक्षों करिकै ता कालविषे मासव्यवहार होवै है और तिन दोमासों करिकै ता कालविषे ऋतुव्यवहार होवै है और तिन तीन ऋतुवों करिकै ता कालविषे अयनव्यवहार होवै है और तिन दो अयनों करिकै ता कालविषे संवत्सर व्यवहार होवै है । इस प्रकार सो एक हीं काल क्रियादिरूप उपाधिके संबंधतैं क्षणतैं आदि लैके संवत्सरपर्यंत नानासंज्ञाकूं प्राप्त होवै है । वास्तवतैं सो काल एक हीं है इति ॥ इतिकालनिरूपणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

## दिशाद्रव्यका निरूपण ।

अब सप्तमे दिशारूप द्रव्यका निरूपण करे हैं । लक्षण—तहां **अकालत्वे सति अविशेषगुणा महती दिक्** ॥ १ ॥ दूसरा लक्षण—अथवा **प्राच्यादिव्यवहारहेतुः दिक्** ॥ २ ॥ तीसरा लक्षण—अथवा **दूरत्वान्तिकत्वधीहेतुः दिक्** ॥ ३ ॥

प्रथम लक्षणका निरूपण—अब इन तीन लक्षणोंविषे प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो द्रव्य कालतैं भिन्न होवै है तथा विशेषगुणोंतैं रहित होवै है तथा परममहत्त्व परिमाण-वाला होवै है; सो द्रव्य दिक् कह्या जावै है । तहां यह दिशारूप द्रव्य कालतैं भिन्न भी है तथा रूपादिक विशेषगुणोंतैं रहित भी है तथा परममहत्त्वपरिमाणवाला भी है । यातैं यह उक्त दिशाका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां 'अविशेषगुणा महती दिक्' इतनामात्र हीं जो ता दिशाका लक्षण करते ता लक्षण विषे 'अकालत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं कालविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सा दिशा विशेषगुणोंतैं रहित है तथा परममहत्त्वपरिणवाली है तैसे सो काल भी विशेषगुणोंतैं रहित है तथा परममहत्त्व परिमाणवाला है ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अकालत्वे सति'

यह पद कथन कऱ्या है । तहां कालविषे ता कालका भेद रहता नहीं। यातैं ता कालविषे ता उक्त दिशाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ' अकालत्वे सति महती दिक् ' इतना मात्र हीं जो ता दिशाका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' अविशेषगुणा ' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाशविषे तथा आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सा दिशा कालतैं भिन्न है तथा परममहत्त्वपरिमाणवाली है तैसे सो आकाश तथा आत्मा भी ता कालतैं भिन्न भी है तथा ता परममहत्त्व परिमाणवाला भी है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' अविशेषगुणा ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो आकाश तथा आत्मा विशेषगुणोंतैं रहित नहीं हैं, किंतु आकाशविषे तौं शब्दरूपविशेषगुण रहे है और आत्माविषे ज्ञानादिक विशेषगुण रहे हैं । यातैं ता आकाशआत्माविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ' अकालत्वे सति अविशेषगुणा दिक् ' इतनामात्र हीं जो ता दिशाका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' महती ' यह पद नहीं कथन करते तौं मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? ता दिशाकी न्यांई सो मन भी कालतैं भिन्न भी है तथा विशेषगुणोंतैं रहित भी है । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'महती ' यह पद कथन कऱ्या है तहां ता मनविषे सो महत्त्वपरिमाण है नहीं, किन्तु परमअणुत्वपरिमाण ता मनविषे है । यातैं ता उक्त लक्षणकी मनविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥

द्वितीयलक्षणका निरूपण—अब **प्राच्यादिव्यवहारहेतुः दिक् ।** इस द्वितीयलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां यह प्राची है, यह अवाची है, यह प्रतीची है, यह उदीची है, यह आग्नेयी है, यह नैऋती है, यह वायवी है, यह ऐशानी है, यह ऊर्ध्वा है, यह अधः है । इस प्रकारके शब्दरूप व्यवहार तथा ज्ञानरूप व्यवहार सर्वलोकोंकूं होवै हैं । तिन सर्वव्यवहारोंका जो हेतु होवै है सा दिशा कही जावै है । तहां इस प्रकारके व्यवहार ता दिशा करिकै हीं होवै हैं अन्य किसी पदार्थ करिकै ते व्यवहार होतै नहीं। यातैं ता दिशाका यह उक्त द्वितीय लक्षण भी संभवै है । तहां पूर्व उक्तकालके लक्षणकी न्यांई इस लक्षणविषे भी ता हेतु शब्द करिकै असाधारणनिमित्तकारणका हीं ग्रहण करणा। यातैं ता शब्दरूप व्यवहारके समवायिकारणरूप आकाशविषे तथा ता ज्ञानरूप व्यवहारके असमवायिकारणरूप आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । तथा ता शब्दरूप व्यवहारके असमवायिकारणरूप कंठादि स्थान आकाशसंयोगविषे तथा ता ज्ञानरूपव्यवहारके असमवायिकारणरूप आत्ममनःसंयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । तथा असाधारण पदके कहणे करिकै कालादिक साधारणकारणोंविषे भी ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । ऐसे प्राची आदिक उक्त व्यवहारोंका असाधारणनिमित्तकारण सा दिशा हीं है यातैं सो उक्त दिशाका लक्षण संभवै है इति ॥ २ ॥

दिशाओंकी पहिचान—तहां जिस जिस द्वीपखंडविषे जिस जिस दिशाविषे सूर्य उदय होवै है तिस तिस द्वीपखंडविषे सा सा दिशा प्राची दिशा कही जावै है और तिस तिस द्वीपखंडविषे ता प्राचीदिशाकी तरफ मुखकरिकै स्थित जो पुरुष है ता पुरुषके दक्षिणहस्तकी तरफ जा दिशा है सा दिशा अवाची दिशा कही जावै है । और ता पुरुषके वामहस्तकी तरफ जा दिशा है सा दिशा उदीची दिशा कही जावै है और ता पुरुषके पृष्ठभागकी तरफ जा दिशा है सा दिशा प्रतीची दिशा कही जावै है और ता पुरुषके मस्तकके ऊपरि जा दिशा है सा दिशा ऊर्ध्वदिशा कही जावै है और ता पुरुषके पादोंके नीचै जा दिशा है सा दिशा अधोदिशा कही जावै है और ता प्राचीनामा पूर्वदिशाके तथा ता अवाचीनामा दक्षिणदिशाके मध्यका जो कोण है सो कोण आग्नेयी दिशा कही जावै है और ता अवाचीनामा दक्षिणदिशाके तथा प्रतीची नामा पश्चिमदिशाके मध्यका जो कोण है सो कोण नैर्ऋती दिशा कही जावै है और ता प्रतीची नामा पश्चिमदिशाके तथा उदीचीनामा उत्तरदिशाके मध्यका जो कोण है सो कोण वायवी दिशा कही जावै है और ता उदीचीनामा उत्तरदिशाके तथा ता प्राचीनामा पूर्वदिशाके मध्यका जो कोण है सो कोण ऐशानी दिशा कही जावै है इति ॥

तीसरे लक्षणका निरूपण—अब दूरत्वान्तिकत्वधीहेतुः दिक् । इस तृतीय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां दैशिकपरत्वका नाम दूरत्व है और दैशिक अपरत्वका नाम अंतिकत्व है । ता दूरत्व अंतिकत्वकूं विषय करणेहारी जा यह वस्तु दूर है यह वस्तु समीप है या प्रकारकी बुद्धि है ता बुद्धिका जो द्रव्य असाधारण निमित्तकारण होवै है सो द्रव्य दिशा कह्या जावै है । यद्यपि ता परत्वअपरत्व विषयक बुद्धिके प्रति ता दिशाकूं साक्षात्कारणता नहीं है तथापि परंपरा करिकै ता दिशाकूं ता बुद्धिके प्रति निमित्तकारणता संभवै है । सो दिखावै हैं ता दैशिकपरत्व अपरत्वकूं विषय करणेहारी जा बुद्धि है ता बुद्धिविषे ता परत्व-अपरत्वरूप विषयकूं निमित्तकारणता है और ता परत्वअपरत्व गुणविषे दिक्पिंडसंयोगकूं असमवायिकारणता है और ता दिक्पिंडसंयोगविषे ता दिशाकूं समवायिकारणता है । इस प्रकारकी परंपरा करिकै ता दिशाकूं ता परत्वअपरत्व विषयकबुद्धिके प्रति असाधारण निमित्तकारणता संभवै है । तहां इस तृतीय लक्षणविषे भी ता हेतुशब्द करिकै जो असाधारण निमित्तकारणका ग्रहण कऱ्या है सो ता परत्वअपरत्व विषयक बुद्धिके समवायिकारणरूप आत्माविषे तथा असमवायिकारणरूप आत्ममनःसंयोगविषे तथा कालादिक साधारण निमित्तकारणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वास्तै ग्रहण कऱ्या है इति॥ ३॥

दिशामें प्रमाण—ता दिशाके इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणोंके संभव हूए भी प्रमाणके अभावतैं ता दिशाकी सिद्धि होवै नहीं । जिस कारणतैं लक्षण प्रमाण इन दोनों करिकै हीं वस्तुकी सिद्धि होवै है केवल लक्षणमात्र करिकै वस्तुकी सिद्धि होवै नहीं । यातैं ता दिशाकी सिद्धि

करणेहारा कोई प्रमाण भी अवश्य कह्या चाहिये । तहां उद्भूतरूप स्पर्शके अभावतैं ता दिशाविषे प्रत्यक्षप्रमाण तौं संभवता नहीं किंतु ता प्रत्यक्षतैं भिन्न हीं कोई प्रमाण कह्या चाहिये ऐसी शंकाके प्राप्तहूए । अब अनुमान प्रमाण—करिकै ता दिशाकी सिद्धि करे हैं । तहां समीपदेशविषे स्थित मूर्त्तद्रव्यकी अपेक्षा करिकै दूरदेशविषे स्थित मूर्तद्रव्यविषे दैशिकपरत्व रहे है और ता दूरदेशविषे स्थित मूर्त्तद्रव्यकी अपेक्षा करिकै ता समीपदेशविषे स्थित मूर्त्तद्रव्यविषे दैशिक अपरत्व रहे है । ते परत्वापरत्वे असमवायिकारणजन्ये जन्यगुणत्वात् घटनिष्ठरूपवत् । अर्थयह—ते परत्व अपरत्व दोनों गुण असमवायिकारण करिकै जन्य होणेयोग्य हैं । जन्यगुणरूप होणेतैं । जो जो जन्यगुण होवै है सो सो असमवायिकारण करिकै जन्य हीं होवै है जैसे घटनिष्ठ रूपगुण जन्यगुण है । यातैं सो रूप असमवायिकारण करिकै जन्य भी है तहां कपालोंका रूप हीं ता घटनिष्ठ रूपका असमवायिकारण है सो जन्यगुणत्वरूप हेतु ता परत्वअपरत्वविषे भी है । यातैं सो परत्वअपरत्व भी किसी असमवायिकारण करिकै अवश्य जन्य होवैगा । तहां जिस मूर्त्तद्रव्यविषे सो परत्वअपरत्व रहे है तिस मूर्त्तद्रव्यके साथि जो दिशाका संयोगसंबंध है ता संयोगविषे हीं ता परत्वअपरत्वकी असमवायिकारणता संभवै है । रूपादिक गुणोंविषे तथा पृथिवीआदिकोंके संयोगविषे ता परत्वअपरत्वकी असमवायिकारणता संभवती नहीं । जिस कारणतैं रूपादिक गुणोंतैं रहित वायुआदिकोंविषे तथा पृथिवीआदिकोंके संयोगतैं रहित नक्षत्रादिकोंविषे भी ता दैशिकपरत्वअपरत्वकी उत्पत्ति अनुभवसिद्ध हैं । इस प्रकार ता परत्वअपरत्वके असमवायिकारणरूप दिक्पिंडसंयोगका आश्रयरूप करिकै ता दिशाकी सिद्धि संभवै है । पदकृत्य—तहां 'जन्यगुणत्वात्' इस हेतुविषे स्थित जो जन्यगुण यह दो पद हैं तिन दोनों पदोंका फल पूर्वकालके साधक अनुमानविषे कथन करि आये हैं सो इहां भी जानि लेणा अथवा तिन दोनों अनुमानोंविषे 'जन्यभाववत्वात्' या प्रकारका हेतु कथन करणा । ईहां भी प्रध्वंसाभावविषे ता हेतुके व्यभिचारकी निवृत्ति करणे वासतै 'भाव' यह पद कथन कऱ्या है । और आकाशादिक नित्य पदार्थोंविषे ता हेतुके व्यभिचारकी निवृत्ति करणे वासतै 'जन्य' यह पद कथन कऱ्या है इति ।

दूसरे ग्रन्थकारोंका अनुमान—और केईक ग्रंथकार तौं इस प्रकारके अनुमान करिकै ता दिशाकी सिद्धि करे हैं । तहां बहुतर मूर्तसंयोगविशिष्ट पिंडके ज्ञानतैं दैशिकपरत्वकी उत्पत्ति होवै है और अल्पतर मूर्त्तसंयोग विशिष्ट पिंडके ज्ञानतैं दैशिकअपरत्वकी उत्पत्ति होवै है अर्थात् यह पिंड इस पिंडकी अपेक्षा करिकै मूर्त्तद्रव्योंके बहुतसंयोगों करिकै विशिष्ट है इस प्रकारके ज्ञानतैं तौं ता पिंडविषे दैशिकपरत्वकी उत्पत्ति होवै है और यह पिंड इस पिंडकी अपेक्षा करिकै मूर्त्तद्रव्योंके अल्पसंयोगों करिकै विशिष्ट है इस प्रकारके ज्ञानतैं ता पिंडविषे दैशिक अपरत्वकी उत्पत्ति होवैहै यातैं यह अनुमान सिद्ध भया । तद्विशिष्टज्ञानं विशेषणविशेष्योभयसम्बन्धघटकसापेक्षं

साक्षात्सम्बन्धाभावे सति विशिष्टज्ञानत्वात् लोहितः स्फटिक इति ज्ञानवत्। अर्थ यह— सो दैशिकपरत्व अपरत्वका निमित्तकारणभूत विशिष्टज्ञान ता मूर्त्तद्रव्यसंयोगरूप विशेषण तथा पिंडरूप विशेष्य दोनोंके संबंधके घटक द्रव्यकी अपेक्षावाला है, साक्षात्संबन्धके अभावहूए भी विशिष्टज्ञानरूप होणेतें। जो जो ज्ञान ता विशेषणविशेष्य दोनोंके साक्षात्संबन्धके अभावहूए भी विशिष्टज्ञानरूप होवैहै सो सो ज्ञान ता विशेषणविशेष्य दोनोंके सबन्धके घटक द्रव्यकी अपेक्षावाला हीं होवै है। जैसे लोहितस्फटिक यह ज्ञान है, तहां लोहितस्फटिक इस ज्ञानविषे शुक्लवर्णवाला स्फटिक तौं विशेष्य है और रक्तवर्णरूप लोहित विशेषण है ता लोहितरूप विशेषणका ता स्फटिकरूप विशेष्यविषे संयोगरूप वा समवायरूप साक्षात्संबंध तौं है नहीं, किंतु जपाकुसुमादिक द्रव्यविषे हीं ता लोहितका समवायरूप साक्षात्संबंध है और ता स्फटिकविषे तौं ता लोहितरूप विशेषणका स्वसमवायिसंयोगरूप परंपरासंबंध हीं है। ईहां स्वशब्दकरिकै ता लोहितरूप विशेषणका ग्रहण करणा ता लोहितका समवायिकारणभूत जो जपाकुसुमादिक द्रव्य है ता जपाकुसुमादिक द्रव्यका ता स्फटिकके साथि संयोगसंबंध है। इस प्रकारके परंपरासंबन्ध करिकै सो लोहित ता स्फटिकविषे प्रतीत होवै है, सो परंपरासंबंध ता जपाकुसुमादिक द्रव्य करिकै घटित हीं है। यातैं यह सिद्ध भया—जैसे लोहितस्फटिक यह ज्ञान ता लोहितरूप विशेषणका ता स्फटिकरूप विशेष्यके साथि साक्षात्संबंधके अभाव हूए भी विशिष्टज्ञानरूप है। यातैं सो ज्ञान ता लोहितरूप विशेषणके तथा ता स्फटिकरूप विशेष्यके ता उक्तपरम्परासम्बन्धका घटक जो जपाकुसुमादिक द्रव्य है ता द्रव्यकी अपेक्षावाला भी है। तैसे यह पिंड मूर्त्तद्रव्योंके बहुत संयोगों करिकै विशिष्ट है। तथा यह पिण्ड मूर्त्तद्रव्योंके अल्पसंयोगों करिकै विशिष्ट है। या प्रकारका जो ता दैशिक परत्वअपरत्वका निमित्तकारणभूत विशिष्टज्ञान है, ता विशिष्टज्ञानविषे भी सो पिण्ड तौं विशेष्य है और ते बहुतर मूर्त्तसंयोग वा अल्पतर मूर्तसंयोग विशेषणरूप हैं। तहां तिन संयोगरूप विशेषणोंका ता पिण्डरूप विशेष्यके साथि संयोगरूप वा समवायरूप साक्षात्सम्बन्ध तौं है नहीं, किंतु तिन मूर्त्तद्रव्योंविषे हीं तिन संयोगोंका समवायरूप साक्षात्संबंध है और ता पिण्डके साथि तौं तिन संयोगोंका स्वसमवायिसंयुक्तसंयोगरूप परम्परासम्बन्ध है। ईहां स्वशब्द करिकै तिन बहुतर मूर्त्तसंयोगोंका वा अल्पतर मूर्त्तसंयोगोंका ग्रहण करणा। तिन संयोगोंके समवायिकारणरूप ते मूर्त्तद्रव्य हैं, तिन मूर्त्तद्रव्योंका संयोगसम्बन्ध ता दिशाके साथि है। यातैं सा दिशा तिन मूर्त्तद्रव्यों करिकै संयुक्त कही जावै है, ता दिशाका संयोगसम्बन्ध ता पिण्डके साथि है। इस प्रकारके परम्परासंबन्ध करिकै ते संयोग ता पिण्डविषे विशेषणरूप होइकै प्रतीत होवै हैं ता परम्परासम्बन्धका घटक सा दिशा हीं है यातैं यह सिद्ध भया—यह पिण्ड बहुतर मूर्त्तसंयोगोंवाला है, यह पिण्ड अल्पतर मूर्त्तसंयोगोंवाला है, या प्रकारका सो उक्तविशिष्टज्ञान भी ता संयोगरूप

विशेषणका ता पिण्डरूप विशेष्यके साथि संयोगसमवायरूप साक्षात् सम्बन्धके अभावहूए भी विशिष्टज्ञान रूप है। यातैं सो विशिष्टज्ञान ता संयोगरूप विशेषणके तथा ता पिण्डरूप विशेष्यके ता उक्तपरम्परासम्बन्धका घटक जो दिशारूप द्रव्य है ता दिशारूप द्रव्यकी अवश्य करिकै अपेक्षा करैंगा। इस प्रकारके अनुमान करिकै ता सम्बन्धका घटकरूप करिकै ता दिशारूप द्रव्यकी सिद्धि सम्भवै है। पदकृत्य—तहां इस उक्त अनुमानविषे 'विशिष्टज्ञानत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'साक्षात्सम्बन्धाभावे सति' यह पद नहीं कथन करते, तौं 'रूपवान् घटः' इस विशिष्टज्ञानविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'साक्षात्सम्बन्धाभावे सति' यह पद कथन कऱ्या है। सो व्यभिचारदोषके निवृत्तिका प्रकार पूर्वकालसाधक अनुमानविषे विस्तारतैं कहि आये हैं, सो ईहां भी जानि लेणा इति॥

दिशाके गुण—इस प्रकारके लक्षणप्रमाण करिकै सिद्ध जा दिशा है ता दिशाविषे संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५ यह पंचगुण रहे हैं। दिशा भी एक, विभु तथा नित्य है—सा दिशा भी पूर्वउक्त आकाशकालकी न्यांई एक है तथा विभु है तथा नित्य है। तहां ता दिशाकूं नानारूप मानणेविषे एक तौं गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है और दूसरा ता दिशाके नानापणेविषे कोई प्रमाण भी है नहीं। जिस प्रमाणके बलतैं ता गौरवदोषकूं अंगीकार करिकै भी ता दिशाकूं नानारूप मानियें। यातैं सा दिशा एक हीं है इति। और यह मूर्तद्रव्य दूर है यह मूर्त्तद्रव्य समीप है या प्रकारकी प्रतीति सर्वदेशोंविषे स्थित सर्वप्राणीयोंकूं होवै है। सो यह प्रतीति ता मूर्त्तद्रव्यविषे स्थित दैशिकपरत्व अपरत्वकूं हीं विषय करे है। यातैं ता प्रतीतिके बलतैं सर्वदेशोंविषे स्थित सर्वमूर्त्तद्रव्योंविषे सो परत्वअपरत्व अंगीकार कऱ्या चाहिये और कारणतैं विना कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं। यातैं जिस जिस मूर्त्तद्रव्यविषे सो परत्वअपरत्व प्रतीत होवै है। तिस तिस मूर्त्तद्रव्यके साथि ता दिशाका संयोगसम्बन्ध अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये। सो दिशाका संयोग हीं ता परत्वअपरत्वका असमवायिकारण है और तिन सर्वमूर्त्तद्रव्योंके साथि ता एकदिशाका संयोगसम्बन्ध तबी सम्भवै, जबी ता सर्वत्र दिशाकूं व्यापक मानिये। व्यापकरूपता मानेतैं विना ता दिशाका तिन सर्वमूर्त्तद्रव्योंके साथि संयोग सम्भवता नहीं। यातैं ता दिशाकूं सर्वत्र व्यापक मान्या चाहिये। इस प्रकारकी युक्ति करिकै ता दिशाविषे विभुपणा सिद्ध होवै है इति। और जो जो द्रव्यविभु होवै है सो सो द्रव्य नित्य हीं होवै है। जैसे विभु होणेतैं आत्मा नित्य है। तैसे विभु होणेतैं सा दिशा भी नित्य हीं होवैंगी। इस प्रकारकी युक्ति करिकै ता दिशाविषे नित्यपणा सिद्ध होवै है, तहां एकत्व विभुत्व नित्यत्व इन तीनोंके जे पूर्व आकाशनिरूपणविषे लक्षण कहे हैं ते लक्षण ईहां दिशाके एकत्व विभुत्व नित्यत्वके भी जानि लेणे इति॥

सर्वाधारता—तहां जैसे सो पूर्व उक्त काल सर्वजगत्का आधार है तैसे यह दिशाभी सर्व जगत्का आधार है। तहां 'दिक् निखिलपदार्थवती' अर्थ यह—दिशा सर्व पदार्थोंवाली है। या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है सा प्रतीति हीं ता दिशानिष्ठ सर्वजगत्की आधारता विषे प्रमाण है। तहां ता दिशाकूं जो सर्वजगत्की आधारता है सो दैशिकसंबंध करिकै हीं है संयोगसमवायादिसंबंध करिकै ता दिशाकूं सर्वजगत्की आधारता है नहीं इति ॥

निमित्त कारणता—किंवा जैसे सो पूर्व उक्त काल कार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण है तैसे यह दिशा भी ता कार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण है। तहां 'इह घटो भवति इह पटो भवति' अर्थ यह—इस दिशाविषे घट उत्पन्न होवै है तथा इस दिशाविषे पट उत्पन्न होवै है। या प्रकारकी प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है सा प्रतीति हीं ता दिशानिष्ठ घटपटादिक सर्व-कार्यकी निमित्तकारणताविषे प्रमाण है, तहां ता दिशाकूं जो सर्वकार्यकी निमित्तकारणता है सो दैशिकसंबंध करिकै हीं है अन्य किसी संयोगसमवायादिक संबंध करिकै ता दिशाकूं सर्वजगत्की निमित्तकारणता है नहीं। यद्यपि ता दिशाविषे समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होणे हारे जे द्वित्वसंख्या द्विपृथक्त्व संयोग विभाग यह गुण हैं तिन गुणोंके प्रति ता दिशाकूं समवायिकारणता भी है तथापि दैशिकसंबंध करिकै तिन गुणोंके प्रति ता दिशाकूं निमित्त-कारणता भी है। यातैं सर्वकार्यमात्रके प्रति ता दिशाकूं निमित्तकारणता है या प्रकारके नियमका तिन द्वित्वादिक गुणोंविषे व्यभिचार होवै नहीं। इसपर शंका—'इह घटो भवति इह पटो भवति' इत्यादिक प्रतीतितैं ता दिशाविषे सर्व कार्य मात्रकी निमित्तकारणता पूर्व सिद्ध करी सा किस प्रकारतैं सिद्ध होवै है? इसपर समाधान—कोई पदार्थ पूर्वदिशाविषे हीं उत्पन्न होवै है और कोई पदार्थ दक्षिणदिशाविषे हीं उत्पन्न होवै है और कोई पदार्थ पश्चिमदिशाविषे हीं उत्पन्न होवै है और कोई पदार्थ उत्तर दिशाविषे हीं उत्पन्न होवै है और कोई पदार्थ ऊर्ध्वदिशाविषे हीं उत्पन्न होवै है और कोई पदार्थ अधोदिशाविषे हीं उत्पन्न होवै है और कोई कोई पदार्थ ऐशानीआदिक उपदिशावोंविषे हीं उत्पन्न होवै है। इस प्रकार तिस तिस पदार्थविशेषकी उत्पत्तिविषे तिस तिस पूर्वादिक दिशाविशेषकूं कारणरूपता सर्वके अनुभवसिद्ध है और जिन जिन विशेष पदार्थोंका परस्पर कार्यकारणभाव होवै है तिन तिन सामान्यपदार्थोंका भी परस्पर कार्यकारणभाव होवै है। या प्रकारका नियम पूर्व कालनिरू-पणविषे कथन करि आये हैं, ता न्यायके बलतैं इहां भी कार्यत्वधर्मविशिष्ट कार्यमात्रके प्रति दिक्त्वधर्मविशिष्ट दिशाकूं कारणरूपता सिद्ध होवै है, या प्रकारकी युक्ति करिकै ता दिशाविषे कार्यमात्रकी निमित्त कारण ता संभवै है इति ॥

उपाधिकृत भेदव्यवहारकी शंका—पूर्व दिशाकूं एक कह्या था सो संभवता नहीं। काहेतैं? सा दिशा जो कदाचित् एक होवै तौं यह प्राची दिशा है यह प्रतीची दिशा है इत्यादिक

भेदव्यवहार नहीं होणा चाहिये और सो भेदव्यवहार तौ लोकविषे प्रसिद्ध होवै है। यातें ता लोकव्यवहारतैं सा दिशा नानारूप मानी चाहिये । इसपर समाधान—जैसे एक हीं कालविषे भिन्न भिन्न उपाधिके संबंधतैं अतीत, वर्त्तमान, भविष्यत्, क्षण, पल इत्यादिक भेदव्यवहार होवै है तैसे एक हीं दिशाविषे भिन्न भिन्न उपाधिके संबंधतैं सो प्राची प्रतीची आदिक भेदव्यवहार भी संभव होइ सके है । तहां पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन यह पांच मूर्तद्रव्य हीं ता दिशाका उपाधिरूप होवै है अर्थात् वास्तवतैं एकरूप दिशाविषे जो प्राची प्रतीची इत्यादिक संज्ञावोंका भेद होवै है तिन संज्ञावोंके भेदविषे ते पृथिवी आदिक पंच मूर्तद्रव्य हीं निमित्तरूप होवै हैं । जैसे एक हीं देवदत्तनामा पुरुषविषे पाचक, पाठक इत्यादिक संज्ञावोंके भेदविषे पाक पाठ इत्यादिक क्रिया हीं निमित्तरूप होवै हैं । संज्ञा भेदका प्रकार—अब ता एक हीं दिशाविषे ता उपाधिके भेदतैं सो संज्ञाभेदका प्रकार निरूपण करे हैं—तहां जिस वस्तुकी अपेक्षा करिकै उदयगिरिके सन्निहित जो मूर्त्तद्रव्य है ता मूर्त्त द्रव्य करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा तिस वस्तुकी अपेक्षा करिकै प्राची दिशा कही जावै है । जैसे प्रयागकी अपेक्षा करिकै काशी उदयगिरिके सन्निहित है । यातें ता काशी करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा ता प्रयागकी अपेक्षा करिकै प्राची दिशा कही जावै है । तहां ता उदयगिरिसंयुक्त प्रथम मूर्त्तद्रव्यका संयोग तथा ता प्रथममूर्त्तद्रव्यसंयुक्त द्वितीयमूर्त्त द्रव्यका संयोग तथा ता द्वितीयमूर्त्तद्रव्यसंयुक्त तृतीयमूर्त्तद्रव्यका संयोग तथा ता तृतीय मूर्त्त द्रव्यसंयुक्त चतुर्थमूर्त्तद्रव्यका संयोग तथा ता चतुर्थमूर्त्तद्रव्यसंयुक्त पंचममूर्त्तद्रव्यका संयोग इसतैं आदि लैके जितनैंकी उदयगिरि आदिक मूर्त्तद्रव्योंके संयुक्तसंयोग ता प्रयागविषे रहे हैं तिन संयुक्तसंयोगोंकी अपेक्षा करिकै ता काशीविषे ते संयुक्तसंयोग अल्प रहे हैं यह हीं ता काशीविषे ता प्रयागकी अपेक्षाकरिकै ता उदयगिरिका सन्निहितपणा है इति ॥ और जिस वस्तुकी अपेक्षा करिकै ता उदयगिरिके व्यवहित जो मूर्त्तद्रव्य है ता मूर्त्तद्रव्य करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा तिस वस्तुकी अपेक्षा करिकै प्रतीची दिशा कही जावै है । जैसे गयाकी अपेक्षा करिकै सा काशी ता उदयगिरिके व्यवहित है । यातें ता काशी करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा ता गयाकी अपेक्षा करिकै प्रतीची दिशा कही जावै है । तहां ता उदयगिरिआदिक मूर्त्तद्रव्योंके जितनैंकी ते संयुक्तसंयोग ता गयाविषे रहे हैं । तिन संयुक्तसंयोगोंकी अपेक्षा करिकै ता काशीविषे ते संयुक्तसंयोग अधिक रहे हैं । यह हीं ता काशीविषे ता गयाकी अपेक्षा करिकै ता उदयगिरिका व्यवहितपणा है इति । और जिस वस्तुकी अपेक्षा करिकै सुमेरुपर्वतके सन्निहित जो मूर्त्तद्रव्य है ता मूर्त्तद्रव्य करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा ता वस्तुकी अपेक्षा करिकै उदीची दिशा कही जावै है । जैसे रामेश्वरक्षेत्रकी अपेक्षा करिकै सा काशी ता सुमेरुपर्वतके सन्निहित है यातें ता काशी

करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा ता रामेश्वर क्षेत्रकी अपेक्षा करिकै उदीची दिशा कही जावै है। तहां ता सुमेरु आदिक मूर्त्तद्रव्योंके जितनैंकी ते संयुक्तसंयोग ता रामेश्वरक्षेत्र-विषे रहे हैं तिन संयुक्तसंयोगोंकी अपेक्षा करिकै ता काशीविषे ते संयुक्तसंयोग अल्प रहे हैं। यह हीं ता काशीविषे ता रामेश्वरक्षेत्रकी अपेक्षा करिकै ता सुमेरुपर्वतका सन्निहित-पणा है इति। और जिस वस्तुकी अपेक्षा करिकै ता सुमेरुपर्वतके व्यवहित जो मूर्त्तद्रव्य है ता मूर्त्तद्रव्य करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा तिस वस्तुकी अपेक्षा करिकै अवाची दिशा कही जावै है। जैसे ता काशीकी अपेक्षा करिकै सो रामेश्वरक्षेत्र ता सुमेरुपर्वतके व्यवहित है। यातैं ता रामेश्वरक्षेत्र करिकै विशिष्ट जा दिशा है सा दिशा ता काशीकी अपेक्षा करिकै अवाची दिशा कही जावै है। तहां ता सुमेरुआदिक मूर्त्तद्रव्योंके जितनैंकी ते संयुक्तसंयोग ता काशीविषे रहे हैं तिन संयुक्तसंयोगोंकी अपेक्षा करिकै ता रामेश्वरक्षेत्रविषे ते संयुक्तसंयोग अधिक रहे हैं। यह हीं ता रामेश्वरक्षेत्रविषे ता काशीकी अपेक्षा करिकै ता सुमेरुपर्वतका व्यवहितपणा है इति। इस प्रकार भिन्नभिन्न मूर्त्तद्रव्यरूप उपाधिके सम्बन्धतैं सा एक हीं दिशा प्राची प्रतीची इत्यादिक नानासंज्ञावोंकूं प्राप्त होवै है। किंवा जैसे इस खण्डविषे ता उक्त-उपाधिके सम्बन्धतैं ता दिशाविषे सो प्राची प्रतीची आदिक भेदव्यवहार होवै है। तैसे दूसरे खण्डोंविषे भी ता उपाधिके सम्बन्धतैं हीं ता दिशाविषे सो भेद व्यवहार होवै है। परंतु तिन सर्वखण्डोंविषे सो सुमेरुपर्वत तौं उत्तरकी तरफ हीं स्थित होवै है इति। ईहां दीधितिकारका तौं यह मत है। आकाश, काल, दिशा यह तीनों द्रव्य ईश्वरतैं पृथक् नहीं हैं, किन्तु ईश्वरविषेहीं तिनोंका अन्तर्भाव है यातैं पूर्व कथन कन्या जो क्रियामात्र वा जन्यवस्तु-मात्र कालका उपाधि है। तिस तिस उपाधि करिकै विशिष्ट हूआ सो ईश्वरही अतीत, वर्त्तमान, भविष्यत्, क्षण, पल इत्यादिक व्यवहारोंका विषय होवै है तथा पूर्वकथन कन्ये जे मूर्त्तद्रव्यरूप दिशाके उपाधि हैं तिस तिस मूर्त्तद्रव्यरूप उपाधि करिकै विशिष्ट हूआ सो ईश्वर हीं प्राची, प्रतीची इत्यादिक व्यवहारोंका विषय होवै है अर्थात् तिस तिस उपाधिविशिष्ट ईश्वरतैं हीं ते अतीत वर्त्तमानादिक व्यवहार तथा प्राची प्रतीची आदिक व्यवहार सिद्ध होइ सके हैं यातैं तिन व्यवहारोंकी सिद्धि वासतै पृथक् कालदिशाकी कल्पना करणी अनुचित है इति। दिशाविषे नव्यनैयायिक—ईहां केईक नवीन नैयायिक तौं यह कहे हैं ईश्वरकूं हीं दिक्काल-रूपता है अथवा तिस तिस जीवात्माकूं दिक्कालरूपता है। इस प्रकारके एक अर्थकूं सिद्ध करणेहारी कोई युक्ति है नहीं। यातैं ता एक अर्थका साधकयुक्तिरूप विनिगमनाके अभावतैं ता ईश्वरकूं तथा तिस तिस जीवात्माकूं सर्वोकूं सा दिककालरूपता प्राप्त होवैगी ता अनेकरूपताकी अपेक्षा कारिकै ता दिक्कालकूं पृथक् मानणे विषे लाघव है। इसका दीधितिकारकृत खण्डन—और सो दीधितिकार जो यह कहै जे नैयायिक ता दिक्कालकूं ईश्वरतैं पृथक् माने हैं। तिन

नैयायिकोंनैं भी ता ईश्वरकूं ता दिक्कालकी न्यांई सर्व कार्यमात्रका कारणरूप करिकै हीं मान्या है तथा ता दैशिक परत्व अपरत्वका भी कारणरूप करिकै मान्या है, ऐसे कार्यमात्रका कारणरूप करिकै सिद्ध ईश्वरकूं हीं ता कार्यमात्रका जनक दिक्कालरूपता युक्त है और जीवात्माकूं ता कार्यमात्रकी कारणता तथा परत्वअपरत्वकी कारणता पूर्वसिद्ध है नहीं, किंतु कल्पना करणी होवैंगी। यातैं ता जीवात्माकूं सा दिक्कालरूपता युक्त नहीं है। या प्रकारकी युक्ति ता ईश्वरकूं हीं दिक्कालरूपता सिद्ध करे है ता जीवात्माकूं दिक्कालरूपता सिद्ध करती नहीं। यातैं ता दिक्कालका ता ईश्वरविषे हीं अंतर्भावसंभवै है, ता जीवात्माविषे अंतर्भाव संभवता नहीं। नवीनकृत दीधितिकारका खण्डन—सो यह दीधितिकारका कहणा संभवता नहीं। काहेतैं ? जो कदाचित् ता ईश्वरकूं तथा ता दिक्कालकूं कार्यमात्रके प्रति जनकता होवै तौं ता कार्य मात्रका जनकरूप करिकै सिद्ध ईश्वरविषे ता कार्यमात्रके जनक दिक्कालका अंतर्भाव संभवै, परंतु ता ईश्वरकूं तथा ता दिक्कालकूं ता कार्यमात्रकी जनकता हीं नहीं है, किंतु ता ईश्वरका जो प्रयत्नरूप कृति है ता कृतिकूं हीं ता कार्यमात्रके प्रति कारणता है, कृतिके आश्रयरूप कर्त्ताकूं कार्यकी जनकताविषे कोई भी प्रमाण नहीं है और जैसे ईश्वरकूं ता कार्यमात्रकी जनकता नहीं है तैसे संबंधके घटकरूप ता दिक्कालकूं भी सा कार्यमात्रकी जनकता नहीं है, किंतु ता दिक्कालके जे पूर्व उपाधि कथन कन्ये हैं तिन उपाधियोंकूं हीं ता कार्यमात्रकी जनकता है और परत्व, अपरत्व इन दोनोंकी गुणरूपताविषे हीं कोई प्रमाण नहीं है, किंतु सान्निकृष्टत्व विप्रकृष्टत्व इन दोनों धर्मों करिकै हीं यह वस्तु पर है यह वस्तु अपर है या प्रकारके व्यवहारकी सिद्धि होइ सकै है। यातैं ता परत्व अपरत्व गुणकी जनकता भी ता दिक्कालविषे नहीं है इति। नवीनोंका भी खण्डन—सो यह नवीनोंका मत समीचीन नहीं है। काहेतैं ? पूर्वउक्त कालके तथा दिशाके जे नाना उपाधि हैं तिननाना उपाधियोंविषे कार्यमात्रकी कारणता कल्पना करणेविषे महान् गौरव दोषकी प्राप्ति होवै है, तिसकी अपेक्षा करिकै एककालविषे तथा एकदिशाविषे ता कार्यमात्रकी कारणतामानणेविषे अत्यंत लाघव है। यातैं सो नवीनोंका मत असंगत है इति। दीधितिकारका खण्डन—तैसे सो पूर्व उक्त दीधितिकारका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं ? काल दिशा इन दोनों द्रव्योंका जो ईश्वरविषे अंतर्भाव अंगीकार करीये तौं कालिक परत्व अपरत्वकी तथा दैशिक परत्व-अपरत्वकी परस्पर विलक्षणता सिद्ध नहीं होवैंगी। काहेतैं ? कारण सामग्रीकी विलक्षणतातैं हीं कार्यकी विलक्षणता होवै है, सा कारणसामग्रीकी विलक्षणता ईहां है नहीं, किंतु सा ईश्वररूप कारणसामग्री एक हीं है और ता दैशिकपरत्वअपरत्वविषे ता कालिक परत्वअपरत्वतैं विलक्षणता सर्वलोकोंकूं अनुभवसिद्ध है तथा आगे गुणनिरूपणनामा तृतीय परिच्छेदविषे सा विलक्षणता युक्तिकरिकै सिद्ध करणी है। यातैं ता परत्वअपरत्वके विलक्षणताकी

सिद्धि वासतै ता दिक्कालकूं ईश्वरतैं पृथक् हीं मानणा योग्य है। इस प्रकार आकाशकूं भी ता ईश्वरतैं पृथक् हीं मानणा योग्य है। तहां ईश्वरतैं आकाशकूं पृथक् मानणेविषे युक्ति तौं पूर्व आकाशनिरूपणविषे कथन करि आये हैं इति॥ इति दिक् निरूपणं समाप्तम्॥ ७॥

आत्मनिरूपणम्।

आत्माका लक्षण—तहां अब अष्टमे आत्मारूप द्रव्यका निरूपण करे हैं। **ज्ञानाद्यधिकरणम् आत्मा॥ १॥** द्वितीय लक्षण—अथवा **आत्मत्वजातिमान् आत्मा॥ २॥**

प्रथम लक्षणका निरूपण—अब इन दोनों लक्षणोंविषे प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न इन तीन गुणोंका अधिकरण होवै है सो द्रव्य आत्मा कह्या जावै है। तहां ते ज्ञानादिक तीन गुण समवायसंबंध करिकै आत्माविषे हीं रहे हैं ता आत्मातैं भिन्न किसी भी पृथिवी आदिक द्रव्यविषे ते ज्ञानादिक गुण रहते नहीं। यातैं यह ज्ञानादिकोंका अधिकरणत्वरूप आत्माका लक्षण संभवै है॥ इति॥ १॥

द्वितीय लक्षणका निरूपण—अब **आत्मत्वजातिमान् आत्मा**—इस द्वितीयलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं—तहां जो द्रव्य समवायसंबंध करिकै आत्मत्वजातिवाला होवै है सो द्रव्य आत्मा कह्या जावै है। तहां सा आत्मत्वजाति समवायसंबंध करिकै केवल आत्माविषे हीं रहे है। ता आत्मातैं भिन्न किसी भी पृथिवी आदिक द्रव्यविषे रहती नहीं। यातैं यह आत्मत्वजातिमत्त्वरूप आत्माका लक्षण भी संभवै है, इति॥ २॥

आत्माके भेद—इस प्रकारके दो लक्षणोंकरिकै लक्षित सो आत्मा दो प्रकारका होवै है तहां एक तौं जीवात्मा होवै है और दूसरा ईश्वरात्मा होवै है। इस जीवात्माकूं शास्त्रविषे क्षेत्रज्ञ भी कहे हैं। और इस ईश्वरात्माकूं शास्त्रविषे परमात्मा भी कहे हैं तथा ब्रह्म भी कहे हैं। तहां इस ईश्वरात्मा विषे जो सर्वजगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कर्तृत्वरूप उत्कृष्टपणा है यह हीं ता ईश्वरविषे जीवात्माकी अपेक्षा करिकै परमत्व है॥

जीवात्मा।

जीवात्माका पहिला लक्षण—यह जीव ईश्वरका भेद तबी सिद्ध होवै जबी ता जीवात्माका तथा ईश्वरात्माका भिन्न भिन्न लक्षण होवै ता भिन्नभिन्न लक्षणतैं विना तिन दोनोंका भेद सिद्ध होता नहीं, ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब प्रथम जीवात्माके लक्षणकूं कहे हैं—**विभुत्वे सति ज्ञानासमवायिकारणसंयोगाश्रयः जीवात्मा**। अर्थ यह—जो द्रव्य विभु होवै है तथा ज्ञानक असमवायिकारण जो संयोग है ता संयोगका आश्रय होवै है सो द्रव्य जीवात्मा कह्य जावै है। तहां यह जीवात्मा आकाशादिकोंकी न्यांई विभु भी है तथा ता जीवात्मवृत्ति ज्ञानगुणका असमवायिकारण जो आत्ममनः संयोग है ता संयोगका आश्रय भी है। यातैं यह जीवात्माका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'ज्ञानासमवायिकारणसंयोगाश्रयः जीवात्मा' इतनामात्र हीं जो ता जीवात्माका लक्षण करते ता लक्षणविषे

'विभुत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? ज्ञानका असमवायिकारण जो आत्ममनःसंयोग है ता संयोगका जैसे सो आत्मा आश्रय है तैसे सो मन भी ता संयोगका आश्रय है ता मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'विभुत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है, तहां ता मनविषे सो विभुपणा है नहीं। यातैं ता मनविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं; किंवा 'विभुत्वं' इतनामात्र हीं जो ता जीवात्माका लक्षण करते ता लक्षण विषे 'ज्ञानासमवायिकारणसंयोगाश्रयः' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाश, काल, दिशा, ईश्वर इन च्यारोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सो जीवात्मा विभु है तैसे ते आकाशादिक च्यारों भी विभु हीं है तिन, आकाशादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'ज्ञानासमवायिकारणसंयोगाश्रयः' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते आकाशादिक ता ज्ञानके असमवायिकारणरूप आत्ममनःसंयोगके आश्रयरूप हैं नहीं। यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'विभुत्वे सति असमवायिकारणसंयोगाश्रयः जीवात्मा' इतनामात्र हीं जो ता जीवात्माका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'ज्ञान' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाश, काल, दिशा इन तीनों द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? भेरी आदिकोंकरिकै अवच्छिन्न आकाशविषे जो शब्द उत्पन्न होवै है ता शब्दका समवायिकारण तौं सो आकाश होवै है और ता आकाशके साथि तिन भेरीआदिक द्रव्योंका जो संयोगसंबंध है सो संयोग ता शब्दका असमवायिकारण है। ऐसे शब्दके असमवायिकारणरूप संयोगका आश्रयपणा ता आकाशविषे है तथा ता आकाशविषे विभुपणा भी है। और जन्यद्रव्यमात्रवृत्ति जो कालिकपरत्व अपरत्व है ता परत्व अपरत्वका ता जन्यद्रव्यके साथि कालका संयोग हीं असमवायिकारण है। ता संयोगका आश्रयपणा ता कालविषे है तथा ता कालविषे विभुपणा भी है। और मूर्त्तद्रव्यमात्रवृत्ति जो दैशिक परत्व अपरत्व है ता परत्व अपरत्वका ता मूर्त्तद्रव्यके साथि दिशाका संयोग हीं असमवायिकारण है। ता संयोगका आश्रयपणा ता दिशाविषे है तथा ता दिशाविषे विभुपणा भी है। इस रीतिसैं ता आकाश काल दिशाविषे ता उक्तजीवात्माके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है। ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'ज्ञान' यह पद कथन कऱ्या है। तहां आकाश, काल, दिशा इन तीनों विषे यथा क्रमतैं पूर्व उक्त शब्दादिकोंके असमवायिकारणरूप संयोगकी आश्रयता हूए भी ज्ञानके असमवायिकारणरूप आत्ममनःसंयोगकी आश्रयता है नहीं, किंतु केवल जीवात्माविषे हीं ता आत्ममनःसंयोगकी आश्रयता है। यातैं ता आकाश कालदिशा विषे ता उक्तजीवात्माके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥

जीवात्माका दूसरा लक्षण—अथवा ता जीवात्माका यह दूसरा लक्षण करणा। **सुखदुःखादि समवायिकारणं जीवात्मा** ।अर्थ यह—सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावनाख्य संस्कार इन गुणोंका जो समवायिकारण होवै है सो जीवात्मा कह्या जावै है। तहां ते सुखदुःखादिक गुण समवायसंबंध करिकै ता जीवात्माविषे हीं उत्पन्न होवै हैं, ता जीवात्मातैं भिन्न किसी भी पृथिवीआदिक द्रव्यविषे ते सुखदुःखादिक उत्पन्न होते नहीं। यातैं यह सुखदुःखादिकोंका समवायिकारणत्वरूप जीवात्माका लक्षण संभवै है इति ॥ १ ॥

तीसरा लक्षण—अथवा ता जीवात्मका यह तृतीय लक्षण करणा । **जन्यज्ञानाद्यधिकरणं जीवात्मा** । अर्थ यह—जन्य ज्ञानका तथा जन्य इच्छाका तथा जन्य प्रयत्नका जो द्रव्य समवायसंबन्ध करिकै अधिकरण होवै हे सो द्रव्य जीवात्मा कह्या है जावै है। तहां ते जन्य ज्ञान इच्छा प्रयत्न समवायसंबंध करिकै ता जीवात्माविषे हीं रहे है। ता जीवात्मातैं भिन्न अन्यकिसी द्रव्य विषे ते जन्य ज्ञानादिक समवायसंबंध करिकै रहते नहीं। यातैं यह जन्यज्ञानादिकोंका अधिकरणत्वरूप जीवात्माका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'ज्ञानाद्यधिकरणं जीवात्मा' इतनामात्र हीं जो ता जीवात्माका लक्षण करते ता लक्षण विषे तिन ज्ञानादिकोंका 'जन्य' यह विशेषण नहीं कथन करते तौं ईश्वरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीनों गुण जैसे जीवात्माविषे रहे हैं तैसे ते ज्ञानादिक तीनों गुण ता ईश्वरविषे भी रहे है। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वास्तै ता लक्षणविषे तिन ज्ञानादिकोंका 'जन्य' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ईश्वरके ज्ञानके इच्छा, प्रयत्न यह तीनों गुण जन्य होते नहीं, किंतु नित्य होवै हैं, जीवात्माके हीं ते ज्ञानादिक जन्य होवै हैं। यातैं ईश्वरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥

ईश्वर या परमात्मा।

अब ईश्वरके लक्षणका निरूपण—करे हैं। **नित्यज्ञानाद्यधिकरणम् ईश्वरः** । अर्थ यह—नित्य ज्ञानका तथा नित्य इच्छाका तथा नित्य प्रयत्नका जो द्रव्य अधिकरण होवै है सो द्रव्य ईश्वर कह्या जावै है। तहां ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीनों नित्य होवै हैं तथा एक व्यक्ति होवै हैं तथा सर्वजगत्विषयक होवै है। और जीवात्माके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीनों अनित्य होवै हैं तथा नानाव्यक्ति होवै हैं तथा यत्किंचित्वस्तुविषयक होवै हैं। यातैं यह नित्यज्ञानादिकोंका अधिकरणत्वरूप ईश्वरका लक्षण संभवै है इति। तहां पूर्व-उक्त जीवात्मा तौं शरीरशरीरविषे भिन्नभिन्न होणेतैं नाना है तथा विभु है तथा नित्य है। और ईश्वर तौं एक है तथा विभु है तथा नित्य है। तहां एकत्व विभुत्व नित्यत्व इन तीनोंके लक्षण तौं पूर्व आकाशके निरूपणविषे कथन करि आये हैं ते ईहां भी जानि लेणे इति ॥

जीव और ईश्वरके गुण—तहां ता जीवात्माविषे तौं बुद्धि १, सुख २, दुःख ३, इच्छा ४,

द्वेष ५, प्रयत्न ६, धर्म ७, अधर्म ८, भावनाख्यसंस्कार ९, संख्या १०, परिमाण ११, पृथक्त्व १२, संयोग १३, विभाग १४ यह चतुर्दशगुण रहे हैं और ता ईश्वरविषे तौं बुद्धि १, इच्छा २, प्रयत्न ३, संख्या ४, परिमाण ५, पृथक्त्व६, सयोग ७, विभाग ८, यह अष्टगुण रहे हैं इति । ऐसे नाना जीवात्मावों विषे तथा ईश्वरात्मा विषे एक हीं आत्मत्वजाति रहे है । या कारणतैं हीं पूर्व आत्मत्वजातिमान् आत्मा, यह जीवात्माका तथा ईश्वरात्माका साधारण लक्षण कथन कऱ्या है ।

अनुमानतैं आत्मत्वजातिकी सिद्धि—'आत्मत्वजातिमान् आत्मा' यह पूर्वउक्त आत्माका लक्षण तवी सिद्ध होवै जवी प्रथम किसी प्रमाण करिकै सा आत्मजाति सिद्ध होवै । ता आत्मत्वजातिकी सिद्धितैं विना सो आत्मत्वजाति घटित लक्षण संभवता नहीं । यातैं ता लक्षणकी सिद्धि वासतै किसी प्रमाण करिकै ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि अवश्य करी चाहिये । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए, अब अनुमान प्रमाण करिकै ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि करे हैं—**आत्मनिष्ठा या सुखदुःखादिसमवायिकारणता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात्, पटनिष्ठकार्य्यतानिरूपिततन्तुनिष्ठकारणतावत्** । अर्थ यह—आत्माविषे स्थित जा सुखदुःखादिकोंकी समवायिकारणता है सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणे योग्य है, कारणता होणेतैं । जा जा कारणता होवै है सा सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है निरवच्छिन्न कोई कारणता होती नहीं। जैसे तंतुवोंविषे रही हूई पटकी समवायिकारणता तंतुत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न होवै है तैसे आत्माविषे रही हुई सा सुखदुःखादिकोंकी समवायिकारणता भी कारणतारूप होणेतैं किसी धर्म करिकै अवश्य अवच्छिन्न होवैंगी । सो ता आत्मवृत्ति कारणताका अवच्छेदक धर्म आत्मत्वजाति हीं संभव है ता आत्मत्वजातितैं भिन्न दूसरा कोई धर्म ता कारणताका अवच्छेदक होइ सकता नहीं ।इस प्रकारके अनुमान करिकै ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि संभवै है ।

**शंका**—इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै यद्यपि जीवात्माविषे ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि संभवै है तथापि ईश्वरात्माविषे ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि संभवै नहीं । काहेतैं ? ते सुखदुःखादिक समवायसंबंध करिकै जीवात्माविषे हीं उत्पन्न होवै हैं, ईश्वरात्माविषे ते सुखदुःखादिक समवायसंबंध करिकै कदाचित् भी उत्पन्न होते नहीं। यातैं तिन सुखदुःखादिकोंकी समवायिकारणता केवल जीवात्माविषे हीं है, ईश्वरात्माविषे नहीं है । **समाधान**—जैसे घटकी उत्पत्तिकालविषे कुलालके हस्तविषे स्थित दंडाविषे ता घटकी फलोपधायकत्वरूप कारणता है तैसे ता ईश्वरविषे यद्यपि तिन सुखदुःखादिकोंकी फलोपधायकत्वरूप समवायिकारणता नहीं है, किंतु जीवात्माविषे हीं सा फलोपधायकत्वरूप समवायिकारणता है तथापि जैसे

वनाविषे स्थित दंडविषे ता घटकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता है तैसे ता ईश्वरात्माविषे भी तिन सुखदुःखादिकोंकी स्वरूपयोग्यत्वरूप समवायिकारणता विद्यमान है, ता कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता ईश्वरविषे भी ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि संभवै है । **शंका**—ता ईश्वरविषे तिन सुखदुःखादिकोंकी स्वरूपयोग्यत्वरूप समवायिकारणताके अंगीकार कीये-हुए ता ईश्वरविषे ते सुखदुःखादिक समवायसंबंध करिकै क्युं नहीं उत्पन्न होते, किंतु उत्पन्न होणे चाहियें । **समाधान**—तिन सुखदुःखादिकोंकी उत्पत्तिविषे धर्मअधर्मरूप अदृष्ट तथा शरीर भी निमित्तकारण होवै है सो अदृष्टशरीरादिरूप निमित्तकारण जैसे जीवात्मा-विषे है तैसे ता ईश्वरात्माविषे है नहीं । यातैं ता अदृष्टशरीरादिरूप निमित्तकारणके विद्य-मानहुए ता जीवात्माविषे हीं ते सुखदुःखादिक उत्पन्न होवै हैं ता निमित्तकारणके अभावहूए ता ईश्वरात्माविषे ते सुखदुःखादिक उत्पन्न होते नहीं । **शङ्का**—जैसे जीवात्माविषे सो धर्माधर्मरूप अदृष्ट उत्पन्न होवै है तैसे ता ईश्वरात्माविषे भी सो धर्माधर्मरूप अदृष्ट क्युं नहीं उत्पन्न होता । **समाधान**—देहादिक अनात्म पदार्थोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप जो मिथ्याज्ञान है सो मिथ्याज्ञान हीं ता अदृष्टका कारण होवै है । सो मिथ्याज्ञानरूप कारण ता जीवात्माविषे हीं रहे है, ता ईश्वरात्माविषे सो मिथ्याज्ञान रहता नहीं । यातैं ता मिथ्याज्ञानरूप कारणके विद्यमानहूए ता जीवात्माविषे हीं सो अदृष्ट उत्पन्न होवै है, ता मिथ्याज्ञानरूप कारणके अभावहूए ता ईश्वरात्माविषे सो अदृष्ट उत्पन्न होता नहीं । किंवा तिस मिथ्याज्ञानकूं जो ता अदृष्टका कारण नहीं मानिये तौं तत्त्वज्ञान करिकै मुक्तहूए जीवात्माविषे भी ता अदृष्टकी उत्पत्ति होणी चाहिये तथा ता धर्मअधर्मरूप अदृष्ट करिकै ता मुक्तपुरुषकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति होणी चाहियें और ता मुक्तपुरुषकूं ता अदृष्टकी उत्पत्ति तथा जन्मकी प्राप्ति होती नहीं । यह वार्त्ता सर्वश्रुतिस्मृति करिकै निर्णीत है । याके विषे यह हीं कारण है । जो तिस मुक्तपुरुषका तत्त्वज्ञान करिकै सो मिथ्याज्ञान संस्काररूप वासना सहित नष्ट होइ गया है । यातैं यह सिद्ध भया—जैसे ता मिथ्याज्ञानरूप कारणके अभावतैं ता मुक्तपुरुषविषे सो धर्माधर्मरूप अदृष्ट उत्पन्न होता नहीं तैसे ता मिथ्याज्ञानरूप कारणके अभावतैं ता ईश्वरविषे भी सो धर्माधर्मरूप अदृष्ट उत्पन्न होता नहीं, ता अदृष्टरूप कारणके अभावतैं ता ईश्वरविषे ते सुखदुःखादिक कार्य भी उत्पन्न होते नहीं, परंतु ता ईश्वरविषे भी तिन सुखदुःखादिकोंकी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणता विद्यमान नहीं है । यातैं ता जीवात्मा-विषे तथा ईश्वरात्माविषे तिन सुखदुःखादिकोंकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता आत्मत्वजातिको सिद्धि सम्भवै है इति । और केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं ! वेदविषे बहुतस्थलोंविषे जीवात्माकूं तथा ईश्वरकूं आत्मपद करिकै कथन कऱ्या है । यातैं ता जीव ईश्वर दोनोंविषे ता आत्मपदकी शक्यता तुल्य हीं है । ता आत्मपदकी शक्यताका अवच्छेदक-

रूप करिकै ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि सम्भवै है । ता अनुमानका यह आकार है । **जीवेश्वरनिष्ठा या आत्मपदशक्यता सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना शक्यतात्वात् घटनिष्ठा-घटपदशक्यतावत्** । अर्थ यह—जीवईश्वरविषे रही हूई जा आत्मपदकी शक्यता है सा शक्यता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणेयोग्य है, शक्यता होणेतैं । जा जा शक्यता होवै है सा सा शक्यता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है, निरवच्छिन्न कोई शक्यता होती नहीं । जैसे घटविषे रही हूई घटपदकी शक्यता घटत्व धर्म करिकै अवच्छिन्न है, तैसे जीवईश्वरविषे रही हूई सा आत्मपदकी शक्यता भी शक्यता होणेतैं किसी धर्म करिकै अवश्य अवच्छिन्न होवैंगी, ता आत्मपदकी शक्यताका अवच्छेदक आत्मत्वजाति हीं है । इस प्रकार आत्मपदकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै ता आत्मत्वजातिकी सिद्धि सम्भवै हैं । जैसे कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै तथा कार्यताका अवच्छेदक रूप करिकै तथा प्रतिबन्धकताका अवच्छेदकरूप करिकै तथा प्रतिबध्यताका अवच्छेदकरूप करिकै जातिकी सिद्धि ग्रन्थकारोंनैं अङ्गीकार करी है, तैसे पदकी शक्यताका अवच्छेदक-रूप करिकै भी ता जातिकी सिद्धि ग्रन्थकारोंनैं अङ्गीकार करी है । या कारणतैं हीं गुण-दीधितिग्रन्थविषे गुणपदकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै गुणत्वजातिकी सिद्धि भट्टाचार्य-शिरोमणिनैं अङ्गीकार करी है । तहां जो पद शक्तिवृत्ति करिकै जिस अर्थका बोधन करे है तिस पदका सो अर्थ शक्य कह्या जावै है इति ॥

जीवात्मविषे ही आत्मत्वजाति माननेहारे वादी—और केईकग्रन्थकार तौं यह कहे हैं । सा आत्वत्वजाति जीवात्माविषे हीं रहे है । ईश्वरविषे सा आत्मत्वजाति रहती नहीं । जिस कारणतैं ईश्वरविषे ता आत्मत्वजातिका साधक कोई प्रमाणहै नहीं। इसपर शङ्का-ईश्वरविषे सा आत्मत्वजाति जो नहीं अङ्गीकार करौंगे तौं पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके विभाग करणेहारे वाक्यविषे स्थित आत्मपद करिकै ता ईश्वरका ग्रहण नहीं होवैंगा, किंतु ता आत्मपद करिकै केवल जीवात्माका हीं ग्रहण होवैंगा । यातैं ता ईश्वरकूं दशम द्रव्यता प्राप्त होवैंगी । उसका समाधान—ता द्रव्य विभाजक वाक्यविषे स्थित जो आत्मपद है ता आत्मपदके स्थानाविषे हम 'ज्ञानवत्' इस पदकूं कथन करैंगे ता 'ज्ञानवत्' पद करिकै जीवईश्वर दोनोंका संग्रह होइ सके है । यातैं 'आत्मत्वजातिमान् आत्मा' यह पूर्व उक्त लक्षण केवल जीवात्माका हीं संभवै है ता ईश्वरका संभवता नहीं ता जीवईश्वर दोनोंका तौं ज्ञानाधिकरणत्वरूप लक्षण हीं संभवै है इति ।

पूर्व मतका खण्डन—सो यह मत समीचीन नहीं है । काहेतैं ? वेदविषे बहुतस्थलोंविषे जीव ईश्वर दोनोंकूं आत्मपद करिकै कथन कऱ्या है । तिन सर्व आत्मपदोंकी ज्ञानवालेमें लक्षणा करणी होवैंगी और जबपर्यंत पदका मुख्य अर्थ संभव होइ सकै तब पर्यंत ता पदका

लाक्षणिक अर्थ अंगीकार करणा नहीं । यह शास्त्रकारोंका नियम है, ता नियमका इस मत-विषे भंग होवैंगा, यह हीं इस मतविषे असमीचीनपणा है इति ॥

जीवात्माका साधक प्रत्यक्ष प्रमाण—इस पूर्वउक्त प्रकारतैं जीवात्माके तथा ईश्वरात्माके भिन्न-भिन्न लक्षणके संभव हूए भी प्रमाणके अभावतैं ता जीवात्माकी तथा ईश्वरात्माकी सिद्धि होइ सकै नहीं । यातैं ता जीवात्माकी तथा ईश्वरात्माकी सिद्धि करणेहारा कोई प्रमाण अवश्य कह्या चाहिये । ऐसी शंकाके प्राप्तहुए; अब प्रथम जीवात्माके साधक प्रमाणका कथन करे हैं। तहां ' अहं सुखी अहं दुःखी ' या प्रकारका मानसप्रत्यक्ष सर्व प्राणीयोंकूं होवै है । सो मानसप्रत्यक्ष सुख दुःखवाले आत्माकूं हीं विषय करे है । यातैं सो अहमाकार मानस-प्रत्यक्ष हीं ता जीवात्माविषे प्रमाण है । शंका—ता जीवात्माकूं जो प्रत्यक्षज्ञानका विषय मानोंगे तौं आत्मा तावन्न प्रत्यक्षः । अर्थ यह—आत्मा प्रत्यक्षज्ञानका विषय नहीं होवै है । इस भाष्यके वचनका विरोध होवैंगा । समाधान—ता भाष्यविषे स्थित जो आत्मशब्द है सो आत्मशब्द परमात्माका हीं बोधक है, जीवात्माका बोधक नहीं है । ता परमात्माविषे सा प्रत्यक्षज्ञानकी विषयता हम भी अङ्गीकार करते नहीं । यातैं जीवात्माकूं ता मानस-प्रत्यक्षज्ञानका विषय माणणेविषे ता भाष्यवचनका विरोध होवै नहीं । किंवा ता भाष्यविषे स्थित आत्मशब्द करिकै जो जीवात्माका भी ग्रहण करिये तौं भी ता भाष्यविषे स्थित प्रत्यक्षशब्द करिकै मानसप्रत्यक्षतैं भिन्न चाक्षुषादिक प्रत्यक्षका हीं ग्रहण करणा, ता मानसप्रत्यक्षका ग्रहण करणा नहीं । ता चक्षुषादिक प्रत्यक्षकी विषयता ता जीवात्माविषे हम भी मानते नहीं । किंतु ता जीवात्माकूं हम केवल मानसप्रत्यक्षका हीं विषय माने हैं। इस प्रकारतैं भी ता भाष्यके वचनका विरोध होवै नहीं इति ॥

जीवात्माका अनुमान—ता अहमाकार प्रत्यक्ष करिकै देहादिकोंतैं भिन्न ता जीवा-त्माकी सिद्धि होवै नहीं । काहेतैं ? 'अहं स्थूलः अहं गौरः' । या प्रकारका अहमाकार प्रत्यक्ष तौं स्थूलत्व गौरत्व धर्मविशिष्ट स्थूलशरीरकूं हीं विषय करे है और ' अहं काणः अहं बधिरः ' या प्रकारका अहमाकार प्रत्यक्ष तौं काणत्वबधिरत्वादि धर्मविशिष्ट इंद्रियोंकूं हीं विषय करे है । इस प्रकारतैं सो अहमाकार प्रत्यक्ष शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदिक बहुत पदार्थोंकूं विषय करे है और तिस तिस अहमाकार प्रत्यक्षके बलतैं ते ते वादी तिस तिस देहादिकोंकूं हीं आत्मारूप करिकै माने हैं । यातैं तिन वादीयोंके सम्मुख ता अहमाकार प्रत्यक्ष करिकै देहादिकोंतैं भिन्न ता जीवात्माकी सिद्धि होइ सकै नहीं। ऐसी शङ्काके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता जीवात्माकी सिद्धि करे हैं। बुद्धचादयः पृथिव्याद्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रिताः पृथिव्याद्यष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वात्

**यो यदनाश्रितो गुणः स तदतिरिक्तद्रव्याश्रितः। यथा पृथिव्याद्यनाश्रितः शब्दस्तदतिरिक्तद्रव्याश्रितः ।** अर्थ यह–बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, यह जे बुद्धि आदिक षट्गुण हैं ते बुद्धिआदिक गुण पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन इन अष्टद्रव्योंतैं भिन्न किसी द्रव्यके आश्रित होणे योग्य हैं । तिन पृथिवीआदिक अष्ट द्रव्योंके अनाश्रितहूए गुणरूप होणेतैं । जो जो धर्म जिन द्रव्योंके अनाश्रित हुआ गुणरूप होवै है सो सो धर्म तिन द्रव्योंतैं भिन्न किसी द्रव्यके आश्रित हीं होवै है । जैसे शब्द पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंके अनाश्रित हूआ गुणरूप है । यातैं सो शब्द तिन पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंतैं भिन्न आकाशरूप द्रव्यके आश्रित हीं है, तैसे यह बुद्धिआदिक भी तिन पृथिवी आदिक अष्ट द्रव्योंके अनाश्रित हूए गुणरूप हैं यातैं यह बुद्धिआदिगुण तिन पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंतै भिन्न किसी द्रव्यके आश्रित हीं होवैंगे ।ऐसा पृथिवीआदिक अष्ट द्रव्योंतैं भिन्न तथा बुद्धि आदिक गुणोंका आश्रयरूप यह जीवात्मारूप द्रव्य हीं है। इस प्रकारके अनुमान करिकै तिन पृथिवीआदिक अष्ट द्रव्योंतैं भिन्न बुद्धिआदिक गुणोंका आश्रयरूप करिकै नवमे जीवात्मारूप द्रव्यकी सिद्धि संभवै है । स्वरूपासिद्धिका निराकरण–तहां 'पृथिव्याद्यष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वात्' इस उक्त हेतुविषे 'पृथिव्याद्यष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति' यह तौं विशेषणभाग है और 'गुणत्वात्' यह विशेष्यभाग है । तहां जो हेतु विशेषणाविशेष्यभाग करिकै घटित होवै है ता हेतुका जो कदाचित् विशेषण भाग पक्षविषे नहीं वर्ते है तौं भी सो हेतु स्वरूपासिद्धि दोषवाला होवै है । और जो कदाचित् ता हेतुका विशेष्यभाग ता पक्षविषे नहीं वर्ते है तौं भी सो हेतु स्वरूपासिद्धि दोषवाला होवै है और जो कदाचित् ता हेतुका विशेषणभाग तथा विशेष्यभाग दोनों ता पक्षविषे नहीं वर्ते हैं तौं भी सो हेतु स्वरूपासिद्धिदोषवाला होवै है। यातैं ता उक्तहेतुविषे ता स्वरूपासिद्धि दोषके निवृत्त करणेवासतै तिन बुद्धिआदिक गुणोंविषे तिन पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंका अनाश्रिततत्व तथा गुणत्व सिद्ध करे हैं। तहां **बुद्ध्यादयः न भूतगुणाः,मानसप्रत्यक्षविषयत्वात्। यन्नैवं तन्नैवं यथा रूपादिः ।** अर्थ यह–ते बुद्धिआदिक गुण, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पंचभूतोंके गुण नहीं हैं मानसप्रत्यक्षका विषय होणेतैं । जे जे पृथिवी आदिक पंचभूतोंके गुण होवै हैं ते ते गुण मानसप्रत्यक्षके विषय होते नहीं, जैसे रूपरसादिक पृथिवीआदिक पंचभूतोंके गुण हैं । यातैं ते रूपरसादिक ता मानसप्रत्यक्षके विषय भी नहीं हैं किंतु चाक्षुषादिक प्रत्यक्षके हीं विषय हैं और यह बुद्धि आदिक गुण तौं ता मानस प्रत्यक्षके हीं विषय हैं, यातैं यह बुद्धिआदिक तिन पृथिवीआदिक पंचभूतोंके गुण नहीं हैं इति। किंवा **बुद्ध्यादयः न दिक्कालमनसां गुणाः विशेषगुणत्वात् रूपवत्।** अर्थ यह–यह बुद्धि आदिक गुण दिक्, काल, मन इन तीन द्रव्योंके भी गुण नहीं हैं विशेषगुण होणे तैं। जो जो विशेषणगुण होवै है सो सो दिक् काल मन इन तीनोंका गुण होवै नहीं, जैसे रूप विशेषगुण

होणेतै ता दिक्कालमनका गुण नहीं है, तैसे यह बुद्धि आदिक भी विशेषगुण हैं यातैं यह बुद्धि आदिक दिक्कालमनके गुण नहीं होवैंगे इति । या प्रकारके उक्त दो अनुमानों करिकै तिन बुद्धि आदिक गुणोंविषे तिन पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंका अनाश्रितत्व सिद्ध होवै है ॥

बुद्ध्यादिकोंविषे विशेष गुणत्वकी सिद्धि—जिस विशेष गुणत्वरूप हेतु करिकै तिन बुद्धि आदिकोंविषे दिक्कालमनकी गुणरूपताका निषेध करते हो तिस विशेषगुणत्वविषे हीं कौन प्रमाण है ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै तिन बुद्धि आदिकोंविषे विशेषगुण रूपता सिद्ध करे हैं। बुद्ध्यादयः विशेषगुणाः गुणत्वे सति एकेन्द्रियग्राह्यत्वात् रूपवत् । अर्थ यह—ते पूर्वउक्त बुद्धिआदिक षट्गुण विशेषगुण होणे योग्य हैं, गुणरूपहूए एकइंद्रिय जन्य ज्ञानका विषय होणेतैं । जो जो गुणरूप हूआ एकइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय होवै है सो सो विशेषगुण हीं होवै है, जैसे रूप गुण हूआ एकचक्षुइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय है यातैं सो रूप विशेष गुण भी है तैसे यह बुद्धि आदिक भी गुणरूप हूए एकमनरूप इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय हैं यातैं यह बुद्धि आदिक भी विशेषगुण रूप हीं होवैंगे । इस प्रकारके अनुमान करिकै तिन बुद्धि आदिकोंविषे विशेषगुणरूपता सिद्ध होवै है । पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'गुणत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'एकेन्द्रियग्राह्यत्वात्' यह पद नहीं कथन करते तौं संख्यादिक सामान्यगुणोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? तिन संख्यादिक गुणोंविषे सो गुणत्वरूप हेतु तौं है परन्तु सो विशेषगुणत्वरूप साध्य है नहीं । यातैं ता विशेषगुणत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन संख्यादिक सामान्यगुणोंविषे वृत्ति होणेतैं सो गुणत्वहेतु व्यभिचारी होवैंगा, ता व्यभिचारदोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता हेतुविषे 'एकेन्द्रियग्राह्यत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है, तहां तिन संख्यादिक सामान्यगुणोंविषे सो एकेन्द्रिय ग्राह्यत्व है नहीं । किंतु चक्षु, त्वक् इन दोनों इन्द्रियों करिकै ग्राह्यत्व है । यातैं तिन संख्यादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं । किंवा ता उक्त अनुमानविषे एकेन्द्रिय ग्राह्यत्वात् इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'गुणत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे तथा आत्मत्वजातिविषे तथा बुद्धित्व, सुखत्व, दुःखत्व इत्यादिक जातियोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? ते आत्मादिक भी एकमनरूप इन्द्रिय करिकै हीं ग्राह्य हैं । यातैं सो एकइन्द्रिय ग्राह्यत्वरूप हेतु तौं तिन आत्मादिकोंविषे हैं परन्तु सो विशेषगुणत्वरूप साध्य तिन आत्मादिकोंविषे है नहीं । यातैं ता विशेषगुणत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन आत्मादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं सो एकइन्द्रिय ग्राह्यत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा, ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'गुणत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । विशेषगुण—तहां तिन आत्मादिकोंविषे सो गुणरूपता है नहीं । यातैं तिन आत्मादिकोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति । तहां रूप १, रस २,

गन्ध ३, स्पर्श ४, सांसिद्धिकद्रवत्व ५, स्नेह ६, शब्द ७, बुद्धि ८, सुख ९, दुःख १०, इच्छा ११, द्वेष १२, प्रयत्न १३, धर्म १४, अधर्म १५, भावनाख्यसंस्कार १६ यह षोडश विशेषगुण कहे जावै हैं और संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, परत्व ६, अपरत्व ७, नैमित्तिकद्रवत्व ८, गुरुत्व ९, वेग १०, यह दश सामान्यगुण कहे जावै हैं और स्थितिस्थापकनामा संस्कार तौं जिस मतविषे पृथिवीमात्रका गुण है। तिस मतविषे तौं विशेषगुण है और जिस मतविषे सो स्थितिस्थापक पृथिवीआदिक च्यारिद्रव्योंका गुण है। तिस मतविषे सामान्यगुण है। ईहां यद्यपि सो पूर्वउक्त गुणत्वे सति एकेन्द्रिय ग्राह्यत्वरूप हेतु तिन उक्त सर्वविशेषगुणोंविषे विशेषगुणरूपताकूं सिद्धि करता नहीं। किंतु रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, बुद्धि, सुख दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, इतनैं गुणोंविषे हीं सो हेतु रहे है। यातैं सो हेतु इतनैं गुणोंविषे हीं ता विशेषगुणरूपताकूं सिद्ध करे है और धर्म, अधर्म, भावना, सांसिद्धिकद्रवत्व, स्नेह इन पांचगुणोंविषे सो हेतु रहता नहीं। काहेतैं ? धर्म, अधर्म, भावना यह तीन गुण तौं अतिइन्द्रिय होवै हैं। यातैं किसी भी इन्द्रिय करिकै ग्राह्य होवै नहीं और सांसिद्धिक द्रवत्व, स्नेह, यह दोनों गुण तौं चक्षु, त्वक्, इन दोनों इन्द्रियों करिकै ग्राह्य होवै है। इस रीतिसैं सो एकइन्द्रिय ग्राह्यत्वरूप हेतु तिन धर्मादिक पांचोंविषे रहता नहीं। यातैं सो हेतु तिन धर्मादिक पांचोंविषे विशेषगुणरूपताकूं सिद्ध करि सकता नहीं। तथापि ईहां आत्माके प्रतिपादक प्रकरणविषे तिन सर्वविशेषगुणोंविषे विशेषगुणरूपताके सिद्ध करणेका कोई प्रयोजन नहीं है। किंतु पूर्वउक्त अनुमानविषे जिन बुद्धिआदिक षट्गुणोंकूं पक्ष करिकै पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंतैं अतिरिक्त जीवात्मारूप द्रव्यकी सिद्धि करी है। तिन बुद्धिआदिक षट्गुणोंविषे हीं ता विशेषगुणरूपताके सिद्ध करणेका प्रयोजन है। या कारणतैं तिन बुद्धि आदिक षट्गुणोंविषे हीं ता विशेषगुणरूपताकी सिद्धि करणे वासतै सो गुणत्वविशिष्ट एकेन्द्रियग्राह्यत्वरूप हेतु कथन कर्या है और तिन रूपादिक सर्वविशेषगुणोंविषे विशेषगुणरूपताका साधक लक्षण रूप हेतु तौं आगे पञ्चमपरिच्छेदविषे गुणोंके साधर्म्यवैधर्म्यनिरूपणविषे कथन करैंगे इति। इतनैंपर्यंत तिन बुद्धि आदिक षट्गुणोंविषे पृथिवी आदिक अष्टद्रव्योंका अनाश्रितपणा सिद्ध कर्या॥

बुद्ध्यादिकोंविषे गुणत्वकी सिद्धि—अब तिन बुद्धिआदिकोंविषे गुणत्व सिद्ध करे हैं। बुद्ध्यादयः गुणाः अनित्यत्वे सति एकेन्द्रियग्राह्यत्वात् गन्धवत्। अर्थ यह—ते बुद्धिआदिक षट् गुण होणेकूं योग्य हैं, अनित्यहूए एकइंद्रियजन्य ज्ञानके विषय होणेतैं। जो जो वस्तु अनित्य हूआ एकइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय होवै है। सो सो वस्तु गुणहीं होवै है। जैसे गन्ध अनित्य हूआ एकघ्राण इंद्रियजन्य ज्ञानका विषय है। यातैं सो गन्ध गुणभी है। तैसे यह बुद्धिआदिक भी अनित्य हूए एक मनरूप इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय हैं। यातैं यह बुद्धि

आदिक भी गुणरूप हीं होवेंगे इस प्रकारके अनुमान करिकै तिन बुद्धिआदिकोंविषे गुणरूपताकी सिद्धि होवै है। पदकृत्य–तहां इस अनुमानविषे 'एकेंद्रियग्राह्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'अनित्यत्वे सति यह पद नहीं कथन करते तौं रूपत्व रसत्वादिक जातियोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन बुद्धिआदिक गुणोंकी न्यांई ते रूपत्व-रसत्वादिक जातियां भी यथाक्रमतैं चक्षुरसनादिरूप एकइंद्रिय करिकै हीं ग्राह्य होवै है। यातैं सो एकइंद्रिय ग्राह्यत्वरूप हेतु तौं तिन रूपत्वादिक जातियोंविषे है, परंतु सो गुणत्वरूप साध्य तहां है नहीं ता व्यभिचार दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता हेतुविषे 'अनित्यत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन रूपत्वादिक नित्य जातियोंविषे सो अनित्यपणा है नहीं यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं किंवा ता उक्तअनुमानविषे 'अनित्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'एकेंद्रियग्राह्यत्वात्' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिक द्रव्योंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? तिन घटादिक द्रव्योंविषे सो अनित्यत्वरूप हेतु तौं रहे है। परन्तु सो गुणत्वरूप साध्य तहां रहता नहीं ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'एकेंद्रियग्राह्यत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते घटादिक द्रव्य एकइंद्रिय ग्राह्य नहीं हैं। किंतु चक्षु त्वक् इन दोनोंइंद्रियों करिकै ग्राह्य हैं। यातैं तिन घटादिक द्रव्योंविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति। इस प्रकार तिन बुद्धिआदिक गुणोंविषे पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंका अनाश्रितत्व तथा गुणत्व दोनोंके सिद्ध हूए तिन बुद्धिआदिक गुणोंका आश्रयरूप करिकै ता जीवात्मारूपद्रव्यकी सिद्धि संभवै है इति॥

अन्यग्रन्थकारके मततैं जीवात्माकी सिद्धि–और केईकग्रन्थकारतौं या प्रकारके अनुमान करिकै ता जीवात्माकी सिद्धि करे हैं। **चक्षुरादीन्द्रियं सकर्तृकं करणत्वात् कुठारवत्।** अर्थ यह–चक्षुआदिक इंद्रिय किसी कर्त्तावाले होणेयोग्य हैं, कारणरूप होणेतैं। जो जो करण होवै है। सो सो कर्त्तावाला हीं होवै है। जैसे कुठार करणरूप होणेतैं पुरुषरूप कर्त्तावाला है। तैसे यह चक्षुआदिक इंद्रिय भी करणरूप होणेतैं किसी कर्त्तावाले अवश्य होवंगैं सो चक्षुआदिकइंद्रियरूप करणोंका यह जीवात्मा हीं कर्त्ता है। तात्पर्य यह–इस लोकविषे छेदनादिक क्रियावोंके करणरूप करिकै प्रसिद्ध जितनैंकी कुठारादिक है ते कुठारादिक करण किसीपुरुषरूप कर्त्तातैं विना ता छेदनादिक क्रियाके जनक होते नहीं किंतु ता पुरुषरूपकर्त्ताके आश्रित हूए हीं ते कुठारादिक करण ता छेदनादिक क्रियाके जनक होवै हैं। तैसे रूपादि-विषयक ज्ञानरूप क्रियावोंके करणरूप जे चक्षुआदिक इंद्रिय हैं ते चक्षुआदिक इंद्रियरूप करणभी किसी कर्त्तातैं विना ता ज्ञानरूप क्रियाके जनक होइसकै नहीं, किंतु किसी कर्त्ताकूं आश्रयण करिकै हीं ता ज्ञानरूप क्रियाकूं उत्पन्न करैंगे, सो तिन चक्षुआदिक करणोंका कर्त्ता यह जीवात्मा हीं संभवै है। इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै चक्षुआदिक करणोंका कर्त्तारूप करिकै ता जीवात्माकी सिद्धि संभवै हे इति॥

जीवात्माविषे श्रुतिप्रमाण—किंवा सो जीवात्मा केवल उक्तअनुमानप्रमाण करिकै हीं सिद्ध नहीं है किन्तु " आत्मानं चेद्विजानीयात् । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः " इत्यादिक श्रुतिप्रमाणोंकरिकै भी सो जीवात्मा सिद्ध है इति ॥

ईश्वरके सद्भावपर शङ्काएं ।

इस पूर्व उक्त प्रत्यक्ष अनुमान श्रुति प्रमाण करिकै ता जीवात्माके सिद्धहूए भी ता ईश्वरका साधक कोई प्रमाण है नहीं । प्रत्यक्षका अभाव—तहां ता ईश्वरविषे जो प्रत्यक्षप्रमाण कहो सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? सो प्रत्यक्षप्रमाण बाह्य अंतर इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां घ्राण, रसन, चक्षु त्वक् श्रोत्र यह पंचइंद्रिय तौं बाह्य प्रत्यक्षप्रमाण कह्या जावै है और मनरूप इंद्रिय अंतरप्रत्यक्ष प्रमाण कह्या जावै है । तिस पंचप्रकारके बाह्यप्रत्यक्षविषे भी चक्षु त्वक् यह दो इंद्रिय हीं द्रव्यकूं ग्रहण करे हैं । घ्राण रसन श्रोत्र यह तीन इंद्रिय द्रव्यकूं ग्रहण करते नहीं । और ते चक्षु त्वक् इंद्रिय भी महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूप स्पर्शवाले द्रव्यकूं हीं ग्रहण करे हैं, अन्यद्रव्यकूं ग्रहण करैं नहीं । यह वार्त्ता पूर्ववायुके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं। और नैयायिकोंनैं ता ईश्वररूप द्रव्यकूं भी आकाशादिकोंकी न्यांई ता रूपस्पर्शगुणतैं रहित मान्या है । यातैं ता ईश्वरविषे सो बाह्यप्रत्यक्ष प्रमाण तौं संभवता नहीं । इस प्रकार ता ईश्वरविषे मनरूप अंतरप्रत्यक्षप्रमाण भी संभवता नहीं । काहेतैं ? ता मनकरिकै ' अहं सुखी अहं दुःखी ' इस प्रकारतैं ता जीवात्माका हीं प्रत्यक्ष होवै है । ता मन करिकै ईश्वररूप परमात्माका प्रत्यक्ष संभवता नहीं । किंवा जैसे चैत्रनामा पुरुषके जीवात्मातैं मैत्रनामा पुरुषका जीवात्मा अत्यंतभिन्न है । यातैं ता चैत्रनामा पुरुषके मन करिकै ता मैत्रनामा पुरुषके जीवात्माका प्रत्यक्ष होता नहीं । तैसे इस जीवात्मातैं सो ईश्वररूप परमात्मा भी अत्यंत भिन्न है । यातैं इस जीवात्माके मन करिकै ता ईश्वरका भी प्रत्यक्ष संभवता नहीं। अनुमानका अभाव—और ता ईश्वरविषे जो अनुमानप्रमाण कहो सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जैसे धूमरूप हेतुविषे अग्निरूप साध्यकी व्याप्ति प्रसिद्ध है, तैसे किसी हेतुविषे जो ता ईश्वररूप साध्यकी व्याप्ति प्रसिद्ध होवे तौं तिस हेतु करिकै ता ईश्वररूप साध्यका अनुमान होवै सो किसी भी हेतुविषे ता ईश्वरनिरूपितव्याप्ति प्रसिद्ध है नहीं। और अव्यभिचरित संबंधरूप व्याप्तिके ज्ञानतैं विना अनुमानकी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं ता ईश्वरविषे सो अनुमानप्रमाण भी संभवता नहीं । वेद प्रमाणका अभाव—और जो कहो ता ईश्वरविषे "द्यावाभूमी जनयन् देव एकः।" " विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता " । इत्यादिक वेद हीं प्रमाण है । सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? तिन ऋगादिक वेदोंविषे जो प्रमाणरूपता है सो ईश्वरकरिकै प्रणीतत्वरूप हेतुतैं है, अर्थात् ते ऋगादिक वेद ईश्वर करिकै रचित है । यातैं तिन वेदोंविषे प्रमाणरूपता है ।

तहां प्रथम ता ईश्वरकी जबी किसी प्रमाण करिकै सिद्धि होवै तबी ता ईश्वरउच्चारितत्वरूप हेतु करिकै तिन वेदोंविषे प्रमाणताकी सिद्धि होवै। सो ईश्वरकी सिद्धि अबपर्यंत किसी प्रमाण करिकै हूई नहीं। यातैं ता ईश्वरविषे ता वेदकूं भी प्रमाणरूपता संभवै नहीं। ता वेदके अप्रमाणहूए ता वेदमूलक स्मृति आदिकोंकूं भी ता ईश्वरविषे प्रमाणरूपता संभवै नहीं। यातैं प्रमाणका अभाव होणेतैं कोई ईश्वर है नहीं।

ईश्वरके साधकनव अनुमान।

ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब नव प्रकारके अनुमानप्रमाणों करिकै ता ईश्वरकी सिद्धि करे हैं। अंकुरादिकोंसे ईश्वरका अनुमान—तहां प्रथमअनुमानका यह आकार है। **अङ्कुरादिरूपं कार्यं कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्।** अर्थ यह—अंकुरादिरूप कार्य किसी कर्त्ता करिकै जन्य होणेयोग्य है। कार्यरूप होणेतैं। जो जो पदार्थ कार्यरूप होवै है सो सो पदार्थ किसी कर्त्ता करिकै जन्य हीं होवै है। कर्त्तातैं विना कोई भी कार्य उत्पन्न होता नहीं। जैसे घट कार्यरूप होणेतैं कुलालरूप कर्त्ता करिकै जन्य हीं है, तैसे ते अंकुरादिक कार्य भी कार्यरूप होणेतैं किसी कर्त्ता करिकै अवश्य जन्य होवैंगे। तहां तिन अंकुरादिक कार्योंका कर्त्तापणा किसी जीवात्माविषे तौं संभवता नहीं। किंतु ता ईश्वरविषे हीं सो अंकुरादिक कार्योंका कर्त्तापणा संभवैं है। संयोगादिसे उत्पत्तिमानकर-शंका—ता कर्त्तातैं विना हीं केवल पृथिवीजलके संयोगादिकों करिकै हीं तिन अंकुरादिक कार्योंकी उत्पत्ति संभव होइसके है। ता ईश्वररूप कर्त्ताके मानणेका कोई प्रयोजन नहीं है। कुलालादिकी समतासे समाधान—ता ईश्वररूप कर्त्तातैं विना केवल पृथिवी जल संयोगादिकों करिकै जो अंकुरादिक कार्योंकी उत्पत्ति अंगीकार करौंगे तौं घटादिक कार्योंकी भी कुलालादिरूप कर्त्तातैं विना हीं केवल मृत्तिकाजलके संयोगादिकों करिकै उत्पत्ति होणी चाहिये और कुलालादिक कर्त्तातैं विना तिन घटादिक कार्योंकी उत्पत्ति देखणे विषे आवती नहीं। यातैं तिन घटादिक कार्योंकी न्यांई तिन अंकुरादिक कार्योंकी भी ता ईश्वररूप कर्त्तातैं हीं उत्पत्ति माननी चाहिये। यह वार्त्ता अन्यशास्त्रविषे भी कथन करी है। तहां श्लोक—**जगतां यदि नो कर्त्ता कुलालेन विना घटः। चित्रकारं विना चित्रं स्वतएव भवेत्तदा।** अर्थ यह—इस कार्यरूप जगत्का जो कदाचित् कोई कर्त्ता नहीं अंगीकार करिये किंतु कर्त्तातैं विना हीं इस जगत्की स्वतःहीं उत्पत्ति मानिये तौं कुलालरूप कर्त्तातैं विना घटरूप कार्य भी स्वतः उत्पन्न होणा चाहिये। तथा चित्रकाररूप कर्त्तातैं विना चित्ररूप कार्य भी स्वतः उत्पन्न होणा चाहिये और तिन घटचित्रादिरूप कार्योंकी तिन कुलाल-चित्रकारादिरूप कर्त्तातैं विना स्वतः उत्पत्ति देखनेविषे आवती नहीं, किंतु तिन कुलालादिरूप कर्त्तातैं हीं तिन घटादिरूप कार्योंकी उत्पत्ति देखणेविषे आवै है। तैसे इस जगत्‌रूप कार्यका

भी कोई कर्त्ता अवश्य मान्या चाहिये । तहां जीवात्माविषे तौं इस सर्व जगत्का कर्त्तापणा सम्भवता नहीं । परिशेषतैं ता ईश्वरकूं हीं इस जगत्का कर्त्ता मानणा होवैंगा इति । स्वेदजादिकी उत्पत्तिको लेकर शङ्का—जैसे स्वेदजादिक शरीरोंकी कर्त्तातैं विना हीं उत्पत्ति होवै है तैसे तिन अंकुरादिक कार्योंकी भी कर्त्तातैं विना हीं उत्पत्ति होइसकैंगी । कर्तृजन्यत्वकी समतासे समाधान—जैसे उक्त अनुमानविषे कार्यत्वरूप हेतुतैं तिन अंकुरादिक कार्योंविषे कर्तृजन्यत्व सिद्ध कर्‍या है तैसे तिन स्वेदजादिकोंविषे भी तिसीकार्यत्वरूप हेतुतैं ता कर्तृजन्यत्वकी सिद्धि सम्भवै हैं । अर्थात् जिस जिस कार्यका कोई प्रत्यक्षकर्त्ता प्रतीत होता नहीं तिन सर्वकार्योंका ता पूर्वउक्त अनुमानके पक्षविषे हीं अन्तर्भाव विवक्षित है । या कारणतैं हीं ता पूर्वउक्त अनुमानविषे 'अंकुरादिकरूपं कार्यम्' इस पक्ष प्रतिपादक वचनविषे आदिशब्द कथन कर्‍या हैं । ता आदिशब्द करिकै तिन स्वेदजादिक सर्वकार्योंका ग्रहण होइसके है इति ॥

जीव ईश्वर दोनोंकी कृतिमत्ताका निर्णय—तहां इस अनुमानविषे कुलालादिक जीवात्मारूप कर्त्ता जन्य घटरूप कार्यके दृष्टांत करिकै अंकुरादिक कार्योंका कर्त्तारूप करिकै ईश्वरकी सिद्धि करी। याके विषे यह जिज्ञासा प्राप्त होवै है । जिस कर्तृत्वरूपतैं कुलालादिक जीवात्मावोंकूं घटादिरूप यत्किंचित् कार्यके प्रति कारणता है तथा ईश्वरकूं कार्यमात्रके प्रति कारणता है । सो जीवात्माविषे तथा ईश्वरविषे कर्तृत्व क्या है ? ऐसी जिज्ञासाके प्राप्तहूए । अब मतभेदसैं ता कर्तृत्वका निरूपण करे हैं । तहां प्राचीननैयायिक—तौं ता कर्तृत्वका यह लक्षण करे हैं । **उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वं कर्तृत्वम्** । अर्थ यह—कार्यके उपादान विषयक जो अपरोक्षज्ञान है तथा ता कार्यके करणेकी इच्छारूप जा चिकीर्षा है तथा प्रयत्नरूप जा कृति है तिन तीनोंका सममाय संबंध करिकै जो आश्रयपणा है ताका नाम कर्तृत्व है । जैसे घटरूप कार्यका उपादानकारणरूप जा मृत्तिकाविशेष है ता उपादानविषयक अपरोक्षज्ञान तथा ता घटरूप कार्यके करणेकी इच्छारूप चिकीर्षा तथा प्रयत्नरूप कृति यह तीनों ता घटरूप कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्व कुलालविषे समवायसंबंध करिकै रहे है । यह हीं ता कुलालविषे ता घटरूप कार्यका कर्तृत्व है । तैसे इस जगत्रूप कार्यके उपादानकारणरूप जे पृथिवी आदिकोंके परमाणु है तिन परमाणुविषयक अपरोक्षज्ञान तथा तिन परमाणुवोंतैं द्व्यणुकादिरूप कार्यके उत्पत्ति करणेकी इच्छारूप चिकीर्षा तथा प्रयत्नरूप कृति यह तीनों ता द्व्यणुकादिक कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्व ता ईश्वरविषे समवायसंबंध करिकै रहे हैं । यह हीं ता ईश्वरविषे जगत्का कर्तृत्व है इति । और नवीननैयायिक—तौं ता कर्तृत्वका यह लक्षण करे हैं । **कृतिमत्त्वं कर्तृत्वम्** । अर्थ यह—समवायसंबंध करिकै जो प्रयत्नरूप कृतिका आश्रयपणा है यह हीं ता जीवात्माविषे तथा ईश्वरविषे कर्तृत्व है । तहां कुलालादिरूप जीवात्मा विषे तौं यत्किंचित् घटादिरूप कार्यके करणेकी कृति रहे है । और ईश्वरविषे तौं सर्वकार्य

मात्रके करणेकी कृति रहे है । इस प्रकारके कृतिमत्त्वरूप कर्तृत्वरूपतैं हीं ता जीवात्माकूं तथा ईश्वरकूं ता कार्यकी कारणता है, ऐसा मानणेविषे ता जीवईश्वरनिष्ठ कारणताका अवच्छेदक केवल कृतिमात्र हीं होवै है, ज्ञान तथा चिकिर्षा ता कारणताका अवच्छेदक होवै नहीं ॥

इस विषयमें प्राचीनोंका खण्डन—और जे प्राचीननैयायिक उपादानविषयक अपरोक्षज्ञान, चिकीर्षा, कृति इन तीनोंके आश्रयपणेकूं हीं कर्तृत्व माने हैं, तिन प्राचीनोंके मतविषे ता जीव ईश्वररूप कर्त्ताविषे रहीहूई कारणताके ते तीनों हीं अवच्छेदक होवैंगे, तहां यद्यपि ईश्वरके ते ज्ञान इच्छा कृति तीनों एक एक व्यक्ति होवै हैं तथापि जीवात्माके ते ज्ञान इच्छा कृति तीनों नानाव्यक्ति होवै हैं। ऐसे ज्ञान, चिकीर्षा,कृति तीनोंविषे ता कारणताकी अवच्छेदकता मानणेविषे गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है, सा गौरवदोषकी प्राप्ति हम नवीनोंके मतविषे होती नहीं । यातैं सो प्राचीनउक्त कर्तृत्वका लक्षण समीचीन नहीं है इति । और केईकग्रंथकार तौं यह कहे हैं ता कार्यमात्रके प्रति ता जीवईश्वरकूं जो कृतिमत्त्वरूप कर्तृत्वरूपतैं कारण मानिये तौं भी ता जीवईश्वरनिष्ठ कारणताके अवच्छेदक अनेककृतियां हीं होवैंगी । यद्यपि ईश्वरविषे एक प्रयत्नरूप कृति रहे है तथापि जीवात्माविषे अनेककृति उत्पन्न होवै हैं तिन अनेककृतियोंकूं कारणताका अवच्छेदक मानणेविषे भी गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है । यातैं ता कृतिमत्त्व रूप कर्तृत्वरूपतैं भी ता जीवईश्वरकूं कार्यमात्रकी कारणता मानणी उचित नहीं है, किंतु ता ईश्वर विषे तथा सर्वजीवात्मावोंविषे अनुगत होइकै रही हूई जा आत्मत्वजाति है ता आत्मत्वरूपतैं हीं ता जीवईश्वरकूं कार्यमात्रकी कारणता मानणी उचित है । सा आत्मत्वजाति ता कृतिकी न्यांई नाना नहीं है । किंतु सर्व जीवात्मावोंविषे तथा ईश्वरात्माविषे सा आत्मत्वजाति एक हीं है, ता एक आत्मत्व जातिकूं ता जीवईश्वरनिष्ठ कारणताका अवच्छेदक मानणेविषे पूर्वमतकी न्यांई गौरवदोषकी प्राप्ति होवै नहीं, किंतु लाघवरूप गुणकी हीं प्राप्ति होवै है । किंवा ता जीव ईश्वरकूं जो आत्मत्वरूपतैं हीं कार्यमात्रके प्रति कारण मानिये तौं ता कार्यमात्रनिरूपित कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता आत्मत्वजातिकी जीव ईश्वर दोनोंविषे निर्विवादसैं सिद्धि होवै है । यातैं पूर्वउक्त ईश्वरसाधक अनुमानके स्थानविषे यह अनुमान सिद्धि होवै है। **अङ्कुरादिरूपं कार्यं आत्मजन्यं कार्यत्वात् घटवत्**। अर्थ यह—अंकुरादिरूप कार्य आत्मा करिकै जन्य है, कार्यरूप होणेतैं जो जो पदार्थ कार्यरूप होवै है सो सो पदार्थ आत्मा करिकै जन्य हीं होवै है। जैसे घट कार्यरूप होणेतैं कुलालरूप जीवात्मा करिकै जन्य है तैसे ते अंकुरादिक भी कार्यरूप होणेतैं किसी आत्माकरिकै जन्य हीं होवैंगे, तहां तिन अंकुरादिकोंविषे किसी जीवात्मा करिकै जन्यता तौं संभवती नहीं परिशेषतैं ईश्वरात्मा करिकै हीं ते अंकुरादिक जन्य होवैंगे इति ॥ १ ॥

द्वितीय अनुमान—अब ता ईश्वरसाधक द्वितीय अनुमानका निरूपण करे हैं । **सर्गाद्यकालीनद्व्यणुकप्रयोजकं कर्म प्रयत्नजन्यं कर्मत्वात् कपालनिष्ठकर्मवत् ।** अर्थ यह—सृष्टिके आदिकालविषे द्व्यणुकरूप कार्यका प्रयोजक जो परमाणुनिष्ठक्रियारूप कर्म है सो कर्म किसीके प्रयत्नकरिकै जन्य है, कर्मरूप होणेतैं, जो जो कर्म होवै है सो सो कर्म किसीके प्रयत्न करिकै हीं जन्य होवै है, जैसे घटरूप कार्यका प्रयोजक जो कपालनिष्ठ कर्म है सो कर्म कर्मरूप होणेतैं कुलालरूप जीवात्माके प्रयत्न करिकै जन्य है तैसे सो परमाणुवोंका कर्म भी कर्मरूप होणेतैं किसीके प्रयत्न करिकै अवश्य जन्य होवैगा, तहां जीवात्माके प्रयत्नकूं तौं तिन परमाणुवोंके कर्मकी कारणता संभवती नहीं, पारिशेषतैं ता ईश्वरके प्रयत्नकूं हीं ता कर्मकी कारणता संभवै है । यद्यपि इस अनुमान करिकै साक्षात् ईश्वरकी सिद्धि होती नहीं किंतु ता ईश्वरके प्रयत्नकी हीं सिद्धि होवै है, तथापि ता विलक्षणप्रयत्नकी आश्रयतारूप करिकै ता ईश्वरकी सिद्धि सम्भवै है । या प्रकारकी रीति अगले अनुमानोंविषे भी जानिलेणी इति ॥ २ ॥

तीसरा अनुमान—अब ता ईश्वरसाधक तृतीय अनुमानका निरूपण करे हैं । **पतनाभाववद्गुरुत्वाश्रयः पतनप्रतिबन्धकप्रयत्नप्रयुक्तः धृतिमत्वात् आकाशस्थपक्षीवत् ।** अर्थ यह--गुरुत्वधर्मवाले हूए भी नीचै पतनके अभाववाले ऐसे जे आकाशविषे स्थित मेघ नक्षत्रमंडलादिक द्रव्य हैं ते द्रव्य नीचै पतनके प्रतिबंधक किसी प्रयत्न करिकै प्रयुक्त हैं, धृतिवाले होणेतैं जो जो द्रव्य धृतिवाला होवै है सो सो द्रव्य ता पतनके प्रतिबंधक प्रयत्न करिकै प्रयुक्त हीं होवै है। जैसे गुरुत्वधर्मवाला हूआ भी नीचै पतनतैं रहित ऐसा जो आकाशविषे स्थित पक्षी शरीर है सो पक्षी शरीर धृतिवाला होणेतैं ता नीचै पतनके प्रतिबंधक प्रयत्न करिकै प्रयुक्त हीं है । तहां ता पक्षी शरीरावच्छिन्न जीवात्माका प्रयत्न हीं ता पक्षीशरीरके नीचै पतनविषे प्रतिबंधक है तैसे आकाशविषे स्थित ते गुरुत्वधर्मवाले मेघनक्षत्रमंडलादिक भी धृतिवाले होणेतैं ता नीचै पतनके प्रतिबंधक किसी प्रयत्न करिकै अवश्य युक्त होवैंगे । तहां किसी जीवात्माका प्रयत्न तौं तिन मेघादिकोंके पतनका प्रतिबंधक होइ सकता नहीं, पारिशेषतैं ईश्वरका प्रयत्न हीं तिन मेघादिकोंके नीचै पतनका प्रतिबंधकरूप करिकै सिद्ध होवै है । ऐसे विलक्षण प्रयत्नकी आश्रयतारूप करिकै ता ईश्वरकी सिद्धि संभवै है इति ॥ ३ ॥

चौथा अनुमान—अब ता ईश्वरके साधक चतुर्थअनुमानका निरूपण करे हैं । **ब्रह्माण्डनाशः प्रयत्नजन्यः नाशत्वात् घटनाशवत् ।** अर्थ यह—प्रलयकालविषे सर्वब्रह्माण्डका नाश होवै है सो ब्रह्मांडका नाश किसीके प्रयत्न करिकै जन्य है नाशरूप होणेतैं । जो जो नाश होवै है सो सो नाश किसीके प्रयत्न करिकै हीं जन्य होवै है, जैसे घटका प्रध्वंसाभावरूप नाश नाशरूप होणेतैं इस जीवात्माके प्रयत्न करिकै जन्य होवै है । तैसे सो सर्वब्रह्मांडका नाश भी नाशरूप होणेतैं किसीके प्रयत्न करिकै अवश्य जन्य होवैगा । तहां किसी जीवात्माका

प्रयत्न तौं ता सर्वब्रह्मांडके नाशका हेतु होइ सकता नहीं, परिशेषतै ता ईश्वरके प्रयत्नकूं हीं ता ब्रह्मांडके नाशका हेतु मानणा होवैंगा । ऐसे विलक्षण प्रयत्नका आश्रयरूप करिकै ता ईश्वरकी सिद्धि संभवै है इति ॥ ४ ॥

पंचम अनुमान—अब ता ईश्वरसाधक पंचमअनुमानका निरूपण करे हैं । **घटादिव्यवहारः स्वतंत्रपुरुषप्रयोज्यः व्यवहारत्वात् आधुनिककाल्पितलिप्यादिव्यवहारवत्** । अर्थ यह—घटशब्दकूं श्रवण करिकै लोकोंकूं घटरूप अर्थका हीं बोध होवै है पटरूप अर्थका बोध होवै नहीं, तैसे पटशब्दकूं श्रवण करिकै लोकोंकूं ता पटरूप अर्थका हीं बोध होवै है घटरूप अर्थका बोध होवै नहीं । इस प्रकार तिस तिस शब्दकूं श्रवण करिकै लोकोंकूं तिस तिस अर्थका हीं बोध होवै है । यातैं यह जान्या जावै है ते घटपटादिक शब्दरूप व्यवहार किसी स्वतंत्रपुरुष करिकै प्रयोज्य है अर्थात् इस घटपदतैं लोकोंकूं घटरूप अर्थका हीं बोध होवो तथा इस पटपदतैं लोकोंकूं इस घटरूप अर्थका हीं बोध होवो इत्यादिक सर्वसंकेत किसी स्वतंत्र सर्वज्ञ पुरुषनैं पूर्व करि राख्या है व्यवहाररूप होणेतैं । जो जो व्यवहार होवै सो सो किसी स्वतंत्र पुरुष करिकै प्रयोज्य हीं होवै है । जैसे किसी आधुनिक पुरुषनैं कल्पना कऱ्या हूआ लिपी आदिक व्यवहार है तहां भिन्न भिन्न देशविषे भिन्नभिन्न पुरुषोंनैं लोकोंकूं ककारादिक शब्दोंके बोध करावणे वासतै क ख ग घ ङ इत्यादिक लिपी कल्पना करि राखी है तिस तिस लिपीकूं देखि करिकै तिस तिस देशवाले लोकोंकूं तिन ककारादि शब्दोंका बोध होइ जावै है । यातैं जैसे सो लिपी आदिक व्यवहार व्यवहाररूप होणेतैं किसी आधुनिक स्वतंत्र पुरुष करिकै प्रयोज्य है, तैसे सो घटादिक व्यवहार भी व्यवहाररूप होणेतैं किसी स्वतंत्रपुरुष करिकै अवश्य प्रयोज्य होवैंगा । तहां तिन घटादिक सर्वव्यवहारोंकी प्रयोजकता किसी जीवात्माविषे तौं संभवती नहीं । परिशेषतैं सर्वज्ञ ईश्वरनामा स्वतंत्र पुरुष हीं तिन घटादिक सर्वव्यवहारोंका प्रयोजक मानणा होवैंगा इति ॥ ५ ॥

छठा अनुमान—अब ता ईश्वरसाधक षष्ठे अनुमानका निरूपण करे हैं । **वेदजन्यप्रमावक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञानजन्या शाब्दप्रमात्वात् चैत्रवाक्यजन्यप्रमावत्** । अर्थ यह—वेदवाक्यों करिकै जन्य जा यथार्थज्ञानरूपप्रमा है सा वेदजन्यप्रमा ता वेदके वक्ता पुरुषके यथार्थ वाक्यार्थज्ञान करिकै जन्य है । शाब्दप्रमा होणेतैं । जा जा शाब्दप्रमा होवै है सा सा वक्ता पुरुषके यथार्थ वाक्यार्थज्ञान करिकै जन्य हीं होवै है । जैसे चैत्रनामा पुरुषके ' घटमानय ' इस प्रकारके वाक्य करिकै जन्य जा मैत्रनामा पुरुषकी प्रमा है सा प्रमा शाब्दप्रमारूप होणेतैं ता चैत्रनामा वक्ता पुरुषके ता वाक्यके यथार्थज्ञान करिकै जन्य हीं होवै है, तैसे वेदवाक्योंतैं भी अधिकारी जनोंकूं यथार्थज्ञानरूप प्रमा उत्पन्न होवै है, सा प्रमा भी शाब्दप्रमारूप होणेतैं वेदके वक्ता पुरुषके ता वाक्यके यथार्थज्ञान करिकै अवश्य जन्य होवैंगी ।

तहां ऋगादिक वेदोंका उत्पादकत्वरूप वक्तापणा किसी जीवात्माविषे तौं संभवता नहीं, किंतु सर्वज्ञ ईश्वरविषेहीं सो वेदका वक्तापणा संभवै है। ता ईश्वररूपवक्ताके यथार्थवाक्यार्थज्ञान करिकै हीं तिन श्रोतापुरुषोंविषे सा वेदवाक्यजन्यशाब्दप्रमा उत्पन्न होवै है इति ॥ ६ ॥

सातवां अनुमान—अब ता ईश्वरसाधक सप्तम अनुमानका निरूपण करे हैं। वेदः असंसारिपुरुषप्रणीतः वेदत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथाकाव्यम्। अर्थ यह—यह ऋगादिरूपवेद किसी असंसारी पुरुष करिकै रचित होणेयोग्य है, वेदरूप होणेतैं। जो जो शास्त्र असंसारी पुरुष करिकै रचित नहीं होवै है सो सो शास्त्र वेदरूप भी नहीं होवै है। जैसे प्रसिद्ध रघुवंशादिक काव्य असंसारी पुरुष करिकै रचित नहीं है, किंतु कालिदासादिक संसारीपुरुषों करिकै हीं रचित है। यातैं सो काव्य वेदरूप भी नहीं है और यह ऋगादिक वेद तौं ता काव्यकी न्यांई अवेदरूप नहीं हैं किंतु वेदरूप हीं है। यातैं यह ऋगादिक वेद ता काव्यकी न्यांई किसी असंसारीपुरुष करिकै अरचित नहीं हैं, किंतु किसी असंसारी पुरुष करिकै रचित हीं हैं ऐसा ऋगादिक वेदोंका उत्पादक असंसारीपुरुषरूप कोई जीवात्मा तौं होइसकता नहीं। परिशेषतैं सो ईश्वर हीं तिन वेदोंका उत्पादक असंसारीपुरुषरूप करिकै सिद्ध होवै है इति ॥ ७ ॥

अष्टम अनुमान—अब ता ईश्वरसाधक अष्टम अनुमानका निरूपण करे हैं। वेदः पौरुषेयः वाक्यत्वात् भारतवत्। अर्थ यह—यह ऋगादिक वेद पौरुषेय होणेयोग्य है अर्थात् किसी पुरुषकरिकै रचित होणेयोग्य है वाक्यरूप होणेतैं। जो जो शास्त्र वाक्यरूप होवै है सो सो शास्त्र पौरुषेयहीं होवै है। जैसे महाभारत वाक्यरूपहोणेतैं पौरुषेय है अर्थात् श्रीव्यासरूप पुरुष करिकै रचित है। यह ऋगादिक वेद भी वाक्यरूप होणेतैं किसी पुरुष करिकै अवश्य रचित होवैंगा। तहां तिन ऋगादिक वेदोंका कर्त्तापणा किसी जीवात्माविषे तौं संभवता नहीं। परिशेषतैं तिन ऋगादिक सर्ववेदोंका कर्त्तारूपकरिकै सो ईश्वर हीं सिद्ध होवै है इति ॥ ८ ॥

नवम अनुमान—अब ता ईश्वरसाधक नवम अनुमानका निरूपण करे हैं। द्व्यणुकपरिमाणजनिका संख्या अपेक्षाबुद्धिजन्या एकत्वान्यसंख्यात्वात् द्विघटनिष्ठद्वित्वसंख्यावत्। अर्थ यह—द्व्यणुकके परिमाणका असमवायिकारणरूप जा दो परमाणुनिष्ठ द्वित्वसंख्या है सा द्वित्वसंख्या अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य होणेयोग्य है, एकत्वसंख्यातैं अन्य संख्या होणेतैं। जा जा संख्या एकत्वसंख्यातैं अन्य संख्या होवै है सा सा संख्या अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य हीं होवै है। जैसे दो घटोंविषे स्थित द्वित्वसंख्या एकत्व संख्यातैं अन्यसंख्या है। यातैं सा द्वित्वसंख्या 'अयं एक अयं एकः' या प्रकारकी अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य हीं होवै है। तैसे सा दो परमाणुनिष्ठ द्वित्वसंख्या भी एकत्वसंख्यातैं अन्य संख्या होणेतैं ता अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य हीं होवैंगी। तहां जीवात्माकी तौं ता परमाणुविषयक अपेक्षा बुद्धि संभवती

नहीं । परिशेषतैं ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धि करिकै हीं तिन दो परमाणुवोंविषे द्वित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है । ऐसी अपेक्षाबुद्धिका आश्रय रूप करिकै ता ईश्वरकी सिद्धि संभवै है इति ॥ ९ ॥

ईश्वरविषे वेद, ब्राह्मण और स्मृति प्रमाण ।

इस प्रकारके नव अनुमानों करिकै ता ईश्वरकी सिद्धि हूए ता ईश्वरउच्चारितत्वरूप हेतुतैं तिन ऋगादिक वेदोंविषे भी प्रमाणरूपताकी सिद्धि होइसके है । यातैं सो वेद भी ता ईश्वरके सद्भावविषे प्रमाणरूप है । सो वेद यह है—**द्यावाभूमी जनयन् देव एकः, विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता । ईश्वरमुपासीत । यः सर्वज्ञः सर्ववित् । यस्य ज्ञानमयं तपः । सोऽकामयत** । अर्थ यह—स्वर्गकूं तथा भूमिकूं उत्पन्न करता हूआ सो एक परमात्मादेव सर्वविश्वका कर्त्ता है तथा सर्व भुवनोंका रक्षण करणेहारा है और यह पुरुष ईश्वरकूं उपासना करै और जो ईश्वर सामान्यरूपतैं सर्वकूं जानणेहारा है सोई हीं ईश्वर विशेषरूप करिकै भी सर्वकूं जानणेहारा है । और जिस ईश्वरका ज्ञानमय हीं तप है । और सो ईश्वर इच्छा करता भया इति । इत्यादिक अनेक वेदकी श्रुतियां ता ईश्वरविषे प्रमाण हैं । तथा **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति** । इत्यादिक स्मृतियां भी ता ईश्वर विषे प्रमाण हैं इति ॥

जगन्नियन्ता—किंवा सर्व जगत्का कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर जो नहीं अंगीकार करिये तौं नियंताके अभावहूए सूर्यचन्द्रादिक ग्रहोंका विपरीत उदयअस्त होणा चाहिये, तथा जलधरनामा मेघमंडलनैं योग्यकालविषे वृष्टि नहीं करी चाहिये । काहेतैं ? चेतनतैं विना अचेतनवस्तुवोंका नियत कालविषे गमन आगमन संभवता नहीं और तिन सूर्यचन्द्रादिक ग्रहोंका नियतदेशकाल विषे हीं उदयअस्त देखणेविषे आवै है और मेघमंडलनैं भी नियतदेशकालविषे हीं वृष्टिकरीति है । यातैं यह जान्या जावै है कोई सर्वज्ञचेतन इस जगतका नियन्ता है । जिसकी आज्ञा करिकै यह सूर्यचन्द्रादिक नियमपूर्वक गमनागमनकरे हैं । तहां तिन सूर्यचन्द्रादिकोंका नियन्तापणा किसी जीवात्माविषे तौं संभवता नहीं, किंतु सर्वज्ञ ईश्वरविषे हीं तिन सर्वोंका नियन्तापणा संभवै है । यातैं यह सूर्यचन्द्रादिकोंका नियमपूर्वक उदय अस्त भी ता ईश्वरकी हीं सिद्धि करावै है इति ॥

ईश्वरके शरीरका विचार—इस पूर्वउक्त लक्षणप्रमाण करिकै ता ईश्वरकी सिद्धि हो वो परंतु सो ईश्वर जीवात्माकी न्यांई शरीरवाला है अथवा शरीरतैं रहित है । तहां सो ईश्वर शरीरवाला है । इस प्रथमपक्षविषे भी यह विचार कर्या चाहिये सो ईश्वरका शरीर आकाशकी न्यांई परममहत्त्वपरिमाणवाला है । अथवा घटादिकोंकी न्यांई मध्यम महत्त्वपरिमाणवाला है । अथवा परमाणु मनकी न्यांई अणुत्व परिमाणवाला है । तहां सो ईश्वरका शरीर परममहत्त्वपरिमाणवाला है, यह प्रथम पक्ष जो अंगीकार करिये तौं औदुम्बर-

फलादिकोंविषे मशकशरीरोंकी उत्पत्ति नहीं होणी चाहिये । काहेतैं ? सिद्धांत विषे ता ईश्वरकूं सर्व कार्यकी उत्पत्तिविषे कारण मान्या है । और तिन औदुम्बरफलादिकों; विषे ता महत् शरीरवाले ईश्वरका प्रवेश हीं संभवता नहीं और सो ईश्वरका शरीर मध्यम महत्त्वपरिमाणवाला है । यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करिये तौं सो ईश्वरका शरीर मनुष्यादिक शरीरोंकी न्यांई अनित्य हीं होवैंगा । काहेतैं ? जो जो द्रव्य मध्यम परिमाणवाला होवै है सो सो द्रव्य अनित्य हीं होवै है । जैसे मनुष्यादिक शरीर मध्यमपरिमाणवाले होणेतैं अनित्य हीं हैं तैसे सो ईश्वरका शरीर भी मध्यम परिमाणवाला होणेतैं अनित्य हीं होवैंगा । ऐसे अनित्य शरीरविशिष्ट ईश्वरकूं सृष्टिकी आदिकालविषे द्व्यणुदिक कार्योंका कर्त्तापणा हीं संभवता नहीं, किंवा सो ईश्वरका शरीर जो मध्यम परिमाणवाला होवैंगा तौं जिस देशविषे सो ईश्वरका शरीर विद्यमान होवैंगा तिस देशविषे तौं किसी कार्यकी उत्पत्ति होवैंगी । तिसतैं अन्यदेशविषे किसी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होवैंगी; सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु एक हीं कालविषे सर्वदेशोंविषे ता कार्यकी उत्पत्ति हीं देखणेविषे आवै है । यातैं सो ईश्वरका शरीर मध्यम परिमाणवाला भी संभवता नहीं और सो ईश्वरका शरीर अणुत्वपरिमाणवाला है यह तीसरापक्ष जो अंगीकार करीये सो भी सम्भवता नहीं । काहेतैं ? सो अणुत्वपरिमाणवाला ईश्वरका शरीर किसी एकदेशविषे हीं स्थित होवैंगा, सर्वदेशविषे स्थित होवैंगा नहीं । और जिस देशविषे सो ईश्वरका अणुशरीर स्थित होवैंगा तिस देशविषे तौं ता अणुशरीरविशिष्ट ईश्वरतैं किसी कार्यकी उत्पत्ति होवैंगी, ता देशतैं भिन्नदेशविषे किसी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होवैंगी । सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु एक हीं कालविषे सर्वदेशोंविषें वर्षादिक कार्योंकी उत्पत्ति देखणेविषे आवै है । यातैं सो ईश्वरका शरीर अणुपरिमाणवाला भी सम्भवता नहीं । यातैं सो ईश्वर शरीरवाला है यह प्रथमपक्ष सम्भवता नहीं । और सो ईश्वर शरीरतैं रहित है यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करीये सो भी सम्भवता नहीं । काहेतैं ? ता ईश्वरकूं जो शरीरतैं रहित मानिये तौं ता ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तापणा हीं नहीं सिद्ध होवैंगा । जिस कारणतै लोकविषे शरीरवाले कुलालादिकोंकूं हीं घटादिक कार्योंका कर्त्तापणा देखणेविषे आवै है, शरीरतैं रहित कुलालादिकोंकूं किसी घटादिक कार्यका कर्त्तापणा देखणेविषे आवता नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; तहां केईकग्रन्थकार तौं ता शंकाका यह समाधान करे हैं । शरीरवाला हीं कर्त्ता होवै है शरीरतैं रहित कर्त्ता होता नहीं । या प्रकारे नियमविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । यातैं शरीरतैं विना भी ता ईश्वरविषे कर्त्तापणा सम्भवै है अर्थात् जैसे मन्त्रादिक शरीरतैं विना हीं कार्यकी उत्पत्ति करे हैं तैसे सो ईश्वर भी शरीरतैं विना हीं ता जगत्रूप कार्यकी उत्पत्ति करे है इति । और केईकग्रन्थकार तौं शरीरवाला हीं कर्त्ता होवै है इस पूर्वउक्त नियमकूं अंगीकार करिकै पृथिवीआदिक च्यारिभूतोंके परमाणुवोंकूं हीं

ता ईश्वरका शरीर माने हैं। ता परमाणुरूप शरीरविशिष्ट ईश्वर तिन औदुम्बर फलादिकोंविषे भी विद्यमान है। यातैं तिन औदुम्बर फलादिकोंविषे मशकादिक शरीरोंकी उत्पत्ति सम्भवै है और सर्वत्र पृथिवी आदिकोंके परमाणुवों करिकै हीं कार्य द्रव्यकी उत्पत्ति होवै है। यातैं जहां जहां ता कार्यद्रव्यकी उत्पत्ति होवै है तहां तहां सो परमाणुरूप शरीरविशिष्ट ईश्वर विद्यमान हीं है। यातैं एक हीं कालविषे ता ईश्वर करिकै सर्वत्र घटादिक कार्योंकी उत्पत्ति भी सम्भवै है इति। और केईकग्रन्थकार तौं यह कहे हैं। **आकाशशरीरं ब्रह्म।** इस—श्रुतिविषे आकाशकूं ब्रह्मका शरीर कह्या है और ब्रह्मशब्द ईश्वरका हीं वाचक है। यातैं इस श्रुतिप्रमाणतैं सो आकाश हीं ता ईश्वरका शरीर सिद्ध होवै है। सो आकाश सर्वत्र व्यापक है। यातैं ता आकाशरूप शरीरविशिष्ट ईश्वरतैं एक हीं कालविषे सर्वत्र घटादिक कार्योंकी उत्पत्ति सम्भवै है इति। और केईकग्रन्थकार तौं यह कहे हैं। जैसे जीवोंके मनुष्यादिक शरीर आपणे पुण्यपापरूप अदृष्टके वशतैं उत्पन्न होवै है तैसे ईश्वरका शरीर आपणे पुण्यपापरूप अदृष्टतैं उत्पन्न होता नहीं। जिस कारणतैं ता ईश्वरविषे मिथ्याज्ञानरूप कारणके अभावतैं ता पुण्यपापरूप अदृष्टकी उत्पत्ति हीं होती नहीं। यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं, किंतु सो ईश्वरका शरीर जीवोंके पुण्यपापरूप अदृष्टके वशतैं हीं होवै है। सो ईश्वरका शरीर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह तीनरूप हीं होवै है। तहां ब्रह्मा शरीर करिकै विशिष्ट हूआ सो ईश्वर सर्व जगत्की उत्पत्ति करे है। और विष्णु शरीर विशिष्ट हूआ सो ईश्वर सर्वजगत्का पालन करे है। और रुद्रशरीरविशिष्ट हूआ सो ईश्वर सर्वजगत्का संहार करे है। इति। और केईकग्रंथकार तौं भूतावेशन्याय करिकै ता ईश्वरका शरीर माने है तिनोंका यह अभिप्राय है। जैसे भूत मनुष्यादिक शरीरोंविषे प्रविष्ट होइकै आपणे प्रयत्नतैं ता मनुष्यादिक शरीरविषे नानाप्रकारकी चेष्टाकूं करे है। जे चेष्टा तिन मनुष्यादिकों करिकै करणेकूं अशक्य हैं। तैसे सो सर्वज्ञ ईश्वर भी किसी जीवविशेष करिकै आश्रित रामकृष्णादिक शरीरोंविषे प्रविष्ट होइकै आपणे प्रयत्नतैं ता रामादिक शरीरों करिकै रावणवधादिक वांछितकार्यकी सिद्धि करे है। जे रावणवधादिक कार्य तिस तिस देहाभिमानी जीवविशेषों करिकै करणेकूं अशक्य है। तहां जिस शरीरविषे प्रविष्ट होइकै सो ईश्वर असुरवधादिरूप वांछित कार्यकी सिद्धि करे हैं सोई हीं शरीर ता ईश्वरका शरीर जानणा इति ॥

विष्णुशिवादिकको ईश्वरका विग्रह माननेवाले ग्रन्थकार—और केईकग्रंथकार तौं यह कहे हैं सो ईश्वर वास्तवतैं तौं शरीरतैं रहित हीं है, परंतु संसाररूप पंकविषे निमग्न अज्ञानीजनोंके उद्धार करणेकी इच्छा करता हूआ सो ईश्वर लीलाविग्रहोंकूं धारण करे है। तात्पर्य यह—इन जीवोंकूं तत्त्वज्ञान करिकै हीं मोक्षकी प्राप्ति होवै है और सो तत्त्वज्ञान उपासनादिक साधनों करिकै हीं होवै है और ते उपासना उपास्यदेवता करिकै हीं होवै है यातैं तिन उपासनादिकोंकी सिद्धि

यातैं सो ईश्वर शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा इन लीलाविग्रहोंकूं धारण करे है तिन शिव विष्णु आदिक विग्रहोंकी उपासना करिकै यह जीव तत्त्वज्ञानद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवै हैं । यह वार्त्ता श्रीव्यासभगवान्नैं भी कही है । तहां श्लोक—**शिवशक्तिगणेशार्कविष्णुरूपात्स ईश्वरः। उपासनानुसारेण भक्तेभ्यो भुक्तिमुक्तिदः ॥** अर्थ यह—सो सर्वज्ञ ईश्वर शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, विष्णु इन पांच रूपोंतैं हीं आपणे भक्तजनोंके तांई उपासनाके अनुसार भोगमोक्षकूं देवै है तहां जे भक्तजन सकाम होइकै उपासना करे हैं तिनोंके तांई तौं भोगकी प्राप्ति करे है और जे भक्तजन निष्काम होइकै उपासना करे है तिनोंके तांई मोक्षकी प्राप्ति करे है इति । यातैं शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, विष्णु यह पांचों एक ईश्वरके हीं लीलाविग्रह होणेतैं तुल्य हीं हैं । इन पांचोंविषे किंचितमात्रभी विषमता नहीं है इति ॥

ईश्वरवादियोंके विवादोंका ग्रन्थकारका समाधान—इस प्रकारके शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यकूं न जानिकै केईक वैष्णव तौं एक विष्णुकूं हीं ईश्वर माने हैं शिव शक्ति आदिकोंकूं ईश्वर मानते नहीं, ऐसे केईक शैव भी एक शिवकूं हीं ईश्वर माने हैं, विष्णु आदिकोंकूं ईश्वर मानते नहीं । इस प्रकार शक्तिके उपासक शाक्तपुरुष ता शक्तिकूं हीं ईश्वर माने हैं शिवविष्णु आदिकोंकूं ईश्वर मानते नहीं, इस प्रकार गणपतिके उपासक ता गणपतिकूं हीं ईश्वर माने हैं शिवविष्णु आदिकोंकूं ईश्वर मानते नहीं, इस प्रकार सूर्यके उपासक ता सूर्यकूं हीं ईश्वर माने हैं शक्तिगणेशादिकोंकूं ईश्वर मानते नहीं इति । सो यह वैष्णवादिकोंका दुराग्रह श्रुतितैं विरुद्ध होणेतै मुमुक्षुजनोंकूं ग्रहण करणे योग्य नहीं है । काहेतैं ? **स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेंद्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।** यह श्रुति ब्रह्मा शिव विष्णु इन तीनोंकूं ईश्वररूप हीं कहे है ऐसे ईश्वररूप शिवविष्णुआदिकोंविषे एककूं तौं ईश्वररूप मानणा दूसरेकूं ईश्वररूप नहीं मानणा यह मत ता उक्तश्रुतितैं विरुद्ध हीं हे इति । किंवा जो पुरुष एक विष्णुकूं हीं ईश्वर मानिकै ता विष्णुका तौं भक्ति करे है और शिवशक्ति आदिकोंका द्वेष करे है तिस पुरुषकी सा करीहूई विष्णुकी भक्ति निष्फल हीं होवै है, तैसे जो पुरुष एक शिवकूं हीं ईश्वर मानिकै ता शिवकी तौं भक्ति करे है और विष्णुआदिकोंका द्वेष करे है तिस पुरुषकी सा करीहूई शिवकी भक्ति निष्फल हीं होवै है। इस प्रकार इतर देवताके द्वेषपूर्वक करी हूई शक्तिसूर्यादिकोंकी भक्ति भी निष्फल हीं होवै है, यह वार्त्ता श्रीव्यासभगवान्नैं भी कही है। तहां श्लोक—**शैवाः शाक्ताश्च गाणेशाः सौरा विष्णुप्रपूजकाः । विद्विषन्ति मिथो भ्रांत्या तेषां भक्तिश्च निष्फला ॥** अर्थ यह—शिवके उपासक तथा शक्तिके उपासक तथा गणपतिके उपासक तथा सूर्यके उपासक तथा विष्णुके उपासक यह सर्व शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यकूं न जानिकै अर्थात् यह शिवशक्ति आदिक पांचों एक ईश्वरके हीं विग्रह हैं इस प्रकारके शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यकूं न जानिकै भ्रांति करिकै परस्पर द्वेष करे हैं, या कारणतैं तिन पुरुषोंकी सा करी हूई तिस तिस देवताकी भक्ति

निष्फल हीं होवै है इति। किंवा जो पुरुष शिव विष्णुविषे भेद बुद्धि करे है सो भेददर्शी पुरुष नरककूं हीं प्राप्त होवै है, यह वार्त्ता भी श्रीव्यासभगवान्‌नैं हीं कथन करी है। तहां श्लोक—

**शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः। ईषदप्यन्तरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्।**

अर्थ यह—शिवका हृदय विष्णु है और ता विष्णुका हृदय शिव है। ता शिवविष्णुविषे जो पुरुष किंचिन्मात्र भी भेदबुद्धि करे है सो भेददर्शी पुरुष रौरव नरककूं हीं प्राप्त होवै है इति। यातैं श्रेयकी इच्छावान् पुरुषोंनैं ता परमेश्वरके शिवविष्णुआदिक लीलाविग्रहोंविषे कदाचित् भी भेदबुद्धि नहीं करणी, यह स्मार्त्तपुरुषोंका मत है। सोई हीं अंगीकार करणेयोग्य है इति ॥

शरीरादिके विषयमें ग्रन्थकारका न्यायमिश्रित स्वसिद्धान्त—यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। सो सर्वज्ञ ईश्वर वास्तवतैं शरीरतैं रहित हीं है। ता शरीरतैं रहित होणेतैं हीं सो ईश्वर चक्षुआदिक इंद्रियोंतैं भी रहित है। या कारणतैं हीं ता ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीनों नित्य अंगीकार करे हैं। काहेतैं ? ता ईश्वरविषे जगत्‌के कर्त्तापणेकी सिद्धि वासतै सृष्टिके आदिकालविषे मैं ईश्वर इन परमाणुवों करिकै द्व्यणुकरूप कार्यकूं उत्पन्न करूं या प्रकारका ज्ञान तथा ता ज्ञानके समानाकार इच्छा तथा प्रयत्न यह तीनों अवश्य अंगीकार करणे होवैंगे, तहां तिन ज्ञानादिकोंके उत्पादक शरीरइंद्रियादिक कारण तिस कालविषे हैं नहीं। यातैं ते ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न तीनों नित्य हीं मानणेयोग्य है इति। किंवा जैसे जीवात्माकूं किसी वस्तुका तौं अपरोक्षज्ञान होवै हैं और किसी वस्तुका परोक्षज्ञान होवै है तैसे ता ईश्वरकूं किसी वस्तुका परोक्षज्ञान होता नहीं। किंतु भूत भविष्यत् वर्त्तमान सर्ववस्तुविषयक एक अपरोक्ष ज्ञान हीं होवै है इति। किंवा जैसे जीवात्माके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीनों कोई सफल होवै हैं कोई निष्फल होवै हैं, तैसे ता ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीनों निष्फल होते नहीं, किंतु सफल हीं होवै हैं इति। किंवा जैसे जीवात्माकूं तत्त्वज्ञानतैं पूर्व बन्ध होवै है और तत्त्वज्ञानतैं अनन्तर मोक्ष होवै है तैसे ता ईश्वरकूं यथाक्रमतैं सो बन्ध मोक्ष होवै नहीं, किंतु सो ईश्वर नित्यमुक्त हीं है इति। तहां इतनैं ग्रन्थकरिकै लक्षणप्रमाणपूर्वक ईश्वरका निरूपण कन्या ॥

दोनोंकी विलक्षणता।

अब पूर्वलक्षण प्रमाण करिकै सिद्ध कन्येहूए जीवात्माविषे इस उक्त ईश्वरतैं विलक्षणता बोधन करणे वासतै ता जीवात्माके कर्मपराधीनताकूं तथा नानापणेकूं निरूपण करे हैं। तहां जैसे सो ईश्वर शरीरतैं रहित है तैसे यह जीवात्मा संसारदशाविषे शरीरतैं रहित होता नहीं, किंतु तत्त्वज्ञानसाध्य मोक्षदशाविषे हीं यह जीवात्मा शरीरतैं रहित होवै है।

या कारणतैं हीं—**अशरीरं वा वसन्तम्** । यह श्रुति ता मोक्षदशाविषे ता मुक्तजीवात्माकूं शरीरतैं रहित कहे है और संसारदशाविषे तौं यह जीवात्मा स्वकृतपुण्यपापकर्मके वशतैं चौराशीलक्ष शरीरोंकूं प्राप्त होवै है ॥

शरीरोंके भेद—तहां एकवीश लक्ष प्रकारके जरायुज शरीर होवै हैं और एकवीश लक्ष प्रकारके अंडज शरीर होवै हैं और एकवीश लक्षप्रकारके स्वेदज शरीर होवै हैं और एकवीशलक्ष प्रकारके उद्भिज्ज शरीर होवै हैं। पुण्यतैं उत्तम तथा पापसे अधम शरीरकी प्राप्ति—तहां पुण्यकर्मके वशतैं इस जीवात्माकूं ब्राह्मणादिक उत्तमशरीरोंकी प्राप्ति होवै है और पापकर्मके वशतैं इस जीवात्माकूं श्वानादिक नीचशरीरोंकी प्राप्ति होवै है । यह वार्त्ता भी—**रमणीयचरणाः रमणीयां योनिमापद्यन्ते; कपूयचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते** । इत्यादिक श्रुतियोंविषे कथन करी है । यातैं यह जीवात्मा संसारदशाविषे पुण्यपापकर्मोंके अधीन हूआ हीं ऊंच नीच शरीरोंकूं प्राप्त होवै है इति । जीवोंके अनेकत्वकी सिद्धि—किंवा जैसे ईश्वर एक है तैसे यह जीवात्मा एक नहीं है, किंतु शरीर शरीरविषे यह जीवात्मा भिन्नभिन्न हीं है । ते मनुष्यादिक शरीर असंख्यात हैं, यातैं ते जीवात्मा भी असंख्यात हीं है । जो कदाचित् सर्व शरीरोंविषे एक हीं आत्मा अंगीकार करिये तौं कोई पुरुष सुखी है, कोई पुरुष दुःखी है तथा कोई पुरुष बद्ध है, कोई पुरुष मुक्त है या प्रकारतैं सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता नहीं होवैंगी, किंतु एकपुरुषके सुखीहूए सर्वसुखी हीं होवैंगे तथा एकपुरुषके दुःखीहूए सर्व दुःखी हीं होवैंगे तथा एकपुरुषके बद्धहूए सर्व बद्ध हीं होवैंगे तथा एक पुरुषके मुक्त हूए सर्वमुक्त हीं होवैंगे; सो इस प्रकारकी सुखदुःखादिकोंकी अव्यवस्था देखणेविषे आवती नहीं, किन्तु कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई बद्ध है, कोई मुक्त है या प्रकारकी व्यवस्था हीं देखणेविषे आवै है । सा सुखदुःखादिकोंकी व्यवस्था शरीरशरीर विषे भिन्न-भिन्न जीवात्माके माणणेतैं विना सिद्ध होती नहीं । यातैं तिन सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता-रूप हेतुतैं सो जीवात्मा शरीरशरीरविषे भिन्नभिन्न हीं सिद्ध होवै है । किंवा इस लोकविषे किसी पुरुषकूं तौं राजापणेतैं सुख प्राप्त होवै है और किसी पुरुषकूं ता राजाके सेवकपणेतैं सुख प्राप्त होवै है और किसी पुरुषकूं ता राजाके सेवकके भी सेवकपणेतैं सुख प्राप्त होवै है । तहां ता राजाकूं आपणे राजापणेतैं जो सुख प्राप्त होवै है सो सुख ता सेवककूं प्राप्त होता नहीं और ता सेवककूं आपणे सेवकपणेतैं जो सुख प्राप्त होवै है सो सुख ता राजाकूं प्राप्त होता नहीं । यह वार्त्ता सर्वलोकोंके अनुभव सिद्ध है । जो कदाचित् ता राजा-शरीरविषे तथा ता सेवकशरीरविषे एक हीं आत्मा अंगीकार करीये तौं ता राजाके सुखका ता सेवककूं अनुभव होणा चाहिये तथा ता सेवकके सुखका ता राजाकूं अनुभव होणा चाहिये सो होता नहीं । या कारणतैं भी शरीरशरीरविषे सो जीवात्मा भिन्न भिन्न हीं अंगीकार

कन्या चाहिये । एक आत्मामें अवच्छेदकभेदसे नानात्वकी शंका—सर्वशरीरोंविषे एक आत्माके अंगीकार कीये हूए भी तिस तिस शरीररूप अवच्छेदकके भेदतैं सा सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता संभव होइसकै है । जैसे पादतैं लैकै शिरपर्यंत संपूर्णशरीरविषे एक आत्माके हूए भी ता शिरपादादिरूप अवच्छेदकके भेदतैं मेरेकूं शिरविषे सुख है, पादविषे वेदना है या प्रकारतैं सुखदुःखकी विचित्रता होवै है, तैसे चैत्रमैत्रादिक सर्वशरीरोंविषे एक आत्माके विद्यमान हूए भी ता चैत्रमैत्रादिक शरीररूप अवच्छेदकके भेदतैं सा सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता संभवै है अर्थात् ता एक हीं आत्माकूं ता चैत्रशरीरविशिष्टतारूप करिकै तौं सुखका अनुभव होवै है और ता मैत्रशरीरविशिष्ट ता रूप करिकै दुःखका अनुभव होवै है । इस प्रकार सर्व शरीरोंविषे एक आत्माके मानणे करिकै भी तिन शरीरोंके भेदतैं सा सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता संभव होइसकै है । यातैं ता सुखदुःखादिकोंकी विचित्रतारूप हेतुतैं शरीर शरीरविषे सो आत्माका भेद मानणा असंगत है । परस्परके अननुसन्धानसे समाधान—सर्वशरीरोंविषे आत्माकी एकता मानिकै तिन शरीरोंके भेदतैं जो सुखदुःखादिकोंके विचित्रताकूं अंगीकार करोंगे तौं जैसे दृष्टांतविषे जो मैं शिरके सुखकूं अनुभव करता हूं सोई हीं मैं पादके दुःखकूं अनुभव करता हूं । इस प्रकारतैं सो एक हीं आत्मा यथाक्रमतैं ता शिरपादके सुखदुःखकूं अनुसंधान करे है । तैसे दार्ष्टांतिकविषे भी जो मैं चैत्रनामा पुरुष सुखी हूं सोईहीं मैं मैत्रनामा पुरुष दुःखी हूं इस प्रकारतैं ता एक हीं आत्माकूं यथाक्रमतैं ता चैत्रमैत्रशरीरके सुखदुःखका अनुसंधान होणाचाहिये । सो इस प्रकारका अनुसंधान किसी भी जीवात्माकूं होता नहीं । यातैं ता उक्त दृष्टांततैं सर्वशरीरोंविषे एक आत्माकी सिद्धि होती नहीं। पूर्वके अप्रतिसन्धानकी शंका—सर्वशरीरोंविषे एक आत्माके हूएभी तिन शरीरोंके भेदतैं ता एकआत्माकूं सो सर्वशरीरोंके सुखदुःखादिकोंका प्रतिसंधान होता नहीं । जो कदाचित् तिन शरीरोंके भेदकूं ता प्रतिसंधानका प्रतिबंधक नहीं मानोंगे तौं तुम नैयायिकोंके मतविषे भी जो मैं पूर्वजन्मके देहविषे सुखी होता भया सोई मैं इस जन्मके देहविषे परम दुःखी हूं। इस प्रकारका प्रतिसंधान सर्वलोकोंकूं होणा चाहिये । काहेतैं ? तुम नैयायिकोंके मतविषे भी ता पूर्वनष्टहूए देहविषे तथा इस वर्त्तमान देहविषे सो जीवात्मा एक हीं है । यातैं ता एक जीवात्माकूं ता पूर्व उत्तर देहोंके सुखदुःखादिकोंका प्रतिसंधान होणा चाहिये, सो इस प्रकारका प्रतिसंधान किसी भी जीवकूं होता नहीं । यातैं तुम नैयायिकोंनैं भी तिन पूर्व उत्तर शरीरोंका भेद हीं ता प्रतिसंधानका प्रतिबंधक मानणा होवैगा, सो शरीरोंका भेद इहां एक आत्मपक्षविषे भी विद्यमान है । या कारणतैं हीं ता एक आत्माकूं ता चैत्रमैत्रादिक शरीरोंके सुखदुःखादिकोंका प्रतिसंधान होता नहीं । संस्कारोंके अभावसे समाधान—इस वर्त्तमान शरीरविषे स्थित जीवात्माकूं जो पूर्व नष्टहूए शरीरोंके सुखदुःखादिकोंका प्रति-

संधान नहीं होवै है । ताकेविषे कोई पूर्वउत्तर शरीरोंका भेद कारण नहीं है, किंतु ता पूर्वशरीरोंके सुखदुःखादिकोंके संस्कारोंका अभाव हीं ता अप्रतिसंधानविषे कारण है अर्थात् उत्तरउत्तर जन्मके प्राप्तहूए पूर्वपूर्व शरीरोंके सुखदुःखादिकोंके संस्कार नष्ट होइ जावै हैं । या कारणतैं अयोगीजीवात्माकूं इस वर्त्तमान शरीरविषे तिन पूर्वशरीरोंके सुखदुःखादिकोंका स्मरण होता नहीं । जो कदाचित् शरीरोंके भेदकूं हीं ता अप्रतिसंधान-विषे कारण मानोंगे तौं एक हीं जीवात्माकूं बाल्ययौवनशरीरके सुखदुःखादिकोंका वृद्ध अवस्थाविषे स्मरण नहीं होणा चाहिये । काहेतैं? अवयवोंके उपचयतैं तथा अपचयतैं पूर्व अव-यवीका नाश होइके द्वितीय अवयवीकी उत्पत्ति होवै है, यह शास्त्रका सिद्धांत है और बाल्य, यौवन, वृद्ध शरीरविषे सो अवयवोंका उपचय तथा अपचय सर्वलोकोंकूं अनुभवसिद्ध है । यातैं ता बाल्य शरीरतैं सो यौवनशरीर भिन्न हीं है तथा ता यौवनशरीरतैं सो वृद्धशरीर भिन्न हीं है । इस प्रकार बाल्य, यौवन, वृद्ध इन तीन शरीरोंके भेदहूए भी जो मैं बाल्यशरीर विषे सुखी था सोई मैं इस यौनव शरीरविषे दुःखी हूं तथा सोई मैं इस वृद्ध शरीरविषे सुखी हूं इस प्रकारतैं ता एक हीं जीवात्माकूं आपणे बाल्ययौवनादिक शरीरोंके सुखदुःखादिकोंका प्रतिसंधान होवै है । यातैं सो शरीरोंका भेद ता अप्रतिसंधानविषे कारण नहीं है, किंतु सो संस्कारोंका अभाव हीं ता अप्रतिसंधानविषे कारण है । इस प्रकार तुम एकात्मवादी भी ता संस्कारोंके अभावकूं हीं जो ता अप्रतिसंधानविषे कारण मानोंगे तौं जैसे चैत्रनामा पुरुष करिकै अनुभव कऱ्येहूए सुखदुःखका मैत्रनामा पुरुषकूं स्मरण नहीं होवै है । तैसे तिन संस्कारोंके अभाव होणतैं ता चैत्रनामा पुरुषकूं भी स्वानुभूत सुखदुःखादिकोंका स्मरण नहीं होवैगा और तिन सुखदुःखादिकोंके संस्कारोंकूं जो अंगीकार करौंगे तौं जैसे ता चैत्रकूं स्वानुभूत सुखदुःखादिकोंका स्मरण होवै है तैसे ता मैत्रनामा पुरुषकूं भी तिन सुखदुःखादिकोंका स्मरण होणा चाहिये । जिस कारणतैं तुमारे मतविषे सो संस्कारोंका आश्रयरूपजीवात्मा तिन चैत्रमैत्रादिक सर्वशरीरोंविषे एक हीं है । सो इस प्रकारका स्मरण देखणेविषे आवता नहीं । यातैं सर्वशरीरोंविषें एक आत्मा नहीं है, किंतु शरीरशरीरविषे सो जीवात्मा भिन्नभिन्न हीं है । ता जीवात्माके भेदके अंगीकार कीये हूए हीं सा लोक-प्रसिद्ध सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता संभवै है । सर्व शरीरोंविषे एक आत्माके अंगीकार कीये हूए सा सुखदुःखादिकोंकी विचित्रता संभवती नहीं इति । नानात्वकेविषे श्रुति प्रमाण—किंवा केवळ सुखदुःखादिकोंकी विचित्रतारूप हेतुतैं हीं ता जीवात्माका नानापणा सिद्ध नहीं है किंतु—यो यो देवानां प्रत्यबुद्धचत । इत्यादिक श्रुतिप्रमाणतैं भी ता जीवात्माका नानापणा हीं सिद्ध होवै है और एको देवः सर्वभूतेषु गूढः। इत्यादिक श्रुतियोंविषे जो आत्माका एकत्व कथन कऱ्या है सो जीवात्माका एकत्व नहीं कथन कऱ्या है, किंतु ता ईश्वरात्माका एकत्व कथन कऱ्या है। यातैं श्रुतिप्रमाणतैं भी ता जीवात्माका नानापणा हीं सिद्ध होवै है इति ।

जीवका भी परममहत्परिमाण कथन ।

अब ता जीवात्माके विभुपणेकूं कथन करे हैं । जैसे सो ईश्वर विभु है तैसे यह जीवात्मा भी विभु हीं है अर्थात् परममहत्त्व परिमाणवाला हीं है । यह जीवात्मा परमाणु मनकी न्यांई अणुत्व परिमाणवाला नहीं है तथा घटादिकोंकी न्यांई मध्यम परिमाणवाला नहीं है ।

अणुपरिमाणवादीके मतमें दोष—तहां इस जीवात्माकूं जो कदाचित् अणुत्व परिमाणवाला मानिये तौं सो अणुआत्मा इस शरीरके किसी अंगुलि आदिक एकदेशविषे हीं रहैंगा, संपूर्ण शरीरविषे व्याप्यके रहैंगा नहीं । यातैं संपूर्णशरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव नहीं होवेगा, किंतु ता अंगुलि आदिक किसीं एकदेशविषे हीं ता सुखदुःखका अनुभव होवैंगा । और ग्रीषमऋतुके सूर्यकी उष्णता करिकै तप्तहूए पुरुषकूं पादतैं लैके मस्तकपर्यंत संपूर्ण शरीरविषे दुःखका अनुभव होवै है तथा तिस पुरुषकूं शीतलगंगाजलविषे निमग्नता करिकै ता संपूर्ण शरीरविषे सुखका अनुभव होवै है सो संपूर्णशरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव अणुआत्मपक्षविषे नहीं संभवैंगा, यातैं सो जीवात्मा अणु नहीं है । अणुवादीकी ओरसे समाधान—ता जीवात्माकूं अणु मानणेविषे यह उक्त दोष संभवता नहीं । काहेतैं ? जैसे सूक्ष्मप्रदीप गृहके किसी एकदेशविषे रहे है, परंतु ता प्रदीपकी प्रभा ता संपूर्ण गृहविषे व्याप्य करिकै रहे है तैसे सो अणुआत्मा यद्यपि शरीरके किसी एकदेशविषे रहे तथापि ता अणु आत्माकी ज्ञानरूपप्रभा ता संपूर्णशरीरविषे व्याप्य करिकै रहे है । यातैं ता अणु आत्माकूं ता संपूर्णशरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव संभवै है । अणुवादके दोष—जहां योगीपुरुष आपणे योगके प्रभावतैं एक हीं कालविषे अनेक शरीरोंकूं धारण करे है, तहां तिस योगी पुरुषका सो अणुआत्मा जिस शरीरविषे रहैंगा तिस शरीरविषे ता अणुआत्माकी सा ज्ञानरूप प्रभा व्याप्य करिकै रहैंगी, तिस शरीरतैं भिन्न दूसरे किसी शरीरविषे सा ज्ञानरूपप्रभा व्याप्य करिकै रहैंगी नहीं । यातैं तिस योगी पुरुषकूं तिसी एक शरीरके सुखदुःखादिकोंका हीं अनुभव होवैंगा, तिन सर्वशरीरोंके सुखदुःखादिकोंका अनुभव नहीं होवैंगा । और शास्त्रविषे तौं तिस योगी पुरुषकूं एक हीं कालविषे तिन सर्वशरीरोंके सुखदुःखादिकोंका अनुभव कथन कऱ्या है,सो अणु आत्मवादीके मतविषे असंगत होवैंगा,किंवा जो वादी ता जीवात्माकूं अणु माने है तिस वादीके मतविषे ता अणुआत्माकी न्यांई ताके सुखदुःखादिक धर्मोंका भी प्रत्यक्ष नहीं हो वैंगा, सो ऐसा देखणे विषे आवता नहीं; किंतु 'अहं सुखी अहं दुःखी' इस प्रकारतैं तिन सुखदुःखादिकोंका प्रत्यक्ष सर्वप्राणियोंकूं होवै है या कारणतैं भी जीवात्माविषे अणुरूपता संभवती नहीं इति ॥

मध्यम परिमाण माननेवाले जैन—ता जीवात्माकूं अणुत्वपरिमाणवाला मानणेविषे यद्यपि संपूर्ण शरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव नहीं संभवै है तथापि ता जीवात्माकूं मध्यमपरिमाणवाला

मानणे विषे सो संपूर्णशरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव संभवै है । काहेतैं ? सो मध्यमपरिमाण-वाला जीवात्मा पादतैं लैके शिरपर्यंत संपूर्णशरीरविषे व्याप्य करिकै रहैगा ऐसे शरीरव्यापी जीवात्माकूं सो संपूर्णशरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव बनि सके है । यातैं ता जीवात्माकूं मध्यमपरिमाणवाला हीं मानणा योग्य है ॥

उनके मध्यम परिमाणवादका खण्डन—ता जीवात्माकूं जो मध्यमपरिमाणवाला मानोंगे तौं सो जीवात्मा अनित्य हीं होवैंगा। काहेतैं? जो जो द्रव्य मध्यमपरिमाणवाला होवै है सो सो द्रव्य सावयव हीं होवै है। और जो जो द्रव्य सावयव होवै है सो सो द्रव्य अनित्य हीं होवै है । जैसे घटपटादिक द्रव्य मध्यमपरिमाणवाले होणेतैं सावयव हैं और सावयव होणेतैं अनित्य हैं तैसे सो जीवात्मा भी ता मध्यमपरिमाणवाला होणेतैं सावयव होवैंगा और सावयव होणेतैं अनित्य होवैंगा । ता जीवात्माके अनित्यहूए कृतनाश, अकृताभ्यागम या दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैंगी । कृतप्रणाश—तहां वेदविहितयोगदानादिक क्रियाकरिकै सम्पादन कऱ्या जो धर्म है तथा वेदनिषिद्ध हिंसादिक क्रिया करिकै सम्पादन कऱ्या जो अधर्म है ता धर्म अधर्मका सुखदुःखरूप फलके भोगतैं विना हीं जो नाश है ताका नाम कृतनाश है । अकृताभ्यागम—और पूर्व नहीं सम्पादन कऱ्येहूए ता धर्मअधर्मके सुखदुःखरूप फलकी जा प्राप्ति है ताका नाम अकृताभ्यागम है । खण्डनका तात्पर्य यह—और पूर्वजन्मविषे ता धर्म-अधर्मका कर्त्ता जो जीवात्मा है सो जीवात्मा अनित्य होणेतैं उत्तरजन्मविषे रहैंगा नहीं किंतु पूर्व हीं नाश होइ जावैंगा और ता आश्रयरूप जीवात्माके नाशहूए ता धर्मअधर्मका भी नाश होइ जावैंगा। और ता उत्तरजन्मविषे जो जीवात्मा जन्मतैं लैके ता सुखदुःखरूप फलका अनुभव करे है सो जीवात्मा ता धर्मअधर्मका कर्त्ता है नहीं। इस प्रकार ता जीवात्माके अनित्य मानणेविषे कृतनाश अकृताभ्यागम इन दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैंगी । सो शास्त्रतैं विरुद्ध है। काहेतैं ? शास्त्रविषे फल भोगतैं विना अज्ञानीजीवोंके पुण्यपापकर्मकी निवृत्ति कही न हीं किंतु सुखदुःखरूपफलके भोग करिकै हीं तिन अज्ञानी जीवोंके पुण्यपापरूप कर्मकी निवृत्ति कथन करी है। तहां श्लोक—नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ अर्थ यह—इस पुरुषनैं कऱ्या हूआ जो शुभ अशुभ कर्म है सो कर्म इस पुरुषकूं सुखदुःखरूप फलके दीयेतैं विना कल्पकोटिशतों करिकै भी नाश होता नहीं, किंतु सो कऱ्या हूआ शुभअशुभ कर्म अवश्य भोग्या जावै है इति । यातैं सो जीवात्मा मध्यम परिमाणवाला भी संभवता नहीं, किंतु जैसे सो ईश्वर विभु है तैसे यह जीवात्मा भी विभु हीं है अर्थात् आकाश, काल, दिशा, ईश्वर इन च्यारोंकी न्यांई यह जीवात्मा भी परममहत्त्वपरिमाणवाला हीं है। इस प्रकार ता जीवात्माकूं विभु मानणेविषे ते पूर्वउक्त अणु-परिमाण पक्षके दोष तथा मध्यमपरिमाण पक्षके दोष प्राप्त होवै नहीं इति ॥

जीवात्माके परममहत्पीरमाणपर आगमप्रमाण—किंवा ता जीवात्माका सो विभुपणा केवल ता पूर्वउक्त युक्ति करिकै हीं सिद्ध नहीं है, किंतु **आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः। महतो महीयान्। एष महानज आत्मा।** आकाशकी न्यांई सर्वव्यापी और नित्य है। वह बडेसे भी बडा है, एक आत्मा परममहत्परिमाणवाला है और अज है। इत्यादिक श्रुतिप्रमाण करिकै भी सिद्ध है। दुर्विज्ञानको लेकर ही अणुत्वकथन है—और '**अणोरणीयान्**' छोटेसे भी छोटा है। इत्यादिक श्रुतियोंविषे जो आत्माका अणुपणा कह्या है सो हृदयादिक उपाधिके संबंधतैं कह्या है वास्तवतैं ता आत्माका अणुपणा कह्या नहीं। यातैं ता उक्त श्रुतिका विरोध होवै नहीं। अथवा सो अणुपद ता आत्माकी दुर्विज्ञेयताकूं कथन करे है अर्थात् लोकविषे जितनैंकी दुर्विज्ञेय पदार्थ हैं तिन सर्वोंतैं सो आत्मा अत्यन्त दुर्विज्ञेय है, या कारणतैं हीं कितनैंकी चार्वाकादिक ता आत्माकूं न जानते हूए देहइंद्रियादिकोंकूं हीं आत्मारूप करिकै माने हैं सा आत्माकी दुर्विज्ञेयता—'**श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः।**' यम नचिकेतातैं कहते हैं कि बहुत जनोंका तो यह आत्मा सुननेमें भी नहीं मिल सकता है। इत्यादिक श्रुतियोंविषे तथा '**मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।**' सहस्रों मनुष्योंके मध्य कोई ही संस्कारी जीव आत्मसिद्धिके लिये प्रयत्न करे हैं। इत्यादिक स्मृतियोंविषे प्रसिद्ध हीं हैं। या कारणतैं भी ता उक्त श्रुतिका विरोध होवै नहीं इति॥

जीवके नित्यत्वकी सिद्धि।

अब ता जीवात्माके नित्यताकूं सिद्ध करे हैं। तहां सो उक्त विभु जीवात्मा नित्य है अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित है। काहेतैं? जो जो द्रव्य विभु होवै है सो सो द्रव्य नित्य हीं होवै है। जैसे पूर्वउक्त आकाश, काल, दिशा, ईश्वर यह च्यारों द्रव्य विभु हैं, यातैं नित्य भी हैं तैसे यह जीवात्मा भी पूर्वउक्त रीतिसैं विभु हीं है। यातैं तिन आकाशदिकोंकी न्यांई यह जीवात्मा भी नित्य हीं मान्या चाहिये, किंवा ता जीवात्माकूं जो अनित्य मानिये तौ पूर्वउक्त कृतनाश, अकृताभ्यागम इन दोनों दूषणोंकी प्राप्ति होवैंगी, ते दोनों दोष ता जीवात्माकूं नित्य माणनेविषे प्राप्त होते नहीं। या कारणतैं भी सो जीवात्मा नित्य हीं सिद्ध होवै है, किंवा यह बालक जिस कालविषे माताके उदरतैं बाहरि निकसे है तिसी कालविषे ता बालककी ता माताके स्तनपानविषे प्रवृत्ति होवै है। इस प्रकार वानरका बालक जिस कालविषे माताके उदरतैं बाहरि निकसे है तिसी कालविषे ता वानरबालककी वृक्षकी शाखाके पकडनेविषे प्रवृत्ति होवै है। यह वार्त्ता सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्षसिद्ध है। तहां चेतनप्राणियोंकी जा जा प्रवृत्ति होवै है सा सा प्रवृत्ति यह वस्तु हमारे इष्टका साधन है। या प्रकारके इष्ट साधनताज्ञानतैं हीं होवै है, ता इष्ट साधनता ज्ञानतैं विना किसी भी चेतनप्राणीकी प्रवृत्ति होती नहीं।। यह वार्त्ता भी सर्व लोकोंकूं अनुभवसिद्ध है। तहां ता बालककी तिस जन्मकालाविषे जो स्तनपानविषे

प्रवृत्ति होवै है सा प्रवृत्ति भी यह स्तनपान हमारे इष्टका साधन है या प्रकारके ज्ञानतैं हीं माननी होवैंगी। तहां जन्मकालविषे तिस बालककूं ता स्तनपानविषे सो इष्टसाधनताज्ञान प्रत्यक्षादिक प्रमाणों करिकै तौं संभवता नहीं। यातैं सो इष्ट साधनता ज्ञान अनुभवरूप नहीं है किंतु सो इष्टसाधनताज्ञान स्मृतिरूप हीं मानणा होवैंगा और जो जो स्मृतिज्ञान होवै हैं सो सो संस्कारद्वारा पूर्वले अनुभव करिकै हीं जन्य होवै है, ता पूर्व अनुभवतैं विना सो स्मृतिज्ञान होता नहीं, यह वार्त्ता भी सर्वलोकोंकूं अनुभवसिद्ध है। यातैं यह मानणा होवैंगा—ता बालकनैं इस जन्मतैं पूर्वजन्मविषे ता माताके स्तनपानविषे आपणे इष्टसाधनताका अनुभव कऱ्या है ता अनुभवजन्य संस्कारों करिकै हीं ता बालककूं इस जन्मविषे जन्मतेहूए हीं ता स्तनपानविषे सो इष्टसाधनताका स्मरण होवै है और जो जो जीव जिस जिस वस्तुकूं अनुभव करे है सो सो जीव हीं तिस तिस वस्तुकूं कालांतरविषे स्मरण करे है, अन्य जीव करिकै अनुभव कऱ्येहूए वस्तुका अन्य जीवकूं स्मरण होता नहीं। यह वार्त्ता भी सर्वलोकोंकूं अनुभवसिद्ध है। यातैं जिस जीवात्माकूं इस जन्मविषे जन्मते हूए हीं ता माताके स्तनपानविषे इष्टसाधनताका स्मरण ज्ञान हूआ है सोई हीं जीवात्मा तिसतैं पूर्वजन्मविषे ता माताके स्तनपानविषे इष्टसाधनताका अनुभव करि आया है और ता अनुभवजन्य संस्कार भी तिसी जीवात्माविषे रहे हैं। जिस कारणतैं अनुभव, संस्कार, स्मृति यह तीनों एक अधिकरणविषे वृत्तिहूए हीं तथा एकवस्तुविषयक हूए हीं परस्पर कार्यकारणभावकूं प्राप्त होवै हैं। यातैं इस जन्मतैं पूर्वजन्मविषे भी ता जीवात्माकी विद्यमानता हीं सिद्ध होवै है और ता पूर्वजन्मविषे भी इस जीवात्माकी जो जन्मकालविषे हीं ता स्तनपानविषे प्रवृत्ति हूई है सा प्रवृत्ति भी ता पूर्वउक्त रीतिसैं तिसतैं भी पूर्वजन्मके अनुभवजन्य संस्कार तज्जन्य स्मृतिज्ञानतैं हीं हूई है। इसरीतिसैं तिन पूर्वपूर्वजन्मोंविषे भी ता जीवात्माकी विद्यमानता हीं सिद्ध होवै है। इस प्रकार प्रवाहरूपतैं इस संसारकूं अनादि होणेतैं ता जीवात्मकूं भी अनादिपणा हीं सिद्ध होवै है और जो जो पदार्थ अनादिभावरूप होवै है सो सो पदार्थ नाशतैं रहित हीं होवै है। जैसे अनादिभावरूप होणेतैं आकाश नाशतैं रहित है, तैसे अनादिभावरूप होणेतैं यह जीवात्मा भी नाशतैं रहित हीं होवैंगा। और जो जो पदार्थ उत्पत्तिनाशतैं रहित होवै है सो सो पदार्थ नित्य हीं होवै है। जैसे आकाश उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य है तैसे उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं यह जीवात्मा भी नित्य हीं होवैंगा। **शङ्का**—जैसे यह जीव जन्मकालविषे माताके स्तनपानविषे पूर्वजन्मविषे अनुभव करीहूई इष्टसाधनताकूं स्मरण करे है तैसे ता पूर्वजन्मविषे अनुभव कऱ्येहूए दूसरे पदार्थोंकूं भी इस जन्मविषे क्युं नहीं स्मरण करता?। **समाधान**—ता स्मृतिज्ञानके हेतुभूत जे पूर्व अनुभवजन्य संस्कार हैं ते संस्कार उद्बुद्धहूए हीं ता स्मृतिका हेतु होवै हैं। अनुद्बुद्धहूए ते संस्कार ता स्मृतिके

हेतु होवै नहीं । जो कदाचित् अनुद्बुद्ध संस्कारोंतैं भी स्मृति होती होवै तौं तिन संस्कारोंकूं सर्वदा विद्यमान होणेतैं सर्वदा सो स्मृतिज्ञान होणा चाहिये सो होता नहीं । यातैं उद्बुद्ध-संस्कार हीं ता स्मृतिके हेतु होवै हैं । तहां पूर्वजन्मोंविषे अनुभव कऱ्येहूए तिन सर्व पदार्थोंके संस्कारोंका उद्बोधक कोई इस जन्मविषे है नहीं, यातैं तिन दूसरे पदार्थोंका इस जन्मविषे स्मरण होता नहीं । और ता बालककूं जन्मकालविषे ता स्तनपानविषे जो इष्टसाधनताका स्मरण नहीं होवै तौं ता बालककी ता स्तनपानविषे प्रवृत्ति हीं नहीं होवैंगी, ता प्रवृतिके अभावहूए ता बालकका जीवन हीं नहीं होवैंगा । यातैं ईहां अगतितैं तिस बालकके जीवनका हेतुभूत अदृष्टकूं हीं तिन संस्कारोंका उद्बोधकपणा कल्पना कऱ्या जावै है इति ॥

नित्यताके विषे आगमप्रमाण—किंवा केवल इस पूर्वउक्त युक्ति करिकै हीं ता जीवात्माका नित्यपणा सिद्ध नहीं है, किंतु "अविनाशी वारेऽयमात्मा । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं-पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"। हे मैत्रेयी ! यह आत्मा कभी भी नाश होनेवाला नहीं है । हे अर्जुन ! यह अन्तरात्मा अज है, नित्य है, सदाका है, सनातन है, यह इस शरीरके नाश होनेपर भी नष्ट नहीं होता । इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचन भी ता जीवात्माके नित्य-पणेकूं हीं कथन करें हैं इति ॥

जीवात्माका मानसप्रत्यक्ष—किंवा जैसे सर्वलोकोंकूं सो उक्त ईश्वर नित्य हीं परोक्ष है । तैसे यह जीवात्मा लोकोंकूं परोक्ष नहीं है, किन्तु आपणे आपणे देहविषे सर्वप्राणीयोंकूं मनरूप इन्द्रिय करिकै ता जीवात्माका अपरोक्ष हीं ज्ञान होवै है, परंतु याके विषे इतनी विशेषता है । जैसे बाह्यघटादिक द्रव्योंका रूपादिक गुणोंके सम्बन्धतैं विना हीं 'अयं घटः' या प्रकारका चाक्षुप्रत्यक्ष होवै है, तैसे इस जीवात्माका ज्ञानसुखादिक गुणोंके संबंधतैं विना 'अहम् आत्मा' या प्रकारका मानसप्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु योग्यविशेषगुणरूप ज्ञानसुखादिक गुणोंके संबंधतैं हीं ता जीवात्माका मानसप्रत्यक्ष होवै है; तहां ता जीवात्माके ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न यह षट्गुण योग्यविशेषगुण कहे जावै हैं तिन षट्गुणोंविषे किसी गुणके संबंधतैं हीं या जीवात्माका मानसप्रत्यक्ष होवै है अर्थात् मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं इच्छावान् हूं, मैं द्वेषवान् हूं, मैं प्रयत्नवान् हूं, इस प्रकार ज्ञानादिक गुणोंके संबंधतैं हीं ता जीवात्माका मानसप्रत्यक्ष होवै है, यद्यपि धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार यह तीनों भी ता जीवात्माके हीं विशेषगुण हैं तथापि ते तीनों गुण प्रत्यक्षके योग्य नहीं हैं, यातैं तिन गुणोंके संबंधतैं ता जीवात्माका मानसप्रत्यक्ष होता नहीं अर्थात् मैं धर्मी हूं, मैं अधर्मी हूं, मैं संस्कारी हूं या प्रकारतैं ता जीवात्माका मानसप्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु शास्त्रप्रमाणतैं हीं तिन धर्मादिकोंका ज्ञान होवै है । अथवा कार्यरूप हेतुतैं तिन धर्मादिकोंका अनुमान होवै है । तहां सुखरूप कार्यतैं तौं धर्मका अनुमान होवै है और दुःखरूप कार्यतैं अधर्मका अनुमान

होवै है और स्मृतिरूपकार्यतैं संस्कारोंका अनुमान होवै है इति । अन्य देहोंके विषै जीवात्माका अनुमान–किंवा यह जीवात्मा यद्यपि उक्तरीतिसैं आपणे आपणे देहविषे सर्वप्राणीयोंकूं प्रत्यक्ष हीं होवै है तथापि अन्यदेहविषे स्थित जीवात्माकूं अन्य देहविषे स्थित जीवात्माका सो मानसप्रत्यक्ष होता नहीं, जैसे चैत्रनामा पुरुषकूं मैत्रनामा पुरुषके जीवात्माका प्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु ता परदेहविषे चेष्टारूप हेतुतैं हीं ता जीवात्माका अनुमान होवै है ता अनुमानका यह आकार है। इदं शरीरं चेतनाधिष्ठितं चेष्टावत्त्वात् रथवत् । अर्थ यह–यह शरीर चेतन आत्माकी आश्रयतावाला है चेष्टावाला होणेतैं। जो जो द्रव्य चेष्टावाला होवै है सो सो द्रव्य चेतनकी आश्रयतावाला हीं होवै है। जैसे यह प्रसिद्ध रथ चेष्टावाला है यातैं चेतन सारथी पुरुषकी आश्रयतावाला भी है, तैसे यह शरीर भी चेष्टावाला है यातैं यह शरीर भी ता चेतन आत्माकी आश्रयतावाला अवश्य होवैंगा। तात्पर्य यह–जा जा चेष्टा होवै है सा सा प्रयत्न करिकै हीं जन्य होवै है ता प्रयत्नतैं विना कोई चेष्टा होती नहीं और सो प्रयत्न आत्माका गुण होणेतैं ता गुणी आत्मातैं विना रहैगा नहीं । यातैं ता परदेहविषे ता चेष्टा रूप हेतुकरिकै ता प्रयत्नगुणवाले आत्माका अनुमान संभवै है । दृष्टान्तासिद्धिदोषकी शंका–हितकी प्राप्ति वासतै तथा अहितकी निवृत्ति वासतै जा क्रिया है ताका नाम चेष्टा है, ऐसी क्रियाविशेषरूप चेष्टा केवल शरीरविषे हीं रहे है, रथादिकोंविषे सा चेष्टा रहती नहीं। यातैं सो चेष्टारूप हेतु ता रथरूप दृष्टांतविषे असिद्ध है । उसका समाधान–यद्यपि सा रथकी क्रिया चेष्टारूप नहीं है तथापि जैसे ता रथकी क्रिया करिकै ता सारथी पुरुषका अनुमान होवै है तैसे ता शरीरकी चेष्टा करिकै ता परदेहविषे प्रयत्नवाले जीवात्माका अनुमान होवै है, इतनैं मात्रविषे ता दृष्टांतका कथन है इति । इतनैं ग्रंथकरिकै न्यायशास्त्रकी रीतिसैं आत्माका निरूपण कऱ्या॥

आत्मविषयमें न्यायके विरोधी चार्वाकादि मतोंका खण्डन ।

तहां ता न्यायशास्त्रप्रतिपादित आत्माकी सिद्धि तबी होवै जबी ता न्यायशास्त्रके विरोधी प्रतिवादीयोंके मतका खंडन होवै, तिन मतोंके खंडनतैं विना ता उक्तआत्माकी सिद्धि होइसकै नहीं; यातैं तिन विरोधीमतोंका प्रतिपादन करिकै अवश्यखंडनकऱ्या चाहिये। इस कारणतैं अब दूसरे शास्त्रोंकी रितिसैं ता आत्माका निरूपण करे हैं। तहां प्रथम वेदबाह्य माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रांतिक ३, वैभाषिक ४, चार्वाक ५, दिगंबर ६ इन षट्नास्तिकोंके मतोंका निरूपण करे हैं॥

शून्यवादी माध्यमिक–तहां प्रथम शून्यवादी माध्यमिकका तौं यह मत है। सुषुप्तितैं उठे हूए पुरुषकूं सुषुप्तिविषे मैं नहीं होता भया या प्रकारका अनुभव होवै है । ता अनुभव करिकै शून्य हीं आत्मा सिद्ध होवै है, किंवा केवल सो आत्मा हीं शून्यरूप नहीं है । किंतु ता आत्मातैं भिन्न यह सर्वजगत् भी शून्यरूप हीं है । काहेतैं ? यह जगत् आपणी उत्पत्तितैं पूर्व भी असत्

हीं था और नाशतैं अनंतर भी असत् हीं होवै है। और जो पदार्थ आदिविषे तथा अंतविषे असत् होवै है सो पदार्थ मध्यविषे भी सत् होवै नहीं, किंतु असत् हीं होवै है। जैसे रज्जुसर्प तथा शुक्तिरजत आदिविषे तथा अंतविषे असत् है। यातैं मध्यविषे भी असत् हीं होवै है। तैसे यह जगत् भी आदिअंतविषे असत् होणेतैं मध्यविषे भी असत् हीं होवैंगा। और 'असदेवेदमग्र आसीत।' (तै०मैं सिद्धान्तीका अर्थ तो यह है कि—पहिले यह जगत् असत् यानी अव्यक्तनामरूप ही था। यहां पूर्वपक्षी यह अर्थ मानकर अपने मतविषे प्रमाण देता है कि—यह संसार उत्पन्न होनेसे पहिले असत् शून्यरूप था शून्यसे सब कुछ हुआ) यह छांदोग्य श्रुति भी इस दृश्यमान जगत्कूं उत्पत्तितैं पूर्व असत् हीं कहे हैं और असत् तुच्छ शून्य यह तीनों शब्द एक हीं अर्थके वाचक होवै हैं। यातैं आत्मा तथा अनात्मा जगत् यह सर्व शून्य हीं है सो शून्य ही परम तत्त्व है इति॥

असत्कारणवादका खण्डन।

सो यह शून्यवादीका मत समीचीन नहीं है। काहेतैं? जिस सुषुप्तपुरुषके अनुभवके बलतैं ता शून्यवादीनैं आत्माकूं शून्यरूप मान्या है। सो अनुभव प्रमाणरूप हीं नहीं है। यातैं ता अप्रामाणिक अनुभव करिकै ता शून्यरूप आत्माकी सिद्धि होवै नहीं। जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' या प्रकारके अप्रामाणिक अनुभव करिकै रजतकी सिद्धि होवै नहीं, किंवा ता अनुभवकूं जो कदाचित् प्रामाणिक भी मानिये तौं भी सो अनुभव ता शून्यरूप आत्माकूं विषय करता नहीं, किंतु ता सुषुप्तिविषे सर्वज्ञानोंके अभावविशिष्ट सत् आत्माकूं हीं सो अनुभव विषय करे है अर्थात् सुषुप्ति अवस्थाविषे मैं किसी भी ज्ञानवाला नहीं होता भया। यातैं ता अनुभव करिकै शून्यरूप आत्माकी सिद्धि होइ सकती नहीं। किंवा यह सर्वजगत् असत् है, यह जो शून्यवादीनैं कह्या था सो भी असंगत है। काहेतैं? जो जो पदार्थ असत् होवै है सो सो पदार्थ इंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानका विषय होता नहीं। जैसे वंध्यापुत्र शशशृंगादिक असत्पदार्थ ता इंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानके विषय होते नहीं और यह जगत् तौं 'अयं घटः अयं पटः' या प्रकारके चक्षुआदिक इंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानोंका विषय होवै है। ऐसे प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध जगतकूं वंध्यापुत्रकी न्यांई असत् कहणा अत्यंतविरुद्ध है। यातैं यह जगत् भी असत् नहीं है। किंवा असदेवेदमग्र आसीत्। इस श्रुतिकूं अंगीकार करिकै ता शून्यवादीनैं इस जगतकूं उत्पत्तितैं पूर्व असत् कह्या था। तिसी श्रुतिविषे—'तस्मादसतः सदजायत।' इस वचन करिकै ता असत्तैं इस जगतकी उत्पत्ति कथन करी है। तिसकूं भी ता शून्यवादीनैं अवश्य मानणा होवैंगा। सो संभवता नहीं। काहेतैं? असत् कारणतैं भी जो कार्यकी उत्पत्ति होती होवै तौं असत्वंध्यापुत्रतैं भी पुत्ररूप कार्यकी उत्पत्ति होणी चाहिये सो देखणेविषे आवती नहीं। किंवा

शून्यरूप असतकूं जो जगत्का उपादान कारण मानौंगे तौं सो असत् तिन सर्वकार्योंविषे अनुगत हूआ प्रतीत होणा चाहिये । जैसे सुवर्णके कार्यरूप जे कंकण कुंडलादिक भूषण हैं तिन भूषणोंविषे सो सुवर्णरूप कारण यह कंकण सुवर्णमय है, यह कुंडल सुवर्णमय है, या प्रकारतैं अनुगत हूआ प्रतीत होवै है । तैसे तिन घटपटादिक कार्योंविषे भी सो असतरूप कारण 'घटो असत् पटो असत्' या प्रकारतैं अनुगत हूआ प्रतीत होणा चाहिये । सो ऐसा प्रतीत होता नहीं । उलटा 'घटः सन्, पटः सन्' इस प्रकारतैं ते घटपटादिक कार्य सत्ता-अन्वित हूए हीं प्रतीत होवै हैं । यातैं ता शून्यरूप असत्विषे जगत्की कारणता संभवती नहीं । श्रुत्यर्थपर शून्यवादीकी शंका—'असदेवेदमग्र आसीत्' यह उक्त श्रुति ता शून्यरूप असत्कूं हीं जगत्का कारण कहे हैं । तिस श्रुतिउक्त अर्थकूं जो तुम नहीं मानौंगे तौं तुमारेविषे नास्तिकपणा प्राप्त होवैंगा । छा० की पूर्वपक्षकी श्रुति मानकर समाधान—सा श्रुति शून्यरूप असतकूं जगत्का कारण कहती नहीं, किंतु जे शून्यवादी भ्रांति करिकै ता शून्य-रूप असत्कूं हीं जगत्का कारण माने हैं । तिन भ्रांत शून्यवादियोंके मतका अनुवाद करती हूई सा श्रुति पूर्वपक्षरूप हीं है । या कारणतैं हीं ता श्रुतिके आदिविषे—'तद्धैक आहुः ।' यह वचन कथन कऱ्या है । अर्थात् केईक शून्यवादी असत्कूं हीं जगत्का कारण माने हैं । किंवा ता उक्त श्रुतिकूं जो पूर्वपक्षरूप नहीं मानिये तौं ता श्रुतितैं अनन्तर पठन करी हूई जा 'कथमसतः सज्जायेत ।' यह श्रुति है सा श्रुति असत्कारणतैं सत्कार्यके उत्पत्तिका निषेध करे है सा श्रुति भी असङ्गत होवैंगी, या कारणतैं भी ता पूर्वउक्त श्रुतिविषे पूर्वपक्षरूपता हीं सिद्ध होवै है । यद्यपि इस शून्यवादीकूं तथा वक्ष्यमाण विज्ञान वादीकूं तथा चर्वाककूं वेदरूप श्रुतिकी प्रमाणता अङ्गीकार नहीं है । यातैं आपणेमतकी सिद्धिवासतै सो श्रुतिप्रमाण कहणा असङ्गत है । तथापि वेदकूं प्रमाण मानणेहारे आस्तिक पुरुषोंकी आपणे मतविषे श्रद्धा करावणे वासतै ते शून्यवादी आदिक नास्तिक आपणे मतविषे ता श्रुतिप्रमाणकूं कथन करे हैं । इस प्रकारकी व्यवस्था आगे वक्ष्यमाण श्रुतियोंविषे भी जानिलेणी इति ॥

क्षणिकविज्ञानवादी बौद्धयोगाचार्य्यका मत ।

अब क्षणिकविज्ञानवादी योगाचार्यका मत वर्णन करे हैं । विज्ञान हीं आत्मा है । सो विज्ञान स्वत प्रकाशरूप होणेतैं चेतनरूप है और सो विज्ञान भावरूप होणेतैं क्षणिक है । जैसे विद्युत् भावरूप होणेतैं क्षणिक है । तहां जिस पदार्थका आपणे उत्पत्तिक्षणतैं उत्तरक्षणविषे सम्बन्ध नहीं होवै है, किंतु ता उत्पत्तिक्षणमात्रविषे हीं सम्बन्ध होवै है सो पदार्थ क्षणिक कह्या जावै है । सो क्षणिकविज्ञान दो प्रकारका होवै है । एक तौं प्रवृत्तिविज्ञान होवै है और दूसरा आलयविज्ञान होवै है । तहां 'अयं घटः, अयं पटः, इदं शरीरम्' इत्यादिक विज्ञानका नाम प्रवृत्तिविज्ञान है, और अहंअहं इस प्रकारके विज्ञानका नाम आलयविज्ञान है, सो आलय

विज्ञान हीं आत्मा है। सुषुप्तिकालविषे विज्ञानका अभाव मानकर शङ्का—ता क्षणिक विज्ञानकूं हीं जो आत्मा मानोंगे तौं सुषुप्तिविषे सो आत्मा नहीं सिद्ध होवैंगा । काहेतैं ? ता सुषुप्तितैं पूर्व उत्पन्न हूआ सो विज्ञान क्षणिक होणेतैं नाश होइ जावैंगा और ता सुषुप्तिविषे दूसरे विज्ञानकूं उत्पन्न करणेहारा कोई कारण है नहीं । यातैं ता सुषुप्तिविषे ता विज्ञानकी उत्पत्ति हीं नहीं होवैंगी । आलयविज्ञानधारा मानकर समाधान—पूर्व पूर्व विज्ञान हीं उत्तर उत्तर विज्ञानका हेतु होवै है अर्थात् प्रथमक्षणविषे उत्पन्नहूआ सो विज्ञान द्वितीयक्षणविषे स्वसजातीय दूसरे विज्ञानकूं उत्पन्न करिकै आप नाश होइ जावै है। तैसे सो द्वितीयविज्ञान भी तृतीयक्षणविषे स्वसजातीय तीसरे विज्ञानकूं उत्पन्न करिकै आप नाश होइ जावै है। इस प्रकार सो तृतीय-विज्ञान भी चतुर्थक्षणविषे स्वसजातीय चतुर्थविज्ञानकूं उत्पन्न करिकै आप नाश होइ जावै है। इस रीतिसैं पूर्वपूर्व विज्ञानकूं उत्तरउत्तर विज्ञानका हेतुपणा होणेतैं नदीके प्रवाहकी न्यांई तिन विज्ञानोंकी धारा सर्वदा बनी रहे है । तहां सुषुप्तिविषे यद्यपि सा प्रवृत्तिविज्ञानधारा नहीं रहे है तथापि ता सुषुप्तिविषे सा आलयविज्ञानधारा बनी रहे है । सा आलयविज्ञानधारा हीं आत्मा है । यातैं ता सुषुप्तिविषे भी सो विज्ञानरूप आत्मा विद्यमान हीं है। संस्कारोंके क्षणिकत्वकी शङ्का—ता विज्ञान आत्माकूं क्षणिक होणेतैं तिस आत्माके आश्रित रहणेहारे संस्कार भी क्षणिक हीं होवैंगे । यातैं पूर्वअनुभव करीहूई वस्तुका कालांतरविषे स्मरण नहीं होणा चाहिये । कस्तूरीकी सुगन्धिके दृष्टान्ततैं समाधान—जैसे तराऊपरि रखेहूए अनेकवस्त्रोंके नीचै रखीहूई जा कस्तूरी है ता कस्तूरीकी गन्धगुणयुक्त सूक्ष्मअवयवरूप वासना ता कस्तूरी सम्बद्ध प्रथमवस्त्रतैं लैकै ऊपरीले वस्त्रपर्यंत तिन सर्ववस्त्रोंविषे यथाक्रमतैं प्राप्त होइ जावै है । तैसे पूर्वपूर्वविज्ञानजनित संस्कारोंकी यथाक्रमतैं ता उत्तरउत्तर विज्ञानविषे प्राप्ति सम्भवै है । यातैं ता पूर्वअनुभव करी हूई वस्तुका तिन संस्कारोंके बलतैं कालान्तविषे स्मरण बनि सके है। यद्यपि विज्ञानकी न्यांई ते संस्कार भी क्षणिक हैं, यातैं स्मृति ज्ञानपर्यंत तिन संस्कारोंकी स्थिति सम्भवै नहीं, तथापि ता उत्तरउत्तर विज्ञानविषे पूर्वपूर्व संस्कारोंके सजातीय संस्का-रोंकी उत्पत्ति सम्भव होइ सके है । सबके विज्ञानमयत्वका प्रतिपादन—और जितनैंकी घटपटा-दिक बाह्यपदार्थ हैं तथा सुखदुःखादिक अन्तर पदार्थ हैं ते सर्व पदार्थ ता विज्ञानके हीं आकारविशेष हैं, ता विज्ञानतैं भिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है । अर्थात् सो अन्तरविज्ञान हीं घटपटादिरूप होइकै तथा सुखदुःखादिरूप होइकै प्रतीत होवै है । आत्माके विज्ञानमयत्वविषे श्रुतिप्रमाण—किंवा 'अन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः ।' यह वेदकी श्रुति भी ता विज्ञानमयकूं हीं आत्मा कहे है, ता श्रुतिप्रमाणतैं भी सो विज्ञान हीं आत्मा सिद्ध होवै है इति ॥

योगाचारके मतका खण्डन ।

सो यह विज्ञानवादी योगाचारका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं ? ता विज्ञानवादीसैं यह पूछा चाहिये सो तुमारा आत्मारूप विज्ञान सविषय है अथवा निर्विषय है ? तहां सो विज्ञान

सविषय है यह प्रथमपक्ष जो विज्ञानवादी अंगीकार करै तासैं यह पूछा चाहिये सो तुमारा विज्ञान सर्वजगत्‌विषयक है अथवा यत्किंचित्‌वस्तुविषयक है। तहां सो विज्ञान सर्वजगत्‌ विषयक है, यह प्रथमपक्ष जो अंगीकार करौ सो संभवता नहीं। काहेतैं? ता आत्मस्वरूपविज्ञानकूं जो सर्वजगत्‌ विषयक मानोंगे तौं सर्व जीवोंकूं स्वभावतैं हीं सर्वज्ञता होणी चाहिये। सर्व जगत्‌ विषयक ज्ञानवालेकूं हीं सर्वज्ञ कहे हैं। सो सर्वज्ञपणा किसीविषे भी देखणेमें आवता नहीं। और सो विज्ञान यत्किंचित्‌वस्तुविषयक है यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करौ सो भी संभवता नहीं। काहेतैं? ता यत्किंचित्‌शब्दकरिकै जो एकघटका ग्रहण करौंगे तौं पटादिकवस्तुवोंकूं लैके विनिगमनाविरह दोषकी प्राप्ति होवैंगी। अर्थात्‌ ता यत्किंचित्‌शब्द करिकै एकघटरूप वस्तुका हीं ग्रहण होवै है, पटादिक वस्तुवोंका ग्रहण होवै नहीं। अथवा ता यत्किंचित्‌शब्द करिकै एकपटरूप वस्तुका हीं ग्रहण होवै है तिन घटादिक वस्तुवोंका ग्रहण होवै नहीं। इस प्रकारके एक अर्थका साधक कोई युक्तिरूप विनिगमना है नहीं और जिस स्थलविषे सो विनिगमनाविरह प्राप्त होवै है तिस स्थलविषे तिन सर्वपदार्थोंकी तुल्य हीं प्राप्ति होवै है, एकका ग्रहण दूसरोंका त्याग होता नहीं। यातैं इस द्वितीयपक्षविषे भी ता प्रथमपक्षकी न्यांई ते घटपटादिक सर्वपदार्थ ता विज्ञानके विषयरूप करिकै प्राप्त होवैंगैं, यातैं ता प्रथमपक्षकी न्यांई इस द्वितीयपक्षविषे भी सर्व लोकोंकूं स्वभावतैं सर्वज्ञताकी प्राप्तिरूपदूषण प्राप्त होवैंगा। किंवा ता आत्मस्वरूप विज्ञानकूं जो सविषय मानोंगे तौं सुषुप्तिअवस्थाविषे भी ता विषयका भान होणा चाहिये और सुषुप्तिअवस्थाविषे सो विषयका भान किसीकूं भी होता नहीं। **शंका**—ता सुषुप्तिविषे निर्विषय ज्ञानकी धारा रहे है। या कारणतैं ता सुषुप्तिविषे किसी भी विषयका भान होता नहीं। **समाधान**—निर्विषय ज्ञानविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। जो जो ज्ञान होवै हैं सो सो सविषय हीं होवै हैं। जो कदाचित्‌ निर्विषयकूं भी ज्ञानरूप मानोंगे तौं ता निर्विषय ज्ञानकी न्यांई घटपटादिक पदार्थ भी निर्विषय होणेतैं ज्ञानरूप होणे चाहिये। **शंका**—हमारे मतविषे ता विज्ञानतैं भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है। यातैं ता निर्विषयत्वरूप हेतुतैं तिन घटापटादिकोंविषे जो आपनैं विज्ञानरूपता सिद्ध करी है सो हमारेकूं अंगीकार हीं है। **समाधान**—सर्वलोकोंके प्रत्यक्ष अनुभव करिकै सिद्ध जे घटपटादिक पदार्थ हैं तिन घटादिकपदार्थोंका तुमारे वचन मात्रतैं निषेध होइ सकता नहीं। **शंका**—तिन घटापटादिकोंका सर्वप्रकारतैं हम निषेध करते नहीं, किंतु ते घटपटादिक ता विज्ञानके हीं आकार विशेष हैं या प्रकार हम मानते हैं। **समाधान**—ता विज्ञानके आकारविशेष जे घटादिक हैं ते घटादिक आकारविशष ता विज्ञानतैं भिन्न हैं अथवा अभिन्न हैं, तहां ते घटादिक आकारविशेष ता विज्ञानतैं भिन्न हैं यह प्रथमपक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं ता विज्ञानतैं भिन्न कोई वस्तु भी नहीं है इस तुमारे सिद्धान्तकी हानि होवैंगी, और ते घटादिक आकारविशेष ता विज्ञानके अभिन्न है यह दूसरा पक्ष जो अंगी-

कार करोंगे तौं नील पीत या प्रकारका नीलपीत दोनोंकूं विषय करणेहारा समूहालंबन ज्ञान है ता ज्ञानविषे सो नीलआकार पीतआकार होणा चाहिये, तथा सो पीतआकार नीलआकार होणा चाहिये। काहेतैं ? शास्त्रकारोंनैं यह नियम कह्या है। '**तदभिन्नाभिन्नस्यत दभिन्नत्वनियमात्** ।' अर्थ यह—जो वस्तु जिस वस्तुके अभेदवाले पदार्थके साथि अभिन्न होवै है सो वस्तु तिस वस्तुके साथि भी अभिन्न हीं होवै है । सो ईहां प्रसंगविषे नीलाकार, पीताकार यह दोनों ता समूहालम्बनरूप विज्ञानके साथि अभिन्न हीं है । यातैं ता नीलाकारके अभेदवाले ता विज्ञानतैं अभिन्न हूआ सो पीताकार ता नीलाकारतैं भी अभिन्न हीं होवैंगा । इस प्रकार सो नीलाकार भी ता पीताकारतैं अभिन्न हीं होवैंगा । यातैं सो नीलाकार पीताकार होणा चाहिये और सो पीताकार नीलाकार होणा चाहिये । सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं । **शंका**—नीलाकार तथा पीताकार यह दोनों ता विज्ञानरूप होणेतैं अभिन्न हीं है, परन्तु ता नीलविषे नीलत्वधर्म रहे है तथा पीतविषे पीतत्वधर्म रहे है, ते नीलत्वपीतत्व धर्म परस्परभिन्न हैं । या कारणतैं ते नीलपीत दोनों भी भिन्नभिन्न हीं प्रतीत होवै हैं । तहां जैसे ते नीलपीतआकार विज्ञानस्वरूप होणेतैं परस्पर अभिन्न हैं । तैसे ते नीलत्वपीतत्व धर्म विज्ञानत्वरूप नहीं हैं । काहेतैं? अनीलकी व्यावृत्तिका नाम नीलत्व है और अपीतकी व्यावृत्तिका नाम पीतत्व है । तहां ता नीलतैं भिन्न पदार्थोंका जो ता नीलविषे भेद है ताकूं अनीलव्यावृत्ति कहे हैं और ता पीततैं भिन्न पदार्थोंका जो ता पीतविषे भेद है ताकूं अपीतव्यावृत्ति कहे हैं । इस प्रकारतैं अभावरूप होणेतैं ते नीलत्वपीतत्वादिक धर्म अपारमार्थिक हैं । ऐसे अपारमार्थिक नीलत्वपीतत्व धर्मोंका ता पारमार्थिक विज्ञानके साथि अभेद सम्भवता नहीं । ऐसे नीलत्वपीतत्वधर्मके भेदतैं हीं ता नीलविषे पीतरूपताकी प्रतीति नहीं होवै है तथा ता पीतविषे नीलरूपताकी प्रतीति नहीं होवै है । **समाधान**—नीलत्व पीतत्व इन विरोधी दो धर्मोंकी ता एकविज्ञानविषे स्थिति सम्भवती नहीं । जो कदाचित् तिन विरोधी धर्मोंकी भी इकवस्तुविषे स्थिति अंगीकार करोंगे तौं किसी भी स्थलविषे ता विरोधका प्रतिपादन नहीं होइ सकैंगा । अर्थात् सर्वलोकोंकूं अनुभव सिद्ध जो शीतत्व उष्णत्वादिक धर्मोंका विरोध है ता विरोधका भी भङ्ग होवैंगा; किंवा जो विज्ञानवादी सर्वजगत्कूं क्षणिक माने है तिस विज्ञानवादीके मतविषे सोई हीं यह घट है या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान अनुपपन्न होवैंगा । काहेतैं ? यह प्रत्यभिज्ञाज्ञान पूर्वकालविषे देख्येहूए घटका इसकालविषे देख्येहूए घटके साथि अभेदकूं विषय करे है, सो क्षणिकविज्ञानवादीके मतविषे पूर्वकालीन घटका एतत्कालीन घटके साथि अभेद हीं सम्भवता नहीं । किंवा ता विज्ञानवादीनैं स्मरणकी सिद्धिवासतै जो पूर्वपूर्वविज्ञानजन्य संस्कारोंकी उत्तरउत्तरविज्ञानविषे प्राप्ति कथन करी थी सो भी सम्भवती नहीं। काहेतैं ? जो कदाचित्

पूर्वपूर्वविज्ञानके संस्कार उत्तरउत्तरविज्ञानविषे प्राप्त होवैं तौं मातारूप विज्ञानके संस्कार जैसे ता मातारूप विज्ञानविषे प्राप्त होवे हैं, तैसे ता मातारूप विज्ञानके संस्कार गर्भविषे स्थित पुत्ररूप विज्ञानविषे भी प्राप्त होवैंगे । यातैं ता मातानैं अनुभव कऱ्येहूए पदार्थोंका ता गर्भस्थपुत्रकूं भी स्मरण होणा चाहिये । इत्यादिक अनेकदूषण ता क्षणिकविज्ञानवादीके मतविषे प्राप्त होवै हैं, यातैं सो विज्ञानवादी योगाचारका मत समीचीन नहीं है । और ता विज्ञानवादीनैं ता आत्माकी विज्ञानरूपताविषे जा श्रुति कथन करी थी सा श्रुति भी ता भ्रांतविज्ञानवादीके मतका अनुवाद करती हूई पूर्वपक्षरूप हीं है । यातैं ता श्रुतितैं भी तिस विज्ञानात्मवादकी सिद्धि होवै नहीं इति ॥

बुद्ध भगवान्के योगाचारादिशिष्योंकी कथा ।

ईहां यह गाथा है बुद्धभगवान्के च्यारि शिष्य थे । एक तौं माध्यमिक, दूसरा योगाचार, तीसरा सौत्रांतिक, चौथा वैभाषिक । यह च्यारों बुद्धके शिष्यहोणेतैं बौद्ध कह्ये जावै हैं । और तिस बुद्धकूं सुगत भी कहे हैं । यातैं ते च्यारों सौगत भी कह्ये जावै हैं । तिन च्यारों शिष्योंविषे प्रथम माध्यमिककूं परिपक्व चित्तवाला जानिकै तथा मुख्यअधिकारी जानिकै सो बुद्ध साक्षात् हीं शून्यवादका उपदेश करता भया, सो शून्यवाद हीं ता बुद्धकूं सम्मत था और दूसरे योगाचार शिष्यकूं किंचित् परिपक्वचित्तवाला जानिकै तथा असुख्य अधिकारी जानिकै सो बुद्ध साक्षात् हीं ता शून्यवादका उपदेश नहीं करता भया, किंतु ता सर्वशून्यरूप तत्त्वविषे ता योगाचारकी बुद्धिके प्रवेशकरावणे वास्तै प्रथम विज्ञानमात्र अस्तित्ववादका उपदेश करता भया, सो सर्वशून्यवाद तथा विज्ञानमात्र वादपूर्व विस्तारतैं प्रतिपादन करि आये हैं । और तीसरे सौत्रांतिक शिष्यका तथा चतुर्थ वैभाषिक शिष्यका अंतरविज्ञानतैं भिन्न बाह्यघटपटादिक अर्थोंविषे अभिनिवेश देखिकै सो बुद्ध तिन दोनोंके अभिप्रायके अनुसार ता विज्ञानतैं भिन्न बाह्य घटपटादिक अर्थोंकूं अंगीकार करिकै ता सर्वशून्यरूप तत्त्वविषे तिन दोनोंकी बुद्धिका प्रवेश करावणे वास्तै बाह्य अर्थवादका उपदेश करता भया, तहां अंतर विज्ञानतैं भिन्न बाह्यघटपटादिक पदार्थ विद्यमान हैं । इतना अंश तौं ता सौत्रांतिकके मत विषे तथा ता वैभाषिकके मतविषे तुल्य हीं है । परंतु सौत्रांतिक तौं तिन बाह्य अर्थोंकूं केवल अनुमितिज्ञानका हीं विषय माने है प्रत्यक्षज्ञानका विषय मानता नहीं । और वैभाषिक तौं तिन बाह्य अर्थोंकूं प्रत्यक्षज्ञानका भी विषय माने है, इतनीं तिन दोनोंके मतविषे विलक्षणता है इति ॥

सौत्रान्तिकका सिद्धान्त ।

तहां सौत्रान्तिकका तौं यह अभिप्राय है । अंतरविज्ञानविषे घटपटादिक आकाररूपविचित्रता सर्वलोकोंकूं अनुभव सिद्ध है अर्थात् 'अयं घटः' इस विज्ञानविषे तौं घटरूप आकार प्रतीत होवे है और 'अयं पटः' इस विज्ञानविषे पटरूप आकार प्रतीत होवै । इस प्रकार जो जो

विज्ञान उत्पन्न होवै है तिस तिस विज्ञानविषे कोई न कोई आकार अवश्य प्रतीत होवै है तहां ता अंतरविज्ञानविषे स्थित जा घटपटादिक आकाररूप विचित्रता है सा विचित्रता बाह्यदेशविषे स्थित तिस तिस घटपटादिरूप अर्थका सादृश्यरूप हीं है ता बाह्य अर्थके सादृश्यतैं विना ता विज्ञाननिष्ठ विचित्रताका दूसरा कोई स्वरूप सिद्ध होता नहीं, जो कदाचित् ते बाह्यघटपटादिक अर्थ नहीं अंगीकार करीयें तौं ता अंतरविज्ञानविषे तिन बाह्यघटपटादिक अर्थोंके सादृश्यकी उत्पत्ति हीं नहीं संभवैंगी । यातैं ता सादृश्यका निमित्तभूत जे घटपटादिक बाह्य अर्थ हैं ते बाह्यअर्थ ता विज्ञानकी विचित्रतातैं अनुमान कऱ्ये जावै हैं ते बाह्य अर्थ किसीकूं भी प्रत्यक्ष होते नहीं । ता अनुमानका यह आकार है—संवेदनगतो विषयाकारप्रतिबिम्बः तथाविधबिम्ब सन्निधानपुरःसरः प्रतिबिम्बत्वात् दर्पणादिगतमुखादिप्रतिबिम्बवत् । अर्थ यह—'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक ज्ञानोंविषे स्थित जो घटपटादिक विषयोंके आकारक प्रतिबिंब है सो प्रतिबिम्ब तिस प्रकारके बिंबकी समीपतापूर्वक होणे योग्य है प्रतिबिम्ब रूप होणेतैं । जो जो प्रतिबिंब होवै है सो सो तिस प्रकारके बिम्बकी समीपतापूर्वक हीं होवै है, जैसे दर्पणविषे स्थित मुखका प्रतिबिम्ब तिस प्रकारके मुखरूप बिंबकी समीपता पूर्वक हीं होवै है तैसे सो ज्ञानविषे स्थित विषयाकार प्रतिबिंब भी प्रतिबिंबरूप होणेतैं तिस प्रकारके बिम्बकी समीपतापूर्वक हीं होवैंगा इति ॥

### वैभाषिकका सिद्धान्त ।

और वैभाषिकका तौं यह अभिप्राय है—तिन घटपटादिक बाह्य अर्थोंके साथि जो ता विज्ञानका संबंध नहीं होवै तौं ता विज्ञानविषे तिन बाह्यअर्थोंकी आकारता हीं नहीं संभवैंगी । यातैं ता विज्ञानका तिन बाह्यअर्थोंके साथि संबंध अवश्य मानणा होवैंगा और जबी ता प्रकाशरूप विज्ञानका तिन घटपटादिक बाह्यअर्थोंके साथि संबंध हूआ, तबी तिन बाह्यअर्थोंका प्रकाश अवश्य करिकै होवैंगा । यातैं ते घटपटादिक बाह्य अर्थ प्रत्यक्षज्ञानके भी विषय होवै हैं इति । इस प्रकार ता सौत्रांतिकके मतविषे तथा वैभाषिकके मतविषे किंचित् मात्रविलक्षणताके हूए भी ता अंतरविज्ञानतैं भिन्न बाह्यघटपटादिक अर्थोंका अंगीकार तिन दोनों मतोंविषे तुल्य हीं है ॥

### दोनोंबौद्धोंके मतका वर्णन ।

उभयसंघात—अब तिन दोनों मतोंविषे बाह्यभोग्य संघातके तथा अंतरभोक्ता संघातके उत्पत्तिका प्रकार निरूपण करे हैं—भोग्यरूप बाह्यसंघातकी उत्पत्ति—तहां कठिनस्वभाववाले जे पार्थिवपरमाणु हैं तथा स्निग्धस्वभाववाले जे जलीयपरमाणु हैं तथा उष्णस्वभाववाले जे तैजसपरमाणु हैं तथा चलनस्वभाववाले जे वायवीयपरमाणु हैं तिन च्यारि प्रकारके परमाणुवोंका जो यह भूतभौतिकरूप संघात है सो संघात तौं बाह्यभोग्य संघात कह्या जावै है।

भोक्तारूप आभ्यन्तर संघातकी उत्पत्ति—और रूपस्कंध १, विज्ञानस्कंध २, वेदनास्कंध ३, संज्ञास्कंध ४, संस्कारस्कंध ५ इन पंचस्कंधोंका समूहरूप अंतरभोक्तासंघात कह्या जावै है। पञ्चस्कंध—तहां रूपादिक विषयोंसहित चक्षुआदिक इंद्रिय रूपस्कंध कह्या जावै है। यद्यपि ते रूपादिक विषय बाह्य है। यातैं तिन रूपादिक विषयोंविषे अंतर अध्यात्मरूपता संभवती नहीं तथापि चक्षुआदिक इंद्रियोंके संबंधतैं तथा देहकी आरंभकतातैं तिन रूपादिक विषयोंविषे भी आध्यात्मिकपणा संभवै है॥ १॥ और अहं अहं इस प्रकारका जो आलयविज्ञान है तथा चक्षुआदिक इंद्रियों करिकै जन्य जे निर्विकल्पकज्ञान है ताका नाम विज्ञानसस्कंध है ॥२॥ और 'अहं सुखी अहं दुःखी' या प्रकारका जो सुखदुःखका अनुभव है । ताका नाम वेदनास्कंध है ॥३॥ और यह 'डित्थ' है यह 'कुंडली' है, यह 'श्याम' है, यह ब्राह्मण है इत्यादिरूप जो सविकल्पप्रत्यय है सो सविकल्पप्रत्यय संज्ञाविषयक होणेतैं संज्ञास्कंध कह्या जावै है ॥ ४ ॥ और राग, द्वेष, मोह, धर्म, अधर्म, मद, मान इत्यादिक सर्व संस्कारस्कंध कह्या जावै है ॥५॥ आलय विज्ञान तथा उसके नाम—तहां केवल आपणेस्वरूपमात्रकूं प्रकाश करणेहारा जो निर्विकल्पक ज्ञानधारारूप आलयविज्ञान है सो आलयविज्ञान हीं आशय, चित्त, आत्मा इन तीनों नामोंकरिकै कह्या जावै है ॥ चैत्तिक वस्तु—तिस आलयविज्ञानतैं भिन्न सर्वजगत् चैत्तिक कह्या जावै है तथा बुद्धिबोध्य कह्या जावै है ॥ क्षणिक कौन—और प्रतिसंख्यानिरोध १, अप्रतिसंख्यानिरोध २, आकाश ३ इन तीन अभावोंतैं अतिरिक्त जितनाकी अंतर बाह्य जगत् है सो सर्वजगत् क्षणिक है अर्थात् आपणे उत्पत्तिक्षणतैं भिन्न क्षण विषे रहता नहीं । प्रतिसंख्या—तहां इस वस्तुकूं मैं नाश करूंगा या प्रकारकी जा वस्तुप्रतिकूला बुद्धि है ताका नाम प्रतिसंख्या है । प्रतिसंख्यानिरोध—ता प्रतिसंख्यापूर्वक जो तिस वस्तुका नाश है ताका नाम प्रतिसंख्यानिरोध है । अप्रतिसंख्या निरोध—और ता प्रतिसंख्यानिरोधतैं भिन्न जो वस्तुका ध्वंस है ताका नाम अप्रतिसंख्यानिरोध है । अकाश वस्तु आवरणके अभावका नाम आकाश है । इन तीन अभावोंतैं भिन्न सर्व पदार्थ क्षणिक होवै हैं । क्षणिकत्वविषे अनुमान-तहां अनुमान । 'सर्वं क्षणिकं भावत्वात् विद्युत्वत् ।' अर्थ यह—पूर्व उक्त तीन अभावोंतैं भिन्न जितनाकी अंतरबाह्य भोक्ताभोग्यरूप जगत् है सो सर्वजगत् क्षणिक होणयोग्य है भावरूप होणेतैं । जो जो पदार्थ भावरूप होवै है सो सो पदार्थ क्षणिक हीं होवै है । जैसे विद्युत् भावरूप होणेतैं क्षणिक है । तैसे यह सर्वजगत् भी भावरूप होणेतैं क्षणिक हीं होवैगा । इस प्रकारके अनुमान करिकै धान्यराशिकी न्याई उक्त परमाणुवोंके पुंजरूप बाह्यभोग्य प्रपंचविषे तथा उक्तपंचस्कंधरूप अंतर अध्यात्मभोक्तासंघातविषे क्षणिकरूपता हीं सिद्ध होवै है इति ॥

सौत्रान्तिक और वैभाषिकके मतका खण्डन ।

सो यह सौत्रांतिकका मत तथा वैभाषिकका मत समीचीन नहीं हैं । काहेतें ? प्रथम सौत्रांतिकनैं बाह्य घटादिक पदार्थ अनुमितिज्ञानके विषय माने हैं सो अत्यंत विरुद्ध है । जो

कदाचित् तिन घटपटादिक पदार्थोंका नियमतैं अनुमितिज्ञान हीं होता होवै तौ जैसे पर्वतविषे वह्निके अनुमितिज्ञानतैं अनंतर 'पर्वते वह्निमनुमिनोमि' या प्रकारका ता अनुमितिज्ञानविषयक अनुव्यवसाय ज्ञान होवैं है। तैंसे तिन घटपटादिकोंके ज्ञानतैं अनंतर भी 'घटमनुमिनोमि, पटमनुमिनोमि' या प्रकारका तिन घटपटादिकोंके ज्ञानकूं विषय करणेहारा अनुव्यवसाय ज्ञान हीं नियम करिकै होणा चाहिये, सो या प्रकारका अनुव्यवसाय ज्ञान नियमसैं होता नहीं। किंतु 'घटं साक्षात्करोमि, पटं साक्षात्करोमि' या प्रकारका हीं अनुव्यवसाय ज्ञान होवै है ता अनुव्यवसायके बलतैं तिन घटपटादिक बाह्य अर्थोंविषे प्रत्यक्षज्ञानकी विषयता हीं सिद्ध होवै है, किंवा ता वैभाषिकनैं ते घटपटादिक पदार्थ जो प्रत्यक्षज्ञानके विषय माने हैं सो भी अत्यंतविरुद्ध है। काहेतैं? ता वैभाषिकनैं ते घटपटादिक बाह्यपदार्थ परमाणुवोंका पुंजरूप हीं माने हैं तिन परमाणुवोंतैं अतिरिक्त कोई अवयवी मान्या नहीं और तिन परमाणुवोंविषे महत्त्वपरिमाण रहता नहीं, किंतु अणुत्वपरिमाण हीं रहे है। यातैं किसीके भी मतविषे तिन परमाणुवोंका प्रत्यक्ष होता नहीं और तिन परमाणुवोंके अप्रत्यक्ष हूए तिन परमाणुवोंका पुंजरूप घटपटादिकोंका भी प्रत्यक्ष नहीं संभवैंगा। यातैं तिन घटपटादिक पदार्थोंकूं परमाणुवोंका पुंजरूप मानिकै प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय मानणा अत्यंत विरुद्ध है। यह परमाणुपुंजवादका खंडन पूर्व अवयवीद्रव्यकी सिद्धिविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं किंवा लोकविषे जडरूप करिकै प्रसिद्ध जे तृण, तूल, धान्य इत्यादिक पदार्थ हैं तिनोंका मेलनरूप संघात किसी चेतन कर्त्ताके अधीन हीं देखणेविषे आवै है चेतनकर्त्तातैं विना तिन जडपदार्थोंका संघात कहां भी देखणेविषे आवता नहीं, सो स्थायी चेतन कर्त्ता तुमारे मतविषे कोई है नहीं। यातैं तिन जडपरमाणुआदिकोंके संघातकूं कौंन करैंगा किंतु कोई भी नहीं करैंगा। ता संघातकर्त्ताके अभावहूए सो अंतरबाह्य संघात हीं नहीं सिद्ध होवैंगा, किंवा ता सौत्रांतिकवैभाषिकनैं जिस भोक्ताके भोग वासतै सो भोग्यरूप संघात अंगीकार कऱ्या है सो भोक्ता ताके मतविषे स्थिर नहीं है, किन्तु क्षणिक है तथा जिस मुमुक्षु वासतै ता वादीनैं मोक्ष अंगीकार कऱ्या है सो मुमुक्षु भी स्थायी नहीं है किंतु क्षणिक है। यातैं सो भोग केवल भोग वासतै हीं होवैंगा तथा सो मोक्ष भी केवल मोक्ष वासतै हीं होवैंगा, किसी भोक्ता वासतै सो भोग नहीं होवैगा तथा किसी मुमुक्षु वासतै सो मोक्ष नहीं होवैंगा। यातैं तिन वादियोंका शास्त्र हीं निष्फल होवैंगा। तात्पर्य यह—भोग मोक्ष यह दोनों हीं फलरूप करिकै प्रसिद्ध हैं। तहां तिन वादीयोंके मतविषे कोई भोक्ता स्थायी नहीं है। यातैं सो तिनोंका शास्त्र भोगरूप फल वासतै भीं नहीं है, किंवा तिनोंके शास्त्रोंविषे भोगके विरोधी तप, क्लेश, संयम, पारिव्राज्य इत्यादिक साधनोंका हीं उपदेश कऱ्या है किसी भोगके अनुकूल साधनोंका उपदेश कऱ्या नहीं, या कारणतैं भी सो तिनोंका शास्त्र भोग वासतै नहीं है। इस प्रकार सो तिनोंका शास्त्र मोक्षरूप

फलवासतै भी नहीं हैं। काहेतैं ? तिन वादीयोंनैं मोक्षपर्यंत स्थायीआत्मा अंगीकार कऱ्या नहीं। जिस आत्माकूं ता शास्त्रज्ञानजन्य मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होवै और ते वादी जो कदाचित् मोक्षपर्यंत स्थायीआत्माकूं मानैंगे तौं सर्वभाव पदार्थ क्षणिक हैं, या प्रकारके तिनोंके सिद्धांतकी हानि होवैंगी किंवा दुःखके निवृत्तिका नाम मोक्ष हैं। ते दुःख तिनोंके मतविषे क्षणिक होणेतैं आपे हीं नष्ट होइ जावैंगे। यातैं तिन दुःखोंकी निवृत्तिरूप मोक्षवासतै आपणे शिष्योंके प्रति नाना प्रकारके संयमादिक साधनोंका उपदेश भी व्यर्थ हीं होवैंगा, किंवा ता सौत्रांतिक-वैभाषिकनैं जो पूर्वउक्त पंचस्कंधोंके संघातकूं भोक्ता मान्या है तासैं यह पूछा चाहिये। सो पंच स्कंधोंका संघात तिन स्कंधरूप संघातीयोंतैं अत्यंत भिन्न हूआ भोक्ता है अथवा ते पंचस्कंध हीं भोक्ता हैं अथवा ता संघातके अंतर्गत कोई एकस्कंध भोक्ता है ? तहां प्रथमपक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं तिन पंचस्कंधरूप अवयवोंतैं अतिरिक्त ता संघतारूप अवयवीके अंगीकार करणेतैं तुमारे सिद्धांतकी हानि होवैंगी और दूसरापक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं एकशरीरविषे ते पंचस्कंधरूप पांच भोक्ता मानणे होवैंगे तिन नानाभोक्तावोंका परस्पर एक मत होवैंगा नहीं। यातैं भिन्नभिन्न अभिप्रायवाले ते नानाभोक्ता इस शरीरकूं हीं उन्मथन करि देवैंगे, जैसे बहुत गजों करिकै आकर्षण कऱ्या हूआ कदलीकांड उन्मथनकूं प्राप्त होवै है और तसिरापक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं तिन पंचस्कंधोंके मध्यविषे कौंन एकस्कंध भोक्ता है या प्रकारका निश्चय नहीं होवैंगा। **शंका**—तिन पंचस्कंधोंके मध्यविषे जो विज्ञानस्कंधनामा आलय विज्ञानधारा है सा आलयविज्ञानधारा हीं स्वप्रकाश होणेतैं आत्मा है तथा भोक्ता है सो आलयविज्ञानधारारूप भोक्ता आत्मा नदीजलके प्रवाहकी न्यांई संतानरूपक करिकै सर्वदा वर्त्तमान हूआ कारणसमूहकूं प्रकाश करता हूआ आश्रयण करैंगा। यातैं सो भोक्ता आत्मा हीं ता बाह्यअन्तर संघातका कर्त्ता है। **समाधान**—जिस आलयविज्ञान धाराकूं तुमनैं आत्मा मान्या है तथा भोक्ता मान्या है तथा कर्त्ता मान्या है। सा आलय-विज्ञानधारा तिन क्षणिकविज्ञानोंतैं भिन्न है अथवा अभिन्न है ? तहां प्रथमपक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं हम नैयायिकोंनैं जिस स्थायी आत्माकूं अंगीकार कऱ्या है। सो स्थायी आत्मा हीं तुमारेकूं आलयविज्ञानधारा इस नाम करिकै अंगीकार करणा होवैंगा सो स्थायी आत्मा तुमारेकूं अंगीकार है नहीं और दूसरा अभिन्नपक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं तिन क्षणिकअनेक विज्ञानोंकूं हीं आत्मापणा तथा भोक्तापणा तथा कर्त्तापणा प्राप्त होवैंगा। सो भी अत्यन्तविरुद्ध है। काहेतैं ? एक हीं शरीरविषे ते क्षणिकविज्ञानरूप अनेक भोक्ता आत्मा जो अंगीकार करौंगे तौं तिन अनेकभोक्तावोंकी परस्पर एकसम्मति होवैंगी नहीं। किंतु भिन्नभिन्न अभिप्राय हीं होवैंगा। तिस भिन्नभिन्न अभिप्रायवाले हूए ते अनेक भोक्ता अनेक गज आकृष्ट कदलीकाण्डकी न्यांई इस शरीकूं हीं उन्मथन करि देवैंगे तथा तिन भिन्नभिन्न

अभिप्रायवाले क्षणिक विज्ञानरूप अनेक भोक्तावोंकूं भोगकी इच्छा करिकै ता भोगके साधन-रूप संघातका कर्त्तापणा भी संभवता नहीं । इत्यादिक अनेकप्रकारके दूषण ता सौत्रांतिक-वैभाषिकके मतविषे प्राप्त होवै हैं । यातैं सो तिनका मत समीचीन नहीं है इति । इतनैं पर्यंत बौद्धोंके मतका खण्डन कर्‍या ॥

जैनमतनिरूपण ।

अब आर्हतजैनोंके मतके खण्डन करणे वासतै प्रथम तिनोंके मतका निरूपण करे हैं । तहां ते आर्हत जैन विस्तारतैं तौं जीव१, अजीव२, आश्रव ३, संवर४, निर्जर ५, बन्ध ६, मोक्ष ७ यह सप्त पदार्थ माने हैं । और ते जैन संक्षेपतैं तौं गुण और पर्य्यायोंवाला सत द्रव्यरूप एकही पदार्थ मानकर उसके जीव १, अजीव २ यह दो भेद हीं माने हैं । तहां भोक्ताकूं जीव कहे हैं और भोग्यवस्तुकूं अजीव कहे हैं । ता भोग्यरूप अजीवपदार्थविषे हीं तिन आश्रवादिक पंचपदार्थोंका अन्तर्भाव माने हैं । पंचास्तिकाय—और ते आर्हत मध्यमरीतिसैं तौं जीवास्तिकाय १, पुद्गलास्तिकाय २, धर्मास्तिकाय ३, अधर्मास्तिकाय ४, आकाशा-स्तिकाय ५ यह पांच पदार्थ माने हैं । ईहां अस्तिकाय यह पद तिन जैनोंके मतविषे पदार्थका वाचक है । यातैं जीवपदार्थ १, पुद्गलपदार्थ २, धर्मपदार्थ ३, अधर्मपदार्थ ४, आकाश-पदार्थ ५ यह नाम तिन पांचों पदार्थोंके सिद्ध होवै हैं । जीवास्तिकायके भेद—तहां प्रथम जीव-पदार्थ तौं नित्यसिद्धजीव १, मुक्तजीव २, बद्धजीव ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां अर्हन्तआदिक जीव तौं नित्यसिद्ध जीव कह्ये जावै हैं और तिन अर्हत आदिक नित्यसिद्ध जीवोंकी शिष्यपरम्पराविषे स्थित जीव मुक्तजीव कह्ये जावै हैं और इदानींकाल-विषे स्थित जीव बद्धजीव कह्ये जावै हैं। सो जीव जिस जिस मनुष्यादिक शरीरकूं प्राप्त होवै है तिस तिस शरीरके तुल्य परिमाणवाला हीं होवै है ॥ १ ॥ पुद्गलास्तिकाल—और जो पदार्थ रूपको पूरे व गलता निगलता जावै ताका नाम पुद्गल है । अर्थात् उपचय अपचय धर्मवालेका नाम पुद्गल है सो पुद्गलपदार्थ भी पृथिवी १, जल, २ तेज ३, वायु ४, स्थावरशरीर ५, जंगमशरीर ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है ॥ २ ॥ धर्मास्तिकाय—और इस जीवकी जा मोक्षमार्गविषे प्रवृत्ति होवै है ता प्रवृत्तिरूप हेतुतैं जिसका अनुमान कर्‍या जावै है । ताकूं धर्मपदार्थ कहे हैं, ता धर्म करिकै हीं इन जीवोंकी ता मोक्ष मार्गविषे प्रवृत्ति होवै है ॥ ३ ॥ अधर्मास्तिकाय—और इस जीवकी जा इस संसारविषे स्थिति है ता स्थितिरूप हेतुतैं जिसका अनुमान कर्‍या जावै है ताकूं अधर्मपदार्थ कहे हैं, ता अधर्म करिकै हीं इन जीवोंकी संसारविषे स्थिति होवै है॥ ४॥ आकाशास्तिकाय—और आकाश पदार्थ तौं लोकाकाश १, अलोकाकाश २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां अधोदेशविषे स्थित जो आकाश है सो आकाश लोकाकाश कह्या जावै है और ऊर्ध्वदेशविषे स्थित जो आकाश है सो आकाश अलोकाकाश

कह्या जावै है । बद्धमुक्तोंके रहणेका आकाश—तहां प्रथम लोकाकाश तौं बद्धजीवोंके रहणेका स्थान है और दूसरा अलोकाकाश तौं मुक्तजीवोंके रहणेका स्थान है ॥ ५ ॥

कैवल्यसूत्रके बताये हुए जीवादिक सप्तपदार्थोंका विवरण—अब पूर्वउक्त जीवादिक सप्तपदार्थोंका अर्थ यह निरूपण करे हैं तहां भोक्ताका नाम जीव है। सो जीव नित्यसिद्ध मुक्त बद्ध इस भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है सो तीनोंका स्वरूप पूर्व कहि आये हैं॥ १ ॥ और भोग्य वस्तुका नाम अजीव है ॥ २ ॥ आश्रव—और रूपादिक विषयोंकी तरफ जा नेत्रादिक इंद्रियोंकी प्रवृत्ति है ताका नाम आश्रव है ॥ ३ ॥ संवर—और ता विषयाभिमुख प्रवृतिकूं निरुद्ध करणेहारे जे यमनियमादिक हैं तिनोंका नाम संवर है ॥ ४ ॥ निर्जर—और पुण्यअपुण्य नामा सर्वकर्मोंकूं नाश करणेहारा जो तप्तशिलारोहणादिक तप है ताका नाम निर्जर है ॥ ५ ॥ बन्ध—और कर्मका नाम बंध है ॥

कर्मके भेद—सो कर्म भी दो प्रकारका होवै है । एक तौं घातिक कर्म होवै है । और दूसरा अघातिकर्म होवै है। तहां प्रथम घातिक कर्म भी ज्ञानावरणीय १, दर्शनावरणीय २, मोहनीय ३, अन्तराय ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै और दूसरा अघातिक कर्म भी वेदनीय १, नामिक २, गोत्रिक ३, आयुष्क ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है।

घातीकर्मके भेद—तहां आर्हतदर्शनजन्य ज्ञानतैं मुक्ति नहीं होवै है या प्रकारके निश्चयका हेतुभूत जो कर्म है ताका नाम ज्ञानावरणीय हैं ॥ १ ॥ और आर्हतदर्शन अप्रमाण है या प्रकारके निश्चयका हेतुभूत जो कर्म है ताका नाम दर्शनावरणीय है, ईहां दर्शनशब्द शास्त्रका वाचक है ॥ २ ॥ और नानाशास्त्रकारोंनैं दिखाये जे मोक्षके मार्ग हैं तिन सर्वमार्गोंविषे कौन मार्ग विशेष है या प्रकारके अनिश्चयका हेतुभूत जो कर्म है ताका नाम मोहनीय है ॥ ३ ॥ और सत्मार्गविषे प्रवृत्तिका प्रतिबन्ध करणेहारा जो विघ्न है ताका नाम अन्तराय है ॥ ४ ॥ यह च्यारों कर्म श्रेयके हनन करणे हारे हैं। यातैं इन च्यारों कर्मोंकूं घातिकर्म कहे हैं ॥

अघाति कर्मके भेद—अब अघातिकर्मोंका वर्णन करे हैं। तहां हमारेकूं जाननेयोग्य जो तत्त्व है या प्रकारके ज्ञानका हेतुभूत जो कर्म है ताका नाम वेदनीय है ॥ १ ॥ और सो तत्त्व इस नामवाला है या प्रकारके ज्ञानका हेतुभूत जो कर्म है ताका नाम नामिक है ॥ २ ॥ और मैं आर्हतशिष्यपरम्परारूप गोत्रविषे प्रविष्ट हूआ हूं या प्रकारके ज्ञानका हेतुभूत जो कर्म है ताका नाम गोत्रिक है ॥ ३ ॥ और तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत जीवनका संपादक जो कर्म है ताका नाम आयुष्क है ॥ ४ ॥ यह च्यारोंकर्म ता श्रेयकूं हनन करते नहीं, किंतु ता श्रेयके अनुकूल हीं हैं। यातैं यह च्यारोंकर्म अघातिकर्म कह्ये जावैं हैं ॥

अघातिकर्मका मतान्तरतैं अर्थ—अथवा तिन च्यारि अघाति कर्मोंका यह अर्थ करणा। स्त्रीके उदरविषे जो पुरुषके शुक्रका तथा ता स्त्रीके शोणितका मेलन है ताका नाम आयुष्क है॥ १॥

तिस मिश्रित शुक्रशोणितकी जो तत्त्वज्ञानके अनुकूल देहाकारपरिणाम शक्ति है ताका नाम गोत्रिक है॥ २॥ तिस शक्तिवाले शुक्र शोणितकी जा द्रवीभावरूप कलिलअवस्थाका तथा बुद्बुद-अवस्थाका आरंभक क्रियाविशेष है ताका नाम नामिक है॥ ३॥ ता क्रियाविशेषवाले बीजका जठराग्निकरिकै तथा प्राणवायु करिकै जो घनीभाव है ताका नाम वेदनीय है ॥ ४ ॥ यह च्यारों कर्म परंपरा करिकै तत्त्वज्ञानके अनुकूल हैं अर्थात् तत्त्वकूं जानणेहारे शुक्लपुद्गलकी उत्पत्तिके हेतुभूत हैं। यातैं यह च्यारों अघातिकर्म कह्ये जावै हैं । यह उक्त अष्टप्रकारका कर्म जन्मका हेतु होणेतैं बंध कह्या जावै है ॥ ६ ॥

जैनशास्त्रका मोक्ष-निवृत्त हूए हैं समस्तक्लेश तथा तिन क्लेशोंकी वासना जिसके तथा आवरणतैं रहित है ज्ञान जिसका ऐसा जो एकसुखरूप आत्मा है ता आत्माका जो ऊपरिऊपरि अलोकाकाशविषे अवस्थान है ताका नाम मोक्ष है। अथवा धर्मअधर्मके बलतैं संसारसमुद्र विषे निमग्न जो जीव है ता जीवका तत्त्वज्ञानके बलतैं ता धर्मअधर्मके नाशहूए जलतुंबिका-न्याय करिकै जो निरंतर ता अलोकाकाशविषे ऊर्ध्वगमन है ताका नाम मोक्ष है ॥ ७ ॥

स्याद्वादकी प्रक्रिया ।

तहां ते उक्तजीवादिक सप्तपदार्थ अनैकान्तस्वभाववाले हीं है इस अर्थके प्रतिपादन करणे-वासतैं ते आर्हत तिन उक्त सप्तपदार्थोंविषे सप्तभंगीन्यायकूं कथन करे हैं । अनेकान्तका तात्पर्य्य—ताके विषे तिनोंका यह तात्पर्य है यह घटादिक पदार्थ जो कदाचित् सर्वरूप करिकै एक सत् रूप हीं होवैं तौं ते घटादिक पदार्थ प्राप्यरूप करिकै भी विद्यमान ही होवैंगे । यातैं तिन घटादिक पदार्थोंकी प्राप्ति वासतैं लोकोंकूं प्रयत्न नहीं कन्या चाहिये । और ते लोक तौं तिन घटादिक पदार्थोंकी प्राप्ति वासतैं प्रयत्न करतेहूए देखणेविषे आवते हैं। यातैं यह मान्या चाहिये । ते घटादिक पदार्थ घटत्वादिक किञ्चितरूप करिकैं तौं सत् हैं। और प्राप्यत्वादिक किञ्चितरूप करिकै असत् हैं । इस प्रकारतैं वस्तुमात्रकूं हीं यह अनेका-न्तरूपता है । किसी भी वस्तुविषे नियमपूर्वक एकरूपता नहीं है ।

सप्तभङ्गीन्याय—अब तिन सप्तभङ्गोंका स्वरूप वर्णन करे हैं। स्यातअस्ति १, स्यातनास्ति२, स्यातअस्तिचनास्तिच ३, स्यातअवक्तव्यः ४, स्यातअस्तिचअवक्तव्यश्च ५, स्यात नास्ति च अवक्तव्यश्च ६, स्यातअस्तिचनास्तिचअवक्तव्यश्च ७॥ ईहां सर्वत्र ' स्यात ' यह पद ' कथंचित्'अर्थका वाचक है । यातैं कथंचित् अस्ति कथंचित् नास्ति कथंचित्' अस्ति च नास्ति च' इस प्रकारतैं तिन सप्तभङ्गोंका अर्थ सिद्ध होवै है। अब पूर्वउक्त सप्तभंगोंविषे जिस जिस भंगकी जिस जिस प्रकारतैं तथा जिस जिस कालविषे प्रवृत्ति होवै है सा रीति दिखावै हैं । तहां जिस कालविषे घटादिक वस्तुवोंका किसी रूपतैं यह अपेक्षातैं अस्तिपणा विवक्षित

होवै है तिस कालविषे तौं तिन घटादिक वस्तुवोंविषे 'स्यात्अस्ति' यह प्रथम भंग प्रवृत्त होवै है १ ॥ और जिस कालविषे ता घटादिक वस्तुका नास्तिपणा विवक्षित होवै है तिस कालविषे ता घटादिक वस्तुविषे 'स्यात्नास्ति' यह द्वितीयभंग प्रवृत्त होवै है २ ॥ और जिस कालविषे ता घटादिक वस्तुका अस्तिपणा तथा नास्तिपणा क्रम करिकै विवक्षित होवै है तिस कालविषे ता घटादिक वस्तुविषे 'स्यात् अस्ति च नास्ति च' यह तृतीय भंग प्रवृत्त होवै है ३ ॥ और जिस कालविषे ता घटादिक वस्तुका अस्तिपणा तथा नास्तिपणा युगपत् विवक्षित होवै है तहां 'अस्ति नास्ति' यह दोनों शब्द परस्परविरुद्ध अर्थके वाचक होणेतैं एक हीं वस्तुविषे एक कालमें उच्चारण कऱ्ये जावैं नहीं । यातैं तिस कालविषे ता घटादिक वस्तुविषे 'स्यात् अवक्तव्यः, यह चतुर्थभंग प्रवृत्त होवै है ४ ॥ और जिस कालविषे ता घटादिक वस्तुका अस्तिपणा तथा अवक्तव्यपणा विवक्षित होवै है तिस कालविषे ता घटादिक वस्तुविषे 'स्यात् अस्ति च अवक्तव्यश्च' यह पंचमभंग प्रवृत्त होवै है ५ ॥ और जिस कालविषे ता घटादिक वस्तुका नास्तिपणा तथा अवक्तव्यपणा विवक्षित होवै हैं तिस कालविषे ता घटादिक वस्तुविषे 'स्यात् नास्ति च अवक्तव्यश्च' यह षष्ठ भंग प्रवृत्त होवै हैं ६ ॥ और जिस कालविषे ता घटादिक वस्तुका अस्तिपणा तथा नास्तिपणा तथा अवक्तव्यपणा विवक्षित होवै है तिस कालविषे ता घटादिक वस्तुविषे 'स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यश्च' यह सप्तम भंग प्रवृत्त होवै है ७ ॥

सप्तभङ्गोंकी प्रवृत्तिका दूसरा ढंग—किंवा जैसे तिन घटादिक वस्तुवोंके अस्तित्व नास्तित्व इन दोनों धर्मोंकूं लैकेत सप्तभंग प्रवृत्त होवै हैं तैसे तिन घटादिक वस्तुवोंके एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, भिन्नत्व, अभिन्नत्व, इत्यादिक सर्वधर्मोंकूं लैकेते सप्तभंग प्रवृत्त होवै हैं । जैसे स्यात् एकः १, स्यात् अनेकः २, स्यात् एकश्च अनेकश्च ३, स्यात्अवक्तव्यः ४, स्यात् एकश्च अवक्तव्यश्च ५, स्यात् अनेकश्च अवक्तव्यश्च ६, स्यात् एकश्च अनेकश्च अवक्तव्यश्च ॥ ७ ॥ तथा स्यात् नित्यः १, स्यात् अनित्यः २, स्यात् नित्यश्च अनित्यश्च ३, स्यात् अवक्तव्यः ४, स्यात् नित्यश्च अवक्तव्यश्च ५, स्यात् अनित्यश्च अवक्तव्यश्च ६, स्यात् नित्यश्च अनित्यश्च अवक्तव्यश्च ॥ ७ ॥ तथा स्यात् भिन्नः १, स्यात् अभिन्नः २, स्यात् भिन्नश्च अभिन्नश्च ३, स्यात्अवक्तव्यः ४, स्यात् भिन्नश्च अवक्तव्यश्च ५, स्यात्अभिन्नश्च अवक्तव्यश्च ६, स्यात् भिन्नश्च अभिन्नश्च अवक्तव्यश्च ॥ ७ ॥ ( किसी कालविषे किसीकी अपेक्षातैं एक है ॥ १ ॥ किसी तरह अनेक है ॥ २ ॥ किसी तरह एक भी है और अनेक भी है ॥ ३ ॥ किसी तरह कहा भी नहीं जासकता ॥ ४ ॥ किसी तरह एक भी है और अकथनीय भी है ॥ ५ ॥ किसी तरह अनेक भी है और अकथनीय भी है ॥ ६ ॥ किसी तरह अनित्य और अनिर्वचनीय दोनों ही है ॥ ७ ॥ किसीकी अपेक्षासे नित्य है ॥ १ ॥

किसीकी अपेक्षासे अनित्य है ॥ २ ॥ किसीकी अपेक्षासे नित्य अनित्य दोनों है ॥ ३ ॥ किसीकी अपेक्षासे अनिर्वचनीय है॥ ४॥ किसीकी अपेक्षासे नित्य और अनिर्वचनीय है ॥ ५॥ किसी तरह अनित्य और अनिर्वाच्य है ॥ ६ ॥ किसीकी अपेक्षासे नित्य अनित्य और अवक्तव्य है ॥ ७ ॥ इसी तरह भिन्नादिकोंके भी भंगसमझना। ईहां सर्वत्र प्रथम चतुर्थ इन दोनों भंगोंकी विवक्षाके हुए पंचमभंगकी सिद्धि होवै है । और द्वितीय चतुर्थ इन दोनों भंगोंकी विवक्षाके हूए षष्ठे भंगकी सिद्धि होवै है और तृतीय चतुर्थ इन दोनोंभंगोंकी विवक्षाके हूए सप्तम भंगकी सिद्धि होवै है इति । इस प्रकारतैं घटापटादिक सर्ववस्तुओंकूं अनेकरूपताके सिद्ध हूए किञ्चिद्रूप करिकै तिन घटादिकोंकी प्राप्ति तथा किंचितरूप करिकै तिन घटपटादिकोंका त्याग इस प्रकारके प्राप्तित्यागादिक सर्वव्यवहार संभव होइ सके हैं। और तिन घटादिक वस्तुवोंकूं जो नियम करिकै एकरूपता मानिये तौं ते घटादिक सर्ववस्तु सर्वदेशविषे तथा सर्वकालविषे विद्यमान नहीं होवैंगे । यातैं तिन प्राप्तित्यागादिक सर्वव्यवहारोंका लोप हीं होवैंगा, यातैं ते पूर्वउक्त जीवादिक सप्तपदार्थ अनेकांतस्वभाववाले हीं हैं इति ॥

जैनमतका खण्डन।

सो यह जैनोंका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं? स्तंभकुंभादिरूप जो एक अभिन्न अर्थ हैं सो स्तंभकुंभादिरूप अर्थ अस्तित्व, नास्तित्व आदिक विरुद्धधर्मों करिकै सप्त प्रकारका संभवता नहीं, जिस कारणतैं एकवस्तुविषे परस्परविरुद्ध धर्मोंकी स्थिति कदाचित् भी संभवती नहीं। जो कदाचित् परस्परविरोधी धर्मोंकी भी एकवस्तुविषे स्थिति होती होवे तौं शीतत्व, उष्णत्व इत्यादिक विरोधी धर्मोंकी भी एकवस्तुविषे स्थिति होवैंगी । यातैं सर्वलोकप्रसिद्ध जो शीतत्व, उष्णत्व, कोमलत्व, कठिनत्व इत्यादिक धर्मोंका विरोध है ता विरोधका हीं भंग होवैंगा; किंवा सर्ववस्तुवोंकूं अनेकांत स्वभाववाला माननेहारे जे जैन हैं तिन जैनोंतैं यह पूछा चाहिये । जिस आकार करिकै तिन घटादिक वस्तुवोंका सत्त्व है तिसी हीं आकार करिकै तिन घटादिक वस्तुवोंका असत्त्व है अथवा किसी अन्य आकार करिकै असत्त्व है। तहां प्रथम पक्षविषे तौं शीतत्व उष्णत्व धर्मकी न्यांई ता सत्त्वअसत्त्वरूप विरुद्ध धर्मोंकी एकवस्तुविषे स्थितिका असंभवरूप दोष पूर्व कथन करि आये हैं यातैं सो प्रथमपक्ष तौं संभव नहीं। और सो जैन जो द्वितीयपक्ष अंगीकार करे तौं जिस अन्य आकार करिकै तिन घटादिक वस्तुवोंका असत्त्व है सो अन्य आकार हीं असत् होवैंगा तिन घटादिक वस्तुवोंविषे तौं एक सत्‌रूपता हीं सिद्ध होवैंगी। जैसे दूरदेशविषे स्थित ग्रामके प्राप्तिकूं असत्‌रूपताके हूए भी सो ग्राम असत् होता नहीं । जो कदाचित् सो प्राप्यग्राम भी असत् होवै तौं तिस ग्रामकी प्राप्ति वास्तै लोकोंका प्रयत्न नहीं होणा चाहिये, असत्‌वस्तुकी प्राप्तिवासतै कोई भी प्रयत्न करता नहीं । यातैं सो ग्राम असत् नहीं है, किंतु दूरदेशविषे स्थित पुरुषकूं ता ग्रामकी प्राप्ति हीं असत् है । तैसे

जिस आकारविशेष करिकै तिन घटादिकवस्तुवोंकूं तुम असत् मानते हो तिस आकारविषे हीं सा असत्‌रूपता सिद्ध होवै है ता घटादिक वस्तुविषे सा असत्‌रूपता सिद्ध होवै नहीं, किंवा ता जैनोंके शास्त्रविषे कथन कऱ्ये जे जीवादिक सप्त वा पंच पदार्थ हैं तिन पदार्थोंविषे भी 'स्यात् जीवः, स्यात् अजीवः, स्यात् धर्मः, स्यात् अधर्मः, स्यात् बंधः, स्यात् अबन्धः, स्यात् मोक्षः, स्यात् अमोक्षः' इत्यादिक सप्तभंगोंकी प्राप्ति संभवै है। यातैं ते जीवादिक सप्त पदार्थ अनैकांतस्वभाववाले हीं होवैंगे नियमपूर्वक किसी एकस्वभाववाले होवैंगे नहीं, ऐसे अनियतस्वभाववाले तिन जीवादिक पदार्थोंविषे शिष्योंका विश्वास हीं नहीं होवैंगा, नियत स्वभाववाले पदार्थोंविषे हीं शिष्योंका विश्वास होवै है। यातैं तिन शिष्योंकी तुमारे शास्त्रविषे प्रवृत्ति हीं नहीं होवैंगी। किंवा तिन जैनोंके मतविषे केवल शास्त्रप्रतिपादित अर्थोंविषे शिष्योंके प्रवृत्तिकी अनुपपत्तिरूप दोष हीं नहीं है, किन्तु किसी लौकिक अर्थविषे भी किसी जीवकी प्रवृत्ति नहीं होवैंगी। काहेतैं? तृप्तिका साधन जो अन्न है तथा मरणका साधन जो विष है ताके विषे भी 'स्यात् तृप्तिसाधनम्, स्यात् अतृप्तिसाधनं, स्यात् मरणसाधनम्, स्यात् अमरण साधनम्' इत्यादिक सप्तभंगोंकी प्राप्ति करिकै किसी भी पुरुषका विश्वास नहीं होवैंगा। यातैं तृप्तिकी इच्छावान् पुरुषकी ता अन्नविषे प्रवृत्ति हीं नहीं होवैंगी तथा मरणतैं भयवान् पुरुषकी ता विषतैं निवृत्ति नहीं होवैंगी। इस प्रकारतैं सर्वव्यवस्थाका लोप होवैंगा। यातैं यह सप्तभंगी वाद अत्यंतविरुद्ध है॥

जीवात्माके मध्यम परिमाणवादका खण्डन—किंवा तिन आर्हतोंनैं जीवात्माकूं जो शरीरके तुल्यपरिमाणवाला मान्या है सो भी अत्यंत असंगत है। काहेतैं? ता आर्हतसैं यह पूछा चाहिये सो शरीरके तुल्य परिमाणवाला तुमारा आत्मा निरवयव है अथवा सावयव है। तहां सो आत्मा निरवयव है यह प्रथमपक्ष जो अंगीकार करौ ताके विषे भी यह कह्या चाहिये सो निरवयव आत्मा मनुष्य देहके तुल्य परिमाणवाला है अथवा हस्तीदेहके तुल्यपरिमाणवाला है अथवा मशकदेहके तुल्य परिमाणवाला है। तहां सो जीवात्मा जो मनुष्यदेहके तुल्य परिमाणवाला अंगीकार करैंगे तौं किसी पापकर्मके योगतैं ता जीवात्माकूं जबी हस्तीशरीरकी प्राप्ति होवैंगी। तबी सो जीवात्मा ता हस्तीशरीरके किसी एकदेशविषे हीं रहैंगा। दूसरा हस्तीका शरीर ता आत्मातैं शून्य रहैंगा तथा तिसी जीवात्माकूं जबी किसी पापकर्मके वशतैं मशकशरीरकी प्राप्ति होवैंगी। तबी सो जीवात्मा जितनाकी ता मशकशरीरविषे समावैंगा तितना तौं ता मशकशरीरविषे रहैंगा दूसरा आत्मा ता मशकशरीरतैं बाहरि लटकता रहैंगा और सो जीवात्मा हस्तीदेहके तुल्य परिमाणवाला है यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करौंगे। तौं सो जीवात्मा जबी किसी पापकर्मके वशतैं मशकशरीरकूं प्राप्त होवैंगा तबी ता मशकदेहविषे किञ्चितमात्र प्रविष्ट हूआ भी दूसरा बाहरि लटकता रहैंगा और ता जीवात्माकूं जबी

किसी पापकर्मके वशतैं ता हस्तीशरीरतैं भी महान् किसी मत्स्यादिक शरीरकी प्राप्ति होवैंगी। तबी सो जीवात्मा ता मत्स्यादिक शरीरके किसी एकदेशविषे हीं रहैंगा। दूसरा मत्स्यादिक शरीर ता आत्मातैं शून्य हीं रहैंगा। और सो जीवात्मा मशकदेहके तुल्य परिमाणवाला है यह तीसरापक्ष जो अंगीकार करैंगे तौं ता जीवात्माकूं जबी किसी पापकर्मके वशतैं हस्तीशरीरकी प्राप्ति होवैंगी तबी सो जीवात्मा ता हस्तीदेहके किसी एक रोममात्रविषे हीं रहैंगा दूसरा सम्पूर्ण हस्तीका शरीर ता आत्मातैं शून्य रहैंगा और जितना शरीर ता जीवात्मातैं शून्य होवैंगा तितनैं शरीरविषे ता जीवात्माकूं शीत उष्णतादिकों करिकै सुखदुःखका अनुभव नहीं होवैंगा। यातैं सो शरीरके तुल्य परिमाणवाला आत्मा निरवयव है यह प्रथमपक्ष सम्भवता नहीं। और सो देहके तुल्य परिमाणवाला जीवात्मा सावयव है। यह दूसरापक्ष जो आर्हत अंगीकार करे तौं इस पक्षविषे यद्यपि सो पूर्वउक्त दोष प्राप्त होता नहीं। काहेतैं? यह मनुष्यदेहके तुल्य परिमाणवाला जीवात्मा जबी किसी पापकर्मके वशतैं हस्तीशरीरकूं प्राप्त होवै है तबी अवयवोंकी वृद्धितैं सो जीवात्मा ता हस्तीदेहके तुल्य परिमाणवाला होइ जावै है और सो जीवात्मा जबी मशकशरीरकूं प्राप्त होवै है तबी तिन अवयवोंके क्षयतैं सो जीवात्मा ता मशकदेहके तुल्य परिमाणवाला होइ जावै है। यातैं इस सावयवपक्षविषे सो पूर्वउक्त दोष प्राप्त होता नहीं। तथापि ता जीवात्माकूं सावयवमानणेमें अनित्यता प्राप्त होवैंगी। काहेतैं? इस लोकविषे जो जो पदार्थ सावयव होवै है सो सो पदार्थ अनित्य हीं होवै है। जैसे घटपटादिक पदार्थ सावयव होणेतैं अनित्य हैं तैसे सो जीवात्मा भी सावयव होणेतैं अनित्य हीं होवैंगा। ता जीवात्माके अनित्यहूए कृतनाश अकृताभ्यागम इन दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैंगी। तहां कऱ्येहूए कर्मोंका जो फलके भोगतैं विना हीं नाश है ताका नाम कृतनाश है और न कऱ्येहूए कर्मोंके फलकी जो प्राप्ति है ताका नाम अकृताभ्यागम है। इसतैं आदि लैके अनेक प्रकारके दूषण ता जैनके मतविषे प्राप्त होवै हैं। यातैं सो जैनका मत अत्यंत असंगत है इति॥

### चार्वाकमतखण्डन।

अब चार्वाकोंके मतके खण्डन करणे वासतै प्रथम तिन चार्वाकोंके मतका निरूपण करे हैं। तहां केईक चार्वाक तौं इस स्थूल देहकूं हीं आत्मा माने हैं और केईक चार्वाक तौं चक्षुआदिक इंद्रियोंकूं हीं आत्मा माने हैं और केईक चार्वाक तौं प्राणकूं हीं आत्मा माने हैं और केईक चार्वाक तौं मनकूं हीं आत्मा माने हैं। इस रीतिसैं तिन चार्वाकोंके च्यारिभेद प्रसिद्ध हैं॥

### देहात्मवादी चार्वाकके मतका प्रतिपादन॥

तहां प्रथम देहात्मवादी चार्वाक—तौं ता देहविषे आत्मता सिद्ध करणे वासतै या प्रकारकी युक्ति कहे हैं। सर्ववादीयोंके मतविषे 'अहं' इस प्रतीतिका विषय तथा 'अहं' इस शब्दका

अर्थ आत्माहीं होवै है। सो अहं इस प्रतीतिविषे यह देह हीं प्रतीत होवै है ता देहतैं भिन्न तथा ता देहतैं अंतरवर्त्ती दूसरा कोई पदार्थ ता अहं प्रतीतिका विषय हूआ प्रतीत होता नहीं । या कारणतैं हीं पंडित पुरुषोंतैं लैके पामरपुरुषों पर्यंत सर्वलोकोंकूं ' अहंस्थूलः, अहं गौरः, अहं मनुष्यः अहं, ब्राह्मणः, अहं गच्छामि, अहं जानामि, अहम् इच्छामि, अहंकरोमि ! अर्थ यह— मैं मोटा हूं, गोरा हूं, मनुष्य हूं, ब्राह्मण हूं, जाता हूं, जानता हूं, चाहता हूं, करता हूं इत्यादिकप्रतीतितैं अहंता धर्मके साथि स्थूलत्व, गौरत्व, मनुष्यत्व, ब्राह्मणत्व, गमन, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न इत्यादिक धर्मोंके सामानाधिकरण्यका हीं अनुभव होवै है । तहां धर्मीके अभेद हूए हीं तिन धर्मोंके सामानाधिकरण्यका अनुभव होवै है । धर्मीके भेद हूए तिन धर्मोंके सामानाधिकरण्यका अनुभव होता नहीं । जैसे कुंडविषे स्थित जो दधि है ता दधिका तौं मधुर रस धर्म है । और ता कुंडका कंबुग्रीवादिमत्त्व धर्म है । तहां ता कुंडरूप धर्मीका तथा दधिरूप धर्मीका परस्पर भेद हैं यातैं तहां मधुर रस कुंबुग्रीवादिमत्त्व इन दोनों धर्मोंके सामानाधिकरण्यका अनुभव होता नहीं । जो कदाचित् धर्मीके भेद हूए भी तिन धर्मोंके सामानाधिकरण्यका अनुभव होता होवै तौं ' मधुरं कुंडं कंबुग्रीवादिमत् दधि ' या प्रकारका भी अनुभव होणा चाहिये । सो ऐसा अनुभव किसीकूं होता नहीं । यातैं यह जान्या जावै है । जहां धर्मीका अभेद होवै है । तहां हीं तिन धर्मोंके सामानाधिकरण्यका अनुभव होवै है—और उक्तरीतिसैं सर्वलोकोंकूं अहंता धर्मके साथि तिन स्थूलत्वादिक धर्मोंके सामानाधिकरण्यका हीं अनुभव होवै है, यातैं तिन स्थूलत्वादिक सर्वधर्मोंका कोई एक हीं धर्मी मान्या चाहिये । सो ऐसा धर्मी यह स्थूल शरीर हीं सिद्ध होवै है । काहेतैं? स्थूलत्व, गौरत्व, ब्राह्मणत्व, मनुष्यत्व, गमन यह धर्म इस स्थूलदेहविषे हीं सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्ष प्रतीत होवै हैं । और उक्तरीतिसैं ज्ञान, इच्छा, कृति इन तीनों धर्मोंका भी तिन स्थूलत्वादिक धर्मोंके साथि हीं सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है । यातैं तिन ज्ञानादिक तीन धर्मोंका भी सो स्थूलदेह हीं धर्मी है और सर्ववादीयोंके मतविषे ज्ञान, इच्छा प्रयत्न यह तीनों धर्म आत्माके हीं होवै हैं, अन्यके होवै नहीं यातैं तिन ज्ञानादिक गुणोंवाला होणेतैं तथा अहंप्रतीतिका विषय होणेतैं यह स्थूल देह हीं आत्मा है । या स्थूलदेहतैं भिन्न सर्वपदार्थ अनात्मारूप हीं हैं । यद्यपि पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारिभूतोंके मध्यविषे एकएकभूतविषे तथा तिन च्यारोंभूतोंविषे सो ज्ञानरूप चैतन्य देखणे विषे आवता नहीं । तथापि देहाकारपरिणामकूं प्राप्तहूए तिन च्यारिभूतोंविषे ता चैतन्यकी उत्पत्ति संभवै है । जैसे मदिराके कारणभूत गुडादिक पदार्थोंविषे किसी एक एक पदार्थविषे तथा तिन सर्वपदार्थोंविषे यद्यपि मदशक्ति नहीं होवै है तथापि मदिराकार परिणामकूं प्राप्तहूए तिन गुडादिक पदार्थोंविषे सा मदशक्ति प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है तथा नागवल्ली दल काथा चूना सोपारी इन च्यारोंविषे एकएककूं रक्तरूपकी अनुत्पादकता हूए भी तिन च्यारोंके

समुदायरूप तांबूलकूं ता रक्तरूपकी उत्पादकता प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है । तैसे देहाकारपरिणामकूं प्राप्तहूए तिन पृथिवी आदिक च्यारि भूतोंविषे ता ज्ञानरूप चैतन्यकी उत्पत्ति संभवै है । यातैं सो चैतन्य इस देहका हीं धर्म है । किंवा जिस धर्मका जिस द्रव्यके अधीन प्रतीति होवै है तिस धर्मका सो द्रव्य हीं धर्मी होवै है । जैसे उष्णस्पर्शकी अग्निरूप द्रव्यके अधीन हीं प्रतीति होवै हैं । यातैं ता उष्णस्पर्शका सो अग्निरूप द्रव्य हीं धर्मी है । तैसे ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न इन तीन धर्मोंकी भी इस देहके अधीन हीं प्रतीति होवै है, देहतैं विना तिन धर्मोंकी प्रतीति होती नहीं । या कारणतैं भी ते ज्ञानादिक इस देहके हीं धर्म सिद्ध होवै हैं । जो कदाचित् तिन ज्ञानादिकोंकूं या देहतैं भिन्न किसीका धर्म मानिये तौं दृष्टअर्थकी हानि अदृष्टअर्थकी कल्पनारूप दोष प्राप्त होवैंगा अर्थात् तिन ज्ञानादिक गुणोंका आश्रयरूप करिकै प्रत्यक्ष जो यह देह है ताका परित्याग करिकै ता देहतैं भिन्न कोई अर्थ तिन ज्ञानादिकोंका धर्मीरूप करिकै कल्पना करणा होवैंगा, किंवा केवल इस उक्तयुक्तिमात्रतैं हीं ता देहविषे आत्मरूपता सिद्ध नहीं हैं, किंतु बृहस्पतिनैं भी **चैतन्यविशिष्टः पुरुषः कायः ।** इस सूत्रविषे चैतन्यविशिष्ट देहकूं हीं आत्मा कह्या है और **स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।** यह श्रुति भी इस देहकूं हीं आत्मा कहे है । यातैं भी यह देह हीं आत्मा है और इस देहका जो मरण है सोई हीं मोक्ष है । और एकप्रत्यक्ष प्रमाण है । ता प्रत्यक्षतैं भिन्न दूसरा कोई प्रमाण है नहीं या कारणतैं इस लोकतैं भिन्न दूसरा कोई स्वर्गनरकादिरूप परलोक है नहीं । और यह जगत् स्वभावतैं हीं उत्पन्न होवै है । ता स्वभावतैं भिन्न दूसरा कोई ईश्वर वा पुण्यपापरूप अदृष्ट इस जगत्का कारण नहीं है इति ॥

देहात्मवादी चार्वाकका खण्डन ।

सो यह चार्वाकवादीयोंका मत अत्यन्त असंगत है । काहेतैं ? इस लोकविषे अचेतन भूतोंका जो जो परिणाम विशेष होवै है सो सो परिणाम विशेषरूप संघात दृष्टनिमित्तद्वारा वा अदृष्टनिमित्तद्वारा ता संघातका प्रयोजक तथा ता संघातका भोक्ता तथा ता संघाततैं पूर्वसिद्ध ऐसा जो कोई चेतन है ता चेतनके अधीन हीं होवै है । जैसे अचेतनभूतोंका जो रथगृहादिक संघातरूप करिकै परिणाम है सो रथगृहादिरूप परिणाम दृष्टनिमित्तद्वारा तथा अदृष्ट निमित्तद्वारा तिन रथगृहादिकोंका प्रयोजक तथा तिन रथगृहादिकोंका उपभोक्ता तथा तिन रथ गृहादिकोंतैं पूर्वसिद्ध ऐसा जो चेतनपुरुष है ता चेतनपुरुषके अधीन हीं होवै है । ता पूर्वसिद्ध भोक्ता चेतनतैं विना सो रथगृहादिरूप परिणाम होता नहीं यह वार्त्ता सर्व लोकोंकूं अनुभव सिद्ध है । तैसे तिन पृथिवी आदिक अचेतन भूतोंका जो यह देहाकार परिणाम है सो देहाकारपरिणाम भी दृष्टनिमित्तद्वारा वा अदृष्टनिमित्तद्वारा ता देहका प्रयोजक, तथा ता देहका उपभोक्ता तथा ता देहतैं पूर्वसिद्ध ऐसा जो कोई चेतन है ता चेतनके अधीन हीं मानणा होवैंगा

ता पूर्वसिद्ध भोक्ता चेतनतैं विना सो देहाकार परिणाम हीं सिद्ध नहीं होवैंगा सो ऐसा देहका भोक्ता तथा ता देहके पूर्ववर्त्ती चेतनपुरुष तुम देहात्मवादीयोंकूं अंगीकार है नहीं, जिस चेतन भोक्ताके वासतै ते पृथिवी आदिक च्यारिभूत या देहाकार परिणामकूं प्राप्त होवैं है। इस प्रकार ता पूर्वसिद्ध चेतनभोक्ताके अभाव करिकै ता देहाकार परिणामके असिद्धहूए ता देहाकार परिणामके अधीन जो पृथिवी आदिक भूतोंविषे चैतन्यकी उत्पत्ति तुमोंनैं मानी है सा भी नहीं सिद्ध होवैंगी। किंवा ता ज्ञानरूप चैतन्यकूं जो पृथिवी आदिक भूतोंका गुण मानिये तौं जैसे तिन पृथिवी आदिक भूतोंके रूपादिक गुण सर्वलोकोंकूं चक्षुआदिक इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष प्रतीत होवैं हैं तैसे सो चैतन्यरूप गुण भी दूसरे लोकोंकूं चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये और दूसरे पुरुषके ता ज्ञानरूप चैतन्यकूं दूसरा पुरुष चक्षुइंद्रिय करिकै देखि सकता नहीं। यातैं यह जान्या जावै है—सो ज्ञानरूप चैतन्य भूतोंका गुण नहीं है किंतु तिन पृथिवी आदिक भूतोंतैं भिन्न हीं किसी आत्माका गुण होवैंगा। किंवा ता चार्वाकनैं मदिराके दृष्टांत करिकै जो देहविषे चैतन्य मान्या था सो भी असंगत है। काहेतैं? ता मदिरारूप अवयवीके आरंभक जे अवयव हैं तिन अवयवोंविषे सा मदशक्ति भिन्नभिन्न हीं रहे है। तिन सर्व अवयवोंविषे सा मदशक्ति एक रहती नहीं। जो कदाचित् तिन सर्वअवयवों विषे एक मदशक्ति रहती होवै तौं अधिक मदिरापान कीये तैं या पुरुषकूं जितना मद होवै ह उतना मद अल्प मदिरापान कीये तैं भी होणा चाहिये सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं। यातैं तिन मदिराके अवयवोंविषे सा मदशक्ति भिन्नभिन्न हीं मानणी होवैंगी इस प्रकार इस देहके अवयवोंविषे भी सो भिन्नभिन्न चैतन्य हीं अंगीकार करणा होवैंगा और इस देहविषे अनेक अवयव हैं यातैं इस एक देहविषे अनेक चेतन मानणे होवैंगे। ऐसे अनेक चेतनोंकी नियम पूर्वक एक मति होवैंगी नहीं, किंतु भिन्नभिन्न मति हीं होवैंगी। यातैं जैसे एक पाशके साथि बांध्ये हूए अनेक शकुनि पक्षियोंका किसी अभिलषित देषविषे गमन होइ सकता नहीं तैसे इस देहका भी किसी अभिलषित देशविषे गमन नहीं होइ सकैंगा अथवा जैसे अनेक गजों करिकै आकर्षण कर्‍येहूए कदलीकांडका उन्मथन हीं होवै है तैसे भिन्नभिन्न अभिप्रायवाले अनेकचेतनों करिकै आकर्षण कर्‍ये हूए इस देहका भी उन्मथन हीं होवैंगा। या कारणतैं भी ता ज्ञानरूप चैतन्यविषे देहकी धर्मरूपता संभवै नहीं, किंवा ता चार्वाकनैं ता चैतन्यकूं देहकी धर्मताके सिद्ध करणे वासतै जो देहके अधीन ता चैतन्यकी प्रतीतिरूप युक्ति कथन करी थी सो भी असंगत है। काहेतैं? ता देहके अधीन हीं जो चैतन्यकी प्रतीति होती होवै तौं मृतकपुरुष क्युं नहीं जानता, किंतु ता मृतकपुरुषकूं भी सो चैतन्यरूप ज्ञान होणा चाहिये। जिस कारणतैं देहाकारपरिणामकूं प्राप्तहूए ते पृथिवीआदिक भूत तिस मरणकालविषे भी विद्यमान हीं हैं, परंतु ता मृतक शरीरविषे सो चैतन्यरूप ज्ञान होता नहीं। यातैं तिन

पृथिवी आदिक भूतोंका जो देहाकारपरिणाम है ताकूं ता चैतन्यरूप ज्ञानकी उपादानकारणता संभवती नहीं किंवा ता ज्ञानरूप चैतन्यकी इस देहके अधीन प्रतीति होवो । इतनैंमात्र करिकै ता चैतन्यकूं ता देहकी धर्मता सिद्ध होती नहीं । काहेतैं ? जो धर्म जिस द्रव्यके अधीन प्रतीत होवै है सो धर्म तिस द्रव्यका हीं होवै है या प्रकारका नियम सर्वत्र देखणेविषे आवता नहीं । जैसे घटादिकोंके नीलपीतादिक रूपोंकी प्रतीति आलोकके अधीन हीं होवै है ता आलोकतैं विना अंधकारविषे तिन नीलपीतादिक रूपोंकी प्रतीति होती नहीं, परंतु ते नीलपीतादिक रूप ता आलोकके धर्म नहीं हैं, किंतु ता आलोकतैं भिन्न घटादिकोंके हीं धर्म हैं तैसे ता ज्ञानरूप चैतन्यकी देहके अधीन प्रतीतिके हूए भी ता चैतन्यविषे देहकी धर्मता संभवै नहीं, किंतु ता देहतैं भिन्न आत्माका हीं सो चेतन्य धर्म है, किंवा ता चार्वाकनैं जो मरणकूं हीं मोक्ष मान्या है सो भी असंगत है । काहेतैं ? जिस देहका जन्म हूआ है तिस देहका मरण भी अवश्य करिकै होवै है । यातैं सो मरणरूप मोक्ष सर्वप्राणीयोंकूं विना हीं प्रयत्नतैं सुलभ है । ऐसे मोक्षकी इच्छावान् मुमुक्षुजनकी ता चार्वाकशास्त्रविषे प्रवृत्ति हीं नहीं होवैंगी । यातैं सो चार्वाकका शास्त्र हीं निष्फल होवैंगा । किंवा एकप्रत्यक्ष हीं प्रमाणहै ता प्रत्यक्षतैं भिन्न कोई प्रमाण है नहीं । या प्रकारके वचन कहणेहारे ता चार्वाकतैं यह पूछा चाहिये—सो यह तुमारा वाक्य प्रमाण है ? अथवा नहीं है तहां सो हमारा वाक्य प्रमाण है यह प्रथमपक्ष जो चार्वाक अंगीकार करै तौं ता चार्वाकूं प्रत्यक्षप्रमाणतैं भिन्न ता वाक्यरूप शब्दकी प्रमाणता बलात्कारसैं मानणी होवैंगी और सो हमारा वाक्य प्रमाण नहीं है यह दूसरापक्ष जो चार्वाक अंगीकार करै तौं ता मिथ्यावादी चार्वाकके ता अप्रमाणरूप वचनतैं तिन अनुमानादिक प्रमाणोंका निषेध होइ सकै नहीं, किंवा यह सर्व जगत् स्वभावतैं हीं उत्पन्न होवैं है दूसरा कोई पुण्यपापरूप अदृष्ट तथा ईश्वर इस जगत्का कारण नहीं है । यह जो चार्वाकनैं कह्या था सो भी असंगत है । काहेतैं? जो कदाचित् स्वभावतैं हीं सर्वकार्य उत्पन्न होते होवैं तौं तिन कार्योंविषे परस्पर विलक्षणता नहीं होणी चाहिये । सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु कोई शरीर तौं जन्मतें लैके दुःखी हीं रहे है । और कोई शरीर तौं जन्मतैं लैके सुखी हीं रहे है । और कोई शरीर तौं पूर्व अवस्थाविषे सुखी हूआ भी उत्तर अवस्थाविषे दुःखी होवै है और कोई शरीर तौं पूर्व अवस्थाविषे दुःखी हूआ भी उत्तर अवस्थाविषे सुखी होवै है । या प्रकारकी विलक्षणता हीं सर्वत्र देखणेमें आवै है, ता विलक्षणताका हेतु पुण्यपापरूप अदृष्ट अवश्य मान्या चाहिये । ता पुण्यपापतैं विना सा विलक्षणता संभवती नहीं । और इस कालविषे इस प्राणीकूं हम सुखदुःखरूप फलकी प्राप्ति करैं या प्रकारका ज्ञान ता जडपुण्यपापकूं है नहीं । यातैं प्राणीयोंकूं ता पुण्यपाप कर्मके सुखदुःखरूप फलके देणेहारा कोई सर्वज्ञ ईश्वर अवश्य मान्या चाहिये ।

और इस प्राणीकूं जन्मकालविषे हीं सुखकी वा दुःखकी प्राप्ति होवै। ता सुखदुःखरूप फलकी प्राप्ति करणेहारा जो पुण्यपापरूप अदृष्ट है सो अदृष्ट ता जन्मकालविषे तौं संपादन हूआ नहीं, किंतु इस जन्मतैं पूर्वजन्मका हीं सो पुण्यपापरूप अदृष्ट मानणा होवैगा और अबी उत्पन्न हूआ यह शरीर ता पूर्वजन्मविषे था नहीं। यातैं तिस पुण्यपापरूप अदृष्टका आश्रयभूत तथा ता अदृष्टका संपादक आत्मा इस शरीरतैं भिन्न हीं कोई मान्या चाहिये। किंवा मेरा देह स्थूल है मेरा देह कृश है या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है। ता अनुभवतैं भी देहतैं भिन्न हीं आत्मा सिद्ध होवै है। किंवा इस देहकूं हीं जो आत्मा मानिये तौं अवयवोंके उपचय अपचय करिकै ता देहका नाश होणेतैं बाल्य अवस्थाविषे अनुभव करी हूई वस्तुका वृद्धअवस्थाविषे स्मरण नहीं होणा चाहिये। जिस कारणतैं ता वृद्धअवस्थाविषे सो बाल्यअवस्थाका शरीर नाश होई जावै है और अन्य करिकै अनुभव करी हूई वस्तुका अन्यकूं स्मरण होता नहीं। यातैं ता स्मरणकी सिद्धि वासतै भी देहतैं भिन्न हीं आत्मा मान्या चाहिये। किंवा ता चार्वाकनैं इस देहविषे आत्मरूपताके सिद्ध करणे वासतै जो स्थूलत्वगौरत्वादिक देहधर्मोंके साथि अहंता, ज्ञान, इच्छा, कृति आदिक आत्मधर्मोंके सामानाधिकरण्यका अनुभव कथन कऱ्या था सो सामानाधिकरण्यका अनुभव तौं 'लोहितः स्फटिकः' इस सामानाधिकरण्यके अनुभवकी न्यांई भ्रांतिरूप हीं है। यातैं ता भ्रांतिरूप अनुभव करिकै ता देहकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं। किंवा ता चार्वाकनैं देहकी आत्मरूपताविषे जो बृहस्पतिका सूत्ररूप वचन प्रमाण कह्या था। यो भी असंगत है। कांहतैं ? ता बृहस्पतिनैं जो ते सूत्र रचे हैं ते असुरोंको मोह करणे वासतै हीं रचे हैं किसी अधिकारीके श्रेय वासतै ते सूत्र रचे नहीं। यातैं ते सूत्र आप्तपुरुष करिकै रचितहूए भी अप्रमाणरूप हीं है। किंवा ता चार्वाकनैं ता देहकी आत्मरूपता विषे जो श्रुतिप्रमाण कह्या था सा श्रुति तौं देहात्मवादी भ्रांत पुरुषोंके मतका अनुवाद करती हूई पूर्वपक्षरूप हीं है। यातैं ता श्रुतितैं भी देहकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं। यातैं ता देहात्मवादी चार्वाकका मत समीचीन नहीं है इति ॥

इन्द्रियात्मवादी चार्वाककामत।

अब चक्षुआदिक इंद्रियोंकूं हीं आत्मा मानणेहारे चार्वाकोंके मतका खंडन करणे वासतै प्रथम तिन इंद्रिय आत्मवादी चार्वाकोंके मतका निरूपण करे हैं। तहां ते चार्वाक तिन इंद्रियोंविषे आत्मरूपताके सिद्ध करणे वासतै या प्रकारकी युक्ति कथत करे हैं—'अहंपश्यामि, अहं शृणोमि, अहं रसयामि' या प्रकारका अनुभव सर्वप्राणीयोंकूं होवै है। ता अनुभवविषे चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंके दर्शन श्रवण आदिक व्यापारोंके साथि आत्माके अहंता धर्मका सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है। तथा 'अहं काणः, अहं बधिरः' अर्थ यह—मैं काणाहूं मैं बहिराहूं

इत्यादिक अनुभवविषे भी तिन चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंके काणत्व, बधिरत्व आदिक धर्मोंके साथि ता आत्माके अहंता धर्मका सामानाधिकरण्य हीं प्रतीत होवै है और 'अन्धोऽहं जानामि, बधिरोऽहं इच्छामि,मूकोऽहं करोमि।' अर्थ यह—मैं अन्धा जानता हूं, बहिरा मैं चाहता हूं। गूंगा मैं करता हूं या प्रकारके अनुभवविषे तिन चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंके अंधत्व बधिरत्व आदिक धर्मोंके साथि आत्माके ज्ञान, इच्छा, कृति इन तीनों धर्मोंका सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है। और जिन धर्मोंका परस्पर सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है तिन धर्मोंका एक हीं धर्मी होवै है, ता धर्मीके अभेदतैं विना तिन धर्मोंका सामानाधिकरण्य होता नहीं। यह वार्त्ता पूर्व देहात्मवादी चार्वाकके मतविषे कथन करि आये हैं। जैसे 'नीलो घटः' घडा नीला है। इस अनुभवविषे नीलत्व, घटत्व इन दोनों धर्मोंका सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है। यातैं तिन दोनों धर्मोंका सो एक हीं घटरूप धर्मी है। तैसे तिन पूर्वउक्त अनुभवोंविषे भी चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंके दर्शन, श्रवण, काणत्व, बधिरत्व आदिक धर्मोंके साथि अहंताधर्मका तथा ज्ञान इच्छादिक धर्मोंका सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है। यातैं तिन सर्वधर्मोंका कोई एक हीं धर्मी मान्या चाहिये। तहां सर्ववादियोंके मतविषे ते काणत्व बधिरत्वादिक धर्म चक्षु श्रोत्रादिक इंद्रियोंके हीं होवै है। यातैं ते चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रिय हीं ता अहंताधर्मका तथा तिन ज्ञानइच्छादिक धर्मोंका धर्मी रूप मान्ये चाहिये। और सर्ववादीयोंके मतविषे अहंप्रतीतिका विषय तथा ज्ञानइच्छादिक गुणोंवाला आत्मा हीं होवै है। यातैं उक्तरीतिसैं अहंप्रतीतिका विषय होणेतैं तथा ज्ञान इच्छादिक गुणोंवाला होणेतैं यह चक्षुआदिक इंद्रिय ही आत्मा हैं। ईहां जो कोई वादी यह शंका करै, जैसे यह स्थूल देह भौतिक होणेतैं अचेतन है तैसे ते इंद्रिय भी भौतिक होणेतैं अचेतन हीं होवैंगे। ऐसे अचेतन इंद्रियोंकूं आत्मरूपता संभवती नहीं। सो यह शंका संभवती नहीं। काहेतैं? वेदविषे प्राणइंद्रियोंका आपणी आपणी अधिकताविषे परस्परसंवाद कथन कर्या है। सो संवाद अचेतन पदार्थोंका बनि सकता नहीं, किंतु चेतनोंका हीं परस्परसंवाद देखणेविषे आवै है। यातैं ता संवादश्रुतिप्रमाणतैं तिन इंद्रियोंविषे चेतनरूपता हीं सिद्ध होवै है और 'अहं पश्यामि अहं शृणोमि' मैं देखता हूं मैं सुनता हूं इत्यादिक प्रत्यक्ष अनुभवतैं भी तिन इंद्रियोंविषे चेतन रूपता हीं सिद्ध होवै है। यातैं ता श्रुतिप्रत्यक्ष-विरुद्ध अर्थविषे ता उक्त अनुमानकी प्रवृत्ति हीं संभवै नहीं। ईहां जो कोई वादी यह शंका करे ते इंद्रियरूप चेतन आत्मा नाना हैं तिन नानाचेतनोंकी परस्पर एकमाति हीं नहीं होवैंगी। यातैं इस देहका कोई भी प्रवृत्तिनिवृत्ति आदिक व्यवहार सिद्ध नहीं होवैंगा। सो यह शंका भी संभवती नहीं। काहेतैं? उपभोगरूप एक प्रयोजनके वशतैं बहुतोंकी भी एकमातिपूर्वक प्रवृत्ति संभवै है। जैसे सांख्यमतविषे सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंकी एकमातिपूर्वक प्रवृत्ति होवै है तथा जैसे एकसार्थ अंतर्गत पुरुषोंकी एकमतिपूर्वक प्रवृत्ति होवै है तैसे तिन नानाइंद्रियोंकी भी एकमतिपूर्वक प्रवृत्ति संभवै है। यातैं यह चक्षुआदिक इंद्रिय हीं आत्मा हैं इति॥

इंद्रियात्मवादी चार्वाकके मतका खण्डन ।

सो यह इंद्रिय आत्मवादी चार्वाकका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? जो चार्वाक इंद्रियोंकूं हीं आत्मा माने है ता चार्वाकतैं यह पूछा चाहिये, इस देहविषे स्थित जे चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, रसन, घ्राण इत्यादिक इंद्रिय हैं ते इंद्रिय प्रत्येक आत्मा है अथवा तिन इंद्रियोंका समुदाय आत्मा है ? तहां प्रत्येक इंद्रिय आत्मा है यह प्रथम पक्ष जो चार्वाक अंगीकार करे तौं ता चार्वाककूं एक हीं देहविषे नाना आत्मा मानणे होवेंगें, तिन समप्रधान इंद्रियरूप अनेक आत्मावोंकी नियमपूर्वक एकमति संभवैंगी नहीं । यातैं ते इंद्रियरूप अनेक आत्मा आपणे आपणे विषयके उपभोग वासतै एक हीं कालविषे इस देहकूं परस्पर विरुद्ध देशाविषे आकर्षण करैंगे ता करिकै इस देहका उन्मथन हीं होवैंगा । जैसे अनेक गजों करिकै आकर्षण कऱ्येहूए एक कदलीकाण्डका उन्मथन हीं होवै है । किंवा उपभोगरूप एकप्रयोजनके वशतैं तिन इंद्रियरूप अनेक आत्मावोंकी एकमतिपूर्वक प्रवृत्ति संभवै है यह जो वचन ता चार्वाकनैं कह्या था सो भी असंगत है । काहेतैं ? ते इंद्रियरूप अनेकआत्मा सर्वकालविषे एक प्रयोजन वासतै हीं प्रवृत्त होवै हैं, या प्रकारका नियम कऱ्या जाता नहीं, किंतु कोई कालविषे तिन इंद्रियरूप अनेक आत्मावोंके परस्परविरुद्ध नानाप्रयोजन भी अवश्य प्राप्त होवैंगे, तिन विरुद्ध नानाप्रयोजनोंके वशतैं तिन इंद्रियरूप अनेक आत्मावोंकी परस्परविरुद्ध भिन्नभिन्नमतिपूर्वक विरुद्धदेशविषे प्रवृत्ति अवश्य होवैंगी, ता करिकै इस देहका उन्मथन भी अवश्य होवैंगा, किंवा ता चार्वाकनैं सांख्यमतके सत्त्वादिक गुणोंके दृष्टांत करिकै जो इंद्रियरूप अनेक आत्मावोंकी एकमतिपूर्वक प्रवृत्ति कथन करी थी सो भी असंगत है । काहेतैं ? ता सांख्यमतविषे तिन सत्त्वादिक गुणोंतैं भोक्ता पुरुष भिन्न हीं अंगीकार कऱ्या है । यातैं ता भोक्ता पुरुषके उपभोग वासतै तिन सत्त्वादिक तीन गुणोंकी एकमति पूर्वक प्रवृत्ति संभवै है । और ता चार्वाकनैं तौं तिन इंद्रियरूप आत्मावोंतैं भिन्न दूसरा कोई भोक्ता अंगीकार कऱ्या नहीं, जिस भोक्ताके उपभोग वासतै ते अनेक इंद्रिय एकमतिपूर्वक प्रवृत्त होवैं किंवा तिन नानाइंद्रियोंकी एकमति पूर्वक प्रवृत्तिविषे ता चार्वाकनैं जो एकसार्थ अन्तर्गत पुरुषोंका दृष्टांत कथन कऱ्या था सो भी असंगत है । काहेतैं ? ते एकसार्थ अंतर्गत अनेक पुरुष भी जब पर्यंत जीवे हैं तब पर्यंत तिन सर्वोंकी एक हीं मति रहे है तथा मिल्ये हीं रहे है या प्रकारका नियम देखणेविषे आवता नहीं । किंतु कदाचित् भिन्नभिन्न प्रयोजनके वशतैं तिन पुरुषोंकी परस्परविरुद्धमति तथा विश्लेष भी देखणेविषे आवै है । तैसे तिन इंद्रियरूप अनेक आत्मावोंकी भी कोईकालविषे भिन्नभिन्न प्रयोजनके वशतैं परस्परविरुद्धमति तथा विश्लेष अवश्य होवैंगा । तिस कालविषे ते इंद्रियरूप अनेक आत्मा इस देहकूं अवश्य उन्मथन करैंगे । किंवा एकदेहविषे जो इंद्रियरूप अनेक आत्मा अंगीकार करीये तौं चक्षुइंद्रिय करिकै देख्येहूए पदार्थोंका तथा श्रोत्र इंद्रिय करिकै

श्रवणकऱ्येहूए पदार्थोंका दूसरे पुरुषके प्रति बोध करावणे वासतैं वाक्इंद्रिय करिकै उच्चारण नहीं होवैंगा। काहेतैं? सो वाक्इंद्रियरूप वक्ता ता चक्षुइंद्रियरूप द्रष्टातैं तथा ता श्रोत्रइंद्रियरूप श्रोतातैं अत्यन्त भिन्न है। जैसे चैत्रनामा पुरुषतैं तथा मैत्रनामा पुरुषतैं देवदत्तनामा पुरुष अत्यन्त भिन्न होवै है। यातैं सो देवदत्तनामा पुरुष ता चैत्रदृष्ट वस्तुका तथा ता मैत्रश्रुत वस्तुका कथन करि सकता नहीं तैसे सो वाक्इंद्रिय भी ता चक्षुइंद्रियदृष्ट वस्तुका तथा ता श्रोत्रइंद्रिय श्रुत वस्तुका कथन नहीं करि सकैंगा। यद्यपि चैत्र मैत्र देवदत्त इन तीनोंके परस्परसंवादहूएतैं अनन्तर सो देवदत्तनामा पुरुष ता चैत्रदृष्ट वस्तुका तथा ता मैत्रश्रुत वस्तुका कथन करि सकै है। तैसे चक्षु श्रोत्र वाक् इन इंद्रियोंके परस्परसंवाद हूएतैं अनन्तर सो वाक्इंद्रिय ता चक्षुदृष्ट वस्तुका तथा ता श्रोत्रश्रुत वस्तुका कथन करि सके है, तथापि तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंका सो परस्परसंवाद देखणेविषे आवता नहीं। अर्थात् सो चक्षुइंद्रिय घटादिक वस्तुकूं देखिकै ता वाक्इंद्रियके प्रति कहता नहीं। जो यह घटादिक वस्तु हमनैं देख्या है और ता वाक्-इंद्रियकूं तिन घटादिक वस्तुवोंके दर्शनका सामर्थ्य है नहीं। जो कदाचित् ता वाक्इंद्रियकूं तिन घटादिक पदार्थोंकें दर्शनका सामर्थ्य होवै तौं नेत्रहीन अंधपुरुषकूं भी ता वाक्इंद्रिय करिकै तिन घटादिक पदार्थोंका दर्शन होणा चाहिये, सो होता नहीं। यातैं ता वाक्इंद्रियकूं तिन घटादिक पदार्थोंके दर्शनका सामर्थ्य नहीं है और जिस चक्षुइंद्रियकूं तिन घटादिक पदार्थोंके दर्शनका सामर्थ्य है तिस चक्षुइंद्रियकूं तिन घटादिक पदार्थोंके कहणेका सामर्थ्य नहीं है, किंतु ता चक्षुइंद्रियतैं भिन्न वाक्इंद्रियकूं हीं तिनोंके कहणेका सामर्थ्य है। सो वाक्इंद्रिय तिन चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं अत्यन्ताभिन्न होणेतैं तिन चक्षुआदिकोंके वृत्तांतकूं कहि सकैंगा नहीं। यातैं यह पुरुष किसी दूसरे पुरुषके प्रति ता वाक्इंद्रिय करिकै किसी भी दृष्टश्रुत अर्थका बोध नहीं करि सकैंगा, ता करिकै सर्वव्यवहारोंका लोप होवैंगा। यातैं प्रत्येक इंद्रिय आत्मा है यह प्रथमपक्ष सम्भवता नहीं और तिन सर्वइंद्रियोंका समुदाय आत्मा है यह द्वितीयपक्ष जो चार्वाक अंगीकार करै सो भी सम्भवता नहीं। काहेतैं ? ता चक्षु आदिक इंद्रियोंके समुदायविषे चक्षुआदिक एकइंद्रियके नाशहूए भी ता इंद्रियघटित सो समुदाय रहेगा नहीं। यातैं ता इंद्रियसमुदायरूप आत्माके नाशहूए सो अन्धपुरुष तथा बधिर-पुरुष मरणकूं हीं प्राप्त होवैंगा। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु ता एक इंद्रियतैं रहित ते अन्धबधिरादिक पुरुष भी जीवतेहूए हीं देखणेविषे आवते हैं। यातैं सो इंद्रियोंका समुदाय भी आत्मा नहीं है। किंवा सो समुदाय प्रत्येक इंद्रियरूप समुदायोंतैं भिन्न है अथवा अभिन्न है? तहां सो चार्वाक जो प्रथम भिन्न पक्ष अंगीकार करै तौं तिन इंद्रियोंविषे आत्मरूपता सिद्ध नहीं होवैंगी, किन्तु तिन इंद्रियोंतैं भिन्न हीं कोई आत्मा समुदायनाम करिकै अंगीकार करणा होवैंगा। यातैं इंद्रिय हीं आत्मा हैं या प्रकारकी ता चार्वाककी प्रतिज्ञा

हानि होवैंगी और सो चार्वाक जो दूसरा अभिन्नपक्ष अंगीकार करै तौं तिस प्रत्येक इंद्रियकूं हीं आत्मता प्राप्त होवैंगी । यातैं ता प्रत्येक इंद्रियकी आत्मरूपताविषे जे पूर्वदोष कथन करे हैं ते सर्वदोष इस पक्षविषे भी प्राप्त होवैंगे । या कारणतैं भी ते इंद्रिय आत्मा नहीं हैं । किंवा हमारा चक्षुइंद्रिय अधिक दृष्टिवाला है, हमारा चक्षुइंद्रिय मंद दृष्टिवाला है इत्यादिक अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है तौं अनुभवतैं भी तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंतैं भिन्न हीं आत्मा सिद्ध होवै है, किंवा ता चार्वाकनैं तिन इंद्रियोंकी आत्मरूपताविषे जो अहंताधर्मके साथि तिन इंद्रियोंके दर्शनादिक धर्मोंका सामानाधिकरण्य कथन कऱ्या था सो सामानाधकरण्यकी अनुभव तौं 'लोहितः स्फटिकः' इस सामानाधिकरण्य अनुभवकी न्यांई भ्रमरूप हीं है । यातैं ता भ्रमरूप अनुभव करिकै तिन इंद्रियोंकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं । किंवा ता चार्वाकनैं इंद्रियोंकी चेतनताविषे जो इंद्रियोंके संवादका प्रतिपादक श्रुति कथन करी थी सा श्रुति तौं तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके अभिमानीदेवताविषयक हीं है । तिन जडइंद्रियविषयक नहीं है ते इंद्रियोंके अभिमानी देवता चेतन हैं । यातैं तिनोंका परस्परसंवाद बनि सकै है । यातैं यह इंद्रिय आत्मवादी चार्वाकका मत भी समीचीन नहीं है इति ॥

प्राणात्मवादी चार्वाकका मत ।

अब प्राणकूं आत्मा मानणेहारे चार्वाकोंके मतके खंडन करणे वास्तै प्रथम तिन प्राणात्मवादी चार्वाकोंके मतका निरूपण करे हैं । तहां ते प्राणात्मवादी चार्वाक ता प्राणविषे आत्म रूपताके सिद्ध करणे वास्तै या प्रकारकी युक्ति कथन करे है । स्वप्नसुषुप्तिविषे तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंके लयहूए भी सो प्राण विद्यमान होवै है । यातैं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थावोंविषे विद्यमान होणेतैं सो प्राण हीं आत्मा है । व्यभिचारी होणेतैं ते इंद्रिय आत्मा नहीं हैं । किंवा इस देहविषे जिसके विद्यमानहूए जीवन व्यवहार होवै है और जिसके अविद्यमानहूए मरणव्यवहार होवै है ताका नाम जीवात्मा है । ऐसा जीवात्माका लक्षण भी इस प्राणविषे हीं घटै है । काहेतैं ? जब पर्यंत इस देहविषे प्राण रहे है तब पर्यंत हीं इस देह विषे जीवन व्यवहार होवै है । और जबी इस देहतैं प्राण निकसि जावै है तबी इस देहविषे मरण व्यवहार होवै है और "जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते" अर्थ यह—( हे श्वेतकेतो ! जब इस शरीरको जीव परित्याग कर देता है तो यह मर जाता है । यह बात निश्चित है कि जीव मरता नहीं है ) इस श्रुतिनैं भी ता प्राणरूप जीवात्मा करिकै परित्याग कऱ्येहूए देहविषे हीं मरण व्यवहार कथन कऱ्या है । या कारणतैं भी यह प्राण हीं आत्मा सिद्ध होवै है । किंवा प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा । अर्थ यह—(जो यह अंतरात्मा है यही आत्मभिन्न इतर सब वस्तुओंसे परमप्रिय है दूसरा प्रिय नहीं हैं ।) इस श्रुतिनैं पुत्र धन स्त्री आदिक सर्वपदार्थोंतैं प्रियतमकूं आत्मा कह्या है सो सर्वतैं प्रियतमता इस प्राणविषे

हीं देखणेमें आवै है। काहेतैं ? जबी कोई तिस प्राणके घातका प्रसंग आइकै प्राप्त होवै तबी यह लोक ता आपणे प्राणकी रक्षाकरणे वासतै धन, पुत्र, स्त्री आदिक सर्वपदार्थोंका परित्याग करि देवै हैं तथा हस्तपादादिक इंद्रियोंका घात कराइकै भी ता प्राणकी रक्षा करे है। या कारणतैं भी सो प्राण हीं आत्मा सिद्ध होवै है। किंवा 'अहं क्षुधापिपासावान्' इस लोकोंके अनुभवतैं ता क्षुधापिपासाधर्मवाले प्राणविषे हीं अहंता धर्म प्रतीत होवै है। और सर्ववादीयोंके मतविषे ता अहंप्रतीतिका विषय आत्मा हीं होवै है या कारणतैं भी सो प्राण हीं आत्मा सिद्ध होवै है। किंवा **अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः**। अर्थ यह -(यह जो अन्नरसमय आत्मा है इससे भिन्न एवम् इसका अन्तरात्मा प्राणमय है) यह श्रुति भी ता प्राणकूं हीं आत्मा कहे है। किंवा वेदविषे यह गाथा कथन करी है। एककालविषे चक्षुआदिकइंद्रिय तथा प्राण आपणे आपणे श्रेष्ठपणे विषे विवाद करतेहूए प्रजापतिके समीप जाते भये। आगेतैं सो प्रजापति तिनोंके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया; तुम सर्व इस देहविषे प्रवेश करिकै एक एक निकसता जावै जिसके निकसणे करिकै यह देह अमंगलरूप होइकै गिर पडे सो तुमारे विषे श्रेष्ठ है। ऐसे प्रजापतिके वचनकूं अंगीकार करिकै ते सर्व इंद्रिय प्राण ता देहविषे प्रवेश करिकै एक एक निकसता भया। तहां चक्षुश्रोत्रादिक इंद्रियोंके निर्गमनहूए भी सो देह अंध बधिरादिरूप करिकै जीवता रह्या। जबी सो प्राण ता देहतैं निकसता भया। तबी सो देह अमंगलरूप होइकै गिडता भया। तिसतैं अनंतर **मातेव पुत्रान् रक्षस्व**। अर्थ यह-(हे प्राण! आप हमारी इस प्रकार रक्षा करें जिस प्रकारकी माता पुत्रोंकी रक्षा किया करती है।) इस श्रुतिनैं जैसे माता पुत्रोंका रक्षण करे है तैसे इंद्रियादिक संघातका रक्षकपणा ता प्राणकूं हीं कथन कऱ्या कथन कऱ्या है और तिस कालविषे सो प्राण तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया है। **मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि**।अर्थ यह-प्राणने शरीर धारणके विषयविषे विवाद करनेवाले इंद्रियगणोंसे कहा किं, तुम मोहकूं मत प्राप्त होवौ। मैं प्राण हीं आपणेकूं पञ्च प्रकारका करिकै इस शरीरकूं धारणकरूं हूं इति। इस श्रुतितैं ता प्राणकूं हीं इस संघातके विधारकपणे करिकै अधिष्ठातापणा प्रतीत होवै है, और संघातका रक्षकपणा तथा अधिष्ठातापणा आत्माविषे हीं सम्भवे है। अन्य किसीविषे सम्भवता नहीं। या कारणतैं भी यह प्राण हीं आत्मा सिद्ध होवै है इति॥

प्राणात्मवादीका खण्डन।

सो यह प्राणात्मवादी चार्वाकका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं ? ता प्राणविषे अनुमानप्रमाण करिकै अनात्मरूपता हीं सिद्ध होवै है। ता अनुमानका यह आकार है। **प्राणः अनात्मा वायुत्वात् बाह्यवायुवत्**। अर्थ यह-सो प्राण अनात्मा होणेयोग्य है वायुरूप होणेतैं। जहां जहां वायुपणा रहे है तहां तहां अनात्मपणा हीं रहे है। जैसे

बाह्यवायुविषे वायुपणा रहे है । यातैं ता बाह्यवायुविषे अनात्मपणा हीं रहे है । तैसे सो वायुपणा अन्तरप्राणविषे भी रहे है । यातैं सो प्राण भी अनात्मा हीं होवैंगा इति । किंवा प्राणोंकूं जो धारण करे है ताका नाम जीव है । इस प्रकारका जीवशब्दका अर्थ व्याकरणकी रीतिसैं सिद्ध होवै है सो या प्रकारका जीवशब्दका अर्थ ता प्राणविषे घटता नहीं । काहेतैं ? सो प्राण जो कदाचित् आपणेकूं आप हीं धारण करैगा तौं तिस एक हीं प्राणविषे ता धारणरूप क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा प्राप्त होवैंगा । सो एक ही वस्तुविषे एक हीं क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा अत्यन्त विरुद्ध है । यातैं ता प्राणतैं भिन्न हीं कोई आत्मा अंगीकार कऱ्या चाहिये । और हमारा श्वास अधिक चलता है, हमारा श्वास थोडा चलता है या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है ता अनुभवतैं भी ता श्वास-रूप प्राणतैं भिन्न हीं आत्मा सिद्ध होवै है किंवा इस प्राणका स्पर्श प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है और जो जो द्रव्य प्रत्यक्ष स्पर्शवाला होवै हैं सो सो द्रव्य सावयव हीं होवै है । जैसे घट-पटादिक द्रव्य प्रत्यक्ष स्पर्शवाले होणेतैं सावयव हीं हैं । तैसे प्रत्यक्षस्पर्शवाला होणेतैं सो प्राण भी सावयव हीं होवैंगा और जो जो द्रव्य सावयव होवै है सो सो द्रव्य उत्पत्ति विना-शवाला हीं होवै है । जैसे ते घटपटादिक द्रव्य सावयव होणेतैं उत्पत्तिविनाशवाले हीं है तैसे सो प्राण भी सावयव होणेतैं उत्पत्तिविनाशवाला हीं होवैंगा और जो जो द्रव्य उत्पत्तिविनाश-वाला होवै है सो सो द्रव्य अनित्य हीं होवै है । जैसे ते घटपटादिक द्रव्य उत्पत्तिविनाश-वाले होणेतैं अनित्य हीं हैं तैसे सो तुमारा प्राणरूप आत्मा भी ता उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवैंगा और ता आश्रयरूप प्राण आत्माके नाशहूए तद्आश्रित पुण्यपाप-कर्मोंका भी अवश्य नाश होवैंगा । यातैं कऱ्येहूए पुण्यपापकर्मोंका सुखदुःखरूप फलके भोगतैं विना हीं नाशरूप कृतनाश दोष प्राप्त होवैंगा तथा न कऱ्येहूए कर्मोंके फलकी प्राप्तिरूप अकृताभ्यागम दोष प्राप्त होवैंगा । या कारणतैं भी सो प्राण आत्मा नहीं है । किंवा ता चार्वाकनैं इस देहका जीवन जो प्राणके अधीन कह्या था, सो भी असंगत है । काहेतैं ? इस देहका जीवन केवल ता प्राणके अधीन नहीं है । किंतु ता प्राणके धारण करणेहारे जीवात्माके हीं अधीन है । या कारणतैं हीं न **प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ** । अर्थ यह–( हे नचिकेत ! केवल प्राण और अपानसे कोई नहीं जी रहा है । जीता है उससे जिसके आश्रित ये दोनों हैं ।) इस काठक श्रुतिविषे लोकोंका जीवन प्राण अपान करिकै नहीं कह्या है, किंतु ता प्राण अपानके धारणकरणेहारे जीवात्मा करिकै हीं सो जीवन कह्या है । किंवा ता प्राणात्मवादीनैं जो प्राण विषे सर्वतैं प्रियतमता कथन करी थी सो भी असंगत है । काहेतैं ? केईक लोक अत्यन्त दुःखीहूए विषादिकोंका भक्षण करिकै इस प्राणका भी परित्याग करि देवै हैं । यातैं यह

जान्या जावै है, तिस प्राणतैं भी अत्यन्तप्रियतम कोई आत्मा है। जिस आत्माके सुखवासतै यह लोक आपणे प्राणका भी परित्याग करि देवै है। किंवा ता प्राणात्मवादीनैं ता प्राणकी आत्मताविषे 'अहं क्षुधापिपासावान्' यह सामानाधिकरण्यका अनुभव कथन कऱ्या था । सो अनुभव तौं ' लोहितः स्फटिकः ' इस अनुभवकी न्यांई भ्रमरूप हीं है । यातैं ता भ्रमरूप अनुभवतैं ता प्राणकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं । किंवा ता प्राणात्मवादीने ता प्राणकी आत्मरूपता विषे जो अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः । यह श्रुति कथन करी थी सा श्रुति तौं ता प्राणात्मवादीके भ्रांतिसिद्ध मतका अनुवाद करती हूई पूर्वपक्षरूप हीं है । यातैं ता श्रुतितैं भी प्राणकी आत्मारूपता सिद्ध होवै नहीं, किंवा ता प्राणात्मवादीनैं ता प्राणकी चेतनताविषे जो इंद्रियोंके साथि ता प्राणका संवाद कथन कऱ्या था सो संवाद भी ता प्राणके अभिमानी देवताविषयक हीं है ता जडप्राण विषयक नहीं है । यातैं ता प्राणसंवाद श्रुतितैं भी ता प्राणकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं । यातैं यह प्राणात्मवादी चार्वाकोंका मत भी अत्यंत असंगत है इति ॥

मन आत्मवादका निरूपण ।

अब मनकूं आत्मा माननेहारे चार्वाकोंके मतका खंडन करणे वासतै प्रथम तिनोंके मतका निरूपण करे हैं । तहां ते मन आत्मवादी चार्वाक ता मनकी आत्मरूपताविषे या प्रकारकी युक्ति कथन करे हैं—स्वप्नअवस्थाविषे चक्षुआदिक इंद्रियोंके उपरामहूए भी ता मन करिकै हीं सर्वव्यवहार सिद्ध होवै हैं । और इस संघातविषे ता मनकूं हीं स्वतंत्रता है । दूसरे इंद्रियादिक सर्व ता मनके हीं अधीन हूए वर्त्तें हैं । या कारणतैं हीं ता मनके समवधानहूए ज्ञानादिकोंकी उत्पत्ति होवै है । और ता मनके असमवधानहूए तिन ज्ञानादिकोंकी उत्पत्ति होती नहीं । अर्थात् तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंका आपणे आपणे रूपादिक विषयोंके साथि संबंधके हूए भी जब पर्यंत ता मनका तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके साथि संबंध नहीं होवै है तब पर्यंत तिन चक्षुआदिक इंद्रियों करिकै चाक्षुषादिक ज्ञानोंकी उत्पत्ति होती नहीं । ता मनके संबंधहूएतैं अनंतर हीं तिन चाक्षुषादिक ज्ञानोंकी उत्पत्ति होवै है। यातैं इस संघातविषे सो मन हीं स्वतंत्र है। किंवा **कामः संकल्पो विचिकित्साश्रद्धाऽश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव** । अर्थ यह—इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य अधैर्य, लज्जा, ज्ञान, भय, यह सब मन हीं है यानी मनका ही धर्म है इस प्रकार यह श्रुति इन सर्व धर्मोंकूं मनका हीं धर्मपणा कथन करे है । और सर्ववादीयोंके मतविषे तिन इच्छादिक धर्मोंवाला आत्मा हीं प्रसिद्ध है । यातैं यह उक्तश्रुति भी तिन इच्छादिकोंविषे मनकी धर्मताकूं कथन करती हूई ता मनविषे हीं आत्मरूपता बोधन करे है । और **मन एवास्यात्मा । अन्योऽन्तरात्मा मनोमयः** । अर्थ यह—( मन ही इसका आत्मा है । इस प्राणमयसे भिन्न इसके भीतर मनोमय आत्मा है जिससे प्राणमय पूर्ण है । ) यह दोनों श्रुतियां तौं साक्षात् हीं ता मनकूं

आत्मा कहे हैं और मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । अर्थ यह—( सायणाचार्यजी महाराजने कहा है कि—मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका मन ही कारण है अतएव मनोमय कोश कहा गया है इसी कारण मनको आत्मा कहा गया है । ) यह स्मृति भी ता मनकूं हीं बंधमोक्षका कारण कहे है । यातैं सो मन ही आत्मा है इति ॥

मन आत्मवादका खण्डन ।

सो यह मन आत्मवादी चार्वाकका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? जो चार्वाकवादी मनकूं हीं आत्मा माने हैं तासैं यह पूछा चाहिये । सो तुमारा मनरूप आत्मा अणुत्वपरिमाणवाला है अथवा देहके तुल्य मध्यम परिमाणवाला है ? तहां सो चार्वाक जो प्रथम अणुत्वपक्ष अंगीकार करे तौं ता चार्वाकके मतविषे ता मनरूप आत्माके ज्ञान, सुख, दुःख आदिक धर्मोंका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा । काहेतैं ? चाक्षुष, त्वाच, रासन, घ्राणज, श्रौत्र, मानस या षट्प्रकारके प्रत्यक्षविषे महत्त्वपरिमाणकूं हीं कारणता होवै है ता महत्त्वपरिमाणतैं विना किसी भी द्रव्यगुणादिकोंका कोई भी प्रत्यक्ष होता नहीं । सा महत्त्वपरिमाण ता मनविषे है नहीं । यातैं ता मनरूप आत्माके तिन ज्ञानसुखादिक धर्मोंका किसीकूं भी प्रत्यक्ष नहीं होवैगा और ' अहं जानामि अहं सुखी अहंदुःखी ' इस प्रकारतैं तिन ज्ञानसुखादिक धर्मोंका सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्ष होवै है । किंवा सो चार्वाक ता मनरूप आत्माकूं जो अणुत्व परिमाणवाला मानैंगा तौं ता चार्वाकके मतविषे सर्वशरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव नहीं होवैगा । काहेतैं ? सो मनरूप आत्मा अणु है । यातैं शरीरके किसी एकदेशविषे हीं रहैगा । संपूर्ण शरीराविषे रहैगा नहीं । और ग्रीष्यऋतुके सूर्यकी आतप करिकै तप्तहूए पुरुषकूं पादतै लैके मस्तकपर्यंत संपूर्ण शरीरविषे दुःखका अनुभव होवै है । और तिसी पुरुषकूं शीतल गंगाजलविषे निमग्नता करिकै ता संपूर्णशरीरविषे सुखका अनुभव होवैं है सो संपूर्ण शरीरव्यापी सुखदुःखका अनुभव ता अणुआत्मपक्षविषे नहीं संभवैगा । किंवा सो मनरूप आत्मा देहके तुल्य मध्यम परिमाणवाला है यह द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करे सो भी संभवता नहीं । काहैतैं इस द्वितीयपक्षविषे यद्यपि ते प्रथमपक्ष उक्त दोनों दूषण तौं नहीं प्राप्त होवै हैं तथापि इस द्वितीयपक्षविषे एक हीं कालविषे चाक्षुषादिक सर्वज्ञानोंकी उत्पत्ति रूप दूषण प्राप्त होवै है । काहेतैं ? ता मध्यमपरिमाणवाले मनका एक हीं कालविषे चक्षुआदिक सर्वइंद्रियोंके साथि संबंध विद्यमान है । और तिस कालविषे तिन चक्षुआदिक सर्वइंद्रियोंका आपणे आपणे रूपादिक विषयोंके साथि संबंध भी विद्यमान है । यातैं ता एक हीं कालविषे चाक्षुषादिक सर्वज्ञानोंकी उत्पत्ति भी अवश्य होवैगी । सो होती नहीं । किंतु भिन्न भिन्न कालविषे हीं तिन चक्षुषादिक ज्ञानोंकी उत्पत्ति होवै है । यह वार्त्ता आगे मनके निरूपणविषे कथन करैंगे । यातैं सो मनरूप आत्मा मध्यमपरिमाणवाला संभवता नहीं । किंवा जो जो द्रव्य मध्यमपरिमाणवाला होवै है सो सो

द्रव्य अनित्य हीं होवे है । जैसे घटपटादिक द्रव्य मध्यमपरिमाणवाले होणेतैं अनित्य हीं हैं तैसे सो मनरूप आत्मा भी मध्यमपरिमाणवाला होणेतैं अनित्य हीं होवैगा, ता मनरूप आत्माके अनित्यहूए कृतनाश, अकृताभ्यागम यह दोनों दोष प्राप्त होवैंगे । यातैं सो मन आत्मा नहीं है, किंवा ता चार्वाकनैं इस संघातविषे जो मनकूं स्वतंत्र कह्या था, सो भी असंगत है । काहेतैं ? बाह्य विषयोंविषे प्रवृत्त जो मन है ता बहिर्मुख मनका वैराग्य अभ्यास आदिक उपायों करिकै निरोध शास्त्रविषे कथन कऱ्या है । यातैं यह जान्या जावै है, तिन वैराग्य अभ्यासादिक उपायों करिकै ता मनके निरोध करणेहारा कोई भिन्न हीं आत्मा है । किंवा हमारा मन अबी स्थिर नहीं है, हमारा मन अबी स्थिर है, या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है ता लोकोंके अनुभवतैं भी ता मनतैं भिन्न हीं आत्मा सिद्ध होवै है । किंवा **मनसैवानुद्रष्टव्यम्** । अर्थ यह—(यह आत्मा मनद्वारा ही प्राप्त होता देखा जा सकता है । ) इस श्रुतिनैं ता मनकूं आत्मसाक्षात्कारका करण कह्या है और जो पदार्थ जिस क्रियाका करण होवै है सो पदार्थ तिस क्रियाका कर्म होता नहीं । जैसे दर्शनरूप क्रियाका करण रूप जो चक्षुइंद्रिय है सो चक्षुइंद्रिय ता दर्शनरूप क्रियाका कर्मरूप होता नहीं । किंतु ता चक्षुइंद्रियतैं भिन्न घटादिक पदार्थ हीं ता दर्शनरूप क्रियाके कर्मरूप होवै हैं । तैसे ता श्रुति सिद्धदर्शनरूपक्रियाका कर्मरूप सो आत्मा भी ता करणरूप मनतैं भिन्न हीं सिद्ध होवै है । किंवा ता चार्वाकनैं ता मनकी आत्मरूपताविषे जो 'कामः संकल्पो' इत्यादिक श्रुति कथन करीथी सा श्रुति भी तिन कामादिकोंविषे मनकी धर्मताकूं कथन करती नहीं, किंतु सा श्रुति तिन कामादिक धर्मोंविषे मनोजन्यताकूं कथन करे है सो तिन कामादिकोंविषे मनकूं निमित्तकारणता हम भी अंगीकार करते हैं । यातैं ता श्रुति करिकै ता मनकूं तिन इच्छादिक धर्मोंकी उपादानकारणता सिद्ध होवै नहीं । यातैं यह मन आत्मवादी चार्वाकका मत भी समीचीन नहीं है इति । यद्यपि वेदकी प्रमाणताकूं नहीं अंगीकार करणेहारे चार्वाकादिक नास्तिकोंके प्रति श्रुतिप्रमाणका विरोध कहणा उचित नहीं है तथापि जैसे ते नास्तिक ता वेदरूप श्रुतिकूं अप्रमाण मानतेहूए भी आपणे मतविषे आस्तिकपुरुषोंकी श्रद्धा करावणे वासतै ता श्रुतिप्रमाणकूं कथन करे हैं । तैसे तिन आस्तिक पुरुषोंकूं तिन नास्तिककोंके मत विषे अश्रद्धा करावणे वासतै तिन नास्तिकोंके प्रति श्रुतिप्रमाणका विरोध कहणा भी उचित है । इति॥

### पुत्रात्मवाद निरूपण ।

और ता उक्तदेहात्मवादी चार्वाकतैं भी अत्यंतबहिर्मुख केईक पामरजन तौ पुत्रकूं हीं आत्मा माने हैं । ताके विषे यह युक्ति कहे हैं—'पुत्रे पुष्टे अहमेव पुष्टः । पुत्रे नष्टे अहमेव नष्टः' अर्थ यह—पुत्रके पुष्टहूए मैं पुष्टहूआ हूं तथा पुत्रके नष्टहूए मैं नष्टहूआ हूं । या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है ता अनुभवतैं पुत्रविषे हीं अहंप्रतीतिकी विषयता प्रतीत

होवै है और आत्मा वै जायते पुत्रः । अर्थ यह—( आत्मा ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है ) यह श्रुति भी पुत्रकूं हीं आत्मा कहे है । यातैं पुत्र हीं आत्मा है इति ॥

पुत्रात्मवादीका खण्डन ।

सो यह पुत्रात्मवादीका मत अत्यन्त असंगत है । काहेतैं ? जो पुत्र हीं आत्मा होवै तौं ता पुत्रतैं रहित ब्रह्मचारी आदिक पुरुष आत्मातैं रहित होणे चाहिये और ता पुत्ररूप आत्माके मृत्युहूएतैं अनन्तर पिताका जीवन नहीं होणा चाहिये । सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं । यातैं सो पुत्र आत्मा नहीं है । किंवा ता पुत्रात्मवादीनैं ता पुत्रकी आत्मताविषे जो 'पुत्रे पुष्टे अहमेव पुष्टः' इत्यादिक लोकोंका अनुभव कथन कऱ्या था सो अनुभव तौं 'लोहितः स्फटिकः' इस अनुभवकी न्यांई भ्रांतिरूप हीं है । यातैं ता भ्रांतिरूप अनुभवतैं ता पुत्रविषे आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं । किंवा ता पुत्रात्मवादीनैं ता पुत्रकी आत्मरूपताविषे जो आत्मा वै जायते पुत्रः । यह श्रुति प्रमाण कथन करी थी सा श्रुति तौं तिन पुत्रात्मवादी भ्रांतपुरुषोंके मतका अनुवाद करती हूई पूर्वपक्षरूप है ही । यातैं ता श्रुतितैं भी ता पुत्रकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं । किंवा अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः । अविनाशी वा अरेऽयमात्मा । यह श्रुति ता आत्माकूं जन्ममरणतैं रहित कहे है । और ता पुत्रका जन्ममरण तौं प्रसिद्ध प्रतीत होवै है और मेरा पुत्र बुद्धिमान् है, मेरा पुत्र मूर्ख है या प्रकारके अनुभवतैं भी ता पुत्रतैं भिन्न हीं पिताका आत्मा सिद्ध होवै है । यातैं श्रुति, युक्ति, अनुभव इन तीनोंतैं विरुद्ध होणेतैं सो पुत्रात्मवादी पामरोंका मत अत्यंत असंगत है इति । इतनें ग्रंथ करिकै वेदकूं न मानणेहारे नास्तिक पुरुषोंके मतोंका निरूपण कऱ्या ।

प्राणात्मवादी हिरण्यगर्भोपासकोंका खण्डन ।

अब वेदकूं मानणेहारे आस्तिक पुरुषोंके मतोंका निरूपण करे हैं—तहां केईक हिरण्यगर्भके उपासक पुरुष तौं प्राणकूं हीं आत्मा माने हैं तिस प्राणकी आत्मरूपता विषे जे युक्तियां कथन करे हैं ते युक्तियां तौं पूर्व प्राणात्मवादी चार्वाकके मत निरूपणविषे कथन करि आये हैं । ते सर्व युक्तियां इस प्राणात्मवादीके मतविषे भी जानि लेणीयां । और जिन युक्तियोंसैं ता पूर्वउक्त प्राणात्मवादका खंडन कऱ्या था । तिन युक्तियोंसैं इस प्राणात्मवादका भी खंडन जानि लेणा । यातैं यह प्राणात्मवादीका मत भी समीचीन नहीं है इति ॥

विज्ञानात्मवादी हिरण्यगर्भोपासक ।

और केईक हिरण्यगर्भके उपासक पुरुषतौ विज्ञानकूं हीं आत्मा माने हैं । यद्यपि विज्ञानात्मवादीका मत पूर्व प्रतिपादन करि आये हैं तथापि सो पूर्वउक्त विज्ञानवादी योगाचार क्षणिकविज्ञानकूं हीं आत्मा माने हैं । और यह हिरण्यगर्भके उपासक तौं बुद्धिनामा स्थायी

विज्ञानकूं हीं आत्मा माने हैं । यातैं ता पूर्वउक्त विज्ञानात्मवादतैं यह विज्ञानात्मवाद विलक्षण है । तहां ते विज्ञानात्मवादी उपासक पुरुष ता बुद्धिरूप विज्ञानकी आत्मरूपताविषे या प्रकारकी युक्ति कथन करे हैं। **विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च** । इस श्रुतिनैं ता बुद्धिरूप विज्ञानकूं हीं यज्ञादिक वैदिककर्मोंका कर्त्तापणा तथा कृषिवाणिज्यादिक लौकिक कर्त्तापणा कथन कर्‍या है । तिसतैं अनंतर **विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्वान् कामान् समश्नुते** ।अर्थ यह–( विज्ञान (बुद्धि) यज्ञ करता है, यही कर्म करता है । सब देव ब्रह्मज्येष्ठ ' प्रकृतिसे बडे ' विज्ञानकी ही उपासना करते हैं । जो विज्ञानको ब्रह्म जानता है एवम् उससे प्रमाद नहीं करता वह शरीरमें रहता हुआ ही पूर्व पापोंका नाश और उत्तरावोंका असंश्लेषरूप पापत्याग करके सब कामोंको प्राप्त होजाता है । यहां विज्ञानात्मवादियोंका तात्पर्य्य विज्ञानशब्दका बुद्धिसे है । तथा शाङ्कर सिद्धान्तमें विज्ञानका तात्पर्य्य बुद्धीमयकोशसे है । एवम् श्री सम्प्रदायका तात्पर्य जीवसे है ) इस श्रुतिनैं ता विज्ञानके ज्ञानका सर्वपापोंकी निवृत्तिरूप तथा सर्वकामोंकी प्राप्तिरूप फल कथन कर्‍या है । सो दोनों प्रकारका फल दूसरी श्रुतिस्मृतियोंविषे आत्मज्ञानका हीं फलरूप करिके प्रसिद्ध है। यातैं ता उक्तश्रुतितैं सो बुद्धिरूप विज्ञान हीं आत्मा सिद्ध होवै है । किंवा इस बुद्धिरूप विज्ञानकूं पूर्वउक्त मनकी तुल्यता नहीं है। काहेतैं ? ता मनकूं तौं **मनसैवानुद्रष्टव्यम्** । इत्यादिक श्रुति वचनोंतैं करणरूपता हीं सिद्ध है । और इस बुद्धिरूप विज्ञानकूं तौं–**विज्ञानं यज्ञं तनुते** । इस उक्त श्रुतितैं सर्ववैदिकलौकिक कर्मोका कर्त्तापणा हीं सिद्ध होवै है और सर्ववादीयोंके मतविषे कर्त्ता आत्मा हीं होवै है । और जो आत्मा कर्मका कर्त्ता होवै है सोई हीं आत्मा ता कर्मके फलका भोक्ता होवै है । या कारणतैं हीं **शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वात् तस्मात् स्वयं प्रयोगे स्यात्** (पूर्व मी० ३–७–१८।) अर्थ यह–प्रयोक्ताको ही शास्त्रका फल प्राप्त होता है क्यों कि किसीके द्वारा करानेपर भी असली कर्ता वही है इस कारण प्रयोगमें स्वयं रहे । इस सूत्रविषे जैमिनि ऋषिनैं यज्ञादिक कर्मोंके करने करणेहार जीवात्माकूं हीं स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति कथन करी है । किंवा **अन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः** । यह श्रुति स्पष्ट हीं ता बुद्धिरूप विज्ञानकी आत्मताकूं कथन करे है । यातैं सो बुद्धिरूप विज्ञान हीं आत्मा है इति ॥

### विज्ञानात्मवादीके मतका खण्डन ।

सो यह विज्ञानात्मवादीका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? ता विज्ञानात्मवादीसैं यह पूछा चाहिये–जैसे हम नैयायिक ता बुद्धिकूं ज्ञानगुणरूप माने हैं तैसे तुम भी ता बुद्धिरूप विज्ञानकूं गुणरूप मानते हो अथवा ता बुद्धिकूं द्रव्यरूप मानते हो ? तहां जो प्रथम गुणपक्ष अंगीकार करो सो संभवता नहीं । काहेतैं ? गुणविषे गुणकी आश्रयता तथा क्रियाकी

आश्रयता होती नहीं, किंतु द्रव्यविषे हीं ता गुणक्रियाकी आश्रयता होवै है और ता बुद्धिरूपविज्ञान विषे तौं श्रुतिनैं गुणकी तथा क्रियाकी आश्रयता कथन करी है । तहां **बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव** । अर्थ यह—(बुद्धिके गुणद्वारा तथा आत्माके गुणद्वारा ) इस श्रुतिनैं तौं ता बुद्धिविषे गुणकी आश्रयता कथन करी है । और **बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम्** । अर्थ यह—( जब पांचों ज्ञानेन्द्रिय मनके साथ रुक जायँ तथा बुद्धि भी उसीमें अचल हो जाय उसे परमगति कहते हैं । ) इस श्रुतिनें ता बुद्धिविषे कथनरूप क्रियाकी आश्रयता कथन करी है, और गुणका आश्रय तथा क्रियाका आश्रय द्रव्य हीं होवै है गुणादिक पदार्थ होवैं नहीं । यातैं सा बुद्धि द्रव्यरूप है यह दूसरा पक्ष हीं अंगीकार करणा होवैंगा । सो इस दूसरे पक्षविषे सा द्रव्यरूप बुद्धि पूर्व उक्त मनतैं पृथक् सिद्ध नहीं होवैंगी । किंतु ता मनकूं हीं बुद्धिरूप मानणा होवैंगा । और **यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्** ।अर्थ यह—[ यही हृदय मन है ] यह श्रुति भी ता हृदयनामा बुद्धिका मनके साथि अभेद हीं कथन करे है । यातैं सो बुद्धिरूप द्रव्य मनरूप हीं सिद्ध होवै है । ता मनतैं पृथक् सिद्ध होवै नहीं । यातैं पूर्व ता मन आत्मवादी चार्वाकके मतविषे ता मनकी आत्मरूपता विषे जे दूषण कथन करि आये हैं ते सर्वदूषण इस विज्ञानात्मवादीके मतविषे भी अवश्य प्राप्त होवैंगे। यातैं ता बुद्धिरूप विज्ञानविषे आत्मरूपता संभवती नहीं, किंवा ता विज्ञानात्मवादीनैं ता बुद्धिविषे जो करणत्वका अभावरूप मनतैं विशेषता कथन करी थी सो भी असंगत है । काहेतें ? जैसे **मनसैवानुद्रष्टव्यम्** । यह श्रुति ता मनकूं आत्मज्ञानविषे करणरूपता कथन करे है । तैसे **दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या** । अर्थ यह—( एकाग्रबुद्धिद्वारा दीखता है ) यह श्रुति ता बुद्धिकूं भी आत्मज्ञानविषे करणरूपता हीं कथन करे है । या कारणतैं भी सा बुद्धि मनके तुल्य हीं है । और **विज्ञानं यज्ञं तनुते** यह उक्त श्रुति तौं ता विज्ञानशब्द करिकै ता बुद्धितैं भिन्न ज्ञानादिक गुणोंवाले जीवात्माकूं हीं तिन सर्वकर्मोंका कर्त्तारूप करिकै कथन करे हैं । यातैं ता श्रुतितैं भी ता बुद्धिरूप विज्ञानकूं आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं, किंवा ता विज्ञानात्मवादीनैं ता बुद्धिरूप विज्ञानकी आत्मरूपताविषे जो **अन्योऽन्तरात्मा विज्ञानमयः** । यह श्रुति कथन करी थी सा श्रुति तौं ता विज्ञानात्मवादीके भ्रांति सिद्ध मतका अनुवाद करती हूई पूर्वपक्षरूप हीं है । या कारणतैं हीं **तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तरात्मा आनन्दमयः** । यह श्रुति ता बुद्धिरूप विज्ञानतैं आत्मा भिन्न है ऐसा कथन करे है । यातैं ता उक्तश्रुतितैं ता बुद्धिरूप विज्ञानविषे आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं । किंवा **आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इंद्रियाणि हयानाहुः ।विषयांस्तेषु गोचरान्॥** इस काठक श्रुतिविषे शरीरकूं रथरूप कह्या है और जीवात्माकूं ता रथविषे बैठणेहारा रथी कह्या है और ता विज्ञानरूप

बुद्धिकूं ता रथके हाकणेहारा सारथी कह्या है । और चक्षुआदिक इंद्रियोंकूं अश्व कह्या है । और मनकूं तिन अश्वोंके साथि बांधी हूई सारथी पुरुषके हस्तविषे स्थित रज्जुरूप कह्या है । और रूपादिक विषयोंकूं तिन इंद्रियरूप अश्वोंके चलनेका भूमिरूप कह्या है । इस श्रुतितैं भी ता बुद्धिरूप विज्ञानतैं सो आत्मा भिन्न हीं सिद्ध होवै है । यातैं ता मन आत्मवादीके मतकी न्यांई यह बुद्धिरूप विज्ञान आत्मवादीका मत भी समीचीन नहीं है इति ॥

मीमांसक भट्टपादका मत वर्णन ।

अब मीमांसक भट्टपादका मत वर्णन करे हैं । तहां सो भट्टपाद देह इंद्रिय, प्राण मन बुद्धि इत्यादिक सर्वोंतैं आत्माकूं भिन्न माने है तथा नित्य माने है । परंतु सो भट्टपाद ता आत्माकूं चेतनरूप तथा जडरूप माने है ता आत्माकी चित्‌जडरूपताविषे सो भट्टपाद यह युक्ति कथन करे है । सुषुप्तितैं जाग्रत् होइके यह पुरुष ऐसा कहे है—मैं जडरूप होइके सोता भया । इस प्रकारक जाग्रतअवस्थाके स्मरणतैं यह जान्या जावै है—सो आत्मा जडरूप है और जिस जिस वस्तुविषयक जो जो स्मरणज्ञान होवै है सो सो स्मरणज्ञान तिस तिस वस्तुविषयक पूर्वअनुभव करिकै जन्य हीं होवै है । पूर्व अनुभवतैं विना सो स्मरणज्ञान होता नहीं या प्रकारका नियम सर्वत्र प्रसिद्ध है । यातैं ता जाग्रत्के स्मरणज्ञानतैं ता सुषुप्तिविषे ता आत्माके जडस्वरूप विषयक अनुभव अवश्य मानणा होवैंगा । तहां ता सुषुप्तिविषे ता अनुभवज्ञानके हेतु दूसरे इंद्रियादिक साधन तौं हैं नहीं, जिस करिकै सो अनुभव उत्पन्न होवै । परिशेषतैं सो आत्मस्वरूपज्ञान हीं ता जडस्वरूपका अनुभव मानणा होवैंगा अर्थात् ता सुषुप्तिविषे सो आत्माका चेतनरूप हीं ता आत्माके जडरूपकूं प्रकाश करे है । यातैं जैसे खद्योत जन्तु प्रकाशरूप तथा अप्रकाशरूप दोनूं हैं तैसे सो आत्मा भी प्रकाशरूप तथा अप्रकाशरूप दोनूं है तहां ज्ञानरूप होणेतैं, सो आत्मा प्रकाशरूप है और जडरूप होणेतैं सो आत्मा अप्रकाशरूप है । किंवा सर्ववादीयोंनैं अहंप्रत्ययका विषय आत्मा हीं मान्या है और ता आत्माविषे अहंप्रत्ययजन्य ज्ञातता धर्मकी जो आश्रयता है यह हीं ता आत्माविषे अहंप्रत्ययकी विषयता है ऐसी अहंप्रत्ययकी विषयता ता आत्माके चेतन अंशविषे सम्भवती नहीं । काहेतैं ? कर्मकर्तृभावके विरोधतैं ता चेतनअंशका आपणे करिकै हीं आपणा प्रकाश तौं सम्भवता नहीं और दूसरे चैतन्य करिकै जो ता चेतनअंशका प्रकाश मानिये तौं घटादिकोंकी न्यांई ता चेतन अंशकूं भी अचेतनता हीं प्राप्त होवैंगी । या कारणतैं ज्ञानमात्रकूं हीं अतिइंद्रिय मान्या चाहिये । ऐसे अतिइंद्रियज्ञान स्वरूपचेतन अंशविषे ता अहंप्रत्ययकी विषयता सम्भवती नहीं यातैं ता अहंप्रत्ययकी विषयताके निर्वाह करणे वासतै ता आत्माविषे कोई जड अंश भी अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये । जिस जड अंशकूं विषय करता हूआ सो अहंप्रत्यय आत्मविषयक सिद्ध होवै । या प्रकारकी युक्तितैं भी सो आत्मा चित्-

जडरूप हीं सिद्ध होवै है । किंवा केवल उक्तयुक्तितैं हीं ता आत्माकी चित्‌जडरूपता सिद्ध नहीं है, किंतु श्रुतिप्रमाणतैं भी सा चित्‌जडरूपता हीं सिद्ध होवै है । तहां—**मनसैवानुद्रष्टव्यम्** । यह श्रुति—तौं ता आत्माविषे मनोजन्यज्ञानकी विषयताकूं कथन करे है । और **एतदप्रमेयं ध्रुवम्** । अर्थ यह—(यह ब्रह्म प्रमाणका अविषय तथा नित्य है ।) यह श्रुति तौं 'अप्रमेयम्' इस पद करिकै ता आत्माविषे ता ज्ञानकी विषयताका निषेध करे है । ते परस्पर-विरुद्ध अर्थकूं कथन करणेहारे दोनों श्रुतिवचन तबी प्रमाणभावकूं प्राप्त होवैंगे जबी ता आत्माकूं चेतनरूप तथा जडरूप अंगीकार करिये । तहां प्रथम श्रुति तौं ता आत्माके जड अंशविषे ता ज्ञानकी विषयताकूं कथन करे है और द्वितीयश्रुति तौं ता आत्माके चेतन अंशविषे ता ज्ञानकी विषयताका निषेध करे है । इस प्रकार ता आत्माकूं चित्‌जडरूप मानणे-विषे तिन दोनों श्रुतियोंकी प्रमाणता सिद्ध होवै है और ता आत्माकूं जो केवल चेतनरूप हीं मानिये तौं ता चेतनविषे ज्ञानकी विषयताका असम्भव होणेतैं सा प्रथमश्रुति अप्रमाणरूप होवैंगी और ता आत्माकूं जो केवल जडरूप हीं मानिये तौं ता जडविषे अप्रमेयताके असम्भवतैं सा द्वितीयश्रुति अप्रमाणरूप होवैंगी । यातैं तिन दोनों श्रुतियोंकी प्रमाणता वासतै ता आत्माकूं चित्‌जडरूप हीं मान्या चाहिये इति ।

भट्टपादके मतका खण्डन ।

सो यह भट्टपादका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं? लोकविषे एक हीं वस्तुकूं परस्पर विरुद्ध उभयरूपता कहां भी देखणेमें आवती नहीं । जो कदाचित् एक हीं वस्तुकूं परस्परविरुद्ध उभय रूपता होती होवै तौं एक हीं वस्तुकूं परस्पर विरुद्ध तेज, तिमिर उभयरूपता होणी चाहिये सो होती नहीं । तैसे एक हीं आत्माकूं परस्परविरुद्ध चित्‌जड उभयरूपता संभवती नहीं । यातैं एक हीं शरीरविषे एक चेतनरूप आत्मा दूसरा जडरूप आत्मा यह दो आत्मा अंगीकार करणे होवैंगे सो अत्यन्त विरुद्ध है, किंवा एक हीं आत्माविषे चित्, जड इन दोनों अंशोंकूं अंगी कार करणेहारा जो भट्टपाद है तासैं यह पूछा चाहिये—ते चित् जड दोनों अंश ता अंशी आत्मातैं भिन्न हैं अथवा अभिन्न हैं ? तहां प्रथम भिन्नपक्ष जो अंगीकार करौ तौं ता चित्‌जड अंशतैं भिन्न हूआ सो आत्मा जित् जड स्वरूप सिद्ध नहीं होवैंगा । यातैं आत्मा चित् जड स्वरूप है, यह तुमारी प्रतिज्ञा हानि होवैंगी तथा आत्मातैं भिन्न ता जड अंशविषे अहंप्रत्ययकी विषयताके हूए भी ता आत्माविषे अहंप्रत्ययकी विषयता सिद्ध नहीं होवैंगी और सो भट्ट-पाद जो द्वितीय अभिन्नपक्ष अंगीकार करे तौं एक हीं आत्मातैं अभिन्नहूए ते चित्‌जड दोनों अंश—तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वनियमात् । इस पूर्वउक्त न्यायतैं परस्पर भी अभिन्न हीं होवैंगे, यातैं ता जड अंशकूं विषय करता हूआ सो चित् अंश ता जड अंशतैं अभिन्न आपणेकूं भी अवश्य विषय करैगा तथा आपणेकूं अविषय करता हूआ सो चित् अंश आपणेतैं अभिन्न

ता जड अंशकूं भी नहीं विषय करैगा। यातैं सो आत्माका चित् अंश ता आत्माके जड अंशकूं विषय करे है। यह भट्टपादका कहणा असंगत होवैगा, किंवा—मनसैवानुद्रष्टव्यम्। यह श्रुति तौं ता आत्माविषे मनोजन्य ज्ञानकी विषयताकूं कथन करे है और अप्रमेयम्। यह श्रुति तौं ता आत्माविषे चक्षुआदिक बाह्य इंद्रियजन्य ज्ञानकी विषयताका निषेध करे है। या प्रकारतैं तिन दोनों श्रुतियोंकी प्रमाणता संभवै है, यातैं तिन दोनों श्रुतियोंकी प्रमाणता वासतै ता आत्माविषे चित्‌जडरूपता अंगीकार करणी अत्यन्त विरुद्ध है। यातैं यह भट्टपादका मत भी समीचीन नहीं है इति॥

प्रभाकरका मत वर्णन।

अब पूर्वमीमांसाके एकदेशी प्रभाकरका मत निरूपण करे हैं। तहां देह, इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इन सर्वोंतैं सो आत्मा भिन्न है तथा नित्य है तथा विभु है, परन्तु सो आत्मा स्वरूपतैं तौं जड हीं है जबी ता आत्माके साथि मनका संयोग होवै है तबी ता आत्माविषे ज्ञानगुण उत्पन्न होवै है ता ज्ञानगुण करिकै विशिष्ट हूआ सो आत्मा चेतन कह्या जावै है। तहां सुषुप्तिअवस्थाविषे पुरीततिविषे प्रविष्टहूए मनका ता आत्माके साथि ज्ञानादिकोंका हेतुभूत संयोग होता नहीं यातैं ता सुषुप्तिअवस्थाविषे सर्वज्ञानोंतैं रहित हूआ सो आत्मा आपणे जडस्वरूपतैं स्थित होवै है और जाग्रत्‌स्वप्नअवस्थाविषे ता मनके संयोगहूए सो आत्मा चाक्षुषादिक ज्ञानवाला हूआ चेतन रूप होइकै स्थित होवै है। या कारणतैं हीं सुषुप्तितैं उठ्या हूआ पुरुष (मैं किञ्चित्‌मात्र भी नहीं जानताभया) या प्रकारका वचन कहे है। ता लोकोंके वचनतैं भी ता सुषुप्तिविषे सर्व ज्ञानोंका अभाव सिद्ध होवै है। ऐसे स्वरूपतैं जड आत्माविषे जैसे मनके संयोगतैं ज्ञानगुण उत्पन्न होवै है। तैसे सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार यह गुण भी ता मनके संयोगतैं हीं उत्पन्न होवै हैं इति। सो यह प्रभाकरका मत पूर्वउक्त न्यायशास्त्रमतके तुल्य हीं है। यातैं सो प्रभाकरका मत आत्मनिर्णयविषे न्यायमतका अविरोधी होणेतैं इस न्याय ग्रंथविषे खण्डन करणेयोग्य नहीं है इति॥

नारदपञ्चरात्रकामत।

अब इदानींकालविषे वर्त्तमान वैष्णवसंप्रदायोंका मूलभूत जो नारदपंचरात्रनामा ग्रंथ है। ताके मतका निरूपण करे हैं। तहां ते नारदपंचरात्रवाले यह कहे हैं—प्रथम वासुदेवतैं संकर्षण उत्पन्न होवै है, ता संकर्षणतैं प्रद्युम्न उत्पन्न होवै है, ता प्रद्युम्नतैं अनिरुद्ध उत्पन्न होवै हैं। ईहां परमेश्वरकूं वासुदेव कहे हैं। और जीवकूं संकर्षण कहे है और मनकूं प्रद्युम्न कहे हैं। और अहंकारकूं अनिरुद्ध कहे हैं। सो संकर्षणनामा जीवात्मा अणुत्वपरिमाणवाला हीं होवै है। काहेतैं? श्रुतिनैं मरणकालविषे इस जीवात्माका संघाततैं उत्क्रमण तथा लोकांतरविषे गमन कथन कऱ्या है। सो उत्क्रमण तथा गमन अणु आत्माविषे हीं संभवै है विभु आत्माविषे

संभवता नहीं । यातैं ता जीवात्माकूं अणुत्वपरिमाणवाला हीं मान्या चाहिये । किं वा केवल श्रुतिउक्त उत्क्रमणगमनकी अन्यथा अनुपपत्तितैं हीं ता आत्माविषे अणुपणा सिद्ध नहीं है। किंतु श्रुतिस्मृति साक्षात् हीं ता जीवात्माकूं अणु कहे है । तहां श्रुति—एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः । बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीवः स विज्ञेयः । बालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्येऽणोरणीयान् । अर्थ यह—(यह अणु आत्मा चित्तसे जाना जाता है । बालकी नौंकके सौभागकरके फिर एक भागको सौभाग किया जाय वह जितना सूक्ष्म होगा उतना ही सूक्ष्म जीवात्माको जानो । एसा बालका अग्रभागका अंश जितना सूक्ष्म जीव हृदयके मध्यमें रहता है वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर है । ) इत्यादिक श्रुतियोंविषे ता जीवात्माकूं अणुत्वपरिमाणवाला हीं कह्या है । और गीताविषे श्रीकृष्ण भगवान्नैं भी नित्यः सर्वगतस्थाणुः । इस वचन करिकै ता जीवात्माकूं अणु हीं कह्या है । तहां सर्वगतस्थश्चासौ अणुश्च । अर्थ यह—जो सर्वगत पदार्थोंमें रहनेवाला तथा अणु है या । प्रकारके विग्रह करणेतैं ता गीतावचन करिकै ता आत्माका अणुत्व हीं सिद्ध होवै है । सो अणुजीव ता ईश्वरका अंशरूप हीं है । या कारणतैं हीं गीताविषे श्रीभगवान्नैं "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।" अर्थ यह—(जीवलोकमें जो जीव है वह मेरा हीं सनातन अंश है ।) इस वचन करिकै ता जीवात्माकूं आपणा अंशरूप कथन कऱ्या है । ऐसा ईश्वरका अंशरूप सो अणुजीव जबी आपणे अंशीरूप ईश्वरकूं यथावत् जाणिकै शरीर मन वाणी करिकै श्रद्धाभक्तिपूर्वक ता ईश्वरका पूजन आराधन करे हैं । तबी ता परमेश्वरके प्रसादतैं सो जीवात्मा ता परमेश्वरके समानरूपताकूं अथवा समीपताकूं प्राप्त होवै हैं । यह हीं इस जीवात्माकी मुक्ति है और सो अणुआत्मा इस शरीरके किसी एकदेशविषे स्थित हूआ भी सर्वशरीरव्यापी आपणे ज्ञानगुण करिकै ता सर्वशरीरविषे शीतउष्णतादिकोंकूं अनुभव करे है । जैसे शरीरके किसी एकदेशविषे स्थित हूआ भी उत्तमचन्दनका बिंदु; सर्वअंगोंविषे शीतलताकूं उत्पन्न करे है। जिस कारणतैं वस्तुकी शक्ति अचिंत्य होवै है। और जैसे कस्तूरी आदिकोंका गन्धगुण वायुकरिकै ता कस्तूरीरूप द्रव्यतैं अन्यदेशविषे भी पसर जावै है जैसे ता अणुआत्माका सो ज्ञानगुण भी ता सम्पूर्णशरीरविषे पसर जावै है इति ॥

### पांचरात्रके अणुवादादिका खण्डन ।

सो यह नारदपंचरात्रका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? जो वादी आत्माकूं अणु माने है । ता वादीके मतविषे शीतलगंगाजलविषे निमग्न पुरुषकूं पादतैं लेके मस्तकपर्यंत सर्व-अंगोंविषे शीतस्पर्शका अनुभव नहीं होणा चाहिये । तथा ता शीतस्पर्शजन्य सुखका अथवा दुःखका अनुभव नहीं होणा चाहिये । काहेतैं ? ता अणु आत्माका एक हीं कालविषे तिन सर्वअवयवोंके साथि सम्बन्ध सम्भवता नहीं । यद्यपि ता अणुआत्माका एक अवयवके

संयोगतैं अनन्तर दूसरे अवयवके साथि संयोग, तिसतैं अनन्तर तीसरे अवयवके साथि संयोग इस रीतिसैं तिन सर्व अवयवोंके साथि क्रमतैं संयोग सम्भवै है तथापि क्रमतैं उत्पन्नहूए तीन अनेक संयोगोंकूं युगपत् एक ज्ञानकी जनकता सम्भवती नहीं । किंवा ता अणुआत्माका इस देहके अणुप्रदेशविषे हीं संयोग मानणा होवैंगा, ता अणुप्रदेशतैं अतिरिक्त प्रदेशविषे ता अणु आत्माका संयोगा होवेंगा नहीं और जिस देहके अणुप्रदेशविषे ता आत्माका संयोग है तिस अणुप्रदेशविषे दूसरे जल तेजादिक द्रव्यका संयोग होवेंगा नहीं । काहेतैं ? एक हीं प्रदेशविषे एक कालमें दो मूर्त्त द्रव्योंका संयोग कहां भी देख्या नहीं । जैसे जिस भूतलप्रदेशविषे पादरूप एक मूर्त्तद्रव्यका संयोग है तिस भूतलप्रदेशविषे तिसी कालमें दूसरे हस्तादिरूप मूर्त्तद्रव्यका संयोग होता नहीं, किंतु ता प्रदेशतैं भिन्न प्रदेशाविषे हीं तिन हस्तादिकोंका संयोग होवै है तैसे ता मूर्त्तद्रव्यरूप अणुआत्माके संयोगवाले देहके प्रदेशतैं भिन्न प्रदेशविषे हीं तिन जलादिक मूर्त्तद्रव्योंका संयोग होवैंगा । ऐसे जलके शीतस्पर्शकूं सो अणु आत्मा कैसे ग्रहण करि सकैंगा किन्तु नहीं ग्रहण करिसकैंगा, किंवा ता अणुआत्मासंयुक्त देहके अणुप्रदेशविषे जो कदाचित् तिन जलादिक द्रव्योंका संयोग अंगीकार भी करिये तौं भी ता प्रदेशविषे अणुमात्र जलादिकोंका हीं संयोग होवैंगा, ता अणुमात्र जलादिकोंतैं अधिक जलादिकोंका संयोग होवैंगा नहीं और परमाणुवोंके रूपस्पर्शादिक गुण अतिइंद्रिय हीं होवै हैं । यातैं तिन अणुमात्र जलादिकोंके शीतादिक स्पर्श प्रत्यक्ष हीं नहीं होवैंगे । किंवा सो अणुआत्मा शरीरके एकदेशविषे स्थितहूआ भी संपूर्ण देहव्यापी आपणे ज्ञानगुण करिकै ता संपूर्ण शरीर व्यापी शीत उष्णादिकोंका अनुभव करे है । यह वचन जो तिस अणुआत्म वादीनै कह्या था सो भी असंगत है । काहेतैं ? जो जो गुण होवै है सो सो गुण आपणे गुणीद्रव्यविषे हीं रहे है, आपणे गुणी द्रव्यतैं अतिरिक्त देशविषे कोई भी गुण जाता नहीं । जैसे घटनिष्ठ रूपादिक गुण ता घटविषे हीं रहे हैं ता घटरूप द्रव्यतैं अतिरिक्त देशविषे जाते नहीं तैसे सो ज्ञानगुण भी ता अणुआत्मारूप द्रव्याविषे हीं रहैंगा, ता अणुआत्मातैं अतिरिक्त संपूर्णदेहविषे रहैगा नहीं । किंवा ता अणुआत्मवादीनैं ता अणुआत्मातैं अतिरिक्त देशविषे ता ज्ञानगुणके जाणेमें जो कस्तूरीआदिकोंके गंधगुणका दृष्टांत कथन कऱ्या था सो भी असंगत है । काहेतैं ? तहां भी सो गंधगुण तिन कस्तूरीआदिक द्रव्योंकूं छोडिकै स्वतंत्र जाता नहीं, किंतु ता गंधगुणके आश्रयभूत ता कस्तूरीआदिक द्रव्यके सूक्ष्म अवयव हीं वायु करिकै ता कस्तूरी आदिक द्रव्योंतैं अतिरिक्त देशाविषे जावै हैं । या कारणतैं हीं तिन अवयवोंके निकसणे करिकै कर्पूरादिक द्रव्योंके परिमाणकी न्यूनता प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है । और तिन अवयवोंके निकसणे करिकै भी जिन कस्तूरी आदिक द्रव्योंके परिमाणकी न्यूनता नहीं होवै है तिन कस्तूरी आदिक द्रव्योंविषे तौं एक अवयवोंके निर्गमन हूए भी

भोक्ता पुरुषोंके अदृष्टवशतैं तहां पूर्व अवयवोंके सजातीय दूसरे अवयव उत्पन्न होते जावै हैं। या कारणतैं तिन कस्तूरीआदिक द्रव्येंके परिमाणकी न्यूनता होती नहीं। और जे वादी ता गंधगुणका हीं निर्गमन माने हैं तिन वादीयोंनैं भी तिन कस्तूरीआदिक द्रव्योंविषे निर्गंधताकी आपत्तिके निवृत्त करणे वास्तै क्षणक्षणविषे एक गंधके निर्गमनहूए भी दूसरे दूसरे गंधकी उत्पत्ति अवश्य मानणी होवैंगी। यातैं ता वादीके मततैं हमारे मतविषे कोई अधिक गौरव नहीं है। इतनैं करिकै सो पूर्वउक्त चंदनबिंदुका दृष्टांत भी खंडित हूआ जानणा। काहेतैं? तहां भी ता चंदनके संयोग करिकै अभिव्यक्त हूए जलके सूक्ष्मभागोंका हीं ता देहके सर्व-अंगोंविषे प्रसरण संभवै है। ते जलके भाग हीं तिन सर्व अंगोंविषे ता शीतस्पर्शकी प्रतीति करावै हैं। यातैं ता आत्माविषे अणुरूपता संभवै नहीं। किंवा तिन नारदपंचरात्रवाल्येंनैं आत्माकी अणुरूपताविषे जे पूर्व श्रुतियां कथन करी थीं ते श्रुतियां तौं तिन भ्रांत अणु आत्मवादीयेंके मतका अनुवाद करती हूईयां पूर्वपक्षरूप हीं है अथवा ते श्रुतियां ता अणुपद करिकै आत्माके दुर्विज्ञेयताकूं हीं कथन करे हैं। ता आत्माके अणुत्वपरिमाणकूं कथन करै नहीं। सो आत्माकी दुर्विज्ञेयता सर्वश्रुतिस्मृतियोंविषे प्रसिद्ध हीं है। यद्यपि 'अहं सुखी, अहंदुःखी' यह प्रतीति आत्माकूं हीं विषय करे है तथापि देहादिकोंतैं भिन्नरूप करिकै सो आत्मा दुर्विज्ञेय हीं है। यातैं तिन उक्त श्रुतियेंतैं आत्माकी अणुरूपता सिद्ध होवै नहीं। 'किंतु महतो महीयान्। स वा एष महानज आत्मा। आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः। इत्यादिक श्रुतियेंतैं तथा पूर्वउक्त युक्तियेंतैं ता आत्माका महान्पणा हीं सिद्ध होवै है। किंवा ता वादीनैं ता आत्माके अणुपणेविषे जो नित्यःसर्वगत स्थाणुः। यह गीताका वचन प्रमाण कह्या था सो भी संभवता नहीं। काहेतैं? ता वचनविषे सर्वत्र सर्वगतः स्थाणुः। यह दो पद हीं कथन करे हैं। तहां प्रथमपदका भंग करिकै सर्वगतस्थ अणु इस प्रकारतैं पदोंका निर्वचन करणा अत्यंत असंगत है। किंवा पूर्वउक्त रीतिसैं इस गीतावचनतैं जो आत्माकूं अणु मानियै तौं ता अणुआत्माविषे चलनरूपक्रिया अवश्य करिकै होवैंगी। यातैं ता आत्माकूं चलनरूप क्रियातैं रहित अचल कहणेहारा अचलोयं सनातनः यह गीताका वाक्यशेष असंगत होवैंगा तथा ता आत्माकूं निरवयव तथा निष्क्रिय कहणेहारी निष्कलं निष्क्रियं शान्तम् इस श्रुतिका भी विरोध होवैंगा, किंवा ता अणुआत्मावादीनैं मरणकालविषे शरीरतैं आत्माके उत्क्रमणकूं तथा लोकान्तरविषे गमनकूं प्रतिपादनकरणेहारी श्रुतिकी अन्यथा अनुपपत्तितैं जो जीवात्माकूं अणु मान्या था सो भी असंगत है। काहेतैं? ता आत्माकूं निष्क्रिय कहणेहारी ता उक्तश्रुतिस्मृतिका विरोध होणेतैं सा श्रुति ता आत्माके उत्क्रमणकूं तथा गमनकूं कथन करती नहीं, किंतु सा श्रुति मनके हीं उत्क्रमनकूं तथा गमणकूं कथन करे है। यातैं ता जीवात्माकूं विभु माणणेविषे भी ता श्रुतिकी गति होई सके है। किंवा ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः इस गीताके

वचन तैं जो वादीनैं जीवात्माकूं ईश्वरका अंशरूप कह्या था सो भी असंगत है। काहेतैं? ता जीव ईश्वरविषे जो अंश अंशीभाव मानिये तौं ता ईश्वरकूं निरवयव कहणेहारी श्रुतियोंका विरोध होवैंगा। और जो जो द्रव्य अंशवाला होवै है। सो सो द्रव्य अनित्य हीं होवै है। जैसे पटादिक द्रव्य सांश होणेतैं अनित्य हैं तैसे सो ईश्वर भी सांश होणेतैं अनित्य हीं होवैंगा। किंवा जीवकूं जो इश्वरका अंश अंगीकार करिये तौं ता जीवकूं संसारविषे अनेकप्रकारके दुःख प्राप्त होवैं हैं तिस अंशरूप जीवके दुःखों करिकै सो अंशीरूप ईश्वर भी दुःखी हीं होवैंगा। जैसे लोक विषे हस्तपादादिक अवयवरूप अंशोंके दुःखकरिकै देवदत्तनामा अंशीपुरुष दुःखी होवै है। यातैं ता गीतावचनका मुख्यअंश अंशीभावविषे तात्पर्य नहीं है किंतु जैसे अंशीतैं अंश न्यून होवै है तैसे यह जीव 'मैं' ईश्वरतैं न्यून है अर्थात् विभुत्वरूप करिकै तथा ज्ञान इच्छा प्रयत्न वत्त्वरूप करिकै मैं ईश्वरके सदृश हूआ भी यह जीव ईश्वरकी न्यांई नित्य ज्ञानादिकोंवाला है नहीं किन्तु अनित्य ज्ञानादिकोंवाला हीं है। यातैं यह जीव मैं ईश्वरतैं न्यून हूं। इस अर्थविषे ता गीतावचनका तात्पर्य है। यातैं ता गीतावचनतैं ता जीव ईश्वरविषे अंश अंशीभाव सिद्ध होवै नहीं। किंवा ता नारदपंचरात्र ग्रंथविषे जो वासुदेवनामा ईश्वरतैं संकर्षणनामा जीवकी उत्पत्ति कथन करी है सो भी असंगत है। काहेतैं? जो जो भाव पदार्थ उत्पत्तिवाला होवै है सो सो भाव पदार्थ विनाशवाला भी होवै है। जैसे घटादिक भावपदार्थ उत्पत्तिवाले हैं यातैं विनाशवाले भी हैं और गीताविषे श्रीभगवान्नैं भी **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः** पैदा होने-वालेकी निश्चय मौत होगी इस वचन करिकै उत्पत्तिवाले भावपदार्थका नियमतैं विनाश कह्या है। यातैं उत्पत्तिवाला होणेतैं सो जीवात्मा नाशवान् भी अवश्य होवैंगा और ता जीवात्माके अनित्यहूए कृतहानि, अकृताभ्यागम इन दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैंगी। किंवा ता जीवात्माकी उत्पत्ति मानणी **अजआत्मा** इत्यादिक श्रुति वचनोंतैं तथा **अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणः** इत्यादिक गीतावचनोंतैं भी विरुद्ध है। यातैं सर्व प्रकारतैं यह नारदपंचरात्रका मत असंगत है इति॥

## सांख्यमत निरूपण।

अब कपिलमुनि प्रणीत सांख्यशास्त्रका मत निरूपण करे हैं। तहां सांख्यशास्त्रविषे पचीस तत्त्व कथन करे हैं ते। पचीसतत्त्व यह हैं—पुरुष १, प्रधान २, महत्तत्त्व ३, अहंकार ४, तथा शब्द ५, स्पर्श ६, रूप ७, रस ८, गंध ९, यह पञ्च तन्मात्रा तथा आकाश १०, वायु ११, तेज १२, जल १३, पृथिवी १४ यह पञ्चमहाभूत तथा श्रोत्र १५, त्वक् १६, चक्षु १७, रसन १८, घ्राण १९, वाक् २०, पाणि २१, पाद २२, उपस्थ २३, पायु २४, मन २५, यह एकादश इंद्रिय यह पुरुषतैं लैके मनपर्यंत पचीस तत्त्व कहे जावै हैं, इहां तत्त्व नाम पदार्थका है। तिन पचीसतत्त्वोंविषे भी कोईक तत्त्व तौं केवल प्रकृति हीं होवै है। और कोईक तत्त्व तौं प्रकृति, विकृति दोनों होवै है। और

कोईक तत्त्व तौं केवल विकृति हीं होवै है। और कोईक तत्त्व तौं प्रकृति, विकृति दोनोंतैं रहित होवै है। इस प्रकारतैं तिन पचीसतत्त्वोंका संक्षेपतैं च्यारि प्रकारका विभाग सिद्ध होवै है। ईहां उपादानकारणका नाम प्रकृति है, और कार्यका नाम विकृति है। तहां सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकी जा साम्यअवस्था है ताका नाम प्रधान है। सो प्रधान एक है तथा अनादि होणेतैं उत्पत्तितैं रहित है। यातैं सो प्रधान किसीका भी विकृति नहीं है। और ता प्रधान तैं महत्त्वकी उत्पत्ति होवै है। यातैं सो प्रधान ता महत्तत्त्वका उपादान कारण होणेतैं केवल प्रकृति हीं है। इसी महत्तत्त्वकूं बुद्धि भी कहे हैं तथा अंतःकरण भी कहे हैं। और सो महत्तत्त्व तथा अहंकार तथा शब्दादिक पंचतन्मात्रा यह सप्ततत्त्व तौं प्रकृति विकृति दोनों होवै हैं। तहां ता महत्तत्त्वतैं अहंकारकी उत्पत्ति होवै है। यातैं सो महत्तत्त्व ता अहंकारका तौं प्रकृति है और उक्तप्रधानका विकृति है और ता अहंकारतैं शब्दादिक पंचतन्मात्रावोंकी उत्पत्ति होवै है, तथा श्रोत्रादिक एकादश इंद्रियोंकी उत्पत्ति होवै है। यातैं सो अहंकार तिन तन्मात्रा इंद्रियोंका तौं प्रकृति है और ता उक्त महत्त्वका विकृति है। और तिन शब्दादिक पंचतन्मात्रावोंतैं यथाक्रमतैं आकाशादिक पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होवैं है। यातैं ते शब्दादिक पंचतन्मात्रा तिन आकाशादिक पंचमहाभूतोंका तौं प्रकृति हैं और उक्त अहंकारका विकृति हैं। इस रीतिसैं महत्तत्त्व, अहंकार पंचतन्मात्रा यह सप्ततत्त्व पूर्व पूर्व तत्त्वकी अपेक्षा करिकै विकृति होणेतैं तथा उत्तरउत्तर तत्त्वकी अपेक्षा करिकै प्रकृति होणेतैं प्रकृति विकृति दोनों रूप है। और पूर्वउक्त आकाशादिक पंचमहाभूत तथा श्रोत्रादिक एकादश इंद्रिय यह षोडश तत्त्व तौं यथाक्रमतैं शब्दादिक पंचतन्मात्रावोंके तथा अहंकारके केवल विकृति हीं होवै हैं किसी भी कार्यके प्रकृति होते नहीं। **शङ्का**—आकाशादिक पंचभूत किसी भी कार्यके प्रकृति होते नहीं यह कहणा प्रत्यक्षविरुद्ध है। काहेतैं ? पृथिवी आदिक भूतोंके गौ वृक्ष घट इत्यादिक विकार प्रत्यक्ष प्रतीत होवै हैं। इस प्रकार तिन गौवृक्षादिकोंके दुग्ध बीजादिक विकार भी प्रत्यक्ष हीं प्रतीत होवै हैं तैसे तिन दुग्धबीजादिकोंके दधिअंकुरादिक विकार भी प्रत्यक्ष हीं प्रतीत होवै हैं। यातैं तिन पृथिवीआदिकोंकूं आपणे आपणे तिन गौवृक्षादिक विकारोंका प्रकृतिपणा अवश्य होवैगा। **समाधान**—ते गौवृक्षादिक विकार तथा दुग्धबीजादिक विकार तथा दधिअंकुरादिक विकार तिन पृथिवीआदिक तत्त्वोंतैं अन्य तत्त्वरूप नहीं हैं किंतु ते विकार पृथिवीआदिक रूप हीं हैं। काहेतैं ? जैसे पृथिवीआदिकोंविषे स्थूलता धर्म तथा इंद्रियग्राह्यता धर्म रहे है तैसे तिन गौवृक्षादिक विकारोंविषे भीं सो स्थूलताधर्म तथा इंद्रियग्राह्यता धर्म रहे है। यातैं ते सर्व विकार पृथिवी आदिरूप हीं हैं। ता पृथिवीतैं अन्यतत्त्वरूप नहीं हैं। और ईहां प्रसंगविषे प्रकृतिशब्द करिकै अन्यतत्त्वकी उपादान कारणता हीं विवक्षित है। कार्यमात्रकी उपादान कारणता ता प्रकृति-

शब्द करिकै विवक्षित नहीं है । ऐसी अन्यतत्त्वकी उपादानकारणता जैसे प्रधानादिकोंविषे है तैसे तिन पृथिवीआदिक षोडशविकारोंविषे है नहीं । यातैं ते षोडशविकार केवल विकृति हीं हैं प्रकृति नहीं है । और आत्मानामा पुरुषतत्त्व तौं किसीका प्रकृति भी नहीं है तथा किसीका विकृति भी नहीं है । इस रीतिसैं ते उक्त पचीसतत्त्व केवल प्रकृति १, प्रकृतिविकृति २, केवलविकृति ३, अप्रकृतिअविकृति ४ इस प्रकारके च्यारि विभागवाले सिद्ध होवै हैं । तहां कोईपुरुष बद्ध है, कोई पुरुष मुक्त है, या प्रकारकी बन्धमोक्षव्यवस्था एक आत्माके जानणेविषे सम्भवती नहीं किंतु नानाआत्मा मानणेविषे हीं संभवै है। यातैं ते आत्मानामा पुरुष नाना हैं अर्थात् शरीरशरीरविषे सो पुरुष भिन्नभिन्न है तथा ते पुरुष चेतन हैं तथा उत्पत्ति विनाशतैं रहित हैं । तथा किसीका भी कारण नहीं हैं । या कारणतैं हीं ते पुरुष पद्मपत्रकी न्यांई निर्लेप हैं अर्थात् जैसे पद्मका पत्र जल करिकै लिप्त होता नहीं तैसे ते पुरुष भी कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक धर्मोंका आश्रय होते नहीं । या कहणेतैं यह अनुमान सिद्ध भया । **पुरुषः कर्तृत्वाभाववान् कारणत्वाभाववत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा बुद्धिः** । अर्थ यह—सो पुरुष कर्तृत्वधर्मके अभाववाला होणे योग्य है कारणत्वधर्मके अभाववाला होणेतैं । जो जो पदार्थ कर्तृत्वधर्मके अभाववाला नहीं होवै है सो सो पदार्थ कारणत्व धर्मके अभाववाला भी नहीं होवै है । जैसे महत्तत्त्वनामा बुद्धि ता कर्तृत्वधर्मके अभाववाली नहीं है अर्थात् ता कर्तृत्वधर्मवाली हीं है । यातैं सा बुद्धि ता कारणत्व धर्मके अभाववाली भी नहीं है अर्थात् ता कारणत्वधर्मवाली हीं है इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै ता पुरुषविषे अकर्त्तापणा हीं सिद्ध होवै है । और जो कर्त्ता होवै है सोई हीं भोक्ता होवै है । यातैं ता कर्त्तापणेके अभावहूए ता पुरुषविषे सो भोक्तापणा भी संभवता नहीं । और सांख्य मतविषे जो आत्माकूं भोक्ता कह्या है सो भी ता आत्माविषे बुद्धिनिष्ठ भोक्तापणेका आरोपण करिकै कह्या है । वास्तवतैं सो आत्मा नामा पुरुष अभोक्ता हीं है । **शंका**—बुद्धिकी न्यांई ता पुरुषकूं भी कारण मानणेविषे कौन हानि होवै है ? **समाधान**—ता पुरुषकूं जो घटादिक कार्योंका उपादान कारण मानिये तौं उपादानकारणके साथि कार्यका अभेद हीं होवै है । यातैं तिन घटादिक कार्योंके नाशहूए ता चेतनपुरुषका भी नाश हीं होवैगा । और **अविनाशी वा अरेऽयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा**।अर्थ यह—(हे मैत्रेयि! यह आत्मा अनुच्छेदके स्वभाववाला अविनाशी है ।) यह श्रुति ता आत्माकूं स्वरूपतैं भी नाशतैं रहित कहे हैं तथा कार्यादिरूप धर्मके नाशप्रयुक्त नाशतैं भी रहित कहे है । और अज आत्मा । **न जायते म्रियते वा कदाचित्** । अर्थ यह—(अज आत्मा है । न तो पैदा होता है न मरता ही कभी है।) इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंविषे भी ता आत्माकूं जन्ममरणादिक सर्वविकारोंतैं रहित कह्या है । तिन सर्वश्रुति स्मृति वचनोंका विरोध होवैगा । किंवा आत्माके नाशमानणेविषे केवल तिन उक्त

श्रुतिस्मृतिवचनोंका विरोधमात्र हीं नहीं है किंतु कृतनाश अकृताभ्यागम इन दोनों दोषोंकी भी प्राप्ति होवैंगी । तिन सर्वदोषोंकी निवृत्ति वासतै ता आत्मानामा पुरुषकूं अकारण हीं मान्या चाहिये । **शंका**-ऐसे निर्विकार चेतनपुरुषविषे कौन प्रमाण है ? **समाधान**-सो चेतनपुरुष किसी प्रत्यक्षप्रमाण करिकै तौं जान्या जाता नहीं किंतु अनुमानप्रमाणकरिकै हीं जान्या जावै है । सो दिखावै हैं। तहां **चेतनोऽहं करोमि**। अर्थ-चेतनरूप मैं करता हूं । या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है ता प्रतीतितैं कर्तृत्वधर्मवाली जडबुद्धिविषे चेतनता धर्म प्रतीत होवै है । तहां ता जडबुद्धिविषे स्वरूपतैं तौं चेतनता है नहीं । यातैं ता उक्त प्रतीतिके बलतैं ता बुद्धिविषे सो चेतनताधर्म आरोपित अंगीकार करणा होवगा। काहेतैं ? जो धर्म जिस वस्तुविषे वास्तवतैं होवै नहीं सोई हीं धर्म जो कदाचित् तिस वस्तुविषे प्रतीत होता होवै तौं तिस धर्मका तिस वस्तुविषे आरोपण हीं कऱ्या जावै हैं । जैसे पीतरूपतैं रहित शंखविषे पित्तदोषवाले पुरुषकूं पीतरूप प्रतीत होवै है । यातैं ता प्रतीतिके बलतैं ता शंखविषे नेत्रस्थ पित्तद्रव्यके पीतरूपका आरोपण कऱ्या जावै है । तैसे ता चेतनताधर्मतैं रहित बुद्धिविषे भी ता उक्तप्रतीतिके बलतै ता चेतनताधर्मका आरोप हीं करणा होवैंगा । और किसी पदार्थविषे प्रसिद्ध धर्मका हीं अन्यपदार्थविषे आरोपण होवै है । सर्वथा अप्रसिद्ध धर्मका आरोपण होता नहीं । तहां ता पुरुषतैं भिन्न दूसरे प्रधानादिक सर्वपदार्थ जड होणेतैं ता चेतनताधर्मका आश्रय होइ सकै नहीं, परिशेषतैं सा चेतनता ता पुरुषविषे हीं मानणी होवैंगी । इस प्रकारके परिशेषानुमानतैं ता चेतनता धर्मका आश्रयरूप करिकै ता पुरुषकी हीं सिद्धि होवै है इति । **शंका**-ता आत्मानामा पुरुषकूं असंग निर्विकार होणेतैं इस जगत्का कर्त्तापणा संभवता नहीं । और ता पुरुषविषे कर्त्तापणा तुमारेकूं अंगीकार भी नहीं है और ता पुरुषतैं भिन्न कोई ईश्वर तुमारे मतविषे है नहीं । जो ईश्वर इस जगत्का कर्त्ता होवै और कर्त्तातैं विना किसी कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं इस कार्यरूप जगत्का कोई कर्त्ता अवश्य मानणा होवैंगा । सो जगत्का कर्त्ता तुमारे मतविषे कौन है ? **समाधान**-स्वतंत्र तथा उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य तथा एक तथा अचेतन ऐसी जो मूलप्रकृति नामा प्रधान है, सो प्रधान हीं इस जगत्का कर्त्ता है । यद्यपि कार्यके अनुकूल कृतिमत्त्व रूप कर्तृत्व ता प्रधानविषे नहीं है किंतु ता प्रधानका कार्यरूप जो महत्तत्त्वनामा अंतःकरण रूप बुद्धि है ता बुद्धिविषे हीं सो उक्त कर्तृत्व है तथापि ता कर्त्तारूप बुद्धिका जो ता प्रधानविषे उपादान कारणत्व है यह हीं ता प्रधानविषे कर्तृत्व है अर्थात् जिस प्रकारका घटरूप कार्यके अनुकूल कृतिमत्त्वरूप कर्त्तापणा कुलालविषे रहे है तिस प्रकारका जगत्रूप कार्यके अनुकूल कृतिमत्त्वरूप कर्त्तापणा तौं ता बुद्धिविषे हीं रहे है ता प्रधानविषें रहता नहीं । किंवा जैसे सा प्रयत्नरूप कृति ता बुद्धिका धर्म है तैसे वृत्ति ज्ञान, सुख, दुःख इच्छा, द्वेष, धर्म,

अधर्म, संस्कार यह सर्व ता बुद्धिके हीं धर्म हैं। ते बुद्धियां ता पुरुषकी न्यांई नाना हैं। यातैं कोई सुखी है कोई कोई दुःखी है, या प्रकारतैं सुखदुःखादिकोंकी व्यवस्था भी संभवै है। **शंका**—तुमारे मतविषे असंग निर्विकार पुरुष किसी कर्मका कर्त्ता है नहीं। यातैं ता पुरुषविषे धर्म अधर्मकी उत्पत्ति संभवती नहीं। जिस कारणतैं कर्मके कर्त्ताविषे हीं ता विहितनिषिद्ध कर्मजन्य धर्म अधर्मकी उत्पत्ति होवै है। और ते धर्म अधर्म हीं आपणे अधिकरणविषे सुखदुःखकूं उत्पन्न करे हैं। यातैं ता धर्म अधर्मके अभावहूए ता पुरुषविषे सुखदुःखकी भी उत्पत्ति होवैंगी नहीं और ता पुरुषविषे दुःखके अनुत्पन्न हूए ता दुःखका संबंधरूप बंध भी नहीं संभवैंगा तथा ता दुःखका ध्वंसरूप मोक्ष भी नहीं संभवैंगा। और **कर्मणा बध्यते जन्तुः विद्यया च विमुच्यते।** ( अर्थ यह—यह जीव कर्मसे तथा आत्मज्ञानसे मुक्त होता है।) इत्यादिक शास्त्रविषे जीवात्माकूं हीं ता बंधमोक्षका भागीपणा कथन कर्या है। तथा तुमारे मतविषे भी पुरुषके भोगमोक्ष वासतै हीं प्रधानकी प्रवृत्ति अंगीकार करी है तहां ता प्रधानके विषयाकार परिणामतैं ता पुरुषकूं भोग होवैं है और ता प्रधानके बुद्धिद्वारा विवेकरूप परिणामतैं ता पुरुषकूं मोक्ष होवै है। तहां बुद्धि आत्मातैं भिन्न है या प्रकारके भेदज्ञानका नाम विवेक है। यह उक्त सर्व वार्त्ता असंगत होवैंगी। **समाधान**—शास्त्रविषे बंधमोक्षका भागीपणा जीवात्माकूं कह्या है, यह वार्त्ता यद्यपि सत्य है तथापि सो दुःखका संबंधरूप बंध तथा ता दुःखका ध्वंसरूप मोक्ष तौं ता महत्तत्त्वनामा बुद्धिविषे हीं होवै है, ता पुरुषविषे सो उक्त बंधमोक्ष होता नहीं किंतु ता पुरुषविषे तौं अन्यप्रकारका हीं बंधमोक्ष होवै है। सो दिखावै हैं—ता महत्तत्त्वनामा बुद्धिके विद्यमानहूए ता पुरुषविषे बंध होवै है और ता बुद्धिके अविद्यमानहूए ता पुरुषविषे मोक्ष होवै है। ईहां यह तात्पर्य है ता बुद्धिके विद्यमानहूए हीं चक्षुआदिक इंद्रियद्वारा बाह्य घटादिक देशविषे प्राप्त हूई ता बुद्धिका 'अयं घटः' इत्यादिरूप घटादिक विषयाकार परिणाम उत्पन्न होवै है, सो बुद्धिका परिणाम हीं घटादिविषयक वृत्तिज्ञान कह्या जावै है। ता वृत्तिज्ञानके साथि संबद्धहूए ते घटादिकविषय, **स्वाकारज्ञानपरिणामिबुद्ध्याऽग्रहीतभेदकत्वं।** ( अर्थ यह—अपने ही विषयाकाररूप ज्ञानके परिणामवाली बुद्धिके साथ जिसमें भेद न ग्रहण हो ऐसा सम्बन्ध ) इस प्रकारके संबंध कारिके ता पुरुषविषे रहै हैं। ईहां स्वशब्द करिकै घटादिक विषयोंका ग्रहण करणा तिन घटादिक विषयोंके आकार जो 'अयं घटः' इत्यादिरूप वृत्तिज्ञान है ता वृत्तिज्ञानका परिणामि उपादानकारण जा बुद्धि है ता बुद्धिके साथि अत्यंतसान्निध्यरूप दोषतैं नहीं ग्रहणहूआ है भेद जिस पुरुषका। इस प्रकारके बुद्धिघटित परंपरासंबंध करिकै ते बाह्यघटादिक विषय ता पुरुषविषे स्थित होवै हैं। ते घटादिक विषय हीं ता पुरुषके असंगनिर्विकारस्वरूपकूं तिरोधानकरिकै ता पुरुषके संसारका संपादक होवै हैं। यह हीं ता पुरुषविषे बंध है। और जबी

ता बुद्धिका नाश होवै है। तबी ता बुद्धिका ' अयं घटः ' इत्यादिरूप घटादिविषयाकार वृत्ति ज्ञानरूप परिणामका भी अभाव होवै है, ता वृत्तिज्ञानके अभाव हूए ते घटादिक बाह्य विषय ता उक्तसंबंधके अभावतैं ता पुरुषविषे प्राप्त होवैं नहीं । यातैं ता पुरुषका कैवल्यअवस्थान-रूप मोक्ष होवै है। इस प्रकारतैं ता पुरुषका सो बन्धमोक्ष ता बुद्धिके विद्यमानता अविद्य-मानता करिकै हीं होवै है। वास्तवतैं ता पुरुषविषे सो बन्ध मोक्ष है नहीं । इसी आरोपित बन्ध मोक्षकूं लैके शास्त्रोंविषे ता जीवात्माकूं बन्ध मोक्षका भागीपणा कह्या है इति। किंवा कर्त्तापणेतैं रहित ता पुरुषविषे जो कर्त्तापणा प्रतीत होवै है तथा चेतनपणेतैं रहित ता बुद्धिविषे जो चेतनपणा प्रतीत होवै है सो भी ता पुरुष बुद्धि दोनोंके भेदके अग्रहणतैं हीं प्रतीत होवै है। या कारणतैं हीं मम इदं कर्त्तव्यम् । ( अर्थ—मेरा यह कर्तव्य है । ) इस प्रतीतितैं ता बुद्धिविषे पुरुषका सम्बन्ध तथा घटादिक विषयोंका सम्बन्ध तथा वृत्तिज्ञानरूप व्यापारका सम्बन्ध यह तीन सम्बन्ध प्रतीत होवै हैं । तहां ' मम ' इतनैं करिकै तौं ता बुद्धिविषे चेतनपुरुषका सम्बन्ध प्रतीत होवै है। काहेतैं ? सा बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ है । यातैं ता बुद्धिविषे ता चेतनपुरुषका प्रतिबिम्ब पडे है । जैसे स्वच्छ दर्पणविषे मुखका प्रतिबिम्ब पडे है। तहां जैसे ता दर्पणविषे ता मुखका कोई वास्तव सम्बन्ध नहीं है किंतु सो प्रति-बिंबमात्र हीं सम्बन्ध है। तैसे ता स्वच्छबुद्धिविषे ता चेतनपुरुषका कोई वास्तव सम्बन्ध नहीं है किन्तु सो प्रतिबिम्बमात्र हीं सम्बन्ध है अर्थात् ता पुरुष बुद्धि दोनोंके भेदके अग्रहणतैं जो दोनोंके एकत्वका अभिमान है सोई हीं ता पुरुषका बुद्धिविषे सम्बन्ध है और ' इदम् ' इतनैं करिकै ता बुद्धिविषे घटादिक विषयोंका सम्बन्ध प्रतीत होवै है । तहां ता बुद्धिका चक्षुआदिक इंद्रियद्वारा जो ' अयं घटः ' इत्यादिक ज्ञानरूप परिणाम है सो ज्ञानरूप परिणाम हीं तिन घटादिक विषयोंका ता बुद्धिविषे संबन्ध है । सो घटादिक विषयोंका बुद्धिविषे सम्बन्ध वास्तव है। जैसे मुखके श्वासों करिकै अभिहनन कऱ्येहूए दर्पणविषे जो मलिनिमा उत्पन्न होवैं है ता मलिनिमाका ता दर्पणविषे वास्तव हीं सम्बन्ध होवै है। तैसे तिन घटादिक विषयोंका ता बुद्धिविषे सो वृत्तिज्ञानरूप सम्बन्ध भी वास्तव हीं है। और ' कर्त्तव्यम् ' इतनैं करिकै ता बुद्धिविषे घटादिक विषयक निश्चयात्मक ज्ञानरूप व्यापारका सम्बन्ध प्रतीत होवै है । इस प्रकारतैं सा बुद्धि तीन सम्बन्धरूप तीन अंशों-वाली है। तहां ता चेतनपुरुषका ता बुद्धिके साथि जैसे अवास्तवसम्बन्ध है तैसे ता बुद्धिके ज्ञानरूप परिणामके साथि भी ता चेतनपुरुषका अवास्तव हीं सम्बन्ध है । जैसे दर्पणविषे स्थित मलिनिमाके साथि मुखका अवास्तव सम्बन्ध है । इस प्रकारतैं ता चेतन-पुरुषके अवास्तवसम्बन्धवाला सो वृत्तिज्ञान हीं उपलब्धि इस नाम करिकै कह्या जावै है। अर्थात् चेतनोऽहं करोमि । ( चेतन मैं करता हूं— ) इस प्रतीतिके बलतैं ता बुद्धिविषे

आरोपित जो चेतनपुरुष है ता चेतनपुरुषका ता बुद्धिके परिणामरूप वृत्तिज्ञानके साथि जो ' इदं जानामि ' इस प्रकारतैं प्रतीत हूआ अवास्तवसम्बन्ध है ता चेतनके अवास्तव-सम्बन्धवाले वृत्तिज्ञानका नाम उपलब्धि है इति । किंवा जैसें सो वृत्तिज्ञान ता बुद्धिका धर्म है, तैसे सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म, संस्कार यह सर्व भी ता बुद्धिके हीं धर्म हैं । काहेतैं ? सुखी अहं करोमि, दुःखी अहं करोमि । ( अर्थ—सुखी मैं करता हूं । दुखी मैं करता हूं ) इस प्रकारतैं तिन सुखदुःखादिक धर्मोंका प्रयत्नरूप कृतिके साथि सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है और धर्मीके अभेद विना तिन धर्मोंका सामानाधिकरण्य प्रतीत होता नहीं । यातैं जैसे ता प्रयत्नरूप कृतिका सा बुद्धि धर्मी है । तैसे तिन सुख-दुःखादिक धर्मोंका भी सा बुद्धि हीं धर्मी मान्या चाहिये । **शङ्का**—जैसे कृतिके साथि सामानाधिकरण्यवाले होणेतैं ते सुखदुःखादिक ता बुद्धिके धर्म मान्ये हैं तैसे **चेतनोऽहं करोमि** । इस प्रतीतिविषे चेतनताधर्मका भी ता कृतिके साथि सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है । यातैं सो चेतनताधर्म भी ता बुद्धिका हीं मान्या चाहिये । **समाधान**—सा बुद्धि परिणामी होणेतैं चेतनरूप नहीं है । जो कदाचित् परिणामी वस्तु भी चेतन होता होवै तौं मृदादिक भी चेतनरूप होणे चाहिये । या कहणेतैं यह अनुमान सिद्ध भया । **बुद्धिर्न चेतना परिणामित्वात् मृद्वत्** ( अर्थ यह—बुद्धि चेतन नहीं है परिणामी होनेसे जो परिणामी होता है वह चेतन नहीं जैसे मृत्तिका परिणामी चेतन नहीं है ) इस अनुमान करिकै ता बुद्धिविषे अचेतनरूपता हीं सिद्ध होवै है । और हं **चेतनोऽहं करोमि** । यह उक्त अनुभव तौं ता चेतनता अंशविषे भ्रांतिरूप हीं है । जैसे ' लोहितः स्फटिकः ' यह अनुभव लोहितत्व अंशविषे भ्रांतिरूप हीं है । यातैं ता भ्रमरूप अनुभवतैं ता बुद्धिविषे चेतनरूपता सिद्ध होवै नहीं इति । सो यह सांख्यशास्त्रका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? जैसे कृति अदृष्ट भोग इन तीनोंका सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है अर्थात् सा प्रयत्नरूप कृति जिस अधिकरणविषे रहे है, तिसी अधिकरणविषे पुण्यपापरूप अदृष्टकूं उत्पन्न करे है और सो पुण्यपापरूप अदृष्ट भी जिस अधिकरणविषे रहे है तिसी अधिकरणविषे सुखदुःखरूप भोगकूं उत्पन्न करे है । इस प्रकारतैं जैसे कृति अदृष्ट भोग इन तीनोंका सामानाधिकरण्य हीं प्रतीत होवै है । तैसे **चेतनोऽहं करोमि** । इस प्रतीतिविषे भी चेतनताधर्मका तथा कृतिधर्मका परस्पर सामानाधिकरण्य हीं प्रतीत होवै है, ता सामानाधिकरण्य अनुभवतैं चेतनकूं हीं कर्त्तारूपता सिद्ध होवै है । यातैं कर्त्तातैं भिन्न चेतनविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । और ता सांख्यशास्त्रवालेनैं ' चेतनोऽहं करोमि ' इस अनुभवकूं जो चेतनता अंशविषे भ्रांतिरूप कह्या था सो भी असंगत है । काहेतैं ता अनुभवकूं जैसे चेनता अंशविषे भ्रमरूप मान्या है तैसे ता अनुभवकूं ता कृति अंशविषे भ्रमरूप क्युं नहीं मानते । किंतु ता अनु-

भवकूं ता कृतिअंशविषे हीं भ्रमरूप मान्या चाहिये । ता अनुभवकूं चेतन अंशविषे तौं भ्रांतिरूप माणना और कृतिअंशविषे प्रमारूप मानणा इस अर्थका साधक कोई प्रमाण है नहीं । तहां सो सांख्यशास्त्रवाला जो यह कहे—बुद्धिः न चेतना परिणामित्वात् मृद्वत् । इस उक्त अनुमान करिकै ता बुद्धिविषे अचेतनरूपता हीं सिद्ध होवै है यातैं ता अनुमानप्रमाणके बलतैं हम ता अनुभवकूं ता चेतनता अंशविषे हीं भ्रमरूप माने हैं । सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? बुद्धिः कर्तृत्वाभाववती जन्यत्वात् घटवत् । अर्थ यह—सा बुद्धि कर्तृत्वके अभाववाली है जन्य होणेतैं । जो जो पदार्थ जन्य होवै है सो सो पदार्थ कर्तृत्वके अभाववला हीं होवै है, जैसे घट जन्य होणेतैं ता कर्तृत्वके अभाववाला हीं है । तैसे सा बुद्धि भी जन्य होणेतैं ता कर्तृत्वके अभाववाली हीं होवैंगी इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै ता बुद्धिविषे कर्तृत्वका अभाव हीं सिद्ध होवै है । यातैं इस अनुमाण प्रमाणके बलतैं ता उक्त अनुभवकूं ता कृतिअंशविषे हीं भ्रमरूप मान्या चाहिये । सो तुमारेकूं अंगीकार है नहीं । यातैं चेतनोऽहं करोमि । इस उक्त अनुभवतैं चेतनकूं हीं कर्त्ता मान्या चाहिये । किंवा जो सांख्यशास्त्रवाला कर्त्तारूप बुद्धितैं चेतनपुरुषकूं भिन्न अंगीकार करे है तिस सांख्यमतविषे ता अकर्त्ताचेतन पुरुषविषे धर्मअधर्मके अभावतैं सुखदुःखकी उत्पत्ति संभवती नहीं । और ता सुखदुःखके अनुत्पन्नहूए ता पुरुषविषे ता दुःखका संबंधरूप संसार तथा ता दुःखका ध्वंसरूप मोक्ष भी संभवैगा नहीं । यातैं पूर्व उक्त रीतिसैं ता बुद्धिके सत्त्व असत्त्वतैं हीं ता पुरुषविषे संसार मोक्ष कहणा होवैंगा । याके विषे भी यह कह्या चाहिये । सा कर्त्ता रूप बुद्धि नित्य है अथवा अनित्य है ? तहां सा बुद्धि नित्य है यह प्रथम पक्ष जो अंगीकार करौ तौं ता बुद्धिके सत्त्व अधीन सो संसार इस पुरुषकूं सर्वदा बन्या रहैंगा । कोई कालविषे भी ता पुरुषका मोक्ष नहीं होवैंगा । यातैं ता मोक्षकी प्राप्ति वासतै कोई भी मुमुक्षु प्रयत्न नहीं करैंगा । ता करिकै सो सांख्यशास्त्र हीं व्यर्थ होवैंगा । और सा बुद्धि अनित्य है यह दूसरा पक्ष जो वादी अंगीकार करे तौं ता बुद्धिविषे जन्यत्व भी अवश्य अंगीकार करणा होवैंगा । जिस कारणतैं अजन्य भाव पदार्थका नाश होता नहीं किंतु जन्यभावपदार्थका हीं नाश होवै है । यातैं ता बुद्धिकी उत्पत्तितैं पूर्व पुरुषोंकूं संसार नहीं होणा चाहिये । तहां सो सांख्यशास्त्रवाला जो इस अर्थविषे इष्टापत्ति करे सो संभवै नहीं । काहेतैं ? ता बुद्धिकी उत्पत्तितैं पूर्व जे पुरुष असंसारी थे ते हीं पुरुष ता बुद्धिकी उत्पत्तितैं अनंतर संसारी होवै हैं । इस अर्थके अंगीकार करणेतैं तुमारे मतविषे मुक्तहूए असंसारी पुरुषोंकूं भी पुनः संसारीपणेकी प्राप्ति होवैंगी । यातैं मोक्षकी प्राप्ति वासतै कोई भी मुमुक्षु प्रवृत्त नहीं होवैंगा, किंवा ता कर्त्तारूप बुद्धिके अनित्यहूए ता बुद्धिकी उत्पत्तितैं पूर्व पुण्यपापरूप अदृष्टका तथा ता अदृष्टका जनक विहितनिषिद्धक्रियाका भी अभाव हीं

होवैंगा और कार्यमात्रकी उत्पत्तिविषे ता अदृष्टकूं कारणता होवै है ता अदृष्टतैं विना कोई भी कार्य उत्पन्न होता नहीं । यातैं ता अदृष्टरूप कारणके अभावहूए ता बुद्धिरूप कार्यकी उत्पत्ति हीं नहीं होवैंगी और ता बुद्धिरूप कर्त्ताके अनुत्पन्नहूए सो संसार कोई-कालविषे भी उत्पन्न होवैंगा नहीं । यातैं ता बुद्धिविषे कर्त्तापणा संभवता नहीं, किंतु चेतन-आत्माविषे हीं सो कर्त्तापणा संभवै है । किंवा तिन सांख्यीयोंनैं ता बुद्धिविषे चेतनपुरुषका जो प्रतिबिंबरूप अतात्त्विक संबंध मान्या है सो भी असंगत है । काहेतैं ? लोकविषे रूपवान् दर्पणादिक वस्तुविषे हीं रूपवान् मुखादिक वस्तुका प्रतिबिंब देखणेविषे आवै है । रूप-रहितवस्तुविषे रूपरहितवस्तुका प्रतिबिंब कहां भी देखणेविषे आवता नहीं । और दृष्ट अर्थके अनुसार हीं अदृष्ट अर्थकी कल्पना होवै है । यातैं ता रूपरहित बुद्धिविषे ता रूपरहित पुरु-षका प्रतिबिंब हीं संभवता नहीं । किंवा सत्त्वादिक तीन गुणोंकी साम्यअवस्थारूप प्रधान सृष्टिके आदिकालविषे चलनक्रिया करिकै ता साम्यअवस्थातैं रहित हूआ तिन महदादिक विकारोंकूं उत्पन्न करे है यह कल्पना भी तिन सांख्यीयोंकी असंगत है । काहेतैं ? ता सांख्य मतविषे सो जडप्रधान स्वतः तौं चेतनतातैं रहित मान्या है तथा चेतनपुरुषके आश्रित भी नहीं मान्या है । ऐसे जडप्रधानकी महदादिक कार्योंकी उत्पत्ति करणेविषे कैसे प्रवृत्ति होवैंगी किंतु नहीं प्रवृत्ति होवैंगी । जिस कारणतैं लोकविषे मृत्सुवर्णादिक अचेतनपदार्थ कुलाल-सुवर्णकारादिक चेतनपुरुषोंके आश्रितहूए हीं घटभूषणादिक कार्योंकी उत्पत्ति करणेविषे प्रवृत्त होवै हैं । चेतनके अनाश्रित अचेतनपदार्थकी कार्यके अनुकूल प्रवृत्ति कहां भी देखणे विषे आवती नहीं । और दृष्टअर्थके अनुसार हीं अदृष्ट अर्थकी कल्पना होवै है दृष्टअर्थतैं विरुद्ध अदृष्ट अर्थकी कल्पना होती नहीं । **शंका**—लोकविषे अचेतनवस्तुकी भी कार्यके अनुकूल प्रवृत्ति देखणेमें आवै है । जैसे अचेतनहूआ भी क्षीर वत्सकी वृद्धि वासतै गौ आदि कोंके ऊधसूतैं प्रवृत्त होवै है तैसे अचेतन हूआ भी सो प्रधान ता पुरुषके भोगमोक्ष वासतै आपे हीं प्रवृत्त होवैंगा । **समाधान**—ता अचेतन क्षीरकी प्रवृत्तिविषे भी ता धेनुरूप चेतनका स्नेहरूप व्यापार तथा ता वत्सरूप चेतनका चोषणरूप व्यापार हीं कारण है ता चेतनके व्यापारतैं विना ता जडक्षीरकी स्वतःप्रवृत्ति होती नहीं । और ता जडप्रधानकी प्रवृत्तिविषे तौं तुमोंनैं किसी भी चेतनपुरुषका व्यापार अंगीकार कऱ्या नहीं । यातैं सो क्षीरका दृष्टांत ता प्रधानरूप दार्ष्टांतिकतैं विषम है । **शंका**—दृष्ट अर्थके अनुसार हीं अदृष्टअर्थकी कल्पना होवै है । या प्रकारका नियम सर्वत्र संभवता नहीं । किंतु किसी स्थलविषे शास्त्रप्रमाणके बलतैं अपूर्व अर्थकी भी कल्पना करी जावै है । जैसे ऊपरिले स्वर्गादिक लोकोंविषे स्थित देवतादिकोंकी केवल शास्त्रप्रमाणके बलतैं हीं कल्पना करी जावै है । तैसे **प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते ॥**

अर्थ यह—प्रधाननामा मूलप्रकृतिके सत्त्वरजतमरूप तीनगुणोंनैं हीं महदादिक सर्वकार्य उत्पन्न करिते हैं तौं भी अहं अभिमान करिकै विमूढ हूआ है अन्तःकरण जिसका ऐसा सो पुरुष मैं कर्त्ता हूं इस प्रकार हीं माने हैं । इस भगवत् गीताके वचनतैं ता प्रधानविषे हीं महदादिक कार्योंका कर्त्तापणा सिद्ध होवै है । तथा इसी गीता वचनतैं ता चेतन पुरुषविषे कर्त्तापणेका अभाव भी सिद्ध होवै है । **समाधान**—ता भगवद्गीताके वचनतैं सो उक्त अर्थ सिद्ध होता नहीं । काहेतैं ? ता उक्त वचनविषे स्थित प्रकृति इस शब्द करिकै श्रीभगवान्कूं तुमारा प्रधान विवक्षित नहीं है । किंतु ता प्रकृति शब्द करिकै पुण्यपापरूप अदृष्ट हीं विवक्षित है, ता अदृष्टरूप प्रकृति करिकै जन्य जे इच्छादिक गुण हैं तिन इच्छादिक गुणोंनैं भी ते सर्वकर्म करिते हैं, केवल आत्मानैं हीं ते सर्वकर्म करिते नहीं, परन्तु अहं अभिमान करिकै विमूढ हूआ यह पुरुष केवल एक मैं आत्मा हीं तिन कर्मोंका कारण हूं ते इच्छादिक तिन कर्मोंकूं कारण नहीं हैं; इस प्रकारतैं केवल आत्माकूं हीं तिन कर्मोंका कारण माने है । तिन इच्छादिकोंकूं कारण मानता नहीं इति ॥ यातैं इस उक्त अर्थवाले ता गीतावचनतैं ता प्रधानविषे कारणता सिद्ध होवै नहीं, तथा ता पुरुषविषे भी अकारणता सिद्ध होवै नहीं, किंतु इस गीतावचनतैं ता पुरुषविषे इच्छादिकोंतैं विना स्वतंत्रकारणताका अभाव प्रतिपादन करिता है । सामान्यतैं कारणताका अभाव प्रतिपादन करिता नहीं, इसी प्रकारके आपणे अभिप्रायकूं श्रीभगवान् आगे जाईकै सर्वगीताशास्त्रके उपसंहाररूप अष्टादशअध्यायविषे—**अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ १ ॥ शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः । न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ २ ॥ तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः । पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ ३ ॥** अर्थ यह—इन तीन श्लोकोंकरिकै प्रगट करता भया है । इन तीन श्लोकोंका यह अर्थ है—सुखदुःखके भोगका आतयनरूप तथा नेत्रादिक करणोंका आश्रयरूप जो यह शरीर है ताका नाम अधिष्ठान है १ ॥ और इच्छादिक गुणोंवाले आत्माका नाम कर्त्ता है २ ॥ और चक्षुआदिक इंद्रियोंका नाम करण है ३ ॥ और प्राणअपानादिकोंका नाम चेष्टा है ४ ॥ और पुण्य पापरूप अदृष्टका नाम दैव है ५ ॥ तहां यह जीवात्मा पुरुष शरीरमनवाणी करिकै जिस जिस विहितनिषिद्ध कर्मकूं प्रारम्भ करे है तिस तिस कर्मका ते उक्त अधिष्ठानादिक पांचों हीं कारण होवैं हैं । इस प्रकार तिन पांचोंकूं कारणताके हूए भी जो अविवेकी पुरुष केवल एक आत्माकूं हीं तिन कर्मोंका कारण माने हैं तिन अधिष्ठानादिकोंकूं कारण मानता नहीं सो दुर्मति पुरुष असम्यक् दर्शी हीं हैं इति ॥ यातैं यह सांख्यशास्त्रका मत भी समीचीन नहीं है इति ॥

### योगमतका निरूपण ।

अब पतञ्जलिमुनिप्रणीत योगशास्त्रका मत निरूपण करे हैं । सांख्यके साथ समता—तहां पूर्व सांख्यमतविषे जैसे बंधमोक्षकी व्यवस्था वासतै नानापुरुष अंगीकार करे

हैं तैसे इस योगशास्त्रविषे भी ते जीवात्मानामा पुरुष नाना हीं अंगीकार करे हैं। और जैसे ता सांख्यमतविषे प्रधानादिक चौवीसतत्त्व अंगीकार करे हैं तथा तिन प्रधानादिक तत्त्वोंतैं महदादिकतत्त्वोंकी उत्पत्ति अंगीकार करी है तैसे इस योगमतविषे भी ते प्रधानादिक चौबीसतत्त्व तथा तिन प्रधानादिक तत्त्वोंतैं महदादिक तत्त्वोंकी उत्पत्ति अंगीकार करी है। परन्तु पूर्व उक्त सांख्यमतविषे ईश्वरकूं अंगीकार कऱ्या नहीं किंतु स्वतंत्र प्रधान हीं महदादिद्वारा जगतकूं उत्पन्न करे है ॥

नव्य सांख्य तथा योगका अन्तर—और इस योगमतविषे तौं ईश्वरकूं अंगीकार कऱ्या है ता सर्वज्ञ ईश्वरके अधीन हूआ हीं सो प्रधान महतत्त्वादिद्वारा जगत्कूं उत्पन्नकरे है। स्वतंत्र सो प्रधान जगत्कूं उत्पन्न करता नहीं, इतनी हीं ता सांख्यमततैं इस योगमतविषे विशेषता है ॥

योगका ईश्वर ।

तहां योगमतविषे ईश्वरका यह लक्षण कऱ्या है । **क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः** । अर्थ यह—क्लेश १, कर्म २, विपाक ३, आशय ४ इन च्यारों करिकै तीन कालविषे असंबद्ध जो पुरुषविशेष है ताका नाम ईश्वर है ! तहां अविद्या १, अस्मिता २, राग ३, द्वेष ४, अभिनिवेश ५ इस भेद करिकै सो क्लेश पंचप्रकारका होवै है १ ॥ और विहितनिषिद्ध क्रिया करिकै जन्य जो धर्म अधर्म है ताका नाम कर्म है २ ॥ और ता धर्म अधर्म करिकै जन्य जो सुखदुःखादिरूप फल है ताका नाम विपाक है ३ ॥ और ता फल भोगके अनुकूल जे पूर्वले संस्कार हैं ताका नाम आशय है ॥ ४ ॥ अब तिन अविद्यादिक पंचक्लेशोंका स्वरूप वर्णन करे हैं । तहां—**अतस्मिंस्तद्बुद्धिरविद्या** । अर्थ यह—तद्भावतैं रहित पदार्थविषे जो तद्भावबुद्धि है ताका नाम अविद्या है। सा अविद्या च्यारि प्रकारकी होवे है। तहां अनित्यस्वर्गादिकोंविषे नित्यत्वबुद्धि १, अशुचि स्त्री शरीरादिकोंविषे शुचित्व बुद्धि २, परिणामविषे दुःखके हेतु होणेतैं, दुःखरूप भोगोंविषे सुखत्व बुद्धि ३, अनात्मरूपबुद्धिआदिकोंविषे आत्मत्वबुद्धि ४, इन च्यारोंका नाम अविद्या है ॥ १ ॥ और परस्पर अत्यंत भिन्न जो द्रष्टा दृश्य यह दो हैं तिन दोनोंका जो अविद्याकृत 'अहं अस्मि' या प्रकारका मिथ्या तादात्म्य है ताका नाम अस्मिता है २ ॥ और सुखविषे तथा ता सुखके साधनोंविषे जो तृष्णा है ताका नाम राग है ३॥ और दुःखविषे तथा ता दुःखके साधनोंविषे जो क्रोध है ताका नाम द्वेष है ४ ॥ और जंतुमात्रकूं जो मरणका त्रास है ताका नाम अभिनिवेश है ५ ॥ इस प्रकारके क्लेश, कर्म, विपाक आशय यह च्यारों जीवात्मा पुरुषोंके चित्तविषे हीं रहे हैं तिस चित्तके अविवेक तैं ते संसारीपुरुष तिन क्लेशादिकों करिकै संबद्ध हीं होवे हैं। ऐसे क्लेशादिकोंकरिकै तीन कालविषे असंबद्ध जो पुरुषविशेष है ताका नाम ईश्वर है। सो ईश्वर एक हीं हैं तथा सर्वज्ञ है तथा स्वतंत्र हैं। तथा जीवात्मा पुरुषोंतैं

अत्यंत भिन्न हैं। ऐसे ईश्वर कारिकै प्रवृत्त करी हूई सा मूलप्रकृतिरूप प्रधान पूर्वउक्तरीतिसैं महादादिक जगत्कूं उत्पन्न करे है । चित्तका विलय मोक्ष—तहां तिन क्लेशादिकोंका आधार भूत जो चित्त है ता चित्तके विलयहूए इस पुरुषका जो आपणे वास्तव असंग निर्विकाररूप करिकै अवस्थान है। सोई हीं इस पुरुषका कैवल्य मोक्ष है । यातैं ता मोक्षकी इच्छावान् मुमुक्षुजननैं ता चित्तका विलय अवश्य करिकै करणा । इसका साधन—सो चित्तका विलय अष्टांगयोगतैं विना अन्य किसी उपाय करिकै होता नहीं । किंतु एक अष्टांगयोग करिकै हीं सो चित्तका विलय होवै है। यातैं इस अधिकारी पुरुषनैं सो अष्टांग योग अवश्य करिकै करणा ॥

अष्टांग योग।

तहां अष्ट हैं अंग कहीये साधन जिस योगके ताका नाम अष्टांगयोग है । अब ता योगके अष्टअंगोंका निरूपण करे हैं। तहां यम १, नियम २, आसन ३, प्राणायाम ४, प्रत्याहार५, धारणा ६, ध्यान७, समाधि ८ यह अष्ट योगके अंग कहे जावे हैं । तहां प्रथम यमरूप अंग—तौं अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५ इस भेद करिकै पंच प्रकारका होवै है। तहां शरीर मन वाणी करिकै जो प्राणीमात्रका अपीडन है ताका नाम अहिंसा है १, और परके हित वासतै जो यथार्थवचनका उच्चारण है ताका नाम सत्य है २, और बलात्कारसैं अथवा छलकपट करिकै जो पराये धनादिक पदार्थोंका नहीं हरण करणा है ताका नाम अस्तेय है ३, और उपस्थइंद्रियका जो संयम है ताका नाम ब्रह्म चर्य है ४, और देहके निर्वाहतैं अधिक भोगसाधनोंका जो अस्वीकार है ताका नाम अपरि ग्रह है ५,॥ १ ॥ इस प्रकार दूसरा नियम अंग—भी शौच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईश्वरप्रणिधान ५ इस भेद करिकै पञ्च प्रकारका हीं होवै है। तहां प्रथम शौच—अंतर बाह्य- इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां मृत्तिका जलादिकों करिकै जो शरीरके मलकी निवृत्ति है ताका नाम बाह्य शौच है। और मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा इन च्यारों करिकै जो चित्तकूं असूयादिक मलोंतैं रहित करणा है ताका नाम अंतर शौच है १, और प्राणोंके धारणमात्रविषे हेतुभूत जे अन्नपानादिक हैं तिनों करिकै जो तुष्टि है ताका नाम सन्तोष है २, और शीतउष्णादिक द्वन्द्वधर्मोंका जो सहन है अथवा कृच्छ्रचांद्रायणादिक जे व्रत हैं ताका नाम तप है ३, और प्रणवादिक मन्त्रोंका जो जप है ताका नाम स्वाध्याय है, ४ और शरीर मन वाणी करिकै कन्येहूए सर्व कर्मोंका जो ईश्वरविषे अर्पण है ताका नाम ईश्वरप्रणिधान है ५ ॥ २ ॥ और तीसरा आसनरूप अंग—तौं बाह्य शारीरक इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां सर्वप्रकारके विक्षेपतैं रहित समभूमिविषे प्रथम कुशा विछावणे तिस ऊपरि मृगचर्म विछावणा तिस ऊपरि कोमलवस्त्र विछावणा यह बाह्य

आसन कह्या जावै है। और दूसरा शारीरक आसन तौं चोरासी प्रकारका होवै है। तिनों विषे भी पद्म, स्वस्तिक, भद्र, वज्र, वीर यह पञ्च आसन हीं मुख्य कह्येजावै हैं॥ ३॥ और चतुर्थ प्राणायामरूप अंग—तौं बाह्यवृत्ति १, अभ्यन्तरवृत्ति २, स्तंभवृत्ति ३, तुरीय ४, इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। तहां नासिकाछिद्रद्वारा रेचन करिकै बाह्य गया हूआ जो अन्तरवायु है ता वायुका जो ता बाह्यदेशविषे हीं धारण है ताका नाम बाह्यवृत्ति है १, तिस बाह्यवृत्तिनामा प्राणायामकूं हीं रेचक कहे हैं और ता नासिका छिद्रद्वारा पूरण करिकै अन्तर गया हूआ जो बाह्यवायु है ता वायुका जो ता अन्तर देशविषे हीं धारण हैं ताका नाम अभ्यन्तरवृत्ति है २, तिस अभ्यन्तरवृत्तिनामा प्राणायामकूं हीं पूरक कहे हैं और उक्त रेचनके तथा पूरकके प्रयत्नतैं विना हीं ता प्राणके केवलविधारक प्रयत्न करिकै जो गतिका विच्छेद है ताका नाम स्तम्भवृत्ति है ३, ता स्तम्भवृत्तिनामा प्राणायामकूं हीं कुंभक कहे हैं और ता रेचकके जाणेका जो हस्तादि परिमित बाह्यदेश है तथा ता पूरकके जाणेका जो नाभिचक्रादिरूप अन्तरदेश है तिस देशके निश्चयपूर्वक तथा बहुतप्रयत्न करिकै साध्य ऐसा जो स्तम्भवृत्ति नामा कुम्भक है सो तुरीयप्राणायाम कह्या जावै है ॥ ४ ॥ प्रत्याहार—और मनके निरोधपूर्वक जो श्रोत्रादिक इंद्रियोंका शब्दादिक विषयोंतैं निरोध है ताका नाम प्रत्याहार है ॥ ५ ॥ धारणा—और सम्प्रज्ञातसमाधिकी सिद्धि वासतै नाभिचक्र हृदय नासाग्र इत्यादिक देशविषे जो चित्तका स्थिरकरणा है ताका नाम धारणा है ॥ ६ ॥ ध्यान—और जिस वस्तुविषयक धारणा होवै है तिसी वस्तुविषे प्रयत्नतैं विना हीं जो वृत्तियोंकी एकाकारता है ताका नाम ध्यान है। अर्थात् ध्याता, ध्यान, ध्येय इन तीनोंकी स्फूर्तिपूर्वक जो प्रयत्नतैं विना हीं तिस वस्तुविषे वृत्तियोंकी एकाकारता है ताका नाम ध्यान है। तात्पर्य यह—धारणा ध्यान यह दोनों एकवस्तुविषयक हूए भी धारणा तौं विजातीयवृत्तियों करिकै विच्छिन्न होवै है और ध्यान विजातीय वृत्तियों करिकै विच्छिन्न होता नहीं। इतना दोनोंविषे भेद है॥ ७ ॥ समाधि—और जहां केवल ध्येयवस्तुका हीं स्फुरण होवै है। ध्याता, ध्यान इन दोनोंका स्फुरण होता नहीं ताका नाम समाधि है ॥८॥ सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात भेद—सो समाधि हीं दीर्घकालपर्यंत अभ्यास कऱ्या हूआ सम्प्रज्ञातनामा योग कह्या जावै है। और जहां ता ध्येयवस्तुकी भी स्फुर्त्ति नहीं रहे है ताका नाम असम्प्रज्ञातयोग है। तहां प्रथम सम्प्रज्ञात समाधि तौं साधनरूप है और दूसरा असम्प्रज्ञातसमाधि फलरूप है तहां यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार यह पंच तौं ता असम्प्रज्ञातनामा योगके बहिरङ्ग साधन हैं और धारणा, ध्यान, समाधि यह तीन ता योगके अन्तरङ्ग साधन हैं। इस प्रकारके उक्त अष्टांगयोग करिकै हीं ता चित्तका विलय होवै है इति ॥

योगके न्यायविरुद्ध मतका खण्डन—सो यह योगशास्त्रका मत भी पूर्वउक्त सांख्यमतकी खण्डनयुक्तियों करिकै हीं खंडित हूआ जानणा। यद्यपि ता योगशास्त्र उक्त वैराग्य यम नियम आदिक साधन सर्वशास्त्रवाले मुमुक्षुजनोंकूं अपेक्षित हैं तथापि ता योगशास्त्रविषे जो प्रधानतैं महत्तत्त्वादिक्रम करिकै जगत्की उत्पत्ति आदिकप्रक्रिया कथन करी है सो असंगत है। तिस विरुद्ध प्रक्रियाका खण्डन पूर्व सांख्यमतविषे करि आये हैं सो ईहां भी जानि लेणा इति ॥

शाङ्कर वेदान्तका मत ।

अब वेदांतशास्त्रके मतका निरूपण करे हैं। ब्रह्मका स्वरूप—तहां **एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति। द्वितीयाद्वै भयं भवति।** अर्थ यह—एक अद्वितीय ब्रह्म है। इस अद्वितीय ब्रह्मविषे किंचित्मात्र भी यह नाना जगत् नहीं है। इस अद्वितीय ब्रह्मविषे जो पुरुष नानाजगत्कूं देखे है सो भेददर्शी पुरुष वारंवार जन्ममरणरूप संसारकूं प्राप्त होवै है। और जो पुरुष तिस अद्वितीय ब्रह्मविषे किंचित्मात्र भी भेदकूं देखे है तिस भेददर्शी पुरुषकूं भयकी हीं प्राप्ति होवै है और इस पुरुषकूं द्वितीयभावतैं हीं भयकी प्राप्ति होवै है इति। इत्यादिक अनेक श्रुतियां एक अद्वितीय ब्रह्मकूं हीं कथन करे हैं। तथा ता अद्वितीयब्रह्मविषे नानापणेकूं देखणेहारे भेददर्शी पुरुषकूं पुनःपुनः जन्ममरणकी प्राप्तिरूप तथा भयकी प्राप्तिरूप अनर्थ कथन करे हैं यातैं एक अद्वितीय ब्रह्म है ऐसा मुमुक्षुजननै निश्चयकरणा। **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। आनन्दो ब्रह्म।** अर्थ यह—सो ब्रह्म सत्यरूप है तथा ज्ञानरूप है तथा अनंतरूप है तथा आनंदरूप है इति। भावार्थ—सो अद्वितीय ब्रह्म देश परिच्छेद १, कालपरिच्छेद २, वस्तुपरिच्छेद ३ इन तीन परिच्छेदोंतैं रहित है। यातैं सो ब्रह्म अनंत है। और सो ब्रह्म उत्पत्ति विनाशतैं रहित है यातैं सत्य है और सो ब्रह्म आपणे प्रकाशविषे अन्य किसी प्रकाशकी अपेक्षा करता नहीं यातैं ज्ञानस्वरूप है अर्थात् चैतन्य स्वरूप है। और तिस ब्रह्मके आनंद करिकै हीं सर्वत्र आनंद प्रतीत होवै है। यातैं सो ब्रह्म आनंदस्वरूप है ॥

तीनों परिच्छेद—अब ता ब्रह्मविषे तीनपरिच्छेदोंका अभाव बोधन करणे वासतै प्रथम अनात्म वस्तुवोंविषे तिन तीन परिच्छेदोंका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां **अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं देशपरिच्छेदः।** अर्थ यह—अत्यंताभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम देशपरिच्छेद है। जैसे घटादिक पदार्थ जिस भूतलादिक देशविषे रहे हैं। तिस देशकूं छोडिकै अन्यत्र सर्वत्र तिन घटापटादिकोंका अत्यंताभाव रहे है। ता अत्यंताभावका प्रतियोगीपणा तिनघटादिकों विषे है। यह हीं तिन घटपटादिकोंविषे देशपरिच्छेद है इति। **ध्वंसप्रागभावप्रतियोगित्वं कालपरिच्छेदः।** अर्थ यह—प्रध्वंसाभावका तथा प्रागभावका जो प्रतियोगीपणा ताका नाम

कालपरिच्छेद है। जैसे घटादिक जन्य पदार्थोंका आपणी उत्पत्तितैं पूर्व कपालादिकोंविषे प्रागभाव रहे है और आपणे नाशतैं अनंतर तिन कपालादिकोंविषे प्रध्वंसाभाव रहे है तिस प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका प्रतियोगीपणा तिन घटादिक पदार्थोंविषे है। यह हीं तिन घटादिक पदार्थोंविषे कालपरिच्छेद है इति। अन्योन्याभावप्रातियोगित्वं वस्तुपरिच्छेदः। अर्थ यह—भेदरूप अन्योन्याभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम वस्तुपरिच्छेद है। जैसे 'पटः घटो न' अर्थ—पट घट नहीं है इत्यादिक प्रतीतिविषे भासमान जो पटादिक वस्तुवोंविषे घटादिक वस्तुवोंका भेदरूप अन्योन्याभाव है, तिस अन्योन्याभावका प्रतियोगीपणा तिन घटादिक वस्तुवोंविषे है, यह हीं तिन घटादिक वस्तुवोंविषे वस्तुपरिच्छेद है इति। इस प्रकारतैं सर्व अनात्मपदार्थ तीन परिच्छेदोंवाले हीं हैं। ब्रह्ममें तीनोंका अभाव—ते तीनों परिच्छेद ता ब्रह्मविषे हैं नहीं। काहेतैं? सो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। यातैं ता ब्रह्मविषे सो देशपरिच्छेद संभवता नहीं और सो ब्रह्म उत्पत्ति विनाशतैं रहित है। यातैं ता ब्रह्मविषे सो कालपरिच्छेद भी संभवता नहीं और सो ब्रह्म सर्वका आत्मारूप है। यातैं ता ब्रह्मविषे सो वस्तुपरिच्छेद भी संभवता नहीं इति॥

मूल प्रकृति—ऐसे अपरिच्छिन्न ब्रह्मके किसी एकदेशविषे अव्याकृतनामा मूलप्रकृतिरूप शक्ति रहे है। सा शक्ति सत्त्व, रज, तम यह तीनगुणरूप है। सा त्रिगुणात्मक मूलप्रकृति हीं शुद्धसत्त्व गुणकी प्रधानतातैं माया कही जावै है और मलिनसत्त्वगुणकी प्रधानतातैं अविद्या कही जावै है। तहां रज तम करिकै नहीं अभिभवकूं प्राप्तहूआ जो सत्त्वगुण है सो शुद्ध कह्या जावै है और ता रजतमकरिकै अभिभवकूं प्राप्तहूआ जो सत्त्वगुण है सो मलिन कह्या जावै है। इस प्रकार सा एक हीं मूलप्रकृति मायारूप तथा अविद्यारूप होवै है। तहां श्रुति—माया चाविद्या च स्वयमेव भवति। अर्थ यह—सा त्रिगुणात्मक मूलप्रकृति आप हीं शुद्धसत्त्वगुणकी प्रधानता करिकै मायारूप होवै है तथा मलिनसत्त्व गुणकी प्रधान ता करिकै अविद्यारूप होवै है इति। इसी माया अविद्यारूप प्रकृत्तिकूं अज्ञान भी कहे हैं॥

जीव ईश्वर भेद—तहां ता माया करिकै विशिष्ट हूआ सो ब्रह्म चेतन ईश्वर कह्या जावै है। और ता अविद्या करिकै विशिष्ट हूआ सो ब्रह्मचेतन जीव कह्या जावै है। इस प्रकार सो एक हीं ब्रह्मचेतन मायारूप उपाधिके संबंधतैं ईश्वरसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है और अविद्यारूप उपाधिके संबंधतैं जीवसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है। जैसे एक हीं आकाश मठरूप उपाधिके संबन्धतैं मठाकाश संज्ञाकूं प्राप्त होवै है। और घटरूप उपाधिके संबंधतैं घटाकाश संज्ञाकूं प्राप्त होवै है। तहां ता शुद्धसत्त्व प्रधानमायारूप उपाधिवाला होणेतैं सो ईश्वर तौं सर्वज्ञ होवै है। तथा सर्वशक्तिसंपन्न होवै है तथा आपणे शुद्धब्रह्म स्वरूपके आवरणतैं रहित होवै है तथा

सा माया ताके अधीन रहे है। और ता मलिनसत्त्व प्रधान अविद्यारूप उपाधिवाला होणेतैं सो जीव तौं अल्पज्ञ होवै है तथा अल्पशक्तिवाला होवै है तथा आपणे शुद्धब्रह्मस्वरूपके आवरणवाला होवै है तथा ता अविद्याके अधीन होवै है। यद्यपि ता ईश्वरचेतनविषे तथा जीवचेतनविषे स्वरूपतैं ते सर्वज्ञत्व अल्पज्ञत्व आदिक धर्म नहीं हैं तथापि जैसे वास्तवतैं न्यून अधिकभावतैं रहित आकाशविषे घटमठादिरूप न्यून अधिक उपाधिके संबंधतैं न्यून अधिकभाव प्रतीत होवै है। तैसे ता चेतनविषे भी ता माया अविद्यारूप उपाधिके संबंधतैं ते सर्वज्ञत्व, अल्पज्ञत्व आदिक धर्म प्रतीत होवै हैं इति। जगत्की उत्पत्ति—अब ता ईश्वरतैं जगत्के उत्पत्तिका प्रकार वर्णन करे हैं। तहां सो मायाविशिष्ट ईश्वर चेतन सृष्टिके आदि-कालविषे जीवोंके पुण्यपाप कर्मों करिकै प्रेरणा कऱ्या हूआ एकोऽहं बहुस्याम्। अर्थ यह—एक मैं परमेश्वर बहुतरूप होवों। या प्रकारका संकल्प करता भया ता मायाकी वृत्तिरूप संकल्पतैं अनंतर ता ईश्वरतैं प्रथम शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न होता भया। ता आकशतैं शब्द, स्पर्श इन दो गुणोंवाला वायु उत्पन्न होता भया। ता वायुतैं शब्द, स्पर्श, रूप इन तीनगुणोंवाला तेज उत्पन्न होता भया। ता तेजतैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस इन च्यारि गुणों-वाला जल इत्पन्न होता भया। ता जलतैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पंचगुणोंवाली पृथिवी उत्पन्न होती भई। इस प्रकार प्रथम आकाशादिक पंच सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते भये। तहां जैसे सा माया त्रिगुणात्मक है तैसे ता मायाके कार्य आकाशादिक पंचभूत भी त्रिगुणा-त्मक हीं उत्पन्न होते भये॥

अन्तःकरणकी उत्पत्ति तथा तिनसे आत्माकी भिन्नता—तहां आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी इन पांच भूतोंके मिल्येहूए सत्त्वगुणतैं अंतःकरण उत्पन्न होता भया अर्थात् सत्त्वगुण-प्रधान तिन पंचभूतोंतैं अंतःकरण उत्पन्न होता भया। इस प्रकारका अर्थ आगे भी जानि लेणा। सो अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। तहां संकल्पविकल्परूप वृत्ति आकार परिणामकूं प्राप्त हूआ सो अंतःकरण मन कह्या जावै है। और निश्चयरूपवृत्ति आकार परिणामकूं प्राप्त हूआ सो अंतःकरण बुद्धि कह्या जावै है और स्मरणरूप वृत्तिआकार परिणामकूं प्राप्तहूआ सो अंतःकरण चित्त कह्या जावै है और अभिमानरूपवृत्ति आकारपरिणामकूं प्राप्तहूआ सो अंतःकरण अहंकार कह्या जावै है। और सो अंतःकरण पादतैं लेके मस्तकपर्यंत संपूर्णशरीरविषे व्याप्त होइकै रहे है। और वृत्ति, ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म, संस्कार इत्यादिक सर्वधर्म ता अंतः-करणके हीं हैं। आत्मा तिन सर्व धर्मोंतैं रहित निर्गुण निष्क्रिय है। तहां श्रुति—कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मनः एव। अर्थ यह—इच्छा संकल्प संशय श्रद्धा अश्रद्धा धैर्य अधैर्य लज्जा वृत्तिज्ञान भय यह सर्व अन्तः-

करणरूप मनके ही धर्म हैं। यह श्रुति ता अन्तःकरणके हीं इच्छा संकल्पादि धर्म कहे हैं। तथा—साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। (अर्थ यह सर्व साक्षी चेतन क्लेशादिसे रहित एवं निर्गुण है) यह श्रुति आत्माकूं सर्वगुणोंतैं रहित निर्गुण तथा निष्क्रिय कहे है इति ॥

इंद्रिय गण तथा प्राणोंकी उत्पत्ति—और तिन आकाशादिक पंचभूतोंविषे एकएकभूतके सत्त्व गुणतैं यथा क्रमतैं श्रोत्र १, त्वक् २, चक्षु ३, रसन ४, घ्राण ५ यह पंच ज्ञानइंद्रिय उत्पन्न होते भये। ते श्रोत्रादिक पंच इंद्रिय शब्दस्पर्शादिक विषयोंके ज्ञानके हीं हेतु होवै हैं। यातैं तिन श्रोत्रादिक पंच इंद्रियोंकूं ज्ञानइंद्रिय कहे हैं। और तिन आकाशादिक पंचभूतोंके मिल्ये हूए रजोगुणतैं प्राण उत्पन्न होता भया, सो प्राण क्रियारूप उपाधिके भेदतैं अथवा स्थानरूप उपाधिके भेदतैं प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान यह पञ्च प्रकारका होता भया। सो प्राणकी क्रियारूप उपाधि तथा स्थानरूप उपाधि पूर्व वायुनिरूपणविषे कथन करि आये हैं, सो ईहां भी जानिलेणा। और तिन आकाशादिक पंचभूतोंविषे एक एक भूतोंके रजो गुणतैं यथाक्रमतैं वाक् १, पाणि २, पाद ३, उपस्थ ४, पायु ५ यह पञ्चकर्म इंद्रिय उत्पन्न होते भये। यह वाकादिक पंचइंद्रिय वचनादिक क्रियाके हीं हेतु होवै हैं। यातैं इन वाकादिक पांचोंकूं कर्म इंद्रिय कहे हैं इतनैं करिकै आकाशादिक पंचसूक्ष्मभूतोंकी सृष्टि कथन करी ॥

पञ्चीकरण प्रक्रिया तथा उसका उपयोग—अब आकाशादिक पंचस्थूलभूतोंकी सृष्टि कथन करे हैं, तहां तमोगुण प्रधान ते आकाशादिक पंचसूक्ष्मभूत पंचीकरण भावकूं प्राप्त होते भये अर्थात् ते आकाशादिक पंचभूत प्रथम समान दो दो विभाग होइकै तिन दोनोंविषे एक एक विभागकूं पृथक् राखिकै दूसरे विभागके च्यारि च्यारि विभाग करिकै आपणेतैं भिन्न एक एक भूतविषे एक एक विभागकूं दे करिकै पंचीकरण भावकूं प्राप्त होते भये ता पंचीकरण करिकै ते आकाशादिक पंचभूत स्थूलभावकूं प्राप्त होते भये तिन स्थूलपंचभूतोंतैं यह देहादिक स्थूल जगत् उत्पन्न होता भया इति ॥

उपादान तथा निमित्तकारण—इस प्रकार ता एक हीं मायाविशिष्ट ईश्वरतैं यह स्थूलसूक्ष्मरूप सर्वजगत् उत्पन्न होता भया। और जैसे ऊर्णनाभि जंतु आपणेतैं तन्तुकूं उत्पन्न करे है ता तंतुका सो ऊर्णनाभि जंतु हीं उपादानकारण तथा निमित्तकारण होवै है तैसे सो मायाविशिष्ट एक ईश्वर हीं तिस आकाशादिक जगत्का उपादानकारण तथा निमित्तकारण होवै है। तहां मायाअंशकी प्रधानता करिकै तौं सो ईश्वर ता जगत्का उपादानकारण होवै है। और चेतनअंशकी प्रधानता करिकै कर्त्तारूप निमित्तकारण होवै है। या कारणतैं हीं इस जगतविषे अस्ति, भाति, प्रिय यह तीन अंश तौं ता चेतनके प्रतीत होवै हैं और नाम, रूप यह दो अंश ता मायाके प्रतीत होवै हैं ॥ आत्माकी ईश्वरादि संज्ञा—और सो पूर्व उक्त मायाविशिष्ट ईश्वर हीं ता समष्टि सूक्ष्मप्रपञ्चके तादात्म्यअभिमान करिकै हिरण्यगर्भसंज्ञाकूं प्राप्त होता

भया । इसी हिरण्यगर्भकूं सूत्रात्मा भी कहे हैं । और सो ईश्वर हीं ता समष्टिस्थूल प्रपंचके तादात्म्यअभिमान करिकै विराट्संज्ञाकूं प्राप्त होता भया । इसी विराट्कूं वैश्वानर भी कहे हैं इति । इस प्रकार सो पूर्वउक्त अविद्याविशिष्ट चेतनरूप जीवात्मा भी व्यष्टिस्थूल शरीरके तादात्म्यअभिमान करिकै विश्वसंज्ञाकूं प्राप्त होता भया और व्यष्टिसूक्ष्मशरीरके तादात्म्य-अभिमान करिकै तैजससंज्ञाकूं प्राप्त होता भया और व्यष्टिकारणशरीरके तादात्म्यअभिमान करिकै प्राज्ञ संज्ञाकूं प्राप्त होता भया ॥

तीन प्रकारके शरीर--तहां सुषुप्तिविषे स्थित अज्ञानका नाम कारणशरीर है और पूर्वउक्त पंच ज्ञान इंद्रिय पंच कर्मइंद्रिय पंच प्राण मन बुद्धि इन सप्तदश तत्त्वोंके समूहका नाम सूक्ष्मशरीर है । यह सूक्ष्म शरीर हीं मरणतैं अनंतर पुण्यपापकर्मके वशतैं उत्कृष्ट निकृष्ट लोकोंविषे जावै है तथा मोक्षपर्यंत रहे है, एक तत्त्वज्ञान करिकै हीं इस सूक्ष्मशरीरका भंग होवै है । ता तत्त्वज्ञानतैं विना अन्य किसी उपाय करिकै ता सूक्ष्मशरीरका भंग होता नहीं इसी । सूक्ष्मशरीरकूं लिंगशरीरभी कहे हैं ।

पञ्चकोश—और जैसे तरवारकूं काष्ठमय कोश आवृत्त करे है तैसे आत्माकूं आवृत्त करणेहारे जे अन्नमय १, प्राणमय २, मनोमय ३, विज्ञानमय ४, आनंदमय ५ यह पंच-कोश हैं । ते पंचकोश भी तिन उक्त तीन शरीरोंविषे हीं अन्तर्भूत हैं । तहां ता स्थूलशरीर-विषे तौं अन्नमयकोशका अंतर्भाव है अर्थात् इस स्थूलशरीरका नाम अन्नमय कोश है । और प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय इन तीन शरीरोंका तौं ता उक्त सूक्ष्मशरीरविषे अंतर्भाव है । तहां पूर्वउक्त वाकादिक पंच कर्मइंद्रियसहित प्राणकूं प्राणमय कोश कहे हैं । और श्रोत्रा-दिक पंच ज्ञानइंद्रिय सहित मनकूं मनोमय कोश कहे हैं । और तिन पंचज्ञान इंद्रिय सहित बुद्धिकूं विज्ञानमय कोश कहे हैं और उक्त कारणशरीरकूं आनंदमय कोश कहे हैं । ऐसे आत्माके आच्छादक अन्नमयादिक पंचकोशोंविषे हीं बहुत चार्वाकादिक वादीयोंकूं आत्म-बुद्धि होइ रही है । सा देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धि हीं इस जीवके अनर्थका कारण है । इनका आत्मापर प्रभाव—अर्थात् वास्तवतैं असङ्ग, निर्विकार, निर्गुण, निष्क्रिय हूआ भी यह आत्मा ता विद्याके वशतैं तिन स्थूलसूक्ष्मादिक शरीरोंके तादात्म्यअभिमानतैं तिन शरीरोंके जन्ममरण हर्षशोक क्षुधापिपासा इत्यादिक धर्मोंकूं आपणेविषे मानिकै पुण्यपाप कर्मके वशतैं अनेक ऊँचनीच योनियोंकूं प्राप्त होवै है । गुरूपदेशद्वारा, विवेकज्ञानसे मोक्ष—और सो जीवात्मा जबी किसी पुण्यकर्मके प्रभावतैं अधिकारी मनुष्यशरीरकूं प्राप्त होइकै तथा इस संसारविषे नानाप्रकारके दोषोंके दर्शनतैं वैराग्यकूं प्राप्त होइकै मोक्षकी इच्छा करता हूआ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके शरणकूं जावै है तथा ता गुरुके मुखतैं । अद्वैतबोधक श्रुतिवाक्य—प्रज्ञानं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि अयमात्मा ब्रह्म । ( अर्थ यह—जिससे जानता है

उसका नाम ब्रह्म है। मैं ब्रह्म हूं, वही ब्रह्म तूं है। यह स्वप्रकाशापरोक्ष अन्तरात्मा ब्रह्म है।) इत्यादिक जीव ब्रह्मके अभेद बोधक महावाक्योंका श्रवण करे है। तथा ता श्रवण कऱ्येहूए अर्थका मनन, निदिध्यासन करे है। तबी इस जीवात्माकूं आपणे वास्तवशुद्धब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार होवै है अर्थात् मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारका साक्षात्कार होवै है। ता ब्रह्म साक्षात्कार करिकै इस जीवात्माका सो माया अविद्यारूप अज्ञान निवृत्त होइ जावै है ता अज्ञानके निवृत्तहूए ता अज्ञान करिकै कल्पित यह संसार भी आपे हीं निवृत्त होइ जावै है। जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके साक्षात्कार करिकै ता रज्जुके अज्ञानके निवृत्तहूए ता अज्ञान कल्पित सर्पादिक भी आप हीं निवृत्त होइ जावै हैं। ईहां यह तात्पर्य—है मंदअंधकारविषे स्थित रज्जुविषे प्रतीत भया जो सर्प है सो सर्प सत् भी कह्या जावै नहीं तथा असत् भी कह्या जावै नहीं। काहेतैं? सो सर्प जो कदाचित् रज्जुकी न्यांई सत् होवै तौं जैसे ता रज्जुके ज्ञानतैं ता रज्जुकी निवृत्ति होती नहीं तैसे ता रज्जुके ज्ञानतैं ता सत्सर्पकी भी निवृत्ति नहीं। होवैगी और ता रज्जुके ज्ञानतैं ता सर्पकी निवृत्ति तौं सर्वलोकोंकूं अनुभव सिद्ध है। यातैं सो सर्प सत् भी कह्या जाता नहीं तैसे जो सर्प असत् भी कह्या जाता नहीं। काहेतैं? सो सर्प जो कदाचित् वंध्यापुत्र नरश्रृङ्गकी न्यांई असत् होवै तौं जैसे असत् वंध्यापुत्रकी तथा नरशृंगकी कदाचित् भी प्रतीति होती नहीं। तैसे ता असत्सर्पकी भी कदाचित् भी प्रतीति नहीं होणी चाहिये और ता सर्पकी प्रतीति तौं लोकोंकूं होवै है। यातैं सो सर्प असत् भी कह्या जावै नहीं। परिशेषतैं सो सर्प सत् असत्तैं विलक्षण अनिर्वचनीय हीं है। इस प्रकार शुक्तिविषे रजत, मरुभूमिविषे जल, आकाशविषे गन्धर्वनगर, स्वप्नके पदार्थ इत्यादिक सर्व अनिर्वचनीय हीं हैं। अनिर्वचनीय होणेतैं हीं ते रज्जुसर्पादिक सर्व पदार्थ मिथ्या हीं हैं। ऐसे मिथ्यासर्पादिकोंकी निवृत्ति ता रज्जुआदिक अधिष्ठानके साक्षात्कारतै हीं होवै है। तैसे यह कारण अज्ञान सहित प्रपंच भी सत् असत्तैं विलक्षण अनिर्वचनीय होणेतैं मिथ्या हीं है। तहां—भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः। ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते। (अर्थ यह—उसके अभिध्यान, योजन और तत्त्वभावसे फिर अन्तमें विश्वमायाकी निवृत्ति होजाती है। ज्ञानके द्वारा जिनकी आत्माका अज्ञान नष्ट होगया है। द्वैतदृष्टि पैदा करनेवाले अज्ञानके अत्यन्त नष्ट होजानेपर।) इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंविषे तत्त्वज्ञान करिकै अज्ञानकी निवृत्ति कथन करी है। और ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषोंकूं सा अज्ञानकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध भी है। यातैं सो अज्ञानसहित प्रपंच सत् भी कह्या जाता नहीं। जो कदाचित् सो अज्ञानसहित प्रपंच सत् होता तौं सत् आत्माकी न्यांई तिसकी निवृत्ति नहीं होती और सर्व लोकोंकूं सो अज्ञानसहित प्रपंच प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है। यातैं सो प्रपंच असत् भी कह्या जाता नहीं। जो कदाचित् सो

अज्ञानसहित प्रपंच वंध्यापुत्र नरशृंगकी न्यांई असत् होता तौं ता वंध्यापुत्र नरशृंगकी न्यांई सो प्रपंच किसीकूं भी प्रतीत नहीं होता । पारिशेषतैं ता सत् असततैं विलक्षण अनिर्वचनीय होणेतैं सो अज्ञानसहित सर्वप्रपंच मिथ्या हीं है । तहां श्रुति अतोऽन्यदार्त्तम् । मायामात्रमिदं द्वैतम् । विकल्पो न हि वस्तु । न ह्यस्ति द्वैतसिद्धिः असत्त्वादन्यस्य । ( अर्थ यह— यही अमृत अभय ब्रह्म है उसके सिवा सब मिथ्या है यह सब द्वैत माया मात्र यानी वास्तवमें मिथ्या है । कल्पना यानी कल्पना किये गये नाम रूप वास्तविक वस्तु नहीं हैं । द्वैतसिद्धि नहीं है अन्यके न होनेसे अद्वैत हीं है ) इत्यादिक अनेक श्रुतियां ता प्रपंचकूं मिथ्या हीं कहे हैं । ऐसे मिथ्याप्रपंचकी निवृत्ति ता अधिष्ठानरुप ब्रह्मके साक्षात्कार करिकै संभवै है । इस प्रकार प्रत्यक्अभिन्नब्रह्मके साक्षात्कार करिकै अज्ञानसहित सर्वप्रपंचरूप अनर्थके निवृत्तहूए इस जीवात्माकी जो जीवईश्वरविभागतैं रहित शुद्धब्रह्मरूप करिकै स्थिति है । यह हीं इस जीवात्माका मोक्ष है । तहां श्रुति ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति । अर्थ यह—ब्रह्मके साक्षात्कार वाला पुरुष ब्रह्मरूप हीं होवै है इति ॥

वेदान्तियोंके मतके न्यायविरुद्ध अंशका खण्डन ।

सो यह वेदांतीयोंका मत भी समीचीन नहीं है । मायावादका खण्डन—काहेतैं ? प्रत्यक्षादि प्रमाणों करिकै सिद्ध इस प्रपंचविषे मिथ्यापणा हीं संभवता नहीं । या कारणतैं हीं ता प्रपंचकी तत्त्वज्ञान करिकै निवृत्ति भी संभवती नहीं । और ता वेदांतीनैं प्रपंचकी अनिर्वचनीयैंता विषे जो रज्जुसर्पका दृष्टांत कथन कऱ्या था सो भी असंगत हैं । काहेतैं ? तहां भी दोषके वशतैं प्रसिद्ध सतसर्पका हीं ता रज्जुदेशविषे भान होवै है । ता रज्जुविषे अनिर्वचनीयसर्पकी उत्पत्ति विषे कोई भी प्रमाण नहीं है तथा ता अनिर्वचनीय सर्पके प्रागभाव प्रध्वंसाभाव आदिकोंके मानणे विषे गौरव दोषकी भी प्राप्ति होवै है । यातैं ता रज्जुसर्पके दृष्टांत करिकै इस प्रपंच विषे मिथ्यापणा सिद्ध होइ सकै नहीं । किंवा ता वेदांतीनैं इस जगत्‌के मिथ्यापणे जो 'अतोऽन्यदार्त्तं, इत्यादिक श्रुति प्रमाण कथन कऱ्या था ता श्रुतिका भी ता आकाशादिक सर्व प्रपंचके मिथ्याविषे तात्पर्य नहीं है, किंतु ता श्रुतिका जन्यभावपदार्थोंके नश्वरपणेविषे हीं तात्पर्य है । अर्थात् आत्मातैं आदिलैके जितनैंकी आकाश, काल, दिशा, मन, परमाणु आदिक नित्यपदार्थ हैं तिन नित्यपदार्थोंतैं भिन्न सर्वजन्यभावपदार्थ नाशवान् हीं है और जो कदाचित् ता श्रुतिका ब्रह्मतैं भिन्न सर्वजगत्‌के मिथ्यापणेविषे तात्पर्य अंगीकार करिये तौ ता जगत्‌के अंतर्भूत होणेतैं वेद भी मिथ्या हीं होवैगा । ता वेदके मिथ्याहूए ता मिथ्या वेद करिकै प्रतिपादित ब्रह्मकूं भी मिथ्यापणा हीं प्राप्त होवैगा ता आत्मारूप ब्रह्मके मिथ्याहूए ता वेदांतमतविषे शून्यवादी माध्यमिकके मतका प्रवेश होवैगा । या कारणतै हीं प्रपंचमिथ्यावादी वेदांतीयोंका नैयायिकोंनैं यह उपहास कऱ्या है । तहां श्लोक—प्रत्यक्षादिप्रमासिद्ध

विरुद्धार्थप्रबोधकः। वेदान्तो यदि शास्त्रं स्याद्बौद्धैः किमपराध्यते। अर्थ यह—प्रत्यक्षादि प्रमाणों करिकै सिद्ध जो यह जगत् है ता सर्वजगत्के मिथ्यापणेकूं बोधन करणे हारा वेदांत भी जो कदाचित् शास्त्र होता होवै तौ शून्यवादी बौद्धादिकोंके ग्रंथोंनैं क्या अपराध कऱ्या है अर्थात् ते बौद्धोंके ग्रंथ भी शास्त्र होणे चाहियें इति॥

वेदान्तियोंके ज्ञानस्वरूपतापक्षका खण्डन तथा ज्ञानाश्रयताका समर्थन।

किंवा ता वेदांतीनैं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। इस श्रुति प्रमाणतैं जो ब्रह्मकूं नित्यज्ञानस्वरूप मान्या था सो भी असंगत है। काहेतैं? ता वेदांतीसैं यह पूछा चाहिये ता श्रुति प्रमाणतैं जीव ईश्वर साधारण ब्रह्ममात्रकूं ज्ञानरूपता है अथवा केवल जीवात्माकूं हीं ज्ञानरूपता है अथवा केवल ईश्वरकूं हीं ज्ञानरूपता है? तहां प्रथमपक्षके अंगीकार कीये हूए ता जीवात्माकूं भी ज्ञानरूपता प्राप्त होवैगी। ताके विषे भी यह कह्या चाहिये सो ज्ञान निर्विषय है अथवा सविषय है? तहां सो ज्ञान निर्विषय है यह प्रथमपक्ष तौं संभवता नहीं। काहेतैं? ता निर्विषयज्ञानविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। जो जो ज्ञान होवै है सो सो सविषय हीं होवै है और सो ज्ञान सविषय है यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करौ, ताके विषे भी यह कह्या चाहिये सो ज्ञान सर्व जगत् विषयक है अथवा यत्किंचित् वस्तु विषयक है। तहां सो ज्ञान सर्वजगत्विषयक है यह प्रथमपक्ष जो अंगीकार करौ तौं सर्वजीवात्मा सर्वज्ञ होणे चाहियें तथा सुमेरु आदिकोंकूं भी सर्वजगत्के अंतर्भूत होणेतैं सुमेरुपर्वत मेरा विषय है या प्रकारका अनुभव सर्वजीवोंकूं होणा चाहिये। सो ऐसा अनुभव किसी जीवकूं होता नहीं और सो ज्ञान यत्किंचित्वस्तुविषयक है यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करौ, सो भी संभवता नहीं। काहेतैं; ता यत्किंचित् शब्द करिकै एक घटव्यक्तिका हीं ग्रहण होवै है पटादिक वस्तुवोंका ग्रहण होता नहीं। अथवा ता यत्किंचित् शब्द करिकै एकपटव्यक्तिका हीं ग्रहण होवे है घटादिक वस्तुवोंका ग्रहण होता नहीं। इस प्रकारके एक अर्थका साधक कोई युक्ति है नहीं। यातैं ता विनिगमनाविरहतैं इस पक्षविषे भी ता ज्ञानकूं सर्वजगत्विषयकत्व हीं प्राप्त होवैगा यातैं इस पक्षविषे भी ता जीवात्माकूं सर्वज्ञताकी प्राप्तिरूप दोष हीं प्राप्त होवैगा, किंवा सो सविषयज्ञानरूप जीवात्मा सुषुप्तिविषे भी विद्यमान है। यातैं ता सुषुप्ति अवस्थाविषे भी विषयका भान होणा चाहिये। और ता सुषुप्ति अवस्थाविषे किसी भी विषयका भान होता नहीं। यातैं जीव ईश्वर साधारण ब्रह्ममात्रकूं ज्ञानरूपता है यह प्रथमपक्ष संभवता नहीं। और ता उक्त श्रुति प्रमाणतैं केवल जीवात्माकूं हीं ज्ञानरूपता है इस द्वितीयपक्षविषे भी ता पूर्वउक्त दोषकी हीं प्राप्ति होवै है। यातैं सो द्वितीय पक्ष भी संभवता नहीं और ता उक्त श्रुति प्रमाणतैं केवल ईश्वरकूं हीं ज्ञानरूपता है यह तीसरा पक्ष जो अंगीकार करौ तौं इस पक्षविषे यद्यपि सो सर्वज्ञताकी प्राप्तिरूप दोष तौं प्राप्त

होता नहीं । जिस कारणतैं सर्वशास्त्रकार ता ईश्वरविषे सर्वज्ञता हीं माने हैं । कोई भी शास्त्रकार ता ईश्वरकूं अल्पज्ञ मानता नहीं । तथापि ता ईश्वरकूं ज्ञानरूपता संभवती नहीं । काहेतैं? **यः सर्वज्ञ सर्ववित् ।** अर्थ यह—जो ईश्वर सर्वजगत्कूं सामान्यरूपतैं विषय करणेहारे ज्ञानवाला है । सोई हीं ईश्वर ता सर्वजगत्कूं विशेषरूप करिकै विषय करणेहारे ज्ञानवाला है । इस श्रुति प्रमाणतैं ता ईश्वरविषे सर्व जगत्विषयक नित्यज्ञानका आश्रयपणा हीं स्पष्ट प्रतीत होवै है । ज्ञानस्वरूपता प्रतीत होती नहीं । यातैं इस श्रुतिके अनुसार—**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ।** इत्यादिक श्रुतियोंविषे भी ज्ञानपद करिकै ज्ञानके आश्रयका हीं ग्रहण करणा उचित है । इस प्रकार ता उक्त श्रुतिविषे स्थित आनंदशब्द करिकै भी ता आनंदके आश्रयका हीं ग्रहण करणा उचित है । यद्यपि सो सुखरूप आनंद ता ईश्वर विषे रहता नहीं, किंतु जीवात्माविषे हीं सो आनंद रहे है । यातैं ता ब्रह्मरूप ईश्वरविषे ता आनंदकी आश्रयता भी संभवती नहीं । तथापि तहां आनंदशब्द करिकै लक्षणावृत्तितैं दुःखाभावका हीं ग्रहण करणा । सो दुःखाभाव ता ईश्वरविषे भी रहे है और लोकविषे भी ता दुःखाभावविषे सुखशब्दका प्रयोग देखणेमें आवे है । जैसे भार करिकै दुःखी पुरुषका जबी सो भार निवृत्त होवे है तबी सो पुरुष मैं अबी सुखी हूआ हूं या प्रकारका वचन कहे है । तहां दुःखाभावविषे हीं ता सुखशब्दका प्रयोग होवै है तैसे ता ईश्वरके स्वरूपबोधक श्रुतिविषे स्थित आनंद शब्द करिकै भी ता दुःखाभावका ग्रहण संभवै है अथवा ता उक्त श्रुतिके बलतैं ता ईश्वरविषे नित्यज्ञानकी न्याईं सो नित्य आनंद भी रहो । तथापि सो ईश्वर आनंदरूप नहीं है । काहेतैं ? **असुखं ब्रह्म ।** यह श्रुति ता ईश्वरकूं सुखतैं भिन्न कहे है और जो वस्तु सुखतैं भिन्न होवै है सो वस्तु सुखरूप होता नहीं । जैसे सुखतैं भिन्न दुःख सुखरूप नहीं है जो सुखतैं भिन्न वस्तुकूं भी सुखरूप मानिये तौं ता सुखतैं भिन्न दुःखकूं भी सुखरूपता होणी चाहिये । किंवा **आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ।** अर्थ यह—यह अधिकारी पुरुष ब्रह्मके आनन्दकूं जानता हूआ किसीतैं भी भयकूं प्राप्त होता नहीं । इस श्रुतिविषे ब्रह्मका तथा आनन्दका भेद हीं स्पष्ट कथन कऱ्या है । यातैं ता उक्त श्रुति करिकै ता ब्रह्मरूप ईश्वरकूं आनन्दरूपता संभवता नहीं किंतु ता आनंदगुणकी अधिकरणता हीं संभवै है

अभेदवादका खण्डन—किंवा ता वेदांतीनैं जो जीवईश्वरका अभेद कथन कऱ्या है था सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? इस लोकविषे कोई जीव सुखी है कोई जीव दुःखी है तथा कोई जीव ज्ञानी है कोई जीव अज्ञानी है इस प्रकारकी जीवोंकी विलक्षणता लोकविषे प्रसिद्ध प्रतीत होवै है । सा विलक्षणता ता जीवात्माके नानापणेतैं विना सम्भवती नहीं । जो कदाचित् सर्वशरीरोंविषे एक हीं जीवात्मा अंगीकार करिये तौं एकशरीरविषे सुखके वा दुःखके

हूए सर्वशरीरोंविषे सुख वा दुःख होणा चाहिये । सो ऐसा होता नहीं । यातैं तिन सुख-दुःखादिकोंकी विचित्रतातैं ते जीवात्मा नाना हीं मानणे होवैंगे । ऐसे अनेकजीवोंके साथि ता एक ईश्वरका अभेद सम्भवता नहीं । जो कदाचित् ता एक ईश्वरकूं अनेक जीवरूप मानोंगे तौं ता ईश्वरविषे एकत्व तथा अनेकत्व दोनों प्राप्त होवैंगे सो अत्यन्तविरुद्ध है । काहेतैं ? जिस वस्तुविषे एकत्व धर्म रहे है तिस वस्तुविषे अनेकत्व धर्म रहता नहीं । और जिस वस्तुविषे सो अनेकत्वधर्म रहे है तिस वस्तुविषे सो एकत्वधर्म रहता नहीं । यातैं ता ईश्वरतैं जीवात्माकूं भिन्न हीं मान्या चाहिये । किंवा ता एकईश्वरके साथि जो नाना जीवोंका अभेद अंगीकार करिये तौं कोई जीव बद्ध है, कोई जीव मुक्त है, इस प्रकारतैं बन्धमोक्षकी व्यवस्था हीं नहीं सम्भवैंगी । काहेतैं ? **तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वनियमात्** । इस पूर्वउक्त न्याय करिकै ता एक ईश्वरतैं अभिन्न बद्धजीवोंका तथा मुक्तजीवोंका परस्पर भी अभेद हीं सिद्ध होवैंगा । ता करिकै बद्धजीवोंविषे भी मुक्तपणा प्राप्त होवैंगा तथा मुक्तजीवोंविषे भी बद्धपणा प्राप्त होवैंगा अत्यन्त सो असंगत है । यातैं ता एक ईश्वरके साथि नाना जीवात्मावोंका अभेद सम्भवता नहीं । अभेदबोधक श्रुतिस्तुतिरूप अर्थवाद—किंवा ता वेदांतीनैं जीव ईश्वरके अभेदविषे जो पूर्व—**प्रज्ञानं ब्रह्म । अहंब्रह्मास्मि तत्त्वमसि । अयमात्मा ब्रह्म** । इत्यादिक श्रुतिरूप प्रमाण कह्या था तिन श्रुतिवचनोंतैं भी सा जीवईश्वरकी एकता सिद्ध होवै नहीं । काहेतैं ? ते सर्ववाक्य इस कर्मकर्त्ता जीवात्माकी स्तुति करतेहूए स्तुति अर्थवादरूप हीं हैं अर्थात् यह कर्मकर्त्ता जीव ईश्वर हीं है । या प्रकारतैं ता कर्मकर्त्ता जीवकी स्तुति करतेहूए ते वाक्य स्तुति अर्थवादरूप हीं है । तिन स्तुति अर्थवादरूप वाक्योंतैं इस जीवात्माकूं ईश्वररूपता सिद्ध होवै नहीं । जो कदाचित् स्तुतिरूप अर्थवादतैं भी ता अभेदकी सिद्धि होती होवै तौं **आदित्यो यूपः यजमानः प्रस्तरः** । (अर्थ यह—यूप हीं आदित्य है प्रस्तरहीयजमान है ) इत्यादिक स्तुति अर्थवादरूप वचनोंतैं काष्ठमय स्तंभनामा यूपकूं आदित्यरूपता होणी चाहिये, दर्भोंकी मुष्टिरूप प्रस्तरकूं यजमानरूपता होणी चाहिये; सो प्रत्यक्षप्रमाणसैं विरुद्ध है । तैसे तिन उक्तस्तुति अर्थवादरूप वचनोंतैं ता जीवात्माकूं ईश्वररूपता सिद्ध होवै नहीं । जिस कारणतैं मैं ईश्वर नहीं हूं या प्रकारका जीव ईश्वरके भेद विषयक अनुभव सर्वलोकोंकूं होवै है । तिस अनुभवतैं विरुद्ध अर्थकूं ते वाक्य प्रतिपादन करैंगे नहीं । यातैं ते उक्त श्रुतिवाक्य स्तुति अर्थवादरूप होणेतैं 'आदित्यो यूपः' इत्यादिक वाक्योंकी न्यांई ता अभेदरूप अर्थके साधक नहीं हैं । इति । अथवा ते 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादिक श्रुतिवाक्य उपासनाका हीं विधान करे हैं । काहेतैं ? ईश्वरकी उपासनातैं विना इस अधिकारी पुरुषकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती नहीं । या कारणतैं हीं **ईश्वरमुपासीत** । इत्यादिक श्रुतियोंनैं 'ईश्वरकी उपासना करैं' यह विधान करा है ।

यातैं मुमुक्षुजननैं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति वास्तैं सा ईश्वरकी उपासना अवश्य करी चाहिये । और निकृष्ट वस्तुविषे जो उत्कृष्टवस्तुकी बुद्धि है ताका नाम उपासना है । जैसे नाम वाक् मन इत्यादिक निकृष्टवस्तुवोंविषे उत्कृष्ट ब्रह्मकी बुद्धिरूप उपासना छांदोग्यश्रुतिविषे कथन करी है । तैसे 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादिक वाक्योंनैं भी इस जीवात्माविषे ईश्वरबुद्धिरूप उपासनाका हीं विधान कऱ्या है, ता उपासनाविधायक वाक्योंतैं इस जीवात्माकूं ब्रह्मरूपता सिद्ध होई सकै नहीं । जो कदाचित् उपासनाविधायक वाक्योंतैं भी इस जीवकूं ब्रह्मरूपताकी सिद्धि होती होवै तौं जडरूप करिकै प्रसिद्ध तिन नाम वाक् मनादिकोंकूं भी ब्रह्मरूपता होणी चाहिये सो तुमारेकूं भी अंगीकार नहीं है इति ॥ अथवा **तद्धैके आहुः असद्वा इदमग्र आसीत् ।** यह श्रुति जैसे भ्रांत शून्यवादीयोंके मतका अनुवाद करती हूई पूर्वपक्षरूप है । तैसे—**प्रज्ञानं ब्रह्म । अहंब्रह्मास्मि ।** इत्यादिक श्रुति वचन भी तिन वेदांतीयोंके मतका अनुवाद करते हूए पूर्वपक्षरूप हीं हैं, तिन पूर्वपक्षवाक्योंतैं सो जीवब्रह्मका अभेद सिद्ध होइसकै नहीं जो कदाचित् पूर्वपक्षरूप वाक्यतैं भी उक्त अर्थकी सिद्धि होती होवै तौं ता उक्तपूर्व पक्षरूप श्रुतितैं ता शून्यवादकी भी सिद्धि होणी चाहिये । यातैं तिन उक्तवाक्योंतैं सो जीवब्रह्मका अभेद सिद्ध होता नहीं ।

ब्रह्मवेत्तामें ब्रह्मव्यवहार समानताके कारण है ।

किंवा ता वेदान्तीनैं **ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ।** इस श्रुति प्रमाणतैं जो ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी जीवकूं ब्रह्मरूपता कही थी सो भी असंगत है । काहेतैं ? ता श्रुतिका इस उक्त अर्थविषे तात्पर्य नहीं है, किंतु सो ब्रह्मवेत्ता ज्ञानीपुरुष ब्रह्मके समान होवै है इस अर्थविषे हीं ता श्रुतिका तात्पर्य है । अर्थात् जैसे ईश्वर सर्वदुःखौंतैं रहित है तैसे सो तत्त्ववेत्ता जीवात्मा भी सर्वदुः-खोंतैं रहित होवै है । तात्पर्य यह—जैसे राजातैं भिन्न हूआ भी पुरोहित हस्ती अश्वादिक संपदाकी अधिकता करिकै राजा कह्या जावै है तैसे वास्तवतैं ईश्वरतैं भिन्न हूआ भी यह जीवात्मा तत्त्वज्ञान करिकै सर्वदुःखोंके अभाव हूए ईश्वरनाम करिकै कह्या जावै है । इसी अभिप्राय करिकै—तथा **विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।** ( अर्थ यह—उसी तरह विद्वान् पुण्यपापोंका विधूनन करके निस्तरंग होकर परम समताको प्राप्त होता है ) यह श्रुति सर्वदुःखोंतैं रहित तत्त्ववेत्ता जीवात्माकूं ईश्वरकी साम्यता स्पष्ट हीं प्रति पादन करै है । ईहां निरंजन पद करिकै कथन कऱ्या जो सर्वदुःखोंका अभाव है सोई हीं ता मुक्तजीवविषे ईश्वरकी समानता है इति । किंवा जो कोईक वेदांती ऐसा कहै है संसार दशाविषे तौं जीवात्माका ईश्वरके साथि भेद हीं रहै हैं । और मोक्षदशाविषे तत्त्वज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्तहूए ता जीवात्माका ता ईश्वरके साथि अभेद होवै है सो यह कहणा भी असंगत है । काहेतैं ? सो अन्योन्याभावरूप भेद नित्य है । यातैं ता भेदका नाश हीं संभवता

नहीं । जो कदाचित् नित्यवस्तुका भी नाश होता होवै तौं नित्य आत्माका भी नाश होणा चाहिये, किंवा ता मोक्षदशाविषे जो कदाचित् ता भेदका नाश भी मानोंगे तौं भी ते जीव ईश्वररूप दोनों व्यक्तियां पृथक् हीं बनी रहैंगीयां ।

जीव और ईश्वरकी विभिन्नतामें श्रुति प्रमाण—किंवा केवलपूर्वउक्त युक्तियों करिकै हीं सो जीव ईश्वरका भेद सिद्ध नहीं है । किंतु—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया । द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये । द्वाविमौ पुरुषौ लोके । अर्थ यह—( दोनों सरीखे सखा सुपर्ण एक ही वृक्षपर आश्रित हैं । दो ब्रह्म ज्ञातव्य हैं । लोकमें ये दो पुरुष हैं।)इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृति वचन ता जीवईश्वरके भेदकूं हीं कथन करे हैं तथा पातंजलादिक बहुत शास्त्रोंविषे भी सो जीवईश्वरका भेद हीं कथन कऱ्या है । यातैं सो जीवईश्वरका भेद हीं अंगीकार कऱ्या चाहिये जो। **शंका**—जो कदाचित् जीवात्माकूं ईश्वरतैं भिन्न मानोंगे तथा आकाशादिक जगत्कूं सत्य मानोंगे तौं ब्रह्मकूं अद्वितीयरूप कहणेहारी एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । यह श्रुति असंगत होवैंगी तथा आकाशदिक सर्वजगत्कूं ब्रह्मरूप कहणेहारी—सर्वं खल्विदं ब्रह्म । यह श्रुति भी असंगत होवैंगी । **समाधान**—एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । यह श्रुति अद्वितीयपद करिकै ब्रह्मतैं भिन्न सर्वजगत्के अभावकूं कथन करती नहीं । किंतु ता ब्रह्मरूप ईश्वरविषे रहीहूई जा एकत्व संख्या है ता एकत्वसंख्याके सम नियत विजातीयपदार्थोंकी विलक्षणताकूं हीं कथन करे है । तहां ता ईश्वरविषे जो सर्वजगत्का कर्त्तापणा है तथा नित्य ज्ञान इच्छा प्रयत्नका आश्रयपणा है । यह हीं ता ईश्वरविषे विजातीय जीवादिक पदार्थोंकी विलक्षणता है अर्थात् सर्वजगत्का कर्त्ता तथा नित्यज्ञानादिकोंवाला एक ईश्वर हीं है दूसरा कोई पदार्थ ऐसा है नहीं । इस प्रकारका ता अद्वितीयपदका अर्थ लोकविषे भी प्रसिद्ध है । जैसे जिस पुरुषविषे दूसरे सर्व पुरुषोंतैं अधिक विद्या होवै है तिस विद्वान् पुरुषकूं ' एको विद्वान् अद्वितीयः ' इस प्रकारतैं लोक अद्वितीयरूप करिकै कथन करे हैं तहां सो अद्वितीयपद ता विद्वान्तैं भिन्न सर्वके अभावकूं कथन करता नहीं, किंतु ता विद्वान् पुरुषविषे दूसरे सर्वपुरुषोंतैं विद्याकी अधिकतारूप विलक्षणताकूं हीं कथन करे है तैसे ता श्रुतिविषे स्थित अद्वितीयपद भी ता एक ईश्वरविषे पूर्वउक्तविलक्षणताकूं हीं कथन करे है । यातैं ता श्रुतितैं ब्रह्मतैं भिन्न सर्वजगत्का अभाव सिद्ध होवै नहीं, तैसे सर्वं खल्विदं ब्रह्म । यह श्रुति भी आकाशादिक सर्व जगत्कूं ब्रह्मरूपता कहती नहीं, किंतु यह सर्वजगत् ब्रह्मकरिकै व्याप्त है अर्थात् ता ब्रह्मरूप ईश्वरके संबंधवाला है इस प्रकारके अर्थकूं हीं सा श्रुति प्रतिपादन करे है । जो कदाचित् ता श्रुतितैं इस घटपटादिक सर्वजगत्कूं ब्रह्मरूप मानिये तौं तिन अनित्य जडरूप घटपटादिकोंतैं अभिन्न हूए ता ब्रह्मकूं भी अनित्यरूपता तथा जडरूपता प्राप्त होवैंगी सो अत्यन्त विरुद्ध है। यातैं इस सर्वजगत्कूं ब्रह्मरूपता संभवै नहीं। **शंका**—एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय । अर्थ यह—मैं एक ब्रह्म बहुतरूप होइकै उत्पन्न होवौं । इस श्रुतिविषे ता एक

ब्रह्मकूं हीं सर्व जगतरूपता कथन करी है । जो इस सर्वजगतकूं ब्रह्मरूप नहीं मानेंगे तौं सा उक्तश्रुति असंगत होवैंगी । समाधान-मैं एक ईश्वर घटपटादिक सर्वजगतरूप होवों यह उक्त अर्थ श्रुतिका नहीं है। किंतु मैं निराकार एक ईश्वर भक्त जनोंके उद्धारवासतैं ब्रह्मा विष्णु शिव रूपसैं बहुत होवों यह अर्थ ता श्रुतिका है । काहेतैं ? इस लोकविषे कोई सामान्य जीव भी निकृष्ट होणेकी इच्छा करता नहीं तौं सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसंपन्न सो ईश्वर घटपटादिक जड-प्रपञ्चरूप होणेकी इच्छा कैसे करैंगा, किंतु ऐसी इच्छा ता ईश्वरविषे संभवती नहीं, शंका-ता ब्रह्मतैं जो इस जगतकूं भिन्न मानेंगे तौं ता ब्रह्मविषे सर्वद्वैत प्रपञ्चका निषेध करणेहारी तथा ता अद्वितीय ब्रह्मविषे द्वैतप्रपंचकूं देखनेहारे भेददर्शी पुरुषकूं पुनः पुनः जन्ममरणकी प्राप्ति कथन करणेहारी-नेह नानास्ति किञ्चन । मृत्योः समृत्युमाप्नोति । य इह नानेव पश्यति । यह श्रुति असंगत होवैंगी । समाधान-ता श्रुतिका सो उक्त अर्थ नहीं है किंतु ता श्रुतिका यह अर्थ है ता एक ब्रह्मरूप ईश्वरविषे नाना ईश्वरपणा नहीं है अर्थात् ता एक हीं सर्वज्ञ ईश्वर करिकै इस जगत्की उत्पत्ति आदिक होई सकें है नाना ईश्वर अंगीकार करणे निष्फल हैं इस प्रकार ता एक ईश्वरके विद्यमान हूए भी जो भ्रांत पुरुष नानाईश्वर माने है सो भ्रांतपुरुष पुनः पुनः जन्ममरणकूं प्राप्त होवै है । यातैं मुमुक्षुजननैं नाना ईश्वर मानणे नहीं, किंतु सर्वजगत्का कर्त्ता एक हीं ईश्वर मानणा इस प्रकारका अर्थ ता उक्त श्रुतिका है । यातैं सो उक्तवेदांतीयोंका मत भी समीचीन नहीं है इति । इस प्रकार बौद्धमततैं आदिलैकै वेदान्तमत पर्यंत सर्व मतोंके खण्डन हूए सो पूर्वउक्त नैयायिकोंका मत हीं सर्वदोषोंतैं रहित हूआ सिद्ध होवै है ॥

इति आत्मनिरूपणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

## मनो निरूपण ।

अब नवमैं मनरूप द्रव्यका निरूपण करे है । मनका लक्षण-तहां-सुखाद्युपलब्धि-साधानमिन्द्रियं मनः ॥ १ ॥ अथवा स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत् मनः ॥ २ ॥ अथवा संयोगेनात्मग्राहकेन्द्रियं मनः ॥ ३ ॥ अथवा मनस्त्वजातिमत् मनः ॥ ४ ॥

पहिले लक्षणका अर्थ-अब इन च्यारिलक्षणोंविषे प्रथम लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां 'अहं सुखी अहंदुःखी' इस प्रकारका जो सुखदुःखादिकोंका साक्षात्कार है ता साक्षात्काररूप उपलब्धिका जो कारण होवै तथा इंद्रिय होवै सो मन कह्या जावै है । तहां सो सुखदुःखादिकोंका साक्षात्कार ता मनरूप इंद्रिय करिकै हीं होवै है अन्य किसी इंद्रिय करिकै होता नहीं । यातैं यह उक्त मनका लक्षण संभवै है ।

पदकृत्य-तहां 'उपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः' इतनामात्र हीं जो ता मनका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'सुखादि' यह पद नहीं कथन करते तौं चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ता मनके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ता मनकी न्यांई ते चक्षुआदिक इंद्रिय भी रूपादिक पदार्थोंके

साक्षात्कारके साधन हीं हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता उक्तलक्षणविषे 'सुखादि' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते चक्षुआदिक इंद्रिय रूपादिकोंके साक्षात्कारके साधन हूए भी तिन सुखदुःखादिकोंके साक्षात्कारके साधन हैं नहीं। यातैं तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'सुखाद्युपलब्धिसाधनं मनः' इतनामात्र हीं जो ता मनका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'इंद्रियम्' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्ममनके संयोगविषे तथा आत्माविषे तथा कालदिशा अदृष्टादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता सुखदुःखादिकोंके साक्षात्कारका सो आत्ममनः संयोग तौं असमवायिकारण है और सो आत्मा समवायिकारण है और ते कालादिक निमित्तकारण हैं। तिन सर्वोंविषे अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणे वासतै ' इन्द्रियम् ' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन आत्ममनःसंयोगादिकोंविषे सो इंद्रियपणा है नहीं यातैं तिनोंविषे ता उक्तमनके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥

दूसरे लक्षणका अर्थ।

अब **स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत् मनः**। इस द्वितीय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां जो द्रव्य स्पर्शतैं रहित हूआ क्रियावाला होवै है सो द्रव्य मन कह्या जावै है। ऐसा स्पर्शगुणतैं रहित तथा क्रियावाला सो मन हीं है। यातैं यह उक्त मनका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां ' क्रियावत् मनः' इतनामात्र हीं जो ता मनका लक्षण करते ता लक्षण विषे 'स्पर्शरहितत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारों द्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता मनकी न्यांई ते पृथिवी आदिक च्यारों भी ता क्रियावाले हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे ' स्पर्श रहितत्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते पृथिवी आदिक च्यारोंद्रव्य ता स्पर्शगुणतैं रहित नहीं हैं किंतु ता स्पर्शगुणवाले हीं हैं। यातैं तिनोंविषे ता उक्त मनके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'स्पर्शरहितं मनः ' इतनामात्र हीं जो ता मनका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' क्रियावत् 'यह पद नहीं कथन करते तौं आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारों विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ता मनकी न्यांई ते आकाशादिक भी ता स्पर्शगुणतैं रहित हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' क्रियावत् ' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते आकाशादिक च्यारों विभु द्रव्य क्रियावाले नहीं हैं। यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ २ ॥

तीसरे लक्षणका निरूपण।

अब **संयोगेनात्मग्राहकेन्द्रियं मनः**। इस तृतीयलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां जो द्रव्य संयोगसंबंध करिकै आत्माका ग्राहक होवै है तथा इंद्रिय होवै है सो द्रव्य मन कह्या

जावै है। तहां जबी मनका आत्माके साथि संयोगसंबंध होवै है तबी 'अहं सुखी अहं दुःखी' या प्रकारका आत्माका ज्ञान होवै हैं। यातैं सो मन संयोगसंबंध करिकै आत्माका ग्राहक भी है, तथा इंद्रिय भी है। यातैं यह उक्त मनका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'आत्मग्राहकेंद्रियं मनः' इतनामात्र हीं जो ता मनका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संयोगेन' यह पद नहीं कथन करते तौं चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? अस्मदीयोऽयं घटः' अर्थ यह—हमारा यह घट है। इस चाक्षुषप्रतीतिविषे सो चक्षुइंद्रिय आत्माका स्मरणज्ञान रूप ज्ञान लक्षणानामा संबंध करिकै आत्माकूं भी ग्रहण करे है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'संयोगेन' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते चक्षुआदिक इंद्रिय संयोगसम्बन्ध करिकै ता आत्माके ग्राहक है नहीं, किंतु घटादिक बाह्यद्रव्योंके हीं ग्राहक हैं। यातैं तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'संयोगेन ग्राहकेन्द्रियं मनः' इतनामात्र हीं जो ता मनका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'आत्म' यह पद नहीं कथन करते तौं पुनः तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता मनकी न्यांई ते चक्षुआदिक इंद्रिय भी संयोग संबंध करिकै घटादिक द्रव्योंके ग्राहक हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'आत्म' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते चक्षुआदिक इंद्रिय संयोगसंबंध करिकै आत्माके ग्राहक नहीं हैं। यातैं तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'संयोगेनात्मग्राहकं मनः' इतनामात्र हीं जो ता मनका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'इंद्रियम्' यह पद नहीं कथन करते तौं शरीरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? शरीरके संबंधतैं विना आत्माविषे कोई भी ज्ञान उत्पन्न होता नहीं। किंतु शरीरावच्छिन्न आत्माविषे हीं ते ज्ञानादिक गुण उत्पन्न होवै हैं। यातैं जैसे सो मन संयोगसंबंध करिकै आत्माके साक्षात्कारका कारण है। तैसे सो शरीर भी संयोगसम्बन्ध करिकै ता आत्मसाक्षात्कारका कारण है। ता शरीरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'इंद्रियम्' यह पद कथन कऱ्या है तहां ता शरीरविषे इंद्रियरूपता है नहीं। यातैं ता शरीरविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ ३॥

चौथे लक्षणका निरूपण।

अब मनस्त्वजातिमत् मनः। इस चतुर्थलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां जो द्रव्य समवायसम्बन्ध करिकै मनस्त्वजातिवाला होवै है सो द्रव्य मन कह्या जावै है। तहां सा मनस्त्वजाति समवायसम्बन्ध करिकै ता मनविषे हीं रहे है अन्यकिसी पदार्थविषे रहता नहीं। यातैं यह मनत्स्वजातिमत्त्वरूप मनका लक्षण सम्भवै है इति ॥ ४ ॥

अनुमानतैं मनस्त्वजातिकी सिद्धि।

यह मनस्त्वजातिमत्त्वरूप मनका लक्षण तबी सम्भवै जबी सा मनस्त्वजाति किसी प्रमाण करिकै सिद्ध होवै है, ता मनस्त्वजातिकी सिद्धितैं विना सो लक्षण सम्भवता नहीं। तहां ता मनका प्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं ता मनवृत्ति मनस्त्वजातिविषे प्रत्यक्षप्रमाण तौं सम्भवता नहीं। किंतु ता प्रत्यक्षतैं भिन्न हीं कोई प्रमाण कह्या चाहिये। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब अनुमान प्रमाण करिकै ता मनस्त्वजातिकी सिद्धि करे हैं। **मनो निष्ठा या मानसप्रत्यक्षकरणता सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना करणतात्वात् चक्षुर्निष्ठकरणतावत्।** अर्थ यह— मनविषे रही हूई जा मानसप्रत्यक्षकी करणता है सा करणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणेयोग्य है करणता होणेतैं। जा जा करणता होवै है सा सा किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है। जैसे चक्षुविषे रही हूई जा चाक्षुषप्रत्यक्षकी करणता है सा करणता चक्षुत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न हीं है। तैसे सा मननिष्ठकरणता भी किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न अवश्य होवैंगी। सो ता करणताका अवच्छेदक धर्म मनस्त्वजाति हीं है। इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै ता मनस्त्वजातिके सिद्धहूए सो मनस्त्वजातिमत्त्वरूप मनका लक्षण सम्भवै है इति॥

मनकी सिद्धिके विषे प्रमाण।

इन उक्त लक्षणकोंकरिकै ता मनकी सिद्धिहूए भी प्रमाणके अभाव होणेतैं ता मनकी सिद्धि होइ सकै नहीं। जिस कारणतैं लक्षण प्रमाण दोनों करिकै हीं वस्तुकी सिद्धि होवै है केवल लक्षणमात्रतैं वस्तुकी सिद्धि होवै नहीं। तहां ता मनविषे महत्त्वपरिमाण तथा उद्भूतरूप स्पर्श है नहीं। यातैं प्रत्यक्षप्रमाण करिकै तौं ता मनकी सिद्धि सम्भवै नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्त हूए—अब प्रथमलक्षण करिकै सूचन कऱ्येहूए अनुमान प्रमाण करिकै ता मनकी सिद्धि करे हैं। **सुखादिसाक्षात्कारः करणसाध्यः जन्यसाक्षात्कारत्वात् चाक्षुषसाक्षात्कारवत्।** अर्थ यह—'अहं सुखी, अहं दुःखी' इस प्रकारका जो सुखादिकोंका साक्षात्कार है सो साक्षात्कार किसी करण करिकै साध्य है। जन्यसाक्षात्काररूप हो होणेतैं। जो जो जन्य साक्षात्कार होवै है सो सो किसी करणकरिकै हीं साध्य होवै है। किसी करणतैं विना जन्य साक्षात्कार होता नहीं। जैसे 'अयं घटः अयं पटः' या प्रकारका चाक्षुष साक्षात्कार जन्य साक्षात्कार होणेतैं चक्षुरूप करण करिकै साध्य है तैसे सो सुखदुःखादिकोंका साक्षात्कार भी जन्य साक्षात्काररूप होणेतैं किसी करण करिकै अवश्य साध्य होवैंगा। तहां चक्षुआदिक इंद्रियोंतैं रहित अंधादिकोंकूं भी सो सुखदुःखादिकोंका साक्षात्कार होवै है। यातैं तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंकूं तौं ता सुखदुःखादिकोंके साक्षात्कारविषे करणता संभवती नहीं परिशेषतैं सो मन हीं ता सुखदुःखादिकोंके साक्षात्कारका करणरूप

करिकै सिद्ध होवै है । तहां इस उक्त अनुमानविषे 'साक्षात्कारत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'जन्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ईश्वरके प्रत्यक्षज्ञानविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? सो ईश्वरका प्रत्यक्ष नित्य है । यातैं ताके विषे सो करण साध्यत्वरूप साध्य तौं है नहीं और सो साक्षात्कारत्वरूप हेतु ताके विषे है । यातैं ता साध्याभाववाले ईश्वरके ज्ञानविषे वृत्ति होणेतैं सो हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'जन्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता ईश्वरसाक्षात्कारविषे ता करणसाध्यत्वरूप साध्यकी न्यांई सो जन्यसाक्षात्कारत्वरूप हेतु भी नहीं है । यातैं ता ईश्वरसाक्षात्कारविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं । इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै ता मनकी सिद्धि संभवै है इति ॥

मनके विषे आगम प्रमाण—किंवा केवल इस अनुमान प्रमाण करिकै हीं सो मन सिद्ध नहीं है । किंतु **मनसैवानुद्रष्टव्यम्॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । मनःषष्ठानीन्द्रियाणि** । इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतिवचनों करिकै भी सो मन सिद्ध है । यातैं इस उक्त लक्षणप्रमाणके विद्यमानहूए सो मनरूप द्रव्य अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये इति ॥

मनके नानात्वकी साधक युक्ति—तहां सो मन प्रत्येक जीवात्माके साथि नियमपूर्वक रहे है । और पूर्व उक्त रीतिसैं ते जीवात्मा अनंत हैं यातैं सो मन भी अनंत हीं है । अर्थात् तिन जीवात्मावोंकी न्यांई ते मन भी असंख्यात हैं । और जैंसे एकशरीरविषे एक हीं जीवात्मा होवै है तैंसे ता एकशरीरविषे एक हीं मन होवै हैं । एक शरीरविषे नाना मन होवैं नहीं । और जैंसे ते जीवात्मा उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हैं तैंसे ते मन भी उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हैं इति ॥

मनके विषे रहणेहारे अष्टगुणोंका वर्णन ।

ऐसे मनरूप द्रव्यविषे संख्या १, परिमाण २, पृथक्त्व ३, संयोग ४, विभाग ५, परत्व ६, अपरत्व ७, वेग ८ यह अष्ट गुण हीं रहे हैं । तहां तिस मनविषे परमाणुवोंकी न्यांई परम अणुत्व परिमाण हीं रहे है। आकाशादिकोंकी न्यांई परममहत्त्व परिमाण तथा देहादिकोंकी न्यांई मध्यम महत्त्व परिमाण ता मनविषे रहता नहीं इति ॥

परमअणुत्व परिमाणकी सिद्धि ।

अब ता मनविषे परममहत्त्वपरिमाणके तथा मध्यममहत्त्वपरिमाणके खंडन करणे वासतै ता परमअणुत्व परिमाणकूं युक्तिसैं सिद्ध करे हैं। तहां चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, रसन, घ्राण इन पांच इंद्रियोंका एक हीं कालविषे आपणे आपणे रूपादिक विषयोंके साथि यथा योग संयोगादिक संबंधोंके हूए भी मनके व्यासंगवशतैं कोईक इंद्रिय जन्य ज्ञान तौं होवै है और कोईक

इंद्रिय जन्यज्ञान नहीं होवे हैं यह वार्त्ता सर्वलोकोंके अनुभव सिद्ध है । या कारणतैं हीं मनके व्यासंगतैं तुमारा शब्द हमनैं नहीं श्रवण कर्‌या, तूं पुनः तिस शब्दकूं कथन कर । या प्रकारका लोकोंका अनुभव देखणेविषे आवै है । जो कदाचित् सो मन विभु होवै तौं ता मनका एक हीं कालविषे तिन चक्षुआदिक सर्वइंद्रियोंके साथि संबंध संभवै है तथा तिन चक्षुआदिक सर्वइंद्रियोंका आपणे आपणे विषयोंके साथि संबंध भी विद्यमान है यातैं ता एक हीं कालविषे तिन सर्वइंद्रियों जन्य अनेकज्ञान उत्पन्न होणे चाहिये । और एक हीं कालविषे ते चाक्षुषादिक सर्वज्ञान उत्पन्न होते नहीं यातैं ता मनकूं अणु मान्या चाहिये । ता मनके अणुमानणे विषे एक हीं कालविषे तिन सर्वज्ञानोंके उत्पत्तिकी आपत्तिरूप दोष प्राप्त होता नहीं । काहेतैं ? ता एक हीं कालविषे तिन चक्षुआदिक सर्व इंद्रियोंका आपणे आपणे विषयके साथि संबंधके हूए भी ता अणु मनका जिस इंद्रियके साथि संबंध होवै है तिस इंद्रियजन्य ज्ञान तौं होवै है और जिस इंद्रियके साथि ता मनका संबंध नहीं होवै है तिस इंद्रियजन्य ज्ञान होता नहीं । यातैं तिन सर्वज्ञानोंकी एककालविषे अनुत्पत्तितैं ता मनकूं अणुहीं मान्याचाहिये । अणुत्वपर शंका—दीर्घशष्कुलीके भक्षण करणेहारे पुरुषकूं एक हीं कालविषे चक्षुआदिक अनेक इंद्रियों करिकै चाक्षुषादिक अनेक ज्ञानोंकी उत्पत्ति अनुभव सिद्ध है तहां ता पुरुषकूं एक हीं कालविषे चक्षुइंद्रिय करिकै तौं ता शष्कुलीका तथा ताके रूपका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है और त्वक्‌इंद्रिय करिकै तौं ता शष्कुलीका तथा ताके स्पर्शका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है । और श्रोत्रइंद्रिय करिकै ता शष्कुलीके शब्दका श्रौत्रप्रत्यक्ष होवै हैं और रसनइंद्रिय करिकै ता शष्कुलीके मधुररसका रासन प्रत्यक्ष होवै है । और घ्राणइंद्रिय करिकै ता शष्कुलीके गंधका घ्राणजप्रत्यक्ष होवै है । इस प्रकार ता पुरुषकूं एक हीं कालविषे तिन चक्षुआदिक पंचइंद्रियों करिकै चाक्षुषादिक पंचज्ञान उत्पन्न होवै हैं । इसी प्रकार अष्टावधानी पुरुषोंकूं भी एक हीं कालविषे तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंकरिकै चाक्षुषादिक अनेकज्ञान उत्पन्न होवै हैं सो तुमारे मतविषे नहीं संभवैंगे । काहेतैं ? तुम नैयायिकोंके मतविषे सो मन अणु है । यातैं जिस क्षणविषे ता मनका चक्षु इंद्रियके साथि संयोगसंबंध होवैंगा तिस क्षणविषे हीं ता मनका त्वगादिक इंद्रियोंके साथि संयोग-संबंध होवैंगा नहीं, किंतु तिस क्षणतैं अनंतर द्वितीयादिक क्षणोंविषे हीं ता मनका तिन त्वगादिक इंद्रियोंके साथि संयोगसंबंध होवैंगा । उसका समाधान—ता उक्तस्थलविषे भी एक हीं कालविषे अनेक इंद्रियजन्य नानाज्ञान उत्पन्न होते नहीं, किंतु एक एक क्षणके पश्चात् हीं ते ज्ञान उत्पन्न होवै हैं अर्थात् सो मन अत्यन्तवेगवाला है । यातैं एक इंद्रियके साथि संबंधकूं प्राप्त होईकै शीघ्र ही द्वितीयइंद्रियके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै है । इस प्रकार तृतीय, चतुर्थ, पंचम इंद्रियके साथि भी शीघ्र हीं संबन्धकूं प्राप्त होवै है । और जिस क्रमतैं जिस जिस

इंद्रियके साथि ता मनका संयोगसंबंध होता जावै है तिसी क्रमतैं तिस तिस इंद्रियजन्य ज्ञान उत्पन्न होते जावै हैं । परंतु तिस तिस इंद्रियके साथि मनके संबंधतैं तिस तिस ज्ञानकी उत्पत्तिका अधिकरणभूत ते क्षणरूप काल अत्यंतसूक्ष्म हैं । यातैं लोकोंकूं तिन क्षणरूप कालोंके भेदका ज्ञान होता नहीं । या प्रकारणतैं लोकोंकूं ऐसी भ्रांति होवै है हमारेकूं एक हीं कालविषे चाक्षुषादिक अनेकज्ञान उत्पन्न हूए हैं ॥

समाधानपर दृष्टांत—जैसे कमलका एकशतपत्र ( १०० ) नीचै ऊपरि राखिकै यह पुरुष तिस एक शतपत्रकूं तीक्षणसूचीसैं भेदन करिकै यह कहे है हमनैं एक हीं कालविषे इन शतपत्रोंकूं सूचीसैं भेदन कऱ्या है, सो तिस पुरुषका अनुभव भ्रांतिरूप हीं है । काहेतैं ? प्रथमक्षणविषे ता सूचीविषे क्रिया उत्पन्न होवै हैं और द्वितीयक्षणविषे ता सूचीका पूर्वदेशतैं विभाग उत्पन्न होवै है और तृतीयक्षणविषे ता सूचीका पूर्वदेशसैं संयोग नाश होवै है और चतुर्थक्षणविषे ता सूचीका प्रथमपत्ररूप उत्तरदेशके साथि संयोग उत्पन्न होवै है ता उत्तरसंयोग करिकै सा प्रथमक्रिया नाश होइ जावै है । तिसतैं अनंतर ता सूचीविषे पुनः द्वितीयक्रिया उत्पन्न होवै है सा द्वितीयक्रिया भी पूर्व क्रियाकी न्यांई यथाक्रमतैं विभागकूं तथा पूर्वसंयोगके नाशकूं तथा द्वितीयपत्ररूप उत्तरदेशसंयोगकूं उत्पन्न करिकै पंचमक्षणविषे नष्ट होइ जावै है । इस प्रकारकी रीति तृतीय चतुर्थादिक सर्वक्रियावोंविषे जानि लेणी । इस प्रकार एकएक पत्रके भेदन करणेविषे च्यारिच्यारि क्षण होवै हैं । परंतु ते क्षणरूप काल अत्यंतसूक्ष्म हैं । यातैं लोकोंकूं तिन क्षणरूप कालोंके भेदका ज्ञान होता नहीं । या कारणतैं हीं लोकोंकूं ऐसी भ्रांति होवै है—जो मैंनैं एक हीं कालविषे सूची करिकै एक शतपत्रोंकूं भेदन कऱ्या है । तैसे ते चाक्षुषादिक ज्ञान भी एकएकक्षणविलंब करिकै हीं उत्पन्न होवै हैं । परंतु तिन सूक्ष्मक्षणरूप कालोंके भेदके अग्रहणतैं लोकोंकूं ऐसी भ्रांति होवै है जो हमारेकूं एक हीं कालविषे चक्षुआदिक अनेक इंद्रियों करिकै चाक्षुषादिक अनेक ज्ञान हूए हैं इति ॥

इसीपर नर्तकीका दृष्टान्त—और जैसे एक कालविषे एक आत्माविषे अनेकज्ञान नहीं उत्पन्न होवै हैं तैसे एककालविषे एकआत्माविषे अनेककृतिरूप प्रयत्न भी उत्पन्न होते नहीं । किंतु तिन ज्ञानोंकी न्यांई ते प्रयत्न भी एकएकक्षणतैं पश्चात् हीं उत्पन्न होवै हैं । यातैं नर्त्तकी स्त्रीके हस्तपादोंकी अंगुलियोंविषे क्रियाके जनक प्रयत्नोंविषे जो एककालीनत्वकी प्रतीति होवै है सा प्रतीति भी भ्रमरूप हीं है अथवा तहां एक हीं प्रयत्न तिन सर्वअंगुलियोंके क्रियाका जनक है । इस प्रकारकी युक्ति करिकै ता मनविषे अणुपणा हीं सिद्ध होवै है इति ।

मनके नित्यत्वकी सिद्धि—इस उक्त युक्ति करिकै ता मनविषे अणुरूपता सिद्ध होवो तथापि ता मनके नित्यत्वविषे कौन प्रमाण है । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता मनका नित्यपणा सिद्ध करे हैं । मनः नित्यं परमाणुरूपत्वात् पार्थिवादि-

परमाणुवत् । अर्थ यह—सो मन नित्य होणेयोग्य है, परमाणुरूप होणेतैं अर्थात् परम अणुत्व परिमाणवाला होणेतैं जो जो परमाणुरूप होवै है सो सो नित्य हीं होवै है । जैसे पृथिवी-आदिक च्यारिभूतोंके परमाणु परमाणुरूप होणेतैं नित्य हैं । तैसे सो मन भी परमाणुरूप होणेतैं नित्य हीं होवैंगा । इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै ता मनविषे नित्यपणा हीं सिद्ध होवै है । किंवा ता मनकूं जो अनित्य मानिये । तौं जो जो अनित्य द्रव्य होवै है सो सो द्रव्य अवयवों करिकै जन्य हीं होवै है । जैसे यह पृथिवी आदिक कार्यद्रव्य अनित्य होणेतैं अवयवों करिकै जन्य हीं हैं तैसे सो मनरूप द्रव्य भी अनित्य होणेतैं अवयवों करिकै जन्य हीं होवैंगा । इस प्रकार ता मनके अनेक अवयव माणणेविषे तथा तिन अवयवोंविषे ता मनका प्रागभाव मानणेविषे तथा तिस मनका तथा तिन अवयवोंका कार्यकारणभाव मानणे-विषे महान्गौरवदोष प्राप्त होवै है सो गौरवदोष ता मनके नित्यमानणेविषे प्राप्त होता नहीं । यातैं लाघवतैं सो मन नित्य हीं सिद्ध होवै है इति ॥

मनको विभु माननेहारे मीमांसका ।

अब मीमांसकोंका मत निरूपण करे हैं । तहां ते मीमांसक ता मनकूं अणुरूप मानते नहीं किंतु ता मनकूं विभु माने हैं ता मनके विभुपणेविषे ते मीमांसक यह च्यारि अनुमान कहे हैं ।

तहां प्रथम अनुमान—मनः विभु स्पर्शरहितद्रव्यत्वात् आकाशादिवत् । अर्थ यह—सो मन विभु होणे योग्य है स्पर्शगुणतैं रहित द्रव्य होणेतैं जो जो स्पर्शगुणतैं रहित द्रव्य होवै है, सो सो विभु हीं होवै है । जैसे आकाश, काल, दिशा, आत्मा यह च्यारि द्रव्य स्पर्श गुणोंतैं रहित द्रव्यरूप होणेतैं विभु हीं हैं तैसे सो मन भी स्पर्श गुणतैं रहित द्रव्यरूप होणेतैं विभु हीं होवैंगा । पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे ' द्रव्यत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे ' स्पर्शरहित ' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी जल तेज वायु इन च्यारि द्रव्योंविषे ता द्रव्यत्वहेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? तिन पृथिवी आदिक च्यारोंविषे सो द्रव्यत्वरूप हेतु तौं है परन्तु सो विभुत्वरूप साध्य है नहीं । ता व्यभिचार दोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता हेतुविषे'स्पर्शरहित'यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते पृथिवीआदिक च्यारों ता स्पर्शगुणतैं रहित नहीं हैं किंतु ता स्पर्शगुणवाले हीं हैं यातैं तिन च्यारोंविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं किंवा ता अनुमानविषे'स्पर्शरहितत्वात्'इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे'द्रव्यत्वात्'यह पद नहीं कथन करते तौं गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? एकद्रव्य पदार्थकूं छोडिकै दूसरे गुणकर्मादिक सर्व पदार्थ गुणतैं रहित हीं होवै हैं । यातैं तिन गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे सो स्पर्शगुणरहितत्वरूप हेतु तौं विद्यमान है । परन्तु सो विभुत्वरूप साध्य तिन गुणकर्मादिकोंविषे है नहीं ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे

वासतै ता हेतुविषे 'द्रव्यत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन गुणकर्मादिकों विषे सो द्रव्यत्व रहता नहीं। यातैं तिन गुणकर्मादिकोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं ॥ १ ॥

अथवा यह दूसरा अनुमान—करणा।मनः विभु नित्येन्द्रियत्वात् श्रोत्रवत्। अर्थ यह—सो मन विभु होणे योग्य है नित्य इंद्रिय होणेतैं । जो जो नित्य इंद्रिय होवै है सो सो विभु हीं होवै है, जैसे आकाशरूप श्रोत्रइंद्रिय नित्य इंद्रिय होणेतैं विभु है । तैसे सो मन भी नित्य इंद्रिय होणेतैं विभु हीं होवैगा। तहां इस अनुमानविषे 'इन्द्रियत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'नित्य' यह पद नहीं कथन करते तौं चक्षु, त्वक्, रसन, घ्राण, इन च्यारों इंद्रियोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? तिन चक्षुआदिकोंविषे सो इंद्रियत्वरूप हेतु तौं रहे है, परंतु सो विभुत्वरूप साध्य तिनोंविषे रहता नहीं । ता व्यभिचार-दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'नित्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते चक्षुआदिक इंद्रिय नित्य नहीं हैं किंतु अनित्य हैं। यातैं तिन चक्षुआदिकोंविषे ता उक्त हतुकाव्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्तअनुमानविषे 'नित्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'इन्द्रियत्वात्' यह पद नहीं कथन करते तौं ता हेतुका परमाणुआदिक नित्यपदार्थोंविषे व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन परमाणुआदिकोंविषे सो नित्यत्वरूप हेतु तौं है, परंतु सो विभुत्वरूप साध्य तिनोंविषे है नहीं । ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता उक्तहेतुविषे 'इन्द्रियत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन परमाणुआदिक नित्यपदार्थोंविषे सो इंद्रियपणा है नहीं। यातैं तिन नित्यपदार्थोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति ॥ २ ॥

अथवा यह तीसरा अनुमान—करणा । मनः विभु ज्ञानासमवायिकारणसंयोगाश्रयत्वात् आत्मवत् । अर्थ यह—सो मन विभु होणे योग्य है ज्ञानका असमवायिकारणरूप संयोगका आश्रय होणेतैं जो जो द्रव्य ज्ञानके असमवायिकारणरूप संयोगका आश्रय होवै है । सो सो द्रव्य विभु हीं होवै है। जैसे आत्मारूप द्रव्य ज्ञानके असमवायिकारणरूप संयोगका आश्रय होणेतैं विभु है तैसे सो मन भी ता संयोगका आश्रय होणेतैं विभु हीं होवैगा। तात्पर्य यह—जबी मनका आत्माके साथि संयोगसम्बन्ध होवै है तबी ता आत्माविषे ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है । यातैं सो आत्मा मनका संयोग ता ज्ञानका असमवायिकारण है और ता संयोगका जैसे सो आत्मा आश्रयरूप है तैसे सो मन भी आश्रयरूप है और ता आत्माका—विभुपणा नैयायिकोंकूं भी अंगीकार है । यातैं ता आत्माकी न्यांई सो मन भी विभु हीं होवैगा। पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'असयवायिकारणसंयोगाश्रयत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे 'ज्ञान' यह पद नहीं कथन करते तौं ता हेतुका पटके समवायिकारणरूप तन्तुवोंविषे व्यभिचार होता। काहेतैं ? ता पटरूप कार्यका असमवायिकारणरूप जो तंतुवोंका संयोग है । ता संयोगका

आश्रयपणा तिन तन्तुवोंविषे भी है, परन्तु तिन तन्तुवोंविषे सो विभुत्वरूप साध्य है नहीं। ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'ज्ञान' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो तन्तुवोंका संयोग पटका असमवायिकारण हूआ भी ज्ञानका असमवायिकारण है नहीं। यातैं तिन तन्तुवोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै है नहीं। किंवा ता उक्त अनुमानविषे 'ज्ञानकारणसंयोगाश्रयत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'असमवायि' यह पद नहीं कथन करते तौं चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे तथा घटादिक विषयोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके साथि जो मनका संयोग है तथा तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंका जो घटादिक विषयोंके साथि संयोग है सो संयोग भी चाक्षुषादिक ज्ञानका कारण हीं है। ता संयोगका आश्रयपणा तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंकूं तथा घटादिक विषयोंकूं भी है। परन्तु तिन चक्षुआदिकोंविषे सो विभुत्वरूप साध्य है नहीं ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता उक्तहेतुविषे असमवायि यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो चक्षु आदिकोंका संयोग ता चाक्षुषादिक ज्ञानका निमित्तकारण हूआ भी असमवायिकारणरूप है नहीं यातैं तिन चक्षुआदिक इंद्रियों विषे तथा घटादिकविषयोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति॥ ३॥

चौथे अनुमानका अर्थ—अथवा यह चतुर्थ अनुमान करणा। **मनः विभु विशेषगुणशून्य द्रव्यत्वात् दिक्कालवत्।** अर्थ यह—सो मन विभु होणेयोग्य है विशेषगुणतैं रहित द्रव्यरूपहोणेतैं जो जो विशेष गुणतैं रहित द्रव्य होवै है सो सो विभु हीं होवै है। जैसे दिक्, काल यह दोनों विशेषगुणतैं रहित द्रव्यहोणेतैं विभु हीं हैं तैसे सो मन भी विशेषगुणतैं रहित द्रव्य होणेतैं विभु हीं होवैगा। पदकृत्य—तहां इस अनुमान विषे'द्रव्यत्वात्'इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतु विषे 'विशेषगुणशून्य' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारों द्रव्योंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन पृथिवी आदिक च्यारिद्रव्योंविषे सो द्रव्यत्वरूप हेतु तौं हैं परंतु सो विभुत्वरूप साध्य तिनोंविषे है नहीं, ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'विशेषगुणशून्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते पृथिवी आदिक च्यारों द्रव्य विशेषगुणतैं शून्य नहीं है किंतु रूपादिक विशेषगुणोंवाले हीं है। यातैं तिन पृथिवी आदिकोंविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्त अनुमानविषे'विशेष गुणशून्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'द्रव्यत्वात्' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे कोई भी गुण रहता नहीं। यातैं सो विशेषगुण शून्यत्वरूप हेतु तौं तिन गुण कर्मादिकोंविषे है। परंतु सो विभुत्वरूप साध्य तिनोंविषे है नहीं ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता उक्तहेतुविषे 'द्रव्यत्वात्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां

ते गुणकर्मादिक पदार्थ ता द्रव्यत्वधर्मवाले नहीं हैं। यातैं तिनोंविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति ॥ ४ ॥ इस प्रकारके च्यारि अनुमानों करिकै ता मनविषे आकाशादिकोंकी न्यांई विभुपणा हीं सिद्ध होवै है ॥

मीमांसकोंका मन विभुत्ववाद।

ऐसे विभु मनका तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके साथि एक हीं कालविषे संयोग संबंध विद्यमान है। या कारणतैं हीं ता दीर्घशष्कुलीके भक्षण कर्त्ता पुरुषकूं तथा अष्टावधानी पुरुषोंकूं एक हीं कालविषे चक्षुआदिक अनेक इंद्रियों करिकै चाक्षुषादिक अनेक ज्ञानोंकी उत्पत्ति संभवै है और जिस स्थलविषे एक हीं कालविषे तिन चक्षुआदिक पाचों इंद्रियोंका आपणे आपणे रूपादिक विषयोंके साथि संबंधके हूए भी ते चाक्षुषादिक नानाज्ञान नहीं उत्पन्न होवै हैं किंतु किसी एक इंद्रिय करिकै एक हीं ज्ञान उत्पन्न होवै है। तिस स्थलविषे ता विभु मनका तिन सर्वइंद्रियोंके साथि संबंधके हूए भी ता एकज्ञानकी उत्पत्तिविषे इस पुरुषकी बुभुत्सा हीं कारण होवै है। अर्थात् हमारेकूं इस इंद्रिय करिकै इस वस्तुका बोध उत्पन्न होवो इस प्रकारकी ता पुरुषकी इच्छा हीं ता एक ज्ञानकी उत्पत्तिविषे कारण है। इस प्रकार ता मनकूं विभु माननेविषे भी सो ज्ञानोंका यौगपद्य तथा अयौगपद्य दोनों संभवै हैं। तहां एककालविषे अनेक ज्ञानोंके उत्पत्तिका नाम यौगपद्य है। और एककालविषे एक हीं ज्ञानकी उत्पत्तिका नाम अयौगपद्य है। यातैं सो मन आकाशादिकोंकी न्यांई विभु हीं है इति॥

इसका खण्डन–सो यह मीमांसकोंका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं ? ता मनकूं जो विभु अंगीकार करौंगे तौं ता मनका आत्माके साथि संयोग संबंध हीं नहीं संभवैगा। काहेतैं ? एकद्रव्यके साथि जो दूसरे द्रव्यका संयोग होवै है सो संयोग ता द्रव्यकी क्रिया करिकै हीं जन्य होवै है। जैसे वृक्षके साथि जो पक्षीका संयोगसंबंध होवै है सो संयोग ता पक्षीकी क्रिया करिकै हीं जन्य होवै है। और सा क्रिया परिच्छिन्नपरिमाणवाले मूर्त्तद्रव्यविषे हीं होवै है। आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे सा क्रिया होती नहीं यातैं ता क्रियाके अभावतैं ता विभु मनका ता विभु आत्माके साथि संयोगसंबंध हीं नहीं संभवैगा और सो आत्मा मनका संयोग हीं ज्ञानका असमवायिकरण होवै है ता असमवायिकारणके अभावहूए ता आत्माविषे कोई भी ज्ञान उत्पन्न नहीं होवैगा ता ज्ञानके अभावहूए प्रवृत्ति निवृत्ति आदिक सर्वव्यवहारोंका लोप होवैगा। किंवा सो मीमांसक जो यह कहै पृथिवी आदिक मूर्त्तद्रव्योंका संयोग हीं क्रियाजन्य होवै है दो विभु द्रव्योंका संयोग क्रिया जन्य होता नहीं, किंतु सो विभु द्रव्योंका संयोग तिन विभुद्रव्योंकी न्यांई नित्य हीं होवै है। यातैं ता नित्य मनके संयोग करिकै आत्माविषे ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै है। सो यह मीमांसकका कहणा भी असंगत है। काहेतैं ? जो जो संयोगसंबंध होवै है सो सो जन्य हीं होवै है। नित्यसंयोगविषे कोई भी प्रमाण नहीं है किसी प्रमाणतैं विना हीं जो ता

संयोगकूं नित्य मानोंगे तौं घटपटादिकोंकूं भी नित्यता होणी चाहिये । किंवा ता आत्ममनः संयोगकूं जो नित्य मानोंगे तौं सुषुप्तिका हीं अभाव होवैंगा । काहेतैं ? पुरीततितैं बाह्यदेशावच्छिन्न जो आत्ममनका संयोग है । सो संयोग हीं ज्ञानादिकोंका असमवायिकारण होवै है सो असमवायिकारणरूप आत्ममनःसंयोग विभु मन वादीयोंके मतविषे ता सुषुप्तिविषे भी विद्यमान हीं है । यातैं ता संयोग करिकै ता सुषुप्तिविषे भी ते ज्ञानादिक अवश्य उत्पन्न होवैंगे । ता करिकै सुषुप्तिका हीं अभाव होवैंगा और मनकूं अणु मानणेविषे सो सुषुप्तिका अभाव रूप दोष प्राप्त होता नहीं । काहेतैं ? सो अणुमन जिस कालविषे ता पुरीततिनाडीविषे प्रवेश करे है । तिस कालविषे सो पुरीततिबाह्यदेशावच्छिन्न आत्ममनःसंयोगरूप ज्ञानादिकोंका असमवायिकारण है नहीं । यातैं तिस कालविषे तिन ज्ञानादिकोंकी अनुत्पत्ति होणेतैं सुषुप्ति हीं होवै है । और जिस कालविषे सो अणु मन ता पुरीततितैं बाह्य निकसे है तिस कालविषे ता उक्त आत्ममनसंयोगरूप असमवायिकारणके विद्यमानहूए तिन ज्ञानादिकोंकी उत्पत्ति हीं होवै है । अर्थात् जाग्रत् अवस्था वा स्वप्नअवस्था होवै है यातैं सो मन विभु है यह मीमांसकका कहणा असंगत है इति ॥ और केइक ग्रथकार तौं यह कहे हैं सो मन अणुरूप हीं है विभुरूप नहीं है । परंतु एक एक शरीरविषे एक एक मन रहता नहीं । किंतु एक एक शरीरविषे पांचपांच मन रहे हैं । तहां जिस स्थलविषे एक हीं कालविषे तिन पांचों मनोंका चक्षुआदिक पंचइंद्रियोंके साथि संयोगसंबंध होवै है तिस स्थलविषे ता एक हीं कालविषे ते चाक्षुषादिक पंच हीं ज्ञान उत्पन्न होवै है और जिस स्थलविषे ता एक हीं कालविषे तिन च्यारि मनोंका वा तीन मनोंका वा दो मनोंका वा एक मनका तिन चक्षुआदिक च्यारि इंद्रियोंके साथि वा तीन इंद्रियोंके साथि वा दो इंद्रियोंकेसाथि वा एक इंद्रियके साथि संयोगसंबंध होवै है तिस स्थलविषे ता एक हीं कालविषे चाक्षुषादिक च्यारिज्ञान वा तीन ज्ञान वा दो ज्ञान वा एकज्ञान उत्पन्न होवै है । यातैं ता दीर्घशष्कुलीके भक्षणकर्त्ता पुरुषविषे तथा अष्टावधानीपुरुषोंविषे जो एक हीं कालविषे चाक्षुषादिक अनेक ज्ञानोंकी उत्पत्तिका अनुभव होवै है सो अनुभव भ्रमरूप नहीं है, किंतु सो अनुभव भी यथार्थ हीं है । और जे नैयायिक एक शरीरविषे एक हीं अणु मन अंगीकार करे हैं तिन नैयायिकोंकूं सो अनुभव भ्रमरूप हीं मानणा होवै है । इस प्रकार एक शरीरविषे पंच अणु मनोंके मानणेतैं सो ज्ञानोंका यौगपद्य तथा अयौगपद्य दोनों संभवै हैं इति ॥ सो यह मत भी समीचीन नही है । काहेतैं ? पूर्वउक्त रीतिसैं एक शरीरविषे एक ही अणुमनके मानणे करिकै सर्वनिर्वाह होइ सके है ता ज्ञानोंके यौगपद्य अनुभवके यथार्थपणे वासतै एक शरीरविषे पंचमन मानणेविषे तथा पुरीततिविषे तिन पंचमनोंके प्रवेशतैं सुषुप्ति मानणेविषे केवल कल्पना गौरव हीं है इति ॥

और केइक शास्त्रवाले—तौं यह कहे हैं । एक शरीरविषे एक हीं मन रहे है । परंतु सो मन परमाणुवोंकी न्यांई अणुरूप भी नही है । तथा आकाशादिकोंकी न्यांई विभुरूप भी नहीं

है। किंतु जलौकाजंतुकी न्यांई सो मन अवयवीरूप हीं है। अर्थात् जैसे जलौकानामा जंतु कबी संकोचवाला हो कबी विकाशवाला होवै है। तैसे सो मन भी कबी संकोचवाला होवै है कबी विकाशवाला होवै है। तहां सो मन जबी संकोचवाला होवै है तबी ता मनका एक हीं इंद्रियके साथि सम्बन्ध होवै है यातैं तिस कालविषे ता एकइन्द्रिय करिकै एक हीं ज्ञान उत्पन्न होवै है और सो मन जबी विकाशवाला होवै है। तबी ता मनका तिन चक्षुआदिक पांचों इंद्रियोंके साथि सम्बन्ध होवै है। यातैं तिस कालविषे तिन चक्षुआदिक पांचोंइंद्रियो करिकै ते चाक्षुषादिक पांचों ज्ञान उत्पन्न होवै हैं इस प्रकार ता मनके किंचित् विकाश कालविषे दो तीन इंद्रियोंके सम्बन्धतैं दो तीन ज्ञानोंकी भी एककालविषे उत्पत्ति होवै है। इस प्रकारतैं ता मनकूं संकोचविकाशवाला अवयवी मानणेविषे सो ज्ञानोंका यौगपद्य तथा अयौगपद्य दोनों सम्भवै हैं इति ॥

सो यह मत भी समीचीन–नहीं हैं। काहेतैं ? जो वादी ता मनकूं अवयवीरूप मानिकै संकोचविकाशवाला माने हैं ता वादीसैं यह पूछा चाहिये। सो मनका संकोच तथा विकाश स्वभावतैं हीं होवै है, अथवा किसी कारणतैं होवै है ? तहां सो वादी जो प्रथमपक्ष अंगीकार करै। तौं सर्वकालविषे ता मनका संकोच हीं होणा चाहिये। अथवा विकाश हीं होणा चाहिये। कोई कालविषे ता मनका संकोच तथा कोईकालविषे ता मनका विकाश या प्रकारकी व्यवस्था ता स्वभावपक्षविषे सम्भवती नहीं और सो मनका संकोच तथा विकाश किसी कारण करिकै जन्य है यह द्वितीयपक्ष जो वादी अंगीकार करे सो भी सम्भवता नहीं। काहेतैं ? ता मनके संकोचविकाशविषे दूसरा तौं कोई कारण सम्भवता नहीं। परिशेषतैं पुण्यपापरूप अदृष्टकूं हीं ता संकोचविकाशका कारण मानणा होवैगा और ता वादीनें जिस ज्ञानोंके यौगपद्य अयौपगद्य वासतै ता मनकूं संकोचविकाशवाला मान्या है सो ज्ञानोंका यौगपद्य तथा अयौगपद्य ता अदृष्ट करिकै हीं सम्भव होइ सकै है। यातैं ता ज्ञानोंके यौगपद्य अयौगपद्य वासतै ता मनका संकोचविकाश मानणा व्यर्थ हीं है। किंवा ता वादीनें जो मनकूं अवयवी मान्या है सो भी असंगत है। काहेतैं ? जो जो अवयवीद्रव्य होवै है सो सो अवयवों करिकै जन्य हीं होवै है। जैसे पटादिक अवयवी द्रव्य तन्तुआदिक अवयवों करिकै जन्य होवै हैं, तैसे सो मनरूप अवयवी द्रव्य भी अवयवों करिकै जन्य हीं होवैगा; तैसे ते मनके अवयव भी अपणे आवयवों करिकै जन्य हीं होवैंगे। इस प्रकार परमाणुवोंपर्यंत ता मनके अवयवोंकी धारा अंगीकार करणी होवैंगी, तथा तिन अवयवोंविषे ता मनका प्रागभाव कल्पना करणा होवैंगा, तथा ता मनका प्रध्वंसाभाव कल्पना करणा होवैंगा। ता करिकै महान् गौरव दोषकी प्राप्ति होवैंगी सो गौरवदोषकी ता मनकूं निरवयव मानणेविषे होता नहीं यातैं लाघवतैं ता मनकूं निरवयव मान्या चाहिये इति ॥

और केईक ग्रन्थकार तौ—यह कहे हैं सो मन पृथिआदिक द्रव्योंतैं भिन्न द्रव्य नहीं है किंतु पृथिवी आदिक भूतोंके परमाणु हीं अदृष्टविशेष करिकै उपग्रहीतहूए मनरूप होवै हैं । तिन भौतिक परमाणुवोंतैं मनकूं भिन्न मानणेविषे तथा तिन सर्वमनोंविषे एक मनस्त्वजाति मानणेविषे महान् गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है, सो गौरवदोष ता मनकूं भौतिक परमाणुरूप मानणेविषे प्राप्त होता नहीं । काहेतैं ? ते पृथिवीआदिक भूतोंके परमाणु पूर्व अंगीकार हीं हैं ऐसे पूर्व सिद्ध भौतिकपरमाणुवोंकूं हीं मनस्त्वरूप करिकै ज्ञानादिकोंका कारणपणा संभवै है । तिन भौतिक परमाणुवोंतैं पृथक् मनकूं अंगीकार करणा निष्फल हीं है । **शंका**—तिन भौतिक परमाणुवोंकूं हीं जो मनरूप मानोंगे तौं जैसे पृथिवीआदिक भूतोंके परमाणु द्व्यणुकादिक द्रव्यके आरंभक होवै हैं तैसे ते मनरूप भौतिकपरमाणु भी ता द्व्यणुकादिरूप द्रव्यके आरंभक होणे चाहिये । **समाधान**—जिस अदृष्टविशेष करिकै उपगृहीत हूए ते भौतिक परमाणु मनसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है ते अदृष्टविशेष हीं ता द्व्यणुकादिरूप द्रव्यकी आरंभकताविषे प्रतिबंधक हैं अथवा ता द्व्यणुकादिरूप द्रव्यकी आरंभकताविषे जे सहकारीकारण हैं तिन सहकारी कारणोंके अभावतैं हीं ते मनरूप भौतिकपरमाणु ता द्व्यणुकादिक द्रव्यका आरंभ नहीं करे हैं । यातैं सो मन पृथक् द्रव्य नहीं है किंतु अदृष्टविशेष करिकै उपग्रहीत ते भौतिकपरमाणु हीं मनरूप हैं इति॥

सो यह मत भी समीचीन नहीं है—काहेतैं ? जो वादी भौतिकपरमाणुवोंकूं हीं मनरूप माने है ता वादीसैं यह पूछा चाहिये । पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारिभूतोंके परमाणुवोंविषे किस भूतके परमाणुवोंकूं तूं मनरूप मानता है, तहां पृथिवीके परमाणुवोंकूं हीं मनरूपता है जलादिकोंके परमाणुवोंकूं मनरूपता नहीं है अथवा जलके परमाणुवोंकूं हीं मनरूपता है पृथिवी आदिकोंके परमाणुवोंकूं मनरूपता नहीं है । इस प्रकारके एक अर्थकूं सिद्ध करणेहारी कोई युक्ति है नहीं । यातैं तिन पृथिवी आदिक च्यारि भूतोंके मध्यविषे एकभूतके परमाणुवोंकूं मनरूपता कहणी संभवती नहीं और जो कहो सो मन पृथिवी जल उभय रूप है तौं ता मनविषे पृथिवीत्व, जलत्व इन दोनोंविषे जातियोंका सांकर्य होवैंगा सो सांकर्यदोष जातिपणेका बाधक होवै है । यातैं पृथिवीत्व, जलत्व इन दोनोंविषे जातिपणा हीं नहीं रहैंगा ता सांकर्यदोषविषे जातिपणेकी बाधकता आगे चतुर्थपरिच्छेदविषे जातिरूप सामान्य पदार्थके निरूपणविषे कथन करैंगे । यातैं तिन भौतिक परमाणुवोंविषे मनरूपता संभवती नहीं । यातैं सो मनरूप नवमा द्रव्य तिन पृथिवीआदिक अष्टद्रव्योंतैं भिन्न हीं मान्या चाहिये इति ।

**शंका**—पूर्व एकशरीरविषे एक हीं अणुरूप मन कथन कऱ्या था सो संभवता नहीं । काहेतैं ? खड्गादिक शस्त्र करिकै छेदन कऱ्येहूए वृश्चिकके दोनों खंडोंविषे तथा गोधा नामा जंतुके दो तीन भुजावोंविषे पृथक् पृथक् क्रिया प्रतीत होवै है और शरीरके जिस जिस अवयवविषे जा जा क्रिया उत्पन्न होवै है सा सा क्रिया तिस तिस अवयवावच्छिन्न आत्माके

प्रयत्न करिकै हीं जन्य होवै है और सो सो प्रयत्न तिस तिस अवयवावच्छिन्न आत्माके साथि मनके संयोग करिकै हीं जन्य होवै है । सो मन तुम नैयायिकोंके मतविषे एक शरीरविषे एक हीं है तथा अणुरूप है । यातैं ता एक अणु मनके संबंध करिकै तिन वृश्चिकादिकोंके एक हीं खंडविषे क्रिया उत्पन्न होवैंगी द्वितीय खंडविषे सा क्रिया उत्पन्न होवैंगी नहीं । और एकशरीरविषे नानामनोंके अंगीकार कीयेहूए तिन दो तीन खंडोंविषे एक एक मनके संबंधतैं पृथक् पृथक् क्रियाकी उत्पत्ति संभवै है । यातैं एक शरीरविषे नाना मन हीं मानणे योग्य हैं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; तहां केईक ग्रंथकार तौं ता शंकाका यह समाधान करे हैं । खड्गादिकों करिकै द्विधा त्रिधा विभागकूं प्राप्तहूए तिन वृश्चिकादिक जन्तुवोंके जिस खण्डविषे सो अणु मन रहे है तिसी खंडविषे ता मन करिकै क्रिया होवै है और तिन वृश्चिकादिकोंके दूसरे खंडविषे जो क्रिया होवै है सो मन करिकै नहीं होवै है । किंतु तिन खड्गादिकोंके अभिघाताख्य संयोग करिकै होवै है । यातैं एक शरीरविषे एक अणु मनके अंगीकार कीयेहूए भी ता वृश्चिकादिकोंके दो तीन खंडोंविषे क्रियाकी उत्पत्ति संभवै है इति ।

और केईक ग्रंथकार—तौं ता शङ्काका यह समाधान करे हैं एक शरीरविषे सो एक हीं अणु मन रहे है, परंतु सो मन अत्यंतशीघ्रवेगवाला है । यातैं काकाक्षिन्याय करिकै सो एक हीं अणुमन तिन दो तीन खंडोंविषे संचारकर्त्ताहूआ ता क्रियाका हेतु होवै है इति ॥

और केईकग्रंथकार—तौं ता उक्तशंकाका यह समाधान करे हैं एक शरीरविषे सो अणु नित्य मन एक हीं रहे है परंतु ता उक्तस्थलविषे पुण्यपापरूप अदृष्टके वशतैं दूसरे पंडमनोंकी उत्पत्ति होवै है । तिन पंड मनोंके संबंधतैं हीं तिन दूसरे खंडोंविषे क्रिया उत्पन्न होवै है इति ।

इस प्रकार योगीपुरुषके शरीरविषे भी सो एक हीं अणुमन रहे है । और सो योगी पुरुष जबी आपणे योगके प्रभावतैं एक हीं कालविषे नाना भोगोंके भोगणे वासतै अनेक शरीरोंकूं धारण करे है तबी ता योगी पुरुषके अदृष्टविशेषतैं अनेक पंड मन उत्पन्न होवे हैं । तिस तिस पंडमनके संबंध करिकै हीं सो योगी पुरुष एक हीं कालविषे तिस तिस शरीरविषे भिन्न भिन्न भोगोंकूं भोगे है । यातैं एक एक शरीरविषे एक एक हीं अणु मन रहे है यह अर्थ सिद्ध भया । किंवा मरणतैं अनंतर पुण्यपापके वशतैं स्वर्गनरकादिकोंविषे भी सो अणु मन हीं जावै है सो जीवात्मा जाता नहीं । काहेतैं ? सो जीवात्मा विभु है । यातैं तिन स्वर्गनरकादिकोंविषे सो जीवात्मा आपणे विभु स्वभावतैं विद्यमान हीं है । ऐसे स्वर्गनरकादिकोंविषे विद्यमान जीवात्माके साथि जबी ता मनका संयोगसंबंध होवै है तथा ता जीवात्माके पुण्यपापरूप अदृष्टसहकृत परमाणुवोंतैं उत्पन्नहूए देहइंद्रियादिकोंका संबंध होवै है तबी ता जीवात्माकूं तिन स्वर्गनरकादिकोंविषे सुखदुःखका भोग होवै है इति ।

इति मनोनिरूपणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

यातैं पृथिवी १, जल२, तेज ३, वायु ४, आकाश ५, काल ६, दिशा ७, आत्मा८, मन९ यह पूर्व उक्त नव हीं द्रव्य हैं । इनोंतैं भिन्न कोई दशमा द्रव्य है नहीं इति ॥

मीमांसकोंके दशमद्रव्य तम तथा सुवर्णका खण्डन ॥

अब तमकूं तथा सुवर्णकूं पूर्वउक्त पृथिवी आदिक नवद्रव्योंतैं भिन्न द्रव्यरूप मानणे हारे मीमांसकोंके मतके खंडनकरणे वास्तै प्रथम तिन मीमांसकोंके मतका उपपादन करे हैं । तहां पूर्वउक्त पृथिवीआदिक नवद्रव्योंतैं भिन्न तमरूप दशमद्रव्य विद्यमान है । यातैं नव हीं द्रव्य हैं यह नैयायिकोंकी प्रतिज्ञा मिथ्या है, किंतु तिस तमकूं मिलाइकै दश हीं द्रव्य कहणे योग्यथे । **शंका**—तिस तमविषे कोई प्रमाण है नहीं । यातैं तिस तमकूं हमेनैं नहीं कथन कऱ्या है । **समाधान**—सो तम चक्षुइंद्रिय करिकै सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्ष हीं प्रतीत होवै है । यातैं चक्षु-इंद्रियरूप प्रत्यक्ष हीं तिस तमविषे प्रमाण है, ऐसे प्रत्यक्षप्रमाणासिद्ध तमका निषेध करणा संभवता नहीं । **शंका**—ता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै तमरूप वस्तुके सिद्धहूए भी सो तम द्रव्यरूप हीं है इस अर्थविषे कोई प्रमाण है नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै तिस तमविषे द्रव्यरूपता सिद्ध करे हैं । **तमः द्रव्यं रूपवत्त्वात् क्रियावत्त्वाद्वा पृथिवीवत् ।** अर्थ यह—सो तम द्रव्य होणे योग्य है रूप गुणवाला होणेतैं अथवा क्रियावाला होणेतैं, जो जो पदार्थ रूपगुणवाला होवै है अथवा क्रियावाला होवै है सो सो पदार्थ द्रव्यरूप हीं होवै है । जैसे पृथिवी रूपगुणवाली है तथा क्रियावाली है । यातैं सा पृथिवी द्रव्यरूप हीं है तैसे सो तम भी रूपगुणवाला होणेतैं तथा क्रियावाला होणेतैं द्रव्यरूप हीं होवैंगा । तहां **नीलं तमश्चलति ।** अर्थ यह—नीलरूपवाला तम चलता है । या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । तिस प्रत्यक्षप्रतीतितैं हीं तिस तमविषे नीलरूपवत्ता तथा चलन क्रियावत्ता सिद्ध होवै है । यातैं ता उक्त अनुमान करिकै ता तमविषे द्रव्यरूपता हीं सिद्ध होवै है, किंवा यह तम पर है यह तम अपर है या प्रकारकी प्रतीतिके बलतैं तिस तमविषे परत्वअपरत्व गुण भी प्रतीत होवै है । यातैं ता परत्वअपरत्व गुणकी आश्रयतारूप हेतुतैं भी ता तमविषे द्रव्यरूपता हीं सिद्ध होवै है इति । **शंका**—इस उक्त अनुमान करिकै ता तमकूं द्रव्यरूपता रहो तथापि सो तम पूर्वउक्त नवद्रव्योंतैं भिन्न द्रव्य नहीं है, किंतु तिन नवद्रव्योंके मध्यविषे हीं किसी द्रव्यके अंतर्भूत होवैंगा । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै ता तमका पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे अन्तर्भाव सिद्ध करे हैं । तहां **तमो न पृथिवी गन्धशून्यत्वात् जलवत् ।** अर्थ यह—सो तम पृथिवीरूप नहीं है, गंधगुणतैं रहित होणेतैं । जो जो द्रव्य गंधगुणतैं रहित होवै है सो सो द्रव्य पृथिवीरूप होता नहीं । जैसे यह जल गंधगुणतैं रहित होणेतैं पृथिवीरूप नहीं है तैसे सो तम भी गंधगुणतैं रहित होणेतैं पृथिवीरूप नहीं होवैंगा, किंतु ता पृथिवीतैं भिन्न ही होवैंगा । इस अनुमान करिकै ता तमका पृथिवीविषे अंनतर्भाव सिद्ध

होवै है इति । तथा **तमः न जलादिकं नीलरूपवत्वात् पृथिवीवत् ।** अर्थ यह-सो तम जलादिक अष्टद्रव्यरूप भी नहीं है नीलरूपवाला होणेतैं; जो जो द्रव्य नीलरूपवाला होवै हैं सो सो द्रव्य जलादिक अष्टद्रव्यरूप भी नहीं होवै है । जैसे पृथिवीरूपद्रव्य नीलरूपवाला होणेतैं जलादिक अष्टद्रव्यरूप नहीं है तैसे सो तम भी नीलरूपवाला होणेतैं जलादिक अष्टद्रव्यरूप नहीं होवैंगा । पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'रूपवत्त्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'नील' यह पद नहीं कथन करते तौं ता हेतुका जल, तेज इन दोनों द्रव्योंविषे व्यभिचार होता । काहेतैं ? ता जल तेजविषे सो रूपवत्त्वरूप हेतु तौं रहे है परंतु सो जलतेजका भेदरूप साध्य ता जलतेजविषे रहता नहीं । जिस कारणतैं आपणा भेद आपणेविषे रहता नहीं । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'नील' यह रूपका विशेषण कथन क्र्या है, ता जलतेजविषे सो नीलरूप रहता नहीं किंतु शुक्लरूप रहे है । यातैं ता जलतेजविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति । इस प्रकारके उक्त दो अनुमानों करिकै ता तमका तिन पृथिवीआदिक नव द्रव्योंविषे अनन्तर्भाव हीं सिद्ध होवै है ॥

पार्थक्यका अनुमान—अथवा इस एक हीं अनुमान करिकै ता तमका तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे अनन्तर्भाव सिद्ध होवै है । सो अनुमान यह है । **तमः न पृथिव्यादि स्पर्शरहितत्वे सति रूपवत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा पृथिव्यादि ।** अर्थ यह—सो तम पृथिवीआदिक नवद्रव्यरूप नहीं है स्पर्शगुणतैं रहितहूआ रूपगुणवाला होणेतैं । जो जो पदार्थ पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके भेदवाला नहीं होवै है सो सो पदार्थ स्पर्शगुणतैं रहितहूआ रूपगुणवाला भी नहीं होवै है । जैसे पृथिवीआदिक नवद्रव्य तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके भेदवाले नहीं हैं । यातैं स्पर्शगुणतैं रहितहूए रूपगुणवाले भी नहीं हैं और यह तम तौं स्पर्शगुणतैं रहित हूआ रूपगुणके अभाववाला नहीं है, किंतु स्पर्शगुणतैं रहित हूआ रूपगुणवाला हीं है । यातैं यह तम तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके भेदके अभाववाला भी नहीं है; किंतु तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके भेदवाला हीं है इति । इस प्रकारके एक हीं केवलव्यतिरेकी अनुमान करिकै ता तमका तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे अनन्तर्भाव सिद्ध होवै है । यातैं सो तम पूर्वउक्त पृथिव्यादिक नवद्रव्योंके अन्तर्भूत नहीं है । किंतु तिन नवद्रव्योंतैं भिन्न दशमद्रव्यरूप है इति । किंवा तिस तमरूप दशमद्रव्यका—**स्पर्शरहितत्वे सति रूपवत् तमः ।** यह हीं लक्षण सिद्ध होवै है । तहां स्पर्शगुणतैं रहितपणा तौं आकाशादिक पांच द्रव्योंविषे तथा गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे भी है परन्तु तिनोंविषे रूपगुण है नहीं । यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता तमके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं और सो रूपगुण तौं पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंविषे भी रहे है परंतु तिनोंविषे ता स्पर्शगुणतैं रहितपणा नहीं है, किंतु ते पृथिवीआदिक तीनों स्पर्शगुणवाले हीं हैं । यातैं तिनोंविषे भी ता उक्त

लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । यातैं इस प्रकारके असाधारणधर्मरूप लक्षणतैं सो तमरूप दशमद्रव्य पूर्वउक्त पृथिवीआदिक नवद्रव्योंतैं भिन्न हीं सिद्ध होवै है । यह वार्त्ता वृद्धपुरुषोंनैं भी कही है । तहां श्लोक—तमः खलु चलं नीलं परापरविभागवत् । प्रसिद्धद्रव्यवैधर्म्यान्नवभ्यो भेत्तुमर्हति । अर्थ यह—सो तम चलनरूपक्रियावाला होणैंतैं तथा नीलरूपवाला होणेतैं तथा परत्वअपरत्वगुणवाला होणेतैं द्रव्यरूप हीं है और सो तम प्रसिद्ध पृथिवी आदिक नवद्रव्योंके वैधर्म्यवाला होणेतैं तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंतैं भिन्न हीं होणेयोग्य है । तहां प्रसिद्ध पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे नहीं वर्त्तणेहारा जो पूर्व उक्त स्पर्शरहित रूपवत्त्व धर्म है यह हीं तिस तमविषे पृथिवीआदिक नवद्रव्योंका वैधर्म्य है । तहां ता तमविषे नीलरूपादिगुणवत्त्व तथा क्रियावत्त्वरूप हेतुतैं तौं द्रव्यरूपता सिद्ध होवै है । और ता उक्तवैधर्म्यतैं ता तमका तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे अंतर्भाव होइ सकता नहीं । परिशेषतैं सो तम तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंतैं भिन्न दशमद्रव्यरूप हीं सिद्ध होवै है इति ॥

तमके द्रव्यत्वपणेका खण्डन—सो यह मीमांसकोंका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? तिस तमकूं जो द्रव्यरूप मानिये तौं सूर्य अग्नि आदिक तेजके प्रकाशरूप आलोक करिकै सहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै हीं तिस तमका प्रत्यक्ष होणा चाहिये । काहेतैं ? जो जो द्रव्य महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपवाला होवै है तिस तिस द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष आलोकसहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै हीं होवै है । जैसे महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपवाले घटपटादिक द्रव्योंका चाक्षुषप्रत्यक्ष ता आलोकसहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै हीं होवै है । ता आलोकतैं विना अन्धकारविषे स्थित तिन घटपटादिक द्रव्योंका ता चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । तैसे ता महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपवाले तमरूप द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष भी ता आलोकसहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै हीं होणा चाहिये सो आलोकसहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै ता तमका चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं । किंतु ता आलोक निरपेक्ष चक्षुइंद्रिय करिकै हीं ता तमका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । यातैं यह जान्या जावै है सो तम द्रव्यरूप नहीं है । किंतु तेजके अभावका नाम तम है । शंका—आलोकसहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै हीं ता द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । यह नियम सर्वत्र सम्भवता नहीं । काहेतैं ? रात्रिकालविषे तिस आलोकके अभावहूए भी घूकादिक निशाचर प्राणियोंकूं चक्षुइंद्रिय करिकै पार्थिवादिक द्रव्योंका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै हीं है तैसे ता तमरूपद्रव्यका भी लोकोंकूं आलोकतैं विना हीं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैगा । समाधान—ता रात्रिकालविषे भी सर्वप्रकारतैं ता आलोकका अभाव होता नहीं । किंतु यत्किंचित् अनुत्कृष्ट आलोक तहां भी बन्या रहे है सो अनुत्कृष्ट आलोक हीं तिन घूकादिकोंके चक्षुइंद्रियका सहकारी होवै है अर्थात् ता अनुत्कृष्ट आलोक करिकै सहकृत हूआ सो घूकादिकोंका चक्षुइंद्रिय ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण होवै है । यातैं अलोकसहकृत चक्षुइंद्रिय

करिकै हीं ता द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । इस प्रकारके नियमका तिन घूकादिकोंविषे व्यभिचार होवै नहीं । शंका–ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे जो अनुत्कृष्टआलोककूं भी चक्षुइंद्रियका सहकारी मानोंगे तौ तिन घूकादिकोंकी न्यांई अस्मदादिक मनुष्योंकूं भी ता अन्धरात्रिकालविषे तिन द्रव्योंका चाक्षुषप्रत्यक्ष होणा चाहिये । समाधान–विलक्षणअदृष्ट विशेष करिकै अनुगृहीत हूआ सो घूकादिकोंका चक्षुइंद्रिय तौं ता चाक्षुषप्रत्यक्षकी उत्पत्तिविषे ता अनुत्कृष्ट आलोककी हीं अपेक्षा करे है । ता उत्कृष्ट आलोककी अपेक्षा करता नहीं। और विलक्षण अदृष्टविशेष करिकै अनुगृहीत हूआ सो अस्मदादिक मनुष्योंका चक्षुइंद्रिय तौं ता चाक्षुषप्रत्यक्षकी उत्पत्तिविषे उत्कृष्टआलोककी हीं अपेक्षा करे है ता अनुत्कृष्ट आलोककी हीं अपेक्षा करता नहीं । या कारणतैं अस्मदादिक मनुष्योंकूं तिन घूकादिकोंकी न्यांई ता अनुत्कृष्ट आलोक करिकै तिन द्रव्योंका चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं। अथवा ता चाक्षुषप्रत्यक्षका अस्मदीय यह विशेषण कथन करणा । अर्थात् अस्मदीय चाक्षुषप्रत्यक्षविषे हीं आलोकसहकृत चक्षुइंद्रियकूं कारणता है या प्रकारका नियम मानणा । यातैं तिन घूकादिकोंके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता आलोकसहकृत चक्षुइंद्रियकूं अकारणता हूए भी ता उक्त नियमका भंग होवै नहीं इति । किंवा तिस तमकूं जो दशमद्रव्य मानिये तौं तिस तमरूप द्रव्यके समवायिकारणरूप अवयव मानणे होवैंगे । तथा तिन अवयवोंके भी समवायिकारणरूप दूसरे अवयव मानणे होवैंगे । इस प्रकार परमाणुवोंपर्यंत ता तमके अवयवोंकी धारा मानणी होवैंगी तथा उत्तरोत्तर अवयवीयोंके पूर्वपूर्व अवयवोंविषे प्रागभाव कल्पना करणे होवैंगे । तथा तिन अवयवीयोंके प्रध्वंसाभाव कल्पना करणे होवैंगे ता करिकै महान्गौरवदोषकी प्राप्ति होवैंगी । तिस गौरवदोषकी प्राप्ति तमकूं अभावरूप मानणेविषे होती नहीं । यातैं सो तम द्रव्यरूप नहीं है किंतु तेजके अभावका नाम तम है । शङ्का–तेजके अभावकूं तमरूप मानणेहारे नैयायिकसैं यह पूछा चाहिये कि तेज सामान्यके अभावका नाम तम है अथवा तेजविशेषके अभावका नाम तम है ? तहां सो नैयायिक जो प्रथमपक्ष अंगीकार करे तौं अत्यन्तगाढ अंधकारविषे भी ता तमकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये । काहेतैं ? सर्वकालविषे तथा सर्व देशविषे तेजके परमाणु रहे हैं, यातैं ता गाढ अंधकारविषे भी ता तेजके परमाणु विद्यमान हीं हैं तिन तेजपरमाणुवोंके विद्यमानहूए तहां तेजसामान्यका अभाव है नहीं । यातैं ता गाढअंधकारविषे तमकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये और तहां तमकी प्रतीति सर्वकूं होवै है । यातैं तेजसामान्यके अभावविषे तमरूपता संभवती नहीं । और तेजविशेषके अभावका नाम तम है यह द्वितीय पक्ष जो नैयायिक अंगीकार करे तौं सूर्यके प्रकाशरूप आलोकके विद्यमान हूए भी तमकी प्रतीति होणी चाहिये । काहेतैं ? तहां भी यत्किंचित् अग्निचन्द्रादिक तेजविशेषका अभाव विद्यमान

नहीं है और तहां तमकी प्रतीति होती नहीं, यातैं ता तेजविशेषके अभावविषे भी सा तम रूपता संभवती नहीं ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब जिस प्रकारके तेजके अभावका नाम तम है, तिस प्रकारके तेजके अभावका वर्णन करे हैं। **प्रकृष्टमहत्त्वोऽद्भूतानभिभूतरूपवत्तेजः सामान्याभावः तमः ।** अर्थ यह—जो तेज प्रकृष्टमहत्त्वपरिमाणवाला है तथा उद्भूत अनभिभूत रूप वाला है ऐसे तेजका जो सामान्य अभाव है अर्थात् इस प्रकारतैं सर्वतेजोंका जो अभाव है ताका नाम तम है। ऐसे तेज यह प्रसिद्ध सूर्य,चन्द्र,अग्नि, विद्युत, मणि आदिक हैं। तिन सर्व तेजोंका जहां अभाव होवै है तहां हीं तमकी प्रतीति होवै है। यातैं तिन सूर्यादिक सर्वतेजोंके अभावका नाम तम है। पदकृत्य—तहां इस तमके लक्षणविषे 'प्रकृष्ट' यह पद जो नहीं कथन करते तौं त्र्यणुकरूप तेजके विद्यमान हूए सो तम नहीं प्रतीत होणा चाहिये। काहेतैं ? सो त्र्यणुकरूप तेज महत्त्वपरिणामवाला भी है तथा उद्भूत अनभिभूत रूप वाला भी हैं; ऐसे त्र्यणुकरूप तेजके विद्यमान हूए तिस तेजका अभावरूप तम तहां संभवता नहीं और तिस त्र्यणुकरूप तेजके विद्यमान हूए भी तिस तमकी प्रतीति तौं तहां अनुभव सिद्ध है। यातैं ता महत्त्वपरिमाणका 'प्रकृष्ट' यह विशेषण कथन कऱ्या है। सो त्र्यणुकका महत्त्वपरिमाण प्रकृष्ट नहीं है, किंतु अपकृष्ट है। यातैं ता त्र्यणुकरूप तेजका ता उक्ततेजविशेषविषे प्रवेश होई सकता नहीं। यातैं ता त्र्यणुकरूप तेजके विद्यमान हूए भी ता उक्त तेज विशेषके अभावतैं तहां तमकी प्रतीति संभवै है किंवा ता उक्तलक्षणविषे 'उद्भूत' यह रूपका विशेषण जो नहीं कथन करते तौं चक्षुइंद्रिय रूप तेजके विद्यमान हूए सो तम नहीं प्रतीत होणाचाहिये। काहेतैं ? चक्षुइंद्रियरूप तेज प्रकृष्टमहत्त्ववाला भी है तथा अनभिभूतरूपवाला भी है। ऐसे चक्षुइंद्रिय रूप तेजके विद्यमान हूए ता तेजका अभावरूप तम तहां संभवता नहीं। और तिस चक्षुइंद्रिय रूप तेजके विद्यमानहूए भी तिस तमकी प्रतीति तहां अनुभवसिद्ध है। यातैं ता रूपका 'उद्भूत' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ता चक्षुइंद्रियविषे सो उद्भूतरूप रहता नहीं, किंतु अनुद्भूतरूप रहे है। यातैं जिस तेजविशेषके अभावकूं तमरूपता है तिस तेजविशेष विषे ता त्र्यणुकरूप तेजकी न्यांई ता चक्षुइंद्रियरूप तेजका भी प्रवेश होइ सकता नहीं। यातैं ता चक्षुइंद्रियरूप तेजके विद्यमानहूए भी ता उक्ततेजविशेषके अभावतैं तहां तमकी प्रतीति संभवै है। किंवा ता उक्तलक्षणविषे 'अनभिभूत' यह रूपका विशेषण जो नहीं कथन करते तौं सुवर्णरूप तेजके विद्यमानहूए सो तम नहीं प्रतीत होणा चाहिये। काहेतैं ? सो सुवर्णरूप तेज प्रकृष्ट महत्त्वपरिमाणवाला भी हैं तथा उद्भूतरूपवाला भी है। ऐसे सुवर्णरूप तेजके विद्यमानहूए तिस तेजका अभावरूप तम तहां संभवता नहीं और ता सुवर्णरूप तेजके विद्यमानहूए भी तहां तमकी प्रतीति तौं अनुभव सिद्ध है। यातैं ता उद्भूतरूपका 'अनभिभूत' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सो सुवर्णरूप तेजका रूप अनभिभूत नहीं

है, किन्तु ता सुवर्णरूप तेजके साथि मिल्या हूआ जो पीतिमगुरुत्वका आश्रयभूत पार्थिव भाग है ता पार्थिभागके रूप करिकै सो सुवर्णका रूप अभिभूत होइ रह्या है । यातैं ता सुवर्णरूप तेजका भी ता उक्ततेज विशेषविषे प्रवेश होई सकता नहीं । यातैं ता सुवर्णरूप तेजके विद्यमानहूए भी ता उक्ततेजविशेषके अभावतैं तहां तमकी प्रतीति सम्भवै है । किंवा ता लक्षणविषे 'सामान्य' यह पद जो नहीं कथन करते तौं जहां एक सूर्यरूप तेज विद्यमान है तहां भी दूसरे अग्निचन्द्रादिक तेजोंका अभाव हीं है । यातैं तहां भी तमकी प्रतीति होणी चाहिये और तहां तमकी प्रतीति होती नहीं । यातैं ता लक्षणविषे 'सामान्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सामान्यपदके कहणे करिकै ता उक्तकिंचित् विशेष तेजके अभावकूं तमरूपता सिद्ध होवै नहीं । किंतु प्रकृष्टमहत्त्वपरिमाणवाले तथा उद्भूत अनभिभूत रूपवाले सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत, मणि आदिक सर्व तेजोंके अभावकूं हीं तमरूपता सिद्ध होवै है । सो सर्वतेजोंका अभाव कहां होवैगा जहां तिन सूर्यादिक तेजोंविषे कोई भी तेज नहीं रहैंगा । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया सो तम द्रव्यरूप नहीं है, किन्तु ता उक्त तेजविशेषके अभावका नाम तम है इति ॥

**शङ्का**—तेजके अभावका नाम जो तम होवै तौं 'नीलं तमश्चलति' इस प्रत्यक्ष प्रतीतितैं तिस तमविषे जो नीलरूपवत्ता तथा चलनक्रियावत्ता प्रतीत होवै है सो नहीं होणी चाहिये । जिस कारणतैं अभावविषे रूप तथा क्रिया रहता नहीं । **समाधान**—तिस तेजके अभावरूप तमविषे जो नीलरूप प्रतीत होवै है सो नीलरूप तिस तमविषे है नहीं । किंतु पृथिवीका नीलरूप हीं तिस तमविषे प्रतीत होवै है जैसे नेत्रविषे स्थित पित्तद्रव्यका पीतरूप शंखविषे प्रतीत होवै है । यातैं 'पीतः शंखः' इस प्रतीतिकी न्यांई 'नीलं तमः' यह प्रतीति भी भ्रांतिरूप हीं है, तिस भ्रांतिज्ञानतैं ता तमविषे नीलरूपवत्ता सिद्ध होइ सकै नहीं । इस प्रकार ता अभावरूप तमविषे जो चलनक्रिया प्रतीत होवै है । सा क्रिया भी तिस तमविषे है नहीं, किंतु दीपादिक तेजके किरणोंका प्रतिरोध करणेहारे जे शरीरादिक पार्थिव द्रव्य हैं तिन शरीरादिक द्रव्योंकी क्रिया हीं तिस तमविषे प्रतीत होवै है । यातैं तिस अभावरूप तमविषे सा क्रियावत्ता प्रतीति भी 'पीतः शंखः' इस प्रतीतिकी न्यांई भ्रमरूप हीं है । ता भ्रांतिज्ञान करिकै तिस तमविषे क्रियावत्ता सिद्ध होइ सकै नहीं ॥

तेजको तमका अभावमानणेकी शङ्का—दशम द्रव्यके मानणेविषे जो तुमों नैयायिकोंका द्वेष होवै तौं ता तमकूं दशमद्रव्यरूपता मत होवो, तथापि ता तेजके स्थानविषे तमकूं हीं द्रव्यरूप मानणा योग्य है और तिस तमरूप द्रव्यका जो अभाव है ताका नाम तेज है । काहेतें ? जहां जहां सो तेज होवै है तहां तहां सो तम प्रतीत होता नहीं और जहां जहां तिस तेजका अभाव होवै है तहां तहां सो तम प्रतीत होवै है । इस प्रकारके अन्वयव्य-

तिरेकतैं तुम नैयायिकोंनैं जैसे तमकूं तेजका अभावरूप मान्या है तैसे जहां जहां सो तम होवै है। तहां तहां सो तेज प्रतीत होता नहीं और जहां जहां तिस तमका अभाव होवै है तहां तहां सो तेज प्रतीत होवै है। इस प्रकारके अन्वयव्यतिरेकतैं तिस तेजकूं भी तमकी अभावरूपता सिद्ध होइ सकै है। और जैसे तुम नैयायिकोंनैं तेजके अभावरूप तमविषे रूपवत्ता प्रतीतिकूं तथा क्रियावत्ता प्रतीतिकूं भ्रांतिरूप मान्या है तैसे ता तमरूप द्रव्यके अभावरूप तेजविषे भी ता रूपवत्ता प्रतीतिकूं तथा क्रियावत्ता प्रतीतिकूं भ्रमरूपता सम्भवै है। यातैं सो तेज ता तमरूप द्रव्यका अभावरूप हीं है। इसका समाधान—तेजकूं जो तमका अभावरूप मानिये तौं तिस तेजविषे जो उष्णस्पर्शकी प्रतीति होवै है तथा भास्वरशुक्ल-रूपकी प्रतीति होवै है सा प्रतीति अनुपपन्न होवैगी। काहेतैं ? अभावविषे सो स्पर्शगुण तथा रूपगुण रहता नहीं, किंतु द्रव्यविषे हीं सो गुण रहे है। और जैसे तेजके अभावरूप तमविषे रूपवत्ताप्रतीतिकूं भ्रमरूपता है तैसे ता तेजविषे उष्णस्पर्शवत्ता प्रतीतिकूं तथा भास्वरशुक्लरूपवत्ता प्रतीतिकूं भ्रमरूपता सम्भवती नहीं। काहेतैं ? सो उष्णस्पर्श तथा भास्वरशुक्लरूप जो कदाचित् ता तेजतैं भिन्न किसी द्रव्यविषे प्रसिद्ध होवै तौं तिस स्पर्शका तथा ता रूपका तिस तमके अभावरूप तेजविषे आरोपण करिकै ता उक्तप्रतीतिकूं भ्रमरूपता सिद्ध होवै, परंतु सो उष्णस्पर्श तथा भास्वरशुक्लरूप ता तेजतैं भिन्न किसी द्रव्यविषे प्रसिद्ध है नहीं, और, अन्यत्र प्रसिद्ध अर्थका हीं अन्यत्र आरोप होवै है सर्वथा अप्रसिद्ध अर्थका आरोप होता नहीं। यातैं तेजकूं तमका अभावरूप मानिकै ता तेजविषे उष्ण-स्पर्शवत्ता प्रतीतिकूं तथा भास्वरशुक्लरूपवत्ता प्रतीतिकूं भ्रमरूपत्व कहणा संभवता नहीं। यातैं तिस तेजकूं तमकी अभावरूपता संभवती नहीं, किंतु ता उष्णस्पर्शभास्वररूपवत्ता प्रतीतिके बलतैं तिस तेजकूं द्रव्यरूपता हीं सिद्ध होवै है॥

**शंका**—जैसे तेजविषे उष्णस्पर्शवत्ता प्रतीतिकूं तथा भास्वरशुक्लरूपवत्ता प्रतीतिकूं भ्रमरूपता नहीं है। तैसे तमविषे नीलरूपवत्ता प्रतीतिकूं तथा चलन क्रियावत्ता प्रतीतिकूं भी भ्रमरूपता संभवती नहीं। काहेतैं ? प्रतीतिविषे भ्रमरूपता तहां अंगीकार करी जावै है। जहां तिस प्रती-तिके उत्तरकालविषे बाध ज्ञान होवै है। जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतं' इस प्रकारकी प्रतीतितैं अनंतर 'नेदं रजतं' या प्रकारका बाधज्ञान होवै है। यातैं 'इदं रजतं' इस प्रथमप्रतीतिविषे भ्रमरूपता अंगीकार करी जावै है। तैसे 'नीलं तमश्चलति' इस प्रतीतितैं उत्तर 'तमो न नीलं, तमो न चलति' या प्रकारका बाध ज्ञान होता नहीं यातैं 'नीलं तमश्चलति' इस प्रतीतिविषे भ्रमरूपता संभवती नहीं। जो कदाचित् उत्तरकालीन बाधज्ञानतैं विना भी पूर्व प्रतीतिविषे भ्रमरूपता होती होवै तौं 'अयं घटः, अयं पटः' इत्यादिक सर्वप्रतीतियोंकूं भ्रमरूपताकी प्राप्ति होवैगी। ता करिकै शून्यवादकी प्राप्ति होवैगी। **समाधान**—तथापि ता तमकूं दशमद्रव्यरूप

मानणेविषे तिस तमरूप द्रव्यके अनंत अवयवकल्पना करणे तथा तिन अवयवोंविषे ता तमका प्रागभाव कल्पना करणा तथा प्रध्वंसाभाव कल्पना करणा इत्यादिक पूर्व उक्त कल्पनागौरव दोष हीं प्राप्त होवै है। यातैं लाघवतैं तिस तमकूं तेजका अभावरूप मानणा हीं उचित है इति॥

और कंदलीकारका तौं यह मत है। तेजके अभाव नाम तम नहीं है तथा सो तम दशम द्रव्यरूप भी नहीं है, किंतु आरोपित जो नीलरूप है ताका नाम तम है इति। सो यह कंदली कारका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं ? ता आरोपित नीलरूपकूं जो तम मानिये तौं जलादिकोंविषे जो 'इह अन्धकारः' या प्रकारकी प्रतीति होवै है तिस प्रतीतिकूं भी भ्रमरूपता होणी चाहिये। काहेतैं ? तिन जलादिकोंविषे ता भ्रमका प्रकारीभूत नीलरूप है नहीं। और 'इह अन्धकारः' इस प्रतीतिकूं भ्रमरूपता है नहीं किंतु प्रमारूपता हीं हैं। यातैं ता आरोपित नीलरूपविषे तमरूपता संभवती नहीं। किंवा—तमो नीलं न तु नीलिमा। अर्थ यह—यह तम नीलरूपवाला है नीलरूप नहीं है। इस प्रकारकी लौकिकप्रतीतितैं भी तिस तमविषे नीलरूपता सिद्ध होती नहीं इति॥

सुवर्णको दशमद्रव्यत्वकी शंका—तिस तमकूं दशमद्रव्यरूपता मत हो वो। तथापि सुवर्णरूप दशम द्रव्य विद्यमान है। तहां सो सुवर्ण गुरुत्वधर्मवाला होणेतैं तथा पीतरूपवाला होणेतैं तेजरूप भी नहीं है। और गंधगुणतैं रहित होणेतैं पृथिवीरूप भी नहीं है। और सांसिद्धिक द्रवत्वतैं तथा स्नेहगुणतैं रहित होणेतैं सो सुवर्ण जलरूप भी नहीं है। और रूपगुणवाला होणेतैं सो सुवर्ण वायुआदिक षट्द्रव्यरूप भी नहीं है। इस प्रकार ता सुवर्णका तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंके मध्यविषे किसी भी द्रव्यविषे अंतर्भाव होइ सकता नहीं। परिशेषतैं ता सुवर्णविषे दशमद्रव्यरूपता हीं सिद्ध होवै है। यातैं नव हीं द्रव्य हैं यह तुमारी प्रतिज्ञा मिथ्या है॥

इसका समाधान—जैसे तमविषे दशमद्रव्यरूपता नहीं है। तैसे ता सुवर्णविषे भी दशमद्रव्य रूपता संभवती नहीं। किंतु ता सुवर्णका तेजरूप द्रव्यविषे ही अंतर्भाव संभवै है। तहां ता सुवर्णका जिस प्रकारतैं ता तेजरूप द्रव्यविषे अंतर्भाव है सो प्रकार पूर्व तेजरूप द्रव्यके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं। यातैं पूर्वोक्त पृथिवीआदिक नव हीं द्रव्य हैं यह अर्थ सिद्ध भया इति॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानन्दगिरिणा विरचिते न्यायप्रकाशे द्रव्यनिरूपणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः॥ २ ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः॥

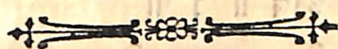
श्रीपरमात्मने नमः॥ श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः॥

इति न्यायप्रकाशे द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः।

ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः ॥

श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

# तृतीयपरिच्छेदः ।



### गुण निरूपण ।

तहां पूर्वद्वितीयपरिच्छेदविषे पृथिवीआदिक नवद्रव्योंका विस्तारतैं निरूपण कऱ्या । अब इस तृतीय परिच्छेदविषे रूपादिक चतुर्विंशति गुणोंका विस्तारतैं निरूपण करे हैं ॥

### गुणोंका लक्षण ।

तहां प्रथम तिन रूपादिक चौवीसगुणोंके साधारण च्यारि लक्षण कथन करे हैं । **द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः ॥ १ ॥ अथवा द्रव्यत्वव्यापकताऽवच्छेदक सत्ताभिन्नजातिमान् गुणः ॥ २ ॥ अथवा द्रव्यसमवेतमात्रवृत्ति नित्यानित्यवृत्ति पदार्थविभाजकोपाधिमान् गुणः ॥ ३ ॥ अथवा गुणत्वजातिमान् गुणः ॥ ४ ॥**

### पहिले लक्षणका निरूपण ॥

अब इन च्यारि लक्षणोंविषे प्रथमलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो पदार्थ द्रव्यतैं तथा कर्मतैं भिन्न होवै है तथा समवायसंबंध करिकै जातिरूप सामान्यवाला होवै है सो पदार्थ गुण कह्या जावै है । तहां रूपतैं आदिलैके संस्कारपर्यंत जे चौबीस गुण हैं ते चौबीसगुण द्रव्यपदार्थतैं तथा कर्मपदार्थतैं भिन्न भी हैं । तथा समवायसंबंध करिकै गुणत्वजातिरूप वा सत्ताजातिरूप सामान्यवाले भी हैं । यातैं यह उक्तगुणका लक्षण संभवै है । पद कृत्य—तहां 'सामान्यवान् गुणः' इतनामात्र हीं जो ता गुणका लक्षण करते ता लक्षणविषे द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते । तौं द्रव्यविषे तथा कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो गुण जातिरूप सामान्यवाला है तैसे सो द्रव्य भी द्रव्यत्वजातिरूप वा सत्ताजातिरूप सामान्यवाला हीं है । तथा सो कर्म भी कर्मत्वजातिरूप वा सत्ताजातिरूप सामान्यवाला हीं है; ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति , यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो द्रव्य ता द्रव्यतैं भिन्न नहीं है । तथा सो कर्म ता कर्मतैं भिन्न नहीं है, जिस कारणतैं आपणा भेद आपणेविषे रहता नहीं । यातैं द्रव्यविषे तथा कर्म विषे ता गुणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ' द्रव्यकर्मभिन्नः गुणः' इतनामात्र हीं जो ता गुणका लक्षण करते ता लक्षणविषे' सामान्यवान्' यह पद नहीं कथन करते तौं सामान्य विशेष समवाय अभाव इन च्यारोंपदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं? जैसे सो गुणपदार्थ ता द्रव्यकर्मतैं भिन्न है तैसे ते सामान्यादिक

च्यारि पदार्थ भी ता द्रव्यकर्मतैं भिन्न हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे, सामान्यवान् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते सामान्यादिक च्यारि-पदार्थ ता जातिरूप सामान्यवाले है नहीं, यातैं तिन सामान्यादिक च्यारोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ १ ॥

द्वितीय लक्षणका निरूपण ।

अब द्रव्यत्वव्यापकताऽवच्छेदकसत्ताभिन्नजातिमान् गुणः । इस द्वितिय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां द्रव्यत्वजातिके व्यापकता अवच्छेदक तथा सत्ताजातितैं भिन्न ऐसी जा जाति है ता जातिवाला पदार्थ गुण कह्या जावै है । ऐसी द्रव्यत्वजातिके व्यापकताका अवच्छेदक तथा सत्ताजातितैं भिन्न गुणत्वजाति हीं है । ता गुणत्वजातिवाले ते रूपादिक चौवीसगुण हैं तहां द्रव्यत्वजाति पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है और गुण भी तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है । यातैं सो गुण ता द्रव्यत्वजातिका व्यापक कह्या जावै है । और तिन रूपादिक गुणोंविषे रही हूई जा द्रव्यत्वजातिकी व्यापकता है ता व्यापकताका अवच्छेदक गुणत्वजाति हीं है । और सा गुणत्वजाति सत्ताजातितैं भिन्न भी है । ऐसी गुणत्वजाति तिन रूपादिक सर्वगुणोंविषे समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं यह उक्त गुणका लक्षण भी संभवै है । पदकृत्य—तहां ' सत्ताभिन्नजातिमान् गुणः ' इतनामात्र हीं जो ता गुणका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' द्रव्यत्वव्यापकताऽवच्छेदक' यह पद नहीं कथन करते तौं द्रव्यविषे तथा कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे ता सत्ताजातितैं भिन्न गुणत्वजातिवाला गुण है तैसे ता सत्ताजातितैं भिन्न द्रव्यत्वजातिवाला द्रव्य भी है । तथा ता सत्ताजातितैं भिन्न कर्मत्वजातिवाला कर्म भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' द्रव्यत्वव्यापकताऽवच्छेदक ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा द्रव्यत्वजाति तथा कर्मत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिके व्यापकताका अवच्छेदक नहीं है । काहेतैं ? तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे जैसे गुण समवायसंबंध करिकै रहे है । तैसे तिन पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे जो कदाचित् कोई द्रव्य तथा कर्म भी समवायसंबंध करिकै रहता होवै तौं सा द्रव्यत्वजाति तथा कर्मत्वजाति ता गुणत्वजातिकी न्यांई ता द्रव्यत्वजातिके व्यापकताका अवच्छेदक होवै है, परन्तु तिन नवद्रव्योंविषे सो द्रव्य तथा कर्म समवायसंबंध करिकै रहता नहीं । यातैं सा द्रव्यत्वजाति तथा कर्मत्वजाति ता द्रव्यत्वजातिके व्यापकताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं । यद्यपि परमाणुआदिरूप पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि द्रव्योंविषे द्व्यणुकादिरूप द्रव्य समवायसंबंध करिकै रहे हैं तथा पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांचद्रव्योंविषे कर्म समवायसंबंध करिकै रहे है तथापि आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन इन पांच द्रव्योंविषे कोई भी द्रव्य समवायसंबंध करिकै रहता नहीं । तथा आकाश, काल,

दिशा, आत्मा, मन इन च्यारिविभु द्रव्योंविषे कोई भी कर्म समवायसंबंध करिकै रहता नहीं, यातैं ता द्रव्यत्वजातिविषे तथा कर्मत्वजाति विषे ता द्रव्यत्व जातिके व्यापकताका अवच्छेदकपणा संभवता नहीं किंवा 'द्रव्यत्वव्यापकताऽवच्छेदकजातिमान् गुणः' इतनामात्र हीं जो ता गुणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'सत्ताभिन्न, यह पद नहीं कथन करते तौं ता द्रव्यत्वजातिके व्यापकरूपादिक गुणोंविषे रहणेहारी सत्ताजातिकूं लैके पुनः ता द्रव्यकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषेके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'सत्ताभिन्न' यह पद कथन कऱ्या है तहां सा सत्ताजात्ति ता सत्ताजातितैं भिन्न है नहीं। यातैं ता सत्ताजात्तिकूं लैके ता द्रव्यकर्मविषे ता लक्षणका अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ २ ॥

तीसरे लक्षणका निरूपण ।

अब द्रव्यसमवेतमात्रवृत्ति नित्यानित्यवृत्ति पदार्थविभाजकोपाधिमान् गुणः। इस तृतीय लक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं। तहां द्रव्यसमवेतमात्रविषे रहणेहारा तथा नित्य अनित्य दोनोंविषे रहणेहारा ऐसा जो पदार्थविभाजक उपाधि है ता उपाधिवाला पदार्थ गुण कह्या जावै है। तहां जिस जिस धर्मकूं लैके द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंका विभाग कऱ्या जावै है सो सो धर्म पदार्थविभाजक उपाधि कह्या जावै है। जैसे द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, सामान्यत्व, विशेषत्व, समवायत्व, अभावत्व इन धर्मोंकूं लैके हीं यथाक्रमतैं तिन द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंका विभाग कऱ्या जावै है यातैं ते द्रव्यत्व गुणत्वादिक धर्म पदार्थविभाजक उपाधि कहे जावै हैं। तहां ते रूपादिक चौवीस गुण यथायोग्य पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं समवाय-संबंध करिकैं रहे हैं। यातैं ते रूपादिक गुण द्रव्यसमवेत कहे जावै हैं। ऐसे द्रव्यसमवेत-रूपादिक गुणोंविषे हीं सा गुणत्वजाति समवायसंबंध करिकै रहे है। तिन गुणोंतैं भिन्न अन्य किसी पदार्थविषे सा गुणत्वजाति रहती नहीं। यातैं सा गुणत्वजाति द्रव्यसमवेतमात्र वृत्ति कही जावै है और सा गुणत्वजाति नित्यगुणोंविषे भी रहे है तथा अनित्यगुणोंविषे भी रहे है। यातैं सा गुणत्वजाति नित्यअनित्यवृत्ति कही जावै है और उक्तरीतिसैं सा गुण-त्वजाति पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है। ऐसी द्रव्यसमवेतमात्रवृत्ति तथा नित्य अनित्य-वृत्ति तथा पदार्थविभाजकउपाधिरूप गुणत्वजाति तिन रूपादिक सर्वगुणोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त गुणका लक्षण भी संभवै है। पदकृत्य—तहां 'नित्यानित्यवृत्ति पदार्थविभाजको-पाधिमान् गुणः' इतनामात्र हीं जो ता गुणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्रव्यसमवेत-मात्रवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं द्रव्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सा गुणत्वजाति नित्य अनित्य गुणोंविषे रहे है तथा पदार्थविभाजक उपाधिरूप है। तैसे सा द्रव्यत्वजाति भी नित्यअनित्य द्रव्योंविषे रहे है तथा पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है ऐसी द्रव्यत्वजाति तिन पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे रहे है। ता अतिव्याप्तिदोषके

निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'द्रव्यसमवेतमात्रवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा द्रव्यत्वजाति केवल द्रव्यसमवेतमात्रवृत्ति नहीं है। किंतु द्रव्यसमवेत तथा द्रव्यअसमवेत दोनों प्रकारके द्रव्योंविषे सा द्रव्यत्वजाति रहे है। तहां द्व्यणुकादिक कार्य द्रव्य तौं द्रव्य समवेत द्रव्य कह्ये जावै हैं। और परमाणु आकाशादिक नित्य द्रव्य तौं द्रव्यअसमवेत द्रव्य कह्ये जावै हैं। यातैं द्रव्यसमवेत द्रव्यविषे तथा द्रव्यअसमवेत द्रव्यविषे वर्त्तणेहारी ता द्रव्यत्व जातिकूं लैके ता द्रव्यविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'द्रव्यसमवेतमात्रवृत्तिपदार्थ विभाजकोपाधिमान् गुणः' इतनामात्र हीं जो ता गुणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'नित्यानित्यवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं कर्मपदार्थविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो गुणपदार्थ द्रव्यविषे ही समवायसबंन्ध करिकै रहे है। तैसे सो कर्मपदार्थ भी पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांचमूर्त्त द्रव्योंविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे हैं। यातैं सो कर्म भी ता गुणकी न्यांई द्रव्यसमवेत कह्या जावै है, ऐसे द्रव्यसमवेत कर्ममात्रविषे वर्त्तणेहारी कर्मत्वजाति है और सा कर्मत्वजाति ता गुणत्वजातिकी न्यांई पदार्थविभाजकउपाधिरूप भी है, ऐसी द्रव्यसमवेतमात्रवृत्ति तथा पदार्थविभाजक उपाधिरूप कर्मत्वजातिवाला सो कर्म भी है, यातैं कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। किंवा 'नित्यानित्यवृत्ति' इस पदके नहीं कहणे करिकै जैसे कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है तैसे विशेषपदार्थ विषे भी ता लक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है। काहेतैं? जैसे सो गुणकर्म द्रव्यविषे रहे है तैसे सो विशेष भी द्रव्यविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं ता गुणकर्मकी न्यांई सो विशेष भी द्रव्यसमवेत कह्या जावै है। ऐसे द्रव्यसमवेत विशेषमात्रविषे वर्त्तणे हारा विशेषत्व धर्म है। और सो विशेषत्व धर्म ता गुणत्व कर्मत्व जातिकी न्यांई पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है। ऐसे द्रव्य समवेतमात्रवृत्ति तथा पदार्थविभाजक उपाधिरूप विशेषत्व धर्मवाला सो विशेषपदार्थ भी है। यातैं ता विशेषविषे भी ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'नित्यानित्यवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो क्रियारूप कर्म कोई भी नित्य होता नहीं, किंतु सर्व कर्म अनित्य हीं होवै हैं। ऐसे अनित्यकर्मविषे वर्त्तणेहारी सा कर्मत्वजाति नित्य अनित्य वृत्ति कही जावै नहीं किंतु सा कर्मत्वजाति केवल अनित्यवृत्ति हीं कही जावै है। यातैं ता कर्मत्वजातिकूं लैके ता कर्मविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं और नित्यद्रव्योंविषे रहणेहारा सो विशेषपदार्थ नित्य हीं होवै है कोई भी विशेष अनित्य होता नहीं। ऐसे नित्यविशेषविषे वर्त्तणेहारा सो विशेषत्व धर्म नित्य अनित्यवृत्ति कह्या जावै नहीं, किन्तु सो विशेषत्व धर्म केवल नित्यवृत्ति कह्या जावै है। यातैं ता विशेषत्व धर्मकूं लैके ता विशेषविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'द्रव्यसमवेतमात्रवृत्तिनित्यानित्यवृत्त्युपाधिमान् गुणः'

इतनामात्र हीं जो ता गुणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'पदार्थविभाजक' यह पद नहीं कथन करतें तौं नित्यअनित्यविभागवाले रूपरसादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी रूपत्व-रसत्वादिक जातियोंकूं लैके यत्किंचित् रूपादिक गुणोंविषे तौं सो लक्षण घटता, परंतु जे गुण नित्यअनित्यविभागवाले नहीं हैं किंतु केवल अनित्य हीं हैं तिन संयोगविभागादिक अनित्य गुणोंविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति हीं होतीं, ता अव्याप्तिदोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'पदार्थविभाजक' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपत्वरसत्वादिक जातियां पदार्थविभाजक उपाधिरूप नहीं है किंतु गुणविभाजक उपाधिरूप हैं । यातैं तिन रूपत्वरसत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संयोगविभागादिक अनित्य गुणोंविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ ३ ॥

चतुर्थलक्षणका निरूपण ।

**अब गुणत्वजातिमान् गुणः** । इस चतुर्थलक्षणका अर्थ निरूपण करे हैं । तहां जो पदार्थ समवायसम्बन्ध करिकै गुणत्वजातिवाला होवै है सो पदार्थ गुण कह्या जावै है । तहां सागुणत्वजाति समवायसंबंध करिकै तिन रूपादिक चौवीसगुणोंविषे हीं रहे है ता गुणतैं भिन्न कर्मादिक पदार्थोंविषे सा गुणत्वजाति रहती नहीं । यातैं यह गुणत्वजा-तिमत्त्वरूप गुणका लक्षण भी सम्भवै है इति ॥

गुणत्वजातिविषे प्रत्यक्षप्रमाण—यह पूर्वोउक्त गुणत्वजातिघटित गुणका लक्षण तबी सम्भवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि होवै, ता गुणत्वजातिकी सिद्धितैं विना सो लक्षण सम्भवता नहीं । सो गुणत्वजातिविषे कोई प्रमाण है नहीं । यातैं सो गुण-त्वजातिघटित गुणका लक्षण सम्भवता नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब प्रत्यक्षप्रमाणतैं ता गुणत्वजातिकी सिद्धि करे हैं—तहां परस्परविलक्षण जे रूपरसादिक गुण हैं तिन रूप-रसादिक गुणोंविषे 'अयं गुणः,अयं गुणः' या प्रकारकी एकधर्मप्रकारके एकाकार प्रत्यक्ष-प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है सा एकाकारप्रतीति तिन रूपादिक सर्वगुणोंविषे रही हुई ता गुणत्वजातिकूं हीं विषय करे है, यातैं ता गुणत्वजातिविषे सो प्रत्यक्ष हीं प्रमाण है ।

अनुमानसें गुणत्वजातिकी सिद्धि—'अयं गुणः' या प्रकारकी प्रत्यक्षप्रतीति यद्यपि प्रत्यक्ष-योग्य घटादिक द्रव्योंके रूपादिक गुणोंविषे तौं होवै है तथापि परमाणुआदिकोंविषे रहणेहारे अतीन्द्रिय रूपादिक गुणोंविषे सा प्रत्यक्षप्रतीति होती नहीं । यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै तिन अतीन्द्रियगुणोंविषे तागुणत्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी, किंवा तिन प्रसिद्धरूपादिका गुणोंविषे भी सर्वलोकोंकूं 'अयं गुणः, अयं गुणः' या प्रकारकी प्रत्यक्षप्रतीति होती नहीं किंतु आपणे आपणे संकेतके वशतैं भिन्नभिन्नपदार्थोंविषे हीं लोकोंकूं सा गुणत्वविषयक

प्रतीति होवै है सो दिखावै हैं—तहां शब्दशास्त्रवाले वैयाकारण तौं अकार एकार ओकार इन तीनोंकूं हीं गुण कहे हैं और सांख्यशास्त्रवाले तौं सत्त्व, रज, तम इन तीनोंकूं हीं गुण कहे हैं और मीमांसकतौं हवनविषे उपयोगी जे दधि आदिक द्रव्य हैं तिनोंकूं हीं गुण कहे हैं और योगशास्त्रवाले तौं शम दम तितिक्षा आदिकोंकूं हीं गुण कहे हैं और धर्मशास्त्रवाले तौं अकृपणता, अस्पृहता इत्यादिकोंकूं हीं गुण कहे हैं और काव्यशास्त्रवाले तौं श्लेषादिकोंकूं हीं गुण कहे हैं और वैद्यकशास्त्रवाले तौं आरोग्यादिकोंकूं गुण कहे हैं और शिल्पशास्त्र वाले तौं चित्रादिक कर्मोंकी कुशलताकूं हीं गुण कहे हैं । और लौकिकजन तौं सत्यवचन आर्जव आदिकोंकूं हीं गुण कहे हैं । इस रीतिसैं लोकोंकूं भिन्नाभिन्न पदार्थोंविषे हीं गुणत्व बुद्धि होवै हैं सर्वलोंकूं तिन रूपादिकोंविषे गुणत्वबुद्धि होती नहीं । यातैं ता उक्तप्रत्यक्षप्रमाणतैं तिन रूपादिकगुणोंविषे ता गुणत्वजातिकी सिद्धि संभवै नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब अनुमान प्रमाण करिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि करे हैं—**गुणनिष्ठा या कारणता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् द्रव्यनिष्ठकारणतावत्** । अर्थ यह—रूपतैं आदिलैके संस्कारपर्यंत जे चौवीस गुण हैं तिन गुणोंविषे रही हूई जा कारणता है सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणे योग्य है कारणता होणेतैं । जा जा कारणता होवै है सा सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है । निरवच्छिन्न कोई कारणता होती नहीं । जैसे पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे रहीहूई कारणता कारणतारूप होणेतैं द्रव्यत्व धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है तैसे सा गुणविषे रही हूई कारणता भी कारणतारूप होणेतैं किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न अवश्य होवैंगी । तहां जो धर्म जिसकारणताके न्यूनदेशविषे तथा अधिकदेशविषे नहीं रहे है सो धर्म हीं तिस कारणताका अवच्छेदक होवै है ता कारणतातैं न्यूनदेशवृत्तिधर्म वा अधिकदेशवृत्तिधर्म ता कारणताका अवच्छेदक होवै नहीं । ऐसा गुणवृत्ति कारणताका अवच्छेदकधर्म गुणत्वजाति ही सिद्ध होवै है यद्यपि रूपत्वरसत्वादिक जातियां भी तिन रूपादिक गुणोंविषे रहे हैं । तथा सत्ताजाति भी तिन रूपादिक गुणोंविषे रहे है । तथापि ते रूपत्वरसत्वादिक जातियां तौं ता सर्वगुणवृत्ति कारणतातैं न्यूनदेशवृत्ति हैं और सा सत्ताजाति तौं ता कारणतातैं अधिक देशवृत्ति है । यातैं ते रूपत्वरसत्वादिक जातियां तथा सा सत्ताजाति ता सर्वगुणवृत्ति कारणताका अवच्छेदक होइ सकै नहीं । परिशेषतैं सा गुणत्व जाति हीं ता गुणवृत्ति कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै सिद्ध होवै है इति ॥

गुणत्व जातिकी सिद्धिका दूसरी तरहका अनुमान—इस उक्त अनुमान करिकै भी ता गुणत्व-जातिकी सिद्धि संभवै नहीं । काहेतैं ? जैसे पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे संयोगरूप कार्यकी वा विभागरूप कार्यकी एकसाधारण कारणता रहे है । तैसे तिन रूपादिक चौवीस-गुणोंविषे भी किसी एकसाधारणकारणताकूं पक्ष राखिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि करते हो

अथवा एकएक रूपादिक गुणविषे रही हूई जा पृथक् पृथक् कारणता है तिन सर्व-कारणतावोंके समूहकूं पक्ष राखिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि करते हो । तहां जो प्रथम पक्ष अंगीकार करौ सो सम्भवता नहीं । काहेतैं ? समवायिकारणता असमवायिकारणता निमित्तकारणता यह तीन प्रकारकी हीं कारणता होवै है । तहां समवायिकारणता तौं केवल द्रव्यपदार्थविषे हीं रहे है गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे रहती नहीं । और असमवायिकारणता तौं गुण कर्म इन दो पदार्थोंविषे हीं रहे है अन्यकिसी पदार्थविषे सा असमवायिकारणता रहती नहीं और निमित्तकारणता तौं तिन द्रव्यादिक सर्वपदार्थोंविषे रहे है । तहां तिन रूपादिक चौवीसगुणोंविषें एक साधारण असमवायिकारणताकूं अंगीकार करिकै ता कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जो गुणत्वजातिकी सिद्धि करोंगे तौं आत्माके ज्ञानादिकगुणोंविषे ता गुणत्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी । जिस कारणतैं ते ज्ञानादिक गुण किसी भी कार्यके अस-मवायिकारण होते नहीं । और जैसे घटादिक आपणे ध्वंसविषे निमित्तकारण होवै हैं तैसे तिन रूपादिक गुणोंकूं भी आपणे आपणे ध्वंसविषे निमित्तकारण मानिकै ता निमित्तकारणताका अव-च्छेदकरूप करिकै जो गुणत्व जातिकी सिद्धि करोगें तौं अनित्यगुणोंविषे तौं ता गुणत्वजातिकी सिद्धि होवैंगी, परंतु नित्यगुणोंविषे ता गुणत्वजातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी । जिस कारणतैं तिन नित्यगुणोंका कदाचित् भी ध्वंस होता नहीं । और जैसे घटादिविषयक प्रत्यक्ष ज्ञानविषे ते घटादिक विषय निमित्तकारण होवै हैं तैसे तिन रूपादिक गुणविषयक प्रत्यक्षज्ञानविषे तिन रूपादिक गुणोंकूं निमित्तकारण मानिकै ता निमित्तकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जो गुणत्वजातिकी सिद्धि करौंगे तौं प्रत्यक्षके योग्य रूपादिक गुणोंविषे तौं ता गुणत्व जातिकी सिद्धि होवैंगी, परंतु धर्म अधर्म आदिक अतींद्रियगुणोंविषे ता गुणत्व जातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी । जिस कारणतैं तिन अतीन्द्रियगुणोंका किसीकूं भी प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । यद्यपि ईश्वरकूं तथा योगीपुरुषकूं तिन अतीन्द्रियगुणोंका भी प्रत्यक्ष होवै है तथापि सो ईश्व-रका प्रत्यक्षज्ञान तौं नित्य होणेतैं किसी भी कारण करिकै जन्य नहीं है और योगीपुरुषका सो प्रत्यक्षज्ञान जन्य हूआ भी विषय करिकै जन्य होता नहीं अर्थात् ता योगीके प्रत्यक्षज्ञान-विषे विषयकूं कारणता होती नहीं । जिस कारणतैं अतीत अनागत पदार्थोंके अविद्यमानहूए भी ता योगीपुरुषकूं तिन अतीत अनागत पदार्थोंका भी प्रत्यक्षज्ञान होवै है । यातैं तिन रूपा दिक सर्वगुणोंविषे एकसाधारणकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि संभवै नहीं । और एकएक रूपादिक गुणविषे रही हूई जा पृथक्पृथक् कारणता है तिन सर्व कारणतावोंके समूहकूं पक्ष राखिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि होवै है । यह द्वितीयपक्ष जो अंगीकार करौ सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जैसे रूपादिक चौवीस गुणोंविषे स्थित चौवीस कारणतावोंकूं पक्ष राखिकै तिन चौवीस कारणतावोंका अवच्छेदकरूप करिकै ता एक

गुणत्वजातिकी सिद्धि होवै है । तैसे रूपतैं भिन्न रसादिक त्रेवीस गुणोंविषे स्थित त्रेवीस कारणतावोंकूं पक्ष राखिके तिन त्रेवीसकारणतावोंका अवच्छेदकरूप करिकै ता गुणत्वजातितैं भिन्न तिन त्रेवीसगुणोंविषे रहणेहारी एकविलक्षण जातिकी भी सिद्धि होणी चाहियै । इस प्रकार बावीसगुणोंविषे तथा एकवीसगुणोंविषे तथा वीसगुणोंविषे भी ता विलक्षण विलक्षण जातिकी सिद्धि होणी चाहिये, सो प्रत्यक्षविरुद्ध है । यातैं सो द्वितीयपक्ष भी संभवता नहीं । किंवा न्यायसिद्धांतविषे परमाणुवोंके अणुत्व परिमाणकूं किसी भी कार्यके प्रति कारणता अंगीकारकरी नहीं यातैं ता अणुत्वपरिमाणविषे किसी प्रकार करिकै भी ता गुणत्व जातिकी सिद्धि नहीं होवैंगी । यातैं गुणनिष्ठ कारणताका अवच्छेदक करिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि करणेहारा सो पूर्वउक्त अनुमान असंगत है । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब अन्य प्रकारके अनुमान करिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि करे हैं—**गुणनिष्ठा या गुणपदशक्यता सा किंचिद्धर्मावच्छिन्ना शक्यतात्वात् घटनिष्ठघटपदशक्यतावत्** । अर्थ यह—रूपादिक चौवीसगुणोंविषे रही हूई जा गुणपदकी शक्यता है सा गुणपदकी शक्यता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणे योग्य है, शक्यतारूप होणेतैं, जा जा शक्यता होवै है सा सा किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है, निरवच्छिन्न कोई शक्यता होती नहीं; जैसे घटविषे रही हूई जा घटपदकी शक्यता है सा शक्यता शक्यतारूप होणेतैं घटत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न हीं है । तैसे तिन रूपादिक गुणोंविषे रही हूई जा गुणपदकी शक्यता है सा भी शक्यतारूप होणेतैं किसीधर्म करिकै अवश्य अवच्छिन्न होवैंगी । ऐसा गुणपदकी शक्यताका अवच्छेदकधर्म सा गुणत्वजाति हीं है । यातैं इस उक्त अनुमान करिकै गुणपदकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै ता गुणत्वजातिकी सिद्धि संभवै है ॥

शक्यतावच्छेदकरूपसे आकाशादिकोंविषे जातित्वकी शंका—गुणपदकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै जो गुणत्वजातिकी सिद्धि करोंगे तौ आकाश काल दिक् इन पदोंकी शक्यताका-अवच्छेदकरूप करिकै यथाक्रमतैं आकाशत्व कालत्व दिक्त्व इन तीनोंकी भी जातिरूपतैं सिद्धि होणी चाहिये, तथा विभु, भूत, मूर्त्त इन पदोंकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै यथाक्रमतैं विभुत्व, भूतत्व, मूर्त्तत्व इन तीनोंकी भी जातिरूपतैं सिद्धि होणी चाहिये । जातिबाधक नियमद्वारा-**समाधान**—जैसे गुणपदकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै गुणत्वजातिकी सिद्धि होवै है तैसे तिन आकाशादिक पदोंकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै तिन आकाशत्वादिक जातियोंकी सिद्धि होती नहीं । तथा तिन विभुआदिक पदोंकी शक्यताका अवछेदकरूप करिकै तिन विभुत्वादिक जातियोंकी भी सिद्धि होती नहीं । काहेतैं ? यह शास्त्रकारोंका नियम है कारणताका अवच्छेदकरूप करिकै वा कार्यताका अवच्छेदकरूप करिकै वा प्रतिबध्यताका अवच्छेदकरूप करिकै वा प्रतिबन्धकताका अवच्छेदकरूप करिकै वा पदशक्यताका

अवच्छेदकरूप करिकै सिद्ध भया जो धर्म है ता धर्मके जातिपणेविषे जो कोई जातिबाधक दोष नहीं होवै है तौं सो धर्म नियमतैं जातिरूप हीं होवै है और ता धर्मके जातिपणेविषे जो कोई जातिबाधक दोष होवै है तौं सो धर्म नियमतैं जातिरूप होता नहीं, किंतु उपाधिरूप होवै है। तहां तिन आकाशत्वादिरूप धर्मोंके जातिपणेविषे तौं एकव्यक्तिवृत्तित्वरूप दोष बाधक है। यह वार्त्ता पूर्व आकाशके निरूपणविषे कथन करि आये हैं और तिन विभुत्वादिक धर्मोंके जातिपणेविषे संकरदोष बाधक है ता संकरदोषका स्वरूप आगे चतुर्थ परिच्छेदविषे सामान्यपदार्थके निरूपण विषे कथन करैंगे। यातैं तिन आकाशादिक पदोंकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै सिद्धहूए भी ते आकाशत्वादिक धर्म जातिरूप सिद्ध होवै नहीं और ता गुणत्वधर्मके जातिपणे कोई जातिबाधक दोष है नहीं। यातैं ता गुणपदकी शक्यताका अवच्छेदकरूप करिकै सिद्ध हूआ सो गुणत्वधर्म जातिरूप हीं सिद्ध होवै है। इस प्रकार गुणत्वजातिके सिद्ध हूइ सो पूर्वउक्त गुणत्वजातिमत्त्वरूप गुणका लक्षण संभवै है इति ॥ ४ ॥

### गुणोंकी गणना तथा उनके धर्म ।

इसप्रकारके उक्त च्यारि लक्षणों करिकै लक्षित जो गुण पदार्थ है सो गुण पदार्थ रूप १, रस २, गंध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमाण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, विभाग ९, परत्व १०, अपरत्व ११, गुरुत्व १२, द्रवत्व, १३, स्नेह १४, शब्द १५, बुद्धि १६, सुख १७, दुःख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म २२, अधर्म २३ संस्कार २४ इस भेद करिकै चौवीस प्रकारका होवै है। और तिन रूपादिक चौवीसगुणोंके मध्यविषे एकएकरूपादिक गुणविषे यथाक्रमतैं रहणेहारे जे रूपत्व १, रसत्व, गंधत्व ३, स्पर्शत्व, ४, संख्यात्व ५, परिमाणत्व ६, पृथक्त्वत्व, ७, संयोगत्व ८, विभागत्व ९, परत्वत्व १०, अपरत्वत्व ११, गुरुत्वत्व १२, द्रवत्वत्व १३, स्नेहत्व १४, शब्दत्व १५, बुद्धित्व १६, सुखत्व १७, दुःखत्व १८, इच्छात्व १९, द्वेषत्व २०, प्रयत्नत्व २१, धर्मत्व २२, अधर्मत्व २३, संस्कारत्व४ यह चौवीस धर्म हैं ते रूपत्वादिक चौवीस धर्म जातिरूप हीं हैं इति ॥

### रूपका निरूपण।

अब तिन चौवीसगुणोंविषे प्रथम रूपगुणका निरूपण करै हैं। लक्षण—तहां **त्वगग्राह्यचक्षुर्ग्राह्यगुणविभाजकोपाधिमत् रूपम्।** अर्थ यह—त्वक् इंद्रिय करिकै अग्राह्य तथा चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य ऐसा जो गुणविभाजक उपाधि है सो गुणविभाजक उपाधि जिस गुणविषे समवायसंबंध करिकै रहे है सो गुण रूप कह्या जावै है। तहां जिन धर्मोंकूं लैके रूपादिक गुणोंका विभाग कऱ्या जावै ते धर्म गुणविभाजक उपाधि कहे जावै हैं। ऐसे गुणविभाजक उपाधि पूर्वउक्त रूपत्व सत्त्वादिक चौवीस जातियां हैं यातैं नीलपीतादिक सर्वरूपोंविषे रहणेहारी जा रूपत्वजाति है सा रूपत्वजाति गुणविभाजक उपाधिरूप भी है तथा सा रूपत्वजाति त्वक्इन्द्रिय करिकै अग्राह्य भी है अर्थात् त्वक्इन्द्रियजन्य ज्ञानका विषय नहीं है तथा सा रूपत्वजाति

चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य भी है। अर्थात् चक्षुइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय भी है। ऐसी त्वक्-इंद्रिय अग्राह्य तथा चक्षुइंद्रिय ग्राह्य तथा गुणविभाजक उपाधिरूप सा रूपत्वजाति समवाय-संबंध करिकै नीलपीतादिक सर्वरूपोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त रूपका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'गुणविभाजकोपाधिमत् रूपम्' इतनामात्र हीं जो ता रूपका लक्षण करते तौं रसादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो रूपगुण रूपत्वजाति रूप गुणविभाजक उपाधिवाला है तैसे ते रसादिक गुण भी रसत्वादिक जातिरूप गुण-विभाजक उपाधिवाले हीं है, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'चक्षुर्ग्राह्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रसत्वादिक जातियां चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य नहीं हैं किंतु रसनादिक इंद्रियों करिकै ग्राह्य हैं यातैं तिन रसत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रसादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'चक्षुर्ग्राह्यगुणविभा-जकोपाधिमत् रूपम्' इतनामात्र हीं जो ता रूपका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'त्वग-ग्राह्य' यह पद नहीं कथन करते तौं संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो रूप गुण चक्षु इंद्रिय करिकै ग्राह्य तथा गुणविभाजक उपाधिरूप ऐसी रूप-त्वजातिवाला है तैसे ते संख्यादिक गुण भी चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य तथा गुणविभाजक उपाधिरूप ऐसी संख्यात्वादिक जातियोंवाले हीं हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'त्वगग्राह्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते संख्यात्वादिक जाति त्वक्इंद्रिय करिकै अग्राह्य नहीं हैं किंतु त्वक्इंद्रिय करिकै ग्राह्य हीं हैं। यातैं तिन संख्यात्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'त्वगग्राह्यगुणविभाजकोपाधिमत् रूपम्' इतनामात्र हीं जो ता रूपका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'चक्षुर्ग्राह्य' यह पद नहीं कथन करते तौं बुद्धिआदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे गुणविभाजक उपाधिरूप सा रूपत्वजाति त्वक् इंद्रिय करिकै अग्राह्य है तैसे गुणविभाजक उपाधिरूप ते बुद्धित्व सुखत्व दुःखत्व आदिक जातियां भी ता त्वक्इंद्रिय करिकै अग्राह्य हीं हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'चक्षुर्ग्राह्य' यह पद कथन कऱ्या है तहां ते बुद्धित्वादिक जातियां ता चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य नहीं हैं किंतु मनरूप इंद्रिय करिकै ग्राह्य है। यातैं तिन बुद्धि-त्वादिक जातियोंकूं लैके तिन बुद्धिआदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'त्वगग्राह्यचक्षुर्ग्राह्योपाधिमत् रूपम्, इतनामात्र हीं जो ता रूपका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणविभाजक' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रदीपचंद्रादिकोंकी प्रभाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता तेजसद्रव्यरूप प्रभाविषे उद्भूतस्पर्श रहता नहीं किंतु अनुद्भूतस्पर्श रहे है यातैं ता प्रभाका त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं। और ता प्रभाविषे उद्भूतरूप

रहे है। यातैं ता प्रभाका चाक्षुषप्रत्यक्ष तौं होवै है ऐसी प्रभाविषे रहणेहारा जो प्रभात्वधर्म है सो प्रभात्वधर्म भी ता प्रभाकी न्यांई त्वकूइंद्रिय करिकै अग्राह्य भी है तथा चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य भी है। ऐसे प्रभात्व धर्मवाली ता प्रभाविषे ता रूपके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे 'गुणविभाजक' यह पद कथन कऱ्या हैं। तहां सो प्रभात्व धर्म गुणविभाजक उपाधि रूप नहीं है। यातैं ता प्रभात्व धर्मकूं लैके ता प्रभाविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'त्वगग्राह्यचक्षुर्ग्राह्यगुणोरूपम्' इतनामात्र हीं जो ता रूपका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणविभाजकोपाधिमत्' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणुवोंके रूपविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे घटपटादिकोंका रूप चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य है। तैसे सो परमाणुवोंकारूप चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य नहीं है किंतु अतिइंद्रिय है। ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणविभाजकोपाधिमत्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां घटपटादिकोंके रूपविषे रही हूई रूपत्वजाति त्वकूइंद्रय करिकै अग्राह्य भी है तथा चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य भी है तथा गुणविभाजक उपाधिरूप भी है। सा रूपत्वजाति तिस परमाणुके रूपविषे भी रहे है। यातैं ता अतिइंद्रियरूपविषे ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

रूपके भेद—इस प्रकारके उक्तलक्षण करिकै लक्षित जो रूपगुण हैं सो रूपगुण शुक्ल १, नील २, पीत ३, रक्त ४, हरित ५, कपिश ६, चित्र ७ इस भेद करिकै सप्त प्रकारका होवै है। तहां तिन शुक्लादिक सप्तरूपोंविषे यथा क्रमतैं रहणेहारे जे शुक्लत्व १, नीलत्व २, पीतत्व ३, रक्तत्व ४, हरितत्व ५, कपिशत्व ६, चित्रत्व ७ यह सप्तधर्म हैं। ते शुक्लत्वादिक सप्तधर्म जातिरूप हीं हैं। काहेतैं? जैसे तिन सप्तप्रकारके रूपोंविषे रहणेहारी रूपत्वजाति 'इदं रूपम् इदं रूपम्' या प्रकारके प्रत्यक्ष करिकै सिद्ध है। तैसे ते शुक्लत्वनीलत्वादिक सप्त जातियां भी 'अयं शुक्लः, अयं नीलः' इत्यादिक प्रत्यक्ष करिकै हीं सिद्ध हैं ॥

व्यक्तिवादी—ईहां केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं जैसे ब्रह्माण्डवृत्ति जितनैंकी घट हैं तिन सर्वघटोंविषे एक हीं घटत्वजाति अनुगत होइकै रहे है। तैसे ब्रह्माण्डवृत्ति जितनैंकी शुक्लद्रव्य हैं तिन सर्वद्रव्योंविषे एक हीं शुक्लरूपव्यक्ति आश्रित होइकै रहे है। इस प्रकार जितनैंकी नीलद्रव्य हैं तिन सर्वद्रव्योंविषे एक हीं नीलरूप व्यक्ति अनुगत होइकै रहे है। इस प्रकार पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र यह पांचों भी एकएकव्यक्तिरूप हीं हैं। और जैसे एकघटव्यक्तिके नाशहूए भी सा घटत्वजाति नाश होवै नहीं किंतु सा घटत्वजाति अन्य घटव्यक्तियोंके आश्रित हूई रहे है। यातैं सा घटत्वजाति नित्य है। तैसे एकशुक्लद्रव्यके नाशहूए भी सा एकशुक्लरूप व्यक्ति नाश होवै नहीं किन्तु अन्यशुक्लद्रव्योंके आश्रित हूई रहे है, यातैं सा एकशुक्लरूप व्यक्ति नित्य है। इस प्रकार ते नील पीत रक्त रूपादिक व्यक्तियां

भी नित्य हीं हैं । यातैं जैसे आकाशरूप एकव्यक्तिविषे वृत्ति होणेतैं आकाशत्व धर्म जातिरूप नहीं है तैसे एक एक व्यक्तिरूप शुक्लनीलादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं ते शुक्लत्वनील त्वादिक धर्म भी जातिरूप नहीं हैं । किंतु आकाशत्व धर्मकी न्यांई उपाधिरूप हीं हैं इति ॥

उनका खण्डन—सो यह मत समीचीन नहीं हैं । काहेतैं ? जबी नीलरूपवाले घटादिक द्रव्य अत्यन्त अग्निके सम्बन्धतैं रक्तरूपवाले होवैं हैं तबी तिन घटादिकोंविषे लोकोंकूं यह प्रतीति होवै है नीलो नष्टः रक्त उत्पन्नः । अर्थ यह—इस घटका पूर्वका नीलरूप नष्ट होइ गया है अबी रक्तरूप उत्पन्न हूआ है । इस प्रकारकी प्रतीतितैं तिन नील रक्तादिक रूपोंका उत्पत्तिविनाश हीं सिद्ध होवै है । ता उत्पत्ति विनाशवाले होणेतैं ते नीलरक्तादिक व्यक्ति नाना हीं सिद्ध होवै हैं । जो कदाचित् तिन नीलरक्तादिक रूपोंकूं एकएकव्यक्तिरूप मानेंगे तौं ता एकनीलरूपके नाशहूए जगत्‌विषे कोई नीलरूप रहैंगा नहीं । यातैं किसी भी द्रव्यविषे ता नीलरूपकी प्रतीति नहीं होवैंगी । सो यह वार्त्ता अनुभवविरुद्ध है ॥

व्यक्तिवादीकी शङ्का—तिन नीलरक्तादिक रूपोंकूं नानाव्यक्तिरूप मानणेविषे गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है और तिन नीलरक्तादिक रूपोंकूं एकएकव्यक्तिरूप मानणेविषे सो गौरवदोष प्राप्त होता नहीं किंतु लाघवरूप गुण हीं प्राप्त होवै है । यातैं ता लाघवतैं तिन नीलरक्तादिक रूपोंकूं एकएकव्यक्तिरूप हीं मान्या चाहिये । किंवा—स एवायं नीलः स एवायं रक्तः । अर्थ यह—सोई हीं यह नील है सोई हीं यह रक्त है । या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है ता प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष प्रतीतितैं भी तिन नीलरक्तादिक व्यक्तियोंकी एकता हीं सिद्ध होवै है । और 'नीलो नष्टः' यह उक्त प्रतीति भी ता नीलरूपके नाशकूं विषय करती नहीं । किंतु ता नीलरूपका जो द्रव्यविषे समवायसम्बन्ध है ता समवायके नाशकूं हीं विषय करे है । तैसे 'रक्त उत्पन्नः' यह प्रतीति भी ता रक्तके उत्पत्तिकूं विषय करती नहीं किंतु ता रक्तरूपका जो द्रव्यविषे समवायसम्बन्ध है ता समवायके उत्पत्तिकूं हीं विषय करे है । यातैं 'नीलो नष्टः रक्त उत्पन्नः' इस उक्तप्रतीतितैं ता नीलरूपका विनाश तथा रक्तरूपकी उत्पत्ति सिद्ध होवै नहीं । किंतु ता समवायका हीं उत्पत्तिविनाश सिद्ध होवै है ॥

इसका समाधान—'नीलो नष्टः रक्त उत्पन्नः' इस प्रतीतिविषे ता नीलका हीं नाश तथा ता रक्तकी हीं उत्पत्ति भान होवै है । ता नीलसमवायका नाश तथा ता रक्तसमवायकी उत्पत्ति भान होवै नहीं । और जिस प्रतीतिविषे जिस विषयका भान होवै है तिस प्रतीतितैं तिस विषयकी हीं सिद्धि होवै है अन्य विषयकी सिद्धि होवै नहीं । जो कदाचित् अन्यवस्तुविषयक प्रतीतितैं अन्य वस्तुकी भी सिद्धि होती होवै तौं 'अयं घटः' या प्रकारकी घटविषयक प्रतीतितैं पटकी भी सिद्धि होणी चाहिये । यातैं 'नीलो नष्टः रक्त उत्पन्नः' इस उक्त प्रतीतितैं ता नीलका हीं नाश तथा रक्तकी हीं उत्पत्ति सिद्ध होवै है । ता प्रतीतितैं नील समवायका नाश

तथा रक्तसमवायकी उत्पत्ति सिद्ध होवै नहीं । किंवा ता वादीनैं जो लाघवके बलतैं तिन नील रक्तादिक रूपोंकूं एकएकव्यक्तिरूप मान्या था सो लाघव भी 'नीलो नष्टः रक्त उत्पन्नः' इस प्रत्यक्षप्रतीति करिकै बाधित हीं है । इस प्रकार ता प्रत्यक्षप्रतीति करिकै बाधित हूई भी नीलादिकोंकी एकताकूं सो वादी जो कदाचित् केवल लाघवमात्रतैं अंगीकार करैगा तौ ता वादीनैं जैसे लाघवके बलतैं ब्रह्मांडविषे ते नीलरक्तादिरूप एकएकव्यक्तिरूप मान्ये हैं तैसे ता लाघवके बलतैं घटपटादिक भी एकएकव्यक्तिरूप हीं मान्ये चाहिये । और जैसे 'नीलो नष्टः रक्त उत्पन्नः' यह प्रतीति ता वादीके मतविषे ता नीलसमवायके नाशकूं तथा रक्तसमवायके उत्पत्तिकूं विषय करे है तैसे 'घट उत्पन्नः घटो नष्टः' इत्यादिक प्रतीति भी तिन घटादिकोंके उत्पत्तिविनाशकूं विषय करती नहीं, किंतु तिन घटादिकोंके समवायके उत्पत्तिविनाशकूं हीं विषय करैगी । सो ब्रह्मांडविषे घटपटादिकोंकी एकएकव्यक्तिरूपता ता वादीकूं भी अंगीकार है नहीं । यातैं लाघवमात्रतैं तिन नीलरक्तादिक रूपोंकी एकव्यक्तिरूपता सिद्ध होवै नहीं । किंवा ता वादीनैं 'स एवायं नीलः स एवायं रक्तः' इस प्रकारके प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्षतैं जो तिन नीलरक्तादिक रूपोंकी एकएकव्याक्तिरूपता सिद्ध करी थी, सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? सो प्रत्यक्ष तौ पूर्व नीलरूपके सजातीय नीलरूपकूं हीं विषय करे है जैसे तुमनैं जो औषधि खाई थी सोई हीं यह औषधि है या प्रकारका प्रत्यक्ष ता पूर्व औषधिके सजातीय औषधिकूं हीं विषय करे है । ता नष्ट हूई औषधिके तथा वर्त्तमान औषधिके एकताकूं विषय करता नहीं । तैसे 'स एवायं नीलः' यह प्रत्यक्ष भी ता पूर्वनीलरूपके सजातीय नीलरूपकूं ही विषय करे है । ता पूर्व नीलरूपके तथा वर्त्तमान नीलरूपके एकताकूं विषय करता नहीं । यातैं ता प्रत्यभिज्ञानरूप प्रत्यक्षतैं भी तिन नीलरक्तादिरूपोंकी एकएकव्यक्ति सिद्ध होवै नहीं । यातैं ते शुक्लनीलादिक रूप नानाव्यक्तिरूप हीं मानणे योग्य हैं । किंवा यह नील है यह नीलतर है यह नीलतम है तथा यह रक्त है यह रक्ततर है यह रक्ततम है या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है ता प्रतीतितैं भी ते नीलरक्तादिक रूप नाना व्यक्तिरूप हीं सिद्ध होवै हैं । ऐसे नाना व्यक्तिरूप शुक्लनीलादिक रूपोंविषे वर्त्तणेहारे जे शुक्लत्वनीलत्वादिक धर्म हैं तिन शुक्लत्वनीलत्वादिक धर्मोंविषे जातिरूपता संभवै है । इस प्रकारके उक्त शंकासमाधानों करिकै हीं आगे रसत्वजातिके व्याप्य मधुरत्व अम्लत्वादिक धर्मोंविषे तथा गंधत्वजातिके व्याप्य सौरभत्व असौरभत्व धर्मोंविषे तथा स्पर्शत्वजातिके व्याप्य उष्णत्व शीतत्वादिक धर्मोंविषे जातिरूपताकी सिद्धि जानिलेणी इति ॥

रूपके रहणेके स्थान—सो उक्त रूप गुण, पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंविषे हीं रहे है । तहां पृथिवीविषे तौ शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र यह सप्तप्रकारका हीं रूप रहे है । और जल तेज इन दो द्रव्योंविषे तौ एक शुक्लरूप हीं रहे है । नीलादिक रूप ता

तेजविषे रहते नहीं । सो शुक्लरूप भी भास्वर अभास्वर इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां तेजविषे तौं भास्वरशुक्लरूप रहे है और जलविषे तथा पृथिवीविषे अभास्वरशुक्लरूप रहे हैं।

जलतेजविषे नीलादिकी शङ्का—जलविषे तथा तेजविषे जो एकशुक्लरूप हीं रहता होवै तौं यमुनाजलादिकोंविषे नीलरूपकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये और सर्वलोकोंकूं ता यमुनाके जलविषे नीलरूप हीं प्रतीत होवै है इस प्रकार प्रसिद्ध अग्निरूप तेजविषे तथा सुवर्णरूप तेजविषे पीतरूपकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये और सर्वलोकोंकूं ता अग्निविषे तथा सुवर्णविषे पीतरूप हीं प्रतीत होवै है । तथा मरकतमणिरूप तेजकी किरणोंविषे रक्तरूपकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये और सर्वलोकोंकूं तिन किरणोंविषे रक्तरूप हीं प्रतीत होवै है। यातैं पृथिवीकी न्यांई ता जलतेजविषे भी नीलपीतादिक नानारूप हीं मान्ये चाहियें ॥

पृथिवीके संबन्धके मानकर समाधान—ता यमुनाके जलविषे जो नीलरूप प्रतीत होवै है सो नीलरूप ता जलका नहीं है किंतु ता जलसंयुक्त नीलरूपवाली पृथिवीका हीं सो नीलरूप स्वसमवायिसंयोग सम्बन्ध करिकै ता जलविषे प्रतीत होवै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता नीलरूपका ग्रहण करणा। ता नीलरूपका समवायिकारण जा पृथिवी है ता पृथिवीका संयोगसम्बन्ध ता जलके साथि है । इस प्रकारके परंपरासम्बन्ध करिकै सो पृथिवीका नीलरूप हीं ता जलविषे प्रतीत होवै है । जो कदाचित् ता यमुनाके जलविषे स्वभावतैं हीं नीलरूप होवै तौं ता यमुनातैं उठाइकै ऊपरि आकाशविषे फेंक्येहूए ता जलविषे भी सो नीलरूप प्रतीत होणा चाहिये । तथा रजतमय शुद्धपात्रविषे राख्येहूए ता जलविषे भी सो नीलरूप प्रतीत होणा चाहिये और ता जलविषे सो नीलरूप प्रतीत होता नहीं । किंतु सर्वलोकोंकूं ता जलविषे शुक्लरूप हीं प्रतीत होवै है । तात्पर्य यह—आकाशविषे प्राप्तहूए ता यमुनाजलके साथि तथा ता शुद्धपात्रविषे प्राप्तहूए ता यमुनाजलके साथि ता नीलरूपवाली पृथिवीका संयोगसम्बन्ध रह्या नहीं । यातैं ता जलविषे सो नीलरूप प्रतीत होता नहीं किंतु स्वाभाविक शुक्लरूप हीं प्रतीत होवै है । इस प्रकार कोई जलविषे जो पीतरक्त हरितरूप प्रतीत होवै है सो भी तिस तिस पीत रक्त हरित रूपवाली पृथिवीके संबन्धतैं हीं प्रतीत होवै है स्वभावतैं ता जलविषे एकशुक्लरूप हीं रहे है। इस प्रकार अग्नि सुवर्ण मरकतमणि आदिक तेजविषे भी स्वभावतैं तौं सो भास्वरशुक्लरूप हीं रहे है पीतरक्तादिरूप रहता नहीं । परंतु ता अग्निसुवर्णादिक तेजके साथि संयुक्त जो पार्थिवभाग है ता पार्थिवभागके पीतादिक रूप करिकै सो अग्निसुवर्णादिक तेजका भास्वरशुक्लरूप अभिभूत होइ रह्या है। यातैं ता अग्निसुवर्णादिक तेजका सो भास्वरशुक्लरूप प्रतीत होता नहीं किंतु ता उक्त परंपरासंबंध करिकै सो पार्थिवभागका पीतादिक रूप हीं ता तेजविषे प्रतीत होवै है । यद्यपि अग्निरूप तेजविषे जैसा पीतरूप प्रतीत होवै है। तैसा पीतरूप ता अग्निसंबंधतैं पूर्व तिस काष्ठादिरूप पृथिवी-

विषे है नहीं । तथापि ता अग्निरूप तेजके संबंधतैं ता काष्ठादिरूप पृथिवीविषे सो पाकज पीत रूप उत्पन्न होवै है सो पीतरूप हीं ता अग्निरूप तेजविषे प्रतीत होवै है ॥

**शंका**—जो कदाचित् ता अग्निसुवर्णादिक तेजके भास्वरशुक्ल रूपका चाक्षुषप्रत्यक्ष नहीं मानोंगे तौं ता अग्निसुवर्णादिक तेजका भी चाक्षुषप्रत्यक्ष नहीं होवैंगा । काहेतैं ? जो चाक्षुष प्रत्यक्ष जिस द्रव्यके रूपकूं नहीं विषय करे है सो चाक्षुषप्रत्यक्ष तिस द्रव्यकूं भी विषय करता नहीं।

परम्परासम्बन्धसे कारणता मानकर समाधान—जिस द्रव्यके जिस रूपका किसी करिकै अभिभव नहीं होवै है तिस द्रव्यका तौं तिसीरूप करिकै चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है। जैसे घटपटादिकोंके नीलपीतादिक रूपोंका किसी करिकै अभिभव हूआ नहीं। यातैं तिन घटपटादिकोंका तौं तिसी नीलपीतादिक रूप करिकै चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है। और जिस द्रव्यके जिस रूपका किसी अन्यद्रव्यके रूप करिकै अभिभव होवै है तिस द्रव्यका तिस अभिभूत रूप करिकै चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं, किंतु तिस अन्यद्रव्यके रूप करिकै हीं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । जैसे पित्तदोषवाले पुरुषकूं शंखका शुक्लरूप करिकै चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं, किन्तु आपणे नेत्रोंविषे स्थित जो पित्त द्रव्य है ता पित्तद्रव्यके पीतरूप करिकै हीं ता शंखका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, तैसे ता अग्निसुवर्णादिक तेजका भी ता पार्थिवद्रव्यके पीतादिकरूप करिकै चाक्षुष प्रत्यक्ष संभव है इति । और केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं ता पार्थिवभागके पीतादिकरूप करिकै ता अग्निसुवर्णादिक तेजके शुक्लरूपका अभिभव होता नहीं । किन्तु ता शुक्लरूपके शुक्लत्वधर्मका हीं अभिभव होवै है इति । यातैं ता अग्निसुवर्णादिक तेजविषे एकभास्वरशुक्लरूप रहे है । नील पीतादिक रूप रहते नहीं यह सिद्ध भया ॥

चित्ररूपके सद्भावपर शंका—पूर्व सप्तमा चित्ररूप कह्या था सो चित्ररूप शुक्लादिक षट्रूपोंतैं पृथक् सिद्ध होता नहीं । काहेतैं ? केईक तंतु नीलरूपवाली हैं तथा केईक तंतु पीतरूपवाली हैं तथा केईक तंतु रक्तरूपवाली हैं तथा केईक तंतु शुक्लरूप वाली हैं इस प्रकारकी विलक्षण विलक्षणरूपवाली सर्वतंतुवोंतैं उत्पन्न भया जो एक पट है ता पटविषे हीं तुमोंनैं सो चित्ररूप अंगीकार कऱ्या है । ता चित्ररूपविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । यातैं सो चित्ररूप अंगीकार करणे योग्य नहीं है । तहां जो यह कहो ता पटविषे 'चित्रपटः' या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है सा प्रत्यक्षप्रतीति हीं ता चित्ररूपविषे प्रमाण है । सो यह तुमारा कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? सा प्रतीति ता पटरूप अवयवीके चित्ररूपकूं विषय करती नहीं, किंतु ता पटके अवयवरूप जे तंतु हैं तिन तंतुवोंके नीलपीतादिकरूपोंकूं हीं सा प्रतीति विषय करे है । यातैं ता उक्तप्रतीतितैं ता चित्ररूपकी सिद्धि होइ सकै नहीं । यातैं सो रूपगुण षट्प्रकारका हीं संभवै है ॥

इसे चाक्षुषप्रत्यक्ष मानकर समाधान—ता पटविषे जो चित्ररूप नहीं अंगीकार करिये तौं ता पटका चाक्षुषप्रत्यक्ष हीं नहीं होवैंगा। काहेतें ? द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूप हीं समवायसंबंध करिकै कारण होवै है। यह वार्त्ता पूर्व द्वितीयपरिच्छेद विषे पृथिवी-निरूपणविषे तथा वायुनिरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं। यातैं ता पटके चाक्षुषप्रत्यक्ष वासतैं ता पटविषे सो चित्ररूप अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये। तहां ता पटके अवयवरूप तंतुवोंविषे स्थित जे नीलपीतादिक विलक्षणरूप हैं ते सर्वरूप मिलिकै ता पटविषे एक चित्र-रूपकूं उत्पन्न करे हैं सो चित्ररूप तिन शुक्लनीलादिक षट्प्रकारके रूपोंतैं पृथक् हीं है।

पुनः विभिन्न गुण समूह मानकर शंका—ता पटविषे सो चित्ररूप मानणा निष्फल हीं है। काहेतें ? तिस स्थलविषे नील तंतुवोंका रूप तौं ता पटविषे नीलरूपकूं उत्पन्न करे है और पीततंतुवोंका रूप तौं ता पटविषे पीतरूपकूं उत्पन्न करे है। इस प्रकार तिन तंतुवोंके रक्त हरितादिक रूप भी ता पटविषे रक्तहरितादिक रूपोंकूं उत्पन्न करे हैं। इस रीतिसैं ता पटविषे नीलपीतादिक अनेकरूप उत्पन्न होवै हैं, तिन नीलपीतादिक सर्वरूपोंके समूहकूं हीं सा 'चित्रःपटः' या प्रकारकी प्रतीति विषय करे है। तथा उक्तरीतिसैं ता पटविषे नीलपीतादिक रूपोंके विद्य-मानहूए ता पटका चाक्षुषप्रत्यक्ष भी संभवै है। यातैं ता पटविषे सो चित्ररूप मानणा निष्फल है॥

लाघवतासैं समाधान—ते तंतुवोंके नीलपीतादिक रूप ता पटविषे जो नीलपीतादिक रूपोंकूं उत्पन्न करे हैं सो व्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक रूपोंकूं उत्पन्न करे हैं अथवा अव्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक रूपोंकूं उत्पन्न करे हैं। तहां जो नीलपीतादिक रूप आपणे आश्रयभूत पटादिक द्रव्यके सर्वदेशविषे व्याप्य करिकै रहे है सो नीलपीतादिक रूप तौं व्याप्यवृत्ति कह्या जावै है और जो नीलपीतादिक रूप आपणे आश्रयभूत पटादिक द्रव्यके किसी एकदेशविषे तौ रहै है और किसी एकदेशविषे रहता नहीं। सो नीलपीतादिक रूप अव्याप्यवृत्ति कह्या जावै है। तहां प्रथम व्याप्यवृत्ति पक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं ता पटके पीत-देशविषे भी ता नीलरूपकी प्रतीति होणी चाहिये तथा ता पटके नीलदेशविषे भी ता पीतरूपकी प्रतीति होणी चाहिये, सो होती नहीं। यातैं तिन तंतुवोंके नील पीतादिक रूपों करिकै ता पटविषे व्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक रूपोंकी उत्पत्ति सम्भवती नहीं। और दूसरा अव्याप्यवृत्ति पक्ष जो अंगीकार करौ सो भी सम्भवता नहीं। काहेतें ? जितनैंकी रूपरसगंधादिक गुण व्याप्यवृत्ति होवै हैं ते रूपरसादिक गुण सर्वत्र व्याप्यवृत्ति हीं होवै हैं। किसी स्थलविषे भी अव्याप्यवृत्ति होते नहीं। और जितनैंकी संयोगविभागादिक अव्याप्यवृत्ति गुण होवै हैं ते संयोगविभागादिक गुण सर्वत्र अव्याप्यवृत्ति हीं होवै हैं। किसी स्थलविषे भी व्याप्यवृत्ति होते नहीं। तिन व्याप्यवृत्तिगुणोंका स्वरूप तथा अव्याप्यवृत्ति गुणोंका स्वरूप आगे पंचमपरिच्छेदविषे निरूपण करैंगे। ऐसे सर्वत्र व्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक रूपोंकूं

ता एकचित्रपटस्थलविषे अव्याप्यवृत्ति मानणा अत्यन्तविरुद्ध है । यातैं तिन तन्तुवोंके नीलपीतादिक रूपों करिकै ता पटविषे अव्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक नानारूपोंकी उत्पत्ति सम्भवती नहीं । किंवा ता नीलपीतादिक तन्तुवों करिकै आरब्ध पटविषे एकचित्ररूप मानणेविषे तथा ता एक चित्ररूपका एकप्रागभाव मानणेविषे तथा ता एक चित्ररूपका एक प्रध्वंसाभाव मानणेविषे तथा 'चित्रपटः' इस प्रतीतिकी विषयता एकचित्ररूपविषे मानणेविषे अत्यन्त लाघव है । और ता पटविषे नीलपीतादिक अनेकरूप मानणेविषे तथा तिन अनेकरूपोंके अनेक प्रागभाव अनेक प्रध्वंसाभाव मानणेविषे तथा तिन अनेकरूपोंविषे 'चित्रपटः' इस प्रतीतिकी विषयता मानणेविषे अत्यन्तगौरव है । यातैं लाघवतैं भी ता पटविषे सो एक चित्ररूप हीं मान्या चाहिये । या कारणतैं हीं ता पटविषे 'एकं चित्ररूपम्' या प्रकारका लोकोंकूं अनुभव होवै है ॥

**शङ्का**—जहां केवल नील तन्तुवोंतैं पटकी उत्पत्ति हूई है तहां जैसे सो तन्तुवोंका नीलरूप ता पटविषे नीलरूपकूं उत्पन्न करे है तैसे ता चित्रपटस्थलविषे भी सो तन्तुवोंका नीलपीतादिक रूप ता पटविषे नीलपीतादिकरूपकूं क्युं नहीं उत्पन्न करता । **समाधान**—ता चित्रपटस्थलविषे परस्पर प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव करिकै कोई भी नीलपीतादिक रूप उत्पन्न होता नहीं ईहां यह तात्पर्य है । सो तन्तुवोंका नीलरूप स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्धसैं तिस पटविषे प्राप्त होइकै जबी ता पटविषे समवायसंबंध करिकै नीलरूपकूं उत्पन्न करे है तबी सो तंतुवोंका पीतरूप ता स्वसमवायिसमवेतत्व संबंधसैं ता पटविषे प्राप्त होइकै ता नीलरूपके उत्पत्तिका प्रतिबंधक होवै है अर्थात् ता नीलरूपकूं उत्पन्न होणे देता नहीं । इस प्रकार सो तन्तुवोंका पीतरूप भी ता उक्तसंबंधसैं ता पटविषे प्राप्त होइकै जबी ता पटविषे समवायसंबंध करिकै पीतरूपकूं उत्पन्न करे है तबी सो तन्तुवोंका नीलरूप भी ता उक्तसंबंधसैं ता पटविषे प्राप्त होइकै ता पीतरूपके उत्पत्तिका प्रतिबंधक होवै है । इस प्रकार शुक्ल, रक्त, हरित, कपिश इन च्यारोंका भी परस्पर प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव जानिलेणा । तहां ता उक्त सम्बंधविषे स्वशब्द करिकैं नीलपीतादिक रूपोंका ग्रहण करणा । तिन नीलपीतादिक रूपोंका समवायिकारण तन्तु हैं । तिन तन्तुवोंविषे सो पट समवायसम्बन्ध करिकै रहे है । यातैं सो पट तिन तन्तुवोंविषे समवेत कह्या जावै है । इस प्रकारके स्वसमवायिसमवेतत्वरूप परंपरासम्बन्ध करिकै तिन तन्तुवोंके नीलपीतादिक रूपोंकी ता पटविषे स्थिति सम्भवै है । इस प्रकार परस्पर प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव करिकै ता पटविषे कोई भी नीलपीतादिक रूप उत्पन्न होता नहीं । और ता पटविषे एक चित्ररूपकी उत्पत्तिविषे कोई भी प्रतिबन्धक नहीं है । यातैं तिन तन्तुवोंके नीलपीतादिक सर्वरूप मिलिकै ता पटविषे एक चित्ररूपकूं हीं उत्पन्न करे हैं । यह प्राचीन नैयायिकोंका मत कथन कऱ्या ॥

चित्ररूपपर नवीन नैयायिक ।

अब नवीन नैयायिकोंका मत वर्णन करे हैं। ते नवीन नैयायिक तौं यह कहे हैं— ता चित्रपट स्थलविषे नीलतन्तुवोंका रूप तौं ता पटविषे अव्याप्यवृत्ति नीलरूपकूं उत्पन्न करे है और पीततन्तुवोंका रूप ता पटविषे अव्याप्यवृत्ति पीतरूपकूं उत्पन्न करे है । इस प्रकार तिन तन्तुवोंके रक्तादिक रूप भी ता पटविषे अव्याप्यवृत्ति रक्तादिक रूपोंकूं उत्पन्न करे हैं । इस रीतिसैं ता एक हीं पटविषे उत्पन्न भये जे अव्यावृत्ति नीलपीतादिक नानारूप हैं तिन नानारूपोंके समूहकूं हीं 'चित्रपटः' यह प्रतीति विषय करे है, तिन नीलपीतादिक रूपोंतैं पृथक् कोई चित्ररूप है नहीं । ता चित्ररूपकूं पृथक् मानणेविषे तथा पूर्वउक्त रीतिसैं तिन तंतुवोंके नीलपीतादिक रूपोंकूं परस्पर प्रतिबध्यप्रतिबंधक भाव मानणेविषे गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है । किंवा ता चित्ररूपवादी प्राचीनने जो यह दोष कह्या था जे रूपरसादिक गुण व्याप्यवृत्ति होवै हैं ते रूपरसादिक गुण किसी स्थलविषे भी अव्याप्यवृत्ति होते नहीं किंतु सर्वत्र व्याव्यवृत्ति हीं होवै है । अर्थात् व्याप्यवृत्ति रूप रसादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी जे रूपत्वरसत्वादिक जातियां हैं तिन रूपत्वरसत्वादिक जातियोंवाले जितनैंकी रूपरसादिक गुण हैं ते सर्व व्याप्यवृत्ति हीं होवै हैं। कहां भी अव्याप्यवृत्ति होते नहीं यह नियम है । और ता पटविषे जो अव्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक रूप मानैंगे तौं ता उक्तनियमका भंग होवैंगा सो यह दोषभी संभवता नहीं। काहेतैं ? ता उक्त नियमविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। यातैं ता अप्रामाणिक नियमतैं तिन नीलपीतादिक रूपोंविषे अव्याप्यवृत्तिपणेका अभाव सिद्ध होइ सकता नहीं। किंवा व्याव्यवृत्तिजातिवाले गुण कहां भी अव्याप्यवृत्ति होते नहीं । इस उक्त नियमकूं जो सर्वत्र प्रमाणरूप मानिये तौं ज्ञान इच्छा प्रयत्न यह तीनोंगुण जैसे ईश्वरविषे व्याप्यवृत्ति होवै हैं तैसे जीवात्माविषे भी व्याप्यवृत्ति होणे चाहिये । काहेतैं ? जा ज्ञानत्व, इच्छात्व, प्रयत्नत्व जाति ईश्वरके ज्ञान इच्छा प्रयत्नविषे रहे है सोई हीं ज्ञानत्व, इच्छात्व, प्रयत्नत्व, जाति जीवात्माके ज्ञान इच्छाप्रयत्नविषे रहे है । यातैं ते जीवात्माके ज्ञान इच्छा प्रयत्नरूप तीनोंगुण भी व्याप्यवृत्ति जातिवाले गुण कह्ये जावै है । यातैं ते जीवात्माके ज्ञान इच्छा प्रयत्न भी ता ईश्वरके ज्ञान इच्छा प्रयत्नकी न्यांई व्याप्यवृत्ति होणे चाहिये और जीवात्माके ते ज्ञान इच्छा प्रयत्न व्याप्यवृत्ति होते नहीं किंतु अव्याप्यवृत्ति हीं होवै हैं । यातैं जैसे ते ज्ञान इच्छा प्रयत्न तीनों गुण कहां व्याप्यवृत्ति होवै हैं कहां अव्याप्यवृत्ति होवै हैं । तैसे ते रूपादिगुण भी किसी आश्रयविषे तौं व्याप्यवृत्ति होवै हैं और किसी आश्रयविषे अव्याप्यवृत्ति होवै हैं । किंवा एक हीं पटादिक अवयवीविषे अव्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक नानारूपोंकी उत्पत्ति केवल उक्तयुक्ति करिकै हीं सिद्ध नहीं है किंतु स्मृतिवचन करिके भी सिद्ध है । तहां श्लोक—लोहितो यस्तु वर्णेन

मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते । अर्थ यह—जो पशु शरीरके वर्ण करिकै तौं लोहित है और मुखविषे तथा पुच्छविषे पांडुरवर्णवाला है और खुर विषाण इन दोनों करिकै श्वेत वर्णवाला है सो पशु नीलवृष कह्या जावै है इति । इस स्मृति वचनतैं ता एक हीं नीलवृषविषे मुखपुच्छादिक अवयवोंके भेद करिकै नाना वर्ण कथन कऱ्ये हैं । अर्थात् अव्याप्यवृत्ति नाना लोहितादिक रूप कथन कऱ्ये हैं इति ॥

चित्र स्थलमें रूपाभाव मानणेहारे ।

और केइक ग्रंथकार तौं यह कहे हैं—नीलपीतादिक नानारूपवाली तंतुवोंतैं उत्पन्न भया जो पट है सो पट रूपतैं रहित हीं होवै है, ता पटविषे सो एक चित्र रूप भी उत्पन्न होता नहीं । तथा ते अव्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक नानारूप भी उत्पन्न होते नहीं । काहेतैं ? ता पटविषे जो एक चित्ररूप मानिये तौं एक तौं शुक्लादिक षट्‌रूपोंतैं भिन्न सप्तमा चित्ररूप कल्पना करणा होवै है । और दूसरा ता चित्ररूपका प्रागभाव कल्पना करणा होवैंगा । और तीसरा तिन तंतुवोंके नीलपीतादिक रूपोंका परस्पर प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव कल्पना करणा होवैंगा । और चौथा तिन तंतुवोंके नीलपीतादिक रूपोंविषे ता चित्ररूपकी कारणता कल्पना करणी होवैंगी इत्यादिक कल्पनागौरव दोष तौं ता पटविषे चित्ररूपके मानणेमें होवै है । यातैं ता पटविषे सो चित्ररूप भी मानणा योग्य नहीं है । और ता पटविषे जो अव्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक नानारूप मानिये तौं तिन अनेक नीलपीतादिक रूपोंके अनेक प्रागभाव कल्पना करणे होवैंगे और तिन तंतुवोंके नीलपीतादिक रूपोंविषे ता पटके नीलपीतादिक रूपोंकी कारणता कल्पना करणी होवैंगी इत्यादिक कल्पनागौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है । यातैं ता पटविषे अव्याप्यवृत्ति नीलपीतादिक नानारूप भी मानणेयोग्य नहीं है । और ता पटकूं जो रूपतैं रहित मानिये तौं सो पूर्वउक्त कल्पनागौरवदोष प्राप्त होता नहीं । यातैं लाघवतैं ता पटकूं रूपतैं रहित हीं मान्या चाहिये । और ता पटविषे 'चित्रपटः' या प्रकारकी जा प्रतीति होवै है सा प्रतीति तौं ता पटके अवयवरूप तंतुवोंके नीलपीतादिरूप नानारूपोंके समूहकूं हीं विषय करे है ता पटके एकचित्ररूपकूं वा अव्याप्यवृत्ति नानारूपोंकूं सा प्रतीति विषय करती नहीं । किंवा ता पटकूं रूपतैं रहित मानणेविषे जो चाक्षुषप्रत्यक्षका अभावरूप दोष पूर्व कथन कऱ्या था सो दोष भी इस पक्षविषे संभवता नहीं । काहेतैं ? द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्ष विषे जो कदाचित् रूपकूं समवायसंबंध करिकै कारणता होवै तौं ता पटका अप्रत्यक्षरूप दोष प्राप्त होवै परन्तु ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता रूपकूं समवायसंबंध करिकै कारणता है नहीं किंतु जैसे ता द्रव्यवृत्ति गुणकर्मसामान्यके चाक्षुष प्रत्यक्षविषे ता रूपकूं स्वसमवायि-समवेतत्वरूप परंपरासंबंध करिकै कारणता होवै है । तैसे ता द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे भी ता रूपकूं स्वसमवायिसमवेतत्वरूप परंपरासंबंध करिकै हीं कारणता है । ईहां स्वशब्द करिकै

तिन तंतुवोंके नीलपीतादिक रूपका ग्रहण करणा। तिस रूपका समवायिकारण जे तंतु हैं तिन तंतुवोंविषे सो पट समवायसंबंध करिकै रहे है । इस प्रकारके परंपरासंबन्ध करिकै सो तंतुवोंका नीलपीतादिक रूप हीं ता पटके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण है इति ॥

उनका खण्डन ।

सो यह मत समीचीन नहीं है काहेतैं ? द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे समवायरूप साक्षात्संबंध करिकै ता रूपकूं कारणताके संभवहूए ता उक्तपरंपरासंबंध करिकै ता रूपकूं कारणता मानणेविषे गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है इति ॥

चित्रविषयका उपसंहार—इस प्रकार कोमल कठिन स्पर्शवाले तंतुआदिक अवयवों करिकै जन्य जे पटादिक द्रव्य हैं तिन पटादिक द्रव्योंविषे ते प्राचीन नैयायिक तौं ता चित्र रूपकी न्यांई चित्रस्पर्श भी अंगीकार करे हैं और ते नवीननैयायिक तौं ता पटविषे तिन अव्याप्यवृत्ति नानारूपोंकी न्यांई अव्याप्यवृत्ति नाना कोमलकठिनस्पर्श हीं माने हैं और ते केईकग्रन्थकार तौं ता पटविषे कोई प्रकारका भी स्पर्श मानते नहीं अर्थात् ता पटकूं स्पर्श तैं रहित माने हैं ईहां यह अभिप्राय है । जे नैयायिक द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षविषे समवायसंबंध करिकै उद्भूत स्पर्शकूं कारण माने हैं ते नैयायिक तौं ता पटके त्वाचप्रत्यक्ष वासतै ता पटविषे एक चित्र स्पर्शकूं माने है अथवा अव्याप्यवृत्ति नाना कोमल काठिन स्पर्शोंकूं माने है और जे नैयायिक द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षविषे समवायसंबंध करिकै उद्भूतस्पर्शकूं कारण नहीं माने हैं ते नैयायिक तौं ता पटकूं स्पर्शतैं रहित हीं माने हैं इति । किंवा जैसे उद्भूतरूपकूं तथा उद्भूत स्पर्शकूं द्रव्यके प्रत्यक्षविषे कारणता अंगीकार करी है तैसे उद्भूतरसकूं तथा उद्भूतगंधकूं ता द्रव्यके प्रत्यक्षविषे कारणता किसी भी ग्रन्थकारनैं अंगीकार करी नहीं, यातैं मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त इत्यादिक नानारसवाले अवयवोंतैं उत्पन्न भया जो चूरणादिक अवयवी है सो अवयवी सर्व ग्रन्थकारोंके मतविषे रसतैं रहित हीं होवै है ता अवयवीविषे एक चित्ररसकूं अथवा अव्याप्यवृत्ति नानारसोंकूं कोई भी ग्रंथकार अंगीकार करता नहीं ता चूरणादिक अवयवीविषे जो विचित्ररस प्रतीत होवै है सो रस तिन अवयावोंका हीं प्रतीत होवै है । इस प्रकार सुरभि असुरभि कपालोंतैं उत्पन्न भया जो घट है ता घटकूं भी सर्व ग्रंथकार गंधतैं रहित हीं माने हैं ता घटविषे एक चित्रगन्धकूं तथा अव्याप्यवृत्ति सुरभि-असुरभि गंधकूं कोई भी ग्रंथकार मानता नहीं। और ता घटविषे जो गंधकी प्रतीति होवै है सो तिन कपालरूप अवयवोंके गंधकी हीं प्रतीति होवै है यह सर्व वार्त्ता पूर्व द्वितीय परिच्छेद विषे पृथिवी द्रव्यके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति ॥

गुणके नित्यानित्य भेद—तहां सो पूर्व उक्त रूप गुण नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । तहां जलके परमाणवोंविषे तथा तेजके परमाणवोंविषे तौं सो

रूप नित्य होवै है । और तिन दोनों प्रकारके परमाणुवोंतैं भिन्न सर्वत्र अनित्य होवै है । अर्थात् द्व्यणुकादिरूपजन्य जलविषे तथा द्व्यणुकादिरूपजन्य तेजविषे तथा परमाणुद्व्यणुकादिरूप सर्वपृथिवीविषे सो रूप अनित्य हीं होवै है । तहां पृथिवीके परमाणुवोंविषे अग्नि आदिक तेजके संयोगकरिकै पूर्वले रूप रस, गंध, स्पर्श इन च्यारोंकी निवृत्तिपूर्वक दूसरे रूप, रस, गंध, स्पर्श इन च्यारोंकी उत्पत्ति होवै है । यह वार्त्ता आगे स्पष्ट करिकै कहैंगे । यातैं पृथिवीके परमाणुवोंविषे भी ते रूपादिक अनित्य हीं होवै है इति ॥

रूपके उद्भूत अनुद्भूत भेद ।

और सो उक्तरूप गुण उद्भूत १, अनुद्भूत २, इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । तहां घटापटादिक द्रव्योंविषे तौं उद्भूतरूप रहे है । और अन्न, भूनणेके कपालविषे स्थित अग्निविषे तथा तप्तजलविषे स्थित अग्निविषे तथा ग्रीष्मऋतुकी उष्णताविषे तथा चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे अनुद्भूतरूप रहे है । और सो उद्भूतरूप हीं द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे तथा ता द्रव्यविषे स्थित गुण कर्म सामान्य इन तीनोंके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे कारण होवै है । तहां द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे तौं सो उद्भूतरूप समवायसंबंध करिकै कारण होवे है । और ता द्रव्यवृत्ति गुण कर्मसामान्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे तौं सो उद्भूतरूप स्वसमवायिसमवेतत्वरूप परंपरासंबंध करिकै कारण होवै है । ईहां स्वशब्द करिकै ता उद्भूतरूपका ग्रहण करणा । ता रूपका समवायिकारण जो द्रव्य है ता द्रव्यविषे ते गुण कर्म सामान्य समवायसंबंध करिकै रहे हैं । इस प्रकारके परंपरासंबंध करिकै सो घटादिक द्रव्योंका उद्भूतरूप हीं ता घटादिक द्रव्यवृत्ति गुणकर्मसामान्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे कारण होवै है इति ॥ १ ॥ इति रूप निरूपणं समाप्तम् ॥

अथ रसनिरूपणम् ।

तहां रसका लक्षण—**रसनेन्द्रियग्राह्यवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् रसः।** अर्थ यह—रसन इंद्रिय करिकै ग्राह्य वस्तुविषे वर्त्तणेंहारी ऐसी जो गुणत्वजातिका व्याप्यजाति है ता जातिवाला गुण रस कह्या जावै है । तहां रसनेंद्रिय करिकै मधुरादिक रसका हीं प्रत्यक्षज्ञान होवै है रूपादिकोंका प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । यातैं सो रस रसन इंद्रिय ग्राह्य कह्या जावै है । ऐसे रसनेंद्रिय ग्राह्य रसविषे रसत्वजाति समवायसंबंध करिकै रहे है । और सो रसत्वजाति गुणत्वजातिका व्याप्य भी है अर्थात् रूपादिक चौवीसगुणोंविषे रहणेहारी गुणत्वजातितैं सा रसत्वजाति न्यूनदेशवृत्ति है । ऐसी रसत्वजाति मधुरादिक सर्वरसोंविषे समवाय संबंध करिकै रहे है। यातैं यह उक्त रसका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमान् रसः' इतनामात्र हीं जो ता रसका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'रसनेन्द्रियग्राह्यवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ?

जैसे गुणत्वजातिका व्याप्य रसत्वजातिवाला सो रस है तैसे ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंवाले ते रूपादिक गुण भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे रसनेन्द्रियग्राह्यवृत्ति ' यह पद कथन कऱ्या है तहां ते रूपत्वादिक जातियां रसनइंद्रिय करिकै ग्राह्यवस्तुविषे वृत्ति नहीं हैं । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता रसके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' रसनेन्द्रियग्राह्य- वृत्तिजातिमान् रसः ' इतनामात्र हीं जो ता रसका लणक्ष करते ता लक्षणविषे ' गुणत्व- व्याप्य ' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणत्व जातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सा रसत्व- जाति ता रसनइंद्रिय ग्राह्य रसविषे रहे है तैसे सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति भी ता रसविषे रहे है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षणविषे ' गुणत्वव्याप्य ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य है नहीं । यातैं ता गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा ता सत्ताजातिकूं लैकै द्रव्यगुण कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' रसनेन्द्रियग्राह्यो रसः ' इतनामात्र हीं जो ता रसका लक्षण करते तौं रसत्वजातिविषे तथा रसके अभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो रस रसनइंद्रिय करिकै ग्राह्य है तैसे सा रसत्वजाति तथा सो रसका अभाव भी ता रसनइंद्रिय करिकै हीं ग्राह्य है । यद्यपि ता लक्षणविषे गुण- पदके कहणे करिकै अर्थात् ' रसनेन्द्रियग्राह्यो गुणो रसः ' इस प्रकारके लक्षण करणे करिकै ता रसत्वजातिविषे तथा ता रसके अभावविषे गुणपणेके अभावतैं ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती नहीं तथापि पृथिवीजलके परमाणुवोंविषे स्थित रसविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । जिस कारणतैं सो परमाणुवोंका रस अतिइंद्रिय होणेतैं रसनइंद्रिय करिकै ग्राह्य हीं नहीं है । ता अव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै हीं सो पूर्व रसत्वजाति घटित रसका लक्षण कऱ्या है । सा रसनइंद्रिय ग्राह्यवृत्ति तथा गुणत्वका व्याप्य रसत्वजाति ता अतिइंद्रिय रसविषे भी रहे है । यातैं ता अतिइंद्रिय रसविषे ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं और सा रसत्वजाति ता रसके अभावविषे तथा रसत्वजातिविषे रहती नहीं । यातैं ता रसके अभावविषे तथा ता रसत्वजातिविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति भी होवै नहीं इति ॥

रसोंके भेद—इस प्रकारके उक्तलक्षण करिकै लक्षित सो रसगुण मधुर १, अम्ल २, लवण ३, कटु ४, कषाय ५, तिक्त ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है ॥ उनके रहनेके स्थान—और सो रसगुण पृथिवी जल, इन दो द्रव्योंविषे हीं रहे है तेजादिक द्रव्योंविषे सो रसगुण रहता नहीं । तहां पृथिवीविषे तौं सो मधुरादिक षट्प्रकारका हीं रस रहे है और जलविषे तौं एकमधुररस हीं रहे है । अम्लादिक रस ता जलविषे रहता नहीं ।

ता पृथिवीविषे भी गुडादिकोंविषे तौं मधुररस रहे है और अपरिपक्क आम्रफलादिकोंविषे अम्लरस रहे है और सैंधवादिकोंविषे लवणरस रहे है और नीमादिकोंविषे कटुरस रहे है और हरीतकी आदिकोंविषे कषाय रस रहे है और मिरचादिकोंविषे तिक्करस रहे है । इस प्रकार पृथिवीविषे तौं सो मधुरादिक षट्प्रकारका हीं रस रहेहै और जलविषे तौं एक मधुर रस हीं रहै है॥

जलमें मधुररसकी सिद्धि ।

**शंका**—जलविषे मधुररस रहे है इसविषे कौंन प्रमाण है?—तहां ता जलके मधुररसविषे जो प्रत्यक्षप्रमाण कहो सो तौं सम्भवता नहीं । काहेतैं ? जैसे ता गुडादिक पृथिवीविषे रसन-इंद्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाण करिकै ते मधुरादिक रस प्रतीत होवै हैं तैसे ता रसनइंद्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाण करिकै ता जलविषे कोई भी रस प्रतीत होता नहीं । और जो नैयायिक यह कहैं नारिकेलके जलविषे सो मधुररस प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है, यातैं ता जलके मधुररसविषे प्रत्यक्ष हीं प्रमाण है; सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? ता नारिकेलके जलविषे जो मधुररस प्रतीत होवै है सो मधुररस ता जलका नहीं है, किंतु ता जलका आश्रयभूत जो नारिकेलफलरूप पृथिवी है ता पृथिवीका हीं सो मधुररस ता जलविषे प्रतीत होवै है। और जो कदाचित् ता जलविषे ता पृथिवीके मधुररसकी प्रतीति नहीं अंगीकार करौंगे तौं जम्बीरनिंबुआदिकोंके जलविषे अम्लादिक रसकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । यातैं ता जलविषे ता मधुररसकी न्याई ते अम्लादिक रस भी मान्ये चाहियें । और ता जलविषे ते अम्लादिक रस तुमोंनैं अंगीकार कऱ्ये नहीं । किंतु तिन जंबीरनिंबुआदिकोंके जलविषे आश्रयरूप पृथिवीके हीं अम्लादिक रसोंकी प्रतीति तुमोंनैं अंगीकार करी हैं । अर्थात् ता जंबीरनिंबु आदिक पृथिवीविषे रह्येहूए जे अम्लादिक रस हैं ते रस हीं स्वसमवायिसंयोग संबंध करिकै ता जलविषे प्रतीत होवै हैं । ईहां स्वशब्द करिकै ता अम्लादिक रसका ग्रहण करणा । ता रसका समवायिकारणरूप सा जम्बीरादिक पृथिवी है । ता पृथिवीका ता जलके साथि संयोगसंबंध है । इस प्रकारके परंपरासंबंध करिकै सो जम्बीरादिक पृथिवीका अम्लादिक रस हीं ता जलविषे प्रतीत होवै है । तैसे ता नारिकेलके जलविषे भीं ता नारिकेलरूप पृथिवीका मधुर रस हीं ता उक्त परम्परासंबंध करिकै प्रतीत होवै है । यातैं ता जलविषे कोई भी रस नहीं है यह सिद्ध भया । **समाधान**—ता जलविषे मधुर हीं रस रहे हैं । परन्तु हरीतकी आमलकादिकोंका भक्षण ता जलके मधुर रसका व्यञ्जक होवै है यातैं ता हरीतकी आमलकादिकोंके भक्षणतैं पूर्व ता जलके मधुर रसकी प्रतीति होती नहीं और यह पुरुष जबी ता हरीतकी आमलकादिकोंकूं भक्षण करिकै ता जलकूं पान करे है तबी ता पुरुषकूं सो जलका मधुररस प्रत्यक्ष हीं प्रतीत होवै है । **शंका**—जैसे हरीतकी आदिकोंके भक्षणतैं अनंतर पान कऱ्ये हूए जलविषे सो मधुररस प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है तैसे कर्कटीके भक्षणतैं अनंतर

पान कर्‍ये हूए जलविषे तिक्तरस भी प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है । यातैं ता जलविषे मधुररसकी न्यांई सो तिक्तरस भी अंगीकार कर्‍या चाहिये और जैसे ता हरीतकी आदिकोंके भक्षणकूं ता जलके मधुररसका व्यञ्जकपणा है तैसे ता कर्कटीके भक्षणकूं भी ता जलके तिक्तरसका व्यञ्जकपणा संभवै है। **समाधान**-ता जलपानतैं पूर्व भक्षण कर्‍ये हूए तिन हरीतकी आमलका-दिकोंविषे जैसे सो मधुररस प्रतीत होता नहीं तैसे ता जलपानतैं पूर्व भक्षण करी हूई कर्कटी-विषे जो कदाचित् सो तिक्तरस नहीं प्रतीत होता तौं ता हरीतकीके भक्षणकी न्यांई ता कर्क-टीके भक्षणकूं भी ता जलके तिक्तरसका व्यञ्जकपणा संभवता, परन्तु ता जलपानतैं पूर्व हीं ता कर्कटीविषे सो तिक्तरस प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है। यातैं ता कर्कटीके भक्षणकूं ता जलके तिक्त रसका व्यंजकपणा संभवता नहीं, किंतु ता कर्कटीके भक्षणतैं अनन्तर रसनाके अग्रभागविषे पित्तका क्षोभ होवै है ता पित्तद्रव्यका तिक्त रस हीं स्वसमवायिसंबंध करिकै ता जलविषे प्रतीत होवै है। यह वार्त्ता वैद्यकशास्त्रविषे प्रसिद्ध है । इस प्रकार जंबीर, निंबु, समुद्र इत्या दिकोंके जलविषे जो अम्ललवणादिक रस प्रतीत होवै है सो अम्लादिक रस भी ता जलका नहीं है, किंतु ता जलका आश्रयभूत जंबीरादिक पृथिवीका हीं सो अम्लादिक रस ता स्वस-मवायिसंयोग संबंध करिकै ता जलविषे प्रतीत होवै है। स्वभावतैं ता जलविषे एक मधुररस हीं रहे है। **शंका**—ता पृथिवीरूप जंबीरविषे स्थित सो अम्ल रस ता परम्परासंबंध करिकै ता जलविषे भान होवै है अथवा ता जलविषे स्थित सो अम्लरस ता उक्त परंपरासंबंध करिकै ता जंबीरविषे भान होवै है । इन दोनों पक्षोंविषे एकपक्षका साधक कोई युक्ति है नहीं यातैं ता जलका अम्लरस हीं ता जंबीररूप पृथिवीविषे भान क्युं नहीं होवै ? **समाधान**—जलतैं रहित जो अतिशुष्क जंबीर है ताके विषे भी सो अम्लरस प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है। यातैं ता जम्बीरविषे सो अम्लरस अवश्य मानणा होवैगा ता जम्बीर अम्लरसकी हीं ता जम्बीर निष्ठ जलविषे ता उक्त परंपरासंबंध करिकै प्रतीति संभवै है ता जलविषे अम्लरस मानिकै ता अम्लरसकी उक्त परम्परासंबंध करिकै ता पृथिवीरूप जम्बीरविषे प्रतीति मानणी अनुचित है। जो कदाचित् ता जलके अम्लरसकी ता जम्बीरविषे प्रतीति होवै तौं ता जलतैं रहित अति-शुष्क जंबीरविषे ता अम्लरसकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये। **शंका**—जैसे ता जम्बीररूप पृथि-वीका सो अम्लरस ता उक्त परम्परासंबंध करिकै ता जलविषे प्रतीत होवै है यातैं ता जलविषे सो अम्लरस अङ्गीकार कर्‍या नहीं, तैसे ता हरीतकीका मधुररस हीं ता उक्त परम्परासंबंध करिकै ता जलविषे प्रतीत होवैगा यातैं ता जलविषे सो मधुररस भी नहीं मान्या चाहिये। **समाधान**—ता हरीतकीविषे जो कदाचित् सो मधुररस होता तौं ता मधुररसकी ता उक्त पर-परासंबंध करिकै ता जलविषे प्रतीति होती, परन्तु ता हरीतकीविषे सो मधुररस है नहीं, किंतु कषाय रस है यातैं ता हरीतकीके मधुररसकी ता जलविषे प्रतीति कहणी अत्यन्त विरुद्ध है।

**शंका**—जैसे आम्रफलविषे प्रथम अम्लरस रहे है पश्चात् सूर्यादिक तेजके संयोगरूप पाकतैं ता आम्रफलविषे मधुररस उत्पन्न होवै है तैसे ता हरीतकीविषे भी प्रथम कषायरस रहे है पश्चात् मुखकी उष्णता तथा जल दोनोंके संयोग करिकै ता हरीतकीविषे सो मधुररस उत्पन्न होवै है सो हरीतकीका पाकज मधुररस हीं ता जलविषे ता उक्त परंपरा संबंध करिकै प्रतीत होवै है। यातैं ता जलविषे सो मधुररस संभवता नहीं। **समाधान**—अवयवोंके रस करिकै अजन्य ऐसा जो पृथिवीका रस है ता रसकी उत्पत्तिविषे ता पृथिवीके साथि अग्नि आदिक तेजका संयोग हीं कारण होवै है। या प्रकारका कार्यकारणभाव तौं आगे सर्वत्र सिद्ध हीं है। और अबी ता हरीतकीके मधुररसकी उत्पत्तिविषे ता हरीतकीके साथि जलके संयोगकूं भी जो कारण अंगीकार करौंगे तौं पूर्वसिद्ध कार्यकारणभावतैं एक दूसरा अतिरिक्त कार्य कारणभाव कल्पना करणा होवैंगा तथा ता हरीतकीविषे ता पाकज मधुररसकी समवायिकारणता कल्पना करणी होवैंगी, तथा ता मधुररसका प्रागभाव कल्पना करणा होवैंगा। ता करिकै गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवैंगी। **शंका**—ता हरीतकीविषे जलके संयोगतैं जो मधुर रसकी उत्पत्ति मानिये तौं पूर्व उक्त रीतिसे कल्पनागौरव होवै, परंतु ऐसा हम मानते नहीं। किंतु ता हरीतकीविषे जैसे कषायरस रहे है तैसे मधुररस भी रहे है परंतु ता मधुररसका व्यंजक जलका संयोग है, यातैं ता जलपानतैं पूर्व सो हरीतकीका मधुररस प्रतीत होता नहीं, किंतु ता जलपानकालविषे हीं सो हरीतकीका मधुररस प्रतीत होवै है। यातैं ता जलविषे सो मधुररस संभवता नहीं। **समाधान**—ग्रीष्मऋतुविषे पान कन्या हूआ जो उत्तराखंडविषे स्थित निर्मल गंगाजल है ता गंगाजलकी माधुर्यता सर्व बुद्धिमान् पुरुषोंकूं अनुभवसिद्ध है ऐसे अनुभवसिद्ध जलके मधुररसका कल्पित युक्तियोंसें निषेध होइ सकै नहीं। यातैं ता जलविषे स्वभावतैं सो एक मधुररस हीं है यह सिद्ध भया इति॥ मधुर रसके भेद—और सो उक्त रस गुण भी नित्य, अनित्य इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। तहां जलके परमाणुवोंविषे तौं सो रस नित्य होवै है। और तिन जलपरमाणुवोंतैं भिन्न सर्वत्र अनित्य होवै है अर्थात् द्व्यणुकादिरूप जन्य जलविषे तथा परमाणुद्व्यणुकादिरूप सर्वपृथिवीविषे सो रस अनित्य हीं होवै है। किंवा सो रस गुण उद्भूत १, अनुद्भूत २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। तहां गुडादिकोंविषे तौं उद्भूतरस रहे है और रसनइंद्रियादिकोंविषे अनुद्भूत रस रहे है। तहां ता उद्भूत रसका हीं रसनइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है ता अनुद्भूत रसका ता रसनइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं इति॥ इति रसनिरूपणं समाप्तम्॥ २॥

अथ गन्धनिरूपणम्।

लक्षण—तहां **घ्राणग्राह्यवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् गन्धः**। अर्थ यह—घ्राणइंद्रिय करिकै ग्राह्यवस्तुविषे वर्त्तणेहारी ऐसी जा गुणत्वजातिका व्याप्यजाति है ता जातिवाला गुण गंध

कह्या जावै है। तहां घ्राण इंद्रिय करिकै जन्य जो 'अयं सौरभगन्धः, अयं असौरभगन्धः' या प्रकारका प्रत्यक्ष ज्ञान है ता ज्ञानका विषय सो सौरभ असौरभगंध है। यातैं सो गंधगुण घ्राणग्राह्य कह्या जावै है। ऐसे घ्राणग्राह्य गंधविषे वर्त्तणेहारी जा गंधत्वजाति है सा गंधत्वजाति गुणत्वजातिका व्याप्य भी है ऐसी गंधत्वजाति सर्वगंधविषे समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं यह उक्त गंधका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमान् गंधः' इतनामात्र हीं जो ता गंधका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'घ्राणग्राह्यवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सा गंधत्वजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य है। तैसे ते रूपत्वादिक जातियां भी ता गुणत्व जातिके व्याप्य हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'घ्राणग्राह्यवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता घ्राणग्राह्य गन्धगुणविषे वर्त्तती थां नहीं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'घ्राणग्राह्यवृत्तिजातिमान् गन्धः' इतनामात्र हीं जो ता गंधका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ता घ्राणग्राह्य गंधगुणविषे वृत्ति सत्ताजातिकूं लैके द्रव्य, गुण, कर्म तीनोंविषे तथा गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा सत्ताजाति तथा गुणत्वजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य है नहीं। यातैं ता सत्ताजातिकूं तथा गुणत्वजातिकूं लैके तिन द्रव्यादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'घ्राणग्राह्यो गंधः' इतनामात्र हीं जो ता गंधका लक्षण करते तौं गंधत्वजातिविषे तथा गंधके अभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सो गंधगुण घ्राणइंद्रिय करिकै ग्राह्य है तैसे सा गंधत्वजाति तथा सो गंधका अभाव भी ता घ्राणइंद्रिय करिकै हीं ग्राह्य है यद्यपि ता लक्षणविषे गुणपदके कहणे करिकै अर्थात् 'घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः' इस प्रकारके गुणपदघटित लक्षणके करणेतैं ता गंधत्वजातिविषे तथा ता गंधके अभावविषे गुणपणेके अभावतैं ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, तथापि पार्थिवपरमाणुवोंके गंधविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है। जिस कारणतैं सो परमाणुवोंका गंध अतिइंद्रिय होणेतैं ता घ्राणइंद्रिय करिकै ग्राह्य नहीं है ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतैं हीं सो पूर्व उक्त गंधत्वजातिघटित लक्षण कऱ्या है। तहां सा गंधत्वजाति ता अतिइंद्रिय गन्धविषे भी रहे है। यातैं ता अतिइंद्रिय गंधविषे ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं और ता गंधत्वजातिविषे तथा ता गंधके अभावविषे सा गंधत्वजाति रहती नहीं। यातैं ता गंधत्वजातिविषे तथा ता गंधके अभावविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति भी होवै नहीं इति। इस प्रकारके उक्त लक्षण

करिकै लक्षित सो गंधगुण एकपृथिवीमात्रविषे हीं रहे है । ता पृथिवीतैं भिन्न जलादिक द्रव्योंविषे सो गंधगुण रहता नहीं । या कारणतैं हीं द्वितीयपरिच्छेदविषे ता पृथिवीद्रव्यका गन्धगुणवत्त्वरूप लक्षण कथन कऱ्या है ॥

सौरभादि भेद—और सो उक्तगंध गुण सौरभ १, असौरभ २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां जिस गंधका साक्षात्कार लोकोंकूं सुखका हेतु होवै है सो गन्ध तौं सौरभ कह्या जावै है । जैसे कस्तूरीकुसुमादिकोंका गन्ध है । और जिस गन्धका साक्षात्कार लोकोंकूं दुःखका हेतु होवै है सो गंध असौरभ कह्या जावै है । जैसे धूमादिकोंका गंध है ॥

अन्यत्रसे निराकरण—यद्यपि किसी जलविशेषविषे तथा किसी वायुविशेषविषे सो सौरभगंध तथा असौरभगंध प्रतीत होवै है । तथापि सो सौरभ असौरभ गंध ता जलविषे तथा वायुविषे है नहीं । किंतु ता जलविशेषविषे तथा ता वायुविशेषविषे संबद्ध जे पृथिवीके सूक्ष्म अवयव हैं तिन पृथिवीके अवयवोंका हीं सो सौरभ असौरभ गंध स्वसमवायिसंयोग सम्बन्ध करिकै ता जलविषे तथा ता वायुविषे प्रतीत होवै है । यह वार्त्ता पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे पृथिवी-निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणी । और यद्यपि पाषाण हीरकादिक पृथिवीविषे सो गन्धगुण प्रतीत होता नहीं । तथापि तिन पाषाणादिकोंके भस्मविषे सो गन्धगुण प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है । यातैं तिस पाषाणादिक पृथिवीविषे भी सो गंधगुण अवश्य मान्या चाहिये । यह वार्त्ता भी तहां विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । यातैं सो गंधगुण केवल पृथिवीमात्रविषे हीं रहे हैं । जलादिक द्रव्योंविषे रहता नहीं इति ॥

उद्भूतादिभेद—और सो पूर्वउक्त गंधगुण—उद्भूत १, अनुद्भूत २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै हैं । तहां कस्तूरी कुसुमादिक पृथिवीविषे तौं उद्भूत गंध रहे है और घ्राण-इंद्रियादिक पृथिवीविषे अनुद्भूतगंध रहे है । तहां सो उद्भूतगंध हीं घ्राणइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है सो अनुद्भूतगंध ता घ्राणइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । और सो पूर्वउक्त सर्वप्रकारका गंध अनित्य हीं होवै है कोई भी गंध नित्य होता नहीं इति ॥ इति गंधगुणनिरूपणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ स्पर्शनिरूपणम् ।

लक्षण—तहां **चक्षुरग्राह्यत्वग्ग्राह्यवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् स्पर्शः** । अर्थ यह—चक्षु इंद्रिय करिकै अग्राह्य तथा त्वक् इंद्रिय करिकै ग्राह्य वस्तुविषे वर्त्तणेहारी ऐसी जा गुणत्वजातिका व्याप्य जाति है ता जातिवाला गुण स्पर्श कह्या जावै है । तहां चक्षु-इंद्रिय करिकै ता स्पर्शका प्रत्यक्ष होता नहीं । किंतु त्वक् इंद्रिय करिकै हीं ता स्पर्शका प्रत्यक्ष होवै है । यातैं सो स्पर्शगुण चक्षुइंद्रिय करिकै अग्राह्य कह्या जावै है तथा त्वक् इंद्रिय करिकै ग्राह्य कह्या जावै है । ऐसे स्पर्शविषे वर्त्तणेहारी जा स्पर्शत्वजाति है सा स्पर्शत्वजाति गुणत्व

जातिका व्याप्य भी है। ऐसी स्पर्शत्व जाति समवायसंबंध करिकै शीतउष्णादिक सर्वस्पर्शो-विषे रहे है। यातैं यह उक्त स्पर्शका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तह 'गुणत्वव्याप्यजातिमान् स्पर्शः' इतनामात्र हीं जो ता स्पर्शका लक्षण करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्यरूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'त्वग्ग्राह्यवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपत्व रसत्वादिक जातियां ता गुणत्वजातिके व्याप्यहूए भी त्वकूइंद्रिय करिकै ग्राह्य स्पर्शगुणविषे वर्त्ततीयां नहीं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकू लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'त्वग्ग्राह्यवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् स्पर्शः' इतनामात्र हीं जो ता स्पर्शका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'चक्षुरग्राह्य' यह पद नहीं कथन करते तौं चक्षु त्वकू इन दोनों इंद्रियों करिकै ग्राह्य जे संख्यादिक गुण हैं तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो स्पर्शगुण त्वकूइंद्रिय करिकै ग्राह्य है। तैसे ते संख्यादिक गुण भी ता त्वकू इंद्रिय करिकै ग्राह्य हैं। ऐसे संख्यादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारि जे संख्यात्वादिक जातियां हैं ते संख्यात्वादिक जातियां सा गुणत्वजातिके व्याप्य भी हैं। ऐसी संख्यात्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'चक्षुरग्राह्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते संख्यादिक गुण चक्षुइंद्रिय करिकै अग्राह्य नहीं हैं किंतु चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य हीं हैं। यातैं तिन संख्यात्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'चक्षुरग्राह्यवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् स्पर्शः' इतना मात्र हीं जो ता स्पर्शका लक्षण करते, ता लक्षणविषे 'त्वग्ग्राह्यवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं शब्दगुणविषे तथा बुद्धि आदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अति-व्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो स्पर्शगुण चक्षुइंद्रिय करिकै अग्राह्य हैं तैसे सो शब्द गुण भी तथा ते बुद्धिआदिक गुण भी ता चक्षुइंद्रिय करिकै अग्राह्य हीं हैं ऐसे चक्षुअग्राह्य शब्दबुद्धि आदिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य जे शब्दत्वबुद्धित्वादिक जातियां हैं तिन शब्दत्व बुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके तिन शब्दबुद्धिआदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'त्वग्ग्राह्यवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते शब्दबुद्धि आदिक गुण त्वकूइंद्रिय करिकै ग्राह्य है नहीं। किंतु सो शब्दगुण केवल एक श्रोत्रइंद्रिय करिकै ग्राह्य है। और ते बुद्धि आदिक गुण केवल एक मनरूप इंद्रिय करिकै ग्राह्य है। काहेतैं? तिन शब्दबुद्धि आदिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी शब्दत्व बुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके तिन शब्दबुद्धिआदिक गुणों-विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यः स्पर्शः' इतना मात्र

हीं जो ता स्पर्शका लक्षण करते तौ संख्यादिक गुणोंविषे तथा बुद्धिआदिक गुणोंविषे यद्यपि ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती नहीं । तथापि स्पर्शत्वजातिविषे तथा स्पर्शके अभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है । काहेतें ? जैसे सो स्पर्शगुण त्वकूइंद्रियमात्र ग्राह्य है तैसे ता स्पर्शवृत्ति स्पर्शत्वजाति भी तथा ता स्पर्शका अभाव भी ता त्वकूइंद्रियमात्र करिकै हीं ग्राह्य है । यद्यपि ता लक्षणविषे गुणपदके कहणे करिकै अर्थात् 'त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः' इस प्रकारके गुणपदघटित लक्षणके करणेतें ता स्पर्शत्वजातिविषे तथा ता स्पर्शके अभावविषे गुणपणेके अभावतें ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैं नहीं । तथापि परमाणुवोंके स्पर्शविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । जिस कारणतें सो परमाणुवोंका स्पर्श अतिइंद्रिय होणेतें त्वकूइंद्रिय करिकै ग्राह्य है नहीं । ता अव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वास्तै हीं सो पूर्व उक्त स्पर्शत्वजातिघटित लक्षण कन्या है सा उक्तस्पर्शत्वजाति ता अतिइंद्रिय स्पर्शविषे भी रहे हैं । यातैं ता अतिइंद्रिय स्पर्शविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं और ता स्पर्शत्वजातिविषे तथा ता स्पर्शके अभावविषे सा स्पर्शत्वजाति रहती नहीं । यातैं ता स्पर्शत्वजातिविषे तथा ता स्पर्शके अभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति भी होवै नहीं इति ॥

भेद एवं उनके रहनेके स्थान—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो स्पर्श गुण—शीत १, उष्ण २, अनुष्णाशीत ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । और सो स्पर्शगुण पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, इन च्यारि द्रव्योंविषे हीं रहे है ? आकाशादिक द्रव्योंविषे सो स्पर्शगुण रहता नहीं । तिन च्यारि द्रव्योंविषे भी जलविषे तौं केवल शीतस्पर्श हीं रहे है और तेजविषे तौं केवल उष्णस्पर्श हीं रहे है । और पृथिवीविषे तथा वायुविषे केवल अनुष्णाशीत स्पर्श हीं रहे है । तहां जो स्पर्श उष्णभावतें तथा शीतभावतें रहित होवै है सो स्पर्श अनुष्णाशीत कह्या जावै है । यद्यपि किसी पर्वतादिकोंके जलविशेषविषे उष्ण स्पर्श प्रतीत होवै है । तथा चंद्रादिकतेजविशेषविषे शीतस्पर्श प्रतीत होवै है तथा चंदनादिक पृथिवीविशेषविषे शीतस्पर्श प्रतीत होवै है तथा किसीक पृथिवीविशेषविषे उष्णस्पर्श भी प्रतीत होवै है । तथा किसीक वायुविशेषविषे शीतस्पर्श प्रतीत होवै है और किसीक वायुविशेषविषे उष्णस्पर्श भी प्रतीत होवै है । यातैं जलविषे केवल शीतस्पर्श हीं रहे है और तेजविषे केवल उष्णस्पर्श हीं रहे है और पृथिवीवायुविषे केवल अनुष्णाशीत स्पर्श हीं रहे है यह पूर्व उक्त व्यवस्था संभवती नहीं । तथापि ता जलविशेषविषे सो उष्णस्पर्श अग्नि आदिक तेजके संबंधतैं हीं प्रतीत होवै है और ता चंद्रादिक तेजाविशेषविषे सो शीतस्पर्श जलके संबंधतैं हीं प्रतीत होवै है । और ता पृथिवीविशेषविषे तथा ता वायुविशेषविषे सो शीतस्पर्श तथा उष्णस्पर्श यथाक्रमतैं जलके संबंधतैं तथा तेजके संबधतैं हीं प्रतीत होवै है । यह सर्ववार्त्ता पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे जलके निरूपणविषे तथा तेजके निरूपणविषे

विस्तारतैं कथन करि आये हैं सो तहांसैं जानिलेनी । यातैं सा पूर्वउक्त स्पर्शके आश्रयकी व्यवस्था संभवै है । यद्यपि पृथिवीविषे तथा वायुविषे सो अनुष्णाशीत स्पर्श हीं रहे है । तथापि सो पृथिवीका अनुष्णाशीत स्पर्श तौं पाकज होवै है अर्थात् अग्निआदिक तेजके संयोग करिकै जन्य होवै है । और सो वायुका अनुष्णाशीत स्पर्श अपाकज होवै है । इतनी दोनोंविषे विशेषता है । किंवा जैसे सो पाकज अनुष्णाशीत स्पर्श ता पृथिवीविषे हीं रहे है । तैसे कठिन १, सुकुमार २, यह दो प्रकारका स्पर्श भी ता पृथिवीविषे हीं रहे हे । तहां पाषाणादिक पृथिवीविषे तौं कठिनस्पर्श रहे है । और तूलकादिक पृथिवीविषे सुकुमार स्पर्श रहे है । तहां कोमलस्पर्शका नाम सुकुमारस्पर्श है इति ॥

केईक ग्रन्थकार और इनका खण्डन—ईहां केईक ग्रंथकार तौं यह कहे हैं—कठिन सुकुमार यह दोनों स्पर्शरूप नहीं हैं किंतु संयोगविशेषरूप हैं । अर्थात् कोईक अवयवोंके संयोग विशेषकूं कठिन कहे हैं । और केईक अवयवोंके संयोगविशेषकूं सुकुमार कहे हैं । सो कठिनत्व धर्मका आश्रयभूत संयोगविशेष हिमकरकादिक जलविषे भी रहे है इति । सो यह मत समीचीन नहीं है । काहेतैं ? जो कदाचित् संयोग विशेषका नाम कठिनसुकुमार होवै तौं जैसे दो अंगुलियोंके संयोगका चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तैसे ता संयोगविशेषरूप कठिन सुकुमारका भी चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये । और ता कठिनसुकुमारका चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । किंतु त्वक्इंद्रिय करिकै हीं प्रत्यक्ष होवै है और हिमकरकादिक जलविषे जो कठिनताकी प्रतीति होवै है सा प्रतीति भ्रांतिरूप हीं है । यातैं ता भ्रांतिरूप प्रतीतितैं ता हिमकरकादिक जलविषे कठिनताकी सिद्धि होवै नहीं । यातैं ता कठिनसुकुमारविषे संयोगरूपता सम्भवै नहीं । किंतु स्पर्शरूपता हीं सम्भवै है इति ॥

भेद तथा रहनेके स्थान—किंवा सो उक्त स्पर्शगुण नित्य १, अनित्य २, इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । तहां जल, तेज, वायु, इन तीन द्रव्योंके परमाणुवोंविषे तौं सो स्पर्श नित्य होवै है और तिन परमाणुवोंतैं भिन्न सर्वत्र अनित्य होवै है । अर्थात् द्व्यणुकादिरूप जन्य जलतेजवायुविषे तथा परमाणुद्व्यणुकादिकरूप सर्वपृथिवीमात्रविषे सो स्पर्श अनित्य हीं होवै है इति । किंवा सो उक्त स्पर्शगुण उद्भूत १, अनुद्भूत २, इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । तहां घटपटादिक द्रव्योंविषे तौं सो स्पर्श उद्भूत होवै है । और त्वगादिक इंद्रियोंविषे तथा प्रदीपादिकोंकी प्रभाविषे तथा त्र्यणुकविषे सो स्पर्श अनुद्भूत होवै है । तहां सो उद्भूत स्पर्श हीं त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । सो अनुद्भूतस्पर्श त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । या कारणतैं हीं ता प्रभाका तथा त्र्यणुकका तथा तिन दोनोंके स्पर्शका त्वाचप्रत्यक्ष होता नहीं इति ॥ इति स्पर्शगुणनिरूपणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पाकजप्रक्रिया।

तहां पूर्व निरूपण कऱ्ये जे रूप १, रस २, गन्ध ३, स्पर्श ४ यह च्यारि गुण हैं ते रूपादिक च्यारों गुण पृथिवीविषे तौं पाकज होवै हैं। तहां अग्निसूर्यादिक तेजके संयोगका नाम पाक है, ता पाकतैं पृथिवीविषे उत्पन्न हूए जे रूपादिक हैं तिनोंका नाम पाकज है, यह पाकज शब्दका अर्थ आगे सर्वत्र जानिलेणा। जैसे आम्रफलादिक पृथिवीविषे तथा तण्डुलादिक पृथिवीविषे सूर्यरूप तेजके सम्बंधतैं तथा अग्निरूप तेजके सम्बंधतैं पूर्वले रूप रस गंध स्पर्शतैं विलक्षण हीं रूप रस गंध स्पर्श उत्पन्न होवै हैं। यह वार्त्ता सर्वलोकोंकूं अनुभव सिद्ध है। या कारणतैं हीं ते रूपादिक च्यारोंगुण ता पृथिवीविषे अनित्य हीं होवै है। अर्थात् ता पृथिवीविषे ते रूपादिक च्यारोंगुण कहां तौं आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै हैं और कहां तेजःसंयोगरूप पाकतैं नाश होवै हैं। तहां वैशेषिकोंके मतविषे परमाणुरूप नित्य पृथिवीविषे तौं ते रूपादिक च्यारों केवल पाकतैं हीं नाश होवै हैं। और द्व्यणुकादिक अनित्य पृथिवीविषे आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै हैं। और नैयायिकोंके मतविषे तौं पृथिवी-मात्रविषे पाकतैं नाश होवै हैं। तथा आश्रयद्रव्यके नाशतैं भी नाश होवै हैं और ता पृथिवीतैं भिन्न जल, तेज, वायु इन तीन द्रव्योंविषे तौं ते रूपादिक च्यारोंगुण अपाकज हीं होवै हैं। काहेतैं? तिन जलादिकोंके साथि अनेकवार अग्नि आदिक तेजके सम्बन्धहूए भी पूर्वरूप रसादिकोंतैं विलक्षण रूपरसादिक उत्पन्न होते नहीं। या कारणतैं हीं जल, तेज, वायु, इन तीन द्रव्योंविषे ते रूपादिक च्यारोंगुण नित्य भी होवै हैं तथा अनित्य भी होवै हैं। तहां परमाणुरूप जल तेज वायुविषे तौं ते रूपादिक नित्य होवै हैं और द्व्यणुकादिक कार्यरूप जल तेज वायुविषे ते रूपादिक अनित्य होवै हैं। अर्थात् ता जलतेजादिरूप आश्रय द्रव्यकी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीयक्षणविषे ते रूपादिक उत्पन्न होवै हैं और ता आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं नाश होवै है इति॥

पाकज रूपादिकोंका मतभेदसे निरूपण—ता पृथिवीविषे अग्निआदिक तेजके संयोगरूप पाकतैं तिन रूपादिक च्यारोंकी उत्पत्ति किस प्रकारतैं होवै है ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब मतभेदसैं ता पाकजप्रक्रियाका निरूपण करे हैं। तहां पीलुपाकवादी अर्थात् परमाणु पाकवादी वैशेषिक-शास्त्रवाले तौं यह कहे हैं। ता पृथिवीविषे भी परमाणुरूप पृथिवीविषे हीं ता अग्नि आदिक तेजके संयोगरूप पाक करिकै पूर्वले रूपरसादिकोंकी निवृत्तिपूर्वक दूसरे रूपरसादिकोंकी उत्पत्ति होवै है, द्व्यणुकादिक अवयवीरूप पृथिवीविषे ते पाकज रूपादिक उत्पन्न होते नहीं॥

वैशेषिकोंका आशय—तहां पार्थिव परमाणुवोंविषे हीं पाकज रूपादिकोंकी उत्पत्तिकूं माननेहारे तिन वैशेषिकोंका यह अभिप्राय है। काचे घटके पकावणे वासतैं कुलालपुरुषनैं आमपाकविषे पाया हुआ जो श्याम घट है ता घटके आरंभक परमाणुवोंके साथि तहां अतिवेगवाले अग्निरूप तेजका अभिघाताख्य वा नोदनाख्य संयोग अवश्य होवै है॥ १॥

उा संयोग करिकै तिन परमाणुवोंविषे अवश्य क्रिया उत्पन्न होवै है ॥ २ ॥ ता क्रियातैं तिन परमाणुवोंका परस्पर विभाग उत्पन्न होवै है ॥ ३ ॥ ता विभागतैं तिन परमाणुवोंका द्व्यणुकरूप कार्यका आरंभक संयोग नष्ट होवै है ॥ ४ ॥ ता असमवायिकारणरूप संयोगके नाशहूए द्व्यणुकरूप कार्यका नाश होवै है ॥ ५ ॥ ता द्व्यणुकरूप समवायिकारणके नाशहूए त्र्यणुकरूप कार्यका नाश होवै है ॥ ६ ॥ ता त्र्यणुकरूप समवायिकारणके नाश हूए चतुरणुकरूप कार्यका नाश होवै है ॥ ७ ॥ इस प्रकार द्व्यणुकतैं आदिलैके ता घटपर्यंत सर्व अवयवीवोंका नाश होवै है ॥ ८ ॥ केवल परमाणु बाकी रहे हैं, अर्थात् द्व्यणुकादिक कार्यद्रव्यकी अधिकरणतातैं राहित हूए केवल स्वतंत्र परमाणु बाकी रहे हैं । तिन परमाणुवोंके साथि पुनः ता अग्निरूप तेजका संयोग संबंध होवै है ॥ ९ ॥ ता अग्निसंयोगतैं पूर्वले रूपरसादिकोंकी निवृत्ति पूर्वक दूसरे विलक्षण रूपरसादिकोंकी उत्पत्ति होवै है ॥ १० ॥ तिसतैं अनंतर अदृष्टादिक कारणसामग्रीके वशतैं विजातीय अग्निसंयोग करिकै तिन पक्व परमाणुवोंविषे पुनः क्रिया उत्पन्न होवै है ॥ ११ ॥ ता क्रियातैं तिन परमाणुवोंविषे दो दो परमाणुवोंका परस्पर संयोग होवै है ॥ १२ ॥ ता संयोगतैं अनंतर द्व्यणुकरूप कार्योंकी उत्पत्ति होवै है ॥ १३ ॥ तिसतैं अनंतर पुनः विजातीय अग्निसंयोगतैं तिन द्व्यणुकोंविषे क्रिया उत्पन्न होवै है ॥ १४ ॥ तिस क्रियातैं तीन तीन द्व्यणुकोंका परस्पर संयोग होवै है ॥ १५ ॥ तिसतैं त्र्यणुकरूप कार्योंकी उत्पत्ति होवै है ॥ १६ ॥ इस प्रकार चतुरणुक पंचाणुक आदिकोंकी उत्पत्ति क्रमतैं ता अंत्यावयवीरूप घटकी उत्पत्ति होवै है ॥

पाकज रूप रसादिकोंके कारण—तहां तिन पार्थिवपरमाणुवोंविषे उत्पन्न भये जे पाकज रूप रसादिक हैं तिन पाकजरूपादिकोंका ते पार्थिवपरमाणु तौ समवायिकारण हैं और तिन पार्थिव परमाणुवोंके साथि जो तेजका संयोग है । सो तेजका संयोग असमवायिकारण है और अदृष्टादिक निमित्तकारण हैं । और तिन पाकज रूपादिकोंवाले पार्थिवपरमाणुवोंतैं उत्पन्न भये जे द्व्यणुकरूप कार्य हैं तिन द्व्यणुकोंके रूपादिकोंका तौ ते परमाणुके रूपादिक हीं असमवायिकारण होवै है । तैसे त्र्यणुकरूप कार्यके रूपादिकोंका ते द्व्यणुकके रूपादिक हीं असमवायिकारण होवै हैं । इस प्रकार पूर्व पूर्व अवयवोंके रूपादिक गुणों करिकै उत्तर उत्तर अवयवीके रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति क्रम करिकै अंत्यावयवीरूप घटपर्यंत ते रूपादिक गुण उत्पन्न होवै हैं ॥

पीलुपाकका समर्थन—इस प्रकारतैं आमपाकविषे पायेहूए पूर्वघटका नाश होइकै हीं पुनः दूसरे घटकी उत्पत्ति होवै है, परन्तु ता अग्निरूप तेजके अत्यन्त वेगतैं पूर्वले घटका नाश होइकै शीघ्र हीं दूसरे घटकी उत्पत्ति होवै है । या कारणतैं लोकोंकूं यह दूसरा घट उत्पन्न हूआ है या प्रकारका ज्ञान होता नहीं । और ता घटविषे लोकोंकूं सोई यह घट है या प्रकारका जो

प्रत्यभिज्ञा ज्ञान होवै है सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौं ता वर्त्तमानघटविषे ता नष्टहूए पूर्वघटके सजातीयपणेकूं हीं विषय करे है। यातैं ता प्रत्यभिज्ञाके बलतैं ता पूर्व उत्तरघटकी एकता सिद्ध होवै नहीं, किंवा तिन पार्थिव परमाणुवोंविषे जो पाकजरूपादिकोंकी उत्पत्ति नहीं अंगीकार करिये किंतु बनेबनाये घटादिक अवयवीयोंविषे हीं जो पाकज रूपादिकोंकी उत्पत्ति अंगीकार करिये तौं ता घटके भीतरिले अवयवोंविषे पूर्वले नीलरूपादिकोंकी निवृत्तिपूर्वक दूसरे रक्त रूपादिकोंकी उत्पत्ति नहीं होवैगी। काहेतै? सो घटरूट अवयवी अत्यन्त दृढ है। यातैं ता घटके भीतर ता अग्निका प्रवेश हीं संभवता नहीं और ता अग्निके प्रवेशतैं विना तिन भीतरिले अवयवोंके साथि ता अग्निका संयोग हीं संभवता नहीं और ता अग्निके संयोगतैं विना तिन भीतरिले अवयवोंविषे पूर्वले श्यामरूपादिकोंकी निवृत्ति तथा दूसरे रक्त रूपादिकोंकी उत्पत्ति हीं संभवती नहीं, सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु ता आमपाकविषे पके हूए घटकूं फोडिके देखिये तौं अंतर बाह्यमध्यविषे सो पाकज रक्तरूप हीं देखणेविषे आवै है। यातैं पूर्वउक्त रीतिसैं तिन पार्थिव परमाणुवोंविषे हीं पाकज रूपादिकोंकी उत्पत्ति मानणे योग्य है इति॥

अब द्व्यणुकके विनाशक्षणतैं लैके कितनैं क्षणतैं पश्चात् सो द्व्यणुक पुनः उत्पन्न होइके तिन रूपादिक गुणोंवाला होवै है। इस प्रकारकी क्षणप्रक्रियाकूं निरूपण करे हैं—तहां ता अग्निरूप तेजके संयोगतैं तिन पार्थिव परमाणुवोंविषे क्रिया उत्पन्न होवै है। तिसतैं अनंतर ता द्व्यणुकारंभक एक परमाणुका ता द्व्यणुकारंभक दूसरे परमाणुसैं विभाग होवै है। तिसतैं अनंतर ता द्व्यणुकरूप कार्यके आरंभक संयोगका नाश होवै है। तिसतैं अनंतर ता द्व्यणुकरूप कार्यका नाश होवै है॥१॥(ये चार कार्य प्रथमक्षणविषे) और द्वितीयक्षणविषे तिन परमाणुवोंविषे अग्निआदिक तेजके संयोगतैं पूर्व श्यामरूपादिकोंका नाश होवै है॥२॥ और तृतीयक्षणविषे ता अग्निआदिक तेजके संयोगतैं तिन परमाणुवोंविषे दूसरे रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्ति होवै है॥३॥और चतुर्थक्षणविषे तिन पाकज रूपादिकोंवाले परमाणुवोंविषे विजातीय अग्नि आदिक तेजके संयोगतैं द्व्यणुकरूप द्रव्यके आरंभ करणेहारी क्रिया उत्पन्न होवै है॥४॥और पंचमक्षणविषे ता क्रिया करिकै तिन परमाणुवोंका पूर्वले स्थिति देशतैं विभाग होवै है॥ ५॥ और षष्ठे क्षणविषे तिन परमाणुवोंका ता पूर्वले देशके साथि संयोगनाश होवै है॥ ६॥ और सप्तमे क्षणविषे तिन परमाणुवोंका परस्पर द्व्यणुकका आरंभक संयोग होवै है॥ ७॥ और अष्टमक्षणविषे ता द्व्यणुककी उत्पत्ति होवै है॥ ८॥ और नवमक्षणविषे तिन परमाणुवोंके रूपादिक गुणों करिकै ता द्व्यणुकविषे रूपादिक गुणोंकी उत्पत्ति होवै है॥९॥ इस प्रकार द्व्यणुकके नाशक्षणतैं लैके नवक्षणोंविषे सो द्व्यणुक पुनः उत्पन्न होइकै रूपादिक गुणोंवाला होवै है इति॥

सप्तम और अष्टम क्षणकी शंका—ता उक्त नवक्षण प्रक्रियाविषे जिस द्वितीयक्षणविषे तिन परमाणुवोंके श्यामरूपादिकोंका नाश होवै है। तिस द्वितीयक्षणविषे हीं तिन परमाणुवोंविषे जो

द्व्यणुकका आरंभक क्रिया अंगीकार करीये तौं सप्त हीं क्षणोंविषे सो द्व्यणुक पुनः उत्पन्न होइकै रूपादिक गुणोंवाला होवै है सा सप्तक्षणप्रक्रिया दिखावे हैं । तहां पूर्वउक्त रीतिसैं प्रथमक्षणविषे ता द्व्यणुकका नाश ॥ १ ॥ और द्वितीयक्षणविषे तिन परमाणुवोंके श्यामरूपका नाश तथा द्व्यणुकके आरंभक क्रियाकी उत्पत्ति ॥ २ ॥ और तृतीयक्षणविषे तिन परमाणुवों-विषे रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्ति तथा ता क्रियाजन्य पूर्वदेशतैं विभाग ॥ ३ ॥ और चतुर्थक्षण-विषे ता पूर्वदेशके संयोगका नाश ॥ ४ ॥ और पंचमक्षणविषे तिन परमाणुवोंका परस्पर द्व्यणुकका आरंभक संयोग ॥ ५ ॥ और षष्ठ क्षणविषे ता द्व्यणुककी उत्पत्ति ॥ ६ ॥ और सप्तम क्षणविषे ता द्व्यणुकविषे रूपादिकोंकी उत्पत्ति ॥ ७ ॥ किंवा ता उक्त नवक्षण-प्रक्रियाविषे जिस तृतीयक्षणविषे तिन परमाणुवोंविषे पाकज रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्ति होवै है तिसी तृतीयक्षणाविषे तिन परमाणुवोंविषे जो द्व्यणुकके आरंभक क्रियाकी उत्पत्ति अंगीकार करीये तौं अष्ट हीं क्षणोविषे सो द्व्यणुक पुनः उत्पन्न होइकै रूपादिक गुणोंवाला होवै है (इसी तरह पांच छः दश और ग्यारह क्षणकी प्रक्रिया है )। इस प्रकार सप्तक्षण प्रक्रियाके वा अष्टक्षण प्रक्रियाके मानणे करिकै हीं जो उक्त अर्थकी सिद्धि होइ सकै तौं सा नवक्षणप्रक्रिया मानणी अनुचित है । इसका समाधान—जिस परमाणुकी क्रियानैं विभागादिकोंकी उत्पत्ति क्रम करिकै ता द्व्यणुकका नाश कऱ्या है सा प्रथम क्रिया तिस परमाणुविषे द्व्यणुकके आरंभक द्वितीयक्रियाका प्रतिबंधक होवै है अर्थात् सा प्रथमक्रिया जितनैं कालपर्यंत तिस परमाणुविषे रहे है तितनैं कालपर्यंत तिस परमाणुविषे ता द्वितीय क्रियाकूं उत्पन्न होणे देवै नहीं । और सा प्रथमक्रिया ता परमाणुके उत्तरदेश संयोग करिकै हीं नाश होवै है । और सो उत्तरदेश संयोग ता द्व्यणुकके नाशक्षणविषे हीं होवै है । यातैं ता उत्तरसंयोग करिकै ता प्रथमा क्रियाका नाश ता परमाणुके श्यामरूपादिकोंके नाशक्षणविषे हीं होवै है । यातैं ता श्यामरूपादिनाशक्षणविषे तिस परमाणुविषे द्व्यणुकके आरंभक क्रियाकी उत्पत्ति संभवती नहीं । किंवा तिस परमाणुविषे पाकज रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्तिक्षणविषे ता द्व्यणुकारंभक क्रियाकी उत्पत्ति मानणेविषे यद्यपि सा प्रथमक्रिया प्रतिबंधक नहीं है । तथापि जैसे एकक्रियावाले द्रव्यविषे सा दूसरी क्रिया उत्पन्न होती नहीं । तैसे निर्गुणद्रव्यविषे भी सा द्रव्यका आरंभक क्रिया उत्पन्न होती नहीं, किंतु गुणकी उत्पत्तितैं द्वितीयक्षणविषे हीं ता द्रव्यविषे सा द्रव्यारंभक क्रिया उत्पन्न होवै है । यातैं ता रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्तिक्षणविषे भी ता परमाणुविषे ता द्व्यणुकारंभक क्रियाकी उत्पत्ति संभवती नहीं । किंतु ता रक्त रूपादिकोंकी उत्पत्तितैं अनंतर हीं तिन पर-माणुवोंविषे सा द्व्यणुकारंभकक्रिया संभवै है । यातैं सा पूर्व उक्त नवक्षण प्रक्रिया हीं समीचीन है ॥

अष्टक्षणवादीकी शंका—तिन परमाणुवोंविषे श्यामरूपादिकोंके नाशक्षणविषे वा रक्तरूपादि-कोंकी उत्पत्तिक्षणविषे सा द्व्यणुकका आरंभकक्रिया मत उत्पन्न होवो तथापि जिस द्वितीय

क्षणविषे तिन परमाणुवोंके श्यामरूपादिका नाश हूआ है तिसी द्वितीयक्षणविषे तिन परमाणुवोंविषे ता रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्ति होवैंगी। ता करिकै पुनः अष्टक्षणप्रक्रिया हीं सिद्ध होवैंगी। समाधान—ता पाकज स्थलविषे पूर्वले श्यामरूपादिकोंका ध्वंस भी दूसरे रक्तरूपादिकोंके उत्पत्तिका कारण होवै है। और जो जो कारण होवै है सो सो कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्वक्षणवृत्ति हीं होवै है। यातैं ता श्यामरूपादिकोंके नाशक्षणविषे दूसरे रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्ति संभवती नहीं, किंतु तिसतैं अगले क्षणविषे हीं संभवै है। यातैं सा पूर्वउक्त नवक्षण प्रक्रिया हीं समीचीन है इति। इतनैं पर्यंत पीलुपाकवादी वैशेषिकशास्त्रका मत निरूपण कऱ्या॥

पिठरपाकवादी नैयायिकोंका मत।

अब पिठरपाकवादी न्यायशास्त्रके मतका निरूपण करे हैं—ईहां पीलु नाम परमाणुवोंका है और घटादिक अवयवीका नाम पिठर है तहां ते नैयायिक यह कहे हैं। आमपाकविषे पायेहूए घटके आरंभक परमाणुवोंके साथि ता अग्निरूप तेजके अभिघाताख्य संयोगके वा नोदनाख्य संयोगके हूए भी सो संयोग नियमपूर्वक द्व्यणुकके आरंभक संयोगका नाशक विभागका जनक क्रियाकूं हीं उत्पन्न करे है। इस अर्थविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। यातैं ता आमपाकविषे ता अग्निके संयोगहूए भी पूर्व उक्त द्व्यणुकादि नाश क्रमतैं ता घटका नाश होता नहीं। किंतु ता घटके नाशतैं विना हीं परमाणुवोंतैं आदिलैके ता घटपर्यंत तिन परमाणुआदिक सर्व अवयवोंविषे तथा द्व्यणुकादिक सर्व अवयवीयोंविषे एक हीं कालविषे ता अग्निरूप तेजके संयोग करिकै पूर्वले श्यामरूपादिकोंकी निवृत्तिपूर्वक दूसरे रक्तरूपादिकोंकी उत्पत्ति होवै है और ते घटादिक अवयवी सूक्ष्मछिद्रोंवाले हीं होवै हैं। यातैं ता अग्निके सूक्ष्मअवयव तिन सूक्ष्मछिद्रों द्वारा ता घटके भीतर प्रवेश करि जावै हैं। तिन अग्निअवयवोंके संयोग करिकै ता घटके भीतरिले अवयवोंविषे भी ते रक्तरूपादिक उत्पन्न होवै हैं। जो कदाचित् तिन घटादिकोंकूं छिद्रोंवाला नहीं मानिये तौं तिन घटादिकोंके भीतर तंडुलादिकोंका पाक नहीं होणा चाहिये। और तिन घटादिकोंविषे तंडुलादिकोंकूं तथा जलकूं पाइकै नीचेतैं अग्निके प्रज्वलित कीये हूए तिन तंडुलादिकोंका पाक प्रत्यक्ष देखणे विषे आवै है। अर्थात् ता अग्निके सूक्ष्मअवयव ता घटके भीतर तिन सूक्ष्मछिद्रोंद्वारा प्रविष्ट होइकै तिन तंडुलोंका पाक करे है। यातैं ते घटादिक अवयवी छिद्रोंवाले हीं मान्ये चाहियें। किंवा जो वैशेषिक ता पाकज स्थलविषे द्व्यणुकतैं आदि लैके ता घटपर्यंत सर्व अवयवीयोंका नाश अंगीकार करे है तिस वैशेषिकके मतविषे तिन अनंत अवयवीवोंके नाश तथा तिन अनंत अवयवीयोंकी उत्पत्ति तथा तिन अनंत अवयवीयोंके प्रागभाव कल्पना करणे होवै हैं ता करिकै तिनोंके मतविषे कल्पनागौरवदोष प्राप्त होवै है सो कल्पनागौरवदोष हम नैनायिकोंके मतविषे प्राप्त होता नहीं। यातैं हमारे मतविषे लाघव है, किंवा ता हमारे मत विषे केवल लाघव हीं नहीं है, किंतु सोई हीं यह

घट है या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान भी अनुकूल है । अर्थात् सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान भी ता पूर्वउत्तर घटके अभेदकूं विषय करता हूआ ता घटरूप अवयवीके अनाशकूं हीं सिद्ध करे है इति ॥

अथ संख्यानिरूपणम् ।

लक्षण—तहां **एकादिव्यवहारहेतुः संख्या** । अर्थ यह—यह एक है, यह दो हैं, यह तीन हैं, यह च्यारि हैं, यह पांच हैं इत्यादिक व्यवहारोंका जो हेतु होवै है सो संख्या कह्या जावै है । तहां ते उक्तव्यवहार ता एकत्वद्वित्वादिक संख्या करिकै हीं होवै हैं अन्य करिकै होते नहीं । यातैं यह उक्त संख्याका लक्षण सम्भवै है । शङ्का—व्यवहारशब्द कहां तौं ज्ञानका वाचक होवै है और कहां शब्दका वाचक होवै है । तहां **व्यवह्रियते ज्ञानोपादानादिकं क्रियतेऽनेनेति व्यवहारः** । अर्थ यह—जिस करिकै वस्तुका ग्रहणत्यागादिक कर्‍या जावै है ताका नाम व्यवहार है । या प्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै तौं सो व्यवहार शब्द ज्ञानका वाचक होवै है । जिस कारणतैं वस्तुके ग्रहणत्यागादिक ता वस्तुके ज्ञान करिकै हीं होवै हैं । ता ज्ञानतैं विना कोई भी ग्रहण त्यागादिक व्यवहार होता नहीं और **व्यवह्रियते ज्ञायतेऽनेनेति व्यवहारः** । अर्थ यह—जिस करिकै वस्तु जानी जावै है ताका नाम व्यवहार है । इस प्रकारकी व्युत्पत्ति करिकै सो व्यवहारशब्द शब्दका वाचक होवै है । जिस कारणतैं शब्दादिक प्रमाण करिकै हीं वस्तु जानी जावै है शब्दादिक प्रमाणतैं विना किसी भी वस्तुका ज्ञान होता नहीं तहां ता उक्तसंख्याके लक्षणविषे स्थित जो व्यवहार शब्द है ता व्यवहार शब्द करिकै सो ज्ञानरूप व्यवहार विवक्षित है अथवा सो शब्दरूप व्यवहार विवक्षित है । तहां प्रथमपक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं ता ज्ञानरूप व्यवहारके समवायिकारणरूप आत्माविषे तथा असमवायिकारणरूप आत्ममनःसंयोगविषे तथा निमित्तकारणरूप अदृष्ट, ईश्वर, काल आदिकोंविषे ता संख्याके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । और ता व्यवहार पद करिकै शब्दरूप व्यवहार विवक्षित है यह द्वितीयपक्ष जो अंगीकार करौंगे तौं ता शब्दरूप व्यवहारके समवायिकारणरूप आकाशविषे तथा असमवायिकारणरूप कण्ठताल्वादि आकाशसंयोगविषे तथा निमित्तकारणरूप अदृष्ट ईश्वरादिकोंविषे ता संख्याके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । यातैं सो उक्त संख्याका लक्षण सम्भवता नहीं । समाधान—ता व्यवहार शब्द करिकै प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहारका हीं ग्रहण करणा ता प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहारका जो हेतु होवै अर्थात् विषयत्वरूप करिकै कारण होवै सो संख्या कह्या जावै है । तहां जैसे 'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक प्रत्यक्षज्ञानोंविषे तिन घटपटादिकोंकूं विषयत्वरूप करिकै कारणता होवै है । तैसे 'एकः द्वौ' इत्यादिक प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहारोंविषे भी ता एकत्वद्वित्वादिक संख्याकूं विषयत्वरूप करिकै कारणता होवै है । जिस कारणतैं विषयतैं विना कोई भी प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । इतनें कहणे करिकै ता संख्याका **विषयत्वेनैकादिव्यवहारहेतुः संख्या** । यह लक्षण

सिद्ध होवै है । तहां आत्माकूं तथा आत्ममनःसंयोगकूं तथा अदृष्टादिकोंकूं ता प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहारके प्रति कारणताके हूए भी विषयत्वरूप करिकै कारणता है नहीं । यातैं तिन आत्मादिकोंविषे ता संख्याके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । अथवा ता उक्तलक्षणविषे स्थित हेतु पदके स्थानविषे 'विषयः' यह पद कथन करणा अर्थात् एकादिव्यवहारविषयः संख्या । या प्रकारका ता संख्याका लक्षण करणा । ता करिकै ता लक्षणका यह अर्थ सिद्ध होवै है 'एकः द्वौ त्रयः' इत्यादिक प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहारोंका जो विषय होवै है सो संख्या कह्या जावै है । तहां 'एकः, द्वौ, त्रयः' इत्यादिक प्रत्यक्षज्ञानोंका सा एकत्वद्वित्वादिक संख्या हीं विषय है । ते आत्मा अदृष्टादिक विषय हैं नहीं । यातैं तिन आत्मा अदृष्टादिकोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं ॥

शङ्का—'एको घटः' अर्थ यह—एकत्व संख्यावाला घट है । यह प्रत्यक्षज्ञान एकत्वसंख्याविशिष्ट घटकूं विषय करे है । यातैं ता प्रत्यक्षज्ञानविषे जैसे ता एकत्वसंख्याकूं विषयत्वरूप करिकै कारणता है तैसे ता घटकूं भी विषयत्वरूप करिकै कारणता है । तथा ता प्रत्यक्षज्ञानका जैसे सा एकत्व संख्याविषय है । तैसे सो घट भी विषय है । यातैं 'विषयत्वेनैकादिव्यवहार हेतुःसंख्या' इस प्रथमलक्षणकी तथा 'एकादिव्यवहारविषयः संख्या' इस द्वितीयलक्षणकी ता घटविषे अतिव्याप्ति होवै है । समाधान—तिन दोनों लक्षणोंविषे 'गुण' यह पद भी कथन करणा । अर्थात् विषयत्वेनैकादिव्यवहारहेतुर्गुणः संख्या । एकादिव्यवहारविषयो गुणः संख्या । इस प्रकारतैं ते दोनों लक्षण गुणपदघटित करणे । तहां तिन घटादिकोंविषे सा गुणरूपता है नहीं । यातैं तिन घटादिक द्रव्योंविषे ता संख्याके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । अथवा 'एकादिव्यवहारहेतुः संख्या' इस पूर्व उक्त लक्षणविषे व्यवहार पद करिकै शब्दरूप व्यवहारका ग्रहण करणा । और हेतु इस पद करिकै प्रवृत्तिनिमित्तका ग्रहण करणा । ता करिकै ता संख्याका यह लक्षण सिद्ध होवै है। एकादिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं संख्या। अर्थ यह—'एकःद्वौ त्रयः' इत्यादिक शब्दोंके प्रवृत्तिका जो निमित्त होवैं है सो संख्या कह्या जावै है। तहां जिस द्रव्यविषे एकत्वसंख्या रहे है तिस द्रव्य विषे तौं 'अयमेकः' या प्रकारतैं एकपदकी प्रवृत्ति होवै है । और जिन द्रव्योंविषे द्वित्वसंख्या रहे है। तिन द्रव्योंविषे 'इमौ द्वौ' या प्रकारतैं द्विपदकी प्रवृत्ति होवै है । और जिन द्रव्योंविषे त्रित्व संख्या रहे है तिन द्रव्योंविषे 'इमे त्रयः' या प्रकारतैं त्रिशब्दकी प्रवृत्ति होवै है। यातैं सा एकत्वसंख्या तौं ता एकपदके प्रवृत्तिका निमित्त है । और सा द्वित्वसंख्या ता द्विपदके प्रवृत्तिका निमित्त है । और सा त्रित्वसंख्या ता त्रिपदके प्रवृत्तिका निमित्त है । इस प्रकार चतुष्टत्व पंचत्व आदिक संख्याविषे भी चतुर पंच आदिक शब्दोंके प्रवृत्तिकी निमित्तरूपता जानिलेणी इति ॥

संख्याका स्थान तथा भेद—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित जो संख्यागुण है सो संख्यागुण पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है । तथा सो संख्यागुण एकत्वतैं आदि-लेके परार्द्धपर्यंत हीं होवै है ता परार्द्धतैं आगे कोई भी संख्या होती नहीं । जिस कारणतैं पुराणोंविषे एकत्वतैं आदिलेके परार्द्धपर्यंत हीं ता संख्याकी गिणती करी है ता परार्द्धतैं आगे कोई संख्याकी गिणती करी नहीं । तहां विष्णु पुराणका श्लोक—एकं दशशतं चैव सहस्र-मयुतं तथा लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥ १ ॥ वृन्दं खर्वोनिखर्वश्च शङ्ख-पद्मौ च सागरः अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च दशवृद्धया यथाक्रमम् ॥ २ ॥ अर्थ यह—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अर्बुद, वृंद, खर्व; निखर्व, शंख, पद्म, सागर, अंत्य, मध्य, परार्द्ध इन एकादिक संख्यावोंके मध्यविषे पूर्व पूर्व संख्याकूं दश दश गुणा करणेतैं उत्तर उत्तर संख्याका स्वरूप सिद्ध होवै है । जैसे एककूं दश गुणा करणेतैं दश होवै हैं । और ता दशकूं दशगुणा करणेतैं शत होवै है । और ता शतकूं दशगुणा करणेतैं सहस्र होवै है । और ता सहस्रकूं दशगुणा करणेतैं अयुत होवै है । और ता अयुतकूं दश-गुणा करणेतैं लक्ष होवै है । और ता लक्षकूं दशगुणा करणेतैं नियुत होवै है । और ता नियतकूं दशगुणा करणेतैं कोटि होवै है । और ता कोटिकूं दशगुणा करणेतैं अर्बुद होवै है । और ता अर्बुदकूं दशगुणा करणेतैं वृंद होवै है । और ता वृंदकूं दशगुणा करणेतैं खर्व होवै है । और ता खर्वकूं दशगुणा करणेतैं निखर्व होवै है । और ता निखर्वकूं दशगुणा करणेतैं शंख होवै है । और ता शंखकूं दशगुणा करणेतैं पद्म होवै है ।और ता पद्मकूं दशगुणा करणेतैं सागर होवै है । और ता सागरकूं दशगुणा करणेतैं अंत्य होवै है । और ता अंत्यकूं दशगुणा करणेतैं मध्य होवै है । और ता मध्यकूं दशगुणा करणेतैं परार्द्ध होवै है । तहां एकतैं आदिलेके परार्द्धपर्यंत संख्याके लिखनेका यह क्रम है ॥ एक १, दश १०, शत १००, सहस्र १०००, अयुत १००००; लक्ष १०००००, नियुत १००००००, कोटि १०० ०००००, अर्बुद १००००००००, वृंद १००००००००० खर्व १०००-०००००००, निखर्व १०००००००००००, शंख १ ०००००००००००, पद्म १००००००००००००००, सागर १०००००००००००००००, अन्त्य १००००००००००००००००, मध्य १०००००००००००००००००, परार्द्ध १००-०००००००००००००००, इति । किंवा सो उक्त संख्यागुण एकत्व १, अनेकत्व २, इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां एकत्व संख्यातैं भिन्न संख्याका नाम अनेकत्व है । सा अनेकत्व संख्या तौ पूर्व उक्त रीतिसैं द्वित्व त्रित्वतैं आदि लैके परार्द्धपर्यंत भेद करिकैं नानाप्रकारकी होवै है और सा अनेकत्वसंख्या नित्य द्रव्योंविषे तथा अनित्य-द्रव्योंविषे सर्वत्र अनित्य हीं होवै है । कहां भी नित्य होती नहीं ॥

एकत्वसंख्याके भेद तथा कारण—और सा एकत्वसंख्या तौं नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां नित्य द्रव्योंविषे तौं सा एकत्वसंख्या नित्य होवै है। अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि द्रव्योंके परमाणवोंविषे तथा आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन इन पांचद्रव्योंविषे सा एकत्व संख्या नित्य होवै है और अनित्यद्रव्योंविषे सा एकत्वसंख्या अनित्य होवै है अर्थात् द्व्यणुकत्र्यणुकादिक कार्यद्रव्यरूप पृथिवीजलतेज वायुविषे सा एकत्वसंख्या अनित्य होवै है और सा अनित्य एकत्वसंख्या ता आश्रय-द्रव्यकी उत्पत्तितैं द्वितीयक्षणविषे उत्पन्न होवै है और ता आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं नाश होवै है। तहां जिस जिस अनित्य द्रव्यविषे जा जा एकत्वसंख्या रहे है तिस तिस एकत्व संख्याका सो सो अनित्य द्रव्य तौं समवायिकारण होवै है और तिस तिस अनित्यद्रव्यके अवयवोंविषे रही हूई जा एकत्वसंख्या है सा एकत्वसंख्या तिस तिस अनित्यद्रव्यगत एकत्वसंख्याका असमवायिकारण होवै है और अदृष्ट ईश्वरादिक ता एकत्वसंख्याके निमित्तकारण होवै हैं। जैसे घटरूप अनित्यद्रव्यविषे रही हूई जा एकत्वसंख्या है ता एकत्वसंख्याका सो घट तौं समवायिकारण होवै है और ता घटके अवयवरूप कपालोंविषे रही हूई एकत्वसंख्या असमवायिकारण होवै है और अदृष्टईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं। इस प्रकार द्व्यणुकादिक-अनित्यद्रव्योंविषे वृत्ति सा एकत्वसंख्या अनित्य हीं होवै है इति॥

अनेकत्व संख्या तथा स्थान—और सा पूर्व उक्त द्वित्वत्रित्वतैं आदि लेकै परार्द्धपर्यंत अनेकत्व संख्या तौं अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य होणेतैं तथा ता अपेक्षाबुद्धिके नाश करिकै नाश होणेतैं सर्वत्र अनित्य हीं होवै है अर्थात् परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंविषे तथा द्व्यणुकत्र्यणु-कादिक अनित्यद्रव्योंविषे सा अनेकत्वसंख्या अनित्य हीं होवै है इति। और सा द्वित्व-त्रित्वादिक अनेकत्वसंख्या अनेकद्रव्योंके आश्रित हीं रहे है। एकद्रव्यके आश्रित रहती नहीं। जैसे दो घटोंविषे स्थित द्वित्वसंख्या तिन दो घटोंके आश्रित हीं रहे है और तीन घटोंविषे स्थित त्रित्वसंख्या तिन तीन घटोंके आश्रित हीं रहे है प्रत्येक घटके आश्रित रहती नहीं॥

उसका पर्याप्तिनामा सम्बन्ध—यद्यपि सा द्वित्व त्रित्वादिक अनेकत्व संख्या समवायसम्बन्ध करिकै ता प्रत्येक घटविषे भी रहे है। तथापि 'एको, द्वौ' अर्थ यह—एकत्वसंख्याविशिष्ट-द्रव्य द्वित्वसंख्यावाला है या प्रकारकी प्रतीति लोकविषे होती नहीं और 'एको न द्वौ' अर्थ यह—एकत्वसंख्यावाला द्रव्य द्वित्वसंख्यावाला नहीं है या प्रकारकी प्रतीति लोकविषे होवै है। यातैं ता द्वित्वादिक अनेकत्वसंख्याका पर्याप्तिनामा कोई सम्बन्धविशेष तिन अनेक-द्रव्योंविषे अंगीकार कऱ्या जावै है। जैसे दो घटोंविषे स्थित द्वित्वसंख्या ता पर्याप्तिसंबंध करिकै तिन दो घटोंविषे हीं रहे है। तथा तीन घटोंविषे स्थित त्रित्वसंख्या ता पर्याप्तिसम्बन्ध करिकै तिन तीन घटोंविषे हीं रहे है ता प्रत्येकघटविषे ता पर्याप्तिसम्बन्ध करिकै सा द्वित्व-

त्रित्वादिक अनेकत्वसंख्या रहती नहीं । या कारणतैं हीं 'एको, द्वौ' या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होती नहीं और 'एको न द्वौ' या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है । जो कदाचित् ता द्वित्व त्रित्वादिक अनेकत्वसंख्याका सो पर्याप्तिसम्बन्ध तिन अनेकद्रव्योंविषे नहीं अंगीकार करिये तौं ता द्वित्वादिक संख्याकूं समवायसंबंध करिकै ता प्रत्येकद्रव्यविषे वृत्ति होणेतैं 'एको द्वौ' या प्रकारकी प्रतीति अवश्य होणी चाहिये तथा 'एको न द्वौ' या प्रकारकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये । ईहां पर्याप्तिनाम स्वरूपसंबंधका है । तहां प्रतियोगीरूप वस्तुका वा अनुयोगीरूप वस्तुका जो स्वरूप है सो स्वरूप हीं संबंधरूप होवै, ताका नाम स्वरूपसंबंध है । जैसे दो घटोंविषे स्थित द्वित्वसंख्याका स्वरूप हीं तिन दो घटोंविषे पर्याप्तिनामा संबंध है । ऐसे त्रित्वादिक संख्याका भी जानिलेणा इति ॥

अपेक्षाबुद्धिका स्वरूप—अब जिस अपेक्षा बुद्धि करिकै द्वित्वादिक संख्याकी उत्पत्ति होवै है तथा जिस अपेक्षाबुद्धिके नाश करिकै ता द्वित्वादिक संख्याका नाश होवै है ता अपेक्षा बुद्धिका स्वरूप वर्णन करे हैं । तहां **अनेकैकत्वविषयिणी बुद्धिः अपेक्षाबुद्धिः** । अर्थ यह—अनेक एकत्वोंकूं विषय करणेहारी जा बुद्धि है ताका नाम अपेक्षाबुद्धि है । जैसे 'अयमेकः अयमेकः' यह बुद्धि दो एकत्वोंकूं विषय करे है और 'अयमेकः, अयमेकः, अयमेकः' यह बुद्धि तीन एकत्वोंकूं विषय करे है । यातैं अनेक एकत्वविषयक होणेतैं सा बुद्धि अपेक्षाबुद्धि कही जावै है, तहां दो एकत्वोंकूं विषय करणेहारी अपेक्षाबुद्धितैं तौं द्वित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है, और तीन एकत्वोंकूं विषय करणेहारी अपेक्षाबुद्धितैं त्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है । इस प्रकारकी रीति चतुष्टत्व पंचत्वादिक संख्याकी उत्पत्तिविषे भी जानिलेणी इति ।

उससे अनेकत्वसंख्याकी उत्पत्ति तथा नाशका क्रम—अब ता अपेक्षाबुद्धितैं द्वित्वादिक संख्याके उत्पत्तिका तथा ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं ता द्वित्वादिक संख्याके नाशका क्रम कथन करे हैं । तहां दो घटोंके साथि चक्षुआदिक इंद्रियके संबंधहूएतैं अनंतर 'अयमेको घटः अयमेको घटः' या प्रकारकी दो एकत्वोंकूं विषय करणेहारी अपेक्षाबुद्धि प्रथमक्षणविषे होवै है ॥ १ ॥ और द्वितीयक्षणविषे तिन दोनों घटोंविषे द्वित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है ता द्वित्वसंख्याका ते दोनों घट तौं समवायिकारण होवै हैं । और तिन दोनों घटोंविषे स्थित दो एकत्वसंख्या असमवायिकारण होवै हैं, और सा अपेक्षाबुद्धि निमित्तकारण होवै है ॥ २ ॥ और तृतीय क्षणविषे विशिष्टबुद्धिका कारणभूत विशेषणज्ञानरूप 'द्वित्वद्वित्वत्वे' या प्रकारका द्वित्वत्वधर्म विषयक निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है ॥ ३ ॥ और चतुर्थक्षणविषे ता निर्विकल्पक प्रत्यक्षरूप विशेषणज्ञान करिकै ता द्वित्वत्वधर्मविशिष्ट द्वित्वका 'इदं द्वित्वम्' या प्रकारका सविकल्पक प्रत्यक्षरूप विशिष्टज्ञान होवै है तथा उक्त निर्विकल्पक प्रत्यक्ष करिकै ता अपेक्षा बुद्धिका नाश होवै है ॥ ४ ॥ और पंचमक्षणविषे 'द्वौ घटौ' या प्रकारका विशिष्टवैशिष्ट्या-

वगाही प्रत्यक्षज्ञान होवै है तथा ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं ता द्वित्वका नाश होवै है ॥९॥ तहां एक विशिष्ट पदार्थविषे दूसरे विशिष्टपदार्थके संबंधकूं विषय करणेहारा जो ज्ञान है ताका नाम विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही ज्ञान है । जैसे घटत्वधर्मविशिष्ट घटपदार्थविषे द्वित्वत्वधर्मविशिष्ट द्वित्व-पदार्थके संबंधकूं विषय करणेहारा 'द्वौ घटौ' यह उक्त ज्ञान विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही ज्ञान कह्या जावै है । ता विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही ज्ञानविषे विशेषणतावच्छेदक धर्मप्रकारकज्ञान कारण होवै है । जैसे 'द्वौ घटौ' या प्रकारके विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही ज्ञानविषे ते दो घट तौ विशेष्य हैं और सा द्वित्वसंख्या विशेषण है, ता घटनिष्ठविशेष्यतानिरूपित जा द्वित्वनिष्ठविशेषणता है, सा विशेषणता द्वित्वत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न है । यातैं ता द्वित्वत्वधर्म प्रकारक द्वित्वविशे-ष्यक ऐसा जो 'इदं द्वित्वम्' यह विशिष्टज्ञान है सो विशेषणतावच्छेदक धर्मप्रकारक विशिष्ट ज्ञान ता उक्त विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही ज्ञानविषे कारण होवै है और जो जो विशिष्टज्ञान होवै ह सो सो तिस तिस विशेषणके ज्ञान करिकै हीं जन्य होवै है । ता विशेषणके ज्ञानतैं विना सो विशिष्टज्ञान होता नहीं । जैसे द्वित्वत्वधर्मविशिष्ट द्वित्वकूं विषय करणेहारा 'इदं द्वित्वं' यह उक्तविशिष्टज्ञान ता द्वित्वत्वधर्मके निर्विकल्पक प्रत्यक्षज्ञान करिकै जन्य होवै है । और जो जो कारण होवै है सो सो आपणे आपणे कार्यके पूर्वक्षणवर्त्ति हीं होवै है । यातैं प्रथमक्षणविषे अपेक्षाबुद्धिकी उत्पत्ति, द्वितीयक्षणविषे द्वित्वकी उत्पत्ति, तृतीयक्षणविषे द्वित्वधर्म-विषयक 'द्वित्वद्वित्वत्वे' या प्रकारके निर्विकल्पक प्रत्यक्षरूप विशेषण ज्ञानकी उत्पत्ति, चतुर्थक्षणविषे ता विशेषणज्ञान करिकै 'इदं द्वित्वं' या प्रकारके विशिष्ट प्रत्यक्षज्ञानकी उत्पत्ति, पंचमक्षणविषे ता विशिष्टज्ञान करिकै 'द्वौ घटौ' या प्रकारके विशिष्टवैशि-ष्ट्यावगाही प्रत्यक्षकी उत्पत्ति, यह पूर्व उक्त क्रम संभवै है इति ॥

**शंका**–ता द्वित्वत्व विषयक निर्विकल्पक प्रत्यक्ष करिकै जो अपेक्षा बुद्धिका नाश मानोंगे तौं सा अपेक्षा बुद्धि तीन क्षणपर्यंत स्थायी होवैंगी सो अत्यन्त विरुद्ध है । काहेतैं ? विभु द्रव्यके जे योग्यविशेष गुण हैं तिन विशेष गुणोंका स्वउत्तरवर्त्ति तथा स्वसमानाधिकारण ऐसे योग्य-विशेष गुणों करिकै नाश होवै है । यह न्यायशास्त्रकारोंका नियम है, ता नियम करिकै तिन विभुद्रव्यके विशेषगुणोंविषे दो क्षणपर्यंत स्थायीपणा हीं सिद्ध होवै है । और सा अपेक्षाबुद्धि भी विभु आत्माका योग्य विशेषगुण है, यातैं सा अपेक्षाबुद्धि भी ता द्वित्वकी उत्पत्ति क्षण-विषे उत्पन्न हूए स्मरणज्ञानादिक योग्य विशेषगुण करिकै तृतीयक्षणविषे अवश्य नष्ट होवैंगी । यातैं दूसरे शब्दबुद्धि आदिक योग्य विशेष गुणोंकी न्यांई ता अपेक्षा बुद्धिकूं भी दो क्षणपर्यंत हीं स्थायी मान्या चाहिये । **समाधान**–यद्यपि ता उक्त नियमके बलतैं तिन ज्ञानादिकोंकूं दो क्षण पर्यंत स्थायीपणा ही सिद्ध होवै है । तथापि ता द्वित्वकी उत्पत्तिक्षणविषे ता विभुआत्मा विषे कोई भी योग्यविशेष गुण उत्पन्न होता नहीं यातैं ता अपेक्षाबुद्धिविषे तीन क्षणपर्यंत

स्थायीपणा हीं कल्पना कऱ्या जावै है । किंवा ता द्वित्वकी उत्पत्तिक्षणविषे जो कदाचित् ता विभुआत्माविषे किसी योग्यविशेष गुणकी उत्पत्ति भी अंगीकार करिये तौं भी सो योग्य विशेषगुण ता अपेक्षाबुद्धिका नाश करता नहीं, किंतु ता द्वित्वकी उत्पत्तिक्षणतैं उत्तरक्षणविषे उत्पन्न हूआ सो द्वित्वका निर्विकल्पक प्रत्यक्ष हीं ता अपेक्षाबुद्धिका नाश करे है । यातैं सा अपेक्षाबुद्धि तीन क्षणपर्यंत स्थायी हीं मानी जावै हैं । किंवा जो कदाचित् ता अपेक्षाबुद्धिकूं तीन क्षणपर्यंत स्थायी नहीं मानिये, तौं ता द्वित्वकी उत्पत्तिक्षणविषे उत्पन्न हूए किसी स्मरण ज्ञानादिक विशेष गुण करिकै ता द्वित्वके निर्विकल्पक प्रत्यक्ष क्षणविषे हीं ता अपेक्षाबुद्धिका नाश होवैंगा और ता अपेक्षा बुद्धिका नाश हीं ता द्वित्वका नाशक है । यातैं जिस क्षणविषे ता द्वित्वके सविकल्पक प्रत्यक्ष होणा है तिस क्षणविषे ता द्वित्वका हीं नाश होवैंगा ता द्वित्वका नाशहूए 'इदं द्वित्वम्' या प्रकारका ता द्वित्वका सविकल्पक प्रत्यक्ष हीं नहीं होवैंगा । काहेतैं ? चक्षुआदिक इंद्रियों करिकै विद्यमानवस्तुका हीं लौकिक प्रत्यक्ष होवै है ? अविद्यमान वस्तुका सो लौकिक प्रत्यक्ष होवै नहीं, या कारणतैं हीं शास्त्रकारोंनैं यह नियम कथन कऱ्या है। **सम्बद्धं वर्त्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिना** । अर्थ यह—चक्षुआदिक इंद्रियोंनैं स्वसम्बन्धवाले तथा वर्त्तमान ऐसे वस्तुकूं हीं ग्रहण करीता है यातैं ता निर्विकल्पक प्रत्यक्षके उत्तरक्षणविषे ता द्वित्वरूप विषयके अभावतैं ता द्वित्वका 'इदं दित्वम्' या प्रकारका सो सविकल्पक प्रत्यक्ष होवैंगा नहीं, ता सविकल्पक प्रत्यक्षके अभावहूए 'द्वौ घटौ' या प्रकारका विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहीं प्रत्यक्ष भी होवैंगा नहीं, सो अत्यन्त विरुद्ध है । यातैं पूर्व उक्त रीतिसे ता अपेक्षाबुद्धिकूं तीन क्षणपर्यंत स्थायी हीं मान्या चाहिये इति । **शङ्का**—ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं जो ता द्वित्वका नाश नहीं मानिये तौं क्या अनिष्ट होवै है ? **समाधान**—ता अपेक्षा बुद्धिके नाशतैं जो ता द्वित्वका नाश नहीं अंगीकार करिये तौं ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं अनन्तर भी ता द्वित्वका प्रत्यक्ष होणा चाहिये । काहेतैं ? गुणके नाशविषे आश्रयरूप द्रव्यका नाश वा विरोधी गुणान्तर यह दोनों कारण होवै हैं ते दोनों कारण ता द्वित्वके नाशविषे हैं नहीं और ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं अनंतर ता द्वित्वका प्रत्यक्ष होता नहीं, यातैं ता अपेक्षाबुद्धिरूप निमित्तकारणके नाशतैं हीं ता द्वित्वका नाश मान्या चाहिये । **शंका**—ता अपेक्षाबुद्धिके अभावकालविषे ता द्वित्वके प्रत्यक्षकी आपत्तिके निवृत्त करणे वासतै ता द्वित्वकूं अपेक्षाबुद्धिजन्य मानणा तथा ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं ता द्वित्वका नाश मानणा असंगत है । काहेतैं ? ता अपेक्षाबुद्धिकूं जो ता द्वित्वके प्रत्यक्षप्रति कारण मानिये तौं भी ता अपेक्षाबुद्धिके अभावकालविषे ता द्वित्वके प्रत्यक्षकी आपत्ति निवृत्त होइ सके है, ता द्वित्वप्रत्यक्षकी आपत्तिके निवृत्त करणे वासतै ता द्वित्वकूं अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य मानणा निष्फल है । यातैं सा अपेक्षाबुद्धि ता द्वित्वके प्रत्यक्षका हीं कारण है ता द्वित्वका कारण नहीं है । **समाधान**—ता अपेक्षाबुद्धिकूं जो

द्वित्वके प्रत्यक्षका कारण मानिये तौं ता अपेक्षाबुद्धिकी कार्यताका अवच्छेदक द्वित्वप्रत्यक्षत्व होवै है और ता अपेक्षाबुद्धिकूं जो द्वित्वका कारण मानिये तौं ता अपेक्षाबुद्धिकी कार्यताका अवच्छेदक द्वित्वत्व होवै है । तहां द्वित्वप्रत्यक्षत्वरूप उपाधिकी अपेक्षा करिकै द्वित्वत्वजातिकूं ता कार्यताका अवच्छेदक माननेविषे लाघव है । यातैं ता अपेक्षाबुद्धिकूं ता द्वित्वके प्रति हीं कारणता मानणा उचित है इति । शंका—ता अपेक्षाबुद्धिकूं द्वित्वत्रित्वादिक संख्याकी कारणता संभवती नहीं । काहेतैं ? पृथिवी आदिक च्यारि भूतोंके परमाणु तथा द्व्यणुक अस्मदादिक जीवोंके प्रत्यक्षज्ञानके विषय हैं नहीं । यातैं तिन परमाणुवोंविषे तथा तिन द्व्यणुकोंविषे अस्मदादिक जीवोंकी ' अयमेकः परमाणुः । अयमेकः परमाणुः । अयमेको द्व्यणुकः । अयमेको द्व्यणुकः । अयमेकोद्व्यणुकः ' या प्रकारकी अपेक्षाबुद्धि संभवती नहीं। यातैं तिन दो परमाणुवोंविषे ता द्वित्वसंख्याकी उत्पत्ति नहीं होवैंगी । तथा तिन तीन द्व्यणुकों विषे ता त्रित्व संख्याकी उत्पत्ति नहीं होवैगी । तहां तिन दो परमाणुवोंविषे ता द्वित्वसंख्याकी उत्पत्ति तथा तिन तीन द्व्यणुकोंविषे ता त्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति मत होवो या प्रकारकी जो इष्टापत्ति करो तौं ता द्व्यणुकविषे मध्यमअणुत्व परिमाणकी उत्पत्ति तथा त्र्यणुकविषे अपकृष्ट मध्यम महत्त्व परिमाणकी उत्पत्ति नहीं होवैंगी । काहेतैं ? जो जो भावकार्य होवै है सो सो समवायिकारण असमवायिकारण निमित्तकारण इन तीन कारणों करिकै हीं जन्य होवै है । तिन तीन कारणोंतैं विना किसी भी भावकार्यकी उत्पत्ति होती नहीं । सा भावकार्यरूपता ता द्व्यणुकके परिमाणविषे तथा त्र्यणुकके परिमाणविषे भी है । यातैं सो द्व्यणुकका परिमाण तथा सो त्र्यणुकका परिमाण भी किसी असमवायिकारण करिकै अवश्य जन्य होवैंगा । तहां जैसे घटादिक अवयवीयोंके परिमाणविषे कपालादिक अवयवोंके परिमाणकूं असमवायिकारणता होवै है तैसे तिन परमाणुवोंके परिमाणकूं ता द्व्यणुकके परिमाणकी तथा तिन द्व्यणुकोंके परिमाणकूं ता त्र्यणुकके परिमाणकी असमवायिकारणता संभवती नहीं । काहेतैं ? ता परिमाणकूं आपणे समान जातिवाले तथा आपणेतैं उत्कृष्ट ऐसे परिमाणकी हीं जनकता होवै है। जैसे कपालोंका महत्त्वपरिमाण महत्त्वत्वरूप करिकै आपणे समान जातिवाले तथा आपणेतैं उत्कृष्ट ऐसे घटके महत्त्वपरिमाणका जनक होवै है । तहां तिन परमाणुवोंके अणुपरिमाणकूं जो ता द्व्यणुकके परिमाणका असमवायिकारण मानिये तौं सो द्व्यणुकका परिमाण अणुतर होवैंगा । और ता द्व्यणुकके परिमाणकूं जो द्व्यणुकके परिमाणका असमवायिकारण मानिये तौं सो त्र्यणुकका परिमाण अणुतम होवैंगा । ता करिकै ता त्र्यणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष हीं नहीं होवैंगा । जिस कारणतैं ता चाक्षुषप्रत्यक्षविषे महत्त्वसमानाधिकरण उद्भूतरूपकूं हीं कारणता होवै है । ता महत्त्वतैं विना कोई प्रकारका भी प्रत्यक्ष होता नहीं और ता त्र्यणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष सर्वलोकोंकूं अनुभव सिद्ध है यातैं सो द्व्यणुकका

परिमाण तथा त्र्यणुकका परिमाण ता परमाणुद्व्यणुकरूप अवयवोंके परिमाण करिकै जन्य नहीं है। किंतु तिन दो परमाणुनिष्ठ द्वित्वसंख्या तौं ता द्व्यणुकके परिमाणका असमवायिकारण है। और तिन तीन द्व्यणुकोंनिष्ठ त्रित्वसंख्या ता त्र्यणुकके परिमाणका असमवायिकारण है। यह अवश्य मानणा होवैंगा। तहां ता दो परमाणुनिष्ठ द्वित्वसंख्याके प्रति तथा ता तीन द्व्यणुकोंनिष्ठ त्रित्वसंख्याके प्रति ता अपेक्षाबुद्धिकूं अकारणता होणेतैं किसी भी द्वित्वत्रित्वादिक संख्याके प्रति ता अपेक्षाबुद्धिकूं कारणता सम्भवती नहीं। **समाधान**—अस्मदादिक पुरुषोंकूं यद्यपि तिन परमाणुवोंका प्रत्यक्ष होता नहीं तथापि योगीपुरुषोंकूं तिन परमाणुवोंका भी प्रत्यक्ष होवै है। यातैं तिन योगीपुरुषोंकी अपेक्षाबुद्धि करिकै हीं तिन दो परमाणुवोंविषे द्वित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है तथा तिन तीन द्व्यणुकोंविषे त्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है। और तिन योगीपुरुषोंकी अपेक्षाबुद्धिके नाश करिकै हीं ता द्वित्वत्रित्वसंख्याका नाश होवै है। **शङ्का**—जगतकी स्थितिकालविषे तिन योगीपुरुषोंकूं विद्यमान होणेतैं यद्यपि तिन योगीपुरुषोंकी अपेक्षाबुद्धि करिकै तिन दो परमाणुवोंविषे द्वित्वसंख्याकी उत्पत्ति तथा तिन तीन द्व्यणुकोंविषे त्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति सम्भवै है। तथापि सृष्टिके आदिकालविषे ते योगीपुरुष हैं नहीं। यातैं ता सृष्टिके आदिकालविषे तिन परमाणुद्व्यणुकोंविषे ता द्वित्वत्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति नहीं होवैंगी। **समाधान**—ता सृष्टिके आदिकालविषे तिन योगीपुरुषोंके अभावहूए भी ईश्वर विद्यमान है और ता ईश्वरकूं तिन परमाणुद्व्यणुकादिक सर्वपदार्थोंका प्रत्यक्ष होवै है। यातैं ता सृष्टिके आदिकालविषे ता ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धि करिकै हीं तिन परमाणुद्व्यणुकोंविषे ता द्वित्वत्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है। **शङ्का**—सृष्टिके आदिकालविषे तिन परमाणुद्व्यणुकोंविषे ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धि करिकै जो ता द्वित्वत्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति मानोंगे तौं ता द्वित्वत्रित्वसंख्याका नाश नहीं होवैंगा। काहेतैं ? सा ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धि नित्य है। यातैं ताका नाश सम्भवता नहीं और अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं हीं तुमोनैं ता द्वित्वादिकसंख्याका नाश मान्या है। **समाधान**—सा ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धि क्षणविशेषकरिकै सहकृत हूई हीं तिन दो परमाणुवोंविषे ता द्वित्वका उत्पादक होवै है। ता सहकारीक्षणतैं विना सा ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धि ता द्वित्वका उत्पादक होती नहीं। जो कदाचित् ता अपेक्षाबुद्धिका सो क्षणविशेष सहकारी नहीं मानिये तौं ता सृष्टिकालतैं पूर्व प्रलयकालविषे भी ता अपेक्षाबुद्धितैं ता द्वित्वकी उत्पत्ति होणी चाहिये। सो होती नहीं। यातैं ता ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धिके नहीं नाशहूए भी ता सहकारी क्षणविशेषके नाशतैं ता द्वित्वत्रित्व संख्याका नाश सम्भवै है। **शंका**—ता सहकारी क्षणविशेषके नाशतैं हीं जो ता द्वित्वत्रित्वसंख्याका नाश मानोंगे तौं अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं हीं ता द्वित्वादिक संख्याका नाश होवै है, यह पूर्व उक्त तुमारी प्रतिज्ञा हानि होवैंगी। **समाधान**—जो कदाचित् सर्वत्र ता अपेक्षाबुद्धिके

नाशतैं हीं ता द्वित्वादिक संख्याका नाश मानिये तौं जहां ता अपेक्षाबुद्धिजन्य द्वित्वकी उत्पत्तितैं उत्तरक्षणविषे ता द्वित्वके आश्रयभूत द्रव्योंका नाश हूआ है तहां ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं विना हीं ता द्वित्वका नाश होइ जावै है। सो नहीं होणा चाहिये। यातैं सो अपेक्षा-बुद्धिका नाश जैसे ता आश्रयद्रव्यके नाशका उपलक्षण है तैसे ता सहकारीक्षणविशेषके नाशका भी उपलक्षण है। अर्थात् कोईक द्वित्वादिक संख्याका नाश तौं ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं होवै है, और कोईक द्वित्वादिक संख्याका नाश ता आश्रयद्रव्यके नाशतैं होवै है, और कोईक द्वित्वादिक संख्याका नाश ता सहकारी क्षणविशेषके नाशतैं होवै है। यातैं ता पूर्वउक्त प्रतिज्ञाकी हानि होवै नहीं इति ॥ और केईक ग्रन्थकार तौं—यह कहे हैं। जीवोंके पुण्यपापरूप अदृष्ट तैं विना कोई भी कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं। यातैं ता ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धिजन्य सा परमाणुनिष्ठ द्वित्वसंख्या ता अदृष्टके नाशतैं हीं नाश होवै है। यातैं सो अपेक्षाबुद्धिका नाश जैसे ता आश्रयद्रव्यके नाशका उपलक्षण है तैसे ता अदृष्टके नाशका भी उपलक्षण है इति ॥

और केईक ग्रंथकार—तौं यह कहे हैं कहां तौं अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं ता द्वित्वादिक संख्याका नाश मानणा, और कहां आश्रयद्रव्यके नाशतैं ता द्वित्वादिक संख्याका नाश मानणा और कहां अदृष्टके नाशतैं ता द्वित्वादिक संख्याका नाश मानणा। याकेविषे अत्यंतगौरव होवै है। यातैं लाघवतैं सर्वत्र ता अदृष्टके नाशतैं हीं ता द्वित्वादिक संख्याका नाश मानणा उचित है। ता अदृष्टके नाशतैं ता द्वित्वादिक संख्याका नाश मानणेविषे ता पूर्वउक्त नियमका संकोच करिकै ता अपेक्षाबुद्धिविषे तीनक्षणपर्यंत स्थायीपणा भी कल्पना कऱ्या जाता नहीं, किंतु जैसे दूसरे शब्दज्ञानादिक योग्यविभु विशेषगुण होणेतैं दो क्षणपर्यंत स्थायी होवै हैं। तैसे सा अपेक्षाबुद्धि भी योग्यविभुविशेषगुण होणेतैं दो क्षणपर्यंत हीं स्थायी होवै है इति ॥ और केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं। ता सृष्टिके आदिकालविषे तिन अतिइंद्रिय परमाणुद्व्यणुकों-विषे जो द्वित्वत्रित्वसंख्याकी उत्पत्ति होवै है सो ईश्वरकी अपेक्षाबुद्धि करिकै वा अस्मदादिक पुरुषोंकी अपेक्षाबुद्धि करिकै वा इस ब्रह्मांडविषे स्थित योगीपुरुषकी अपेक्षाबुद्धि करिकै होती नहीं। किंतु दूसरे ब्रह्मांडविषे स्थित योगीपुरुषकी अपेक्षाबुद्धि करिकै होवै है। और ता योगीपुरुषकी अपेक्षाबुद्धिके नाश करिकै हीं ता द्वित्वत्रित्वसंख्याका नाश होवै है। यातैं सो अपेक्षाबुद्धिका नाश केवल आश्रयद्रव्यके नाशका हीं उपलक्षण है। ता क्षणविशेषके नाशका वा अदृष्टके नाशका उपलक्षण नहीं है इति ॥

ईहां नवीननैयायिकोंका तौं यह मत है। ता उक्तअपेक्षाबुद्धि करिकै दो घटोंविषे उत्पन्न होणेहारा जो द्वित्व है ता द्वित्वका द्वित्वत्वरूप सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति करिकै पूर्व हीं इस पुरुषकूं अलौकिक प्रत्यक्षरूप अनुभव हूआ है। यातैं जिस क्षणविषे ता द्वित्वकी उत्पत्ति होवै है। तिसी क्षणविषे इस पुरुषकूं ता पूर्वअनुभवजन्य संस्कारों करिकै ता द्वित्वका द्वित्वत्व

धर्मप्रकारक स्मरण होवै है । सो द्वित्वका स्मरण हीं ता अपेक्षा बुद्धिका नाशक है । तथा 'द्वौ घटौ' या प्रकारके विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही ज्ञानका जनक है । यातैं ता द्वित्वके स्मरणतैं उत्तरक्षणविषे हीं ता अपेक्षाबुद्धिका नाश होवै है । तथा 'द्वौ घटौ' या प्रकारका विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही लौकिक प्रत्यक्ष होवै है और तिसतैं उत्तरक्षणविषे ता अपेक्षाबुद्धिके नाश करिकै ता द्वित्वका नाश होवै है।यातैं यह क्रमसिद्ध भया-प्रथमक्षणविषे ता अपेक्षाबुद्धिकी उत्पत्ति॥ १ ॥ और द्वितीयक्षणविषे ता द्वित्वकी उत्पत्ति तथा ता द्वित्वका स्मरण ज्ञान॥ २॥ और तृतीयक्षणविषे ता अपेक्षा बुद्धिका नाश तथा 'द्वौ घटौ' या प्रकारका विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही लौकिक प्रत्यक्ष ॥ ३ ॥ और चतुर्थक्षणविषे ता द्वित्वका नाश ॥ ४ ॥ इस रीतिसैं ता अपेक्षाबुद्धिकूं दो क्षणपर्यंत स्थायी मानणे करिकै भी ता द्वित्वका सो प्रत्यक्षज्ञान होइ सके है। यातैं ता द्वित्वके प्रत्यक्ष वासतै ता अपेक्षाबुद्धिकूं तीन क्षणपर्यंत स्थायी मानणा व्यर्थहै । और जो कदाचित् पूर्व उक्त रीतिसैं ता द्वित्वके प्रत्यक्ष वासतै ता अपेक्षाबुद्धिकूं तीन क्षणपर्यंत स्थायी मानोंगे तौं ता अपेक्षाबुद्धिकी न्यांई दूसरे सुख दुःख शब्द आदिक योग्य विभु विशेषगुणोंकूं भी तीन क्षणपर्यंत स्थायीपणा सिद्ध होवैंगा । काहेतैं ? प्रथमक्षणविषे ता सुखकी उत्पत्ति, और द्वितीयक्षणविषे ता सुखत्व-धर्मका निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, और तृतीयक्षणविषे ता निर्विकल्पक प्रत्यक्ष करिकै ता सुखका हीं नाश होवैंगा । ता सुखरूप विषयके अभावहूए ता तृतीयक्षणविषे 'अहं सुखी' या प्रकारका ता सुखका लौकिकप्रत्यक्ष हीं नहीं सम्भवैंगा । और 'अहं सुखी, अहं दुःखी' या प्रकारका तिन सुखदुःखादिकोंका लौकिक प्रत्यक्ष सर्व लोकोंकूं होवै है, यातैं ता प्रत्यक्ष वासतै तिन सुख दुःखादिकोंकूं भी तीन क्षणपर्यंत स्थायी मान्या चाहिये । सो तिन सुखदुःखादिकोंका तीन क्षणपर्यंत स्थायीपणा तुम प्राचीनोंकूं भी अंगीकार है नहीं, किंतु तिन सुखदुःखादिकोंका दो क्षणपर्यंत स्थायीपणा हीं तुमारेकूं अंगीकार है। तैसे ता अपेक्षा-बुद्धिकूं भी ता उक्त रीतिसैं दो क्षणपर्यंत स्थायी हीं मान्या चाहिये इति ॥

न्याय कन्दलीकार—जिस स्थलविषे सा अपेक्षाबुद्धि नियमसैं दो एकत्वोंकूं वा तीन एकत्वोंकूं वा पांच एकत्वोंकूं वा सहस्रएकत्वोंकूं विषय करे है। तिस स्थलविषे तौं ता अपेक्षाबुद्धि करिकै नियमसैं सा द्वित्वसंख्या वा त्रित्वसंख्या वा पञ्चत्वसंख्या वा सहस्रत्वसंख्या उत्पन्न होवै है परंतु जिस स्थलविषे नियमसैं तिन अनेक एकत्वोंकूं विषय करणेहारी सा अपेक्षाबुद्धि नहीं होवै है । किंतु नियमसैं विना हीं तिन अनेक एकत्वोंकूं विषय करणेहारी सा अपेक्षाद्धि होवै है । जैसे सेनाविषे तथा वनादिकोंविषे नियमसैं विना हीं तिन अनेक एकत्वोंकूं विषय करणेहारी सा अपेक्षा बुद्धि होवै है । तिस स्थलविषे कौन संख्या उत्पन्न होवै है ऐसी शंकाके प्राप्त हूए तहां कंदकलीकार तौं यह कहे है—जिन सेनावनादिकोंविषे अनियत अनेक एकत्वोंकूं विषय करणेहारी सा अपेक्षाबुद्धि होवै है । तिन सेनावनादिकोंविषे ता अपेक्षाबुद्धि करिकै

त्रित्व, पंचत्व, सहस्रत्व आदिक नियत संख्या उत्पन्न होती नहीं किंतु ता त्रित्वादिक संख्यातैं भिन्न एक बहुतत्व संख्या उत्पन्न होवै हैं इति ॥

और उदयनाचार्य—तौं यह कहे हैं—ता त्रित्वपञ्चत्वसहस्रत्वादिक संख्यातैं सा बहुत्वसंख्या भिन्न नहीं है, किंतु सा बहुत्वसंख्या त्रित्वादिसंख्यारूप हीं है। अर्थात् त्रित्वसंख्यातैं आदिलैके परार्द्धपर्यंत सर्वसंख्याविषे सो बहुत्वपणा रहे है । यातैं सा बहुत्वत्वजाति ता त्रित्वत्वादिक जातिका व्यापक है और जिन सेनावनादिकोंविषे सा अनियत अनेक एकत्वोंकूं विषय करणे हारी अपेक्षा बुद्धि होवै है तिन सेनावनादिकोंविषे भी ता अपेक्षाबुद्धितैं सा त्रित्वादिक संख्या तौं उत्पन्न होवै है, परन्तु दोषके वशतैं ता त्रित्वादिक संख्याविषे त्रित्वत्वादिकोंका ज्ञान होता नहीं तहां नियत अनेक एकत्वोंके ज्ञानका जो अभाव है सो अभाव हीं तहां दोषरूप जानणा । तात्पर्य यह अनियत अनेक एकत्वोंकूं विषय करणेहारी अपेक्षा बुद्धिकूं ता त्रित्वादिक संख्याके उत्पत्तिकी कारणताके हूए भी ता त्रित्वादिक संख्याके त्रित्वत्वादिप्रकारक प्रत्यक्षविषे नियत अनेक एकत्वविषयक ज्ञानकूं हीं कारणता होवै है । ता नियत अनेक एकत्वविषयक ज्ञानतैं विना सो त्रित्वत्वादिप्रकारक प्रत्यक्ष होता नहीं । **शङ्का**—ता बहुत्वसंख्याकूं जो त्रित्वादिसंख्यारूप मानोंगे तौं जिन सेनावनादिकोंविषे ता बहुत्वका निश्चय होवै है तिन सेनावनादिकोंविषे ता त्रित्वादिक संख्याका संशय नहीं होणा चाहिये और तहां सो त्रित्वादिक संख्याका संशय सर्व लोकोंकूं अनुभव सिद्ध है । **समाधान**—समानधर्मप्रकारक निश्चय हीं ता संशयका विरोधी होवै है। अन्यधर्मप्रकारक निश्चय अन्यधर्मप्रकारक संशयका विरोधी होता नहीं । यातैं ता बहुतत्व धर्मप्रकारक निश्चयकूं ता त्रित्वत्वादिकधर्मप्रकारक संशयका विरोधीपणा हीं नहीं है। यातैं तिन सेनावनादिकोंविषे ता बहुत्वपणेके निश्चय हूए भी सो त्रित्वादिपणेका संशय संभवै है । किंवा 'इतो बहुतरेयं सेना' अर्थ यह—इस सेनातैं यह सेना बहुतर है, या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है । ता प्रतीतितैं ता बहुत्वविषे स्वसजातीयनिरूपित उत्कृष्टता प्रतीत होवै है । तहां ता बहुत्व संख्याकूं जो त्रित्वादिसंख्यारूप मानिये तौं चतुष्ट्वादिरूप बहुत्वविषे त्रित्वादिरूप स्वसजातीयनिरूपित उत्कृष्टता विद्यमान है । यातैं सा उक्तप्रतीति संभवै है । और ता बहुत्वसंख्याकूं जो ता त्रित्वादिक संख्यातैं अतिरिक्त मानिये तौं ता एकरूपबहुत्वसंख्याविषे न्यूनअधिकताके अभावतैं सा स्वसजातीयनिरूपित उत्कृष्टता संभवती नहीं, यातैं तुमारे मतविषे सा उक्त प्रतीति अनुपपन्न होवैगी । यातैं ता उक्तप्रतीतिके बलतैं ता बहुत्वसंख्याकूं त्रित्वादिसंख्यारूप हीं मान्या चाहिये इति ॥ इति संख्यानिरूपणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अथ परिमाणनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**मानव्यवहारविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत् परिमाणम्** । अर्थ यह—परिमाणव्यवहारके विषय वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जाति

वाला गुण परिमाण कह्या जावै है । तहां 'अयं अणुः अयं महान्, अयं दीर्घः, अयं ह्रस्वः' या प्रकारका जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप व्यवहार है सो प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहार यथाक्रमतैं अणुत्व, महत्त्व, दीर्घत्व, ह्रस्वत्वरूप परिमाणकूं हीं विषय करे है । यातैं सो चतुर्विधपरिमाण ता मान व्यवहारका विषय कह्या जावै है । ऐसे मान व्यवहारके विषयरूप परिमाणविषे वर्त्तणेहारी परिमाणत्वजाति है । और सा परिमाणत्वजाति गुणत्वजातिका व्याप्य भी है । ऐसी परिमाणत्वजातिवाला सो च्यारि प्रकारका परिमाण है । यातैं यह उक्त परिमाणका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमत् परिमाणम्' इतनामात्र हीं जो ता परिमाणका लक्षण करते । ता लक्षणविषे 'मानव्यवहारविषयवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो परिमाण गुणत्वजातिका व्याप्य परिमाणत्वजातिवाला है तैसे ते रूपादिक गुण भी ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंवाले हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'मानव्यवहारविषयवृत्ति' यह पद कथन कर्‍या है । तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता मानव्यवहारके विषयभूत परिमाणविषे वर्त्ततीयां नहीं । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'मानव्यवहारविषयवृत्तिजातिमत् परिमाणम्' इतनामात्र हीं जो ता परिमाणका लक्षण करते । ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ता परिमाणविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कर्‍या है । तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है । यातैं ता गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा ता सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता परिमाणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

रहनेके स्थल तथा भेद—इस प्रकारके उक्तलक्षण करिकै लक्षित सो परिमाणगुण पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है । और सो परिमाण गुण अणुत्व १, महत्त्व २, दीर्घत्व ३, ह्रस्वत्व ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै है । और सो च्यारि प्रकारका हीं परिमाण परम १, मध्यम २ इस भेद करिकै पुनः दो दो प्रकारका होवै है । अर्थात् परम अणुत्व, मध्यम अणुत्व, परममहत्त्व, मध्यममहत्त्व, परमदीर्घत्व, मध्यमदीर्घत्व, परमह्रस्वत्व, मध्यमह्रस्वत्व इति । तहां पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि भूतोंके परमाणुवोंविषे तथा मनविषे तौं परम-अणुत्वपरिमाण तथा परमह्रस्वत्व परिमाण रहे है । और तिन पृथिवी आदिक चार भूतोंके द्व्यणुकोंविषे तौं मध्यम अणुत्वपरिमाण तथा मध्यमह्रस्वत्व परिमाण रहे है । और आकाश काल दिशा आत्मा इन च्यारिद्रव्योंविषे तौं परममहत्त्वपरिमाण तथा परमदीर्घत्व परिमाण रहे है ।

और पृथिवी आदिक च्यारि भूतोंके त्र्यणुकतैं आदिलैके घटपटादिक सर्वकार्यद्रव्योंविषे तौ मध्यम महत्त्वपरिमाण तथा मध्यमदीर्घत्व परिमाण रहे है इति ॥

मनोभिन्न मोती आदि द्रव्योंमें अणुत्व ह्रस्वत्वकी शंका—सो अणुत्व ह्रस्वत्व परिमाण जो कदाचित् परमाणु, मन, द्व्यणुक इन तीनोंविषे हीं रहता होवै, तिन तीनोंतैं भिन्न किसी द्रव्यविषे नहीं रहता होवै तौं इस मोतीतैं यह मोती अणु है या प्रकारका अणुत्वव्यवहार ता मोतीविषे नहीं होणा चाहिये । तथा इस ध्वजातैं यह व्यजन ह्रस्व है या प्रकारका ह्रस्वत्वव्यवहार ता व्यजनविषे नहीं होणा चाहिये । जिस कारणतैं तुमारे मतविषे ता मोतीविषे सो अणुत्व परिमाण है नहीं तथा ता व्यजनविषे सो ह्रस्वत्वपरिमाण है नहीं, और सो उक्तव्यवहार तौं लोकविषे प्रसिद्ध होवै है । यातैं ता लोकव्यवहारके बलतैं परमाणु मन द्व्यणुक इन तीनोंतैं भिन्न तिन मोतीव्यजनादिक द्रव्योंविषे भी सो अणुत्व ह्रस्वत्व परिमाण अंगीकार कन्या चाहिये । अपकृष्ट द्रव्योंको लेकर अणुत्वह्रस्वत्वव्यवहारकी सिद्धिद्वारा समाधान—ता मोतीविषे जो अणुत्वव्यवहार होवै है सो अणुत्वपरिमाणकूं लैके होता नहीं । किंतु ता मोतीविषे तिस दूसरे मोतीकी अपेक्षा करिकै अपकृष्टमहत्त्व रहे है । ता अपकृष्टमहत्त्वकूं लैके हीं ता मोतीविषे सो अणुत्व व्यवहार होवै है । यातैं सो अणुत्वव्यवहार 'सिंहो देवदत्तः' इस व्यवहारकी न्यांई गौण है अर्थात् जैसे 'सिंहो देवदत्तः' इस प्रकारके गौणव्यवहारतैं देवदत्तनामा पुरुषविषे सिंहपणा सिद्ध होता नहीं । तैसे ता उक्त व्यवहारतैं ता मोतीविषे सो अणुपणा सिद्ध होता नहीं । इस प्रकार ता व्यजनविषे जो ह्रस्वत्वव्यवहार होवै है सो भी ह्रस्वत्वपरिमाणकूं लैके होता नहीं । किंतु ता व्यजनविषे ता ध्वजाकी अपेक्षा करिकै अपकृष्टदीर्घत्व रहे है ता अपकृष्ट दीर्घत्वकूं लैके हीं ता व्यजनविषे सो ह्रस्वत्वव्यवहार होवै है । यातैं सो ह्रस्वत्वव्यवहार भी 'सिंहो देवदत्तः' इस व्यवहारकी न्यांई गौण है ता गौणव्यवहारतैं ता व्यजनविषे सो ह्रस्वत्वपरिमाण सिद्ध होवै नहीं इति ॥

ह्रस्वत्व दीर्घत्वपर शंका—ता अणुत्वपरिमाणतैं सो ह्रस्वत्वपरिमाण पृथक् नहीं है किंतु सो अणुत्वपरिमाण हीं ह्रस्वत्वपरिमाणरूप है तथा ता महत्त्वपरिमाणतैं सो दीर्घत्वपरिमाण पृथक् नहीं है । किंतु सो महत्त्वपरिमाण हीं दीर्घत्वपरिमाणरूप है । यातैं अणुत्व महत्त्व इस भेद करिकै सो परिमाण दो प्रकारका ही सिद्ध होवै है । सो पूर्वउक्त च्यारिप्रकारका परिमाण सिद्ध होता नहीं । इसका समाधान—जिस द्रव्यकी अपेक्षा करिकै जो द्रव्य अणुत्वरूप करिकै प्रतीत होवै है तिस द्रव्यकी अपेक्षा करिकै तिस द्रव्यविषे ह्रस्वत्वव्यवहार होता नहीं । यातैं यह जान्या जावै है सो ह्रस्वत्वपरिमाण ता अणुत्वपरिमाणतैं पृथक् है और जिस द्रव्यकी अपेक्षा करिकै जो द्रव्य महत्त्वरूप करिकै प्रतीत होवै है । तिस द्रव्यकी अपेक्षा करिकै ता द्रव्य विषे दीर्घत्व व्यवहार होता नहीं; यातैं यह जान्या जावै है—सो दीर्घत्वपरिमाण ता महत्त्वपरिमाणतैं पृथक् है । यातैं सो पूर्वउक्त च्यारि प्रकारका हीं परिमाण संभवै है इति ॥

नित्य अनित्य भेद—किंवा सो उक्त परिमाणगुण नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । तहां नित्यद्रव्योंविषे स्थित सो परिमाण नित्य कह्या जावै है अर्थात् पृथिवी आदिक च्यारि भूतोंके परमाणुवोंविषे तथा मनविषे स्थित जो परमअणुत्वपरिमाण तथा परमह्रस्वत्व परिमाण है । तथा आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारोंविषे स्थित जो परममहत्त्वपरिमाण तथा परमदीर्घत्व परिमाण है । सो परिमाण नित्य कह्या जावै है । और अनित्य द्रव्योंविषे स्थित सो परिमाण अनित्य कह्या जावै है अर्थात् पृथिवी आदिक च्यारिभूतोंके द्व्यणुकोंविषे स्थित जो मध्यम अणुत्वपरिमाण तथा मध्यम ह्रस्वत्व परिमाण है; तथा त्र्यणुकतैं आदिलैके घटपटादिक द्रव्योंविषे स्थित जो मध्यममहत्त्वपरिमाण तथा मध्यमदीर्घत्वपरिमाण है सो परिमाण अनित्य कह्या जावै है इति ॥

अनित्यपरिमाणके भेद—और सो अनित्यपरिमाण भी संख्यामात्रजन्य १, परिमाणमात्र जन्य २, प्रचयमात्रजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । अब संख्यामात्र जन्य परिमाणका—निरूपण करे हैं । तहां द्व्यणुकनिष्ठ जो मध्यमअणुत्व तथा मध्यमह्रस्वत्व परिमाण है सो परिमाण ता द्व्यणुकके आरंभक दो परमाणुवोंनिष्ठ द्वित्वसंख्या करिकै जन्य होवै है और त्र्यणुकनिष्ठ जो मध्यममहत्त्वपरिमाण है सो परिमाण ता त्र्यणुकके आरंभक तीन द्व्यणुकोंनिष्ठ त्रित्वसंख्या करिकै जन्य होवै है । यातैं सो द्व्यणुकका परिमाण तथा सो त्र्यणुकका परिमाण संख्यामात्र जन्य कह्या जावै है । अर्थात् ता परिमाणका सा संख्या हीं असमवायिकारण होवै है । शंका—जैसे घटका परिमाण कपालके परिमाण करिकै जन्य होवै है तैसे सो द्व्यणुकका परिमाण परमाणुवोंके परिमाण करिकै क्युं नहीं जन्य होवै । तथा सो त्र्यणुकका परिमाण द्व्यणुकके परिमाण करिकै क्युं नहीं जन्य होवै ? समाधान—अवयवोंका परिमाण जो अवयवीके परिमाणकूं उत्पन्न करे है सो स्वसमान-जातीय तथा स्वउत्कृष्ट ऐसे परिमाणकूं हीं उत्पन्न करे है । जैसे कपालरूप अवयवोंका महत्त्व परिमाण महत्त्वत्त्वरूप करिकै आपणे सजातीय तथा आपणेतैं उत्कृष्ट ऐसे घटरूप अवयवीके महत्त्वपरिमाणकूं उत्पन्न करे है । तहां सो द्व्यणुकका मध्यम अणुत्त्व परिमाण ता परमाणुके परम अणुत्व परिमाणकी अपेक्षा करिकै उत्कृष्ट नहीं है । और सो त्र्यणुकका महत्त्वपरिमाण ता द्व्यणुकके अणुत्वपरिभाणके सजातीय नहीं है । यद्यपि परिमाणत्व जाति करिकै सो त्र्यणुकका परिमाण ता द्व्यणुकपरिपाणके सजातीय हीं है । तथापि ईहां ता परिमाणत्वजाति करिकै सजातीयपणा विवक्षित नहीं है । किंतु ता परिमाणत्व जातिके व्याप्य जे अणुत्वत्व, महत्त्वत्व, ह्रस्वत्वत्व, दीर्घत्वत्व यह जातियां हैं तिन जातियों करिकै सो सजातीयपणा विवक्षित है । यातैं ता द्व्यणुकके परिमाणका सो परमाणुवोंका परिमाण असमवायिकारण नहीं है और ता त्र्यणुकके परिमाणका सो द्व्यणुकका परिमाण असवायि-

कारण नहीं है। जो कदाचित् ता परमाणुके परिमाण करिकै सो द्व्यणुकका परिमाण जन्य मानिये तथा ता द्व्यणुकके परिमाण करिकै सो त्र्यणुकका परिमाण जन्य मानिये तौं ता परमाणुके अणुत्व परिमाणकी अपेक्षा करिकै सो द्व्यणुकका परिमाण अणुतर होवैगा, और ता द्व्यणुकके परिमाणकी अपेक्षा करिकै सो त्र्यणुकका परिमाण अणुतम होवैगा, ता करिकै ता त्र्यणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष हीं नहीं होवैगा। ईहां तर तम यह दोनों शब्द अधिकताके वाचक हैं। तहां अणुतैं अधिक अणुका नाम अणुतर है और ता अणुतरतैं भी अधिक अणुका नाम अणुतम है। यातैं सो द्व्यणुकका परिमाण तथा सो त्र्यणुकका परिमाण परिमाण जन्य नहीं है। किंतु दो परमाणु निष्ठ द्वित्वसंख्या करिकै तौं सो द्व्यणुकका परिमाण जन्य है और तीन द्व्यणुकोंनिष्ठ त्रित्वसंख्या करिकै सो त्र्यणुकका परिमाण जन्य है इति।

अब परिमाणमात्र जन्य परिमाणका—निरूपण करे हैं। तहां च्यारि त्र्यणुकोंतैं उत्पन्न भया जो चतुरणुकरूप कार्य है ता चतुरणुकका महत्त्वपरिमाण तिन च्यारित्र्यणुकरूप अवयवोंके महत्त्वपरिमाण करिकै जन्य होवै है। अर्थात् सो त्र्यणुकोंका महत्त्वपरिमाण ता चतुरणुकके महत्त्वपरिमाणका असमवायिकारण होवै है। यातैं सो चतुरणुकका महत्त्वपरिमाण परिमाण-मात्रजन्य परिमाण कह्या जावै है। इस प्रकार पांच चतुरणुकोंतैं उत्पन्न भया जो पंचाणुकरूप कार्य है ता पंचाणुकरूप कार्यका महत्त्वपरिमाण तिन चतुरणुकरूप अवयवोंके महत्त्वपरिमाण करिकै जन्य होवै है। इस प्रकार घटरूप अवयवीका महत्त्वपरिमाण कपालरूप अवयवोंके महत्त्वपरिमाण करिकै जन्य होवै है। तथा पटरूप अवयवीका महत्त्वपरिमाण तंतुरूप अवयवोंके महत्त्वपरिमाण करिकै जन्य होवै है। यातैं सो घटपटादिकोंका महत्त्वपरिमाण भी परिमाणमात्रजन्य परिमाण कह्या जावै है इति। अब प्रचयमात्र जन्य परिमाणके—कहणे वासतै प्रथम ता प्रचयका लक्षण कहे हैं। तहां **महदवयवानां प्रशिथिलः संयोगः प्रचयः।** अर्थ यह—महत्त्वपरिमाणवाले अवयवोंका जो परस्पर शिथिलसंयोग है ताका नाम प्रचय है। जैसे तूलपिंडके अवयवोंका परस्पर शिथिलसंयोग होवै है। अर्थात् किंचित् अवयव करिकै ता संयोगके अभावहूए भी किंचित् अवयव करिकै संयोग होवै है। ता शिथिलसंयोगका नाम प्रचय है। तहां परमाणुवोंविषे तथा द्व्यणुकोंविषे महत्त्वपरिमाण रहता नहीं। यातैं तिन परमाणुवोंके संयोगविषे तथा तिन द्व्यणुकोंके संयोगविषे सो प्रचयपणा रहता नहीं। इस अर्थके बोधन करणे वासतै हीं तिन अवयवोंका 'महत्' यह विशेषण कथन कऱ्या है। ईहां केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं। ता प्रचयके लक्षणविषे 'महत्' यह पद कथन करणा व्यर्थ है। तिन परमाणुवोंके संयोगविषे तथा तिन द्व्यणुकोंके संयोगविषे ता प्रचयपणेके हूए भी कोई हानि नहीं है इति। यातैं यह सिद्ध भया। तूल पिंडादिकोंविषे जो मध्यम महत्त्वपरिमाण है। सो महत्त्वपरिमाण तिन तूलपिंडादिकोंके अवयवोंके प्रशिथिल-

संयोगरूप प्रचय करिकै जन्य होवै है अर्थात् सो प्रचय हीं ता परिमाणका असमवायि-कारण होवै है । यातैं सो तूलपिंडादिकोंका महत्त्वपरिमाण प्रचयमात्रजन्य कह्या जावै है इति ।

मात्रपदपर शंका तथा उत्तरमें संख्या आदिसे जन्यपरिमाणका निरूपण—पूर्व अनित्यपरिमाणकूं संख्यामात्र जन्य, परिमाणमात्रजन्य, प्रचयमात्रजन्य इस भेद करिकै तीन प्रकारका कह्या । तिन तीनों प्रकारोंविषे 'मात्र' यह पद व्यर्थ हीं है । काहेतैं ? जो कोई परिमाण संख्यापरिमाण दोनों करिकै जन्य होवै वा परिमाण प्रचय दोनों करिकै जन्य होवै वा संख्या परिमाण प्रचय इन तीनों करिकै जन्य होवै तौं ता परिमाणकी निवृत्ति करिकै सो मात्रपद सार्थक होवै । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब ता मात्रपदके सार्थक करणे वासतै संख्यापरिमाण दोनों जन्य परिमाणका तथा परिमाण प्रचय दोनों जन्य परिमाणका तथा संख्या परिमाण प्रचय इन तीनों जन्य परिमाणका निरूपण करे हैं। तहां ता प्रचयतैं रहित तथा महत्त्वपरिमाणवाले ऐसे तीन अवयवों करिकै आरब्ध जो अवयवी है ता अवयवीका जो महत्त्वपरिमाण है सो महत्त्वपरिमाण तिन अवयवोंनिष्ठ त्रित्व संख्या तथा महत्त्वपरिमाण दोनों करिकै जन्य होवै है । काहेतैं ? तिस प्रकारके महत्त्वपरिमाणवाले दो अवयवों करिकै आरब्ध अवयवीके महत्त्व परिमाणतैं तथा तिन अवयवोंतैं अल्प तीन अवयवों करिकै आरब्ध अवयवीके महत्त्वपरिमाणतैं सो महत्त्वपरिमाण अतिशयतावाला हीं होवै है इति । और ता प्रचयवाले तथा महत्त्व परिमाणवाले ऐसे दो अवयवों करिकै आरब्ध जो अवयवी है ता अवयवीका जो महत्त्वपरिमाण है सो महत्त्वपरिमाण परिमाण प्रचय दोनों करिकै जन्य होवै है । काहेतैं ? ता प्रचयतैं रहित तथा तिस प्रकारके महत्त्वपरिमाणवाले ऐसे दो अवयवों करिकै आरब्ध अवयवीके महत्त्वपरिमाणतैं तथा त्र्यणुकके महत्त्व परिमाणतैं सो महत्त्वपरिमाण अतिशयतावाला हीं होवै है इति । और प्रचयवाले तथा महत्त्वपरिमाणवाले ऐसे तीन अवयवों करिकै आरब्ध जो अवयवी है ता अवयवीका जो महत्त्वपरिमाण है सो महत्त्वपरिमाण संख्या, परिमाण, प्रचय इन तीनों करिकै जन्य होवै है। काहेतैं? ता प्रचयवाले तथा तिस प्रकारके महत्त्वपरिमाणवाले ऐसे दो अवयवों करिकै आरब्ध अवयवीके महत्त्वपरिमाणतैं सो महत्त्वपरिमाण अतिशयतावाला हीं होवै है । इस प्रकारके उभयजन्य परिमाणादिकोंकी व्यावृत्तिकूं बोधन करता हूआ सो मात्रपद सार्थक हीं है इति । और केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । दीर्घत्वकूं परिमाण रूपता हीं नहीं है । किंतु अवयवोंके संयोगविशेषका नाम दीर्घत्व है । और 'अयं दीर्घः' या प्रकारकी प्रतीति भी ता अवयवोंके संयोगविशेषकूं हीं विषय करे है । यातैं ता प्रतीतितैं भी ता दीर्घत्व परिमाणकी सिद्धि होइ सकै नहीं । जो कदाचित् ता प्रतीतिके बलतैं ता दीर्घत्वकूं परिमाणरूप मानिये तौं यह वर्तुल है यह चतुरस्र है या प्रकारकी प्रतीतिके बलतैं वर्तुलत्व चतुरस्रत्व आदिकोंकूं भी परिमाणान्तरता प्राप्त होवैंगी इति ॥

अनित्य परमाणके नाशका कारण—किंवा सो उक्त अनित्यपरिमाण आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं नाश होवै है । ता आश्रयनाशतैं विना अन्य किसी कारिकै नाश होता नहीं। शंका—अवयवी द्रव्यके नाशकूं स्वनिष्ठपरिमाणके नाशकी कारणता सम्भवती नहीं । काहेतैं ? ता अवयवीद्रव्यके विद्यमानहूए भी ता अवयवीद्रव्यतैं जबी तीन च्यारिपरमाणुवोंका विश्लेष होवै है । अर्थात् ता अवयवीद्रव्यतैं जबी तीन च्यारिपरमाणु निकसि जावै हैं। अथवा ता अवयवीद्रव्यविषे जबी तीन च्यारि परमाणुवोंका उपचय होवैं है अर्थात् ता अवयवीद्रव्यविषे जबी दूसरे तीन च्यारि परमाणु आइकै मिले हैं तबी सोई यह अवयवी द्रव्य है। या प्रकारकी ता अवयवी द्रव्यके एकताकूं विषय करणेहारी प्रत्यभिज्ञाके बलतैं ता अवयवीद्रव्यकी विद्यमानताके सिद्धहूए भी ता अवयवी द्रव्यविषे पूर्वपरिमाणतैं विलक्षण परिमाण प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है। और ता विलक्षणपरिमाणकी उत्पत्ति ता पूर्वपरिमाणके नाशतैं विना संभवती नहीं। किंतु ता पूर्वपरिमाणके नाशहूए हीं सो विलक्षणपरिमाण उत्पन्न होवै है । यातैं आश्रय द्रव्यके नाशतैं हीं परिमाणका नाश होवै है यह कहणा असंगत है। किंतु उक्त स्थलविषे ता आश्रयद्रव्यके विद्यमानहूए भी किंचित् अवयवोंके विश्लेष उपचयतैं ता परिमाणका नाश होइ जावै है। समाधान—ता अवयवीद्रव्यतैं तीन च्यारिपरमाणुवोंके विश्लेषहूए परमाणुसंयोगरूप असमवायिकारणके नाश करिकै द्व्यणुकरूप कार्यका नाश अवश्य होवैंगा । ता द्व्यणुकरूप समवायिकारणके नाशहूए त्र्यणुकरूप कार्यका नाश भी अवश्य होवैंगा। इस प्रकार चतुरणुक पंचाणुकादिकोंके नाशक्रम करिकै ता अवयवीद्रव्यका नाश अवश्य होवैंगा । तिसतैं अनंतर ते परिशेषतैं रहेहूए परमाणु परस्परसंयुक्त होइकै द्व्यणुक त्र्यणुकादि क्रम करिकै ता पूर्वअवयवी द्रव्यके सजातीय दूसरे अवयवी द्रव्यकी उत्पत्ति करे हैं। इस प्रकार शरीरादिक अवयवी द्रव्योंविषे यत्किंचित् अवयवोंके उपचयहूए ता अवयवसंयोगरूप असमवायिकारणका नाश अवश्य होवैंगा। ता असमवायिकारणके नाशहूए तिन शरीरादिक अवयवीयोंका नाश भी अवश्य होवैंगा । तिसतैं अनंतर ते सर्व अवयव परस्परसंयुक्त होइकै पूर्वशरीरादिक अवयवीयोंके सजातीय दूसरे शरीरादिक अवयवीयोंकूं उत्पन्न करे हैं । यातैं तिन अवयवोंके विश्लेष स्थलविषे तथा उपचयस्थलविषे भी ता अवयवी द्रव्यके नाश करिकै हीं ताके परिमाणका नाश होवै है। शङ्का—जो कदाचित् आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं ताके परिमाणका नाश होता होवै तौं पटरूप द्रव्यके नहीं नाशहूए भी दूसरे तंतुवोंके संयोगतैं ता पटविषे परिमाणकी अधिकता नहीं होणी चाहिये। और दूसरे तंतुवोंके संयोगतैं ता पटविषे परिमाणकी अधिकता प्रत्यक्ष हीं देखणेविषे आवै है । समाधान—तिस स्थलविषे भी वेमादिकोंके अभिघाताख्य संयोग करिकै क्रियाविभागकी उत्पत्तिद्वारा असमवायिकारणरूप तंतुसंयोगके नाशहूए ता पटका नाश अवश्य होवै है। तात्पर्य यह—सहस्रतंतुवों करिकै रचित पटविषे जबी

दूसरे तंतुका संयोग होवै है तबी वेमादिकोंके अभिघाताख्य संयोग करिकै तिन सहस्रतंतुवों- विषे क्रिया उत्पन्न होवै है, ता क्रियातैं तिन तंतुवोंका परस्पर विभाग होवै है, ता विभागतैं तिन तंतुवोंके संयोगका नाश होवै है। ता तंतुसंयोगरूप असमवायिकारणके नाशतैं ता सहस्रतंतुके पटका नाश होइ जावै है। तिसतैं अनंतर ते सहस्रतंतु तथा सो दूसरा तंतु परस्पर- संयुक्त होइकै पुनः दूसरे पटकी उत्पत्ति करे हैं। इस प्रकार पटके प्रारंभतैं लैके अंत्य तंतुपर्यंत तंतुतंतुके संयोग करिकै पूर्वपूर्व पटका नाश उत्तरउत्तर पटकी उत्पत्ति होती जावै है। यातैं आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं ता पटके परिमाणका नाश होवै है। या प्रकारके नियमका ता पटविषे व्यभिचार होवै नहीं, किंवा जे मीमांसक आश्रयद्रव्यके नाशमात्र करिकै परिमाणका नाश नहीं माने हैं। किंतु ता आश्रयद्रव्यके विद्यमानहूए हीं किंचित् अवयवोंके विश्लेष करिकै वा उपचय करिकै पूर्व परिमाणके नाश पूर्वक परिमाणांतरकी उत्पत्ति माने हैं। तिन मीमांसकोंतैं यह पूछा चाहिये। जिस सहस्रतंतुक पटविषे जिन दूसरे तंतुवोंके मिलणे करिकै परिमाणकी अधिकता होवै है ते दूसरे तंतु तिस सहस्रतंतुक पटके अवयव हैं अथवा नहीं हैं ? तहां जो प्रथम पक्ष अंगीकार करो तौ तिन दूसरे तंतुवोंके संयोगतैं पूर्व तिस तंतुरूप कारणके अभाव होणेतैं ता सहस्रतंतुक पटकी उत्पत्ति हीं नहीं होणी चाहिये। और ते दूसरे तंतु ता सहस्रतंतुक पटके अवयव नहीं हैं यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करो तौं ता सहस्रतंतुक पटके साथि तिन दूसरे तंतुवोंके संयोगहूए भी ता पटविषे परिमाणकी अधिकता नहीं होवैगी। जैसे ता सहस्रतंतुक पटके साथि हस्तादिक द्रव्यके संयोगहूए भी ता पटविषे परिमाणकी अधिकता होती नहीं और तिन दूसरे तंतुवोंके संयोग करिकै ता पटविषे परिमाणकी अधिकता प्रत्यक्ष प्रतीत होवै हैं। यातैं तहां दूसरे तंतुवोंके संयोग करिकै ता पूर्वपटका नाश तथा दूसरे पटकी उत्पत्ति अवश्य अंगीकार करणी होवैगी। और सोई यह पट है या प्रकारका जो प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै है सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौं ता उत्तरउत्तर पटविषे पूर्वपूर्व पटके सजातीयपणेकूं हीं विषय करे है। ता पूर्व उत्तर पटके एकताकूं विषय करता नहीं। जैसे सोई यह दीपशिखा है या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान उत्तरउत्तर दीपशिखाविषे पूर्वपूर्व दीपशिखाके सजातीयपणेकूं हीं विषय करे है। यातैं ता प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्षतैं भी ता पूर्वउत्तर पटकी एकता सिद्ध होवै है नहीं। शंका—ते पूर्वले सहस्रतन्तु हीं तिन दूसरे तन्तुवोंकी सहायतातैं ता पूर्वले सहस्रतन्तुक पटके विद्यमान हूए हीं दूसरे पटका आरम्भ करैंगे। समाधान—दो मूर्त्तद्रव्योंकी समानदेशता होती नहीं अर्थात् एक हीं अवयवोंविषे दो मूर्त्त द्रव्य समवायसंबंध करिकै रहते नहीं यातैं तिन तंतुवोंविषे दो पटोंकी स्थिति संभवती नहीं और तिन तंतुवोंविषे ते दो पट किसीकूं प्रतीत भी होते नहीं। यातैं तिन द्वितीय पटरूप द्रव्यके उत्पत्तिका प्रतिबन्धक जो पूर्वपटरूप द्रव्य है ता पूर्व पटके नाश हूएतैं अनंतर हीं ता द्वितीय पटकी उत्पत्ति मानणी होवैगी यातैं

ता अनित्यपरिमाणका ता आश्रयद्रव्यके नाश करिकै हीं नाश होवै है यह सिद्ध भया इति। इति परिमाणनिरूपणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

अथ पृथक्त्वनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—पृथक्व्यवहारविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत् पृथक्त्वम् । अर्थ यह—पृथक्व्यवहारके विषयविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण पृथक्त्व कह्या जावै है । तहां यह घट पटतैं पृथक् है, या प्रकारका जो पृथक्त्वविषयक प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहार है ता व्यवहारका विषय सो पृथक्त्व गुण हीं है ता पृथक्त्व गुणविषे वर्त्तणेहारी पृथक्त्वत्वजाति है । और सा पृथक्त्वत्वजाति गुणत्वजातिका व्याप्य भी है। ऐसी पृथक्त्वत्व जातिवाला सो पृथक्त्वगुण हीं है। यातैं यह पृथक्त्वका लक्षण संभवै है ॥ पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमत् पृथक्त्वम्' इतनामात्र हीं जो ता पृथक्त्वका लक्षण करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्यरूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणेवास्तै ता लक्षण विषे 'पृथक्व्यवहारविषयवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता पृथक्व्यवहारके विषयभूत पृथक्त्वविषे रहतीयां नहीं । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'पृथक्व्यवहारविषयवृत्तिजातिमत् पृथक्त्वम्' इतनामात्र हीं जो ता पृथक्त्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य, यह पद नहीं कथन करते तौं ता पृथक्त्वविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणेवास्तै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है। यातैं ता गुणत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे तथा द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

इसके रहणेका द्रव्य तथा भेद—इस प्रकारके उक्तलक्षण करिकै लक्षित सो पृथक्त्वगुण पूर्व उक्त संख्यापरिमाणकी न्यांई पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है और जैसे सो पूर्व उक्त संख्यागुण एकत्व अनेकत्व इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है तैसे यह पृथक्त्व गुण भी एक पृथक्त्व १ अनेकपृथक्त्व २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां एकद्रव्य व्यक्तिविषे समवायसंबंध करिकै रहणेहारा जो पृथक्त्व है ताका नाम एक पृथक्त्व है। और दो तीन च्यारि आदिक अनेक द्रव्यव्यक्तियोंविषे समवायसंबंध करिकै रहणेहारा जो पृथक्त्व है ताका नाम अनेकपृथक्त्व है। जैसे—'घटः पटात्पृथक्' अर्थ यह—घट पटतैं

पृथक् है, इस प्रकारकी प्रतीतितैं घटविषे प्रतीत भया जो पटअवधिक पृथक्त्व है सो पृथक्त्व ता एकघटव्यक्तिविषे वृत्ति होणेतैं एकपृथक्त्व कह्या जावै है। और 'घटौ पटात्पृथक्' अर्थ यह—यह दो घट पटतैं पृथक् हैं। या प्रकारकी प्रतीतितैं तिन दो घटोंविषे प्रतीत भया जो पट अवधिक पृथक्त्व है। सो पृथक्त्व तिन दो घटव्यक्तियोंविषे वृत्ति होणेतैं द्विपृथक्त्व कह्या जावै है। इस प्रकार तीन द्रव्यव्यक्तियोंविषे स्थित पृथक्त्व त्रिपृथक्त्व कह्या जावै है। इस प्रकारकी रीति चतुःपृथक्त्व पंचपृथक्त्व आदिकोंविषे भी जानिलेणी इति। और जैसे सा एकत्वसंख्या नित्य अनित्य इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तैसे यह एक पृथक्त्व भी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन इन नित्य द्रव्योंविषे तौं सो एकपृथक्त्व नित्य होवै है और द्व्यणुकतैं आदिलैके घटादिपर्यंत सर्व अनित्य द्रव्योंविषे सो एक पृथक्त्व अनित्य होवै है। और जैसे सा अनित्य एकत्वसंख्या आश्रयद्रव्यकी उत्पत्तितैं द्वितीयक्षणविषे उत्पन्न होवै है। तथा ता आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै है। तैसे यह अनित्य एक पृथक्त्व भी आश्रयद्रव्यकी उत्पत्तितैं द्वितीयक्षणविषे उत्पन्न होवै है। और ता आश्रय द्रव्यके नाशतैं हीं नाश होवै है। तहां ता अनित्य एक पृथक्त्वका सो घटादिरूप आश्रयद्रव्य तौं समवायिकारण होवै है, और ता घटादिक आश्रयद्रव्यके कपालादिक अवयवोंविषे स्थित एक पृथक्त्व असमवायिकारण होवै है, और अदृष्टईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं। और ता घटादिरूप आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं ता अनित्य एकपृथक्त्वका नाश होवै है इति ॥

अनेकत्व संख्याके साथ तुलना—और जैसे सा अनेकत्वसंख्या द्वित्व, त्रित्व, चतुष्ट्व इत्यादिक भेद करिकै नानाप्रकारकी होवै है तैसे यह अनेकपृथक्त्व भी द्विपृथक्त्व, त्रिपृथक्त्व चतुःपृथक्त्व इत्यादिक भेद करिकै नानाप्रकारका होवै है। और जैसे सा द्वित्वत्रित्वादिक अनेकत्वसंख्या नित्य अनित्य द्रव्योंविषे सर्वत्र अनित्य हीं होवै है तथा अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य होवै है। तथा ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं अथवा आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै है। तैसे यह द्विपृथक्त्व त्रिपृथक् आदिक अनेकपृथक्त्व भी नित्य अनित्य द्रव्योंविषे सर्वत्र अनित्य हीं होवै है, तथा अपेक्षाबुद्धि करिकै जन्य होवै है, तथा ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं अथवा आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै है ॥ नाशकी प्रक्रिया—अब सा प्रक्रिया दिखावे है—तहां दो घटोंके साथि चक्षुइंद्रियके संबंधहूए तैं अनंतर 'अयमेकः पृथक्, अयमेकः पृथक्' या प्रकारकी दो एक पृथक्त्वोंकूं विषय करणेहारी अपेक्षाबुद्धि प्रथमक्षणविषे होवै है ॥ १ ॥ और द्वितीय क्षणविषे तिन दो घटोंविषे पटावधिक द्विपृथक्त्व उत्पन्न होवै है ॥ २ ॥ तहां ता द्विपृथक्त्वके ते दो घट तौं समवायिकारण होवै हैं। और ता प्रत्येकघटविषे रह्या हूआ जो एकपृथक्त्व है। ते दोनों एकपृथक्त्व ता द्विपृथक्त्वके असमवायिकारण होवै हैं। और सा अपेक्षा-

बुद्धि निमित्तकारण होवै है । और तृतीयक्षणविषे ता द्विपृथक्त्वका निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होवै है ॥ ३ ॥ और चतुर्थक्षणविषे ' घटौ पटात् पृथक् ' या प्रकारका ता द्विपृथक्त्वका सविकल्पक प्रत्यक्ष होवै है । तथा पूर्व उत्पन्नहूए ता निर्विकल्पक प्रत्यक्ष करिकै ता अपेक्षाबुद्धिका नाश होवै है ॥ ४ ॥ और पंचमक्षणविषे ता अपेक्षाबुद्धिके नाशकरिकै ता द्विपृथक्त्वका नाश होवै है ॥ ५ ॥ इस प्रकारकी रीति त्रिपृथक्त्व चतुःपृथक्त्व आदिकोंविषे भी जातिलेणी । इस उक्त अर्थविषे विशेष शंका समाधान तौं पूर्वसंख्याके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं । ते सर्व यथायोग्य ईहां भी योजना करिलेणे इति ॥

अन्योन्याभावसे पृथक्त्वको भिन्न न माननेहारे नैयायिकोंकी शंका—भेदरूप अन्योन्याभावतैं सो पृथक्त्वगुण भिन्न नहीं है, किंतु ता अन्योन्याभावका नाम हीं पृथक्त्व है । और अयमस्मात्पृथक् । इत्यादिक प्रतीति भी ता अन्योन्याभावकूं हीं विषय करे है । ता पृथक्त्वगुणकूं विषय करती नहीं । यातैं तिस प्रतीतितैं भी ता पृथक्त्वगुणकी सिद्धि होवै नहीं । और जो कोई यह कहै सो पृथक्त्वगुण तौं है परंतु सो अन्योन्याभाव ता पृथक्त्वगुणतैं भिन्न नहीं है, किंतु ता पृथक्त्वगुणका नाम हीं अन्योन्याभाव है सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जो कदाचित् ता पृथक्त्वका नाम हीं अन्योन्याभाव होवै तौं ' रूपं न घटः ' अर्थ यह—रूप घट नहीं है याप्रकारकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये । काहेतैं ? गुणविषे गुणके अनंगीकारतैं ता रूपगुणविषे सो पृथक्त्वगुण रहता नहीं । जिस पृथक्त्व गुणकूं ' रूपं न घटः ' यह उक्त प्रतीति विषय करै और ता घटविषे भी सो घट अवधिक पृथक्त्व रहता नहीं, जो पृथक्त्व ता रूपविषे सामानाधिकरण्य सम्बन्ध करिकै प्रतीत होवै, परिशेषतैं सा उक्त प्रतीति ता रूपविषे ता घटके भेदरूप अन्योन्याभावकूं हीं विषय करे है । यातैं ता अन्योन्याभावका ता पृथक्त्वगुणविषे अन्तर्भाव संभवता नहीं, किंतु ता पृथक्त्वगुणका हीं ता अन्योन्याभावविषे अन्तर्भाव संभवै है । उसका समाधान—ता अन्योन्याभावकूं विषय करणेहारी जा ' घटः पटो न ' या प्रकारकी प्रतीति है ता प्रतीतितैं ता पृथक्त्वकूं विषय करणेहारी ' घटः पटात्पृथक् ' यह प्रतीति विलक्षण हीं होवै है, सो विलक्षण प्रतीति हीं ता पृथक्त्व गुणविषे ता अन्योन्याभावतैं भिन्नपणा सिद्ध करे है । यातैं ता अन्योन्याभावतैं ता पृथक्त्वगुणकूं भिन्न नहीं मानणेहारे नवीन नैयायिकोंका मत असंगत है इति ॥ इति पृथक्त्वनिरूपणम् ॥ ७ ॥

अथ संयोगनिरूपणम् ।

तहां पहिला लक्षण—**संयुक्तव्यवहारविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् संयोगः** । अर्थ यह—संयुक्त व्यवहारके विषयविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण संयोग कह्या जावै है । तहां यह द्रव्य इस द्रव्य करिकै संयुक्त है

अर्थात् इस द्रव्यके संयोगवाला है या प्रकारका जो संयोग विषयक प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहार है ता व्यवहारका विषय जो संयोग है ता संयोगविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा संयोगत्वजाति है सा संयोगत्वजाति सर्वसंयोगविषे रहे है। यातैं यह उक्त संयोगका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां पूर्वउक्त परिमाण पृथक्त्वके लक्षणकी न्यांई इस संयोगके लक्षणविषे भी गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संयुक्तव्यवहारविषयवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है और ता संयोगवृत्ति गुणत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके तिन रूपादि गुणोंविषे तथा द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है इति ॥

अथवा ता संयोगका यह दूसरा लक्षण करणा—**पटासमवायिकारणत्वव्यापकगुणत्वव्याप्य जातिमान् संयोगः।** अर्थ यह—पटके असमवायिकारणत्वका व्यापक तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण संयोग कह्या जावै है । तहां तंतुवोंका संयोग हीं पटका असमवायिकारण होवै है । यातैं जहां जहां पटका असमवायिकारणत्व रहे है तहां तहां संयोगत्वजाति रहे है । इस रीतिसैं सा संयोगत्वजाति ता पटके असमवायिकारणत्वका व्यापक है और सा संयोगत्वजाति गुणत्वजातिका व्याप्य भी है । ऐसी संयोगत्वजाति सर्वसंयोगविषे रहे है । यातैं यह उक्त संयोगका लक्षण भी संभवै है। पदकृत्य—तहां 'गुणत्वजातिमान् संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'पटासमवायिकारणत्वव्यापक' यह पद नहीं कथन करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'पटासमवायिकारणत्वव्यापक' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता पटके असमवायिकारणरूप तंतुसंयोगविषे अवृत्ति होणेतैं ता पटासमवायिकारणत्वका व्यापकही नहीं है । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'पटासमवायिकारणत्वव्यापकजातिमान् संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते तौं गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, जिस कारणतैं ता संयोगत्वजातिकी न्यांई सा गुणत्वसत्ताजाति भी ता पटासमवायिकारणत्वका व्यापक हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है यातैं ता गुणत्व सत्ताजातिकूं लैके तहां अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

अथवा ता संयोगका यह तीसरा लक्षण—करणा व्यासज्यवृत्तिमात्रवृत्तिविभागावृत्ति गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् संयोगः। अर्थ यह—व्यासज्यवृत्तिमात्रविषे वर्त्तणेहारी तथा विभागविषे अवर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका साक्षाद्व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण संयोग कह्या जावै है। तहां जो धर्म अनेकद्रव्योंविषे वर्त्ते है सो धर्म व्यासज्यवृत्ति कह्या जावै है। जैसे द्वित्वत्रित्वादिक संख्या दो तीन द्रव्योंविषे रहे है। यातैं सा द्वित्वत्रित्वादिक संख्या व्यासज्यवृत्ति कही जावै है। तैसे सो संयोग भी दो द्रव्योंविषे हीं रहे है। यातैं सो संयोग भी व्यासज्यवृत्ति कह्या जावै है। यद्यपि सो संयोग समवायसम्बन्ध करिकै प्रत्येकद्रव्यविषे भी रहे है। तथापि पूर्वउक्त द्वित्वादिक संख्याकी न्यांई सो संयोग स्वरूपसम्बन्धरूप पर्याप्तिसम्बन्ध करिकै तिन दो द्रव्य व्यक्तियोंके आश्रित हीं रहे है; एकद्रव्यव्यक्तिके आश्रित रहता नहीं। ऐसे व्यासज्यवृत्ति संयोगमात्रविषे वर्त्तणेहारी संयोगत्वजाति है, और सा संयोगत्वजाति वक्ष्यमाणविभागगुणविषे अवृत्ति भी है तथा गुणत्वजातिका साक्षाद्व्याप्य भी है। ऐसी संयोगत्वजाति सर्वसंयोगोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त संयोगका लक्षण भी सम्भवै है। पदकृत्य—तहां ता उक्तलक्षणविषे 'मात्र' यह पद जो नहीं कथन करते तौं व्यासज्यवृत्ति द्वित्वत्रित्वादिक संख्याविषे वर्त्तणेहारी तथा विभागविषे अवर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका साक्षाद्व्याप्य ऐसी संख्यात्वजातिकूं लैके संख्याविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'मात्र' यह पद कथन कर्‍या है। तहां सा संख्यात्वजाति ता व्यासज्यवृत्तिपणेतैं रहित एकत्वसंख्याविषे भी रहे है। यातैं सा संख्यात्वजाति व्यासज्यवृत्तिमात्रवृत्ति नहीं है। यातैं ता संख्यात्वजातिकूं लैके ता संयोगके लक्षणकी ता संख्याविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'विभागावृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'व्यासज्यवृत्तिमात्रवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता संयोगत्वजातिकी न्यांई ते रूपत्वादिक जातियां भी ता विभागविषे अवृत्ति भी हैं तथा गुणत्वजातिका साक्षात्व्याप्य भी हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे'व्यासज्यवृत्तिमात्रवृत्ति' यह पद कथन कर्‍या है। तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता व्यासज्यवृत्तिधर्मविषे रहतीयां नहीं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'व्यासज्यवृत्तिमात्रवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्य जातिमान् संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विभागावृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं विभागत्वजातिकूं लैके विभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सो संयोग दो द्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं व्यासज्यवृत्ति कह्या जावै है। तैसे सो विभाग भी

दो द्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं व्यासज्यवृत्ति कह्या जावै है । ऐसे व्यासज्यवृत्ति विभागमात्रविषे वर्त्तणेहारी विभागत्वजाति है । और सा विभागत्वजाति ता गुणत्वजातिका साक्षात्‌व्याप्य भी है । ऐसी विभागत्वजातिकूं लैके ता विभागविषे अतिव्याप्ति होवैंगी, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विभागावृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है ·तहां सा विभागत्वजाति ता विभागविषे अवृत्ति नहीं है । किंतु ता विभागविषे वृत्ति हीं है । यातैं ता विभागत्वजातिकूं लैके ता विभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'व्यासज्यवृत्तिमात्रवृत्ति विभागावृत्तिजातिमान् संयोगः, इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वसाक्षाद्व्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं द्वित्वत्व, त्रित्वत्व आदिक जातियोंकूं लैके द्वित्वत्रित्वादिक संख्याविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं? सा द्वित्वत्वजाति भी ता संयोगत्वजातिकी न्यांई व्यासज्यवृत्ति द्वित्वमात्रविषे हीं रहे है । तथा विभागविषे अवृत्ति भी है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वसाक्षाद्व्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा द्वित्वत्वजाति ता गुणत्वजातिका साक्षात्‌व्याप्य नहीं है किंतु ता गुणत्वजातिका व्याप्य जा संख्यात्वजाति है ता संख्यात्वजातिका व्याप्य सा द्वित्वत्वजाति है, यातैं तिन द्वित्वत्व त्रित्वत्व आदिक जातियोंकूं लैके ता द्वित्व त्रित्वादिक संख्याविषे ता संयोगके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

अथवा ता संयोगका यह चतुर्थ लक्षण—करणा । **जन्यद्रव्यवृत्तित्वे सति स्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगि विभागभिन्नगुणः संयोगः** । अर्थ यह—जो गुण जन्य द्रव्यविषे वृत्ति होवै है तथा स्वसमानाधिकरण अभावका प्रतियोगी होवै है तथा विभागतैं भिन्न होवै है सो गुण संयोग कह्या जावै है । तहां वृक्षविषे स्थित पक्षीका जो ता वृक्षके साथि संयोग है सो संयोग ता वृक्षपक्षीरूप जन्य द्रव्यविषे वृत्ति भी है और ता वृक्षकी शाखाविषे ता पक्षीके संयोगहूए भी ता वृक्षके मूलविषे ता संयोगका अभाव हीं रहे है । ता अभावका प्रतियोगीपणा ता संयोगविषे रहे है । यातैं सो संयोग स्वसमानाधिकरण अभावका प्रतियोगी भी है और विभागतैं भिन्न भी है तथा गुणरूप भी है । यातैं यह उक्त संयोगका लक्षण भी सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'स्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिविभागभिन्नगुणः संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'जन्यद्रव्यवृत्तित्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं शब्दबुद्धिआदिक अव्याप्यवृत्तिगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं? एक हीं विभु आकाशविषे भेरी अवच्छिन्नता करिकै शब्दगुण रहे है और तिसी आकाशविषे घट अवच्छिन्नता करिकै ता शब्दका अभाव रहे है । ता अभावका प्रतियोगीपणा ता शब्दविषे है । तैसे एक हीं विभु आत्माविषे शरीरअवच्छिन्नता करिकै बुद्धि सुखदुःखादिक गुण रहे हैं और तिसी आत्माविषे घटअवच्छिन्नता करिकै तिन बुद्धि

सुखदुःखादिक गुणोंका अभाव रहे है। ता अभावका प्रतियोगीपणा तिन बुद्धिसुखदुःखादिक गुणोंविषे है। यातैं ता संयोगकी न्यांई ते शब्दबुद्धिआदिक गुण भी स्वसमानाधिकरण अभावके प्रतियोगी हीं हैं। तथा ता विभागतैं भिन्न भी हैं तथा गुणरूप भी हैं ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'जन्यद्रव्यवृत्तित्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते शब्दबुद्धिआदिक गुण जन्यद्रव्याविषे वृत्ति नहीं हैं। किंतु आकाश आत्मारूप नित्यद्रव्यविषे हीं वृत्ति हैं। यातैं तिन शब्दबुद्धिआदिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'जन्यद्रव्यवृत्तित्वे सति विभागभिन्नगुणः संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'स्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगि' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ते रूपादिक गुण घटादिक जन्य द्रव्यविषे वृत्ति भी हैं तथा विभागतैं भिन्न भी हैं तथा गुणरूप भी हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगि' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपादिक व्याप्यवृत्ति गुण जिस घटादिरूप अधिकरणविषे रहे हैं। तिस अधिकरणविषे तिन रूपादिकोंका अभाव रहता नहीं। यातैं रूपादिकगुण स्वसमानाधिकरणअभावके प्रतियोगी होते नहीं। यातैं तिन रूपादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। यद्यपि ते रूपादिक गुण जिस घटादिरूप अधिकरणविषे रहे हैं। तिस अधिकरणविषे तिन रूपादिकोंका भेदरूप अन्योन्याभाव भी रहे है। यातैं ते रूपादिक गुण भी स्वसमानाधिकरण अभावके प्रतियोगी हीं है। तथापि ईहां लक्षणविषे ता अभावशब्द करिकै अत्यन्ताभावका हीं ग्रहण करणा। सो रूपादिकोंका अत्यन्ताभाव तिन रूपादिकोंके अधिकरणविषे रहता नहीं। किंवा 'जन्यद्रव्यवृत्तित्वे सति स्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिगुणः संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विभागभिन्न' यह पद नहीं कथन करते तौं विभाग विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? सो विभाग ता संयोगकी न्यांई जन्यद्रव्यवृत्ति भी है तथा स्वसमानाधिकरण अभावका प्रतियोगी भी है तथा गुणरूप भी है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विभागभिन्न' यह पद कथन कऱ्या है। तहां आपणाभेद आपणेविषे रहता नहीं। यातैं सो विभाग विभागतैं भिन्न नहीं है। यातैं ता विभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'जन्यद्रव्यवृत्तित्वे सति स्वसमानाधिकरणाभाव प्रतियोगिविभागभिन्नः संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता संयोगका लक्षण करते। ता लक्षणविषे 'गुण' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? सो घट कपालरूप जन्यद्रव्यविषे वृत्ति भी है। और जिस भूतलविषे सो घट संयोगसंबंध करिकै रहे है। तिस भूतलविषे ता घटका अत्यंताभाव भी रहे है। यातैं सो घट स्वसमानाधिकरण

अभावका प्रतियोगी भी है तथा विभागतैं भिन्न भी है । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्तकरणे वाँसतै ता लक्षणविषे 'गुण' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन घटादिक द्रव्योंविषे गुणरूपता है नहीं । यातैं तिन घटादिकोंविषे ता संयोगके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

इसकी स्थिति तथा अनित्यता—इस प्रकारके उक्तच्यारि लक्षणों करिकै लक्षित सो संयोगगुण पूर्व उक्त संख्यापरिमाणपृथकृत्वकी न्यांई पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है । और यह संयोगगुण सर्वत्र अनित्य हीं होवै है, कोई भी संयोग नित्य होता नहीं । तहां सो संयोग गुण कहां तौं आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै है और कहां स्वसमानाधिकरण विभाग करिकै नाश होवै है । जैसे पक्षीवृक्षका संयोग ता पक्षीवृक्षरूप आश्रयद्रव्यके नाश करिकै भी नाश होइ जावै है । और ता पक्षीवृक्षके विद्यमानहूए भी जबी ता पक्षीविषे क्रिया होइकै ता वृक्षके साथि विभाग होवै है तबी ता विभाग करिकै भी सो पक्षीवृक्षका संयोग नाश होइ जावै है इति ॥

संयोगके भेद ।

और सो संयोगगुण कर्मज संयोग १, संयोगज संयोग २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां प्रथम कर्मज संयोग भी अन्यतर कर्मज संयोज १, उभय कर्मज संयोग२इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । यातैं सो संयोगगुण अन्यतर कर्मज संयोग १, उभय कर्मज संयोग२, संयोगज संयोग ३ यह तीन प्रकारका सिद्ध होवै है । अन्यन्तर कर्मज संयोग—तहां जो संयोग एकद्रव्यकी क्रिया करिकै जन्य होवै है सो संयोग अन्यतर कर्मजसंयोग कह्या जावै है । जैसे पर्वतके साथि जो श्येनपक्षीका संयोग है सो संयोग केवल ता श्येनपक्षीकी क्रिया करिकै हीं जन्य है, ता पर्वतकी क्रिया करिकै जन्य है नहीं । यातैं सो संयोग अन्यतरकर्मजसंयोग कह्या जावै है । तहां ता पर्वतपक्षीके संयोगका ते पर्वतपक्षी दोनों तौं समवायिकारण होवै हैं और ता श्येनपक्षीकी क्रिया असमवायिकारण होवै है और अदृष्टईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं । इस प्रकार विभुआत्माके साथि जो मनका संयोग होवै है सो संयोग भी ता मनकी क्रिया करिकै जन्य होणेतैं अन्यतर कर्मजसंयोग कह्या जावै है । इस प्रकार आकाशादिक विभु द्रव्योंके साथि जो घटादिक मूर्त्तद्रव्योंका संयोग होवै है सो संयोग भी तिन घटादिक मूर्त्त द्रव्योंकी क्रिया करिकै जन्य होणेतैं अन्यतर कर्मज संयोग कह्या जावै है इति । उभय कर्मज संयोग—और जो संयोग दोनों द्रव्योंकी क्रिया करिकै जन्य होवे है सो संयोग उभयकर्मज संयोग कह्या जावै है । जैसे दोनों मल्लोंका जो परस्पर संयोग होवै है सो संयोग तिन दोनों मल्लोंकी क्रिया करिकै जन्य होवै है । तथा दोनों मेषोंका जो परस्पर संयोग होवै है सो संयोग तिन दोनोंमेषोंकी क्रिया करिकै जन्य होवै है । यातैं सो दोनों मल्लोंका संयोग तथा दोनों मेषोंका संयोग उभयकर्मज संयोग कह्या जावै है । तहां ते दोनों मल्ल तथा दोनों मेष ता संयोगके समवायिकारण होवै हैं । और तिन दोनों मल्लोंविषे तथा तिन दोनों मेषोंविषे जा

क्रिया है सा क्रिया ता संयोगका असमवायिकारण होवै है और अदृष्टईश्वरादिक ता संयोगके निमित्तकारण होवै है इति ॥

संयोगज संयोग—और कारण, अकारण दोनोंके संयोगतैं जो कार्य अकार्य दोनोंका संयोग होवै है सो संयोग संयोगज संयोग कह्या जावै है जैसे हस्तकी क्रिया करिकै जबी ता हस्तका वृक्षके साथि संयोग होवै है तबी यह शरीर वृक्षसंयुक्त है या प्रकारतैं ता शरीरविषे भी वृक्षके संयोगका व्यवहार होवै है । यातैं ता हस्तवृक्षके संयोगतैं अनंतर सो शरीरवृक्षका संयोग अवश्य अंगीकार करणा होवैंगा । तहां ता वृक्षविषे तथा शरीरविषे तौं क्रिया है नहीं । यातैं सो शरीरवृक्षका संयोग ता क्रिया करिकै तौं जन्य है नहीं, परिशेषतैं ता हस्तवृक्षके संयोगतैं हीं जन्य मानणा होवैंगा । यद्यपि ता शरीररूप अवयवीके एकहस्तरूप अवयवविषे क्रिया है तथापि एक अवयवकी क्रियातैं अवयवीविषे क्रिया होती नहीं । किंतु सर्व अवयवोंकी क्रियातैं हीं ता अवयवीविषे क्रिया होवै है । यातैं ता हस्तरूप कारणके तथा ता वृक्षरूप अकारणके संयोगतैं जो ता शरीररूप कार्यका तथा ता वृक्षरूप अकार्यका संयोग होवै है सो संयोग संयोगजसंयोग कह्या जावै है । तहां ता शरीरवृक्षके संयोगका ते शरीरवृक्ष दोनों तौं समवायिकारण होवै हैं और सो हस्तवृक्षका संयोग असमवायिकारण होवै है और अदृष्ट ईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं । तहां यद्यपि ता वृक्षविषे अकारण-रूपता सम्भवती नहीं, किंतु स्वनिष्ठ गुणकर्मादिकोंका सो वृक्ष कारण हीं है तथा ता वृक्षविषे अकार्यरूपता भी सम्भवती नहीं, किंतु सो वृक्ष भी आपणे अवयवोंका कार्यरूप हीं है, तथापि ईहां कारणशब्द करिकै ता संयोगजसंयोगके आश्रयभूत एकद्रव्यव्यक्तिके अवयवरूप समवायिकारणका ग्रहण करणा और अकारणशब्द करिकै ता अवयवरूप समवा-यिकारणतैं भिन्न द्रव्यका ग्रहण करणा । तैसे कार्य शब्द करिकै भी ता अवयवरूप समवा-यिकारण करिकै जन्य द्रव्यका ग्रहण करणा, और अकार्यशब्द करिकै ता अवयवरूप समवायि-कारणजन्य द्रव्यतैं भिन्न द्रव्यका ग्रहण करणा । जैसे हस्तवृक्ष दोनोंके संयोग करिकै जन्य जो शरीरवृक्ष दोनोंका संयोग है ता संयोगका आश्रयभूत ते शरीरवृक्ष दोनों हैं । ऐसे शरीरवृक्ष संयोगका आश्रयभूत जो शरीररूप एकव्यक्ति है ता शरीरका समवायिकारण सो हस्तरूप अवयव है । यातैं सो हस्त कारण कह्या जावै है, और ता हस्तरूप कारणतैं सो वृक्षभिन्न है अर्थात् सो वृक्ष ता शरीरका समवायिकारण नहीं है । यातैं सो वृक्ष अकारण कह्या जावै है और सो शरीर ता हस्तरूप समवायिकारण करिकै जन्य है । यातैं सो शरीर कार्य कह्या जावै है और सो वृक्ष ता शरीररूप कार्यतैं भिन्न है अर्थात् सो वृक्ष ता हस्तरूप कारण करिकै जन्य नहीं है । यातैं सो वृक्ष अकार्य कह्या जावै है । ऐसे कारणरूप हस्तके तथा अकारणरूप वृक्षके संयोग करिकै सो कार्यरूप शरीरका तथा अकार्यरूप वृक्षका संयोग

उत्पन्न होवै है । यातैं सो शरीरवृक्षका संयोग, संयोगज संयोग कह्या जावै है । इस प्रकार हस्तकी क्रिया करिकै ता हस्तपुस्तकके संयोगहूए जो शरीरपुस्तकका संयोग होवै है, तथा कपालकी क्रिया करिकै ता कपालवृक्षके संयोगहूए जो घटवृक्षका संयोग होवै है, सो संयोग भी संयोगजसंयोग कह्या जावै है इति ॥

अब यथाक्रमतैं तिन तीनों संयोगोंके लक्षणोंका निरूपण—करे हैं । तहां प्रथम अन्यतरकर्मज संयोगका लक्षण । कहे हैं—**क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सति क्रियावत्समवेतसंयोगः अन्यतरकर्मजसंयोगः** । अर्थ यह—जो संयोग स्वजनकक्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे समवायसम्बंध करिकै रहे है तथा स्वजनकक्रियावाले द्रव्यविषे समवायसम्बंध करिकै रहे है सो संयोग अन्यतरकर्मज संयोग कह्या जावै है । जैसे श्येनपक्षीकी क्रिया करिकै जन्य जो ता श्येनपक्षीका पर्वतके साथि संयोग है सो पक्षीपर्वतका संयोग ता स्वजनक क्रियाके अभाववाले पर्वतविषे भी समवायसंबंध करिकै रहे है । तथा ता स्वजनक क्रियावाले पक्षीविषे भी समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं सो पक्षीपर्वतका संयोग अन्यतरकर्मज संयोग कह्या जावै हैं । पदकृत्य—तहां 'क्रियावत्समवेतसंयोगः अन्यतरकर्मज संयोगः' इतनामात्र हीं जो ता अन्यतरकर्मज संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते । तौं उभयकर्मज संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो उभयकर्मज दो मेषोंका संयोग भी ता स्वजनक क्रियावाले दो मेषोंविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो उभयकर्मजसंयोग ता क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै रहता नहीं । यातैं ता उभयकर्मज संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सति संयोगः अन्यतरकर्मजसंयोगः' इतनामात्र हीं जो ता अन्यतरकर्मजसंयोगका लक्षण करते । ता लक्षणविषे 'क्रियावत्समवेत' यह पद नहीं कथन करते तौं संयोगजसंयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो संयोगज संयोग भी ता क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'क्रियावत्समवेत' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो संयोगजसंयोग ता क्रियावाले द्रव्यविषे समवेत है नहीं । यातैं ता संयोगजसंयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सति क्रियावत्समवेतः अन्यतरकर्मजसंयोगः' इतनामात्र हीं जो ता अन्यतरकर्मज संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संयोग' यह पद नहीं कथन करते तौं वक्ष्यमाण अन्यतरकर्मजविभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो अन्यतरकर्मजविभाग भी ता क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे समवेत

हूआ हीं ता क्रियावाले द्रव्यविषे समवेत होवै है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' संयोग ' यह पद कथन कन्या है । तहां ता अन्यतरकर्मज विभागविषे सो संयोगपणा रहता नहीं । यातैं ता विभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

अब उभयकर्मज संयोगका लक्षण—कहे हैं । **स्वजनकक्रियाऽभाववदसमवेतसंयोगः उभयकर्मजसंयोगः** । अर्थ यह—जो संयोग स्वजनकक्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै नहीं रहे है सो संयोग उभयकर्मज संयोग कह्या जावै है । जैसे दोनों मेषोंकी क्रिया करिकै जन्य जो तिन दोनों मेषोंका संयोग है सो संयोग ता स्वजनक क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे रहता नहीं । यातैं सो दोनों मेषोंका संयोग उभयकर्मज संयोग कह्या जावै है । पद कृत्य—तहां ' क्रियाऽभाववदसमवेतसंयोगः उभयकर्मजसंयोगः ' इतनामात्र हीं जो ता उभयकर्मज संयोगका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' स्वजनक ' यह क्रियाका विशेषण नहीं कथन करते तौं कम्पायमानशाखाविषे ता श्येनपक्षीकी क्रियामात्र करिकै जन्य जो संयोग है, तथा चलतेहूए चैत्रनामा पुरुषके पृष्ठदेशविषे मैत्रनामा पुरुषकी क्रियामात्र करिकै जन्य जो संयोग है, ता अन्यतर कर्मज संयोगविषे ता उभयकर्मज संयोगके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो अन्यतरकर्मज संयोग ता उभयकर्मज संयोगकी न्यांई क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे असमवेत हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे ता क्रियाका ' स्वजनक ' यह विशेषण कथन कन्या है । तहां ता शाखाविषे स्थित सा कंपनरूपक्रिया ता संयोगका जनक नहीं है । किंतु ता श्येनपक्षीकी क्रिया हीं ता संयोगका जनक है । ता संयोगजनकक्रियाका ता शाखाविषे अभाव हीं है । यातैं ता संयोगजनक क्रियाके अभाववाली ता शाखाविषे वृत्ति होणेतैं सो शाखापक्षीका संयोग ता स्वजनक क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे असमवेत नहीं है । किंतु समवेत हीं है । तैसे ता चैत्रनामा पुरुषविषे स्थित सा चलनरूप क्रिया ता संयोगका जनक नहीं है, किंतु ता मैत्रनामा पुरुषकी क्रिया हीं ता संयोगका जनक है । ता संयोगजनक क्रियाका ता चैत्रविषे अभाव हीं है । यातैं ता संयोगजनक क्रियाके अभाववाले ता चैत्रविषे वृत्ति होणेतैं सो चैत्रमैत्रका संयोग ता स्वजनक क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे असमवेत नहीं है, किंतु समवेत हीं है । यातैं ता अन्यतरकर्मज संयोगविषे ता उभयकर्मज संयोगके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । तहां इस लक्षणविषे जो 'संयोग' यह पद कथन कन्या है सो संयोगपद वक्ष्यमाण उभयकर्मज विभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है । जिस कारणतैं सो उभयकर्मज विभाग भी स्वजनक क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे असमवेत हीं होवै है इति ।

अब संयोगजसंयोगका लक्षण । कहे हैं—**कर्माजन्यसंयोगः संयोगजसंयोगः** । अर्थ यह—जो संयोग क्रियारूप कर्म करिकै जन्य नहीं होवै है सो संयोग संयोगज संयोग कह्या जावै है ।

जैसे हस्तवृक्षके संयोगकरिकै जन्य जो शरीरवृक्षका संयोग है सो संयोग ता क्रियारूप कर्म करिकै जन्य होता नहीं, किंतु ता हस्त वृक्षके संयोग हीं करिकै जन्य होवै है। यातैं सो शरीर-वृक्षका संयोग संयोगज संयोग कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे भी 'संयोग' यह पद वक्ष्यमाण विभागज विभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। जिस कारणतैं सो विभागज विभाग भी ता क्रियारूप कर्म करिकै जन्य होता नहीं । इति ॥

कर्मजसंयोगके अभिघाताख्य और नोदनाख्य भेद—किंवा सो पूर्वउक्त कर्मजसंयोग अभिघाताख्य संयोग १, नोदनाख्य संयोग २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । तहां **स्पर्शवेगोभयवद्द्रव्यसंयोगः अभिघाताख्यसंयोगः**। अर्थ यह—स्पर्श वेग इन दो गुणोंवाले द्रव्यका जो दूसरे मूर्त्तद्रव्यके साथि संयोग होवै है सो संयोग अभिघाताख्य संयोग कह्या जावै है । सो अभिघाताख्य संयोग ता मूर्त्तद्रव्यकी क्रियाका असमवायिकारण होवै है, तथा ता मूर्त्तद्रव्यावच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्न हूए शब्दका निमित्त कारण होवै है । जैसे वंशादिक वृक्षोंकूं छेदन करणेहारा पुरुष आपणे हस्तविषे कुठारकूं उठाइकै अत्यन्त वेगसैं तिन वंशादिक वृक्षऊपरि ता कुठारकूं गेडे है । तहां स्पर्शवाले तथा वेगवाले ता कुठाररूप द्रव्यका ता वंशादिवृक्षरूप मूर्त्त द्रव्यके साथि जो संयोग होवै है । सो संयोग अभिघाताख्य संयोग कह्या जावै है । सो अभिघाताख्य संयोग ता वंशविषे तौं कंपनरूप क्रियाकूं उत्पन्न करे है और ता वंशावच्छिन्न आकाशविषे ध्वनिरूप शब्दकूं उत्पन्न करे हैं इति ॥ तहां—**स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगः नोदनाख्यसंयोगः** । अर्थ यह—स्पर्शवाले द्रव्यका जो दूसरे मूर्त्तद्रव्यके साथि संयोग होवै है सो संयोग नोदनाख्यसंयोग कह्या जावै है । सो नोदनाख्य संयोग शब्दका जनक होता नहीं, किंतु ता मूर्त्तद्रव्यविषे क्रियामात्रका हीं जनक होवै है। जैसे बहुकाल जलके संबंधसैं अतिआर्द्र हूई जा भूमि है ता पंकयुक्त भूमिविषे पादके राखणेतैं जो ता स्पर्शवाले पादका ता भूमिप्रदेशविषे संयोग होवै है सो संयोग नोदनाख्य संयोग कह्या जावै है। सो नोदनाख्य संयोग शब्दका हेतु होता नहीं, किंतु ता पंकयुक्त भूमिप्रदेशविषे केवल क्रियामात्रका हीं हेतु होवै है इति ॥

संयोगज संयोगपर शंका—पूर्व कथन कऱ्या जो संयोगज संयोग है ताके विषे कोई भी प्रमाण नहीं है । और जहां कपालकी क्रिया करिकै ता कपालका वृक्षके साथि संयोग होवै है तिसतैं अनंतर घटका ता वृक्षके साथि संयोग होवै है । तहां भी सा कपालकी क्रिया हीं ता घटवृक्षके संयोगविषे कारण होवै है। सो कपालवृक्षका संयोग ता घटवृक्षके संयोगविषे कारण होता नहीं। यातैं सो घटवृक्षका संयोग भी कर्मजसंयोग हीं सिद्ध होवै है। उसका समाधान—जिस द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै संयोग उत्पन्न होवै है। तिस

द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै रहीं हूई क्रिया हीं ता संयोगका असमवायिकारण होवै है। तहां ता घटविषे सा क्रिया समवायसंबंध करिकै है नहीं, किंतु ता घटके अवयवरूप कपालविषे सा क्रिया समवायसंबंध करिकै रहै है । यातैं ता कपालकी क्रिया करिकै ता कपालका हीं ता वृक्षके साथि संयोग होवैंगा ता कपालकी क्रिया करिकै ता घटका ता वृक्षके साथि संयोग होवैंगा नहीं, यातैं ता कपालकी क्रियाकूं ता घटवृक्षके संयोगका असमवायिकारणपणा संभवता नहीं, किंतु ता कपालवृक्षके संयोगकूं हीं ता घटवृक्षके संयोगका असमवायिकारणपणा संभवै है । यद्यपि जिस कपालविषे सा क्रिया समवायसंबंध करिकै रहे है तिसी कपालविषे सो घट भी समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं सामानाधिकरण्य संबंध करिकै ता घटविषे रही हूई सा कपालकी क्रिया ता घटवृक्षके संयोगका असमवायिकारण होइ सके है। जैसे सामानाधिकरण्य संबंध करिकै घटविषे रह्येहूए कपालके रूपादिक ता घटके रूपादिकोंका असमवायिकारण होवै हैं तथापि ता संयोगज संयोगस्थलतैं भिन्न सर्वस्थलविषे ता क्रियाकूं समवायसंबंध करिकै हीं ता संयोगकी हेतुतासिद्ध है । इस उक्त संयोगज संयोगस्थलविषे ता क्रियाकूं सामानाधिकरण्य संबंध करिकै ता संयोगकी हेतुता कल्पना करणेविषे अधिक कार्यकारणभावकी कल्पना करिकै गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवैंगी । ताकी अपेक्षा करिकै ता कपालवृक्षके संयोगकूं हीं समवायसंबंध करिकै ता घटवृक्षके संयोगकी कारणता कल्पना करणी उचित है । समाधानान्तर—किंवा जिस स्थलविषे ता एककपालकी क्रिया करिकै एक हीं क्षणविषे दूसरे कपालके साथि तथा ता वृक्षके साथि ता कपालका संयोग होवै है । तिसतैं उत्तरक्षणविषे तिन दो कपालोंके संयोग करिकै ता घटकी उत्पत्ति होवै है तथा पूर्वक्षणविषे उत्पन्नहूए ता कपालके उत्तरदेश संयोग करिकै ता कपालकी क्रियाका नाश होवै । तिसतैं उत्तरक्षणविषे ता घटका ता वृक्षके साथि जो संयोग होवै है सो नहीं होणा चाहिये । काहेतैं ? सा कपालकी क्रिया तौं ता घट वृक्षके संयोगतैं पूर्व क्षणविषे हीं नाश होइ गई है । यातैं ता कपालकी क्रियाकूं तौं ता घटवृक्षके संयोगकी असमवायिकारणता संभवती नहीं और ता घटविषे भी क्रिया उत्पन्न हूई नहीं । जा क्रिया ता घटवृक्षके संयोगका असमवायिकारण होवै । परिशेषतै ता कपालवृक्षके संयोगकूं हीं ता घट वृक्षके संयोगकी असमवायिकारणता मानणी होवैंगी । यातैं सो संयोगजसंयोग अवश्य मान्या चाहिये इति ।

शरीर वृक्ष संयोगविषे संयोग और क्रिया जन्यत्वकी शंका—जहां प्रथमक्षणविषे तौं हस्तविषे क्रिया उत्पन्न हूई है और द्वितीयक्षणविषे शरीरविषे क्रिया उत्पन्न हूई है । तहां ता हस्तकी क्रिया करिकै तौं द्वितीयक्षणविषे ता हस्तका पूर्वदेशतैं विभाग होवै है और तृतीयक्षणविषे ता विभाग करिकै ता हस्तका ता पूर्वदेशतैं संयोगनाश होवै है । और चतुर्थक्षणविषे ता हस्तका वृक्षके साथि संयोग होवै है । तिसी चतुर्थक्षणविषे ता शरीरकी क्रियाजन्य विभाग

करिकै ता शरीरका पूर्वदेशतैं संयोगनाश होवै है । तिसतैं उत्तरक्षणविषे ता शरीरका ता वृक्षके साथि संयोग होवै है । सो शरीरवृक्षका संयोग ता हस्तवृक्षके संयोग करिकै जन्य होवै है । अथवा ता शरीरकी क्रिया करिकै जन्य होवै है । तहां जो यह कहो ता शरीरवृक्षके संयोगविषे सो हस्तवृक्षका संयोग तथा सा शरीरकी क्रिया दोनों असमवायिकारण होवै हैं सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? ता शरीरवृक्षके संयोगकूं जो संयोग क्रिया दोनों करिकै जन्य मानोंगे तौं ता शरीरवृक्षके संयोगविषे कर्मजसंयोगवृत्ति जातिका तथा संयोगज संयोगवृत्ति जातिका सांकर्य होवैंगा । ता सांकर्यदोष करिकै तिन दोनोंविषे जातिपणेका हीं बाध होवैंगा । यातैं ता शरीरवृक्षके संयोगविषे ता संयोगक्रिया दोनोंकूं कारणता संभवती नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—तहां दो संयोग माणनेहारे केईक ग्रंथकार—तौं ता शंकाका यह समाधान करे हैं । तिस स्थलविषे ता वृक्षके साथि ता शरीरके दो संयोग उत्पन्न होवै हैं । तहां एक संयोग तौं ता हस्तवृक्षके संयोग करिकै उत्पन्न होवै है । और दूसरा संयोग ता शरीरकी क्रिया करिकै उत्पन्न होवै है । इस प्रकार दो संयोगोंके उत्पन्नहूए भी तिन दो संयोगोंके द्वित्वका जो नहीं ग्रहण होवै है सो सादृश्यदोषके वशतैं नहीं होवै है इति ॥

यहां चित्रसंयोग माणनेहारे—और केईकग्रंथकार तौं ता तौं शंकाका यह समाधान करे हैं । जैसे तंतुवोंके नीलपीतादिकरूप मिलिकै पटविषे एकचित्ररूपकूं उत्पन्न करे हैं । सो चित्ररूप तिन नीलपीतादिक रूपोंतैं विजातीय हीं होवै है । तैसे ता उक्तस्थलविषे सो हस्तवृक्षका संयोग तथा सो शरीरका कर्म दोनों मिलिकै एक चित्र संयोगकूं उत्पन्न करे हैं । सो चित्रसंयोग ता कर्मजसंयोगतैं तथा संयोगज संयोगतैं विजातीय हीं होवै है । यातैं ता शरीरवृक्षके संयोगविषे सो पूर्वउक्त जातिसांकर्यदोष भी प्राप्त होवै नहीं इति ॥

मूर्त द्रव्योंका परस्पर तथा विभुद्रव्योंके साथ संयोग—सो यह पूर्व उक्त सर्वप्रकारका संयोग एक मूर्त्तद्रव्यका दूसरे मूर्त्तद्रव्यके साथि होवै है । जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंका परस्पर संयोग होवै है । तथा एक पार्थिवद्रव्यका दूसरे पार्थिवद्रव्यके साथि संयोग होवै है । इस प्रकार एक जलीय द्रव्यका दूसरे जलीयद्रव्यके साथि संयोग होवै है । तथा एक तैजसद्रव्यका दूसरे तैजसद्रव्यके साथि संयोग होवै है । तथा एकवायवीय द्रव्यका दूसरे वायवीय द्रव्यके साथि संयोग होवै है । इस प्रकार आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारि विभु द्रव्योंके साथि भी तिन पृथिवी आदिक मूर्त्तद्रव्योंका क्रियाजन्य संयोग होवै है । जैसे विभु आत्माके साथि मनका संयोग होवै है । तथा आकाशादिकोंके साथि घटादिकोंका संयोग होवै है, परंतु एकविभु द्रव्यका दूसरे विभु द्रव्यके साथि कदाचित् भी संयोग होता नहीं । काहेतैं ? तिन विभुद्रव्योंविषे क्रिया होती नहीं । यातैं तिन विभुद्रव्योंका कर्मजसंयोग भी संभवता नहीं । क्रियावाले द्रव्यका ही सो कर्मजसंयोग होवै है । और ते विभुद्रव्य निरवयव है ।

यातैं तिन विभु द्रव्योंका संयोगज संयोग भी संभवता नहीं। सावयवद्रव्यका हीं सो संयोगज संयोग होवै है और तिन विभुद्रव्योंके संयोगविषे कोई प्रमाण भी नहीं है। जिस प्रमाणके बलतैं सो संयोग अंगीकार करीये इति॥

दो विभुद्रव्योंका संयोगमानने हारे—मीमांसक तौं यह कहे हैं। जैसे एक मूर्त्तद्रव्यका दूसरे मूर्त्तद्रव्यके साथि तथा विभुद्रव्यके साथि संयोग होवै है। तैसे एक विभुद्रव्यका दूसरे विभुद्रव्यके साथि भी संयोग होवै है। सो विभुद्रव्योंका संयोग अनुमानप्रमाण करिकै हीं सिद्ध है। तहां अनुमान—**आकाशं कालादिना संयुज्यते द्रव्यत्वात् शरीरवत्**—अर्थ यह—यह विभु आकाश कालादिक विभुद्रव्योंके संयोगवाला होणे योग्य है द्रव्यहोणेतैं। जो जो द्रव्य होवै है सो सो तिन कालादिकोंके संयोगवाला हीं होवै है। जैसे यह शरीर द्रव्य होणेतैं तिन कालादिकोंके संयोगवाला हीं है। तैसे सो आकाश भी द्रव्य होणेतैं तिन कालादिकोंके संयोगवाला अवश्य होवैंगा इति। इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै सो विभु द्रव्योंका संयोग सिद्ध होवै है। तहां सो विभुद्रव्योंका संयोग निष्क्रिय विभु द्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं कर्मजन्य भी नहीं है। तथा निरवयव विभु द्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं संयोगजन्य भी नहीं है। परिशेषतैं सो विभु-द्रव्योंका संयोग तिन विभु द्रव्योंकी न्यांई उत्पत्ति विनाशतैं रहित नित्य हीं मानणे योग्य है इति॥

इसका खण्डन—सो यह मीमांसकोंका मत समीचीन नहीं है। काहेतैं ? ता विभुद्रव्योंके संयोगकी जो किसी प्रमाण करिकै सिद्धि होवै तौं ता संयोगविषे नित्यपणा भी सिद्धि होवै। परंतु ता विभुद्रव्योंके संयोगकी किसी प्रमाण करिकै सिद्धि होइ सकती नहीं। और ता संयोगकी सिद्धि वासतै ता मीमांसकनैं जो पूर्व अनुमान कह्या था सो अनुमान तौं सत्प्रतिपक्षतादोष वाला होणेतैं प्रमाणरूप हीं नहीं है। तहां जिस हेतुके साध्यके अभावका साधक दूसरा हेतु होवै है सो हेतु सत्प्रतिपक्षतादोषवाला होवै है। तहां पूर्वउक्त द्रव्यत्वरूप हेतुके विभुसंयोग रूप साध्यके अभावका साधक यह हेतु है। **आकाशं कालादिना न संयुज्यते निष्क्रियत्वे सति निरवयवत्वात् रूपादिवत्**। अर्थ यह—यह आकाश कालादिकोंके संयोगवाला नहीं है। क्रियातैं रहित हूआ निरवयव होणेतैं। जो जो पदार्थ क्रियातैं रहित हूआ निरवयव होवै है सो सो पदार्थ तिन कालादिकोंके संयोगवाला भी नहीं होवै है। जैसे रूपादिक गुण क्रियातैं रहितहूए निरवयव हैं। यातैं ते रूपादिक गुण तिन कालादिकोंके संयोगवाले भी नहीं हैं। तैसे यह आकाश भी क्रियातैं रहित हूआ निरवयव है। यातैं यह आकाश भी तिन कालादिकोंके संयोगवाला नहीं होवैंगा इति। इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै ता आकाशनामा विभु द्रव्यविषे तिन कालादिक विभु द्रव्योंके संयोगका अभाव हीं सिद्ध होवै है। यातैं सो पूर्वउक्त द्रव्यत्वरूप हेतु सत्प्रतिपक्षतादोषवाला होणेतैं दुष्ट है ता दुष्टहेतुतैं तिन विभुद्रव्योंके संयोगकी सिद्धि होवै नहीं। पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'निर-

वयवत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे ' निष्क्रियत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणुवोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? तिन परमाणुवोंविषे सो निरवयवत्व हेतु तौं है, परंतु सो कालादिकोंके संयोगका अभावरूप साध्य नहीं है । जिस कारणतैं ते परमाणु तिन कालादिकोंके संयोगवाले हीं हैं । ता साध्याभाववत् वृत्तित्वरूप व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' निष्क्रियत्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन परमाणुवोंविषे क्रियाका अभाव नहीं है । किंतु क्रिया हीं रहे है । यातैं तिन परमाणुवोंविषे ता उक्त साध्यकी न्यांई ता उक्तहेतुका भी अभाव होणेतैं व्यभिचार होवै नहीं । किंवा ता उक्त अनुमानविषे ' निष्क्रियत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे ' निरवयवत्वात् ' यह पद नहीं कथन करते तौं संयोगज संयोगवाले निष्क्रिय घटादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? तिन घटादिकोंविषे सो निष्क्रियत्व रूप हेतु तौं है परंतु सो संयोगका अभावरूप साध्य है नहीं । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' निरवयवत्वात् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन घटादिकोंविषे सो निरवयवपणा है नहीं । यातैं तिन घटादिकोंविषे ता उक्त साध्यकी न्यांई ता उक्त हेतुका भी अभाव होणेतैं व्यभिचार होवै नहीं इति ॥

विभागकी आपत्तिरूप दूसरा दोष- किंवा ता मीमांसकनैं जिस द्रव्यत्वरूप हेतु करिकै तिन विभुद्रव्योंके संयोगकी सिद्धि करी है । तिस द्रव्यत्वरूप हेतु करिकै तिन विभुद्रव्योंके विभागकी भी सिद्धि होइ सके है । तहां अनुमान-**आकाशं कालादिना विभक्तं द्रव्यत्वात् शरीरवत्** । अर्थ यह-यह विभु आकाश कालादिक विभुद्रव्योंके विभागवाला है । द्रव्यरूप होणेतैं । जो जो द्रव्य होवै है सो सो तिन कालादिकोंके विभागवाला हीं होवै है । जैसे यह शरीर द्रव्यरूप होणेतैं तिन कालादिकोंके विभागवाला हीं होवै है । तैसे सो आकाश भी द्रव्यरूप होणेतैं तिन कालादिकोंके विभागवाला हीं होवैगा इति। इस प्रकारके अनुमान करिकै तिन विभु द्रव्योंके विभागकी भी सिद्धि होइ सकै है । तहां सो विभु द्रव्योंका विभाग तिन निष्क्रिय विभुद्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं कर्मज विभाग भी कह्या जावै नहीं । तथा तिन निरवयव विभु द्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं विभागज विभाग भी कह्या जावै नहीं । परिशेषतैं तिस विभुद्रव्योंके संयोगकी न्यांई सो विभु द्रव्योंका विभाग भी नित्य हीं मानणा होवैगा । सो अत्यंतविरुद्ध है। जिस कारणतैं एक हीं वस्तु एकहीं कालविषे तिसी वस्तुके संयोगवाला तिसी वस्तुके विभागवाला कहणा सम्भवता नहीं । यातैं सो पूर्वउक्त द्रव्यत्वहेतु ता विभुद्रव्योंके संयोगका साधक नहीं है ॥ इति ॥ ८ ॥

अथ विभागनिरूपणम् ।

तहां लक्षण-**संयोगनाशकत्वे सति संयोगजन्यः विभागः** । अर्थ यह-जो गुण संयोगका नाशक होवै है तथा संयोग करिकै जन्य होवै है । सो गुण विभाग कह्या जावै है।

तहां जिन द्रव्योंका परस्पर संयोग नहीं होवै है, तिन द्रव्योंका परस्पर विभाग भी होता नहीं । किंतु पूर्व परस्पर संयुक्त द्रव्योंका हीं पश्चात् परस्पर विभाग होवै है । यातैं सो विभाग ता संयोग करिकै जन्य कह्या जावै है और ता विभागके उत्पन्नहूए सो पूर्वसंयोग नष्ट होइ जावै है । यातैं सो विभाग ता संयोगका नाशक भी है । यातैं यह उक्त विभागका लक्षण सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'संयोगजन्यो विभागः' इतनामात्र हीं जो ता विभागका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संयोगनाशकत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं पूर्वउक्त संयोगज संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो संयोगज संयोग भी ता संयोग करिकै हीं जन्य होवै है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संयोगनाशकत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो संयोगजसंयोग संयोग करिकै जन्य हूआ भी संयोगका नाशक है नहीं । यातैं ता संयोगजसंयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'संयोगनाशको विभागः' इतनामात्र हीं जो ता विभागका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संयोगजन्यः' यह पद नहीं कथन करते तौं संयोगविषे तथा अदृष्ट ईश्वरादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे घटादिकोंके प्रध्वंसाभावरूप नाशविषे तिन घटादिकोंकूं प्रतियोगितारूप करिकै कारणता होवै है तैसे ता संयोगके नाशविषे भी ता संयोगकूं प्रतियोगितारूप करिकै कारणता हीं होवै है । यातैं सो संयोग भी संयोगका नाशक हीं है । तैसे अदृष्टईश्वरादिक भी कार्यमात्रके जनक होणेतैं ता संयोगके नाशक हीं हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संयोग जन्यः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो संयोग तथा अदृष्टईश्वरादिक ता संयोग करिकै जन्य नहीं हैं, यातैं तिनोंविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । **शंका**—इस उक्त लक्षणकी भी संयोगज संयोगविषे अतिव्याप्ति हीं होवै है । काहेतैं ? प्रध्वंसाभावरूप नाशविषे प्रतियोगीकूं भी कारणता होणेतैं सो संयोगजसंयोग भी आपणे नाशका कारण हीं है तथा संयोग करिकै जन्य भी है । **समाधान**—ता उक्तलक्षणविषे जिस संयोगका नाशकत्व है तिसी संयोग करिकै जन्यत्व विवक्षित है सो जैसे विभागविषे है तैसे ता संयोगज संयोगविषे है नहीं, किंतु सो संयोगज संयोग तौं प्रतियोगीरूप करिकै आपणा नाशक होवै है । और अन्य संयोग करिकै जन्य होवै है । यातैं ता संयोगज संयोगविषे ता विभागके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

दूसरा लक्षण—अथवा ता विभागका यह दूसरा लक्षण—करणा **विभक्तव्यवहारविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् विभागः** । अर्थ यह—यह द्रव्य इस द्रव्यसैं विभक्त है । अर्थात् इस द्रव्यके विभागवाला है । या प्रकारका जो विभागविषयक प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहार है ता व्यवहारका विषय सो विभागगुण है ता विभागविषे वर्त्तणे हारि तथा गुणत्वजातिका व्याप्य

विभागत्व जाति है सा विभागत्वजाति ता सर्वविभागविषे रहे है। यातैं यह उक्तविभागका लक्षण भी संभवै है। पदकृत्य—तहां गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षणविषे 'विभक्तव्यवहारविषयवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपत्वादिकजातियां ता विभक्तव्यवहारके विषयभूत विभागविषे वृत्ति नहीं है, यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं और ता विभागवृत्ति गुणत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है। यातैं ता गुणत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके तहां अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

तीसरा लक्षण—अथवा पूर्वउक्त संयोगकी न्यांई इस विभागका यह तीसरा लक्षण करणा—**व्यासज्यवृत्तिमात्रवृत्ति संयोगावृत्ति गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमान् विभागः।** अर्थ यह—व्यासज्यवृत्ति धर्ममात्रविषे वर्त्तणेहारी तथा संयोगविषे अवर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका साक्षात् व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण विभाग कह्या जावै है। तहां पूर्व उक्त संयोगकी न्यांई यह विभाग भी दो द्रव्योंविषे वृत्ति होणेतैं व्यासज्यवृत्ति कह्या जावै है। ता व्यासज्यवृत्ति विभागमात्रविषे वर्त्तणेहारी विभागत्व जाति है। सा विभागत्वजाति ता संयोगविषे अवृत्ति भी है तथा गुणत्वजातिका साक्षात् व्याप्य भी है। ऐसी विभागत्व जातिवाला सो विभागगुण हीं है। यातैं ता विभागका यह उक्त तृतीय लक्षण भी संभवै है। तहां इस लक्षणविषे 'संयोगवृत्ति' यह पद संयोगविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतैं है और दूसरे पदोंका फल तौं पूर्वउक्त संयोगके लक्षणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं सो ईहां भी यथायोग्य जानिलेणा इति॥

चौथा लक्षण—अथवा पूर्वउक्त संयोगके लक्षणकी न्यांई इस विभागका यह चतुर्थ लक्षण करणा। **जन्यद्रव्यवृत्तित्वे सति स्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिसंयोगभिन्नगुणः विभागः।** अर्थ यह—जो गुण जन्यद्रव्यविषे वृत्ति होवै है तथा स्वसमानाधिकरण अभावका प्रतियोगी होवै है तथा संयोगतैं भिन्न होवै है सो गुण विभाग कह्या जावै है। तहां यह विभागगुण पूर्वउक्त संयोगकी न्यांई घटादिक जन्य द्रव्योंविषे वृत्ति भी है, तथा स्वसमानाधिकरण अभावका प्रतियोगी भी है, तथा संयोगतैं भिन्न गुण भी है। यातैं ता विभागका यह उक्त चतुर्थ लक्षण भी संभवै है। पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे 'संयोगभिन्न' यह पद ता संयोगविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। और दूसरेपदोंका

फल तौं पूर्वउक्त संयोगके लक्षणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं सो ईहां भी यथा-योग्य जानिलेणा इति ॥

विभागका अधिकरण तथा इसकी अनित्यता—इस प्रकारके उक्त च्यारि लक्षणों करिकै लक्षित सो विभाग गुण ता पूर्वउक्त संयोगकी न्यांई पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे है और सो विभागगुण पूर्वउक्त संयोगकी न्यांई सर्वत्र अनित्य हीं होवै है। कोई भी विभाग नित्य होता नहीं। तहां सो विभाग कहां तौं आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै है और कहां सो विभाग स्वाश्रयद्रव्यके उत्तरदेश संयोग करिकै नाश होवै है। जैसे वृक्षसंयुक्त पक्षीकी क्रिया करिकै उत्पन्न भया जो ता पक्षीवृक्षका विभाग है। सो विभाग ता पक्षीवृक्षरूप आश्रय द्रव्यके नाश करिकै भी नाश होइ जावै है। और ता पक्षीवृक्षरूप आश्रयद्रव्यके विद्यमान हूए भी जबी ता पक्षीका भूमि आदिक उत्तरदेशके साथि संयोग होवै है तबी ता उत्तरदेश संयोग करिकै भी सो पक्षीवृक्षका विभाग नाश होइ जावै है इति ॥

विभागके भेद—तहां पूर्व उक्त संयोगकी न्यांई यह विभाग गुण भी कर्मजविभाग १, विभागज विभाग २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। कर्मज विभाग तथा उसके भेद—तहां क्रिया-रूप कर्म करिकै जन्य विभागकूं कर्मजविभाग कहे हैं। और विभाग करिकै जन्य विभागकूं विभागज विभाग कहे हैं। तहां प्रथम कर्मज विभाग भी अन्यतरकर्मजविभाग १, उभयकर्मज विभाग २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। अन्यतर कर्मज विभाग—तहां जो विभाग एकद्रव्यकी क्रिया करिकै जन्य होवै है सो विभाग अन्यतर कर्मजविभाग कह्या जावै है। जैसे निष्क्रिय पर्वतविषे स्थित पक्षीकी क्रिया करिकै जो ता पक्षीका ता पर्वतसैं विभाग होवै है सो विभाग ता पक्षीमात्रकी क्रिया करिकै जन्य होणेतैं अन्यतरकर्मज विभाग कह्या जावै है। तहां ता विभागके ते पक्षीपर्वत दोनों तौं समवायिकारण होवै हैं और सा पक्षीकी क्रिया असमवायिकारण होवै है। और अदृष्टईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं। इस प्रकार मनकी क्रिया करिकै जन्य जो ता मनका आत्मासैं विभाग है, तथा घटा-दिक मूर्त्तद्रव्योंकी क्रिया करिकै जन्य जो तिन घटादिकोंका आकाशादिक विभुद्रव्योंके साथि विभाग है, सो विभाग भी अन्यतरकर्मज विभाग कह्या जावै है इति ॥

उभय कर्मज विभाग—और जो विभाग दोनों द्रव्योंकी क्रिया करिकै जन्य होवै है सो विभाग उभयकर्मज विभाग कह्या जावै है। जैसे परस्परसंयुक्त दोनों मल्लोंकी क्रिया करिकै जो तिन दोनों मल्लोंका विभाग होवै है तथा परस्परसंयुक्त दोनों मेषोंकी क्रिया करिकै जो तिन दोनों मेषोंका विभाग होवै है सो विभाग उभय कर्मजविभाग कह्या जावै है। तहां ता विभागके ते दोनों मल्ल तथा ते दोनों मेष तौं समवायिकारण होवै हैं। और तिन दोनों मल्लोंकी

क्रिया तथा तिन दोनों मेषोंकी क्रिया ता विभागका असमवायिकारण होवै है । और अदृष्ट-ईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं इति ॥

विभागज विभाग तथा उसके भेद—और दूसरा विभागज विभाग भी कारणमात्रविभागजन्य विभाग १, कारणाकारणविभागजन्यविभाग २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है ।

कारण मात्र विभाग जन्य विभाग—तहां जो विभाग कारणमात्रके विभाग करिकै जन्य होवै है सो विभाग कारणमात्र विभागजन्य विभाग कह्या जावै है । जैसे परस्परसंयुक्त दो कपालोंके मध्य विषे जबी एककपालविषे क्रियारूप कर्म उत्पन्न होवै है । तिसतैं अनंतर ता कपालके कर्म करिकै तिन दोनों कपालोंका विभाग उत्पन्न होवै है, तिसतैं अनंतर ता विभाग करिकै घटके आरंभक तिन दोनों कपालोंके संयोगका नाश होवै है । तिसतैं अनंतर ता कपालसंयोगरूप असमवायिकारणके नाश करिकै ता घटका नाश होवै है । तिसतैं अनंतर सो दो कपालोंका विभाग ता क्रियावाले कपालका आकाशादिरूप पूर्वदेशके साथि विभागकूं उत्पन्न करे हैं । तिसतैं अनंतर ता कपाल पूर्वदेशके विभाग करिकै ता कपालपूर्वदेशके संयोगका नाश होवै है । तिसतैं अनंतर ता कपालका ता क्रिया करिकै उत्तरदेशके साथि संयोग होवै है । तिसतैं अनंतर ता कपाल उत्तर देशके संयोग करिकै ता कपालके क्रियारूप कर्मका नाश होवै है । तहां ता घटके समवायिकारणरूप जे दो कपाल हैं तिन दोनों कपालोंविषे एक कपालकी क्रिया करिकै जो तिन दोनों कपालोंका विभाग हूआ है सो दोनों कपालोंका विभाग ता घटके कारणरूप दो कपालमात्रविषे वृत्तिहोणेतैं कारणमात्रविभाग कह्या जावै है । ऐसे कारणमात्रविभाग करिकै हीं ता क्रियावाले कपालका ता आकाशादिरूप पूर्वदेशसैं विभाग होवै है । यातैं सो कपाल पूर्वदेशका विभाग कारणमात्रविभागजन्य विभाग कह्या जावै है । तहां ता कपालपूर्वदेशके विभागका सो कपाल तथा आकाशादिरूप पूर्वदेश दोनों तौं समवायिकारण होवै हैं । और ता कपालकी क्रियाजन्य सो दो कपालोंका विभाग असमवायिकारण होवै है । और अदृष्टईश्वरादिक निमित्त कारण होवै हैं इति ॥

शंका—ता कपालमात्रके विभाग करिकै जो ता कपाल पूर्वदेशके विभागकी उत्पत्ति नहीं अंगीकार करीये तौं कौन हानि होवै है । समाधान—ता कपालमात्रके विभाग करिकै जो कदाचित् ता कपालपूर्वदेशके विभागकी उत्पत्ति नहीं अंगीकार करीये तौं ता कपालका जो ता आकाशादिरूप पूर्वदेशके साथि संयोग है ता संयोगकूं नित्यता प्राप्त होवैंगी । काहेतैं ? ता कपालपूर्वदेशके संयोगका सो कपालपूर्वदेशका विभाग हीं नाशक होवै है । ता कपाल पूर्व देशके विभागतैं विना ता कपालपूर्वदेशके संयोगका नाश संभवता नहीं यातैं सो कपाल पूर्वदेशका संयोग नित्य हीं होवैंगा । किंवा जिस द्रव्यका जितनैं कालपर्यंत पूर्वदेशके साथि संयोग बन्या रहे है । तिस द्रव्यका तितनैंकालपर्यंत उत्तरदेशके साथि संयोग होता नहीं ।

यातैं ता पूर्वदेशके संयोगकूं ता उत्तरदेशके संयोगका प्रतिबंधकपणा कल्पना कऱ्या जावै है। तैसे ईहां भी ता प्रतिबंधकरूप कपालपूर्वदेशसंयोगके विद्यमानहूए ता कपालका उत्तरदेशके साथि संयोग हीं नहीं होवैंगा। और ता उत्तरसंयोगके नहीं उत्पन्नहूए सो कपालका क्रियारूप कर्म भी नाश नहीं होवैंगा। जिस कारणतैं सो उत्तरसंयोग हीं ता स्वजनक कर्मका निवर्त्तक होवै है। यातैं ता कपालके कर्मकूं भी नित्यता प्राप्त होवैगी। सो संयोगका नित्यपणा तथा कर्मका नित्यपणा कोई भी वादी अंगीकार करता नहीं। यातैं ता कपाल मात्रके विभागतैं ता कपालपूर्वदेशके विभागकी उत्पत्ति अवश्य मानी चाहिये इति ॥

**शंका**—ता संयोग कर्मकी नित्यताके निवृत्त करणे वासतै सो कपालपूर्वदेशका विभाग तौं मानणा, परंतु सो विभाग ता दो कपालोंके विभाग करिकै जन्य नहीं है। किंतु जिस कपालकी क्रियानैं तिन दो कपालोंके विभागकूं उत्पन्न कऱ्या है। सा कपालकी क्रिया हीं ता कपालपूर्वदेशके विभागकूं उत्पन्न करैंगी। यातैं ता दो कपालोंके विभागकी न्यांई सो कपाल पूर्वदेशका विभाग भी कर्मज विभाग हीं है। विभागज विभाग नहीं है। **समाधान**—एक हीं क्रियारूप कर्मकूं आरंभकसंयोगके नाशक विभागकी जनकता तथा अनारंभक संयोगके नाशक विभागकी जनकता होती नहीं। जैसे प्रसंगविषे घटरूप द्रव्यका असमवायिकारण रूप जो दो कपालोंका संयोग है। सो संयोग तौं आरंभक संयोग कह्या जावै है। और ता कपालका जो ता आकाशादिरूप पूर्वदेशके साथि संयोग है। सो संयोग ता घटका जनक है नहीं। यातैं सो संयोग अनारंभक संयोग कह्या जावैं है। तहां ता आरंभक संयोगका नाशक जो दो कपालोंका विभाग है। तथा ता अनारंभक संयोगका नाशक जो ता कपालपूर्वदेशका विभाग है। तिन दोनों विभागोंकी असमवायिकारणतारूप जनकता ता कपालकी क्रियाविषे सम्भवती नहीं। जो कदाचित् ता एक हीं क्रियारूप कर्मकूं ता आरंभक संयोगके नाशक विभागका जनकपणा तथा ता अनारंभकसंयोगके नाशक विभागका जनकपणा मानोंगे तौं विकाशकूं प्राप्तहूए कमलका नाश होणा चाहिये। काहेतैं ? संध्याकालविषे सो कमल मूंदि जावै है और जबी प्रातःकाल होवै है। तबी तिस कमलकी पांखडीयोंके अग्रभागविषे क्रिया होवै है। ता क्रियातैं तिन पांखडीयोंका परस्पर विभाग होवै है। ता विभाग करिकै तिन पांखडीयोंके ता अग्रदेशावच्छिन्न संयोगका नाश होवै है। तहां सो अग्रदेशावच्छिन्न पांखडीयोंका संयोग ता कमलरूप द्रव्यका आरंभक नहीं है। किंतु मूलदेशावच्छिन्न पांखडीयोंका संयोग हीं ता कमलका आरंभक है। यातैं सो अग्रदेशावच्छिन्न पांखडीयोंका संयोग अनारम्भक संयोग कह्या जावै है और सो मूलदेशावच्छिन्न पांखडीयोंका संयोग आरंभक संयोग कह्या जावै है। तहां ता अनारंभक संयोगका नाशक जो विभाग है ता विभागका जनक कर्म तिन पांखडीयोंविषे विद्यमान हीं है। तिस कर्म

करिकै ता मूलदेशावच्छिन्न आरंभक संयोगके नाशक विभागकी उत्पत्ति भी अवश्य होवैगी और ता विभाग करिकै ता आरम्भक संयोगका नाश भी अवश्य होवैगा । ता आरम्भक संयोगके नाश करिकै ता कमलका नाश अवश्य होवैगा। सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। यातैं जो कर्म अनारंभक संयोगके नाशक विभागकूं उत्पन्न करे है सो कर्म आरंभकसंयोगके नाशक विभागकूं उत्पन्न कर्त्ता नहीं यह नियम अवश्य मानणा होवैगा । यातैं ता कपालकी क्रियाकूं ता कपालपूर्वदेशके विभागकी जनकता सम्भवती नहीं । किंतु ता दो कपालोंके विभागकूं हीं ता विभागकी जनकता सम्भवै है इति ॥

कारणाकारण विभागजन्य विभाग—और कारण अकारण दोनोंके विभाग करिकै जन्य जो कार्य अकार्य दोनोंका विभाग है सो विभाग कारण अकारणविभागजन्य विभाग कह्या जावै है। जैसे वृक्षसंयुक्त हस्तविषे क्रिया होइकै जबी ता हस्तवृक्षका विभाग होवै है । तबी शरीरविषे भी ता वृक्षके विभागका व्यवहार होवै है । अर्थात् यह शरीर वृक्षसैं विभक्त है या प्रकारका प्रत्यक्ष होवै है । यातैं ता हस्तवृक्षके विभागतैं अनंतर सो शरीरवृक्षका विभाग अवश्य मानणा होवैगा । तहां ता शरीरवृक्षके विभागविषे सा हस्तकी क्रिया तौं असमवायिकारण होइ सकती नहीं । जिस कारणतैं ता विभागके आश्रयरूप ता शरीरवृक्षविषे सा हस्तकी क्रिया रहती नहीं । तिस विभागके समवायिकारणरूप आश्रयविषे समवायसम्बन्ध करिकै रहीहूई क्रिया हीं ता विभागका असमवायिकारण होवै है और सर्व अवयवोंकी क्रियातैं विना अवयवीद्रव्यविषे क्रिया होती नहीं । यातैं ता हस्तमात्रविषे क्रियाके हूए भी ता शरीरविषे क्रिया है नहीं । जा क्रिया ता शरीरवृक्षके विभागका असमवायिकारण होवै और भावकार्यकी असमवायिकारणतैं विना उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता शरीरवृक्षके विभागका कोई असमवायिकारण अवश्य मान्या चाहिये । यातैं परिशेषतैं सो हस्तवृक्षका विभाग हीं ता शरीरवृक्षके विभागका असमवायिकारण सिद्ध होवै है । तहां हस्तरूप कारणके तथा वृक्षरूप अकारणके विभागनैं हीं सो शरीररूप कार्यका तथा वृक्षरूप अकार्यका विभाग उत्पन्न करीता है । यातैं ता हस्तवृक्षके विभागजन्य ता शरीरवृक्षके विभागकूं शास्त्रवेत्ता पुरुष कारण अकारण विभागजन्य कार्य अकार्यविभाग कहे हैं । ईहां, कारण, अकारण, कार्य, अकार्य इन च्यारों पदोंका अर्थ जो पूर्व संयोगजसंयोग निरूपणविषे कह्या था सोई हीं जानिलेणा इति। इतनैं पर्यंत अन्यतरकर्मज विभाग उभयकर्मज विभाग विभागजविभाग इन तीनोंका उदाहरणसहित निरूपण कह्या ॥

अब तिन तीनों विभगोंके यथाक्रमतैं लक्षणोंकूं कहे हैं । तहां—क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सति क्रियावत्समवेतविभागः अन्यतरकर्मजविभागः । अर्थ यह—जो विभाग स्वजनक क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे समवेत होवै है तथा स्वजनकक्रियावाले द्रव्यविषे समवेत

होवै है। सो विभाग अन्यतर कर्मजविभाग कह्या जावै है । जैसे पक्षीकी क्रिया करिकै उत्पन्न भया जो ता पक्षीका पर्वतसैं विभाग है। सो पक्षी पर्वतका विभाग ता स्वजनक पक्षीकी क्रियाके अभाववाले पर्वतविषे भी समवायसंबंध करिकै रहे है । तथा ता क्रियावाले पक्षीविषे भी समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं सो पक्षीपर्वतका विभाग अन्यतर कर्मज विभाग कह्या जावै है। तहां उभयकर्मज विभागविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै इस लक्षणविषे 'क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। और विभागज-विभागविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै इस लक्षणविषे 'क्रियावत्स-मवेत' यह पद कथन कऱ्या है। और अन्यतर कर्मज संयोगविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै इस लक्षणविषे 'विभाग' यह पद कथन कऱ्या है इति। उभय कर्मज विभागका लक्षण—तहां—**स्वजनकक्रियाऽभाववदसमवेतविभागः उभयकर्मजाविभागः**। अर्थ यह—जो विभाग स्वजनक क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै नहीं रहे है। सो विभाग उभयकर्मजविभाग कह्या जावै है। जैसे दोनों मेषोंकी क्रिया करिकै उत्पन्न भया जो तिन दोनों मेषोंका विभाग है। सो विभाग ता स्वजनक क्रियाके अभाववाले द्रव्यविषे रहता नहीं। किंतु ता स्वजनक क्रियावाले तिन दोनों मेषोंविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं सो दोनों मेषोंका विभाग उभयकर्मज विभाग कह्या जावै है। तहां इस लक्षणविषे भी 'विभाग' यह पद पूर्वउक्त उभयकर्मजसंयोगविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है इति।

विभागज विभागका लक्षण। तहां—**कर्माजन्यविभागः विभागजविभागः**। अर्थ यह—जो विभाग क्रियारूप कर्म करिकै जन्य नहीं होवै है सो विभाग विभागजविभाग कह्या जावै है। जैसे पूर्व उक्त हस्तवृक्षके विभागजन्य शरीरवृक्षका विभाग ता क्रियारूप कर्म करिकै अजन्य होणेतैं विभागज विभाग कह्या जावै है। तहां इस लक्षणविषे भी 'विभाग' यह पद ता पूर्व उक्त संयोगज संयोगविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है इति।

दो विभुद्रव्योंके विभागका खण्डन—किंवा जिन द्रव्योंका परस्पर संयोग होवै है तिन द्रव्योंका हीं परस्पर विभाग होवै है। और जिन द्रव्योंका परस्पर संयोग नहीं होवै है तिन द्रव्योंका परस्पर विभाग भी होता नहीं, यह नियम है। यातैं आकाशादिक विभुद्रव्योंका पूर्वउक्त रीतिसैं जैसे परस्पर संयोग नहीं होवै है। तैसे तिन आकाशादिक विभुद्रव्योंका परस्पर विभाग भी होता नहीं। और आकाश कालसैं विभक्त है सो काल दिशासैं विभक्त है या प्रकारकी जो तिन विभुद्रव्योंविषे परस्परविभक्त प्रतीति होवै है। सा विभक्तप्रतीति तिन विभुद्रव्योंके विभागकूं विषय करती नहीं। किंतु सा विभक्त प्रतीति तिन विभुद्रव्योंके संयोगके अभावकूं हीं विषय करे है। यातैं 'सिंहो देवदत्तः' इस गौणप्रतीतिकी न्यांई ता गौणप्रतीतितैं तिन विभुद्रव्योंके विभागकी सिद्धि होवै नहीं इति॥

विभागकूं संयोगका अभावरूप माननेहारे । ईहां केईक ग्रंथकार तौं यह कहे हैं । एक हीं विभक्त प्रतीतिकूं विभुद्रव्योंविषे तौं संयोगाभावविषयक मानणा और मूर्त्तद्रव्योंविषे विभागविषयक मानणा यह अत्यंत विरुद्ध है । किंतु सा विभक्त प्रतीति सर्वत्र ता संयोगाभावकूं हीं विषय करे है । कहां भी ता विभागगुणकूं विषय करती नहीं । यातैं ता संयोगाभावका नाम हीं विभाग हैं । सो विभाग ता संयोगाभावतैं भिन्न गुण नहीं हैं इति । उनका खण्डन— सो यह मत समीचीन नहीं है । काहेतैं ? जो वादी संयोगके अभावकूं हीं विभाग माने है ता वादीसैं यह पूछा चाहिये । ता संयोगके अत्यंताभावका नाम विभाग है । अथवा ता संयोगके प्रध्वंसाभावरूप नाशका नाम विभाग है । तहां जो प्रथम अत्यंताभाव पक्ष अंगीकार करो तौं रूपरसादिक गुणोंविषे भी सो संयोगका अत्यंताभाव विद्यमान हीं है । यातैं 'रूपं रसेन-विभक्तम्' अर्थ यह—रूप रससैं विभक्त है या प्रकारकी विभक्त प्रतीति होणी चाहिये । और रूपादिक गुणोंविषे सा विभक्तप्रतीति होती नहीं । यातैं ता संयोगके अत्यंताभावविषे विभागरूपता सम्भवती नहीं और संयोगके नाशका नाम विभाग है यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करौ तौं यद्यपि सो उक्तदोष प्राप्त होता नहीं । काहेतैं ? सो ध्वंसरूप नाश आपणे प्रतियोगीके अधिकरणविषे हीं रहे है । तिन रूपादिक गुणोंविषे सो संयोगरूप प्रतियोगी रहता नहीं । यातैं तिन रूपादिक गुणोंविषे सो संयोगका प्रध्वंसाभावरूप नाश भी रहता नहीं जिस नाशकूं सा उक्तविभक्त प्रतीति विषय करै । तथापि जहां घटरूप आश्रयद्रव्यके नाश करिकै ता घट आश्रित संयोगका नाश हूआ है तहां भी ता संयोगके नाशकूं लैके 'घटोविभक्तः' या प्रकारकी प्रतीति होणी चाहिये और तहां सा विभक्त-प्रतीति होती नहीं । किंवा जहां घटपट दोनोंके संयोगका नाश होइकै पुनः ता घटपटका संयोग हूआ है तहां भी 'घटः पटे न विभक्तः' या प्रकारकी विभक्तप्रतीति होणी चाहिये । जिस कारणतैं ता पुनः संयोगकालविषे सो पूर्वसंयोगका नाश अनंत होणेतैं ता घटविषे विद्यमान हीं है और तुमारेमतविषे ता पुनः संयोगतैं पूर्व सो संयोगका नाश हीं ता विभक्तप्रतीतिका विषय था सो पूर्वसंयोगका नाश ता पुनः संयोगकालविषे भी विद्यमान हीं है और ता पुनः संयोगकालविषे सा विभक्तप्रतीति किसीकूं भी होती नहीं । यातैं ता संयोगके नाशविषे भी विभागरूपता सम्भवती नहीं । किंतु सो विभाग ता संयोगके अभावतैं भिन्न हीं मान्या चाहिये इति । किंवा संयोगके अभावका नाम विभाग है । अथवा विभागके अभावका नाम संयोग है । इन दोनों अर्थोंविषे एक अर्थका साधक कोई युक्ति है नहीं । यातैं संयोग विभाग इन दोनोंकूं भावरूपता हीं अंगीकार करणी उचित है । यातैं जैसे सो संयोग भिन्नगुण है । तैसे सो विभाग भी भिन्नगुण है इति ॥

इति विभागनिरूपणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अथ परत्वअपरत्वनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—परव्यवहारविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत् परत्वम् । तथा अपरव्यवहारविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत् अपरत्वम् । अर्थ यह—परव्यवहारके विषयविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण परत्व कह्या जावै है । तहां यह मूर्त्तद्रव्य इस मूर्त्तद्रव्यतैं पर है, या प्रकारका जो प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहार है सो व्यवहार ता परत्वगुणकूं हीं विषय करे है । यातैं सो परत्वगुण ता व्यवाहारका विषय कह्या जावै है । ऐसे परव्यवहारके विषयभूत परत्वविषे वर्त्तणे हारी तथा गुणत्व जातिका व्याप्य ऐसी परत्वत्वजाति है, सा परत्वत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्वपरत्वोंविषे रहे है । यातैं यह उक्त परत्वका लक्षण संभवै है इति । इस प्रकार यह मूर्त द्रव्य इस मूर्त्तद्रव्यतैं अपर है या प्रकारका जो प्रत्यक्षज्ञानरूप व्यवहार है सो व्यवहार ता अपरत्वगुणकूं हीं विषय करे है । यातैं सो अपरत्वगुण ता अपरव्यवहारका विषय कह्या जावै है । ऐसे अपर व्यवहारके विषयभूत अपरत्वविषे वर्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी अपरत्वत्व जाति है । सा अपरत्वत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्व अपरत्वोंविषे रहे है । यातैं यह उक्त अपरत्वका लक्षण संभवै है इति । पदकृत्य—तहां गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता परत्वअपरत्वके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै तिन दोनों लक्षणोंविषे यथाक्रमतैं 'परव्यवहारविषयवृत्ति अपरव्यवहाराविषयवृत्ति' यह दो पद कथन कर्‍ये हैं । तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता परअपरव्यवहारके विषयभूत परत्व अपरत्वविषे रहतीयां नहीं । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे तिन लक्षणोंकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा तिन दोनों लक्षणोंविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद जो नहीं कथन करते । तौं ता परअपरव्यवहारके विषयभूत परत्वअपरत्वविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे तिन दोनों लक्षणोंकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै तिन लक्षणोंविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कर्‍या है । तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है । यातैं ता गुणत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके तहां अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

परत्व अपरत्वके भेद—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित ते परत्वअपरत्व दोनों गुण दिक्कृत १, कालकृत २ इस भेद करिकै दो दो प्रकारके होवै हैं । अर्थात् दिक्कृतपरत्व १, दिक्कृत अपरत्व २ तथा कालकृतपरत्व १, कालकृतअपरत्व २ इसी दिक्कृतपरत्व अपरत्वकूं दैशिकपरत्व, दैशिक अपरत्व कहे हैं । तथा इसी कालकृत परत्व अपरत्वकूं कालिकपरत्व कालिक अपरत्व कहे है इति ॥ इसके रहणेके स्थान—तहां यह परत्व अपरत्व दोनों गुण पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांचमूर्त द्रव्योंविषे हीं रहे हैं । आकाशादिक विभुद्रव्यों-

विषे रहते नहीं, ताके विषे भी दैशिकपरत्व अपरत्व तौं मूर्त्तद्रव्यमात्रविषे रहे है । अर्थात् परमाणुमनरूप नित्यमूर्त्त द्रव्योंविषे तथा द्व्यणुकतैं लैके घटादिपर्यंत सर्वजन्य मूर्त्तद्रव्योंविषे सो दैशिक परत्वअपरत्व रहे है । और कालिक परत्व अपरत्व तौं केवल जन्य मूर्त्तद्रव्योंविषे हीं रहे है । परमाणुमनरूप नित्यमूर्त्तद्रव्योंविषे सो कालिक परत्व अपरत्व रहता नहीं । और केईक ग्रन्थकार–तौं यह कहे हैं सो कालिकपरत्व अपरत्व केवल प्राणीमात्रविषे हीं रहे है । घटादिकोंविषे सो कालिकपरत्व अपरत्व रहता नहीं इति ॥

विभागकी न्याईं अनित्यता–किंवा जैसे पूर्वउक्त संयोगगुण तथा विभागगुण उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं सर्वत्र अनित्य हीं होवै है तैसे यह दैशिकपरत्व अपरत्वगुण तथा कालिकपरत्वअपरत्व गुण भी उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं सर्वत्र अनित्य हीं होवै है । किसी भी मूर्त्त द्रव्यविषे सो परत्वअपरत्वगुण नित्य होता नहीं इति ॥

उत्पत्तिका प्रकार–अब ता परत्वअपरत्वगुणविषे अनित्यताके स्पष्ट करणे वासतै प्रथम दैशिक परत्वअपरत्वके उत्पत्तिका प्रकार वर्णन करे हैं–तहां द्रष्टा पुरुषके अधिकरणकी अपेक्षा करिकै एक हीं पूर्व पश्चिमादिक दिशाविषे पूर्वपश्चात्भाव करिकै स्थित जे दो मूर्त्त द्रव्य हैं तिन दोनों मूर्त्तद्रव्योंके मध्यविषे जिस मूर्त्तद्रव्यकी अपेक्षा करिकै जिस मूर्त्तद्रव्यविषे ता द्रष्टा पुरुषकूं आपणे अधिकरण देशतैं विप्रकृष्टत्वबुद्धि होवै है तिस विप्रकृष्ट मूर्त्तद्रव्यविषे तौं दैशिकपरत्वकी उत्पत्ति होवै है । और तिन दोनों मूर्त्तद्रव्योंके मध्यविषे जिस मूर्त्तद्रव्यकी अपेक्षाकरिकै जिस मूर्त्तद्रव्यविषे ता द्रष्टापुरुषकूं आपणे अधिकरणदेशतैं सन्निकृष्टत्वबुद्धि होवै है तिस सन्निकृष्ट मूर्त्तद्रव्यविषे तौं दैशिकअपरत्वकी उत्पत्ति होवै है । जैसे काशीविषे स्थित पुरुषके ता काशीरूप अधिकरणकी अपेक्षा करिकै एक हीं पश्चिमदिशाविषे पूर्वपश्चात् भाव करिकै स्थित जे प्रयाग, मथुरा, रूप दो मूर्त्त द्रव्य है तिन प्रयाग मथुरारूप दोनों मूर्त्त द्रव्योंके मध्यविषे ता मथुराविषे तौं ता काशीस्थ पुरुषकूं प्रयागकी अपेक्षा करिकै मथुरा काशीसैं विप्रकृष्ट है या प्रकारकी विप्रकृष्टत्वबुद्धि होवै है । यातैं ता विप्रकृष्टत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धि करिकै ता मथुराविषे तौं दैशिकपरत्वकी उत्पत्ति होवै है । और ता काशीस्थ पुरुषकूं तिस प्रयागविषे तौं मथुराकी अपेक्षा करिकै प्रयाग काशीसैं सन्निकृष्ट है, या प्रकारकी सन्निकृष्टत्व बुद्धि होवै है । यातैं ता सनिकृष्टत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धि करिकै ता प्रयागविषे दैशिक अपरत्वकी उत्पत्ति होवै है ॥

उसके कारण । तहां–ता मथुरानिष्ठ दैशिकपरत्वका सो मथुरारूप मूर्त्तद्रव्य तौं समवायिकारण होवै है और ता मथुरारूप मूर्त्तद्रव्यके साथि जो दिशाका संयोग संबंध है सो दिशाका संयोग ता परत्वका असमवायिकारण होवै है । और सा उक्त विप्रकृष्टत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धि ता

परत्वका निमित्तकारण होवै है। इस प्रकार ता प्रयागनिष्ठ दैशिक अपरत्वका भी सो प्रयाग रूप मूर्त्तद्रव्य तौं असमवायिकारण होवै है। और ता प्रयागरूप मूर्त्त द्रव्यके साथि जो दिशाका संयोग संबंध है सो दिशाका संयोग ता दैशिक अपरत्वका असमवायिकारण होवै है। और सा उक्त संनिकृष्टत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धि ता दैशिक अपरत्वका निमित्तकारण होवै है॥

**शंका**—ता विप्रकृष्टत्वबुद्धिकूं जो ता दैशिकपरत्वका निमित्तकारण मानोंगे तथा ता सन्निकृष्टत्वबुद्धिकूं जो ता दैशिकअपरत्वका निमित्तकारण मानोंगे तौं जहां ता द्रष्टा पुरुषकूं सन्निकृष्टवस्तुविषे विप्रकृष्टत्वका भ्रम हूआ है तथा विप्रकृष्टवस्तुविषे सन्निकृष्टत्वका भ्रम हूआ है। तहां ता भ्रमरूप विप्रकृष्टत्वबुद्धितैं ता सन्निकृष्टवस्तुविषे ता दैशिकपरत्वकी उत्पत्ति होणी चाहिये। तथा ता भ्रमरूप सन्निकृष्टत्वबुद्धितैं ता विप्रकृष्टवस्तुविषे ता दैशिकअपरत्वकी उत्पत्ति होणी चाहिये। **समाधान**—जैसे सा विप्रकृष्टत्वबुद्धि ता दैशिकपरत्वका निमित्तकारण होवै है, तैसे ता विप्रकृष्टवस्तुविषे रह्याहूआ सो विप्रकृष्टत्वधर्म भी ता दैशिकपरत्वका निमित्तकारण होवै है। इस प्रकार जैसे सा सन्निकृष्टत्वबुद्धि ता दैशिकअपरत्वका निमित्तकारण होवै है। तैसे ता सन्निकृष्ट वस्तुविषे रह्या हूआ सो सन्निकृष्टत्व धर्म भी ता दैशिक अपरत्वका निमित्तकारण होवै है। तहां सो विप्रकृष्टत्वधर्म ता सन्निकृष्ट वस्तुविषे रहता नहीं और सो सन्निकृष्टत्व धर्म ता विप्रकृष्टवस्तुविषे रहता नहीं। यातैं ता निमित्तकारणके अभावतैं ता सन्निकृष्टवस्तुविषे तौं ता दैशिकपरत्वकी उत्पत्ति होवै नहीं और ता विप्रकृष्टवस्तुविषे ता दैशिकअपरत्वकी उत्पत्ति होवै नहीं इति॥

विप्रकृष्ट तथा सन्निकृष्टके स्वरूपका वर्णन—अब जिस विप्रकृष्टत्वकूं तथा सन्निकृष्टत्वकूं विषय करती हूई सा उक्त अपेक्षाबुद्धि ता दैशिकपरत्व अपरत्वका निमित्तकारण होवै है, तिस विप्रकृष्टत्व सन्निकृष्टत्वका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां प्रयागकी अपेक्षा करिकै मथुरा काशीतैं विप्रकृष्ट है और ता मथुराकी अपेक्षा करिकै प्रयाग काशीतैं सन्निकृष्ट है। या प्रकारकी अपेक्षाबुद्धिवाला जो सो काशीस्थ पुरुष है। ता पुरुषके अधिकरणरूप देशतैं प्रारम्भ करिकै जितनैंकी मूर्त्तद्रव्योंके संयुक्त संयोग ता मथुराविषे रहे है। अर्थात् ता अधिकरणदेशयुक्त प्रथम मूर्त्तद्रव्यका संयोग तथा ता प्रथममूर्त्तद्रव्यसंयुक्त द्वितीयमूर्त्तद्रव्यका संयोग तथा ता द्वितीयमूर्त्तद्रव्यसंयुक्त तृतीयमूर्त्तद्रव्यका संयोग तथा ता तृतीयमूर्त्तद्रव्यसंयुक्त चतुर्थमूर्त्तद्रव्यका संयोग इस रीतिसैं जितनैंकी मूर्त्तद्रव्योंके संयुक्त संयोग ता मथुराविषे रहे हैं। तितनैं ते मूर्त्तद्रव्योंके संयुक्त संयोग ता प्रयागविषे रहते नहीं। किंतु ता प्रयागनिष्ठ संयुक्तसंयोगोंकी अपेक्षा करिकै ता मथुराविषे ते संयुक्तसंयोग बहुत रहे हैं और ता मथुरानिष्ठ संयुक्तसंयोगोंकी अपेक्षा करिकै ता प्रयागविषे ते संयुक्तसंयोग अल्प रहे हैं। तहां ता प्रयागनिष्ठ अल्पसंयुक्तसंयोगोंकी

अपेक्षा करिकै ता मथुराविषे जो बहुतर संयुक्त संयोगवत्त्व है, यह हीं ता मथुराविषे विप्रकृष्टत्व है और ता मथुरानिष्ठ संयुक्तसंयोगोंकी अपेक्षा करिकै ता प्रयागविषे जो अल्पतर-संयुक्त संयोगवत्त्व है । यह हीं ता प्रयागविषे सन्निकृष्टत्व है इति ॥

अब ता दैशिक परत्व अपरत्वका लक्षण कहे हैं तहां—दिक्संयोगासमवायिकारणकं परत्वं दैशिकपरत्वम् ॥ १ ॥ दिक्संयोगासमवायिकारणकमपरत्वं दैशिकापरत्वम् ॥ २ ॥ अर्थ यह—जिस मूर्त्तद्रव्यविषे सो दैशिक परत्व अपरत्व उत्पन्न होवै है । तिस मूर्त्तद्रव्यके साथि जो दिशाका संयोगसम्बन्ध है सो दिक्संयोग है असमवायिकारण जिसका ऐसा जो परत्व है सो परत्व दैशिकपरत्व कह्या जावै है । और सो दिक्संयोग है असमवायिकारण जिसका ऐसा जो अपरत्व है सो अपरत्व दैशिकअपरत्व कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां इन दोनों लक्षणोंविषे ' दिक् ' यह पद जो नहीं कथन करते तौं कालिकपरत्वअपरत्वविषे इस दैशिकपरत्व अपरत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? जैसे दैशिकपरत्व अपरत्व-विषे दिशाका संयोग असमवायिकारण होवै है तैसे ता कालिकपरत्व अपरत्वविषे भी कालका संयोग असमवायिकारण होवै है । यातैं संयोग असमवायिकारणक परत्व अपरत्वपणा ता कालिकपरत्वअपरत्वविषे भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतैं तिन दोनों लक्षणोंविषे ' दिक् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता कालिकपरत्व अपरत्वविषे सो दिक्संयोग असमवायिकारणकत्व रहता नहीं । यातैं ता कालिकपरत्वअपरत्वविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा तिन दोनों लक्षणोंविषे ' परत्व अपरत्व ' यह दोनों पद जो नहीं कथन करते तौं ता दैशिकपरत्वके लक्षणकी ता दैशिकअपरत्वविषे अतिव्याप्ति होती । और ता दैशिकअपरत्वके लक्षणकी ता दैशिकपरत्वविषे अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो दिक्संयोग असमवायिकारणकत्व ता दैशिकपरत्व अपरत्वविषे समान हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै तिन दोनों लक्षणोंविषे यथाक्रमतैं ' परत्व अपरत्व ' यह दो पद कथन कऱ्ये हैं इति ॥

अब कालिकपरत्वअपरत्वके उत्पत्तिका प्रकार वर्णन करे हैं । तहां—एकदिशाविषे स्थित वा भिन्नभिन्नदिशाविषे स्थित ऐसे जे एककालविषे स्थित युवान वृद्ध यह दो पुरुष हैं । तिन दोनों पुरुषोंके मध्यविषे ता वृद्धपुरुषविषे तौं अन्यद्रष्टा पुरुषकूं यह वृद्ध पुरुष इस युवान पुरुषकी अपेक्षा करिकै ज्येष्ठ है, या प्रकारकी ज्येष्ठत्वबुद्धि होवै है । और तिस युवान पुरुषविषे तौं ता अन्यद्रष्टा पुरुषकूं यह युवानपुरुष इस वृद्धपुरुषकी अपेक्षा करिकै कनिष्ठ है, या प्रकारकी कनिष्ठत्वबुद्धि होवै है । तहां ता ज्येष्ठत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धि करिकै ता वृद्ध पुरुषविषे तौं कालिकपरत्व उत्पन्न होवै है और ता कनिष्ठत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धि करिकै ता युवानपुरुषविषे कालिक अपरत्व उत्पन्न होवै है । तहां सो वृद्धशरीर तौं ता कालिकपरत्वका समवायिकारण

होवै हैं । और ता वृद्धशरीरके साथि जो कालका संयोगसंबंध है सो कालका संयोग ता कालिकपरत्वका असमवायिकारण होवै है और सो ज्येष्ठत्व तथा सा ज्येष्ठत्वबुद्धिरूप अपेक्षा-बुद्धि ता कालिकपरत्वका निमित्तकारण होवै है । इस प्रकार सो युवानशरीर तौं ता कालिक-अपरत्वका समवायिकारण होवैं हैं । और ता युवानशरीरके साथि जो कालका संयोगसंबंध है । सो कालका संयोग ता कालिक अपरत्वका असमवायिकारण होवै है । और सो कनिष्ठत्व तथा सा कनिष्ठत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धि ता कालिक अपरत्वका निमित्तकारण होवै हैं इति ॥

ज्येष्ठत्व कनिष्ठत्वके स्वरूपका वर्णन—अब जिस ज्येष्ठत्वकनिष्ठत्वकूं विषय करतीहूई सा उक्त अपेक्षाबुद्धि ता कालिकपरत्व अपरत्वका निमित्तकारण होवै है तिस ज्येष्ठत्व-कनिष्ठत्वका स्वरूप वर्णन करे हैं । तहां इस युवानपुरुषकी अपेक्षा करिकै यह वृद्ध पुरुष ज्येष्ठ है और इस वृद्धपुरुषकी अपेक्षा करिकै यह युवानपुरुष कनिष्ठ है । या प्रकारकी अपेक्षा बुद्धिके उत्पत्तिक्षणतैं लैके ता वृद्धशरीरके उत्पत्तिक्षणपर्यंत जितनीकी सूर्यकी क्रिया उत्पन्न होइकै नष्ट हूई हैं । उतनी सूर्यकी क्रिया ता युवान शरीरकी उत्पत्तिक्षणपर्यंत होतीयां नहीं । किंतु तिन क्रियावोंतैं ते क्रिया अल्प होवै हैं । यातैं ता युवानशरीरकी अपेक्षा करिकै ता वृद्धशरीरविषे जो सूर्यकी बहुतर क्रियावोंके अंतराय करिकै जन्यत्व है । यह हीं ता वृद्धशरीर विषे ज्येष्ठत्व है । और ता वृद्धशरीरकी अपेक्षा करिकै ता युवान शरीरविषे जो सूर्यकी अल्पतर क्रियावोंके अंतराय करिकै जन्यत्व है । यह हीं ता युवानशरीरविषे कनिष्ठत्व है इति ॥

अब ता कालिकपरत्व अपरत्वके लक्षणका—वर्णन करे हैं । तहां—**कालसंयोगासमवायि-कारणकं परत्वं कालिकपरत्वम् ॥ १ ॥ कालसंयोगासमवायिकारणकमपरत्वं कालिका-परत्वम्** । अर्थ यह—ता कालिकपरत्वअपरत्वके आश्रयभूत जन्य द्रव्यके साथि जो कालका-संयोगहै सो कालका संयोग है असमवायिकारण जिसका ऐसा जो परत्व है । सो परत्व कालिकपरत्व कह्या जावै है । और सो कालका संयोग है असमवायिकारण जिसका ऐसा जो अपरत्व है सो अपरत्व कालिक अपरत्व कह्या जावै है । पद कृत्य—तहां इन दोनों लक्षणोंविषे 'काल' यह पद जो नहीं कथन करते तौं पूर्वउक्त दैशिक परत्वअपरत्वविषे इस कालिक परत्वअपरत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं सो संयोग असमवायिकारणकत्व ता दैशिक परत्वअपरत्वविषे भी है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै इन दोनों लक्षणोंविषे 'काल' यह पद कथन कर्‍या है । तहां ता दैशिक परत्वअपरत्वविषे सो काल-संयोग असमवायिकारणकत्व है नहीं । यातैं ता दैशिकपरत्वअपरत्वविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा इन दोनों लक्षणोंविषे 'परत्व अपरत्व' यह दोनों पद जो नहीं कथन करते तौं ता कालिकपरत्वके लक्षणकी ता कालिकअपरत्वविषे अतिव्याप्ति होती । और ता कालिक अपरत्वके लक्षणकी ता कालिकपरत्वविषे अतिव्याप्ति होती ।

ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै तिन दोनां लक्षणोंविषे यथा क्रमतैं 'परत्व अपरत्व' यह दोनों पद कथन कऱ्ये हैं इति । तहां इतनैं पर्यंत ता दैशिक परत्वअपरत्वके तथा कालिक परत्वअपरत्वके उत्पत्तिका प्रकार तथा लक्षण कथन कऱ्या । अब ता परत्व-अपरत्वगुणके विनाशका प्रकार कथन करे हैं ॥

तहां प्रथम दैशिकपरत्व अपरत्वके विनाशका प्रकार—वर्णन करे हैं । तहां—उदयनाचार्यनैं ता दैशिकपरत्वअपरत्वके विनाशका कारण सप्तप्रकारका कह्या है । तहां श्लोक—अपेक्षाबुद्धिसंयोगद्रव्यनाशात्पृथक्पृथक् । द्वाभ्यां द्वाभ्यां च सर्वेभ्यो विनाशः सप्तधा तयोः । अर्थ यह—अपेक्षाबुद्धिका नाश १, संयोगका नाश २, द्रव्यका नाश ३, अपेक्षाबुद्धिनाश द्रव्यनाश ४, संयोगनाश द्रव्यनाश ५, अपेक्षाबुद्धिनाश संयोगनाश ६, अपेक्षा बुद्धिनाश संयोगनाश द्रव्यनाश ७ इन सप्त प्रकारके कारणोंतैं हीं ता दैशिक परत्व अपरत्वका नाश होवै है । जैसे प्रयागस्थ पुरुषकी अपेक्षा करिकै मथुरास्थ पुरुषविषे रह्याहूआ जो काशीस्थ पुरुषतैं दैशिक परत्व है ता दैशिक परत्वका निमित्त कारणरूप जा प्रयागस्थ पुरुषकी अपेक्षा करिकै मथुरास्थ पुरुष हमारेतैं विप्रकृष्ट है या प्रकारकी ता काशीस्थपुरुषकी अपेक्षा बुद्धि है ता अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं भी ता मथुरास्थ पुरुषनिष्ठ दैशिक परत्वका नाश होइ जावै है । जैसे अपेक्षाबुद्धिके नाशतैं द्वित्वादिक संख्याका नाश होवै है १, और ता परत्वका आश्रयभूत जो मथुरास्थ पुरुष है ता मथुरास्थ पुरुषके साथि जो दिशाका संयोग है । ता दिक्संयोगके नाशतैं भी ता परत्वका नाश होइ जावै है । इस प्रकार ता मथुरास्थ पुरुषनिष्ठ परत्वकी अपेक्षा करिकै ता प्रयागस्थ पुरुषविषे रह्या जो अपरत्व है ता अपरत्वका असमवायिकारणरूप जो ता प्रयागस्थपुरुषके साथि दिशाका संयोग है ता दिक्संयोगके नाशतैं भी सो मथुरास्थ पुरुषनिष्ठ परत्व नाश होइ जावै है । इस प्रकार ता मथुरास्थ पुरुषनिष्ठ परत्वका अवधिभूत जो काशीस्थ पुरुष है ता काशीस्थपुरुषका जो ता देशके साथि संयोग संबंध है ता संयोगके नाशतैं भी सो मथुरास्थपुरुषनिष्ठ परत्व नाश होइ जावै है । इस प्रकारतैं सो संयोगका नाश तीन प्रकारका होवै है २, और ता परत्वका आश्रयभूत जो सो मथुरास्थ पुरुष है ता आश्रयद्रव्यके नाशतैं भी सो परत्व नाश होइ जावै है ३, और जहां ता अपेक्षा बुद्धिका भी नाश होवै है, तथा ता पुरुषरूप आश्रयद्रव्यका भी नाश होवै है । तहां अपेक्षा बुद्धिनाश द्रव्यनाश इन दोनोंतैं ता परत्वका नाश होवै है ४, और जहां ता उक्तसंयोगका भी नाश होवै है तथा ता पुरुषरूप आश्रय द्रव्यका भी नाश होवै है । तहां संयोगनाश द्रव्य नाश इन दोनोंतैं ता परत्वका नाश होवै है ५, और जहां ता अपेक्षाबुद्धिका भी नाश होवै है तथा ता संयोगका भी नाश होवै है, तहां अपेक्षाबुद्धिनाश संयोगनाश इन दोनोंतैं ता परत्वका नाश होवै है ६, और जहां ता अपेक्षाबुद्धिका भी नाश होवै है, तथा ता संयोगका भी नाश

होवै है, तथा ता आश्रय द्रव्यका भी नाश होवै है । तहां अपेक्षाबुद्धिनाश संयोगनाश द्रव्य नाश इन तीनोंतैं ता दैशिकपरत्वका नाश होवै है ॥ ७ ॥ इसप्रकार ता प्रयागस्थपुरुषनिष्ठ दैशिक अपरत्वके नाशविषे भी तै अपेक्षाबुद्धिनाशादिक सप्तकारण जानिलेणे इति ॥

अब ता कालिकपरत्वअपरत्वके विनाशका प्रकार—वर्णन करे हैं । तहां—जिस ज्येष्ठत्व-कनिष्ठत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबुद्धितैं ता कालिकपरत्वअपरत्वकी उत्पत्ति होवै है । तिस अपेक्षाबुद्धिरूप निमित्तकारणके नाशतैं भी ता कालिकपरत्वअपरत्वका नाश होइ जावै है १, और जिस वृद्धशरीररूप तथा युवानशरीररूप आश्रयद्रव्यविषे सो कालिकपरत्व अपरत्व समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होवै है तिस शरीररूप आश्रयद्रव्यके नाशतैं भी सो कालिकपरत्व अपरत्व नाश होइ जावै है २, और जहां ता अपेक्षाबुद्धिका भी नाश होवै हैं तथा ता आश्रय्यद्रयका भी नाश होवै है । तहां अपेक्षाबुद्धिनाश द्रव्यनाश इन दोनोंतैं ता कालिकपरत्वअपरत्वका नाश होवै है ३ । और केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । केवल अपेक्षाबुद्धिरूप निमित्तकारणके नाशतैं हीं ता कालिकपरत्वअपरत्वका नाश होवैहै । अन्यकिसी करिकै नाश होता नहीं इति ॥

विभुद्रव्योंविषे इसकी उत्पत्तिकी शंका—यह उक्त परत्वअपरत्वगुण जैसे पृथिवी जल, तेज-वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंविषे उत्पन्न होवै है । तैसे आकाश काल दिक् आत्मा इन च्यारि विभुद्रव्योंविषे भी क्युं नहीं उत्पन्न होता ? इसका समाधान—परिच्छिन्नद्रव्योंविषे हीं किसी द्रव्यकी अपेक्षा करिकै विप्रकृष्टपणा रहे है, तथा किसी द्रव्यकी अपेक्षा करिकै सन्निकृष्टपणा रहे है । आकाशा दिक अपरिच्छिन्न द्रव्योंविषे किसी द्रव्यकी अपेक्षा करिकै विप्रकृष्टपणा तथा किसी द्रव्यकी अपेक्षा करिकै सन्निकृष्टपणा सम्भवता नहीं । यातैं ता विप्रकृ-ष्टत्वबुद्धिरूप तथा सन्निकृष्टत्वबुद्धिरूप अपेक्षा बुद्धिके अभावतैं तिन आकाशादिकोंविषे ता दैशिकपरत्व अपरत्वकी उत्पत्ति होवैं नहीं । और जन्यद्रव्योंविषे हीं किसी द्रव्यकी अपेक्षा करिकै ज्येष्ठपणा रहे है, तथा किसी द्रव्यकी अपेक्षा करिकै कनिष्ठपणा रहे है । उत्पत्तिविनाशतैं रहित आकाशादिकोंविषे किसीद्रव्यकी अपेक्षा करिकै ज्येष्ठपणा तथा किसी द्रव्यकी अपेक्षा करिकै कनिष्ठपणा सम्भवता नहीं । यातैं ता ज्येष्ठत्वबुद्धिरूप तथा कनिष्ठत्वबुद्धिरूप अपेक्षाबु-द्धिके अभावतैं तिन आकाशादिकोंविषे ता कालिकपरत्वअपरत्वकी भी उत्पत्ति होवै नहीं इति॥

दैशिकपरत्वअपरत्वसैं कालिकपरत्वअपरत्वकी विलक्षणता—ता उक्त दैशिकपरत्वअपरत्वतैं हीं सर्वत्र पर अपरव्यवहार सिद्ध होइ सकै है । यातैं ता दैशिकपरत्वअपरत्वतैं भिन्न कालिकपरत्व अपरत्व मानणा अनुचित है । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए—अब ता दैशिकपरत्व अपरत्वतैं ता कालिकपरत्वअपरत्वविषे विलक्षणता सिद्ध करे हैं । तहां युवानपुरुषकी अपेक्षा करिकै द्रष्टा

पुरुषके समीपदेशविषे स्थित जो वृद्धपुरुष है ता वृद्धपुरुषविषे यद्यपि ता युवानपुरुषकी अपेक्षा करिकै दैशिकअपरत्व रहे है और ता युवानपुरुषविषे ता वृद्धपुरुषकी अपेक्षा करिकै दैशिकपरत्व रहे है । तथापि ता द्रष्टा पुरुषकूं ता युवानपुरुषकी अपेक्षा करिकै ता वृद्धपुरुषविषे जो परत्वव्यवहार होवै है, तथा ता वृद्धपुरुषकी अपेक्षा करिकै ता युवानपुरुषविषे जो अपरत्वव्यवहार होवै है सो परत्वअपरत्व व्यवहार ता कालिक परत्वअपरत्वतैं हीं होवै है । ता दैशिक परत्वअपरत्वतैं होता नहीं । जो कदाचित् ता दैशिकपरत्व अपरत्वतैं सो कालिक परत्वअपरत्व भिन्न हीं मानियें तौं सो उक्तव्यवहार अनुपपन्न होवैंगा । यातैं ता व्यवहारकी सिद्धि वासतैं ता दैशिकपरत्व अपरत्वतैं सो कालिक परत्वअपरत्व भिन्न हीं मान्या चाहिये इति । ईहां नवीननैयायिकोंका—यह मत है । जैसे रूपरसादिक गुण होवै हैं तैसे सो परत्व अपरत्व गुणरूप नहीं है । किंतु प्राचीननैयायिकोंनैं पूर्व कथन कऱ्या जो बहुतर संयुक्तसंयोगवत्त्वरूप विप्रकृष्टत्व है तथा अल्पतर संयुक्त संयोगवत्त्वरूप सन्निकृष्टत्व है सो विप्रकृष्टत्व हीं परत्व कह्या जावै है, तथा दूरत्व कह्या जावै है और सो सन्निकृष्टत्व हीं अपरत्व कह्या जावै है, तथा प्रत्यासन्नत्व कह्या जावै है । ता विप्रकृष्टत्व सन्निकृष्टत्वतैं भिन्न ता दैशिकपरत्व अपरत्वगुणविषे कोई भी प्रमाण नहीं हैं । इस प्रकार तिन प्राचीननैयायिकोंनैं पूर्वकथन कऱ्या जो सूर्यकी बहुतर क्रियावोंके अंतराय करिकै जन्यत्वरूप ज्येष्ठत्व है तथा अल्पतर क्रियावोंके अन्तराय करिकै जन्यत्वरूप कनिष्ठत्व है सो ज्येष्ठत्व हीं परत्व कह्या जावै है । तथा सो कनिष्ठत्व हीं अपरत्व कह्या जावै है । ता ज्येष्ठत्वकनिष्ठत्वतैं भिन्न ता कालिकपरत्व अपरत्वविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । इति परत्व अपरत्व गुणनिरूपणं समाप्तम् ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ गुरुत्वनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्** । अर्थ यह—जो गुण आद्यपतनका असमवायिकारण होवै है सो गुण गुरुत्व कह्या जावै है । तहां **अधःसंयोगानुकूलक्रिया पतनम्** । अर्थ यह—ऊर्ध्वदेशविषे स्थित मूर्त्तद्रव्यका जो पृथिवीआदिक अधःदेशके साथि संयोग होवै है ता संयोगका जनक जा ता मूर्त्तद्रव्यकी क्रियाविशेष है ता क्रियाका नाम पतन है । जैसे ऊपरि वृक्षकी शाखाविषे स्थित जे आम्रफलादिक हैं ते परिपक्व होइकै नीचे पृथिवीविषे गिरपडे हैं । तहां तिन आम्रफलादिकोंका जो ता पृथिवीके साथि संयोग होवै है ता संयोगका जनक जा आम्रफलादिकोंकी क्रिया है ता क्रियाका नाम पतन है अर्थात् ता शाखातैं ता आम्रफलके विभागका जनक जा प्रथम क्रिया है । ता प्रथम क्रियातैं लैके ता पृथिवीसंयोगपर्यंत ता आम्रफलविषे जितनी क्रिया उत्पन्न होवै है ते सर्व क्रिया ता अधःसंयोगके अनुकूल होणेतैं पतन इस नाम करिकै कही जावै है । तहां तिन आम्रफलादिकोंविषे जो प्रथम क्रियारूप पतन होवै है ता प्रथमपतनका असमवायिकारण

तिन आम्रफलादिकोंका गुरुत्व हीं होवै है और ता प्रथमपतनतैं तिन आम्रफलादिकोंविषे वेग उत्पन्न होवे है ता वेगतैं ता प्रथमपतनका नाश होइकैं तिन आम्रफलादिकोंविषे द्वितीय पतन उत्पन्न होवै है, ता द्वितीयपतनतैं ता प्रथमवेगका नाश होइकै द्वितीयवेग उत्पन्न होवै है ता द्वितीयवेगतैं ता द्वितीयपतनका नाश होइकै तृतीयपतन उत्पन्न होवै है । इस प्रकार ता अधःसंयोगपर्यंत ता पूर्वपूर्व पतनजन्य वेगनैं ता पूर्वपूर्वपतनका नाश करिकै उत्तरउत्तर पतनकूं उत्पन्न करीता है। तैसे ता उत्तरउत्तर पतननैं भी ता पूर्वपूर्व वेगका नाश करिकै उत्तरउत्तर वेगकूं उत्पन्न करीता है । यातैं ता द्वितीयपतनतैं आदिलेके ता अधःसंयोगपर्यंत जितनैंकी तिन आम्रफलादिकोंविषे क्रियारूप पतन होवै है, तिन द्वितीयादिक पतनोंका सो वेगगुण हीं असमवायिकारण होवै है । यातैं सो आद्यपतनका असमवायिकारणत्वरूप गुरुत्वका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां ' पतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् ' इतनामात्र हीं जो ता गुरुत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' आद्य ' यह पद नहीं कथन करते तौं उक्तरीतिसैं द्वितीयादिक पतनोंके असमवायिकारणरूप वेगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षणविषे 'आद्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो वेगगुण तिन द्वितीयादिक पतनोंका असमवायिकारण हूआ भी ता आद्यपतनका असमवायिकारण होवै नहीं । यातैं ता वेगविषे ता गुरुत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' आद्यपतन कारणं गुरुत्वम्, इतनामात्र हीं जो ता गुरुत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' असमवायि ' यह पद नहीं कथन करते तौं ता क्रियारूप आद्यपतनके समवायिकारणरूप तिस आम्रफलादिक द्रव्यविषे तथा निमित्तकारणरूप अदृष्ट ईश्वरादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' असमवायि ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां तिन आम्रफलादिक द्रव्योंविषे तथा अदृष्ट ईश्वरादिकोंविषे ता आद्यपतनका असमवायिकारणपणा है नहीं । यातैं तिनोंविषे ता गुरुत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । कथित लक्षणका अन्य प्रकारतैं निर्वचन—जिन घटादिकोंविषे सो पतन कबी भी नहीं उत्पन्न भया, किंतु ता पतनकी उत्पत्तितैं विना हीं जे घटादिक उत्पन्न होइके नष्ट हूए हैं तिन उत्पन्नविनष्ट घटादिकोंके गुरुत्वविषे ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । जिस कारणतैं तिन घटादिकोंके गुरुत्वविषे सो पतनका असमवायिकारणपणा है नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता उक्तलक्षणका अन्यप्रकारतैं निर्वचन करे हैं । **आद्यपतनासमवायिकारण वृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत् गुरुत्वम् ।** अर्थ यह—आद्यपतनके असमवायिकारणविषे वर्त्तणे हारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण गुरुत्व कह्या जावै है । तहां तिन आम्रफलादिकोंके आद्यपतनका असमवायिकारणभूत जो तिन आम्रफलादिकोंका गुरुत्व है ता गुरुत्वविषे वर्त्तणे हारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा गुरुत्वत्व

जाति है सा गुरुत्वत्वजाति सर्वगुरुत्वोंविषे समवायसंबंध करिकै रहे है अर्थात् ता उत्पन्न विनष्ट घटादिकोंके गुरुत्वविषे भी सा गुरुत्वत्वजाति रहे है। यातैं ता उत्पन्नविनष्ट घटादिकोंके गुरुत्व विषे इस लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं। पद कृत्य—तहां गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जाति योंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै इस लक्षण-विषे 'आद्यपतनासमवायिकारणवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता आद्यपतनके असमवायिकारणरूप गुरुत्वविषे वर्त्तीयां नहीं। यातैं तिन रूपत्वा दिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा इस लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद जो नहीं कथन करते तौं ता आद्यपतनके अस-मवायिकारणरूप गुरुत्वविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ता जातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है। यातैं ता गुणत्वजातिकूं लैके तथा सत्ता-जातिकूं लैके तहां अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। ईहां केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं। 'आद्य-पतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्' इस उक्त लक्षणविषे 'आद्य' इस पदका कोई प्रयोजन नहीं है। किंतु **पतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्**। इतनामात्र हीं ता गुरुत्वका लक्षण संभवै है॥

**शंका**—ता गुरुत्वके लक्षणविषे जो कदाचित् सो आद्यपद नहीं कथन करोंगे तौं पूर्व उक्त रीतिसैं वेगविषे ता गुरुत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। **समाधान**—ता वेगकूं जो द्वितीयादिक पतनोंकी असमवायिकारणता होवै तौं ता वेगविषे ता गुरुत्वके लक्षणकी अति व्याप्ति होवै, परंतु ता वेगकूं द्वितीयादिक पतनोंकी असमवायिकारणता है नहीं, किंतु जैसे ता आद्यपतनविषे गुरुत्वकूं हीं असमवायिकारणता है तैसे तिन द्वितीयादिक पतनोंविषे भी ता गुरुत्वकूं हीं असमवायिकारणता है। ता वेगकूं तिन द्वितीयादिक पतनोंविषे असमवायि-कारणता संभवती नहीं। काहेतें? आद्यपतनविषे तौं गुरुत्वकूं असमवायिकारण मानणा और द्वितीयादिक पतनोंविषे वेगकूं असमवायिकारण मानणा। इस अर्थविषे एक तौं गौर-वदोषकी प्राप्ति होवै है और दूसरा ता वेगकूं द्वितीयादिक पतनोंकी असमवायिकारणताविषे कोई प्रमाण भी नहीं है। यातैं लाघवतैं तेजवृत्तिपतनतैं भिन्न सर्वपतनमात्रविषे ता गुरुत्वकूं हीं असमवायिकारण मानणा उचित है॥

**शंका**—तिन द्वितीयादिक पतनोंविषे गुरुत्वकूं असमवायिकारणता है अथवा वेगकूं असमवायिकारणता है। इन दोनों अर्थोंविषे एक अर्थका साधक कोई युक्ति है नहीं। यातैं ता एक अर्थका साधकयुक्तिरूप विनिगमनाके अभावतैं ता गुरुत्व वेग दोनोंकूं हीं तिन द्विती-यादिक पतनोंविषे असमवायिकारण मान्या चाहिये। **समाधान**—तिन द्वितीयादिक पतनों-

विषे जो गुरुत्व वेग दोनोंकूं असमवायिकारण मानिये तौं ता आद्यपतनविषे रही हूई जा गुरुत्वकी जन्यताका अवच्छेदक जाति है तथा बाणादिकोंके कर्मविषे रही हूई जा वेगकी जन्यताका अवच्छेदक जाति है तिन दोनों जातियोंका तिन द्वितीयादिक पतनोंविषे सांकर्य होवैंगा, ता सांकर्य दोष करिकै तिन दोनों जातियोंविषे जातिपणेका हीं अभाव होवैंगा। यातैं तिन द्वितीयादिक पतनोंविषे ता गुरुत्व वेग दोनोंकूं असमवायिकारणता संभवती नहीं, किंतु एक गुरुत्वकूं हीं असमवायिकारणता संभवै है ॥

**शंका**—ता वेगकूं जो द्वितीयादिक पतनोंका असमवायिकारण नहीं मानोंगे तौं बाण विषे उत्पन्न हूई द्वितीयादिका क्रियावोंविषे भी ता वेगकूं असमवायिकारणता नहीं मानी चाहिये। तात्पर्य यह—धनुषके रज्जुका बाणके साथि नोदनाख्य संयोगके हूए ता बाणविषे जा प्रथमक्रिया होवै है ता प्रथमक्रियाका तौं सो नोदनाख्य संयोग हीं असमवायिकारण होवै है और ता प्रथमक्रियातैं ता बाणविषे वेग उत्पन्न होवै है ता वेगतैं ता प्रथमक्रियाका नाश होइकै ता बाणविषे पुनः द्वितीयक्रिया उत्पन्न होवै है और ता द्वितीयक्रियातैं ता प्रथम वेगका नाश होइकै पुनः द्वितीयवेग उत्पन्न होवै है और ता द्वितीयवेगतैं ता द्वितीय क्रियाका नाश होइकै ता बाणविषे पुनः तृतीयक्रिया उत्पन्न होवै है। इस रीतिसैं ता बाणकी द्वितीयादिक क्रियावोंका सो वेग हीं असमवायिकारण होवै है। सो नहीं होणा चाहिये।

**समाधान**—ता बाणकी प्रथमक्रियाका असमवायिकारणरूप सो नोदनाख्यसंयोग ता बाणकी प्रथमक्रिया जन्यविभाग करिकै नाश होई जावै है। यातैं ता नोदनाख्यसंयोगकूं ता बाणके द्वितीयादिक क्रियावोंकी असमवायिकारणता सम्भवती नहीं। यातैं तहां अगतितैं ता क्रियाजन्य वेगकूं हीं तिन द्वितीयादिक क्रियावोंकी असमवायिकारणता अंगीकार करी है और ईहां प्रसंगविषे तिन द्वितीयादिक पतनोंकी उत्पत्ति कालविषे सो गुरुत्व नाश होता नहीं। किंतु सो गुरुत्व विद्यमान हीं हैं। यातैं ता प्रथमपतनकी न्यांई तिन द्वितीयादिक पतनोंविषे भी ता गुरुत्वकूं हीं असमवायिकारणता सम्भवै है। यातैं ता उक्त गुरुत्वके लक्षणविषे 'आद्य' यह पद असंगत है इति ॥

किंवा बहुतग्रन्थोंविषे ता गुरुत्वके लक्षणविषे सो आद्यपद कथन कऱ्या है। यातैं ता गुरुत्वके लक्षणविषे जो कदाचित् ता आद्यपदकूं राखिये भी, तौं भी ता आद्यपदके अर्थका ता पतनरूप क्रियाके साथि अभेद नहीं करणा अर्थात् 'आद्य' ऐसा जो पतन है या प्रकारका अर्थ नहीं करणा। किंतु पृथिवी आदिक नवद्रव्योंके आदिविषे स्थित जे पृथिवी, जल यह दो द्रव्य हैं। तिन दोनों द्रव्योंका हीं ता आद्यपद करिकै ग्रहण करणा। यातैं **आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम्** । इस उक्त लक्षणका यह अर्थ—सिद्ध होवै है। पृथिवीजलके पतनका जो असमवायिकारण होवै सो गुरुत्व कह्या जावै है। तहां इस पक्षविषे सो आद्य-

पद तेजके पतनकी निवृत्ति करणे वासतै है। तात्पर्य यह—'शिरसि सूर्यकिरणाः पतन्ति पादादौ चक्षुः पतति' अर्थ यह—हमारे शिर ऊपरि सूर्यके किरण पडते हैं और पादादिकोंविषे चक्षु पडता है। इस प्रकारके लोकव्यवहारतैं तेजरूप सूर्यके किरणोंविषे तथा तेजरूप चक्षुइंद्रियविषे भी सा पतनरूप क्रिया सिद्ध होवै है, तहां तेजविषे सो गुरुत्वगुण रहता नहीं। यातैं ता तेजके पतनका सो गुरुत्व असमवायिकारण नहीं है, किंतु ता किरणरूप तेजके साथि तथा ता चक्षुरूप तेजके साथि अदृष्टवाले आत्माका संयोग हीं ता पतनका असमवायि कारण होवै है। तहां ता उक्तलक्षणविषे सो पृथिवीजलका वाचक आद्यपद जो नहीं कथन करते तौं ता किरणादिरूप तेजके पतनके असमवायिकारणरूप ता आत्मसंयोगविषे ता गुरुत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे सो आद्यपद कथन कऱ्या है इति॥

अथवा ता गुरुत्वका यह दूसरा लक्षण करणा—**पृथिवीवृत्तिवृत्ति प्रत्यक्षविषयावृत्ति गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत् गुरुत्वम्।** अर्थ यह—पृथिवीविषे वर्त्तणेहारे विषे वर्त्तणेहारी तथा प्रत्यक्षके विषय विषे नहीं वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका साक्षात् व्याप्य ऐसी जा जाति हैं ता जातिवाला गुण गुरुत्व कह्या जावै है। तहां पृथिवीविषे वर्त्तणेहारा जो गुरुत्व है ता गुरुत्वविषे गुरुत्वत्व जाति रहे है। यातैं सा गुरुत्वत्वजाति पृथिवीवृत्तिवृत्ति कही जावै है और ता गुरुत्वका किसी भी जीवकूं लौकिक प्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं सा गुरुत्वत्व जाति प्रत्यक्षके विषय रूपादिकोंविषे अवृत्ति भी है और सा गुरुत्वत्वजाति गुणत्वजातिका साक्षात्व्याप्य भी है। ऐसी गुरुत्वत्वजाति सर्वगुरुत्वोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त गुरुत्वका लक्षण संभवै है। पद कृत्य—तहां 'प्रत्यक्षविषयावृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत् गुरुत्वम्' इतनामात्र हीं जो ता गुरुत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'पृथिवीवृत्तिवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं अदृष्टत्वजातिकूं लैके धर्मअधर्मरूप अदृष्टविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतें? ता गुरुत्वकी न्यांई ता धर्मअधर्मका भी किसी भी जीवकूं लौकिकप्रत्यक्ष होता नहीं, यातैं ता गुरुत्वत्वजातिकी न्यांई सा अदृष्टत्वजाति भी प्रत्यक्षके विषयविषे अवृत्ति हीं है। और गुणत्वजातिका साक्षात्व्याप्य भी है। ऐसी अदृष्टत्वजातिकूं लैके ता धर्मअधर्मरूप अदृष्टविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे पृथिवीवृत्तिवृत्ति यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा अदृष्टत्वजाति पृथिवीविषे वर्त्तणेहारे किसी भी गुणविषे रहती नहीं, किंतु आत्मवृत्तिधर्म अधर्मविषे हीं सा अदृष्टत्वजाति रहे है। यातैं ता अदृष्टत्वजातिकूं लैके ता धर्मअधर्मरूप अदृष्टविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'पृथिवीवृत्तिवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत् गुरुत्वम्' इतनामात्र हीं जो ता गुरुत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'प्रत्यक्षविषयावृत्ति' यह पद नहीं कथन

करते तौं रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो गुरुत्वगुण पृथिवीविषे रहे है । तैसे रूप, रस, गंध, स्पर्श यह च्यारों गुण भी ता पृथिवीविषे रहे हैं ऐसे पृथिवीवृत्ति रूपादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिके साक्षात्व्याप्य ते रूपत्वादिक जातियां भी हैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'प्रत्यक्षविषयावृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपत्वादिक जातियां प्रत्यक्ष ज्ञानके विषयविषे अवृत्ति नहीं हैं किंतु ता प्रत्यक्षज्ञानके विषयभूत रूपादिक गुणोंविषे वृत्ति हीं हैं यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'पृथिवीवृत्तिवृत्तिप्रत्यक्षविषयावृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत् गुरुत्वम्' इतनामात्र हीं जो ता गुरुत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद नहीं कथन करते तौं स्थितिस्थापकत्व जातिकूं लैके स्थितिस्थापकनामा संस्कार गुणविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो गुरुत्वगुण पृथिवीविषे रहे है तथा प्रत्यक्षज्ञानका अविषय होवै है । तैसे सो स्थितिस्थापकनामा संस्कार भी ता पृथिवीविषे रहे है तथा प्रत्यक्षज्ञानका अविषय होवै है । ऐसे स्थितिस्थापकविषे वर्त्तणेहारी स्थितिस्थापकत्वजाति पृथिवी वृत्तिवृत्ति भी है तथा प्रत्यक्षविषयावृत्ति भी है तथा गुणत्वजातिका व्याप्य भी है । ऐसी स्थिति स्थापकत्व जातिकूं लैके ता स्थितिस्थापकविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'साक्षात्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा स्थितिस्थापकत्वजाति ता गुणत्वजातिका साक्षात्व्याप्य नहीं है, किंतु ता गुणत्वजातिका साक्षात् व्याप्य जा संस्कारत्व जाति है ता संस्कारत्वजातिका व्याप्य सा स्थितिस्थापकत्व जाति है । यातैं ता स्थितिस्थापकत्व जातिकूं लैके ता स्थितिस्थापकविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

तृतीय लक्षण—अथवा इस पूर्व उक्त लक्षणविषे 'पृथिवी' इस पदके स्थानविषे 'जल' यह पद राखिकै भी ता गुरुत्वका लक्षण संभवै है । अर्थात् **जलवृत्तिवृत्तिप्रत्यक्षविषयावृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत् गुरुत्वम्** । तहां इस लक्षणका अर्थ तथा पदोंका फल ता पूर्वउक्त लक्षणकी न्यांई हीं जानिलेना इति ॥

इसके आश्रय तथा भेद—इस प्रकारके उक्त लक्षणों करिकै लक्षित सो गुरुत्वगुण पूर्वउक्त रसगुणकी न्यांई पृथिवी, जल इन दो द्रव्योंविषे रहे है । तेजादिक द्रव्योंविषे सो गुरुत्वगुण रहता नहीं और सो गुरुत्वगुण धर्मअधर्मकी न्यांई अतिइंद्रिय हीं होवै है अर्थात् किसी भी इंद्रिय करिकै ता गुरुत्वका प्रत्यक्ष होता नहीं इति॥किंवा सो गुरुत्वगुण नित्य१अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां परमाणुरूप नित्यपृथिवीविषे तथा परमाणुरूप नित्य-जलविषे तौं सो गुरुत्व नित्य होवै है और द्व्यणुकादिरूप अनित्य पृथिवीविषे तथा द्व्यणु-

कादिरूप अनित्य जलविषे सो गुरुत्व अनित्य होवै है । सो अनित्यगुरुत्व रत्तिक माषक तोलक इत्यादिक भेद करिकै नाना प्रकारका होवै है। तहां सो अनित्यगुरुत्व ता आश्रयद्रव्यकी उत्पत्ति क्षणतैं द्वितीयक्षणविषे ता आश्रयद्रव्यके अवयवोंके गुरुत्व करिकै उत्पन्न होवै है । और ता आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं सो गुरुत्व नाश होवै है। जैसे घटकी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीय क्षणविषे ता घटविषे गुरुत्व उत्पन्न होवै है । तहां ता घटनिष्ठ गुरुत्वका सो घट तौं समवायिकारण होवै है और ता घटके समवायिकारण कपालरूप अवयवोंका गुरुत्व ता घटनिष्ठ गुरुत्वका असमवायिकारण होवै है और अदृष्ट ईश्वरादिक निमित्तकारण होवैं हैं और ता घटरूप आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं ता गुरुत्वका नाश होवै है इति ।

गुरुत्वकूं पाकज माननेहारे लीलावतीकार—ईहां लीलावतीकारका यह मत है। जैसे पृथिवीविषे रूपादिक च्यारोंगुण पाकज होवैं हैं अर्थात् अग्निआदिक तेजके संयोगरूप पाकतैं उत्पन्न होवैं हैं तैसे अग्नि करिकै भस्मीभूत पटादिक पृथिवीविषे सो गुरुत्व भी पाकज होवै है अर्थात् ता अग्निरूप तेजके संयोग करिकै तिन पटादिकोंविषे पूर्वगुरुत्वकी निवृत्ति पूर्वक दूसरे गुरुत्वकी उत्पत्ति होवै है इति ।

अनुमानतैं गुरुत्वकी सिद्धि—ता गुरुत्वके पूर्वउक्त लक्षणके विद्यमान हुए भी प्रमाणके अभावतैं ता गुरुत्वकी सिद्धि नहीं होवैगी । जिस कारणतैं लक्षण प्रमाण दोनों करिकै हीं वस्तुकी सिद्धि होवै है तहां अतिइंद्रिय होणेतैं ता गुरुत्वविषे प्रत्यक्षप्रमाण तौं संभवता नहीं ऐसी शंकाके प्राप्तहुए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता गुरुत्वकी सिद्धि करे हैं । **आद्यपतनं सासमवायिकारणकं कर्मत्वात् बाणादिकर्मवत्** अर्थ यह—सो पूर्वउक्त आम्रफलादिकोंका आद्यपतन किसी असमवायिकारण करिकै जन्य होणेयोग्य है कर्मरूप होणेतैं, जो जो क्रिया रूप कर्म होवै है सो सो असमवायिकारण करिकै जन्य हीं होवै है, जैसे बाणादिकोंका कर्म कर्मरूप होणेतैं नोदनाख्य संयोगरूप असमवायिकारण करिकै जन्य होवै है तैसे सो आद्यपतन भी कर्मरूप होणेतैं किसी असमवायिकारण करिकै अवश्य जन्य होवैगा तहां ता आद्यपतनविषे ता गुरुत्वतैं विना दूसरे किसीकूं तौं असमवायिकारणता संभवती नहीं परिशेषतैं सो गुरुत्व हीं ता आद्यपतनका असमवायिकारणरूप करिकै सिद्ध होवै है इति ।

इसविषे आद्यपतनके असमवायिकारणत्वकी शंका—तिन आम्रफलादिकोंविषे स्थित जो रसगुण हैं सो रसगुण हीं ता आद्यपतनका असमवायिकारण होवैगा। यातैं ता पतनका असमवायि कारणरूप करिकै ता अतिइंद्रिय गुरुत्वकी कल्पना करणी निष्प्रयोजन है । इसका समाधान—ता रसगुणकूं जो पतनका असमवायिकारण मानोंगे तौं मधुरअम्लादिक नाना रसवाले अवयवों करिकै आरब्ध होणेतैं ता रसगुणतैं रहित जे चूरणादिक अवयवी हैं तथा ता रसतैं रहित जे रजतादिक हैं तिनोंका सो अधःपतन नहीं होणा चाहिये जिस कारणतैं सो

पतनका असमवायिकारण भूत रसगुण तिनोंविषे है नहीं और तिन रस रहित चूरणरजतादिकोंका अधःपतन प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है, यातैं ता रसगुणकूं ता पतनकी असमवायिकारणता संभवती नहीं किंवा जो कदाचित् ता रसगुणकूं हीं पतनकी असमवायिकारणता होवै तौं पाषाणादिकोंके पतनकी अपेक्षा करिकै द्राक्षादिकोंके पतनविषे प्रकर्षता होणी चाहिये। काहेतैं ? तिन पाषाणादिकोंकी अपेक्षा करिकै तिन द्राक्षादिकों विषे प्रकृष्ट मधुरादिक रस रहे हैं और कारणका उत्कर्ष अपकर्ष हीं कार्यके उत्कर्ष अपकर्षका प्रयोजक होवै है यातैं तिन द्राक्षादिकोंके प्रकृष्ट रस करिकै जन्य होणेतैं सो द्राक्षादिकोंका पतन भी प्रकर्षतावाला हीं होणा चाहिये । और तिन पाषाणादिकोंके अपकृष्टरस करिकैं जन्य होणेतैं सो पाषाणादिकोंका पतन भी अपकर्षतावाला हीं होणा चाहिये सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु उलटा तिन द्राक्षादिकोंके पतनतैं तिन पाषाणादिकोंके पतनविषे हीं प्रकर्षता देखणेविषे आवै है । तहां जो पतन स्वाश्रयद्रव्यके अधःसंयोगकूं प्रथम उत्पन्न करे है सो पतन प्रकृष्ट कह्या जावै है और जो पतन स्वाश्रयद्रव्यके अधःसंयोगकूं पश्चात् उत्पन्न करे है सो पतन अपकृष्ट कह्या जावै है । या कारणतैं भी ता रसगुणविषे ता पतनकी असमवायिकारणता संभवतीं नहीं इति ।

महत्त्वविषे पतनके असमवायिकारणत्वकी शंका—तिन आम्रफलादिकोंविषे स्थित जो महत्त्वपरिमाण है सो महत्त्वपरिमाणविशेष हीं ता पतनका असमवायिकारण होवैगा यातैं ता पतनका असमवायिकारणरूप करिकै ता अतिइंद्रिय गुरुत्वकी कल्पना करणी निष्प्रयोजन है । समाधान—ता महत्त्वपरिमाणकूं जो ता पतनका असमवायिकारण मानोंगे तौं सुवर्णादिकोंके पतनकी अपेक्षा करिकैं तूलकादिकोंके पतनविषे प्रकर्षता होणी चाहिये । काहेतैं ? दशतोलाभर सुवर्णके महत्त्वकी अपेक्षा करिकै दश तोलाभर तूलकादिकोंके महत्त्वविषे प्रकर्षता सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्षप्रतीत होवै है, यातैं प्रकृष्टमहत्त्व करिकै जन्य होणेतैं सो तूलकादिकोंका पतन प्रकर्षतावाला होणा चाहिये और अपकृष्टमहत्त्व करिकै जन्य होणेतैं सो सुवर्णादिकोंका पतन अपकर्षतावाला होणा चाहिये सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु उलटा तिन तूलकादिकोंके पतनतैं तिन सुवर्णादिकोंके पतनविषे हीं प्रकर्षता प्रतीत होवै है, यातैं ता महत्त्वपरिमाणविषे भी ता पतनकी असमवायिकारणता संभवती नहीं पारिशेषतैं ता गुरुत्वकूं हीं ता पतनकी असमवायिकारणता संभवै है । ता गुरुत्वकूं ता पतनका असमवायिकारण माननेविषे ते पूर्वउक्त दोष संभवते नहीं। काहेतैं ? तिन द्राक्षादिकोंकी अपेक्षा करिकै तिन पाषाणादिकोंविषे प्रकृष्टगुरुत्व रहे है, तथा तिन तूलकादिकोंकी अपेक्षा करिकै तिन सुवर्णादिकोंविषे प्रकृष्टगुरुत्व रहे है यातैं ता प्रकृष्टगुरुत्व करिकै जन्य होणेतैं सो पाषाणसुवर्णादिकोंका पतन तौं प्रकर्षतावाला होवै है और ता अपकृष्टगुरुत्व करिकै जन्य होणेतैं सो द्राक्षातूलकादिकोंका पतन अपकर्षतावाला होवै है इति ।

गुरुत्वविषे अधःपतनके असमवायिकारणत्वके असंभवत्वकी शंका–जैसे ता रसकूं तथा महत्त्वकूं ता पतनकी असमवायिकारणता नहीं संभवै है तैसे ता गुरुत्वकूं भी ता पतनकी असमवायि कारणता संभवती नहीं। काहेतैं ? वृक्षविषे स्थित अपरिपक्क आम्रफलादिकोंविषे ता गुरुत्वके विद्यमान हूए भी सो पतन होता नहीं तथा धनुषतैं चलाएहूए बाणविषे ता गुरुत्वके विद्यमानहुए भी तात्कालिक सो पतन होता नहीं तथा आकाशविषे स्थित पक्षी शरीरविषे ता गुरुत्वके विद्यमानहूए भी सो पतन होता नहीं। यातैं अन्वयव्यभिचारवाला होणेतैं सो गुरुत्व ता पतनका असमवायिकारण होइ सकै नहीं। इसका समाधान–गुरुत्ववाले द्रव्यका जो नीचै नहीं पतन होवै है ताके विषे संयोग १, वेग २, प्रयत्न ३ यह तीन प्रतिबंधक होवै हैं। तहां गुरुत्ववाले भी आम्रफलादिकोंका अपरिपक्क दशाविषे जो पतन नहीं होवै है ता पतन विषे तौं तिन आम्रफलादिकोंका वृंतके साथि संयोग प्रतिबंधक होवै है अर्थात् सो संयोग जब पर्यंत रहे है तब पर्यंत तिन आम्रफलादिकोंका ता गुरुत्व करिकै पतन होता नहीं। और सो प्रतिबंधक संयोग तिन आम्रफलादिकोंकी परिपक्क दशाविषे निवृत्त होइ जावै है। यातैं ता प्रतिबंधक संयोगके अभावसहकृत ता गुरुत्व करिकै तिन आम्रफलादिकोंका अधःपतन होवै है और गुरुत्ववाले भी बाणादिकोंका जो पतन नहीं होवै है ता पतनविषे तिन बाणादिकोंका क्रियाजन्य वेग प्रतिबंधक होवै है सो वेग जबी निवृत्त होवै है तबी ता प्रतिबंधक वेगके अभाव सहकृत ता गुरुत्व करिकै तिन बाणादिकोंका अधःपतन होवै है और गुरुत्ववाले भी पक्षी शरीरोंका जो पतन नहीं होवै है, ता पतनविषे तिस पक्षीशरीरावच्छिन्न आत्माका प्रयत्न प्रतिबंधक होवै है। ता प्रयत्नकी जबी निवृत्ति होवै है। तबी ता प्रतिबंधक प्रयत्नके अभावसहकृत ता गुरुत्व करिकै तिन पक्षीशरीरोंका अधःपतन होवै है। यातैं यह सिद्ध भया। जैसे ता पतनके प्रति ता गुरुत्वकूं असमवायिकारणता है तैसे ता प्रतिबंधकाभावकूं भी ता पतनके प्रति निमित्तकारणता है। और जिस कार्यकी उत्पत्तिविषे जितनैं कारण अपेक्षित होवै हैं तिन सर्वकारणोंके विद्यमान हूए हीं तिस कार्यकी उत्पत्ति होवै है। तिन कारणोंविषे एक कारणके अविद्यमानहूए भी ता कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं। ता करिकै तिन विद्यमान कारणोंविषे ता कार्यकी अजनकता कही जावै नहीं। जैसे मृत्तिका दंड चक्र आदिक घटके कारणोंके विद्यमानहूए भी एककुलालरूप कारणके अविद्यमानहूए ता घटरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै नहीं ता करिकै तिन मृत्तिकादिक विद्यमान कारणोंविषे ता घटरूप कार्यकी अजनकता कही जावै नहीं। तैसे ता गुरुत्वरूप कारणके विद्यमान हूए भी ता प्रतिबन्धकाभावरूप कारणके अविद्यमानहूए ता पतनरूप कार्यके नहीं उत्पन्नहूए भी ता गुरुत्वविषे ता पतनकी अजनकता कही जावै नहीं। यह वार्त्ता वैशेषिकसूत्रकर्त्ता कणादमुनिनैं भी कही है। तहां सूत्र–संयोगवेगप्रयत्नाभावे सति गुरुत्वात्पतनम्। अर्थ यह–पूर्वउक्त रीतिसैं संयोग, वेग, प्रयत्न इन तीनोंके अभावहूए हीं ता गुरुत्व गुणतैं द्रव्यका अधःपतन होवै है इति॥

लघुत्वका खण्डन **शंका**—लोकविषे जैसे कोईक वस्तुविषे गुरुत्वव्यवहार होवै है तैसे कोईक वस्तुविषे लघुत्व व्यवहार भी होवै है। यातैं ता गुरुत्वगुणकी न्यांई ता लघुत्वकूं भी भिन्नगुण मान्या चाहिये और जो यह कहो जहां जहां ता गुरुत्वका अभाव होवै है तहां तहां सो लघुत्व व्यवहार होवै है। यातैं ता गुरुत्वके अभावका नाम हीं लघुत्व है, ता गुरुत्वके अभावतैं सो लघुत्व भिन्न नहीं है। ऐसा जो कहोंगे तौं जहां जहां ता लघुत्वका अभाव होवै है तहां तहां हीं सो गुरुत्वव्यवहार होवै है। यातैं ता लघुत्वके अभावका नाम हीं गुरुत्व है ता लघुत्वके अभावतैं सो गुरुत्व भिन्न नहीं है। या प्रकारकी तुल्ययुक्ति करिकै ता गुरुत्वकूं हीं ता लघुत्वकी अभावरूपता क्युं नहीं होवै। इस प्रकार गुरुत्वका अभाव लघुत्व है अथवा लघुत्वका अभाव गुरुत्व है इन दोनों अर्थोंविषे एक अर्थका साधक कोई युक्ति है नहीं। यातैं ता युक्तिरूप विनिगमनाके अभावतैं सुखदुःखकी न्यांई तथा संयोगविभागकी न्यांई गुरुत्व, लघुत्व यह दोनों हीं गुण मान्ये चाहिये। और जैसे द्रव्यके पतनतैं ता गुरुत्व गुणकी सिद्धि होवै है। तैसे ता द्रव्यके पतनाभावतैं ता लघुत्व गुणकी भी सिद्धि होइ सके है। यातैं ता गुरुत्व गुणकी न्यांई सो लघुत्व गुण भी पृथक् हीं मान्या चाहिये।

प्रमाणाभावसे समाधान—तिन आम्रफलादिकोंका जो आद्यपतन होवै है ता आद्यपतनकी उत्पत्ति ता गुरुत्वगुणतैं विना अन्य किसी करिकै संभवती नहीं। यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं। यातैं ता आद्यपतनरूप कार्यकी अन्यथा अनुपपत्ति करिकै ता आद्यपतनका कारणरूप करिकै ता गुरुत्वकी कल्पना अवश्य करणी होवैगी। इस प्रकार गुरुत्वगुणके सिद्धहूए ता गुरुत्व गुणका जहां जहां अभाव होवै है तहां तहां सो पतन होता नहीं। यातैं ता गुरुत्वके अभावतैं हीं सो पतनका अभाव बनि सके है। ता पतनके अभावका हेतुरूप करिकै ता लघुत्व गुणकी कल्पना करणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। **शङ्का**—जैसे ता गुरुत्वके अभाव करिकै सो पतनका अभाव बनि सके है तैसे ता लघुत्वके अभाव करिकै हीं सो पतन बनि सके है। यातैं ता पतनका हेतुरूप करिकै ता गुरुत्वकी कल्पना करणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। **समाधान**—ता पतनविषे जो लघुत्वके अभावकूं कारण मानिये तौं ता पतनकी कारणताका अवच्छेदक लघुत्वाभावत्व होवैगा और ता पतनविषे जो गुरुत्वकूं कारण मानिये तौं ता पतनकी कारणताका अवच्छेदक गुरुत्वत्वजाति होवैगी। ता लघुत्वाभावत्वकी अपेक्षा करिकै ता गुरुत्वत्वजातिविषे ता पतनकी कारणताका अवच्छेदकपणा माननेविषे लाघव है ता लाघवके बलतैं ता गुरुत्वकूं हीं ता पतनका कारण मान्या चाहिये यातैं ता गुरुत्वगुणके अभावका नाम हीं लघुत्व है सो लघुत्व भिन्न-गुण नहीं है यह सिद्ध भया इति ॥

ईहां केईकअन्यशास्त्रवाले तौं ता गुरुत्वगुणकूं अतिइंद्रिय मानते नहीं, किंतु जैसे पृथिवी जलवृत्ति स्पर्शगुणका त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तैसे ता पृथिवीजलवृत्ति गुरुत्व

गुणका भी ता त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । या कारणतैं हीं गुरुत्ववाले सुवर्ण रजतादिक वस्तुकूं हस्तविषे लैके परीक्षक पुरुष ताके गुरुत्वका निर्णय करि सकै हैं इति । सो यह मत असंगत है । काहेतैं ? हस्तविषे उठाएहूए सुवर्णादिकोंके गुरुत्वका जो परिक्षक पुरुषोंकूं निर्णय होवै है सो त्वक्इंद्रिय करिकै होता नहीं । किंतु अनुमान प्रमाणतैं हीं ता गुरुत्वका निर्णय होवै है । इति इति गुरुत्वनिरूपणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अथ द्रवत्वनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम्** । अर्थ यह—पर्वतादिक उच्चे देश विषे स्थित जलादिकोंका भूमि आदिक नीचे देशके साथि जो संयोग होवै है ता संयोगका जनक जा तिन जलादिकोंकी क्रियाविशेष है, जिस क्रियाविशेषकूं स्रवण कहे हैं ताका नाम स्यंदन है । ता आद्यस्यंदनका जो असमवायिकारण होवै है सो द्रवत्व कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां पूर्वउक्त गुरुत्वके लक्षणकी न्यांई इस लक्षणविषे भी 'आद्य' यह पद वेगविषे ता द्रवत्वके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है । काहेतैं ? जैसे ता आद्य पतनका गुरुत्व असमवायिकारण होवै है और द्वितीयादिक पतनोंका क्रियाजन्यवेग असमवायिकारण होवै है तैसे तिन जलादिकोंके ता आद्यस्यंदनका सो जलादिकोंका द्रवत्व हीं असमवायिकारण होवै है । और द्वितीयादिक स्यंदनोंका सो जलादिकोंका क्रियाजन्यवेग असमवायिकारण होवै है । यातैं 'आद्य' इस पदके कहणे करिकै ता द्रवत्वके लक्षणकी ता वेगविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं और 'असमवायि' इस पदके कहणे करिकै ता स्यंदनरूप क्रियाके समवायिकारणरूप तिन जलादिकोंविषे तथा निमित्तकारणरूप अदृष्ट ईश्वरादिकोंविषे ता द्रवत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥ लक्षणका अन्य प्रकारतैं निर्वचन—जिन घृतादिकोंविषे सा स्यंदनरूपक्रिया कबी भी उत्पन्न नहीं भई, किंतु ता स्यंदनरूप क्रियाकी उत्पत्तितैं विना हीं जे घृतादिक नष्ट होइ गए है ऐसे उत्पन्नविनष्ट घृतादिकोंके द्रवत्वविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । जिस कारणतैं ता द्रवत्वविषे सो स्यदनका असमवायिकारणपणा है नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता उक्त लक्षणका अन्य प्रकारतैं निर्वचन करे हैं—**आद्यस्यन्दनासमवायिकारणवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत् द्रवत्वम्** । अर्थ यह—ता आद्यस्यन्दनके असमवायिकारणविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण द्रवत्व कह्या जावै है । तहां तिन उच्चदेशविषे स्थित जलादिकोंके आद्यस्यंदनका असमवायिकारण जो द्रवत्व है ता द्रवत्वविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी द्रवत्वत्वजाति है सा द्रवत्वत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्वद्रवत्वोंविषे रहे है अर्थात् सा द्रवत्वत्वजाति तिस उत्पन्नविनष्ट घृतादिकोंके द्रवत्वविषे भी रहे है । यातैं ता उत्पन्नविनष्ट घृतादिकोंके द्रवत्वविषे इस द्रवत्वत्वजातिघटित लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं ।

पदकृत्य—तहां गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादि जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै इस लक्षणविषे 'आद्यस्यंदनासमवायिकारणवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। और ता आद्यस्यंदनके असमवायिकारणरूप द्रवत्वविषे वर्त्तणे हारी गुणत्वजातिकूं तथा सत्ताजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा द्रव्य गुणकर्म-विषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै इस लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है इति ॥

अथवा ता द्रवत्वका यह तीसरा लक्षण करणा—पृथिव्यादित्रयवृत्तिवृत्ति वायुवृत्त्यवृत्ति रूपावृत्ति जातिमत् द्रवत्वम्। अर्थ यह—पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंविषे वर्त्तणे हारे पदार्थविषे वर्त्तणेहारी तथा वायुविषे वर्त्तणेहारे पदार्थविषे नहीं वर्त्तणेहारी तथा रूप गुणविषे नहीं वर्त्तणेहारी ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण द्रवत्व कह्या जावै है। तहां पृथिवी,जल, तेज इन तीन द्रव्योंविषे हीं सो द्रवत्वगुण रहे है। यातैं सो द्रवत्व पृथि-व्यादि त्रयवृत्ति कह्या जावै है। ऐसे द्रवत्वगुणविषे द्रवत्वत्वजाति समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं सा द्रवत्वत्वजाति पृथिव्यादि त्रयवृत्ति वृत्ति कही जावै है, और सो द्रवत्वगुण वायुविषे रहता नहीं। यातैं वायुविषे रहणेहारे स्पर्शादिकोंविषे सा द्रवत्वत्वजाति अवृत्ति भी है। और सा द्रवत्वत्वजाति रूपगुणविषे रहती नहीं यातैं सा द्रवत्वत्वजाति रूपावृत्ति कही जावै है। ऐसी द्रवत्वत्वजाति सर्व द्रवत्वोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त द्रवत्वका लक्षण भी सम्भवै है। पदकृत्य—तहां 'वायुवृत्त्यवृत्तिरूपावृत्तिजातिमत् द्रवत्वम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रवत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'पृथिव्यादित्रयवृत्तिवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं शब्दत्व बुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके शब्दबुद्धिआदिक गुणोंविषे ता द्रवत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे सा द्रवत्वत्वजाति वायुवृत्तिस्पर्शादिकोंविषे अवृत्ति है तथा रूपविषे अवृत्ति है। तैसे ते शब्दत्वबुद्धित्वादिक जातियां भी ता वायुवृत्ति स्पर्शादिकों-विषे अवृत्ति हैं तथा रूपविषे अवृत्ति हैं। ऐसी शब्दत्व बुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके तिन शब्दबुद्धिआदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'पृथिव्यादित्रयवृत्तिवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते शब्दत्वबुद्धित्वादिक जातियां पृथिवीआदिक तीन द्रव्योंविषे वर्त्तणेहारे तिन द्रवत्वादिकोंविषे वर्त्ततीयां नहीं, किंतु सा शब्दत्वजाति तौं आकाशवृत्ति शब्दविषे रहे है और ते बुद्धित्वादिक जातियां आत्मवृत्ति बुद्धिआदिक गुणोंविषे रहे हैं। यातैं तिन शब्दत्वबुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके तिन शब्दबुद्धिआदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'पृथिव्या-दित्रयवृत्तिवृत्तिरूपावृत्तिजातिमत् द्रवत्वम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रवत्वका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'वायुवृत्त्यवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं स्पर्शत्वजातिकूं लैके स्पर्श-

गुणविषे तथा कर्मत्वजातिकूं लैके कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो द्रवत्वगुण पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंविषे रहे है । तैसे सो स्पर्शगुण तथा कर्म भी तिन पृथिवीआदिक तीन द्रव्योंविषे रहे है । यातैं ता द्रवत्वत्वजातिकी न्यांई सा स्पर्शत्व जाति तथा कर्मत्वजाति भी पृथिव्यादित्रयवृत्तिवृत्ति कही जावै है और सा स्पर्शत्व कर्मत्व जाति रूपगुणविषे अवृत्ति भी है । ऐसी स्पर्शत्वजातिकूं लैके स्पर्शगुणविषे तथा कर्मत्वजातिकूं लैके कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'वायुवृत्त्यऽवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा स्पर्शत्वजाति तथा कर्मत्वजाति वायुविषे वर्त्तणेहारेमें अवृत्ति नहीं है । किंतु ता वायुविषे वर्त्तणेहारे स्पर्शविषे सा स्पर्शत्वजाति वृत्ति हीं है । तथा ता वायुविषे वर्तणेहारे कर्मविषे सा कर्मत्वजाति वृत्ति हीं है । यातैं ता स्पर्शत्वकर्मत्वजातिकूं लैके ता स्पर्शकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'पृथिव्यादित्रयवृत्तिवृत्तिवायुवृत्त्यवृत्तिजातिमत् द्रवत्वम्' इतनामात्र हीं जो ता द्रवत्वका लक्षण करते । ता लक्षणविषे 'रूपावृत्ति' यह पद नहीं कथन करते । तौं रूपत्वजातिकूं लैके रूपविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो द्रवत्वगुण पृथिवीआदिक तीन द्रव्योंविषे रहे है । तैसे सो रूपगुण भी तिन पृथिवीआदिक तीन द्रव्योंविषे हीं रहे है । यातैं ता द्रवत्वत्वजातिकी न्यांई सा रूपत्वजाति भी पृथिव्यादित्रयवृत्तिवृत्ति कही जावै है और ता द्रवत्वगुणकी न्यांई सो रूपगुण भी ता वायुविषे रहता नहीं । यातैं सा रूपत्वजाति वायुवृत्तिअवृत्ति भी है । ऐसी रूपत्वजातिकूं लैके ता रूपविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'रूपावृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा रूपत्वजाति ता रूपविषे अवृत्ति नहीं है । किंतु ता रूपविषे वृत्ति हीं है । यातैं ता रूपत्वजातिकूं लैके ता रूपविषे ता द्रवत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

द्रवत्वके रहनेके स्थान तथा भेद—इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणों करिकै लक्षित सो द्रवत्वगुण पृथिवी जल तेज इन तीन द्रव्योंविषे हीं रहे है वायुआदिक द्रव्योंविषे सो द्रवत्वगुण रहता नहीं इति । और सो द्रवत्वगुण सांसिद्धिक १, नैमित्तिक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । सांसिद्धिक—तहां जो द्रवत्व स्वाभाविक होवै है अर्थात् आगंतुक पाकादिक कारणों करिकै जन्य नहीं होवैहै सो द्रवत्व सांसिद्धिक द्रवत्व कह्या जावै है । इसी सांसिद्धिक द्रवत्वकूं नैसर्गिक द्रवत्व भी कहे हैं । नैमित्तिक—और जो द्रवत्व अग्निसंयोगरूप निमित्ततैं उत्पन्न होवै है सो द्रवत्व नैमित्तिक द्रवत्व कह्या जावै है । अर्थात् पाकज द्रवत्वका नाम नैमित्तिक द्रवत्व है इति ।

दोनोंके आश्रय—तहां जलविषे तौं सांसिद्धिकद्रवत्व रहे है और पृथिवी, तेज, इन दो द्रव्योंविषे नैमित्तिक द्रवत्व रहे है । यद्यपि घटपटादिक पृथिवीविषे तथा वह्नि आदिक तेजविषे सो नैमित्तिक द्रवत्व प्रतीत होता नहीं । तथापि घृतलाक्षादि पृथिवीविषे तथा सुवर्णादिक तेजविषे अत्यंत अग्निके संयोगतैं सो द्रवत्व प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है इति ।

सांसिद्धिकद्रवत्वके भेद—और सो जलमात्रवृत्ति सांसिद्धिक द्रवत्व भी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणुरूपनित्यजलविषे स्थित सो सांसिद्धिक द्रवत्व तौं नित्य होवै है और द्व्यणुकादिरूप अनित्यजलविषे स्थित सो सांसिद्धिकद्रवत्व अनित्य होवै है। तहां सो अनित्य सांसिद्धिकद्रवत्व—आपणे आश्रयद्रव्यकी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीयक्षणविषे ता आश्रयद्रव्यके समवायिकारणरूप अवयवोंके द्रव्यत्व करिकै उत्पन्न होवै है। और ता आश्रयद्रव्यके नाश करिकैं हीं नाश होवै है। ता आश्रयद्रव्यके विद्यमानहूए ता सांसिद्धिक द्रवत्वका नाश होता नहीं। जैसे जलीय दो परमाणुवोंके संयोगतैं उत्पन्न भया जो जलीय द्व्यणुक है ता द्व्यणुकके सांसिद्धिक द्रवत्वका सो जलीय द्व्यणुक तौं समवायिकारण होवै है। और ता द्व्यणुकके समवायिकारणरूप परमाणुवोंका सांसिद्धिक द्रवत्व ता द्व्यणुकके द्रवत्वका असमवायिकारण होवै है और अदृष्ट ईश्वरादिक ता द्रवत्वके निमित्तकारण होवे हैं। और ता जलीय द्व्यणुकके नाशतैं हीं ताके द्रवत्वका नाश होवै है। इस प्रकार ता द्व्यणुकरूप जलतैं आदि लेके कूप नदी आदिकोंके महान् जलपर्यंत जितनाकी जन्य जल है ता जन्यजलके द्रवत्वकी तिस तिस जन्य जलके समवायिकारणरूप अवयवोंके द्रवत्व करिकै उत्पत्ति तथा तिस तिस जन्य जलरूप आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश जानिलेणा इति॥

नैमित्तिक द्रवत्वकी अनित्यता—और घृतलाजादिक पृथिवीविषे स्थित जो द्रवत्व है तथा सुवर्णादिक तेजविषे स्थित जो द्रवत्व है सो नैमित्तिकद्रवत्व अनित्य हीं होवै है। किसी भी पृथिवीतेजविषे सो द्रवत्व नित्य होता नहीं। अर्थात् परमाणुरूप नित्य पृथिवीतेजविषे तथा द्व्यणुकादिरूप अनित्य पृथिवीतेजविषे सो द्रवत्व अनित्य हीं होवै है॥

इसकी उत्पत्ति—तहां ता घृतलाक्षादिरूप पृथिवीविषे तथा सुवर्णादिरूप तेजविषे अग्निआदिक तेजके संयोगरूप पाकतैं सो द्रवत्व उत्पन्न होवै है। या कारणतैं हीं ता द्रवत्वकूं पाकज द्रवत्व कहे हैं। तहां ता पृथिवीतेजके द्रवत्वका सो पृथिवीतेज तौं समवायिकारण होवै है और ता पृथिवीतेजके साथि जो अग्निआदिक तेजका संयोग है। सो तेजसंयोग ता द्रवत्वका असमवायिकारण होवै है और अदृष्टईश्वरादिक ता द्रवत्वके निमित्तकारण होवै हैं॥

इसका नाश—और ता पृथिवीतेजवृत्ति नैमित्तिकद्रवत्वका नाश तौं तीन प्रकारतैं होवै है। तहां आश्रयद्रव्यके नाशहूएतैं अनंतर रूपादिक सर्वगुणोंका नाश होवै है यातैं एक तौं ता नैमित्तिक द्रवत्वका ता पृथिवीतेजरूप आश्रयद्रव्यके नाशतैं नाश होवै है और दूसरा ता आश्रयद्रव्यके नहीं नाशहूए भी अत्यन्त अग्निके संयोगतैं ता नैमित्तिक द्रवत्वका नाश होइ जावै है। जैसे इक्षुरसादिकोंका द्रवत्व तथा लाक्षादिकोंका द्रवत्व अत्यन्तअग्निसंयोगतैं नाश होइ जावै है और तीसरा ता आश्रयद्रव्यके विद्यमानहूए भी ता अग्निसंयोगके नाश करिकै

सो नैमित्तिकद्रवत्व नाश होइ जावै है । जैसे अग्निके संयोगतैं सुवर्णादिकोंविषे उत्पन्न भया जो द्रवत्व है सो द्रवत्व ता अग्निसंयोगके निवृत्तहूए निवृत्त होइ जावै है इति ॥

द्रवत्वको असमवायि और निमित्तकारणता—किंवा सो पूर्वउक्त द्रवत्वगुण पूर्वउक्त रीतिसैं ता आद्यस्यंदनका तौं असमवायिकारण होवै है और संग्रहविषे निमित्तकारण होवै है । तहां सक्तु धूलि आदिक पदार्थोंका जो पिंडाकार करणेमें उपयोगी संयोगविशेष है ताका नाम संग्रह है । ता संग्रहविषे सो द्रवत्व निमित्तकारण होवै है । परंतु वक्ष्यमाण स्नेहगुण करिकै सहकृतहूआ सो द्रवत्व ता संग्रहका निमित्तकारण होवै है । जो कदाचित् ता स्नेहगुणतैं विना केवल द्रवत्वकूं हीं ता संग्रहका निमित्तकारण मानिये तौं अग्निसंयोगतैं उत्पन्नहूए सुवर्णादिकोंके द्रवत्वतैं भी तिन सक्तु आदिकोंका संग्रह होणा चाहिये, सो होता नहीं । तहां सो स्नेहगुण केवल जलविषे हीं रहे है अन्य किसी द्रव्यविषे रहता नहीं । तैसे सो सांसिद्धिक द्रवत्व भी केवल जलविषे हीं रहे है, अन्य किसी द्रव्यविषे रहता नहीं । यातैं ता स्नेहसहकृत द्रवत्व सांसिद्धिक द्रवत्व हीं होवै है । सो नैमित्तिक द्रवत्व ता स्नेहसहकृत होवै नहीं ।

**शंका**—जिस स्नेहगुणकी सहकारतातैं सो सांसिद्धिक द्रवत्व ता संग्रहका निमित्तकारण होवै है ता स्नेहकूं हीं ता संग्रहका कारण माननेतैं ता स्नेहके अभावतैं तिन द्रुतसुवर्णादिकों करिकै संग्रहकी आपत्तिका निवारण होइ सके है । यातैं ता सांसिद्धिक द्रवत्वकूं संग्रहका निमित्त कारण माननेविषे कोई भीं प्रमाण नहीं है । **समाधान**—ता संग्रहविषे स्नेहकूं कारणता है अथवा सांसिद्धिक द्रवत्वकूं कारणता है । इन दोनों अर्थोंविषे एक अर्थका साधक कोई युक्ति है नहीं यातैं ता युक्तिरूप विनिगमनाके अभावतैं ता स्नेहकूं तथा सांसिद्धिक द्रवत्वकूं दोनोंकूं हीं ता संग्रहका कारण मान्या चाहिये इति । किंवा जैसे संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व यह पूर्व उक्त गुण चक्षु त्वक् इन दोनों इंद्रियों करिकै ग्रहण होवै है । तैसे यह द्रवत्व गुण भी चक्षु त्वक् इन दोनों इंद्रियों करिकै ग्रहण होवै है इति ॥ द्रवत्व० ॥ १३ ॥

अथ स्नेहनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः** । अर्थ यह—चूर्ण धूलि आदिक द्रव्योंका जो पिंडीभाव है अर्थात् पिंडाकार करणेमें उपयोगी जो संयोगविशेष है ता संयोग-विशेषरूप पिंडीभावका निमित्तकारणरूप जो गुण है सो गुण स्नेह कह्या जावै है । तहां तिन चूर्णादिकोंका जो पिंडीभाव होवै है सो स्नेहगुणवाले जलके संयोगतैं हीं होवै है । ता जलके संयोगतैं विना सो पिंडीभाव होता नहीं । यातैं ता स्नेहगुणविषे ता पिंडीभावकी निमित्तका-रणता संभवै है । पदकृत्य—तहां ' चूर्णादिपिंडीभावहेतुः स्नेहः ' इतनामात्र हीं जो ता स्नेहका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' गुणः ' यह पद नहीं कथन करते तौं काल ईश्वरादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? तिन कालादिकोंकूं कार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण

होणेतैं ता पिंडीभावरूप कार्यका भी निमित्तकारणपणा हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुण' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन काल ईश्वरादिकों विषे गुणरूपता है नहीं। यातैं तिन कालादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'गुणः स्नेहः' इतनामात्र हीं जो ता स्नेहका लक्षण करते तौं रूपादिक सर्वगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती; ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'चूर्णादिपिंडीभावहेतुः' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन रूपादिक गुणोंविषे सो चूर्णादिकोंके पिंडीभावका हेतुपणा रहता नहीं। यातैं तिन रूपादिक गुणोंविषे ता स्नेहके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

**शंका**—इस उक्त लक्षणकी भी पूर्व उक्त सांसिद्धिक द्रवत्वविषे अतिव्याप्ति हीं होवै है। काहेतैं? ता पिंडीभाव विषे जैसे यह स्नेहगुण निमित्तकारण होवै है तैसे पूर्वउक्त रीतिसैं सो सांसिद्धिक द्रवत्व भी ता पिंडीभावविषे निमित्तकारण है, किंवा ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे जो सांसिद्धिक द्रवत्वके भेदका निवेश करोंगे अर्थात् **सांसिद्धिकद्रवत्वभिन्नत्वे सति चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः।** इस प्रकारका लक्षण करोंगे तौं भी धर्माधर्मरूप अदृष्टविषे तथा ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। काहेतैं? सो अदृष्ट तथा ते ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न तीनों कार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण होवै है। यातैं ता पिंडीभावरूप कार्यके प्रति भी निमित्तकारण हीं हैं तथा ता सांसिद्धिक द्रवत्वतैं भिन्न भी हैं तथा गुणरूप भी हैं किंवा ता अदृष्टविषे तथा ईश्वरके ज्ञान, इच्छा प्रयत्नविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे स्थित हेतुपद करिकै जो असाधारण निमित्त कारणका ग्रहण करोंगे तौं ता करिकै हीं तिन कालअदृष्टादिक साधारण निमित्तकारणोंविषे ता अतिव्याप्तिदोषकी निवृत्ति होई सकै है। यातैं ता लक्षणविषे 'गुण' यह पद व्यर्थ होवैंगा। किंवा जिस जल करिकै सो चूर्णादिकोंका पिंडीभाव कबी भी हूआ नहीं किंतु ता पिंडीभावकी उत्पत्तितैं विना हीं जो जल नाश होई गया है ऐसे उत्पन्नविनष्ट जलके स्नेहविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है। जिस कारणतैं ता उत्पन्नविनष्ट जलके स्नेहविषे सो पिंडीभावका कारणपणा है नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब ता स्नेहका—द्वितीयलक्षण करे हैं—**जलेतरसमवेतावृत्ति जलसमवेतवृत्ति गुणत्वव्याप्याव्याप्यजातिमान् स्नेहः।** अर्थ यह—जलतैं भिन्न पृथिवीआदिकोंविषे समवेत वस्तुमें न वर्त्तणेहारी तथा जलविषे समवेत वस्तुमें वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिके व्याप्यजातिका अव्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण स्नेह कह्या जावै है। तहां सो स्नेह गुण केवल जलमात्रविषे हीं रहे है। ता जलतैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्यों विषे सो स्नेह गुण रहता नहीं ऐसे स्नेहगुणविषे रहणेहारी जा स्नेहत्वजाति ता जलतैं इतर-

पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे समवेत गंधादिक गुणोंविषे अवृत्ति भी है। तथा ता जलविषे समवायसंबंध करिके रहणेहारे स्नेहगुणविषे वृत्ति भी है। तथा गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंका अव्याप्य भी है, ऐसी स्नेहत्वजाति सर्वस्नेहोंविषे रहे है। यातें यह स्नेहत्वजाति घटित स्नेहका लक्षण सर्व दोषोंतें रहित हैं। पदकृत्य—तहां 'जलसमवेतवृत्ति गुणत्वव्याप्याव्याप्यजातिमान् स्नेहः' इतनामात्र हीं जो ता स्नेहका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'जलेतरसमवेतावृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतें? ता जलविषे जैसे सो स्नेह गुण रहे है तैसे रूप, रस स्पर्श आदिक गुण भी ता जलविषे रहे हैं ऐसे जलसमवेत रूपादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिके व्याप्यजातिका अव्याप्य ऐसी रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'जलेतरसमवेतावृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता जलतैं इतर पृथिवी आदिकोंविषे समवेतगुणविषे अवृत्ति नहीं है, किंतु ता जलतैं इतरपृथिवीआदिकोंविषे समवेत रूपादिक गुणोंविषे वृत्ति हीं हैं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'जलेतरसमवेतावृत्ति गुणत्वव्याप्याव्याप्यजातिमान् स्नेहः' इतनामात्र हीं जो ता स्नेहका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'जलसमवेतवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्मत्वजातिकूं लैके आत्माविषे तथा मनस्त्वजातिकूं लैके मन विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? सो आत्मा तथा मन किसी भी द्रव्यविषे समवायसंबंध करिके रहता नहीं। यातैं सा आत्मत्वजाति तथा मनस्त्वजाति ता जलतैं इतर पृथिवी आदिकोंविषे समवेत रूपादिकोंविषे अवृत्ति भी है। तथा गुणत्वजातिके व्याप्य जे रूपत्वादिक जातियां हैं तिन रूपत्वादिक जातियोंका अव्याप्य भी हैं। ऐसी आत्मत्व मनस्त्व जातिकूं लैके ता आत्मामनविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'जलसमवेतवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा आत्मत्वमनस्त्वजाति ता जलविषे समवेत गुणकर्मादिकोंविषे वृत्ति नहीं है। यातैं ता आत्मत्वमनस्त्वजातिकूं लैके ता आत्मा मनविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'जलेतरसमवेतावृत्ति जलसमवेतवृत्तिजातिमान् स्नेहः' इतनामात्र हीं जो ता स्नेहका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्याव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं जलमात्रवृत्ति रूप, स्पर्श, द्रवत्व इन तीनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता जलमात्रवृत्ति जो अभास्वर शुक्लरूप है तथा शीतस्पर्श है तथा सांसिद्धिक द्रवत्व है तिन तीनोंविषे यथाक्रमतैं रहणे हारी जा रूपत्वका व्याप्य जाति है। तथा स्पर्शत्वका व्याप्य जाति है तथा द्रवत्वत्वका व्याप्य जाति है ते तीनों जातियां ता जलतैं इतरपृथिवी आदिकोंविषे समवेत रूपस्पर्शादिकोंविषे

अवृत्ति भी हैं तथा जलविषे समवेत तिन रूपस्पर्शादिकोंविषे वृत्ति भी हैं। ऐसी जातियोंकूं लैके तिन जलमात्रवृत्ति रूपादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्याव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते जलमात्रके रूपस्पर्शद्रवत्वविषे वर्त्तणे हारीयां जातियां ता गुणत्वजातिके व्याप्य जातियोंके अव्याप्य नहीं हैं। किंतु ता गुणत्वजातिके व्याप्य जे रूपत्व, स्पर्शत्व, द्रवत्वत्व जातियां हैं तिन रूपत्वादिक जातियोंका ते जातियां व्याप्य हीं हैं। यातैं तिन जातियोंकूं लैके तिन जलमात्रवृत्ति रूपादिकोंविषे ता स्नेहके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

स्नेहका आश्रय—इस प्रकारके उक्त दो लक्षणों करिकै लक्षित सो स्नेहगुण एक जलविषे हीं रहे है ता जलतैं भिन्न पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे सो स्नेहगुण रहता नहीं। तहां 'जलं स्निग्धम्' या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है। सा प्रतीति ता जलके स्नेह गुणकूं हीं विषय करे है। यातैं सो स्नेहगुण ता प्रत्यक्ष प्रतीति करिकै हीं सिद्ध है। द्रवसे अपार्थक्यकी शंका—सा प्रतीति ता जलके द्रवत्वगुणकूं हीं विषय करे है। यातैं ता द्रवत्वगुणतैं सो स्नेहगुण पृथक् नहीं हैं। उसका समाधान—ता द्रवत्वगुणतैं विना हीं हिमकरकादिक जलविषे सो स्नेहगुण प्रतीत होवै है और ता द्रवत्वगुणवाले भी द्रुतसुवर्णादिकोंविषे सो स्नेहगुणप्रतीत होता नहीं। यातैं ता स्नेहगुणकूं ता द्रवत्वगुणतैं भिन्न गुण हीं मान्या चाहिये जो कदाचित् ता स्नेहकूं द्रवत्व गुणतैं भिन्न नहीं मानिये तौं ता द्रवत्वगुणतैं रहित हिमकरकादिकोंविषे सा स्नेहविषयक प्रतीति नहीं होणी चाहिये। तथा ता द्रवत्व गुणवाले तिन द्रुतसुवर्णादिकोंविषे सा स्नेहविषयक प्रतीति होणी चाहिये। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, यातैं ता उक्त प्रतीतिके बलतैं ता स्नेहकूं भिन्न गुण हीं मान्या चाहिये इति॥

स्नेहके भेद—किंवा सो उक्त स्नेहगुण नित्य१, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणुरूप नित्य जलविषे तौं सो स्नेह नित्य होवै है और द्व्यणुकादिरूप अनित्य जलविषे सो स्नेह अनित्य होवै है। अनित्य स्नेहकी उत्पत्ति और नाश—तहां अनित्य स्नेह स्वाश्रय द्रव्यकी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीयक्षणविषे ता द्रव्यके समवायिकारणरूप अवयवोंके स्नेह करिकै उत्पन्न होवै है। और ता आश्रयद्रव्यके नाशतैं हीं नाश होवै है। जैसे जलीय दो परमाणुवोंके संयोगतैं उत्पन्न भया जो जलीय द्व्यणुकहै ता जलीय द्व्यणुकके स्नेहका सो जलीय द्व्यणुक तौं समवायिकारण होवै है और ता द्व्यणुकके समवायिकारणरूप परमाणुवोंविषे स्थित जो स्नेह है सो परमाणुवोंका स्नेह ता द्व्यणुकके स्नेहका असमवायिकारण होवै है। और अदृष्ट ईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं। और ता द्व्यणुकरूप आश्रयद्रव्यके नाश करिकै हीं ता स्नेहका नाश होवैहै। इस प्रकार द्व्यणुकरूप जलतैं आदि लैके कूप नदी आदिकोंके जलपर्यंत सर्वअनित्य जलोंविषे स्थित स्नेहकी उत्पत्ति तथा विनाश जानिलेणा इति॥

तैलादिक पृथिवीविषे स्नेहकी शंका—सो स्नेहगुण एक जलविषे हीं रहे है । पृथिवी आदिकोंविषे रहता नहीं । यह जो पूर्वप्रतिज्ञा करी थी सो असंगत है । काहेतैं ? जैसे जलके संयोगसंबंध करिकै चूर्णादिकोंका पिंडीभाव होवै है तैसे तैलादिक पृथिवीके संयोगसंबंध करिकै भी सो चूर्णादिकोंका पिंडीभाव होवै है । यातैं ता तैलादिरूप पृथिवीविषे भी सो स्नेहगुण अवश्य मानणा होवैगा । और जो यह कहो तिन तैलादिकोंविषे जो स्नेह प्रतीत होवै है सो स्नेह जलका हीं है अर्थात् तिन तैलादिकोंके अन्तरस्थित जो जलभाग है ता जलभागका हीं सो स्नेह प्रतीत होवै है सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? तिन तैलादिकोंके अन्तर जो जलका भाग अंगीकार करोगे तौ तिन तैलादिकोंके संयोगसंबंधतैं अग्निका नाश होणा चाहिये । जिस कारणतैं ता अग्निके नाशविषे संयोगसंबंध करिकै जलकूं कारणता प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है । सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु उलटा ता तैलके संयोगसंबंधके हूए ता अग्निकी वृद्धि हीं देखणेविषे आवै है । यातैं तिन तैलादिकोंविषे जलभागका अंगीकार करणा संभवता नहीं ॥

उसको जलीय मानकर समाधान—तिन तैलादिकोंविषे जो स्नेह प्रतीत होवै है सो स्नेह भी तिन तैलादिकोंके अन्तर्गत जलभागका हीं है, परन्तु सो स्नेह प्रकृष्ट होवै है यातैं सो स्नेह ता अग्निके अनुकूल हीं होवै है, प्रतिकूल होवै नहीं । तात्पर्य यह—सो स्नेह प्रकृष्ट १, अप्रकृष्ट २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां तैलादिकोंके अन्तर्गत जलभागविषे स्थित जो स्नेह है सो स्नेह तौ प्रकृष्ट कह्या जावै है । और कूपनदी आदिकोंके जलविषे स्थित स्नेह अपकृष्ट कह्या जावै है । तहां प्रकृष्टस्नेहवाला जलतौं ता अग्निका नाश करता नहीं उलटा ता अग्निके अनुकूल होवै है । और अप्रकृष्टस्नेहवाला जल ता अग्निका नाश करै है । यातैं सो स्नेहगुण केवल जलविषे हीं रहै है । पृथिवी आदिकोंविषे रहता नहीं यह सिद्ध भया इति ॥ इति स्नेहनिरूपणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

अथ शब्दनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः** । अर्थ यह—जो गुण श्रोत्र ग्राह्य होवै है अर्थात् श्रोत्रइंद्रियजन्य ज्ञानका विषय होवै है सो गुण शब्द कह्या जावै है । तहां ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै केवल शब्दगुणका हीं ज्ञान होवै है अन्यकिसी गुणका ज्ञान होता नहीं; यातैं यह श्रोत्र ग्राह्यगुणत्वरूप शब्दका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां ‘ श्रोत्रग्राह्यः शब्दः ’ इतनामात्र हीं जो ता शब्दका लक्षण करते ता लक्षणविषे ‘ गुणः ’ यह पद नहीं कथन करते तौ शब्दत्वजातिविषे तथा शब्दके अभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो शब्दगुण श्रोत्रइंद्रिय करिकै ग्राह्य होवै है । तैसे ता शब्दवृत्ति शब्दत्वजाति तथा ता शब्दका अभाव भी ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै हीं ग्राह्य होवै है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्तकरणे

वासतै ता लक्षणविषे 'गुणः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता शब्दत्वजाति विषे तथा ता शब्दके अभाव विषे गुणरूपता है नहीं । यातैं ता शब्दत्वजातिविषे तथा शब्दके अभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

सर्वका निवर्चनरूप द्वितीयलक्षण—कर्ण शष्कुली अवच्छिन्न आकाशरूप श्रोत्रविषे उत्पन्नहूए शब्दका हीं ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै ग्रहण होवै है । भेरीआदिक अवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्नहूए शब्दोंका ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै ग्रहण होता नहीं । यातैं तिन शब्दोंविषे इस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैंगी । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए अब ता उक्तलक्षणका अन्यप्रकारतैं निर्वचन करे हैं—**श्रोत्रग्राह्यवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् शब्दः ।** अर्थ यह—श्रोत्रइंद्रिय करिकै ग्राह्यवस्तुविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण शब्द कह्या जावै है । तहां जिस शब्दका श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है सो शब्द श्रोत्रग्राह्य कह्या जावै है । ता श्रोत्रग्राह्य शब्दविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्व जातिका व्याप्य ऐसी शब्दत्वजाति है, सा शब्दत्व जाति सर्व शब्दोंविषे रहे है । यातैं ता भेरी आदिअवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्न हूए शब्दोंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । पदकृत्य—तहां जा गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै इस लक्षणविषे 'श्रोत्रग्राह्यवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता श्रोत्रग्राह्यशब्दविषे वर्त्ततीयां नहीं । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद जो नहीं कथन करते तौं ता श्रोत्रग्राह्य शब्दविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा गुणत्वजाति सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है । यातैं ता गुणत्वजातिकूं तथा सत्ताजातिकूं लैके तथा तहां अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

अथवा ता शब्दका यह तीसरा लक्षण—करणा । **आकाशविशेषगुणः शब्दः ।** अर्थ यह—आकाशका जो विशेषगुण होवै सो शब्द कह्या जावै है । तहां आकाशविषे एक शब्द हीं विशेषगुण रहे है, ता शब्दतैं भिन्न दूसरा कोई विशेषगुण ता आकाशविषे रहता नहीं । यातैं यह आकाशविशेषगुणत्वरूप शब्दका लक्षण भी संभवै है । पदकृत्य—'तहां 'विशेष गुणः शब्दः' इतनामात्र हीं जो ता शब्दका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'आकाश' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपादिक विशेषगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, जिस कारणतैं ता शब्दकी न्याईं ते रूपादिक भी विशेषगुण हीं हैं, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'आकाश' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपादिक आकाशके विशेषगुण नहीं हैं ।

किंतु पृथिवी आदिकोंके विशेष गुण हैं । यातैं तिन रूपादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ' आकाशगुणः शब्दः ' इतनामात्र हीं जो ता शब्दका लक्षण करते ता लक्षणविषे " विशेष ' यह पद नहीं कथन करते तौं ता आकाशवृत्ति संख्यादिक पंचगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' विशेष' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते संख्यादिक विशेषगुण नहीं हैं किंतु सामान्यगुण हैं । यातैं तिन संख्यादिकोंविषे ता शब्दके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणों करिकै लक्षित सो शब्दगुण एक आकाशरूप द्रव्यविषे हीं रहे है । ता आकाशतैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे सो शब्दगुण रहता नहीं इति ॥

शब्दके भेद—और सो शब्दगुण ध्वन्यात्मक १, वर्णात्मक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। ध्वन्यात्मक—तहां भेरी, मृदंग, शंख, वेणु, वीणा इत्यादिकोंतैं उत्पन्न भया जो शब्द है सो शब्द ध्वन्यात्मकशब्द कह्या जावै है । वर्णात्मक—और कंठ १, तालु २, मूर्धा ३, दन्त ४, ओष्ठ ५, नासिका ६, जिह्वामूल ७, उर ८ इन अष्टस्थानोंतैं यथाक्रमतैं उत्पन्न भये जे अकारादिक वर्ण हैं ते अकारादिक वर्णात्मक शब्द कह्या जावै है । अर्थात् अकारादिवर्णरूप जितनी संस्कृतभाषा है तथा लौकिकभाषा है ते सर्व वर्णात्मक शब्द कह्या जावै है । सो यह ध्वन्यात्मक शब्द तथा वर्णात्मक शब्द सर्व अनित्य हीं होवै है, कोई भी शब्द नित्य होता नहीं इति । दोनोंके तीन भेद—तहां सो पूर्वउक्त ध्वन्यात्मक शब्द तथा वर्णात्मक शब्द संयोगज १, विभागज २, शब्दज ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । संयोगज—तहां जो शब्द संयोगरूप असमवायिकारण करिकै जन्य होवै है । सो शब्द संयोगज शब्द कह्या जावै है। विभागज—और जो शब्द विभागरूप असमवायिकारण करिकै जन्य होवै है। सो शब्द विभागज-शब्द कह्या जावै है । शब्दज—और जो शब्द शब्दरूप असमवायिकारण करिकै जन्य होवै है। सो शब्द शब्दजशब्द कह्या जावै है। संयोगज ध्वन्यात्मक—तहां भेरी दंडादिकोंके अभिघाताख्य संयोगहूएतैं अनंतर ता भेरीअवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्न भया जो प्रथमशब्द है सो प्रथमशब्द संयोगज ध्वन्यात्मकशब्द कह्या जावै है । इसके कारण—तहां ता शब्दका सो भेरी अवच्छिन्न आकाश तौं समवायिकारण होवै है और ता भेरीके साथि जो आकाशका संयोगसंबंध है सो भेरी आकाशसंयोग ता शब्दका असमवायिकारण होवै है। और भेरीदंडसंयोग तथा अदृष्ट-ईश्वरादिक ता शब्दके निमित्तकारण होवै हैं। इस प्रकार मृदंग, शंख, वेणु, वीणा आदिकोंतैं उत्पन्नभए शब्द भी संयोगजध्वन्यात्मक शब्द कहे जावै हैं। विभागजध्वन्यात्मक—और वंशा-दिकोंके फाडने करिकै जो चटचट इस प्रकारका प्रथमशब्द उत्पन्न होवै है सो प्रथमशब्द विभागज ध्वन्यात्मक शब्द कह्या जावै है । इसके कारण तहां ता ध्वन्यात्मकशब्दका सो वंशदलावच्छिन्न आकाश तौं समवायिकारण होवै है और तिन वंशदलोंके साथि जो

आकाशका विभाग है सो वंशदल आकाशका विभाग ता शब्दका असमवायिकारण होवै है। और तिन दोनों वंशदलोंका जो परस्परविभाग है सो वंशदलद्वयविभाग ता शब्दका निमित्त-कारण होवै है। संयोगज वर्णात्मक—और कण्ठतालुआदिक स्थानोंतैं जो प्रथम वर्णात्मक शब्द उत्पन्न होवै है सो प्रथमशब्द संयोगज वर्णात्मक शब्द कह्या जावै है। इसके कारण—तहां ता वर्णात्मक शब्दका सो कण्ठतालुआदि अवच्छिन्न आकाश तौं समवायिकारण होवै है और तिन कण्ठतालुआदिकोंके साथि जो आकाशका संयोगसम्बन्ध है सो कंठादि आका-शसंयोग ता शब्दका असमवायिकारण होवै है। और तिन कण्ठतालु आदिकोंके साथि जो वायुआदिकोंका संयोग है सो संयोग ता शब्दका निमित्तकारण होवै है ॥

विभागज वर्णात्मक—और दोनों ओष्ठोंके विभागहूए जो वर्णात्मकशब्द उत्पन्न होवै है सो प्रथमशब्द विभागज वर्णात्मक शब्द कह्या जावै है। इसके कारण—तहां ता विभागजवर्णात्मक शब्दका सो ओष्ठावच्छिन्न आकाश तौं समवायिकारण होवै है और तिन दोनों ओष्ठोंके साथि जो आकाशका विभाग है सो ओष्ठआकाशका विभाग ता शब्दका असमवायि-कारण होवै है और तिन दोनों ओष्ठोंका जो परस्परविभाग है सो ओष्ठविभाग ता शब्दका निमित्तकारण होवै है। शब्दजध्वन्यात्मक--और ता पूर्वउक्त संयोगजविभागजरूप ध्वन्यात्मक प्रथम शब्दतैं उत्पन्न भया जो ध्वन्यात्मक द्वितीयशब्द है सो द्वितीयशब्द शब्दज ध्वन्या-त्मक शब्द कह्या जावै है। इसके कारण—तहां ता द्वितीय ध्वन्यात्मक शब्दका सो आकाश तौं समवायिकारण होवै है और सो प्रथमध्वन्यात्मक शब्द असमवायिकारण होवै है और अनुकूलवायु निमित्तकारण होवै है। शब्दज वर्णात्मक—इस प्रकार ता पूर्वउक्त संयोगजविभागज रूप वर्णात्मक प्रथम शब्दतैं उत्पन्न भया जो द्वितीय वर्णात्मक शब्द है सो द्वितीय शब्द शब्दज वर्णात्मक शब्द कह्या जावै है। इसके कारण—तहां ता द्वितीयवर्णात्मक शब्दका सो आकाश तौं समवायिकारण होवै है और सो प्रथमवर्णात्मक शब्द असमवायिकारण होवै है। और अनुकूल वायु निमित्तकारण होवै है। इस प्रकार द्वितीयशब्दतैं आदि लैके अंत्य शब्दपर्यंत जितनैंकी मध्यविषे शब्द उत्पन्न होवै हैं। ते सर्वशब्द पूर्वपूर्व शब्द करिकै जन्य होणेतैं शब्दज शब्द कह्ये जावै हैं इति ॥

भेरीके शब्दकी श्रोत्रमें उत्पत्ति होनेकी रीति—भेरी आदि अवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्न भया जो शब्द है सो शब्द भेरीआदि अवच्छिन्न आकाशविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहैगा। ता कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाशरूप श्रोत्रविषे सो शब्द समवायसंबंध करिकै रहैगा नहीं। यातैं ता श्रोत्रइंद्रियके संबंधतैं रहित ता शब्दका ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष कैसे होवैगा। किंतु ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै ता शब्दका प्रत्यक्ष संभवता नहीं। तात्पर्य यह—जिस जिस इंद्रियका जिस जिस अर्थके साथि संबंध होवै है तिस तिस अर्थका हीं तिस तिस इंद्रिय करिकै

प्रत्यक्ष होवै है, ता इंद्रिय अर्थके संबंधतैं विना कोई भी प्रत्यक्ष होता नहीं । तहां जैसे चक्षु इंद्रियका क्रिया करिकै सूर्यचंद्रादिक अर्थोंके साथि संबंध होवै है । तैसे ता आकाशरूप श्रोत्र इंद्रियविषे क्रिया होती नहीं । जिस क्रिया करिकै ता श्रोत्रइंद्रियका ता भेरी अवच्छिन्न आकाशविषे समवेत शब्दके साथि संबंध होवै और संबंधतैं विना हीं ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै जो शब्दका प्रत्यक्ष मानोंगे तौं काशीअवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्नहूए शब्दका मथुरास्थ पुरुषकूं भी ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता आकाशरूप श्रोत्र इंद्रियविषे ता शब्दके उत्पत्तिका प्रकार वर्णन करे हैं—तहां पूर्व-उक्त रीतिसैं भेरीआदि अवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्न भया जो प्रथमध्वन्यात्मक शब्द है । तथा कंठतालु आदि अवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्न भया जो प्रथम वर्णात्मक शब्द है । सो प्रथमशब्द वीचीतरंगन्याय करिकै अथवा कदंबगोलक न्याय करिकै आपणे समीप दूसरे शब्दकूं उत्पन्न करे है, आगेतैं सो दूसरा शब्द भी आपणे समीप तीसरे शब्दकूं उत्पन्न करे है, आगेतैं सो तीसरा शब्द भी आपणे समीप चतुर्थ शब्दकूं उत्पन्न करे है, सो चतुर्थ शब्द आपणे समीप पंचम शब्दकूं उत्पन्न करे है । इस प्रकार सो पूर्वपूर्व शब्द स्वाश्रयभूत आकाशप्रदेशतैं अव्यवहित आकाशभागविषे उत्तरउत्तर शब्दकूं उत्पन्न करता जावै है । और ता उत्तरउत्तर शब्दके उत्पन्नहूए सो पूर्वपूर्व शब्द नाश होता जावै है । इस प्रकारतैं पूर्वपूर्व शब्दतैं उत्तरउत्तर शब्दकी उत्पत्ति होते होते जो शब्द जिस प्राणीके कर्णशष्कुली अवच्छिन्न आकाशरूप श्रोत्रविषे जाइके समवायसम्बन्ध करिकै उत्पन्न होवै है । तिस शब्दका हीं तिस प्राणीकूं ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । तिस शब्दतैं अन्य शब्दोंका ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । और 'भेरीशब्दो मया श्रुतः' अर्थ यह—भेरी अवच्छिन्न आकाशका शब्द हमनैं श्रवण कऱ्या है । या प्रकारकी जा लोकोंकूं प्रतीति होवै है सा प्रतीति भ्रांति-रूप हीं है । यातैं ता भ्रमरूप प्रतीतितैं ता भेरीशब्दका प्रत्यक्ष सिद्ध होवै नहीं इति । तहां पूर्व उक्त वीचीतरंगन्यायका तथा कदंबगोलक न्यायकाअर्थ यह है—जैसे समुद्रादिकोंके जलविषे एक तरंगके अग्रभागविषे दूसरा तरंग उठे है, ता दूसरे तरंगके अग्रभागविषे तीसरा तरंग उठे है, ता तीसरे तरंगके अग्रभागविषे चतुर्थ तरंग उठे है । इस प्रकार एक हीं पूर्वादिक दिशाविषे तिन तरंगोंके परंपराका प्रवाह चल्या जावै है । तैसे जिस स्थलविषे उक्त रीतिसैं पूर्वपूर्व शब्दतैं उत्तरउत्तर शब्दकी उत्पत्ति एक हीं पूर्वादिक दिशाविषे होती जावै है । तहां तौं वीचीतरंग न्याय करिकै ता प्रथमशब्दतैं द्वितीयादिक शब्दोंकी उत्पत्ति जानणी । और जैसे कदंबगोल-कके मध्यतैं सर्वदिशावोंकी तरफ पत्र निकसे हैं । तैसे जिस स्थलविषे, ता मध्यवर्त्ति प्रथम शब्दतैं पूर्वादिक दशदिशावोंविषे दशशब्द उत्पन्न होवै हैं ते दशशब्द दूसरे दश शब्दोंकूं उत्पन्न करे है । ते दूसरे दश शब्द तीसरे दश शब्दोंकूं उत्पन्न करे हैं । इस प्रकार दशोंदिशाविषे पूर्व

पूर्व शब्दोंतैं उत्तरउत्तर शब्द उत्पन्न होते जावै हैं। तहां तौं कदंबगोलकन्याय करिकै ता प्रथम शब्दतैं द्वितीयादिक शब्दोंकी उत्पत्ति जानणी ॥

दोनों न्यायोंके व्यवस्थाविषे प्रमाणकी शंका—कहां तौं ता प्रथमशब्दतैं वीचीतरंगन्याय करिकै एक हीं दिशाविषे शब्दोंकी धारा उत्पन्न होवै है और कहां तौं ता प्रथमशब्दतैं कदंबगोलकन्याय करिकै दशोंदिशाविषे सा शब्दोंकी धारा उत्पन्न होवै है। या प्रकारकी व्यवस्थाविषे कौन हेतु है? इसका समाधान—या प्रकारकी व्यवस्थाविषे वायुका संयोग हीं हेतु है । काहेतैं? ता शब्दकी उत्पत्तिविषे जैसे पूर्वउक्त रीतिसैं आकाशादिक कारण होवै हैं तैसे सो आकाश वायुका संयोग भी ता शब्दकी उत्पत्तिविषे निमित्तकरण होवै है । तहां जिस भेरी अवच्छिन्न आकाशविषे सो प्रथमशब्द उत्पन्न होवै है तिस भेरीसैं संबद्ध होइकै सो वायु जिस जिस दिशाके सन्मुख गमन करे है तिस तिस दिशावच्छिन्न आकाशविषे हीं ता वायुके संयोगतैं ता शब्दधाराकी उत्पत्ति होवै है अन्यदिशाविषे ता वायुआकाशसंयोगके अभावतैं ता शब्दधाराकी उत्पत्ति होवै नहीं। तहां जबी तौं सो वायु एक हीं दिशाके सन्मुख गमन करे है तबी तौं ता वीचीतरंग न्याय करिकै ता एक हीं दिशाविषे ता शब्दधाराकी उत्पत्ति होवै है । या कारणतैं हीं भेरी आदिकोंके समीप देशाविषे स्थित भी मैंनें विपरीत वायुके वशतैं तिन भेरी आदिकोंका शब्द नहीं श्रवण कऱ्या या प्रकारका लोकोंका व्यवहार देखणेविषे आवै है । और जबी तौं सो वायु सर्वदिशावोंके सन्मुख गमन करे है तबी तौं ता कदंब-गोलकन्याय करिकै तिन सर्वदिशावोंविषे ता शब्दधाराकी उत्पत्ति होवै है। जैसे मेघोंके गर्जनारूप शब्दतैं ता सर्वदिशासंचारी वायुके संयोग करिकै सर्वदिशावोंविषे ता शब्दधाराकी उत्पत्ति होवै है। इस प्रकार वायुसंयोगके वशतैं हीं तिन द्वितीयादिक शब्दोंके उत्पत्तिका नियम होवै है वायुके संयोगका नियम तौं तिस तिस दिशाके सन्मुख ता वायुकी क्रियाके वशतैं होवै है और ता वायुकी क्रियाका नियामक तौं अदृष्टवाले आत्माका संयोग हीं होवै है इति। इतनैं पर्यंत ता शब्दके उत्पत्तिका प्रकार वर्णन कऱ्या ॥

अब ता शब्दके विनाशका प्रकार—वर्णन करे हैं । तहां विभुद्रव्यके जे योग्य विशेष गुण हैं ते योग्य विशेष गुण स्वउत्तर उत्पन्न हुए तथा स्वसमानाधिकरण ऐसे योग्य विभु विशेषगुणों करिकै नाश होइ जावैं हैं । जैसे विभुआत्माके बुद्धिआदिक योग्यविशेषगुण स्वउत्तर उत्पन्न हूए तथा स्वसमानाधिकरण ऐसे बुद्धिआदिक योग्य विशेषगुणों करिकै नाश होइ जावै हैं। तैसे यह शब्द भी विभु आकाशका योग्य विशेषगुण है । यातैं यह शब्द भी स्वउत्तर उत्पन्न हूए तथा स्वसमानाधिकरण ऐसे द्वितीय शब्द करिकै नाश होइ जावै है । अर्थात् पूर्वउक्त रीतिसैं ता भेरी आदि अवच्छिन्न आकाशविषे प्रथमक्षणविषे सो आद्यशब्द

उत्पन्न होवै है और द्वितीयक्षणविषे ता आद्यशब्दतैं द्वितीयशब्द उत्पन्न होवै है । सो द्वितीयशब्द ता आद्यशब्दका नाशक है । यातैं तृतीयक्षणविषे सो आद्यशब्द नाश होइ जावै है। इस प्रकार सो द्वितीयशब्द भी आपणी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीय क्षणविषे तृतीय शब्दकूं उत्पन्न करिकै तृतीयक्षणविषे नाश होइ जावै है सो तृतीय शब्द इस प्रकार आगे आगे भी आपणी उत्पत्ति क्षणतैं द्वितीयक्षणविषे चतुर्थ शब्दकूं उत्पन्न करिकै तृतीयक्षणविषे नाश होइ जावै है । इस प्रकार आगे आगे भी उत्तरउत्तर शब्द करिकै पूर्वपूर्व शब्दका नाश होता जावै है । यातैं विभु जीवात्माके बुद्धिआदिक योग्य विशेषगुणोंकी न्यांई यह शब्द गुण भी द्विक्षणावस्थायी होवै है अर्थात् दो क्षणपर्यंत स्थायी होवै है इति ॥

सुन्दोपसुन्द न्यायसे अन्त्य और उपान्त्य शब्दका नाश माननेवाले प्राचीन नैयायिक—उत्तरउत्तर शब्द करिकै जो पूर्वपूर्व शब्दका नाश मानोंगे तौं जिस शब्दतैं आगे कोई भी शब्द नहीं उत्पन्न होवै है ऐसे अन्त्य शब्दका नाश नहीं होवैगा । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; तहां प्राचीननैयायिक तौं ता शंकाका यह समाधान करे हैं । ता अंत्य शब्दकूं छोडिकै जितनैंकी पूर्वपूर्व आद्य मध्य शब्द है ते आद्यमध्य शब्द हीं स्वउत्तरवृत्ति स्वकार्यभूत शब्द करिकै नाश होवै हैं और सो अंत्यशब्द तौं ता स्वउत्तरवृत्ति तथा स्वकार्यभूत शब्द करिकै नाश होता नहीं । किंतु सो अंत्य शब्द तौं स्वअव्यवहित पूर्ववृत्ति तथा स्वकारणीभूत ऐसे उपान्त्य शब्द करिकै हीं नाश होवै है । इस प्रकार सुंदोपसुन्द न्याय करिकै हीं ता अंत्यशब्दका तथा उपांत्य शब्दका नाश होवै है । तात्पर्य यह—जैसे सुन्द उपसुन्द नामा दोनों असुर परस्पर शस्त्रप्रहार करिकै एकहीं कालविषे नाश होते भये हैं । तैसे ते अंत्य उपान्त्य दोनों शब्द भी परस्पर नाशक होणेतैं एक हीं क्षणविषे नाश होवै हैं अर्थात् ता अंत्य शब्दकी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीयक्षणविषे सो अन्त्यशब्द तथा उपांत्यशब्द दोनों नाश होइ जावै हैं । तहां सो आद्यशब्द तथा मध्यशब्द तौं द्विक्षणावस्थायी होवै हैं और सो अंत्यशब्द क्षणिक होवै है । तहां जो वस्तु एकक्षणविषे उत्पन्न होइकै द्वितीयक्षणविषे नाश होइ जावै है सो वस्तु क्षणिक कह्या जावै है इति ॥

सो यह प्राचीन नैयायिकोंका मत असंगत—है काहेतैं ? जिस क्षणविषे ता अंत्यशब्दका नाश होवै है तिस क्षणविषे सो उपान्त्यशब्द विद्यमान है नहीं, किंतु तिस क्षणविषे सो उपान्त्यशब्द आप हीं नाश होइ जावै है और कारणकी विद्यमानतातैं विना कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता उपान्त्य शब्द करिकै ता अन्त्यशब्दका नाश सम्भवता नहीं, किंवा ता उपान्त्यशब्द करिकै जो अन्त्यशब्दका नाश मानिये तौं ता अन्त्य शब्दविषे क्षणिकता हीं प्राप्त होवै है और ता क्षणिक अन्त्य शब्दके दृष्टान्त करिकै तिन आद्यमध्य शब्दोंविषे भी क्षणिकता हीं प्राप्त होवैंगी अर्थात् आद्यमध्यशब्दाः क्षणिकाः शब्दत्वात् अन्त्यशब्दवत् । या प्रकारके अनुमान करिकै तिन आद्यमध्य शब्दोंविषे भी क्षणिकता हीं

सिद्ध होवैंगी ता करिकै तिन प्राचीनोंके मतविषे क्षणिक वादी बौद्धके मतका प्रवेश होवैंगा। या कारणतैं भी तौं उपान्त्यशब्द करिकै अन्त्य शब्दका नाश मानणा अनुचित है इति ॥

इसपर नवीन नैयायिक–ता उक्तसंख्याका या प्रकारका समाधान करे हैं। ता उपांत्य शब्द करिकै ता अन्त्य शब्दका नाश होता नहीं, किंतु ता उपांत्य शब्दके नाश करिकै हीं ता अन्त्य शब्दका नाश होवै है । सो उपांत्य शब्दका प्रध्वंसाभावरूप नाश अनन्त होणेतैं ता अन्त्यशब्दकी उत्पत्तिक्षणतैं द्वितीयादिक क्षणविषे भी विद्यमान है । ऐसे उपान्त शब्दके नाश करिकै ता अन्त्य शब्दका भीं तृतीयक्षणविषे हीं नाश होवै है। यातैं जैसे ते आद्यमध्य शब्द द्विक्षणावस्थायी होवै हैं तैसे सो अंत्य शब्द भी द्विक्षणावस्थायी हीं होवै है। इस प्रकार उपांत्य शब्दके नाश करिकै अंत्यशब्दका नाश मानणेविषे ते पूर्वउक्त दोष ईहां प्राप्त होते नहीं। यातैं यह नवीनोंका मत हीं समीचीन है इति । इतनैंपर्यंत न्यायशास्त्रकी रीतिसैं शब्दका निरूपण कऱ्या । अब मीमांसाशास्त्रकी रीतिसैं ता शब्दका निरूपण करे हैं ।

तहां– प्रभाकरका–तौं यह मत है, आकाशका गुणरूप जो शब्द है सो शब्द नित्य हीं है कोई भी शब्द अनित्य होता नहीं यातैं ता शब्दका उत्पत्तिविनाश संभवता नहीं और ता नैयायिकनैं ता शब्दकी उत्पत्तिविषे जितनेंकी कंठताल्वआदिक तथा विजातीय वायुके संयोग आदिक कारण कथन करे थे ते सर्व कारण ता शब्दके उत्पादक नहीं है किंतु ता शब्दके अभिव्यंजक हैं अर्थात् ता नित्य शब्दकी अभिव्यक्ति करावणे हारे हैं ।

अनुमानतैं शब्दकी नित्यतासिद्धि–अब अनुमानप्रमाण करिकै ता शब्दकी नित्यता सिद्ध करे हैं। **शब्दो नित्यः श्रावणप्रत्यक्षत्वात् शब्दत्ववत्** । अर्थ यह–सो शब्द नित्य होणे योग्य है । श्रोत्रइंद्रियजन्य प्रत्यक्षका विषय होणेतैं जो जो श्रावणप्रत्यक्षका विषय होवै है सो सो नित्य हीं होवै है । जैसे शब्दविषे रही हूई शब्दत्वजाति ता श्रावणप्रत्यक्षका विषय होणेतैं नित्य होवै है । तैसे सो शब्द भी ता श्रावणप्रत्यक्षका विषय होणेतैं नित्य ही होवैंगा इति ।

अथवा यह दूसरा अनुमान करणा–**शब्दो नित्यः आकाशमात्रगुणत्वात् आकाश परिमाणवत्** । अर्थ यह–सो शब्द नित्य होणे योग्य है आकाशमात्रका गुण होणेतैं । जो जो आकाशमात्रका गुण होवै हैं सो सो नित्य हीं होवै है। जैसे आकाशका परम महत्त्व परिमाण ता आकाशमात्रका गुण होणेतैं नित्य हीं होवै है । तैसे सो शब्द भी ता आकाशमात्रका गुण होणेतैं नित्य हीं होवैंगा । पदकृत्य–तहां 'आकाशमात्रगुणत्वात्' इस उक्त हेतुविषे जो 'मात्र' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाशघटके संयोगविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? सो आकाशघटका संयोग ता आकाश घट दोनोंविषे रहे है । यातैं ता संयोगविषे सो आकाशका गुणत्वरूप हेतु तौं है, परंतु सो नित्यत्वरूप साध्य

ता संयोगविषे है नहीं । ता व्यभिचार दोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता हेतुविषे 'मात्र' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता आकाशघटके संयोगविषे केवल ता आकाशमात्रका गुणपणा नहीं है । किंतु ता घटका भी गुणपणा है । यातैं ता आकाशघटके संयोगविषे ता उक्तहेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति ॥

शब्दकी नित्यतापर प्रत्यभिज्ञा—किंवा ता शब्दकी नित्यता केवल उक्त अनुमानप्रमाण करिकै हीं सिद्ध नहीं हैं, 'किन्तु सोऽयं गकारः' या प्रकारके प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्षतैं भी ता शब्दका नित्यपणा हीं सिद्ध होवै है । ता प्रत्यभिज्ञाका यह अर्थ है—जो गकार हमनैं पूर्व-श्रवण कऱ्या था सोई यह गकार है । तहां इस प्रत्यभिज्ञाविषे एततकालीन गकारविषे पूर्व-कालीन गकारका अभेद प्रतीत होवै है । सा अभेदप्रतीति मध्यविषे ता गकारके नाश मानणे करिकै सम्भवती नहीं । यातैं ता अभेदविषयक प्रत्यभिज्ञाके बलतैं ता गकारका तितनैं काल-पर्यंत स्थायीपणा अवश्य मानणा होवैगा । यातैं तिन उत्तरउत्तर शब्दोंकूं तिन पूर्वपूर्व शब्दोंकी नाशकता सम्भवती नहीं और दूसरा कोई ता शब्दका नाशक है नहीं । यातैं ता प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्षतैं भी ता गकारादिक शब्दकी नित्यता हीं सिद्ध होवै है । इतनैं करिकै ता पूर्वउक्त अनुमानाविषे यह अनुकूल तर्क बोधन कऱ्या सो गकारादिक शब्द जो नित्य नहीं होवै तौं पूर्वका-लीनगकारके अभेद प्रत्यभिज्ञाका विषय नहीं होवैगा और सो गकारादिक शब्द ता अभेद प्रत्यभिज्ञाका विषय तौं होवै है । यातैं ता गकारादिक शब्दकूं नित्य हीं मान्या चाहिये इति॥

इसका खण्डन—सो यह प्राभाकरका मत समीचीन नहीं है । काहेतैं ? 'उत्पन्नो गकारः' विनष्टो गकारः' अर्थ यह—यह गकार उत्पन्न हूआ है यह गकार विनष्ट हूआ है । या प्रकारकी प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है सा प्रतीति तिन गकादिक वर्णोंके उत्पत्तिविनाशकूं हीं विषय करे है । यातैं ता प्रतीतिके बलतैं तिन गकारादिक वर्णोंके उत्पत्ति तथा विनाश अवश्य अंगीकार करणा होवैगा और जो जो पदार्थ उत्पत्तिविनाशवाला होवै है सो सो पदार्थ अनित्य हीं होवै है । जैसे घटादिक पदार्थ उत्पत्तिविनाशवाले होणेतैं अनित्य हीं है । तैसे सो शब्द भी उत्पत्ति विनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवैगा । तहां सो मीमांसक जो यह कहै 'उत्पन्नो गकारः विनष्टो गकारः' यह उक्त प्रतीति ता गकारके उत्पत्ति विनाशकूं विषय करती नहीं किंतु तिन गकारादिक वर्णोंका अभिव्यंजक जो विजातीय वायु है ता वायुके उत्पत्तिविनाशकूं हीं सा प्रतीति विषय करे है अर्थात् गकारका अभिव्यंजक वायु उत्पन्न हूआ है तथा नष्ट हूआ है । इस प्रकार ता अभिव्यंजक वायुके उत्पत्तिविनाशकूं विषय करती हूई सा उक्तप्रतीति तिन गकारादिक वर्णोंके नित्यताका बाधक होवै नहीं । सो यह मीमांसकका कहणा भी असंगत है । काहेतैं ? ता उक्तप्रतीतिविषे ता गकारका उत्पत्तिविनाश हीं प्रतीत होवै है । ता व्यंजक वायुका उत्पत्तिविनाश प्रतीत होता नहीं । और जिस प्रतीति

विषे जिस अर्थका भान होवै है सोई हीं अर्थ ता प्रतीतिका विषय होवै है। यातैं ता उक्त प्रतीतितैं ता गकारका उत्पत्तिविनाश हीं सिद्ध होवै है, ता वायुका उत्पत्ति विनाश सिद्ध होवै नहीं। इस प्रकार ता उक्तप्रतीतिके बलतैं ता गकारके उत्पत्तिविनाशके सिद्ध हूए ता मीमांसकनैं तिन गकारादिक शब्दोंकी नित्यताविषे जो 'सोऽयं गकारः' या प्रकारकी प्रत्यभिज्ञा कथन करी थी सा प्रत्यभिज्ञा भ्रांतिरूप हीं है अर्थात् पूर्वकालीन गकारके भेदवाले एतत्कालीन गकारविषे ता पूर्वकालीन गकारके अभेदकूं विषय करती हूई सा प्रत्यभिज्ञा भ्रांतिरूप हीं सिद्ध होवै है। यातैं ता भ्रांतिरूप प्रत्यभिज्ञातैं तिन गकारादिक वर्णोंकी नित्यता सिद्ध होवै नहीं। किंवा 'सोऽयं गकारः' इस उक्त प्रत्यभिज्ञाकूं जो प्रमारूप भी मानिये तौं भी ता प्रत्यभिज्ञातैं तिन गकारादिकवर्णोंकी नित्यता सिद्ध होती नहीं। काहेतैं ? सा प्रत्यभिज्ञा एतत्कालीन गकारविषे ता पूर्वकालीन गकारके अभेदकूं विषय करती नहीं, किंतु एतत्कालीन गकारविषे गत्वधर्मावच्छिन्न गकारके अभेदकूं विषय करे है। तहां जा गत्वजाति ता पूर्वकालीन गकारविषे रहे है सोई हीं गत्वजाति एतत्कालीन गकारविषे रहे है। यातैं जैसे सो पूर्वकालीन गकार ता गत्वजाति करिकै अवच्छिन्न है। तैसे सो एतत्कालीन गकार भी ता गत्वजाति करिकै अवच्छिन्न है। ऐसे गत्वावच्छिन्न गकारविषे गत्वावच्छिन्न गकारका भेद रहता नहीं। यातैं ता पूर्वकालीन गकारव्यक्तिका तथा ता उत्तरकालीन गकारव्यक्तिका परस्पर भेदहूए भी ता गत्वजातिका अभेद होणेतैं 'सोऽयं गकारः' या उक्त प्रत्यभिज्ञाका पूर्वकालीन गकारवृत्ति गत्वजाति अवच्छिन्नतैं अभिन्न यह गकार है या प्रकारका अर्थ सिद्ध होवै है। इस प्रकारतैं ता प्रत्यभिज्ञाकूं प्रमारूप मानणे करिकै भी तिन गकारादिक वर्णोंकी नित्यता सिद्ध होवै नहीं, किंवा ता शब्दविषे लोकोंकूं तारत्व मंदत्वरूप विरुद्धधर्म प्रतीत होवै हैं ते विरुद्धधर्म एकशब्दविषे संभवते नहीं। यातैं तिन तारत्वमंदत्वरूप विरुद्ध धर्मोंके अध्यासतैं ता शब्दका भेद अवश्य मानणा होवैगा। या कारणतैं भी ता उक्तप्रत्यभिज्ञातैं ता शब्दकी नित्यता सिद्ध होवै नहीं इति। अनित्यताका साधक अनुमान—किंवा ता प्राभाकरनैं ता शब्दकी नित्यताविषे जो अनुमान कह्या था सो अनुमान भी ता शब्दकी अनित्यताके साधक अनुमान करिकै सत्प्रतिपक्षतादोषवाला होणेतैं दुष्ट है। यातैं ता दुष्टअनुमान करिकै ता शब्दकी नित्यता सिद्ध होवै नहीं। सो शब्दके अनित्यताका साधक यह अनुनान है। **शब्दोऽनित्यः सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् पटवत्।** अर्थ यह—सो शब्द अनित्य होणे योग्य है जातिरूप सामान्यवाला हूआ अस्मदादिकोंके बाह्यइंद्रिय करिकै ग्राह्य होणेतैं अर्थात् अस्मदादिकोंके बाह्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षका विषय होणेतैं जो जो वस्तु सामान्यवाला हूआ अस्मदादिकोंके बाह्यइंद्रिय करिकै ग्राह्य होवै है सो सो वस्तु अनित्य हीं होवै है। जैसे पट पटत्व द्रव्यत्वादिक सामान्यवाला हूआ

अस्मदादिकोंके चक्षुत्वकूरूप बाह्य इंद्रिय करिकै ग्राह्य है । यातैं सो पट अनित्य हीं है । तैसे सो शब्द भी शब्दत्वगुणत्वरूप सामान्यवाला हूआ अस्मदादिकोंके श्रोत्ररूप बाह्य इंद्रिय करिके ग्राह्य है । यातैं सो शब्द भी ता पटकी न्यांई अनित्य हीं होवैंगा । पदकृत्य—तहां ता उक्त अनुमानविषे ' सामान्यवत्त्वे सति अस्मदादीन्द्रियग्राह्यत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे 'बाह्य' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतें ? सो आत्मा आत्मत्व द्रव्यत्व सत्ताजातिरूप सामान्यवाला भी है तथा अस्मदादिकोंके मनरूप इंद्रिय करिकै ग्राह्य भी है । यातैं सो उक्त हेतु तौं ता आत्माविषे है, परन्तु सो अनित्यत्वरूप साध्य ता आत्माविषे है नहीं । यातैं ता साध्यके अभाववाले आत्माविषे वृत्ति होणेतैं सो उक्तहेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' बाह्य ' यह इंद्रियका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां सो आत्माका ग्राहक मनरूप इंद्रिय बाह्यइंद्रिय नहीं है किंतु अन्तर इंद्रिय है । यातैं ता उक्त हेतुका आत्माविषे व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्त अनुमानविषे 'सामान्यवत्त्वे सति बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे ' अस्मदादि ' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणुवोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? ते परमाणु द्रव्यत्वादिरूप सामान्यवाले भी हैं तथा योगी पुरुषके चक्षुरूप बाह्य इंद्रिय करिकै ग्राह्य भी हैं । यातैं तिन परमाणुवोंविषे सो उक्त हेतु तौं है परन्तु सो अनित्यत्वरूप साध्य तिन परमाणुवोंविषे है नहीं । यातैं ता साध्यके अभाववाले तिन परमाणुवोंविषे वृत्ति होणेतैं सो उक्त हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' अस्मदादि ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते परमाणु अस्मदादिक अयोगी पुरुषोंके बाह्यइंद्रिय करिकै ग्राह्य हैं नहीं । यातैं तिन परमाणुवोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्तअनुमानविषे ' अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे ' सामान्यवत्त्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं सामान्य, समवाय, अभाव इन तीनोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । जिस कारणतैं ते सामान्यादिक अस्मदादिकोंके चक्षुआदिक बाह्यइंद्रिय करिकै ग्राह्य हीं हैं परन्तु ते सामान्यादिक अनित्य नहीं हैं किंतु नित्य हैं । यातैं ता अनित्यत्वरूप साध्यके अभाववाले तिन सामान्यादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं सो उक्तहेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' सामान्यवत्त्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो जातिरूप सामान्य द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों पदार्थोंविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है । तिन सामान्यादिक पदार्थोंविषे सो जातिरूप सामान्य रहता नहीं । यातैं तिन सामान्यादिकोंविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, इस उक्त अनुमान करिकै ता शब्दविषे अनित्यता हीं सिद्ध होवै है यातैं ता शब्दके नित्यताकूं सिद्ध करणेहारा सो पूर्वउक्त प्राभाकरका अनुमान सत्प्रतिपक्षता दोषवाला होणेतैं दुष्ट है इति ॥

शब्दको द्रव्यरूप नित्यमानणेहारा भट्टपाद—और भट्टपादका तौं यह मत है सो शब्द उत्पत्ति विनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हीं है, परन्तु सो शब्द रूपादिकोंकी न्यांई गुणरूप नहीं है किंतु आकाशादिकोंकी न्यांई द्रव्यरूप हीं है। ऐसे द्रव्यरूप शब्दकी नित्यताका साधक अनुमान यह है। **शब्दो नित्यो निःस्पर्शद्रव्यत्वात् व्योमवत्।** अर्थ यह—सो शब्द नित्य होणेयोग्य है स्पर्शगुणतैं रहित द्रव्यरूप होणेतैं। जो जो स्पर्शतैं रहित द्रव्य होवै है सो सो नित्य हीं होवै है जैसे आकाश स्पर्शतैं रहित द्रव्यरूप होणेतैं नित्य है। तैसे सो शब्द भी स्पर्शतैं रहित द्रव्यरूप होणेतैं नित्य हीं होवैंगा। पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'निःस्पर्शत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कथन करते ता हेतुविषे 'द्रव्य' यह पद नहीं कथन करते तौं गंधादिक अनित्य गुणोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? गुणविषे गुण रहता नहीं। यातैं ते गंधादिक अनित्यगुण ता स्पर्शगुणतैं रहित हीं हैं। ऐसे गंधादिक गुणोंविषे सो स्पर्श रहितत्वरूप हेतु तौं है परंतु सो नित्यत्वरूप साध्य है नहीं। ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'द्रव्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन गंधादिक गुणोंविषे द्रव्यरूपता है नहीं। यातैं तिन गंधादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं, किंवा ता उक्त अनुमानविषे 'द्रव्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'निःस्पर्श' यह पद नहीं कथन करते। तौं घटादिकोंविषें ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन घटादिकोंविषे सो द्रव्यत्वरूप हेतु तौं है, परंतु सो नित्यत्वरूप साध्य तिन घटादिकोंविषे है नहीं। ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता हेतुविषे 'निःस्पर्श' यह द्रव्यका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ते घटादिक स्पर्शगुणतैं रहित नहीं हैं। किंतु ता स्पर्शगुणवाले हीं हैं। यातैं तिन घटादिकों विषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। इस प्रकारके अनुमान करिकै ता शब्दविषे नित्य पणा हीं सिद्ध होवै है इति। द्रव्यरूपताका अनुमान—ता निःस्पर्शद्रव्यत्वरूप हेतु करिकै ता शब्दविषे नित्यता तबी सिद्ध होवै प्रथम ता शब्दविषे किसी प्रमाण करिकै द्रव्यरूपता सिद्ध होवै। सो शब्दकी द्रव्यरूपताका साधक कोई प्रमाण है नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमानप्रमाण करिकै ता शब्दविषे द्रव्यरूपता सिद्ध करे हैं। **शब्दो द्रव्यं साक्षात्संबन्धेनेन्द्रियग्राह्यत्वात् घटादिवत्।** अर्थ यह—सो शब्द द्रव्य होणे योग्य है, साक्षात्संबंध करिकै इंद्रिय ग्राह्य होणेतैं। जो जो पदार्थ साक्षात्संबंध करिकै इंद्रियग्राह्य होवै है सो सो पदार्थ द्रव्य हीं होवै है। जैसे घटादिक संयोगरूप साक्षात् संबंध करिकै चक्षुइंद्रिय करिकै ग्राह्य होवै हैं यातैं ते घटादिक द्रव्यरूपहीं हैं। तैसे सो शब्द भी साक्षात्संबंध करिकै श्रोत्रइंद्रियग्राह्य है यातैं सो शब्द भी तिन घटादिकोंकी न्यांई द्रव्यरूप हीं होवैंगा। तहां संयोग समवाय इन दोनों संबंधोंका नाम साक्षात्संबंध है। पद कृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'इंद्रियग्राह्यत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतुकथन करते ता हेतु विषे 'साक्षात्संबंधेन'

यह पद नहीं कथन करते तौं रूपादिक गुणोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । जिस कारणतैं ते रूपादिक गुण भी चक्षुआदिक इंद्रियों करिकै ग्राह्य हीं है । परंतु तिन रूपादिकोंविषे सो द्रव्यत्वरूप साध्य है नहीं । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'साक्षात् संबंधेन' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपादिक गुण ता साक्षात्संबंध करिकै इंद्रिय ग्राह्य नहीं हैं, किंतु संयुक्तसमवायरूप परंपरासंबंध करिकै इंद्रियग्राह्य हैं । यातैं तिन रूपादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं । इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै ता शब्दविषे द्रव्यरूपता हीं सिद्ध होवै है । यातैं ता निःस्पर्शद्रव्यत्वरूप हेतु करिकै ता शब्दविषे नित्यताकी सिद्धि संभवै है इति । तथा 'सोऽयं गकारः' या प्रकारकी प्रत्यभिज्ञा करिकै भी ता शब्दका नित्यपणा हीं सिद्ध होवै है इति ।

भट्टपादके मतका खण्डन—सो यह भट्टपादका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? जो भट्टपाद ता शब्दकूं द्रव्यरूप मानिकै नित्य मानै है, ता भट्टपादतैं यह पूछा चाहिये—सो तुमारा शब्दरूप द्रव्य पृथिवी आदिक द्रव्योंकी न्यांई रूप गुणवाला द्रव्य है अथवा वायु आदिक द्रव्योंकी न्यांई रूपगुणतैं रहित द्रव्य है ? तहां प्रथमपक्ष जो अंगीकार करो तौं जैसे रूपगुणवाले पृथिवी आदिकोंका चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तैसे ता शब्दका भी चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये सो होता नहीं । यातैं सो शब्द रूपरहित द्रव्य है यह द्वितीयपक्ष हीं अंगीकार करणा होवैगा, सो भी सम्भवता नहीं । काहेतैं ? ता शब्दकूं जो रूपरहित द्रव्य मानोंगे तौं ता शब्दका श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष हीं नहीं होवैगा । जिस कारणतैं बाह्य द्रव्यके प्रत्यक्षविषे उद्भूतरूपकूं हीं कारणता होवै है ता उद्भूतरूपतैं विना ता बाह्यद्रव्यका प्रत्यक्ष होता नहीं और सर्वप्राणीयोंकूं श्रोत्रइंद्रिय करिकै ता शब्दका प्रत्यक्ष होवै है । यातैं ता शब्दविषे द्रव्यरूपता सम्भवती नहीं और ता शब्दविषे द्रव्यरूपताके अभावहूए ता उक्तनिःस्पर्शद्रव्यत्वरूप हेतु करिकै नित्यता भी सिद्ध होवै नहीं और 'सोऽयं गकारः' या प्रकारकी प्रत्यभिज्ञाकी भ्रमरूपता पूर्व कथन करि आये हैं । यातैं ता प्रत्यभिज्ञातैं भी ता शब्दकी नित्यता सिद्ध होवै नहीं और 'उत्पन्नो गः विनष्टो गः' या प्रकारकी प्रतीति तिन गकारादिक शब्दोंके उत्पत्तिविनाशकूं हीं विषय करे है । यातैं भी ता शब्दविषे नित्यता सम्भवती नहीं इति ॥

और स्फोटको नित्यमाननेवाले व्याकरणशास्त्रवाले—तौं यह कहे हैं । वर्णात्मक शब्दविषे एक स्फोटनामा दूसरा शब्द रहे है सो स्फोटनामा शब्द नित्य होवै है । ईहां तिन वैयाकरणोंका यह अभिप्राय है वर्णोंके समुदायका नाम पद है । तिस पदविषे स्थित एकएक वर्णकूं तौं अर्थकी बोधकता सम्भवती नहीं । इस प्रकार तिन मिलित वर्णोंकूं भी अर्थकी बोधकता सम्भवती नहीं । काहेतैं ? ते वर्ण द्विक्षणावस्थायी हैं तथा क्रमतैं उत्पन्न होवै हैं । यातैं तिन पदघटक वर्णोंका मेल नहीं सम्भवता नहीं । ता मेलनके असंभव हूए ता पदकी हीं सिद्धि नहीं

होवैंगी । ता पदके असिद्धहूए ता पदका श्रावणप्रत्यक्ष होवैंगा नहीं । जिस कारणतैं ता प्रत्यक्षविषे विषयकूं भी कारणता होवै है विषयतैं विना प्रत्यक्ष होता नहीं और ता पदके अप्रत्यक्ष हूए ता पदके अर्थका स्मरण होवैंगा नहीं । ता पदजन्य पदार्थस्मृतितैं विना तिस अर्थका शाब्दबोध भी सम्भवता नहीं । यातैं तिन वर्णों करिकै अभिव्यंग्य कोई पदस्फोट अंगीकार कऱ्या चाहिये । तिस नित्यपद स्फोटके ज्ञानतैं हीं ता अर्थका स्मरण श्रोताकूं होवै है । तथा ता स्फोटकूं लेके हीं बहुतवर्णोंविषे 'एकं पदं एकं वाक्यम्' या प्रकारका एकत्वव्यवहार होवै है इति ॥

इसका खण्डन–सो यह वैयाकरणोंका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? तिन स्फोटवादी वैयाकरणोंतैं यह पूछा चाहिये । कलश इत्यादिक पदोंविषे स्थित तथा ता पदके घटकवर्णों करिकै अभिव्यंग्य तथा ता पदके अर्थकी स्मृति करावणेहारा ऐसा जो पदस्फोट तुमोंनैं अंगीकार कऱ्या है सो पदस्फोट तिन कलशादिक पदोंके सर्ववर्णों करिकै अभिव्यक्त हूआ तिन कलशादिक पदोंके घटादिरूप अर्थकी स्मृति करावै है अथवा ता पदके यत्किंचित् एकवर्ण करिकै अभिव्यक्त हूआ सो पदस्फोट ता पदके अर्थकी स्मृति करावै है अथवा ता पदके सर्ववर्णोंके प्रत्यक्षज्ञानरूप अभिव्यक्तियों करिकै अभिव्यक्त हूआ सो पदस्फोट ता पदके अर्थकी स्मृति करावै है । तहां जो प्रथमपक्ष अंगीकार करो सो सम्भवता नहीं । काहेतैं ? दो क्षणपर्यंत रहणेहारे तथा क्रमतैं उत्पन्न होणेहारे ऐसे जे कलशपदके घटक ककारादिक वर्ण हैं तिन सर्ववर्णोंका मेलनहीं सम्भवता नहीं अर्थात् तिन सर्ववर्णोंकी एकक्षणविषे स्थिति हीं सम्भवती नहीं और ता कलशपदके घटक ककारादिक सर्ववर्णोंके मेलनके अभावहूए ता कलश पदविषे स्थित ता पदस्फोटकी भी अभिव्यक्ति होवैंगी नहीं, ता पदस्फोटके अप्रत्यक्षहूए श्रोता पुरुषकूं ता कलशपदके अर्थकाहीं बोध नहीं होवैंगा । यातैं सो पदस्फोट ता पदके घटक सर्ववर्णों करिकै अभिव्यक्त हूआ ता पदके अर्थकी स्मृति करावै है । यह प्रथमपक्ष सम्भवता नहीं और ता पदके यत्किंचित् एक वर्ण करिकै अभिव्यक्त हूआ सो पदस्फोट ता पदके अर्थकी स्मृति करावै है । यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करो सो भी सम्भता नहीं । काहेतैं ? ऐसा जो अंगीकार करोगे तौं एक ककारके उच्चारण करिकै हीं अथवा एक लकारके उच्चारण करिकै हीं अथवा एक शकारके उच्चारण करिकै हीं श्रोता पुरुषकूं ता कलशपदके स्फोटका प्रत्यक्ष होइकै ता कलशपदके अर्थकाबोध होणा चाहिये सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंवा तुमारे मतविषे तिन ककारादिक वर्णोंका ता कलशरूप अर्थके बोधविषे उपयोग नहीं है, किंतु ता पदस्फोटके बोधविषे हीं उपयोग है, सो पदस्फोटका बोध जबी यत्किंचित् एकवर्ण करिकै हीं होइ सके है तबी दूसरे वर्ण व्यर्थ हीं होवैंगे यातैं सो दूसरापक्ष भी संभवता नहीं । और ता कलशपदके घटक

ककारादिक सर्ववर्णोंकी प्रत्यक्षज्ञानरूप अभिव्यक्तियों कारिकै अभिव्यक्त हूआ सो पदस्फोट ता कलश पदके अर्थकी स्मृति करावै है यह तीसरा पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जैसे ते ककारादिक वर्ण द्विक्षणावस्थायी हैं तथा क्रमतैं उत्पन्न होवै हैं। यातैं तिन वर्णोंका एकक्षणविषे स्थितिरूप मेलन संभवता नहीं । तैसे तिन ककारादिक वर्णोंकी श्रावण प्रत्यक्षरूप अभिव्यक्तियां भी द्विक्षणावस्थायी हैं तथा क्रमतैं उत्पन्न होवै हैं । यातैं तिन अभिव्यक्तियेंका भी एकक्षणविषे स्थितिरूप मेलन संभवता नहीं । तात्पर्य यह–विशिष्ट बुद्धिविषे विशेषणज्ञानकूं कारणता होवै है । यातैं प्रथमक्षणविषे कत्वजातिका निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होवैंगा । और द्वितीयक्षणविषे ता कत्वजातिविशिष्ट ककारका प्रत्यक्ष होवैंगा । और तृतीय क्षणविषे लत्वजातिका निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होवैंगा। और चतुर्थक्षणविषे ता लत्व जाति-विशिष्ट लकारका प्रत्यक्ष होवैंगा ता लकारके प्रत्यक्षक्षणविषे हीं सो ककारका प्रत्यक्ष ज्ञान नष्ट होइ जावैंगा । इस प्रकार ककारके प्रत्यक्ष क्षणविषे सो लकारका प्रत्यक्ष भी नष्ट होइ जावैंगा इस रीतिसैं तिन ककारादिक वर्णोंकी अभिव्यक्तियेंका मेलन हीं संभवता नहीं । तिन अभि-व्यक्तियोंके मेलनके असंभवहूए ता पदस्फोटकी भी अभिव्यक्ति होवैंगी नहीं ता पदस्फोटके अप्रत्यक्षहूए श्रोता पुरुषकूं ता कलश पदतैं अर्थका बोध हीं नहीं होवैंगा। यातैं सो तृतीयपक्ष भी संभवता नहीं। किंवा सो वैयाकरण जो यह कहै पूर्वपूर्व वर्णके अनुभव जन्य जे ता पूर्वपूर्व वर्णविषयक संस्कार हैं तिन संस्कारों कारिकै सहकृत जो अंत्यवर्णका प्रत्यक्ष है सो संस्कार-सहकृत प्रत्यक्ष हीं ता पदस्फोटका अभिव्यंजक है। यातैं ते पूर्वउक्त दोष इस पक्षविषे प्राप्त होते नहीं । सो यह वैयाकरणका कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जिस पूर्वपूर्व वर्णविषयक संस्कारसहकृत अंत्यवर्णके प्रत्यक्षकूं तुमोंनैं ता पदस्फोटका अभिव्यंजक मान्या है। तिस पूर्वपूर्व वर्णविषयक संस्कारसहकृत अंत्यवर्णके प्रत्यक्ष करिकै हीं ता कलशादिक पदकी स्मृति होइकै ता पदके अर्थका बोध होइ सकै है। ताके मध्यविषे ता पदस्फोटकी कल्पना करणी निष्फल है। यातैं सो स्फोटवादीयोंका मत असंगत है ॥ इति शब्दनिरूपणं समाप्तम् ॥ १५ ॥

## अथ बुद्धिनिरूपणम् ।

तहां लक्षण–**जानामीत्यनुव्यवसायविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमती बुद्धिः** । अर्थ यह–'जानामि' या प्रकारके अनुव्यवसाय ज्ञानके विषय विषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्व जातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण बुद्धि कह्या जावै है। तहां ज्ञानकूं विषय करणेहारा जो ज्ञान है ताका नाम अनुव्यवसाय है। सो अनुव्यवसाय मनरूप इंद्रिय करिकै जन्य होणेतैं मानस प्रत्यक्ष कह्या जावै है। तहां 'जानामि' या प्रकारका अनुव्यव-सायज्ञान ता ज्ञानरूप बुद्धिकूं हीं विषय करे है। यातैं सा ज्ञानरूप बुद्धि ता अनुव्यवसाय ज्ञानका विषय कह्या जावै है। ऐसी बुद्धिविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी

बुद्धित्व जाति है सा बुद्धित्वजाति सर्वज्ञानरूप बुद्धियोंविषे रहे है । यातैं यह उक्त बुद्धिका लक्षण सम्भवै है । ईहां ज्ञान, बुद्धि यह दोनों शब्द एक हीं अर्थके वाचक हैं । तैसे ज्ञानत्व बुद्धित्व यह दोनों भी एक हीं हैं । पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमती बुद्धिः' इतनामात्र हीं जो ता बुद्धिका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'जानामीत्यनुव्यवसायविषय-वृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'जानामीत्यनुव्यवसायविषयवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपा-दिक गुण 'जानामि' इस प्रकारके अनुव्यवसायके विषय हैं नहीं, किन्तु सो बुद्धिरूप ज्ञान हीं ता अनुव्यवसायका विषय है। यातैं ते रूपत्वादिक जातियां 'जानामि' इस अनुव्यवसायके विषयविषे वर्त्ततीयां नहीं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'जानामीत्यनुव्यवसायविषयवृत्तिजातिमती बुद्धिः' इतनामात्र हीं जो ता बुद्धिका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्य-गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ता अनुव्यवसायके विषयभूत बुद्धि-विषे जैसे सा बुद्धित्वजाति रहे है तैसे सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति भी रहे है । ता गुणत्व जातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा ता सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता बुद्धिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । किंवा 'जानामि' यह अनुव्यवसाय जैसे ता ज्ञानरूप बुद्धिकूं विषय करे है तैसे ता बुद्धिके आश्रयभूत आत्माकूं भी विषय करे है । यातैं ता बुद्धिकी न्यांई सो आत्मा भी 'जानामि' इस अनुव्यवसायका विषय कह्या जावै है। ता आत्माविषे आत्मत्व द्रव्यत्व सत्ता यह तीनों जातियां रहे हैं । तहां आत्मत्वजातिकूं लैके तौं आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी और द्रव्यत्व जातिकूं लैके तौं पृथिवी आदिक सर्वद्रव्योंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी और सत्ताजातिकूं लैके तौं द्रव्यगुण-कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां गुणत्व, सत्ता, आत्मत्व, द्रव्यत्व यह च्यारों जातियां ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं हैं। यातैं तिन गुणत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन गुणादिकोंविषे ता बुद्धिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा द्वितीय लक्षण—जानामीत्यनुव्यवसायविषयगुणः बुद्धिः । अर्थ यह—'जानामि' इस प्रकारके अनुव्यवसायका जो विषय होवै तथा गुण होवै सो बुद्धि कह्या जावै है। या प्रकारका जो ता बुद्धिका लक्षण करते तौं यद्यपि आत्माविषे गुणरूपताके अभावतैं ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती नहीं। तथापि जिन स्मरण अनुव्यवसायादिक ज्ञानोंतैं उत्तर

तिन स्मरण अनुव्यवसायादिक ज्ञानोंकूं विषय करणेहारा सो अनुव्यवसाय ज्ञान नहीं उत्पन्न भया है । तिन स्मरण अनुव्यवसायादिक ज्ञानोंविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैंगी । तथा निर्विकल्पक ज्ञानकूं अतिइंद्रियता होणेतैं ता मानसप्रत्यक्षरूप अनुव्यवसायकी विषयता हीं नहीं है । ता निर्विकल्पक ज्ञानविषे भी ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैंगी । ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै सो पूर्वउक्त बुद्धित्वजातिघटित ता बुद्धिका लक्षण कन्या है । सा बुद्धित्वजाति तिन स्मरण अनुव्यवसायादिक ज्ञानोंविषे तथा ता निर्विकल्पक ज्ञानविषे भी रहे है । यातैं तिनोंविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति ।

रहणेका द्रव्य—सो यह बुद्धिगुण एक आत्मारूप द्रव्यविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है । ता आत्मातैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे सो बुद्धिगुण समवायसंबंध करिकै रहता नहीं और यह ज्ञानरूप बुद्धि हीं प्रवृत्ति, निवृत्ति, आहार, विहार इत्यादिक सर्वव्यवहारोंका हेतु होवै है । ता बुद्धितैं विना कोई भी व्यवहार सिद्ध होता नहीं इति । नित्यानित्य भेद—और सो बुद्धिगुण नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां ईश्वरात्माकी बुद्धि तौं नित्य कही जावै है । तहां सा ईश्वरकी बुद्धि तौं एक होवै है, तथा प्रत्यक्षरूप हीं होवै है, तथा सर्वजगत्‌विषयक होवै है । या कारणतैं हीं ता ईश्वरकूं सर्वज्ञ कहे हैं और जीवात्माकी बुद्धि तौं उत्पत्तिविनाशवाली होणेतैं अनित्य कही जावै है । अनित्य बुद्धिके कारण—तहां ता जीवात्माकी अनित्यबुद्धिका सो जीवात्मा तौं समवायिकारण होवै है और ता जीवात्माके साथि जो मनका संयोग है सो आत्ममनःसंयोग ता बुद्धिका असमवायिकारण होवै है और अदृष्टईश्वरादिक ता बुद्धिके निमित्तकारण होवै हैं । नाशके कारण—और ता अनित्यबुद्धिका नाश तौं ता बुद्धितैं उत्तर उत्पन्नहूए ता जीवात्माके ज्ञानादिक योग्य विशेष गुणों करिकैं हीं होवै है । अनित्य बुद्धिकी स्थिति—यातैं पूर्वउक्त शब्दगुणकी न्यांई यह जीवात्माकी बुद्धि भी द्विक्षणावस्थायी हीं होवै है इति । इसके भेद—और सा जीवात्माकी अनित्यबुद्धि अनुभूति १, स्मृति २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां अनुभूति, स्मृति यह दोनों प्रकारकी बुद्धि भी यथार्थ १, अयथार्थ २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां प्रथम यथार्थअनुभव—तौं प्रत्यक्ष १, अनुमिति २, उपमिति ३, शाब्द ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है । इन च्यारोंविषे प्रथम प्रत्यक्ष तौं घ्राणज १, रासन २, चाक्षुष ३, त्वाच ४, श्रावण ५, मानस ६ इस भेद करिकै षट्‌प्रकारका होवै है और सो षट्‌प्रकारका हीं प्रत्यक्ष निर्विकल्पक १, सविकल्पक २, इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । तथा लौकिक १, अलौकिक २, इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है । और सो अलौकिक प्रत्यक्ष भी सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति जन्य १, ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्तिजन्य २, योगजधर्मलक्षणाप्रत्यासत्तिजन्य ३ इस, भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । आगै दूसरा अयथार्थ

अनुभवतौं संशय १, विपर्यय २ तर्क ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । इस बुद्धिके अनुभूतिस्मृति आदिक भेदोंका विस्तारतैं निरूपण आगे षष्ठ परिच्छेद विषे करैंगे । यातैं इहां संक्षेपतैं निरूपण कऱ्या है। इति बुद्धिनिरूपणम् ॥ १६ ॥

अथ सुखनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**सर्वेषामनुकूलतया वेदनीयं सुखम्** । अर्थ यह—सर्वप्राणीयोंकूं अनुकूलता रूप करिकै कऱ्या इष्टत्वरूप करिकै जो ज्ञानका विषय होवै है अर्थात् इष्टरूप जानिकै सर्वप्राणी यह हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारतैं जिसके प्राप्तिकी इच्छा करे हैं सो सुख कह्या जावै है। तहां सर्वप्राणीयोंकूं ता सुखविषे अनुकूलता बुद्धि हीं होवै है । किसी भी प्राणीकूं ता सुख-विषे प्रतिकूलताबुद्धि होती नहीं । और यह सुख हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारतैं सर्वप्राणी ता सुखके प्राप्तिकी इच्छा हीं करे हैं । यातैं यह उक्त सुखका लक्षण संभवै है ।

दूसरा लक्षण—परद्रव्य परस्त्रीके उपभोगादिकों करिकैं जन्य जो सुख है ता सुखविषे साधु पुरुषोंकूं द्वेष हीं होवै है । ता सुखविषे अनुकूलबुद्धि तथा ता सुखके प्राप्तिकी इच्छा साधुपुरुषोंकूं होती नहीं । यातैं ता परद्रव्य परस्त्रीके उपभोगादि जन्य सुखविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता सुखका दूसरा लक्षण करे-हैं । **इष्टसाधनताज्ञानाजन्यजन्येच्छाविषयगुणः सुखम्** । अर्थ यह—यह हमारे इष्टका साधन है, या प्रकारके इष्ट साधनता ज्ञान करिकै अजन्य ऐसी जा जन्य इच्छा है ता इच्छाका जो विषय होवै तथा गुण होवै सो सुख कह्या जावै है । तहां जैसे शब्दस्पर्शा-दिक विषय सुखरूप इष्टके साधन होवै हैं; तैसे सो सुख दूसरे किसी इष्टका साधन होता नहीं । किंतु सो सुख फलरूप होणेतैं आप हीं इष्ट है । ऐसे सुखविषे जा लोकोंकूं इच्छा होवै है सा इच्छा केवल ता सुखमात्रके ज्ञान करिकै हीं जन्य होवै है । इष्टसाधनताज्ञान करिकै जन्य होती नहीं । और ता सुखरूप इष्टके जे शब्दस्पर्शादिक विषयरूप साधन हैं तिन साधनोंकी इच्छा तौं यह शब्दस्पर्शादिक विषय हमारे सुखरूप इष्टके साधन हैं, या प्रका-रके इष्टसाधनता ज्ञान करिकै हीं जन्य होवै है । यातैं ता इष्टसाधनता ज्ञान करिकै अजन्य ऐसी जा ' सुखं मे स्यात् ' या प्रकारकी जन्य इच्छा है ता इच्छाका विषयभूत सो सुख है तथा सौसुख गुणरूप भी है । यातैं यह उक्त सुखका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां 'जन्येच्छावि-षयगुणः सुखम्' इतना मात्र हीं जो ता सुखका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' इष्टसाधनताज्ञा-नाजन्य ' यह पद नहीं कथन करते तौं ता सुखके साधन भूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि-कोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो सुखगुण ता जन्य इच्छाका विषय होवै है, तैसे ते सुखके साधन शब्दस्पर्शादिक भी ता जन्य इच्छाके विषय हीं होवै हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणोंविषे ' इष्टसाधनताज्ञानाजन्य ' यह ता

इच्छाका विशेषण कथन कऱ्या है । तहां तिन सुखके साधन शब्दस्पर्शादिकोंविषे जो लोकोंकूं इच्छा होवै है सो यह शब्दस्पर्शादिक हमारे सुखरूप इष्टके साधन हैं, या प्रकारके साधनता ज्ञानतैं हीं होवै है । यातैं तिन शब्दस्पर्शादिक साधनोंकी इच्छा ता इष्टसाधनताज्ञान करिकै अजन्य नहीं है, किंतु जन्य हीं है । यातैं तिन शब्दस्पर्शादिक सुखसाधनोंविषे ता सुखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' इष्टसाधनताज्ञानाजन्येच्छाविषयगुणः सुखम् ' इतनामात्र हीं जो ता सुखका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' जन्य ' यह पद नहीं कथन करते तौं ईश्वरकी इच्छाके विषयभूत रूपादिक गुणोविषे ता सुखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सा ईश्वरकी इच्छा नित्य है । यातैं ता इष्टसाधनता ज्ञान करिकै अजन्य हीं है । और सा ईश्वरकी इच्छा सर्वपदार्थोंकूं विषय करे है । यातैं ते रूपादिक गुण भी ता ईश्वरकी इच्छाके विषय हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता इच्छाका ' जन्य ' यह विषेशण कथन कऱ्या है । तहां सा ईश्वरकी इच्छा जन्य नहीं है किंतु नित्य है । यातैं ता ईश्वरकी इच्छाकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' इष्टसाधनताज्ञानाजन्यजन्येच्छाविषयः सुखं ' इतनामात्र हीं जो ता सुखका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' गुण ' यह पद नहीं कथन करते तौं दुःखके अभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो सुख फलरूप होणेतैं आप हीं इष्टरूप है । तैसे सो दुःखाभाव भी फलरूप होणेतैं आप हीं इष्टरूप है । दूसरे किसी इष्टका साधनरूप नहीं है । यातैं ता सुखके इच्छाकी न्यांई सा दुःखाभावकी इच्छा भी ता इष्टसाधनताज्ञान करिकै अजन्य हीं होवै है । ऐसी इष्ट साधनताज्ञान करिकै अजन्य जन्य इच्छाका विषय सो दुःखाभाव भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' गुण ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता दुःखाभावविषे सा गुणरूपता है नहीं । यातैं ता दुःखाभावविषे ता सुखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

अथवा ता सुखका यह तीसरा लक्षण—करणा । अहं सुखीत्यनुभवविषयगुणः सुखम् । अर्थ यह—मैं सुखीहूं या प्रकारके मानस प्रत्यक्षरूप अनुभवका जो विषय होवै तथा गुणरूप होवै सो सुख कह्या जावै है । तहां मैं सुखीहूं या प्रकारका अनुभव ता सुखगुणकूं हीं विषय करे है । यातैं यह सुखका लक्षण भी संभवै है । पद कृत्य—तहां इस लक्षणविषे ' गुण यह पद जो नहीं कथन करते तौं आत्माविषे तथा आत्मत्व जातिविषे तथा सुखत्व जातिविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवी । काहेतैं ? जैसे सो सुख ता अनुभवका विषय है । तैसे सो आत्मा तथा आत्मत्वजाति तथा सुखत्वजाति भी ता अनुभवका विषय है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' गुण ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां आत्मा आत्मत्वजाति सुखत्वजाति इन तीनोंविषे सा गुणरूपता है नहीं । यातैं तिन आत्मादिकोंविषे ता सुखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

सुखके रहणेका द्रव्य—इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणों करिकै लक्षित सो सुखगुण केवल जीवात्माविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है । ता जीवात्मातैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्यों-विषे सो सुखगुण समवायसंबंध करिकै रहता नहीं । सुखकी अनित्यता—तहां सो सुखगुण उत्पत्ति विनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवै है । कोई भी सुख नित्य होता नहीं । सुखका कारण—तहां ता सुखका सो जीवात्मा तौं समवायिकारण होवै है । और ता जीवात्माके साथि जो मनका संयोगसंबंध है सो आत्ममनः संयोग ता सुखका असमवायिकारण होवै है । और धर्म तथा शब्द स्पर्शादिक विषय तथा देशकालादिक ता सुखके निमित्तकारण होवैं हैं । नाशके कारण तथा रहणेका काल—और सो सुखगुण भी ता अनित्य बुद्धिकी न्यांई स्वउत्तर उत्पन्न हूए आत्माके ज्ञानादिक योग्यविशेष गुण करिकै हीं नाश होवै है । यातैं ता अनित्यबुद्धिकी न्यांई सो सुख गुण भी द्विक्षणावस्थायी हीं होवै है । अपने सुखका मानस प्रत्यक्ष तथा दूसरेके सुखका अनुमान—तहां सर्व प्राणीयोंकूं आपणे आपणे आत्माका सुख तौं 'अहं सुखी' या प्रकारके मानस प्रत्यक्ष करिकै हीं जान्या जावै है । और अन्य जीवात्माके सुखका अन्य जीवात्माकूं मन करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं किंतु ता अन्यजीवात्माके सुखकी प्रसन्नतारूप हेतु करिकै ता अन्य जीवात्माकूं ताके सुखका अनुमान होवै है इति ॥

सुखके भेद—सो यह उक्त सुखगुण वैषयिक १, अभिमानिक २, मानोरथिक ३, आभ्यासिक ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै है । तहां शब्दस्पार्शदिक विषयोंके साक्षात्कार करिकै जन्य जो सुख है सो सुख वैषयिक सुख कह्या जावै है और राज्याधिपत्यके तथा पांडित्यके गर्वादिकों करिकै जन्य जो सुख है सो सुख आभिमानिक सुख कह्या जावै है । और विषयोंके ध्यान करिकै जन्य जो सुख है सो सुख मानोरथिक सुख कह्या जावै है । और सूर्यादिकोंका नमस्कार तथा आयास आदिकों करिकै जन्य जो लाघवरूप सुख है सो सुख आभ्यासिक सुख कह्या जावै है इति । ईहां नवीन नैयायिक—तौं यह कहे हैं जैसे बुद्धिगुण नित्य, अनित्य इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है, तैसे सो सुखगुण भी नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका हीं होवै है । तहां—नित्यंविज्ञानमानन्दं ब्रह्म । अर्थ यह—ब्रह्मनामा ईश्वर नित्य ज्ञानवाला है तथा नित्य आनंदवाला है । यह श्रुति ता ईश्वरविषे नित्य आनंदकूं कथन करे है और आनंदनाम सुखका हीं है यातैं ता ईश्वरविषे तौं नित्य सुख रहे है । और जीवात्माविषे अनित्य सुख रहे है ॥ इति सुखनिरूपणं समाप्तम् ॥ १७ ॥

अथ दुःखनिरूपणम् ।

तहां लक्षण **सर्वेषां प्रतिकूलतया वेदनीयं दुःखम्** । अर्थ यह—सर्वप्राणीयोंकूं प्रतिकूलतारूप करिकै क्या अनिष्टतारूप करिकै जो ज्ञानका विषय होवै है अर्थात् यह हमारेकूं मतप्राप्त होवै । या प्रकारतैं अनिष्टतारूप करिकै जो सर्वप्राणीयोंके ज्ञानका विषय होवै है

सो दुःख कह्या जावै है। तहां दुःखविषे किसी भी प्राणीकूं इष्टबुद्धि होती नहीं किंतु सर्वप्राणीयोंकूं ता दुःखविषे यह हमारेकूं मत प्राप्त होवै या प्रकारकी अनिष्टबुद्धि हीं होवै है। यातैं यह उक्त दुःखका लक्षण संभवै है इति ॥

दूसरा लक्षण—तपकूं करणेहारे जे मुनिलोक हैं तिन मुनिलोकोंकूं ता तपजन्य दुःखविषे यह दुःख हमारेकूं मत प्राप्त होवै, या प्रकारकी प्रतिकूलता बुद्धि होती नहीं, यातैं ता कृच्छ्र-चांद्रायणव्रतादिरूप तपजन्य दुःखविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैंगी ऐसी शंकाके प्राप्त हूए; अब ता दुःखका दूसरा लक्षण कथन करे हैं। **द्विष्टसाधनताविषयकजन्यज्ञाना-जन्यद्वेषविषयगुणः दुःखम्।** अर्थ यह—द्विष्टसाधनताकूं विषय करणेहारा जो जन्यज्ञान है ता ज्ञान करिकै अजन्य जो द्वेष है ता द्वेषका जो विषय होवै तथा गुण होवै सो दुःख कह्या जावै है। तहां द्वेषका जो विषय होवै है सो द्विष्ट कह्या जवै है। और दुःखविषे सर्व प्राणियोंका द्वेष होवै है ! यातैं सो दुःख द्विष्ट कह्या जावै है ऐसे द्विष्ट दुःखकी साधनता सिंहसर्पादिकों विषे रहे है तथा ज्वरशूलादिक व्याधियोंविषे रहे है। यातैं तिन सिंह सर्पादिकोंविषे जो लोकोंकूं द्वेष होवै है सो ता द्विष्टसाधनताज्ञान करिकै हीं होवै है। यातैं सो सिंहसर्पादि-विषयक द्वेष ता द्विष्टसाधनताज्ञान करिकै जन्य कह्या जावै है। और सो दुःख दूसरे किसी द्विष्टका साधन है नहीं यातैं ता दुःखविषे जो लोकोंकूं द्वेष होवै है सो दुःख विषयक द्वेष ता द्विष्टसाधनताज्ञान करिकै जन्य होता नहीं, किंतु ता दुःखके ज्ञानमात्रतैं हीं ता दुःख विषे द्वेष होवै है। यातैं सो दुःखविषयक द्वेष ता द्विष्टसाधनताविषयक ज्ञान करिकै अजन्य कह्या जावै है ऐसे द्विष्टसाधनताविषयकजन्य ज्ञान करिकै अजन्य द्वेषका विषयभूत तथा गुण रूप सो दुःख हीं है। यातैं यह उक्त दुःखका लक्षण भी संभवै है। पदकृत्य—तहां 'द्वेषविषयगुणः दुःखम्' इतनामात्र हीं जो ता दुःखका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्विष्टसाधनताविषयकजन्यज्ञानाजन्य' यह पद नहीं कथन करते तौं दुःखके साधनरूप दुर्गंध कटु रसादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सो दुःख लोकोंके द्वेषका विषय होवै है। तैसे ते दुःखके साधन दुर्गंध कटुरसादिक भी लोकोंके द्वेषके हीं विषय होवै हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'द्विष्टसाधनता-विषयकजन्यज्ञानाजन्य' यह ता द्वेषका विशेषण कथन कर्‍या है। तहां तिन दुःखके साधनोंविषे जो द्वेष होवै है सो द्वेष ता द्विष्टसाधनताविषयक जन्य ज्ञान करिकै अजन्य नहीं होवै है, किंतु यह दुर्गंध कटुरसादिक हमारे दुःखके साधन हैं या प्रकारके द्विष्टसाधनता-विषयक जन्य ज्ञान करिकै जन्य हीं होवै है। यातैं तिन दुर्गंध कटु रसादिक दुःखके साधनों विषे ता दुःखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा ता उक्त लक्षणविषे ता द्विष्टसाधन-ताविषयक ज्ञानका 'जन्य' यह विशेषण जो नहीं कथन करते तौं ता उक्त लक्षणविषे

असम्भवदोषकी प्राप्ति होती। काहेतैं ? ईश्वरका ज्ञान सर्वजगत्कूं विषय करे है। यातैं ता द्विष्टसाधनताकूं भी विषय करे है और सो ईश्वरका ज्ञान कार्यमात्रके प्रति निमित्तकारण है। यातैं ता दुःखविषयक द्वेषका भी सो ईश्वरका ज्ञान निमित्तकारण है। यातैं कोई भी दुःखविषयक द्वेष ता द्विष्टसाधनताविषयक ज्ञान करिकै अजन्य नहीं है। किंतु ते सर्वद्वेष ता द्विष्टसाधनताविषयक ईश्वरके ज्ञान करिकै जन्य हीं हैं। यातैं सो उक्तदुःखका लक्षण ता दुःखरूप लक्ष्यविषे अव्याप्ति होणेतैं असम्भव दोषवाला हीं होवैगा। ता असम्भव दोषके निवृत्त करणे वासतै ता द्विष्टसाधनताविषयक 'ज्ञानका 'जन्य' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सो ईश्वरका ज्ञान जन्य होवै नहीं, किंतु नित्य होवै है। यातैं ता लक्षणविषे असम्भवदोषकी प्राप्ति होवै नहीं। किंवा ता उक्त लक्षणविषे 'गुण' यह पद जो नहीं कथन करते तौं ता दुःखके लक्षणकी सुखके अभावविषे अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे ता दुःखविषे लोकोंका द्वेष रहे है। तैसे ता सुखके अभावविषे भी लोकोंका द्वेष हीं रहे है और जैसे सो दुःख दूसरे किसी द्विष्टका साधन नहीं होवै है तैसे सो सुखाभाव भी दूसरे किसी द्विष्टका साधन होता नहीं। यातैं ता दुःखके द्वेषकी न्यांई सो सुखाभावविषयक द्वेष भी ता द्विष्टसाधनताविषयकजन्यज्ञान करिकै अजन्य हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुण' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता सुखाभावविषे गुणरूपता है नहीं। यातैं ता सुखाभावविषे ता दुःखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

**शंका**—सुखका जो अभाव है सो सुखाभाव हीं दुःखरूप क्युं नहीं होवै ? ता सुखाभावतैं दुःखकूं भिन्न मानणा निष्फल है। **समाधान**—ता सुखके अभावकूं दुःखरूपता सम्भवती नहीं। काहेतैं ? जो वादी सुखके अभावकूं हीं दुःखरूप माने है ता वादीतैं यह पूछा चाहिये। ता सुखके प्रागभावका नाम दुःख है। अथवा ता सुखके अन्योन्याभावका नाम दुःख है अथवा ता सुखके अत्यन्ताभावका नाम दुःख है। अथवा ता सुखके प्रध्वंसाभावका नाम दुःख है। तहां जो प्रथम प्रागभाव पक्षकूं अंगीकार करोगे तौं इस जीवात्माविषे सुखके विद्यमान हूए भी आगे उत्पन्न होणेहारे सुखोंका प्रागभाव रहे है। ता भावी सुखके प्रागभावकूं लैके ता सुखकालविषे भी 'अहं दुःखी' या प्रकारकी प्रतीति होणी चाहिये और ता सुखके विद्यमानकालविषे 'अहं दुःखी' या प्रकारकी प्रतीति किसीकूं भी होती नहीं। यातैं सो प्रथमपक्ष सम्भवता नहीं और दूसरा अन्योन्याभाव पक्ष जो अंगीकार करो तौं भी ता सुखके विद्यमानकालविषे अहं दुःखी या प्रकारकी प्रतीति होणी चाहिये। काहेतैं ? जिस जीवात्माविषे सो सुख रहे है तिस जीवात्माविषे ता सुखका भेदरूप अन्योन्याभाव भी रहे है ता सुखके अन्योन्याभावकूं लैके ता सुखके विद्यमानकालविषे अहं दुःखी या प्रकारकी प्रतीति होणी चाहिये और ता सुखके विद्यमानहूए अहं दुःखी या प्रकारकी प्रतीति किसीकूं

भी होती नहीं। यातैं सो दूसरा अन्योन्याभाव पक्ष भी सम्भवता नहीं और तीसरा अत्यन्ताभाव पक्ष जो अंगीकार करो तौं घटादिक जडवस्तुवोंविषे कोई कालविषे भी सुखउत्पन्न होता नहीं, किंतु तिन घटादिकोंविषे ता सुखका अत्यंताभाव हीं रहे है। यातैं तिन घटादिकोंविषे भी सो दुःख प्रतीत होणा चाहिये। और तिन घटादिकोंविषे किसीकूं भी दुःख प्रतीत होता नहीं। यातैं सो तीसरा अत्यंताभाव पक्ष भी संभवता नहीं। और चौथा प्रध्वंसाभाव पक्ष जो अंगीकार करो तौं यद्यपि सो पूर्वउक्त घटादिकोंविषे दुःखकी प्रतीति रूपदोष प्राप्त होता नहीं। काहेतैं? प्रागभाव प्रध्वंसाभाव यह दोनों अभाव आपणे प्रतियोगीके अधिकरणविषे हीं रहे हैं अन्यत्र रहते नहीं। तहां तिन घटादिकोंविषे सो सुख रहता नहीं। यातैं तिन घटादिकोंविषे ता सुखका ध्वंस भी रहैगा नहीं किंतु आत्माविषे हीं सो सुख रहे है। ता आत्माविषे ही ता सुखका ध्वंस रहेगा। तथापि ता सुखके ध्वंसकूं जो दुःखरूप मानोंगे तौं स्वर्गी पुरुषोंकूं भी 'अहं दुःखी' या प्रकारका: दुःखका अनुभव होणा चाहिये। काहेतैं? तिन स्वर्गीय पुरुषोंविषे भी पूर्व उत्पन्न हूए सुखके ध्वंस विद्यमान हीं हैं। जिस कारणतैं ते ध्वंस अनंत हैं और तिन स्वर्गी पुरुषोंकूं अहंदुखी या प्रकारका दुःखका अनुभव होता नहीं। यातैं सो चतुर्थ ध्वंसपक्ष भी संभवता नहीं। यातैं सो दुःख सुखका अभावरूप नहीं है। किंतु जैसे सो सुख भिन्नगुण है तैसे सो दुःख भी भिन्नगुण है इति ॥

अथवा ता दुःखका यह तृतीय लक्षण करणा—**अहं दुःखीत्यनुभवविषयगुणः दुःखम्।** अर्थ यह—मैं दुःखी हूं या प्रकारके अनुभवका जो विषय होवै तथा गुण होवै सो दुःख कह्या जावै है। पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे 'गुणः' यह पद जो नहीं कथन करते तौं आत्मा आत्मत्वजाति दुःखत्वजाति इन तीनोंविषे ता दुःखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? 'अहं दुःखी' यह अनुभव जैसे दुःखकूं विषय करे है तैसे ता आत्माकूं तथा आत्मत्वजातिकूं तथा दुःखत्वजातिकूं भी विषय करे है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'गुणः' यह पद कथन कर्‍या है। तहां ता आत्माविषे तथा आत्मत्वजातिविषे तथा दुःखत्वजातिविषे गुणरूपता है नहीं। यातैं तिनोंविषे ता दुःखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

रहणेका द्रव्य—इस प्रकारके तीन लक्षणों करिकै लक्षित सो दुःखगुण केवल जीवात्माविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। ता जीवात्मातैं भिन्न पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे सो दुःखगुण रहता नहीं। दुःखकी अनित्यता—और सो दुःखगुण उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवै है। कोई भी दुःख नित्य होता नहीं। दुःखके कारण—तहां तिस दुःखगुणका सो जीवात्मा तौं समवायिकारण होवै है। और ता जीवात्माके साथि जो मनका संयोगसंबंध है सो आत्ममनसंयोग ता दुःखका असमवायिकारण होवै है। और अधर्म तथा सिंहसर्पादिक तथा ज्वरशूलादिक तथा शीतआतपादिक तथा देशकालादिक यह सर्व ता दुःखके निमित्त-

कारण होवै हैं । इसके नाशके कारण—और यह दुःखगुण भी विभु आत्माका योग्यविशेषगुण पूर्वउक्त बुद्धि सुख गुणकी न्यांई स्व उत्तर उत्पन्नहूए आत्माके ज्ञानादिक योग्य विशेषगुण करिकै हीं नाश होवै है । यातैं ता बुद्धिसुख गुणकी न्यांई यह दुःखगुण भी द्विक्षणावस्थायी हीं होवै है इति ॥

अपनेका मानस प्रत्यक्ष तथा दूसरेका अनुमान—और सर्वप्राणीयोंकूं आपणे आपणे आत्माका दुःख तौं 'अहंदुःखी' या प्रकारके मानसप्रत्यक्ष करिकै हीं सिद्ध है । और अन्य जीवात्माके दुःखका अन्य जीवात्माकूं मन करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । किंतु ता जीवात्माके मुखकी मालिनता रूप हेतु करिकै ताके दुःखका अनुमान होवै है इति । और जैसे सो पूर्वउक्त सुखगुण वैषयिक आभिमानिक मानोराथिक आभ्यासिक इस भेदकरिकै च्यारि प्रकारका होवै है । तैसे यह दुःख गुण भी च्यारिप्रकारका हीं होवै है ॥ इति दुःखनिरूपणं समाप्तम् ॥ १८ ॥

अथ इच्छानिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**इच्छामीत्यनुभवविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमती इच्छा** । अर्थ यह—मैं इच्छावाला हूं या प्रकारके अनुभवका जो विषय है ता विषयविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्व जातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण इच्छा कह्या जावै है । तहां मैं इच्छावाला हूं या प्रकारका मानसप्रत्यक्षरूप अनुभव ता इच्छाकूं हीं विषय करे है । यातैं सा इच्छा 'इच्छामि' इस अनुभवका विषय कही जावै है । ऐसी इच्छाविषे वर्त्तणे हारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी इच्छात्व जाति है । सा इच्छात्वजाति सर्व इच्छावोंविषे समवायसंवन्ध करिकै रहे है । यातैं यह उक्त इच्छाका लक्षण सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमती इच्छा' इतनामात्र हीं जो ता इच्छाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'इच्छामीत्यनुभवविषयवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'इच्छामीत्यनुभवविषयवृत्ति' यह पद कथन कर्या है । तहां ते रूपत्वादिक जातियां इच्छामि इस अनुभवके विषयभूत इच्छाविषे वर्त्ततीयां नहीं । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'इच्छामीत्यनुभवविषयवृत्तिजातिमती इच्छा' इतनामात्र हीं जो ता इच्छाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ता अनुभवके विषयभूत इच्छाविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । किंवा 'इच्छामि' यह अनुभव जैसे ता इच्छाकूं विषय करे है तैसे ता इच्छाके आश्रयभूत आत्माकूं भी विषय करे है । ता आत्माविषे आत्मत्व द्रव्यत्व सत्ता यह तीनों जातियां रहे हैं । यातैं ता इच्छात्व

जातिकी न्यांई ते आत्मत्वादिक तीनों जातियां भी 'इच्छामि' इस अनुभवके विषयविषे वृत्ति हैं । तहां आत्मत्वजातिकूं लैके तौं आत्माविषे अतिव्याप्ति होवैंगी और द्रव्यत्वजातिकूं लैके पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे अतिव्याप्ति होवैंगी और सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे अतिव्याप्ति होवैंगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कर्‍या है । तहां गुणत्व, सत्ता, आत्मत्व, द्रव्यत्व यह च्यारों जातियां ता गुणत्व जातिके व्याप्य नहीं हैं । यातैं तिन गुणत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिकोंविषे ता इच्छाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

रहणेका द्रव्य—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो इच्छागुण एक आत्मारूप द्रव्यविषे हीं समवायसम्बन्ध करिकै रहे है । ता आत्मातैं भिन्न पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे सो इच्छागुण समवायसम्बन्ध करिकै रहता नहीं । इच्छाके भेद—और सो इच्छागुण भी पूर्वउक्त बुद्धिगुणकी न्यांई नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां ईश्वरात्माकी इच्छा तौं उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य होवै है तथा एक होवै है । तथा सर्वजगत्‌विषयक होवै है । और जीवात्माकी इच्छा तौं उत्पत्तिविनाशवाली होणेतैं अनित्य होवै है तथा नाना होवै है । तथा यत्किंचित् वस्तुविषयक होवै है ॥

अनित्य इच्छाके कारण—तहां ता जीवात्माकी अनित्य इच्छाका सो जीवात्मा तौं समवायिकारण होवै है और ता जीवात्माके साथि जो मनका संयोगसंबंध है सो आत्ममन संयोग ता इच्छाका असमवायिकारण होवै है और अज्ञातवस्तुकी इच्छा होती नहीं, किंतु ज्ञात-वस्तुकी हीं इच्छा होवै है । यातैं तिस तिस वस्तुका इष्टत्वरूप करिकै ज्ञान वा इष्टसाधनत्व-रूप करिकै ज्ञान तिस तिस वस्तुविषयक इच्छाका निमित्तकारण होवै है । तथा अदृष्ट-ईश्वरादिक भी निमित्तकारण होवै हैं । नाशके कारण—ता इच्छाका नाश तौं स्वउत्तरउत्पन्न हूए जीवात्माके ज्ञानादिक योग्य विशेषगुण करिकै हीं होवै है । यातैं पूर्वउक्त सुखदुःखकी न्यांई सा इच्छा भी द्विक्षणावस्थायी होवै है इति ॥

जीवात्माकी इच्छाके भेद—और सा जीवात्माकी इच्छा फल इच्छा १ उपाय इच्छा २, इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । फल इच्छा—तहां सुख तथा दुःखका अभाव इन दोनोंका नाम फल है । ता फलकूं विषय करणेहारी जा इच्छा है अर्थात् सुख मेरेकूं होवै या प्रकारकी जा सुखरूप फलविषयक इच्छा है, तथा दुःखाभाव मेरेकूं होवै या प्रकारकी जा दुःखाभावरूप फलविषयक इच्छा है, ता दोनों प्रकारकी इच्छाका नाम फल इच्छा है । इसका कारण—तहां ता सुखदुःखाभावरूप फलकी इच्छाविषे ता सुखदुःखा-भावरूप फलका ज्ञान हीं कारण होवै है । उपाय इच्छा—और ता सुखरूप फलकी प्राप्ति करणे-हारे जे भोजनादिक उपाय हैं तथा ता दुःखाभावरूप फलकी प्राप्ति करणेहारे जे औषध

पानादिक उपाय हैं तिन उपायोंकूं विषय करणेहारी जा इच्छा है । अर्थात् यह भोजन औषधादिक उपाय हमारेकूं प्राप्त होवैं या प्रकारकी जा इच्छा है ता इच्छाका नाम उपाय इच्छा है । इसका कारण—ता उपाय इच्छाविषे तौं इष्टसाधनताज्ञान हीं कारण होवै है अर्थात् यह भोजन औषधपानादिक उपाय हमारे सुखदुःखाभावरूप इष्टके साधन है। या प्रकारके इष्ट साधनताज्ञान करिकै हीं तिन उपायोंकी इच्छा होवै है । ता इष्टसाधनताज्ञानतैं विना सा उपायइच्छा होती नहीं इति ॥

राग और चिकीर्षा—किंवा ता उक्त इच्छाविशेषकूं हीं राग कहे हैं तथा चिकीर्षा कहे हैं। इच्छासामान्यका नाम राग तथा चिकीर्षा नहीं है। तहां उत्कटेच्छा रागः। अर्थ यह—उत्कट इच्छाका नाम राग है। सो उत्कटइच्छारूप राग जीवात्माविषे हीं रहे है । ईश्वरात्माविषे रहता नहीं । या कारणतैं हीं सो ईश्वर रागवान् कह्या जावै नहीं, किंतु वीतराग कह्या जावै है । और जीवात्मा रागवान् कह्या जावै है । जो कदाचित् इच्छासामान्यका नाम राग होवै तौं ता ईश्वरविषे भी ता इच्छासामान्यके विद्यमानहूए रागीपणा होणा चाहिये । सो श्रुति स्मृतितैं विरुद्ध है यातैं इच्छासामान्यका नाम राग नहीं है किंतु ता उत्कटइच्छारूप विशेषइच्छाका नाम राग है । इस प्रकार चिकीर्षा भी इच्छाविशेषका नाम है। तहां—प्रवृत्ति हेतुरिच्छा चिकीर्षा । अर्थ यह—इस पुरुषके प्रवृत्तिका हेतुभूत जा इच्छाविशेष है ता इच्छाविशेषका नाम चिकीर्षा है। जैसे—'पाकं कृत्या साधयामि।' अर्थ यह—इस पाककूं मैं आपणे प्रयत्नरूप कृति करिकै सिद्ध करों। या प्रकारकी जा जा कृतिसाध्यत्व प्रकारक पाकादि क्रियाविषयक इच्छाविशेष है ताका नाम चिकीर्षा है । चिकीर्षाके कारण—ता चिकीर्षाविषे तौं कृतिसाध्यता ज्ञान १ इष्टसाधनताज्ञान २, बलवद्द्विष्टसाधनत्व ज्ञानका अभाव ३ यह तीनों कारण होवैं हैं। तिन तीनोंतैं विना सा चिकीर्षा उत्पन्न होती नहीं । जैसे पाककर्त्ता पुरुषकूं जबी ता पाकरूप क्रियाविषे यह पाक हमारे प्रयत्नरूप कृति करिकै साध्य है या प्रकारका कृतिसाध्यता ज्ञान होवै है। तथा यह पाक हमारे सुखरूप इष्टका साधन है या प्रकारका इष्टसाधनता ज्ञान होवै है तथा बलवान् द्वेषके विषयभूत जे मरणदुःखादिक हैं तिन बलवद्द्विष्टोंकी साधनताज्ञानका अभाव होवै है तबी हीं ता पाककर्त्ता पुरुषकूं ता पाकरूप क्रियाविषे चिकीर्षा होवै है । तिन तीनोंविषे एकके अभावहूए भी सा चिकीर्षा होती नहीं । यातैं ते तीनों हीं ता चिकीर्षाके कारण होवैं हैं। तहां केवल इष्टसाधनताज्ञानकूं हीं जो चिकीर्षाविषे कारण कहते तौं वृष्टिआदिक कार्योंविषे सर्वप्राणीयोंकूं इष्टसाधनताज्ञान होवै है। यातैं ता इष्टसाधनताज्ञानतैं तिन वृष्टि आदिकोंविषे भी लोकोंकूं सा चिकीर्षा होणी चाहिये । और तिन वृष्टिआदिककार्योंविषे किसी भी प्राणीकूं चिकीर्षा होती नहीं । किंतु ता इष्टसानताज्ञानतैं केवल इच्छामात्र होवै है। यातैं ता चिकीर्षाविषे कृतिसाध्यताज्ञानकूं भी कारण

कह्या है । तहां तिन वृष्टि आदिकोंविषे किसीकूं भी सो कृतिसाध्यताज्ञान होता नहीं । यातैं ता कृतिसाध्यताज्ञानरूप कारणके अभावतैं तिन वृष्टि आदिकोंविषे किसीकूं भी सा चिकीर्षा होती नहीं, किंवा केवल ता कृतिसाध्यताज्ञानकूं हीं जो ता चिकीर्षाविषे कारण मानते तौ जलताडनादिक व्यर्थ क्रियावोंविषे भी लोकोंकूं सो कृतिसाध्यताज्ञान तौ है । यातैं ता कृतिसाध्यताज्ञानतैं लोकोंकूं तिन जलताडनादिक व्यर्थक्रियावोंविषे भी चिकीर्षा होणी चाहिये । और बुद्धिमान् लोकोंकूं तिन व्यर्थक्रियावोंविषे सा चिकीर्षा होती नहीं । यातैं ता चिकीर्षाविषे इष्टसाधनताज्ञानकूं भी कारण कह्या है । तहां तिन जलताडनादिक व्यर्थक्रियावोंविषे लोकोंकूं सो इष्टसाधनताज्ञान है नहीं । यातैं लोकोंकूं तिन व्यर्थक्रियावोंविषे सा चिकीर्षा होती नहीं । किंवा कृतिसाध्यताज्ञान इष्टसाधनता ज्ञान इन दोनोंकूं हीं जो चिकीर्षाविषे कारण मानते तौं मधु विष इन दोनों करिकै युक्त जो अन्न है ता अन्नके भोजनविषे क्षुधातुर पुरुषोंकूं सा चिकीर्षा होणी चाहिये । काहेतैं? तिन क्षुधातुरपुरुषोंकूं ता अन्नके भोजनविषे सो कृति साध्यताज्ञान भी है तथा इष्टसाधनताज्ञान भी है, परंतु तिन क्षुधातुर पुरुषोंकूं भी ता अन्नके भोजन विषे चिकीर्षा होती नहीं । यातैं ता चिकीर्षाविषे बलवत् द्विष्टसाधनताज्ञानके अभावकूं भी कारण कह्या है । तहां ता मधुविषसंयुक्त अन्नविषे बलवान् द्वेषके विषयभूत मरणकी साधनताका ज्ञान हीं विद्यमान हैं ता बलवत् द्विष्टसाधनताज्ञानका अभाव नहीं है, यातैं ता बलवत् द्विष्ट साधनताज्ञानरूप प्रतिबंधकके विद्यमानहूए लोकोंकूं ता अन्नविषे चिकीर्षा होती नहीं इति।

और केइक ग्रंथकार—तौं यह कहे हैं—कृतिसाध्यताज्ञान इष्टसाधनताज्ञान बलवत् अनिष्टका अजनकत्वज्ञान यह तीनों ज्ञान ता चिकीर्षाविषे कारण होवै हैं । तहां ता मधुविषसंयुक्त अन्नविषे ता कृतिसाध्यताज्ञानके तथा इष्टसाधनताज्ञानके विद्यमानहूए भी सो बलवत् अनिष्टका अजनकत्वज्ञान है नहीं, किंतु मरणरूप बलवान् अनिष्टका जनकत्वज्ञान हीं विद्यमान है । यातैं ता मधुविषसंयुक्त अन्नविषे तिन क्षुधातुर लोकोंकूं सा चिकीर्षा होती नहीं इति । यातैं यह सिद्ध भया—इच्छाविशेषका नाम चिकीर्षा है इच्छासामान्यका नाम चिकीर्षा नहीं । जो कदाचित् ता इच्छासामान्यका नाम चिकीर्षा होवै तौं जैसे सा इच्छासामान्य इष्टसाधनताज्ञानमात्रतैं होवै है । तैसे सा चिकीर्षा भी ता इष्टसाधनताज्ञानमात्रतैं हीं होणी चाहिये इति । इति इच्छानिरूपणं समाप्तम् ॥ १९ ॥

अथ द्वेषनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**द्वेष्मीत्यनुभवविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् द्वेषः ।** अर्थ यह—मैं द्वेषवाला हूं या प्रकारके अनुभवका जो विषय है ता विषयविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण द्वेष कह्या जावै है । तहां मैं द्वेषवाला हूं या प्रकारका मानसप्रत्यक्षरूप अनुभव ता द्वेषकूं हीं विषय करे है । यातैं सो द्वेष द्वेष्मि

इस अनुभवका विषय कह्या जावै है। ता द्वेषविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी द्वेषत्वजाति है। सा द्वेषत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्व द्वेषोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त-द्वेषका लक्षण संभवै है। पदकृत्य–तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमान् द्वेषः' इतनामात्र हीं जो ता द्वेषका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'द्वेष्मीत्यनुभवविषयवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'द्वेष्मीत्यनुभवविषयवृत्ति' यह पद कथन कर्‍या है। तहां ते रूपत्वादिक जातियां द्वेष्मि इस अनुभवके विषयभूत द्वेषविषे रहतीयां नहीं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'द्वेष्मीत्यनुभवविषय-वृत्तिजातिमान् द्वेषः' इतनामात्र हीं जो ता द्वेषका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्व-व्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं द्वेष्मि इस अनुभवके विषयभूत द्वेषविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, किंवा द्वेष्मि यह अनुभव जैसे ता द्वेषगुणकूं विषय करे है तैसे ता द्वेषगुणके आश्रयभूत आत्माकूं भी विषय करे है। ता आत्माविषे आत्मत्व द्रव्यत्व सत्ता यह तीनों जातियां रहे हैं। तिन तीनों जातियोंकूं लैके यथाक्रमतैं आत्माविषे तथा पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे तथा द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अति-व्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कर्‍या है। तहां गुणत्व, सत्ता, आत्मत्व, द्रव्यत्व यह च्यारों जातियां गुणत्वजातिके व्याप्य नहीं हैं। यातैं तिन गुणत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

रहणेका द्रव्य–इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो द्वेषगुण केवल जीवात्मा-विषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे हैं। ता जीवात्मातैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे तथा ईश्वरात्माविषे सो द्वेष रहता नहीं और सो द्वेषगुण उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं सुखदुःखकी न्यांई अनित्य हीं होवै है कोई भी द्वेष नित्य होता नहीं। द्वेषके कारण–तहां सो जीवात्मा तौं ता द्वेषका समवायिकारण होवै है और ता जीवात्माके साथि जो मनका संयोग संबंध है सो आत्मामनसंयोग ता द्वेषका असमवायिकारण होवै है। और दुःखज्ञान तथा दुःखसाधनताज्ञान तथा अदृष्टईश्वरादिक यह सर्व ता द्वेषके निमित्तकारण होवै हैं। स्थिति–सो द्वेष गुण भी ता सुखदुःख गुणकी न्यांई विभुआत्माका योग्यविशेषगुण होणेतैं स्वउत्तर उत्पन्न हूए आत्माके ज्ञानादिक योग्यविशेषगुण करिकै हीं नाश होवै है। यातैं सो द्वेषगुण भी तिन सुखदुःखादिकोंकी न्यांई द्विक्षणावस्थायी होवै है इति॥

द्वेषके भेद—और जैसे सा पूर्वउक्त इच्छा, फल इच्छा उपाय इच्छा इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तैसे यह द्वेष भी दुःखद्वेष १, दुःखउपायद्वेष २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां दुःखविषयक जो द्वेष है ताका नाम दुःख द्वेष है और ता दुःखके उपायभूत ज्वरशूलादि विषयक जो द्वेष है ताका नाम दुःखउपाय द्वेष हैं। तहां प्रथम दुःखद्वेषविषे तौं ता दुःखका ज्ञान हीं कारण होवै है। और दूसरे दुःखउपाय द्वेषविषे तौं यह ज्वरशूलादिक हमारे दुःखके साधन हैं या प्रकारका दुःखसाधनता ज्ञान हीं कारण होवै है ॥

**शंका**—ता दुःखसाधनज्ञानतैं जो द्वेष होता होवै तौं पाकादिकोंविषे भी लोकोंकूं द्वेष होणा चाहिये। काहेतैं? ता पाककर्त्ता पुरुषकूं धूम करिकै तथा अग्निकी उष्णता करिकै दुःख हीं होवै है। **समाधान**—ता दुःखसाधनता ज्ञानके हूए भी इस पुरुषकूं जिस क्रियाविषे बलवत्इष्टकी साधनताका ज्ञान होवै है तिस क्रियाविषे इस पुरुषका द्वेष होता नहीं यातैं सो बलवत्इष्टसाधनताज्ञान ता द्वेषका प्रतिबंधक होवै है। तहां तिन पाकादिकोंविषे ता दुःखसाधनता ज्ञानके हूए भी भोजनजन्य तृप्तिरूप बलवत् इष्टकी साधनताज्ञानके हूए तिन पाकादिकोंविषे इस पुरुषका द्वेष होता नहीं। तात्पर्य यह—ता द्वेषविषे जैसे दुःखसाधनताज्ञान कारण होवै है तैसे सो बलवत्इष्टसाधनताज्ञानका अभाव भी कारण होवै है ता बलवत्इष्टसाधनताज्ञानाभावरूप कारणके अभावहूए तिन पाकादिकोंविषे लोकोंका द्वेष होता नहीं इति ॥

क्रोध—किंवा जैसे इच्छाविशेषका नाम राग चिकीर्षा है, तैसे द्वेषविशेषका नाम क्रोध है। द्वेषसामान्यका नाम क्रोध नहीं है। काहेतैं? इस पुरुषका नरकादिकोंविषे क्रोधके अभावहूए द्वेष देखणेविषे आवै है। जो कदाचित् द्वेषसामान्यका नाम क्रोध होवै तौं इस पुरुषका तिन नरकादिकोंविषे द्वेषकी न्यांई सो क्रोध भी होणा चाहिये, सो क्रोध होता नहीं। यातैं ता द्वेषविशेषरूप क्रोधका यह लक्षण सिद्ध होवै है—**द्विष्टार्थसाधनीभूतचेतनविषयकद्वेषः क्रोधः।** अर्थ यह—दुःखादिरूप द्विष्टअर्थका साधनभूत जो चेतनवस्तु है ता चेतनवस्तुविषयक जो द्वेष है ताका नाम क्रोध है। पदकृत्य—तहां कण्टकादि जडवस्तुविषयक द्वेषविषे प्रामाणिक पुरुषोंकूं क्रोधव्यवहार होता नहीं। यातैं ता क्रोधके लक्षणविषे 'चेतन' यह पद कथन कऱ्या है। यातैं यह विभागसिद्धभया, द्वेष तौं चेतनजडरूप सर्ववस्तु विषयक होवै है। और सौ द्वेषविशेष क्रोध तौं केवल चेतनवस्तुविषयक हीं होवै है ॥ इति द्वेषनिरूपणं समाप्तम् ॥२०॥

अथ प्रयत्ननिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**करोमीत्यनुभवविषयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् प्रयत्नः।** अर्थ यह—मैं प्रयत्नरूप कृतिवाला हूं या प्रकारके अनुभवका जो विषय है ता विषयविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण प्रयत्न कह्या जावै है। तहां 'करोमि' यह मानसप्रत्यक्षरूप अनुभव ता कृतिरूप प्रयत्नकूं हीं विषय करे है। यातैं

सो प्रयत्न 'करोमि' इस अनुभवका विषय कह्या जावै है। ता प्रयत्नविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी प्रयत्नत्वजाति है। सा प्रयत्नत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्व प्रयत्नोंविषे रहै है। यातैं यह उक्तप्रयत्नका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्य जातिमान् प्रयत्नः' इतनामात्र हीं जो ता प्रयत्नका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'करोमीत्यनुभवविषयवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'करोमीत्यनुभवविषयवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते रूपत्वादिक जातियां ता करोमि अनुभवके विषयभूत प्रयत्नविषे रहतीयां नहीं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'करोमीत्यनुभवविषयवृत्तिजातिमान् प्रयत्नः' इतनामात्र हीं जो ता प्रयत्नका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ता करोमि अनुभवके विषयभूत प्रयत्नविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। किंवा 'करोमि' यह अनुभव जैसे ता प्रयत्नकूं विषय करे है, तैसे ता प्रयत्नके आश्रयभूत आत्माकूं भी विषय करे है। यातैं ता प्रयत्नकी न्याईं सो आत्मा भी ता अनुभवका विषय कह्या जावै है। ता आत्माविषे आत्मत्व, द्रव्यत्व, सत्ता यह तीनों जातियां रहे हैं। तिन तीनों जातियोंकूं लैके यथाक्रमतैं आत्माविषे तथा पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे तथा द्रव्यगुण कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह ता जातिका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां गुणत्व, सत्ता, आत्मत्व, द्रव्यत्व यह च्यारों जातियां ता गुणत्वजातिके व्याप्य नहीं हैं। यातैं तिन गुणत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिकों विषे ता प्रयत्नके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

रहणेका द्रव्य—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो प्रयत्नगुण एक आत्मारूप द्रव्य विषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। ता आत्मातैं भिन्न पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे सो प्रयत्न रहता नहीं। इसी प्रयत्नकूं कृति इस नाम करिकै भी कहे हैं इति। प्रयत्नके भेद—और सो प्रयत्न गुण भी पूर्वउक्त बुद्धि इच्छा गुणकी न्याईं नित्य १, अनित्य २ इस भेदकरिकै दो प्रकारका होवै है। नित्य प्रयत्न—तहां ईश्वरात्माका प्रयत्न तौ उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य होवै है तथा एक होवै है तथा सर्वजगत्‌विषयक होवै है।

अनित्य प्रयत्न—और जीवात्माका प्रयत्न तौं उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं अनित्य होवै है। तथा नाना होवै है। तथा यत्किंचित्‌वस्तुविषयक होवै है। अनित्य प्रयत्नके कारण—तहां ता जीवात्मावृत्ति अनित्यप्रयत्नका सो जीवात्मातौं समवायिकारण होवै है। और ता जीवात्माके

साथि जो मनका संयोगसंबंध है सो आत्ममनसंयोग ता प्रयत्नका असमवायिकारण होवै है। और इष्टसाधनताज्ञानादिक तथा अदृष्टईश्वरादिक ता प्रयत्नके निमित्तकारण होवै है ।

अनित्य प्रयत्नका नाश तथा सिद्धि–और ता प्रयत्नका नाश तौं स्वउत्तरउत्पन्नहूए आत्माके ज्ञानादिक योग्यविशेष गुण करिकै हीं होवै है । यातैं सुखदुःखादिकोंकी न्यांई सो प्रयत्न भी द्विक्षणावस्थायी हीं होवै है इति । अनित्य प्रयत्नके भेद–और सो जीवात्माका अनित्य प्रयत्न भी प्रवृत्ति १, निवृत्ति २, जीवनयोनि ३ इस भेद करिकै तीनप्रकारका होवै है । अब इन तीनोंके यथाक्रमतैं लक्षण कहे हैं ।

प्रवृत्तिका लक्षण–तहां **रागजन्यो गुणः प्रवृत्तिः** । अर्थ यह–उत्कटइच्छारूप राग करिकै जन्य जो गुण है सो गुण प्रवृत्ति कह्या जावै है । तहां जिस जिस पदार्थविषे जिस जिस प्राणीका सो राग होवै है तिसतिस पदार्थविषे हीं तिस तिस प्राणीकी प्रवृत्ति होवै है । ता रागतैं विना सा प्रवृत्ति होती नहीं। यातैं ता प्रवृत्तिविषे रागजन्यता संभवै है । पदकृत्य–तहां 'गुणः प्रवृत्तिः' इतनामात्र हीं जो ता प्रवृत्तिका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'रागजन्यः' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'रागजन्यः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपादिकगुण ता करिकै जन्य होते नहीं । यातैं तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'रागजन्यः प्रवृत्तिः' इतनामात्र हीं जो ता प्रवृत्तिका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुण' यह पद नहीं कथन करते तौं ता रागके ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो रागका ध्वंस भी ता प्रतियोगिरूप राग करिकै जन्य हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता रागके ध्वंसविषे गुणरूपता है नहीं । यातैं ता रागके ध्वंसविषे ता प्रवृत्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । लक्षणमें निवेश–यद्यपि ता इच्छारूप रागके प्रत्यक्षविषे ता उक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवैहै। काहेतैं ? विषयतैं विना प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं। यातैं सो रागका प्रत्यक्ष ता विषयरूप राग करिकै जन्य भी है तथा गुणरूप भी है तथापि ता लक्षणविषे 'रागाविषयक' यह गुणका विशेषण कहणेतैं अर्थात् **रागजन्यो रागाविषयकगुणः प्रवृत्तिः** । या–प्रकारके लक्षण करणेतैं ता रागके प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । तहां सो रागका प्रत्यक्ष ता राग अविषयक नहीं है । किंतु ता रागविषयक हीं है । यातैं ता रागके प्रत्यक्षविषे ता प्रवृत्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

निवृत्तिका लक्षण–तहां **द्वेषजन्यो द्वेषाविषयकगुणः निवृत्तिः** । अर्थ यह–द्वेष करिकै जन्य तथा द्वेषकूं न विषय करणेहारा जो गुण है सो गुण निवृत्ति कह्या जावै है । तहां जिस जिस पदार्थविषे जिस जिस प्राणीकूं द्वेष होवै है तिस तिस पदार्थतैं हीं तिस तिस

प्राणीकी निवृत्ति होवै है। ता द्वेषतैं विना सा निवृत्ति होती नहीं। यातैं ता निवृत्तिविषे द्वेषजन्यता सम्भवै है। पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे भी पूर्वउक्त प्रवृत्तिके लक्षणकी न्यांई 'द्वेषजन्यः' यह पद रूपादिक गुणोंविषे ता निवृत्तिके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। और 'द्वेषाविषयक' यह पद ता द्वेषके प्रत्यक्षविषे ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है। और 'गुणः' यह पद ता द्वेषके ध्वंसविषे ता अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है इति॥

जीवनयोनिका लक्षण—तहां **जीवनादृष्टजन्यो गुणः जीवनयोनिः।** अर्थ यह—इन प्राणीयोंके जीवनके कारणभूत जे पुण्यपापरूप अदृष्ट हैं ता अदृष्ट करिकै जन्य जो गुण है सो गुण जीवनयोनि कह्या जावै है। सो जीवनयोनि प्रयत्न शरीरविषे श्वासादिरूप प्राणसंचारविषे कारण होवै है। तथा इस प्राणीका जितनैं कालपर्यंत जीवन होवै है तितनैं कालपर्यंत सो जीवनयोनि प्रयत्न रहे है। और जैसे प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप प्रयत्नका मानसप्रत्यक्ष होवै है तैसे इस जीवनयोनि प्रयत्नका मानसप्रत्यक्ष होता नहीं। किंतु धर्मअधर्मकी न्यांई यह जीवनयोनि प्रयत्न अतिइंद्रिय होवै है। जीवनयोनि प्रयत्नका अनुमान—ऐसे अतिइंद्रिय जीवनयोनि प्रयत्नका ता प्राणसंचाररूप कार्य करिकै अनुमान कऱ्या जावै है। ता अनुमानका यह आकार है। **प्राणसंचारः प्रयत्नसाध्यः प्राणसंचारत्वात् धावतः पुरुषस्य प्राणसंचारवत्।** अर्थ यह—प्राणोंका श्वासादिक्रियारूप संचार प्रयत्न करिकै साध्य होणे योग्य है प्राणसंचार होणेतैं। जो जो प्राणसंचार होवै है सो सो प्रयत्न करिकै साध्य हीं होवै है। जैसे वेगतैं धावन करतेहूए पुरुषका सो प्राणसंचार प्रयत्न करिकै साध्य होवै है। तात्पर्य यह—अतिवेगसैं धावन करणेहारे पुरुषके प्रयत्नकी अधिकता करिकै श्वासक्रियाकी अधिकता प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है। यातैं ता अधिकप्राण संचारविषे ता अधिकप्रयत्नकूं कारणता अनुभवसिद्ध है। ता अधिकप्राणसंचारके दृष्टांत करिकै ता प्राणसंचारमात्रविषे प्रयत्नसाध्यताका अनुमान सम्भवै है। तहां ता अधिकप्रयत्नतैं विना हीं स्वभावसिद्ध जो प्राणोंका संचार है ता स्वभावसिद्ध प्राणसंचारविषे कोई प्रत्यक्ष प्रयत्न तौ कारण है नहीं। यातैं ता प्राणसंचारका कारणरूप करिकै ता अतिइंद्रिय जीवनयोनि प्रयत्नकी हीं सिद्धि होवै है इति॥

ईहां नवीननैयायिकोंका—तौ यह मत है। प्रवृत्ति, निवृत्ति यह दो प्रकारका हीं प्रयत्न होवै है। तीसरे जीवनयोनिप्रयत्नविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। और शरीरविषे जो प्राणोंका श्वासादिक्रियारूप संचार होवै है। ता प्राणसंचारविषे तौ अदृष्टविशेष करिकै प्रयोज्य जीवनकूं हीं कारणता संभवै है अथवा ता जीवनके प्रयोजक अदृष्टविशेषकूं हीं कारणता संभवै है। यातैं ता प्राणसंचारका कारणरूप करिकै ता जीवनयोनि प्रयत्नकी कल्पना करणी निष्प्रयोजन है। ईहां देहसहित आत्माका जो मनके साथि संयोगसंबंध है ताका नाम जीवन है। जीवनायोनिके अनुमानका खण्डन—किंवा तिन प्राचीनोंनैं ता जीवनयोनि प्रयत्नकी सिद्धि

करणेहारा जो अनुमानप्रमाण कथन कऱ्या था सो भी असंगत है । काहेतैं ? कोईक अधिक प्राणसंचारविषे किसीक अधिकप्रयत्नकी जन्यताकूं देखिकै ताके दृष्टांततैं जो सर्वप्राणसंचारमात्रकूं ता प्रयत्न करिकै जन्य मानिये तौं कोईक प्रवृत्तिरूप प्रयत्नविषे इष्टसाधनतादिक ज्ञान करिकै जन्यता देखणेविषे आवै है । ताके दृष्टांततैं सर्वप्रयत्नमात्रकूं ता ज्ञान करिकै जन्य मानणा होवैंगा । यातैं सुषुप्तिअवस्थाविषे भी ता जीवनयोनि प्रयत्नका हेतुभूत कोई अतिइंद्रियज्ञान भी अवश्य कल्पना करणा होवैंगा सो तुमारेकूं भी अंगीकार नहीं है । यातैं प्रवृत्ति निवृत्ति यह दो प्रकारका हीं प्रयत्न संभवै है इति ॥

अब पूर्वउक्त प्रवृत्तिरूप प्रयत्नके कारणका वर्णन–करे हैं । तहां ता प्रवृत्तिरूप प्रयत्नविषे चिकीर्षा १, कृतिसाध्यताज्ञान २, इष्टसाधनताज्ञान ३, उपदानका प्रत्यक्ष ४ यह च्यारों कारण होवै हैं । इन च्यारोंतैं विना सा प्रवृत्ति होती नहीं । जैसे घटरूप कार्यकूं उत्पन्न करणेहारा जो कुलाल पुरुष है तिस कुलालकूं जबी इस घटकूं मैं आपणे प्रयत्नरूप कृति करिकै सिद्ध करूं या प्रकारकी कृतिसाध्यत्वप्रकारक इच्छारूप चिकीर्षा होवै है । तथा यह घट हमारे प्रयत्नरूपकृति करिकै सिद्ध होणेयोग्य है; या प्रकारका कृतिसाध्यताज्ञान होवै है तथा यह घट हमारे इष्टका साधन है या प्रकारका इष्टसाधनताज्ञान होवै है । तथा इस मृत्तिकातैं यह घट उत्पन्न होवैंगा, या प्रकारका ता घटके समवायिकारणरूप उपादानका प्रत्यक्ष होवै है, तबी हीं सो कुलाल ता घटकी उत्पत्ति करणेविषे प्रवृत्त होवै है । तिन चिकीर्षादिकोंतैं विना ता कुलालकी प्रवृत्ति होती नहीं । इस प्रकार इन चेतन प्राणियोंकी जिस जिस कार्यकी उत्पत्ति करणे वासतै जा जा प्रवृत्ति होवै है सा सा प्रवृत्ति तिन चिकीर्षादिक च्यारों कारणों करिकै हीं होवै है ॥

शंका–ता प्रवृत्तिविषे जैसे ता कृतिसाध्यताज्ञानकूं तथा इष्टसाधनताज्ञानकूं कारणता अंगीकार करी है । तैसे यह कार्य हमारे बलवान् अनिष्टका अजनक है, या प्रकारके बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञानकूं भी ता प्रवृत्तिविषे कारण मान्या चाहिये । जो कदाचित् ता बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञानकूं ता प्रवृत्तिविषे कारण नहीं मानोंगे तौं क्षुधातुर पुरुषकी मधुविष संयुक्त अन्नके भोजनविषे प्रवृत्ति होणी चाहिये । जिस कारणतैं ता क्षुधातुरपुरुषकूं ता अन्नके भोजनविषे सो कृतिसाध्यताज्ञान तथा इष्टसाधनताज्ञान विद्यमान हीं है । समाधान–सो बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञान ता चिकीर्षाके प्रति ही कारण होवै है । यह वार्त्ता पूर्व इच्छाके निरूपणविषे कथन करि आये हैं । और क्षुधातुर पुरुषकूं ता मधुविषसंयुक्त अन्नके भोजनविषे सो बलवत् अनिष्टाजनकत्वज्ञान है नहीं, किंतु मरणरूप बलवान् अनिष्टका जनकत्वज्ञान हीं विद्यमान है यातैं ता मधुविषसंयुक्त अन्नके भोजनविषे तिस क्षुधातुर पुरुषकी चिकीर्षा हीं होती नहीं । ता चीकीर्षारूप कारणके अभावहूए हीं ता क्षुधातुर पुरुषकी ता अन्नके

भोजनविषे प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं ता बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञानकूं ता प्रवृत्तिविषे स्वतंत्र कारण मानणेका कोई प्रयोजन नहीं है इति ॥

ईहां केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । जैसे ता प्रवृत्तिविषे ते कृतिसाध्यताज्ञानादिक स्वतंत्र कारण हैं तैसे सो बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञान भी स्वतंत्र हीं कारण है । जो कदाचित् ता बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञानकूं ता प्रवृत्तिविषे कारण नहीं मानोंगे किंतु ता चिकीर्षाविषे हीं कारण मानोंगे तौं ता कृतिसाध्यता ज्ञानकू तथा इष्टसाधनताज्ञानकूं भी ता प्रवृत्तिविषे कारण नहीं मान्या चाहिये, किंतु ता चिकीर्षाविषे हीं कारण मान्या चाहिये सो ऐसा तुमोंनें मान्या नहीं । यातैं ता कृतिसाध्यत्व इष्टसाधनत्व ज्ञानकी न्यांई ता बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञानकूं भी स्वतंत्र हीं ता प्रवृत्तिविषे कारण मान्या चाहिये इति ।

कारणताके व्यभिचारकी शंका—तिस कार्यसाधक प्रवृत्तिविषे जो तिस कार्यके समवायिकारणरूप उपादानके प्रत्यक्षकूं कारण मानोंगे तौं इस पुरुषकी मृदंगादिकोंविषे शब्दसाधक प्रवृत्ति नहीं होवैंगी । काहेतैं ? ता शब्दका समवायिकारण जो आकाश है । ता आकाशका किसी भी जीवकूं प्रत्यक्ष होता नहीं । और ता शब्दकी उत्पत्ति करणे वासतै लोकोंकी तिन मृदंगादिकोंके बजावणेविषे प्रवृत्ति प्रसिद्ध देखणेविषे आवै है । यातैं सो उपादानका प्रत्यक्ष ता प्रवृत्तिका कारण नहीं है । किंवा ध्वंसरूप कार्यका कोई भी उपादान कारण होता नहीं किन्तु सो ध्वंसरूप कार्य केवल निमित्तकारण करिकै हीं जन्य होवै है । यातैं इस पुरुषकी सा ध्वंससाधक प्रवृत्ति भी नहीं होवैंगी । और घटादिक पदार्थोंके ध्वंस करणेविषे लोकोंकी प्रवृत्ति प्रसिद्ध देखणेविषे आवै है। या कारणतैं भी सो उपादानका प्रत्यक्ष ता प्रवृत्तिका कारण संभवता नहीं । **समाधान**—तिन मृदंगादिकोंके बजावणेविषे जा लोकोंकी प्रवृत्ति होवै है सा प्रवृत्ति ता शब्दकी उत्पत्ति वासतै नहीं होवै है, किन्तु सा प्रवृत्ति ता शब्दके श्रावणप्रत्यक्षरूप साक्षात्कार वासतै हीं होवै है । यातैं सा प्रवृत्ति शब्दसाधक नहीं है; किन्तु ता शब्दसाक्षात्कारसाधक है ता शब्दसाक्षात्कारका समवायिकारण आत्मा है, सो आत्मा सर्वप्राणीयोंकूं मनरूप इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष हीं है । इस प्रकार घटादिक वस्तुके ध्वंस करणे वासतै जा लोकोंकी प्रवृत्ति होवै है, सा प्रवृत्ति भी ता ध्वंस साधक नहीं है । किन्तु ता ध्वंसके साक्षात्कार साध्य है ता ध्वंससाक्षात्कारका समवायिकारण आत्मा है सो आत्मा सर्वप्राणीयोंकूं मनरूप इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष हीं है। यातैं प्रवृत्तिमात्रविषे उपादानकारणका प्रत्यक्ष हेतु होवैहै । इस उक्त नियमका ता शब्दध्वंस स्थलविषे व्यभिचार होवै नहीं इति ।

**ईहां** नवीन नैयायिक—तौं यह कहे हैं। उपादानका प्रत्यक्ष ता प्रवृत्तिविषे कारण होवै है । इस पूर्वउक्त नियमविषे 'उपादान' इस पद करिकै समवायिकारणका ग्रहण नहीं करणा । किन्तु ता उपादान पद करिकै अधिष्ठानमात्रका ग्रहण करणा । सो कार्यका अधि-

ष्ठानपणा समवायिकारणविषे भी रहे है । तथा अन्यपदार्थोंविषे भी रहे है । जैसे घटरूप कार्यका अधिष्ठानपणा कपालरूप समवायिकारणविषे भी रहे है, तथा भूतलादिकोंविषे भी रहे है । तैसे मृदंगादि अवच्छिन्न आकाशविषे उत्पन्न भया जो शब्द है सो शब्द समवायसंबंध करिकै तौं ता आकाशविषे रहे है । और अवच्छेदकता संबंध करिकै तिन मृदंगादिकोंविषे भी रहे है । यातैं ता शब्दका ते मृदंगादिक भी अधिष्ठान हैं । तिन मृदंगादिकोंका लोकोंकूं चक्षुत्वकइंद्रिय करिकै प्रत्यक्षज्ञान हीं होवै है । यातैं ता शब्दसाध्यक प्रवृत्तिविषे सो मृदंगादिक अधिष्ठानका प्रत्यक्ष हीं कारण होवै है । इस प्रकार ता ध्वंससाध्यक प्रवृत्तिविषे भी ता ध्वंसके अधिष्ठानका प्रत्यक्ष हीं कारण होवै है ।

तीनों कारणोंका प्रयोजन—तहां पूर्व कृतिसाध्यताज्ञान इष्टसाधनताज्ञान, बलवत् अनिष्टाजनकत्वज्ञान इन तीनोंकूं प्रवृत्तिविषे कारण कह्या । अब तिन तीनों कारणोंके प्रयोजनका वर्णन करे हैं । तहां जलताडनादिक निष्फलक्रियाविषे ता कृतिसाध्यता ज्ञानके हूए भी बुद्धिमान् पुरुषोंकी प्रवृत्ति होती नहीं यातैं ता प्रवृत्तिविषे ता इष्टसाधनताज्ञानकूं कारण कह्या है । और इस पुरुषके प्रयत्नरूप कृति करिकै असाध्य ऐसे जे वृष्टि तथा सुवर्णमय सुमेरुके शृंगका आहरण आदिक कार्य हैं तिन कार्योंविषे ता इष्टसाधनताज्ञानके हूए भी लोकोंकी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं ता प्रवृत्तिविषे ता कृतिसाध्यताज्ञानकूं कारण कह्या है । और मधुविषसंयुक्त अन्नके भोजनविषे क्षुधातुर पुरुषकूं ता कृतिसाध्यताज्ञानके तथा इष्टसाधनता ज्ञानके हूए भी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं ता प्रवृत्तिविषे ता बलवत् अनिष्टाजनकत्वज्ञानकूं कारण कह्या है इति ॥

विधि प्रत्ययका अर्थ—और ' स्वर्गकामो यजेत ' इत्यादिक वाक्योंके अन्त्यविषे स्थित जो विधिप्रत्यय है ता विधिप्रत्ययका भी सो कृतिसाध्यत्व, इष्टसाधनत्व, बलवत् अनिष्टाजनकत्व हीं अर्थ है । काहेतैं ? प्रवृत्तिके जनकज्ञानका जो विषय होवै है सोई हीं ता विधिप्रत्ययका अर्थ होवै है । और कृतिसाध्यताज्ञानकूं तथा इष्टसाधनताज्ञानकूं तथा बलवत्अनिष्टाजनकत्वज्ञानकूं ता प्रवृत्तिकी कारणता पूर्वसिद्ध करि आये हैं, यातैं ता कृतिसाध्यत्वविषे तथा इष्टसाधनत्वविषे तथा बलवत्अनिष्टाजनकत्वविषे ता विधिप्रत्ययकी अर्थरूपता संभवै है । ता विधिप्रत्ययके कृतिसाध्यत्वादिक अर्थकूं तिन यागादिक कर्मोंविषे निश्चय करिकै यह अधिकारीपुरुष तिन यागादिक कर्मोंविषे प्रवृत्त होवै है इति ॥

कृतिसाध्यत्वादिकोंका अर्थ तथा फल—ईहां जो कार्य प्रयत्नरूप कृति करिकै साध्य होवै है ता कार्यकूं कृतिसाध्य कहे हैं । यातैं सो कृतिसाध्यत्व धर्म ता कृति करिकै घटित होवै है । और जो पदार्थ इस पुरुषकी इच्छाका विषय होवै है तिस पदार्थकूं इष्ट कहे है । यातैं सो इष्टसाधनत्व धर्म ता इच्छाकरिकै घटित होवै है । और जो पदार्थ बलवान् द्वेषका विषय होवै है ता पदार्थकूं द्विष्ट कहे है तथा अनिष्ट कहे हैं । यातैं सो बलवत् अनिष्टाजनकत्वधर्म

ता द्वेषकरिकै घटित होवै है। अभिनिवेश—ऐसे कृतिसाध्यत्वधर्मके घटक कृतिका तथा इष्ट साधनत्व धर्मके घटक इच्छाका तथा बलवत् अनिष्टाजनकत्व धर्मके घटक द्वेषका वर्त्तमान काल वृत्तित्वके बोधन करणे वासतै 'इदानींतन' यह विशेषण कथन करणा। अर्थात् इदानींतन कृतिसाध्यताज्ञान, तथा इदानींतन इष्टसाधनता ज्ञान, तथा इदानींतन बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञान ता प्रवृत्तिविषे कारण होवै है। तहां यौवन अवस्थाविषे राज्यकूं प्राप्त होणेहारा जो राजाका बालक है ता बालककूं तिस भावी यौवराज्यविषे सो इष्टसाधनता ज्ञान भी है तथा सो बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञान भी है तथा यौवन अवस्थाकी कृति साध्याताज्ञान भी है। परन्तु ता बालककी इस बाल्यअवस्थाकी कृति करिकै सो राज्य साध्य नहीं है। यातैं ता इदानींतन कृतिसाध्यत्व ज्ञानके अभावतैं ता बालककी ता भावी यौवराज्यविषे अबी प्रवृत्ति होती नहीं; जो कदाचित् ता कृतिका 'इदानींतन' यह विशेषण नहीं कथन करते तौं ता बालककी ता तिस भावी यौवराज्यविषे ता बाल्यअवस्थाविषे हीं प्रवृत्ति होणी चाहिये, किंवा स्वादु अन्नके भोजन करिकै अतितृप्त हूआ जो पुरुष है ता तृप्त पुरुषकूं तिस कालविषे ता अन्नके भोजनविषे सो कृतिसाध्यताज्ञान भी है तथा सो बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञान भी है तथा आगे क्षुधाकालविषे उत्पन्न होणेहारी इच्छाकी विषयता करिकै सो इष्टसाधनताज्ञान भी है। परन्तु ता तृप्तपुरुषकूं तिस कालविषे ता भोजनके तृप्ति सुखरूप फलकी इच्छा है नहीं यातैं ता इदानींतन इष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं ता तृप्तपुरुषकी तिस कालविषे ता भोजनविषे प्रवृत्ति होती नहीं जो कदाचित् ता इच्छाका 'इदानींतन' यह विशेषण नहीं कथन करते तौं ता तृप्तपुरुषकी तिसी कालविषे ता भोजनविषे प्रवृत्ति होणी चाहिये। किंवा इस पुरुषके मरणका साधन जो विषादिकोंका भक्षण है तिस विषादिकोंके भक्षणविषे इस पुरुषकूं यद्यपि बलवान् द्वेषकेविषयभूत मरणादिक अनिष्टकी साधनताका ज्ञान रहै है तथापि जिस कालविषे किसी अपमानादिक निमित्तकरिकै इस पुरुषकूं अतिक्रोध उत्पन्न होवैहै तिस कालविषे इस पुरुषका तिन मरणादिकोंविषे सो द्वेष रहता नहीं, किंतु उलटा आपणे जीवनविषे हीं सो द्वेष होवै है। यातैं ता इदानींतन बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञानतैं इस पुरुषकी तिस कालविषे तिस विषादिकोंके भक्षणविषे भी प्रवृत्ति होवै है। जो कदाचित् ता द्वेषका 'इदानींतन' यह विशेषण नहीं कथन करते तौं ता क्रोधदूषित पुरुषकी ता विषादिकोंके भक्षणविषे प्रवृत्ति नहीं होणी चाहिये इति। इस प्रकार आस्तिकपुरुषकूं गमन करणेकूं अयोग्य परस्त्रीके गमन करणेविषे तथा शत्रुवधादिकोंविषे नरकसाधनताज्ञानके हूए भी जबी ता आगम्यागमनादिजन्य सुखविषे उत्कटराग होवै है तबी ता आस्तिक पुरुषकूं भी तिन अगम्यागमनादिकोंविषे सा नरकसाधनताबुद्धि उत्पन्न होती नहीं अर्थात् ता आस्तिक पुरुषकूं ता उत्कटरागके वशतैं ता अगम्यागमनादिजन्य नरकविषे सो बलवान्‌द्वेष उत्पन्न होता नहीं।

यातैं ता उत्कटरागकालविषे ता आस्तिकपुरुषकी तिन अगम्यागमन शत्रुवधादिक निन्दित कर्मोंविषे भी प्रवृत्ति होवै है इति ॥

कृतिसैं प्रयत्न ग्रहणकरणेविषे दोष—तहां पूर्व प्रवृत्तिविषे कृतिसाध्यताज्ञानकूं हेतु कह्या था-तथा कृतिसाध्यत्वप्रकारक इच्छाकूं चिकीर्षा कह्या था। तहां कृतिशब्द करिकै प्रयत्नमात्रका ग्रहण नहीं करणा। किंतु ता कृतिशब्द करिकै प्रवृत्तिरूप प्रयत्नका ग्रहण करणा। या कारणतैं हीं जीवनयोनि प्रयत्न करिकै साध्य प्राणोंके संचारविषे इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं। जो कदाचित् ता कृति शब्द करिकै प्रयत्नमात्रका ग्रहण करिये तौं ता जीवनयोनि प्रयत्न साध्य ता प्राणसंचारविषे भी ता कृतिसाध्यता ज्ञानतैं लोकोंकी प्रवृत्ति होणी चाहिये इति ॥

वैदिक कर्मोंमें फलकी कल्पना—किंवा इष्टसाधनताज्ञानतैं विना इस पुरुषकी किसी भी कार्यविषे प्रवृत्ति होती नहीं। यातैं वेदविषे जिन विश्वजित्यागादिकोंका कोई भी फल नहीं कथन कऱ्या है। तिन विश्वजित् यागादिकोंविषे भी इस पुरुषकी प्रवृत्ति करावणे वासतै कोई फल कल्पना कऱ्या चाहिये। तहां सर्वप्राणीयोंकूं स्वभावतैं स्वर्गके प्राप्तिकी इच्छा रहे है यातैं तिन विश्वजित् यागादिकोंका सो स्वर्गरूप फल हीं कल्पना कऱ्या जावै है। ता फलतैं विना इष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं इन पुरुषोंकी तिन विश्वजित्यागादिकोंविषे प्रवृत्ति हीं नहीं होवैगी इति ॥

फलाभावसैं नित्यकर्मोंविषे अप्रवृत्तिकी शङ्का—**अहरहः संध्यामुपासीत**। इत्यादिक श्रुतियोंनैं विधान कऱ्ये जे दिनदिनविषे संध्योपासनादिक नित्य कर्म हैं तिन नित्यकर्मोंका कोई भी फल होता नहीं। ता फलरूप इष्टके अभावहूए इस पुरुषकूं तिन नित्यकर्मोंविषे सो इष्टसाधनताज्ञान हीं नहीं होवैगा। ता इष्टसाधनताज्ञानके अभावहूए इस पुरुषकी तिन नित्य कर्मोंविषे प्रवृत्ति हीं नहीं होवैगी और जो कदाचित् तिन नित्य कर्मोंविषे इस पुरुषकी प्रवृत्ति करावणे वासतै तिन नित्यकर्मोंका भी ब्रह्मलोकादिरूप फल वा प्रत्यवायका अभावरूप फल कल्पना करोंगे तौं तिन नित्यकर्मोंविषे भी काम्य कर्मरूपता प्राप्त होवैगी। ता करिकै तिन संध्योपासनादिक कर्मोंविषे नित्यकर्मरूपताकी हीं हानि होवैगी। जिस कारणतैं एक हीं कर्मविषे परस्परविरोधी काम्यरूपता तथा नित्यरूपता संभवती नहीं। किंवा ता काम्यकर्मविषे फलकी कामनावाला पुरुषहीं अधिकारी होवै है। सा फलकी कामना जिस पुरुषकूं नहीं होवै है सो निष्कामपुरुष ता काम्यकर्मका अधिकारी होता नहीं। ऐसे फलकामनातैं रहित पुरुषकूं जैसे तिन काम्यकर्मोंके न करणे करिकै प्रत्यवाय होता नहीं। तैसे ता फलकामनातैं रहित पुरुषकूं तिन संध्योपासनादिक नित्य कर्मोंके न करणे करिकै भी प्रत्यवाय नहीं होणा चाहिये और तिन नित्यकर्मोंके न करणे करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं शास्त्रनैं प्रत्यवायकी प्राप्ति हीं कथन करी है। यातैं काम्यकर्मरूपताके निवृत्त करणे वासतै ता संध्योपासनादिक नित्य

कर्मकूं फलतैं रहित हीं मान्या चाहिये और जा श्रुति तिन नित्यकर्मोंके फलकूं कथन करे है सा श्रुति तौं अर्थवादरूप हीं है अर्थात् तिन नित्यकर्मोंविषे इस अधिकारी पुरुषकी प्रवृत्ति करावणे वासतै सा श्रुति तिन नित्यकर्मोंकी स्तुति करे है । यातैं ता अर्थवादरूप श्रुतितैं तिन नित्यकर्मोंका सो फल सिद्ध होवै नहीं । यातैं ता इष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं इन पुरुषोंकी तिन नित्य कर्मोंविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी । फलोल्लेखसैं समाधान—शास्त्रविषे तिन संध्योपासनादिक नित्य कर्मोंका भी फल कथन कऱ्या है । तहां श्लोक—संध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः । विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् । अर्थ यह—जे पुरुष नित्यनिरंतर श्रद्धाभक्तिपूर्वक संध्योपासनादिक कर्मकूं करे हैं ते पुरुष सर्वपापोंतैं रहित होइकै ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै हैं । इत्यादिक वचनोंनैं तिस संध्योपासनादिक नित्यकर्मका ब्रह्मलोक-प्राप्तिरूप फल कथन कऱ्या है । तथा पापरूप प्रत्यवायकी निवृत्तिरूप फल कथन कऱ्या है । यातैं ता ब्रह्मलोकादिक फलरूप इष्टकी साधनताज्ञानते तिन नित्यकर्मोंविषे इस पुरुषकी प्रवृत्ति संभवै है । और तिन नित्यकर्मोंके फल मानणेविषे जो काम्यकर्मताकी प्राप्तिरूप दोष कथन कऱ्या था सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जैसे ग्रहण श्राद्धादिकोंविषे नित्यकर्म रूपता तथा नैमित्तिक कर्मरूपता दोनों रहे हैं । तैसे तिन संध्योपासनादिक कर्मोंविषे भी नित्य कर्मरूपता तथा काम्यकर्मरूपता दोनों रहे हैं । ता नित्यत्व काम्यत्व दोनोंके विरोधविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । किंवा ता नित्यकर्मविषे काम्यकर्मता मानणेविषे जो ता फलकामनाके अभावहूए ता नित्यकर्मके नहीं करणेतैं प्रत्यवायकी अनुत्पत्तिरूप दोष कह्या था सो दोष भी संभवता नहीं । काहेतैं ? जैसे त्रिकालस्तोत्र पाठादिकोंविषे इस आस्तिक पुरुषकी सा फलकामना बनी रहे हैं । तैसे तिन नित्यकर्मोंविषे भी इस पुरुषकी सा फलकामना सर्वदा बनी रहे है । ईहां यह तात्पर्य है—तिन संध्यो पाकसनदिक कर्मोंके करणे कालविषे शास्त्रनैं जलादिकों करिके जे शरीरके शुचित्वादिक विधान करे हैं तिन शुचित्वादिकोंके हूए भी जो पुरुष प्रमादके वशतैं तिस कालविषे तिन कर्मोंकूं नहीं करे है तिस पुरुषकूं शास्त्रनैं प्रत्यवायकी प्राप्ति कथन करी है । यातैं तिन संध्योपासनादिक नित्यकर्मोंके करणेविषे ता फलकामनाकूं भी अधिकार रूपता है तथा तिन शुचित्वादिकोंकूं भी अधिकाररूपता है । अर्थात् ता फलकामनावाला तथा ता शुचित्वादिकवाला पुरुष हीं तिन नित्यकर्मोंविषे अधिकारी होवै है । तहां ता फलका-मनारूप अधिकारके अभावहूए भी ता शुचित्वादिरूप अधिकारके विद्यमानहूए जो पुरुष तिन संध्योपासनादिक नित्य कर्मोंकूं नहीं करे है तिस पुरुषकूं तौं तिन नित्यकर्मोंके नहीं करणेतैं ता प्रत्यवायकी प्राप्ति अवश्य होवै है । और ता फलकामनारूप अधिकारके विद्यमान हूए भी ता शुचित्वादिरूप अधिकारके अभावहूए जो पुरुष तिन नित्य कर्मोंकूं नहीं करे है तिस पुरुषकूं ता प्रत्यवायकी प्राप्ति होती नहीं यातैं तिन संध्योपासनादिक नित्यकर्मोंविषे भी ता इष्टसाधनता ज्ञानतैं इस पुरुषकी प्रवृत्ति संभवे है इति ॥

ईहां प्रभाकरका—तौं यह मत है। जिस कार्यविषे इस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै है तिस कार्यविषे बलवत् अनिष्टाजनकत्वकूं विषय करणेहारे इष्टसाधनताज्ञान करिकै जन्य जो कृतिसाध्यता ज्ञान है सो कृतिसाध्यताज्ञान हीं चिकीर्षाद्वारा ता कार्यसाध्यक प्रवृत्तिविषे हेतु होवै है। ता प्रवृत्तिविषे इष्टसाधनताज्ञानकूं तथा बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञानकूं कारणता मानणी निष्फल है। जैसे—अनुमान—**पाकः मत्कृतिसाध्यः मत्कृतिं विनाऽसत्त्वेसति मद्बलवदनिष्टाजनकेष्टसाधनत्वात् भोजनादिवत्।** अर्थ यह—यह पाक हमारे प्रयत्नरूप कृति करिकै साध्य है। हमारे कृतितैं विना असिद्ध हूआ हमारे बलवान् अनिष्टका अजनक हूआ हमारे इष्टका साधन होणेतैं? जो जो कार्य हमारी कृतितैं विना असिद्ध हूआ तथा हमारे बलवान् अनिष्टका अजनक हूआ हमारे इष्टका साधन होवै है। सो सो कार्य हमारे कृतिरूप प्रयत्न करिकै साध्य हीं होवै है। जैसे भोजनादिक कार्य हैं इस प्रकारतैं पाकादिक लौकिक कार्योंविषे तथा यागादिक वैदिककर्मोंविषे इस पुरुषकूं बलवत् अनिष्टाजनक इष्टसाधनत्वरूप हेतुतैं जो कृति साध्यताका अनुमितिज्ञान होवै है। सो कृतिसाध्यताज्ञान हीं चिकीर्षाद्वारा इस पुरुषकी ता पाकयागादिसाध्यक प्रवृत्तिविषे हेतु होवै है। पदकृत्य—तहां इस उक्त अनुमानविषे 'मद्बलवदनिष्टाजनकेष्टसाधनत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते। ता हेतुविषे 'मत्कृतिंविनाऽसत्त्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं इस पुरुषकी कृति करिकै असाध्य वृष्टिआदिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? तिन वृष्टिआदिकोंविषे सो बलवत् अनिष्टाजनक इष्टसाधनत्वरूप हेतु तौं है। परंतु सो मत्कृतिसाध्यत्वरूप साध्य है नहीं। ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'मत्कृतिं विनाऽसत्त्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां तिन वृष्टिआदिकोंका इस पुरुषकी कृतितैं विना असत्त्व नहीं है किंतु सत्त्वहीं हैं। यातैं तिन वृष्टिआदिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। तहां मधुविषसंयुक्त अन्नके भोजन विषे क्षुधातुर पुरुषकूं ता कृतिसाध्यताज्ञानके हूए भी सो कृतिसाध्यताज्ञान ता बलवत् अनिष्टाजनकत्व ज्ञान करिकै जन्य नहीं है। यातैं ता क्षुधातुर पुरुषकी ता अन्नभोजनविषे प्रवृत्ति होती नहीं। और जलताडनादिक व्यर्थक्रियाविषे इस पुरुषकूं ता कृतिसाध्यताज्ञानके हूए भी सो कृतिसाध्यताज्ञान ता इष्टसाधनता ज्ञान करिकै जन्य है नहीं। यातैं तिन व्यर्थक्रियावोंविषे इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं इति॥

उसका खण्डन—सो यह प्रभाकरका मत असंगत है। काहेतैं? बलवत्अनिष्टाजनकत्वविशिष्ट इष्टसाधनताज्ञान करिकै जन्य कृतिसाध्यताज्ञानकूं ता प्रवृत्तिकी कारणतामानणेविषे अतिगौरव दोषकी प्राप्ति होवै है। ताकी अपेक्षा करिकै बलवत् अनिष्टाजनक इष्टसाधनताविषयक कृतिसाध्यताज्ञानकूं ता प्रवृत्तिकी कारणता मानणेविषे लाघव है। यातैं गौरवदोष करिकै ग्रस्त होणेतैं सो प्रभाकरका मत समीचीन नहीं है इति॥

ईहां ता प्रभाकरके अनुयायी नवीन तार्किक—तौं यह कहे हैं । यह कार्य हमारे कृति करिकै साध्य है । या प्रकारका कृतिसाध्यताज्ञान ता प्रवृत्तिका हेतु नहीं है । काहेतैं ? आगे उत्पन्न होणेहारे कार्यविषे सो कृतिसाध्यत्वका ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण करिकै भी संभवता नहीं तथा अनुमान प्रमाण करिकै भी संभवता नहीं, किंतु जिस पुरुषकी कृति करिकै साध्य जो कार्य इस पुरुषनैं देख्या है तिस पुरुष जैसा आपणंकूं निश्चय करिकै यह पुरुष तिस कार्यविषे प्रवृत्त होवै है । जैसे जो पुरुष ओदनकी कामनावाला होवै है तथा ता ओदनकी जितनैं पदार्थों विषे साधनता होवै है ता साधनताके ज्ञानवाला होवै है तथा ता ओदनके जितनैंकी अग्नि, जल, काष्ठ आदिक उपकरण होवै हैं तिन उपकरणोंवाला होवै है । तिस पुरुषकी हीं प्रयत्नरूप कृति करिकै सो पाक साध्य होवै है । इस प्रकार दूसरे पाककर्त्ता पुरुषविषे निश्चय करिकै पश्चात् तिस ओदनकामनादिक सर्वसामग्रीकूं आपणेविषे निश्चय करिकै यह पुरुष ता पाकविषे प्रवृत्त होवै है इति ।

उनका खण्डन—सो यह नवीनोंका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? यह पुरुष ककारादिक शब्दोंके बोध करावणे वासतै आपणी बुद्धितैं अपूर्वकल्पना करिकै 'क, ख, ग, घ, ङ इत्यादिक लिपिविषे प्रवृत्त होवै है तथा यौवन अवस्थाविषे कामके वेग करिकै यह पुरुष स्त्री संभोगादिकोंविषे प्रवृत्त होवै है सो नहीं होणा चाहिये । काहेतैं ? इस पुरुषकी कृति करिकै साध्य यह कार्य है ऐसा मैं भी हूं, या प्रकारका प्रवृत्तिका कारणभूत ज्ञान ता पुरुषकूं है नहीं इति । इतनैं पर्यंत प्रवृत्तिरूप प्रयत्नके कारणका निरूपण कर्‍या ।

अब निवृत्तिरूप प्रयत्नके कारणका निरूपण—करे हैं । तहां जिस वस्तुविषे इस पुरुषका द्वेष होवै है तथा द्विष्टसाधनताज्ञान होवै है तिस वस्तुतैं हीं इस पुरुषकी निवृत्ति होवै है । ता द्वेषतैं विना तथा द्विष्टसाधनताज्ञानतैं विना इस पुरुषकी निवृत्ति होती नहीं । यह वार्त्ता सर्व लोकोंकूं अनुभवसिद्ध है । यातैं सो द्वेष तथा द्विष्टसाधनताज्ञान हीं ता निवृत्तिका कारण होवै है इति । किंवा जैसे द्वेषविशेषका नाम क्रोध है, तैसे प्रयत्नविशेषका नाम उत्साह है । प्रयत्नसामान्यका नाम उत्साह नहीं है । तहां **सुखविशेषजनकीभूतकर्मविषयकः प्रयत्नः उत्साहः** । अर्थ यह—सुखविशेषका जनक ऐसा जो कर्म है ता कर्मकूं विषय करणेहारा जो प्रयत्न है ता प्रयत्नका नाम उत्साह है । जैसे राजोंका युद्धादिकर्मविषयक जो प्रयत्न है तथा स्त्री लोकोंका नवीनविवाहितवरकन्याके दर्शनादिकोंविषे जो प्रयत्न है सो प्रयत्न उत्साह कह्या जावै है । और भारके उठावणेका जो प्रयत्न है ता प्रयत्नकूं कोई भी उत्साह कहता नहीं । यातैं प्रयत्नविशेषका नाम उत्साह है । जो कदाचित् प्रयत्नसामान्यका नाम उत्साह होता तौं ता भार उठावणेके प्रयत्नविषे भी सो उत्साह व्यवहार होणा चाहिये इति ॥

इति प्रयत्ननिरूपणं समाप्तम् ॥ २१ ॥

अथ धर्मनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**सुखासाधारणकारणं धर्मः** । अर्थ यह—सुखका जो असाधारणकारण होवै है सो धर्म कह्या जावै है । तहां लोकोंकूं जो सुखकी प्राप्ति होवै है सो धर्म करिकै हीं होवै है । ता धर्मतैं विना सुखकी प्राप्ति होती नहीं । यातैं यह सुखका असाधारणकारणत्व-रूप धर्मका लक्षण सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'सुखकारणं धर्मः' इतनामात्र हीं जो ता धर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'असाधारण' यह पद नहीं कथन करते । तौं काल दिशा ईश्वर इत्यादिक साधारणकारणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ते कालादिक कार्यमात्रके प्रति कारण होणेतैं ता सुखरूप कार्यके भी कारण हीं है । ता अति-व्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वास्तै ता लक्षणविषे 'असाधारण' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते कालादिक ता सुखके कारणहूए भी असाधारणकारण नहीं हैं, किंतु साधारणकारण हैं । यातैं तिन कालादिकोंविषे ता धर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

प्रथमको अतिव्याप्त होनेसें दूसरा लक्षण—कामुकपुरुषकूं कामिनीके दर्शनस्पर्शनादिकोंतैं भी सुखकी प्राप्ति होवै है । यातैं ते दर्शनस्पर्शनादिक भी ता धर्मकी न्यांई ता सुखके असाधारण-कारण हीं हैं । तिन दर्शनस्पर्शनादिकोंविषे ता धर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति हीं होवै है । यातैं सो पूर्वउक्त धर्मका लक्षण अतिव्याप्तिदोषवाला होणेतैं दुष्ट है । ऐसे दुष्टलक्षण करिकै ता धर्मकी सिद्धि सम्भवती नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता धर्मका दूसरालक्षण करे हैं—**यागजन्यस्वर्गजनकवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् धर्मः** । अर्थ यह—जो वस्तु याग करिकै जन्य होवै है । तथा स्वर्गका जनक होवै है । ता वस्तुविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्व-जातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है । ता जातिवाला गुण धर्म कह्या जावै है । तहां यह पुरुष जबी अश्वमेधादिक याग करे है । तबी इस पुरुषविषे धर्म उत्पन्न होवै है । ता धर्मतैं इस पुरुषकूं स्वर्गकी प्राप्ति होवै है । यातैं सो धर्म यागकरिकै जन्य भी है तथा स्वर्गका जनक भी है । ऐसे धर्मविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य धर्मत्वजाति है । सा धर्मत्वजाति सर्वधर्मोंविषे समवायसंबन्ध करिकै रहे है । यातैं यह उक्त धर्मका लक्षण सर्व-दोषोंतैं रहित है । पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमान् धर्मः' इतनामात्र हीं जो ता धर्मका लक्षण करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वास्तै ता लक्षणविषे 'स्वर्गजनकवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपादिक गुणस्वर्गके जनक होते नहीं । यातैं तिन रूपादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी रूपत्वादिक जातियां स्वर्गजनकवृत्ति नहीं है । यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'स्वर्गजनकवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् धर्मः' इतनामात्र हीं

जो ता धर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'याग जन्य' यह पद नहीं कथन करते। तौं संयोगत्व जातिकूं लैके संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? इस पुरुषके शरीरके साथि जो गंगाजलका संयोग है सो गंगाजलका संयोग भी इस पुरुषके स्वर्गका जनक होवै है ऐसा शास्त्रविषे कथन कऱ्या है। ऐसे स्वर्गजनक संयोगविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य संयोगत्वजाति है। ता संयोगत्वजातिकूं लैके संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'याग-जन्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो गंगाजलका संयोग स्वर्गका जनक हूआ भी ता याग करिकै जन्य है नहीं। यातैं ता संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'यागजन्य-वृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् धर्मः' इतनामात्र हीं जो ता धर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'स्वर्गजनक' यह पद नहीं कथन करते। तौं ता यागके प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? विषयतैं विना कोई भी प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न होता नहीं। यातैं सो यागका प्रत्यक्ष-ज्ञान ता यागरूप विषय करिकै जन्यहीं है, ऐसे यागजन्य प्रत्यक्षज्ञानविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्व जातिका व्याप्य ऐसी प्रत्यक्षत्वजाति है। ता प्रत्यक्षत्वजातिकूं लैके ता यागविषयक प्रत्य-क्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण-विषे 'स्वर्गजनक' यह पद कथन कऱ्या है। तहाँ सो यागविषयक प्रत्यक्षज्ञान ता याग करिकै जन्य हूआ भी ता स्वर्गका जनक है नहीं। यातैं ता यागके प्रत्यक्षविषे वर्त्तणेहारी ता प्रत्यक्षत्व जातिकूं लैकै ता यागविषयक प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'यागजन्यस्वर्गजनकवृत्तिजातिमान् धर्मः' इतनामात्र हीं जो ता धर्मका लक्षण करते ता लक्षण विषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं यागजन्य तथा स्वर्गके जनक ता धर्म विषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुण कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षण विषे 'गुणत्वव्याप्य' यह लक्षणघटक जातिका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सा गुणत्व जाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है। यातैं ता गुणत्वसत्ताजातिकूं लैके तिन रूपादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'यागजन्यस्वर्गजनकः धर्मः' इतनामात्र हीं जो ता धर्मका लक्षण करते तौं जो यागजन्य धर्म स्वर्गकी उत्पत्ति, कीयेतैं विना हीं कर्मनाशानदीके जलस्पर्शादिकों करिकै नाश होई गया है तिस धर्मविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवैंगी। ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै सो पूर्वउक्त 'धर्मत्वजाति-घटित लक्षण कऱ्या है। सा धर्मत्वजाति ता स्वर्गके अजनक धर्मविषे भी रहे है। यातैं ता धर्मविषे ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

रहणेका द्रव्य—इस प्रकारके उक्तलक्षण करिकै लक्षिक सो धर्मगुण केवल जीवात्माविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है । ता जीवात्मातैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे तथा ईश्वरात्माविषे सो धर्म रहता नहीं । अतीन्द्रिय तथा अनित्य—और सो धर्म अतिइंद्रिय हीं होवै है अर्थात् किसी इंद्रिय करिकै ता धर्मका प्रत्यक्ष होता नहीं तथा सो धर्म पूर्वउक्त सुखदुःखकी न्यांई उत्पतिविनाशवाला होणेतैं अनित्यहीं होवै है, कोई भी धर्म नित्य होता नहीं । कारण—तहां सो जीवात्मा तौं ता धर्मका समवायिकारण होवै है और ता जीवात्माके साथि जो मनका संयोग संबंध है । सो आत्ममनःसंयोग ता धर्मका असमवायिकारण होवै है । और वेदविहित याग, दान, गंगास्नान आदिक शुभकर्म ता धर्मके निमित्तकारण होवै है तथा मिथ्याज्ञानजन्य वासना भी ता धर्मका निमित्तकारण होवै है । धर्मका कार्य—और इस लोकके जितनैंकी सुख हैं तथा तिन सुखोंके जितनैंकी शरीर, इंद्रिय, स्रक्, चन्दन, वनिता आदिक साधन हैं तथा स्वर्गादिक लोकोंके जितनैंकी सुख हैं तथा तिन सुखोंके जितनैंकी देवशरीरादिक साधन हैं तिन साधनोंसहित सर्व सुखोंका सो धर्म हीं असाधारणकारण होवै है ॥

स्वर्गादिफलोंकी कारणता निर्वाहके लिये धर्मरूप व्यापारकी कल्पना—और सो धर्म अतिइंद्रिय हूआ भी तिन यागदानादिकोंका व्यापाररूप करिकै कल्पना कऱ्या जावै है । जो कदाचित् तिन यागदानादिकोंका व्यापाररूप करिकै सो धर्म नहीं कल्पना करिये तौं ते यागदानादिक कर्म ता स्वर्गके जनक हीं नहीं होवैंगे । काहेतैं ? जो वस्तु आप कार्यके अव्यवहित पूर्वक्षणवृत्ति रहे है । अथवा जिस वस्तुजन्यव्यापार ता कार्यके अव्यवहित पूर्व क्षणविषे रहे है । सो वस्तु हीं तिस कार्यके प्रति कारण होवै है । और जो वस्तु आप भी ता कार्यके अव्यवहित पूर्वक्षणवृत्ति नहीं होवै हैं तथा जिस वस्तुजन्य व्यापार भी ता कार्यके अव्यवहित पूर्वक्षणवृत्ति नहीं होवै है । सो वस्तु तिस कार्यके प्रति कारण होता नहीं तहां ते यागदानादिक कर्म तौं उसी कालविषे नष्ट होई जावै हैं और सो स्वर्गरूप फल इस पुरुषकूं मरणतैं अनंतर बहुतकालसैं पीछै प्राप्त होवै है । ऐसे पूर्वनष्टहूए तथा धर्मरूपव्यापारतैं रहित तिन यागदानादिकोंकूं ता स्वर्गकी कारणता हीं संभवती नहीं और 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिक श्रुतियोंनैं तिन यागदानादिक कर्मोंविषे ता स्वर्गकी कारणता हीं कथन करी है । यातैं ता श्रुतिप्रतिपादित कारणताके निर्वाह वास्तै तिन यागदानादिकों करिकै जन्य सो धर्मरूप व्यापार अवश्य कल्पना कऱ्या चाहिये । तहां तिन यागदानादिक कर्मोंके नाशहूए भी तिन यागादिकों करिकै जन्य सो धर्मरूप व्यापार नाश होता नहीं । किंतु इस कर्म कर्त्ता जीवात्माविषे सो धर्मरूप व्यापार बन्या रहे है । ता धर्मतैं हीं इस पुरुषकूं ता स्वर्गसुखकी प्राप्ति होवै है और व्यापार करिकै ता व्यापारवाला ता कार्यके प्रति अन्यथासिद्ध होता नहीं । जैसे घटके प्रत्यक्षविषे घटचक्षुका संयोग व्यापार होवै है ता संयोगरूप व्यापार करिकै सो चक्षुइंद्रिय

ता घटप्रत्यक्षके प्रति अन्यथासिद्ध होता नहीं । तैसे ता धर्मरूप व्यापार करिकै ते यागदानादिक कर्म ता स्वर्गके प्रति अन्यथासिद्ध होते नहीं । ईहां कारणसामग्रीतैं बाह्यवस्तुका नाम अन्यथासिद्ध है। यातैं जैसे ता घटके प्रत्यक्षविषे ता संयोगरूप व्यापारद्वारा ता चक्षुइंद्रियकूं कारणता होवै है । तैसे तिन यागदानादिकोंकूं भी ता धर्मरूप व्यापारद्वारा ता स्वर्गरूप फलकी कारणता संभवै है । यातैं तिन यागदानादिक कर्मोंविषे ता स्वर्गकी कारणताके सिद्ध करणे वासतैं सो धर्म अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये ॥

यागादिकोंके ध्वंसको व्यापारत्वकी शंका—तिन यागदानादिक कर्मोंका जो ध्वंस है सो ध्वंस हीं तिन यागादिकोंका व्यापार है । अर्थात् ता स्वध्वंसरूप व्यापार द्वारा हीं ते यागदानादिक ता स्वर्गरूप फलके कारण हैं और ता ध्वंसका नाश होता नहीं । यातैं सो यागादिकोंका ध्वंस ता स्वर्गके अव्यवहित पूर्वक्षणवृत्ति भी है । यातैं तिन यागदानादिकोंका व्यापाररूप करिकै ता धर्मकी कल्पना करणी निष्फल है । व्यापारके अभावसे समाधान—तिन यागादिकोंके ध्वंस विषे तिन यागादिकोंकी व्यापाररूपता संभवती नहीं । काहेतैं ? जो वस्तु जिस कार्यके प्रति कारण होवै है तिस वस्तुका ध्वंस तिस कार्यके प्रति कारण होता नहीं । अर्थात् प्रतियोगी ध्वंस दोनोंकूं एक कार्यकी जनकता कहां भी देखणेविषे आवती नहीं, किंतु जिस कार्यके प्रति सो प्रतियोगी कारण होवै है तिस कार्यके प्रति ता प्रतियोगीका ध्वंस कारण नहीं होवै हैं । और जिस कार्यके प्रति सो ध्वंस कारण होवै है तिस कार्यके प्रति ता ध्वंसका प्रतियोगी कारण नहीं होवै है ।ऐसी व्यवस्था हीं सर्वत्र देखणे विषे आवै है । यातैं तिन यागदानादिक कर्मोंकूं तथा तिन यागादिकोंके ध्वंसकूं एक स्वर्गरूप कार्यकी कारणता मानणी अत्यंत विरुद्ध है । किंवा तिन यागादिकोंके ध्वंसकूं जो स्वर्गका कारण मानेंगे तौं ता स्वर्गरूप फलका कोईकालविषे भी नाश नहीं होवैंगा। काहेतैं ? सो यागादिकोंका ध्वंस नाशतैं रहित होणेतैं नित्य है, ऐसे ध्वंसरूप कारणके विद्यमानहूए ता स्वर्गरूप फलका कबी भी नाश नहीं होवैंगा ।सो यह वार्त्ता श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रतैं विरुद्ध है । जिस कारणतैं शास्त्रनैं तिन स्वर्गी पुरुषोंका फल भोगतैं अनंतर नीचैःपतन कह्या है और तिन यागादिकों करिकै जन्य धर्म रूप व्यापारकूं जो ता स्वर्गका कारण मानिये तौं सो उक्तदोष प्राप्त होता नहीं। जिस कारणतैं सो धर्म अंत्यफलके भोग करिकै नाश होइ जावै है। किंवा शास्त्रविषे गंगास्नानतैं भी स्वर्गकी प्राप्ति कथन करी है । तहां श्रीगंगाजलके प्रवाहविषे स्थित पुरुषके शरीरसाथि जे अनंतजलके संयोग हैं तिन जलसंयोगोंका नाम स्नान है ।ऐसे अनंतजल संयोगोंके अनंतध्वंसोंविषे व्यापार रूपता कल्पना करणेविषे अत्यंतगौरव दोषकी प्राप्ति होवै है । ताकी अपेक्षा करिकै ता गंगास्नानजन्य एक धर्मविषे व्यापाररूपता कल्पना करणेविषे लाघव है । यातैं लाघवतैं भी ता धर्मविषे हीं यागादिकोंकी व्यापाररूपता संभवै है । ता ध्वंसविषे व्यापाररूपता संभवती नहीं,

किंवा शास्त्रविषे कर्मनाशानदीके जलस्पर्शादिकों करिकै ता धर्मका नाश कथन कन्या है। तहां यागदानादिकों करिकै जन्य सो धर्म जो नहीं अंगीकार करिये तौं ते कर्मनाशाजलस्पर्शादिक किसका नाश करैंगे। तहां ते यागदानादिक कर्म तौं ता कर्मनाशाजलस्पर्शतैं पूर्व हीं उत्पन्न होइकै नष्ट होइ जावै हैं ? यातैं तिन कर्मनाशाजलस्पर्शादिकोंविषे तिन यागादिक कर्मोंकी तौं नाशकता वा प्रतिबंधकता संभवती नहीं। और तिन यागादिक कर्मोंका ध्वंस नाशतैं रहित है। यातैं ता ध्वंसकी नाशकता भी तिनोंविषे संभवती नहीं। यातैं तिन कर्मनाशाजलस्पर्शादिकों करिकै नाश होणे योग्य ऐसा यागादि जन्य धर्म अवश्य अंगीकार कन्या चाहिये इति।

अब ता धर्मकूं नाश करणेहारे कारणोंका वर्णन—करे हैं। तहां वेदविहित यागदानादिक शुभकर्मोंके अनुष्ठानतैं इस पुरुषविषे उत्पन्न भया जो धर्म है सो धर्म कर्मनाशानदीके जलस्पर्श करणेतैं भी नाश होइ जावै है। और जो पुरुष तिन यागदानादिक कर्मोंकूं करिकै आपणी उत्कृष्टताबोधन करणे वासतै आपणे मुखतैं तिन यागदानादिक कर्मोंका कीर्त्तन करे है तिस पुरुषका सो यागदानादिकोंतैं उत्पन्नहूआ धर्म नाश होइ जावै है। यातैं सो कीर्त्तन भी ता धर्मका नाशक होवै है। और जिस धर्मनैं सो सुखरूप फल प्राप्त कन्या है तिस सुखरूप फलके भोगतैं भी सो धर्म नाश होइ जावै है और श्रवणमननादिक साधनोंतैं उत्पन्न हूए तत्त्वज्ञान करिकै भी सो धर्म नाश होइ जावैं हैं॥ इति धर्मनिरूपणं समाप्तम्॥ २२॥

अथ अधर्मनिरूपणम्।

तहां लक्षण—**दुःखासाधरणकारणं अधर्मः**। अर्थ यह—दुःखका जो असाधारणकारण होवै है सो अधर्म कह्या जावै है। तहां इस प्राणीकूं जो जो दुःख प्राप्त होवै है सो सो दुःख अधर्म करिकै हीं प्राप्त होवै हैं। ता अधर्मतैं विना सो दुःख प्राप्त होता नहीं। यातैं यह दुःखका असाधारणकारणत्वरूप अधर्मका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां इस लक्षण विषे भी ‘असाधारण’ यह पद जो नहीं कथन करते। तौं कालादिक साधारण कारणोंविषे ता अधर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ते कालादिक सर्वकार्यमात्रके कारण होणेतैं ता दुःखके भी कारण हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता कारणका ‘असाधारण’ यह विशेषण कथन कन्या है। तहां तिन कालादिकोंविषे सो असाधारणकारणपणा नहीं है। किंतु साधारणकारणपणा है। यातैं तिन कालादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

प्रथमके अतिव्याप्त होनेमैं द्वितीयलक्षण—जैसे सो अधर्म ता दुःखका असाधारणकारण होवै है। तैसे कंटकसंयोगादिक तथा ज्वर शूलादिक भी ता दुःखके असाधारणकारण हीं होवै है। यातैं ता अधर्मके लक्षणकी तिन कंटकसंयोगादिकोंविषे अतिव्याप्ति होवैंगी। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता अधर्मका दूसरा लक्षण करे हैं। **निषिद्धकर्मजन्यनरकजनकवृत्तिगुणत्व-**

व्याप्यजातिमान् अधर्मः । अर्थ यह—श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्र करिकै निषिद्ध जे हिंसादिक कर्म है । तिन निषिद्ध कर्मों करिकै जो वस्तु जन्य होवै है तथा नरकका जनक होवै है । ता वस्तुविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण अधर्म कह्या जावै है । तहां हिंसादिक निषिद्ध कर्मों करिकै इस जीवात्माविषे अधर्मकी उत्पत्ति होवै है । और ता अधर्म करिकै इस जीवात्माकूं नरककी प्राप्ति होवै है । यातैं सो अधर्म निषिद्ध कर्म करिकै जन्य भी है तथा नरकका जनक भी है । ऐसे अधर्मविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य अधर्मत्वजाति है । सा अधर्मत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्व अधर्मोंविषे रहे है । यातैं यह अधर्मका लक्षण सर्वदोषोंतैं रहित है । पदकृत्य—तहां 'गुणत्वव्याप्यजातिमान् अधर्मः' इतनामात्र हीं जो ता अधर्मका लक्षण करते तौं ता गुणत्वजातिके व्याप्य रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'नरकजनकवृत्ति' यह पद कथन कर्या है । तहां ते रूपादिक गुण ता नरकके जनक नहीं हैं । यातैं तिन रूपादिवृत्ति रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'नरकजनकवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् अधर्मः' इतनामात्र हीं जो ता अधर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'निषिद्धकर्मजन्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ईश्वरकेज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो ईश्वरका ज्ञान कार्यमात्रका जनक होणेतैं ता नरकरूप कार्यका भी जनक हीं है । ऐसे नरकजनक ज्ञानविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ज्ञानत्वजाति है । ता ज्ञानत्वजातिकूं लैके ता ईश्वरके ज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'निषिद्धकर्मजन्य' यह पद कथन कर्या है । तहां सो ईश्वरका ज्ञान नित्य होणेतैं ता निषिद्धकर्म करिकै जन्य नहीं है । यातैं सा ज्ञानत्वजाति निषिद्धकर्मजन्य वृत्ति नहीं है । यातैं ता ज्ञानत्वजातिकूं लैके ता ईश्वरके ज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'निषिद्धकर्मजन्यवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् अधर्मः' इतनामात्र हीं जो ता अधर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'नरकजनक' यह पद नहीं कथन करते तौं ता निसिद्ध कर्मके प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? विषयतैं विना कोई भी प्रत्यक्ष होता नहीं । यातैं सो निषिद्धकर्मका प्रत्यक्षज्ञान ता निषिद्धकर्मरूप विषय करिकै जन्य हीं होवै है । ऐसे निषिद्ध कर्मविषयक प्रत्यक्षविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ता प्रत्यक्षत्वजाति है । ता प्रत्यक्षत्वजातिकूं लैके ता प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । ता अतिव्याप्ति दोषकेनिवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'नरकजनक' यह पद कथन कर्या है । तहां सो निषिद्धकर्मका प्रत्यक्षज्ञान ता नरकका जनक नहीं है । यातैं सा प्रत्यक्षत्वजाति

नरकजनकवृत्ति नहीं है । यातैं ता प्रत्यक्षत्व जातिकूं लैके ता प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'निषिद्ध कर्मजन्यनरकजनकवृत्तिजातिमान् अधर्मः' इतनामात्र हीं जो ता अधर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ता निषिद्धकर्मजन्य तथा नरकके जनक अधर्मविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणोंविषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा गुणत्वजाति तथा सत्ताजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है । यातैं ता गुणत्वसत्ताजातिकूं लैके तिन रूपादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'निषिद्धकर्मजन्यनरकजनकः अधर्मः । इतनामात्र हीं जो ता अधर्मका लक्षण करते तौं जिस अधर्मनैं ता नरककी उत्पत्ति नहीं करी । किंतु जो अधर्म प्रायश्चित्त करिकै नाश होइ गया है । ता अधर्मविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होती । ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै सो अधर्मत्वजातिघटित लक्षण कऱ्या है । तहां सा अधर्मत्वजाति ता प्रायश्चित्तनाश्य अधर्मविषे भी रहे है । यातैं ता अधर्मविषे ता उक्तलक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति॥

रहणेका द्रव्य—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो अधर्म गुण भी पूर्वउक्त धर्म गुणकी न्याईं केवल जीवात्माविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है । ता जीवात्मातैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे तथा ईश्वरात्माविषे सो अधर्म रहता नहीं ॥

अतीन्द्रिय तथा अनित्यपणा—और ताधर्मकी न्याईं यह अधर्म भी अतिइंद्रिय हीं होवै है । अर्थात् इंद्रियजन्यप्रत्यक्षज्ञानका अविषय होवै है और पूर्वउक्त धर्मकी न्याईं यह अधर्म भी उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवै है । कोई भी अधर्म नित्य होता नहीं ॥

इसके कारण—तहां ता अधर्मका सो जीवात्मा तौं समवायिकारण होवै है और ता जीवात्माके साथि जो मनका संयोगसंबंध है सो आत्ममनः संयोग ता अधर्मका असमवायिकारण होवै है । और शास्त्रनिषिद्ध हिंसादिक कर्म तथा मिथ्याज्ञानजन्य वासना तथा देशकालादिक ता अधर्मके निमित्तकारण होवै हैं । इसका कार्य—तहां इस लोकके जितनैंकी दुःख हैं तथा ता दुःखके जितनैंकी ज्वरशूलादिक साधन हैं और नरकादिकोंके जितनैंकी दुःख हैं तथा तिन दुःखोंके जितनैंकी नारकीय शरीरादिक साधन हैं । तिन साधनोंसहित सर्व दुःखोंका सो अधर्म हीं कारण होवै है इति ॥

निषिद्धकर्मोंके नरकादिफलोंविषे अधर्मकूं व्यापारता—और जैसे स्वर्गसुखकी उत्पत्ति वासतै यागदानादिक कर्मोंका व्यापाररूप करिकै धर्म कल्पना कऱ्या जावै है । तैसे नरकदुःखकी उत्पत्ति वासतै तिन हिंसादिक निषिद्ध कर्मोंका व्यापाररूप करिकै अधर्म कल्पना कऱ्या जावै है । ता अधर्मरूप व्यापारतैं विना पूर्वनष्ट हूए तिन हिंसादिक निषिद्ध कर्मोंकूं ता नरककी कारणता हीं

संभवती नहीं । और पूर्वउक्त रीतिसैं तिन निषिद्ध कर्मोंके ध्वंसकूं भी व्यापाररूपता संभवती नहीं । यातैं तिन निषिद्ध कर्मोंका व्यापाररूप करिकै सो अधर्म अवश्य कल्पना कन्या चाहिये । इस अर्थविषे विशेष करिकै युक्तियां पूर्व धर्मनिरूपणविषे कथन करि आये हैं । ते युक्तियां ईहां भी यथायोग्य जानि लेणीयां । किंवा जो कदाचित् सो निषिद्धकर्म जन्य अधर्म नहीं अंगीकार करिये तौं निषिद्ध कर्मोंतैं अनंतर शास्त्रनैं विधान कन्ये जे प्रायश्चित्त हैं। तिन प्रायश्चित्तों करिकै किसका नाश होवैगा ? तहां ते हिंसादिक निषिद्धकर्म तौं ता प्रायश्चित्ततैं पूर्व हीं उत्पन्न होइकै नाश होइ गए हैं । यातैं ता प्रायश्चित्तनैं तिन हिंसादिक कर्मोंका तौं नाश वा प्रतिबंध करीता नहीं और तिन निषिद्ध कर्मोंका ध्वंस तौं नाशतैं रहित है । यातैं ता प्रायश्चित्तनैं ता ध्वंसका भी नाश करीता नहीं । परिशेषतैं सो प्रायश्चित्त ता हिंसादि निषिद्धकर्मजन्य अधर्मकूं हीं नाश करे है । यातैं ता प्रायश्चित्तविधायकशास्त्रकी प्रामाण्यता वासतै भी सो निषिद्धकर्म जन्य अधर्म अवश्य अंगीकार करणे योग्य है इति । अब ता अधर्मके नाशके कारणोंका वर्णन—करे हैं । तहां हिंसादिक निषिद्ध कर्मोंके करणेतैं इस जीवात्माविषे उत्पन्न भया जो अधर्म है सो अधर्म प्रायश्चित्त करिकै भी नाश होइ जावै है । ते अधर्म निवृत्तिके प्रायश्चित्त मनुयाज्ञवल्क्यादिकोंनैं विस्तारतैं प्रतिपादन करे हैं । और जिस अधर्म करिकै इस जीवात्माकूं जो दुःख प्राप्त हूआ है ता दुःखरूप फलके भोग करिकै भी सो अधर्म नाश होइ जावै है । और श्रवणमननादिक साधनोंतैं उत्पन्नहूए तत्त्वज्ञान करिकै भी सो अधर्म नाश होइ जावै है। यह धर्म अधर्म दोनों विभु आत्माके विशेषगुण हूए भी योग्य नहीं है, किन्तु अतिइंद्रिय हैं । यातैं स्वउत्तर उत्पन्नहूए ज्ञानादिक योग्यविशेष गुण करिकै इस धर्म अधर्मका नाश होता नहीं, किन्तु पूर्वउक्त फलभोगादिक कारणों करिकै हीं ता धर्म अधर्मका नाश होवै है इति ॥

अदृष्टरूप धर्माधर्मका अनुमान—किंवा यह पूर्व उक्त धर्म अधर्म दोनों गुण इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानके अविषय होणेतैं अतिइंद्रिय होवै हैं । या कारणतैं हीं शास्त्रवेत्ता पुरुष ता धर्म अधर्मकूं अदृष्ट इस नाम करिकै कथन करे हैं । ऐसे अदृष्टरूप धर्मअधर्मकी इस अनुमान करिकै सिद्धि होवै है । **देवदत्तस्य शरीरादिकं देवदत्तस्य विशेषगुणजन्यं कार्यत्वे सति देवदत्तस्य भोगहेतुत्वात् देवदत्तप्रयत्नजन्यकुसुमपर्यंकादिवत्** । अर्थ यह—देवदत्तनामा पुरुषके जे शरीरइंद्रियादिक हैं ते शरीरादिक ता देवदत्त पुरुषके विशेषगुण करिकै जन्य होणेयोग्य हैं । कार्यरूप हूए ता देवदत्त पुरुषके भोगका हेतु होणेतैं । जो जो वस्तु कार्यरूप हूआ ता देवदत्तके भोगका हेतु होवै है सो सो वस्तु ता देवदत्त पुरुषके विशेषगुण करिकै जन्य हीं होवै है । जैसे ता देवदत्तके प्रयत्न करिकै साध्य कुसुमपर्यंकादिक वस्तु कार्यरूपहूए ता देवदत्तके भोगके हेतु होवै हैं । यातैं ता देवदत्तके प्रयत्नरूप विशेषगुण करिकै जन्य भी होवै हैं।

तैसे यह देवदत्तके शरीरइंद्रियादिक भी कार्यरूप हूए ता देवदत्तके भोगके हेतु हैं । यातैं ता देवदत्तके किसी विशेषगुण करिकै अवश्य जन्य होवैंगे । तहां ता देवदत्तनामा पुरुषके जे बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, भावना यह विशेषगुण हैं । तिन बुद्धिआदिक विशेष गुणोंकूं तौं ता देवदत्तपुरुषके शरीरइंद्रियादिकोंकी कारणता संभवती नहीं । परिशेषतैं सो धर्मअधर्म रूप विशेषगुण हीं तिन शरीर इंद्रियादिकोंका कारणरूप करिकै सिद्ध होवै है। पदकृत्य—तहां इस उक्त अनुमानविषे 'देवदत्तस्य भोगहेतुत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'कार्यत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे तथा कालईश्वरादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं ? सुखदुःखके साक्षात्कारका नाम भोग है ता भोगका सो देवदत्तका आत्मा तौं समवायिकारण है । और ते कालादिक निमित्तकारण हैं । यातैं ता आत्मा कालादिकों विषे सो देवदत्तके भोगका हेतुत्वरूप हेतु तौं है, परंतु सो विशेषगुण जन्यत्वरूप साध्य हैं नहीं । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'कार्यत्वे सति' यह पद कथन कर्या है । तहां तिन आत्माकालादिकोंविषे कार्यरूपता है नहीं । यातैं तिनोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। इस प्रकारके उक्त अनुमानप्रमाण करिकै ता धर्म अधर्मरूप अदृष्टकी सिद्धि सम्भवै है इति ।

ईश्वरविषे धर्माधर्मकी उत्पत्तिकी शंका—जैसे जीवात्माविषे विहितनिषिद्ध कर्म करिकै ता धर्म अधर्मकी उत्पत्ति होवै है तैसे ईश्वरविषे भी ता धर्म अधर्मकी उत्पत्ति क्यूं नहीं होती । समाधान—ता धर्म अधर्मकी उत्पत्तिविषे मिथ्याज्ञानजन्य वासना भी कारण होवै है । सा मिथ्याज्ञानजन्य वासना ता ईश्वरविषे है नहीं । यातैं ता ईश्वरविषे ता धर्म अधर्मकी उत्पत्ति होती नहीं । किंवा ता मिथ्याज्ञानजन्य वासनाके अभावतैं ता ईश्वरविषे जैसे ता धर्म अधर्मकी उत्पत्ति होती नहीं । तैसे ता मिथ्याज्ञान जन्य वासनाके अभावतैं तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुषविषे भी ता धर्म अधर्मकी उत्पत्ति होती नहीं । या कारणतैं हीं ता तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुषनैं कर्ये हूए भी विहित निषिद्ध कर्म ता ज्ञानवान् पुरुषकूं सुखदुःखरूप फलकी प्राप्ति करते नहीं इति ।

तत्त्वज्ञानीके विषयमें शंका—पूर्व तत्त्वज्ञानकूं धर्म अधर्मकी नाशकता कथन करी थी सो सम्भवती नहीं । काहेतैं ? जो कदाचित् तत्त्वज्ञान करिकै सर्व धर्म अधर्मका नाश होता होवै तौं ता तत्त्ववेत्ता पुरुषके शरीरकी स्थिति हीं नहीं होणी चाहिये । तथा ता तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं सुखदुःखकी भी प्राप्ति नहीं होणी चाहिये । जिस कारणतैं ता शरीरकी स्थितिविषे तथा सुखदुःखविषे सो धर्म अधर्म हीं कारण होवै है । और ता तत्त्वज्ञानके हूए भी शुकवामदेवादिक ज्ञानी पुरुषोंके शरीरकी स्थिति तथा सुखदुःखका अनुभव शास्त्रविषे कथन कर्या है ।

संचित और क्रियामाणका नाश तथा प्रारब्धके भोगसे समाधान—क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे । ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा । इत्यादिक श्रुति-

स्मृति वचनोंविषे जो तत्त्वज्ञान करिकै कर्मोंका नाश कथन कऱ्या है । सो प्रारब्ध कर्मतैं इतर कर्मोंका नाश कथन कऱ्या है अर्थात् इस पुरुषनैं पूर्व अनेक जन्मोंविषे विहितनिषिद्ध कर्म करिकै संपादन कऱ्ये जे असंख्यात धर्म अधर्म हैं । जिन धर्मअधर्मोंनैं अबी फलका आरंभ नहीं कऱ्या है । ऐसे संचित सर्व धर्म अधर्म ता तत्त्वज्ञान करिकै नाश होइ जावै हैं और जिन धर्मअधर्मोंनैं इस शरीरका आरंभ कऱ्या है तथा इस शरीरविषे सुखदुःखरूप फल प्राप्त करणा है । ऐसे प्रारब्धकर्मका तौं केवल फलके भोग करिकै हीं नाश होवै है । ता तत्त्वज्ञान करिकै नाश होता नहीं । या कारणतैं हीं **नाभुक्तं क्षीयते कर्म** । इत्यादिक शास्त्रके वचन ता प्रारब्धकर्मका भोग करिकै हीं नाश कहे हैं । यातैं ता प्रारब्धकर्मके वशतैं तिन तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुषोंकूं शरीरकी स्थिति तथा सुखदुःखका अनुभव सम्भवै है इति ॥

अन्यकृतोंसे तदन्योंको सुखदुःख—किंवा यह धर्म अधर्म बहुतस्थलविषे तौं जिस जिस जीवात्माविषे उत्पन्न होवै है तिस तिस जीवात्माकूं हीं सुखदुःखरूप फलकी प्राप्ति करे है । और कोईक स्थलविषे तौं अन्यजीवकृत धर्मअधर्म अन्य जीवकूं भी ता सुखदुःखरूप फलकी प्राप्ति करे है । जैसे **पितृस्वर्गकामः पुष्करिण्या यजेत, यत्राङ्गा पातयेत्पिण्डं तत्रयेद्ब्रह्म शाश्वतम्** । इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंविषे पुत्रादिकृत श्राद्धादिकोंतैं पितरोंकूं स्वर्गकी प्राप्ति कथन करी है । तथा **पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः** । इत्यादिक वचनोंविषे पुत्रादिकृत पापकर्मतैं पितरोंकूं नरककी प्राप्ति कथन करी है। और ते पितर जो कदाचित् मुक्तहूए होवैं तौं तिन पुत्रादिकोंकूं हीं तिन श्राद्धादिक कर्मोंका फल प्राप्त होवै है ॥

इति अधर्मनिरूपणं समाप्तम् ॥ २३ ॥

अथ संस्कारनिरूपणम् ।

तहां लक्षण—**आत्मविशेषगुणवृत्ति मूर्त्तवृत्तिवृत्ति गुणत्वव्याप्यजातिमान् संस्कारः** । अर्थ यह—आत्माके विशेषगुणविषे वर्त्तणेहारी तथा मूर्त्तद्रव्योंविषे रहणेहारे गुणविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण संस्कार कह्या जावै है । तहां जीवात्माविषे रहणेहारा जो भावनाख्य संस्काररूप विशेषगुण है ता भावनाविषे संस्कारत्व जाति रहे है । यातैं सा संस्कारत्वजाति आत्मविशेषगुणवृत्ति कही जावै है । और पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंविषे रहणेहारा जो वेगनामा संस्कार है ता वेगविषे भी सा संस्कारत्वजाति रहे है । यातैं सा संस्कारत्वजाति मूर्त्तवृत्तिवृत्ति कही जावै है । और सा संस्कारत्व जाति गुणत्वजातिका व्याप्य भी है । ऐसी संस्कारत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्वसंस्कारों विषे रहे है । यातैं यह उक्त संस्कारका लक्षण संभवै है । पदकृत्य--तहां ' मूर्त्तवृत्तिवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् संस्कारः ' इतनामात्र हीं जो ता संस्कारका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' आत्म-

विशेषगुणवृत्ति ' यह पद नहीं कथन करते तौं पृथिवी आदिक मूर्त्तद्रव्योंविषे वर्त्तणेहारे रूपादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'आत्मविशेषगुणवृत्ति ' यह पद कथन कन्या है। तहां ते रूपादिक गुण आत्माके विशेषगुण नहीं हैं। किंतु बुद्धि आदिक हीं ता आत्माके विशेष गुण हैं। यातैं ते रूपत्वादिक जातियां आत्माके विशेषगुणविषे वृत्ति नहीं हैं। यातैं तिन रूपत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन रूपादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'आत्मगुणवृत्तिमूर्त्तवृत्तिवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् संस्कारः' इतनामात्र हीं जो ता संस्कारका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विशेष' यह पद नहीं कथन करते तौं संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग इन पांचगुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ते संख्यादिक पंचगुण पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे हीं रहे हैं। यातैं ते संख्यादिक पंचगुण आत्माके भी गुण हैं तथा पृथिवी आदिक मूर्त्तद्रव्योंके भी गुण हैं। ऐसे संख्यादिक पंच-गुणोंविषे यथा क्रमतैं वर्त्तणेहारी जे संख्यात्व, परिमाणत्व, पृथक्त्वत्व, संयोगत्व, विभागत्व यह पंच जातियां हैं ते संख्यात्वादिक जातियां आत्मगुणवृत्ति भी हैं तथा मूर्त्तवृत्तिवृत्ति भी हैं तथा गुणत्वजातिके व्याप्य भी हैं। ऐसी संख्यात्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विशेष' यह पद कथन कन्या है। तहां ते संख्यादिक पंच आत्माके गुणहूए भी विशेषगुण नहीं हैं किंतु सामान्यगुण हैं। यातैं तिन संख्यात्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा 'आत्मविशेषगुणवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान् संस्कारः' इतनामात्र हीं जो ता संस्कारका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'मूर्त्तवृत्तिवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माके बुद्धि आदिक विशेषगुणोंविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणत्वजातिका व्याप्य ऐसी बुद्धित्वादिक जाति-योंकूं लैके तिन बुद्धि आदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'मूर्त्तवृत्तिवृत्ति' यह पद कथन कन्या है। तहां ते बुद्धि आदिक गुण पृथिवी आदिक मूर्त्तद्रव्योंविषे रहते नहीं। किंतु आत्मरूप अमूर्त्त द्रव्य-विषे हीं रहे हैं। ऐसे बुद्धि आदिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी ते बुद्धित्वादिक जातियां मूर्त्तवृत्ति-वृत्ति नहीं हैं। यातैं तिन बुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके तिन बुद्धिआदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'आत्मविशेषगुणवृत्तिमूर्त्तवृत्तिवृत्तिजातिमान् संस्कारः' इतनामात्र हीं जो ता संस्कारका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ता संस्कारविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके रूपादिक सर्वगुणों

विषे तथा सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यगुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अति व्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सा गुणत्वजाति ता गुणत्वजातिका व्याप्य नहीं है । यातैं ता गुणत्वव्याप्य सत्ता जातिकूं लैके तिन रूपादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

रहणेका द्रव्य—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो संस्कार गुण पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन, आत्मा इन षट्द्रव्योंविषे हीं रहे है । आकाश, काल, दिशा इन तीनोंविषे रहता नहीं । संस्कारके भेद—सो संस्कारगुण वेग १, स्थितिस्थापक २, भावना ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । वेगके रहणेका द्रव्य—तहां प्रथम वेगनामा संस्कार तौं पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंविषे हीं रहे है आत्माविषे रहता नहीं ॥

स्थितिस्थापकके रहणेका द्रव्य—और दूसरा स्थितिस्थापक नामा संस्कार तौं केईकग्रन्थकारोंके मतविषे केवल एक पृथिवीविषे हीं रहे है । और केईक ग्रंथकारोंके मतविषे सो स्थितिस्थापक पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि द्रव्योंविषे रहे है तहां प्रथम मतवाले तौं ता स्थिति स्थापककूं विशेषगुण माने हैं और दूसरे मतवाले ता स्थिति स्थापककूं सामान्य गुण माने हैं॥

भावनाके रहणेका द्रव्य—और तीसरा भावनाख्यसंस्कार तौं केवल जीवात्माविषे हीं रहे है। तिन पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे रहता नहीं इति ॥

अब ता वेगनामा संस्कारका लक्षण—कहे हैं—**मनोवृत्तिवृत्तिसंस्कारत्वव्याप्यजातिमान् वेगः** । अर्थ यह—मनविषे वर्त्तणेहारे पदार्थविषे वर्त्तणेहारी तथा संस्कारत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण वेग कह्या जावै है । तहां मनविषे सो वेग रहे है ता वेगविषे वेगत्वजाति रहे है। यातैं सा वेगत्वजाति मनोवृत्ति वृत्ति कही जावै है । और वेग स्थितिस्थापक भावना इन तीन प्रकारके संस्कारोंविषे रहणेहारी जा संस्कारत्वजाति है ता संस्कारत्व जातिका सा वेगत्वजाति व्याप्य भी है ऐसी वेगत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्ववेगोंविषे रहे है यातैं यह उक्त वेगका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां 'संस्कारत्वव्याप्यजातिमान् वेगः' इतनामात्र हीं जो ता वेगका लक्षण करते ता लक्षणविषे'मनोवृत्ति वृत्ति'यह पद नहीं कथन करते तौं ता संस्कारत्वजातिका व्याप्य स्थितिस्थापकत्व जातिकूं लैके स्थिति स्थापकविषे तथा भावनात्वजातिकूं लैके भावनाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके करणे वासतै ता लक्षणविषे 'मनोवृत्तिवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो स्थितिस्थापक तथा भावना मनविषे रहता नहीं यातैं सा स्थितिस्थापकत्वजाति तथा भावनात्वजाति मनोवृत्ति वृत्ति नहीं है । यातैं ता स्थितिस्थापकत्व भावनात्व जातिकूं लैके ता स्थितिस्थापक भावनाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'मनोवृत्तिवृत्तिजातिमान् वेगः' इतनामात्र हीं

जो ता वेगका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संस्कारत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं ता मनविषे वर्त्तणेहारे संख्यादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी संख्यात्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संस्कारत्वव्याप्य' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते संख्यात्वादिक जातियां ता संस्कारत्व जातिके व्याप्य नहीं हैं यातैं तिन संख्यात्वादिक जातियोंकूं लैके तिन संख्यादिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

वेगके भेद--इस प्रकारके लक्षण करिकै लक्षित सो वेगनामा संस्कार कर्मजवेग १, वेगजवेग २, इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। कर्मजवेग—तहां धनुषकी रज्जुका बाणके साथि नोदनाख्य संयोगके हूए ता बाणविषे प्रथमक्षणविषे क्रियारूप कर्म उत्पन्न होवै है। और सो कर्म द्वितीय क्षणविषे ता बाणविषे वेगकूं उत्पन्न करे है। और सो वेग अगले क्षणविषे ता स्वजनक पूर्वकर्मकूं नाश करे है। तथा ता बाणविषे द्वितियकर्मकूं उत्पन्न करे है। और सो द्वितीयकर्म भी अगले क्षणविषे ता स्वजनक पूर्ववेगकूं नाश करे है। तथा ता बाणविषे द्वितीय वेगकूं उत्पन्न करे है। इस प्रकार ता बाणके अधःपतनपर्यंत कर्मतैं वेग वेगतैं कर्म उत्पन्न होता जावै है। ते बाणविषे उत्पन्न हूए वेग कर्मजवेग कहे जावै हैं। इसके कारण—तहां ता वेगका सो बाण तौं समवायिकारण होवै है। और सो कर्म ता वेगका असमवायि कारण होवै है। और अदृष्टईश्वरादिक ता वेगके निमित्त कारण होवै हैं। यद्यपि ता द्रव्यके उत्तरसंयोग करिकै हीं ता द्रव्यके कर्मका नाश होवै है तथापि ता बाणके कर्मका नाश करणेहारा सो उत्तरसंयोग तिस कालविषे है नहीं यातैं ता वेगकूं हीं ता कर्मकी नाशकता कल्पना करी जावै है। **शंका**—जिस पूर्वकर्मके नाश वासतै तुमोंनैं सो वेग कल्पना कऱ्या है। ता पूर्वकर्मका नाश नहीं माननेविषे क्या हानि है? **समाधान**—ता पूर्व कर्मके नहीं नाशहूए ता बाणविषे उत्तर कर्मकी उत्पत्ति हीं नहीं होवैगी। जिस कारणतैं सो पूर्वकर्म ता उत्तरकर्मका प्रतिबंधक होवै है। ता पूर्वकर्मरूप प्रतिबंधकके विद्यमानहूए ता उत्तरकर्मकी उत्पत्ति हीं नहीं होवैगी। यातैं तिन बाणादिकोंविषे ता पूर्वकर्मका नाश करणेहारा तथा उत्तरकर्मकी उत्पत्ति करणेहारा सो कर्मजवेग अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये इति॥

कर्मज वेगको न माननेवाले—ईहां केईक ग्रंथकार तौं यह कहे हैं। ता रज्जुके नोदनाख्य संयोगतैं ता बाणविषे प्रथमक्षणविषे कर्म उत्पन्न होवै है। और द्वितियक्षणविषे ता कर्म करिकै ता बाणका ता रज्जुरूप पूर्वदेशके साथि विभाग उत्पन्न होवै है। और तृतीयक्षणविषे ता विभाग करिकै ता बाणका ता रज्जुरूप पूर्वदेशके साथि संयोगका नाश होवै है। और चतुर्थक्षण विषे ता बाणका आकाशादिरूप उत्तरदेशके साथि संयोग होवै है। सो उत्तरसंयोग हीं ता पूर्व कर्मका नाश करे है तथा उत्तरकर्मकूं उत्पन्न करे है। ता उत्तरसंयोगतैं पूर्व कर्मका नाश तथा कर्मका उत्पत्ति अंगीकार करणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। तथा कोई प्रयोजन भी नहीं है। यातैं सो कर्मजन्यवेग मानणा निष्फल है इति॥

वेगजवेग—और वेगवाले कपालोंतैं उत्पन्न भया जो घट है सो घट भी वेगवाला हींहोवै है, यातैं सो घटका वेग वेगज वेग कह्या जावै है। इसके कारण—तहां ता घटके वेगका सो घट तौं समवायिकारण होवै है। और सो कपालोंका वेग असमवायिकारण होवै है। और देशकाल ईश्वरादिक निमित्तकारण होवै है। दोनों—तहां जन्यमूर्त्तद्रव्योंविषे तौं सो कर्मजवेग तथा वेगजवेग दोनोंप्रकारका वेग उत्पन्न होवै है। नित्यद्रव्यविषे कर्मज—और परमाणु मनरूप नित्य मूर्त्तद्रव्योंविषे तौं केवल कर्मजवेग हीं उत्पन्न होवै है। दोनोंको अनित्यताका विधान—सो दोनों प्रकारका वेग अनित्यहीं होवै है। कोई भी वेग नित्य होता नहीं। वेगका नाश—तहां ता वेगका स्वजन्य क्रिया करिकै भी नाश होवै है। तथा आश्रयद्रव्यके नाश करिकै भी नाश होवै है। वेगका ग्रहण—और यह वेगनामासंस्कार चक्षु, त्वक् इन दोनों इंद्रियों करिकै ग्राह्य होवै है इति।

स्थितिस्थापकका लक्षण—दूसरे स्थितिस्थापकनामा संस्कारका लक्षण कहे हैं। **पृथिवीवृत्तिवृत्ति मनोवृत्त्यवृत्तिसंस्कारत्वव्याप्यजातिमान् स्थितिस्थापकः।** अर्थ यह—पृथिवीविषे वर्त्तणेहारे पदार्थविषे वर्त्तणेहारी तथा मनविषे वर्त्तणेहारे पदार्थविषे नहीं वर्त्तणेहारी तथा संस्कारत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिवाला गुण स्थितिस्थापक कह्या जावै है। तहां पृथिवीविषे वर्त्तणेहारे स्थितिस्थापकविषे स्थितिस्थापकत्व जाति समवायसंबंध करिकै रहे है। यातैं सा स्थितिस्थापकत्व जाति पृथिवीवृत्तिवृत्ति कही जावै है। और सो स्थितिस्थापक मनविषे रहता नहीं। यातैं सा स्थितिस्थापकत्व जाति ता मनविषे वर्त्तणेहारे वेगादिकोंविषे अवृत्ति भी है तथा सा स्थितिस्थापकत्व जाति संस्कारत्वजातिका व्याप्य भी है। ऐसी स्थितिस्थापकत्व जाति समवायसंबंध करिकै सर्वस्थितिस्थापकोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त स्थितिस्थापकका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'मनोवृत्त्यवृत्तिसंस्कारत्वव्याप्यजातिमान् स्थितिस्थापकः' इतनामात्र हीं जो ता स्थितिस्थापकका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'पृथिवीवृत्तिवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं भावनात्वजातिकूं लैके भावनाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं ? जैसे सो स्थितिस्थापकनामा संस्कार ता मनविषे नहीं रहे है। तैसे सो भावनाख्यसंस्कार भी ता मनविषे रहता नहीं। यातैं ता स्थितिस्थापकत्व जातिकी न्यांई सा भावनात्व जाति भी ता मनविषे वर्त्तणेहारे वेगादिकोंविषे अवृत्ति हीं है तथा संस्कारत्वजातिका व्याप्य भी है। ऐसी भावनात्वजातिकूं लैके भावनाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे 'पृथिवीवृत्तिवृत्ति' यह पद कथन कर्‍या है। तहां सा भावनात्व जाति पृथिवीविषे वर्त्तणेहारे रूपादिक गुणोंविषे वर्त्तती नहीं। यातैं ता भावनात्व जातिकूं लैके ता भावनाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'पृथिवीवृत्तिवृत्ति संस्कारत्वव्याप्य जातिमान् स्थितिस्थापकः' इतनामात्र हीं जो ता स्थितिस्थापकका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'मनोवृत्त्यवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं ता पृथिवीविषे वर्त्तणेहारे

वेगविषे वर्त्तणेहारी तथा संस्कारत्वजातिका व्याप्य ऐसी वेगत्व जातिकूं लैके ता वेगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'मनोवृत्त्यवृत्ति' यह पद कथन कन्या है। तहां सा वेगत्वजाति ता मनविषे वर्त्तणेहारे वेगविषे वृत्ति हीं है अवृत्ति नहीं है। यातैं ता वेगत्वजातिकूं लैके ता वेगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'पृथिवीवृत्तिवृत्तिमनोवृत्त्यवृत्तिजातिमान् स्थितिस्थापकः' इतनामात्र हीं जो ता स्थितिस्थापकका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संस्कारत्वव्याप्य' यह पद नहीं कथन करते तौं रूपत्वजातिकूं लैके रूपविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? सो रूपगुण पृथिवीविषे तौं रहे है और मनविषे रहता नहीं। यातैं सा रूपत्वजाति ता पृथिवीषे वर्त्तणेहारे रूपविषे वृत्ति भी है। तथा मनविषे वर्त्तणेहारे वेगादिकोंविषे अवृत्ति भी है। ऐसी रूपत्वजातिकूं लैके ता रूपविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संस्कारत्वव्याप्य' यह पद कथन कन्या है। तहां सा रूपत्वजाति गुणत्वजातिका व्याप्य हूई भी ता संस्कारत्वजातिका व्याप्य है नहीं। यातैं ता रूपत्व जातिकूं लैके ता रूपविषे ता स्थितिस्थापकके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

तहां वृक्षकी शाखाकूं नीचै खींचिकै जबी पुनः छोडी दईए तबी ता शाखाका यथापूर्व संयोग होवै है। अर्थात् जिस देशविषे ता शाखाका पूर्वसंयोग था तिसी देशविषे ता शाखाका पुनःसंयोग होवै है। ता यथापूर्व संयोगका जनक जा शाखाकी क्रिया है सा क्रिया ता शाखाविषे स्थित स्थितिस्थापक संस्कार करिकै हीं जन्य होवै है। यद्यपि ता शाखाविषे वेग भी उत्पन्न होवै है तथापि सो वेग ता यथापूर्व संयोगजनक क्रियाका जनक होता नहीं। किंतु सो वेग तौं उत्तरसंयोगमात्र जनक क्रियाका जनक होवै है। यातैं ता वेग करिकै सो स्थितिस्थापक संस्कार ता यथापूर्व संयोगजनक क्रियाके प्रति अन्यथासिद्ध होता नहीं। यातैं ता यथापूर्व संयोगजनकक्रियाका कारणरूप करिकै सो स्थितिस्थापकनामा संस्कार अवश्य अंगीकार कन्या चाहिये। और सो स्थितिस्थापक संस्कार अतिइंद्रिय होवै है अर्थात् इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय होता नहीं। किंतु ता यथापूर्व संयोगजनकक्रिया करिकै ता स्थितिस्थापकका अनुमान होवै है इति॥

इसे पृथिवीका गुण मानणेहारे नैयायिक—किंवा जे नैयायिक ता स्थितिस्थापककूं केवल पृथिवीका गुण माने हैं ते नैयायिक भी ता स्थितिस्थापककूं घटपटादिरूप सर्वपृथिवीविषे मानते नहीं, किंतु शाखा, धनुष, कट इत्यादिक पृथिवीविशेषविषे हीं माने हैं। और तिनोंके मतविषे सो स्थितिस्थापक उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवै है। कोई भी स्थितिस्थापक नित्य होता नहीं। और सो स्थितिस्थापक तिन शाखाधनुषादिकोंकी

क्रियाविशेष करिकै जन्य होवै है। तथा क्रियाविशेषका जनक होवै है तथा ता स्वजन्य-क्रियाविशेष करिकै नाश होवै है। तथा आश्रयद्रव्यके नाश करिकै भी नाश होवै है इति ॥

इसे चार द्रव्योंका गुण माणनेहारे—और जे नैयायिक ता स्थितिस्थापककूं पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारोंका गुण माने हैं। इसके नित्य अनित्य भेद—तिनोंके मतविषे तौं सो स्थितिस्थापक नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परमाणुरूप नित्यपृथिवीआदिकोंविषे तौं सो स्थितिस्थापक नित्य होवै है और द्व्यणुकादि अनित्य पृथिवी आदिकोंविषे सो स्थितिस्थापक अनित्य होवै है। अनित्यके कारण—ता अनित्य स्थिति-स्थापकके ते द्व्यणुकादिक द्रव्य तौं समवायिकारण होवै है और तिन द्व्यणुकादिक कार्य द्रव्योंके समवायिकारणरूप परमाणुआदिक अवयवोंका स्थितिस्थापक असमवायिकारण होवै है और कालदिशादिक निमित्तकारण होवै हैं। आश्रयके नाशसे नाश—और जैसे अनित्य गुरुत्वका आश्रय द्रव्यके नाशतैं हीं नाश होवै है। तैसे ता अनित्य स्थितिस्थापकका भी ता आश्रय द्रव्यके नाशतैं हीं नाश होवै है इति ॥

अब तीसरे भावनाख्य संस्कारका लक्षण कहे हैं। **अनुभवजन्या स्मृतिहेतुः भावना।** अर्थ यह—जो गुण अनुभव करिकै जन्य होवै है तथा स्मृतिज्ञानका जनक होवै है सो गुण भावनाख्य संस्कार कह्या जावे है। तहां स्मृतिज्ञानतैं भिन्न ज्ञानका नाम अनुभव है। सो अनुभव, प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्द इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है सो अनुभव जिस वस्तुविषयक होवै है ता अनुभवजन्य संस्कार भी तिस वस्तुविषयक हीं होवै है। और तिस संस्कारजन्य स्मृतिज्ञान भी तिस वस्तुविषयक हीं होवै है। इस प्रकारतैं अनु-भव, संस्कार, स्मृति इन तीनोंका समानवस्तुविषयकत्वरूप करिकै हीं परस्पर कार्यकारण भाव होवै है। अन्यवस्तुविषयक अनुभवतैं अन्यवस्तुविषयक संस्कार उत्पन्न होता नहीं। तथा अन्यवस्तुविषयक संस्कारतैं अन्यवस्तुविषयक स्मृति उत्पन्न होती नहीं। जैसे इस जीवा त्माकूं प्रथम 'अयं घटः' या प्रकारका घट विषयक अनुभव होवै है ता अनुभवतैं इस जीवात्माविषे ता घटविषयक भावनाख्य संस्कार उत्पन्न होवै है। ता संस्कारतैं इस जीवात्माकूं कालांतरविषे 'स घटः' या प्रकारकी ता घटविषयक स्मृति उत्पन्न होवै है। यातैं ता भावनाख्य संस्कारविषे स्वसमानविषयक अनुभव करिकै जन्यता तथा स्वसमानविषयक स्मृतिकी जनकता संभवै है। पदकृत्य—तहां 'अनुभवजन्या भावना' इतनामात्र हीं जो ता भावनाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'स्मृतिहेतुः' यह पद नहीं कथन करते तौं ता अनु-भवके ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं सो अनुभवका ध्वंस भी ता अनुभवरूप प्रतियोगी करिकै जन्य हीं होवै है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'स्मृतिहेतुः' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो अनुभवका ध्वंस ता अनु-

भव करिके जन्य हूआ भी ता स्मृतिका जनक होता नहीं । यातैं ता अनुभवके ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'स्मृति हेतुः भावना' इतनामात्र हीं जो ता भावनाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अनुभवजन्या' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो स्मृतिज्ञान जीवात्माविषे हीं समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होवै है । यातैं सो आत्मा भी ता स्मृतिज्ञानका हेतु हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अनुभवजन्या' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो आत्मा नित्य होणेतैं ता अनुभव करिकै जन्य नहीं है । यातैं ता आत्माविषे ता अनुभवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

विशेषणोंका फल—तहां इस उक्त लक्षणविषे अनुभव शब्द करिकै उपेक्षारूप ज्ञानतैं भिन्न तथा निश्चयरूप ऐसे अनुभवका ग्रहण करणा । अर्थात् उपेक्षाज्ञानतैं भिन्न तथा निश्चयरूप ऐसा अनुभव हीं ता भावनाख्य संस्कारका हेतु होवै है । तथा ता संस्कारद्वारा स्मृतिज्ञानका हेतु होवै है । तहां मार्गविषे चलतेहूए पुरुषकूं तृणादिक अनेक पदार्थोंका उपेक्षारूप ज्ञान होवै है । परंतु ता पुरुषकूं कालांतरविषे तिन तृणादिक पदार्थोंका स्मरण होता नहीं । यातैं ता अनुभवका उपेक्षाज्ञानतैं भिन्न यह विशेषण कथन कऱ्या है । और जिस वस्तुका संशयरूप ज्ञान होवै है तिस वस्तुका भी कालांतरविषे स्मरण होता नहीं । यातैं ता अनुभवका निश्चय यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां संशयज्ञानतैं भिन्न ज्ञानका नाम निश्चय है । और स्मृतिज्ञानतैं ता संस्कारकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता संस्कारजनक ज्ञानका अनुभव यह विशेषण कथन कऱ्या है इति ।

भावनाख्य संस्कारको मानणेका कारण—किंवा जैसे स्वर्गनरकरूप फलकी उत्पत्ति वासतै विहित निषिद्ध कर्मोंका व्यापाररूप करिकै धर्म अधर्म कल्पना कऱ्या जावै है । तैसे स्मृतिज्ञानकी उत्पत्ति वासतै तथा प्रत्यभिज्ञाज्ञानकी उत्पत्ति वासतै ता अनुभवका व्यापाररूप करिकै सो भावानाख्य संस्कार कल्पना कऱ्या जावै है । काहेतैं ? सो उक्त अनुभव दोक्षणपर्यंत अस्वस्थायी रहे है । तीसरेक्षणविषे नष्ट होई जावै है । और सो स्मृतिज्ञान तथा प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौं इस पुरुषकूं मासवर्षादिक कालतैं अनंतर भी होवै है । ऐसे कालान्तर भावी स्मृतिप्रत्यभिज्ञाके प्रति ता पूर्वनष्टहूए अनुभवकूं ता भावनाख्यसंस्काररूप व्यापारतैं विना कारणता संभवती नहीं । यातैं ता स्मृतिप्रत्यभिज्ञारूप फलपर्यन्त रहणेहारा सो भावनाख्यसंस्कार ता अनुभवका व्यापाररूप करिकै अवश्य कल्पना कऱ्या चाहिये । जो कदाचित् ता भावनाख्य संस्कारकूं नहीं अंगीकार करिये तौं ता पूर्व अनुभवविषे ता स्मृतिप्रत्यभिज्ञाज्ञानकी कारणता हीं नहीं संभवैगी । इस अर्थविषे युक्ति तौं पूर्व धर्म अधर्मके निरूपण विषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणी इति ॥

स्मृति और प्रत्यभिज्ञाका भेद—तहां इस पुरुषकूं पूर्व भिन्न देशकालविषे देख्ये हूए देवदत्तका जबी भिन्न देशकालविषे दर्शन होवै है तबी इस पुरुषकूं सोई यह देवदत्त है या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै है। सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान भी ता पूर्वले देवदत्तविषयक अनुभवजन्य संस्कारतैं हीं होवै है। यातैं स्मृतिज्ञानकी न्यांई सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान भी ता भावनाख्य संस्कार करिकै हीं जन्य होवैहै। परन्तु सो स्मृतिज्ञान तौं केवल ता संस्कारमात्र करिकै जन्य होवै है चक्षु आदिक इंद्रिय करिकै जन्य होता नहीं। और सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौं ता संस्कारसहकृत चक्षुआदिक इंद्रिय करिकै जन्य होवै है इतना ता स्मृतिप्रत्यभिज्ञाविषे भेद है इति॥

ईहां चिंतामणिकारका—तौं यह मत है। ता प्रत्यभिज्ञाज्ञानके प्रति संस्कारकूं कारणता नहीं है किंतु ता संस्कार करिकै जन्य जा स्मृति है सा स्मृति हीं ता प्रत्यभिज्ञाके प्रति कारण होवै है। तात्पर्य यह—कालांतर विषे ता देवदत्त पुरुषकूं देखिकै ता पूर्व देशकालविशिष्ट देवदत्तके अनुभवजन्य संस्कार उद्बुद्ध होवै है। ता उद्बुद्ध संस्कारतैं ता पूर्वदेशकालविशिष्ट देवदत्तका स्मरण होवै है। ता स्मरणसहकृत चक्षुइंद्रियतैं इस पुरुषकूं ता देवदत्तका सोई यह देवदत्त है है या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै है इति॥

इसका खण्डन—सो यह चिन्तामणिकारका मत समीचीन नहीं है। काहेतैं? तिस उद्बुद्ध संस्कारतैं तौं स्मृतिकी उत्पत्ति मानणी और ता स्मृतितैं ता प्रत्यभिज्ञाज्ञानकी उत्पत्ति मानणी इसकी अपेक्षा करिकै ता उद्बुद्ध संस्कारतैं हीं ता प्रत्यभिज्ञाकी उत्पत्ति मानणेविषे लाघव है। यातैं गौरवदोष ग्रस्तहोणेतैं सो चिंतामणिकारका मत समीचीन नहीं है इति॥

अनुभवके ध्वंसविषे अनुभवका व्यापार रूपताका खण्डन—किंवा जैसे स्वर्गनरकरूप फलकी उत्पत्ति करणेवासतै ता विहितनिषिद्ध कर्मके ध्वंसकूं व्यापाररूपता संभवती नहीं तैसे ता स्मृतिप्रत्यभिज्ञाकी उत्पत्ति करणे वासतै ता अनुभवके ध्वंसकूं भी ता अनुभवकी व्यापाररूपता संभवती नहीं। काहेतैं? ता अनुभवके ध्वंसका नाश होता नहीं, यातैं ता पूर्वअनुभवकऱ्ये हूए पदार्थकी सर्व कालविषे स्मृति होणी चाहिये, कोईकालविषे भी ता स्मृत्तिका उच्छेद नहीं होणा चाहिये सो अनुभवतैं विरुद्ध है। किंवा प्रतियोगी तथा ताका ध्वंस दोनोंकूं एक कार्यकी जनकता होती नहीं, या कारणतैं भी ता अनुभवकूं तथा ताके ध्वंसकूं ता स्मृतिकी कारणता संभवती नहीं। किंवा ता अनुभवके ध्वंसकूं जो स्मृतिके प्रति कारण मानिये तौं ता अनुभवकूं ता स्मृतिके प्रति प्रतिबंधकता होणी चाहिये। काहेतैं? शास्त्रविषे प्रतिबंधकका यह लक्षण कऱ्या है। **कारणीभूताभावप्रतियोगित्वं प्रतिबन्धकत्वम्।** अर्थ यह—जो अभाव जिस कार्यके प्रति कारण होवै है तिस अभावका प्रतियोगी तिस कार्यके प्रति प्रतिबंधक होवै है। जैसे अग्निकृत दाहका मणिमंत्रादिकोंका अभाव कारण होवै है ता कारणीभूत अभावके प्रतियोगी रूप ते मणिमंत्रादिक

ता दाहके प्रतिबंधक हीं होवै हैं। तैसे ता स्मृतिका कारणभूत जो अनुभवका ध्वंस है ता ध्वंसका प्रतियोगी होणेतैं सो अनुभव भी ता स्मृतिका कारणभूत प्रतिबंधक हीं होवैगा सो कहणा अत्यन्त विरुद्ध है। यातैं ता अनुभवके ध्वंसविषे ता अनुभवकी व्यापाररूपता संभवती नही, किंतु पूर्वउक्तरीतिसैं ता भावनाख्य संस्कारोंकूं हीं ता अनुभवकी व्यापारूपता संभवै है। इति।

संस्कारोंके उद्बोधक—किंवा ता घटादिवस्तुविषयक अनुभवजन्य संस्कारके विद्यमानहूए भी सर्वकालविषे ता घटादिक वस्तुका स्मरण होता नहीं। किंतु कोई कालविषे हीं सो स्मरण होवै है। यातैं यह जान्या जावै है सो भावनाख्य संस्कार उद्बुद्ध हूआ ता स्मृतिका जनक होवै है। जो कदाचित् अनुद्बुद्ध संस्कारकूं भी स्मृतिकी जनकता होवै तौं तिस अनुद्बुद्ध संस्कारकूं सर्वकालविषे विद्यमान होणेतैं सर्वकालविषे ता घटादिक वस्तुकी स्मृति होणी चाहिये सो होती नहीं। ते संस्कारोंके उद्बोधक सादृश्यज्ञान १, अदृष्ट २, चिंता ३, संबंधीदर्शन ४ यह च्यारि प्रकारके होवै हैं। तहां रजतके अनुभवजन्य संस्कारवाले पुरुषकूं शुक्ति देखिकै रजतका स्मरण होवै है। तहां सादृश्यज्ञान हीं ता भावनाख्य संस्कारका उद्बोधक होवै है। ता शुक्तिविषे जो चाक्यचिक्यता है यह हीं ता रजतका सादृश्य है। ता सादृश्यज्ञानतैं उद्बुद्ध हूआ सो रजतविषयक संस्कार ता रजतविषयक स्मृतिकूं उत्पन्न करे हैं। और जन्मे हूए बालककूं उसी कालविषे माताके स्तन्यपानविषे आपणे इष्टकी साधनताका स्मरण होइकै प्रवृत्ति होवै है, ता स्मृतिके हेतुभूत संस्कारका ता बालकके जीवनका हेतुभूत अदृष्ट हीं उद्बोधक होवै है। यह वार्त्ता पूर्वद्वितीय परिच्छेदविषे आत्मनिरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं। और जबी इस पुरुषकूं पूर्वअनुभव कऱ्ये हूए श्लोकादिकोंका विस्मरण होइ जावै है। तबी मनकी सावधानतापूर्वक पुनः पुनः तिन श्लोकादिकोंके चिंतन करणेतैं तिन श्लोकादिकोंका स्मरण होइ आवै है। ता स्मरणके हेतुभूत संस्कारका सा मनका प्रणिसंधानरूप चिंता हीं उद्बोधक होवै है। और जिस पुरुषनैं किसी पितापुत्रकूं एक रहता हूआ देख्या है। तथा तिन दोनोंके जन्यजनकभावरूप संबंधकूं भी निश्चय कऱ्या है। तिसपुरुषकूं कालांतरविषे ता पुत्रकूं देखिकै ताके पिताका स्मरण होइ आवै है। ता स्मृतिके हेतुभूत संस्कारका सो पुत्ररूप संबंधीका दर्शन नहीं उद्बोधक होवै है। इस प्रकारतैं ता सादृश्यज्ञानादिकों करिकै उद्बुद्ध हूआ सो भावनाख्यसंस्कार हीं ता स्मृतिज्ञानका तथा प्रत्यभिज्ञाज्ञानका हेतु होवै है इति। सो यह उक्त भावनाख्य संस्कार केवल जीवात्माविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। ता जीवात्मातैं भिन्न पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे रहता नहीं। और सो भावनाख्यसंस्कार उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवै है। कोई भी भावनाख्यसंस्कार नित्य होता नहीं। तहां ता भावनाख्य संस्कारका सो जीवात्मा तौं समवायिकारण होवै है। और ता जीवात्माके साथि जो मनकासंयोगसंबंध है सो आत्ममनसंयोग ता भावनाका असमवायिकारण

होवै है । और सो पूर्व अनुभव तथा काल ईश्वरादिक ता भावनाके निमित्तकारण होवै हैं । और जैसे सो पूर्वउक्त धर्म अधर्म अतिइंद्रिय होवै है । तैसे यह भावनाख्य संस्कार भी अतिइंद्रिय हीं होवै है । अर्थात् किसी भी इंद्रिय करिकैं ता भावनाका प्रत्यक्ष होता नहीं इति ।

इसके आश्रय उत्पत्ति तथा अतीन्द्रियताका वर्णन—किंवा यह भावनाख्य संस्कार विभु आत्माका विशेषगुण हूआ भी योग्य नहीं है। किंतु धर्म अधर्मकी न्यांई अयोग्य है। यातैं ता भावनाख्य संस्कारका स्वउत्तर उत्पन्नहूए आत्माके ज्ञानादिक विशेषगुण करिकै नाश होता नहीं । किंतु ता भावनाख्य संस्कारका स्वजन्य चरमस्मृति करिकै हीं नाश होवै है । तहां जिस स्मृतिके आगे कोई स्मृति नहीं उत्पन्न होवै है । ता स्मृतिका नाम चरमस्मृति है । इसी चरमस्मृतिकूं अंत्यस्मृति भी कहे है। ईहां यह अभिप्राय है । जिस रजतादिवस्तुविषयक अनुभवतैं जो रजतादिवस्तुविषयक संस्कार उत्पन्न होवैहै सो संस्कार इस जीवात्माविषे बन्या रहे है। और सो संस्कार जिस जिस कालविषे ता सादृश्यज्ञानादिक उद्बोधक करिकै उद्बुद्ध होवै है । तिस तिस कालविषे ता रजतादिवस्तुविषयक स्मृतिकूं उत्पन्न करे है । इस प्रकार ता रजतादिवस्तुविषयक अनेकस्मृतियोंकूं उत्पन्न करताहूआ भी सो संस्कार नष्ट होता नहीं । किंतु ता रजतादिवस्तुविषयक अंत्यस्मृति करिकै हीं सो संस्कार नष्ट होवै है । यातैं ता अंत्यस्मृतिकूं ता भावनाख्य संस्कारकी नाशकता संभवै है। और कोईक स्थलविषे तौं सो भावनाख्य संस्कार विलक्षण रोगादिकों करिकै भी नाश होइ जावै है । या कारणतैं हीं कोईक विलक्षण रोग करिकै ग्रस्तपुरुषकूं पूर्वले अनुभूत पदार्थोंका स्मरण होता नहीं । और कोईक स्थलविषे सो भावनाख्य संस्कार काल करिकै भी नाश होइ जावै है। या कारणतैं हीं पूर्वदेख्ये हूए पदार्थका भी बहुत कालके व्यवधान करिकै स्मरण होता नहीं इति ॥

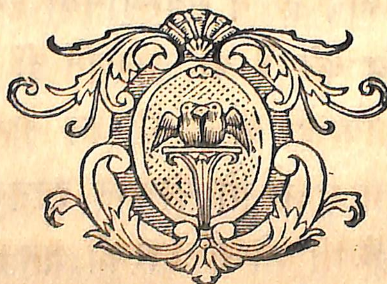
ईहां नवीननैयायिकोंका—तौं यह मत है। ता भावनाख्य संस्कारका सा चरमस्मृति हीं नाशक नहीं होवै है, किंतु ता संस्कारके समानविषयक तथा ता संस्कार करिकै जन्य सा प्रथम स्मृति हीं ता संस्कारका नाशक होवै है । और ता प्रथमस्मृतितैं पुनः दूसरा संस्कार उत्पन्न होवै है । ता दूसरे संस्कारतैं पुनः दूसरी स्मृति उत्पन्न होवै है। सा दूसरी स्मृति भी ता स्वजनक पूर्वले संस्कारकूं नाश करिकै पुनः तीसरे संस्कारकूं उत्पन्न करे है। इस प्रकार ता अंत्यस्मृति पर्यंत जितनीकी स्मृतियां उत्पन्न होवै हैं ते सर्वस्मृतियां स्वजनक पूर्वले संस्कारका नाश करिकै पुनःदूसरे संस्कारकूं उत्पन्न करे है या कारणतैं हीं ते संस्कार दृढतर होवै हैं । और जे प्राचीननैयायिकचरमस्मृति करिकै हीं ता संस्कारका नाश माने हैं तिन प्राचीनोंके मत विषे अनंतस्मृतियोंकूं उत्पन्न करता हूआ सो संस्कार दृढतर नहीं होवैगा, किन्तु शिथिल होइ जावैगा । **शंका**—स्मृतिज्ञानकूं भी जो संस्कारकी जनकता मानोंगे तौं अनुभव करिकै

हीं सो संस्कार जन्य होवै है इस नियमका तुमारे मतविषे भंग होवैगा । समाधान—हम नवीनोंके मतविषे केवल अनुभवकूं हीं ता भावनाख्यसंस्कारकी जनकता नहीं है। किंतु उपेक्षा-रूप ज्ञानतैं भिन्न निश्चयरूपज्ञानकूं हीं ता संस्कारकी जनकता है। तथा ता संस्कारद्वारा स्मृतिकी जनकता है, सा ज्ञानरूपता जैसे अनुभवविषे है तैसे ता स्मृतिविषे भी है । यातैं ता स्मृतिज्ञानकूं भी संस्कारकी जनकता तथा ता संस्कारद्वारा स्मृतिज्ञानकी जनकता संभवै है । यातैं ता भावनाख्य संस्कारका यह लक्षण सिद्ध होवै है ।

नवीनोंका भावनाख्य संस्कारका लक्षण—**जन्यज्ञानजन्यसंस्कारः भावना ।** अर्थ यह—जन्यज्ञान करिकै जन्य जो संस्कार है सो संस्कार भावना कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां 'जन्यज्ञानजन्यः भावना' इतनामात्र हीं जो ता भावनाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संस्कारः' यह पद नहीं कथन करते तौं ता अनुभवरूप वा स्मृतिरूप जन्य ज्ञानके ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो जन्यज्ञानका ध्वंस भी ता जन्य ज्ञानरूप प्रतियोगी करिकै जन्य हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संस्कारः' यह पद कथन कन्या है । तहां ता जन्य ज्ञानके ध्वंसविषे संस्काररूपता है नहीं । यातैं ता ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'ज्ञानजन्यसंस्कारः भावना' इतनामात्र हीं जो ता भावनाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'जन्य' यह पद नहीं कथन करते तौ वेगनामा संस्कारविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ईश्वरके ज्ञानकूं सर्वकार्यमात्रके प्रति कारणता होवै है । यातैं सो वेग भी ता ईश्वरके ज्ञान करिकै जन्य हीं है तथा संस्काररूप भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता ज्ञानका 'जन्य' यह विशेषण कथन कन्या है । तहां सो ईश्वरका ज्ञान नित्य होणेतैं जन्य है नहीं । यातैं ता वेगनामा संस्कारविषे ता भावनाख्य संस्कारके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं ॥ इति संस्कारनिरूपणम् ॥२४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानन्दगिरिणा विरचिते न्यायप्रकाशे गुणनिरूपणं नाम तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ३ ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः ॥

**इति न्यायप्रकाशे तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ।**



ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः ॥

श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

# अथ न्यायप्रकाश ।

## चतुर्थपरिच्छेदः ।

अवशिष्ट पदार्थोंका निरूपण ।

तहां द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६; अभाव ७, इन सप्त पदार्थोंविषे प्रथम द्रव्य पदार्थका तौं द्वितीयपरिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण कर्या और दूसरे गुणपदार्थका तृतीयपरिच्छेदविषे विस्तारसैं निरूपण कर्या । अब कर्म सामान्य विशेष समवाय अभाव इन पांच पदार्थोंका विस्तारतैं निरूपण करणे वासतै इस चतुर्थपरिच्छेदका प्रारंभ करे हैं॥

कर्म पदार्थ—तहां प्रथम कर्मपदार्थका निरूपण करे हैं । तहां लक्षण—संयोगविभागासमवायिकारणं कर्म । अर्थ यह—जो पदार्थ संयोगका तथा विभागका असमवायिकारण होवै है सो पदार्थ कर्म कह्या जावै है । तहां प्रथमक्षणविषे घटादिक मूर्त्तद्रव्यविषे सो क्रियारूप कर्म उत्पन्न होवै है और द्वितीयक्षणविषे तिस घटादिक मूर्त्तद्रव्यका पूर्वदेशतैं विभाग उत्पन्न होवै है, ता विभागका सो घटनिष्ठ कर्म हीं असमवायिकारण होवै है । और तृतीयक्षणविषे ता कर्मजन्य विभाग करिकै ता घटका ता पूर्वदेशसैं संयोग नाश होवै है । और चतुर्थक्षणविषे ता घटका उत्तरदेशके साथि संयोग होवै है । ता उत्तरदेशसंयोगका भी सो घटनिष्ठ कर्म हीं असमवायिकारण होवै है । अर्थात् सो घटका कर्म हीं स्वजन्यविभागद्वारा तथा पूर्व संयोग-नाशद्वारा ता उत्तरसंयोगका असमवायिकारण होवै है । इस रीतिसैं ता कर्मविषे संयोग विभाग दोनोंकी असमवायिकारणता संभवै है। पदकृत्य—तहां 'संयोगासमवायिकारणं कर्म' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विभाग' यह पद नहीं कथन करते तौं संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? वृक्षके साथि हस्तके संयोगहूएतैं अनंतर ता वृक्षके साथि शरीरका भी संयोग होवै है । ता शरीरवृक्षके संयोगका सो हस्तवृक्षका संयोग हीं असमवायिकारण होवैहै यह वार्त्ता पूर्वतृतीयपरिच्छेदविषे संयोगगुणके निरूपण विस्तारतैं कथन करि आये हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विभाग' यह पद कथन कर्या है । तहां ता उक्तसंयोगकूं संयोगकी असमवायिकारणताके हूए भी विभागकी असमवायिकारणता है नहीं । यातैं ता संयोगविषे ता कर्मके लक्षणकी

अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' विभागासमवायिकारणं कर्म ' इतनामात्र ही जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' संयोग ' यह पद नहीं कथन करते तौं विभागविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? ता हस्तका वृक्षसैं विभागहूएतैं अनंतर ता शरीरका भी वृक्षसैं विभाग होवै है, ता शरीरवृक्षके विभागका सो हस्तवृक्षका विभाग हीं असमवायिकारण होवै है । यह वार्त्ता भी पूर्वतृतीयपरिच्छेदविषे विभागगुणके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संयोग' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता उक्तविभागकूं विभागकी असमवायिकारणताके हूए भी संयोगकी असमवायिकारणता है नहीं । यातैं ता विभागविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा ' संयोगविभागकारणं कर्म ' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' असमवायि ' यह पद नहीं कथन करते तौं ता घटादिक द्रव्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? ता कर्म करिकै सो संयोगविभाग तिन घटादिक द्रव्योंविषे हीं समवायसंवन्ध करिकै उत्पन्न होवै है । यातैं ता कर्मकी न्यांई ते घटादिक द्रव्य भी ता संयोगविभागके कारण हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै तालक्षणविषे ' असमवायि ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते घटादिक द्रव्य ता संयोगविभागके समवायिकारण हूए भी असमवायिकारण नहीं हैं । यातैं तिन घटादिक द्रव्योंविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

द्वितीय लक्षण—अथवा ता कर्मका यह दूसरा लक्षण करणा । **संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म** । अर्थ यह—जो पदार्थ संयोगतैं भिन्न होवै है तथा संयोगका असमवायिकारण होवै है सो पदार्थ कर्म कह्या जावै है । तहां घटादिक मूर्त्तद्रव्योंविषे स्थित कर्म संयोगतैं भिन्न भी है तथा पूर्वउक्त रीतिसैं तिन घटादिकोंके उत्तरदेशसंयोगका असमवायिकारण भी है । यातैं यह द्वितीयकर्मका लक्षण भी सम्भवै है । पदकृत्य—तहां ' संयोगासमवायिकारणं कर्म ' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' संयोगभिन्नत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं ता शरीरवृक्षसंयोगके असमवायिकारणरूप हस्तवृक्षसंयोगविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' संयोगभिन्नत्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां आपणा भेद आपणेविषे रहता नहीं यातैं सो हस्तवृक्षका संयोग संयोगतैं भिन्न नहीं है । यातैं ता संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' संयोगभिन्नं कर्म ' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते । ता लक्षणविषे ' संयोगासमवायिकारणं ' यह पद नहीं कथन करते तौं घटपटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता कर्मकी न्यांई ते घटपटादिक भी ता संयोगतैं भिन्न हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' संयोगासमवायिकारणम् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते घटपटादिक द्रव्य-

ता संयोगके असमवायिकारण नहीं हैं यातैं तिन घटपटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'संयोगभिन्नत्वे सति संयोगकारणं कर्म' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'असमवायि' यह पद नहीं कथन करते तौं ता संयोगके समवायिकारणरूप घटादिक द्रव्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, जिस कारणतैं ते घटादिक द्रव्य ता संयोगतैं भिन्न भी हैं तथा ता संयोगके कारण भी हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'असमवायि' यह पद कथन कन्या है। तहां तिन घटादिक द्रव्योंकूं ता संयोगकी असमवायिकारणता नहीं है। यातैं तिन घटादिक द्रव्योंविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

तीसरा लक्षण–इस प्रकार **विभागभिन्नत्वे सति विभागासमवायिकारणं कर्म**। यह तीसरा लक्षणभी ता कर्मका संभव होई सकै है। अर्थ यह–जो पदार्थ विभागतैं भिन्न होवै है तथा विभागका असमवायिकारण होवै है, सो पदार्थ कर्म कह्या जावै है। पदकृत्य–तहां इस लक्षणविषे भी पूर्वउक्त लक्षणकी न्याई शरीरवृक्ष विभागके असमवायिकारणरूप हस्तवृक्ष विभागविषे लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै 'विभागभिन्नत्वे सति' यह पद कथन कन्या है। और ता विभागतैं भिन्न घटपटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै। 'विभागासमवायिकारणम्' यह पद कथन कन्या है और ता विभागके समवायिकारणरूप घटादिक द्रव्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै 'असमवायि' यह पद कथन कन्या है इति।

चौथा लक्षण–अथवा ता कर्मका यह चतुर्थलक्षण करणा। **मूर्त्तत्वव्याप्यतावच्छेदकपदार्थविभाजकोपाधिमत् कर्म**। अर्थ यह–मूर्त्तत्वधर्मकी व्याप्यताका अवच्छेदक तथा पदार्थका विभाजक ऐसा जो उपाधि है ता उपाधिवाला पदार्थ कर्म कह्या जावै है। तहां पृथिवी जल, तेज, वायु, मन इन पांच द्रव्योंविषे हीं मूर्त्तत्व धर्म रहे है। और सो कर्म भी तिन पांच, द्रव्योंविषे हीं रहे है। यातैं सो कर्म ता मूर्त्तत्वधर्मका व्याप्य कह्या जावै है। जो धर्म जिस धर्मकूं छोडिकै नहीं रहे है सो धर्म तिस धर्मका व्याप्य कह्या जावै है। ऐसे कर्मविषे रही हूई जा ता मूर्त्तत्व धर्मकी व्याप्यता है ता व्याप्यताका अवच्छेदक कर्मत्वजाति है और सा कर्मत्वजाति पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है ऐसी मूर्त्तत्वकी व्याप्यताका अवच्छेदक तथा पदार्थविभाजक उपाधिरूप कर्मत्वजाति समवायसंबंध करिकै सर्वकर्मोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त कर्मका लक्षण भी संभवै है। पदकृत्य–तहां 'पदार्थ विभाजकोपाधिमत् कर्म' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'मूर्त्तत्वव्याप्यतावच्छेदक' यह पद नहीं कथन करते तौं द्रव्यत्वधर्मकूं लैके द्रव्यविषे तथा गुणत्वधर्मकूं लैके गुणविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जिस धर्मकूं लैके द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंका परस्पर विभाग कन्या जावै है।

सो सो धर्म पदार्थविभाजक उपाधि कह्या जावै है । तहां द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, सामान्यत्व, विशेषत्व, समवायत्व, अभावत्व इन सप्त धर्मोंकूं लैके हीं तिन द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंका परस्पर विभाग कऱ्या जावै है। यातैं ते द्रव्यत्वादिक सप्तधर्म पदार्थविभाजक उपाधि कहे जावै हैं। सा पदार्थविभाजक उपाधिरूपता जैसे ता कर्मत्वजातिविषे है । तैसे ता द्रव्यत्वगुणत्वजातिविषे भी है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता पदार्थविभाजक उपाधिका 'मूर्त्तत्वव्याप्यतावच्छेदक' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ता मूर्त्तत्वधर्मकी व्याप्यतातैं रहित आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे भी सा द्रव्यत्वजाति रहे है तथा ता मूर्त्तत्व धर्मकी व्याप्यतातैं रहित शब्दबुद्धि आदिक गुणोंविषे भी सा गुणत्वजाति रहे है। यातैं सा द्रव्यत्वजाति तथा गुणत्वजाति ता मूर्त्तत्वधर्मकी व्याप्यताका अवच्छेदक नहीं है। यातैं ता द्रव्यत्व गुणत्वजातिकूं लैके ता द्रव्यगुणविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'मूर्त्तत्वव्याप्यतावच्छेद-कोपाधिमत् कर्म' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'पदार्थविभा-जक' यह पद नहीं कथन करते तौं घटत्व पटत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन घटपटादिकों विषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? मूर्त्तत्वधर्मवाले कपालोंविषे घट समवाय संबंध करिकै रहे है । और मूर्त्तत्व धर्मवाले तंतुवोंविषे पट समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं ते घटपटादिक भी ता मूर्त्तत्वधर्मके व्याप्य हीं हैं । ऐसे घटपटादिकोंविषे रही हूई जा मूर्त्तत्व धर्मकी व्याप्यता है ता व्याप्यताके अवच्छेदक ते घटत्वपटत्वादिक जातियां हैं तिन घटत्व पटत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन घटपटादिकोंविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'पदार्थविभाजक' यह पद कथन कऱ्या है ।तहां ते घटत्वपटत्वादिक जातियां ता मूर्त्तत्वधर्मकी व्याप्यताका अवच्छेदक हूई भी पदार्थ विभाजक उपाधिरूप नहीं हैं यातैं तिन घटत्वपटत्वादिक जातियोंकूं लैके तिन घटपटा-दिकोंविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

पांचवाँ लक्षण—अथवा ता कर्मका यह पंचमा लक्षण। करणा।**निर्गुणवृत्तिगुणावृत्तिजाति मत् कर्म** । अर्थ यह—निर्गुणपदार्थविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणविषे नहीं वर्त्तणेहारी ऐसी जा जाति है ता जातिवाला पदार्थ कर्म कह्या जावै है। तहां कर्मविषे कोई भी रूपा-दिक गुण समवायसंबंध करिकै रहता नहीं यातैं सो कर्म निर्गुण कह्या जावै है । ऐसे निर्गुण कर्मविषे वर्त्तणेहारी कर्मत्वजाति है यातैं सा कर्मत्वजाति निर्गुणवृत्ति कही जावै है और सा कर्मत्वजाति गुणपदार्थविषे रहती नहीं यातैं सा कर्मत्वजाति गुण अवृत्ति कही जावै है । ऐसी निर्गुणवृत्ति तथा गुणअवृत्ति कर्मत्वजाति समवायसम्बन्ध करिकै सर्व कर्मों-विषे रहे है यातैं यह उक्त कर्मका लक्षण भी सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'गुणावृत्तिजाति-मत् कर्म' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'निर्गुणवृत्ति' यह

पद नहीं कथन करते तौं द्रव्यत्वजातिकूं लैके द्रव्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे कर्मत्वजाति ता गुणविषे नहीं रहती तैसे सा द्रव्यत्वजाति भी ता गुणविषे रहती नहीं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'निर्गुणवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है तहां सा द्रव्यत्वजाति निर्गुण पदार्थविषे वृत्ति नहीं है, किन्तु रूपादिक गुणोंवाले पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे हीं सा द्रव्यत्वजाति वृत्ति है। यातैं ता द्रव्यत्वजातिकूं लैके ता द्रव्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'निर्गुणवृत्तिजातिमत् कर्म' इतनामात्र हीं जो ता कर्मका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'गुणावृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणत्वजातिकूं लैके गुणविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे कर्मविषे गुण नहीं रहे है तैसे गुणविषे भी गुण रहता नहीं। यातैं कर्मकी न्यांई सो गुण भी निर्गुण कह्या जावै है। ऐसे निर्गुणगुणविषे वर्त्तणेहारी गुणत्वजातिकूं लैके ता गुणपदार्थविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'गुणावृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सा गुणत्वजाति गुणविषे अवृत्ति नहीं है किन्तु ता गुणविषे वृत्ति हीं है यातैं ता गुणत्वजातिकूं लैके ता गुणविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा ता उक्त लक्षणविषे 'जाति' यह पद जो नहीं कथन करते तौं सामान्यविशेषादिक पदार्थोंविषे ता कर्मके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? जैसे गुणकर्मविषे गुण नहीं रहता तैसे तिन सामान्यविशेषादिक पदार्थोंविषे भी सो गुण रहता नहीं। यातैं ता गुणकर्मकी न्यांई ते सामान्यविशेषादिक पदार्थ भी निर्गुण हीं है। ऐसे निर्गुण पदार्थोंविषे वर्त्तणेहारे तथा गुणविषे नहीं वर्त्तणेहारे सामान्यत्व, विशेषत्व, आदिक धर्म हैं। तिन सामान्यत्वादिक धर्मोंकूं लैके तिन सामान्यादिक पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'जाति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते सामान्यत्व' विशेषत्व आदिक धर्म जातिरूप नहीं हैं किंतु उपाधिरूप हैं। यातैं तिन सामान्यत्वादिक धर्मोंकूं लैके तिन सामान्यादिक पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। तहां 'देवदत्तः चलति' यज्ञदत्तः चलति' या प्रकारकी एकाकारप्रतीति ता कर्मत्वजातिकूं हीं विषय करे है यातैं सा कर्मत्वजाति प्रत्यक्षप्रमाण करिकै हीं सिद्ध है इति ॥

इसके रहणेके द्रव्य—इस प्रकारके उक्त पंच लक्षणों करिकै लक्षित सो कर्मपदार्थ पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्त द्रव्योंविषे हीं समवायसम्बन्ध करिकै रहे है आकाश, काल, दिशा, आत्मा इन च्यारिविभु द्रव्योंविषे कर्म रहता नहीं इति। कर्मके भेद—और सो उक्त कर्मपदार्थ उत्क्षेपण १, अवक्षेपण २, आकुंचन ३, प्रसारण ४, गमन ५ इस भेद करिकै पांच प्रकारका हीं होवै है। अब इन पांचोंके यथाक्रमतैं लक्षण कहे हैं।

उत्क्षेपणका लक्षण—तहां **ऊर्ध्वदेशसंयोगासमवायिकारणं कर्म उत्क्षेपणम्** । अर्थ यह—मूर्त्तद्रव्योंका जो ऊर्ध्वदेशके साथि संयोग होवै है ता ऊर्ध्वदेशसंयोगका असमवायिकारण जो कर्म है सो कर्म उत्क्षेपण, कह्या जावै है । अपक्षेपण । और **अधः संयोगासमवायिकारणं कर्म अपक्षेपणम्** । अर्थ यह—ता मूर्त्तद्रव्यका जो अधःदेशके साथि संयोग होवै है ता अधःसंयोगका असमवायिकारण जो कर्म है सो कर्म अपक्षेपण कह्या जावै है । जैसे धान्योंके तुषोंकी निवृत्ति करणे वास्तै यह पुरुष तिन धान्योंकूं ऊखलविषे पाइके आपणे हस्तविषे मुषलकूं लैके ता मुषलकूं ऊपरि उठाइके पुनः नीचै ऊखलविषे फेंके है । तहां ता मुषलके ऊपरि उठावणे करिकै ता मुषलका तथा ता हस्तका ऊर्ध्वदेशके साथि संयोग होवै है । तहां ता मुषलके ऊर्ध्वदेशसंयोगका तौ सो मुषलका कर्म असमवायिकारण होवै है । और ता हस्तके ऊर्ध्वदेशसंयोगका सो हस्तका कर्म असमवायिकारण होवै है । ऐसे ऊर्ध्वसंयोगके असमवायिकारणरूप ता मुषलके कर्मकूं तथा ता हस्तके कर्मकूं उत्क्षेपण कहे हैं । और सो पुरुष ता मुषलकूं जबी नीचै ऊखलविषे फेंके है तबी ता मुषलका तथा ता हस्तका अधःदेशके साथि संयोग होवै है । तहां ता मुषलके अधःसंयोगका तौ सो मुषलका कर्म असमवायिकारण होवै है । और ता हस्तके अधःसंयोगका सो हस्तका कर्म असमवायिकारण होवै है । ऐसे अधःसंयोगके असमवायिकारणरूप ता मुषलके कर्मकूं तथा ता हस्तके कर्मकूं अपक्षेपण कहे है । तहां प्रथम आत्माके संयोगतैं तथा प्रयत्नतैं ता हस्तविषे सो उत्क्षेपणरूप कर्म उत्पन्न होवै है । तहां ता हस्तनिष्ठ उत्क्षेपण नामा कर्मका सो हस्त तौ समवायिकारण होवै है और ता हस्तके साथि जो ता प्रयत्नवाले आत्माका संयोग है सो आत्मसंयोग ता उत्क्षेपणका असमवायिकारण होवै है । और सो आत्माका प्रयत्न निमित्तकारण होवै है । और ता मुषलविषे उत्पन्न भया जो उत्क्षेपणनामा कर्म है ता उत्क्षेपणका सो मुषल तौ समवायिकारण होवै है । और प्रयत्नवाले आत्माके संयोगवाला तथा उत्क्षेपणरूप कर्मवाला जो हस्त है ता हस्तका जो ता मुषलके साथि संयोग है सो हस्तमुषलसंयोग ता मुषलके उत्क्षेपणका असमवायिकारण होवै हैं । और सो आत्माका प्रयत्न तथा हस्तका उत्क्षेपण आदिक निमित्तकारण होवै हैं इति ।

आकुञ्चन—**अभिमुखदेशसंयोगासमवायिकारणं कर्म आकुञ्चनम्** । अर्थ यह—मूर्त्तद्रव्यका अभिमुख देशके साथि जो संयोग होवै है । ता संयोगका असमवायिकारणरूप जो ता मूर्त्तद्रव्यका कर्म है सो कर्म आकुंचन कह्या जावै है । जैसे शरीरके हस्तपादादिक अंगोंके संकोच करणेतैं तिन अंगोंका सन्निकृष्टदेशके साथि संयोग होवै है । ता संयोगका असमवायिकारण तिन हस्तपादादिक अंगोंका कर्म है । यातैं सो हस्तपादादिक अंगोंका कर्म आकुंचन कह्या जावै है इति । प्रसारण—**तिर्यक्संयोगासमवायिकारणं कर्म प्रसारणम्** । अर्थ यह—मूर्त्तद्रव्यका तिर्यक्‌देशके साथि जो संयोग होवै है, ता संयोगका असमवायिकारणरूप जो ता मूर्त्त-

द्रव्यका कर्म है सो कर्म प्रसारण कह्या जावै है । जैसे शरीरके संकुचित हस्तपादादिक अंगोंका पुनः प्रसारणेतैं तिन हस्तपादादिक अंगोंका विप्रकृष्टदेशके साथि संयोग होवै है । ता संयोगका असमवायिकारण सो हस्तपादादिक अंगोंका कर्म है यातैं सो अंगोंका कर्म प्रसारण कह्या जावै है इति । तहां ता आकुंचन कर्मका तथा प्रसारण कर्मका ते हस्तपादादिक अंग तौं समवायिकारण होवै हैं । और तिन हस्तपादादिक अंगोंके साथि जो प्रयत्नवाले आत्माका संयोग है सो आत्मसंयोग ता कर्मका असमवायिकारण होवै है । और सो आत्माका प्रयत्न तथा काल ईश्वरादिक निमित्तकारण होवै हैं इति । गमन—**अनियतोत्तरदेशसंयोगासमवायिकारणं कर्म गमनम्** । अर्थ यह— मूर्त्तद्रव्यका नियमतैं रहित जो उत्तरदेशके साथि संयोग होवै है । ता संयोगका असमवायिकारण जो ता मूर्त्तद्रव्यका कर्म है । सो कर्म गमन कह्या जावै है । तात्पर्य यह—पूर्व उक्त ऊर्ध्वदेशके तथा अधःदेशके तथा अभिमुख देशके तथा तिर्यक्‌देशके नियमतैं रहित जो केवल उत्तरदेशमात्रके साथि ता मूर्त्तद्रव्यका संयोग है । ता अनियत संयोगका असमवायिकारणरूप जो ता मूर्त्तद्रव्यका कर्म है सो कर्म गमन कह्या जावै है इति । तहां जैसे कर्मत्वजाति प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सिद्ध है तैसे ता कर्मत्वजातिके व्याप्य जे उत्क्षेपणत्व, अपक्षेपणत्व, आकुंचनत्व, प्रसारणत्व, गमनत्व यह पांच जातियां हैं । ते उत्क्षेपणत्वादिक पांच जातियां भी प्रत्यक्ष प्रमाण करिकै हीं सिद्ध हैं ।

**शंका**—सो पूर्व उक्त उत्क्षेपणादिक पांचप्रकारका हीं कर्म होवै है । या प्रकारकी प्रतिज्ञा संभवती नहीं । काहेतैं ? लोकविषे भ्रमण, रेचन, स्यंदन, ऊर्ध्वज्वलन, तिर्यक्‌गमन, नमन, उन्नमन इत्यादिक कर्मके भेद प्रतीत होवै हैं । **समाधान**—ते भ्रमणादिक सर्वकर्म ता गमनविषे हीं अंतर्भूत हैं ता गमनतैं पृथक् नहीं हैं यातैं तिन भ्रमणादिक कर्मोंकूं पृथक् कथन कऱ्या नहीं । **शंका**—तिन भ्रमणादिकोंका जो गमनविषे अन्तर्भाव मानोंगे तौं तिन उत्क्षेपणादिक च्यारोंका भी ता गमनविषे हीं अन्तर्भाव मान्या चाहिये । काहेतैं? ऊर्ध्वदेशविषे तथा अधोदेशविषे फेंकेहूए लोष्टादिकोंविषे 'ऊर्ध्वं गच्छति अधो गच्छति' या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है सा प्रतीति तिन लोष्टादिकोंके ता उत्क्षेपणविषे तथा अपक्षेपणविषे गमनत्व धर्मकूं हीं विषय करे है । यातैं तिन भ्रमणादिकोंकी न्याईं तिन उत्क्षेपणादिकोंकूं भी ता गमनके हीं अन्तर्भूत मान्या चाहिये । **समाधान**—यद्यपि उक्त रीतिसैं तिन उत्क्षेपणादिकोंका भी ता गमनविषे अन्तर्भाव होइ सकै है तथापि सर्वज्ञ महामुनि कणादादिकोंनैं सो उत्क्षेपणादिक पांचप्रकारका हीं कर्म कथन कऱ्या है यातैं सो पांचप्रकारका कर्म मान्या चाहिये । और तिन भ्रमणादिकोंका ता गमनविषे हीं अन्तर्भाव मान्या चाहिये इति ॥

कर्मकी अनित्यता तथा कारण—सो पूर्व उक्त सर्व प्रकारका कर्म उत्पत्तिविनाशवाला होणेतैं अनित्य हीं होवै है कोई भी कर्म नित्य होता नहीं । तहां जिस जिस मूर्त्तद्रव्यों विषे जो जो

कर्म उत्पन्न होवै है तिस तिस कर्मका सो सो मूर्त्तद्रव्य तौं समवायिकारण होवै है । और तिस तिस मूर्त्तद्रव्यके साथि जो दूसरे मूर्त्तद्रव्यका अभिघाताख्यसंयोग होवै है अथवा नोदनाख्यसंयोग होवै है सो संयोग ता कर्मका असमवायिकारण होवै है । जैसे कुठारादिकोंका अभिघाताख्य संयोग वंशादिकोंके कर्मका असमवायिकारण होवै है । और धनुषकी रज्जुका नोदनाख्यसंयोग बाणकी क्रियाका असमवायिकारण होवै है । और कहां तौं अमूर्त्तद्रव्यका संयोग भी ता मूर्त्तद्रव्यके कर्मका असमवायिकारण होवै है । जैसे प्रयत्नवाले आत्माका संयोग शरीरादिकोंके कर्मका असमवायिकारण होवै है, तथा प्रयत्नवाले ईश्वरका संयोग परमाणुवोंके कर्मका असमवायिकारण होवै है । और कहां गुरुत्व भी ता कर्मका असमवायिकारण होवै है । जैसे फलादिकोंके आद्यपतनरूप कर्मका सो फलादिकोंका गुरुत्व हीं असमवायिकारण होवै है । और कहां द्रवत्व भी ता कर्मका असमवायिकारण होवै है जैसे जलादिकोंके आद्यस्यंदनरूप कर्मका सो जलादिकोंका द्रवत्व हीं असमयिकारण होवै है । और कहां वेग भी ता कर्मका असमवायिकारण होवै है । जैसे द्वितीयादिक पतनोंका तथा द्वितीयादिक स्यंदनोंका सो वेग हीं असमवायिकारण होवै है । यह वार्त्ता पूर्व तृतीयपरिच्छेदविषे गुरुत्व द्रवत्व गुणत्वके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं इति ।

उत्पत्ति नाश तथा प्रत्यक्ष—और जिस मूर्त्तद्रव्यविषे सो कर्म उत्पन्न होवै है ता आश्रय द्रव्यके नाश करिकै भी सो कर्म नाश होई जावै है । और ता मूर्त्तद्रव्यके विद्यमान हूए भी ता मूर्त्तद्रव्यके उत्तरसंयोग करिकै भी सो कर्म नाश होई जावै है । और किसी स्थलविषे सो कर्म स्वजन्य वेग करिकै भी नाश होई जावै है । और सो पूर्वउक्त कर्म पदार्थ चक्षु, त्वक् इन दोनों इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है ॥ इति कर्म निरूपणम् समाप्तम् ॥

सामान्य पदार्थ ।

अब चतुर्थ सामान्य पदार्थका निरूपण करे हैं । तहां लक्षण--नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतं सामान्यम् । अर्थ यह—जो पदार्थ नित्य होवै है तथा अनेक व्यक्तियोंविषे समवायसंबंध करिकै रहे है सो पदार्थ सामान्य कह्या जावै है इसी सामान्यकूं न्याय शास्त्रविषे जाति भी कहे हैं । तहां द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंविषे रहणेहारी जा सत्ताजाति है सा सत्ताजाति उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य भी है, तथा द्रव्य गुणकर्मरूप अनेकव्यक्तियोंविषे समवेत भी है । ईहां समवायसंबंध करिकै रहणेहारी वस्तुका नाम समवेत है । इस प्रकार पृथिवीआदिक नवद्रव्योंविषे रहणेहारी द्रव्यत्वजाति भी नित्य भी है तथा ता नवद्रव्यरूप अनेकव्यक्तियोंविषे समवेत भी है । इस प्रकार रूपादिक चौवीसगुणोंविषे रहणेहारी गुणत्व जाति भी नित्य भी है तथा ता चौवीसगुणरूप अनेकव्यक्तियोंविषे समवेत भी है । इस प्रकार उत्क्षेपणादिक पांचकर्मोंविषे रहणेहारी कर्मत्वजाति भी नित्य भी है तथा ता उत्क्षेपणादि पंच कर्मरूप अनेकव्यक्तियोंविषे समवेत भी है । इस प्रकार सर्वपृथिवीवृत्ति पृथिवीत्वजाति तथा

सर्वजलवृत्ति जलत्वजाति तथा सर्वतेजवृत्ति तेजस्त्वजाति तथा सर्ववायुवृत्ति वायुत्वजाति। तथा सर्व आत्मवृत्ति आत्मत्वजाति तथा सर्वमनवृत्ति मनस्त्वजाति तथा रूपरसादिक चौवीसगुणोंके मध्यविषे यथाक्रमतैं प्रत्येक रूपरसादिक गुणाविषे वर्त्तणेहारीयां रूपत्व रसत्वादिक चौवीस जातियां तथा उत्क्षेपणादिक पंचकर्मोंके मध्यविषे यथाक्रमतैं प्रत्येक उत्क्षेपणादिक कर्मविषे वर्त्तणे हारीयां उत्क्षेपणत्वादिक पंचजातियां तथा घटपटादिकोंविषे यथाक्रमतैं वर्त्तणेहारीयां घटत्वपटत्वादिक जातियां इत्यादिक सर्वजातियां, उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य भी हैं तथा तिन उक्त पृथिवीआदिक अनेकव्यक्तियोंविषे समवेत भी हैं। यातैं सो पूर्व उक्त जातिरूप सामान्यका लक्षण तिन सत्ताद्रव्यत्वादिक सर्व जातियोंविषे संभवै है।

पदकृत्य—तहां 'अनेकसमवेतं सामान्यम्' इतनामात्र हीं जो ता सामान्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'नित्यत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं संयोगविषे तथा विभागविषे तथा द्वित्वादिक संख्याविषे तथा द्विपृथक्त्वआदिक पृथक्त्वविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, काहेतैं? एकतैं भिन्नका नाम अनेक है सो अनेकपणा दोतैं आदिलैके परार्द्ध पर्यंत सर्वविषे रहे है। यह वार्त्ता पूर्व तृतीयपरिच्छेदविषे संख्यागुणके निरूपणविषे कथन करि आये हैं। यातैं जैसे सो सामान्य अनेक व्यक्तियोंविषे समवेत होवै है तैसे सो संयोग तथा विभाग तथा द्वित्वादिक संख्या तथा द्विपृथक्त्व आदिक पृथक्त्व भी अनेकद्रव्यव्यक्तियोंविषे हीं समवेत होवै है। ता सामान्यके लक्षणकी तिन संयोगादिकोंविषे अतिव्याप्ति होवैंगी। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'नित्यत्वे सति' यह पद कथन कन्या है। तहां ते संयोग विभागादिक अनेकद्रव्यव्यक्तियोंविषे समवेतहूए भी नित्य नहीं हैं किंतु अनित्य हीं हैं। यातैं तिन संयोगादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'नित्यत्वे सति समवेतं सामान्यम्' इतनामात्र हीं जो ता सामान्यका लक्षण करते। ता लक्षणविषे 'अनेक' यह पद नहीं कथन करते तौं वक्ष्यमाण विशेषपदार्थविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? सो विशेष नित्य भी है तथा समवेत भी है। किंवा परमाणुआदिक नित्यद्रव्यवृत्ति जा एकत्व संख्या है। तथा परमाणुमनवृत्ति जो परमअणुत्व परिमाण है तथा आकाशादिविभुद्रव्यवृत्ति जो परममहत्त्वपरिमाण है ते एकत्वादिक तीनों नित्य भी हैं तथा समवेत भी है। तिन एकत्वादिकोंविषे भी ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अनेक' यह पद कथन कन्या है। तहां ते विशेष एकत्वादिक नित्यसमवेतहूए भी अनेकव्यक्तियोंविषे समवेत होते नहीं, किन्तु एकएक द्रव्यव्यक्तिविषे समवेत होवै हैं। यातैं तिन विशेष एकत्वादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'नित्यत्वे सत्यनेकवृत्ति सामान्यम्' इतनामात्र हीं जो ता सामान्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'समवेतम्' यह पद नहीं कथन करते तौं अत्यंताभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति

होती । काहेतैं ? घटादिकोंका अत्यंताभाव तिन घटादिकोंकूं छोडिकै सर्वत्र रहे है तथा सो अत्यंताभाव नित्य भी है । यातैं ता सामान्यकी न्यांई ता अत्यंताभावविषे भी सो नित्यपणा तथा अनेकअधिकरणोंविषे वृत्तिपणा रहे है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' समवेतम् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो अत्यंताभाव नित्य तथा अनेकवृत्ति हूआ भी तिन अनेकव्यक्तियोंविषे समवायसंबंध करिके रहता नहीं, किंतु स्वरूपसंबंध करिकै रहे है यातैं ता अत्यंताभावविषे ता सामान्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

दूसरा लक्षण—अथवा ता सामान्यका यह दूसरा लक्षण करणा । **निःसामान्यत्वे सति विशेषान्यत्वे च सति समवेतं सामान्यम्।** अर्थ यह—जो पदार्थ जातिरूपसामान्यतैं रहित होवै है तथा विशेषपार्थतैं भिन्न होवै है तथा समवेत होवै है सो पदार्थ सामान्य कह्या जावै है। तहां सामान्यविषे कोई सामान्य रहता नहीं । यातैं सो पूर्वउक्त सत्ताद्रव्यत्वादिरूप सामान्य जातिरूप सामान्यतैं रहित भी है तथा वक्ष्यमाणविशेष पदार्थतैं भिन्न भी है तथा समवेत भी है। यातैं ता सामान्यका यह उक्त द्वितीय लक्षण भी संभवै है । तहां पदकृत्य—' विशेषान्यत्वे सति समवेतं सामान्यम् ' इतनामात्र हीं जो ता सामान्यका लक्षण करते । ता लक्षणविषे ' निःसामान्यत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो गुणकर्म ता विशेषतैं भिन्न भी है तथा द्रव्यविषे समवेत भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणें वासतै ता लक्षणविषे ' निःसामान्यत्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो गुणकर्म सामान्यतैं रहित नहीं है, किंतु सत्तारूप सामान्यवाला तथा गुणत्वकर्मत्व रूप सामान्यवाला हीं है यातैं ता गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' निःसामान्यत्वे सति समवेतं सामान्यम् ' इतनामात्र हीं जो ता सामान्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' विशेषान्यत्वे च सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं विशेषपदार्थविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो विशेषपदार्थ ता जातिरूप सामान्यतैं रहित भी है तथा नित्यद्रव्योंविषे समवेत भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' विशेषान्यत्वे च सति ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो विशेष विशेषतैं भिन्न है नहीं, यातैं ता विशेषविषे ता लक्षणकी अतिव्याति होवै नहीं । किंवा ' निःसामान्यत्वे सति विशेषान्यं सामान्यम् ' इतनामात्र हीं जो ता सामान्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' समवेतम् ' यह पद नहीं कथन करते तौं समवायपदार्थविषे तथा अभावपदार्थविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? सो समवाय तथा अभाव ता जातिरूप सामान्यतैं रहित भी है तथा ता विशेषपदार्थतैं भिन्न भी हैं। ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' समवेतम् ' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो समवाय तथा अभाव आपणे अधिकरणविषे समवायसंबंध करिकै रहता नहीं किंतु स्वरूपसंबंध करिकै रहे है। यातैं ता समवाय अभावविषे ता सामान्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

सामान्यके रहणे तथा न रहणेके पदार्थ—इस प्रकारके उक्त दो लक्षणों करिकै लक्षित सो सामान्यपदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंविषे हीं समवायसंबंध करिके रहे हैं। सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन च्यारिपदार्थोंविषे सो जातिरूप सामान्य समवायसंबंध करिकै रहता नहीं। इसकी नित्यता—और सो जातिरूप सामान्य आकाशादिकोंकी न्यांई उत्पत्ति विनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हीं होवै है। कोई भी जाति अनित्य होती नहीं इति।

सामान्यके भेद—और सो सामान्यपदार्थ परसामान्य १, अपरसामान्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां परसामान्य—**अधिकदेशवृत्तित्वं परसामान्यत्वम्** अर्थ यह—जा जाति जिस जातिकी अपेक्षा करिकै अधिक देशविषे वृत्ति होवै है। सा जाति तिस जातिकी अपेक्षा करिकै परसामान्य कही जावै है। अपरसामान्य—**अल्पदेशवृत्तित्वं अपरसामान्यत्वम्।** अर्थ यह—जा जाति जिस जातिकी अपेक्षा करिकै अल्पदेशविषे वृत्ति होवै है सा जाति तिस जातिकी अपेक्षा करिकै अपरसामान्य कही जावै है। परापर सामान्यका रूप-तहां परसामान्य तौं व्यापक होवै है। और अपरसामान्य व्याप्य होवै है।

दोनोंकी संकल्पना—जैसे द्रव्य गुण कर्म इन तीन पदार्थोंविषे समवायसंबंध करिकै रहणेहारी सत्ताजाति है सा सत्ताजाति द्रव्यमात्रवृत्ति द्रव्यत्वजातिकी अपेक्षा करिकै तथा गुणमात्रवृत्ति गुणत्वजातिकी अपेक्षा करिकै तथा कर्ममात्रवृत्ति कर्मत्वजातिकी अपेक्षा करिकै ता द्रव्यगुणकर्मरूप अधिकदेशविषे वृत्ति है। यातैं सा सत्ताजाति परसामान्य कही जावै है। और ता सत्ताके द्रव्यगुणकर्मरूप देशकी अपेक्षा करिकै द्रव्यरूप न्यूनदेशविषे रहणेहारी जा द्रव्यत्वजाति है, तथा गुणरूप न्यूनदेशविषे रहणेहारी जा गुणत्वजाति है, तथा कर्मरूप न्यूनदेशविषे रहणेहारी जा कर्मत्वजाति है, सा द्रव्यत्वजाति तथा गुणत्वजाति तथा कर्मत्वजाति अपरसामान्य कही जावै है॥

अपेक्षाकृत परापरव्यवहार होणेपर भी सत्ताको परसामान्य विधान—यद्यपि सा द्रव्यत्वजाति भी पृथिवीत्व, जलत्वादिक जातियोंकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति होणेतैं परसामान्य हीं है। तथा सा गुणत्वजाति भी रूपत्व, रसत्वादिक जातियोंकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति होणेतैं परसामान्य हीं है। तथा सा कर्मत्वजाति भी उत्क्षेपणत्वादिक जातियोंकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति होणेतैं परसामान्य हीं है। यातैं सत्ताजाति हीं परसामान्य है या प्रकारकी प्रतिज्ञा सम्भवती नहीं, तथापि द्रव्यत्व गुणत्वादिक सर्वजातियोंकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति होणेतैं सा सत्ता हीं परसामान्य कही जावै है। और ता सत्तातैं भिन्न जितनीकी द्रव्यत्व, गुणत्वादिक, जातियां हैं ते द्रव्यत्व गुणत्वादिक जातियां पृथिवीत्व, रूपत्वादिक जातियोंकी अपेक्षा करिकै परसामान्यरूप हूई भी ता सत्ताकी अपेक्षा करिकै अपरसामान्यरूप हीं हैं। यातैं ता सत्तातैं भिन्न ते द्रव्यत्व गुणत्वादिक सर्वजातियां अपरसामान्य कही जावै हैं इति॥

अन्यके मतसैं सामान्यके भेद—और केईकग्रन्थकार—तौं सो जातिरूपसामान्य व्यापक १, व्याप्य २, व्याप्यव्यापक ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका माने हैं । व्यापक व्याप्यका अर्थ—तहां अधिकदेशवृत्ति जातिकूं व्यापक कहे हैं । और—न्यूनदेशवृत्ति जातिकूं व्याप्य कहे हैं ॥ सत्ताजातिको केवल व्यापकताका कथन—तहां द्रव्यगुणकर्मवृत्ति सत्ताजाति द्रव्यत्व गुणत्वादिक सर्वजातियोंकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति होणेतैं केवल व्यापक हीं कही जावै है । सा सत्ताजाति किसी भी जातिका व्याप्य होती नहीं ॥ व्याप्य व्यापक-दोनोंरूपोंहारी जातियां—द्रव्यमात्रवृत्ति द्रव्यत्व जाति ता सत्ताजातिकी अपेक्षा करिकै न्यूनदेशवृत्ति होणेतैं ता सत्ताजातिका तो व्याप्य कही जावै है । और पृथिवीमात्रवृत्ति पृथिवीत्व जातिकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति होणेतैं सा द्रव्यत्वजाति ता पृथिवीत्वजातिका व्यापक कही जावै है । तैसे जलत्व, तेजस्त्व, वायुत्व, आत्मत्व, मनस्त्व इन जातियोंका भी सा द्रव्यत्वजाति व्यापक कही जावै है और सा पृथिवीत्वजाति भी ता द्रव्यत्वजातिकी अपेक्षा करिकै न्यूनदेशवृत्ति होणेतैं ता द्रव्यत्वजातिका तौं व्याप्य कही जावै है ।और घटमात्रवृत्ति घटत्वजातिकी अपेक्षा करिकै तथा पटमात्रवृत्तिपटत्वजातिकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति होणेतैं सा पृथिवीत्वजाति तिन घटत्वपटत्वादिक जातियोंका व्यापक कही जावै है । केवल व्याप्य—और ते घटत्व पटत्वादिक जातियां किसी भी जातिकी अपेक्षा करिकै अधिकदेशवृत्ति हैं नहीं । यातैं ते घटत्वपटत्वादिक जातियां व्यापक कही जावै नहीं । किंतु ता पृथिवीत्व जातिका केवल व्याप्य कही जावै हैं । सारांश—यातैं यह सिद्ध भया । सा सत्ताजाति तौं केवल व्यापक है और सा द्रव्यत्वजाति तथा पृथिवीत्वजाति व्याप्य व्यापक है । और सा घटत्वादिक जाति केवल व्याप्य है । इस प्रकार गुणत्वजाति भी ता सत्ताजातिका तौं व्याप्य है और रूपत्व रसत्वादिक जातियोंका व्यापक हैं । तैसे ते रूपत्व रसत्वादिक जातियां भी ता गुणत्वजातिके तौं व्याप्य हैं और शुक्लत्व, नीलत्व, मधुरत्व, अम्लत्व आदिक जातियोंके व्यापक हैं । और ते शुक्लत्व, मधुरत्वादिक जातियां किसी भी जातिके व्यापक नहीं हैं । किंतु तिन रूपत्व रसत्वादिक जातियोंके केवल व्याप्य हीं है । यातैं ईहां भी सा सत्ताजाति तौं केवल व्यापक हीं है और ते गुणत्व, रूपत्व, रसत्व, आदिक जातियां व्याप्यव्यापक हैं । और ते शुक्लत्व, मधुरत्वादिक जातियां केवल व्याप्य हीं हैं । इस रीतिसैं दूसरी भी सर्वजातियोंविषे यथायोग्य व्याप्यव्यापकभाव जानिलेणा इति ॥

व्याप्य व्यापकभावकी व्यवस्था—परंतु तिन जातियोंके व्याप्यव्यापकभावकी यह व्यवस्था जानणी । जे जातियां किसी एक अधिकरणविषे परस्पर एकठी रहे हैं तिन जातियोंका हीं परस्पर व्याप्यव्यापक होवै है । जैसे घटविषे सत्ताजाति भी रहे है तथा द्रव्यत्वजाति भी रहे है तथा पृथिवीत्वजाति भी रहे है तथा घटत्वजाति भी रहे है । यातैं सत्ता द्रव्यत्व

पृथिवीत्व, घटत्व इन च्यारों जातियोंका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव होवै है । अर्थात् सत्ताका द्रव्यत्व व्याप्य होवै है, ता द्रव्यत्वका पृथिवीत्व व्याप्य होवै है; ता पृथिवीत्वका घटत्वव्याप्य होवै है। इस प्रकार शुक्लरूपविषे सत्ताजाति भी रहे है, तथा गुणत्वजाति भी रहे है, तथा रूपत्व-जाति भी रहे है, तथा शुक्लत्वजाति भी रहे है । यातैं सत्ता, गुणत्व, रूपत्व, शुक्लत्व इन च्यारों जातियोंका परस्पर व्याप्यव्याप्यकभाव होवै है। अर्थात् ता सत्ताका गुणत्व व्याप्य होवै है, ता गुणत्वका रूपत्व व्याप्य होवै है, ता रूपत्वका शुक्लत्व व्याप्य होवै है। इस प्रकार ता उत्क्षेपण-नामा कर्मविषे सत्ताजाति भी रहे है तथा कर्मत्वजाति भी रहे है । तथा उत्क्षेपणत्वजाति भी रहे है । यातैं सत्ता, कर्मत्व, उत्क्षेपणत्व इन तीनों जातियोंका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव होवै है । अर्थात् ता सत्ताका कर्मत्व व्याप्य होवै है । ता कर्मत्वका उत्क्षेपणत्व व्याप्य होवै है इति । और जे जातियां किसी एक अधिकरणविषे एकठी रहतीयां नहीं किन्तु भिन्नभिन्न अधि-करणविषे रहे हैं । तिन जातियोंका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव होता नहीं । जैसे द्रव्यत्वजाति केवल द्रव्यमात्रविषे हीं रहे है, गुणकर्मविषे रहती नहीं । और गुणत्वजाति केवल गुणमात्रविषे हीं रहे है द्रव्यकर्मविषे रहती नहीं। और कर्मत्वजाति केवल कर्ममात्रविषे हीं रहे है, द्रव्यगुण-विषे रहती नहीं । यातैं द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व इन तीनों जातियोंका परस्पर व्याप्यव्यापक भाव होता नहीं। तैसे पृथिवीजलादिक द्रव्योंविषे वर्त्तणेहारी पृथिवीत्व, जलत्वादिक जातियोंका भी परस्पर व्याप्यव्यापक भाव होता नहीं । तैसे रूपरसादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी रूपत्व, रसत्वादिक जातियोंका भी परस्पर व्याप्यव्यापकभाव होता नहीं । तैसे उत्क्षेपण अपक्षेपणा-दिक कर्मोंविषे वर्त्तणेहारी उत्क्षेपणत्व अपक्षेपणत्वादिक जातियोंका भी परस्पर व्याप्यव्यापक-भाव होता नहीं ।तैसे घटत्वपटत्वादिक जातियोंका भी परस्पर व्याप्यव्यापकभाव होता नहीं इति ।

सामान्यकी सिद्धि—यह पूर्व उक्त जातिरूप सामान्यका विभाग तबी सिद्ध होवै जबी प्रथम किसी प्रमाण करिकै ता सामान्यकी सिद्धि होवै । ता सामान्यकी सिद्धितैं विना सो विभाग संभवता नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता सामान्यके सिद्धिका प्रकार वर्णन करे हैं । तहां द्रव्य गुण कर्म इन तीनों पदार्थोविषे 'द्रव्यं सत्, गुणः सन्, कर्म सत्' या प्रकारकी सत् सत् रूप अनुगतप्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । ईहां नाना धर्मियोंविषे एकधर्म-प्रकारक एकाकार प्रतीतिका नाम अनुगत प्रतीति है । सा अनुगतप्रतीति किसी एक अनुगत विषयतैं विना संभवती नहीं । तहां ते द्रव्यगुणकर्म तीनों तौं परस्परविलक्षण होणेतैं ता अनु-गतप्रतीतिके कारण होइ सकते नहीं । परिशेषतैं तिन द्रव्य गुणकर्मतिनोंविषे कोई सत्तानामा अनुगतधर्म मान्या चाहिये । जिस सत्तारूप एक अनुगत धर्मकूं लैके सा उक्त अनुगत प्रतीति होवै है । यातैं ता द्रव्यगुणकर्मविषे सा सत्ताकार अनुगत प्रतीति हीं ता सत्ताजातिका साधक है । इस प्रकार परस्परविलक्षण पृथिवीजलादिक द्रव्योंविषे 'इदं द्रव्यम्, इदं द्रव्यम्'

या प्रकारकी अनुगतप्रतीति ता द्रव्यत्वजातिका साधक है । तैसे परस्परविलक्षण रूपरसादिक गुणोंविषे 'अयं गुणः, अयं गुणः' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति ता गुणत्वजातिका साधक है । तैसे परस्परविलक्षण उत्क्षेपण अपक्षेपणादिक कर्मोंविषे 'इदं कर्म इदं कर्म' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति ता कर्मत्वजातिका साधक है । तैसे परस्परविलक्षण घटपटादिक पृथिवीविषे 'इयं पृथिवी, इयं पृथिवी' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति ता पृथिवीत्व जातिका साधक है । तैसे परस्परविलक्षण शुक्लनीलादिक रूपोंविषे 'इदं रूपम्, इदं रूपं' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति ता रूपत्व जातिका साधक है । तैसे परस्परविलक्षण अनेक घटोंविषे 'अयं घटः, अयं घट' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति ता घटत्वजातिका साधक है । इस प्रकार रसत्व, गंधत्व, पटत्व, गोत्व इत्यादिक जातियोंकी भी यथायोग्य ता अनुगतप्रतीतितैं सिद्धि जानिलेणी इति ।

भूतत्वादिकोंविषे जातिरूपताकी शंका—ता अनुगतप्रतीतिकूं जो जातिका साधक मानोंगे तौं पृथिवी जल, तेज वायु, आकाश इन पांचोंविषे 'अयं भूतः, अयं भूतः' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । यातैं तिन पांचोंविषे ता अनुगतप्रतीतितैं भूतत्व जातिकी भी सिद्धि होणी चाहिये । तथा पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांचोंविषे 'अयं मूर्त्तः, अयं मूर्त्त' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति सर्व लोकोंकू होवै है । यातैं तिन पांचोंविषे ता अनुगत प्रतीतितैं मूर्त्तत्व जातिकी भी सिद्धि होणी चाहिये ।

जातिबाधक दोषसे समाधान—ता अनुगतप्रतीतितैं ता भूतत्व मूर्त्तत्व धर्मके सिद्धहूए भी ता भूतत्व मूर्त्तत्व धर्मविषे जातिरूपता सिद्ध होती नही । काहेतैं ? ता अनुगतप्रतीतितैं सिद्धहूए जिस धर्मके जातिपणेका बाधक कोई दोष नहीं होवै है तिस धर्मकी हीं ता अनुगत प्रतीतितैं जातिरूप करिकै सिद्धि होवै है । और ता जातिबाधक दोषके विद्यमानहूए ता धर्मकी जातिरूपतैं सिद्धि होती नहीं ।

उदयनाचार्यके कहे जातिबाधक दोष—ते जातिबाधकदोष उदयनाचार्यनैं द्रव्यकिरणावलीनामा ग्रंथविषे कथन कऱ्ये हैं । तहां श्लोक—**व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं संकरोऽथानवस्थितिः । रूपहानिरसंबन्धो जातिबाधकसंग्रहः ।** अर्थ यह—व्यक्तिका अभेद १, तुल्यत्व २, संकर ३, अनवस्था ४, रूपहानि ५, असंबंध ६ यह षट्दोष जातिके बाधक होवै हैं । अब यथाक्रमतैं तिनोंके लक्षण तथा उदाहरण वर्णन करे हैं ।

व्यक्तिका अभेद—तहां आकाश, काल, दिशा इन तीन द्रव्योंविषे यथाक्रमतैं रहणेहारे जे आकाशत्व, कालत्व, दिकृत्व यह तीन धर्म है तिन तीनों धर्मोंके जातिपणेका व्यक्ति अभेददोष बाधक होवै है । तहां लक्षण—**स्वाश्रयनिष्ठस्वाश्रयप्रतियोगिकभेदाभावः व्यक्त्यभेदः ।** अर्थ यह—इस लक्षणविषे दोनों स्वशब्दों करिकै ता आकाशत्वादिक धर्मका ग्रहण करणा । तहां आकाश, काल, दिशा यह तीनों द्रव्य नाना होते नहीं किंतु एकएक व्यक्तिरूप होवै हैं ।

यह वार्ता पूर्वद्वितीयपरिच्छेदविषे तिन आकाशादिकोंके निरूपणविषे कथन करि आये हैं । यातैं आकाशविषे तौं आकाशका भेद नहीं रहता । और कालविषे कालका भेद नहीं रहता । और दिशाविषे दिशाका भेद नहीं रहता । ते आकाश काल दिशा जो नाना होवैं तौं एक आकाशविषे दूसरे आकाशका भेद रहै । तथा एककालविषे दूसरे कालका भेद रहै । तथा एकदिशाविषे दूसरी दिशाका भेद रहै। परंतु ते आकाशकालदिशा नाना नहीं हैं । यातैं ता आकाशत्व कालत्व दिक्त्व धर्मविषे स्वआश्रयनिष्ठ स्वआश्रय प्रतियोगिक भेदका अभाव हीं है । याका नाम व्यक्ति अभेद है, सो व्यक्ति अभेद दोष हीं ता आकाशत्व कालत्व दिक्त्व धर्मके जातिपणेका बाधक है । तात्पर्य यह—नाना धर्मियोंविषे एकधर्मप्रकारक जा अनुगतबुद्धि है सा अनुगतबुद्धि हीं ता जातिका साधक होवै है । सा अनुगतप्रतीति ता आकाशादिक एक व्यक्तिविषे संभवती नहीं । यातैं ता आकाशत्व कालत्व दिक्त्वविषे जातिरूपता सिद्ध होवै नहीं इति ।

तुल्यत्व—और परस्परविलक्षण अनेक घटोंविषे ‘ अयं घटः अयं घट ’ या प्रकारकी भी अनुगतप्रतीति होवै है । तथा तिन अनेकघटोंविषे ‘ अयं कलशः अयं कलशः ’ या प्रकारकी भी अनुगतप्रतीति होवै है । यातैं ता दोनों प्रकारकी अनुगतप्रतीतितैं तिन घटोंविषे घटत्व कलशत्व यह दोनों धर्म सिद्ध होवै हैं । परंतु ते दोनों धर्म जातिरूप नहीं हैं । किंतु एकघटत्वधर्म हीं जातिरूप है । और ता कलशत्वधर्मके जातिपणेका तौं तुल्यत्वदोष बाधक है यातैं ता अनुगतप्रतीतितैं ता कलशत्वधर्मकी जातिरूपतैं सिद्धि होवै नहीं ।

तहां लक्षण—**स्वभिन्नजातिसमनियतत्वं तुल्यत्वम्** । ईहां स्वशब्द करिकै ता कलशत्वका ग्रहण करणा । ता कलशत्वतैं भिन्न जा घटत्वजाति है ता घटत्वजातिका समनियतपणा ता कलशत्व धर्मविषे है । तहां जितनी घटव्यक्तियोंविषे सा घटत्वजाति रहे है । तितनी घटव्यक्ति विषे सो कलशत्व धर्म रहे है । यह हीं ता कलशत्व धर्मविषे ता घटत्वजातिका सम नियतपणा है याका नाम तुल्यत्व है, सो तुल्यत्व दोष हीं ता कलशत्व धर्मके जातिपणेका बाधक है इति ॥

सङ्करदोष—और भूतत्व, मूर्त्तत्व आदिकोंके जातिपणेका संकरदोष बाधक होवै है । तहां लक्षण—**परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणयोर्धर्मयोरेकत्र समावेशः सङ्करः** । अर्थ यह—परस्पर अत्यंताभावके साथि समान अधिकरणवाले जे दो धर्म हैं तिन दोनों धर्मोंका जो एक अधिकरणविषे वृत्तिपणा है ताका नाम संकर है । जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पांच द्रव्योंविषे भूतत्व धर्म रहे है । और पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच द्रव्यों विषे मूर्त्तत्वधर्म रहे है । तहां मनविषे ता भूतत्वधर्मका अत्यन्ताभाव रहे है । और ता मन विषे सो मूर्त्तत्व धर्म रहे है यातैं सो मूर्त्तत्वधर्म ता भूतत्वधर्मके अत्यंताभावके साथि समान

अधिकरणवाला है और आकाशविषे ता मूर्त्तत्वधर्मका अत्यन्ताभाव रहे है। और ता आकाशविषे सो भूतत्वधर्म रहे है। यातैं सो भूतत्वधर्म भी ता मूर्त्तत्वधर्मके अत्यन्ताभावके साथि समान अधिकरणवाला है। इस प्रकार परस्परअत्यन्ताभावके साथि समानअधिकरणवाले जे भूतत्व मूर्त्तत्व दोनों धर्म हैं ते दोनों धर्म पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारों द्रव्योंविषे रहे है। याका नाम संकरदोष है सो संकरदोष हीं ता भूतत्व मूर्त्तत्वधर्मके जातिपणेका बाधक है। अर्थात् ते भूतत्व मूर्त्तत्व दोनों धर्म जातिरूप नहीं हैं। इस प्रकार शरीरत्व, इंद्रियत्व, आदिक धर्मोंके जातिपणेका भी सो संकर दोष हीं बाधक होवै है। तहां शरीरत्व धर्मके अत्यंताभाववाले घटादिकोंविषे पृथिवीत्व धर्म रहे है और ता पृथिवीत्व धर्मके अत्यन्ताभाववाले जलीय शरीरविषे सो शरीरत्व धर्म रहे है। इस प्रकारतैं परस्पर अत्यन्ताभावके साथि समानअधिकरणवाले जे शरीरत्व पृथिवीत्व दोनो धर्म हैं ते दोनों धर्म मनुष्यादिक पार्थिव शरीर विषे रहे हैं यातैं ता शरीरत्व धर्मके जातिपणेका सो संकरदोष हीं बाधक है। इस प्रकार इंद्रियत्व धर्मके अत्यन्ताभाववाले घटादिकोंविषे पृथिवीत्व धर्म रहे है। और ता पृथिवीत्व धर्मके अत्यन्ताभाववाले जलीयरसनइंद्रियविषे सो इंद्रियत्वधर्म रहे है इस रीतिसैं ते इंद्रियत्व पृथिवीत्व दोनों धर्म परस्पर अत्यन्ताभावके साथि समानअधिकरणवाले है। और घ्राणइंद्रियविषे ते इंद्रियत्व पृथिवीत्व दोनों धर्म रहे हैं। यातैं ता इंद्रियत्व धर्मके जातिपणेका भी सो संकरदोष हीं बाधक होवै है। इस प्रकार जलत्व, तेजस्त्व, वायुत्व इन तीन जातियोंके साथि भी ता शरीरत्व इंद्रियत्व धर्मका संकर जानीलेणा॥

शंका–सो संकरदोष जैसे शरीरत्व इंद्रियत्व धर्मके जातिपणेका बाधक होवै है तैसे तिन पृथिवीत्व जलत्वादिकोंके भी जातिपणेका बाधक क्यूं नहीं होता? समाधान–जिन दो धर्मोंका जो संकर होवै है सो संकर नियमपूर्वक तिन दोनों धर्मोंके हीं जातिपणेका बाधक होता नहीं, किंतु कहां तौं सो संकरदोष तिन दोनों धर्मोंके जातिपणेका बाधक होवै है। और कहां एक धर्ममात्रके जातिपणेका बाधक होवै है। तहां पृथिवीत्व, जलत्व, तेजस्त्व, वायुत्व इन च्यारों जातियोंकी सिद्धि पूर्व द्वितीयपरिच्छेदविषे तिस तिस पृथिवी आदिक द्रव्यके निरूपणविषे करि आये हैं। यातैं सो संकरदोष तिन पृथिवीत्वादिकोंके जातिपणेका बाधक होता नहीं, किंतु ता शरीरत्व इंद्रियत्व धर्मके हीं जातिपणेका बाधक होवै है। या कारणतैं हीं केई कग्रंथकार ता भूतत्व मूर्त्तत्वके संकर स्थलविषे भी ता संकर दोषकूं केवल भूतत्व धर्मके हीं जातिपणेका बाधक माने हैं ता मूर्त्तत्वधर्मके जातिपणेका बाधक मानतैं नहीं, किंतु सो मूर्त्तत्व धर्म तौं ता मूर्त्तद्रव्यवृत्ति क्रियाकी समवायिकारणताका अवच्छेदकरूप करिकै जातिरूप हीं सिद्ध होवै है। और नवीन नैयायिक तौं ता संकरदोषकूं किसी भी जातिका बाधक मानते नहीं इति॥

अनवस्था दोष—और पूर्वकथन करीजे सत्ता, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, पृथिवीत्व, जलत्व, रूपत्व, रसत्व, घटत्व, पटत्व इत्यादिक जातिरूप सामान्य हैं। तिन सर्वसामान्योंविषे रह्या हूआ जो एक सामान्यत्व धर्म है। जिस सामान्यत्वधर्मकूं जातित्व धर्म कहे हैं। ता सामान्यत्व धर्मके जातिपणेका अनवस्था दोष हीं बाधक होवै है। काहेतैं? ता सामान्यत्व धर्मकूं जो जातिरूप मानिये तौं जैसे तिन सत्ता द्रव्यत्वादिक जातियोंविषे सा सामान्यत्वरूप जाति अंगीकार करी है तैसे ता सामान्यत्वरूप जातिविषे भी कोई जाति अवश्य अंगीकार करणी होवैंगी। यद्यपि ता सामान्यत्वरूप एकव्यक्तिविषे वर्त्तणे हारे धर्मकूं आकाशत्वादिकोंकी न्यांई जातिरूपता संभवती नहीं तथापि ता सामान्यत्वरूप जातिकूं तथा ताके आश्रयभूत सत्ताद्रव्यत्वादिक जातियोंकूं मिलाइकै तिन सर्वोंविषे एक दूसरी जाति अंगीकार करणी होवैंगी। इस प्रकार ता दूसरी जातिकूं तथा ताके आश्रयभूत सर्व जातियोंकूं मिलाइकै तिन सर्वजातियोंविषे एक तीसरी जाति अंगीकार करणी होवैंगी। इस प्रकार चतुर्थपंचमादिक जातियोंके अंगीकार करणेतै अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी। सो अनवस्थादोष हीं ता सामान्यत्वके जातिपणेका बाधक है। यातैं सत्ता द्रव्यत्वादिक सर्वजातियोंविषे रहणेहारा सो सामान्यत्वधर्म जातिरूप नहीं है इति ॥

रूपहानि दोष—और परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रहेहूए जे विशेष हैं तिन सर्वविशेषोंविषे रह्याहूआ जो विशेषत्व धर्म है ता विशेषत्व धर्मके जातिपणेका रूपहानि दोष बाधक होवै है। ईहां रूप शब्द करिकै असाधारणधर्मरूप लक्षणका ग्रहण करणा ता लक्षणकी जा हानि है ताका नाम रूपहानि है। सा रूपहानि हीं ता विशेषत्व धर्मके जातिपणेका बाधक है। इसमें विशेषका उदाहरण—तहां 'निःसामान्यत्वे सत्येकमात्रसमवेतः विशेषः' अर्थ यह—जो पदार्थ जातिरूप सामान्यतैं रहित हूआ एक द्रव्य व्यक्तिमात्रविषे समवेत होवै है सो पदार्थ विशेष कह्या जावै है। या प्रकारका ता विशेषपदार्थका लक्षण आगे कथन करणा है। सो विशेषका लक्षण तबी संभवै जबी ता विशेषकूं जातिरूप सामान्यतैं रहित मानिये। और ता विशेषविषे जो कोई जाति अंगीकार करिये तौं ता लक्षणकी हीं हानि होवैंगी। अथवा 'स्वतो व्यावर्त्तकः विशेषः' अर्थ यह—जो पदार्थ आपणे आश्रयभूत नित्य द्रव्यकूं दूसरे नित्यद्रव्यतैं आपणे स्वरूप करिकै हीं भिन्न करे है सो पदार्थ विशेष कह्या जावै है। या प्रकारका विशेषका लक्षण आगे कथन करणा है। ता लक्षणकी हीं हानि होवैंगी। जो विशेषविषे कोई जाति अंगीकार करिये। काहेतैं? जो पदार्थ जातिका आश्रय होवै है सो पदार्थ ता जातिविशिष्टरूप करिकै हीं स्वाश्रयनिष्ठ इतरपदार्थके भेदका साधक होवै है। ता जातितैं विना केवलस्वरूपतैं ता भेदका साधक होता नहीं। जैसे गंधत्वादिक जातिवाले गंधादिक ता गंधत्वादिक जातिविशिष्टरूप करिकै हीं स्वाश्रयभूत पृथिवी आदिकों

विषे जलादिक इतरपदार्थोंके भेदका साधक होवै है । तैसे सो विशेष भी ता जातिमत्स्वरूप करिकै हीं ता इतरभेदका साधक होवैंगा । स्वरूपतैं ता इतरभेदका साधक होवैंगा नहीं । ता करिकै ता स्वतःव्यावर्त्तकत्वरूप लक्षणकी हीं हानि होवैंगी । इस प्रकारतैं ता स्वतोव्यावर्त्त-कत्वरूप लक्षणकी जा हानि है सा रूपहानि हीं ता विशेषत्व धर्मके जातिपणेका बाधक है । अथवा ता रूप शब्द करिकै ता विशेषके स्वरूपका ही ग्रहण करणा । सा विशेषके स्वरू-पकी हानि हीं ता विशेषत्व धर्मके जातिपणेका बाधक है । सो दिखावै हैं—ते विशेष जो कदाचित् परमाणु मनरूप मूर्त्तद्रव्योंविषे वृत्तिहूए जातिवाले होवैंगे तौं ते विशेष गुणरूप होवैंगे वा कर्मरूप होवैंगे । जिस कारणतैं ता मूर्त्तद्रव्यविषे वृत्ति तथा जातिवाला सो गुणकर्म हीं होवै है । और ते विशेष जो कदाचित् आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे वृत्तिहूए जाति-वाले होवैंगे तौं ते विशेष केवल गुणरूप हीं होवैंगें । जिस कारणतैं विभुद्रव्योंविषे वृत्ति तथा जातिवाला गुण हीं होवै है । इस प्रकारतैं ता विशेषविषे कोई जातिके अंगीकार कयिहूए ता विशेषके स्वरूपकी हीं हानि होवैंगी । यातैं सो उक्त रूपहानि दोष हीं ता विशेषत्वधर्मके जातिपणेका बाधक है इति ॥

सम्बन्ध दोष—और समवायविषे रह्या हूआ जो समवायत्व धर्म है । तथा अभावविषे रह्या हूआ जो अभावत्व धर्म है । ता समवायत्व अभावत्व धर्मके जातिपणेका असम्बन्ध-दोष हीं बाधक होवै है । तहां लक्षण—प्रतियोगितानुयोगितान्यतरसम्बन्धेन समवाया-भावः असम्बन्धः । अर्थ यह—प्रतियोगितासम्बन्ध करिकै तथा अनुयोगितासम्बन्ध करिकै जो समवायका अभाव है ताका नाम असंबंध है । तहां पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे गुण तथा कर्म समवायसम्बंध करिकै रहे है । ता गुणकर्मके समवायका ते गुणकर्म तौं प्रतियोगी होवै हैं और ते पृथिवी आदिक द्रव्य अनुयोगी होवै है । यातैं सो गुणकर्मका समवाय प्रतियोगितासम्बन्ध करिकै तौं ता गुणकर्मविषे रहे है और अनुयोगितासम्बन्ध करिकै तिन पृथिवीआदिक द्रव्योंविषे रहे है । इस प्रकार द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों पदार्थों-विषे जातिरूप सामान्य समवायसम्बन्ध करिकै रहे है, ता सामान्यके समवायका सो सामान्य तौं प्रतियोगी होवै है । और ते द्रव्यगुणकर्म अनुयोगी होवै हैं । यातैं सो सामान्यका समवाय भी प्रतियोगिता सम्बन्ध करिकै तौं ता सामान्यविषे रहे है और अनुयोगितासम्बन्ध करिकै ता द्रव्यगुणकर्मविषे रहे है । इस प्रकार परमाणु आकाशादिक नित्य द्रव्योंविषे समवायसम्बन्ध करिकै रह्येहूए जे विशेष हैं तिन विशेषोंका समवाय भी प्रतियोगिता सम्बन्ध करिकै तौं तिन विशेषोंविषे रहे है और अनुयोगितासम्बन्ध करिकै तिन नित्य द्रव्योंविषे रहे है । इस प्रकार तंतुआदिक अवयवोंविषे समवायसम्बन्ध करिकै रह्ये हूए जे पटादिक अवयवी हैं तिन पटादिक अवयवीयोंका समवाय भी प्रतियोगितासम्बन्ध करिकै तौं तिन पटादिक अवयवीयों-

विषे रहे है और अनुयोगितासंबंध करिकै तिन तंतुआदिक अवयवोंविषे रहे है । इस रीतिसैं द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष इन पांच पदार्थोंविषे सो समवाय प्रतियोगितासम्बन्ध करिकै वा अनुयोगितासम्बन्ध करिकै अवश्य रहे है । ताके विषे भी इतनी विशेषता है । सामान्य विशेष इन दो पदार्थोंविषे कोई भी पदार्थ समवायसंबंध करिकै रहता नहीं । यातैं ता सामान्यविशेषविषे तौं सो समवाय केवल प्रतियोगितासंबंध करिकै हीं रहे है अनुयोगितासंबंध करिकै रहता नहीं और परमाणुआकाशादिक नित्यद्रव्य किसी भी पदार्थविषे समवायसम्बन्ध करिकै रहते नहीं । यातैं तिन नित्यद्रव्योंविषे तौं सो समवाय केवल अनुयोगितासंबंध करिकै हीं रहे है । प्रतियोगितासंबंध करिकै रहता नहीं और सामान्य विशेष नित्यद्रव्य इन तीनोंतैं भिन्न द्रव्य, गुण, कर्म विषे तौं सो समवाय प्रतियोगितासम्बन्ध करिकै भी रहे है तथा अनुयोगितासम्बन्ध करिकै भी रहे है । और समवाय, अभाव यह दोनों पदार्थ आप किसी पदार्थविषे समवायसम्बन्ध करिकै रहते नहीं तथा ता समवाय अभावविषे कोई दूसरा पदार्थ भी समवायसंबंध करिकै रहता नहीं । यातैं ते समवाय अभाव दोनों ता समवायके प्रतियोगी भी नहीं हैं तथा अनुयोगी भी नहीं हैं । यातैं ता समवायविषे तथा अभावविषे सो समवाय प्रतियोगितासंबंध करिकै भी रहता नहीं तथा अनुयोगितासंबंध करिकै भी रहता नहीं । इस रीतिसैं ता समवाय अभावविषे प्रतियोगितासंबंध करिकै तथा अनुयोगितासंबंध करिकै जो समवायका अभाव है ताका नाम असंबंध है सो असंबंध दोष हीं ता समवायत्वके तथा अभावत्वके जातिपणेका बाधक है । यद्यपि जिस मतविषे सो समवाय एक है तिस मतविषे सो पूर्वउक्त व्यक्तिका अभेद हीं आकाशत्वादिकोंकी न्यांई ता समवायत्वके जातिपणेका बाधक है तथापि जिस मतविषे ते समवाय नाना हैं तिस मतविषे सो असंबन्धदोष हीं ता समवायत्वके जातिपणेका बाधक है इति ॥

एक व्यक्तिवृत्ति धर्मोंके विषे शङ्का—आकाशत्व, कालत्व, दिक्त्व, भूतत्व, शरीरत्व, इंद्रियत्व, सामान्यत्व, विशेषत्व, समवायत्व, अभावत्व इत्यादिक धर्म जो जातिरूप नहीं हैं तौं, ते आकाशत्वादिक धर्म क्या रूप हैं ? । उपाधिरूप मानकर समाधान—ते आकाशत्वादिक धर्म उपाधिरूप हीं हैं । यद्यपि धर्ममात्रका नाम उपाधि होणेतैं ते द्रव्यत्वादिक जातियां भी उपाधिरूप हीं हैं । या कारणतैं हीं पूर्व बहुतस्थलविषे द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व इन तीनों जातियोंकूं पदार्थ विभाजक उपाधिरूप करिकै कथन कऱ्या है तथा पृथिवीत्व जलत्वादिक जातियोंकूं द्रव्यविभाजक उपाधिरूप करिकै कथन कऱ्या है । तथा रूपत्व रसत्वादिक जातियोंकूं गुणविभाजक उपाधिरूप करिकै कथन कऱ्या है ।

यहां उपाधिका तात्पर्य—तथापि ईहां उपाधि शब्द करिकै जातितैं भिन्न धर्मका ग्रहण करणा। उपाधिके भेद—सो उपाधि भी सखण्ड उपाधि १, अखण्डउपाधि२ इस भेद करिकै दो प्रकारका

होवै है । तहां सखण्डोपाधि—बहुपदार्थघटितो धर्मः सखण्डोपाधिः । अर्थ यह—जो धर्म बहुत पदार्थों करिकै घटित होवै है सो धर्म सखंड उपाधि कह्या जावै है । जैसे आकाशविषे जो शब्द गुणका समवायिकारणत्व है सोई हीं आकाशत्व है सो आकाशत्व शब्द समवायिकारणत्व इन बहुत पदार्थों करिकै घटित है । यातैं सो आकाशत्व सखण्डउपाधि कह्या जावै है । तैसे अंत्यावयवित्वविशिष्ट चेष्टाऽऽश्रयत्वका नाम शरीरत्व है, सो शरीरत्व भी अंत्यअवयवि चेष्टा इत्यादिक बहुत पदार्थों करिकै घटित होणेतैं सखंड उपाधि कह्या जावै है । इस प्रकार पूर्व कथन कऱ्ये हूए शिष्टत्व, इंद्रियत्व, विषयत्व, कालत्व, दिक्त्व, सामान्यत्व इत्यादिक सर्वधर्म सखंडउपाधिरूप हीं जानणे तथा आगे वक्ष्यमाण, विशेषत्व, समवायत्व, अभावत्व, भावत्व, कारणत्व इत्यादि सर्व धर्म भी सखंड उपाधिरूप हीं जानणे । और सो सखंड उपाधिरूप धर्म जिस जिस द्रव्यगुणादिरूप पदार्थ करिकै घटित होवै है तिस तिस पदार्थविषे हीं ता सखंडउपाधिका अंतर्भाव होवै है । तिन द्रव्यगुणादिक पदार्थोंतैं सो सखंड उपाधि अतिरिक्त होता नहीं इति । अखण्डोपाधि—तहां अनिर्वचनीयो धर्मः अखण्डोपाधिः । अर्थ यह—जिस धर्मका किसी प्रकार करिकै भी निर्वचन नहीं होइ सके है सो धर्म अखंड उपाधि कह्या जावै है । जैसे प्रतियोगित्व, अनुयोगित्व आदिक धर्म हैं सो अखंडउपाधिरूप धर्म अतिरिक्त हीं होवै है अर्थात् तिन द्रव्यादिक पदार्थोंविषे अंतर्भूत होता नहीं इति ।

सामान्यका ग्रहण—सो यह पूर्वउक्त जातिरूप सामान्यपदार्थ घ्राण, रसन, चक्षु, त्वक्,श्रोत्र, मन इन षट् इंद्रियों करिकै हीं ग्रहण कऱ्या जावै है अर्थात् जिस जिस इंद्रिय करिकै जिस जिस द्रव्यका तथा जिस जिस गुणका तथा जिस जिस कर्मका प्रत्यक्ष होवै है तिस तिस इंद्रिय करिकै तिस तिस द्रव्यनिष्ठ जातिका तथा तिस तिस गुणनिष्ठ जातिका तथा तिस तिस कर्मनिष्ठ जातिका प्रत्यक्षज्ञान होवै है । सा सर्वव्यवस्था आगे षष्ठे परिच्छेदविषे प्रत्यक्षनिरूपणविषे स्पष्ट करिकै वर्णन करैंगे इति ।

समान्यपर नवीननैयायिक—तौं यह कहे हैं । सत् सत् या प्रकारकी अनुगतप्रतीतिका विषय सत्तानामा जाति नहीं है । किंतु द्रव्यादिक षट्पदार्थोंविषे रह्या जो भावत्वधर्म है सो भावत्वधर्म हीं ता प्रतीतिका विषय है या कारणतैं हीं सामान्यादिकोंविषे ता सत्ताजातिके अभावहूए भी 'सामान्यं सत्' या प्रकारका सत्व्यवहार होवै है । **शंका**—ता भावत्वधर्मकूं जो ता सत्प्रतीतिका विषय मानोंगे तौं अभावविषे ता भावत्व धर्मका अभाव होणेतैं सा सत्प्रतीति नहीं होणी चाहिये । और ता अभावविषे भी 'भूतले घटाभावोऽस्ति' या प्रकारका सत्व्यवहार तौं होवै है । समाधान—ता अभावविषे भी जो सत्व्यवहार होता होवै तौं भी कालका संबंधरूप सत्त्व हीं ता सत्प्रतीतिका विषय है सो कालका संबंधरूप सत्त्व तिन द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंविषे हीं विद्यमान है यातैं भी ता सत्ताजातिकी सिद्धि होती नहीं । यातैं पर अपर भेद करिकै दो

प्रकारका सामान्य होवै है तहां सत्ता परसामान्य होवै है द्रव्यत्वादिक अपरसामान्य होवै हैं । या प्रकारका नैशेषिकशास्त्रका विभाग अनुपपन्न है इति ॥

जातिकूं अतद्व्यावृत्तिरूप माणनेहारे बौद्ध—ईहां बौद्धमतवाले यह कहे हैं 'अयं घटः अयं घटः' या प्रकारकी अनुगतप्रतीति ता घटत्वजातिरूप सामान्यकूं विषय करती नहीं किंतु, सा अनुगत-प्रतीति अतत्व्यावृत्तिकूं हीं विषय करे है । तहां घटतैं भिन्न जितनैंकी पटादिक पदार्थ हैं तिन पटादिक सर्वपदार्थोंका नाम अतत् है ता अतत्का जो ता घटविषे भेद है ताका नाम अतत्व्यावृत्ति है अर्थात् घटतैं भिन्न सर्वपदार्थोंका जो ता घटनिष्ठ भेद है ताका नाम अतत् व्यावृत्ति है । और सो भेदरूप अभाव तुच्छ होणेतैं आपणे आश्रयतैं अतिरिक्त होता नहीं । यातैं सा अभावरूप अघटव्यावृत्ति ता घटव्यक्तिरूप हीं हैं । इस प्रकार पृथिवीत्व, जलत्व, गोत्व, पटत्व आदिक भी अतत्व्यावृत्तिरूप होणेतैं तिस तिस पृथिवी आदिक व्यक्तियोंतैं अतिरिक्त नहीं हैं, किंवा जे नैयायिक घटादिक व्यक्तियोंतैं भिन्न भावरूप घटत्वादिक जातियोंकूं अंगीकार करे हैं तिन नैयायिकोंतैं यह पूछा चाहिये सा घटत्वजाति घटविषे वर्ते है अथवा अघटविषे वर्ते है ? तहां प्रथमपक्ष जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं । काहेतैं ? ता घटत्वजातिके वर्त्तणेतैं पूर्व ता घटका हीं अभाव है । और द्वितीयपक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? ता घटतैं भिन्न पटादिकोंका नाम अघट है । तिन पटादिकोंविषे भी जो सा घटत्वजाति वर्त्तती होवै तौं तिन पटादिकोंविषे भी सो घटव्यवहार होणा चाहिये सो होता नहीं । किंवा उत्पन्नहूए घटविषे सा घटत्वजाति कहां-तैं आइके वर्त्ते है । जो कहो ता घटके समवायिकारण रूप कपालोंविषे हीं सा घटत्वजाति रहती थी सा घटत्वजाति हीं ता घटकी उत्पत्तितैं अनंतर ता घटविषे आइकै वर्त्ते है सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? ता घटके समवायिकारणरूप कपालोंविषे भी जो घट त्वजाति रहती होवै तौं तिन कपालोंविषे भी ' अयं घटः ' या प्रकारका घटव्यवहार होणा चाहिये सो होता नहीं । और जो यह कहो जिस कालविषे सो घट उत्पन्न होवै है तिस कालविषे ता घटव्यक्तिके साथि सा घटत्वजाति भी उत्पन्न होवै हैं सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? तुम नैयायिकोंने सा जाति नित्य अंगीकार करी है । ऐसी नित्य घटत्व जातिकी उत्पत्ति हीं संभवती नहीं । और जो यह कहो जिस कालविषे सो घट उत्पन्न होवै है तिस कालविषे सा घटत्वजाति दूसरे घटतैं आइकै तिस घटविषे वर्त्ते है सो यह कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं ? तुम नैयायिकोंनैं पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंविषे हीं क्रिया अंगीकार करी है और सा जाति द्रव्यरूप है नहीं । यातैं ता घटत्वजातिविषे सा गमनरूपक्रिया हीं संभवती नहीं । किंवा सा घटत्वजाति ता एकघट व्यक्तिविषे समग्ररूप करिकै रहे है अथवा किसी एक देश करिकै रहे है ? तहां प्रथमपक्ष

जो अंगीकार करो तौं जिस घटव्यक्तिविषे सा घटत्वजाति समग्ररूप करिकै रही है । तिस घटव्यक्तिविषे हीं ता घटत्वजातिकी प्रतीति होवैंगी । तिसतैं भिन्न घटव्यक्तियोंविषे ता घटत्व-जातिकी प्रतीति नहीं होणी चाहिये सो तुमारेकूं अंगीकार है नहीं । और एक घटव्यक्ति विषे सा घटत्वजाति किसी एकदेश करिकै रहे है यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं । काहेतैं ? तुमारे मतविषे जन्यद्रव्य हीं सावयव होवै है और सा जाति तुमोंनैं जन्य द्रव्यरूप मानी नहीं । यातैं ता घटत्वजातिका सो एकदेश हीं संभवता नहीं । इस प्रकारतैं गोत्व, पटत्व, पृथिवीत्व, जलत्व, द्रव्यत्व आदिक जातियां भी संभवतीयां नहीं। यातैं ते घटत्वादिक अतत्‌व्यावृत्तिरूप होणेतैं घटादि व्यक्तिरूप हीं हैं ता घटादिक व्यक्तितैं भिन्न जातिरूप भावपदार्थ नहीं हैं इति ।

इसका खण्डन—सो यह बौद्धोंका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? रक्तनीलादिरूप करिकै परस्परविलक्षण जे नानाघटव्यक्तियां हैं तिन सर्वघटोंविषे जो एक अनुगत घटत्वजाति नहीं अंगीकार करिये तौं तिन सर्वघटोंविषे 'अयं घटः अयं घटः' या प्रकारकी एकाकार बुद्धि हीं नहीं होवैंगी और सा एकाकार बुद्धि तौं सर्व लोकोंकूं होवै है । यातैं ता एकाकारबुद्धिकी प्रमाणता वास्तै तिन सर्वघटोंविषे सा एक घटत्वजाति अवश्य अंगीकार करी चाहिये । ईहां यह तात्पर्य है—ज्ञानोंविषे जो विलक्षणता होवै है सो विषयके भेद करिकै हीं होवै है विषयके भेदतैं विना ज्ञानोंविषे विलक्षणता होती नहीं । जैसे घटकूं विषय करणेहारा जो 'अयं घटः' या प्रकारका ज्ञान है तथा पटकूं विषय करणे हारा जो 'अयं पटः' या प्रकारका ज्ञान है ते दोनों ज्ञान परस्पर विलक्षण है तिन दोनों ज्ञानोंकी विलक्षणताविषे ता घटपटरूप विषयका भेद हीं कारण है । इस प्रकार परस्पर भिन्न भिन्न घटोंविषे 'अयं घटः अयं घटः' या प्रकारके एकाकारज्ञान भी होवै हैं । तिन ज्ञानोंविषे पूर्वज्ञानोंकी न्यांई विलक्षणता है नहीं । यातैं यह जान्या जावै है तिन ज्ञानोंका कोई एक विषय हीं है जिस एक विषय करिकै ते ज्ञान परस्पर विलक्षणतातैं रहित हैं तहां घटव्यक्तिरूप विशेष्योंका भेद तौं प्रत्यक्षसिद्ध है परिशेषतैं ता घटत्वजातिरूप विशेषणकी हीं एकता सिद्ध होवै है यातैं यह निर्णय होवै है । विशेषणोंका भेद तौं ज्ञानोंकी विलक्षणताका कारण होवै है और विशेषणका अभेद ज्ञानोंकी अविलक्षणताका कारण होवै है । विशेष्यका भेद वा अभेद ज्ञानोंकी विलक्षणताविषे तथा अविलक्षणताविषे कारण होता नहीं या कारणतैं हीं एक हीं घटविषे 'अयं घटः, इदं द्रव्यं, इयं पृथिवी' या प्रकारतैं तीनों ज्ञानोंकी विलक्षणता देखणेविषे आवै है । तहां ता घटरूप विशेष्यके एकहूए भी घटत्व, द्रव्यत्व, पृथि-वीत्व इन तीन विशेषणोंके भेद करिकै हीं तिन ज्ञानोंकी विलक्षणता होवै है । यातैं परस्पर विलक्षण अनेक घटोंविषे 'अयं घटः अयं घटः' या प्रकारकी एकाकारबुद्धि हीं तिन सर्व-घटोंविषे अनुगत तथा तिन सर्व घटोंतैं भिन्न एक घटत्व जातिकी सिद्धि करे है ॥

**शंका**—ता अतत्व्यावृत्तिकूं घटादिक व्यक्तिरूपता मत रहो तथापि तिन सर्वघटव्यक्तियोंविषे अनुगत होइकै रहीं हूई जा सा अघटभेदरूप अतत्व्यावृत्ति है ता अतत्व्यावृत्तिकूं हीं सा एकाकारप्रतीति विषय करैंगी। यातैं ता एकाकारप्रतीतितैं ता भावरूप घटत्वजातिकी सिद्धि संभवती नहीं। **समाधान**—सा एकाकारप्रतीति जो कदाचित् ता अभावरूप अतत्व्यावृत्तिकूं विषय करती होवै तौं ता एकाकारप्रतीतिविषे 'नायं घटः नायं घटः' या प्रकारतैं निषेधमुखता होणी चाहिये और ता एकाकारप्रतीतिविषे सा निषेधमुखता भासती नहीं, किंतु 'अयं घटः अयं घटः' या प्रकारतैं विधिमुखता हीं भासे है तहां अभाववाचक नकार करिकै युक्त प्रतीतिकूं निषेधमुखप्रतीति कहे हैं और ता नकाररहित प्रतीतिकूं विधिमुख प्रतीति कहे हैं। यातैं सा एकाकारप्रतीति ता अघटव्यावृत्तिकूं विषय करती नहीं, किंतु ता भावरूप घटत्वजातिकूं हीं विषय करे है। किंवा ता बौद्धनैं घटत्वादिक जातियोंके खण्डन करणे वासतै जे पूर्वविकल्प कन्ये थे ते विकल्प भी असंगत हैं। काहेतैं? हम नैयायिकोंके मतविषे ते घटत्वादिक सर्वजातियां व्यापक हैं। तहां तिन घटत्वादिक जातियोंका स्वरूपतैं जो सर्वदेशोंविषे संबंध है यह हीं तिन घटत्वादिक जातियोंविषे व्यापकपणा है। यातैं जिस क्षणविषे सो घट उत्पन्न होवै है तिस क्षणविषे तहां रही हूई घटत्वजातिका ता घटव्यक्तिसैं समवायसंबंध होवै है सा घटत्वजाति कहांसैं आवती नहीं तथा उत्पन्न होती नहीं।

**शंका**—सा घटत्वजाति जो स्वरूपतैं सर्वदेशोंविषे रहती होवै तौं पटादिक देशविषे भी 'अयं घटः' या प्रकारका घटत्वविषयक व्यवहार होणा चाहिये सो होता नहीं। **समाधान**—तिन पटादिक देशोंविषे स्वरूपतैं रहीं हूई भी सा घटत्वजाति समवायसंबंध करिकै रहती नहीं, किंतु केवल घटव्यक्तियोंविषे हीं सा घटत्वजाति समवायसंबंध करिकै रहे है। और सा घटत्वजाति जिस व्यक्तिविषे समवायसंबंध करिकै रहे है। तिस व्यक्तिविषे हीं 'अयं घटः' या प्रकारके व्यवहारका कारण होवै है। और जिस व्यक्तिविषे सा घटत्वजाति ता समवायसंबंध करिकै नहीं रहे है तिस व्यक्तिविषे 'अयं घटः' या प्रकारके व्यवहारका कारण होती नहीं। यातैं तिन घटव्यक्तियोंविषे हीं 'अयं घटः' यह व्यवहार होवै है तिन पटादिक व्यक्तियोंविषे सो व्यवहार होता नहीं। यातैं बौद्धोंके ते पूर्वउक्त सर्वविकल्प असंगत हैं। इस प्रकारकी उक्त व्यवस्था सत्ता, द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, पृथिवीत्व, जलत्व, रूपत्व, रसत्व, पटत्व, गोत्व इत्यादिक सर्वजातियोंविषे यथायोग्य जानिलेणी इति॥

इति सामान्य पदार्थ निरूपणम् समाप्तम् ॥ ४ ॥

विशेष पदार्थ—अब पंचमे विशेषपदार्थका निरूपण करे हैं। तहां लक्षण—**निःसामान्यत्वे सत्येकमात्रसमवेतः विशेषः**। अर्थ यह—जो पदार्थ जातिरूप सामान्यतैं रहित होवै है। तथा एक व्यक्तिमात्रविषे समवेत होवै है सो पदार्थ विशेष कह्या जावै है। तहां पृथिवी,

जल, तेज, वायु इन च्यारि भूतोंके जितनैंकी परमाणु हैं तिन सर्वपरमाणुवोंविषे सो विशेष रहे है । अर्थात् एकएक परमाणुविषे सो एकएक विशेष समवायसम्बंध करिकै रहे है । तथा आकाश, काल, दिशा इन तीनोंविषे भी सो एकएक विशेष समवायसम्बंध करिकै रहे है । तथा जितनैंकी आत्मा हैं तथा जितनैंकी मन हैं । तिनोंविषे भी एकएक आत्माविषे तथा एकएक मनविषे सो एकएकविशेष समवायसम्बन्ध करिकै रहे है । यातैं सो विशेष एक द्रव्यव्यक्तिमात्रविषे समवेत कह्या जावै है । और ता विशेषविषे कोई भी जातिरूप सामान्य रहता नहीं । यह वार्त्ता पूर्वसामान्यके निरूपणविषे कथन करि आये हैं । यातैं सो विशेष ता जातिरूप सामान्यतैं रहित भी है । यातैं यह उक्तविशेषका लक्षण सम्भवै है । पदकृत्य—तहां ' एकमात्रसमवेतः विशेषः ' इतनामात्र हीं जो ता विशेषका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' निःसामान्यत्वे सति ' यह पद नहीं कथन करते तौं गुणविषे तथा कर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? संयोग, विभाग द्वित्वादिक संख्या द्विपृथक्त्वादिक पृथक्त्व इन अनेकवृत्तिगुणोंकूं छोडिकै दूसरे रूपादिक सर्वगुण एकएक द्रव्यव्यक्तिविषे हीं समवायसम्बन्ध करिकै रहे हैं । तथा कर्म भी एकएक द्रव्यव्यक्तिविषे हीं समवायसंबन्ध करिकै रहे हैं । ता गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' निःसामान्यत्वे सति ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते गुणकर्म ता जातिरूप सामान्यतैं रहित नहीं हैं किंतु सत्ता, गुणत्व, कर्मत्व आदिक सामान्यवाले हीं हैं । यातैं ता गुणकर्मविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है नहीं । किंवा 'निःसामान्यत्वे सति समवेतः विशेषः' इतनामात्र हीं जो ता विशेषका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' एकमात्र ' यह पद नहीं कथन करते तौं जातिरूप ता सामान्यविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जातिविषे कोई भी जाति रहती नहीं । यातैं सा जातिरूप सामान्य ता जातिरूप सामान्यतैं रहित भी है तथा द्रव्यगुण कर्मविषे समवेत भी है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' एकमात्र ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो जातिरूप सामान्य एकव्यक्तिमात्रविषे समवेत नहीं होवै है किंतु अनेक व्यक्तियोंविषे समवेत होवै है । यातैं ता सामान्यविषे ता विशेषके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ॥

अथवा ता विशेषका यह दूसरा लक्षण—करणा । **जन्यवृत्त्यवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमान् विशेषः** । अर्थ यह—जन्यपदार्थविषे वर्त्तणेहारे पदार्थविषे नहीं वर्त्तणेहारा ऐसा जो पदार्थविभाजक उपाधि है ता उपाधिवाला पदार्थ विशेष कह्या जावै है । तहां ते विशेष जन्य द्रव्योंविषे रहते नहीं । किंतु परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंविषे हीं रहे हैं । ऐसे विशेषोंविषे रहणेहारा जो विशेषत्वधर्म है सो विशेषत्वधर्म जन्यवृत्ति अवृत्ति भी है अर्थात् पृथिवीआदिक

जन्यद्रव्योंविषे वर्त्तणेहारे गुणकर्मादिकोंविषे अवृत्ति भी है। तथा सो विशेषत्वधर्म पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है ऐसा विशेषत्वधर्म तिन सर्वविशेषोंविषे रहे है। यातैं यह उक्त विशेषका लक्षण भी सम्भवै है। पदकृत्य—तहां 'पदार्थविभाजकोपाधिमान् विशेषः' इतनामात्र हीं जो ता विशेषका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'जन्यवृत्त्यवृत्ति' यह पद नहीं कथन करते तौं द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, सामान्यत्व, इन च्यारोंकूं लैके यथाक्रमतैं द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य इन च्यारों पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं, जैसे सो विशेषत्वधर्म पदार्थविभाजक उपाधिरूप है। तैसे ते द्रव्यत्वादिक धर्म भी पदार्थविभाजक उपाधिरूप हीं हैं, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'जन्यवृत्त्यवृत्ति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते द्रव्यत्वादिक धर्म जन्य वृत्ति अवृत्ति नहीं हैं। किंतु जन्यविषे वर्त्तणेहारे द्रव्यादिकोंविषे वृत्ति हीं हैं। यातैं तिन द्रव्यादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'जन्यवृत्त्यवृत्तिउपाधिमान् विशेषः' इतनामात्र हीं जो ता विशेषका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'पदार्थविभाजक' यह पद नहीं कथन करते तौं शब्दत्व बुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके तिन शब्दबुद्धि आदिक गुणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होतीं। काहेतैं? ते शब्दबुद्धि आदिक गुण जन्यद्रव्यविषे रहते नहीं। किंतु नित्य आकाशविषे तौं शब्दगुण रहे हैं तथा नित्य आत्माविषे ते बुद्धि आदिक गुण रहे हैं। यातैं ते शब्दत्व बुद्धित्वादिक जातियां जन्य द्रव्यविषे वर्त्तणेहारे रूपादिकोंविषे अवृत्ति हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्ति करणे वासतै ता लक्षणविषे 'पदार्थविभाजक' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते शब्दत्वबुद्धित्वादिक जातियां पदार्थविभाजक उपाधिरूप नहीं है। किंतु गुणविभाजक उपाधिरूप है। यातैं तिन शब्दत्वबुद्धित्वादिक जातियोंकूं लैके तिन शब्दबुद्धि आदिक गुणोंविषे ता विशेषके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

अथवा ता विशेषका यह तीसरा लक्षण—करणा। स्वतोव्यावर्त्तकः विशेषः। अर्थ यह—जो पदार्थ आपणा तथा आपणे आश्रयका आपणे स्वरूपतैं हीं व्यावर्त्तक होवै है। सो पदार्थ विशेष कह्या जावै है। ईहां इतरपदार्थके भेदकूं विषय करणेहारा जो अनुमितिज्ञान है ताका नाम व्यावृत्ति है ता व्यावृत्तिका जो हेतुरूप करिकै जनक होवै है सो व्यावर्त्तक कह्या जावै है। आपणे स्वरूप करिकै हीं जो व्यावर्त्तक होवै है सो स्वतः व्यावर्त्तक कह्या जावै है। ऐसा स्वतोव्यावर्त्तकपणा ता विशेषविषे हीं संभवै है अन्य किसीविषे संभवता नहीं। यातैं यह स्वतोव्यावर्त्तकत्वरूप विशेषका लक्षण भी संभवै है। तहां सो विशेष जिस परमाणु आदिक नित्य द्रव्यविषे समवायसंबंध करिकै रहे है। तिस परमाणु आदिक नित्य द्रव्यकूं दूसरे परमाणु आदिक नित्यद्रव्यतैं आपणे स्वरूप करिकै हीं भिन्न करे है। जैसे अयं परमाणुः एतत्परमाणोर्भिन्नः एतद्विशेषात्। अर्थ यह—यह पार्थिव परमाणु इस दूसरे पार्थिव

परमाणुतैं भिन्न है। इस विशेषवाला होणेतैं। तहां इस अनुमानविषे ता विशेषकूं ता भेदकी सिद्धि करणेविषे तत्व्यक्तित्वरूप करिकै हीं हेतुपणा संभवै है। जो कदाचित् ता विशेषकूं ता भेदकी सिद्धि करणेविषे विशेषत्वरूप करिकै हीं हेतुता मानिये तौं ता विशेषत्वरूप करिकै सो विशेषरूप हेतु ता दूसरे परमाणुविषे भी विद्यमान है। परंतु ता दूसरे परमाणुविषे ता दूसरे परमाणुका भेदरूप साध्य है नहीं। यातैं ता साध्यके अभाववाले दूसरे परमाणु विषे वृत्ति होणेतैं सो विशेषत्वधर्मविशिष्ट हेतु व्यभिचारी हीं होवैंगा। यातैं ता विशेषकूं तत्व्यक्तित्वरूप करिकै हीं हेतुता कहणी होवैंगी। तहां ता विशेषविषे सो तत्व्यक्तित्व दूसरा तौं कोई संभवता नहीं। किंतु तादात्म्यसंबंध करिकै सा विशेषव्यक्ति हीं सो तत्व्यक्तित्व है। इस प्रकारतैं सो विशेष स्वाश्रयभूत परमाणु आदिक नित्य द्रव्यका दूसरे नित्य द्रव्यतैं आपणे स्वरूपसैं हीं व्यावर्त्तक होवै है।

स्वात्म व्यावर्त्तक—किंवा सो विशेष जैसे स्वाश्रयभूत नित्य द्रव्यका दूसरे नित्य द्रव्यतैं स्वतः हीं व्यावर्त्तक होवै है तैसे सो विशेष ता स्वाश्रयभूत द्रव्यतैं आपणा भी स्वतः हीं व्यावर्त्तक होवै है। जैसे **विशेषः द्रव्याद्भिन्नः विशेषात्।** अर्थ यह—यह विशेष द्रव्यतैं भिन्न है विशेष होणेतैं। किंवा सो विशेष दूसरे विशेषतैं आपणा भी स्वतःहीं व्यावर्त्तक होवै है। जैसे **एतद्विशेषः तद्विशेषाद्भिद्यते एतद्विशेषात्।** अर्थ यह—यह विशेष तिस दूसरे विशेषतैं भिन्न है एतत्विशेष होणेतैं। इस प्रकारतैं सो विशेष आपणे स्वरूप करिकै हीं आपणा दूसरे विशेषतैं व्यावर्त्तक होवै है। ता विशेषकूं ता इतरभेदकी सिद्धि करणे वासतै स्वनिष्ठ इतर विशेषकी अपेक्षा रहती नहीं। जो कदाचित् ता विशेषकूं ता भेदकी सिद्धि करणे वासतै स्वनिष्ठ दूसरे विशेषकी अपेक्षा मानिये तौं ता दूसरे विशेषकूं भी आपणे भेद वासतै किसी तीसरे विशेषकी अपेक्षा होवैंगी। ता तीसरे विशेषकूं भी आपणे भेद वासतै किसी चतुर्थविशेषकी अपेक्षा होवैंगी। इस प्रकार आगे आगे विशेषकी अपेक्षा मानणे करिकै अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी। यातैं पूर्वउक्त रीतिसैं ता विशेषकूं स्वरूपतैं हीं व्यावर्त्तक मान्या चाहिये। ता स्वतोव्यावर्त्तकत्व मानणेविषे ता अनवस्था दोषकी प्राप्ति होती नहीं इति॥

नित्य अनन्त और अतीन्द्रिय विशेषका अनुमान—इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणों करिकै लक्षित सो विशेष पदार्थ परमाणुआकाशादिक नित्य द्रव्योंविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। द्व्यणुकादिक अनित्य द्रव्योंविषे सो विशेष रहता नहीं। और ते परमाणुआकाशादिक नित्यद्रव्य अनंत हैं। यातैं ते विशेष भी अनंत हैं अर्थात् असंख्यात हैं। और ते विशेष तिन नित्य द्रव्योंकी न्यांई उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हीं होवै हैं कोई भी विशेष अनित्य होता नहीं। और ते विशेष धर्मअधर्मकी न्यांई अतिइंद्रिय होवै है अर्थात् किसी भी इंद्रियजन्य प्रत्यक्षके विषय होते नहीं। ऐसे अतिइंद्रिय विशेषोंकी सिद्धि केवल अनुमानप्रमाण करिकै हीं होवै है।

ता अनुमानका यह आकार है—परमाणुभेदः किञ्चिल्लिंगज्ञाप्यः भेदत्वात् कपालभेदज्ञाप्यघटभेदवत् । अर्थ यह—सजातीय परमाणुवोंका जो परस्परभेद है सो भेद किसी लिंग करिकै ज्ञाप्य होणे योग्य है अर्थात् किसी हेतुरूप लिंगजन्य अनुमितिज्ञानका विषय होणेयोग्य है भेदरूप होणेतैं। जो जो भेद होवै है सो सो किसी लिंग करिकै ज्ञाप्य हीं होवै है। जैसे दो घटोंका जो परस्पर भेद है सो भेद तिन दो घटोंके समवायिकारणरूप कपालोंके भेद करिकै हीं ज्ञाप्य होवै है । तैसे सो परमाणुवोंका भेद भी भेदरूप होणेतैं किसी लिंग करिकै अवश्य ज्ञाप्य होवैगा। तहां तिन सजातीय परमाणुवोंके भेदका दूसरा तौं कोई ज्ञापक संभवता नहीं । परिशेषतैं सो विशेष हीं तिन परमाणुवोंके भेदका ज्ञापकरूप करिकै सिद्ध होवै है इति ॥

दूसरा अनुमान—अथवा ता विशेषपदार्थकी इस दूसरे अनुमान करिकै सिद्धि करणी—आकाशनिष्ठा या शब्दसमवायिकारणता सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् दण्डनिष्ठकारणतावत्। अर्थ यह—आकाशविषे रही हूई जा शब्द गुणकी समवायिकारणता है सा कारणता किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न होणेयोग्य है कारणता होणेतैं । जा जा कारणता होवै है सा सा किसी धर्म करिकै अवच्छिन्न हीं होवै है। जैसे दंडविषे रही हूई घटकी कारणता दंडत्व धर्म करिकै अवच्छिन्न होवै है। तैसे सा आकाशनिष्ठ कारणता भी किसी धर्म करिकै अवश्य अवच्छिन्न होवैगी। तहां ता आकाशवृत्तिकारणताका सो आकाशवृत्ति विशेष हीं अवच्छेदक होवै है इति ॥

विशेष पदार्थका प्रयोजन—ता उक्त लक्षण करिकै तथा अनुमानप्रमाण करिकै ता विशेषकी सिद्धि रहो तथापि ता विशेषपदार्थके माननेका कौन प्रयोजन है। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब ता विशेषपदार्थके प्रयोजनका वर्णन करे हैं। घटादिक अवयवीतैं आदिलेके द्व्यणुकपर्यंत जितनैंकी अवयवी हैं तिन अवयवीयोंका तिस तिस कपालादिक अवयवोंके भेद करिकै हीं परस्परभेद सिद्ध है। इस प्रकार घटपटादिकोंका भी तिस तिस कपाल तंतु आदिक अवयवोंके भेद करिकै हीं परस्पर भेद सिद्ध है। यातैं तिन घटपटादिक कार्यद्रव्योंविषे ता विशेषकी कल्पना करी जावै नहीं । और पृथिवी, जल; तेज, वायु इन च्यारि भूतोंके जे परमाणु हैं तथा आकाश काल, दिक्, आत्मा, मन यह जे पंच द्रव्य हैं। ते परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्य किसी अवयवों करिकै जन्य होते नहीं। यातैं तिस तिस अवयवके भेद करिकै तिन नित्यद्रव्योंका परस्पर भेद सिद्ध होता नहीं। और ते परमाणुआकाशादिक नित्यद्रव्य परस्पर अत्यंत संकीर्ण हैं। ऐसे नित्यद्रव्योंका परस्पर किसी भेदक धर्मतैं विना भेद संभवता नहीं । यातैं तिन परमाणु आकाशादिक नित्य द्रव्योंकूं परस्पर भिन्न करणेहारा कोईक धर्म अवश्य अंगीकार कर्या चाहिये। तहां सत्ताद्रव्यत्व धर्म तौं सर्वनित्य द्रव्योंका साधारण धर्म है। यातैं ता सत्ता द्रव्य-

त्वधर्म कारिकै भी तिन नित्यद्रव्योंका परस्परभेद सिद्ध होवै नहीं । असाधारणधर्म हीं ता भेदका साधक होवै है । परिशेषतैं तिस तिस नित्य द्रव्यवृत्ति सो विशेष हीं तिस तिस नित्य द्रव्यकूं दूसरे नित्य द्रव्यतैं भिन्न करणेहारा सिद्ध होवै है । यद्यपि पार्थिव परमाणुवोंकूं जलादिकोंके परमाणुवोंतैं भिन्न करणेहारा गंधगुण है तथा पृथिवीत्व जाति है । तथा जलीय परमाणुवोंकूं पृथिवी आदिकोंके परमाणुवोंतैं भिन्न करणेहारा शीतस्पर्श है तथा जलत्वजाति है । तथा तैजसपरमाणुवोंकूं तिन पृथिवीआदिकोंके परमाणुवोंतैं भिन्न करणेहारा उष्णस्पर्श है तथा तेजस्त्वजाति है । तथा वायवीय परमाणुवोंकूं तिन पृथिवीआदिकोंके परमाणुवोंतैं भिन्न करणेहारा अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्श है तथा वायुत्वजाति है । तथा आकाशकूं परमाणु-आदिकोंतैं भिन्न करणेहारा शब्दगुण है । तथा आत्माकूं तिन परमाणुआदिकोंतैं भिन्न करणे हारे ज्ञानादिक गुण हैं तथा आत्मत्वजाति है । तथा मनकूं तिन परमाणुआदिकोंतैं भिन्न करणेहारी मनस्त्वजाति है । यातैं विजातीय नित्य द्रव्योंके परस्पर भेद वासतै ता विशेषका अंगीकार संभवता नहीं । तथापि पृथिवीत्वरूप करिकै सजातीय जे पार्थिवपरमाणु हैं तिन पार्थिवपरमाणुवोंका परस्परभेद ता गंधगुण करिकै तथा पृथिवीत्व जाति करिकै संभवता नहीं । जिस कारणतैं सो गंधगुण तथा पृथिवित्वजाति तिन सर्वपार्थिव परमाणुवोंविषे रहे है । इस प्रकार जलत्वरूप करिकै सजातीय जे जलीयपरमाणु हैं । तिन जलीयपरमाणुवोंका परस्पर भेद ता शीतस्पर्श करिकै तथा जलत्वजाति करिकै संभवता नहीं । जिस कारणतैं ते सर्व जलीय परमाणु ता शीतस्पर्शवाले हैं तथा जलत्वजातिवाले हैं । इस प्रकार तेजस्त्वरूप करिकै सजातीय जे तैजसपरमाणु हैं तिन तैजसपरमाणुवोंका भी परस्परभेद ता उष्णस्पर्श करिकै तथा तेजस्त्वजाति करिकै संभवता नहीं । जिस कारणतैं ते सर्वतैजसपरमाणु ता उष्णस्पर्शवाले हीं हैं तथा तेजस्त्वजातिवाले हीं हैं । इस प्रकार वायुत्वरूप करिकै सजातीय जे वायवीयपरमाणु हैं तिन वायवीयपरमाणुवोंका भी परस्पर भेद ता अपाकज अनुष्णा शीतस्पर्श करिकै तथा वायुत्व जाति करिकै संभवता नहीं । जिस कारणतैं ते सर्व वायवीय पर-माणु ता अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवाले हीं हैं तथा वायुत्व जातिवाले हीं हैं । इस प्रकार आ त्मत्वरूप करिकै सजातीय जे आत्मा हैं तिन आत्मावोंका भी परस्पर भेद तिन ज्ञानादिक गुणों करिकै तथा आत्मत्वजाति करिकै संभवता नहीं । जिस कारणतैं ते सर्व आत्मा तिन ज्ञानादिक गुणोंवाले हैं तथा आत्मत्वजातिवाले हैं । इस प्रकार मनस्त्वरूप करिकै सजातीय जे मन हैं तिन सर्वमनोंका भी परस्पर भेद ता मनस्त्वजाति करिकै संभवता नहीं । जिस कारणतैं ते सर्वमन ता मनस्त्वजातिवाले हीं हैं । यातैं तिन सजातीय परमाणु आदिक नित्यद्रव्योंका परस्पर भेद करणे वासतै सो विशेष पदार्थ अवश्य अंगीकार कन्या चाहिये । ता विशेषतैं विना तिन सजातीय परमाणु आदिकोंका सो परस्पर भेद सिद्ध होता नहीं, यह हीं ता विशेष-

पदार्थके अंगीकार करणेका प्रयोजन है इति। ईहां केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं। ईश्वरविषे जो नित्यज्ञान है सो नित्यज्ञान हीं ता ईश्वरकूं जीवात्मावोंतैं भिन्न करे है। और आकाशविषे जो शब्दगुण है सो शब्दगुण हीं ता आकाशकूं दूसरे परमाणुआदिक नित्य द्रव्योंतैं भिन्न करणेहारा है। यातैं ता ईश्वरविषे तथा आकाशविषे सो विशेष अंगीकार करणा निष्फल हीं है इति॥ ईहां नवीननैयायिक—तौं यह कहे हैं। ता विशेषपदार्थविषे कोई भी प्रमाण नहीं है तथा ता विशेषपदार्थके अंगीकार करणेका कोई प्रयोजन भी नहीं है। किंतु जैसे प्राचीनोंनैं तिन विशेषोंकूं स्ववृत्तिधर्मतैं विना हीं स्वतःव्यावर्त्तकपणा मान्या है। तैसे तिन परमाणुआदिक नित्यद्रव्योंकूं हीं स्वतःव्यावर्त्तकपणा संभव होइ सके है। यातैं ता विशेषमानणेका कोई भी प्रयोजन नहीं है इति। गौतम मुनिके शास्त्रको वैशेषिक कहनेका कारण—किंवा यह विशेषपदार्थ सप्तपदार्थवादी कणादमुनिनैं हीं अंगीकार कर्‍या है। षोडशपदार्थवादी गौतममुनिनैं तथा अन्यशास्त्रवाल्योंनैं यह विशेषपदार्थ अंगीकार कर्‍या नहीं। या कारणतैं हीं ता कणाद मुनिप्रणीत शास्त्रकूं विशेषशास्त्र कहे हैं तथा इस मतके अनुयायि ग्रंथकारोकूं वैशेषिक कहे हैं।

इति विशेषपदार्थनिरूपणं समाप्तम्॥ ५॥

## समवाय पदार्थ।

अब षष्ठे समवायपदार्थका निरूपण करे हैं तहां लक्षण—**नित्यसंबंधः समवायः।** अर्थ यह—जो पदार्थ नित्य होवै है तथा संबंधरूप होवै है सो पदार्थ समवाय कह्या जावै है। तहां सो समवाय उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य भी है तथा गुणगुणी आदिकोंका संबंधरूप भी है। यातैं यह उक्त समवायका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'संबंधः समवायः' इतना मात्र हीं जो ता समवायका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'नित्य' यह पद नहीं कथन करते तौं संयोगसंबंधविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ता समवायकी न्यांई ता संयोगविषे भी संबंधरूपता हीं है ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'नित्य' यह ता संबंधका विशेषण कथन कर्‍या है। तहां सो संयोगसंबंध नित्य होता नहीं किंतु अनित्य हीं होवै है। यातैं ता संयोगविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'नित्यः समवायः' इतनामात्र हीं जो ता समवायका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संबन्धः' यह पद नहीं कथन करते तौं आकाशादिक नित्य पदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संबन्धः' यह पद कथन कर्‍या है। तहां तिन आकाशादिकोंविषे सो संबंधपणा है नहीं। यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ता समवायके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। स्वरूप संबंधको समवाय होनेकी शंका—इस उक्त समवायके लक्षणकी भी अत्यन्ताभावविषे अतिव्याप्ति होवै है। काहेतैं? भूतलादिकोंविषे घटादिकोंका अत्यन्ताभाव स्वरूपसंबंध करिकै हीं रहे है। सो अत्यन्ताभावका स्वरूपसंबंध ता अत्यन्ता-

भावरूप हीं है। ता अत्यन्ताभाववतैं भिन्न नहीं है और सो अत्यन्ताभावनित्य भी है। यातैं नित्यरूपता तथा संबंधरूपता ता अत्यन्ताभावविषे भी है। यातैं ता अत्यन्ताभावविषे ता समवायके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैंगी। सम्बधियोंसे भिन्न संबन्धको मानकर समाधान—ता उक्तलक्षणविषे संबंध पद करिकै दोनों संबंधीयोंतैं भिन्न संबंधका ग्रहण करणा सो दोनों संबंधियोंतैं भिन्न संबंध संयोग होवै है तथा समवाय होवै है। ता संयोगसमवाय दोनों सम्बन्धोंतैं भिन्न दूसरे जितनैंकी कालिकसंबन्ध, दैशिकसम्बन्ध, विशेषणतासम्बन्ध, विशेष्यतासम्बन्ध, प्रतियोगितासंबंध, अनुयोगितासम्बन्ध, आधारतासम्बन्ध, आधेयतासम्बन्ध, विषयतासम्बन्ध इत्यादिक स्वरूपसंबन्ध हैं ते सर्व स्वरूपसंबन्ध तिन दोनों सम्बन्धीयोंतैं भिन्न होते नहीं, किंतु कोई स्वरूपसंबंध तौं प्रतियोगीरूप होवै है और कोई स्वरूपसम्बन्ध अनु योगी रूप होवै है। तहां जिस वस्तुका जिस अधिकरणविषे जो संबंध होवै है तिस संबंधका सो वस्तु तौं प्रतियोगी होवै है और सो अधिकरण अनुयोगी होवै है। जैसे भूतलविषे घटका अत्यन्ताभाव विशेषणताख्य स्वरूपसम्बन्ध करिकै रहे है। ता स्वरूपसम्बन्धका सो अत्यन्ताभाव तौं प्रतियोगी है। और सो भूतल अनुयोगी है। तहां सो स्वरूपसंम्बन्ध ता अत्यन्ताभावरूप प्रतियोगीस्वरूप हीं है। और महाकालविषे घटपटादिक पदार्थ कालिकानमा स्वरूपसंबंध करिकै रहे हैं ता कालिकसम्बन्धके ते घटाघटादिक तौं प्रतियोगी हैं और सो महा काल अनुयोगी है। तहां सो कालिक स्वरूपसम्बन्ध ता महाकालरूप अनुयोगीस्वरूप हीं होवै है। काहेतैं? ता कालिक स्वरूपसंबन्धकूं जो घटपटादिरूप प्रतियोगी स्वरूप मानिये तौं अनेकघटपटादिकोंविषे स्वरूपसंबंधरूपता कल्पना करणेविषे गौरवदोषकी प्राप्ति होवैंगी। और एककालरूप मानणेविषे ता गौरवदोषकी प्राप्ति होती नहीं। यातैं लाघववतैं ता कालिक स्वरूपसंबंधकूं ता महाकालरूप अनुयोगीस्वरूपता हीं मानणी उचित है। इस प्रकार ता उक्त अत्यन्ताभावके विशेषणताख्य स्वरूपसम्बन्धकूं अनेकभूतलादि अनुयोगी स्वरूपता मानणेविषे गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है। और एक अत्यन्ताभावरूप प्रतियोगीस्वरूपता मानणेविषे लाघव है। इसप्रकार लाघवके वशतैं ते उक्त स्वरूपसंबन्ध कोई प्रतियोगी स्वरूप होवै है कोई अनुयोगीस्वरूप होवै हैं। ता प्रतियोगी अनुयोगीरूप दोनों संबंधीयोंतैं भिन्न कोई भी स्वरूपसंबन्ध होता नहीं। यातैं संयोग समवाय यह दो संबंध हीं मुख्यसंबंध कह्ये जावै हैं। इन दो संबंधोंतैं भिन्न जितनैंकी पूर्व स्वरूपसंबंध कहे हैं ते सर्व गौणसंबंध कहे जावै हैं। सम्बन्धका लक्षण—या कारणतैं हीं शास्त्रकारोंनें ता संबंधका यह लक्षण कथ्या है। **संबन्धिभिन्नत्वे सति संबन्ध्याश्रितः संबन्धः।** अर्थ यह—जो प्रतियोगी अनुयोगीरूप दोनों संबंधीयोंतैं भिन्न होवै है तथा तिन दोनों संबंधियोंके आश्रित होवै है सो संबंध कह्या जावै है। जैसे पक्षीवृक्षका संयोग ता पक्षीवृक्षरूप प्रतियोगी अनुयोगीरूप दोनों संबंधियोंतैं भिन्न भी है। तथा तिन दोनों संबंधी

योंके आश्रित भी है । यातैं सो संयोग संबंध कह्या जावै है । इस प्रकार पटरूप अवयवीका जो तंतुरूप अवयवोंविषे समवाय है सो समवाय भी ता पटतंतुरूप प्रतियोगी अनुयोगीरूप दोनों संबंधीयोंतैं भिन्न भी है तथा तिन दोनों संबंधीयोंके आश्रित भी है । यातैं सो समवाय-संबंध कह्या जावै है । इस प्रकारका संबंधका लक्षण ता संयोगसमवाय दोनोंविषे हीं घटे है । तिन पूर्व उक्त स्वरूपसंबंधोंविषे घटता नहीं । यातैं संयोग, समवाय यह दोनों हीं मुख्य संबंध कह्ये जावै हैं । इन दोनोंतैं भिन्न दूसरे सर्वसंबंध गौणसंबंध कह्ये जावै हैं । यातैं ता उक्त समवायके लक्षणकी ता स्वरूपसंबन्धरूप अत्यंताभावविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

अथवा ता समवायका यह दूसरा लक्षण—करणा । **अयुतसिद्धयोः संबन्धः समवायः ।** अर्थ यह—अयुतसिद्ध पदार्थोंका जो परस्परसंबंध है सो संबंध समवाय कह्या जावै है । अयुत सिद्ध पदार्थ—तहां अवयवी १, अवयव २, गुण १, गुणी २, क्रिया १, क्रिया-वान् २, जाति १, व्यक्ति २, विशेष १, नित्यद्रव्य २, यह दो दो पदार्थ अयुतसिद्ध कह्ये जावै हैं । तहां लक्षण—**ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुत-सिद्धौ ।** अर्थ यह—जिन दो पदार्थोंके मध्यविषे एक पदार्थ आपणी अविनाश अवस्थाविषे ता दूसरे पदार्थके आश्रित हीं रहे है स्वतंत्र रहता नहीं ते दोनों पदार्थ अयुतसिद्ध कह्ये जावै हैं । लक्षण संकलना—जैसे तंतु आदिक अवयवोंविषे समवायसंबंध करिकै रहेहूए जे पटादिक अवयवी हैं तिन अवयव अवयवीरूप दोनों पदार्थोंके मध्यविषे एकपटादिरूप अव-यवीपदार्थ आपणी अविनाश अवस्थाविषे दूसरे तंतुआदिकरूप अवयवपदार्थके आश्रित हीं रहे है ता अवयवपदार्थकूं छोडिकै सो अवयवीपदार्थ स्वतंत्र रहता नहीं । यातैं ते तंतु-आदिक अवयव तथा पटादिक अवयवी दोनों अयुतसिद्ध कह्ये जावै हैं । और गुणीरूप पृथिवी आदिक नवद्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रह्येहूए जे रूपादिक गुण हैं । तिन गुण गुणीरूप दोनों पदार्थोंके मध्यविषे एकरूपादिगुण पदार्थ आपणे अविनाश अवस्थाविषे दूसरे द्रव्य-रूप गुणीपदार्थके आश्रित हीं रहे है ता गुणीपदार्थकूं छोडिकै सो गुणपदार्थ स्वतंत्र रहता नहीं । यातैं ते रूपादिक गुण तथा पृथिवी आदिक द्रव्यरूप गुणी दोनों अयुतसिद्ध कह्ये जावै हैं । और पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रही हूई जा कर्मरूप क्रिया है ता क्रिया क्रियावान् रूप दोनों पदार्थोंके मध्यविषे एक क्रिया-पदार्थ आपणे अविनाश अवस्थाविषे दूसरे क्रियावान् मूर्त्तद्रव्यके आश्रित हीं रहे है । ता क्रियावान् पदार्थकूं छोडिकै सो क्रियापदार्थ स्वतंत्र रहता नहीं । यातैं सा कर्मरूप क्रिया तथा क्रियावान् मूर्त्तद्रव्य दोनों अयुतसिद्ध कह्ये जावै हैं । और घटापटादिक व्यक्तियोंविषे सम-वायसंबंध करिकै रही हूई जे घटत्व पटत्वादिक जातियां हैं । तिन जातिव्यक्तिरूप दोनों पदार्थोंके मध्यविषे एक घटत्व पटत्वादिरूप जातिपदार्थ तिन घटपटादिक व्यक्तियोंके अविनाश

अवस्थाविषे ता दूसरे घटपटादिक व्यक्तिरूप पदार्थके आश्रित हीं रहे है यातैं ते घटत्वपटत्वादिक जातियां तथा घटपटादिक व्यक्तियां दोनों अयुतसिद्ध कहे जावै हैं । और परमाणु आकाशादिक नित्य द्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ जो विशेषपदार्थ है । तिन विशेष नित्यद्रव्यरूप दोनों पदार्थोंके मध्यविषे एक विशेषपदार्थ दूसरे नित्यद्रव्यरूप पदार्थके आश्रित हीं रहे है । ता नित्यद्रव्यकूं छोडिकै सो विशेष पदार्थ स्वतंत्र रहता नहीं । यातैं ते विशेष तथा नित्यद्रव्य दोनों अयुतसिद्ध कहे जावै हैं । पदकृत्य—यद्यपि तंतुआदिक अवयवोंके नाशतैं अनंतर एक क्षणपीछे हीं पटादिक अवयवीयोंका नाश होवै है । तथा घटपटादिक द्रव्यके नाशतैं अनंतर एक क्षण पीछे हीं रूपादिक गुणोंका तथा क्रियाका नाश होवै है । काहेतैं ? तंतुआदिक अवयवोंका नाश ता पटादिक अवयवीके नाशका कारण है। तथा ता गुणकर्मके आश्रयभूत घटपटादिक द्रव्यका नाश ता गुणकर्मके नाशका कारण है और कारण कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्व हीं विद्यमान होवै है । यातैं सो पटादिक अवयवी तथा रूपादिक गुण तथा कर्मरूप क्रिया एकक्षणपर्यंत ता उक्त तंतुघटपटादिक आश्रयतैं विना स्वतन्त्र हीं रहे हैं । तथापि जिस एकक्षणविषे ते पटादिक अवयवी तथा गुणकर्म स्वतंत्र रहे हैं। सो क्षण तिन अवयवी-आदिकोंकी विनाश अवस्था है । ता विनाश अवस्थाके निवृत्त करणे वास्तै हीं ता अयुत-सिद्धके लक्षणविषे 'अविनश्यत्' यह पद कथन कऱ्या है यातैं यह सिद्ध भया । घटपटा-दिक अवयवीयोंका कपालतंतुआदिक अवयवोंके साथि जो सम्बन्ध है तथा रूपादिक गुणोंका पृथिवीआदिक द्रव्योंके साथि जो सम्बन्ध है । तथा कर्मरूपक्रियाका पृथिवी-आदिक मूर्त्तद्रव्योंके साथि जो सम्बन्ध है। तथा घटत्व पटत्वादिक जातियोंका घटपटादिक व्यक्तियेंके साथि जो सम्बन्ध है । तथा विशेषपदार्थका नित्यद्रव्योंके साथि जो सम्बंध है। सो अयुतपदार्थोंका सम्बन्ध समवाय कह्या जावै है इति ।

समवायके रहणेके पदार्थ—इस प्रकारके उक्त दो लक्षणों करिकै लक्षित सो समवायपदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष इन पांच पदार्थोंविषे हीं विशेषणताख्य स्वरूप-सम्बन्ध करिकै रहे है समवायविषे तथा अभावविषे सो समवाय रहता नहीं ॥ समवायका एकत्व साधन—और सो समवाय तिन द्रव्यादिक पांचों पदार्थोंविषे एक हीं रहे है । काहेतैं ? ता एक हीं समवाय करिकै जो निर्वाह होइ सकै तौं नाना समवायके मानणे-विषे एक तौं गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है और दूसरा ता समवायके नानापणेका साधक कोई प्रमाण भी नहीं है, किंतु उलटा एकाकार अनुगत प्रतीतितैं सत्ताजातिकी न्यांई ता समवायकी एकता हीं सिद्ध होवै है सो दिखावै हैं । जैसे परस्परविलक्षण द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों पदार्थोंविषे 'द्रव्यं सत्, गुणः सन्, कर्म सत्' या प्रकारकी एकाकार अनुगतप्रतीति होवै है । सा एकाकार प्रतीति तिन द्रव्यादिक तीनोंविषे अनुगत एक सत्तारूप धर्मतैं विना सम्भ-

वती नहीं । यातैं ता अनुगतप्रतीतिके बलतैं तिन द्रव्य, गुण, कर्म तीनोंविषे एक हीं सत्ता-जाति कल्पना करी जावै है । तैसे परस्परविलक्षण द्रव्यगुणादिकोंविषे 'तंतुषु पटः समवेतः, कपालेषु घटः समवेतः, द्रव्ये गुणः समवेतः, कर्म समवेतं सामान्यं समवेतम्' या प्रकारकी एकाकार अनुगत प्रतीति होवै है । सा एकाकार प्रतीति तिन तंतुआदिकोंविषे अनुगत एक समवायतैं विना सम्भवती नहीं । यातैं ता अनुगतप्रतीतिके बलतैं तिन द्रव्यगुणादिक अयुत-सिद्ध पदार्थोंविषे सो एक हीं समवाय अंगीकार कऱ्या चाहिये । इस प्रकारकी युक्ति करिकै तिन अयुतसिद्ध पदार्थोंविषे सो एक हीं समवाय सिद्ध होवै है इति ॥

एक द्रव्यके समवेतोंकी दूसरेमें प्रतीति होनेकी शङ्का—ता समवायकूं जो एक मानोंगे तौं रूपतैं रहित वायुआदिकोंविषे भी 'रूपवान् वायुः' या प्रकारकी रूपवत्ता प्रतीति होणी चाहिये । काहेतैं ? पृथिवीआदिकोंविषे रह्या जो रूपका समवाय है । तथा ता वायुविषे रह्या जो स्पर्शका समवाय है । सो रूपका समवाय तथा स्पर्शका समवाय तुमारे मतविषे एक हीं है । यातैं तिन वायुआदिकोंविषे ता रूपसमवायके विद्यमानहूए ता रूपकी प्रतीति अवश्य होणी चाहिये सो होती नहीं । समाधान—रूपविशिष्ट समवायकी जा अधिकरणता है सा विशिष्टअधिकरणता हीं 'रूपवान् अयं' या प्रकारकी प्रतीतिका कारण होवै है । तहां तिन वायुआदिकोंविषे ता रूपगुणका अभाव होणेतैं सा रूपविशिष्ट समवायकी अधिकरणता है नहीं, किंतु स्पर्शादिविशिष्ट समवायकी अधिकरणता है । यातैं तिन वायुआदिकोंविषे 'रूपवान् अयं' या प्रकारकी प्रतीति होती नहीं । किंतु ता रूप-विशिष्ट समवायकी अधिकरणतावाले पृथिवी जल तेजविषे हीं सा रूपवत्ताप्रतीति होवै है । यातैं ता समवायके एक माननेविषे भी तिस तिस रूपादिविशिष्ट समवायकी अधिकरणता-वोंका भेद होणेतैं 'रूपवान् वायुः, स्पर्शवान् आकाशः, गन्धवत् जलं, क्रियावान् आत्मा' इत्यादिक प्रतीतियोंकी आपत्ति होवै नहीं इति ॥

समवायकी नित्यत्व सिद्धि—किंवा सो समवाय उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य है । जो कदाचित् ता समवायकूं अनित्य मानिये तौं जो जो भावकार्य होवै है सो सो समवायिकारण करिकै जन्य हीं होवै है । ता समवायिकारणतैं विना किसी भी भाव कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता समवायरूप भावकार्यका भी कोई समवायिकारण अवश्य मानणा होवैगा । तहां समवायसंबन्ध करिकै कार्यसंबद्ध द्रव्यकूं हीं समवायिकारणता होवै है । जैसे समवायसंबंध करिकै पटरूपकार्य संबद्ध तंतुवोंकूं हीं ता पटके प्रति समवायिकारणता होवै है । तैसे इहां प्रसंगविषे ता समवायरूप कार्यका जो समवायिकारण है सो समवायिकारण तिसी समवाय करिकै ता कार्यसंबद्ध हूआ तिस समवायके प्रति समवायिकारण होवै है । अथवा किसी अन्यसमवाय करिकै ता कार्यसंबद्ध हूआ ता समवायके प्रति समवायिकारण होवै है । तहां

जो प्रथमपक्ष अंगीकार करीये तौं ता समवायकी उत्पत्तिविषे ता समवायकी अपेक्षारूप आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवैंगी और दूसरापक्ष जो अंगीकार करीये तौं ता दूसरे समवायकूं भी ता प्रथमसमवायकी न्यांई कार्यरूप हीं मानणा होवैंगा । तथा ता दूसरे समवायका भी कोई समवायिकारण मानणा होवैंगा । ताके विषे भी यह विचार कऱ्या चाहिये । सो दूसरा समवाय भी किस समवाय करिकै आपणे समवायिकारणविषे संबद्ध होवै है आपणे करिकै संबद्ध होवै है । अथवा प्रथम समवाय करिकै संबद्ध होवै है । अथवा किसी तृतीयसमवाय करिकै संबद्ध होवे है । तहां प्रथमपक्षविषे तौं पूर्वकी न्यांई आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवैगी । और द्वितीय पक्षविषे परस्पर अपेक्षारूप अन्योन्याश्रय दोषकी प्राप्ति होवैंगी । और तृतीयपक्षविषे भी ता तृतीय समवायकूं ता प्रथमसमवायकी अपेक्षा मानणेविषे चक्रिका दोषकी प्राप्ति होवैंगी । और ता तृतीयसमवायकूं चतुर्थ समवायकी अपेक्षा ता चतुर्थ समवायकूं पंचम समवायकी अपेक्षा इस प्रकार आगे आगे समवायोंकी धारा मानणेविषे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैंगी । यातैं ता समवायका कोई समवायिकारण हीं संभवता नहीं । ता समवायिकारणके असंभवहूए ता समवायिकारणघटित असमवायिकारण भी संभवता नहीं । और ता समवायि असमवायिकारणतैं विना किसी भी भावकार्यकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं ता समवायकूं उत्पत्तितैं रहित हीं मान्या चाहिये । किंवा ता समवायका जो नाश मानिये तौं ता एक समवायके नाशदशाविषे आत्मादिक नित्य द्रव्य विषे द्रव्यत्वादिक जातियोंका विशिष्टअनुभव हीं नहीं होवैंगा । यातैं ता समवायकूं विनाशतैं भी रहित मान्या चाहिये । इस प्रकारतैं उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं सो समवाय नित्य हीं सिद्ध होवै है । इति । समवायके प्रत्यक्षपर वैशेषिक और नैयायिकोंका विचार—तहां पूर्व समवायकी एकता ता तथा नित्यता सिद्ध करी । ता समवायकी एकताविषे तथा नित्यताविषे वैशेषिकोंका तथा नैयायिकोंका परस्पर विवाद हैं नहीं । किंतु ते वैशेषिक तथा नैयायिक दोनों ता समवायकी एकताकूं तथा नित्यताकूं अंगीकार हीं करे हैं । परंतु ता समवायके प्रत्यक्षअप्रत्यक्षविषे तिन दोनोंका परस्परविवाद है तहां वैशेषिक तौं ता समवायकूं अतिइंद्रिय मानिकै केवल अनुमानप्रमाणका हीं विषय माने हैं । और नैयायिक तौं समवायकूं चक्षुआदिक सर्वइंद्रियों करिकै जन्यप्रत्यक्षका विषय माने हैं इति । तहां प्रथम वैशेषिकोंका अभिप्राय वर्णन—करे हैं । जिस संबंधके जितनैंकी प्रतियोगी अनुयोगीरूप संबंधी हैं । तिन सर्वसंबंधीयोंका प्रत्यक्ष हीं तिन सबधके प्रत्यक्ष विषे कारण होवै है । तिन सर्वसंबंधीयोंके प्रत्यक्षतैं विना ता सम्बन्धका प्रत्यक्ष होता नहीं और ता एक समवायके द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष यह सर्व संबंधी हैं । तिस सर्व संबंधीयोंका सर्वज्ञ ईश्वरतैं विना किसी भी जीवकूं प्रत्यक्ष होता नहीं । यद्यपि प्रत्यक्ष योग्य यत्किंचित् घटादिक संबंधीयोंका इस जीवकूं प्रत्यक्ष होवै है । तथापि परमाणु आकाशादिक अतिइंद्रिय

पदार्थोंका इस जीवकूं प्रत्यक्ष होता नहीं। और ते अतिइंद्रिय पदार्थ भी ता एक समवायके संबंधी हीं है। यातैं ता एक समवायके सर्व संबंधीयोंके अप्रत्यक्षहूए ता समवायका भी प्रत्यक्ष संभवता नहीं। किंवा ता संबंधके प्रत्यक्षविषे तिन सर्वसंबंधियोंके प्रत्यक्षकूं जो कारण नहीं मानिये किंतु यत्किंचित्‌संबंधीके प्रत्यक्षकूं हीं कारण मानिये तौं अतिइंद्रिय आकाशके साथि जो घटका संयोगसंबंध है ता संयोगसंबंधका भी प्रत्यक्ष होणा चाहिये। जिस कारणतैं ता संयोगके एकघटरूप संबंधीका लोकोंकूं प्रत्यक्ष हीं है परंतु दूसरे आकाशरूप संबंधीका लोकोंकूं प्रत्यक्ष है नहीं। और ता घटआकाशके संयोगका किसीकूं भी प्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं ता संबंधके प्रत्यक्षविषे तिन सर्वसंबंधीयोंके प्रत्यक्षकूं अवश्यकारण मान्या चाहिये। यातैं सो समवाय प्रत्यक्ष नहीं है, किंतु अतिइंद्रिय है अर्थात् सो समवाय किसी भी इंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानका विषय होता नहीं इति। समवायकी अतिन्द्रियताका अनुमान—किंवा ता समवायकी अति इंद्रियता केवल ता उक्त युक्ति करिकै हीं सिद्ध नहीं है, किंतु अनुमानप्रमाण कारिकै भी सिद्ध है। ता अनुमानका यह आकार है—**समवायः अतीन्द्रियः आत्मान्यत्वे सति असमवेतभावत्वात् आकाशादिवत्।** अर्थ यह—सो समवाय अतिइंद्रिय होणेयोग्य है, आत्मातैं अन्यहूआ असमवेत भावरूप होणेतैं। जो जो पदार्थ आत्मातैं अन्य होवै है तथा असमवेत होवै है तथा भावरूप होवै है सो सो पदार्थ अतिइंद्रिय हीं होवै है। जैसे आकाश आत्मातैं अन्य भी है तथा किसी भी पदार्थविषे समवायसंबंध करिकै नहीं वृत्ति होणेतैं असमवेत भी है तथा भावरूप भी है। यातैं सो आकाश अतिइंद्रिय हीं है। तैसे सो समवाय भी आत्मातैं अन्य भी है तथा असमवेत भी है तथा भावरूप भी है। यातैं ता आकाशकी न्यांई ता समवायकूं भी अतिइंद्रिय हीं मान्या चाहिये। पदकृत्य—तहां इस अनुमानविषे 'असमवेतभावत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'आत्मान्यत्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं आत्माविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? सो आत्मा नित्य द्रव्य होणेतैं किसी भी पदार्थविषे समवायसम्बन्ध करिकै रहता नहीं। यातैं सो आत्मा असमवेत भी है तथा भावरूप भी है, परंतु सो आत्मा अतिइंद्रिय नहीं है, किंतु मनरूप इंद्रिय करिकै जन्यप्रत्यक्षका विषय हीं है। यातैं ता अतिइंद्रियत्वरूप साध्यके अभाववाले आत्माविषे वृत्ति होणेतैं सो असमवेतभावत्वरूप हेतु व्यभिचारी हीं होवैगा। ता व्यभिचारदोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे 'आत्मान्यत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो आत्मा आत्मातैं अन्य है नहीं। यातैं ता आत्माविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं। किंवा ता उक्त अनुमानविषे 'आत्मान्यत्वे सति भावत्वात्' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे 'असमवेत' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होता। काहेतैं? ते घटादिक आत्मातैं अन्य भी हैं तथा भावरूप भी है। यातैं सो हेतु तौं तिन घटादिकोंविषे

है, परंतु सो अतिइंद्रियत्वरूप साध्य तिन घटादिकोंविषे है नहीं । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुविषे ' असमवेत ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते घटादिक असमवेत नहीं हैं किंतु कपालादिक अवयवोंविषे समवेत हीं हैं । यातैं तिन घटादिकोंविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं । किंवा ता अनुमानविषे ' आत्मान्यत्वे सति असमवेतत्वात् ' इतनामात्र हीं जो हेतु कहते ता हेतुविषे ' भाव ' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंके अभावविषे ता हेतुका व्यभिचार होता । काहेतैं ? सो अभाव आत्मातैं अन्य भी है तथा असमवेत भी है । यातैं सो हेतु तौं ता अभावविषे है। परंतु सो अतिइंद्रियत्वरूप साध्य ता अभावविषे है नहीं । जिस कारणतैं ता अभावका चक्षु आदिक इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष हीं होवै है । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता हेतुविषे ' भाव ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता अभावविषे भावरूपता है नहीं । यातैं ता अभावविषे ता उक्त हेतुका व्यभिचार होवै नहीं इति । अतीन्द्रिय समवायका अनुमान—इस प्रकारके अनुमान प्रमाण करिकै ता समवायविषे अतिइंद्रियपणा हीं सिद्ध होवै है । ऐसे अतिइंद्रिय समवायकी किसी भी इंद्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सिद्धि होती नहीं । किंतु धर्म अधर्मकी न्यांई ता अतिइंद्रिय समवायकी केवल अनुमानप्रमाण करिकै हीं सिद्धि होवै है। ता अनुमानका यह आकार है—रूपवान् घटः इति विशिष्टज्ञानं विशेषणविशेष्योभयसंबन्धविषयकं विशिष्टज्ञानत्वात् दण्डीति विशिष्टज्ञानवत् । अर्थ यह—यह घट रूपवाला है या प्रकारका जो विशिष्टज्ञान है सो विशिष्टज्ञान विशेषण विशेष्य दोनोंके संबंध विषयक होणेयोग्य है, विशिष्टज्ञान होणेतैं । जो जो विशिष्टज्ञान होवै है सो सो विशेषण विशेष्य दोनोंके संबंधविषयक हीं होवै है । जैसे ' दंडी पुरुषः ' यह विशिष्टज्ञान विशिष्टज्ञानरूप होणेतैं दंडरूप विशेषणके तथा पुरुषरूप विशेष्यके संयोगसंबंध विषयक हीं होवै है । तैसे ' रूपवान् घटः ' यह विशिष्टज्ञान भी ता रूपविशेषणके तथा घटरूप विशेष्यके संबंधविषयक हीं होवैगा । तहां दो द्रव्योंका हीं परस्परसंयोगसंबंध होवै है । द्रव्यगुणका संयोगसंबंध होता नहीं । यातैं ता रूपगुणका घटके साथि संयोगसंबंध तौं संभवता नहीं परिशेषतैं ता उक्त अनुमान करिकै ता विशिष्टज्ञानका विषयरूप करिकै सो समवाय हीं सिद्ध होवै है इति ।

समवायकूं प्रत्यक्ष माननेहारे नैयायिकोंका—तौं यह अभिप्राय है ' इह कपालेषु घटसमवायः, इह तन्तुषु पटसमवायः ' अर्थ यह—इन कपालोंविषे घटका समवाय है, तथा इन तन्तुवोंविषे पटका समवाय है । या प्रकारकी प्रतीति तिन कपालतन्तु आदिक अवयवोंविषे तिन घटपटादिक अवयवीयोंके समवायसंबंधकूं हीं विषय करे है। यातैं सो समवाय अतिइंद्रिय नहीं है, किंतु चाक्षुषादिक प्रत्यक्षज्ञानका हीं विषय है । किंवा ता वैशेषिकनैं संबंधके प्रत्यक्षविषे सर्वसंबंधियोंका प्रत्यक्ष कारण होवै है, या प्रकारका जो नियम अंगीकार कऱ्या था सो

नियम भी संबंधमात्रके प्रत्यक्षविषे नहीं है, किंतु केवल संयोगमात्रके प्रत्यक्षविषे हीं सो नियम है। अर्थात् संयोगसंबंधके प्रत्यक्षविषे ता संयोगके सर्वसंबंधीयोंका प्रत्यक्ष कारण होवै है। परंतु समवायके प्रत्यक्षविषे ता समवायके सर्वसंबंधीयोंका प्रत्यक्ष कारण होता नहीं। किंतु यत्किंचित् प्रतियोगी अनुयोगीरूप संबंधीके प्रत्यक्षतैं हीं ता समवायका प्रत्यक्ष होवै है। यातैं 'अयं घटः' यह चाक्षुषप्रत्यक्ष जैसे घटकूं तथा घटत्वजातिकूं विषय करे है तैसे ता घटघटत्वके समवायकूं भी विषय करे है। तैसे 'नीलो घटः' यह चाक्षुषप्रत्यक्ष भी नीलरूप विशेषणकूं तथा घटरूप विशेष्यकूं तथा तिन दोनोंके समवायकूं विषय करे है। इस प्रकार जिस जिस द्रव्यका जिस जिस इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तिस तिस द्रव्यवृत्ति गुणकर्मके समवायका तथा जातिके समवायका भी तिस तिस इंद्रिय करिकै हीं प्रत्यक्ष होवै है इति।

समवायकूं अनेक मानणेहारे नवीन—ईहां नवीन नैयायिकोंका तौं यह मत है सो समवाय संबंध एक नहीं है, किंतु नाना हैं। काहेतैं? पृथिवीविषे हीं गंधका समवाय है जलविषे ता गंधका समवाय नहीं है, इत्यादिक प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है। ता प्रतीतितैं ता समवाय-संबंधका नानापणा हीं सिद्ध होवै है। अर्थात् ता पृथिवीविषे गंधगुणका समवाय पृथक् है और जलविषे शीतस्पर्शका समवाय पृथक् है और तेजविषे उष्णस्पर्शका समवाय पृथक् है। इस प्रकार जिस जिस द्रव्यविषे जो जो गुण रहे है तथा जो जो कर्म रहे है तथा जा जा जाति रहे है तिस तिस द्रव्यविषे तिस तिस गुणका तथा तिस तिस कर्मका तथा तिस तिस जातिका सो समवायसंबंध पृथक्पृथक् हीं होवै है, इस रीतिसैं ते समवाय नाना हीं सिद्ध होवै हैं। इति।

नाश और अनित्यवादी प्रभाकर—ईहां मीमांसक प्रभाकरका यह मत है—सो उक्त समवाय नाना है तथा अनित्य है। काहेतैं? 'नीलो नष्टः, रक्त उत्पन्नः' यह प्रतीति नीलरूपके समवायके विनाशकूं विषय करे है तथा रक्तरूपके समवायकी उत्पत्तिकूं विषय करे है। यातैं ता प्रतीतिके बलतैं हीं ता समवायका अनित्यपणा तथा नानापणा सिद्ध होवै है इति॥

इसका खण्डन—सो यह प्रभाकरका मत असंगत है। काहेतैं? 'नीलो नष्टः, रक्त उत्पन्नः' इस उक्त प्रतीतिविषे ता समवायका उत्पत्तिनाश प्रतीत होता नहीं, किंतु ता नीलरक्तरूपका हीं उत्पत्तिविनाश प्रतीत होवै है। जो कदाचित् ता प्रतीतितैं समवायका हीं उत्पत्तिविनाश मानोंगे तौं 'घटो नष्टः' इस प्रतीतितैं भी ता घटके समवायका हीं विनाश सिद्ध होवैगा, ता घटका विनाश सिद्ध होवैगा नहीं। यातैं तिन नील रक्तादिकोंकी न्यांई ता घटकूं भी नित्यता सिद्ध होवैगी, सो घटकी नित्यता तुमारेकूं भी अंगीकार है नहीं इति॥

ईहां मीमांसक भट्टपादका—तौं यह मत है—जिन अवयवअवयवी गुणगुणी आदिक अयुत सिद्ध पदार्थोंका नैयायिकोंनैं समवायसंबंध अंगीकार कऱ्या है तिन अयुतसिद्ध पदार्थोंका

परस्पर स्वरूपसम्बन्ध हीं संभव होइ सकै है। और तिन नैयायिकोंनैं भी अभावादिकोंका सो स्वरूपसम्बन्ध हीं अंगीकार कर्‍या है। यातैं ता स्वरूपसम्बन्धतैं भिन्न तिन अयुतसिद्ध पदार्थोंका एक समवायसम्बंध अंगीकार करणा निष्फल है इति । इसका भी खण्डन—सो यह भट्टपादका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? द्रव्यगुणकर्मादिक अनेकस्वरूपोंविषे ता संबंधपणेकी कल्पना करणेविषे अतिगौरव दोषकी प्राप्ति होवै है। और ता एकसमवायविषे हीं तिन अयुत-सिद्ध पदार्थोंका संबंधपणा मानणेविषे लाघव है । यातैं गौरवदोष ग्रस्तहोणेतैं सो भट्टपादका मत समीचीन नहीं है ॥ इति समवायनिरूपणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

अभाव पदार्थ ।

अब सप्तम अभावपदार्थका निरूपण करे हैं। तहां लक्षण—**द्रव्यादिषट्कान्योन्याभाववान् अभावः**। अर्थ यह—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय इन षट् पदार्थोंका जो भेदरूप अन्योन्याभाव है ता अन्योन्याभाववाला पदार्थ अभाव कह्या जावै है। तहां तिन द्रव्यादिक षट् पदार्थोंका सो भेदरूप अन्योन्याभाव ता सप्तमपदार्थरूप अभावविषे हीं रहे है । अन्य-किसी पदार्थविषे रहता नहीं । यद्यपि एक द्रव्यपदार्थविषे गुणादिक पंच पदार्थोंका भेद रहे है तथापि ता द्रव्यविषे द्रव्यका भेद रहता नहीं । इस प्रकार गुणकर्मादिकोंविषे भी द्रव्यादिक पंच पदार्थोंका भेद तौं रहे है, परन्तु आपणा भेद आपणेविषे रहता नहीं। यातैं तिन द्रव्यादिक षट् पदा-र्थोंका भेद केवल एक अभावपदार्थविषे हीं रहे है। यातैं यह उक्त अभावका लक्षण संभवै है इति।

अथवा ता अभावका यह दूसरा लक्षण करणा—**निषेधमुखप्रतीतिविषयः अभावः**। अर्थ यह—जो पदार्थ निषेधमुख प्रतीतिका विषय होवै है सो पदार्थ अभाव कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां 'भूतले घटो नास्ति, घटो न पटः' इत्यादिक जे निषेधमुख प्रतीतियां हैं ते प्रतीतियां भूतला-दिकोंविषे घटादिकोंके अभावकूं हीं विषय करे हैं। यातैं सो निषेधमुख प्रतीतिका विषयत्व-रूप अभावका लक्षण भी संभवै है। तहां अभाववाचक नकारादिक शब्दजन्य प्रतीतिका नाम निषेधमुख प्रतीति होवै है इति ॥

अथवा ता अभावका यह तीसरा लक्षण करणा—**संबन्धसादृश्यादिभिन्नत्वे सति प्रति-योगिज्ञानाधीनज्ञानविषयः अभावः**। अर्थ यह—जो पदार्थ संबंधतैं तथा सादृश्यतैं भिन्न होवे है तथा प्रतियोगीविषयक ज्ञानके अधीन जो ज्ञान है ता ज्ञानका विषय होवै है सो पदार्थ अभाव कह्या जावै है । तहां भूतलादिकोंविषे रह्या हूआ जो घटपटादिकोंका अभाव है सो अभाव संयोग समवायरूप सम्बन्धतैं भिन्न भी है । तथा शुक्तिआदिकोंविषे रह्या हूआ जो घटादिकोंका सादृश्य है ता सादृश्यतैं भी भिन्न है। और प्रतियोगीके ज्ञानतैं विना अभावका ज्ञान होता नहीं। यातैं घटपटादिरूप प्रतियोगीके ज्ञान करिकै जन्य जो 'घटा भाववत् भूतलम्, इत्यादिक ज्ञान हैं ता ज्ञानका सो अभाव विषय भी है। यातैं ता अभावका

यह उक्त तृतीयलक्षण भी संभवै है । पदकृत्य—तहां इस लक्षणविषे 'संबन्धसादृश्यादिभिन्नत्वे सति' यह पद जो नहीं कथन करते तौं ता अभावके लक्षणकी ता संयोगसमवायरूप संबन्धविषे तथा ता सादृश्यविषे अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे ता अभावके ज्ञानविषे ता अभावके प्रतियोगीका ज्ञान कारण होवै है तैसे ता संयोगसमवायरूप संबंधके ज्ञानविषे भी ता संबन्धके प्रतियोगीका ज्ञान कारण होवै है । तैसे ता शुक्तिनिष्ठ सादृश्यके ज्ञानविषे भी ता सादृश्यके प्रतियोगीरूप रजतका ज्ञान कारण होवै है । ता प्रतियोगीके ज्ञानतैं विना ता संबन्ध सादृश्यका ज्ञान होता नहीं । यातैं ता अभावकी न्यांई ता संबंधसादृश्यविषे भी प्रतियोगीज्ञानके अधीन ज्ञानका विषयपणा है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संबंधसादृश्यादिभिन्नत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तहां आपणा भेद आपणेविषे रहता नहीं । यातैं ता संबंधविषे तौं संबंधका भेद नहीं है । और ता सादृश्यविषे सादृश्यका भेद नहीं हैं । यातैं ता संबंधविषे तथा सादृश्यविषे ता अभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

अभावके भेद—इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणों करिकै लक्षित सो अभाव पदार्थ संसर्गाभाव १, अन्योन्याभाव २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । संसर्गाभावके भेद—तहां प्रथम संसर्गाभाव तौं प्राचीननैयायिकोंके मतविषे प्रागभाव १, प्रध्वंसाभाव २, अत्यन्ताभाव ३, सामयिकाभाव ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै है । नवीनोंके यहां तीन भेद—और नवीनतार्किक ता सामयिकाभावकूं मानते नहीं । यातैं तिनोंके मतविषे सो संसर्गाभाव तीन प्रकारका हीं होवै है । प्राचीनोंके यहां अभावकी संख्या—और दूसरा भेदरूप अन्योन्याभाव एक प्रकारका हीं होवै है यातैं प्राचीनोंके मतविषे तौं सो अभावपदार्थ—प्रागभाव १, प्रध्वंसाभाव २, अत्यन्ताभाव ३, सामयिकाभाव ४, अन्योन्याभाव ५ इस भेद करिकै पांचप्रकारका होवै है ।

नवीनोंके मतविषे अभावकी संख्या—नवीनोंके मतविषे तौं सो अभावपदार्थ प्रागभाव १, प्रध्वंसाभाव २, अत्यताभाव ४, अन्योन्याभाव ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है इति। संसर्गाभावका लक्षण—तहां **अन्योन्याभावभिन्नोऽभावः संसर्गाभावः** । अर्थ यह—अन्योन्याभावतैं भिन्न जो अभाव है सो अभाव संसर्गाभाव कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां 'अभावः संसर्गाभावः' इतनामात्र हीं जो ता संसर्गाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अन्योन्याभावभिन्नः' यह पद नहीं कथन करते तौं अन्योन्याभावविषे ता संसर्गाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अन्योन्याभावभिन्नः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां अन्योन्याभावका भेद ता अन्योन्याभावविषे रहता नहीं किंतु ता संसर्गाभावविषे हीं ता अन्योन्याभावका भेद रहे है । यातैं ता अन्योन्याभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'अन्योन्याभावभिन्नः संसर्गाभावः' इतनामात्र हीं जो ता संसर्गाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अभाव' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता

लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो संसर्गाभाव ता अन्योन्याभावतैं भिन्न होवै है । तैसे ते घटादिक भी ता अन्योन्याभावतैं भिन्न हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अभाव' यह पद कथन कन्या है । तहां तिन घटादिकोंविषे अभावरूपता है नहीं यातैं तिन घटादिकोंविषे ता संसर्गाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

प्रागभाव—अब पूर्व उक्त प्रागभावादिक पांचप्रकारके अभावविषे प्रथम प्रागभावका वर्णन करे हैं। तहां लक्षण—विनाश्यभावः प्रागभावः। अर्थ यह—जो अभाव विनाशवाला होवै है सो अभाव प्रागभाव कह्या जावै है। तहां पटादिक कार्योंकी उत्पत्तितैं पूर्व तिन पटादिक कार्योंके समवायिकारणरूप तंतुआदिकोंविषे तिन पटादिक कार्योंका प्रागभाव रहे है। सो प्रागभाव तिन पटादिक कार्योंके उत्पन्नहूए नाश होइ जावै है। यातैं सो प्रागभाव विनाशी भी है तथा अभावरूप भी है।

पदकृत्य—तहां 'विनाशी प्रागभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रागभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अभावः' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे, सो प्रागभाव विनाशी है, तैसे ते घटादिक भी विनाशी हीं हैं, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अभावः' यह पद कथन कन्या है । तहां तिन घटादिकोंविषे अभावरूपता है नहीं, किंतु भावरूपता है । यातैं तिन घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'अभावः प्रागभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रागभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विनाशी' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रध्वंसाभावादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता प्रागभावकी न्यांई तिन प्रध्वंसाभावादिकोंविषे भी अभाव रूपता हीं है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विनाशी' यह पद कथन कन्या है। तहां तिन प्रध्वंसादिक अभावोंविषे सो विनाशीपणा है नहीं । किंतु अविनाशीपणा है । यातैं तिन अभावोंविषे ता प्रागभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । यद्यपि इस उक्त प्रागभावके लक्षणकी उत्पत्ति विनाशवाले सामयिकाभावविषे अतिव्याप्ति हीं होवै है तथापि जे नवीनतार्किक ता सामयिकाभावकूं नहीं अंगीकार करे हैं। तिनोंके मतके अनुसार हीं सो प्रागभावका लक्षण कन्या है ॥

सामयिकाभावको माणनेहारोंका प्रागभावका लक्षण—और जे प्राचीननैयायिक ता सामयिकाभावकूं अंगीकार करे हैं ते तौं ता प्रागभावका यह लक्षण करे हैं—अनादिः सान्तः प्रागभावः । अर्थ यह—जो अभाव अनादि होवै है। अर्थात् उत्पत्तितैं रहित होवै है तथा सान्त होवै है अर्थात् नाशरूप अंतवाला होवै है, सो अभाव प्रागभाव कह्या जावै है ॥

पदकृत्य—तहां 'अनादिः प्रागभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रागभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'सान्तः' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणु आकाशादिक नित्यपदार्थोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता प्रागभावकी न्यांई ते परमाणुआकाशा-

दिक नित्यपदार्थ भी उत्पत्तितैं रहित होणेतैं अनादि हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'सान्तः' यह पद कथन कन्या है। तहां ते परमाणुआकाशादिक नित्यपदार्थ ता नाशरूप अन्तवाले नहीं हैं किंतु अनन्त हैं। यातैं तिन परमाणुआकाशादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'सान्तः प्रागभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रागभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अनादिः' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे तथा सामयिकाभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ता प्रागभावकी न्यांई ते घटादिक भी तथा सो सामयिकाभाव भी नाशवान् हीं हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अनादिः' यह पद कथन कन्या है। तहां ते घटादिक तथा सामयिकाभाव अनादि नहीं हैं किन्तु उत्पत्तिवाले हीं हैं। यातैं तिन घटादिकोंविषे तथा ता सामयिकाभावविषे ता प्रागभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

अथवा ता प्रागभावका यह तीसरा लक्षण करणा—**प्रतियोगिजनकाभावः प्रागभावः।** अर्थ यह—आपणे प्रतियोगीका जनक जो अभाव है सो अभाव प्रागभाव कह्या जावै है। जैसे पटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता पटका आपणे समवायिकारणरूप तंतुवोंविषे प्रागभाव रहे है सो प्रागभाव हीं ता पटरूप प्रतियोगीका निमित्तकारण होणेतैं जनक होवै है। इस प्रकार जिस जिस कार्यकी उत्पत्ति होवै है तिस तिस कार्यका प्रागभाव हीं तिस तिस कार्यका जनक होवै है ता प्रागभावतैं विना किसी भी कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं। यातैं ता प्रागभावका यह उक्त तृतीयलक्षण भी सम्भवै है। पदकृत्य—तहां प्रध्वंसादिक अभाव आपणे प्रतियोगीके जनक होते नहीं। यातैं 'प्रतियोगिजनक' इस पदके कहणे करिकै तिन प्रध्वंसादिक अभावोंविषे ता प्रागभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति॥

प्रागभावके रहणेका सम्बन्ध तथा आश्रय—इस प्रकारके उक्त तीन लक्षणों करिकै लक्षित सो प्रागभाव आपणे प्रतियोगीके समवायिकारणविषे हीं स्वरूपसम्बन्ध करिकै रहे है। जैसे पटका प्रागभाव ता पटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता पटरूप प्रतियोगीके समवायिकारणरूप तन्तुवोंविषे हीं स्वरूपसंबंध करिकै रहे है। तथा घटका प्रागभाव ता घटरूप प्रतियोगीके समवायिकारणरूप कपालेंविषे हीं स्वरूपसंबंध करिकै रहे है। इस प्रकार तिस तिस गुणकर्मादिरूप कार्यका प्रागभाव तिस तिस गुणकर्मादिरूप प्रतियोगीके समवायिकारणरूप द्रव्यविषे हीं स्वरूपसंबंध करिकै रहे है। और सो प्रागभाव उत्पत्तितैं रहित होणेतैं अनादि हूआ भी नाशवान् होवै है। अर्थात् तिस तिस द्रव्यगुणकर्मादिरूप कार्यके उत्पन्नहूए तिस तिस कार्यका प्रागभाव नाश होइ जावै है। तहां तिस तिस कार्यके उत्पत्तिकी जा कारण सामग्री है सा कारण सामग्री हीं तिस तिस कार्यके प्रागभावका नाशक होवै है। यातैं तिस तिस कार्यकी उत्पत्तिक्षणविषे हीं तिस तिस कार्यका प्रागभाव नाश होइ जावै है इति।

**शंका**—तिन कपालादिकोंविषे घटादिक कार्योंका प्रागभाव रहे है । इस विषे कौन प्रमाण है ? **समाधान**—'इह कपाले घटो भविष्यति, इह तन्तुषु पटो भविष्यति' अर्थ यह—इन कपालोंविषे घट उत्पन्न होवैगा, तथा इन तंतुवोंविषे पट उत्पन्न होवैगा । या प्रकारकी प्रतीति सर्वलोकोंकूं होवै है । सा प्रत्यक्षप्रतीति तिन कपालतंतुवोंविषे स्थित ता घटपटके प्रागभावकूं हीं विषय करे है । यद्यपि सा उक्त प्रतीति ता घटपटके भविष्यत्त्वकूं हीं विषय करे है, तथापि वर्त्तमान प्रागभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम भविष्यत्त्व है । यह वार्त्ता ता द्वितीयपरिच्छेदविषे कालके निरूपणविषे कथन करि आये हैं । यातैं सा उक्तप्रतीति ता प्रागभावकूं हीं विषय करे है । यातैं ता प्रागभावविषे सो लौकिकप्रत्यक्ष हीं प्रमाण है इति ।

प्रागभावकी आवश्यकता—किंवा ता प्रागभावकूं जो नहीं अंगीकार करिये तौं एकवार उत्पन्न हूए घटकी पुनः उत्पत्ति होणी चाहिये । काहेतैं ? ता घटके जितनैंकी कपाल संयोग कुलाल दंड चक्र इत्यादिक कारण सामग्री है सा सर्व कारणसामग्री ता घटकी उत्पत्ति-क्षणविषे विद्यमान हीं है । ता कारणसामग्रीतैं ता घटकी पुनः उत्पत्ति अवश्य होणी चाहिये, सो होती नहीं । और ता प्रागभावके अंगीकार कीयेहूए सो उक्तदोष प्राप्त होता नहीं । काहेतैं? ता घटकी उत्पत्तिकालविषे सो घटका प्रागभाव नाश होइ जावै है । यातैं दूसरे कपाल दंड चक्रादिक सर्वकारणोंके विद्यमान हूए भी ता प्रागभावरूप कारणका अभाव होणेतैं ता उत्पन्न हूए घटकी पुनः उत्पत्ति होती नहीं । यातैं उत्पन्नहूए कार्यकी पुनः उत्पत्तिके निवृत्त करणे-वासतै सो प्रागभाव अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये इति ।

प्रागभावविषे अनुमान प्रमाण—इतनैं कहणे करिकै ता प्रागभावविषे यह अनुमान प्रमाण बोधन कऱ्या । **अयं घटः स्वोत्पत्तिक्षणावृत्तिकारणजन्यः स्वोत्पत्तिद्वितीयक्षणानुत्पन्न-त्वात्** । अर्थ यह—यह घट आपणे उत्पत्तिक्षणविषे नहीं वर्त्तणेहारे ऐसे किसी कारण करिकै जन्य होणे योग्य है, आपणी उत्पत्तितैं द्वितीयक्षणविषे अनुत्पन्न होणेतैं । तहां ता घटकी उत्पत्ति क्षणविषे ता प्रागभावतैं भिन्न दूसरे कपालदंडचक्रादिक सर्वकारण विद्यमान नहीं हैं । यातैं तिन कपालदिक कारणोंकी तौं ता अनुमान करिकै सिद्धि होती नहीं । परिशेषतैं ता घटकी उत्पत्तिक्षणविषे अवृत्ति ता प्रागभावकी हीं ता घटका कारणरूप करिकै सिद्धि होवै है इति ।

ईहां प्रागभावको न मानणेहारे नवीन तार्किक—तौं यह कहे हैं । इस कालविषे इन कपालोंविषे घटका प्राणभाव है, या प्रकारकी प्रागभावविषयक प्रतीति तौं सर्वलोकोंकूं होती नहीं । यातैं ता प्रागभावविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । जो कदाचित् तिन कपालोंविषे ता घटके प्राग-भावका प्रत्यक्ष होता होवै तौं न्यायशास्त्रके संस्कारोंतैं हीन सर्व लोकोंकूं तिस कपालोंकी न्यांई ता प्रागभावका भी प्रत्यक्ष होणा चाहिये, सो होता नहीं । किंवा तिन प्राचीनोंनैं 'इह

कपाले घटो भविष्यति ' या प्रकारकी प्रतीति जो प्रागभावविषे प्रमाण कही थी सो भी असंगत है । काहेतैं ? ता घटविषे जो वर्त्तमानकालतैं उत्तरकालविषे वृत्तित्व है यह हीं ता घटविषे भविष्यत्व है । यातैं ता उक्तप्रतीतितैं ता प्रागभावकी सिद्धि संभवती नहीं । किंवा तिन प्राचीन नैयायिकोंनैं उत्पन्न हूए घटकी पुनः उत्पत्तिके निवृत्त करणे वासतै जो प्रागभावकूं अंगीकार कऱ्या था सो भी असंगत है । काहेतैं ? जिन अवयवोंविषे जो द्रव्य समवायसम्बंध करिकै रहे है सो द्रव्य हीं तिन अवयवोंविषे समवायसंबंध करिकै दूसरे द्रव्यकी उत्पत्तिका प्रतिबंधक होवै है । यातैं तिन कपालोंविषे समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ सो घट हीं ता घटकी पुनः उत्पत्तिविषे प्रतिबंधक होवै है । इस प्रकार तिस घटकी पुनः उत्पत्तिविषे तिस घटकूं प्रतिबंधकता मानणे करिकै हीं ता उत्पन्नहूए घटकी पुनः उत्पत्तिका निवारण होइ सकै है यातैं ता प्रागभावकूं घटादिकोंका कारण मानणा निष्फल है इति । उनका खण्डन—सो यह नवीनतार्किकोंका मत समीचीन नहीं है । काहेतैं ? ता घटकी पुनः उत्पत्तिविषे जो तिस घटकूं प्रतिबंधक मानोंगे तौं ता प्रतिबंधक घटके संसर्गाभावकूं ता घटकी उत्पत्तिविषे अवश्यकारण मानणा होवैगा । यातैं ता प्रतिबंधक घटके संसर्गाभावरूप करिकै ता प्रागभावकूं हीं ता घटके प्रति कारणता प्राप्त होवै है । यातैं घट्टकुटीप्रभातन्याय करिकै तुम नवीनोंकूं भी सो प्रागभाव अवश्य मानणा होवै है इति ।

प्रागभावके ध्वंसका स्वरूप—किंवा कपालोंविषे रह्या हूआ जो घटका प्रागभाव है ता प्रागभावका ता घटरूप प्रतियोगीकी उत्पत्तिक्षणविषे नाश होइ जावै है । सो घटके प्रागभावका नाशरूपध्वंस ता घटके विद्यमान कालविषे तौं ता घटस्वरूप हीं होवै है । और ता घटका जबी ध्वंस होवै है तबी सो घटके प्रागभावका ध्वंस ता घटके ध्वंसस्वरूप होवै है । काहेतैं ? ता घटप्रागभावके ध्वंसकूं ता घटरूप प्रतियोगीतैं तथा ता घटरूप प्रतियोगीके ध्वंसतैं भिन्न कल्पना करणेविषे एक तौं कोई प्रमाण है नहीं, किंतु उलटा गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है । और दूसरा ता घटरूप प्रतियोगीकालविषे तथा ता घटरूप प्रतियोगीके ध्वंसकालविषे ' विनष्टो घटप्रागभावः ' या प्रकारकी ता घटप्रागभावके ध्वंसकूं विषय करणेहारी प्रतीति भी होवै है । यातैं ता प्रागभावके ध्वंसकूं स्वप्रतियोगिप्रतियोगिस्वरूप तथा स्वप्रतियोगिप्रतियोगिध्वंसस्वरूप अवश्य मान्या चाहिये । ईहां दोनों स्वशब्दों करिकै ता प्रागभावके ध्वंसका ग्रहण करणा ता ध्वंसका प्रतियोगी जो घटादिकोंका प्रागभाव है ता प्रागभावके प्रतियोगी ते घटादिक हैं । इति ।

अब दूसरे प्रध्वंसाभावका निरूपण—करे है तहां । लक्षण—उत्पत्तिमान् अभावः प्रध्वंसाभावः । अर्थ यह—जो अभाव उत्पत्तिवाला होवै है सो अभाव प्रध्वंसाभाव कह्या जावै है । तहां घटादिक कार्योंकी उत्पत्तितैं अनंतर मुद्गरप्रहारादिक निमित्तकारण करिकै जो तिन घटादिकोंका विनाश होवै है ता विनाशका नाम प्रध्वंसाभाव है, सो प्रध्वंसाभाव उत्पत्तिवाला भी

है तथा अभावरूप भी है। यातैं यह उक्त प्रध्वंसाभावका लक्षण संभवै है। पदकृत्य—तहां 'अभावः प्रध्वंसाभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रध्वंसाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'उत्पत्तिमान्' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रागभावादिक सर्व अभावोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ता प्रध्वंसाभावकी न्यांई तिन प्रागभावादिकोंविषे भी अभावरूपता हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'उत्पत्तिमान्' यह पद कथन कर्‍या है, तहां ते प्रागभावादिक उत्पत्तिवाले नहीं हैं। यातैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'उत्पत्तिमान् प्रध्वंसाभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रध्वंसाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अभावः' यह पद नहीं कथन करते तौं घटपटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? ता प्रध्वंसाभावकी न्यांई ते घटपटादिक भी उत्पत्तिवाले हीं है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अभावः' यह पद कथन कर्‍या है। तहां तिन घटपटादिकोंविषे अभावरूपता है नहीं किंतु भावरूपता है। यातैं तिन घटादिकोंविषे ता प्रध्वंसाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। यद्यपि इस उक्त प्रध्वंसाभावके लक्षणकी वक्ष्यमाण उत्पत्तिवाले सामयिकाभावविषे अतिव्याप्ति हीं होवै है। तथापि ता सामयिकाभावकूं नहीं अंगीकार करणेहारे नवीन तार्किकोंके मतके अनुसार हीं सो उक्तलक्षण कथन कर्‍या है।

प्राचीनोंका प्रध्वंसाभावका लक्षण—और जे प्राचीन नैयायिक ता सामयिकाभावकूं अंगीकार करे हैं ते प्राचीन तौं ता प्रध्वंसाभावका यह लक्षण करे हैं। **उत्पत्तिमान् अनन्तः प्रध्वंसाभावः।** अर्थ यह—जो अभाव उत्पत्तिवाला होवै है तथा नाशरूप अन्ततैं रहित होवै है। सो अभाव प्रध्वंसाभाव कह्या जावै है। तहां पूर्व रीतिसैं सो प्रध्वंसाभाव उत्पत्तिवाला भी है। और ता ध्वंसका ध्वंस होता नहीं यातैं सो प्रध्वंसाभाव ता नाशरूप अन्ततैं रहित भी है। यातैं यह उक्त प्रध्वंसाभावका लक्षण भी संभवै है। पदकृत्य—तहां 'अनन्तः प्रध्वंसाभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रध्वंसाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'उत्पत्तिमान्' यह पद नहीं कथन करते तौं परमाणुआकाशादिक नित्यपदार्थोंविषे तथा अत्यन्ताभाव अन्योन्याभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ते परमाणुआकाशादिक ता प्रध्वंसाभावकी न्यांई ता नाशरूप अन्ततैं रहित हीं हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'उत्पत्तिमान्' यह पद कथन कर्‍या है। तहां ते परमाणु आकाशादिक उत्पत्तिवाले हैं नहीं, किंतु उत्पत्ति विनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हीं हैं। यातैं तिन परमाणुआकाशादिकोंविषे तथा अत्यन्ताभाव अन्योन्याभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'उत्पत्तिमान् प्रध्वंसाभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रध्वंसाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अनन्तः' यह पद न कथन करते तौं घटपटादिकोंविषे तथा सामयिकाभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस

कारणतैं ता प्रध्वंसाभावकी न्यांई ते घटपटादिक तथा सो सामयिकाभाव भी उत्पत्तिवाला हीं है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अनन्तः' यह पद कथन कन्या है । तहां ते घटादिक तथा सामयिकाभाव अनन्त नहीं हैं, किंतु नाशरूप अन्तवाले हीं है, यातैं तिन घटादिकोंविषे तथा ता सामयिकाभावविषे ता प्रध्वंसाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । अथवा ता प्रध्वंसाभावका यह तीसरा लक्षण—करणा—**अविनाशित्वे सति प्रतियोगिसमवायिमात्रवृत्त्यभावः प्रध्वंसाभावः ।** अर्थ यह—जो अभाव अविनाशी होवै है सो अर्थात् विनाशतैं रहित होवै है, तथा आपणे प्रतियोगीके समवायिकारणमात्रविषे रहे है, सो अभाव प्रध्वंसाभाव कह्या जावै है । तहां सो घटका प्रध्वंसाभाव अविनाशी भी है तथा आपणे घटरूपप्रतियोगीके समवायिकारणरूप कपालमात्रविषे हीं रहे है अर्थात् ता घटके भग्नहूएतैं अनंतर जे ता घटके अवयवरूप कपाल रहे हैं, तिन कपालोंविषे हीं सो घटका प्रध्वंसाभाव विशेषणताख्य स्वरूपसंबंध करिकैं रहे है । इस प्रकार जिस जिस द्रव्यगुणकर्मादिकोंका जो जो प्रध्वंसाभाव होवै है सो सो प्रध्वंसाभाव तिस तिस द्रव्यगुणकर्मके समवायिकारणरूप द्रव्यविषे हीं स्वरूपसम्बन्ध करिकै रहे है । यातैं ता प्रध्वंसाभावका यह उक्त तीसरा लक्षण भी संभवै है । पदकृत्य—तहां 'प्रतियोगिसमवायिमात्रवृत्त्यभावः प्रध्वंसाभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रध्वंसाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अविनाशित्वे सति' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रागभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे ता घटके भग्नहूएतैं अनंतर सो घटका प्रध्वंसाभाव ता घटरूप प्रतियोगीके समवायिकारणरूप कपालमात्रविषे रहे है । तैसे ता घटकी उत्पत्तितैं पूर्व सो घटका प्रागभाव भी ता घटरूप प्रतियोगीके समवायिकारणरूप कपालमात्रविषे हीं रहे है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अविनाशित्वे सति' यह पद कथन कन्या है । तहां सो प्रागभाव अविनाशी नहीं है, किंतु नाशवान् है । यातैं ता प्रागभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'अविनाशित्वे सति प्रतियोगिसमवायिवृत्त्यभावः प्रध्वंसाभावः' इतनामात्र हीं जो ता प्रध्वंसाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'मात्र' यह पद नहीं कथन करते तौं अन्योन्याभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ता घटके प्रध्वंसाभावकी न्यांई सो घटका भेदरूप अन्योन्याभाव भी ता घटरूप प्रतियोगीके समवायिकारणरूप कपालोंविषे रहे है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'मात्र' यह पद कथन कन्या है । तहां सो घटका अन्योन्याभाव केवल ता कपालमात्रविषे हीं नहीं रहे है, किंतु पटादिकोंविषे भी रहे है । यातैं ता अन्योन्याभावविषे ता प्रध्वंसाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

प्रमाणकी शंका—ता उक्त प्रध्वंसाभावविषे कौन प्रमाण है ? साधक प्रतीतिसैं समाधान—मुद्गरप्रहारादिकों करिकै तिन घटादिकोंके नाशहूएतैं अनंतर तहां तिन घटादिकोंके कपालादिक

अवयवोंकूं देखिकै ' अत्र घटो ध्वस्तः अत्र घटो विनष्टः ' या प्रकारकी लोकोंकूं प्रतीति होवै है। सा प्रत्यक्षप्रतीति ता घटके प्रध्वंसाभावकूं हीं विषय करे है। यातैं सो प्रध्वंसाभाव ता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै हीं सिद्ध है इति।

कार्यरूप प्रध्वंसाभावको प्रागभावसैं जन्यता—किंवा जो जो कार्य होवै है सो सो प्रागभाव करिकै जन्य हीं होवै है, ता प्रागभावतैं विना किसी भी कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं। सा कार्यरूपता जैसे घटादिकोंविषे है, तैसे ता प्रध्वंसाभावविषे भी सा कार्यरूपता है। यातैं घटादिक भाव कार्योंकी न्यांई सो प्रध्वंसाभावरूप कार्य भी आपणे प्रागभाव करिकै हीं जन्य होवैंगा। प्रध्वंसाभावके प्रागभावका स्वरूप—तहां सो प्रध्वंसाभावका प्रागभाव ता प्रध्वंसाभावके प्रतियोगीके विद्यमानकालविषे तौं ता प्रतियोगीस्वरूप होवै है और ता प्रतियोगीकी उत्पत्तितैं पूर्व ता प्रतियोगीके प्रागभावस्वरूप होवै है। जैसे घटके प्रध्वंसाभावका प्रागभाव ता घटके विद्यमानकालविषे तौं ता घटस्वरूप हीं होवै है। और ता घटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता घटके प्रागभावस्वरूप होवै है। काहेतैं ? ता घटध्वंसके प्रागभावकूं ता घटस्वरूप प्रतियोगीतैं तथा ता घटके प्रागभावतैं अतिरिक्त कल्पना करणेविषे एक तौं कोई प्रमाण नहीं हैं, किंतु उलटा गौरव दोषकी हीं प्राप्ति होवै है। और दूसरा ता घटके विद्यमानकालविषे तथा ता घटके प्रागभावके विद्यमानकालविषे ' घटध्वंसो भविष्यति' या प्रकारकी ता घटध्वंसके प्रागभावकूं विषय करणेहारी प्रतीति भी होवै है। यातैं ता प्रध्वंसाभावके प्रागभावकूं स्वप्रतियोगिप्रतियोगिस्वरूप तथा स्वप्रतियोगिप्रतियोगिप्रागभावस्वरूप अवश्य मान्या चाहिये। ईहां दोनों स्वशब्दों करिकै ता घटध्वंसके प्रागभावका ग्रहण करणा। ता प्रागभावका प्रतियोगी सो घटका प्रध्वंसाभाव है ता प्रध्वंसाभावका प्रतियोगी सो घट है इति।

प्रागभावकी अनादिता तथा प्रध्वंसाभावकी नित्यतापर शंका—पूर्वउक्त प्रागभावकूं जो अनादि नहीं मानिये किंतु उत्पत्तिवाला मानिये। तथा ता प्रध्वंसाभावकूं जो अनंत नहीं मानिये, किंतु नाशवान् मानिये तौं क्या हानि होवै है ? । समाधान—ता प्रागभावकूं जो अनादि नहीं मानिये किंतु उत्पत्तिवाला मानिये तौं घटादिकोंकी न्यांई ता प्रागभावका भी कोई प्रागभाव अंगीकार करणा होवैंगा। तैसे ता प्रध्वंसाभावकूं जो अनंत नहीं मानिये, किंतु नाशवान् मानिये तौं घटादिकोंकी न्यांई ता प्रध्वंसाभावका भी कोई ध्वंस अंगीकार करणा होवैंगा। ताके अंगीकार कीयेहूए ता प्रागभावके प्रागभावकालविषे तथा ता ध्वंसके ध्वंसकालविषे घटादिक प्रतियोगियोंके उन्मज्जनकी प्राप्ति होवैंगी। काहेतैं ? यह नियम देखणे विषे आवै है—ध्वंसप्रागभावानधिकरणकालस्य प्रतियोग्यधिकरणत्वनियमात्। अर्थ यह—जो काल जिस वस्तुके ध्वंसका भी अधिकरण नहीं होवै है तथा प्रागभावका भी अधिकरण नहीं होवै है सो काल ता वस्तुरूप प्रतियोगीका हीं अधिकरण होवै है। जैसे घटकी उत्पत्तिक्षणतैं लैके ता

घटके विनाशक्षणपर्यंत जितनाकी ता घटके स्थितिका काल है, सो काल ता घटके प्रागभावका भी अधिकरण नहीं है। जिस कारणतैं सो घटका प्रागभाव ता घटके उत्पत्तिक्षणविषे हीं नष्ट होइ गया है, तथा सो काल ता घटके ध्वंसका भी अधिकरण नहीं है। जिस कारणतैं सो घटका ध्वंस आगे उत्पन्न होणेहारा है। इस प्रकार ता घटके ध्वंसका तथा प्रागभावका अनधिकरण होणेतैं सो काल ता घटरूप प्रतियोगीका हीं अधिकरण हूआ देखणेविषे आवै है। तैसे जिस कालविषे सो घटके प्रागभावका प्रागभाव रहैंगा। सो काल भी ता घटके प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका अनधिकरण हीं होवैंगा। यातैं तिस कालविषे भी ता घटरूप प्रतियोगीका अवश्य उन्मज्जन होणा चाहिये। इस प्रकार जिस कालविषे सो घटके ध्वंसका ध्वंस रहैंगा। सो काल भी ता घटके प्रागभावका तथा ध्वंसका अनधिकरण हीं होवैंगा। यातैं ता कालविषे भी ता घटरूप प्रतियोगीका अवश्य उन्मज्जन होणा चाहिये सो अत्यंत विरुद्ध है। जिस कारणतैं उत्पत्तितैं पूर्व तथा विनाशतैं अनंतर कोई भावस्तुका उन्मज्जन होता नहीं। यातैं ता उक्तकालविषे घटादिक प्रतियोगीके उन्मज्जनकी प्राप्तिरूप दोषके निवृत्त करणे वासतै तिन घटादिकोंके प्रागभावकूं तौं उत्पत्तितैं रहित अनादि मान्या चाहिये तथा ता प्रध्वंसाभावकूं विनाशतैं रहित अनंत मान्या चाहिये, किंवा जो वादी घटादिकोंके प्रागभावका भी प्रागभाव माने है तथा ध्वंसका भी ध्वंस माने है ता वादीसे यह पूछा चाहिये। सो घटके प्रागभावका प्रागभाव ता घटरूप प्रतियोगीतैं भिन्न है अथवा ता घटस्वरूप है? तहां जो प्रथमपक्ष अंगीकार करो तौं ता प्रथम प्रागभावकी न्यांई ता दूसरे प्रागभावका भी कोई तीसरा प्रागभाव कल्पना करणा होवैंगा तथा ता तीसरे प्रागभावका कोई चतुर्थप्रागभाव कल्पना करणा होवैंगा। ता चतुर्थका पंचमा, पंचमेका षष्ठा। इस प्रकार तिन प्रागभावोंकी आगे आगे धारा मानणेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी। ता अनवस्थादोषके निवृत्त करणे वासतै सो घटके प्रागभावका प्रागभाव ता घटस्वरूप है, यह दूसरापक्ष जो अंगीकार करोंगे तौं ता घटके प्रागभावके प्रागभावकालविषे ता घटरूप प्रतियोगीके उन्मज्जनकी प्राप्तिरूप दोष अवश्य प्राप्त होवैंगा। इस प्रकार जो वादी घटादिकोंके ध्वंसका ध्वंस अंगीकार करे है। तिस वादीसैं यह पूछा चाहिये—सो घटके ध्वंसका ध्वंस ता घटरूप प्रतियोगीतैं भिन्न है अथवा ता घटस्वरूप है? तहां जो प्रथमपक्ष अंगीकार करो तौं ता प्रथम ध्वंसकी न्यांई ता दूसरे ध्वंसका भी कोई तीसरा ध्वंस मानणा होवैंगा, ता तीसरे ध्वंसका कोई चतुर्थध्वंस मानणा होवैंगा, ता चतुर्थका पंचमा ता पंचमेका षष्ठा, इस प्रकार तिन ध्वंसोंकी आगे आगे धारा मानणेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी, ता अनवस्था दोषके निवृत्त करणे वासतै सो घटके ध्वंसका ध्वंस ता घटस्वरूप है, यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करोंगे तौं ता घटध्वंसके ध्वंसकालविषे ता घटरूप प्रतियोगीके उन्मज्जनकी प्राप्तिरूप दोष अवश्य प्राप्त होवैंगा, ता दोषके निवृत्त करणे वासतै ता प्रागभावकूं तौं

उत्पत्तितैं रहित अनादि मान्या चाहिये । तथा ता प्रध्वंसाभावकूं विनाशतैं रहित अनन्त मान्या चाहिये, किंवा लोकविषे भी 'घटो नष्टः पटो नष्टः' या प्रकारकी तौं प्रतीति होवै है, परंतु 'विनाशो विनष्टः' या प्रकारकी प्रतीति किसीकूं भी होती नहीं । और ता प्रध्वंसाभावके विनाशकी कल्पना करणेविषे कोई प्रमाण भी नहीं है । या कारणतैं भी ता प्रध्वंसाभावकूं विनाशतैं रहित हीं मान्या चाहिये इति ।

अब तीसरे अत्यन्ताभावका वर्णन—करे हैं । तहां लक्षण—**नित्यः संसर्गाभावः अत्यन्ताभावः ।** अर्थ यह—जो अभाव नित्य होवै है अर्थात् उत्पत्तिविनाशतैं रहित होवै है तथा संसर्गाभावरूप होवै है । अर्थात् अन्योन्याभावतैं भिन्न अभावरूप होवै है, सो अभाव अत्यंताभाव कह्या जावै है । तहां जो वस्तु जिस संबंध करिकै जिस अधिकरणविषे कदाचित् भी नहीं रहे है तिस वस्तुका तिस संबंध करिकै तिस अधिकरणविषे अत्यंताभाव हीं होवै है । जैसे वायु आकाशादिकोंविषे रूपगुण कदाचित् भी समवायसंबंध करिकै रहता नहीं । यातैं तिन वायुआकाशादिकोंविषे ता रूपका अत्यंताभाव रहे है । इस प्रकार पृथिवीमात्रवृत्ति गंधगुणका ता पृथिवीकूं छोडिकै जलादिक सर्वपदार्थोंविषे अत्यंताभाव रहे है, तथा आकाशमात्रवृत्ति शब्दगुणका ता आकाशकूं छोडिकै सर्वत्र अत्यंताभाव हीं रहे है । तथा आत्ममात्रवृत्ति ज्ञानादिक गुणोंका ता आत्माकूं छोडिकै सर्वत्र अत्यंताभाव हीं रहे है । तथा मूर्त्तद्रव्य मात्रवृत्ति कर्मका ता मूर्त्तद्रव्यकूं छोडिकै सर्वत्र अत्यंताभाव हीं रहे है । इस प्रकार जो जो पदार्थ जिस जिस संबंध करिकै जिस जिस अधिकरणविषे कदाचित् भी नहीं रहे है । तिस तिस पदार्थका तिस तिस संबंध करिकै तिस तिस अधिकरणविषे अत्यंताभाव हीं रहे है । और भूतलादिकोंविषे घटादिक कदाचित् संयोगसंबंध करिकै रहे है । यातैं ता संयोगसंबंध करिकै तिन घटादिकोंका तिन भूतलादिकोंविषे अत्यंताभाव होवै नहीं, किंतु वक्ष्यमाण सामयिकाभाव हीं होवै है । सो उक्त अत्यंताभाव उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य भी है तथा अन्योन्याभावतैं भिन्न होणेतैं संसर्गाभावरूप भी है । यातैं यह उक्त अत्यंताभावका लक्षण संभवै है । पदकृत्य—तहां 'संसर्गाभावः अत्यन्ताभावः' इतनामात्र हीं जो ता अत्यंताभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'नित्यः' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव ,सामयिकाभाव इन तीनों अभावोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता अत्यंताभावकी न्यांई ते तीनों अभाव भी संसर्गाभावरूप हीं है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'नित्यः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते प्रागभावादिक नित्य नहीं हैं । यातैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'नित्यः अत्यंताभावः' इतनामात्र हीं जो ता अत्यंताभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'संसर्गाभावः' यह पद नहीं कथन करते तौं अन्योन्याभावविषे तथा परमाणु आकाशादिकोंविषे ता

लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं ता अत्यन्ताभावकी न्यांई ते अन्योन्याभाव परमाणु आकाशादिक भी उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'संसर्गाभावः' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता अन्योन्याभावविषे तथा परमाणु आकाशादिकोंविषे संसर्गाभावरूपता है नहीं। यातैं तिनोंविषे ता अत्यंताभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

अत्यन्ताभावके न रहणेके स्थल—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो अत्यन्ताभाव आपणे प्रतियोगीके प्रागभावके अधिकरणविषे तथा आपणे प्रतियोगीके प्रध्वंसाभावके अधिकरणविषे रहता नहीं। काहेतैं? ता प्रागभावके साथि तथा ता प्रध्वंसाभावके साथि ता अत्यंताभावका विरोध हीं होवै है। और परस्परविरोधी पदार्थ एक अधिकरणविषे रहते नहीं। और श्यामघटविषे 'रक्तो नास्ति' या प्रकारकी जा रक्तरूपके अभावकूं विषय करणेहारी प्रतीति होवै है सा प्रतीति भी ता श्यामघटविषे ता रक्तरूपके अत्यन्ताभावकूं विषय करती नहीं, किंतु आगे अग्निके संयोग करिकै ता घटविषे उत्पन्न होणेहारा जो रक्तरूप है ता रक्तरूपका ता श्यामघटविषे प्रागभाव रह्या है ता प्रागभावकूं हीं सा उक्त प्रतीति विषय करे है। तैसे रक्तघटविषे 'श्यामो नास्ति' या प्रकारकी जो श्यामरूपके अभावकूं विषय करणेहारी प्रतीति होवै है, सा प्रतीति भी ता रक्तघटविषे ता श्यामरूपके अत्यन्ताभावकूं विषय करती नहीं, किंतु ता रक्तघटविषे रह्या हूआ जो पूर्वले श्यामरूपका प्रध्वंसाभाव है ता प्रध्वंसाभावकूं हीं सा उक्तप्रतीति विषय करे है। यातैं ता उक्तप्रतीतितैं ता श्यामघटविषे रक्तरूपके अत्यंताभावकी तथा ता रक्तघटविषे श्यामरूपके अत्यंताभावकी सिद्धि होवै नहीं इति।

ईहां नवीननैयायिक—तौं यह कहे हैं। ता अत्यंताभावका आपणे प्रतियोगीके प्रागभावके साथि तथा प्रध्वंसाभावके साथि विरोध होवै, इस अर्थविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। यातैं सो अत्यंताभाव आपणे प्रतियोगीके प्रागभावके अधिकरणविषे भी रहे है। तथा प्रध्वंसाभावके अधिकरणविषे भी रहे है। यातैं ता श्यामघटविषे 'रक्तो नास्ति' यह उक्त प्रतीति ता रक्तरूपके अत्यंताभावकूं हीं विषय करे है, तथा ता रक्तघटविषे 'श्यामो नास्ति' यह उक्त प्रतीति ता श्यामरूपके अत्यंताभावकूं हीं विषय करे है इति।

अब चतुर्थ सामयिकाभावका वर्णन—करे हैं। तहां **उत्पत्तिविनाशवान् अभावःसामयिकाभावः**।अर्थ यह—जो अभाव उत्पत्तिवाला होवै है तथा विनाशवाला होवै है। सो अभाव सामयिका भाव कह्या जावै है। जैसे संयोगसंबंध करिकै भूतलविषे रह्या जो घट है। ता घटकूं जबी ता भूतलतैं उठाइकै अन्यत्र कहा लेजाइए तबी ता भूतलविषे 'इह भूतले घटो नास्ति' या प्रकारकी ता घटके अभावकूं विषय करणेहारी प्रतीति होवै है। और ता घटकूं जबी पुनः ता भूतलविषे ले आइए तबी 'इह भूतले घटो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीति होती नहीं।

यातैं यह जान्या जावै है । ता भूतलतैं ता घटके ले जाणे कालविषे ता भूतलविषे ता घटका कोई अभाव उत्पन्न होवै है । जिस अभावकूं सा उक्त प्रतीति विषय करे है । और ता भूतलविषे ता घटके ले आवणे कालविषे सो घटका अभाव नाश होइ जावै है । यातैं सा उक्त प्रतीति होती नहीं । ऐसा उत्पत्तिविनाशवाला अभाव सामयिकाभाव हीं है । जो कदाचित् ता भूतलविषे घटका अत्यंताभावमानिये तौं सो अत्यंताभाव नित्य है तथा निष्क्रिय है। यातैं ता भूतलविषे ता घटके आगमनकालविषे ता अत्यंताभावका नाश तथा अन्यत्र गमन संभवता नहीं । यातैं ता घटके विद्यमान कालविषे भी 'इह भूतले घटो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीति होणी चाहिये यातैं ता अत्यंताभावतैं भिन्न सो सामयिकाभाव अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये । पदकृत्य—तहां 'उत्पत्तिमान् अभावः सामयिकाभावः' इतनामात्र हीं जो ता सामयिकाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'विनाशवान्' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रध्वंसाभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता सामयिकाभावकी न्यांई सो प्रध्वंसाभाव भी उत्पत्तिवाला हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'विनाशवान्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो प्रध्वंसाभाव विनाशवान् हीं है, किंतु अविनाशी है । यातैं ता प्रध्वंसाभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'विनाशवान् अभावः सामयिकाभावः' इतनामात्र हीं जो ता सामयिकाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'उत्पत्तिमान्' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रागभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता सामयिकाभावकी न्यांई सो प्रागभाव भी विनाशवाला हीं है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'उत्पत्तिमान्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो प्रागभाव अनादि होणेतैं उत्पत्तिवाला है नहीं । यातैं प्रागभावविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'उत्पत्तिविनाशवान् सामयिकाभावः' इतनामात्र हीं जो ता सामयिकाभावका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अभावः' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता सामयिकाभावकी न्यांई ते घटादिक भी उत्पत्ति विनाशवाले हीं हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अभावः' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते घटादिक अभावरूप नहीं हैं । यातैं तिन घटादिकोंविषे ता सामयिकाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । सो यह सामयिकाभाव केवल मूर्त्तद्रव्यका हीं होवै है अन्य किसी पदार्थका होता नही इति ।

ईहां केईक नवीननैयायिक—तौं यह कहे हैं । ता उत्पत्तिविनाशवाले सामयिकाभावविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । उलटा ता उक्त अत्यंताभावतैं ता सामयिकाभावकूं अतिरिक्त मानणेविषे गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है । और भूतलादिकोंविषे कदाचित् वर्तणेहारे तथा कदाचित् नहीं वर्तणेहारे ऐसे जे घटादिक मूर्तद्रव्य हैं तिन घटादिकोंका भी तिन भूतलादिकोंविषे

अत्यंताभाव हीं होवै है । सो अत्यंताभाव नित्य होणेतैं तथा निष्क्रिय होणेतैं ता भूतलविषे ता घटके विद्यमानकालविषे भी रहे है, परंतु ता घटके विद्यमानकालविषे लोकोंकूं ता भूतलविषे ता घटके अत्यंताभावकी जो नहीं प्रतीति होवै है सो संबंधके अभावतैं नहीं होवै है अर्थात् ता घटके विद्यमानकालविषे ता घटके अत्यंताभावका ता भूतलके साथि स्वरूपसंबंध रहता नहीं । यातैं विद्यमान हूआ भी सो अत्यंताभाव लोकोंकूं प्रतीत होता नहीं । तहां 'घटाभाववत् भूतलं' या प्रकारके ज्ञानकालीन जो भूतल है सो भूतल हीं ता अभावका स्वरूपसंबंध है । तहां ता घटके विद्यमानकालविषे 'घटाभाववत् भूतलम्' या प्रकारका ज्ञान होता नहीं । यातैं ता कालविषे सो भूतल स्वरूपतैं विद्यमान हूआ भी ता ज्ञानकालीनत्वविशिष्टरूप करिकै रहता नहीं इति ॥

ईहां केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । ता भूतलविषे ता घटके विद्यमान कालविषे जो ता घटके अत्यंताभावकी प्रतीति नहीं होवै है सो कारणसामग्रीके अभावतैं नहीं होवै है । तहां जिस भूतलविषे सो घटका अत्यंताभाव रहे है, तिस भूतलविषे जो ता घटका संयोग है ता संयोगका प्रागभाव वा प्रध्वंसाभाव ता घटाभावके प्रतीतिकी सामग्री है, सा कारणसामग्री ता भूतलविषे घटके विद्यमानकालविषे है नहीं । काहेतैं ? ता भूतलविषे ता घटके संयोगकालविषे ता संयोगका प्रागभाव भी नहीं है तथा प्रध्वंसाभाव भी नहीं है । और जिस कालविषे ता भूतलविषे घट नहीं आया था तिस कालविषे तौं ता भूतलविषे ता घटके संयोगका प्रागभाव रहे है । और जिस कालविषे ता भूतलतैं घटकूं उठाइ ले जाइए । तिस कालविषे ता भूतलविषे ता घटके संयोगका प्रध्वंसाभाव रहे है । यातैं तिन दोनों कालोंविषे ता उक्त सामग्रीके विद्यमानहूए 'भूतले घटो नास्ति' या प्रकारकी ता घटके अत्यंताभावकूं विषय करणेहारी प्रतीति होवै है । इस प्रकारतैं ता अत्यंताभावके नित्यहूए भी प्रतियोगीके विद्यमान कालविषे ता अत्यंताभावके प्रतीतिका अभाव तथा प्रतियोगीके अविद्यमानकालविषे ता अत्यंताभावकी प्रतीति संभव होइ सके है । यातैं तिन भूतलादिकोंविषे घटादिकोंके सामयिकाभावका अंगीकार करणा निष्फल है इति ॥

अब पंचमे अन्योन्याभावका निरूपण—करे हैं तहां लक्षण—**तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽभावः अन्योन्याभावः** । अर्थ यह—जिस अभावकी प्रतियोगिता तादात्म्य संबंध करिकै अवच्छिन्न होवै है सो अभाव अन्योन्याभाव कह्या जावै है । जैसे 'घटःपटो न' अर्थात् घट पट रूप नहीं है या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है । ता प्रतीतितैं घटविषे पटका भेदरूप अन्योन्याभाव प्रतीत होवै है । ता घटनिष्ठ अन्योन्याभावका प्रतियोगी सो पट है । ता पटविषे रहीहूई जा ता अन्योन्याभावकी प्रतियोगिता है सा प्रतियोगिता तादात्म्यसंबंध करिकै अवच्छिन्न है । तथा पटत्व धर्म करिकै अवच्छिन्न है । तहां अभेदनामा जो स्वरूप-

संबंधविशेष है ताका नाम तादात्म्यसंबंध है । सो अभेदरूप तादात्म्यसंबंध सर्व पदार्थोंका आपणे स्वरूपविषे हीं रहे है । आपणे स्वरूपतैं भिन्न पदार्थविषे किसी भी वस्तुका तादात्म्यसंबंध रहता नहीं । जैसे घटका सो अभेदरूपतादात्म्यसंबंध आपणे घटस्वरूपविषे हीं रहे है । ता घटतैं भिन्नपटादिकोंविषे रहता नहीं । तैसे पटका सो अभेदरूप तादात्म्यसंबंध ता आपणे पटस्वरूप विषे हीं रहे है । ता पटतैं भिन्न घटादिकोंविषे रहता नहीं । इस प्रकार जितनैंकी द्रव्यगुण कर्मादिक पदार्थ हैं तिन सर्वपदार्थोंका सो अभेदरूप तादात्म्यसंबंध आपणे आपणे स्वरूप विषे हीं रहे है अन्य किसी विषे रहता नहीं । और जो पदार्थ जिस संबंध करिकै जिस अधिकरणविषे नहीं रहे है । तिस पदार्थका तिस अधिकरणविषे तिस संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव हीं रहे है । जैसे वायुविषे रूप समवायसंबंध करिकैं रहता नहीं । यातैं ता वायुविषे तिस रूपका समवायसंबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यन्ताभाव हीं रहे है । तैसे ते द्रव्यगुणकर्मादिक पदार्थ भी आपणे स्वरूपकूं छोडिकै अन्य किसी पदार्थविषे ता अभेदरूप तादात्म्यसंबंध करिकै रहते नहीं । यातैं तिन द्रव्य गुणकर्मादिकोंका आपणेतैं भिन्न सर्वपदार्थोंविषे सो तादात्म्यसन्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगीताक अन्योन्याभाव हीं रहे है । यातैं 'घटः पटो न' इस प्रतीति करिकै ता घटविषे जो ता दात्म्यसन्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक पटका अभाव प्रतीत होवै है सो अभाव अन्योन्याभाव कह्या जावै है । इसी अन्योन्याभावकूं भेद भी कहे हैं इति । साधक प्रतीति–सो यह भेदरूप अन्योन्याभाव भी ता उक्त अत्यंताभाभावकी न्यांई उत्पत्तिविनाशतैं रहित होणेतैं नित्य हीं होवै है । और भूतलविषे संयोगसंबंध करिकै घटके विद्यमानहूए भी 'भूतले घटो न' या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है सा प्रतीति ता भूतलविषे घटके अन्योन्याभावकूं हीं विषय करे है । तथा तंतुवोंविषे समवायसंबंध करिकै पटके विद्यमानहूए भी 'तन्तुः पटो न' या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है सा प्रतीति भी तिन तन्तुवोंविषे ता पटके अन्योन्यावकूं हीं विषय करे है । इस प्रकार पृथिवी आदिक द्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै गुणकर्मसामान्यके विद्यमानहूए भी 'द्रव्यं गुणो न द्रव्यं कर्म न द्रव्यं सामान्यं न' इत्यादिक प्रतीतियां होवै हैं ते प्रतीतियां यथाक्रमतैं ता द्रव्यविषे गुणकर्मसामान्यके अन्योन्याभावकूं हीं विषय करे हैं । यातैं ता भेदरूप अन्योन्याभावविषे ते उक्त प्रत्यक्षप्रतीति हीं प्रमाणरूप हैं इति ।

अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभावके भेद–तहां इतनैंपर्यंत प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यंताभाव, सामयिकाभाव, अन्योन्याभाव इस पांच प्रकारके अभावका वर्णन कऱ्या । अब ता पूर्वउक्त अत्यंताभावके तथा अन्योन्याभावके भेदका वर्णन करे हैं । तहां सो अत्यंताभाव तथा अन्योन्याभाव प्रथम तौं विशेषाभाव १, सामान्याभाव २ इस भेद करिकै दो प्रकारके होवै हैं ।

विशेष अत्यन्ताभाव—तहां भूतलविषे पीतघटके विद्यमानहूए भी 'नीलघटो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है। ता प्रतीति करिकै सिद्ध जो ता पीतघटवाले भूतलविषे नीलघटका अत्यन्ताभाव है सो अत्यंताभाव विशेषअत्यंताभाव कह्या जावै है।

विशेष अन्योन्याभाव—और 'पीतघटो न नीलघटः' अर्थ यह—पीत घट नील घटरूप नहीं है। या प्रकारकी प्रतीति भी लोकोंकूं होवै है। ता प्रतीति करिकै सिद्ध जो ता पीतघटविषे नील-घटका अन्योन्याभाव है सो अन्योन्याभाव विशेष अन्योन्याभाव कह्या जावै है। सामान्य अत्यन्ताभाव—जिस भूतलविषे कोई प्रकारका भी घट नहीं रहे है ऐसे घटशून्य भूतलविषे 'भूतले घटो नास्ति भूतलं न घटवत्' या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है। ता प्रतीति करिकै सिद्ध जो ता भूतलविषे घटका अत्यंताभाव है सो अत्यन्ताभाव सामान्य अत्यन्ताभाव कह्या जावै है। सामान्य अन्योन्याभाव—'भूतले घटो न' या प्रकारकी प्रतीति करिकै सिद्ध जो भूतलविषे घटका अन्योन्याभाव है सो अन्योन्याभाव सामान्यअन्योन्याभाव कह्या जावै है। विशेषाभावसे सामान्याभाव भिन्न—तहां पूर्व उक्त विशेषाभावतैं यह सामान्याभाव भिन्न हीं होवै है। काहेतैं ? जो कदाचित् ता उक्तविशेषाभावतैं इस सामान्याभावकूं भिन्न नहीं मानिये तौं जैसे पीतघटवाले भूतलविषे 'नीलघटो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीति होवै है तैसे 'घटो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीति भी होणी चाहिये। तथा जैसे पीतघटविषे 'पीतघटो न नील-घटः' या प्रकारकी प्रतीति होवै है। तैसे 'पीतघटो न घटः' या प्रकारकी भी प्रतीति होणी चाहिये। सो इस प्रकारकी प्रतीति किसीकूं भी होती नहीं। यातैं ता विशेषाभावतैं ता सामान्याभावकूं पृथक् हीं मान्या चाहिये इति।

अभावोंके पुनः भेद—किंवा सो पूर्वउक्त अत्यंताभाव तथा अन्योन्याभाव यह दोनों व्यास-ज्यवृत्ति धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव १, तथा अव्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न प्रति-योगिताक अभाव २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारके होवै हैं। उभयाभाव—तहां अनेकोंविषे रहणेहारे धर्मका नाम व्यासज्यवृत्ति धर्म है। जैसे द्वित्व त्रित्व आदिक धर्म हैं। और एकविषे रहणेहारे धर्मका नाम अव्यासज्यवृत्ति धर्म है। जैसे घटत्व पटत्वादिक हैं। तहां भूतलविषे घटके विद्यमानहूए भी 'इह भूतले घटपटौ न स्तः' अर्थ यह—इस भूतलविषे घट पट दो नहीं है। या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है ता प्रतीति करिकै ता भूतलविषे घटपट दोनोंका अत्यन्ताभाव सिद्ध होवै है। ता अत्यन्ताभावकी प्रतियोगिता केवल घटविषे भी नहीं है तथा केवल पटविषे भी नहीं है। किंतु ता घटपट दोनोंविषे सा प्रतियोगिता रहे है। और द्वित्व धर्म भी केवल घटविषे नहीं रहता तथा केवल पटविषे नहीं रहता। किंतु ता घट पट दोनों विषे हीं सो द्वित्वधर्म स्वरूपसंबंध करिकै रहे है। यातैं सा प्रतियोगिता ता व्यासज्यवृत्ति द्वित्वधर्म करिकै हीं अवच्छिन्न होवै है। यातैं घटवाले भूतलविषे 'घट

पटौ न स्तः' इस उक्त प्रतीति करिकै सिद्ध जो घटपट दोनोंका अत्यंताभाव है सो अत्यंताभाव व्यासज्य वृत्तिधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यन्ताभाव कह्या जावै है। इस प्रकार घटविषे 'घटो न घटपटौ' अर्थ यह—यह घट घटपटउभयरूप नहीं है। या प्रकारकी प्रतीति भी लोकोंकूं होवै है। ता प्रतीति करिकै ता घटविषे घटपट दोनोंका अन्योन्याभाव सिद्ध होवै है। सो अन्योन्याभाव व्यासज्यवृत्ति धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अन्योन्याभाव कह्या जावै है। इसी व्यासज्यवृत्ति धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यंताभावकूं तथा अन्योन्याभावकूं उभयाभाव भी कहे हैं। एकका अभाव—और तिसी भूतलविषे जो केवल एक घटका अत्यंताभाव है तथा तिसी घटविषे जो केवल एक पटका अन्योभाव है। सो अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभाव ता घटत्व पटत्वरूप अव्यासज्यवृत्ति धर्म करिकै अवच्छिन्न प्रतियोगितावाला होणैतैं अव्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक कह्या जावै है। दोनोंकी पार्थक्य—तहां ता अव्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभावतैं सो व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव भिन्न हीं होवै है। काहेतैं ? जो कदाचित् तिन दोनों अभावोंका भेद नहीं अंगीकार करिये तौं जैसे घटवाले भूतलविषे 'घटो नास्ति' यह प्रतीति नहीं होवै है तैसे ता घटवाले भूतलविषे 'घटपटौ न स्तः' या प्रकारकी प्रतीति भी नहीं होणी चाहिये। तथा जैसे घटविषे 'घटो न घटः' या प्रकारकी प्रतीति नहीं होवै है तैसे 'घटो न घटपटौ' या प्रकारकी प्रतीति भी नहीं होणी चाहिये। और ता उक्त स्थलविषे सा उक्त प्रतीति तौं सर्वलोकोंके अनुभव करिकै सिद्ध है। यातैं ता केवल घटाभावतैं तथा केवल पटाभावतैं सो घटपट दोनोंका अभाव पृथक् हीं मान्या चाहिये इति।

विशेषण विशेष्य दोनोंके अभावसे विशिष्टाभावकी भिन्नता—इस प्रकार केवल विशेषणके अभावतैं तथा केवल विशेष्यके अभावतैं विशिष्टका अभाव भिन्न हीं होवै है। जैसे दंडरूप विशेषणके अभावतैं तथा पुरुषरूप विशेष्यके अभावतैं ता दंडविशिष्ट पुरुषका अभाव अतिरिक्त हीं होवै है। तहां जिस स्थलविषे सो दंडरूप विशेषण तौं विद्यमान है परन्तु सो पुरुषरूप विशेष्य है नहीं, तिस स्थलविषे भी 'दंडी पुरुषो नास्ति' या प्रकारकी ता विशिष्टाभावविषयक प्रतीति होवै है। और जिस स्थलविषे सो पुरुषरूप विशेष्य तौं विद्यमान है परन्तु सो दंडरूप विशेषण है नहीं तिस स्थलविषे भी 'दण्डी पुरुषो नास्ति' या प्रकारकी ता विशिष्टाभाव विषयक प्रतीति होवै है। तहां ता विशिष्टाभावकूं जो विशेषणाभावरूप मानिये तौं ता दंडरूप विशेषणके विद्यमानकालविषे जैसे 'दंडो नास्ति' यह प्रतीति नहीं होवै है तैसे 'दंडी पुरुषो नास्ति' यह प्रतीति भी नहीं होणी चाहिये। और ता विशिष्टाभावकूं जो विशेष्याभावरूप मानिये तौं जैसे ता पुरुषरूप विशेष्यके विद्यमान कालविषे 'पुरुषो नास्ति' यह प्रतीति नहीं होवै है। तैसे 'दंडी पुरुषो नास्ति' यह प्रतीति भी नहीं होणी चाहिये और ता विशेषणविशे-

ष्यके विद्यमानकालविषे भी ' दण्डी पुरुषो नास्ति ' यह विशिष्टाभावविषयक प्रतीति तौं सर्व-लोकोंकूं अनुभव सिद्ध है । यातैं ता केवलदण्डरूप विशेषणतैं अभावके तथा केवलपुरुषरूप विशेष्यके अभावतैं सो दंडविशिष्टपुरुषका अभाव पृथक् हीं मान्या चाहिये इति । इतनैं ग्रन्थ करिकै घटादिक प्रतियोगीके एकहूए भी नीलत्व, घटत्व, उभयत्व इत्यादिक प्रतियोगिताव-च्छेदक धर्मोंके भेद करिकै ता अत्यंताभावका तथा अन्योन्याभावका नानापणा दिखाया ।

प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्धके भेदसे अभावका नानात्व—अब प्रतियोगिताअवच्छेक संबंधके भेद करिकै भी ता अभावका नानापणा दिखावै है । तहां संयोगसंबंध करिकै घटवाले भूतलविषे 'समवायेन घटो नास्ति' अर्थ यह—इस भूतलविषे समवायसम्बंध करिकै घट नहीं है। या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवे है ता प्रतीति करिकै ता भूतलविषे ता घटका समवायसंबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यन्ताभाव सिद्ध होवै है और समवायसंबंध करिकै ता घटवाले कपालोंविषे ' संयोगेन घटो नास्ति ' अर्थ यह—इन कपालोंविषे संयोग संबंध करिकै घट नहीं हैं । या प्रकारकी प्रतीति लोकोंकूं होवै है ता प्रतीति करिकै तिन कपालोंविषे ता घटका संयोग संबंधावच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यन्ताभाव सिद्ध होवै है । ते दोनों अत्यन्ताभाव परस्परभिन्न हैं तहां ता घटरूप प्रतियोगीके तथा घटत्वरूप प्रतियोगितावच्छेदक धर्मके एकहूए भी ता संयोगसमवायरूप प्रतियोगितावच्छेदक संबंधके भेद करिकै हीं ता घटके अत्यन्ताभावका भेद होवै है। इस प्रकार द्रव्यवृत्ति गुणकर्मका गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे तौं समवायसंबंधाव-च्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यंताभाव रहे है । और तिसी गुणकर्मका ता द्रव्यविषे संयोगसंबं-धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अत्यंताभाव रहे है । इस प्रकार प्रतियोगितावच्छेदक धर्मके भेद करिकै तथा प्रतियोगितावच्छेदकसंबंधके भेद करिकै एक हीं वस्तुके अभावोंका भेद होवै है । याके विषे भी इतनी विशेषता है । अत्यन्ताभावके बहुत्वपणेविषे तौं प्रतियोगिताव-च्छेदक धर्मका भेद तथा प्रतियोगितावच्छेदक संबंधका भेद दोनों कारण होवै हैं और अन्यो न्याभावके बहुत्वपणेविषे तौं केवल प्रतियोगितावच्छेदक धर्मका भेद हीं कारण होवै है इति ॥

अभावको अधिकरणरूप माणनेहारे प्रभाकर—ईहां मीमांसक प्रभाकरका तौं यह मत है। जिस प्रकारके भूतलादिकोंविषे ' घटो नास्ति ' या प्रकारकी घटाभावविषयक प्रतीति होवै है सो घटका अभाव ता भूतलतैं भिन्न नहीं है, किंतु ता भूतलस्वरूप हीं है । इस प्रकार जो जो अभाव जिस जिस अधिकरणविषे प्रतीत होवै है। सो सो अभाव तिसतिस अधिकरणस्वरूप हीं होवै है । तिस अधिकरणतैं सो अभाव भिन्न होता नहीं । जो कदाचित् ता अभावकूं भूतलादिक अधिकरणतैं भिन्न मानिये तौं एक तौं गौरवदोषकी प्राप्ति होवै है । और दूसरा ता अभावके प्रत्यक्ष वासतै चक्षुआदिक इंद्रियका ता अभावके साथि विशेषणतानामा संबंध कल्पना करणा होवैंगा और तीसरा ता प्रथमअभावका भी कोई दूसरा अभाव कल्पना करणा होवैंगा तथा

दूसरे अभावका भी कोई तीसरा अभाव कल्पना करणा होवैंगा, ता तीसरेका चतुर्थ अभाव, ता चतुर्थका पंचम अभाव, ता पंचमका षष्ठा अभाव। इस प्रकार आगे आगे अभावोंकी धारा माननेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी और ता अभावकूं अधिकरणस्वरूप माननेविषे ते उक्त तीन दोष प्राप्त होते नहीं। यातैं ता घटादिकोंके अभावकूं भूतलादिक अधिकरणस्वरूप हीं मानणा उचित है इति। इनका खण्डन—सो यह प्रभाकरका मत समीचीन नहीं है। काहेतैं ? ता अभावकूं जो अधिकरणस्वरूप मानिये तौं 'भूतले घटाभावः' या प्रकारकी भूतलघटाभावके आधार आधेयभावकूं विषय करणेहारी प्रतीति नहीं होणी चाहिये। जिस कारणतैं ता वस्तुके अभेदविषे सा आधारआधेयभावविषयक प्रतीति होती नहीं। जो कदाचित् अभेदविषे भी आधारआधेयभावकी प्रतीति होती होवै तौं जैसे ता घटाभावका भूतलसैं अभेद है। तैसे ता भूतलका भी ता भूतलसैं अभेद है। यातैं 'भूतले घटाभावः' इस प्रतीतिकी न्यांई 'भूतले भूतलं' या प्रकारकी भी प्रतीति होणी चाहिये सो ऐसी प्रतीति किसीकूं भी होती नहीं। यातैं ता आधारआधेयभावविषयक प्रतीतिके बलतैं ता अभावकूं अधिकरणतैं भिन्न हीं मान्या चाहिये, किंवा ता अभावकूं जो अधिकरणरूप मानिये तौं जलविषे स्थित गंधगुणका अभाव ता जलस्वरूप हीं होवैंगा और ता जलरूप द्रव्यके ग्रहण करणेविषे घ्राण इंद्रियका सामर्थ्य है नहीं, किंतु चक्षुत्वकूंइंद्रियका सामर्थ्य है। यातैं ता जलगत गंधाभावका ता घ्राणइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष नहीं होणा चाहिये। किंतु ता चक्षुत्वक् इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये सो ऐसा होता नहीं। किंवा अभावकूं जो अधिकरणरूप मानिये तौं घटके प्रागभावकूं तथा प्रध्वंसाभावकूं कपालरूप हीं मानणा होवैंगा और ते कपाल घटके विद्यमानकालविषे भी रहै है। यातैं ता घटकालविषे भी तिन कपालोंविषे 'इह घटो भविष्यति इह घटो ध्वस्तः' या प्रकारकी ता घटके प्रागभाव ध्वंस विषयक प्रतीति होणी चाहिये सो ऐसी प्रतीति होती नहीं यातैं ता अभावकूं अधिकरणतैं भिन्न हीं मान्या चाहिये, किंवा ता अभावकूं अधिकरणतैं भिन्न माननेविषे जो प्राभाकरनैं अभावोंकी अनवस्था कही थी सो भी संभवती नहीं।

तहां प्राचीननैयायिक—तौं अनवस्था दोषकी इस प्रकारतैं निवृत्ति करे हैं। अभावका जो अभाव है सो भावरूप हीं होवै है ता भावतैं अतिरिक्त होता नहीं अर्थात् सो द्वितीय अभाव ता प्रथमअभावके प्रतियोगीस्वरूप हीं होवै है। जैसे घटशून्य भूतलविषे रह्या हूआ जो घटका अत्यंताभाव है ता अत्यंताभावका अत्यंताभाव ता घटवाले भूतलविषे हीं रहैंगा। यातैं ता घटरूपप्रतियोगीके समनियत होणेतैं सो द्वितीयअभाव ता घटस्वरूप हीं होवै है और ता घटवाले भूतलविषे जो 'घटात्यन्ताभावो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीति होवै है सा प्रतीति भी ता घटकूं हीं विषय करे है। यातैं यह सिद्ध भया। प्रथम अभावका जो अभाव है सो द्वितीय अभाव तौं ता प्रथम अभावके प्रतियोगीस्वरूप होवै है। और ता द्वितीय-

भावका जो अभाव है सो तृतीय अभाव प्रथम अभावके समनियत होणेतैं ता प्रथम अभावस्वरूप होवै है। और चतुर्थअभाव ता प्रतियोगी स्वरूप होवै है। इस रीतिसैं उत्तरउत्तर सर्व अभावोंका प्रथम अभावविषे तथा ताके प्रतियोगीविषे हीं यथायोग्य अंतर्भाव होवै है। यातैं ता अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति ॥

यहां नवीननैयायिक—तौं ता अनवस्थादोषकी इस प्रकारतैं निवृत्ति करे हैं। घटवाले भूतल विषे 'घटात्यन्ताभावो नास्ति' या प्रकारकी निषेधमुख प्रतीतिकी विषयता ता घटरूप भाव पदार्थविषे संभवती नहीं। यातैं सो द्वितीयअभाव ता प्रथमअभावके घटरूप प्रतियोगीके समनियत हूआ भी ता घटस्वरूप होता नहीं। किंतु ता घटतैं पृथक् हीं होवै है। और ता द्वितीयअभावका जो तृतीय अभाव है। सो तृतीय अभाव ता प्रथम अभावके समनियत होणेतैं ता प्रथमअभावरूप हीं होवै है और ता तृतीयअभावका जो चतुर्थ अभाव है सो चतुर्थ अभाव ता द्वितीयअभावके समनियत होणेतैं ता द्वितीयअभावरूप हीं होवै है। इस प्रकार पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम इत्यादिक जितनैंकी उत्तरउत्तर अभाव होवैं हैं ते सर्वअभाव यथा योग्य ता प्रथमअभावविषे तथा द्वितीय अभावविषे हीं अंतर्भूत होवै हैं। यातैं ता उक्त अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवै नहीं। ईहां तुल्य अधिकरणविषे वर्त्तणेका नाम समनियतपणा है इति।

ईहां मीमांसक भट्टपाद—का तौं यह मत है। पूर्वउक्त दोषोंतैं सो अभाव अधिकरणस्वरूप नहीं है, किंतु ता अधिकरणतैं पृथक् है, परंतु ता अभावका चक्षुआदिक इंद्रियों करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं। किंतु षष्ठे अनुपलब्धिरूप प्रमाण करिकै हीं ता अभावका ज्ञान होवै है इति।

ईहां वेदान्तियोंका मत—यह है। भूतलादिकोंविषे जो घटादिकोंका अभाव होवै है सो अभाव अधिकरणरूप होता नहीं। किंतु सो घटादिकोंका अभाव तिन भूतलादिक अधिकरणोंतैं भिन्न हीं होवै है, परंतु जो वस्तु जिस अधिष्ठानविषे कल्पित होवै है ता कल्पित वस्तुका अभाव ता अधिष्ठानतैं पृथक् होता नहीं, किंतु ता अधिष्ठानरूप हीं होवै है। जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्पका अभाव ता रज्जुस्वरूप हीं होवै है। तथा शुक्तिविषे कल्पित रजतका अभाव ता शुक्तिस्वरूप ही होवै है। और भूतलादिकोंविषे स्थित घटादिकोंके अभावका चक्षु आदिक इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं। किंतु अनुपलब्धिप्रमाण करिकै हीं ता अभावका ज्ञान होवै है इति। इति अभावनिरूपणं समाप्तम् ॥ ७॥

### शक्ति पदार्थ।

अब पूर्व उक्त द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंतैं शक्तिकूं तथा सादृश्यकूं भिन्न पदार्थ मानणेहारे प्रभाकरके मतका खंडन करणे वासतै प्रथम ता प्रभाकरके मतका निरूपण करे हैं। तहां पूर्वउक्त द्रव्यादिक पदार्थोंकी न्यांई शक्ति भी एक भिन्न हीं पदार्थ है। काहेतैं? जिस वह्निके समीप

कोई विशेष मणि वा मन्त्र वा ओषधि आदिक विद्यमान होवै हैं तिस वह्निनैं किसी भी वस्तुका दाह करीता नहीं । तहां वस्तुके पूर्वरूपकी निवृत्तिपूर्वक जो रूपांतरकी उत्पत्ति है ताका नाम दाह है। जैसे वह्निविषे पाए हूए घटादिकोंका पूर्वला श्यामरूप नष्ट होइकै रक्तरूप उत्पन्न होवै है यह हीं तिन घटादिकोंका ता वह्निकृत दाह है सो दाह तिन मणिमंत्रादिकोंके विद्यमान हूए होता नहीं । और जबी ते मणिमंत्रादिक ता वह्निके समीप नहीं रहे है तबीतिस वह्निनैं ता दाहकूं उत्पन्न करीता है । यातैं तिन मणिमंत्रादिकोंविषे ता दाहरूप कार्यकी प्रतिबंधकता हीं सिद्ध होवै है । और तिस कार्यके यत्किंचित् कारणका जो विनाशकपणा है यह हीं वस्तुविषे प्रतिबंधकता होवै है । यातैं तिन मणिमंत्रादिकोंविषे ता प्रतिबंधकताके सिद्ध करणे वासतै ता दाहरूप कार्यके किसी कारणका विनाशकपणा अवश्य अंगीकार करणा होवैंगा । तहां ता दाहके वह्निरूप कारणका विनाशकपणा तौं तिन मणिमंत्रादिकोंविषे संभवता नहीं । जिस कारणतैं सो वह्निरूप कारण तौं तहां प्रत्यक्ष हीं प्रतीत होवै है। परिशेषतैं ता वह्निविषे रहीहूई जा दाहकी शक्ति है ता शक्तिरूप कारणका विनाशकपणा हीं तिन मणिमंत्रादिकोंविषे मानणा होवैंगा। यातैं तिन मणिमंत्रादिकोंविषे रही हूई जा दाहरूप कार्यकी प्रतिबंधकता है सा प्रतिबंधकता ता शक्तितैं विना अनुपपन्न हूई ता शक्तिकी कल्पना करावै है । और जबी ता वह्निदेशतैं तिन मणिमन्त्रादिक प्रतिबन्धकोंका अपसारण होवै है तबी पुनः ता दाहरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै है । तथा तिन प्रतिबंधक मणिमन्त्रादिकोंके विद्यमान हूए भी जबी उत्तेजकरूप कोई विशेष मणिमन्त्रादिक तहां प्राप्त होवै हैं । तबी भी ता दाहरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै है । यातैं यह जान्या जावै है। ता प्रतिबन्धक मणिमन्त्रादिकोंके अपसारणनैं तथा ता उत्तेजकरूप मणिमन्त्रादिकोंनैं ता वह्निविषे सा दाहका कारणीभूत शक्ति पुनः उत्पन्न करीती है।

उत्तेजकका लक्षण—तहां **प्रतिबन्धककोटिप्रविष्टाभावप्रतियोगित्वं उत्तेजकत्वम् ।** अर्थ यह—कार्यके प्रतिबंधक कोटिविषे प्रविष्ट जो अभाव है ता अभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम उत्तेजकत्व है। जैसे प्रसंगविषे केवल तिन मणिमन्त्रादिकोंकूं हीं ता दाहकी प्रतिबंधकता नहीं, किंतु उत्तेजकरूप मणिमन्त्रादिकोंके अभावविशिष्ट तिन मणिमन्त्रादिकोंकूं हीं ता दाहकी प्रतिबंधकता है । जो कदाचित् केवल तिन मणिमन्त्रादिकोंकूं हीं ता दाहकी प्रतिबंधकता होवै तौं ता उत्तेजकरूप मणिमंत्रादिकोंके विद्यमानकालविषे तिन प्रतिबंधक मणिमन्त्रादिकोंके हूए भी सो दाहरूपकार्य उत्पन्न होवै है सो नहीं होणा चाहिये । यातैं ता उत्तेजक मणिमंत्रादिकोंके अभावविशिष्ट मणिमंत्रादिकोंकूं हीं प्रतिबंधक मानणा होवैंगा । इस रीतिसैं ता उत्तेजकरूप मणिमन्त्रादिकोंका अभाव ता दाहरूप कार्यके प्रतिबंधक कोटिविषे प्रविष्ट है । ता प्रतिबंधक कोटिप्रविष्ट अभावका प्रतियोगीपणा तिन उत्तेजकरूप मणिमन्त्रादिकोंविषे है । यह हीं तिन मणिमन्त्रादिकोंविषे उत्तेजकपणा है इति ।

किंवा जैसे ता वह्निविषे दाहरूप कार्यका जनक तथा उत्पत्तिविनाशवाली तथा अतिइंद्रिय ऐसी शक्ति रहे है। तैसे जिस जिस कारणतैं जिस जिस कार्यकी उत्पत्ति होवै है तिस तिस कारणविषे तिस तिस कार्यका जनक शक्ति नियमतैं रहे है। ता सामर्थ्यरूप शक्तितैं विना कोई भी कारण कार्यकूं उत्पन्न करता नहीं। जैसे मृत्तिकाविषे घटका जनक शक्ति रहे है और तंतुवोंविषे पटका जनक शक्ति रहे है।

शक्ति पदार्थका पार्थक्य—ता उक्त युक्ति करिकै ता शक्तिकी सिद्धि होवो तथापि सा शक्ति उक्त द्रव्यादिक पदार्थोंतैं भिन्न है। याके विषे कौन प्रमाण है? ऐसी शंकाके प्राप्तहूए, अब तिन द्रव्यादिक, पदार्थोंतैं ता शक्तिका पृथक्रूपणा सिद्ध करे हैं। तहां गुणकर्मादिकोंविषे पृथिवी आदिक द्रव्य रहते नहीं। और सा शक्ति तौं तिन गुणकर्मादिकोंविषे भी रहे है यातैं सा शक्ति द्रव्यरूप भी नहीं है और गुणविषे तथा कर्मविषे सो गुणकर्म रहता नहीं। और सा शक्ति तौं ता गुणकर्मविषे भी रहे है। यातैं सा शक्ति गुणरूप भी नहीं है तथा कर्मरूप भी नहीं है। और सामान्य, विशेष, समवाय, अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव इन पदार्थोंका उत्पत्तिविनाश होता नहीं। और सा शक्ति तौं उत्पत्तिविनाशवाली है। यातैं सा शक्ति सामान्यादिरूप भी नहीं है। और सा शक्ति उत्पत्तिवाली होणेतैं अनादि प्रागभावरूप भी नहीं है। और सा शक्ति विनाशवाली होणेतैं अनंत ध्वंसाभावरूप भी नहीं है। यद्यपि ता शक्तिकी न्यांई सो उक्त सामयिकाभाव भी उत्पत्तिविनाशवाला हीं है। यातैं ता सामयिकाभाव विषे हीं ता शक्तिका अन्तर्भाव होवैगा। तथापि ता अभावविषे निषेधमुख प्रतीतिकी विषयता होवै है तथा सप्रतियोगिकत्व होवै है और ता शक्तिविषे सा निषेधमुखप्रतीति की विषयता तथा सप्रतियोगिकत्व है नहीं। यातैं किसी भी अभावविषे ता शक्तिका अन्तर्भाव होइ सकता नहीं इति।

सादृश्य पदार्थ—किंवा ता शक्तिकी न्यांई सादृश्य भी तिन द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंतैं भिन्न पदार्थ हीं है। तहां 'चन्द्रसदृशं सुखम्' या प्रकारकी प्रतीति करिकै सुखविषे चंद्रका सादृश्य सिद्ध होवै है तथा 'गो सदृशो गवयः' या प्रकारकी प्रतीति करिकै गवयनामा पशुविषे गौका सादृश्य सिद्ध होवै है। यातैं ता सादृश्यपदार्थविषे सो प्रत्यक्ष हीं प्रमाण है।

सादृश्यका पार्थक्य—किंवा जैसे ता उक्त शक्तिका द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंविषे अंतर्भाव नहीं सम्भवै है तैसे ता सादृश्यका भी तिन द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंविषे अंतर्भाव संभवता नहीं। तहां ता सादृश्यका द्रव्यगुणादिक षड्भाव पदार्थोंविषे तौं अंतर्भाव संभवता नहीं। जिस कारणतैं सो सादृश्य जातिरूप सामान्यविषे भी रहे है। तहां जैसे गोत्वजाति नित्य है तैसे अश्वत्व जाति भी नित्य है। या प्रकारकी प्रतीति करिकै ता अश्वत्व जातिविषे गोत्व जातिका सादृश्य सिद्ध होवै है और ता जातिरूप सामान्यविषे ते द्रव्यगुणादिक रहते नहीं। तहां जो कदाचित् सो सादृश्य द्रव्यगुणादिरूप होता तौं जैसे ता जातिरूप सामान्यविषे ते द्रव्य-

गुणादिक नहीं प्रतीत होते । तैसे सो सादृश्य भी नहीं प्रतीत होता । यातैं ता सादृश्यका तिन द्रव्यादिक षट्भाव पदार्थोंविषे अंतर्भाव संभवता नहीं । और सो सादृश्य घटादिक भाव पदार्थोंकी न्यांई अस्तिरूप करिकै हीं प्रतीत होवै है अभावकी न्यांई नास्तिरूप करिकै प्रतीत होता नहीं । यातैं ता सादृश्यका अभावविषे भी अन्तर्भाव होइ सकता नहीं । जो कदाचित् सो सादृश्य अभावरूप होता तौं अस्तिरूप करिकै प्रतीत नहीं होता, किंतु नास्तिरूप करिकै हीं प्रतीत होता । यातैं ता शक्तिकी न्यांई यह सादृश्य भी तिन द्रव्यादिक पदार्थोंतैं भिन्न पदार्थ हीं मान्या चाहिये इति ।

शक्तिका खण्डन—अब ता शक्तिका खण्डन करे हैं । वह्निआदिकोंविषे दाहादिक कार्यका जनक कोई शक्ति रहे है । याके विषे कोई भी प्रमाण नहीं है उलटा तिन अनेकशक्तियोंके माननेविषे तथा तिन अनेकशक्तियोंके अनेक प्रागभाव तथा अनेक प्रध्वंसाभाव माननेविषे तथा तिन शक्तिमणिमंत्रादिकोंका नाश्यनाशकभाव माननेविषे केवल गौरवदोषकी हीं प्राप्ति होवै है । यातैं दाहादिक कार्यका हेतुरूप करिकै तिन वह्निआदिकोंविषे ता शक्तिकी कल्पना करणी अनुचित है, किंतु उत्तेजकरूप मणिमंत्रादिकोंके अभाव करिकै विशिष्ट जे मणि-मंत्रादिक हैं ते मणिमंत्रादिक तौं ता दाहरूप कार्यके प्रतिबन्धक होवै हैं । तिन प्रतिबंधक मणिमंत्रादिकोंका अभाव हीं ता दाहके प्रति कारण होवै है । सो दाहका कारणीभूत विशिष्ट-अभाव कहां तौं विशेषणमात्रके अभावतैं होवै है और कहां तौं विशेष्यमात्रके अभावतैं होवै है । और कहां तौं विशेषणविशेष्य दोनोंके अभावतैं होवै है । तहां जिस स्थलविषे भी ता वह्निके समीप ते प्रतिबंधक मणिमंत्रादिक भी विद्यमान हैं तथा ते उत्तेजकमणिमंत्रादिक भी विद्यमान हैं, तिस स्थलविषे भी ता दाहरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै है । तहां प्रतिबंधक मणिमंत्रादिरूप विशेष्यका अभाव तौं है नहीं । किंतु ता उत्तेजकाभावरूप विशेषणका हीं अभाव है । यातैं तिस स्थलविषे ता विशेषणाभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव हीं ता दाहका कारण होवै है । और जिस स्थलविषे ता वह्निके समीप ते प्रतिबंधक मणिमंत्रादिक तौं है नहीं, परन्तु ते उत्तेजक मणिमंत्रादिक विद्यमान हैं । तिस स्थलविषे भी सो दाहरूप कार्य उत्पन्न होवै है । तहां ता उत्तेजकाभावरूप विशेषणका भी अभाव है । तथा ता प्रतिबंधक मणिमंत्रा-दिरूप विशेष्यका भी अभाव है । यातैं तिस स्थलविषे ता विशेषणविशेष्य उभयाभाव प्रयुक्त विशिष्टाभाव हीं ता दाहका कारण होवै है । और जिस स्थलविषे ता वह्निके समीप ते प्रति-बंधक मणिमंत्रादिक भी नहीं विद्यमान हैं । तथा ते उत्तेजक मणिमंत्रादिक भी नहीं विद्यमान है । तिस स्थलविषे भी सो दाहरूप कार्य उत्पन्न होवै है । तहां सो उत्तेजकाभावरूप विशेषण तौं विद्यमान है परन्तु सो प्रतिबंधक मणिमंत्रादिरूप विशेष्य है नहीं । यातैं तिस स्थलविषे

ता विशेष्याभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव हीं ता दाहका कारण होवै है। इस प्रकार ता दाहरूप कार्यके प्रति ता उत्तेजकाभाव विशिष्ट प्रतिबंधकके अभावकूं कारणता मानणे करिकै हीं ता उत्तेजकाभावविशिष्ट प्रतिबंधक मणिमंत्रादिकोंके विद्यमानकालविषे ता दाहरूप कार्यके उत्पत्तिकी आपत्तिका निवारण होई सके है। यातैं ता वह्निविषे अनंतशक्ति तथा तिन शक्तियोंके अनन्त प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव कल्पना करणे व्यर्थ हीं है और तिन मणिमंत्रादिकोंविषे ता दाहरूप कार्यके यत्किंचित्कारणका विनाशकत्वरूप प्रतिबंधकता नहीं है। किंतु ता दाहका कारणीभूत जो तिन मणिमंत्रादिकोंका अभाव हैं। ता कारणीभूत अभावका प्रतियोगित्व हीं तिन मणिमंत्रादिकोंविषे प्रतिबन्धकता है। यातैं ता प्रतिबन्धकताकी अन्यथा अनुपपत्ति करिकै ता शक्तिकी कल्पना होइ सकै नहीं है इति।

### सादृश्यका खण्डन।

अब ता सादृश्यपदार्थका खण्डन करे हैं। सादृश्यका लक्षण—तहां ता शक्तिकी न्यांई सो सादृश्य भी भिन्न पदार्थ नहीं है। किंतु **तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयो धर्मवत्त्वं सादृश्यम्।** अर्थ यह—जिस पदार्थविषे जिस वस्तुका सादृश्य प्रतीत होवै है तिस वस्तुविषे असाधारणरूप करिकै रह्ये हूए जे बहुत्व धर्म हैं ता बहुत्वधर्मवत्त्व हीं तिस पदार्थविषे ता वस्तुका सादृश्य है जैसे 'चन्द्रसदृशं मुखम्' अर्थ यह—यह मुख चन्द्रमाके सदृश्य है या प्रकारकी प्रतीति करिकै ता मुखविषे चन्द्रमाका सादृश्य सिद्ध होवै है। तहां सो मुख ता चन्द्रमातैं भिन्न भी है। तथा ता चन्द्रमा विषे असाधारणरूप करिकै रह्ये हूए जे आह्लादकरत्व, वर्तुलत्व, तेजस्वित्व, आदिक बहुत धर्म हैं ते सर्वधर्म ता मुखविषे रहे हैं यह हीं ता मुखविषे ता चन्द्रमाका सादृश्य है। पदकृत्य—तहां 'तद्गतभूयो धर्मवत्त्वं सादृश्यम्' इतनामात्र हीं जो ता सादृश्यका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'तद्भिन्नत्वे सति' यह यह नहीं कथन करते तौं प्रतियोगितारूप करिकै ता सादृश्यका निरूपक जो चन्द्रमा है ता चन्द्रमाविषे हीं ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं सो भूयोधर्मवत्त्व ता चन्द्रमाविषे विद्यमान हीं है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'तद्भिन्नत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है। तहां सो चन्द्रमा ता चन्द्रमातैं भिन्न है नहीं। यातैं ता चन्द्रमाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं और प्रमेयत्व, ज्ञेयत्व, अभिधेयत्व आदिक धर्म सर्व पदार्थोंविषे रहे हैं। यातैं घट भी ता चन्द्रमाके सदृश होणा चाहिये ताके निवृत्त करणे वासतै तिन धर्मोंका 'असाधारण' यह विशेषण कथन कऱ्या है। ते प्रमेयत्वादिक असाधारणधर्म नहीं हैं, किंतु साधारण धर्म हैं और यत्किंचित्धर्मकूं लैके ता सादृश्य व्यवहारके निवृत्त करणे वासतै तिन धर्मोंके बहुत्वका वाचक 'भूयः' यह पद कथन कऱ्या है इति॥

तहां सो सादृश्यका घटधर्म कहां तौं जातिरूप होवै है और कहां उपाधिरूप होवै है । तहां घटके सदृश पट है ईहां तौं ता घट पट वृत्ति पृथिवीत्वादिक जाति हीं सो सादृश्यका घटक धर्म है । और जैसे गोत्व जाति नित्य है तैसे अश्वत्व जाति भी नित्य है । ईहां नित्यत्वरूपउपाधि हीं सो सादृश्यका घटक धर्म है और चन्द्रके सदृश मुख है । ईहां भी आह्लादकरत्वरूप उपाधि हीं सो सादृश्यका घटक धर्म है । यातैं सो सादृश्य तिन द्रव्यादिक पदार्थोतैं भिन्न नहीं है । किन्तु तिन द्रव्यादिक पदार्थोविषे हीं अन्तर्भूत है । यातैं ते पूर्वउक्त द्रव्यादिक सप्त हीं पदार्थ हैं यह सिद्ध भया इति ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानन्दगिरिणा विरचिते न्यायप्रकाशे कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव निरूपणं नाम चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ४ ॥ श्रीगुरुभ्योनमः ॥



ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः ॥

श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

# अथ न्यायप्रकाश ।

## पञ्चमपरिच्छेदः ।

साधर्म्य वैधर्म्य निरूपण ।

तहां पूर्व द्वितीयपरिच्छेदविषे पृथिवीआदिक नवद्रव्योंका निरूपण कन्या। और तृतीय परिच्छेदविषे रूपादिक चौबीस गुणोंका निरूपण कन्या और चतुर्थपरिच्छेदविषे कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन पांच पदार्थोंका निरूपण कन्या । यातैं द्वितीयपरिच्छेदतैं लैके चतुर्थ परिच्छेद पर्यंत तीन परिच्छेदों करिकै कणादमुनि उक्त द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंका निरूपण सिद्ध भया। अब पूर्व उक्त द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंके तथा पूर्वउक्त पृथिवी आदिक नव द्रव्योंके तथा पूर्व उक्त रूपादिक चौबीसगुणोंके साधर्म्यवैधर्म्योंके निरूपण करणे वासतै इस पंचमपरिच्छेदका प्रारंभ करे हैं। ताके विषे भी प्रथम द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६, अभाव ७ इन सप्त पदार्थोंके साधर्म्यवैधर्म्योंका निरूपण करे हैं।

साधर्म्य वैधर्म्यका अर्थ—ईहां समानधर्मका नाम साधर्म्य है । और विरुद्ध धर्मका नाम वैधर्म्य है । सातों पदार्थोंका साधर्म्य—तहां द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंके ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, अभिधेयत्व, अस्तित्व यह चारों साधर्म्य होवै हैं । ईहां ज्ञेयत्व—ज्ञानकी विषयताका नाम है ।

प्रमेयत्व—प्रमाकी विषयताका नाम है । अभिधेयत्व—इस शब्दतैं श्रोता लोकोंकूं इस अर्थका बोध होवो या प्रकारकी इच्छारूप जा शब्दकी शक्ति है ता शक्तिका नाम अभिधा है, ता अभिधाकी विषयताका नाम अभिधेयत्व है। अस्तित्व—कालके संबंधका नाम है।

साधर्म्यकी संकलपना—ते ज्ञेयत्वादिक च्यारों द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंविषे रहे हैं । कोई भी पदार्थ तिन ज्ञेयत्वादिकोंतैं रहित नहीं है। यद्यपि जीवात्माके ज्ञानकी तथा प्रमाकी विषयता सर्व पदार्थोंविषे संभवती नहीं । तथापि ईश्वरके ज्ञानकी तथा प्रमाकी विषयता तिन सर्व पदार्थोंविषे संभवै है। या कारणतैं हीं ' यः सर्वज्ञः सर्ववित्' यह श्रुति ता ईश्वरकूं सर्वज्ञ कहे है। यह उक्त ज्ञेयत्वादिक च्यारों सर्वपदार्थवृत्ति होणेतैं केवल साधर्म्य हीं होवै हैं । किसीके भी वैधर्म्य होते नहीं इति । द्रव्यादि छः पदार्थोंका साधर्म्य—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन षट् पदार्थोंका भावत्व साधर्म्य है । तहां भावका लक्षण—समवायैकार्थसमवायान्यतरसम्बन्धेन सत्तावत्त्वं भावत्वम् । अर्थ यह—समवायसंबंध करिकै वा एकार्थसमवाय संबंध करिकै जो सत्ताजातिमत्त्व है ताका नाम भावत्व है।

सत्ताका समवाय तथा एकार्थ समवायसम्बन्ध—तहां द्रव्य, गुण कर्म इन तीनोंविषे तौं सत्ता-जाति समवायसंबंध करिकै रहे है। और सामान्य, विशेष, समवाय इन तीन पदार्थोंविषे तौं सा सत्ताजाति एकार्थ समवायसंबंध करिकै रहे है। तहां जिस द्रव्यगुणकर्मरूप एकअर्थविषे सा सत्ताजाति समवायसंबंध करिकै रहे है। तिसी द्रव्यादिरूप एकअर्थविषे ते सामान्यादिक तीनों पदार्थ भी समवायसंबंध करिकै रहे हैं। याहीका नाम एकार्थसमवायसंबंध है। यद्यपि समवाय द्रव्यगुणादिकोंविषे समवायसंबंध करिकै रहता नहीं। किंतु स्वरूपसंबंध करिकै हीं रहे है। तथापि ता समवायका स्वरूपसंबंध ता समवायस्वरूप हीं है। इस प्रकारके एकार्थ समवायसंबंध करिकै सा सत्ताजाति तिन सामान्यादिक तीनों पदार्थोंविषे रहे है।

वैधर्म्यका तात्पर्य—यह उक्त भावत्वधर्म अभावविषे रहता नहीं। यातैं सो भावत्वधर्म ता अभावका वैधर्म्य है। इस प्रकार आगे भी जो जो धर्म जिस जिस पदार्थविषे रहे है सो सो धर्म तिस तिस पदार्थका तौं साधर्म्यजानणा। और तिस तिस पदार्थतैं भिन्न पदार्थका वैधर्म्य जानणा इति।

द्रव्यादि पांचोंका साधर्म्य—और द्रव्य, गुण कर्म, सामान्य, विशेष इन पांच पदार्थोंके तौं अनेकत्वविशिष्ट भावत्व तथा समवायित्व यह दोनों साधर्म्य होवै हैं। तहां द्रव्यपदार्थ पृथिवी जलादिक भेद करिकै नव प्रकारका होवै है। और गुणपदार्थ रूपरसादिक भेद करिकै चौवीस प्रकारका होवै है और कर्म पदार्थ उत्क्षेपणादिक भेद करिकै पांचप्रकारका होवै है। और सामान्यपदार्थ पर, अपर भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। और प्रत्येक नित्यद्रव्यविषे वृत्ति होणेतैं विशेष भी असंख्यात हीं होवै हैं। इस रीतिसैं तिन द्रव्यादिक पांच पदार्थोंविषे अनेक-पणा पूर्व कथन करि आये हैं। तथा ते पांचों पूर्व उक्त रीतिसैं भावरूप भी हैं। यातैं तिन द्रव्यादिक पांचों पदार्थोंका सो अनेकत्वविशिष्टभावत्वरूप साधर्म्य संभवै है। यद्यपि सो भावत्व-धर्म समवायविषे भी है। तथा प्रागभावादिक भेद करिकै सो अनेकत्वधर्म अभावविषे भी है। तथापि ता समवायविषे सो अनेकत्व धर्म है नहीं। तथा ता अभावविषे सो भावत्व धर्म है नहीं। यातैं सो अनेकत्वविशिष्ट भावत्व धर्म ता समवायका तथा अभावका वैधर्म्य हीं है। और प्रतियोगितासंबंध करिकै वा अनुयोगितासंबंध करिकै जो समवायका वर्त्तणा है ताका नाम सम-वायित्व है। तहां प्रतियोगितासंबंध करिकै वा अनुयोगितासंबंध करिकै सो समवाय तिन द्रव्य-दिक पांच पदार्थोंविषे हीं रहे है। यह वार्त्ता पूर्व चतुर्थ परिच्छेदविषे सामान्यके निरूपण विषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं। यातैं तिन द्रव्यादिक पांच पदार्थोंका सो समवायित्व-रूप साधर्म्य भी संभवै है इति।

द्रव्यादि चार पदार्थोंका साधर्म्य—और द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य इन च्यारों पदार्थोंका—समवेतसमवेतवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वम्। यह साधर्म्य है। ईहां समवायसंबंध करिकै रहणेहारे पदार्थका नाम समवेत है। तहां द्रव्यविषे समवेत जे द्रव्यादिक पदार्थ हैं तिन द्रव्या-

दिक पदार्थोंविषे समवेत पदार्थविषे रहणेहारा तथा पदार्थका विभाजक ऐसा जो उपाधि है ता उपाधिमत्त्व तिन द्रव्यादिक च्यारोंका साधर्म्य है । जैसे कपालके अवयवरूप जे कपालिका हैं ता कपालिकारूप द्रव्यविषे ते कपालरूप द्रव्य समवायसंबंध कारिकै रहे हैं और ता कपालरूप द्रव्यविषे घटरूप द्रव्य समवायसंबंध करिकै रहे है । यातैं सो घट समवेतसमवेत कह्या जावै है अर्थात् सो घट कपालिकाविषे समवेतकपालोंविषे समवेत कह्या जावै है। ऐसे समवेतविषे समवेत घटरूप द्रव्यविषे वर्त्तणेहारी द्रव्यत्वजाति समवेतसमवेतवृत्ति कही जावै है। और सा द्रव्यत्वजाति पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है । ऐसी समवेतसमवेतवृत्ति तथा पदार्थविभाजक उपाधिरूप द्रव्यत्वजाति पृथिवीआदिक सर्वद्रव्योंविषे रहे है। इस प्रकार कपालादिक अवयवोंविषे समवेत जे घटादिक हैं, तिन घटादिकोंविषे समवेत जे रूपादिक गुण हैं, तिन रूपादिक गुणोंविषे वर्त्तणेहारी जा गुणत्वजाति हैं। सा गुणत्वजाति भी समवेत समवेतवृत्ति कही जावै है । तथा सा गुणत्वजाति पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है। ऐसी समवेत समवेतवृत्ति तथा पदार्थ विभाजक उपाधिरूप गुणत्वजाति रूपादिक सर्वगुणोंविषे रहे है, इस प्रकार कपालादिक अवयवोंविषे समवेत जे घटादिक हैं, तिन घटादिकोंविषे समवेत जो कर्म है, ता कर्मविषे वर्त्तणेहारी जा कर्मत्वजाति है । सा कर्मत्वजाति भी समवेतसमवेतवृत्ति कही जावै है। और सा कर्मत्वजाति पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है। ऐसी समवेतसमवेतवृत्ति तथा पदार्थ विभाजक उपाधिरूप कर्मत्वजाति उत्क्षेपणादिक सर्वकर्मोंविषे रहे है । इस प्रकार कपालादि कोंविषे समवेत जे घटादिक द्रव्य हैं तथा तिन घटादिक द्रव्योंविषे समवेत जे गुणकर्म हैं । ता द्रव्यगुणकर्मविषे समवेत जो जातिरूप सामान्य है ता सामान्यविषे वर्त्तणेहारा जो सामान्यत्व धर्म है सो सामान्यत्वधर्म भी समवेतसमवेतवृत्ति कह्या जावै है। और सो सामान्यत्व धर्म पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी है। ऐसा समवेतसमवेतवृत्ति तथा पदार्थ-विभाजक उपाधिरूप सामान्यत्वधर्म सत्ताद्रव्यत्वादिक सर्वसामान्योंविषे रहे है । यातैं द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य इन च्यारों पदार्थोंकेविषे सो समवेतसमवेतवृत्ति पदार्थविभाजक उपाधिमत्त्वरूप साधर्म्य संभवै है । यह उक्त धर्म विशेषादिक पदार्थोंविषे रहता नहीं यातैं सो उक्तधर्म तिन विशेषादिकोंका वैधर्म्य हीं है इति ।

द्रव्यादि तीन पदार्थोंका साधर्म्य—और द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंका सत्तावत्त्व साधर्म्य है । तहां समवायसम्बन्ध करिकै जो सत्ताजातिका आश्रयपणा है ताका नाम सत्ता-वत्त्व है । तहां सा सत्ताजाति समवायसम्बन्ध करिकै द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंविषे हीं रहे है । यातैं द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनोंका सो सत्तावत्त्व साधर्म्य सम्भवै है इति ।

गुणादिक छः पदार्थोंका साधर्म्य—और द्रव्यपदार्थतैं भिन्न गुणादिक षट्पदार्थोंके निर्गुणत्व तथा निष्क्रियत्व यह दोनों साधर्म्य होवै हैं । तहां गुणके अत्यंताभाववत्त्वका नाम निर्गुणत्व

है तथा क्रियाके अत्यंताभाववत्त्वका नाम निष्क्रियत्व है । तहां तिन गुणादिक षट्पदार्थोंविषे कोई भी गुण तथा कोई भी क्रियारूप कर्म समवायसम्बंध करिकै रहता नहीं । यातैं तिन गुणादिक पदार्थोंविषे ता गुणक्रियाका अत्यंताभाव हीं रहे है । यातैं तिन गुणादिक षट्पदार्थोंके निर्गुणत्व, निष्क्रियत्व यह दोनों साधर्म्य सम्भवै हैं । और द्रव्यपदार्थविषे सो गुण तथा कर्म समवायसम्बन्ध करिकै रहे है । यातैं सो निर्गुणत्व, तथा निष्क्रियत्व धर्म ता द्रव्यका वैधर्म्य हीं है । यद्यपि उत्पत्तिक्षणविषे घटादिक द्रव्य भी निर्गुण हीं होवै हैं तथा निष्क्रिय हीं होवै हैं । यह वार्त्ता पूर्व द्वितीयपरिच्छेदके आदिविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं । और आकाश, काल, दिक्, आत्मा यह च्यारों विभु द्रव्य कर्मरूप क्रियातैं रहित हीं होवै हैं । यातैं ता उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटादिक द्रव्योंविषे तथा आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे ता निर्गुणत्व निष्क्रियत्व साधर्म्यकी अतिव्याप्ति हीं होवै है । तथापि ता निर्गुणत्व शब्द करिकै ' गुणवदवृत्तिधर्मवत्त्वम् ' इस साधर्म्यका ग्रहण करणा । तथा ता निष्क्रियत्व शब्द करिकै ' कर्मवदवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वम् ' इस साधर्म्यका ग्रहण करणा, इन दोनोंका यह अर्थ है । गुणवाले पदार्थविषे नहीं वर्त्तणेहारा ऐसा जो धर्म है ता ' धर्मवत्त्व ' तथा कर्मवाले पदार्थविषे नहीं वर्त्तणेहारा ऐसा जो पदार्थविभाजक उपाधि है ता ' उपाधिमत्त्व ' यह दोनों तिन गुणादिक षट्पदार्थोंके साधर्म्य हैं । तहां घटादिक द्रव्योंविषे रहणेहारे जे घटत्व, द्रव्यत्व, पृथिवीत्व, आदिक धर्म हैं, ते घटत्वादिक धर्म गुणवालेविषे तथा कर्मवालेविषे अवृत्ति नहीं हैं । किंतु रूपादिक गुणोंवाले तथा कर्मवाले घटादिक द्रव्योंविषे वृत्ति हीं है । और गुणकर्मादिक पदार्थोंविषे कोई भी गुण तथा कोई भी कर्म समवायसम्बन्ध करिकै रहता नहीं । यातैं तिन गुणादिक षट्पदार्थोंविषे यथाक्रमतैं रहणेहारे गुणत्व, कर्मत्व, सामान्यत्व, विशेषत्व, समवायत्व, अभावत्व यह षट्धर्म गुणवाले पदार्थविषे तथा कर्मवाले पदार्थविषे अवृत्ति कहे जावै हैं । तथा ते गुणत्वादिक षट्धर्म पदार्थविभाजक उपाधिरूप भी हैं । ऐसे गुणकर्मवाले पदार्थविषे अवृत्ति तथा पदार्थविभाजक उपाधिरूप गुणत्वादिक षट्धर्म यथाक्रमतैं तिन गुणादिक षट्पदार्थोंविषे हीं रहे हैं । द्रव्यपदार्थविषे रहते नहीं । यातैं तिन उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटादिक द्रव्योंविषे तथा आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे ता उक्त दोनों साधर्म्योंकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । यद्यपि आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे ता कर्मका अभाव होणेतैं आकाशत्वादिक धर्म कर्मवालेविषे अवृत्ति हीं हैं । तथापि ते आकाशत्व कालत्वादिक धर्म पदार्थविभाजक उपाधिरूप नहीं हैं किंतु द्रव्यविभाजक उपाधिरूप हैं । यातैं तिन आकाशत्वादिक धर्मोंकूं लैके तिन आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे ता उक्त निष्क्रियत्व साधर्म्यकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

सामान्यादि चार पदार्थोंका साधर्म्य—और सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन च्यारि पदार्थोंका सामान्यहीनत्व साधर्म्य है । तहां समवायसम्बंध करिकै जो जातिरूप सामान्यका नहीं वर्त्तणा है ताका नाम सामान्यहीनत्व है । तहां सो जातिरूप सामान्य समवायसम्बन्ध करिकै द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंविषे हीं रहे है । तिन सामान्यादिक च्यारि पदार्थोंविषे रहता नहीं । यातैं तिन सामान्यादिक च्यारि पदार्थोंका सो सामान्यहीनत्व साधर्म्य सम्भवै है इति । गुणकर्मका साधर्म्य—और गुण, कर्म इन दोनों पदार्थोंका असमवायिकारणत्व साधर्म्य है अर्थात् गुण, कर्म इन दो पदार्थोंविषे हीं भावकार्यकी असमवायिकारणता रहे है अन्यकिसी पदार्थविषे सा असमवायिकारणता रहती नहीं । तहां जन्यद्रव्य, जन्यगुण, जन्यकर्म इन तीनोंकूं भावकार्य कहे हैं । तहां जो जो द्रव्य जिस जिस अवयवों करिकै जन्य होवै है तिस तिस अवयवोंका संयोग हीं तिस तिस द्रव्यका असमवायिकारण होवै है । जैसे तंतुरूप अवयवों करिकै जन्य पटका तंतुवोंका संयोग हीं असमवायिकारण होवै है और कपालरूप अवयवों करिकै जन्य घटका कपालोंका संयोग हीं असमवायिकारण होवै है तथा परमाणुरूप अवयवों करिकै जन्य द्व्यणुकका सो दो परमाणुवोंका संयोगही असमवायिकारण होवै है । यातैं ता द्रव्यरूप कार्यकी असमवायिकारणता तौं केवल एक संयोगगुणविषे हीं होवै है ता संयोगतैं भिन्न दूसरे किसी रूपादिक गुणविषे वा कर्मविषे ता द्रव्यकी असमवायिकारणता होती नहीं । और गुणरूप कार्यकी असमवायिकारणता तौं गुण विषे भी होवै है तथा कर्मविषे भी होवै है । जैसे पटनिष्ठ रूपादिक गुणोंके तंतुनिष्ठ रूपादिक गुण असमवायिकारण होवैं हैं । और संयोग विभाग वेग इन तीनों गुणोंका कर्म, असमवायिकारण होवै है । यह वार्त्ता तृतीयपरिच्छेदविषे तिस तिस गुणके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं । और कर्मरूप कार्यकी असमवायिकारणता तौं केवल गुणविषे हीं होवै है । कर्मविषे ता कर्मकी असमवायिकारणता होती नहीं । तहां कोईक कर्मका तौं अभिघाताख्यसंयोग वा नोदनाख्यसंयोग असमवायिकारण होवै है । और कोईक कर्मका तौं गुरुत्वगुण असमवायिकारण होवै है । और कोईक कर्मका तौं द्रवत्वगुण असमवायिकारण होवै है । और कोईक कर्मका तौं वेगगुण असमवायिकारण होवै है । यह सर्व वार्त्ता पूर्व चतुर्थपरिच्छेदविषे कर्मके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं । इस उक्त रीतिसैं ता भाव कार्यकी असमवायिकारणता गुण पदार्थविषे रहे है वा कर्मपदार्थविषे रहे है ता गुणकर्मतैं भिन्न द्रव्यादिक पदार्थोंविषे सा असमवायिकारणता रहती नहीं । यातैं गुण कर्म इन दोनों पदार्थोंका सो असमवायिकारणत्वरूप साधर्म्य संभवै है । असमवायिकारणत्वका लक्षण—यद्यपि आत्माके ज्ञानादिक गुणोंविषे किसी भी कार्यकी असमवायिकारणता होती नहीं । यातैं तिन ज्ञानादिक गुणोंविषे ता असमवायिकारणत्वरूप साधर्म्यकी अव्याप्ति हीं होवै है तथापि ता

असमवायिकारणत्व शब्द करिकै 'असमवायिकारणवृत्तिसत्ताभिन्नजातिमत्वम्' यह साधर्म्य ग्रहण करणा । अर्थ यह—असमवायिकारणविषे वर्त्तणेहारी तथा सत्ताजातितैं भिन्न ऐसी जा जाति है ता जातिमत्त्व हीं ता गुणकर्मका साधर्म्य है । तहां गुणकर्म हीं असमवायिकारण होवै है । ऐसे गुणरूप असमवायिकारणविषे वर्त्तणेहारी तथा सत्ताजातितैं भिन्न गुणत्वजाति हीं है और ता कर्मरूप असमवायिकारणविषे वर्त्तणेहारी तथा सत्ताजातितैं भिन्न कर्मत्वजाति हीं है । सा गुणत्वजाति रूपादिक सर्वगुणोंविषे रहे है । तथा सा कर्मत्वजाति उत्क्षेपणादिक सर्वकर्मोंविषे रहे है । यातैं तिन ज्ञानादिक गुणोंविषे ता उक्त साधर्म्यकी अव्याप्ति होवै नहीं । पदकृत्य—ईहां द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनोंविषे वर्त्तणेहारी सत्ताजातिकूं लैके द्रव्यपदार्थविषे ता साधर्म्यकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता असमवायिकारण वृत्ति जातिका 'सत्ताभिन्न' यह विशेषण कथन कऱ्या है । सा सत्ताजाति असमवायिकारणवृत्ति हूई भी सत्तातैं भिन्न नहीं है, यातैं ता सत्ताजातिकूं ता द्रव्यविषे ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

द्रव्य और गुणका साधर्म्य—और द्रव्य, गुण इन दो पदार्थोंका 'नित्यानित्योभयवृत्तिसत्ताभिन्नजातिमत्त्वम्' यह साधर्म्य है । अर्थ यह—नित्य अनित्य दोनोंविषे वर्त्तणेहारी तथा सत्ताजातितैं भिन्न ऐसी जा जाति है ता जातिमत्त्व द्रव्यगुणदोनोंका साधर्म्य है । ऐसी नित्य अनित्यविषे वर्त्तणेहारी द्रव्यत्वजाति है तथा गुणत्वजाति है । तहां सा द्रव्यत्वजाति परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंविषे भी रहे है तथा घटादिक अनित्य द्रव्योंविषे भी रहे है । इस प्रकार गुणत्वजाति भी नित्यगुणोंविषे भी रहे है तथा अनित्य गुणोंविषे भी रहे है । ते नित्य अनित्य गुण तृतीयपरिच्छेदविषे तिस तिस रूपादिक गुणके निरूपणविषे कथन करि आये हैं । यातैं सा द्रव्यत्वजाति तथा गुणत्वजाति नित्य अनित्य दोनोंविषे वृत्ति है तथा सत्ताजातितैं भिन्न भी है । ऐसी नित्य अनित्य उभयवृत्ति तथा सत्तातैं भिन्न द्रव्यत्वजाति सर्वद्रव्योंविषे रहे है तथा गुणत्वजाति सर्वगुणोंविषे रहे है । यातैं द्रव्य गुण इन दोनों पदार्थोंका सो उक्त साधर्म्य संभवै है । पदकृत्य—तहां ता द्रव्यत्व गुणत्व जातिकी न्याईं नित्य अनित्य दोनोंविषे वर्त्तणेहारी सत्ताजातिकूं लैके कर्मपदार्थविषे ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं ता नित्यअनित्य-वृत्ति जातिका 'सत्ताभिन्न' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां सा सत्ताजाति नित्यअनित्यवृत्ति हूई भी सत्तातैं भिन्न है नहीं, यातैं ता सत्ताजातिकूं लैके ता कर्मविषे ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, और कर्म कोई भी नित्य होता नहीं किंतु सर्व कर्म अनित्य हीं होवै है । यातैं ता कर्मवृत्ति कर्मत्वजाति ता सत्तातैं भिन्न हूई भी नित्य अनित्य दोनोंविषे रहती नहीं, किंतु केवल अनित्यकर्मविषे हीं रहे है । यातैं ता कर्मत्वजातिकूं लैके ता कर्मविषे भी ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, यद्यपि अभावत्व-

धर्म ता सत्ताजातितैं भिन्न भी है तथा अत्यन्ताभाव अन्योन्याभावरूप नित्य अभावविषे वृत्ति होणेतैं तथा प्रागभाव–प्रध्वंसाभावरूप अनित्य अभावविषे वृत्ति होणेतैं नित्य अनित्य उभय-वृत्ति भी है तथापि सो अभावत्व धर्म जातिरूप नहीं है। यातैं ता जातिपदके कहणे करिकै ता अभावविषे भी ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति।

अनित्यपदार्थोंका साधर्म्य–और परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंतैं भिन्न जितनैंकी पदार्थ हैं तिन पदार्थोंका आश्रितत्व साधर्म्य है। तहां कोईक अधिकरणविषे संयोगसमवायादिक संबंधकरिकै जो वर्त्तणा है ताका नाम आश्रितत्व है। यद्यपि ते परमाणु आकाशादिक नित्य-द्रव्य भी कालिकसंबंध करिकै कालादिकोंविषे रहे है, यातैं तिन नित्य द्रव्योंविषे ता आश्रितत्व धर्मकी अतिव्याप्ति हीं होवै है तथापि सर्व पदार्थोंकी आधारताका नियामक जो कालिक-संबंध है ता कालिक संबंधतैं भिन्न संयोगसमवायादिक सम्बन्ध करिकै जो वृत्तिपणा है ताका नाम आश्रितत्व है। सो आश्रितत्व तिन नित्य द्रव्योंविषे रहता नहीं, किंतु तिन नित्य द्रव्योंतैं भिन्न पदार्थोंविषे हीं रहे है इति। इति सप्तपदार्थसाधर्म्यनिरूपणम्।

द्रव्योंका साधर्म्य वैधर्म्य–अब पृथिवी आदिक नवद्रव्योंके साधर्म्य वैधर्म्योंका निरूपण करे हैं। तहां पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५, काल ६, दिक् ७, आत्मा ८, मन ९ इन नव द्रव्योंके समवायिकारणत्व, गुणवत्त्व, द्रव्यत्वजातिमत्त्व, यह तीन साधर्म्य होवै हैं। तहां द्रव्यरूप कार्यकी वा गुणरूपकार्यकी वा कर्मरूप कार्यकी समवायिकारणता द्रव्यविषे हीं रहे है, अन्यकिसी पदार्थविषे रहती नहीं तथा ते उक्त रूपादिक गुण भी यथायोग्य तिन पृथिवी आदिक नव द्रव्योंविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे हैं, अन्य किसी पदार्थविषे रहते नहीं। तथा सा द्रव्यत्वजाति भी तिन पृथिवी आदिक नव द्रव्योंविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे है, अन्य किसी पदार्थविषे रहती नहीं। यातैं तिन पृथिवी आदिक नव द्रव्योंके समवायिकारणत्व, गुणवत्त्व, द्रव्यत्वजातिमत्त्व यह तीनों साधर्म्य संभवै हैं इति।

नित्य द्रव्योंका साधर्म्य–और परमाणु आकाशादिक नित्यद्रव्योंका अवृत्तित्व साधर्म्य है। तहां तिन नित्यद्रव्योंका कालिकसम्बन्धतैं भिन्न संयोगसमवायादिक सम्बन्धकरिकै जो किसी अधिकरणविषे नहीं वर्त्तणा है ताका नाम अवृत्तित्व है इति।

पृथिवी, जल, तेज, वायु और मनका साधर्म्य–और पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच द्रव्योंके मूर्त्तत्व, क्रियावत्त्व, वेगवत्त्व, परत्ववत्त्व, अपरत्ववत्त्व यह पांचों साधर्म्य हैं।

तहां मूर्तत्वका लक्षण–परिच्छिन्न परिमाणवत्त्वं मूर्त्तत्वम्। अर्थ यह–आकाशादिक विभुद्रव्योंविषे नहीं वर्त्तणेहारा जो परिमाण है ताका नाम परिच्छिन्नपरिमाण है। अर्थात् आकाशादिक विभुद्रव्यवृत्ति परममहत्त्व परमदीर्घत्व परिमाणकूं छोडिकै दूसरे सर्वपरिमाणका

नाम परिच्छिन्नपरिमाण है । ऐसा परिच्छिन्नपरिमाण तिन पृथिवी आदिक पांचद्रव्योंविषे हीं समवायसम्बन्धकरिकै रहे है । यह हीं तिन उक्त पांचद्रव्योंविषे मूर्त्तत्व हैं और क्रियारूप कर्म भी समवायसम्बन्धकरिकै तिन पांचमूर्त्तद्रव्योंविषे हीं रहे है । तथा वेग, परत्व, अपरत्व, यह तीनों गुण भी समवायसम्बन्ध करिकै तिन पांचमूर्त्तद्रव्योंविषे हीं रहे हैं । यातैं तिन पृथिवी आदिक पांचद्रव्योंके ते उक्त मूर्त्तत्वादिक पांचों साधर्म्य संभवै हैं ।

आकाश काल दिग् और आत्माका वैधर्म–और ते मूर्त्तत्वादिक पांचोंधर्म आकाश, काल, दिक्, आत्मा इन च्यारि विभुद्रव्योंविषे रहते नहीं यातैं ते मूर्त्तत्वादिक तिन आकाशादिक च्यारि विभुद्रव्योंके वैधर्म्य हीं हैं। इस प्रकार आगे भी जो जो धर्म जिस जिस द्रव्यका साधर्म्य होवै है सो सो धर्म तिस तिस द्रव्यतैं भिन्न द्रव्यका वैधर्म्य हीं जानणा इति ।

आकाश काल दिग् और आत्माका साधर्म्य–और आकाश, काल, दिक्, आत्मा इन च्यारि द्रव्योंके विभुत्व, परममहत्त्वपरिमाणवत्त्व यह दोनों साधर्म्य होवै हैं। तहां विभुत्वका लक्षण–**सर्वमूर्त्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम्** । अर्थ यह–तिन आकाशादिक च्यारोंका जो पृथिवी आदिक सर्वमूर्त्तद्रव्योंके साथि संयोगसम्बन्ध है यह हीं तिन आकाशादिकोंविषे विभुत्व है और परममहत्त्वपरिमाण भी समवायसम्बन्ध करिकै तिन आकाशादिकोंविषे हीं रहे है, अन्य किसी द्रव्यविषे रहता नहीं । यातैं तिन आकाशादिक च्यारों द्रव्योंके विभुत्व परममहत्त्वपरिमाणवत्त्व यह दोनों साधर्म्य संभवै हैं इति । भूतोंका साधर्म्य–और पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पांच द्रव्योंका भूतत्व साधर्म्य है । तहां भूतत्वका लक्षण–**बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वं भूतत्वम्** । अर्थ यह–बाह्यइंद्रियजन्य ज्ञानका विषयभूत जो विशेषगुण है ता विशेषगुणवत्त्वका नाम भूतत्व है । तहां गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द यह पांचविशेषगुण यथाक्रमतैं घ्राण, रसन, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र इन पांच बाह्यइंद्रियजन्य ज्ञानके विषय होवै हैं। ते गंधादिक पंचविशेषगुण यथाक्रमतैं पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंचद्रव्योंविषे समवायसम्बन्ध करिकै रहे हैं। यह हीं तिन पृथिवी आदिक पंच द्रव्योंविषे भूतत्व है। पदकृत्य–तहां मनरूप अंतरइंद्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत सुखदुःखादिक विशेषगुणकूं लैके आत्माविषे ता भूतत्वके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता भूतत्वके लक्षणविषे ता इंद्रियका 'बहिः' यह विशेषण कथन कन्या है इति । द्वितीय लक्षण–अथवा **आत्मावृत्तिविशेषगुणवत्त्वं भूतत्वम्** । अर्थ यह–आत्माविषे नहीं वर्त्तणेहारा जो विशेषगुण है ता विशेषगुणवत्त्वका नाम भूतत्व है । तहां आत्माविषे नहीं वर्त्तणेहारे जे पूर्वउक्त गंधादिक पंच विशेषगुण हैं ते गंधादिक पंचगुण यथाक्रमतैं तिन पृथिवीआदिक पंचद्रव्योंविषे रहे हैं। यह हीं तिन पृथिवीआदिक पंचद्रव्योंविषे भूतत्व है। पदकृत्य–तहां आत्माविषे अवृत्ति

परत्वअपरत्वगुणकूं लैके मनविषे ता भूतत्वके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै तिन गुणोंका 'विशेष' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ते परत्व अपरत्व विशेषगुण नहीं हैं किंतु सामान्यगुण हैं। यातैं ता परत्वअपरत्वकूं लैके मनविषे ता भूतत्वके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। पंचभूत और आत्माका साधर्म्य—और पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, आत्मा इन षट्द्रव्योंका विशेषगुणवत्त्व साधर्म्य है। अर्थात् इन उक्त षट्द्रव्योंविषे हीं ते रूपादिक विशेषगुण यथायोग्य समवायसम्बन्ध करिकै रहे हैं। काल, दिक्, मन इन तीन द्रव्योंविषे कोई भी विशेषगुण रहता नहीं। यातैं तिन उक्त षट्द्रव्योंका सो विशेषगुणवत्त्वरूप साधर्म्य सम्भवै है। तहां पृथिवीविषे तौं रूप, रस, गंध, स्पर्श यह च्यारि विशेषगुण रहे हैं। और जलविषे तौं रूप, रस, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्व यह पंच विशेषगुण रहे हैं। और तेजविषे तौं रूप, स्पर्श यह दो विशेषगुण रहे हैं। और वायुविषे तौं एक स्पर्शविशेषगुण रहे है। और आकाशविषे भी एक शब्दविशेषगुण रहे है। और ईश्वरात्माविषे तौं ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीन विशेषगुण रहे हैं। और जीवात्माविषे तौं ज्ञान, इच्छा, सुख, दुःख, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार यह नवविशेषगुण रहे हैं इति॥

चारि भूतोंका साधर्म्य—पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारि द्रव्योंका स्पर्शवत्त्व, द्रव्य-, समवायिकारणत्व यह दोनों साधर्म्य होवै हैं। तहां सो स्पर्शगुण समवायसंबंध करिकै तिन पृथिवीआदिक च्यारि द्रव्योंविषे हीं रहे है। आकाशादिक पंच द्रव्योंविषे रहता नहीं। यातैं तिन पृथिवीआदिक च्यारिद्रव्योंका सो स्पर्शवत्त्व साधर्म्य सम्भवै है। और द्रव्यकी समवायिकारणता भी तिन पृथिवीआदिक च्यारि द्रव्योंविषे हीं रहे है; आकाशादिकोंविषे रहती नहीं। जैसे पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय, परमाणुवोंकूं यथाक्रमतैं पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय द्वयणुकोंकी समवायिकारणता होवै है तथा पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय द्वयणुकोंकूं यथाक्रमतैं पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय त्र्यणुकोंकी समवायिकारणता होवै है। इस प्रकार महान् पृथिवी जल तेज वायुपर्यंत तिस तिस पृथिवीआदिक द्रव्यकी समवायिकारणता तिस तिस पृथिवीआदिक द्रव्यके अवयवोंविषे हीं रहे है। तथा घटपटादिक द्रव्योंकी समवायिकारणता कपालतंतुआदिक अवयवोंविषे रहे है। इस प्रकारतैं तिन पृथिवीआदिक च्यारि द्रव्योंविषे हीं आपणे आपणे सजातीय द्रव्यकी समवायिकारणता होवै है। और आकाशादिक पांच द्रव्योंविषे कोई भी द्रव्य समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होता नहीं। यातैं तिन आकाशादिकोंविषे द्रव्यकी समवायिकारणता रहती नहीं। किंतु तिन आकाशादिकोंविषे यथायोग्य शब्दादिक गुणोंकी हीं समवायिकारणता रहे है। यद्यपि घटशरीरादिक अंत्यावयवी द्रव्योंविषे कोई भी द्रव्य समवायसंबंध करिकै उत्पन्न होता नहीं यातैं तिन घटशरीरादिक अंत्यावयवीयोंविषे ता द्रव्यसमवायिकारणत्वरूप साधर्म्यकी अव्याप्ति

हीं होवै है । तथापि ता द्रव्यसमवायिकारणत्व शब्द करिकै 'द्रव्यसमवायिकारणवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वम्' यह साधर्म्य विवक्षित है । अर्थ यह—द्रव्यके समवायिकारणविषे वर्त्तणेहारी तथा द्रव्यत्वजातिका व्याप्य ऐसी जा जाति है ता जातिमत्त्व तिन पृथिवीआदिक च्यारोंका साधर्म्य है । तहां द्रव्यके समवायिकारणरूप तिन पृथिवीआदिक च्यारि द्रव्योंविषे पृथिवीत्व, जलत्व, तेजस्त्व, वायुत्व यह च्यारों जातियां यथाक्रमतैं वृत्ति भी है तथा द्रव्यत्वजातिके व्याप्य भी हैं । ऐसी पृथिवीत्वादिक च्यारि जातियां यथाक्रमतैं तिन पृथिवीआदिक च्यारोंविषे समवायसंबंध करिकै रहे हैं । और जे घटशरीरादिक अंत्यावयवी द्रव्य किसी द्रव्यके समवायिकारण नहीं होवै हैं तिन घट शरीरादिकों विषे भी ते पृथिवीत्वादिक जातियां रहे हैं । यातैं तिन घटशरीरादिक अंत्यावयवीयोंविषे भी ता उक्त साधर्म्यकी अव्याप्ति होवै नहीं । ईहां ता द्रव्यसमवायिकारणवृत्ति द्रव्यत्वजातिकूं लैके तथा सत्ताजातिकूं लैके आकाशादिक द्रव्योंविषे ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतै ता द्रव्यसमवायिकारणवृत्ति जातिका 'द्रव्यत्वव्याप्य' यह विशेषण कथन कन्या है । तहां सा द्रव्यत्वजाति तथा सत्ताजाति ता द्रव्यत्वजातिका व्याप्य नहीं है । यातैं ता द्रव्यत्व सत्ताजातिकूं लैके तिन आकाशादिकोंविषे ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । पृथिवी,जल और तेजका साधर्म्य—और पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंके रूपवत्त्व, द्रवत्ववत्त्व, बहिरिंद्रियजन्य प्रत्यक्षविषयद्रव्यत्व यह तीनों साधर्म्य होवै हैं । तहां सो रूपगुण तथा द्रवत्वगुण समवायसंबंध करिकै तिन पृथिवी आदिक तीन द्रव्योंविषे हीं रहे है, वायुआदिक द्रव्योंविषे रहता नहीं । और चक्षुत्वकूरूप बाह्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानकी विषयता भी तिन पृथिवीआदिक तीन द्रव्योंविषे हीं रहे है, वायुआदिक द्रव्योंविषे रहती नहीं । यातैं पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंके रूपवत्त्व, द्रवत्ववत्त्व, बहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयद्रव्यत्व यह तीनों साधर्म्य संभवै हैं इति ।

पृथिवी और जलका साधर्म्य—और पृथिवी, जल इन दोनों द्रव्योंके गुरुत्ववत्त्व, रसवत्त्व यह दोनों साधर्म्य होवै हैं । तहां गुरुत्वगुण, तथा रसगुण यह दोनों गुण समवायसंबंध करिकै पृथिवी, जल इन दो द्रव्योंविषे हीं रहे हैं, तेजादिक द्रव्योंविषे रहते नहीं । यातैं ता पृथिवी, जल दोनोंका गुरुत्ववत्त्व, रसवत्त्व यह दोनों साधर्म्य संभवै हैं इति ।

पृथिवी तेजका साधर्म्य—और पृथिवी, तेज इन दोनों द्रव्योंका नैमित्तिक द्रवत्व साधर्म्य होवै है । तहां अग्निआदिक तेजके संयोगतैं उत्पन्न भया जो द्रवत्व है ताका नाम नैमित्तिक द्रवत्व है । सो नैमित्तिक द्रवत्व समवायसंबंध करिकै घृतलाक्षादिक पृथिवीविषे तथा सुवर्णरजतादिक तेजविषे हीं रहे है, अन्यकिसी द्रव्यविषे रहता नहीं । यातैं ता पृथिवीतेजका सो नैमित्तिक द्रवत्ववत्त्वरूप साधर्म्य संभवै है इति ।

आकाश और जीवात्माका साधर्म्य—और आकाश, जीवात्मा इन दोनों द्रव्योंके अव्याप्यवृत्ति विशेषगुणवत्त्व क्षणिकविशेषगुणवत्त्व यह दोनों साधर्म्य होवै है। तहां आकाशविषे तौं एक शब्द विशेषगुण रहे है। सो शब्द अव्याप्यवृत्ति भी होवै है तथा क्षणिक भी होवै है। और जीवात्माविषे ज्ञानादिक नव विशेषगुण रहे हैं। ते ज्ञानादिक नवविशेषगुण अव्याप्यवृत्ति हीं होवै हैं। ताके विषे भी ज्ञान,इच्छा, सुख, दुःख, द्वेष, प्रयत्न यह षड्गुण तौं अव्याप्यवृत्ति भी होवै हैं तथा क्षणिक भी होवै हैं। और धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार यह तीन गुण तौं केवल अव्याप्यवृत्ति हीं होवै हैं, क्षणिक होते नहीं।

अव्याप्यवृत्तिका लक्षण—तहां **स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वमव्याप्यवृत्तित्वम्**। ईहां स्वशब्दकरिकै ता शब्दज्ञानादिक अव्याप्यवृत्ति गुणका ग्रहण करणा। तिन शब्दज्ञानादिकोंका आपणे अत्यंताभावके साथि जो समानाधिकरणपणा है यह हीं तिन शब्दज्ञानादिकोंविषे अव्याप्यवृत्तिपणा है। जैसे एक हीं विभु आकाशके भेरि अवच्छिन्न प्रदेशविषे उत्पन्न भया जो शब्द है ता शब्दका तिसी आकाशके घटादिअवच्छिन्न प्रदेशविषे अत्यंताभाव रहे है। ता आपणे अत्यंताभावके साथि ता शब्दगुणका समानाधिकरण है। अर्थात् सो एक हीं विभु आकाश ता शब्दका तथा ता शब्दके अत्यंताभावका अधिकरण होवै है। इसीका नाम समानाधिकरण है। इस प्रकार एक हीं विभु जीवात्माके शरीरअवच्छिन्न प्रदेशविषे उत्पन्न भये जे ज्ञानादिक गुण हैं तिन ज्ञानादिक गुणोंका तिसी आत्माके घटादि अवच्छिन्न प्रदेशविषे अत्यंताभाव रहे है। ता आपणे अत्यंताभावके साथि तिन ज्ञानादिक गुणोंका समानाधिकरण होवै है। इस रीतिसैं ता शब्दगुणविषे तथा तिन ज्ञानादिक गुणोंविषे स्वअत्यंताभावसमानाधिकरणत्वरूप अव्याप्यवृत्तित्व विद्यमान है। यातैं आकाश, जीवात्मा इन दोनों द्रव्योंका सो अव्याप्यवृत्तिविशेषगुणवत्त्वरूप साधर्म्य संभवै है।

क्षणिकत्वका लक्षण—**तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वं क्षणिकत्वम्**। अर्थ यह—तिन शब्दज्ञानादिकोंका तृतीयक्षणविषे वर्त्तमान जो ध्वंस है ता ध्वंसका जो तिन शब्दज्ञानादिकोंविषे प्रतियोगीपणा है यह हीं तिन शब्दज्ञानादिकोंविषे क्षणिकत्व है।

योग्यविभुविशेषगुणोंविषे शास्त्रकारोंका नियम—तहां यह शास्त्रकारोंका नियम है योग्यविभुविशेषगुणानां **स्वोत्तरवृत्तिस्वसमानाधिकरणयोग्यविभुविशेषगुणनाश्यत्वात्**। अर्थ यह—योग्य ऐसे जे विभुद्रव्यके विशेषगुण हैं तिन योग्यविभुविशेष गुणोंका स्वउत्तरवृत्ति तथा स्वसमानाधिकरण ऐसे योग्य—विभुविशेषगुण करिकै नाश होवै है। जैसे विभु आकाशका योग्य विशेषगुण जो शब्द है ता प्रथमशब्दका ता विभु आकाशके योग्यविशेषगुणरूप द्वितीयशब्द करिकै नाश होइ जावै है। ईहां यह तात्पर्य है—प्रथम क्षणविषे ता आकाशविषे भेरीदंडसंयोगादिकोंकरिकै प्रथम शब्द उत्पन्न होवै है और

द्वितियक्षणविषे ता प्रथमशब्दतैं ता आकाशविषे द्वितीयशब्द उत्पन्न होवै है। सो द्वितीय शब्द ता प्रथम शब्दका नाशक होवै है। यातैं तृतीयक्षणविषे ता प्रथम शब्दका नाश होइ जावै है। ता तृतीयक्षणवृत्ति नाशरूप ध्वंसका प्रतियोगीपणा ता प्रथमशब्दविषे है । यह हीं ता प्रथमशब्दविषे क्षणिकत्व है । इस प्रकार द्वितीयादिक शब्दोंका भी तृतीयादिक शब्दों करिकै तीसरे तीसरे क्षणविषे हीं ध्वंस होवै है। ता ध्वंसका प्रतियोगीपणा तिन द्वितीयादिक शब्दोंविषे विद्यमान है । यह हीं तिन द्वितीयादिक शब्दोंविषे क्षणिकत्व है। इस प्रकार विभु जीवात्माके जे ज्ञानादिक योग्यविशेषगुण हैं तिन ज्ञानादिकोंका ता विभुआत्माके इच्छादिक योग्यविशेषगुण करिकै नाश होइ जावै है। ईहां यह तात्पर्य है– प्रथमक्षणविषे ता विभु जीवात्माविषे मनके संयोगतैं कोई ज्ञानादिरूप योग्यविशेषगुण उत्पन्न होवै है और द्वितीयक्षणविषे तिसी जीवात्माविषे कोई इच्छादिरूप योग्यविशेषगुण उत्पन्न होवै सो इच्छादिरूप योग्यविशेषगुण ता ज्ञानादिरूप योग्यविशेषगुणका नाशक होवै है। यातैं तृतीयक्षणविषे ता ज्ञानादिरूप योग्यविशेषगुणका नाश होइ जावै है। ता तृतीय क्षणवृत्तिनाशरूप ध्वंसका प्रतियोगीपणा ता ज्ञानादिरूप योग्यविशेषगुणविषे है। यह हीं तिन ज्ञानादिक गुणोंविषे क्षणिकत्व है। तहां ता पूर्व उक्त नियमविषे योग्यविभुविशेषगुणका नाश तौं कार्य है। और स्वउत्तरवृत्ति स्वसमानाधिकरण योग्यविभुविशेषगुण कारण है। पदकृत्य–तहां प्रथम कार्यकोटिविषे स्थित योग्य विभु विशेष इन तीन पदोंका फलवर्णन करे हैं। तहां ता उक्त नियमविषे 'योग्य' यह पद जो नहीं कथन करते तौं धर्म अधर्मरूप अदृष्टके नाशविषे ता उक्तकारणका व्यभिचार होता। काहेतैं ? ता योग्यविभुविशेषगुणरूप कारणतैं विना हीं कर्मनाशा नदीके जलस्पर्शादिकोंकरिकै तथा प्रायश्चित्त करिकै ता अदृष्टका नाश होइ जावै है । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणेवास्तै ता उक्तनियमविषे ता विनाश्य गुणका 'योग्य' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां सो धर्माधर्मरूप अदृष्ट विभ आत्माका विशेषगुण हूआ भी योग्य नहीं है, किंतु अयोग्य है। यातैं ता अदृष्टके नाशविषे ता उक्त कारणका व्यभिचार होवै नहीं। किंवा ता उक्त नियमविषे 'विभु' यह पद जो नहीं कथन करते तौं रूपादिक गुणोंके नाशविषे ता उक्तकारणका व्यभिचार होता। काहेतैं ? ता योग्यविशेषगुणरूप कारणतैं विना हीं अग्निसंयोगादिकों करिकै ते घटादिकोंके रूपादिक गुण नाश होइ जावै हैं । ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणेवास्तै ता विनाश्यगुणका 'विभुवृत्ति' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ते रूपादिक गुण योग्यविशेषगुण हूए भी विभुवृत्ति नहीं हैं, किंतु पृथिवी आदिक मूर्तद्रव्यवृत्ति हैं। यातैं तिन रूपादिक गुणोंके नाशविषे ता उक्त कारणका व्यभिचार होवै नहीं। किंवा ता उक्त नियमविषे 'विशेष' यह पद जो नहीं कथन करते तौं आकाश आत्मवृत्ति संयोगादिक गुणोंके नाशविषे ता उक्त कारणका व्यभिचार होता।

काहेतैं ? ता योग्यविशेषगुणरूप कारणतैं विना हीं क्रिया जन्य विभागादिकोंकरिकै ते संयोगादिक नाश होइ जावै हैं ता व्यभिचार दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता विनाश्य गुणका 'विशेष' यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां ते संयोगादिक ता विभुद्रव्यके योग्यगुण हूए भी विशेषगुण नहीं हैं किन्तु सामान्यगुण हैं । यातैं तिन संयोगादिकोंके नाशविषे ता उक्त कारणका व्यभिचार होवै नहीं । अब ता उक्त नियमके कारण कोटीविषे स्थित स्वोत्तरवृत्ति, स्वसमानाधिकरण, योग्य, विशेष इन च्यारि पदोंका फल वर्णन करे हैं । तहां ता कारणकोटीविषे 'योग्य, विशेष' यह दोनों पद जो नहीं कथन करते तौं द्वित्वादिक संख्याका निमित्तकारणरूप अपेक्षाबुद्धिका द्वितीयक्षणविषे उत्पन्नहूए अदृष्टकरिकै वा संयोगकरिकै तृतीयक्षणविषे हीं नाश होणा चाहिये और ता अपेक्षाबुद्धिका ता अदृष्ट करिकै वा संयोग करिकै तृतीयक्षणविषे नाश होता नहीं, किंतु तृतीयक्षणविषे उत्पन्न हूए निर्विकल्पकज्ञान करिकै हीं चतुर्थक्षणविषे ता अपेक्षा बुद्धिका नाश होवै है । यह वार्त्ता पूर्व तृतीयपरिच्छेदविषे संख्यागुणके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । ता उक्त दोषके निवृत्त करणेवासतै ता नाशक गुणके 'योग्य, विशेष' यह दो विशेषण कथन कऱ्ये हैं । तहां सो धर्म अधर्मरूप अदृष्ट तौं योग्य नहीं है और सो संयोग विशेषगुण नहीं है । यातैं ता अदृष्टके तथा संयोगके विद्यमानहूए भी ता अपेक्षा बुद्धिका तृतीयक्षणविषे नाश होता नहीं । यद्यपि ता धर्मअधर्मरूप अदृष्टकी न्यांई ता निर्विकल्पक ज्ञानका भी प्रत्यक्ष होता नहीं । किंतु ता अदृष्टकी न्यांई सो निर्विकल्पकज्ञान भी अति इंद्रिय हीं होवै तथापि ईहां योग्य शब्द करिकै प्रत्यक्षज्ञानका विषयत्व विवक्षित नहीं है किंतु अतिइंद्रियजीतशून्यत्व हीं ता योग्य शब्द करिकै विवक्षित है । तहां ता धर्मअधर्मरूप अदृष्टविषे तौं अदृष्टत्वरूप अतिइंद्रिय जातिके विद्यमान होणेतैं सो अतिइंद्रिय जातिशून्यत्वरूपयोग्यत्व है नहीं । और ता निर्विकल्पकज्ञानविषे तौं सो अतिइंद्रियजाति शून्यत्वरूप योग्यत्व रहे है । तहां ता निर्विकल्पकज्ञानमात्रवृत्ति जो निर्विकल्पकत्व धर्म है सो तौं जातिरूप नहीं है किंतु उपाधिरूप है । और निर्विकल्पकज्ञानवृत्ति जा ज्ञानत्वजाति है सा ज्ञानत्वजाति अतिइंद्रिय नहीं है किंतु सा ज्ञानत्वजाति 'जानामि' या प्रकारके मानसप्रत्यक्षका विषय हीं है । इस रीतिसैं ता निर्विकल्पक ज्ञानकूं भी योग्यत्व होणेतैं ता निर्विकल्पक ज्ञानकरिकै ता अपेक्षाबुद्धिका नाश सम्भवै है, तथा ता निर्विकल्पकज्ञानका भी स्वउत्तरउत्पन्नहूए योग्यविशेषगुण करिकै नाश संभवै है । किंवा ता नाशक गुणका 'स्वोत्तरवृत्ति' यह विशेषण जो नहीं कथन करते तौं पूर्व उत्पन्नहूए ज्ञान गुण करिकै उत्तरउत्पन्नहूए इच्छागुणका ता उत्पत्तिक्षणविषे हीं नाश होणा चाहिये सो ऐसा होता नहीं । ता

दोषके निवृत्त करणे वासतै ता नाशक गुणका ' स्वोत्तरवृत्ति ' यह विशेषण कथन कऱ्या है। ईहां स्वशब्द करिकै ता विनाश्य गुणका ग्रहण करणा ता विनाश्यगुणतैं उत्तरवृत्तिगुण हीं ता पूर्वले गुणका नाशक होवै है। तहां सो ज्ञानगुण ता इच्छागुणके उत्तरवृत्ति नहीं है। किंतु पूर्ववृत्ति है। यातैं ता पूर्व उत्पन्नहूए ज्ञानादिकों करिकै उत्तरउत्पन्नहूए इच्छादिकोंका नाश होवै नहीं। किंवा ता नाशक गुणका ' स्वसमानाधिकरण ' यह विशेषण जो नहीं कथन करते तौं आत्माके ज्ञान इच्छादिक गुणोंका आकाशके शब्दगुण करिकै नाश होणा चाहिये सो होता नहीं, ता दोषके निवृत्त करणे वासतै ता नाशक गुणका ' स्वसमानाधिकरण ' यह विशेषण कथन कऱ्या है । ईहां भी स्वशब्द करिकै ता विनाश्यगुणका ग्रहण करणा ता विनाश्य गुणके अधिकरणविषे वर्त्तणेहारा गुण हीं ता विनाश्य गुणका नाश करे है। तहां सो शब्दगुण तिन ज्ञानादिक गुणोंके आत्मारूप अधिकरणविषे वर्त्तता नहीं किंतु ता आत्मातैं भिन्न आकाशरूप अधिकरणविषे सो शब्दगुण रहे है। यातैं ता भिन्न अधिकरणवृत्ति शब्दगुण करिकै तिन ज्ञानादिक गुणोंका नाश सम्भवता नहीं। इस रीतिसैं तिन शब्द-ज्ञानादिक गुणोंकूं क्षणिकरूपता होणेतैं ता आकाश जीवात्माका सो क्षणिकविशेषगुणवत्त्वरूप साधर्म्य संभवै है इति। इति द्रव्यसाधर्म्यवैधर्म्यनिरूपणं समाप्तम् ।

### चौवीस गुणोंका साधर्म्य वैधर्म्य ।

अब पूर्वउक्त रूपादिक चौवीसगुणोंके साधर्म्यवैधर्म्यका निरूपण करे हैं। तहां रूप १, रस २, गंध ३, स्पर्श ४, संख्या ५, परिमाण ६, पृथक्त्व ७, संयोग ८, विभाग ९, परत्व १०, अपरत्व ११, गुरुत्व १२, द्रवत्व १३, स्नेह १४, शब्द १५, बुद्धि १६, सुख १७, दुःख १८, इच्छा १९, द्वेष २०, प्रयत्न २१, धर्म २२, अधर्म २३, संस्कार २४ इन, चौवीस गुणोंके द्रव्याश्रितत्व, निर्गुणत्व, निष्क्रियत्व, गुणत्वजातिमत्त्व, यह च्यारों साधर्म्य होवै हैं। तहां ते रूपादिक चौवीसगुण समवायसंबंधकरिकै यथायोग्य पृथिवी आदिक नव द्रव्योंविषे हीं रहे हैं अन्य किसी पदार्थविषे रहते नहीं। यातैं तिन रूपादिक गुणोंका सो द्रव्याश्रितत्वरूप साधर्म्य संभवै है और तिन रूपादिक गुणोंविषे कोई भी गुण वा कर्म समवायसंबध कारिकै रहता नहीं। यातैं तिन रूपादिक गुणोंका सो निर्गुणत्व तथा निष्क्रियत्व साधर्म्य भी संभवै है । और गुणत्वजाति भी समवायसंबंध करिकै तिन रूपादिक गुणोंविषे हीं रहे है अन्य किसी पदार्थविषे रहती नहीं। यातैं तिन रूपादिक गुणोंका सो गुणत्वजातिमत्त्वरूप साधर्म्य भी संभवै है इति। मूर्तिवृत्तिगुणत्व—और रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व गुणत्व

गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग, स्थितिस्थापक इन एकादशगुणोंका मूर्त्तवृत्तिगुणत्व साधर्म्य होवै है। तहां ते रूपादिक एकादशगुण पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन इन पांच मूर्त्तद्रव्योंविषे हीं यथायोग्य समवायसंबंधकरिकै रहे हैं आकाशादिक च्यारि अमूर्त्तद्रव्योंविषे रहते नहीं। यातैं तिन रूपादिक एकादशगुणोंका सो मूर्त्तवृत्तिगुणत्वरूप साधर्म्य सम्भवै है इति।

अमूर्त्तवृत्तिगुणत्व—और शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म भावनाख्यसंस्कार इन दश गुणोंका अमूर्त्तवृत्तिगुणत्व साधर्म्य होवै है। तहां यह उक्त शब्दादिक दशगुण अमूर्त्तद्रव्यमात्रविषें हीं समवायसंबंध करिकै रहे है। पृथिवीआदिक पंच मूर्त्तद्रव्यविषे रहते नहीं। ताके विषे भी शब्दगुण तौं आकाशरूप अमूर्त्तद्रव्यविषे रहे है और बुद्धिआदिक नवगुण आत्मारूप अमूर्त्तद्रव्यविषे रहे हैं। यातैं तिन शब्दादिक दशगुणोंका सो अमूर्त्तवृत्ति गुणत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति। उभय वृत्तित्व—और संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग इन पंच गुणोंका तौं मूर्त्त अमूर्त्त उभयवृत्तिगुणत्व साधर्म्य होवै है। तहां यह संख्यादिक पंचगुण पृथिवीआदिक पंच मूर्त्तद्रव्योंविषे भी समवायसंबंध करिकै रहे है। तथा आकाशादिक च्यारि अमूर्त्तद्रव्योंविषे भी समवायसंबंध करिकै रहे हैं। यातैं तिन संख्यादिक पंचगुणोंका सो मूर्त्तअमूर्त्त उभयवृत्तिगुणत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति। अनेक वृत्तित्व—और संयोग विभाग तथा एकत्वसंख्यातैं भिन्न द्वित्वादिक संख्या तथा एकपृथक्त्वतैं भिन्न द्विपृथक्त्व आदिक थक्त्व इन च्यारों गुणोंका अनेकवृत्तिगुणत्व साधर्म्य होवै है। तहां यह संयोगादिक च्यारोंगुण अनेकद्रव्यव्यक्तियोंविषे हीं रहे हैं एक द्रव्यव्यक्तिविषे रहते नहीं। यातैं तिन संयोगादिक च्यारोंका सो अनेकवृत्तिगुणत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति। एकैकवृत्तित्व—और तिन उक्त संयोगादिक च्यारोंतैं भिन्न दूसरे जितनैंकी रूपादिकगुण हैं तिन सर्वगुणोंका एकैकवृत्तिगुणत्व साधर्म्य होवै है। तहां तिन संयोगादिक च्यारोंतैं भिन्न दूसरे रूपादिक सर्वगुण एकएकद्रव्यव्यक्तिविषे हीं समवायसंबंध करिकै रहे हैं अनेकद्रव्यव्यक्तियोंविषे रहते नहीं। यातैं तिन रूपादिक सर्वगुणोंका सो एकैकवृत्तिगुणत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति।

विशेषगुणत्व—और रूप, रस, गंध, स्पर्श सांसिद्धिकद्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार इन षोडशगुणोंका विशेषगुणत्व साधर्म्य होवै है। अर्थात् यह उक्त षोडशगुण न्यायशास्त्रविषे विशेषगुण कहे जावै हैं इति।

सामान्य गुणत्व—और संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिकद्रवत्व, वेग, स्थितिस्थापक इन एकादशगुणोंका समान्यगुणत्व साधर्म्य होवै है अर्थात् यह उक्त एकादशगुण न्यायशास्त्रविषे सामान्यगुण कहे जाव हैं इति।

एकैकेन्द्रिय ग्राह्यत्व—और रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द इन पांचगुणोंका बाह्य एकएक इंद्रिय-ग्राह्यगुणत्व साधर्म्य होवै है । तहां ते रूपादिक पंचगुण यथाक्रमतैं चक्षु, रसन, घ्राण, त्वक्, श्रोत्र इन बाह्य पंचइंद्रियोंके मध्यविषे एक एक इंद्रियजन्य प्रत्यक्षज्ञानके विषय होवै हैं । जैसे रूप, एक चक्षुइंद्रियग्राह्य है, रस एक रसनइंद्रिय ग्राह्य है, गंध एक घ्राणइंद्रिय ग्राह्य है, स्पर्श एक त्वक् इंद्रिय ग्राह्य है, शब्द एक श्रोत्रइंद्रिय ग्राह्य है । यातैं तिन रूपादिक पंचगुणोंका सो बाह्य एकैकइंद्रियग्राह्य गुणत्वरूप साधर्म्य संभवै है । ईहां मनरूप एक इंद्रिय ग्राह्य ज्ञानादिक गुणोंविषे ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्तिके निवृत्तकरणेवासतै ता इंद्रियका बाह्य यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां सो मन बाह्यइंद्रियरूप नहीं है किंतु अंतरइंद्रियरूप है । यातैं ता मन ग्राह्य ज्ञानादिकोंविषे ता उक्त साधर्म्यकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

द्वीन्द्रिय ग्राह्यत्व—और संख्या, परिमाण, पृथकूत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग इन दश गुणोंका द्विइंद्रियग्राह्य गुणत्व साधर्म्य होवै है । तहां इन संख्यादिक दश गुणोंका चक्षुइंद्रिय करिकै भी प्रत्यक्ष होवै है तथा त्वक्इंद्रिय करिकै भी प्रत्यक्ष होवै है । यातैं तिन उक्त संख्यादिक दश गुणोंका सो द्विइंद्रियग्राह्य गुणत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति ।

अन्तरिन्द्रिय ग्राह्यत्व—और बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, इन षट्गुणोंका अन्तर-इंद्रियग्राह्य गुणत्वरूप साधर्म्य होवै है । तहां तिन बुद्धिआदिक षट्गुणोंका मनरूप अन्तर-इन्द्रिय करिकै हीं प्रत्यक्ष होवै है । बाह्यचक्षु आदिक इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं । यातैं तिन बुद्धि आदिक षट्गुणोंका सो अन्तरइंद्रिय ग्राह्यगुणत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति ।

अतीन्द्रियत्व—और अनुद्भूत ऐसे जे रूप, रस, गंध, स्पर्श यह च्यारि गुण हैं तथा गुरुत्व निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, जीवनयोनि, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, स्थितिस्थापकभावना इन गुणोंका अतिइंद्रियत्व साधर्म्य होवै है अर्थात् इन उक्त गुणोंका किसी भी इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होता नहीं इति ।

कारण गुणोत्पन्नत्व—और तेजःसंयोगरूप पाकतैं नहीं उत्पन्न हूए ऐसे जे रूप, रस, गंध, स्पर्श यह च्यारि गुण हैं तथा मध्यम परिमाण एकत्व संख्या एक पृथकूत्व, गुरुत्व, सांसिद्धिक, द्रवत्व, स्नेह, वेग, स्थितिस्थापक इन द्वादशगुणोंका कारणगुण उत्पन्नत्व साधर्म्य होवै है ।

कारण गुणोत्पन्नका लक्षण—तहां **स्वाश्रयसमवायिमात्रसमवेतस्वसजातीयगुणजन्यत्वं कारणगुणोत्पन्नत्वम्** । अर्थ यह—ईहां दोनों स्वशब्दों करिकै पटादिक द्रव्योंके रूपादिक गुणोंका ग्रहण करणा तिन रूपादिक गुणोंका आश्रयभूत जे पटादिकद्रव्य हैं तिन पटादिकोंके सम

वायिकारणरूप ते तंतु आदिक अवयव हैं तिन तंतुआदिक अवयवमात्रविषे समवेत जे रूपादिक द्वादशगुण हैं ते रूपादिक गुण ता पटादिक अवयवीनिष्ठरूपादिक द्वादश गुणोंके रूपत्वादिक धर्म करिकै सजातीय हीं होवै है। ऐसे तंतुआदिक अवयवोंके रूपादिक द्वादशगुणों करिकै यथाक्रमतैं ते पटादिक अवयवीके रूपादिक द्वादशगुण जन्य होवै हैं अर्थात् ता अवयवीनिष्ठरूपादिक गुणोंके ते अवयवनिष्ठरूपादिक गुण असमवायिकारण होवै हैं, इस प्रकारतैं तिन पटादिक अवयवीयोंके रूपादिक द्वादशगुणोंविषे यथाक्रमतैं जो तंतुआदिक अवयवोंके रूपादिक द्वादश गुणोंकरिकै जन्यत्व है, यह हीं तिन रूपादिक द्वादशगुणोंविषे कारणगुण उत्पन्नत्व है, यह वार्त्ता पूर्व तृतीय परिच्छेदविषे तिस तिस रूपादिक गुणके निरूपणविषे स्पष्ट करिकै कथन करि आये हैं। यातैं तिन उक्त रूपादिक द्वादश गुणोंका सो कारणगुण उत्पन्नत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति।

अकारण गुणोत्पन्नत्व—और शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना इन दश गुणोंका अकारणगुणोत्पन्नत्व साधर्म्य होवै है । तहां आकाश, आत्मा यह दोनों नित्य होवै हैं। यातैं ता आकाशका तथा आत्माका कोई भी समवायिकारण होता नहीं । जिस कारणके गुणकरिकै ते शब्दादिक दश गुण जन्य होवै है यातैं तिन शब्दादिक दशगुणोंका ता उक्त कारणगुणोत्पन्नत्वका अभावरूप सो अकारणगुणत्पन्नत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति। पाकजोंका नहीं—और पाकज, रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा पाकज, द्रवत्व, द्वित्वादिक संख्या, द्विपृथक्त्वादिक पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व इन गुणोंका तौं सो पूर्वउक्त कारणगुण उत्पन्नत्व भी साधर्म्य नहीं होवै है । तथा सो पूर्व उक्त अकारणगुणउत्पन्नत्व भी साधर्म्य नहीं होवै है। इति । कर्मजन्यत्व—और संयोग, विभाग, वेग इन तीन गुणोंका कर्मजन्यत्व साधर्म्य होवै है । अर्थात् यह तीनों गुण कर्मरूप असमवायिकारण करिकै हीं जन्य होवै हैं । यह वार्त्ता तृतीयपरिच्छेदविषे तिस तिस गुणके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । यातैं तिन संयोगादि तीनोंका सो कर्मजन्यत्वरूप साधर्म्य सम्भवै है इति। असमवायिकारणत्व—और रूप, रस, गंध, स्पर्श, एकत्वसंख्या, परिमाण, एकपृथक्त्व, सांसिद्धिकद्रवत्व, स्नेह, शब्द, स्थितिस्थापक इन एकादश गुणोंका असमवायिकारणत्व साधर्म्य होवै है। तहां घटादिक अवयवीयोंविषे स्थित रूप, रस, गंध, स्पर्श, एकत्व, परिमाण, एकपृथक्त्व इन सप्त गुणोंके तौं यथाक्रमतैं कपालादिक अवयवोंके रूपादिक सप्तगुण असमवायिकारण होवैं हैं और जलरूप अवयवीके सांसिद्धिक द्रवत्वका तथा स्नेहका ता जलके अवयवोंका सांसिद्धिकद्रवत्व तथा स्नेह असमवायिकारण होवै है तथा प्रथमादिक शब्द द्वितीयादिक शब्दोंका असमवायिकारण होवै है। तथा अवय-

वोंका स्थितिस्थापक अवयवीके स्थितिस्थापकका असमवायिकारण होवै है । यातैं तिन उक्त रूपादिक एकादश गुणोंका सो असमवायिकारणत्वरूप साधर्म्य सम्भवै है इति ।

निमित्त कारणत्व—और आत्माके बुद्धि आदिक नव विशेषगुणोंका निमित्तकारणत्व साधर्म्य होवै है । तहां आत्माके बुद्धि आदिक विशेषगुणोंविषे किसी भी कार्यकी असमवायिकारणता होती नहीं किंतु केवल निमित्तकारणता हीं होवै हैं । जैसे ज्ञानरूप बुद्धि, इच्छाका निमित्त-कारण होवै है और सा इच्छा प्रवृत्तिविषे निमित्तकारण होवै है । और सा विहितनिषिद्ध प्रवृत्ति, धर्मअधर्मविषे निमित्तकारण होवै है। और सो धर्मअधर्म सुखःदुःखविषे निमित्तकारण होवै है और भावनाख्यसंस्कार स्मृतिज्ञानविषे निमित्तकारण होवै है । यातैं आत्माके बुद्धि आदिक नव विशेष गुणोंका सो निमित्तकारणत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति ।

द्विविध कारणत्व—और उष्ण, स्पर्श, संयोग, विभाग, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग इन षट् गुणोंका द्विविध कारणत्व साधर्म्य होवै है अर्थात् असमवायिकारणत्व, निमित्तकारणत्व दोनों कारणता साधर्म्य होवै है । तहां तेजस अवयवोंका उष्णस्पर्श तैजस अवयवीके उष्णस्पर्शका तौं असमवायिकारण होवै है । और सोई उष्णस्पर्श पृथिवीके पाकज रूपादिकोंका निमित्त कारण होवै है । तैसे भेरी आकाशका संयोग ता ध्वनिरूप शब्दविषे असमवायिकारण होवै है और तिसी ध्वनिरूप शब्दविषे भेरीदंडका संयोग निमित्तकारण होवै है । तैसे वंश दलद्वय आकाशका विभाग ता ध्वनिरूप शब्दविषे असमवायिकारण होवै है और तिसी ध्वनिरूप शब्दविषे तिन दोनों वंशदलोंका विभाग निमित्तकारण होवै है । तैसे अवयवोंका गुरुत्व अव-यवीके गुरुत्वका असमवायिकारण होवै है । तथा सो गुरुत्व आद्यपतनरूप कर्मका भी अस-मवायिकारण होवै है । और सोई हीं गुरुत्व आपणे आश्रयभूत द्रव्यके अभिघाताख्यसंयो-गका निमित्तकारण होवै है । तैसे अवयवोंका द्रवत्व अवयवीके द्रवत्वका असमवायिकारण होवै है तथा सो द्रवत्व आद्यस्यंदनरूप कर्मका भी असमवायिकारण होवै है । और सोई हीं द्रवत्व चूर्णादिकोंके पिंडीभावरूप संग्रहविषे निमित्तकारण होवै है । तैसे अवयवोंका वेग अवयवीके वेगका असमवायिकारण होवै है । तथा सो वेग आपणे आश्रयभूत द्रव्यके कर्मका भी असमवायिकारण होवै है । और सोई वेग आपणे आश्रयभूत द्रव्यके अभिघाताख्य-संयोगका निमित्तकारण होवै है । इस प्रकारतैं तिन उष्णस्पर्शादिक षट्गुणोंविषे असमवायि-कारणता तथा निमित्तकारणता दोनों प्रकारकी कारणता विद्यमान हैं । यातैं उष्णस्पर्श संयोग, विभाग, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग इन षट्गुणोंका सो द्विविधकारणत्वरूप साधर्म्य संभवै

है इति । अव्याप्यवृत्तित्व—और संयोग, विभाग, शब्द तथा बुद्धि आदिक नवगुण इन द्वादश-गुणोंका अव्याप्यवृत्ति गुणत्व साधर्म्य होवै है । तहां तिन संयोगादिकोंका आपणे अत्यन्ताभावके साथि जो समानाधिकरणपणा है यह हीं तिन संयोगादिकोंविषे अव्याप्यवृत्ति-पणा है । जैसे वृक्षकी शाखाविषे वानरके संयोगहूए भी ता संयोगका तिसी वृक्षके मूलविषे अत्यंताभाव रहे है ता आपणे अत्यंताभावके साथि ता संयोगका समानाधिकरणपणा है । यह हीं ता संयोगविषे अव्याप्यवृत्तिपणा है । इस प्रकार विभागविषे भी जानिलेणा । और शब्दबुद्धिआदिकोंविषे तौं सो अव्याप्यवृत्तिपणा पूर्व द्रव्योंके साधर्म्यवैधर्म्यविषे निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा । यद्यपि रूपादिक गुण भी उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घटादिकों-विषे अवृत्ति होणेतैं अव्याप्यवृत्ति हीं हैं । तथापि ईहां संयोगादिकोंविषे अव्याप्यवृत्तित्व शब्द करिकै दैशिक अव्याप्यवृत्तित्व विवक्षित है । सो दैशिकअव्याप्यवृत्तित्व तिन रूपादिकोंविषे है नहीं, किंतु तिन रूपादिकोंविषे कालिक अव्याप्यवृत्तित्व है । तहां आपणे आश्रयभूत द्रव्यके किसी देशविषे रहणा किसी देशविषे नहीं रहणा याका नाम दैशिक अव्याप्यवृत्तित्व है। और आपणे आश्रयभूत द्रव्यविषे कोई कालविषे रहणा कोई कालविषे नहीं रहणा याका नाम कालिक अव्याप्यवृत्तित्व है । यद्यपि ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न यह तीनों अव्याप्य वृत्ति होते नहीं, किंतु व्याप्यवृत्ति हीं होवै हैं । तथापि ईहां जीवात्माके ज्ञान, इच्छा प्रय-त्नका ग्रहण करणा इति । सविषयत्व—और बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न, द्वेष, भावना इन पांच गुणोंका सविषयत्व साधर्म्य होवै है । तहां यह बुद्धिआदिक पंचगुण कोईक वस्तुकूं विषय करते हूए हीं विद्यमान होवै हैं विषयतैं विना होते नहीं । जैसे ‘ अयं घटः ’ इत्यादिक ज्ञान घटादिक वस्तुकूं विषय करते हूए विद्यमान होवै है । तथा ‘ सुखं मे स्यात् ’ इत्यादिक इच्छा भी सुखादिक वस्तुकूं विषय करती हूई हीं विद्यमान होवै हैं। इस प्रकार प्रयत्न, द्वेष, भावना यह तीनों भी कोई वस्तुकूं विषय करते हूए हीं विद्यमान होवै हैं। यातैं तिन उक्त बुद्धिआदिक पंच-गुणोंका सो सविषयत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति । अनित्यत्व—और गंध, संयोग, विभाग, परत्व अपरत्व, शब्द, सुख, दुःख, द्वेष, धर्म, अधर्म, संस्कार इन द्वादश गुणोंका अनित्यत्व, साधर्म्य होवै है । तहां यह गंधादिक द्वादशगुण उत्पत्तिविनाशवाले होणेतैं अनित्य हीं होवै हैं कोई भी नित्य होता नहीं । यातैं तिन गंधादिक द्वादशगुणोंका सो अनित्यत्वरूप साधर्म्य संभवै है इति । नित्यानित्यवृत्तिगुणविभाजकोपाधिमत्त्व—और रूप, रस, स्पर्श, संख्या, परिमाण पृथक्त्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न इन द्वादश गुणोंका नित्यानित्यवृत्ति गुणविभाजकोपाधि मत्त्व साधर्म्य होवै है । तहां यह उक्त रूप रसादिक द्वादशगुण नित्य भी होवै हैं तथा अनित्य

भी होवै हैं । ऐसे नित्य अनित्य रूपरसादिकोंविषे वर्त्तणेहारी तथा गुणविभाजक उपाधिरूप ऐसी रूपत्वरसत्वादिक द्वादश जातियां हैं । ते रूपत्व रसत्वादिक द्वादश जातियां यथाक्रमतैं तिन रूपरसादिक द्वादशगुणोंविषे रहे हैं । यातैं तिन रूपादिक द्वादशगुणोंका सो नित्य अनित्यवृत्ति गुणविभाजकउपाधिमत्त्वरूप साधर्म्य संभवै है इति । इतिगुणसाधर्म्यवैधर्म्यनिरूपणं समाप्तम् ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानन्दगिरिणा विरचिते न्यायप्रकाशे पदार्थ द्रव्यगुणानां साधर्म्यवैधर्म्य निरूपणं नाम पंचमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ५ ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥



ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः ॥
श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः ।

# अथ न्यायप्रकाश ।

## षष्ठपरिच्छेदः ।

### बुद्धिका सविस्तर निरूपण ।

तहां पूर्व तृतीयपरिच्छेदविषे बुद्धिगुणका सामान्यतैं निरूपण कऱ्या था, अब इस षष्ठे परिछेदविषे तिसी बुद्धि गुणका विस्तारतैं निरूपण करे हैं। बुद्धिके भेद–तहां पूर्व नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै ज्ञानरूप बुद्धि दो प्रकारकी कही थी। ईश्वरकी बुद्धि–तहां ईश्वरकी बुद्धि तौं नित्य होवै है तथा एक होवै है तथा प्रत्यक्षरूप होवै है तथा सर्वजगत् विषयक होवै है । जीवात्माकी बुद्धि–जीवात्माकी बुद्धि अनित्य होवै है तथा नाना होवै है तथा प्रत्यक्ष परोक्ष दोनोंरूप होवै है तथा यत्किंचित्वस्तुविषयक होवै है । उसके भेद–तहां सा जीवात्माकी अनित्यबुद्धि प्रथम अनुभव १, स्मृति २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है ।

### अनुभव ।

तिन दोनोंविषे प्रथम अनुभवका निरूपण करे हैं । तहां लक्षण–**स्मृतिभिन्नं ज्ञानं अनुभवः** । अर्थ यह–स्मृतितैं भिन्न ऐसा जो ज्ञान है सो ज्ञान अनुभव कह्या जावै है । जैसे प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै उत्पन्न भया जो ' अयं घटः ' इत्यादिक ज्ञान है सो ज्ञान स्मृतितैं भिन्न भी है तथा ज्ञानरूप भी है। यातैं सो 'अयं घटः' इत्यादिक ज्ञान अनुभव कह्या जावै है। पदकृत्य–तहां 'ज्ञानं अनुभवः ' इतनामात्र हीं जो ता अनुभवका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' स्मृतिभिन्नम् ' यह पद नहीं कथन करते तौं स्मृतिविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता अनुभवकी न्यांई सा स्मृति भी ज्ञानरूप हीं है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता ज्ञानका 'स्मृतिभिन्नम्' यह विशेषण कथन कऱ्या है। तहां ता स्मृतिविषे ता स्मृतिका भेद रहता नहीं । यातैं ता स्मृतिविषे ता अनुभवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'स्मृतिभिन्नम् अनुभवः' इतनामात्र हीं जो ता अनुभवका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं ता अनुभवकी न्यांई ते घटादिक भी ता स्मृतितैं भिन्न हीं होवै हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' ज्ञानम् ' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते घटादिक ज्ञानरूप नहीं हैं यातैं तिन घटादिकोंविषे ता अनुभवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । अनुभवके भेद–इस प्रकारके उक्तलक्षण करिकै लक्षित सो अनुभव यथार्थअनुभव १, अयथार्थअनुभव २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है ।

तहां यथार्थानुभवका लक्षण—तद्वतितत्प्रकारकानुभवः यथार्थानुभवः । अर्थ यह—तिस धर्मवाले पदार्थविषे तिस धर्मकूं विषय करणेहारा जो अनुभव है सो अनुभव यथार्थअनुभव कह्या जावै है । अर्थात् तिस धर्मवाला पदार्थ है विशेष्य जिस विषे तथा सोई धर्म है प्रकार जिस विषे ऐसा जो अनुभव है सो अनुभव यथार्थअनुभव कह्या जावै है । जैसे 'अयं घटः' इत्यादिक अनुभव है। तहां 'अयं घटः इस अनुभवविषे घटत्वधर्मवाला घट तौं विशेष्य है और सो घटत्वधर्म प्रकार है । यातैं घटत्वधर्मवाले घटविषे ता घटत्वधर्मप्रकारक होणेतैं 'अयं घटः' यह अनुभव यथार्थ अनुभव कह्या जावै है । तैसे रजतविषे 'इदं रजतम्' यह अनुभव भी रजतत्वधर्मवाले रजतविषे ता रजतत्वधर्मप्रकारक होणेतैं यथार्थअनुभव कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां 'तद्वति तत्प्रकारकः यथार्थानुभवः' इतनामात्र हीं जो ता यथार्थ-अनुभवका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अनुभवः' यह पद नहीं कथन करते तौं स्मृतिज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? जैसे सो यथार्थअनुभव घटत्वा-दिकधर्मवाले घटादिकोंविषे ता घटत्वादिधर्मप्रकारक होवै है । तैसे 'स घटः' इत्यादिक यथार्थ स्मृति भी घटत्वादिक धर्मवाले घटादिकोंविषे ता घटत्वादि धर्मप्रकारक हीं होवै है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'अनुभवः' यह पद कथन कन्या है। तहां ता स्मृतिविषे अनुभवरूपता है नहीं । यातैं ता स्मृतिविषे ता यथार्थअनुभवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'तत्प्रकारकानुभवः यथार्थानुभवः' इतनामात्र हीं जो ता यथार्थ अनुभवका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'तद्वति' यह पद नहीं कथन करते तौं अय-थार्थ अनुभवविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह अयथार्थ अनुभव भी ता रजतत्वधमर्प्रकारक हीं है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'तद्वति' यह पद कथन कन्या है । तहां 'इदं रजतम्' यह अयथार्थअनुभव ता शुक्तिविषे रजतत्वधर्मकूं विषय करता हूआ भी सा शुक्ति ता रजतत्वधर्मवाली है नहीं, किंतु प्रसिद्ध रजत हीं ता रजतत्वधर्मवाला होवै है । यातैं शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह अनुभव रजतत्वधर्मवाले पदार्थविषे रजतत्वधर्मप्रकारक नहीं है । यातैं ता अयथार्थअनुभवविषे ता उक्त यथार्थ अनुभवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । इसी यथार्थअनुभवकूं शास्त्रविषे प्रमा इस नाम करिकै कथन करे है इति ।

अब अयथार्थ अनुभवका लक्षण—करे हैं । तदभाववतितत्प्रकारकानुभवः अयथार्थानु-भवः । अर्थ यह—तिस धर्मके अभाववाले पदार्थविषे तिस धर्मकूं विषय करणेहारा जो अनुभव है सो अनुभव अयथार्थअनुभव कह्या जावै है अर्थात् तिस धर्मके अभाववाला पदार्थ है विशेष्य जिस विषे तथा सोई धर्म है प्रकार जिस विषे ऐसा जो अनुभव है सो अनुभव अय-थार्थअनुभव कह्या जावै है । जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह अनुभव है । तथा रज्जुविषे

'अयं सर्पः' यह अनुभव है। तहां 'इदं रजतम्'इस अनुभवविषे रजतत्वधर्मके अभाववाली शुक्ति तौं विशेष्य है और सो रजतत्वधर्म प्रकार है। तैसे 'अयं सर्पः' इस अनुभवविषे भी सर्पत्व-धर्मके अभाववाली रज्जु तौं विशेष्य है और सो सर्पत्वधर्म प्रकार है। यातैं रजतत्वधर्मके अभाव-वाली शुक्तिविषे ता रजतत्वधर्मप्रकारक होणेतैं 'इदं रजतम्' यह अनुभव अयथार्थअनुभव कह्या जावै है। इस प्रकार सर्पत्वधर्मके अभाववाली रज्जुविषे ता सर्पत्वधर्मप्रकारक होणेतैं 'अयं सर्पः' यह अनुभव भी अयथार्थअनुभव कह्या जावै है। पदकृत्य—तहां इस अयथार्थअनुभवके लक्षणविषे भी 'अनुभवः' यह पद अयथार्थ स्मृतिविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है और 'तदभाववति' यह पद 'इदं रजतं, अयं सर्पः' इत्यादिक यथार्थअनुभवविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासतै है इति। यथार्थानुभवके भेद—सो पूर्व उक्त यथार्थ अनुभव भी प्रत्यक्ष १, अनुमिति २, उपमिति ३, शाब्द ४ इस भेद करिकैं च्यारि प्रकारका होवै है सो च्यारों प्रकारका यथार्थ अनुभव प्रमाण करिकै हीं जन्य होवै है। यातैं ता यथार्थअनुभवकी न्यांई ताका जनक प्रमाण भी प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका हीं होवै है। तहां प्रमाणका लक्षण—**प्रमाकरणं प्रमाणम्।** अर्थ यह—यथार्थअनुभवरूप-प्रमाका जो करण होवै हैं सो प्रमाण कह्या जावै है। जैसे प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्द इन च्यारि प्रकारकी प्रमावोंके यथाक्रमतैं करणरूप होणेतैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द यह च्यारों प्रमाण कहे जावै हैं इति। करणका लक्षण—तहां पूर्व प्रमाके करणकूं प्रमाण कह्या यातैं सो प्रमाणकरण करिकै घटित होणेतैं ता करणके ज्ञानतैं विना जान्या जावै नहीं। किंतु ता करणके ज्ञानहूए हीं ता प्रमाणका ज्ञान संभवै है। यातैं ता करणका लक्षण कहै हैं **व्यापारवदसाधारणकारणं करणम्।** अर्थ यह—व्यापारवाला ऐसा जो असाधार-रणकारण है सो करण कह्या जावै है। जैसे घटरूप कार्यके प्रति दण्ड करण है तहां सो दण्ड भ्रमणरूप व्यापारवाला भी है तथा असाधारणकारणरूप भी है। यातैं ता घटरूप कार्यके प्रति सो दण्ड करण कह्या जावै है। इस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द यह च्यारि प्रमाण भी व्यापारवाले भी होवै हैं तथा तिस तिस प्रत्यक्षादिक प्रमाके असाधारणकारण भी होवै हैं। यातैं ते प्रत्यक्षादिक च्यारों तिस तिस प्रत्यक्षादिक प्रमाके करण कहे जावै हैं। तिन प्रत्यक्षादिक च्यारि प्रमाणोंका स्वरूप तथा व्यापार आगे निरूपण करैंगे इति।

व्यापारका लक्षण—अब ता करणके घटक व्यापारका लक्षण कहे हैं। **तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः व्यापारः।** अर्थ यह—कारण करिकै जो जन्य होवै है तथा ता कारण करिकै जन्य कार्यका जनक होवै है सो व्यापार कह्या जावै है। जैसे सो भ्रमण दण्डरूप कारण करिकै जन्य होवै है तथा ता दण्डरूप कारण जन्य घटरूप कार्यका जनक होवै है। यातैं ता घटरूप कार्यकी उत्पत्तिविषे सो भ्रमण ता दण्डका व्यापार कह्या जावै है। इस प्रकार

चक्षु आदिक इंद्रियका जो घटादिक विषयके साथि संयोगादिक सम्बन्ध है सो संयोगादिक सम्बन्ध ता चक्षुआदिक इंद्रिय करिकै जन्य भी है तथा ता चक्षु आदिक इंद्रिय करिकै जन्य जो घटादिकोंका प्रत्यक्ष है ता प्रत्यक्षका जनक भी है। यातैं सो संयोगादिक संबंध तिन चक्षु आदिक इन्द्रियोंका व्यापार कह्या जावै है। इस प्रकार स्मृतिज्ञानकी उत्पत्तिविषे पूर्व अनुभवका संस्कार व्यापार होवै है। और सुखदुःखकी उत्पत्तिविषे विहित निषिद्ध कर्मका धर्म अधर्म व्यापार होवै है। तहां धर्म अधर्मविषे विहितनिषिद्धकर्मकी व्यापाररूपता तथा संस्कारविषे अनुभवकी व्यापाररूपता पूर्व तृतीयपरिच्छेदविषे धर्म अधर्मके निरूपणविषे तथा संस्कारके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं इति। पदकृत्य—तहां 'असाधारणकारणं करणम्' इतनामात्र हीं जो ता करणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'व्यापारवत्' यह पद नहीं कथन करते तौं ता उक्त व्यापारविषे हीं ता करणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतें ? जैसे तिस तिस कार्यके प्रति सो करण असाधारण कारण होवै है। तैसे तिस तिस कार्यके प्रति सो व्यापार भी असाधारणकारण हीं होवै है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वास्तै ता लक्षणविषे 'व्यापारवत्' यह पद कथन कर्या है। तहां ता करणकी न्यांई सो व्यापार व्यापारवाला होता नहीं। यातैं ता व्यापारविषे ता करणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'व्यापारवत्कारणं करणम्' इतनामात्र हीं जो ता करणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'असाधारण' यह पद नहीं कथन करते तौं ईश्वर-अदृष्टादिक साधारणकारणोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वास्तै ता लक्षणविषे 'असाधारण' यह पद कथन कर्या है। तहां साधारणकारणतैं भिन्न कारणका नाम असाधारण है सो असाधारणकारणता तिन ईश्वर-अदृष्टादिक साधारणकारणोंविषे है नहीं यातैं तिन ईश्वरअदृष्टादिक साधारणकारणोंविषे ता करणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। कारणका लक्षण—तहां पूर्व व्यापारवाले असाधारणकारणकूं करण कह्या था। यातैं सो करण कारण करिकै घटित होणेतैं ता कारणके ज्ञानतैं विना जान्या जावै नहीं, किंतु ता कारणके ज्ञानहूए हीं ता करणका ज्ञान संभवै है। यातैं ता कारणका लक्षण कहे हैं। अनन्यथासिद्धकार्यनियतपूर्ववृत्तिकारणम्। अर्थ यह—जो पदार्थ अन्यथासिद्धवस्तुवोंतैं भिन्न होवै है तथा कार्यतैं नियमपूर्वक पूर्वक्षणविषे रहे है सो पदार्थ तिस कार्यके प्रति कारण कह्या जावै है। जैसे दण्ड चक्र कुलाल कपाल आदिक घटके प्रति अन्यथासिद्ध रासभादिकोंतैं भिन्न भी हैं तथा ता घटरूप कार्यतैं नियमपूर्वक पूर्वक्षणविषे वृत्ति भी हैं। यातैं ते दण्डादिक ता घटके कारण कहे जावै हैं। इस प्रकार पटरूप कार्यके तुरी, तंतु, वेम आदिक कारण कहे जावै हैं। पदकृत्य--तहां 'कार्यपूर्ववृत्ति कारणम्' इतनामात्र हीं जो ता कारणका लक्षण करते तौं कुलालकी पत्नीविषे

तथा रासभविषे ता कारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? जैसे ते दण्डचक्रादिक ता घटरूप कार्यतें पूर्ववृत्ति होवै हैं । तैसे ते रासभकुलालपत्नीआदिक भी ता घटरूपकार्यतें पूर्ववृत्ति हीं हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'नियत' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रासभादिक घटमात्रके प्रति नियमतें पूर्ववृत्ति होते नहीं । किंतु कोईक घटव्यक्तिके प्रति तौं पूर्ववृत्ति होवै है और कोईक घटव्यक्तिके प्रति पूर्ववृत्ति नहीं भी होवै हैं । यातें ता नियत पदके कहणे करिकै तिन अनियत पूर्ववृत्ति रासभादिकोंविषे ता कारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्' इतनामात्र हीं जो ता कारणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'अनन्यथासिद्ध' यह पद नहीं कथन करते तौं दण्डादि कारणवृत्तिरूप दण्डत्वादिक धर्मोंविषे ता कारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतें ? जैसे ते दण्डादिक ता घटरूप कार्यतें नियत पूर्ववृत्ति होवै हैं । तैसे तिन दण्डादिकोंके ते रूप दण्डत्वादिक धर्म भी ता घटरूप कार्यतें नियतपूर्ववृत्ति हीं होवै है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'अनन्यथासिद्ध' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते रूपदण्डत्वादिक धर्म ता घटके प्रति अनन्यथासिद्ध नहीं हैं किंतु अन्यथासिद्ध हीं हैं । यातें तिन रूपदण्डत्वादिक धर्मोंविषे ता कारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । और वास्तवतें विचार करिकै देखीये तौं इस अनन्यथासिद्ध पद करिकै हीं तिन अन्यथासिद्ध रासभादिकोंकी भी निवृत्ति होइ सकै है । यातें ता कारणके लक्षणविषे 'नियत' इस पदका कछु प्रयोजन नहीं हैं इति । अन्यथासिद्धका लक्षण—तहां अन्यथासिद्धिवालेका नाम अन्यथासिद्ध है । यातें ता अन्यथासिद्धिका लक्षण कहे हैं । **अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्त्तिन एव कार्यसंभवे तद्भिन्नत्वम् अन्यथासिद्धिः ।** अर्थ यह—कार्यकी उत्पत्तितैं नियम करिकै पूर्ववृत्ति तथा अवश्य करिकै प्राप्त ऐसे जे कारण हैं तिन कारणोंतैं हीं ता कार्यकी उत्पत्तिके संभवहूए तिन कारणोंतैं जो भिन्नपणा है ताका नाम अन्यथासिद्धि है । जैसे अवश्य करिकै प्राप्त तथा नियतपूर्ववृत्ति ऐसे जे दण्डचक्रादिक कारण हैं तिन दण्डादिक कारणों करिकै हीं ता घटरूप कार्यकी उत्पत्ति संभव होइ सके है । ऐसे दण्डादिक कारणोंतैं भिन्नपणा तिन दण्डरूप दण्डत्व रासभआदिकोंविषे है । यह हीं तिन दण्डरूपादिकोंविषे अन्यथासिद्धि है । अन्यथासिद्ध—ता अन्यथासिद्धिवाले होणेतैं ते दण्डरूप दंडत्व रासभ आदिक अन्यथासिद्ध कहे जावै हैं इति । इसके भेद—तहां ते अन्यथासिद्धपदार्थ पंच प्रकारके होवै हैं ।

पहिला अन्यथासिद्ध—तहां जिस कार्यके प्रति कारणका पूर्ववृत्तिपणा जिस रूपकरिकै ग्रहण कऱ्या जावै है । तिस कार्यके प्रति सो रूप अन्यथासिद्ध होवै है जैसे घटादिरूप कार्यके प्रति दण्डचक्रादिरूप कारणोंका पूर्ववृत्तिपणा दंडत्वचक्रत्वादिकरूप करिकै हीं ग्रहण कऱ्या जावै है यातैं ते दण्डत्वचक्रत्वादिक धर्म ता घटके प्रति अन्यथासिद्ध

कह्ये जावै हैं इस प्रकार जिस जिस कार्यके प्रति जिस जिस कारणका जिस जिस रूप करिकै पूर्व वृत्तिपणा ग्रहण कऱ्या जावै है। तिस तिस कार्यके प्रति सो सो रूप अन्यथासिद्ध हीं होवै है। यह प्रथम अन्यथासिद्ध कह्या जावै है इति १॥

अब द्वितीय अन्यथा सिद्धका वर्णन—करे हैं जिस कार्यके प्रति जिस पदार्थका स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेक नहीं होवै है। किंतु ता कार्यके कारणकूं लैके हीं सो अन्वयव्यतिरेक ग्रहण कऱ्या जावै है सो पदार्थ भी तिस कार्यके प्रति अन्यथासिद्ध होवै है। जैसे घटादिक कार्योंके प्रति दंडादिक कारणोंके रूपस्पर्शादिक गुणोंका स्वतन्त्र अन्वयव्यतिरेक होता नहीं अर्थात् 'रूपसत्त्वे घटसत्त्वं रूपाभावे घटाभावः' या प्रकारका अन्वयव्यतिरेक होता नहीं, किंतु तिन रूपस्पर्शादिक गुणोंके आश्रयभूत जे दण्डादिक हैं तिन दण्डादिकोंका ग्रहण करिकै हीं तिन रूपस्पर्शादिक गुणोंका अन्वयव्यतिरेक तिन घटादिकोंके प्रति ग्रहण होवै है। अर्थात् 'दण्डरूपसत्त्वे घटसत्त्वं दण्डरूपाभावे घटाभावः' या प्रकारतैं ता दण्डादिक कारणकूं अंगीकार करिकै हीं तिन रूपस्पर्शादिक गुणोंका अन्वयव्यतिरेक ग्रहण कऱ्या जावै है। यातैं तिन दण्डादिक कारणोंके रूपस्पर्शादिक गुण तिन घटादिक कार्योंके प्रति अन्यथासिद्ध कह्ये जावै हैं इति॥ २॥

अब तीसरे अन्यथा सिद्धका वर्णन—करे हैं। जिस पदार्थका प्रथम अन्य किसी कार्यके प्रति पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होइकै हीं पश्चात् जिस कार्यके प्रति पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होवै है सो पदार्थ भी तिस कार्यके प्रति अन्यथासिद्ध हीं होवै है। जैसे घटादिक कार्योंके प्रति आकाश अन्यथासिद्ध होवै है। तहां ता आकाशविषे जो शब्दगुणका समवायिकारणपणा है यह हीं ता आकाशविषे आकाशत्व है ता आकाशत्वरूप करिकै हीं ता आकाशका तिन घटादिकोंके प्रति पूर्ववृत्तिपणा कहणा होवैगा। यातैं ता आकाशका प्रथम ता शब्दगुणके प्रति पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होइकै हीं पश्चात् तिन घटादिकोंके प्रति पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होवैगा। यातैं सो आकाश तिन घटादिक कार्योंके प्रति अन्यथासिद्ध हीं होवै है इति॥ ३॥

अब चतुर्थ अन्यथासिद्धका वर्णन करे हैं। जिस पदार्थका जिस कार्यके जनकप्रति पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होइकै हीं जिस कार्यके प्रति पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होवै है सो पदार्थ भी तिस कार्यके प्रति अन्यथासिद्ध ही होवै है। जैसे घटरूप कार्यके प्रति कुलालका पिता अन्यथासिद्ध होवै है। तहां ता कुलालके पिताका ता घटरूप कार्यके जनक कुलालरूप पुत्रके प्रति प्रथम पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होइकै हीं पश्चात् ता घटरूपकार्यके प्रति पूर्ववृत्तिपणा ग्रहण होवै है। यातैं कुलालपितृत्वरूप करिकै सो कुलालका पिता ता घटरूप कार्यके प्रति अन्यथासिद्ध हीं होवै है। और कुलालत्वरूप करिकै तौं सो कुलालका पिता ता घटका कारण हीं होवै हैं इति॥ ४॥

पञ्चमे अन्यथा सिद्धका वर्णन—करे हैं जिस कार्यके प्रति जे कारण नियमतैं पूर्ववृत्तित्वरूप करिकै सिद्ध हैं तिन कारणोंतैं भिन्न पदार्थ भी तिस कार्यके प्रति अन्यथासिद्ध हीं होवै

है जैसे घटरूप कार्यके प्रति नियमतैं पूर्ववृत्तित्वरूप करिकै सिद्ध जे दंडचक्रकुलालादिक कारण हैं तिन कारणोंतैं भिन्न जे रासभकुलालपत्नी आदिक हैं ते रासभादिक ता घटरूप कार्यके प्रति अन्यथासिद्ध हीं होवै हैं इति ॥ ५ ॥

शंका—जैसे घटरूप कार्यके प्रति दंडादिकोंकूं नियत पूर्ववृत्तिपणा है तैसे तिन दण्डादिकों-विषे रहणेहारे दंडत्वादिक धर्मोंकूं तथा रूपस्पर्शादिक गुणोंकूं भी ता घटरूप कार्यके प्रति नियत पूर्ववृत्तिपणा है। यातैं ते दण्डत्वरूपादिक हीं ता घटके प्रति कारण होवो और ते दण्डादिक ता घटके अन्यथासिद्ध होवो? समाधान—तिन दण्डादिकोंविषे तथा तिन दंडादिगत दंडत्वरूपादिकोंविषे ता घटरूप कार्यतैं नियतपूर्ववृत्तिपणेके समानहूए भी तिन दंडत्वादिकोंकी अपेक्षाकरिकै तिन दण्डादिकोंकूं घटके प्रति कारणता मानणेविषे लाघव है। यातैं लाघवतैं तिन दंडादिकोंकूं हीं ता घटका कारण मानणा उचित है।

लाघवके भेद—सो लाघव शरीरकृत १, उपस्थितिकृत २, संबंधकृत ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै हैं। शरीरकृत लाघव—तहां त्र्यणुकतैं आदि लैके घटादिकार्य पर्यंत जितनैंकी कार्यद्रव्य हैं ते कार्यद्रव्य अनेक अवयवरूप द्रव्योंविषे समवायसंबंध कारकै रहे हैं। जैसे त्र्यणुक तीन द्व्यणुकरूप अनेक द्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रहे है। तथा चतुरणुक च्यारि त्र्यणुकोंविषे समवायसंबंध करिकै रहे है। इस प्रकार घटपटादिक भी अनेक कपालतंतुआदिक द्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रहे हैं। यातैं त्र्यणुकतैं आदिलैके घटादिकार्यपर्यंत सर्व कार्यद्रव्योंविषे अनेक द्रव्यसमवेतत्व धर्म रहे है। और महत्वपरिमाण भी तिन त्र्यणुकादिक घटादि पर्यंत सर्व कार्यद्रव्योंविषे हीं रहे है। परमाणुवोंविषे तथा द्व्यणुकोंविषे सो अनेकद्रव्य समवेतत्व धर्म भी रहता नहीं। तथा महत्त्वपरिमाण भी रहता नहीं। और तिन त्र्यणुकादिक द्रव्योंका हीं प्रत्यक्षज्ञान होवै है तिन परमाणुद्व्यणुकोंका प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं। यातैं ता प्रत्यक्षज्ञानविषे ता अनेकद्रव्यसमवेतत्व धर्मकूं कारणता मानणी अथवा ता महत्त्वकूं कारणता मानणी। तहां अनेक द्रव्यसमवेतत्वके शरीरकी अपेक्षा करिकै महत्त्वका शरीर लघु है याका नाम शरीरकृत लाघव है ता शरीरकृत लाघवतैं हीं शास्त्रकारोनैं ता प्रत्यक्षज्ञानविषे महत्त्वकूं कारण मान्या है ता अनेक द्रव्यसमवेतत्व धर्मकूं ता प्रत्यक्षविषे कारण मान्या नहीं इति।

उपस्थितिकृत लाघव—और जहां एक हीं घटादिक पार्थिवद्रव्यविषे अग्निके संयोगतैं रूप, रस, गंध, स्पर्श यह चारों गुण उत्पन्न होवै हैं। तहां गन्धके प्रति रूपके प्रागभावकूं कारणता क्युं नहीं होवै तथा ता रूपके प्रति गन्धके प्रागभावकूं कारणता क्युं नहीं होवै? ऐसी शंकाके प्राप्तहूए तहां उपस्थितिकृत लाघवतैं ता गन्धके प्रति गंधके प्रागभावकूं हीं कारण मान्या है। तहां प्रतियोगीके ज्ञानतैं विना अभावका ज्ञान होता नहीं। यातैं गन्धके प्रति गन्धके प्रागभावकूं जो कारण मानिये तौं कार्यवाचक गन्ध पद करिकै ता गन्धरूप प्रतियोगीकी उपस्थितिके

हूए ता गन्धप्रागभावकी शीघ्र हीं उपस्थिति होवै है और ता गंधके प्रति जो रूपके प्रागभावकूं कारण मानिये तौं रूपपदतैं ता रूपप्रतियोगीकी उपस्थितितैं अनंतरहीं ता रूपके प्रागभावकी उपस्थिति होवै है। यातैं ता गंधरूप कार्यके प्रति रूपप्रागभावनिष्ठकारणताकी अपेक्षा करिकै ता गंधप्रागभावकूं कारणता मानणेविषे उपस्थितिकृत लाघव है इति ।

सम्बन्धकृत लाघव—और दण्डादिकोंकूं जो घटका कारण मानिये तौं तिन दण्डादिकोंका ता घटरूप कार्यके अधिकरणविषे संयोगादिरूप साक्षात् संबंध हीं संभवै है । और तिन दण्डत्वादिकोंके दण्डत्वादिक धर्मकूं तथा रूपस्पर्शादिक गुणकूं जो ता घटके प्रति कारण मानिये तौं तिन दंडत्वरूपादिकोंका ता घटके अधिकरणविषे साक्षात्संबंध संभवता नहीं। किंतु तिन दण्डादिघटित स्वाश्रयदंडसंयोगादिरूप परंपरासंबंध होवै है। ईहां स्वशब्द करिकै ता दण्डत्वदण्डरूपादिकोंका ग्रहण करणा। तिन दंडत्वादिकोंका आश्रय जो दंड है ता दण्डका संयोगादिरूप संबंध ता घटके अधिकरणविषे है । यातैं तिन दंडत्वदंडरूपादिकोंके संबंधकी अपेक्षा करिकै तिन दंडादिकोंका संबंध लघु है याका नाम संबंधकृत लाघव है । ता संबंधकृत लाघवतैं तिन दंडादिकोंविषे हीं ता घटकी कारणता संभवै है । तिन दंडत्वदंडरूपादिकोंविषे ता घटकी कारणता संभवती नहीं । यातैं ते दण्डत्वदण्डरूपादिक ता घटके प्रति अन्यथासिद्ध हीं हैं इति ।

गौरवके भी ये तीनों भेद—किंवा जैसे सो लाघव पूर्व उक्त रीतिसैं तीन प्रकारका होवै है । तैसे गौरव भी शरीरकृत १, उपस्थितिकृत २, संबंधकृत ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका हीं होवै है। ता तीन प्रकारके गौरवके उदाहरण तौं ते पूर्वउक्त हीं यथायोग्य जानि लेणे । जैसे महत्त्वके शरीरकी अपेक्षा करिकै अनेकद्रव्यसमवेतत्वका शरीर गुरु है याका नाम शरीरकृत गौरव है। इस प्रकार उपस्थितिकृत गौरवका तथा संबंधकृत गौरवका स्वरूप भी यथायोग्य जानिलेणा इति । इस प्रकारके उक्त पंचप्रकारके अन्यथासिद्ध पदार्थोंतैं जो पदार्थ भिन्न होवै हैं तथा कार्यके प्रति नियमतैं पूर्ववृत्ति होवै है सो पदार्थ तिस कार्यके प्रति कारण कह्या जावै है इति । कार्यका लक्षण—अब ता उक्त कारणके लक्षण विषे प्रविष्ट जो कार्य है ता कार्यका लक्षण कहे हैं । **प्रागभावप्रतियोगि कार्यम्** । अर्थ यह—जो पदार्थ प्रागभावका प्रतियोगी होवै है। सो पदार्थ कार्य कह्या जावै है। जैसे घटादिकोंकी उत्पत्तितैं पूर्व कपालादिकोंविषे ' इह घटो भविष्यति ' इत्यादिक प्रतीतिका विषय जो घटादिकोंका प्रागभाव है ता प्रागभावका प्रतियोगीपणा तिन घटादिकोंविषे है । यह हीं तिन घटादिकोंविषे कार्यपणा है इति । कारणके भेद—इस प्रकारके पूर्व उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो कारण समवायि १, असमवायि २, निमित्त ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां समवायिकारणका लक्षण—**यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्** । अर्थ यह—जिस द्रव्यविषे समवाय करिकै संबद्ध हूआ कार्य उत्पन्न होवै है। सो द्रव्य ता

कार्यका समवायिकारण कह्या जावै है। जैसे तन्तुरूप द्रव्यविषे समवाय करिकै संबद्ध हूआ पटरूप कार्य उत्पन्न होवै है। यातें ते तन्तु ता पटके समवायिकारण होवै हैं। इस प्रकार घटपटादिक द्रव्योंविषे रूपरसादिक गुणरूप कार्य तथा कर्मरूप कार्य भी समवाय करिकै सम्बद्धहूए हीं उत्पन्न होवै हैं। यातें तिन रूपरसादिक गुणोंके तथा कर्मके ते घटापटादिक द्रव्य समवायिकारण कहे जावै हैं इति। अब दूसरे असमवायिकारणका लक्षण—कहे हैं। समवायस्वसमवायिसमवायान्यतरसम्बन्धेन समवायिकारणे प्रत्यासन्नत्वे सति ज्ञानादिभिन्नत्वे सति कारणं असमवायिकारणम्। अर्थ यह—जो पदार्थ जिस कार्यके समवायिकारणविषे समवायसम्बन्ध करिकै रह्या हूआ अथवा स्वसमवायि समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ तथा आत्माके ज्ञानादिक विशेषगुणोंतें भिन्न हूआ जिस कार्यके प्रति कारण होवै है सो पदार्थ तिस कार्यके प्रति असमवायिकारण कह्या जावै है। असमवायिका भेद—या कहणेतें ता असमवायिकारणका दो प्रकारका विभाग सिद्ध होवै है। तहां एक असमवायिकारणका स्वरूप तो यह है 'समवाय सम्बधेन समवायिकारणे प्रत्यासन्नत्वे सति ज्ञानादि भिन्नत्वे च सति कारणम् असमवायिकारणम्' अर्थ यह—आपणे कार्यके समवायिकारणविषे समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ ता कार्यका जनक होवै है तथा ज्ञानादिकोंसे भिन्न होवै है। और दूसरे असमवायिकारणका स्वरूप 'स्वसमवायि समवायसम्बन्धेन समवायिकारणे प्रत्यासन्नत्वे च सति ज्ञानादि भिन्नत्वे च सति कारणम् असमवायिकारणम्' अर्थ यह—आपणे कार्यके समवायिकारणविषे स्वसमवायि समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ ता कार्यका जनक होवै है। तथा ज्ञानादिकोंसे भिन्न होवै है। पहिलेका उदारण—अब प्रथम असमवायिकारणके उदाहरण दिखावै हैं। जैसे तन्तुवोंका संयोग पटरूप कार्यके समवायिकारणरूप तन्तुवोंविषे समवायसंबंध करिकै रहे है और सो तन्तुवोंका संयोग ज्ञानादिक गुणोंतें भिन्न भी हैं और तन्तुवोंके परस्परसंयोग हूएतें विना पटकी उत्पत्ति होती नहीं। यातें सो तन्तुसंयोग ता पटका कारण भी है। यातें सो तन्तुसंयोग ता पटका असमवायिकारण कह्या जावै है। इस प्रकार कपालोंका संयोग घटका असमवायिकारण होवै हैं और दो परमाणुवोंका संयोग द्व्यणुकका असमवायिकारण होवै है और तीन द्व्यणुकोंका संयोग त्र्यणुकका असमवायिकारण होवे है। इस प्रकारतें सर्वजन्य द्रव्योंके प्रति अवयवोंके संयोगकूं हीं असमवायिकारणता होवै है। इस प्रकार पाकज रूपादिकोंके प्रति तेजःसंयोगकूं असमवायिकारणता होवै है। तथा क्रियाके प्रति अभिघाताख्यसंयोगकूं तथा नोदनाख्यसंयोगकूं असमवायिकारणता होवै है। तथा संयोग, विभाग, वेग इन तीनोंके प्रति क्रियाकूं असमवायिकारणता होवै है। तथा आद्यपतनरूप क्रियाके प्रति गुरुत्वकूं असमवायिकारणता होवै है तथा आद्यस्यंदनरूप क्रियाके प्रति द्रवत्वकूं असमवायिकारणता होवै है। तथा द्वितीयादिक पतनोंके प्रति तथा द्वितीयादिक स्यंदनोंके प्रति वेगकूं

असमवायिकारणता होवै है तथा संयोगजसंयोगके प्रति संयोगकूं असमवायिकारणता होवै है। तथा विभागजविभागके प्रति विभागकूं असमवायिकारणता होवै है तथा द्वित्वादिक संख्याके प्रति एकत्व संख्याकूं असमवायिकारणता होवै है तथा द्विपृथक्त्वादिक पृथक्त्वके प्रति एक-पृथक्त्वकूं असमवायिकारणता होवै है तथा शब्दके प्रति संयोग, विभाग शब्द इन तीनोंकूं असमवायिकारणता होवै है। तथा ज्ञानादिक गुणोंके प्रति आत्ममनःसंयोगकूं असमवायि-कारणता होवै है। इत्यादिक सर्व असमवायिकारणोंविषे सा प्रथम असमवायिकारणता रहै है इति। अब दूसरे असमवायिकारणके उदाहरण—दिखावै हैं—पटादिक अवयवीयोंविषे स्थित जे रूप, रस, गंध, स्पर्श, एकत्वसंख्या, परिमाण, एकपृथक्त्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, स्थिति-स्थापक यह गुण हैं। जे रूपादिक गुण पूर्व पंचमपरिच्छेदविषे कारणगुण उत्पन्न कहे हैं तिन पटादिक अवयवीनिष्ठरूपादिकगुणोंके तंतुआदिकअवयवोंके रूपादिकगुण हीं यथाक्रमतैं असमवायिकारण होवै हैं। तहां तिन रूपादिक कार्योंके समवायिकारणरूप पटादिकोंविषे ते तंतुआदिक अवयवोंके रूपादिकगुण समवायसंबंध करिकै रहते नहीं, किंतु ते तंतुआदि-कोंके रूपादिक गुण स्वसमवायि समवायसंबंध करिकै हीं तिन पटादिक अवयवीयोंविषे रहे हैं। ईहां स्व शब्द करिकै तिन तंतुआदिक अवयवोंके रूपादिक गुणोंका ग्रहण करणा। तिन रूपादिकोंका समवायिकारण जे तंतुआदिक अवयव हैं तिन तंतुआदिक अवयवोंविषे ते पटादिक अवयवी समवायसंबंध करिकै रहे हैं। इस प्रकार तिन पटादिक अवयवीयोंविषे स्वसमवायिसमवायसंबंध करिकै रहेहूए ते तन्तुआदिक अवयवोंके रूपादिक गुण तिन पटादिक अवयवीयोंके रूपादिक गुणोंके यथाक्रमतैं जनक होवै हैं तथा ज्ञानादिक गुणोंतैं भिन्न भी हैं। यातैं ते तन्तुआदिक अवयवोंके रूपादिक गुण तिन पटादिक अवयवीयोंके रूपादिक गुणोंके असमवायिकारण कहे जावै हैं इति। पदकृत्य—तहां पूर्वउक्त असमवायि-कारणके लक्षणविषे ‘ज्ञानादिभिन्नत्वे सति’ यह पद जो नहीं कथन करते तौं आत्माके ज्ञानादिक विशेषगुणोंविषे ता असमवायिकारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतैं? इच्छाके समवायिकारणरूप आत्माविषे समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ ज्ञान ता इच्छाका जनक होवै है तथा प्रयत्नके समवायिकारणरूप आत्माविषे समवायसंबन्ध करिकै रही हूई सा इच्छा ता प्रयत्नका जनक होवै है। तथा सुखदुःखके समवा-यिकारणरूप आत्माविषे समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ धर्म अधर्म ता सुखदुःखका जनक होवै है। इस रीतिसैं तिन ज्ञानादिकोंविषे भी ता असमवायिकारणके लक्षणकी अति-व्याप्ति हीं होवै है। और ते ज्ञानादिक तिन इच्छादिकोंके असमवायिकारण होते नहीं किंतु निमित्तकारण होवै हैं। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे ‘ज्ञानादिभिन्नत्वे सति’ यह पद कथन कन्या है। तहां ते ज्ञानादिक तिन ज्ञानादिकोंतैं

भिन्न होते नहीं । यातैं तिन ज्ञानादिकोंविषे ता असमवायिकारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । लक्षणमें अभिनिवेश—यद्यपि पटादिक कार्यके असमवायिकारणके लक्षणकी तुरीतन्तुसंयोगादिक निमित्तकारणविषे अतिव्याप्ति हीं होवै है । तथापि जैसे असमवायिकारणके सामान्यलक्षणविषे ज्ञानादिकोंतैं भिन्नत्व निवेश कन्या है । तैसे तिस तिस पटादिक कार्यके असमवायिकारणके लक्षणविषे तिस तिस तुरीतंतुसंयोगादिकोंतैं भिन्नत्वका निवेश करणा अर्थात्—पटसमवायिकारणे समवायसंबन्धेन प्रत्यासन्नत्वे सति तुरीतन्तुसंयोगादिभिन्नत्वे सतिपटकारणं पटासमवायिकारणम् । इस प्रकारतैं तिस तिस पटादिक कार्यके तिस तिस तंतुसंयोगादिक असमवायिकारणका विशेष लक्षण करणा। यातैं तिन तुरी तंतुसंयोगादिक निमितकारणविषे तिस तिस पटादिक कार्यके असमवायिकारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति ।

अब तीसरे निमित्तकारणका लक्षण—कहे हैं । **तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्** । अर्थ यह—पूर्व उक्त समवायिकारणतैं तथा असमवायिकारणतैं भिन्न ऐसा जो कारण है सो कारण निमित्तकारण कह्या जावै है । जैसे तुरी, वेम, तंतुवाय आदिक पटके निमित्तकारण होवै हैं तथा दंड, चक्र, कुलाल आदिक घटके निमित्तकारण होवै हैं । तहां ते तुरी वेमादिक ता पटके समवायिकारणरूप तंतुवोंतैं तथा असमवायिकारणरूप तंतुसंयोगतैं भिन्न भी हैं तथा ता पटरूप कार्यके कारण भी हैं । यातैं ते तुरीवेमादिक ता पटके निमित्तकारण कह्ये जावै हैं । इस प्रकार ते दंडचक्रादिक भी ता घटके समवायिकारणरूप कपालोंतैं तथा असमवायिकारणरूप कपालसंयोगतैं भिन्न भी हैं तथा ता घटके कारण भी हैं । यातैं ते दण्डचक्रादिक ता घटके निमित्तकारण कह्ये जावै हैं । इस प्रकार देश, काल, अदृष्ट, ईश्वर, प्रागभाव आदिक निमित्तकारणोंविषे भी सो उक्त लक्षण जानिलेणा इति । तहां यह उक्त समवायि, असमवायि, निमित्तरूप तीन कारण द्रव्य गुण कर्मरूप भावकार्यके हीं होवै हैं और प्रध्वंसाभावरूप अभावकार्यका तौं एक निमित्तकारण हीं होवै है । समवायिकारण तथा असमवायिकारण होता नहीं इति । कारणपदार्थके भेद—तहां सो पूर्वउक्त कारणपदार्थ साधारण १, असाधारण २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। असाधारण कारण—तहां पूर्वउक्त समवायिकारण तथा असमवायिकारण यह दोनों तौं असाधारणकारण हीं होवै हैं । निमित्तकारणके भेद—तीसरा निमित्तकारण तौं साधारण असाधारण इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है ।

अब साधारण कारणका लक्षण—कहे हैं **कार्यत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालि साधारणकारणम्** । अर्थ यह—कार्यत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न जा कार्यता है ता कार्यता करिकै निरूपित जा कारणता है ता कारणतावाला पदार्थ साधारणकारण कह्या जावै है । सो साधारणकारण ईश्वर १, ता ईश्वरका ज्ञान २, ईश्वरकी इच्छा ३, ईश्वरका प्रयत्न ४,

दिक् ५, काल ६, प्रागभाव ७, अदृष्ट ८, प्रतिबन्धकाभाव ९ इस भेद करिकै नव प्रकारका होवै है । तहां जो जो कार्य उत्पन्न होवै है तिस तिस कार्यके प्रति तिन ईश्वरादिक नवोंकूं हीं निमित्तकारण ता होवै है । तिन ईश्वरादिक नव कारणोंतैं विना किसी भी कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं । यातैं सर्वकार्यमात्रविषै वर्त्तणेहारा जो कार्यत्व धर्म है ता कार्यत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न जा सर्वकार्यमात्रवृत्ति कार्यता है ता कार्यता करिकै निरूपित जा कारणता है ता कारणतावाले ते ईश्वरादिक नवकारण हीं हैं । यातैं ते ईश्वरादिक नव कारण कार्यमात्रके प्रति साधारण निमित्तकारण कहे जावै हैं इति ।

अब असाधारण कारणका लक्षण कहे हैं **कार्यत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालि असाधारणकारणम्** । अर्थ यह—कार्यत्व धर्मतैं अतिरिक्त जो धर्म है ता धर्म करिकै अवच्छिन्न जा कार्यता है ता कार्यतानिरूपित जा कारणता है ता कारणतावाला पदार्थ असाधारण कारण कह्या जावै है । जैसे कार्यत्व धर्मतैं अतिरिक्त जो घटत्वधर्म है ता घटत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न जा घटमात्रनिष्ठ कार्यता है ता कार्यता करिकै निरूपित जा कारणता है ता कारणतावाले दंड, चक्र, कुलाल, कपाल, कपालसंयोग आदिक हैं यातैं ते दंडचक्रादिक ता घटरूप कार्यके प्रति असाधारणकारण कहे जावै हैं । तैसे पटरूप कार्यके प्रति भी तंतु तंतुसंयोग तुरी वेम तंतुवाय आदिक असाधारण कारण कहे जावै हैं । इस प्रकार पूर्वउक्त ईश्वरादिक नवसाधारण कारणोंकूं छोडिकै जिस जिस कार्यके प्रति जे जे कारण होवै हैं ते ते कारण तिस तिस कार्यके प्रति असाधारणकारण हीं होवै हैं इति ।

प्रत्यक्ष प्रमाण—तहां पूर्व यथार्थ अनुभवरूप प्रमाकी सिद्धिवासतैं ताके करणरूप प्रमाणका निरूपण कऱ्या था ता प्रमाणके स्वरूपकी सिद्धि वासतै कारणका स्वरूप निरूपण कऱ्या ता करणके स्वरूपकी सिद्धि वासतै तीन प्रकारके कारणका स्वरूप निरूपण कऱ्या अब पूर्वउक्त प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्दरूप च्यारिप्रकारकी प्रमाविषै प्रथम प्रत्यक्षप्रमाके निरूपण करणेवासतै ता प्रत्यक्षप्रमाके करणरूप प्रत्यक्षप्रमाणका निरूपण करे हैं । तहां लक्षण—**प्रत्यक्षप्रमाकरणं प्रत्यक्षप्रमाणम्** । अर्थ यह—प्रत्यक्षप्रमाका जो करण होवै है सो प्रत्यक्षप्रमाण कह्या जावै है । जैसे 'अयं घटः' इत्यादिक प्रत्यक्षप्रमाके चक्षुआदिक इंद्रिय हीं करण होवै हैं । यातैं ते चक्षुआदिक इंद्रिय प्रत्यक्षप्रमाण कहे जावै हैं इति ।

प्रत्यक्षप्रमाणके भेद—तहां सो प्रत्यक्षप्रमाण बाह्यप्रत्यक्षप्रमाण १, अन्तरप्रत्यक्षप्रमाण २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । बाह्य प्रत्यक्षके भेद—तहां सो बाह्यप्रत्यक्षप्रमाण भी घ्राण १, रसन २, चक्षु ३, त्वक् ४, श्रोत्र ५ इस भेद करिकै पंच प्रकारका होवै है । अन्तर प्रत्यक्ष—मनरूप इंद्रिय अन्तरप्रत्यक्षप्रमाण कह्या जावै है । दोनोंकी संख्या—ते बाह्य अन्तर दोनों मिलिकै सो इंद्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाण षट्प्रकारका होवै है । और सो इंद्रियरूप

प्रत्यक्षप्रमाण—द्रव्य ग्राहक १, द्रव्यअग्राहक २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। द्रव्यग्राहक—तहां चक्षु, त्वक् मन यह तीन इंद्रिय तौं द्रव्यके ग्राहक होवै हैं। अग्राहक—घ्राण, रसन, श्रोत्र यह तीन इंद्रिय, द्रव्यके अग्राहक होवै हैं इति।

प्रत्यक्षका लक्षण—अब जिस प्रत्यक्षप्रमाके करणरूपहूए चक्षु आदिक इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाणरूप होवै हैं तिस प्रत्यक्षप्रमाणका लक्षण कहे हैं—इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। अर्थ यह—चक्षु आदिक इंद्रियोंका घटादिक अर्थोंके साथि जो संयोगादिरूप संबंध है ताका नाम इंद्रियअर्थसन्निकर्ष है। ता इंद्रिय अर्थके सन्निकर्ष करिकै जन्य जो ज्ञान है ताका नाम प्रत्यक्षज्ञान है। जैसे घटरूप अर्थके साथि चक्षु इंद्रियके संयोगसम्बन्ध हूएतैं अनन्तर 'अयं घटः' या प्रकारका ज्ञान होवै है। यातैं 'अयं घटः' यह ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कह्या जावै है। इस प्रकार जो जो ज्ञान इंद्रिय अर्थके संबंध करिकै जन्य होवै है सो सो ज्ञान प्रत्यक्ष हीं होवै है। पदकृत्य—तहां 'ज्ञानं प्रत्यक्षम्' इतनामात्र हीं जो ता प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण करते तौं अनुमिति आदिक ज्ञानोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यम्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते अनुमिति आदिक ज्ञान इंद्रिय अर्थके सन्निकर्ष करिकै जन्य नहीं होवै हैं। यातैं तिन अनुमिति आदिक ज्ञानोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं, किंवा 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं प्रत्यक्षम्' इतनामात्र हीं जो ता प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद नहीं कथन करते तौं ता सन्निकर्षके ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं सो इंद्रिय अर्थके सन्निकर्षका ध्वंस भी ता सन्निकर्षरूप प्रतियोगी करिकै जन्य हीं होवै है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता सन्निकर्षके ध्वंसविषे ज्ञानरूपता है नहीं। यातैं ता सन्निकर्षके ध्वंसविषे ता प्रत्यक्षज्ञानके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं।

प्रतिबिम्बादिकोंके प्रत्यक्षपर शंका—काचादिकों करिकै व्यवहित पदार्थका भी चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है। ता प्रत्यक्षविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति हीं होवै है। काहेतैं? ता काचादिव्यवहित पदार्थके साथि ता चक्षुइंद्रियका संयोगसम्बन्ध हीं संभवता नहीं। जो कदाचित् व्यवधानवाले पदार्थके साथि भी चक्षुइंद्रियका संयोग होता होवै तौं भित्ति आदिकों करिकै व्यवहित पदार्थका भी चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये। यातैं ता काचादि व्यवहित पदार्थका प्रत्यक्ष ता इंद्रिय अर्थके सन्निकर्ष जन्य नहीं है।

इसका समाधान—जैसे भित्ति आदिक अस्वच्छद्रव्य तेजके निरोधक होवै हैं। तैसे ते काचजलादिक स्वच्छद्रव्य तेजके निरोधक होते नहीं। यातैं तिन काचादिक स्वच्छद्रव्योंविषे सो तैजसचक्षुइंद्रिय प्रवेश करिकै ता व्यवहित पदार्थके साथि संयोगकूं प्राप्त होवै है। यातैं

ता काचादिव्यवहित पदार्थके प्रत्यक्षविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । और जहां दर्पणविषे आपणे मुखका प्रत्यक्ष होवै है तहां तौं इस पुरुषका सो चक्षुइंद्रिय प्रथम ता दर्पणकूं प्राप्त होइकै पश्चात् ता दर्पणतैं पीछे हटिकै ता मुखके साथि संयोगसंबंधवाला होइकै ता मुखके प्रत्यक्षकूं उत्पन्न करे है। यातैं ता दर्पणकी समीपताकालविषे आपणे मुखके प्रत्यक्ष-ज्ञानविषे भी ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । और ता कालविषे 'दर्पणे मुखं पश्यामि' अर्थ यह—इस दर्पणविषे मैं आपणे मुखकूं देखता हूं या प्रकारकी जा लोकोंकूं प्रतीति होवै है सा प्रतीति तौं भ्रमरूप हीं है इति । ईश्वरके प्रत्यक्षपर शंका—इस पूर्व उक्त प्रत्यक्षज्ञानके लक्षणकी ईश्वरके प्रत्यक्षज्ञानविषे अव्याप्ति हीं होवै है । काहेतैं ? सो ईश्वरका प्रत्यक्षज्ञान नित्य होणेतैं ता इंद्रिय अर्थके सन्निकर्ष करिकै जन्य नहीं है । **समाधान**—सो उक्त लक्षण जीवात्माके जन्यप्रत्यक्षका हीं कन्या है यातैं ता उक्त लक्षणका सो जन्यप्रत्यक्ष हीं लक्ष्य है सो नित्यप्रत्यक्ष लक्ष्य नहीं है । और लक्ष्यविषे लक्षणके अवर्त्तणेका नाम अव्याप्ति है । यातैं ता उक्त लक्षणकी ता ईश्वरके प्रत्यक्षविषे अव्याप्ति होवै नहीं इति ।

अन्योंके यहां प्रत्यक्षका लक्षण—ईहां कईकग्रन्थकार—तौं ता प्रत्यक्षज्ञानका यह लक्षण करे हैं **ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्** । अर्थ यह—ज्ञान नहीं है करण जिसका ऐसा जो ज्ञान है ताका नाम प्रत्यक्ष है । तहां 'अयं घटः' इत्यादिक प्रत्यक्षज्ञानविषे चक्षुआदिक इंद्रिय हीं करण होवै हैं कोई ज्ञान करण होता नहीं । यातैं यह उक्त प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण सम्भवै है । पदकृत्य—तहां 'ज्ञानं प्रत्यक्षम्' इतनामात्र हीं जो ता प्रत्यक्षका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'ज्ञानाकरणकम्' यह पद नहीं कथन करते तौं अनुमिति, उपमिति, शाब्द इन तीनों ज्ञानोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'ज्ञानाकरणकम्' यह पद कथन कन्या है । तहां ते अनुमितिआदिक तीनों ज्ञान; ज्ञान अकरणक नहीं हैं किंतु तिन तीनों ज्ञानोंका ज्ञान हीं करण होवै है । जैसे अनुमितिका व्याप्तिज्ञान करण होवै है और उपमितिका सादृश्यज्ञान करण होवै है और शाब्दका पदज्ञान करण होवै है । यह सर्व अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा । किंवा 'ज्ञानाकरणकं प्रत्यक्षम्' इतनामात्र हीं जो ता प्रत्यक्षका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद नहीं कथन करते तौं घटादिकोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । काहेतैं ? ते घटा-दिक भी ज्ञानरूप करण करिकै जन्य होते नहीं । किंतु दंडादिरूप करण करिकै जन्य होवै हैं ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद कथन कन्या है । तहां तिन घटादिकोंविषे ज्ञानरूपता है नहीं । यातैं तिन घटादिकोंविषे ता प्रत्यक्ष-ज्ञानके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । यह उक्त प्रत्यक्षका लक्षण ता ईश्वरके प्रत्यक्षविषे भी विद्यमान है । जिस कारणतैं सो ईश्वरका प्रत्यक्ष भी नित्य होणेतैं ता ज्ञानरूपकरण

करिकै अजन्य हीं है इति । प्रत्यक्षके भेद—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो प्रत्यक्ष ज्ञान प्रथम नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । नित्यप्रत्यक्ष—तहां ईश्वरका प्रत्यक्षज्ञान तौ नित्य होवै है । तथा एकप्रकारका हीं होवै है । अनित्य प्रत्यक्ष—और जीवात्माका प्रत्यक्षज्ञान तौ अनित्य होवै है । इसके भेद—और सो जीवात्माका अनित्य प्रत्यक्षज्ञान भी घ्राणज १, रासन २, चाक्षुष ३, स्पार्शन ४, श्रौत्र ५, मानस ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है । **घ्राणज**—घ्राणइंद्रियजन्य प्रत्यक्षकूं कहे हैं । **रासन**—रसनइंद्रिय जन्य प्रत्यक्षकूं कहे हैं । **चाक्षुष**—चक्षु इंद्रियजन्य प्रत्यक्षकूं कहे हैं । **स्पार्शन**—तथा त्वाच त्वक्-इंद्रियजन्य प्रत्यक्षकूं कहे हैं । श्रोत्र तथा श्रावण श्रोत्रइंद्रियजन्य प्रत्यक्षकूं कहे हैं कहे हैं । **मानस**—मनइंद्रियन्य प्रत्यक्षकूं कहे हैं इति । षट् प्रत्यक्षोंके भेद—किंवा सो उक्त षट्प्रकारका प्रत्यक्ष निर्विकल्पक १, सविकल्पक २, इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै । तथा लौकिक १, अलौकिक २ इस भेद करिकै भी पुनः दो प्रकारका होवै है इति ।

निर्विकलपक और सविकलपक प्रत्यक्ष—अब ता निर्विकल्पक प्रत्यक्षका तथा सविकल्पक प्रत्यक्षका लक्षण कहे हैं । तहां **प्रकारतानिरूपकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्** । अर्थ यह—जो ज्ञान विषयनिष्ठप्रकारताका निरूपक नहीं होवै है सो ज्ञान निर्विकल्पक कह्या जावै है । **प्रकारतानिरूपकं ज्ञानं सविकल्पकम्** । अर्थ यह—जो ज्ञान विषयनिष्ठप्रकारताका निरूपक होवै है सो ज्ञान सविकल्पक कह्या जावै है । ईहां यह तात्पर्य है । ‘अयं घटः’ इत्यादिक जो सविकल्पक ज्ञान है ता सविकल्पकज्ञानकी विषयता घटविषे तथा घटत्वजातिविषे तथा ता घटघटत्वके समवायविषे तीनोंविषे हीं रहे हैं । तहां घटविषे तौ विशेषताख्य विषयता रहे है और घटत्वजातिविषे प्रकारताख्य विषयता रहे है और समवायविषे संसर्गताख्य विषयता रहे है । और जिस जिस ज्ञानकी जा जा विषयता होवै है । सा सा विषयता तिस तिस ज्ञान करिकै निरूपित हीं हावै है । अर्थात् तिस तिस विषयताका सो सो ज्ञान निरूपक होवै है । यातैं ‘अयं घटः’ इत्यादिक सविकल्प ज्ञानविषे ता प्रकारताका निरूपकपणा तथा ता विशेष्यताका निरूपकपणा तथा ता संसर्गताका निरूपकपणा संभवै है । यातैं ता सविकल्पक प्रत्यक्षके प्रकारतानिरूपकज्ञानत्व तथा विशेष्यतानिरूपकज्ञानत्व तथा संसर्गता निरूपक ज्ञानत्व यह तीनों लक्षण संभवै हैं और ‘ घटघटत्वे ’ इस निर्विकल्पक प्रत्यक्षविषे तौ ता पूर्वउक्त तीन प्रकारकी विषयताके मध्यविषे एक भी विषयता होती नहीं किंतु ता निर्विकल्पक ज्ञानकी तिन घटादिकोंविषे एक चतुर्थविषयता अंगीकार करी जावै है । यातैं सो निर्विकल्पक ज्ञान ता प्रकारताख्य विषयताका तथा विशेष्यताख्य विषयताका तथा संसर्गताख्य विषयताका निरूपक होता नहीं । यातैं ता निर्विकल्पक प्रत्यक्षके प्रकारता अनिरूपक ज्ञानत्व तथा विशेष्यता अनिरूपक ज्ञानत्व तथा संसर्गता अनिरूपक ज्ञानत्व यह

तीनों लक्षण सम्भवै है। यद्यपि सो निर्विकल्पक ज्ञान भी घट, घटत्व, समवाय इन तीनोंकूं हीं विषय करे है। तथापि सो निर्विकल्पक ज्ञान ता घटकूं विशेष्यतारूपतैं विषय करता नहीं तथा ता घटत्वकूं प्रकारतारूपतैं विषय करता नहीं तथा ता समवायकूं संसर्गतारूपतैं विषय करता नहीं, किंतु सो निर्विकल्पकज्ञान केवल ता घटघटत्वसमवायके स्वरूपमात्रकूं हीं विषय करे है। या कारणतैं हीं ता निर्विकल्पक प्रत्यक्षकी ता पूर्वउक्त तीन प्रकारकी विषयतातैं भिन्न एक चतुर्थविषयता तिन घटादिकोंविषे अंगीकार करी है इति।

निर्विकल्पक ज्ञानकी सिद्धि—ऐसे निर्विकल्पक प्रत्यक्षविषे कौन प्रमाण है। तहां ता निर्विकल्पक ज्ञानकूं अतिइंद्रियता होणेतैं ताकेविषे प्रत्यक्षप्रमाण तौं सम्भवता नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए; अब अनुमान प्रमाण करिकै ता निर्विकल्पक ज्ञानकी सिद्धि करे है। **अयं घटः इतिविशिष्टबुद्धिः विशेषणज्ञानजन्या विशिष्टबुद्धित्वात् दण्डीति विशिष्टबुद्धिवत्।** अर्थ यह—'अयं घटः' या प्रकारकी विशिष्टबुद्धि घटत्वरूप विशेषणके ज्ञान करिकै जन्य होणे योग्य है विशिष्टज्ञानरूप होणेतैं। जो जो विशिष्टज्ञान होवै है सो सो विशेषणके ज्ञान करिकै जन्य हीं होवै है। जैसे 'दण्डी पुरुषः' यह विशिष्टज्ञान दंडरूप विशेषणके ज्ञान करिकै जन्य होवै है। तैसे 'अयं घटः' यह विशिष्टज्ञान भी ता घटत्वरूप विशेषणके ज्ञान करिकै अवश्य जन्य होवैगा। तहां 'अयं घटः' इस विशिष्टज्ञानका कारणीभूत तथा ता विशिष्टज्ञानतैं पूर्ववृत्ति ऐसा जो ता घटत्वरूप विशेषणका ज्ञान है सो घटत्वरूप विशेषणका ज्ञान हीं निर्विकल्पकज्ञान कह्या जावै है। तहां ता घटत्वरूप विशेषणके ज्ञानकूं भी जो 'अयं घटः' इस ज्ञानकी न्यांई सविकल्पक ज्ञानरूपता मानिये तौं तिस विशिष्टज्ञानका भी हेतुभूत कोई दूसरा विशेषणज्ञान मानणा होवैगा और ता विशेषण ज्ञानकूं भी पूर्व विशेषणज्ञानकी न्यांई सविकल्पकज्ञानरूपता हीं मानणी होवैगी। यातैं ता विशेषणज्ञानका भी हेतुभूत कोई तीसराविशेषण ज्ञान मानणा होवैगा। इस प्रकार आगे आगे भी सविकल्पक विशेषण ज्ञानोंके मानणेविषे अनवस्थादोषकी हीं प्राप्ति होवैगी ता अनवस्थादोषके निवृत्तकरणे वासतै ता घटत्वरूप विशेषणके ज्ञानकूं निर्विकल्पक हीं मान्या चाहिये इति। विशिष्टबुद्धिविषे विशेषणज्ञानकूं कारणता—तहां एक हीं घटविषे कबी तौं 'अयं घटः' या प्रकारका घटत्वप्रकारक विशिष्ट ज्ञान होवै है और कबी तौं 'इयं पृथिवी' या प्रकारका पृथिवीत्व प्रकारक विशिष्टज्ञान होवै है और कबी तौं 'इदं द्रव्यम्' या प्रकारका द्रव्यत्वप्रकारक विशिष्टज्ञान होवै है। तहां तिन ज्ञानोंकी विलक्षणताविषे दूसरा तौं कोई कारण सम्भवता नहीं। परिशेषतैं ता घटत्वरूप विशेषणके ज्ञानकूं तथा ता पृथिवीत्वरूप विशेषणके ज्ञानकूं तथा ता द्रव्यत्वरूप विशेषणके ज्ञानकूं हीं यथाक्रमतैं तिन ज्ञानोंकी विलक्षणताविषे कारण मानणा होवैगा। यातैं ता विशिष्टबुद्धिविषे ता

विशेषणज्ञानकूं अवश्य कारण मान्या चाहिये इति । लौकिक अलौकिक प्रत्यक्ष—तहां पूर्व षड्विध प्रत्यक्षकूं लौकिक अलौकिक इस भेद करिकै दो प्रकारका कह्या था । अब ता लौकिक अलौकिक प्रत्यक्षका लक्षण—कहे हैं । तहां **लौकिकसन्निकर्षजन्यं प्रत्यक्षं लौकिकम् ।** अर्थ यह—चक्षुआदिक इंद्रियका घटादिक अर्थके साथि जो संयोगादिरूप लौकिक सन्निकर्ष है ता लौकिक सन्निकर्ष करिकै जन्य जो प्रत्यक्ष है सो प्रत्यक्ष लौकिक प्रत्यक्ष कह्या जावै है । इति । और **अलौकिकसन्निकर्षजन्यं प्रत्यक्षं अलौकिकम् ।** अर्थ यह—चक्षुआदिक इंद्रियका घटादिक अर्थके साथि जो सामान्यलक्षणादिरूप अलौकिक सन्निकर्ष है ता अलौकिक सन्निकर्ष करिकै जन्य जो प्रत्यक्ष है सो प्रत्यक्ष अलौकिकप्रत्यक्ष कह्या जावै है । ईहां सन्निकर्ष नाम संबंधका है इति । लौकिकके भेद—अब प्रथम ता लौकिकसन्निकर्षका निरूपण करे हैं । तहां सो प्रत्यक्षज्ञानका हेतुरूप तथा चक्षुआदिक इंद्रियोंका व्यापाररूप लौकिकसन्निकर्ष संयोग १, संयुक्त समवाय २, संयुक्त समवेतसमवाय ३, समवाय ४, समवेतसमवाय ५, विशेषणता ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है । इन षट्प्रकारके सन्निकर्षोंके मध्यविषे किसी भी सन्निकर्ष करिकै जो प्रत्यक्ष उत्पन्न होवै है सो प्रत्यक्ष लौकिकप्रत्यक्ष कह्या जावै है । संयोग सन्निकर्ष—अब प्रथम संयोग सन्निकर्षका निरूपण करे हैं । तहां चक्षु त्वक् मन इन तीन इंद्रियों करिकै हीं द्रव्यका प्रत्यक्ष होवै है । घ्राण, रसन, श्रोत्र इन तीन इंद्रियों करिकै द्रव्यका प्रत्यक्ष होता नहीं । किंतु गंधादिक गुणका हीं प्रत्यक्ष होवै है । ताके विषे भी चक्षु त्वक्, इन दो इंद्रियों करिकै तौं महत्त्वपरिमाणवाले तथा उद्भूतरूपस्पर्शवाले पृथिवी, जल, तेज इन तीन द्रव्योंका हीं प्रत्यक्ष होवै है । अन्य किसी द्रव्यका प्रत्यक्ष होता नहीं । और मनरूप इंद्रिय करिकै तौं एक आत्मारूप द्रव्यका हीं प्रत्यक्ष होवै है, अन्य किसी द्रव्यका प्रत्यक्ष होता नहीं । तहां चक्षुइंद्रिय करिकै महत्त्व विशिष्ट उद्भूतरूपवाले घटपटादिक द्रव्योंका 'अयं घटःअयं पटः' या प्रकारका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है ता चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता चक्षुइंद्रियका तिन घटपटादिक द्रव्योंके साथि संयोगसंबंध हीं कारण होवै है । प्रत्यक्षकी रीति—ईहां यह तात्पर्य है—प्रथम आत्माका मनके साथि संयोग होवै है । तिसतैं अनंतर ता आत्मसंयुक्त मनका चक्षुआदिक इंद्रियके साथि संयोग होवै है, तिसतैं अनंतर ता मनसंयुक्त चक्षुआदिक इंद्रियका घटादिक अर्थके साथि संयोगादिरूप संबंध होवै है, तिसतैं अनंतर ता जीवात्माविषे 'अयं घटः' इत्यादिक प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न होवै है । या प्रकारकी रीति सर्वप्रत्यक्षज्ञानकी उत्पत्तिविषे जानिलेणी ।

प्रत्यक्षमें करण, व्यापार और फल—तहां ता घटादिक द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे सो चक्षु इंद्रिय तौं करण हैं और ता चक्षुइंद्रियका जो घटादिक द्रव्यके साथि संयोगसंबंध है सो संयोगसंबंध ता चक्षुइंद्रिय करिकै जन्य होणेतैं तथा ता चक्षुइंद्रियजन्य चाक्षुषप्रत्यक्षका

जनक होणेतैं व्यापाररूप है । और 'अयं घटःअयं घटः' इत्यादिक चाक्षुषप्रत्यक्ष फलरूप है । इस प्रकारकी रीति आगे भी त्वगादिक सर्वइंद्रियोंविषे जानिलेणी । अर्थात् सर्वप्रत्यक्षविषे इंद्रिय तौं करण होवै है और तिस तिस इंद्रियका तिस तिस द्रव्यादिक अर्थके साथि संयोगादिरूप संबंध व्यापार होवै है । और तिस तिस द्रव्यादिरूप अर्थका प्रत्यक्षज्ञान फल होवै है इति । और त्वक्इंद्रिय करिकै तिन घटादिक द्रव्योंका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है ता त्वाच प्रत्यक्षविषे तिस त्वक्इंद्रियका तिन घटादिक द्रव्योंके साथि संयोगसंबंध हीं कारण होवै है । इस प्रकार मनरूप इंद्रिय करिकै आत्मारूप द्रव्यका मानसप्रत्यक्ष होवै है, ता मानसप्रत्यक्षविषे ता मनरूपइंद्रियका ता आत्मारूप द्रव्यके साथि संयोगसंबंध हीं कारण होवै है इति । अब दूसरे संयुक्तसमवायका निरूपण—करे हैं । तहां ता चक्षुइंद्रियके योग्य जे महत्त्वविशिष्ट उद्भूतरूपवाले घटादिक द्रव्य हैं तिन घटादिक द्रव्योंविषे समवायसंबंध करिकै रह्येहूए जे उद्भूतरूप, संख्या-परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग यह एकादशगुण हैं तथा क्रियारूप कर्म है तथा सत्ता द्रवत्व,पृथिवीत्व, घटत्व आदिक जातियां हैं, तिन सर्वोंका भी ता चक्षुइंद्रिय करिकै चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । ता रूपादिकोंके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता चक्षु इन्द्रियका तिन रूपादिकोंके साथि संयुक्तसमवाय संबंध हीं कारण होवै है। ईहां संयोग संबंधवालेका नाम संयुक्त है ।तहां ते घटादिक द्रव्य ता चक्षुइंद्रियके संयोगवाले होणेतैं चक्षुसंयुक्त कह्ये जावै है। ऐसे चक्षुसंयुक्त घटादिकोंविषे ते रूपादिक एकादशगुण तथा कर्म तथा सत्ता द्रव्यत्वादिक जाति समवायसम्बन्ध करिकै रहे हैं । यातैं ता संयुक्त समवायसम्बंध करिकै तिन रूपादिकोंका चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष सम्भवै है । इस प्रकार पूर्वउक्त रूपादिक एकादश गुणोंविषे रूपकूं निकासिकै ता रूपके स्थानविषे स्पर्शगुणकूं मिलाइकै तिन स्पर्शादिक एकादशगुणोंका त्वक्इंद्रिय करिकै भी प्रत्यक्ष होवै है तथा तिन घटादिक द्रव्योंके कर्मका तथा सत्ता, द्रव्यत्व, पृथिवीत्व, घटत्व आदिक जातियोंका भी ता त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । ता स्पर्शादिकोंके त्वाचप्रत्यक्षविषे भी ता त्वक्इंद्रियका तिन स्पर्शादिकोंके साथि संयुक्त समवायसम्बन्ध हीं कारण होवै है । इस प्रकार रसनइंद्रिय करिकै जो पृथिवीजलवृत्ति मधुरादिक रसगुणका रासनप्रत्यक्ष होवै है तथा घ्राणइंद्रिय करिकै जो पृथिवीवृत्ति गंधगुणका घ्राणजप्रत्यक्ष होवै है तथा मनरूप इंद्रिय करिकै जो जीवात्माके ज्ञानादिक षट्गुणोंका तथा आत्मत्वजातिका मानसप्रत्यक्ष होवै है सो रसगंधादिक गुणोंका प्रत्यक्ष भी ता संयुक्त समवायसम्बन्ध करिकै हीं होवै है । तहां रसनइंद्रिय संयुक्त ता पृथिवीजलविषे ता रसगुणका समवायसंबन्ध होणेतैं तथा घ्राणइंद्रिय संयुक्त ता पृथिवीविषे ता गंधगुणका समवायसम्बन्ध होणेतैं तथा मनइंद्रियसंयुक्त ता आत्माविषे तिन ज्ञानादिक गुणोंका समवायसम्बन्ध होणेतैं तिन रसगंधादिक गुणोंका तिन रसनघ्राणादिक इंद्रियके ता संयुक्त-

समवायसम्बन्ध करिकै प्रत्यक्ष सम्भवै है । ईहां केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । जैसे जीवात्माके ज्ञानादिक षट्गुणोंका मनके संयुक्त समवायसम्बन्ध करिकै मानसप्रत्यक्ष होवै है । तैसे ता आत्माके एकत्वसंख्याका तथा परममहत्त्वपरिमाणका भी ता संयुक्तसमवायसम्बन्ध करिकै मानसप्रत्यक्ष होवै है इति । और केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । ता जीवात्माके एकत्वसंख्याका तथा महत्त्वपरिमाणका मानसप्रत्यक्ष होता नहीं । काहेतैं ? जिस अर्थका प्रत्यक्षज्ञान होवै है तिस अर्थविषे वादीयोंका विवाद होता नहीं, और आत्माके संख्याविषे तथा परिमाणविषे तौं वादीयोंका प्रसिद्ध विवाद देखणेविषे आवै है । तहां केईकवादी तौं एक हीं आत्मा माने है और केईकवादी अनेक आत्मा माने हैं । तैसे केईक वादी तौं आत्माकूं अणुपरिमाणवाला माने हैं और केईकवादी आत्माकूं महत्त्वपरिमाणवाला माने हैं । यातैं ता जीवात्माके एकत्वसंख्याका तथा महत्त्वपरिमाणका मानसप्रत्यक्ष होता नहीं इति ॥

परिमाणके प्रत्यक्षपर शङ्का—पूर्व घटादिक द्रव्योंके रूपादिक एकादश गुणोंका चक्षुके संयुक्त समवायसम्बन्ध करिकै प्रत्यक्ष कह्या सो सम्भवता नहीं । काहेतैं ? दूरदेशविषे स्थित घटादिक द्रव्योंके परिमाणके साथि चक्षुइंद्रियके ता संयुक्तसमवायसम्बन्धके हूए भी ता परिमाणका यथावत् प्रत्यक्ष होता नहीं । अन्य चार और सन्निकर्षमानकर समाधान—ता परिमाणके प्रत्यक्षविषे दूसरा भी च्यारिप्रकारका सन्निकर्ष कारण होवै है । तहां एक तौं चक्षुइंद्रियके अवयवोंका तथा घटादिक द्रव्यके अवयवोंका संयोगसम्बन्ध १ । और दूसरा ता इंद्रियरूप अवयवीका तथा ता घटादिरूप अवयवीका संयोगसम्बन्ध २ । और तीसरा ता इंद्रियरूप अवयवीका तथा ता घटादिक द्रव्यके अवयवोंका संयोगसम्बन्ध ३ । और चौथा ता इंद्रियके अवयवोंका तथा ता घटादिरूप अवयवीका संयोगसम्बन्ध ४ ॥ यह च्यारि प्रकारका सन्निकर्ष भी ता परिमाणके प्रत्यक्षविषे कारण होवै है । तहां ता दूरदेशवृत्ति घटके साथि ता चक्षुइंद्रियके संयोगमात्रहूए भी सो उक्त च्यारिप्रकारका सन्निकर्ष तहां होता नहीं । या कारणतैं चक्षुइंद्रिय करिकै तिन घटादिकोंके परिमाणका प्रत्यक्ष होता नहीं इति ॥

ईहां केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । ता दूसरेदेशवृत्ति घटादिकोंके साथि ता चक्षुइंद्रियके संयोगहूए भी दूरत्वदोषके वशतैं तिन घटादिकोंके परिमाणका यथावत् प्रत्यक्ष होता नहीं । यातैं ता परिमाणके प्रत्यक्षविषे सो सो च्यारि प्रकारका अधिकसन्निकर्ष कारण मानणा व्यर्थ है इति ।

अब तीसरे संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्षका निरूपण—करे हैं । तहां पूर्व उक्त घटादिकोंके रूपादिक एकादश गुणोंविषे यथाक्रमतैं समवायसम्बन्ध करिकै रहीहूई जे रूपत्वादिक एकादश जातियां हैं तिन रूपत्वादिक जातियोंका भी चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है ता चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता चक्षुइंद्रियका तिन रूपत्वादिक जातियोंके साथि संयुक्तसमवेतसमवाय सन्निकर्ष कारण होवै है । तहां चक्षुसंयुक्त घटादिकोंविषे समवेत जे रूपादिक गुण हैं

तिन रूपादिक गुणोंविषे ते रूपत्वादिक जातियां समवायसंबंध करिकै रहे हैं । यातैं ता चक्षु इंद्रियके संयुक्तसमवेतसमवाय संबंध करिकै तिन रूपत्वादिक जातियोंका चाक्षुषप्रत्यक्ष संभवै है । इस प्रकार तिन घटादिकोंके कर्मविषे वर्त्तणेहारी कर्मत्वजातिका भी ता संयुक्तसमवेत समवायसंबंध करिकै हीं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । और पूर्व उक्त घटादिक द्रव्योंके स्पर्शादिक एकादश गुणोंविषे यथाक्रमतैं समवायसंबंध करिकै रहीहूई जे स्पर्शत्वादिक एकादश जातियां हैं तिन स्पर्शत्वादिक जातियोंका भी त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । तथा ता कर्मवृत्ति कर्मत्वजातिका भी त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । ता स्पर्शत्वादिक जातियोंके त्वाच प्रत्यक्षविषे ता त्वक्इंद्रियका तिन स्पर्शत्वादिक जातियोंके साथि सो संयुक्तसमवेत समवाय-सन्निकर्ष हीं कारण होवै है । तहां त्वक्इंद्रियसंयुक्त घटादिकोंविषे समवेत जे स्पर्शादिक गुण हैं तिन स्पर्शादिक गुणोंविषे ते स्पर्शत्वादिक जातियां समवायसंबंध करिकै रहे हैं । यातैं ता त्वक्इंद्रियके संयुक्तसमवेत समवायसंबंध करिकै तिन स्पर्शत्वादिक जातियोंका तथा ता कर्मत्वजातिका त्वाचप्रत्यक्ष संभवै है । इस प्रकार ता गंधगुणवृत्ति गंधत्वजातिके घ्राणज प्रत्यक्षविषे ता घ्राणइंद्रियका ता गंधत्वजातिके साथि सो संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्ष हीं कारण होवै है । इस प्रकार रसगुणवृत्ति रसत्वजातिके रासनप्रत्यक्षविषे ता रसनइंद्रियका ता रसत्वजातिके साथि सो संयुक्तसमवेतसमवायसन्निकर्ष हीं कारण होवै है। इस प्रकार आत्माके ज्ञानादिक गुणोंविषे वृत्ति ज्ञानत्वादिक जातियोंके मानसप्रत्यक्षविषे ता मनका तिन ज्ञानत्वादिक जातियोंके साथि सो संयुक्त समवेतसमवायसन्निकर्ष हीं कारण होवै है इति ।

अब चतुर्थ समवायसन्निकर्षका निरूपण—करे हैं । तहां श्रोत्रइंद्रिय करिकै वर्णात्मक शब्द तथा ध्वन्यात्मक शब्दका प्रत्यक्ष होवै है । ता शब्दके श्रावणप्रत्यक्षविषे ता श्रोत्रइंद्रियका ता शब्दगुणके साथि समवायसन्निकर्ष कारण होवै है । तहां कर्णच्छिद्रविषे स्थित जो आकाश है ताका नाम श्रोत्रइंद्रिय है । ऐसे श्रोत्रइंद्रियरूप आकाशविषे उत्पन्नहूए शब्दका हीं ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । यह वार्त्ता पूर्व तृतीयपरिच्छेदविषे शब्दगुणके निरूपण-विषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं और सो शब्द आकाशमात्रका हीं गुण होवै है और गुणका तथा गुणी द्रव्यका परस्पर समवायसंबंध हीं होवै है । यातैं ता शब्दके श्रावणप्रत्यक्षविषे ता आकाशरूप श्रोत्रइंद्रियका ता शब्दगुणके साथि समवायसन्निकर्ष हीं कारण होवै है इति ॥

अब पंचम समवेतसमवायसन्निकर्षका निरूपण—करे हैं । तहां ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै ता शब्दगुणवृत्ति शब्दत्वजातिका भी प्रत्यक्ष होवै है । ता शब्दत्वजातिके श्रावणप्रत्यक्षविषे ता श्रोत्रइंद्रियका ता शब्दत्वजातिके साथि समवेतसमवाय सन्निकर्ष कारण होवै है । तहां ता आकाशरूप श्रोत्रइंद्रियविषे सो शब्द समवायसम्बन्ध करिकै रहे है । यातैं सो शब्द श्रोत्र-समवेत कह्या जावै है । ऐसे शब्दविषे सा शब्दत्वजाति समवायसम्बन्ध करिकै रहे है । यातैं

ता श्रोत्रइंद्रियके समवेतसमवायसम्बन्ध करिकै ता शब्दत्वजातिका तथा ककारादिक वर्णवृत्ति कत्व खत्वादिक जातियोंका श्रावणप्रत्यक्ष सम्भवै है इति ॥

श्रोत्रेन्द्रियकी व्यापाररूपतापर शंका—जैसे चक्षुआदिक इंद्रियका घटादिक अर्थके साथि संयोगसम्बन्ध ता चक्षुआदिक इंद्रिय करिकै जन्य होणेतैं तथा ता इंद्रियजन्य घटादिक अर्थके प्रत्यक्षका जनक होणेतैं ता चक्षुआदिक इंद्रियका व्यापाररूप होवै है। तैसे इस समवायसम्बन्धविषे तथा समवेतसमवाय सम्बन्ध विषे ता श्रोत्रइंद्रियकी व्यापाररूपता सम्भवती नहीं। काहेतैं ? ता समवायकूं नित्य होणेतैं श्रोत्रइंद्रिय करिकै जन्यता सम्भवती नहीं और ता समवायविषे श्रोत्रइंद्रियकी व्यापारताके अभावहूए ता श्रोत्रइंद्रियविषे ता श्रावणप्रत्यक्षकी करणता भी नहीं संभवैंगी। जिस कारणतैं व्यापारवाला कारण हीं करण होवै है यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये है। इसका समाधान—ता शब्दके श्रावण प्रत्यक्षविषे समवायसंबंधकूं व्यापाररूपता नहीं है किंतु ता शब्दकूं हीं व्यापाररूपता है। तहां सो शब्द ता आकाशरूप श्रोत्रइंद्रियका गुण होणेतैं ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै जन्य भी है। तथा ता श्रोत्रइंद्रियजन्य शब्दविषयक श्रावण प्रत्यक्षका विषयतारूप करिकै जनक भी है विषयतैं विना कोई भी प्रत्यक्ष उत्पन्न होता नहीं। यातैं ता प्रत्यक्षज्ञानविषे इंद्रियकी न्यांई ता विषयकूं भी कारणता अंगीकार करी है यातैं ता शब्दविषे ता श्रोत्रइंद्रियकी व्यापाररूपता संभवै है इति। समाधानान्तर—अथवा ता श्रोत्रइंद्रियके साथि जो मनका संयोगसंबंध है सो श्रोत्रमनसंयोग हीं ता श्रोत्रइंद्रियका व्यापार है। तहां सो श्रोत्रमनका संयोग ता श्रोत्रइंद्रिय करिकै जन्य भी है। और इंद्रियके साथि मनके संयोगतैं विना कोई भी प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न होता नहीं। यातैं सो श्रोत्रमनका संयोग ता श्रोत्रइंद्रियजन्य शब्दके श्रावणप्रत्यक्षका जनक भी है। यातैं ता श्रोत्रमनके संयोगविषे ता श्रोत्रइंद्रियकी व्यापाररूपता संभवै है इति।

संयुक्त तथा समवेतसमवायविषे इन्द्रियोंको व्यापारता—यद्यपि संयुक्तसमवाय तथा संयुक्तसमवेतसमवाय इन दो सन्निकर्षोंविषे भी ता नित्यसमवायका हीं प्रवेश है। यातैं इन दोनों सन्निकर्षोंविषे भी ता उक्त समवायसन्निकर्षकी न्यांई चक्षु आदिक इंद्रियोंकी व्यापाररूपता नहीं होणी चाहिये। तथापि ते दोनों सन्निकर्ष अनित्यसंयोगसंबंध करिकै भी घटित हैं। ता संयोगविषे चक्षु आदिक इंद्रियों करिकै जन्यता संभवै है। यातैं तिन दोनों सन्निकर्षोंविषे चक्षु आदिक इंद्रियोंकी व्यापाररूपता संभवै है इति। और केईकग्रन्थकार तौं ‘ संयुक्तसमवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय ’ इन च्यारों सन्निकर्षजन्य प्रत्यक्षविषे तिस तिस इंद्रियमनके संयोगकूं हीं व्यापाररूपता माने हैं इति।

अब षष्ठे विशेषणतासन्निकर्षका निरूपण—करे हैं। जहां चक्षु आदिक इंद्रिय करिकै भूतलादिकोंविषे घटादिक पदार्थोंके अभावका प्रत्यक्ष होवै है। तहां ता अभावके प्रत्यक्षविषे तिन चक्षुआदिक

इंद्रियोंका ता अभावके साथि विशेषणतासन्निकर्ष हीं कारण होवै है। तहां अभावका प्रत्यक्ष चक्षुआदिक सर्वइंद्रियों करिकै होवै है; यातैं जिस जिस इंद्रिय करिकै जिस अधिकरणविषे जिस जिस पदार्थके अभावका प्रत्यक्ष होवै है सो प्रकार स्पष्ट करिकै दिखावै हैं। तहां घटविषे पटत्वजातिका अभाव रहे है ता पटत्वके अभावका चक्षु त्वक् दोनों इंद्रियों करिकै 'घटःपटत्वाभाववान्' या प्रकारका प्रत्यक्ष होवै है। ता पटत्वाभावविषयक प्रत्यक्षविषे ता चक्षुत्वक् इंद्रियका ता पटत्वाभावके साथि संयुक्तविशेषणतासन्निकर्ष कारण होवै है। तहां ता चक्षुत्वक्इंद्रिय करिकै संयुक्त जो घट है ता घटविषे सो पटत्वजातिका अभाव विशेषणता संबंध करिकै रहे है; यातैं ता चक्षुत्वग् इंद्रियके संयुक्तविशेषणतासंबंध करिकै ता पटत्वाभावका प्रत्यक्ष संभवै है। इस प्रकार आत्माविषे जो सुखदुःखादिकोंके अभावका मानस प्रत्यक्ष होवै है। सो प्रत्यक्ष भी ता संयुक्तविशेषणतासंबंध करिकै हीं होवै है। जिस कारणतैं मनसंयुक्त आत्माविषे सो सुखदुःखका अभाव विशेषणतासंबंध करिकै हीं रहे है। इस प्रकार जिस जिस द्रव्यविषे जिस जिस पदार्थके अभावका जिस जिस इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तिस तिस अभावके प्रत्यक्षविषे तिस तिस इंद्रियका तिस तिस अभावके साथि संयुक्त विशेषणतासन्निकर्ष हीं कारण होवै है। जैसे-नीलघटविषे रक्तरूपके अभावका प्रत्यक्ष चक्षुसंयुक्त विशेषण तासंबंध करिकै होवै है और उष्णस्पर्शवाले अग्निविषे शीतस्पर्शके अभावका प्रत्यक्ष त्वक्संयुक्त विशेषणतासंबंध करिकै होवै है और जलविषे गंधगुणके अभावका प्रत्यक्ष घ्राणसंयुक्त विशेषणतासंबंध करिकै होवै है और मधुरफलविषे कटुरसके अभावका प्रत्यक्ष रसनसंयुक्तविशेषणतासंबंध करिकै होवै है इति। और घटके नीलरूपविषे शुक्लत्वजातिका अभाव रहे है ता शुक्लत्वाभावका भी ता चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तहां ता शुक्लत्वाभावके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे चक्षुइंद्रियका ता शुक्लत्वाभावके साथि संयुक्तसमवेतविशेषणतासन्निकर्ष कारण होवै है। तहां ता चक्षुसंयुक्तघटविषे समवेत जो नीलरूप है ता नीलरूपविषे सो शुक्लत्वाभाव विशेषणतासंबंध करिकै रहे है। यातैं ता चक्षुइंद्रियके ता संयुक्तसमवेतविशेषणता सम्बन्ध करिकै ता शुक्लत्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष संभवै है, इस प्रकार अग्निके उष्णस्पर्शविषे वृत्ति जो शीतत्वजातिका अभाव है ता शीतत्वाभावके त्वाचप्रत्यक्षविषे ता त्वक्इंद्रियका ता शीतत्वाभावके साथि संयुक्तसमवेत विशेषणतासन्निकर्ष हीं कारण होवै हैं। तहां त्वक्संयुक्त अग्निविषे समवेत जो उष्णस्पर्श है ता उष्णस्पर्शविषे सो शीतत्वाभाव विशेषणतासम्बन्ध करिकै रहे है। इस प्रकार पुष्पादिकोंके सौरभगंध विषे असौरभत्वजातिके अभावका प्रत्यक्ष घ्राणसंयुक्त समवेत विशेषणतासंबंध करिकै होवै है। और मधुररसविषे कटुत्वजातिके अभावका प्रत्यक्ष रसनसंयुक्तसमवेत विशेषणतासंबंध करिकै होवै है। और आत्माके सुखादिक गुणोंविषे दुःखत्वादिक जातिके अभावका प्रत्यक्ष मनसंयुक्त समवेत विशेषणतासंबंध करिकै होवै है, इस प्रकार

द्रव्यसमवेतवृत्ति जिस जिस अभावका जिस जिस इंद्रिय करिकै जो जो प्रत्यक्ष होवै है तिस तिस अभावके तिस तिस प्रत्यक्षविषे तिस तिस इंद्रियका तिस तिस अभावके साथि सो संयुक्तसमवेत विशेषणतासन्निकर्ष हीं कारण होवै है इति । और घटके नीलरूपविषे रहणेहारी निलत्वजातिविषे पीतत्वजातिका अभाव रहे है । ता पीतत्वाभावका भी चक्षुइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । ता पीतत्वाभावके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता चक्षुइंद्रियका ता पीतत्वाभावके साथि संयुक्तसमवेत समवेतविशेषणतासन्निकर्ष हीं कारण होवै है । तहां चक्षुइंद्रिय संयुक्त घटविषे समवेत जो नीलरूप है । ता नीलरूपविषे समवेत जा नीलत्वजाति है ता नीलत्वजातिविषे सो पीतत्वजातिका अभाव विशेषणतासम्बन्ध करिकै रहे है । यातैं ता चक्षुइंद्रियके ता संयुक्त समवेतसमवेतविशेषणतासम्बन्ध करिकै ता पीतत्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष संभवै है । इस प्रकार अग्निके उष्णस्पर्शविषे रहणेहारी उष्णत्व जातिविषे शीतत्व जातिका अभाव रहै है ता शीतत्वाभावका भी त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । ता शीतत्वाभावके त्वाचप्रत्यक्षविषे ता त्वक्इंद्रियका ता शीतत्वाभावके साथि संयुक्तसमवेत समवेत विशेषणतासन्निकर्ष हीं कारण होवै है । तहां त्वक्संयुक्तअग्निविषे समवेत जो उष्णस्पर्श है । ता उष्णस्पर्शविषे समवेत जा उष्णत्वजाति है । ता उष्णत्वजाति विषे सो शीतत्वाभाव विशेषणतासंबंध करिकै रहे है । इसप्रकार सौरभत्वजातिविषे असौरभत्वजातिके अभावका प्रत्यक्ष घ्राणसंयुक्तसमवेत समवेतविशेषणता संबंध करिकै होवै है । और मधुरत्वजातिविषे कटुत्वजातिके अभावका प्रत्यक्ष रसन संयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणतासंबंध करिकै होवै है । और सुखत्वादिक जातिविषे दुःखत्वादिक जातिके अभावका प्रत्यक्ष मनःसंयुक्त समवेतसमवेतविशेषणता संबंध करिकै होवै है । तहां मनसंयुक्त आत्माविषे समवेत जो सुख है ता सुखविषे समवेत जा सुखत्वजाति है ता सुखत्व जातिविषे सो दुःखत्वजातिका अभाव विशेषणतासंबंध करिकै रहे है इति । और आकाशरूप श्रोत्रइंद्रियविषे विशेषणतारूपस्वरूपसंबंध करिकै रह्या हूआ जो शब्दका अभाव है ता शब्दके अभावका भी श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । ता शब्दाभावके श्रावणप्रत्यक्षविषे ता श्रोत्रइंद्रियका ता शब्दाभावके साथि विशेषणतासन्निकर्ष हीं कारण होवै है और ककारादिक वर्णविषे रह्या हूआ जो खत्वादिकजातिका अभाव है ता खत्वाभावका भी श्रोत्रइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है । ता खत्वाभावके श्रावणप्रत्यक्षविषे ता श्रोत्रइंद्रियका ता खत्वाभावके साथि समवेत विशेषणतासंनिकर्ष ही कारण होवै है । तहां श्रोत्रइंद्रियविषे समवेत जे ककारादिक हैं तिन ककारादिकोंविषे सो खत्वादिक जातिका अभाव विशेषणतासम्बन्धकरिकै रहे है, यातैं ता समवेतविशेषणतासम्बन्ध करिकै ता ककारवृत्ति खत्वाभावका श्रावणप्रत्यक्ष संभवै है, और ता ककारवृत्ति कत्वजातिविषे भी ता खत्वजातिका अभाव रहे है । ता खत्वाभाव श्रावणप्रत्यक्षविषे ता श्रोत्रइंद्रियका ता खत्वाभावके साथि समवेतसमवेत विशेषणता सन्निकर्ष

कारण होवै है । तहां श्रोत्रसमवेत ककारविषे समवेत जा कत्वजाति है ता कत्वजातिविषे सो खत्वाभाव विशेषणतासंबंध करिकै रहै है इति । किंवा जैसे द्रव्यादिक भावरूप अधिकरण विषे रहणेहारे अभावका पूर्वउक्त रीतिसैं चक्षुआदिक इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै है तैसे अभावरूप अधिकरणविषे रहणेहारे अभावका भी ता चक्षुआदिक इंद्रिय कारिकै प्रत्यक्ष होवै है । ता अभावअधिकरणक अभावके साथि तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके संयुक्तविशेषण विशेषणता तथा संयुक्तसमवेतविशेषणविशेषणता तथा संयुक्त समवेतसमवेतविशेषणविशेषणता इत्यादिक अनेक विशेषणतासंबंध होवै हैं । तहां पूर्व घटविषे पटत्वके अभावका चक्षुसंयुक्तविशेषणता सन्निकर्ष करिकै प्रत्यक्ष कह्या था । ता घटवृत्तिपटत्वाभावविषे घटत्वजातिका अभाव रहै है । ता पटत्वाभाववृत्तिघटत्वाभावका भी चक्षुइंद्रिय करिकै ' पटत्वाभावः घटत्वाभाववान् ' या प्रकारका प्रत्यक्ष होवै है, ता घटत्वाभावके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता चक्षुइंद्रियका ता घटत्वाभावके साथि संयुक्तविशेषणविशेषणतासन्निकर्ष कारण होवै है । तहां चक्षुसंयुक्तघटविषे विशेषणतासंबंध करिकै रह्या जो पटत्वाभाव है । ता ता पटत्वाभावविषे सो घटत्वाभाव विशेषणतासंबंध करिकै रहै है । यातैं ता चक्षुइंद्रियका ता घटत्वाभावके साथि संयुक्त विशेषणविशेषणतासंबंध संभवै हैं । इस प्रकार पूर्व जिस जिस अभावका जिस जिस इंद्रिय करिकै तथा जिस जिस विशेषणतासंबंध करिकै जो जो प्रत्यक्षज्ञान कथन कऱ्या है तिस तिस अभावविषे तिस तिस इंद्रिययोग्य कोई पदार्थका अभाव राखिकै तथा तिस तिस विशेषणतासंबंधतैं उत्तर ' विशेषणता ' इस पदका प्रवेश करिकै तिस तिस अभाववृत्ति अभावके साथि तिस तिस इंद्रियके ' संयुक्तविशेषणविशेषणता, संयुक्तसमवेतविशेषणविशेषणता, संयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणविशेषणता, विशेषणविशेषणता, समवेतविशेषणविशेषणता, समवेतसमवेतविशेषणविशेषणता, इस प्रकारके संबंध पूर्वउक्त उदाहरणोंविषे हीं जानिलेणे । ग्रंथविस्तार भयतैं पुनः लिखे नहीं इति । इस प्रकार सो अभावके प्रत्यक्षका कारणरूप विशेषणतासन्निकर्ष यद्यपि नाना प्रकारका होवै है तथापि तिन उक्त सर्वसंबधोंविषे विशेषणता अनुगत है । यातैं ता विशेषणतारूप करिकै तिन सर्वसंबंधोंकूं एक विशेषणता सन्निकर्ष कह्या है।

छः सन्निकर्षोंके स्थानपर तीनकी शंका—अभावप्रत्यक्षके हेतु भूत अनेक विशेषणतासंबंधोंकूं विशेषणतारूप करिकै जो एकसन्निकर्ष मानोंगे तौं ' संयुक्तसमवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय ' इन च्यारि सन्निकर्षोंविषे भी समवाय अनुगत है । यातैं ता समवायत्वरूप करिकै तिन च्यारि सन्निकर्षोंकूं भी एकसन्निकर्ष मान्या चाहिये । यातैं संयोग, समवाय, विशेषणता यह तीन सन्निकर्ष हीं सिद्ध होवै हैं। पूर्व उक्त षट्सन्निकर्ष सिद्ध होते नहीं।

शास्त्रसंप्रदायकी मानतासे समाधान—इस उक्त रीतिसैं यद्यपि तीन सन्निकर्ष हीं सिद्ध होवै हैं तथापि पूर्वपूर्व शास्त्रकारोंनैं ग्रंथोंविषे ते पूर्वउक्त षट्सन्निकर्ष हीं लिखे हैं। ते तीन सन्निकर्ष लिखे नहीं। यातैं शास्त्रसंप्रदायके अनुसार ते पूर्वउक्त संयोगादिक षट्सन्निकर्ष हीं मान्ये चाहिये इति ।

विशेषणता सम्बन्धसे समवायका प्रत्यक्ष—किंवा वैशेषिकोंके मतविषे समवायका प्रत्यक्ष होता नहीं और नैयायिकोंके मतविषे ता समवायका प्रत्यक्ष होवै है। यह वार्त्ता पूर्व चतुर्थ-परिच्छेदविषे समवायके निरूपणविषे विस्तारतें निरूपण करि आये हैं। तहां तिन नैयायिकोंके मतविषे ता समवायका प्रत्यक्ष भी ता उक्त अभावकी न्यांई विशेषणतासन्निकर्ष करिकै हीं होवै है सो समवायका ग्राहक विशेषणतासन्निकर्ष भी संयुक्तविशेषणता संयुक्तसमवेतविशे-षणता इत्यादिक भेद करिकै अनेकप्रकारका होवै है। तहां 'रूपवान् घटः' यह चाक्षुषप्रत्यक्ष घटकूं भी विषय करे है तथा ता घटवृत्ति घटत्वजातिकूं तथा रूपगुणकूं भी विषय करे है तथा ता घटवृत्ति घटत्वजातिके तथा रूपगुणके समवायकूं भी विषय करे है। तथा ता रूपवृत्ति रूपत्वजातिकूं तथा ता रूपत्वजातिके समवायकूं भी विषय करे है। तहां घटवृत्ति जो घटत्वजातिका वा रूपगुणका समवाय है ता समवायके साथि तौं ता चक्षुइंद्रियका संयुक्तविशेषणतासन्निकर्ष होवै है। जिस कारणतें ता चक्षुसंयुक्तघटविषे सो घटत्वका सम-वाय तथा रूपका समवाय विशेषणतासंबंध करिकै रहे है। और ता रूपगुणवृत्ति जो रूपत्व जातिका समवाय है ता समवायके साथि ता चक्षुइंद्रियका संयुक्तसमवेतविशेषणता संबंध होवै है। तहां चक्षुसंयुक्तघटविषे समवेत जो रूप है ता रूपविषे सो रूपत्वजातिका समवाय विशेषणतासंबंध करिकै रहे है। इस प्रकार त्वगादिक इंद्रियोंविषे भी जो जो इंद्रिय जिस जिस द्रव्यगुणादिक पदार्थकूं ग्रहण करे है। सो सो इंद्रिय तिस तिस पदार्थवृत्ति समवायकूं ता विशे-षणतासंबंध करिकै हीं ग्रहण करे है। ता विशेषणता संबंधकी रचना तौं पूर्व उक्त अभावके विशेषणतासंबंधोंकी न्यांई बुद्धिसैं करिलेणी इति।

ज्ञानेन्द्रिय और मनकी यथायोग्य सन्निकर्षोंकी व्यवस्था—तहां पूर्व उक्त संयोगादिक षट्सान्नि-कर्षोंकी चक्षुआदिक षट्इंद्रियोंविषे यह व्यवस्थासिद्ध होवै है। द्रव्यकूं ग्रहण करणेहारे जे चक्षु, त्वक्, मन यह तीन इंद्रिय हैं तिन तीन इंद्रियोंके तौं 'संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्तसम-वेतसमवाय, विशेषणता यह च्यारि च्यारि सन्निकर्ष प्रत्यक्षज्ञानके कारण होवै हैं। और द्रव्यके अग्राहक जे घ्राण, रसन, श्रोत्र यह तीन इंद्रिय है तिन तीन इंद्रियोंके तौं तीन तीन सन्निकर्ष हीं प्रत्यक्षज्ञानके कारण होवैं हैं। ताकेविषे भी घ्राण रसन इन दो इंद्रियोंके तौं 'संयुक्तसमवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय, विशेषणता यह तीन तीन सन्निकर्ष प्रत्यक्ष ज्ञानके कारण होवै हैं। और श्रोत्रइंद्रियके तौं 'समवाय, समवेतसमवाय, विशेषणता' यह तीन सन्निकर्ष प्रत्यक्षज्ञानके कारण होवै हैं। यह उक्त संयोगादिक षट्सन्निकर्ष लौकिकसन्निकर्ष कहे जावै है, तिन लौकिक सन्निकर्षों करिकै जन्य जो चाक्षुषादिकषट्प्रकारका प्रत्यक्षज्ञान है सो प्रत्यक्षज्ञान लौकिकप्रत्यक्ष कह्या जावै है इति।

तममें भी चक्षुःसंयुक्तवस्तुके प्रत्यक्षकी शंका—अंधकारविषे स्थित घटके साथि चक्षुइंद्रियके संयोगहूए भी ता घटका तथा घटवृत्ति घटत्वादिक जातिका तथा रूपादिक गुणोंका तथा कर्मका तथा अभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं। यातैं ता चक्षुइंद्रियके संयोगादिसंबंधकूं ता चाक्षुषप्रत्यक्षकी कारणता संभवती नहीं। आलोकसंयोगको कारणत्व मानकर समाधान—जैसे घटादिकोंके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे ता घटादिवृत्ति उद्भूतरूपकूं तथा महत्त्वपरिमाणकूं कारणता होवै है तैसे घटादिक अर्थके साथि आलोकके संयोगकूं भी कारणता होवै है। ता आलोकसंयोगतैं विना सो चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं। तहां सूर्य, चंद्र, विद्युत, अग्नि, प्रदीप इत्यादिक तेजका जो प्रकाश है ताका नाम आलोक है, और अंधकारविषे स्थित घटादिकोंके साथि ता आलोकका संयोग है नहीं। यातैं तिन घटादिकोंके साथि ता चक्षुइंद्रियके संबंधहूए भी तिन घटादिकोंका चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं। तहां घटादिक द्रव्यके जिस प्रदेशविषे चक्षुका संयोग होवै है तिसी प्रदेशविषे वृत्तिहूआ सो आलोकसंयोग तिन घटादिकोंके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण होवै है। या कारणतैं हीं तिन घटादिकोंके पृष्ठदेशविषे आलोक संयोगके हूए भी तथा अग्रदेशविषे चक्षुसंयोगके हूए भी तिन घटादिकोंका चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं। और यूकबिलाडादिकोंकूं ता आलोक संयोगतैं विना हीं जिस प्रकारतैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है सो प्रकार पूर्वद्वितीयपरिच्छेदविषे तमकी द्रव्यरूपताके खंडनविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति।

अभावके प्रत्यक्षविषे इंद्रियोंकूं कारण माननेमें शंका—अभावके प्रत्यक्षविषे जो चक्षुआदिक इंद्रियकूं करण मानोंगे तौ घटके अभाववाले भूतलविषे भी जबी ‘ घटवत् भूतलं ’ या प्रकारका भ्रांतिज्ञान होइ जावै है तबी भी ता चक्षुइंद्रियके संयुक्तविशेषणतासम्बन्ध करिकै ता घटाभावका प्रत्यक्ष होणा चाहिये। और ‘ घटवत् भूतलं ’ इस प्रकारके घटवत्ताज्ञानकालविषे ता घटाभावका प्रत्यक्ष होता नहीं। अनुपलब्धिको सहकारी कारण मानकर समाधान—अनुपलब्धि करिकै सहकृत हूआ हीं सो चक्षुआदिक इंद्रिय ता अभावके प्रत्यक्षविषे कारण होवै हैं। तहां जिस जिस अधिकरणविषे जिस जिस इंद्रिय करिकै जिस जिस प्रतियोगीके अभावका प्रत्यक्ष होवै है तिस तिस अधिकरणविषे तिस तिस इंद्रिय करिकै तिस तिस प्रतियोगीका जो ज्ञान है ता ज्ञानका नाम उपलब्धि है तथा उपलंभ है। ता उपलब्धिके अभावका नाम अनुपलब्धि है। तथा ता उपलंभके अभावका नाम अनुपलंभ है। अनुपलब्धि अनुपलंभ यह दोनों शब्द एक हीं अर्थके वाचक होवै हैं। ऐसी अनुपलब्धि करिकै सहकृत हूआ सो चक्षुआदिक इंद्रिय ता अभावके प्रत्यक्षका कारण होवै है। और जहां ‘ घटवत् भूतलं ’ या प्रकारका ता घटरूप प्रतियोगीका ज्ञान विद्यमान है। तहां ता घटज्ञानरूप उपलब्धिका अभावरूप अनुपलब्धि हैं नहीं। यातैं ता कालविषे ता अनुपलब्धिरूप सहकारि कारणके अभाव हूए ता चक्षुइंद्रिय करिकै ता घटाभावका प्रत्यक्ष होता नहीं। इसमें भी शंका—अंधकारविषे ता

घटरूप प्रतियोगीकी उपलब्धि है नहीं । यातैं ता अनुपलब्धिसहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै ता घटाभावका प्रत्यक्ष होणा चाहिये। योग्यानुपलब्धिको सहकारी कारण मानकर समाधान--ता अभावके प्रत्यक्षविषे ता चक्षुआदिक इंद्रियका केवल अनुपलब्धिमात्र सहकारी नहीं होवै है । किंतु योग्यअनुपलब्धि सहकारी होवै है। तहां योग्यत्वका लक्षण—अत्र यदि प्रतियोगी स्यात् तदा उपलभ्येत । अर्थ यह—इस भूतलादिक अधिकरणविषे जो कदाचित् घटादिक प्रतियोगी होवै तौं चक्षुआदिक इंद्रिय करिकै प्रतीत होवै । या प्रकारके तर्क करिकै जो सहकृतपणा है यह हीं ता अनुपलब्धिविषे योग्यत्व है। यातैं ता योग्यानुपलब्धिका लक्षण—यह सिद्ध भया—अत्र यदि प्रतियोगी स्यात् तदा उपलभ्येत इत्याकारकतर्कसहकृतप्रतियोग्युपलम्भाभावः योग्यानुपलब्धिः । इस लक्षणका अर्थ—सो पूर्व उक्त हीं जानिलेणा । तहां अंधकारविषे ता घटरूप प्रतियोगीके विद्यमानहूए भी आलोकसंयोगके अभावतैं चक्षुइंद्रिय करिकै ता घटकी प्रतीति होती नहीं । यातैं ता अंधकारविषे जो ईहां घट होवै तौं चक्षु करिकै प्रतीत होवै या प्रकारका तर्क हीं होता नहीं। यातैं ता अंधकारविषे ता घटकी अनुपलब्धिविषे ता उक्त तर्क-सहकृतत्वरूप योग्यताके अभावतैं ता घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होता नहीं । और ता अंधकारविषे भी ता घटाभावका त्वाचप्रत्यक्ष तौं होवै है । जिस कारणतैं ता घटके त्वाचप्रत्यक्ष विषे आलोक संयोगकूं कारणता होती नहीं । यातैं जो ईहां घट होवै तौं त्वक्इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होवै या प्रकारका तर्क ता अंधकारविषे भी होइ सके हैं और जिस स्थलविषे ता घटरूप प्रतियोगीके चाक्षुषप्रत्यक्षकी आलोकसंयोगादिक सर्वसामग्री विद्यमान होवै है तिस स्थलविषे हीं जो ईहां घट होवै तौं चक्षु करिकै प्रतीत होवै, या प्रकारका तर्क होवै है। ता तर्क करिकै सहकृत होणेतैं सा घटकी अनुपलब्धि योग्य होवै है । ता योग्यानुपलब्धिसहकृत चक्षुइंद्रिय करिकै ता घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । इस प्रकार जिस जिस इंद्रिय करिकै जिस जिस अभावका प्रत्यक्ष होवै है तिस तिस अभावके प्रत्यक्षविषे सो सो इंद्रिय ता उक्त योग्यानुपलब्धि करिकै सहकृत हूआ हीं करण होवै है इति ।

ईहां मीमांसक भट्टपादका तथा वेदांतीयोंका—मत यह है। ता अभावके प्रत्यक्षविषे चक्षुआदिक इंद्रिय करण नहीं है । किंतु नैयायिकोंनैं अभावके प्रत्यक्ष वासतै चक्षुआदिक इंद्रियका सहकारीभूत जिस प्रकारकी योग्यानुपलब्धि अंगीकार करी है सा योग्यानुपलब्धि हीं ता अभाव-प्रत्यक्षका करण है । और चक्षुआदिक इंद्रिय ता योग्यानुपलब्धिके सहकारी हैं और जे नैयायिक अभावके प्रत्यक्षविषे इंद्रियकूं करण माने हैं । तिन नैयायिकोंकूं ता अभावके साथि चक्षुआदिक इंद्रियका एकविशेषणता नामा संबंध अधिक मानणा होवै है । सो विशेषण-तानामा संबंध हमारेकूं मानणा होता नहीं । यातैं हमारे मतविषे लाघव है इति ।

इसका खण्डन—सो यह भट्टपादका मत तथा वेदांतीयोंका मत समीचीन नहीं है । काहेतैं ? अभावके प्रत्यक्ष वासतैं एक योग्यानुपलब्धिनामा षष्ठ प्रमाणकूं अंगीकार करणा । तथा ता अभावके भूतलादिक अधिकरणके ज्ञानवासतैं चक्षुआदिक इंद्रियकूं ता योग्यानुपलब्धिका सहकारी मानणा । इसकी अपेक्षा करिकै एक विशेषणतानामा सम्बंधकी कल्पना करिकै ता चक्षुआदिक इंद्रियकूं हीं ता अभावके प्रत्यक्षका करण माणनेविषे अतिलाघव है । यातैं गौरवदोष करिकै ग्रस्त होणेतैं सो भट्टपादका मत असंगत है इति । इतनैं पर्यंत संयोगादिक लौकिक षट्सन्निकर्षोंका निरूपण कऱ्या ॥

अलौकिक सन्निकर्ष ।

अलौकिक सन्निकर्षका निरूपणकरे है । इसके भेद—तहां सो अलौकिक प्रत्यक्षका कारणीभूत अलौकिक सन्निकर्ष सामान्यलक्षणसन्निकर्ष १, ज्ञानलक्षणसन्निकर्ष २, योगजधर्मलक्षणसन्निकर्ष ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । सामान्य लक्षण—ताके विषे प्रथम सामान्यलक्षण सन्निकर्षका निरूपण करे हैं । इसका अर्थ—तहां ‘ सामान्यलक्षणसन्निकर्ष ’ इस वचनविषे स्थित जो ‘ लक्षण ’ यह पद है सो लक्षणपद स्वरूपका वाचक है । अथवा सो लक्षणपद विषयका वाचक है । तहां प्रथमपक्षविषे तौं सामान्य है लक्षण स्वरूप जिस सन्निकर्षका ताका नाम सामान्यलक्षणसन्निकर्ष है । और द्वितीयपक्षविषे सामान्य है लक्षण क्या विषय जिस सन्निकर्षका ताका नाम सामान्यलक्षणसन्निकर्ष है । तहां प्रथमव्युत्पत्ति करिकै तौं धूमत्वादिक सामान्यकूं हीं सामान्यलक्षण सन्निकर्षरूपता सिद्ध होवै है और दूसरीव्युत्पत्ति करिकै ता धूमत्वादिक सामान्यके ज्ञानकूं हीं सामान्यलक्षणसन्निकर्षरूपता सिद्ध होवै है । लक्षण—तहां प्रथमव्युत्पत्तिके अनुसार ता सामान्यलक्षण सन्निकर्षका लक्षण कहे हैं । **इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यकज्ञानप्रकारीभूतं सामान्यं सामान्यलक्षणसन्निकर्षः ।** अर्थ यह—चक्षुआदिक इंद्रियके संयोगादिक लौकिकसम्बन्धवाला जो पदार्थ है सो पदार्थ है विशेष्य जिस विषे ऐसा जो चाक्षुषादिक ज्ञान है ता ज्ञानविषे प्रकारीभूत जो सामान्य है ता सामान्यकूं सामान्यलक्षणसन्निकर्ष कहे हैं । लक्षण समन्वय—जैसे महानसादिकोंविषे धूमके साथि चक्षुइंद्रियके संयोगसबंध हूएतैं अनंतर ‘ अयं धूमः ’ या प्रकारका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । ता प्रत्यक्षज्ञानविषे सो चक्षुइंद्रियके संयोगसंबंधवाला धूम तौं विशेष्य होवै है और ता धूमवृत्ति धूमत्वजाति प्रकार होवै है । यातैं ता चक्षुइंद्रियसंबद्ध धूमविशेष्यक प्रत्यक्षज्ञानविषे प्रकाररूप होणेतैं सा धूमत्वजाति सामान्यलक्षण सन्निकर्ष कह्या जावै है । सो धूमत्वजातिरूप सामान्य सर्व धूमोंविषे समवायसम्बन्ध करिकै रहे है अर्थात् पूर्वनष्टहूए तथा आगे उत्पन्न होणेहारे जितनैंकी धूम हैं तथा अबी वर्त्तमानकालविषे स्थित जितनैंकी देशांतरोंके धूम हैं तिन

सर्वधूमोंविषे सो धूमत्वसामान्य समवायसंबन्ध करिकै रहे है। सो धूमत्वजातिरूप सामान्य हीं चक्षुइंद्रियका तिन सर्वधूमोंके साथि सम्बन्ध है। यातैं 'अयं धूमः' या प्रकारके चाक्षुषप्रत्यक्षतैं अनंतर इस पुरुषकूं ता धूमत्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष करिकै 'सर्वे धूमाः' या प्रकारका तिन सर्वधूमोंविषयक अलौकिकचाक्षुषप्रत्यक्ष उत्पन्न होवै है। जो कदाचित् ता धूमत्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्षकूं नहीं अंगीकार करीये तौं तिन सर्वधूमोंका चक्षुइंद्रिय करिकै सो प्रत्यक्ष नहीं होवैंगा। काहेतैं? तिन सर्वधूमोंके साथि ता चक्षुइंद्रियका कोई संयोगादिरूप लौकिकसन्निकर्ष तौं संभवता नहीं और इंद्रियके संबधतैं विना वस्तुका प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं। यातैं तिन सर्वधूमोंके प्रत्यक्ष वास्तै ता चक्षुइंद्रियका तिन सर्वधूमोंके साथि सो धूमत्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये। इस प्रकार एकवह्नि विषे 'अयं वह्निः' या प्रकारके चाक्षुषप्रत्यक्षतैं अनंतर ता वह्नित्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष करिकै इस पुरुषकूं सर्ववह्नियोंका अलौकिक चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है। तथा 'अयं घटः' या प्रकारके चाक्षुषप्रत्यक्षतैं अनंतर इस पुरुषकूं ता घटत्वरूप सामान्य लक्षण सन्निकर्ष करिकै 'सर्वे घटाः' या प्रकारका सर्वघटविषयक अलौकिक चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है इस प्रकारकी रीति त्वगादिक सर्वइंद्रियोंविषे जानिलेणी। अर्थात् जिस जिस इंद्रिय करिकै जिस जिस द्रव्यगुणकर्मादिक पदार्थका जो जो लौकिकप्रत्यक्ष होवै है तिस तिस प्रत्यक्षविषे जो जो सामान्य प्रकारभूत होवै है तिस तिस सामान्यलक्षण सन्निकर्षकरिकै तिस तिस सामान्यके आश्रयभूत तिस तिस द्रव्यगुणकर्मादिरूप सर्व पदार्थोंका तिस तिस इंद्रिय करिकै सो सो अलौकिक प्रत्यक्ष होवै है। जैसे इस पुरुषकूं घ्राणइंद्रिय करिकै एक गंधके प्रत्यक्षहूएतैं अनंतर ता गंधत्वरूप सामान्य लक्षणसन्निकर्ष करिकै सर्वगंधोंका अलौकिक घ्राणजप्रत्यक्ष होवै है। इस प्रकार इस पुरुषकूं रसनइंद्रिय करिकै एक रसके प्रत्यक्षज्ञान हूएतैं अनंतर ता रसत्वरूप सामान्यलक्षणसन्निकर्ष करिकै सर्वरसोंका अलौकिक रासनप्रत्यक्ष होवै है। इस प्रकार इस पुरुषकूं श्रोत्रइंद्रिय करिकै एक शब्दके प्रत्यक्षहूएतैं अनंतर ता शब्दत्वरूप सामान्यलक्षणसन्निकर्ष करिकै सर्वशब्दोंका अलौकिक श्रावणप्रत्यक्ष होवै है। इसप्रकार मनरूप इंद्रिय करिकै आत्माके तथा आत्मवृत्तिज्ञानादिक गुणके प्रत्यक्षहूएतैं अनन्तर ता आत्मत्वरूप सामान्यलक्षणसन्निकर्ष करिकै सर्व आत्मावोंका अलौकिक मानसप्रत्यक्ष होवै है। तथा ता ज्ञानत्वादिरूप सामान्यलक्षणसन्निकर्ष करिकै सर्वज्ञानादिकोंका अलौकिक मानस प्रत्यक्ष होवै हैं इति। सामान्यज्ञानको सामान्यलक्षण माननेहारे—ईहां केईक ग्रंथकार तौं यह कहे हैं। धूमादिकोंविषे रहणेहारे धूमत्वादिक सामान्यकूं सामान्यलक्षणसन्निकर्षरूपता नहीं है। किंतु तिन धूमत्वादिकोंके ज्ञानकूं हीं सामान्यलक्षणसन्निकर्षरूपता संभवै है। काहेतैं? जो कदाचित् ता धूमत्वरूप सामान्यकूं हीं सामान्यलक्षणसन्निकर्ष मानिये तौं 'अयं धूमः' या

प्रकारके ज्ञानकी उत्पत्तितैं द्वितीयदिनविषे ता धूमके साथि चक्षुइंद्रियके संयोगके अभावहूए भी सो धूमत्वरूप सामान्य ता धूमविषे विद्यमान नहीं है। यातैं ता धूमत्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष करिकै इस पुरुषकूं ता द्वितीयदिनविषे भी सो सर्वधूमविषयक अलौकिक प्रत्यक्ष होणा चाहिये, सो ऐसा होता नहीं। यातैं ता धूमत्वादिरूप सामान्यके ज्ञानकूं हीं सामान्यलक्षण सन्निकर्ष मान्या चाहिये अर्थात् धूमादिकोंके साथि चक्षु आदिक इंद्रियके संयोगादिक संबंध करिकै उत्पन्न भया जो 'अयं धूमः' या प्रकारका धूमत्वादिसामान्यप्रकारक ज्ञान है सो धूमत्वादिक सामान्यका ज्ञान हीं ता चक्षुआदिक इंद्रियका तिन सर्वधूमादिकोंका साथि सामान्यलक्षण सन्निकर्ष है। यातैं इस पक्षविषे सो पूर्वउक्त दोष प्राप्त होवै नहीं इति। इस द्वितीय-पक्षके अभिप्राय करिकै हीं पूर्वसामान्यलक्षण शब्दकी दूसरी व्युत्पत्तिविषे लक्षण शब्द करिकै विषयका ग्रहण कर्या था॥

शंका—सर्व धूमादिकोंके ज्ञानवासतै तुमोंनैं सो सामान्यलक्षण सन्निकर्ष अंगीकार कर्या है। तहां तिन सर्वधूमादिकोंके नहीं ज्ञानहूए भी क्या हानि है? समाधान—महानसविषे धूमके तथा वह्निके प्रत्यक्ष हूएतैं अनन्तर 'धूमो वह्निव्याप्यो न वा' अर्थ यह—धूम वह्निका व्याप्य है अथवा नहीं, या प्रकारका धूमविषे वह्निके व्याप्तिका संशय होवै है। तहां चक्षुइंद्रियके संयोगसम्बन्धवाले ता प्रसिद्धधूमविषे तौं ता वह्निके व्याप्तिका निश्चय हीं बैठा है। और तिस वस्तुका निश्चयज्ञान तिस वस्तुके संशयका प्रतिबन्धक होवै है। यातैं ता प्रसिद्धधूमविषे तौं सो व्याप्तिका संशय संभवता नहीं, किंतु ता प्रसिद्ध धूमतैं भिन्न देशांतरीयधूमविषे कालांतरीयधूमविषे हीं सो व्याप्तिका संशय कहणा होवैगा। और संशयविषे धर्मीज्ञान कारण होवै है ता धर्मीज्ञानतैं विना कोई भी संशय होता नहीं। यातैं ता व्याप्तिके संशयकी सिद्धि वासतैं ता देशांतरीयधूमरूप धर्मीका ज्ञान अवश्य मानणा होवैगा। तहां ता देशांतरीयधूमके साथि ता चक्षुइंद्रियका कोई संयोगादिरूप लौकिकसन्निकर्ष तौं संभवता नहीं जिस करिकै ता धूमका लौकिक प्रत्यक्ष होवै है। परिशेषतैं ता देशांतरीय वा कालांतरीय धूमके साथि सो धूमत्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष हीं अंगीकार करणा होवैगा। ता धूमत्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष करिकै तिन सर्व धूमोंके प्रत्यक्षज्ञानहूएतैं अनंतर ता देशांतरीय धूमविषे वा कालांतरीय धूमविषे 'धूमो वह्निव्याप्यो न वा' या प्रकारका संशय संभव होइ सकै है, यातैं ता व्याप्यत्वसंशयकी सिद्धि वासतैं ता सामान्यलक्षण सन्निकर्षकूं अंगीकार करिकै तिन सर्वधूमोंका प्रत्यक्षज्ञान अवश्य मान्या चाहिये इति।

शंका—जहां एकघटादिक पदार्थका 'अयं प्रमेयः' या प्रकारका प्रमेयत्वप्रकारक प्रत्यक्ष हूआ है। तहां ता प्रमेयत्वरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष करिकै इस पुरुषकूं सर्व प्रमेयपदार्थोंका प्रत्यक्ष होवैगा। यातैं 'अयं प्रमेयः' या प्रकारके ज्ञानमात्र करिकै हीं इस पुरुषकूं सर्वज्ञता

प्राप्त होणी चाहिये । जिस कारणतैं सर्वपदार्थविषयक ज्ञानवालेकूं हीं सर्वज्ञ कहे हैं । समाधान—प्रमेयत्वादिक साधारणरूप करिकै जो सर्वपदार्थोंका ज्ञान है ता ज्ञान करिकै इस पुरुषविषे सर्वज्ञता प्राप्त होती नहीं । किंतु तिस तिस पदार्थवृत्ति घटत्व पटत्वादिक असाधारणधर्म करिकै जो तिन सर्वपदार्थोंका ज्ञान है । ता ज्ञान करिकै हीं इस पुरुषकूं सर्वज्ञताकी प्राप्ति होवै है सो इस प्रकारका ज्ञान इस जीवात्माकूं है नहीं । यातैं इस पुरुषविषे ता प्रमेयत्वज्ञान करिकै सर्वज्ञता प्राप्त होवै नहीं इति । किंवा सो उक्त सामान्यलक्षण सन्निकर्ष कहां तौं नित्य होवै है । और कहां अनित्य होवै है । तहां पूर्वउक्त धूमत्वादिक सामान्य तौं जातिरूप होणेतैं नित्य होवै है । और जहां एक हीं घटका संयोग संबंध करिकै तौं भूतलविषे प्रत्यक्ष हूआ है और समवायसम्बन्ध करिकै कपालविषे प्रत्यक्ष हूआ है । तहां तिस प्रत्यक्षतैं अनंतर संयोगसंबंध करिकै ता घटके अधिकरणभूत सर्वभूतलादिकोंका तथा समवायसंबंध करिकै ता घटके अधिकरणभूत सर्वकपालोंका ता घटरूप सामान्यलक्षणसन्निकर्ष करिकै अलौकिक प्रत्यक्ष होवै है । तहां सो घटादिरूप सामान्यलक्षण सन्निकर्ष अनित्य हीं जानणा इति ।

ज्ञानलक्षण—अब दूसरे ज्ञानलक्षणसन्निकर्षका निरूपण करे हैं । तहां लक्षण—स्वविषयविषयकप्रत्यक्षजनको ज्ञानविशेषः ज्ञानलक्षणसन्निकर्षः । अर्थ यह—जिस ज्ञानका जो वस्तु विषय होवै है । तिस वस्तुमात्रकूं विषय करणेहारे प्रत्यक्षज्ञानका जो ज्ञानजनक होवै है । ता ज्ञानकूं ज्ञानलक्षणसन्निकर्ष कहे हैं । समन्वय—जैसे जिस पुरुषनैं पूर्व बहुतवार चंदनके सौरभगंधकूं घ्राणइंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष कऱ्या है । तिस पुरुषकूं दूरसें चंदनखंडकूं देखिकै ' सुरभि चन्दनखण्डम् ' अर्थ यह—यह चंदनखंड सुरभिगंधवाला है या प्रकारका चाक्षुषप्रत्यक्षज्ञान होवै है । तहां ता चन्दनखण्डके साथि तौं ता चक्षुइंद्रियका संयोगसंबंध है यातैं ता चंदन खण्ड अंशविषे तौं सो प्रत्यक्ष लौकिक हीं होवै है और ता दूरदेशवृत्ति चंदनके साथि घ्राणइंद्रियका संयोगसंबंध है नहीं । काहेतैं ? जैसे चक्षुइंद्रिय आपणे गोलकतैं निकसिकै दूरदेशवृत्ति पदार्थके साथि संबंधकूं प्राप्त होवै है । तैसे घ्राणादिक इंद्रिय आपणे गोलकतैं निकसिकै दूरदेशवृत्ति पदार्थके साथि संबंधकूं प्राप्त होते नहीं । किंतु ते घ्राणादिक इंद्रिय आपणे गोलकके साथि संबंधवाले पदार्थके हीं गंधादिकोंकूं ग्रहण करे हैं । यातैं ता घ्राणइंद्रियके संयुक्त समवायसंबंध करिकै ता चन्दनके सौरभगंधका प्रत्यक्ष संभवता नहीं । यद्यपि ता चक्षुइंद्रियका ता सौरभगन्धके साथि संयुक्तसमवायसम्बन्ध है तथापि ता चक्षुइंद्रियके सन्निकर्षविषे ता गन्धगुणके प्रत्यक्षज्ञानके उत्पन्न करणेंकी योग्यता हीं नहीं है । यातैं ' सुरभि चंदनखंडम् ' या उक्त चाक्षुषप्रत्यक्षकूं ता सौरभगंध अंशविषे लौकिकप्रत्यक्षरूपता संभवती नहीं, किंतु अलौकिकप्रत्यक्षरूपता हीं कहणी होवैगी । तहां ता चन्दनखंडकूं देखिकै पूर्व अनुभव कऱ्येहूए

ता सौरभगंधके संस्कार उद्बुद्ध होवै हैं । ता उद्बुद्ध संस्कारतैं ता सौरभगंधका स्मरण होवै है । सो सौरभगंधविषयक स्मृतिज्ञान हीं ता चक्षुइंद्रियका ता चन्दनके सौरभगंधके साथि ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष है, ता ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष करिकै हीं इस पुरुषकूं ता सौरभगंधका अलौकिक चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । इसप्रकार रज्जुविषे ' अयं सर्पः ' या प्रकारका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, ता भ्रांतिरूप चक्षुषप्रत्यक्षविषे दूरदेशवृत्ति सर्प हीं दोषके वशतैं ता रज्जुदेशविषे प्रतीत होवै हैं तहां ता दूरदेशवृत्ति सर्पके साथि ता चक्षुइंद्रियका संयोगसंबंध तौं संभवता नहीं किंतु ता सर्पके सादृश्यदर्शनतैं ता पूर्वदृष्टसर्पके संस्कारके उद्बुद्धहूए इस पुरुषविषें उत्पन्नभई जा सर्पकी स्मृति है, सो स्मृतिज्ञान हीं इस पुरुषके चक्षुइंद्रियका ता दूरदेशवृत्ति सर्पके साथि ज्ञानलक्षणसन्निकर्ष है ता ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष करिकै हीं ता सर्पका दोषके वशतैं ता रज्जुदेशविषे चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है । जो कदाचित् सो ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष नहीं अंगीकार करीये तौं रज्जुविषे ' अयं सर्पः ' तथा शुक्तिविषे ' इदं रजतम् ' तथा मरुभूमिविषे ' इदं जलम् ' या प्रकारके सर्परजतादिविषयक प्रत्यक्षज्ञान हीं नहीं होवैंगे । यातैं ता भ्रमरूप प्रत्यक्षज्ञानकी सिद्धि वासतैं भी सो ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष अवश्य अंगीकार कऱ्या चाहिये इति ॥

**शङ्का**—पूर्व सामान्यलक्षण सन्निकर्षकूं भी ज्ञानरूप कह्या था और अबी इस ज्ञानलक्षण सन्निकर्षकूं भी ज्ञानरूप कह्या । यातैं तिन दोनों सन्निकर्षोंकूं ज्ञानरूपता होणेतैं तिन दोनों सन्निकर्षोंका भेद सिद्ध नहीं होवैंगा । **समाधान**—पूर्वउक्त सामान्यलक्षण सन्निकर्ष तौं धूमत्वादिक सामान्यके धूमादिक आश्रयके प्रत्यक्षज्ञानका हीं जनक होवै है और यह ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष तौं जिस सौरभादिक वस्तुकूं विषय करे है तिस सौरभादिक वस्तुके हीं प्रत्यक्षज्ञानका जनक होवै है । तिन सौरभादिकोंके आश्रयके प्रत्यक्षज्ञानका जनक होता नहीं । इतनी तिन दोनों सन्निकर्षोंविषे विलक्षणता है । यातैं तिन दोनोंसन्निकर्षोंका भेद सम्भवै है इति ॥

योगजधर्म लक्षण—अब तीसरे योगज धर्मलक्षण सन्निकर्षका निरूपण करे हैं । तहां लक्षण—

**योगाभ्यासजनितो धर्मविशेषः योगजधर्मलक्षणसन्निकर्षः ।** अर्थ यह—योगाभ्यास करिकै जन्य जो धर्मविशेष है ता धर्मकूं योगजधर्मलक्षण सन्निकर्ष कहे हैं । तहां योगी पुरुषोंकूं सर्वपदार्थोंका प्रत्यक्षज्ञान होवै है । अर्थात् पूर्वनष्टहूए पदार्थोंका तथा आगे उत्पन्न होणेहारे पदार्थोंका तथा अबी वर्त्तमान पदार्थोंका तथा अतिदूरदेशवृत्ति पदार्थोंका तथा परमाणुआकाशादिक अतिइंद्रिय पदार्थोंका ता योगीपुरुषकूं प्रत्यक्षज्ञान होवै है । यह वार्त्ता श्रुतिस्मृतिपुराणादिकोंविषे प्रसिद्ध है । ता योगी पुरुषके चक्षुआदिक इंद्रियका तिन सर्वपदार्थोंके साथि कोई संयोगादिरूप लौकिकसन्निकर्ष तौं सम्भवता नहीं और इंद्रियअर्थके सम्बन्धतैं विना प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । यातैं ता योगी पुरुषके चक्षुआदिक इंद्रियका तिन सर्व-

पदार्थोंके साथि सो योगजधर्मलक्षण सन्निकर्ष हीं अंगीकार कर्‍या चाहिये । ता योगजधर्म लक्षण सन्निकर्ष करिकै हीं ता योगीपुरुषकूं तिन सर्वपदार्थोंका तिस तिस असाधारणरूप करिकै प्रत्यक्ष होवै है । योगिभेदसे योगजधर्म लक्षणके भेद—तहां सो योगीपुरुष युक्तयोगी १, वियुक्तयोगी २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां **कादाचित्कसमाधिमान् योगी युक्तयोगी । सर्वदा समाधिमान् योगी वियुक्तयोगी ।** अर्थ यह—जो योगीपुरुष अभ्यासकी न्यूनता करिकै कदाचित् तौं समाधिविषे स्थित होवै है और कदाचित् ता समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त होवै है सो योगी युक्तयोगी कह्या जावै है । और जो योगीपुरुष अत्यंतअभ्यासतैं मनकूं वश करिकै सर्वकालविषे समाधिविषे हीं स्थित होवै है सो योगी पुरुष वियुक्तयोगी कह्या जावै है । तहां शब्दादिक विषयोंतैं श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं हटाइकै तथा तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंतैं मनकूं हटाइकै साक्षात् कर्‍ये हूए तत्त्ववस्तुविषे अतिआदरसैं मनके धारणपूर्वक जो चिंतन है ताका नाम समाधि है और ता उक्त समाधिका जो अभाव है ताका नाम व्युत्थान है । इस प्रकार योगीपुरुषोंकूं दो प्रकारका होणेतैं सो उक्तयोग धर्म भी दो प्रकारका हीं होवै है । तहां युक्तयोगीपुरुषोंकूं तौं ता समाधिकालविषे हीं ता योगजधर्मलक्षण सन्निकर्ष करिकै तिन परमाणुआकाशादिक अतिइन्द्रिय पदार्थोंका प्रत्यक्ष होवै है । ता व्युत्थानकालविषे सो प्रत्यक्ष होता नहीं । ता समाधिदशाविषे भी ता योगजधर्मरूप सन्निकर्षतैं मनरूप इंद्रिय करिकै हीं तिन आतिइंद्रिय पदार्थोंका प्रत्यक्ष होवै है । चक्षुआदिक इंद्रिय करिकै सो प्रत्यक्ष होता नहीं । अर्थात् युक्त योगीपुरुषका सो योगजधर्म मनरूप इंद्रियका हीं सन्निकर्ष होवै है । चक्षुआदिक इंद्रियोंका सन्निकर्ष होता नहीं और वियुक्तयोगीपुरुषोंकूं तौं ता योगजधर्मलक्षण सन्निकर्ष करिकै सर्वकालविषे तिन परमाणुआकाशादिक अतिइंद्रिय पदार्थोंका प्रत्यक्ष होवै है तथा चक्षुआदिक सर्व इंद्रिय करिकै सो प्रत्यक्ष होवै है । अर्थात् सो वियुक्त योगीका योगजधर्म केवल मनरूप इंद्रियका हीं सन्निकर्ष नहीं होवै है किंतु चक्षु आदिक इंद्रियोंका भी सन्निकर्ष होवै है इति । ईहां कोईकग्रंथविषे पूर्व उक्त युक्तयोगीकूं तौं युंजानयोगी इस नाम करिकै कथन कर्‍या है और ता उक्त वियुक्तयोगीकूं युक्तयोगी इस नाम करिकै कथन कर्‍या है । योगीके विषे अनुमान प्रमाण—तहां ऐसे योगीपुरुषोंके सद्भावविषे कौन प्रमाण है ऐसी शंकाके प्राप्तहूए, अब अनुमानप्रमाण करिकै ता योगीपुरुषकी सिद्धि करे हैं । **परमाण्वादिः जन्यप्रत्यक्षविषयः प्रमेयत्वात् घटवत् ।** अर्थ यह—परमाणुआकाशादिक किसी जन्यप्रत्यक्षके विषय होणे योग्य है प्रमेयरूप होणेतैं । जो जो पदार्थ प्रमेय होवै है सो सो पदार्थ जन्यप्रत्यक्षका विषय हीं होवै है । जैसे घट प्रमेय होणेतैं अस्मदादिकोंके जन्यप्रत्यक्षका विषय हीं है तैसे ते परमाणुआकाशादिक भी प्रमेय होणेतैं किसी जन्यप्रत्यक्षके अवश्य विषय होवैंगे तहां तिन परमाणु आकाशादिक अतिइंद्रिय पदार्थोंविषे अस्मादिकोंके

जन्यप्रत्यक्षकी विषयता तौं संभवती नहीं परिशेषतैं ता योगीपुरुषके हीं जन्यप्रत्यक्षकी विषयता मानणी होवैंगी। यातैं ता परमाणुआकाशादिविषयक जन्य प्रत्यक्षका आश्रयरूप करिकै ता योगीपुरुषकी हीं सिद्धि होवै है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। सामान्यलक्षण सन्निकर्ष, ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष, योगजधर्मलक्षणसन्निकर्ष इन उक्त तीन सन्निकर्षोंका नाम अलौकिक सन्निकर्ष है ता अलौकिकसन्निकर्ष करिकै जन्य जो पूर्वउक्त प्रत्यक्ष है सो प्रत्यक्ष अलौकिकप्रत्यक्ष कह्या जावै है। सो अलौकिकप्रत्यक्ष अविद्यमानवस्तुकूं भी विषय करे है। यातैं ता अलौकिक प्रत्यक्षविषे विषयकूं कारणता होती नहीं। किंतु पूर्वउक्त लौकिकप्रत्यक्षविषे हीं विषयकूं कारणता होवै है। तहां इस पूर्वउक्त लौकिक अलौकिक प्रत्यक्षज्ञानका चक्षुआदिक इंद्रिय हीं करण होवै है और ते उक्तसंयोगादिक सन्निकर्ष व्यापार होवै हैं और चाक्षुषादिक प्रत्यक्षज्ञान फल होवै है इति। ईहां कोईक ग्रन्थकारका—तौं यह मत है । घटके साथि चक्षुइंद्रियके संयोगहूएतैं अनंतर प्रथम ता घटका 'घटघटत्वे' या प्रकारका निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होवै है। तिसतैं अनंतर 'अयं घटः' या प्रकारका सविकल्पक प्रत्यक्ष होवै है। तिसतैं अनंतर यह घट हमारे दुःखका साधन है वा सुखका साधन है या प्रकारका हानउपादानका प्रत्यक्ष होवै है। तहां प्रथम ता निर्विकल्पक प्रत्यक्षविषे तौं चक्षुइंद्रिय करण होवै है और ता चक्षुका घटके साथि संयोगसम्बन्ध व्यापार होवै है और ता सविकल्पकप्रत्यक्षविषे तौं सो संयोगसम्बन्ध करण होवै है और सो निर्विकल्पक प्रत्यक्ष व्यापार होवै है। और ता हानउपादानप्रत्यक्षविषे तौं सो निर्विकल्पक प्रत्यक्ष करण होवै है और सो सविकल्पकप्रत्यक्ष व्यापार होवै है। इस प्रकार ता प्रत्यक्षज्ञानकी करणता कहां तौं इंद्रियविषे होवै है और कहां इंद्रिय अर्थके सन्निकर्षविषे होवै है और कहां निर्विकल्पकप्रत्यक्षविषे होवै है इति।

उनका खण्डन—सो यह मत समीचीन नहीं है। काहेतैं ? ता निर्विकल्पक प्रत्यक्षविषे तथा सविकल्पकप्रत्यक्षविषे तथा हानउपादानप्रत्यक्षविषे ता चक्षुआदिक इंद्रियकूं हीं करणता सम्भवै है। यातैं ता सन्निकर्षविषे तथा निर्विकल्पकप्रत्यक्षविषे प्रत्यक्षज्ञानकी करणता कहणी अतिविरुद्ध है, परंतु ता निर्विकल्पकप्रत्यक्षविषे तौं ता चक्षुआदिक इंद्रियकूं ता संयोगादिरूप सन्निकर्षद्वारा करणता है और ता सविकल्पक प्रत्यक्षविषे ता चक्षुआदिक इंद्रियकूं सन्निकर्ष निर्विकल्पक प्रत्यक्ष इन उभयद्वारा करणता है और ता हानउपादानप्रत्यक्षविषे ता चक्षुआदिक इंद्रियकूं सन्निकर्ष निर्विकल्पक प्रत्यक्ष सविकल्पक प्रत्यक्ष इन तीनों द्वारा करणता है। यातैं चाक्षुषादिक प्रत्यक्षप्रमाका करण होणेतैं सो चक्षुआदिक इंद्रिय हीं प्रत्यक्षप्रमाण है यह सिद्ध भया। इति प्रत्यक्षनिरूपणं समाप्तम् ॥

अथ अनुमाननिरूपणम्।

तहां पूर्व प्रत्यक्ष १, अनुमिति २, उपमिति ३, शाब्द ४ यह च्यारिप्रकारका यथार्थ अनुभव कह्या था ताके विषे प्रथम प्रत्यक्ष अनुभवका पूर्व निरूपण कर्‍या।

अनुमानका लक्षण—अब दूसरे अनुमितिरूप यथार्थअनुभवके निरूपण करणेवासतै प्रथम ता अनुमितिके करणरूप अनुमानप्रमाणका लक्षण कहे हैं । **अनुमितिकरणं अनुमानम् ।** अर्थ यह—अनुमितिप्रमाका जो करण होवै है सो अनुमानप्रमाण कह्या जावै है ।

लक्षण समन्वय—जैसे 'पर्वतो वह्निमान्' अर्थ यह—यह पर्वत अग्निवाला है । या प्रकारके अनुमिति ज्ञान है, इसका 'धूमो वह्निव्याप्यः' अर्थ यह—धूम वह्निके व्याप्तिवाला है । या प्रकारका व्याप्तिज्ञान 'करण' होवै है । यातैं सो व्याप्तिज्ञान अनुमानप्रमाण कह्या जावै है । तहां व्यापारवाला असाधारणकारण हीं करण होवै है । यह पूर्व करणका लक्षण कथन करि आये हैं । यातैं ता व्याप्तिज्ञानरूप करणका लिंगपरामर्श व्यापार होवै है । तहां 'वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः' अर्थ यह—वह्निके व्याप्तिवाला जो धूम है ता धूमवाला यह पर्वत है । या प्रकारके ज्ञानका नाम लिंगपरामर्श है । सो परामर्श ता व्याप्तिज्ञान करिकै जन्य होवै है । तथा ता व्याप्तिज्ञानजन्य अनुमितिका जनक होवै है । यातैं ता परामर्शविषे ता व्याप्तिज्ञानरूप करणकी व्यापाररूपता संभवै है इति । अनुमितिका लक्षण—अब जिस अनुमितिज्ञानका करणरूप हूआ व्याप्तिज्ञान अनुमानप्रमाण होवै है ता अनुमितिका लक्षण कहे हैं—**परामर्शजन्यं ज्ञानं अनुमितिः ।** अर्थ यह—ता उक्त परामर्श करिकै जन्य जो ज्ञान है सो ज्ञान अनुमिति कह्या जावै है । लक्षण समन्वय—जैसे 'पर्वतो वह्निमान्' यह ज्ञान ता उक्त परामर्श करिकै जन्य होवै है । यातैं अनुमिति कह्या जावै है । पदकृत्य—तहां 'ज्ञानं अनुमितिः' इतनामात्र हीं जो ता अनुमितिका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'परामर्शजन्यम्' यह पद नहीं कथन करते तौं प्रत्यक्षादिक ज्ञानोंविषे ता अनुमितिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'परामर्शजन्यम्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ते प्रत्यक्षादिक ज्ञान ता परामर्श करिकै जन्य होते नहीं । यातैं तिन प्रत्यक्षादिक ज्ञानोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा 'परामर्शजन्यं अनुमितिः' इतनामात्र हीं जो ता अनुमितिका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद नहीं कथन करते तौं परामर्शके ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो परामर्शका ध्वंस भी ता परामर्शरूप प्रतियोगी करिकै जन्य हीं होवै है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्तकरणे वासतै ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता परामर्शके ध्वंसविषे ज्ञानरूपता है नहीं । यातैं ता ध्वंसविषे ता अनुमितिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । परामर्शका लक्षण—अब जिस परामर्श करिकै सो अनुमितिज्ञान जन्य होवै है ता परामर्शका लक्षण कहे हैं । **व्याप्तिविषयकपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः ।** अर्थ यह—हेतुविषे साध्यके व्याप्तिकूं तथा पक्षवृत्तित्वरूप पक्षधर्मताकूं विषय करणेहारा जो ज्ञान है सो ज्ञान परामर्श कह्या जावै है । समन्वय—जैसे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः' यह उक्त ज्ञान ता धूमरूप हेतुविषे वह्निरूप साध्यके व्याप्तिकूं भी

विषय करे है तथा पर्वतरूप पक्षविषे ता हेतुका वृत्तित्वरूप पक्षधर्मताकूं भी विषय करे है। यातैं सो उक्त ज्ञान परामर्श कह्या जावै है। तहां सो उक्त परामर्श 'वह्निव्याप्य' इतनैं अंश करिकै तौं ता धूमरूप हेतुविषे वह्निरूप साध्यके व्याप्तिकूं विषय करे है। और 'धूमवान् पर्वतः' इतनैं अंश करिकै ता धूमरूप हेतुविषे ता पक्षवृत्तित्वरूप पक्षधर्मताकूं विषय करे है इति। लिङ्ग ( हेतु ) का लक्षण—अब जिस धूमादिक लिंगकूं विषय करताहूआ सो परामर्श अनुमितिका कारण होवै है। ता लिंगका लक्षण कहे हैं **व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताविशिष्ट-हेतुः लिङ्गम्**। अर्थ यह—साध्यकी व्याप्ति करिकै विशिष्ट तथा पक्षवृत्तित्वरूपपक्षधर्मता करिकै विशिष्ट जो हेतु है। सो हेतु लिंग कह्या जावै है। समन्वय—जैसे धूमरूपहेतु वह्निरूप साध्यकी व्याप्ति करिकै भी विशिष्ट है तथा पर्वतरूप पक्षविषे वृत्तित्वरूप पक्षधर्मता करिकै भी विशिष्ट है। यातैं सो धूमरूपहेतु लिंग कह्या जावै है ऐसे लिंगकूं विषय करणेहारा ज्ञान लिंगपरामर्श कह्या जावै है। इसी हेतुरूप लिंगकूं साधन भी कहे हैं। यातैं हेतु, लिंग, साधन यह तीनों शब्द एक हीं अर्थके वाचक होवै हैं। साध्य—ता हेतु करिकै जिस अर्थकी सिद्धि करियै सो अर्थ साध्य कह्या जावै है। जैसे धूमरूप हेतु करिकै पर्वतादिकोंविषे वह्निकी सिद्धि करी जावै है। यातैं सो वह्नि साध्य कह्या जावै है इति।

अनुमिति ज्ञानका क्रम—यातैं ता उक्त अनुमानका यह क्रम सिद्ध होवै है। जिस पुरुषनैं महानसादिकोंविषे धूमविषे वह्निकी व्याप्ति ग्रहण करी है अर्थात् धूम वह्निके व्याप्तिवाला है या प्रकारका व्याप्तिका प्रत्यक्षज्ञान जिस पुरुषकूं महानसादिकोंविषे हूआ है सो पुरुष कोई कालविषे जबी पर्वतादिकोंविषे तिसी प्रकारके धूमकूं देखे है। अर्थात् जिस धूम रेखाका पृथिवीसैं मूल उच्छिन्न नहीं भया है ऐसी ऊंची धूमरेखाकूं जबी पर्वतादिकोंविषे देखे है। तबी तिस पुरुषकूं पूर्व अनुभव करीहूई व्याप्तिके संस्कार उद्बुद्ध होवै है। ता उद्बुद्ध संस्कारतैं ता पुरुषकूं 'धूमो वह्निव्याप्यः' या प्रकारका ता व्याप्तिका स्मरण होवै है। तहां एकसम्बन्धिका ज्ञान संस्कारके उद्बोधद्वारा दूसरे सम्बन्धीका स्मारक होवै है यह वार्त्ता तृतीयपरिच्छेदविषे संस्कारगुणके निरूपणविषे विस्तारतैं कहि आये हैं, यातैं ता धूमरूप एक सम्बन्धीके ज्ञानकूं संस्कारके उद्बोधद्वारा ता व्याप्तिरूप दूसरे सम्बन्धीका स्मारकपणा संभवै है। तिस व्याप्तिस्मरणतैं अनन्तर तिस पुरुषकूं 'वह्निव्याप्यधूमवान् अयं' या प्रकारका परामर्शज्ञान होवै है। तहां विशिष्ट बुद्धिविषे विशेषणज्ञान कारण होवै है। यह वार्त्ता पूर्व बहुतवार कथन करि आये हैं। और ता उक्त परामर्शज्ञानविषे सा व्याप्ति विशेषणरूप है। यातैं सो व्याप्तिज्ञान विशेषणज्ञानरूप करिकै ता परामर्शका जनक होवै है। और ता परामर्शज्ञानतैं अनन्तर तिस पुरुषकूं 'पर्वतो वह्निमान्' या प्रकारका अनुमितिज्ञान होवै है। तहां 'धूमो वह्निव्याप्यः' यह उक्त स्मृतिरूपव्याप्तिज्ञान तौं करण होवै है और 'वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः' यह उक्त

परामर्शज्ञान व्यापार होवै है । और ' पर्वतो वह्निमान् ' यह उक्त अनुमिति ज्ञान फल होवै है । या प्रकारकी रीति सर्व अनुमानोंविषे जानिलेणी न्यायशास्त्रविषे ' पर्वतो वह्निमान् धूमवत्वात् ' इस उक्त अनुमानकूं प्रसिद्ध अनुमान कहे हैं या कारणतें इसी अनुमानविषे सा उक्त अनुमानकी रीति दिखाई है तथा आगे भी दिखावैंगे इति ।

ज्ञायमान लिङ्गको करणमाणनेहारे प्राचीन—ईहां प्राचीन नैयायिकोंका तौं यह मत है । अनुमितिके प्रति सो उक्त व्याप्तिज्ञान करण नहीं है । किंतु व्याप्तिविशिष्ट तथा पक्षधर्मताविशिष्टरूप करिकै जान्या हूआ धूमादिक लिंग हीं ता अनुमितिका करण होवै है । और सो उक्त लिंग परामर्श व्यापार होवै है । इहां यह तात्पर्य है । ता अनुमितिविषे केवल ज्ञानरूप परामर्शमात्रकूं तौं करणता संभवती नहीं, किंतु लिंगपरामर्शकूं हीं ता अनुमितिविषे कारणता कहणी होवैंगी । तहां लिंगविशिष्ट परामर्शविषे अनुमितिकी करणताके सिद्धहूए ता विशेषणरूप लिंगविषे भी सा अनुमितिकी करणता अवश्य प्राप्त होवैंगी । काहेतें ? यह शास्त्रकारोंका संकेत है । **विशिष्टवृत्तिधर्मस्य असति बाधके विशेषणवृत्तित्वनियमात्** । अर्थ यह—विशिष्टविषे वर्त्तणेहारे धर्मका किसी बाधक प्रमाणके अविद्यमान हूए विशेषणविषे भी अवश्य वृत्तिपणा होवै है । इस प्रकारके नियमके बलतें ता परामर्शरूप विशेष्यकी न्यांई ता लिंगरूप विशेषणविषे भी सा अनुमितिकी करणता प्राप्त होवै है । तहां ता परामर्शज्ञानके विषयभूत लिंगकूं ता अनुमितिकी कारणता है । अथवा ता लिंगपरामर्शकूं ता अनुमितिकी करणता है । इन दोनों पक्षोंविषे एक पक्षका साधकयुक्तिरूप विनिगमनाके अभावतें यद्यपि तिन दोनों विषे अनुमितिकी करणता प्राप्त होवै है । तथापि ता लिंग परामर्शकूं जो अनुमितिका करण मानिये तौं तिस परामर्शका कोई व्यापार संभवता नहीं और ता लिंगकूं जो अनुमितिका करण मानिये तौं ता लिंगका सो परामर्शज्ञान हीं व्यापार संभवै है । काहेतें ? प्रत्यक्षज्ञान विषय करिकै जन्य होवै है । यह वार्त्ता पूर्व बहुतवार कहि आये हैं । यातें सो धूमादिलिंगविषयक परामर्शज्ञान ता धूमादिरूप लिंग करिकै जन्य भी है । तथा ता धूमादिलिंगजन्य अनुमितिका जनक भी है । यातें ता परामर्शविषे ता धूमादिलिंगरूप करणकी व्यापाररूपता संभवै है । इस प्रकारकी युक्तितें ता धूमादिक लिंगविषे हीं अनुमितिकी करणरूपता सिद्ध होवै है इति । इसका खण्डन—सो यह प्राचीनोंका मत समीचीन नहीं है । काहेतें ? ता धूमादिक लिंगकूं हीं जो अनुमितिका करण मानिये तौं जहां सो धूमादिकलिंग वर्त्तमान नहीं है किन्तु पूर्व उत्पन्न होइकै नष्ट होइ गया है अथवा आगे उत्पन्न होणेहारा है । तहां ता अतीतधूमादिकलिंग करिकै वा अनागतधूमादिक लिंग करिकै वह्निआदिकोंकी अनुमिति नहीं होणी । चाहिये और यज्ञशालाविषे ता अतीत अनागतधूमरूपलिंग करिकै भी ' इयं यज्ञशाला वह्निमती अतीतधूमात् ' या प्रकारकी ता वह्निकी अनुमिति होवै है । यद्यपि जैसे

पूर्वनष्टहूए भी अनुभवकूं संस्काररूप व्यापारद्वारा स्मृतिकी कारणता होवै है तैसे पूर्वनष्टहूए भी ता लिंगकूं परामर्शरूप व्यापारद्वारा ता अनुमितिकी कारणता संभवै है तथापि ता स्थलविषे शब्दादिक प्रमाणतैं उत्पन्नभया जो परामर्शज्ञान है ता परामर्शकी ता अतीत अनागत लिंगकूं कारणता हीं संभवती नहीं वर्त्तमानविषय हीं आपणे प्रत्यक्षज्ञानका जनक होवै हैं। यातैं ता शब्दादिजन्य परामर्शविषे ता अतीत अनागत लिंगकी व्यापाररूपताके अभावतैं ता परामर्शरूप व्यापारद्वारा भी ता अतीत अनागत लिंगकूं अनुमितिकी करणता संभवती नहीं इति। लिङ्ग परामर्शको करणमानणेहारे—और केईकग्रंथकार तौं ता पूर्वउक्त लिंगपरामर्शकूं हीं अनुमितिका करण माने हैं, यद्यपि ता परामर्शका कोई व्यापार संभवता नहीं तथापि तिनोंके मतविषे व्यापारवाला हीं करण होवै है यह नियम नहीं है किंतु व्यापारतैं रहित भी करण होवै हैं इति। इस प्रकार अनुमितिके करणविषे ग्रंथकारोंका परस्पर विवाद है, परंतु अनुमितिके प्रति परामर्शकूं कारणता सर्व माने हैं केईक तौं ता परामर्शकूं व्यापाररूप करिकै कारणता माने हैं और केईक करणरूप करिकै कारण माने हैं, या कारणतैं हीं पूर्व ता अनुमितिका परामर्शजन्य ज्ञानत्वरूप लक्षण कथन कऱ्या है इति।

व्याप्तिके अनुभवकूं करणमानणेहारे मीमांसक तथा वेदांती—ता उक्त परामर्शकूं अनुमितिका कारण मानते नहीं किंतु तिनोंके मतविषे महानसादिकोंविषे धूमनिष्ठ वह्निके व्याप्तिका जो प्रत्यक्ष अनुभव होवै हैं सो व्याप्तिका अनुभव तौं करण होवै है और पर्वतादिकोंविषे धूमके दर्शनतैं उद्बुद्ध हूए जे ता व्याप्तिके अनुभवजन्य संस्कार हैं ते उद्बुद्ध संस्कार व्यापार होवै हैं। और 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति फल होवै है इति। व्याप्तिके भेद—तहां पूर्व व्याप्तिविषयक पक्षधर्मता ज्ञानकूं परामर्श कह्या था तहां ता व्याप्तिके ज्ञानतैं विना ता परामर्शकी सिद्धि संभवती नहीं। यातैं ता व्याप्तिका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां ता धूमादिक हेतुविषे रहीहूई जा वह्नि आदिक साध्यकी व्याप्ति है सा व्याप्ति दो प्रकारकी होवै है। एक तौं अन्वयव्याप्ति होवै है और दूसरी व्यतिरेकव्याप्ति होवै है। अन्वयव्याप्तिका लक्षण—ताके विषे प्रथम अन्वय व्याप्तिका लक्षण कहे हैं—**हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यम् अन्वयव्याप्तिः।** अर्थ यह—हेतुके अधिकरणविषे वर्त्तणेहारा जो अत्यंताभाव है ता अत्यंताभावका अप्रतियोगी ऐसा जो साध्य है ता साध्यके साथि जो ता हेतुका समानाधिकरणपणा है यह हीं ता हेतुविषे ता साध्यकी अन्वयव्याप्ति है। लक्षण समन्वय—जैसे 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इस प्रसिद्ध अनुमानविषे धूम तौं हेतु है और वह्नि साध्य है। तहां ता धूमरूप हेतुके अधिकरणरूप जे पर्वतमहानसादिक हैं तिनोंविषे सो वह्निरूप साध्य तौं विद्यमान हीं होवै है। यातैं ता वह्निरूप साध्यका अत्यंताभाव तौं तहां सम्भवता नहीं किन्तु तहां घटका अत्यंताभाव सम्भवै है। यातैं सो घटका अत्यं-

ता भाव ता हेतुसमानाधिकरण कह्या जावै है, ता अत्यन्ताभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे ही है, ता वह्निरूप साध्यविषे है नहीं । यातैं सो वह्निरूप साध्य ता हेतुसमानाधिकरण-अंत्यंताभावका अप्रतियोगी कह्या जावै है । ऐसे वह्निरूप साध्यके साथि ता धूमरूप हेतुका समानाधिकरणपणा है । यह हीं ता धूमरूप हेतुविषे ता वह्निरूप साध्यकी व्याप्ति है और अग्नि करिकै तपेहूए लोहपिंडविषे ता धूमके अत्यन्ताभावहूए भी सो वह्नि रहे है । यातैं ता वह्निअधिकरणवृत्ति अत्यंताभावका अप्रतियोगीपणा ता धूमविषे नहीं है किंतु प्रतियोगि-पणा हीं है । यातैं ता वह्निविषे ता धूमकी व्याप्ति है नहीं इति ।

व्यतिरेक व्याप्तिका लक्षण—अब दूसरी व्यतिरेकव्याप्तिका लक्षण कहे हैं । **साध्याभाव-व्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं व्यतिरेकव्याप्तिः** । अर्थ यह—साध्यके अभावका व्याप-करूप जो अभाव है ता अभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम व्यतिरेकव्याप्ति है ।

लक्षण समन्वय—जैसे ता उक्तप्रसिद्ध अनुमानविषे हीं ता वह्निरूप साध्यका अभाव ह्रदविषे रहे है और ता धूमरूप हेतुका अभाव भी ता ह्रदविषे रहे है । अगाध जलवाले तलावादि-कोंका नाम ह्रद है और ' यत्र यत्र वन्ह्यभावः तत्र तत्र धूमाभावः ' या रीतिसैं सो धूमाभाव ता वह्निअभावका व्यापक भी है । ता साध्याभावके व्यापकीभूत धूमाभावका प्रतियोगीपणा ता धूमरूप हेतुविषे रहे है । यह हीं ता धूमरूप हेतुविषे ता वह्निरूप साध्यकी व्यतिरेकव्याप्ति हैं इति । पक्षता—किंवा ता उक्त परामर्शका स्वरूप जैसे व्याप्ति करिकै घटित है । तैसे पक्षविषे हेतुका वृत्तित्वरूप पक्षधर्मता करिकै भी घटित है । यातैं ता पक्षताका निरूपण करे हैं ।

अन्य ग्रन्थोंका पक्षताका लक्षण—तहां केईक ग्रन्थकार तौं ता पक्षताका यह लक्षण कहे हैं । **संदिग्धसाध्यवत्त्वं पक्षता** । अर्थ यह—साध्यप्रकारक जो संशय है ता संशयवत्ताका नाम पक्षता है । समन्वय—जैसे पूर्वउक्त प्रसिद्ध अनुमानविषे ' पर्वतो वह्निमान् ' इस प्रकारकी अनुमितितैं पूर्व इस पुरुषकूं ' पर्वतो वह्निमान् न वा ' या प्रकारका वह्निरूप साध्यप्रकारक संशय होवै है । सो संशय समवायसम्बन्ध करिकै ता पुरुषके आत्माविषे रह्याहूआ भी विषयतासम्बन्ध करिकै ता पर्वतविषे भी रहे है । यह हीं ता पर्वतविषे पक्षता है इति । सो यह पक्षका लक्षण सम्भवता नहीं । काहेतैं ? जहां गृहविषे बैठेहूए पुरुषकूं मेघके गर्जना-रूप शब्दकूं श्रवण करिकै ' आकाशः मेघवान् ' या प्रकारकी मेघविषयक अनुमिति होवै है तहां सा उक्तपक्षता सम्भवती नहीं । काहेतैं ? ता बैठेहूए पुरुषकूं ता अनुमितितैं पूर्व ' आकाशः मेघवान् न वा ' या प्रकारका संशय है नहीं । ता साध्यसंशयके अभावहूए ता आकाशविषे सा उक्तपक्षता सम्भवती नहीं । किंवा जहां इस पुरुषकूं ता वह्निरूप साध्यका प्रत्यक्षज्ञान है । तहां भी मेरेकूं वह्निकी अनुमिति होवै या प्रकारकी ता अनुमितिकी

इच्छाके हूए इस पुरुषकूं ता वह्निकी अनुमिति होवै है । परन्तु तहां भी सा पूर्वउक्त पक्षता सम्भवती नहीं । काहेतैं ? तिस स्थलविषे ता वह्निरूप साध्यविषयक प्रत्यक्षनिश्चयके विद्यमान् हूए ता वह्निरूप साध्यका संशय सम्भवता नहीं । यातैं सो उक्त पक्षताका लक्षण असंगत है इति । तदन्यग्रन्थोंका पक्षताका लक्षण—और केईकग्रन्थकार तौं ता उक्त अव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता पक्षताका यह लक्षण कहे हैं । सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावः पक्षता । अर्थ यह—साध्यके सिद्ध करणेकी जा इच्छा है ताका नाम सिषाधयिषा है । जैसे 'पर्वते वन्ह्यनुमितिर्मे भूयात्' अर्थ यह—पर्वतविषे हमारेकूं वह्निकी अनुमिति होवो या प्रकारकी जा वह्निरूप साध्यके सिद्ध करणेकी इच्छा है ताका नाम सिषाधयिषा है ता सिषाधयिषाका जो अभावरूप विरह है ता सिषाधयिषाके अभाव करिकै विशिष्ट जा साध्यका निश्चयरूप सिद्धि है ता सिद्धिके अभावका नाम पक्षता है । सो विशिष्टाभावरूप पक्षता कहा तौं ता सिषाधयिषाविरहरूप विशेषणके अभावतैं होवै है और कहां तौं ता सिद्धिरूप विशेष्यके अभावतैं होवै है और कहां तौं ता विशेषणविशेष्य दोनोंके अभावतैं होवै है । तहां जिस स्थलविषे सा सिद्धि भी होवै है । तथा सा सिषाधयिषा भी होवै है । तिस स्थलविषे भी अनुमिति होवै है । तहां ता सिद्धिरूप विशेष्यका तौं अभाव है नहीं किंतु ता सिषाधयिषाविरहरूप विशेषणका अभाव है । यातैं तहां ता विशेषणके अभावतैं सा विशिष्टाभावरूप पक्षता जानणी । और जहां सा सिषाधयिषा भी नहीं है तथा सा सिद्धि भी नहीं है तिस स्थलविषे भी अनुमिति होवै है । तहां सो सिषाधयिषाविरहरूप विशेषण तौं विद्यमान है, परंतु सो सिद्धिरूप विशेष्य है नहीं । यातैं तिस स्थलविषे ता विशेष्यके अभावतैं सा विशिष्टाभावरूप पक्षता जानणी । और जहां सा सिषाधयिषा तौं है परंतु सा सिद्धि है नहीं । तहां भी सा अनुमिति होवै है । तहां सो सिषाधयिषाविरहरूप विशेषण भी नहीं है तथा सो सिद्धिरूपविशेष्य भी नहीं है । यातैं तिस स्थलविषे ता विशेषणविशेष्य दोनोंके अभावतैं सा विशिष्टाभावरूप पक्षता जानणी । और जहां सा सिषाधयिषा तौं है नहीं और सा साध्यका निश्चयरूप सिद्धि विद्यमान है । तहां सा अनुमिति होती नहीं । यातैं सा सिषाधयिषाविरहविशिष्ट सिद्धि ता अनुमितिका प्रतिबंधक होवै है । और ता सिद्धिके विद्यमानहूए भी ता सिषाधयिषाके हूए सा अनुमिति होवै है । यातैं सा सिषाधयिषा उत्तेजक कही जावै है ता प्रतिबंधकका तथा उत्तेजकका लक्षण पूर्व चतुर्थ परिच्छेदविषे शक्तिके खंडनविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति ।

### पक्ष सपक्ष और विपक्षका वर्णन ।

अब प्रसंगतैं पक्ष १, सपक्ष २, विपक्ष ३ इन तीनोंका यथाक्रमतैं वर्णन करे हैं । तहां पक्ष—पक्षताऽऽश्रयः पक्षः । अर्थ यह—ता पूर्वउक्त पक्षताका जो आश्रय होवै है । सो पक्ष

कह्या जावै है । जैसे ता प्रसिद्ध अनुमानविषे ता उक्त पक्षताका आश्रय होणेतैं पर्वत पक्ष कह्या जावै है इति । सपक्ष—निश्चितसाध्यवान् सपक्षः । अर्थ यह—जो पदार्थ साध्यप्रकारक निश्चयवाला होवै है सो पदार्थ सपक्ष कह्या जावै है। जैसे ता प्रसिद्ध अनुमानविषे महानस सपक्ष कह्या जावै है। ता महानसविषे इस पुरुषकूं 'महानसो वह्निमान्' या प्रकारका वह्निरूप साध्यप्रकारक निश्चय हीं है। ईहां पाकशालाकूं महानस कहे हैं इति । विपक्ष—निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः । अर्थ यह—जो पदार्थ साध्याभावप्रकारक निश्चयवाला होवै है सो पदार्थ विपक्ष कह्या जावै है। जैसे ता प्रसिद्ध अनुमानविषे ह्रद विपक्ष कह्या जावै है। ता ह्रदविषे इस पुरुषकूं 'ह्रदो वन्ह्यभाववान्' या प्रकारका ता वह्निरूप साध्यके अभावका निश्चय हीं है । यद्यपि सो साध्यका निश्चय तथा साध्याभावका निश्चय ज्ञानरूप होणेतैं समवायसंबंध करिकै इस पुरुषके आत्माविषे हीं रहे है तथापि विषयतासंबंध करिकै सो निश्चय ता महानसविषे तथा ह्रदविषे भी संभवै है इति । व्याप्तिके ज्ञानका उपाय—अब पूर्व उक्त व्याप्तिका जिस कारण करिकै ज्ञान होवै है ता कारणका वर्णन करे हैं। जिस पुरुषकूं महानसादिकोंविषे वह्निरूप साध्यका तथा धूमरूप 'हेतुका जहां जहां धूम होवै है तहां तहां वह्नि अवश्य होवै है' या प्रकारका सहचारदर्शन बहुतवार हूआ है तिस पुरुषकूं हीं धूम वह्निका व्याप्य है या प्रकारका व्याप्तिका ज्ञान होवै है। यातैं ता साध्यसाधनका भूयो सहचारदर्शन हीं ता व्याप्तिज्ञानका कारण होवै है । अर्थात् पूर्वउक्त अन्वयव्याप्तिके ज्ञानका कारण होवै है । और पूर्वउक्त व्यतिरेक व्याप्तिके ज्ञानका तौ 'यत्र यत्र वन्ह्यभावः तत्र तत्र धूमाभावः' या प्रकारका साध्यहेतुके अभावोंका सहचारदर्शन हीं कारण होवै है ।

उपायपर शंका—ता भूयो सहचारदर्शनविषे ता व्याप्तिका ग्राहकपणा संभवता नहीं। काहेतैं? जहां जहां पार्थिवत्व होवै है तहां तहां लोहलेख्यत्व होवै है या प्रकारका सहचारदर्शन अनेकवार इस पुरुषकूं हूआ है तौ भी हीरकादिकोंविषे ता पार्थिवत्वधर्मके विद्यमान हूए भी ता लोहलेख्यत्व धर्मका अभाव होणेतैं व्यभिचार हीं प्रतीत होवै है । यातैं ता भूयोसहचारदर्शन करिकै ता व्याप्तिका ज्ञान संभवता नहीं । समाधान—व्यभिचारज्ञानविरह सहकृत सहचारज्ञान हीं ता व्याप्तिका निश्चायक होवै है । अर्थात् हेतुविषे जो साध्यके व्यभिचारका ज्ञान है ता व्यभिचारज्ञानके अभाव करिकै सहकृत जो साध्यहेतुका सहचार ज्ञान है सो सहचारज्ञान हीं ता व्याप्तिके ज्ञानका हेतु होवै है। तहां साध्यके अभाववाले अधिकरणविषे जो हेतुका वर्त्तणा है यह हीं ता हेतुविषे व्यभिचार है। तहां ता पार्थिवत्वका तथा लोहलेख्यत्वका काष्ठादिकोंविषे बहुतवार सहचारदर्शनके हूए भी हीरकादिकोंविषे व्यभिचार हीं देखणेविषे आवै है। यातैं सो सहचारज्ञान ता व्यभिचारज्ञानके अभाव करिकै सहकृत नहीं है यातैं ता सहचारदर्शनतैं ता पार्थिवत्वधर्मविषे ता लोहलेख्यत्वधर्मके व्याप्तिका ज्ञान होवै नहीं इति ।

व्यभिचार ज्ञानके भेद—तहां सो व्यभिचारज्ञान भी यथार्थ १, अयथार्थ २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। यथार्थ—तहां पार्थिवत्वधर्मविषे जो लोहलेख्यत्वका व्यभिचार ज्ञान है तथा वह्निविषे जो धूमका व्यभिचारज्ञान है सो व्यभिचारज्ञान तौं यथार्थ कह्या जावै है। अयथार्थ—ता व्यभिचारके अभाववाले हेतुविषे जो ता व्यभिचारका ज्ञान है सो व्यभिचारज्ञान अयथार्थ कह्या जावै है। जैसे वह्निरूप साध्यके व्यभिचारके अभाववाले धूमरूप हेतुविषे जो ता वह्निरूप साध्यके व्यभिचारका ज्ञान है सो व्यभिचारज्ञान अयथार्थ कह्या जावै है। अयथार्थ व्यभिचारज्ञानके भेद—सो अयथार्थव्यभिचारज्ञान भी निश्चय १, संशय २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। निश्चय—तहां 'धूमो वह्निव्यभिचारी' या प्रकारका जो धूमरूप हेतुविषे वह्निरूप साध्यके व्यभिचारका ज्ञान है सो व्यभिचारज्ञान निश्चय कह्या जावै है। संशय—'धूमो वह्निव्यभिचारी न वा' या प्रकारका जो ता धूमविषे वह्निके व्यभिचारका ज्ञान है सो व्यभिचारज्ञान संशय कह्या जावै है। इसीकूं शंका भी कहे हैं।

यथार्थव्यभिचार अनिवर्त्य है। तहां—पूर्वउक्त यथार्थ व्यभिचार ज्ञानकी तौं तर्कादिकोंकरिकै निवृत्ति होती नहीं। अयथार्थ व्यभिचारकी तर्कादिकोंसे निवृत्ति—और दूसरे अयथार्थव्यभिचार ज्ञानकी कहां तौं तर्कतैं निवृत्ति होवै है। तहां 'यदि धूमो वह्निव्यभिचारी स्यात् तर्हि वह्निजन्यो न स्यात्' अर्थ यह—जो कदाचित् यह धूम वह्निके व्यभिचारवाला होवैगा तौं ता वह्नि करिकै जन्य नहीं होवैगा। या प्रकारका जो ता धूमअग्निके कार्यकारणभावका भङ्ग प्रसंग है ताका नाम तर्क है ता तर्कतैं सो व्यभिचारज्ञान निवृत्त होइ जावै है।

उत्पादकके विना भी अभाव—किसी स्थलविषे तौं सो व्यभिचार ज्ञानका अभाव स्वतः सिद्ध होवै है अर्थात् ता व्यभिचारज्ञानका उत्पादक जा कारणसामग्री है ता कारण सामग्रीके अभाव होणेतैं सो व्यभिचारज्ञान उत्पन्न हीं नहीं होवै है।

इसके अभावकी व्याप्तिज्ञानमें उपयोगिता—इस प्रकार ता व्यभिचारज्ञानके अभावसहकृत सहचारदर्शनतैं ता धूमादिक हेतुविषे ता वह्निआदिक साध्यके व्याप्तिका ज्ञान होवै है। यातैं सो व्यभिचारज्ञानके अभाव सहकृत सहचारज्ञान हीं ता व्याप्तिके ज्ञानका कारण है इति।

एकजगह सर्वोंकी व्याप्तिके अप्रत्यक्षकी शंका—महानसविषे स्थित वह्निधूमके साथि इस पुरुषके चक्षुइंद्रियका संयोग सम्बन्ध है। यातैं इस पुरुषकूं ता महानसीयधूमवह्निके सहचारका प्रत्यक्ष तौं संभवै है; परन्तु पर्वतादिकोंविषे स्थित जे वह्निधूम हैं तिनोंके साथि इस पुरुषके चक्षुइंद्रियका संयोगसंबंध है नहीं यातैं तिन वह्निधूमोंके सहचारका प्रत्यक्ष संभवता नहीं। ता सहचारके अप्रत्यक्षहुए तिन सर्वधूमोंविषे तिन सर्ववह्नियोंके व्याप्तिका भी प्रत्यक्ष होवैगा नहीं ता व्याप्तिके अप्रत्यक्षहूए ता पर्वतीयधूमके दर्शनतैं ता पर्वतीयधूमनिष्ठ व्याप्तिका भी स्मरण

होवैंगा नहीं, ता व्याप्तिस्मरणके अभावहूए 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः' यह उक्त परामर्श भी संभवैंगा नहीं, ता परामर्शके अभावहूए 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति हीं नहीं होवैंगी।

सामान्य लक्षण सन्निकर्षसैं सर्व धूमोंविषे सर्व वह्नियोंकी व्याप्तिका प्रत्यक्षमानकर समाधान--जिसकालविषे इस पुरुषकूं ता महानसविषे एकवह्निका तथा एक धूमका चाक्षुषप्रत्यक्ष हूआ है तिस कालविषे इस पुरुषकूं वह्नित्वरूपसामान्यलक्षणसन्निकर्ष करिकै तिन पर्वतीय आदिक सर्ववह्नियोंका अलौकिक चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है। तथा धूमत्वरूप सामान्यलक्षणसन्निकर्ष करिकै तिन पर्वतीय आदिक सर्वधूमोंका अलौकिक चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है। यातैं इस पुरुषकूं तिस कालविषे तिन सर्ववह्नियोंके तथा तिन सर्व धूमोंके सहचारका प्रत्यक्ष संभवै है। ता सहचारके प्रत्यक्षहूए तिन सर्व धूमोंविषे तिन सर्व वह्नियोंके व्याप्तिका प्रत्यक्ष भी संभवै है ता व्याप्तिके प्रत्यक्षहूए तिस तिस धूमके दर्शनतैं तिस तिस धूमनिष्ठ तिस तिस वह्निकी व्याप्तिका स्मरण भी संभवै है ता व्याप्तिके स्मरणहूए सो उक्तपरामर्श भी संभवै है ता परामर्शके हूए सा उक्त अनुमिति भी संभवै है इति। इतनैं पर्यंत अनुमानकी रीतिका तथा व्याप्तिपक्षतादिक कारणसामग्रीका वर्णन कऱ्या।

अनुमानके विभाग—अब ता पूर्वउक्त अनुमानके विभागका वर्णन करे हैं। तहां सो पूर्व उक्त अनुमान स्वार्थ अनुमान १, परार्थ अनुमान २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां स्वार्थानुमान—**न्यायाप्रयोज्यानुमानं स्वार्थानुमानम्।** अर्थ यह—वक्ष्यमाणन्याय करिकै अजन्य जो अनुमान है सो अनुमान स्वार्थानुमान कह्या जावै है। परार्थानुमान—**न्यायप्रयोज्यानुमानं परार्थानुमानम्।** अर्थ यह—ता न्याय करिकै जन्य जो अनुमान है सो अनुमान परार्थ अनुमान कह्या जावै है इति।

परार्थानुमानके न्यायका स्वरूप—अब ता न्यायका लक्षण कहे हैं—**प्रतिज्ञादिवाक्यपञ्चकसमुदायः न्यायः।** अर्थ यह—प्रतिज्ञा १, हेतु २, उदाहरण ३, उपनय ४, निगमन ५ इन पंचवाक्योंका जो समुदाय है, ताका नाम न्याय है। तिन पंचवाक्योंका यथाक्रमतैं यह आकार है 'पर्वतो वह्निमान् १, धूमवत्त्वात् २, यो यो धूमवान् स वह्निमान् यथा महानसः ३, तथा चायं ४, तस्मात्तथा ५' तहां इस पुरुषके अनुमितिका हेतुभूत स्वार्थ अनुमान तौं ता न्याय करिकै जन्य होता नहीं किंतु यह पुरुष आप हीं महानसादिकोंविषे धूमरूप हेतुविषे वह्निरूप साध्यकी व्याप्तिका निश्चय करिकै तिसतैं अनंतर कोईकालविषे पर्वतादिक पक्षविषे ता धूमरूप हेतुकूं देखिकै ता व्याप्तिका स्मरण करता हूआ तथा ता उक्तपरामर्शवाला हूआ ता पर्वतादिक पक्षविषे वह्निविषयक अनुमितिवाला होवै है। यह स्वार्थ अनुमानकी रीति पूर्व विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं। और सो स्वार्थअनुमानवाला पुरुष जबी दूसरे किसी पुरुषकूं ता पर्वतविषे वह्निकी अनुमिति करावै है तबी ता उक्त प्रतिज्ञादिक पंचवाक्योंके

समुदायरूप न्याय करिकै हीं करावै है । ता न्याय करिकै तिस दूसरे पुरुषकूं भी व्याप्तिज्ञान परामर्शादिक हैकै वह्निकी अनुमिति होवै है । यातैं सो न्यायजन्य अनुमान ता दूसरे पुरुषके अनुमितिका हेतु होणेतैं परार्थअनुमान कह्या जावै है इति ।

अब यथाक्रमतैं तिन प्रतिज्ञादिक पंचवाक्योंके लक्षणका वर्णन—करे हैं तहां **साध्यविशिष्टपक्षबोधजनकं वचनं प्रतिज्ञावाक्यम्** । अर्थ यह—श्रोता पुरुषकूं साध्यविशिष्ट पक्षके बोधका जनक जो वचन है सो वचन प्रतिज्ञावाक्य कह्या जावै है । जैसे 'पर्वतो वह्निमान्' यह वचन वह्निरूप साध्य करिकै विशिष्ट जो पर्वतरूप पक्ष है ता पक्षके बोधका जनक होवै है । यातैं सो वचन प्रतिज्ञावाक्य कह्या जावै है इति ॥ १ ॥ **पंचम्यन्तं तृतीयान्तं वा लिङ्गप्रतिपादकं वचनं हेतुवाक्यम्** । अर्थ यह—पंचमी विभक्ति है अंतविषे जिसके अथवा तृतीया विभक्ति है अंतविषे जिसके ऐसा जो धूमादिक लिंगका प्रतिपादक वचन है सो वचन हेतु वाक्य कह्या जावै है । जैसे 'धूमवत्त्वात्' यह वचन पंचमी विभक्ति अंत भी है तथा धूमरूपलिंगका प्रतिपादक भी है । यातैं सो वचन हेतुवाक्य कह्या जावै है इति ॥ २ ॥ **व्याप्तिप्रतिपादकं दृष्टान्तवचनं उदाहरणम्** । अर्थ यह—हेतुविषे साध्यकी व्याप्तिका प्रतिपादक ऐसा जो दृष्टांतका बोधक वचन है सो वचन उदाहरणवाक्य कह्या जावै है । जैसे 'यो यो धूमवान् स स वह्निमान् यथा महानसः' अर्थ यह—जो जो धूमवाला होवै है सो सो वह्निवाला हीं होवै है । जैसे महानस धूमवाला होणेतैं वह्निवाला हीं होवै है । यह वचन ता धूमरूप हेतुविषे वह्निरूप साध्यके व्याप्तिका भी प्रतिपादक है तथा महानसरूप दृष्टांतका भी प्रतिपादक है । यातैं सो वचन उदाहरणवाक्य कह्या जावै है इति ॥ ३ ॥ **उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकं वचनम् उपनयवाक्यम्** । अर्थ यह—पूर्व उदाहरणवचन करिकै प्रतिपादन करी जा व्याप्ति है ता व्याप्तिविशिष्टत्वरूप करिकै हेतुनिष्ठ पक्षधर्मताका प्रतिपादक जो वचन है सो वचन उपनयवाक्य कह्या जावै है । जैसे 'तथाचायं' अर्थ यह—यह पर्वत भी ता महानसकी न्यांई वह्निकी व्याप्तिवाले धूमवाला है । यह वचन ता व्याप्तिविशिष्ट धूमरूप हेतुविषे पर्वतरूपविषे वृत्तित्वरूप पक्षधर्मताकूं प्रतिपादन करे है । यातैं सो वचन उपनयवाक्य कह्या जावै है इति ॥ ४ ॥ **पक्षे साध्यस्याबाधितत्वप्रतिपादकं वचनं निगमनम्** । अर्थ यह—पक्षविषे साध्यके अबाधितपणेकूं प्रतिपादन करणेहारा जो वचन है सो वचन निगमन कह्या जावै है । जैसे 'तस्मात्तथा' अर्थ यह वह्निव्याप्यधूमवाला होणेतैं यह पर्वत ता महानसकी न्यांई वह्निवाला हीं है । यह वचन ता पर्वतरूप पक्षविषे ता वह्निरूप साध्यके अबाधितपणेकूं प्रतिपादन करे हैं । यातैं सो वचन निगमन कह्या जावै है इति । इस प्रकारके प्रतिज्ञादिक पंचवाक्योंके समुदायरूप न्यायतैं तिस दूसरे पुरुषकूं भी ता पर्वतविषे वह्निकी अनुमिति होवै है । इसीकूं परार्थअनुमान कहे हैं ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञादिकोंसे पक्षादिके ज्ञानकी रीति—तहां सा पूर्वउक्त स्वार्थअनुमिति जितनीं कारणसामग्री करिकै उत्पन्न होवै है तितनीं कारणसामग्री करिकै हीं यह परार्थअनुमिति उत्पन्न होवै है । यातैं ता दूसरे पुरुषकूं ता प्रतिज्ञादिक पंचवाक्योंके श्रवणतैं ता कारणसामग्रीकी सम्पत्ति वर्णन करे हैं । तहां 'पर्वतो वह्निमान्' इस प्रतिज्ञावचनके श्रवणतैं तौं ता श्रोतापुरुषकूं ता पर्वतरूप पक्षका ज्ञान होवै है । और 'धूमवत्त्वात्' इस हेतु वचनके श्रवणतैं ता श्रोतापुरुषकूं ता धूमरूपलिंगका ज्ञान होवै है और 'यो यो धूमवान् स स वह्निमान् यथा महानसः' इस उदाहरणवचनके श्रवणतैं ता श्रोतापुरुषकूं ता व्याप्तिका ज्ञान होवै है । और 'तथा चायम्' इस उपनयवचनके श्रवणतैं ता श्रोतापुरुषकूं ता व्याप्तिविशिष्टहेतुविषे पक्षधर्मताका ज्ञान होवै है और 'तस्मात्तथा' इस निगमनवचनके श्रवणतैं ता श्रोतापुरुषकूं ता पर्वतरूप पक्षविषे ता वह्निरूप साध्यके अबाधितपणेका ज्ञान होवै है । इस प्रकार पक्षताज्ञानादिक कारणसामग्रीविशिष्ट ता श्रोतापुरुषकूं ता पर्वतविषे वह्निकी अनुमिति होवै है । इस रीतिसैं सो परार्थअनुमान ता प्रतिज्ञादिक पंचवाक्योंके समुदायरूप न्याय करिकै साध्य होवै है । इसी न्यायकूं पंचावयववाक्य भी कहे हैं इति । मीमांसक तथा वेदान्ती—प्रतिज्ञा १, हेतु २, उदाहरण ३ इन तीन वाक्योंके समुदायरूप न्यायतैं हीं सा परार्थअनुमिति माने हैं । बौद्ध—तौं उदाहरण १, उपनय २ इन दो वाक्योंके समुदायरूप न्यायतैं ही सा परार्थअनुमिति माने है इति ।

अनुमानके दूसरी तरह विभाग—अब ता पूर्वउक्त अनुमानका पुनः दूसरे प्रकारतैं विभाग कहे हैं । तहां सो पूर्वउक्त अनुमान केवलान्वयी १, केवलव्यतिरेकी २, अन्वयव्यतिरेकी ३ इस भेद करिकै पुनः तीन प्रकारका होवै है । केवलान्वयी—तहां **असद्विपक्षः केवलान्वयी ।** अर्थ यह—जिस अनुमानविषे कोई भी विपक्ष होता नहीं सो अनुमान केवलान्वयी कह्या जावै है । जैसे **घटः अभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत् ।** अर्थ यह—यह घट अभिधेय है प्रमेय होणेतैं, जो जो पदार्थ प्रमेय होवै है, सो सो पदार्थ अभिधेय हीं होवै है, जैसे पट प्रमेय होणेतैं अभिधेय भी है, तैसे यह घट भी प्रमेय होणेतैं अभिधेय अवश्य होवैगा । ईहां ईश्वरकी इच्छारूप पदशक्तिके विषयत्वका नाम अभिधेयत्व है और ईश्वरकी प्रमाके विषयत्वका नाम प्रमेयत्व है ता अभिधेयत्वका तथा प्रमेयत्वका कोई भी पदार्थविषे अत्यंताभाव रहता नहीं । किंतु द्रव्यादिक सर्वपदार्थ ता अभिधेयत्ववाले हैं तथा प्रमेयत्ववाले हैं और जिस पदार्थविषे ता साध्यके अभावका निश्चय होवै है सो पदार्थ हीं विपक्ष होवै है । यह विपक्षका लक्षण पूर्व कथन करि आये हैं । यातैं सो उक्त अनुमान ता विपक्षके अभाववाला होणेतैं केवलान्वयी कह्या जावै है इति । केवलव्यतिरेकी—अनुमानका निरूपण करे हैं । तहां **असत्सपक्षः केवलव्यतिरेकी ।** अर्थ यह—जिस अनुमानविषे कोई भी सपक्ष होता नहीं सो अनुमान केवलव्यतिरेकी कह्या जावै है । जैसे **पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् यदितरेभ्यो**

न भिद्यते न तद्गन्धवत् यथाजलं न चेयं तथा तस्मान्न तथा। अर्थ यह—पृथिवी, जलादिक इतरपदार्थोंके भेदवाली है। गंधगुणवाली होणेतैं। जो जो पदार्थ जलादिक इतरपदार्थोंके भेदवाला नहीं होवै है। सो सो पदार्थ गंधवाला भी नहीं होवै है। जैसे जल ता इतरभेदवाला नहीं है। यातैं ता गंधवाला भी नहीं है। 'नचेयं तथा' इयं कहीये यह पृथिवी 'नच तथा' कहीये ता गंधके अभाववाली नहीं है। किंतु गंधवाली हीं है। 'तस्मान्न तथा' तस्मात्—कहीये ता गंधके अभावके अभाववाली होणेतैं अर्थात् गंधवाली होणेतैं 'न तथा' कहीये ता इतरभेदके अभाववाली नहीं है। किंतु ता इतरभेदके अभावके अभाववाली है अर्थात् ता इतरभेदवाली हीं है। तहां इस अनुमानविषे पृथिवीमात्र तौं पक्ष है और जल १, तेज २, वायु ३, आकाश ४, काल ५, दिक् ६, आत्मा ७, मन ८, गुण ९, कर्म १०, सामान्य ११, विशेष १२, समवाय १३ इन त्रयोदश पदार्थोंके जे त्रयोदश अन्योन्याभावरूप भेद हैं ते त्रयोदशभेद साध्य हैं। ते त्रयोदश भेद एकपृथिवीविषे हीं एकठे रहे हैं, ता पृथिवीतैं भिन्न किसी भी जलादिक पदार्थविषे ते त्रयोदशभेद एकठे रहते नहीं। यद्यपि जलादिकोंविषे तेजादिक द्वादशपदार्थोंके द्वादश भेद तौं रहे हैं। तथापि तिन जलादिकोंविषे आपणा भेद रहता नहीं। तहां इस उक्त अनुमानविषे ता पृथिवीरूप पक्षतैं भिन्न कोई भी पदार्थ ता त्रयोदश भेदरूप साध्यवाला नहीं है और निश्चितसाध्यवाले पदार्थकूं हीं पूर्व सपक्ष कह्या है। यातैं ता सपक्षके अभाववाला होणेतैं सो उक्तअनुमान केवलव्यतिरेकी कह्या जावै है इति॥

अब अन्वयव्यतिरेकी—अनुमानका निरूपण करे हैं। तहां सत्सपक्षविपक्षः अन्वयव्यतिरेकी। अर्थ यह—जिस अनुमानविषे सपक्ष तथा विपक्ष दोनों विद्यमान होवै हैं सो अनुमान अन्वयव्यतिरेकी कह्या जावै है। जैसे—पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वात्। यह—प्रसिद्ध अनुमान है, तहां महानस तौं ता वह्निरूप साध्यवाला होणेतैं सपक्ष है और ह्रद ता वह्निरूप साध्यके अभाववाला होणेतैं विपक्ष है। यातैं ता सपक्षविपक्षवाला होणेतैं सो प्रसिद्ध अनुमान अन्वयव्यतिरेकी कह्या जावै है इति। ईहां केईक ग्रन्थकार—तौं ता धूमादिरूप लिंगकूं हीं केवलान्वयी १, केवल व्यतिरेकी २, अन्वयव्यतिरेकी ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका कहे हैं। तहां केवलान्वयी हेतु—अन्वयमात्रव्यापितकं लिङ्गं केवलान्वयि। अर्थ यह—जिस हेतुरूप लिङ्गविषे साध्यकी केवल अन्वयव्याप्ति हीं रहे है, व्यतिरेक व्याप्ति रहती नहीं सो लिङ्ग केवलान्वयी कह्या जावै है। जैसे 'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत्' इस पूर्वउक्त अनुमानविषे ता प्रमेयत्वरूप हेतुविषे ता अभिधेयत्वरूप साध्यकी केवल अन्वयव्याप्ति हीं होवै है व्यतिरेकव्याप्ति होती नहीं। यातैं सो प्रमेयत्वरूप लिंग केवलान्वयी कह्या जावै है। अन्वयव्याप्तिका स्वरूप तथा व्यतिरेकव्याप्तिकास्वरूप पूर्वकथन करिआये हैं। सोई हीं ईहां सर्वत्र जानिलेणा इति। केवलव्यतिरेकी हेतु—व्यतिरेकमात्रव्यापितकं

लिङ्गं केवलव्यतिरेकी। अर्थ यह—जिस लिंगविषे साध्यकी केवल व्यतिरेकव्याप्ति हीं होवै है अन्वयव्याप्ति होती नहीं सो लिंग केवलव्यतिरेकी कह्या जावै है। जैसे—'पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गंधवत्त्वात्' इस पूर्वउक्त अनुमानविषे ता गंधवत्त्वरूप हेतुविषे ता इतर-भेदरूप साध्यकी केवल व्यतिरेकव्याप्ति हीं होवै है अन्वयव्याप्ति होती नहीं। यातैं सो गंधवत्त्वरूप लिंग केवलव्यतिरेकी कह्या जावै है इति। अन्वयव्यतिरेकी हेतु—अन्वयव्यतिरेक-व्याप्तिमाल्लिङ्गं अन्वयव्यतिरेकि। अर्थ यह—जो लिंग साध्यकी अन्वयव्याप्तिवाला भी होवै है तथा व्यतिरेकव्याप्तिवाला भी होवै है सो लिंग अन्वयव्यतिरेकी कह्या जावै है। जैसे 'पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वात्' इस प्रसिद्ध अनुमानविषे समरूप लिंग वह्निरूप साध्यकी अन्वयव्याप्तिवाला भी है तथा व्यतिरेकव्याप्तिवाला भी है। यातैं सो धूमरूप लिंग अन्वय-व्यतिरेकी कह्या जावै है इति॥

हेतुके सद्रूपताके साधक पक्षमें सत्त्व आदि पंचरूप—तहां सो अन्वयव्यतिरेकी लिंग तौं पक्ष-धर्मत्व १, सपक्षेसत्त्व २, विपक्षाव्यावृत्ति ३, अबाधितविषयत्व ४, असत्प्रतिपक्षत्व ५, इन पांचरूपों करिकै विशिष्ट हूआ हीं आपणे साध्य सिद्धि करे है। जैसे ता धूमरूप हेतुविषे पर्वतादिरूप पक्षविषे वृत्तित्वरूप पक्षधर्मत्व भी है। तथा महानसादिरूप सपक्षविषे वृत्ति-त्वरूप सपक्षे सत्त्व भी है। तथा ह्रदरूप विपक्षविषे अवृत्तित्वरूप विपक्षाव्यावृत्ति भी है। तथा नहीं बाधित है साध्यरूपविषय जिस हेतुका ताका नाम अबाधितविषयत्व है। सो अबाधितविषयत्व भी ता धूमविषे रहे है। और साध्यके अभावका साधक जो दूसरा हेतु है ताका नाम सत्प्रतिपक्ष है। सो सत्प्रतिपक्ष जिस हेतुका नहीं होवै है सो हेतु असत्प्रतिपक्ष कह्या जावै है। ऐसा असत्प्रतिपक्षत्व भी ता धूमरूप हेतुविषे है। इस रीतिसैं सो अन्वयव्यतिरेकी धूमरूप लिंग तिन पांचरूपों करिकै विशिष्ट होवै है। और केवलान्वयिलिंग तौं 'विपक्षाव्यावृत्ति' इस धर्मकूं छोडिकै दूसरे च्यारिरूपोंकरिकै विशिष्ट हूआ हीं आपणे साध्यकी सिद्धिकरे है। जैसे पूर्वउक्तप्रमेयत्व हेतु है ता प्रमेयत्वहेतुका कोई विपक्ष है नहीं जिसविषे अवृत्ति होवै। और केवलव्यतिरेकी लिंग भी 'सपक्षे सत्त्व' इस रूपकूं छोडिकै दूसरे च्यारि रूपों करिकै विशिष्ट हूआ हीं आपणे साध्यकी सिद्धि करे है। जैसे पूर्वउक्त अनुमानविषे गंधवत्त्वहेतु है। ता गंधवत्त्व हेतुका कोई सपक्ष है नहीं जिसविषे वृत्ति होवै इति। व्यतिरेक व्याप्तिको न माननेहारे उदयनाचार्यका मत—यह है सर्वत्र अन्वयव्याप्तिका ज्ञान हीं अनुमितिका कारण होवै है। व्यतिरेकव्याप्तिका ज्ञान अनुमितिका कारण होता नहीं यातैं 'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः' या प्रकारके अन्वयसहचारदर्शनतैं तथा 'यत्र यत्र वन्ह्यभावः तत्र तत्र धूमाभावः' या प्रकारके व्यतिरेक सहचारदर्शनतैं ता अन्वयव्याप्तिका हीं ज्ञान होवै है। ता व्यतिरेकव्याप्तिका ज्ञान होता नहीं। तहां जिस अन्वयव्याप्तिका केवल

ता अन्वयसहचार मात्रतैं हीं ज्ञान हूआ है । ता अन्वयव्याप्तिवाला हेतु तौं केवलान्वयी कह्या जावै है । और जिस अन्वयव्याप्तिका केवल व्यतिरेक सहचारमात्रतैं हीं ज्ञान हूआ है तिस अन्वयव्याप्तिवाला हेतु केवलव्यतिरेकी कह्या जावै है । और जिस अन्वयव्याप्तिका ता अन्वयसहचार तथा व्यतिरेकसहचार दोनोंतैं ज्ञानहूआ है । ता अन्वयव्याप्तिवाला हेतु अन्वयव्यतिरेकी कह्या जावै है । इस प्रकार ता व्यतिरेकव्याप्तितैं विना हीं ता व्यतिरेक सहचारकूं लैके ता हेतुरूप लिंगका केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी अन्वयव्यतिरेकी यह तीन प्रकारका विभाग संभव होइ सके है । यातैं ता त्रिविधविभाग वास्तै भी ता व्यतिरेक व्याप्तिका अंगीकार निष्फल है इति । और केईकग्रन्थ कार—तौं ता उक्तअनुमानकूं पूर्ववत् १, शेषवत् २, सामान्यतोदृष्ट ३, इस भेद करिकै तीन प्रकारका माने हैं । पूर्ववत्—तहां **कारणलिङ्गकमनुमानं पूर्ववत्** । अर्थ यह—पूर्वनाम कारणका है, सो कारण है लिंग जिस विषे ऐसा जो अनुमान है सो अनुमान पूर्ववत् कह्या जावै है । अर्थात् जहां करणरूप लिंग करिकै कार्यरूप साध्यकी अनुमिति होवै है सो अनुमान पूर्ववत् कह्या जावै है । जैसे मेघोंकी घटाविशेष करिकै वर्षाकी अनुमिति होवै है, तहां वर्षा तौं कार्य है, और मेघोंकी घटाविशेष कारण है ता मेघोंकी घटारूप कारण करिकै अबी वर्षा होवैंगी या प्रकारकी ता वर्षारूप कार्यकी अनुमिति होवै है इति । और केईकग्रन्थकार—तौं ईहां पूर्व शब्द करिकै अन्वयव्याप्तिका ग्रहण करे हैं । ता अन्वयव्याप्तिवाला अनुमान पूर्ववत् कह्या जावै है । जैसे 'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात् पटवत्' यह पूर्व उक्त केवलान्वयी अनुमान अन्वयव्याप्तिवाला होणेतैं पूर्ववत् कह्या जावै है इति । अब दूसरे शेषवत् अनमानका निरूपण करे हैं । शेषवत्—तहां **कार्यलिङ्गकमनुमानं शेषवत्** । अर्थ यह—ईहां शेषनाम कार्यका है, सो कार्य है लिंग जिसविषे ऐसा जो अनुमान है सो अनुमान शेषवत् कह्या जावै है । अर्थात् जहां कार्यरूप लिंग करिकै कारणरूप साध्यकी अनुमिति होवै है सो अनुमान शेषवत् कह्या जावै हैं । जैसे नदीके जलकी वृद्धिकूं देखिकै इस पुरुषकूं ता नदीके आगमन देशाविषे वृष्टिकी अनुमिति होवै है । तहां सा वर्षा तौं कारण है और सा नदीके जलकी वृद्धि कार्य है । ता जलकी वृद्धिरूप कार्य करिकै ता नदीके आगमन देशाविषे वृष्टिरूप कारणकी अनुमिति होवै है । इस अनुमानकूं शेषवत् कहे हैं इति । और केईक ग्रंथकार तौं ता शेषशब्द करिकै व्यतिरेकव्याप्तिका ग्रहण करे हैं ता व्यतिरेक व्याप्तिवाला अनुमान शेषवत् कह्या जावै है । जैसे 'पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्' यह पूर्व उक्त केवलव्यतिरेकी अनुमान व्यतिरेकव्याप्तिवाला होणेतैं शेषवत् कह्या जावै है इति ।

सामान्यतोदृष्ट—अनुमानका निरूपण करे है । तहां **कार्यकरणभिन्नलिङ्गकमनुमानं सामान्यतोदृष्टम्** । अर्थ यह—जिस अनुमानविषे कार्यरूपलिंग भी नहीं होवै है तथा कारणरूप लिङ्ग भी नहीं है किन्तु ता कार्यकारणतैं भिन्न हीं लिङ्ग होवै है सो अनुमान सामा-

न्यतो दृष्ट अनुमान कह्या जावै है। जैसे 'इदं द्रव्यं पृथिवीत्वात्' इस अनुमानविषे पृथिवीत्वरूप हेतु करिकै द्रव्यत्वरूप साध्यकी सिद्धि करी जावै है । तहां सो पृथिवीत्वजातिरूपलिंग ता द्रव्यत्वजातिरूप साध्यका कार्य भी नहीं है तथा कारण भी नहीं है। यातैं यह अनुमान सामान्यतोदृष्ट अनुमान कह्या जावै है इति । और केईक ग्रन्थकार– तौ यह कहे हैं जिस अनुमानविषे अन्वयव्याप्ति तथा व्यतिरेकव्याप्ति दोनों होवै हैं सो अन्वयव्यतिरेकी अनुमान हीं सामान्यतोदृष्ट कह्या जावै है । जैसे 'पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वात्' यह पूर्वउक्त अन्वयव्यतिरेकी अनुमान सामान्यतोदृष्ट कह्या जावै है इति ।

हेत्वाभास ।

तहां पूर्व सत्हेतुवोंका निरूपण कऱ्या । अब प्रसंगतैं असत्हेतुवोंका निरूपण करे हैं अर्थात् हेत्वाभासोंका निरूपण करे है । तहां जो हेतु व्याप्तिपक्षधर्मतादिरूप सद्धेतुके लक्षणतैं रहित होवै है तथा हेतुकी न्यांई प्रतीत होवै है सो हेतु हेत्वाभास कह्या जावै है । ता हेत्वाभासतैं किसी भी साध्यकी सिद्धि होती नहीं । तहां लक्षण–**अनुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयः हेत्वाभासः** । अर्थ यह–अनुमितिका वा अनुमितिके करणरूप व्याप्तिज्ञानका तथा परामर्शका प्रतिबन्धक ऐसा जो यथार्थज्ञान है ता ज्ञानका जो विषय होवै है सो हेत्वाभास कह्या जावै है। इस लक्षणका अर्थ आगे हेत्वाभासोंके उदाहरणविषे स्पष्ट होवैगा इति। हेत्वाभासके भेद–इस उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो हेत्वाभास सव्यभिचार १, विरुद्ध २, सत्प्रतिपक्ष ३, असिद्ध ४, बाधित ५ इस भेद करिकै पंचप्रकारका होवै है। अनैकान्तिकके भेद–तहां प्रथम सव्यभिचारनामा हेत्वाभासकूं प्राचीननैयायिक अनैकांतिक इस नाम करिकै कथन करे है। सो सव्यभिचारनामा अनैकांतिक साधारण १, असाधारण २, अनुपसंहारी ३, इस भेद करिकै तीनप्रकारका होवै है । अथ साधारण लक्षणम्–**साध्याभाववद्वृत्तिर्हेतुः साधारणः** । अर्थ यह–जो हेतु आपणे साध्यके अभाववाले अधिकरणविषे रहे है सो हेतु साधारण कह्या जावै है । जैसे किसी पुरुषनैं यह अनुमान कऱ्या । **पर्वतः वह्निमान् प्रमेयत्वात् महानसवत्** । अर्थ यह–यह पर्वत वह्निवाला है, प्रमेयरूप होणेतैं जो जो प्रमेय होवै है, सो सो वह्निवाला हीं होवै है। जैसे महानस प्रमेयत्वधर्मवाला होणेतैं वह्निवाला है, तैसे ता प्रमेयत्वधर्मवाला होणेतैं यह पर्वत भी वह्निवाला हीं होवैगा इति । ईहां सो प्रमेयत्वरूप हेतु आपणे वह्निरूप साध्यके अभाववाले ह्रदविषे भी रहे है । यातैं सो प्रमेयत्वहेतु साधारण अनैकांतिक कह्या जावै है । तहां इस उक्त अनुमानविषे 'पर्वतो वह्निमान्' इस अनुमितिका करणरूप 'वह्निव्याप्यं प्रमेयत्वम्' या प्रकारका व्याप्तिज्ञान होवैगा ता व्याप्तिज्ञानकी प्रतिबन्धकता 'वन्ह्यभाववद्वृत्तिप्रमेयत्वम्' इस ज्ञानविषे होवैगी और यह ज्ञान यथार्थ भी है ऐसे व्याप्तिज्ञानके प्रतिबन्धकीभूत यथार्थज्ञानकी विषयता ता प्रमेयत्व हेतुविषे है । यातैं सो उक्त हेत्वाभासका लक्षण

ता प्रमेयत्वहेतुविषे संभवै है । इस प्रकार आगे वक्ष्यमाण असत् हेतुवोंविषे भी ता उक्त हेत्वाभासके लक्षणका समन्वय यथायोग्य जानिलेणा इति । अब असाधारण लक्षणम्–**सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तो हेतुः असाधारणः** । अर्थ यह–निश्चितसाध्यवाले जितनैंकी सपक्ष हैं तथा निश्चितसाध्याभाववाले जितनैंकी विपक्ष हैं तिन सर्वसपक्षोंविषे तथा तिन सर्व विपक्षोंविषे जो हेतु अवृत्ति होवै है सो हेतु असाधारण कह्या जावै है । जैसे **शब्दः नित्यः शब्दत्वात्** । अर्थ यह–शब्द नित्य है शब्दत्वधर्मवाला होणेतैं । इस अनुमानविषे नित्यत्वरूप साध्यवाले आकाशादिक सपक्ष कहे जावै हैं। और ता नित्यत्वरूप साध्यके अभाववाले घटादिक विपक्ष कहे जावै हैं तिन सपक्षोंविषे तथा विपक्षोंविषे सो शब्दत्वहेतु रहता नहीं, किंतु केवल शब्दरूप पक्षविषे हीं सो शब्दत्वहेतु रहे है । यातैं सो शब्दत्वहेतु असाधारण कह्या जावै है। तहां ता शब्दत्वहेतुविषे साध्यवत् अवृत्तित्वके निश्चयहूए साध्यवत्वृत्तित्वरूप व्याप्तिका ज्ञान संभवता नहीं । यातैं सो असाधारण हेतुका ज्ञान व्याप्तिज्ञानका प्रतिबंधक होवै है इति ।

अथ अनुपसंहारी लक्षणम्–**अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितो हेतुः अनुपसंहारी**।अर्थ यह–जो हेतु अन्वयदृष्टांततैं भी रहित होवै है तथा व्यतिरेकदृष्टांततैं भी रहित होवै है सो हेतु अनुपसंहारी कह्या जावै है। जैसे–**सर्वं अनित्यं प्रमेयत्वात्** । अर्थ यह–सर्वपदार्थमात्र अनित्य होणेयोग्य हैं प्रमेयत्वधर्मवाले होणेतैं । इस अनुमानविषे सर्वपदार्थमात्रकूं पक्षरूप होणेतैं ता पक्षतैं भिन्न कोई अन्वयदृष्टांत तथा व्यतिरेकदृष्टांत है नहीं। यातैं सो प्रमेयत्वहेतु अनुपसंहारी कह्या जावै है। इस अनुपसंहारीहेतुका ज्ञान भी ता व्याप्तिके संशयकी उत्पत्ति द्वारा ता व्याप्तिके ज्ञानका हीं प्रतिबंधक होवै है इति । अब प्रसंगतैं दृष्टांतका लक्षण–कहे हैं । **वादिप्रतिवादिनोः साध्यसाधनोभयप्रकारकतदभावद्वयप्रकारकान्यतरनिश्चयविषयः दृष्टान्तः**। अर्थ यह–वादी प्रतिवादी दोनोंका जो साध्य साधन उभयप्रकारक निश्चय है। अथवा साध्याभाव साधनाभाव उभयप्रकारक निश्चय है ता निश्चयका विषय जो पदार्थ है सो पदार्थ दृष्टांत कह्या जावै है । जैसे वादीप्रतिवादी दोनोंकूं महानसविषे 'महानसो वह्निमान् धूमवांश्च' या प्रकारका वह्निरूप साध्यप्रकारक तथा धूमरूप साधन प्रकारक निश्चय होवै है तथा ह्रदविषे 'ह्रदः वन्ह्यभाववान् धूमाभाववांश्च' या प्रकारका वह्निरूप साध्याभावप्रकारक तथा धूमरूप साधनाभावप्रकारक निश्चय होवै है । तहां प्रथमनिश्चयका विषय तौं महानस है और द्वितीयनिश्चयका विषय ह्रद है। यातैं ता प्रसिद्ध अनुमानविषे सो महानस तथा ह्रद दृष्टांत कह्या जावै है इति । दृष्टांतके भेद–तहां सो दृष्टांत साधर्म्य दृष्टांत १, वैधर्म्यदृष्टांत २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है ।

साधर्म्य दृष्टांत–तहां जो दृष्टांत निश्चित साध्यवाला तथा निश्चित साधनवाला होवै है सो दृष्टांत तौं साधर्म्य दृष्टांत कह्या जावै है । जैसे–ता प्रसिद्ध अनुमानविषे महानस साधर्म्य दृष्टांत है । वैधर्म्य दृष्टान्त–जो दृष्टांत निश्चित साध्याभाववाला तथा निश्चित साधनाभाववाला

होवै है सो दृष्टन्त वैधर्म्यदृष्टांत कह्या जावै है । जैसे ता प्रसिद्ध अनुमानाविषे हृद वैधर्म्य दृष्टान्त है । तहां साधर्म्यदृष्टांतकूं तौं अन्वयदृष्टांत कहे हैं और वैधर्म्यदृष्टांतकूं व्यतिरेक दृष्टांत कहे हैं इति ॥ १ ॥ विरुद्ध–अब दूसरे विरुद्धनामा हेत्वाभासका निरूपण करे हैं–**साध्याभावव्याप्तो हेतुः विरुद्धः** । अर्थ यह–जो हेतु आपणे साध्यकी व्याप्तिवाला नहीं होवै है किन्तु आपणे साध्यके अभावकी व्याप्तिवाला होवै है सो हेतु विरुद्ध कह्या जावै है । जैसे–**शब्दः नित्यः कृतकत्वात्** । अर्थ यह–शब्द नित्य होणेयोग्य है कार्यत्वरूप कृतकत्ववाला होणेतैं । इस अनुमानविषे कृतकत्वरूप हेतु नित्यत्वरूप साध्यके अभाववाले घटादिकोंविषे वृत्ति होणेतैं ता नित्यत्वरूप साध्यकी व्याप्तिवाला नहीं है । किंतु 'यत्र यत्र कृतकत्वं तत्र तत्र अनित्यत्वं' इस रीतिसैं सो कृतकत्वहेतु ता नित्यत्वरूप साध्यके अभावरूप अनित्यत्वके व्याप्तिवाला हीं है यातैं सो कृतकत्वहेतु विरुद्ध कह्या जावै है । इस विरुद्धहेतुका ज्ञान साक्षात् अनुमितिका हीं प्रतिबन्धक होवै है इति ॥ २ ॥

अब तीसरे सत्प्रतिपक्षहेत्वाभासका निरूपण करे हैं । **साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य सः सत्प्रतिपक्षः** । अर्थ यह–जिस हेतुके साध्यके अभावका साधक दूसरा प्रतिपक्षहेतु विद्यमान होवै है सो हेतु सत्प्रतिपक्ष कह्या जावै है । इसी सत्प्रतिपक्षकूं प्रकरणसम इस नाम करिकै भी कथन करे हैं । जैसे **शब्दः नित्यः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत्** । अर्थ यह–शब्द नित्य होणे योग्य है श्रावणत्ववाला होणेतैं अर्थात् श्रोत्रइंद्रियजन्य श्रावणप्रत्यक्षका विषय होणेतैं जो जो श्रावणप्रत्यक्षका विषय होवै है सो सो नित्य हीं होवै है । जैसे शब्दवृत्ति शब्दत्वजाति ता श्रावणप्रत्यक्षका विषय होणेतैं नित्य हैं । तैसे सो शब्द भी ता श्रावणप्रत्यक्षका विषय होणेतैं नित्य होवैगा, इस अनुमान करिकै मीमांसक शब्दविषे नित्यत्व सिद्ध करे हैं । और नैयायिक तौं **शब्दः अनित्यः कार्यत्वात् घटवत्** । अर्थ यह–शब्द अनित्य होणेयोग्य है कार्यरूप होणेतैं जो जो पदार्थ कार्यरूप होवै है सो सो पदार्थ अनित्य हीं होवै है । जैसे कार्यरूप होणेतैं घट अनित्य है । तैसे कार्यरूप होणेतैं सो शब्द भी अनित्य हीं होवैगा । इस अनुमान करिकै ता शब्दविषे अनित्यत्व सिद्धकरे हैं । तहां मीमांसकोंके श्रावणरूपहेतुका जो शब्दनिष्ठनित्यत्वरूपसाध्य है ता नित्यत्वसाध्यके अनित्यत्वरूप अभावका साधक सो नैयायिकोंका कार्यत्वरूप हेतु विद्यमान है, यातैं सो मीमांसकोंका श्रावणत्वहेतु सत्प्रतिपक्ष कह्या जावै है । इस सत्प्रतिपक्षहेतुका ज्ञान भी साक्षात् अनुमितिका हीं प्रतिबंधक होवै है इति । असिद्ध–अब चतुर्थ असिद्धनामा हेत्वाभासका निरूपण करे हैं । इसके भेद–सो असिद्धहेत्वाभास आश्रयासिद्ध १, स्वरूपासिद्ध २, व्याप्यत्वासिद्ध ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है ।

आश्रयासिद्ध–तहां **पक्षतावच्छेदकाभावको हेतुः आश्रयासिद्धः** । अर्थ यह–जिस हेतुके पक्षताके अवच्छेदक धर्मका अभाव होवै है सो हेतु आश्रयासिद्ध कह्या जावै है । जैसे [गग-

नारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात् सरोजारविन्दवत्। अर्थ यह—आकाशका अरविंद कहीये कमल सुगंधवाला है अरविंद होणेतैं जो जो अरविंद होवै है सो सो सुरभि कहीये सुगंधवाला हीं होवै है जैसे जलके तलावविषे उत्पन्नहूआ अरविंद अरविंदरूप होणेतैं सुरभि होवै है। तैसे सो आकाशका अरविंद भी अरविंदरूप होणेतैं सुरभि हीं होवैगा। इस अनुमानविषे अरविंदत्वरूप हेतुका पक्षभूत जो गगनारविंद है ताकेविषे गगनीयत्वरूप पक्षता अवच्छेकधर्म है नहीं। यातैं सो अरविंदत्वहेतु आश्रयासिद्ध कह्या जावै है। तहां अरविन्दविषे गगनीयत्वके अभाव निश्चयहूए ता गगनीयत्वविशिष्ट अरविंदविषे ता सौरभगंधकी अनुमिति होती नहीं। यातैं इस आश्रयासिद्ध हेतुका ज्ञान भी साक्षात् अनुमितिका हीं प्रतिबंधक होवै है इति।

अब स्वरूपासिद्धका—निरूपण करे हैं तहां—पक्षावृत्तिर्हेतुः स्वरूपासिद्धः। अर्थ यह—जो हेतु आपणे पक्षविषे नहीं रहे है सो हेतु स्वरूपासिद्ध कह्या जावै है। जैसे शब्दः गुणः चाक्षुषत्वात् रूपवत्। अर्थ यह—शब्द गुण होणेयोग्य है चाक्षुष होणेतैं। अर्थात् चक्षुइंद्रियजन्य चाक्षुषप्रत्यक्षका विषय होणेतैं रूपगुणकी न्यांई तहां इस अनुमानविषे सो चाक्षुषत्वरूप हेतु ता शब्दरूप पक्षविषे वर्त्तता हीं नहीं। काहेतैं ? सो शब्द चक्षुइंद्रियजन्यचाक्षुष प्रत्यक्षका विषय होता नहीं, किंतु सो शब्द श्रोत्रइंद्रियजन्य श्रावणप्रत्यक्षका हीं विषय होवै है। यातैं सो चाक्षुषत्वरूप हेतु ता शब्दरूप पक्षविषे अवृत्ति होणेतैं स्वरूपासिद्ध कह्या जावै है। इस स्वरूपासिद्ध हेतुका ज्ञान ता उक्तपरामर्शका प्रतिबन्धक होवै है इति।

स्वरूपासिद्धके भेद—सो स्वरूपासिद्ध हेतु शुद्धासिद्ध १, भागासिद्ध २, विशेषणासिद्ध ३, विशेष्यासिद्ध ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। शुद्धासिद्ध—तहां जो हेतु आपणे पक्षमात्रविषे स्वरूपतैं नहीं रहे है। सो हेतु शुद्धासिद्ध कह्या जावै है। जैसे सो पूर्वउक्त चाक्षुषत्वहेतु शब्दमात्रविषे स्वरूपतैं रहता नहीं यातैं सो चाक्षुषत्वहेतु शुद्धासिद्ध कह्या जावै है इति। भागासिद्ध—और जो हेतु आपणे पक्षके एकभागविषे तौं रहे है और एकभागविषे नहीं रहे है सो हेतु भागासिद्ध कह्या जावै है। जैसे पृथिव्यादयश्चत्वारः परमाणवः नित्याः गन्धवत्त्वात्। अर्थ यह—पृथिवी, जल, तेज, वायु इन च्यारिभूतोंके परमाणु नित्य हैं गंधगुणवाले होणेतैं। इस अनुमानविषे पृथिवीआदिक च्यारिभूतोंके परमाणु पक्ष हैं ता सर्वपक्षविषे सो गंधवत्त्वरूप हेतु रहता नहीं। किंतु केवल पार्थिवपरमाणुवोंविषे हीं सो गंधवत्त्व रहे है। यातैं ता सर्वपरमाणुरूप पक्षके जलादिपरमाणुरूप एकभागविषे अवृत्ति होणेतैं सो गंधवत्त्वहेतु भागासिद्ध कह्या जावै है इति। विशेषणासिद्ध—और जिस हेतुका विशेषण पक्षविषे अवृत्ति होवै है सो हेतु विशेषणासिद्ध कह्या जावै है। जैसे वायुः प्रत्यक्षः रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वात् घटवत्। अर्थ यह—वायुप्रत्यक्ष होणेयोग्य है रूप गुणवाला हूआ स्पर्शगुणवाला होणेतैं घटकी न्यांई। इस अनुमानविषे रूपवत्त्वविशिष्ट स्पर्शवत्त्व हेतु

है। तहां ता वायुरूप पक्षविषे यद्यपि स्पर्शवत्त्वरूप विशेष्य तौं रहे है। तथापि रूपवत्त्वविशेषण रहता नहीं और जहां विशेषणका अभाव होवै है। तहां ता विशेषणविशिष्टका भी अभाव हीं होवै है। यातैं सो रूपवत्त्व विशिष्ट स्पर्शवत्त्वरूप हेतु विशेषणासिद्ध कह्या जावै है इति। विशेष्यासिद्ध—और जिस हेतुका विशेष्यभाग पक्षविषे नहीं रहे है सो हेतु विशेष्यासिद्ध कह्या जावै है। जैसे ता पूर्वउक्त अनुमानविषे हीं 'स्पर्शवत्त्वे सति रूपवत्त्वात्' इस प्रकारतैं स्पर्शवत्त्वविशिष्टरूपवत्त्व हेतुके राखणेतैं ता वायुरूप पक्षविषे रूपवत्त्वविशेष्यका अभाव होणेतैं ता विशिष्टहेतुका भी अभाव हीं होवैगा। यातैं सो स्पर्शवत्त्वविशिष्ट रूपवत्त्वहेतु विशेष्यासिद्ध कह्या जावै है इति। अब व्याप्यत्वासिद्धका—निरूपण करे हैं। तहां सोपाधिको हेतुः व्याप्यत्वासिद्धः। अर्थ यह—जो हेतु उपाधिवाला होवै है सो हेतु व्याप्यत्वासिद्ध कह्या जावै है। जैसे पर्वतः धूमवान् वह्निमत्त्वात् महानसवत्। अर्थ यह—यह पर्वत धूमवाला है वह्निवाला होणेतैं महानसकी न्यांई। इस अनुमानविषे वह्निमत्त्वरूप हेतु आर्द्रइंधनसंयोगरूप उपाधिवाला होणेतैं व्याप्यत्वासिद्ध कह्या जावै है। तहां गीले काष्ठका नाम आर्द्रइंधन है ता आर्द्रइंधनका जो संयोगसम्बन्ध है सोई हीं ता वह्निमत्त्व हेतुविषे उपाधि है इति।

उपाधि।

अब ता उपाधिका लक्षण—कहे हैं। साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकः उपाधिः। अर्थ यह—जो पदार्थ साध्यका व्यापक होवै है तथा हेतुरूप साधनका अव्यापक होवै है। सो पदार्थ उपाधि कह्या जावै है। जैसे ता उक्त अनुमानविषे सो आर्द्रइंधनसंयोग ता धूमरूप साध्यका व्यापक भी है तथा ता वह्निरूप साधनका अव्यापक भी है। यातैं ता उक्त अनुमानविषे सो आर्द्रइंधनसंयोग उपाधि कह्या जावै है। तहां जहां जहां सो धूम होवै है तहां तहां सो आर्द्रइंधनसंयोग अवश्य होवै है। ता आर्द्रइंधनसंयोगतैं विना सो धूम होता नहीं। इस प्रकारतैं ता आर्द्रइंधनसंयोगकूं ता धूमरूप साध्यका व्यापकपणा है और जहां जहां सो वह्निरूप साधन होवै है तहां तहां सो आर्द्रइंधनसंयोग नियमतैं होता नहीं। जिस कारणतैं अग्निविषे तप्तहूए लोहपिंडविषे ता वह्निरूप साधनके विद्यमानहूए भी सो आर्द्रइंधनसंयोग रहता नहीं। इस प्रकारतैं ता आर्द्रइंधनसंयोगकूं ता वह्निरूप साधनका अव्यापकपणा है। यातैं सो आर्द्रइंधनसंयोग उपाधि कह्या जावै है। ता आर्द्रइंधनसंयोगरूप उपाधिवाला होणेतैं सो उक्त वह्निमत्त्वरूप हेतु व्याप्यत्वासिद्ध कह्या जावै है इति।

उपाधिके भेद—इस प्रकारके उक्त लक्षण करिकै लक्षित सो उपाधि केवल साध्यव्यापक १, पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक २, साधनावच्छिन्न—साध्यव्यापक ३, उदासीनधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका होवै है। साध्यव्यापक—तहां 'पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वात्' इस उक्त अनुमानविषे जो पूर्व आर्द्रइंधनसंयोगरूप उपाधि कह्या है। सो उपाधि तौं केवल साध्यव्यापक उपाधि है। तैसे क्रत्वन्तर्वर्त्तिनी हिंसा अधर्मसाधनं

हिंसात्वात् क्रतुबाह्यहिंसावत् । अर्थ यह--यज्ञके अंतर्वर्ति जा पशुकी हिंसा है सा हिंसा अधर्मका साधन है हिंसारूप होणेतैं । जा जा हिंसा होवै है सा सा अधर्मका हीं साधन होवै है । जैसे यज्ञतैं बाह्य हिंसा हिंसारूप होणेतैं अधर्मका हीं साधन होवै है । तैसे यज्ञके अंतर्वर्त्ति हिंसा भी हिंसारूप होणेतैं अधर्मका हीं साधन होवैगी । इस सांख्यीयोंके अनुमानविषे निषिद्धत्व उपाधि है । तहां जहां जहां अधर्मका साधनत्व होवै है तहां तहां शास्त्र करिकै निषिद्धत्व अवश्य होवै है । जैसे यज्ञतैं बाह्य हिंसाविषे अधर्मका साधनत्व होणेतैं निषिद्धत्व भी है । इस रीतिसैं ता निषिद्धत्वउपाधिकूं ता अधर्मसाधनत्वरूप साध्यका व्यापकपणा है और जहां जहां हिंसात्व होवै है तहां तहां सो निषिद्धत्व नियमतैं होता नहीं । जैसे यज्ञसंबंधी हिंसाविषे ता हिंसात्वरूप साधनके विद्यमानहूए भी सो निषिद्धत्व रहता नहीं । किंतु 'पशुना यजेत' इत्यादिक श्रुतिकरिकै विहितत्व हीं रहे है । और 'न हिंस्यात्सर्वा भूतानि' यह श्रुति भी यज्ञसंबंधी हिंसातैं भिन्न सर्वभूतोंके हिंसाका निषेध करे है । इस प्रकारतैं ता निषिद्धत्व उपाधिकूं ता हिंसात्वरूप साधनका अव्यापकपणा भी है । सो निषिद्धत्वउपाधि भी केवल साध्यव्यापक कह्या जावै है इति । पक्षधर्मावच्छिन्न साध्यव्यापक -और जो उपाधि केवलसाध्यका व्यापक नहीं होवै है । किंतु पक्षवृत्ति धर्म करिकै अवच्छिन्न जो साध्य है ता साध्यका व्यापक होवै है सो उपाधि पक्षधर्मावच्छिन्न साध्यव्यापक कह्या जावै है । जैसे वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात् घटवत् । अर्थ यह--वायु प्रत्यक्ष है प्रत्यक्षस्पर्शका आश्रय होणेतैं । जो जो द्रव्य प्रत्यक्षस्पर्शका आश्रय होवै है सो सो द्रव्य प्रत्यक्ष हीं होवै है । जैसे घटरूप द्रव्य है इस अनुमानविषे उद्भूतरूपवत्त्व उपाधि है । तहां जहां जहां प्रत्यक्षत्व होवै तहां तहां उद्भूतरूपवत्त्व होवै है या प्रकारतैं ता उद्भूतरूपवत्व उपाधिकूं केवल प्रत्यक्षत्वरूप साध्यका व्यापकपणा तौं संभवता नहीं । जिस कारणतैं रूपादिकोंविषे ता प्रत्यक्षत्वरूप साध्यके विद्यमान हूए भी सो उद्भूतरूपवत्त्व उपाधि रहता नहीं । किंतु ता वायुरूप पक्षविषे वर्त्तणेहारा जो बहिर्द्रव्यत्वरूप धर्म है । ता बहिर्द्रव्यत्वरूप पक्षधर्म करिकै अवच्छिन्न जो प्रत्यक्षत्वरूप साध्य है ता साध्यका हीं सो उद्भूतरूपवत्त्व उपाधि व्यापक है । तहां जहां जहां बहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्न प्रत्यक्षत्व रहे है । तहां तहां सो उद्भूतरूपवत्त्व अवश्य करिकै रहे है । जैसे घटादिक ता बहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्ववाले होणेतैं उद्भूतरूपवाले भी हैं । इस प्रकारतैं ता उद्भूतरूपवत्त्व उपाधिकूं ता बहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्न प्रत्यक्षत्वरूप साध्यका व्यापकपणा है । और जहां जहां प्रत्यक्षस्पर्शका आश्रयत्व रहे है । तहां तहां सो उद्भूतरूपवत्त्व नियमतैं रहता नहीं । जैसे वायुविषे ता प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वके विद्यमानहूए भी सो उद्भूतरूपवत्व रहता नहीं । इस प्रकारतैं ता उद्भूतरूपवत्त्व उपाधिकूं ता प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वरूप साधनका अव्यापकपणा होवै हैं । यातैं ता उक्त अनुमान विषे सो उद्भूतरूपवत्व पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक उपाधि कह्या जावै है इति ।

साधनावच्छिन्न साध्यव्यापक—और जो उपाधि हेतुरूप साधन करिकै अवच्छिन्न साध्यका व्यापक होवै है । सो उपाधि साधनावच्छिन्न साध्यव्यापक कह्या जावै है। जैसे ध्वंसः विनाशी जन्यत्वात् घटवत् । अर्थ यह—ध्वंस विनाशवान् है जन्य होणेतैं घटकी न्यांई इस अनुमानविषे भावत्व उपाधि है । तहां जहां जहां विनाशित्व होवै है। तहां तहां भावत्व होवै है । इस प्रकारतैं ता भावत्वउपाधिकूं केवलविनाशित्वरूप साध्यका व्यापकपणा तौं संभवता नहीं । जिस कारणतैं प्रागभावविषे ता विनाशित्वके विद्यमानहूए भी सो भावत्व है नहीं । किंतु जन्यत्वरूप साधन करिकै अवच्छिन्न जो विनाशित्व है। ता विनाशित्व साध्यका हीं सो भावत्व व्यापक है तहां जहां जहां सो जन्यत्वविशिष्ट विनाशित्व रहे है । तहां तहां सो भावत्व अवश्य करिकै रहे है। जैसे घटादिक ता जन्यत्वविशिष्टविनाशित्ववाले होणेतैं ता भावत्ववाले भी हैं इस प्रकारतैं ता भावत्वरूप उपाधिकूं ता जन्यत्वरूप साधनावच्छिन्न विनाशित्वरूप साध्यका व्यापकपणा है । और जहां जहां सो जन्यत्व रहे है तहां तहां सो भावत्व नियमतैं रहता नहीं। जिस कारणतैं प्रध्वंसाभाव विषे ता जन्यत्वके विद्यमानहूए भी सो भावत्व रहता नहीं। इस प्रकारतैं ता भावत्वउपाधिकूं ता जन्यत्वरूप साधनका अव्यापकपणा है । यातैं ता उक्त अनुमानविषे सो भावत्वरूप उपाधिसाधनावच्छिन्न साध्यव्यापक कह्या जावै है इति ।

उदासीन धर्मावच्छिन्न साध्यव्यापक—और जो उपाधि किसी उदासीनधर्म करिकै अवच्छिन्न साध्यक व्यापका होवै है सो उपाधि उदासीनधर्मावच्छिन्न साध्यव्यापक कह्या जावै है। जैसे प्रागभावः विनाशी प्रमेयत्वात् घटवत् । अर्थ यह—प्रागभाव विनाशी है। प्रमेय होणेतैं घटकी न्यांई इस अनुमानविषे भी भावत्व उपाधि है। तहां जहां जहां विनाशित्व रहे है तहां तहां भावत्व रहे है । इस प्रकारतैं ता भावत्व उपाधिकूं केवलविनाशित्वरूप साध्यका व्यापकपणा तौं संभवता नहीं। जिस कारणतैं प्रागभावविषे ता विनाशित्वके विद्यमानहूए भी सो भावत्व रहता नहीं, किंतु जन्यत्वधर्म करिकै अवच्छिन्न विनाशित्वरूप साध्यका हीं सो भावत्व व्यापक है । तहां जहां जहां जन्यत्वविशिष्टविनाशित्व रहे है । तहां तहां सो भावत्वधर्म अवश्य करिकै रहे है । जैसे घटादिक ता जन्यत्वविशिष्ट विनाशित्ववाले होणेतैं ता भावत्ववाले भी हैं । इस प्रकारतैं ता भावत्वउपाधिकूं ता जन्यत्व धर्मावच्छिन्न विनाशित्वरूप साध्यका व्यापकपणा है । और जहां जहां प्रमेयत्व रहै है तहां तहां सो भावत्व नियमतैं रहता नहीं । जिस कारणतैं प्रागभावविषे ता प्रमेयत्वधर्मके विद्यमानहूए भी सो भावत्वधर्म रहता नहीं। इस प्रकारतैं ता भावत्व उपाधिकूं ता प्रमेयत्वरूप साधनका अव्यापकपणा है । और ता उक्त अनुमानविषे सो जन्यत्वधर्म ता प्रागभावरूप पक्षका धर्म नहीं है । तथा साधनरूप भी नहीं है, किन्तु सो जन्यत्व उदासीनधर्म है यातैं ता उक्त अनुमानविषे सो भावत्वउपाधि उदासीन धर्मावच्छिन्न साध्य व्यापक कह्या जावै है इति । उपाधिका हेत्वाभासमें उपयोग—इस उक्त च्यारिप्रकारके

उपाधिविषे किसी भी उपाधिवाला जो हेतु होवै है सो हेतु व्याप्यत्वासिद्ध कह्या जावै है। इस व्याप्यत्वासिद्ध हेतुका ज्ञान भी व्याप्तिज्ञानका हीं प्रतिबन्धक होवै है इति।

अब पंचमे बाधितहेत्वाभासका--निरूपण करे हैं तहां **यस्य हेतोः साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः** । अर्थ यह–जिस हेतुकेसाध्यका अभाव प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै निश्चय होवै है सो हेतु बाधिक कह्या जावै है । जैसे **वह्निः अनुष्णः द्रव्यत्वात् जलवत्** । अर्थ यह–वह्नि उष्णतातैं रहित है द्रव्यरूप हाेणेतैं जलकी न्यांई । इस अनुमानविषे द्रव्यत्वरूप हेतुका जो अनुष्णत्वसाध्य है । ता अनुष्णत्वसाध्यका अभाव जो उष्णत्व सो उष्णत्व ता वह्निरूप पक्षविषे सर्वप्राणीयोंकूं त्वक्इंद्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाण करिकै हीं निश्चित है । यातैं सो द्रवत्वहेतु बाधित है । इस बाधितहेतुका ज्ञान साक्षात् अनुमितिका हीं प्रतिबन्धक होवै है इति ॥ ५ ॥

हेतुके अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष–किंवा अतिव्याप्ति आदिक दोषवाला जो दुष्टलक्षण है सो दुष्टलक्षण भी हेत्वाभास हीं होवै है । तहां अतिव्याप्ति दोषवाले लक्षणका तौं व्याप्यत्वासिद्धविषे अन्तर्भाव होवै है और अव्याप्तिदोषवाले लक्षणका भागासिद्धविषे अन्तरभाव होवै है और असम्भवदोषवाले लक्षणका स्वरूपासिद्धविषे अन्तर्भाव होवै है इति ।

सिद्धसाधन–और पूर्वसिद्ध अर्थकी जिस हेतु करिकै सिद्धि करी जावै है । सो हेतु सिद्ध साधन कह्या जावै है । तहां जिन प्राचीननैयायिकोंके मतविषे संदिग्धसाध्यवाला पदार्थ पक्ष होवै है । तिन प्राचीनोंके मतविषे तौं ता सिद्धसाधनका आश्रयासिद्ध विषे हीं अन्तर्भाव होवै है और जे नवीननैयायिक ता संदिग्धसाध्यवाले पदार्थकूं पक्ष नहीं माने हैं । तिन नवीनोंके मतविषे ता सिद्धसाधनका निग्रहस्थानविषे अन्तर्भाव होवै है इति ॥

इति अनुमाननिरूपणं समाप्तम् ॥

---

अथ उपमाननिरूपणम् ।

अब तीसरे उपमितिरूप यथार्थ अनुभवके निरूपण करणे वासतै प्रथम ता उपमितिप्रमाके करणरूप उपमानप्रमाणका लक्षण कहे हैं । तहां **उपमितिकरणं उपमानम्** । अर्थ यह–उपमितिप्रमाका जो करण होवै है सो उपमानप्रमाण कह्या जावै है इति । उपमिति–तहां **संज्ञासंज्ञि संबन्धज्ञानं उपमितिः** । अर्थ यह–पदका नाम संज्ञा है और अर्थका नाम संज्ञी है । ता पद अर्थ दोनोंका जो शक्तिरूप सम्बन्ध है ता सम्बन्धकूं विषय करणेहारा जो 'गवयो गवयपदवाच्यः' या प्रकारका ज्ञान है ता ज्ञानका नाम उपमिति है । ता उपमितिका 'अयं पिण्डः गोसदृशः' या प्रकारका ता गवयपिण्डविशेष्यक गोसादृश्यप्रकारक ज्ञान करण होवै है । यातैं सो गोसादृश्यज्ञान उपमान प्रमाण कह्या जावै है । इति ।

ईहां उपमिति होणेकी रीति—यह है। कोईक नगरवासी पुरुष गवयशब्दके वाच्य अर्थकूं जानता हूआ किसी वनवासी पुरुषतैं गवयपशु कैसा होवै है या प्रकार पूछता भया। आगेतैं सो वनवासी पुरुष ता नगरवासी पुरुषके प्रति 'गोसदृशो गवयपदवाच्यः' अर्थ यह—गौके सादृश्यवाला पशुविशेष गवयशब्दका वाच्य होवै है या प्रकारका वचन कहता भया। इसी वचनकूं न्यायशास्त्रविषे अतिदेश वाक्य कहे हैं ता वचनकूं श्रवण करिकै तथा ता वचनके अर्थकूं निश्चय करिकै सो नगरवासी पुरुष कोईकालविषे किसी प्रयोजन वासतै वनविषे जाता भया। ता वनविषे दैवयोगतैं ता गवयपशुकूं नेत्रोंसैं देखता भया। तिसतैं अनन्तर ता नगरवासी पुरुषकूं 'अयं गो सदृशः' अर्थ यह—यह पशु गौके सादृश्यवाला है। या प्रकारका चाक्षुषप्रत्यक्षज्ञान होता भया। सो गवयविशेष्यक गोसादृश्यप्रकारक प्रत्यक्षज्ञान हीं ता उपमितिप्रमाका करण है, ता सादृश्यज्ञानतैं अनंतर तिस पुरुषकूं ता अतिदेश वाक्यके अर्थका स्मरण होवै है सो स्मरण हीं ता करणका व्यापार है। काहेतैं ? सो अतिदेशवाक्यार्थका स्मरण ता उक्त सादृश्यज्ञान करिकै जन्य भी है तथा ता सादृश्यज्ञान-जन्य उपमितिका जनक भी है। यातैं ता अतिदेशवाक्यार्थके स्मरणविषे ता सादृश्यज्ञानरूप करणकी व्यापाररूपता संभवै है। तिसतैं अनंतर ता पुरुषकूं 'गवयो गवयपदवाच्यः' अर्थ यह—गवय गवयपदका वाच्य है, या प्रकारका ता गवयरूप अर्थविषे ता गवयपदके शक्तिरूप संबंधकूं विषयकरणेहारा ज्ञान उत्पन्न होवै है। इसी ज्ञानका नाम उपमितिप्रमा है इति।

ईहां केईकग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं—'अयं गोसदृशः' या प्रकारका सादृश्य प्रत्यक्ष ता उपमितिका करण नहीं है किंतु ता नगरवासी पुरुषकूं ता वनवासी पुरुषके वचनकूं श्रवण करिकै जो गौके सादृश्य वाला पशु गवयपदका वाच्य होवै है या प्रकारका शाब्दज्ञान हूआ है। सो शाब्दअनुभव हीं ता उपमितिका करण होणेतैं उपमानप्रमाण है। और ता गोसदृश गवयपिंडकूं देखिकै जो अतिदेश वाक्यार्थका स्मरण होवै है सो स्मरण ता शाब्दअनुभव करिकै जन्य होणेतैं तथा ता शाब्दअनुभवजन्य उपमितिका जनक होणेतैं ता शाब्दअनुभवरूप करणका व्यापाररूप है। और सा उक्त उपमितिरूप प्रमा फल है और सो गोसादृश्यका प्रत्यक्षज्ञान ता शाब्द अनुभव जन्य संस्कारका उद्बोधक होणेतैं केवल सहकारीमात्र होवै है इति।

वेदान्तमतवाले—तौं यह कहे हैं। ता गवयनामा पशुविषे गौके सादृश्यप्रत्यक्षतैं अनंतर ता पुरुषकूं हमारी गौ इस गवयपशुके सदृश है या प्रकारका ज्ञान होवै है ता ज्ञानका नाम उपमिति है, ता उपमितिका सो गवयनिष्ठ गो सादृश्यप्रत्यक्ष करण होणेतैं उपमानप्रमाण है इति। उपमानके भेद—सो उपमानप्रमाण सादृश्यविशिष्टपिंड ज्ञान १, वैधर्म्यविशिष्ट पिंडज्ञान २, असाधारणधर्म विशिष्टपिंडज्ञान ३ इस भेद करिकै तीनप्रकारका होवै है। तहां गौके सादृश्यविशिष्ट गवयपिंडज्ञानरूप प्रथम उपमानका तौं पूर्वनिरूपणकऱ्या।

अब द्वितीयउपमानका निरूपण—करे हैं। तहां पर्वतविषे रहणेहारा कोई पुरुष उष्ट्रपदके वाच्य अर्थकूं नहीं जानताहूआ किसी पुरुषतैं उष्ट्र कैसा होवै है या प्रकार पूछता भया। आगेतैं सो उष्ट्रके जानणेहारा पुरुष ता पर्वती पुरुषके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। जैसे अश्वका पृष्ठ समान होवै है तैसे ता उष्ट्रका पृष्ठ समान नहीं होता किंतु ऊँचापृष्ठ होवै है तथा ग्रीवा भी ऊँची होवै है तथा शरीरभी ऊँचा होवै है तथा कठिन कंटकोंकूं भी भक्षण करि जावै है। इस प्रकारके वचनकूं श्रवण करिकै तथा अश्वतैं ता उष्ट्रके उन्नतपृष्ठत्व दीर्घग्रीवत्वादिक विरुद्ध धर्मोंकूं निश्चय करिकै कोई कालविषे दैवयोगतैं ता उष्ट्रकूं नेत्रोंसैं देखता भया तथा ता उष्ट्रविषे ते पूर्वउक्त सर्वविरुद्धधर्म देखता भया ता वैधर्म्यविशिष्ट पिण्ड दर्शनतैं अनन्तर ता पुरुषकूं ता पूर्वउक्त अतिदेशवाक्यार्थका स्मरण होइकै उष्ट्र उष्ट्रपदका वाच्य है या प्रकारकी उपमिति होवै है। इस उपमितिविषे सो वैधर्म्य विशिष्ट उष्ट्रपिण्डका ज्ञान हीं उपमान है इति।

अब तृतीयउपमानका निरूपण—करे हैं—तहां कोई पुरुष खड्गमृगपदके वाच्य अर्थकूं नहीं जानता हूआ किसी पुरुषतैं खड्गमृग कैसा होवै है या प्रकार पूछता भया; आगेतैं सो खड्ग-मृगके जानणेहारा पुरुष ता पुरुषके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। जिसके नासिकाके अग्रभाग एक शृंग होवै है सो खड्गमृग होवै है, इस प्रकारके वचनकूं श्रवण करिकै तथा ता वचनके अर्थकूं निश्चय करिकै सो पुरुष कोई कालविषे दैवयोगतैं ता खड्गमृगकूं नेत्रोंसे देखता भया और ताके नासिकाके अग्रभागविषे एक शृंगकूं देखता भया ता एक शृंगरूप असाधारण धर्मके दर्शनतैं अनन्तर ता पुरुषकूं पूर्वले अतिदेशवाक्यार्थका स्मरण होइकै खड्ग-मृग खड्गमृगपदका वाच्य है या प्रकारकी उपमिति होवै है। इस उपमितिविषे सो एक शृंगरूप असाधारणधर्मका ज्ञान हीं उपमान होवै है। गैंडेका नाम खड्गमृग है इति।

ईहां वैशेषिकशास्त्रवाले—उपमानप्रमाणकूं मानतैं नहीं किन्तु प्रत्यक्ष, अनुमान इन दो प्रमाणोंकूं हीं अंगीकार करे हैं। ते वैशेषिक ता उक्त उपमितिकूं अनुमितिके अन्तर्भूत हीं माने हैं, ता उपमितिस्थलविषे ते वैशेषिक या प्रकारका अनुमान करे हैं। **गवयपदं गवयत्व-प्रवृत्तिनिमित्तकं असति वृत्त्यन्तरे वृद्धैस्तत्र प्रयुज्यमानत्वात् यथा गोपदं गोत्वप्रवृत्ति-निमित्तकम्।** अर्थ यह—गवयपद गवयत्वप्रवृत्तिनिमित्तक है। अर्थात् गवयत्वधर्म है प्रवृत्तिका निमित्त जिसका ऐसा गवयपद है, ता गवयतैं भिन्न पदार्थविषे शक्तिरूप वृत्तिके अभाववाला हूआ वृद्धपुरुषों करिकै ता गवयविषे हीं प्रयुज्यमान होणेतैं जैसे गोपदकी गौरूप अर्थतैं भिन्न अर्थविषे शक्ति होती नहीं तथा वृद्धपुरुषोंनैं ता गोपदका ता गौरूप अर्थविषे हीं प्रयोग करीता है। यातैं सो गोपद गोत्वप्रवृत्तिनिमित्तक हीं होवै है। तैसे इस गवयपदकी भी ता गवयपदरूप अर्थतैं भिन्न किसी पदार्थविषे शक्तिरूप वृत्ति होती नहीं। तथा वृद्धपुरुषोंनैं ता गवयपदका ता

गवयरूप अर्थविषे हीं प्रयोग करीता है । यातैं सो गवयपद भी गवयत्वपद भी गयवत्वप्रवृत्ति-निमित्तक हीं होवैंगा इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै हीं सो गवयपद वाच्यत्वका ज्ञान होइ सके हैं । यातैं ता उपमानकूं अनुमानतैं भिन्न प्रमाण मानणा निष्फल है । इसरीतिसैं ते वैशेषिक अनुमितिकूं उपमितिके अन्तर्भूत माने हैं इति । उसका खण्डन—सो यह वैशेषिकोंका-मत असंगत है । काहेतैं? ता उक्त व्याप्तिज्ञानतैं विना भी इस पुरुषकूं सा पूर्वउक्त उपमिति अनुभव सिद्ध है और ता पदवाच्यत्वज्ञानतैं अनन्तर इस पुरुषकूं 'उपमिनोमि' या प्रकारका ता उपमितिज्ञानविषक हीं मानसप्रत्यक्षरूप अनुव्यवसायज्ञान होवै है । 'अनुमिनोमि' या प्रकारका अनुमितिज्ञानविषयक मानसप्रत्यक्षरूप अनुव्यवसायज्ञान होता नहीं या कारणतैं भी ता उपमितिकूं अनुमितितैं भिन्न हीं मान्या चाहिये इति । इति उपमाननिरूपणं समाप्तम् ॥

अथ शब्दप्रमाणनिरूपणम् ।

तहां पूर्व प्रत्यक्ष अनुमिति शाब्द इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका यथार्थ अनुभव कह्या था, ताके विषे प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति इन तीनोंका पूर्व निरूपण कर्‍या, अब चतुर्थ शाब्दीप्रमारूप यथार्थ अनुभवके निरूपण करणे वासतै प्रथम ता शाब्दीप्रमाके करणरूप शब्दप्रमाणका निरूपण करे हैं । तहां प्राचीन नैयायिक—तौं ज्ञायमानशब्दकूं हीं ता शाब्दी-प्रमाका करण माने हैं । और नवीन नैयायिक—तौं ता शब्दके ज्ञानकूं हीं ता शाब्दीप्रमाका करण माने हैं । प्राचीनोंका शब्दप्रमाणका लक्षण—तिन दोनों मतोंविषे प्रथम प्राचीनोंके मतके अनुसार ता शब्दप्रमाणका लक्षण कहे हैं । **आप्तोक्तवाक्यं शब्दप्रमाणम्** । अर्थ यह—आप्त-पुरुषतैं उच्चारण कर्‍या जो वाक्य है सो वाक्य शब्दप्रमाण कह्या जावै है । आप्तका लक्षण—तहां **प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानवान् आप्तः** । अर्थ यह—शब्दके प्रयोगका हेतुभूत जो यथार्थ-ज्ञान है ता यथार्थज्ञानवाला पुरुष आप्त कह्या जावै है । तहां बुद्धिमान् पुरुष प्रथम तिस तिस वाक्यके अर्थकूं यथार्थ जानिकै हीं पश्चात् तिस तिस वाक्यके उच्चारणरूप प्रयोगकूं करे है यातैं तिस तिस वाक्यके प्रयोगविषे तिस तिस वाक्यके अर्थका यथार्थज्ञान हेतु होवै है ता यथार्थज्ञानवाला पुरुष आप्त कह्या जावै है । ऐसे आप्तपुरुष करिकै उच्चारण कर्‍या हूआ वाक्य शब्दप्रमाण कह्या जवै है । समन्वय—जैसे 'पयसा सिञ्चति' अर्थ यह—जल करिकै वृक्षादिकोंका सिञ्चन होवै है । यह वाक्य तौं ता आप्तपुरुष करिकै उच्चरित होणेतैं प्रमाणशब्द कह्या जावै है । और 'वन्हिना सिञ्चति' अर्थ यह—वह्नि करिकै वृक्षादिकोंका सिञ्चन होवै है । इस वचनके कहणेहारे पुरुषविषे सो आप्तपणा है नहीं । यातैं सो वाक्य प्रमाणशब्द कह्या जावै नहीं । पदकृत्य—तहां 'वाक्यं शब्दप्रमाणम्' इतनामात्र हीं जो ता शब्दप्रमाणका लक्षण करते, ता लक्षणविषे 'आप्तोक्त' यह पद नहीं कथन करते तौं अनाप्त-पुरुष करिकै उच्चारित वाक्यविषे ता शब्द प्रमाणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अति-

व्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ता वाक्यका 'आप्तोक्त' यह विशेषण कथन कऱ्या है । किंवा 'आप्तोक्तं शब्दप्रमाणम्' इतनामात्र हीं जो ता शब्दप्रमाणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'वाक्यं' यह पद नहीं कथन करते तौं ता आप्तपुरुष उक्त 'जवगडदश्' इत्यादिक वचनविषे ता शब्दप्रमाणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'वाक्यम्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता उक्तवचनविषे वाक्यरूपता नहीं है। यातैं ता वचनविषे ता शब्दप्रमाणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं ।

अब वाक्यका लक्षण—कहे हैं। **आकांक्षादिमत्पदसमूहः वाक्यम्** । अर्थ यह— आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति इन तीनोंवाले पदोंका जो समूह है सो पदोंका समूह वाक्य कह्या जावै है। जैसे 'गामानय' इत्यादिक वचन आकांक्षादिवाले पदोंका समूह होणेतैं वाक्य कह्या जावै है इति । अब पदका लक्षण—कहे हैं। **शक्तं पदम्**। अर्थ यह—इस पदतैं श्रोता पुरुषकूं इस अर्थका बोध होवो, या प्रकारकी ईश्वरकी इच्छारूप जा शक्ति है ता शक्तिवाला पद कह्या जावै है। जैसे घटपटादिक पद हैं इति । ऐसे पदोंके समूहका नाम वाक्य है। वाक्यके भेद—सो वाक्य लौकिक १, वैदिक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां लौकिक वाक्य—तौं आप्तपुरुष करिकै उच्चारण कऱ्या हूआ हीं प्रमाण होवै है। दूसरा सर्व अप्रमाण होवै है। वैदिकवाक्य—तौं सर्वज्ञ ईश्वर करिकै उक्त होणेतैं सर्वप्रमाण होवै है।

वेदके अपौरुषेयत्वकी सिद्धि—तहां **वेदः पौरुषेयः वाक्यत्वात् भारतादिवत्**। अर्थ यह— वेद पुरुष करिकै रचित है वाक्यरूप होणेतैं। जो जो वाक्यरूप होवै है सो सो पुरुषप्रणीत हीं होवै है। जैसे भारतादिक वाक्यरूप होणेतैं व्यासादिक पुरुष करिकै प्रणीत है तैसे वेद भी वाक्यरूप होणेतैं किसीपुरुष करिकै अवश्य रचित होवैंगा। तहां ता वेदका कर्त्तापणा किसी जीवकूं तौं सम्भवता नहीं परिशेषतैं सर्वज्ञ ईश्वरकूं हीं ता वेदका कर्त्ता मानणा होवैंगा इति । इस प्रकार निर्दोष सर्वज्ञ ईश्वर करिकै रचित होणेतैं सो वेदवाक्य सर्व प्रमाण होवै है। परतः प्रमाण—और स्मृति, पुराण, इतिहास, इत्यादिक शास्त्रोंके वाक्योंकूं तौं वेदमूलकता करिकै हीं प्रमाणता होवै है। स्वतंत्रप्रमाणता होती नहीं । और जिस जिस स्मृतिआदिक वाक्यका इस कालविषे मूलभूत वेदकी श्रुति नहीं प्रतीत होवै है। तिस तिस स्मृतिआदिक वाक्यका मूलभूत श्रुतिवाली कोई वेदकी शाखा इदानीं कालविषे उच्छिन्न होइ गई है इस प्रकार कल्पना करी जावै है। ईहां केईकशास्त्रवाले—तौं यह कहे हैं। जिस जिस स्मृतिआदिक वाक्यविषे वेद मूलकत्व देखणेविषे आवै है। तिस तिस वाक्यविषे हीं प्रमाणता है। अन्य वाक्योंकूं प्रमाणता नहीं है। जो कदाचित् ता वेदमूलकताके अदर्शनहूए भी तिन वाक्योंकूं प्रमाणता मानोंगे तौं अस्मदादिक पुरुषोंनैं कल्पना कऱ्येहूए वाक्योंकूं भी प्रमाणरूपता होणी चाहिये। अस्म-

दादिक पुरुषोंके वाक्योंका मूलभूत कोई वेदकी शाखा उच्छिन्न होइ गई है। इस प्रकारकी कल्पना ईहां भी होइ सके है। और जो यह कहो जिन स्मृतिआदिक वाक्योंविषे वेदमूलकत्व नहीं देखणे विषे आवै है तिनवाक्योंविषे ऋषिप्रणीतत्व हीं प्रमाणरूपताका साधक हैं, सो यह कहणा भी संभवता नहीं। काहेतैं? जो ऋषिप्रणीतत्व प्रमाणताका साधक होवै तौ बृहस्पतिप्रणीत नास्तिकसूत्रोंविषे भी प्रमाणता होणी चाहिये। सो तिन सूत्रोंकी प्रमाणता आस्तिकपुरुष अंगीकार करते नहीं। यद्यपि पूर्व आप्तवाक्यकूं भी प्रमाणता कहीं है और नास्तिक दर्शनके स्रष्टा बृहस्पति भी आप्त हीं है ता बृहस्पतिप्रणीतसूत्रोंविषे भी प्रमाणता हीं प्राप्त होवै है। तथापि ता आप्तपुरुषनैं धर्मबुद्धि करिकै जो वाक्य कहीता है सो वाक्य हीं प्रमाण होवै है। और बृहस्पतिनैं जो ते सूत्र रचे हैं सो धर्म बुद्धि करिकै नहीं रचे हैं किंतु असुरोंके मोह करणेवास्तै रचे हैं। यातैं तिन सूत्रोंविषे प्रमाणता संभवती नहीं इति।

शब्द प्रमाणके भेद—सो पूर्व उक्त वाक्य विधि १, मंत्र २, अर्थवाद ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै। तहां विधि—**इष्टसाधनताबोधकप्रत्ययसमभिव्याहृतवाक्यं विधिः।** अर्थ यह—इष्टकी साधनताका बोधक जो प्रत्यय है ता प्रत्यय करिकै घटित जो वाक्य है सो वाक्य विधि कह्या जावै है। विधि बोधक प्रत्यय—ते इष्ट साधनताके बोधक प्रत्यय लिङ्, लोट्, तव्य, कृत्प्रत्यय इत्यादिक व्याकरणशास्त्रविषे कथन कर्‍ये हैं। जैसे—'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' इस वाक्यके अंतविषे स्थित जो लिङ् प्रत्यय है सो लिङ्प्रत्यय ज्योतिष्टोमनामा यागविषे स्वर्गरूप इष्टकी साधनताकूं बोधन करे है। ता लिङ्प्रत्यय करिकै घटित होणेतैं सो वाक्य विधिवाक्य कह्या जावै है इति। विधि वाक्यके भेद—सो विधिवाक्य भी अपूर्वविधि १, नियमविधि २, परिसंख्याविधि ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां अपूर्वविधि—**प्रमाणान्तरेणाप्राप्तस्य प्रापको विधिः अपूर्वविधिः।** अर्थ यह—जो अर्थ ता विधि वाक्यतैं भिन्न प्रत्यक्षादिक प्रमाणों करिकै अप्राप्त होवै है तिस अर्थका प्रापक जो विधि है सो विधि अपूर्वविधि कह्या जावै है। जैसे 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' यह विधि अपूर्वविधि है। तहां स्वर्गरूप फलका साधनरूप करिकै सो ज्योतिष्टोमनामा याग इस विधिवाक्यतैं विना अन्य किसी प्रमाण करिकै प्राप्त नहीं है किंतु इस विधिवाक्य करिकै हीं प्राप्त है। यातैं सो उक्तविधि अपूर्वविधि कह्या जावै है इति। तहां नियमविधि—**पक्षेऽप्राप्तस्य प्रापको विधिः नियमविधिः।** अर्थ यह—पक्षविषे अप्राप्त जो अर्थ है ता अर्थका प्रापक जो विधि है सो विधि नियमविधि कह्या जावै है। जैसे 'व्रीहीनवहन्ति' अर्थ यह—तुषोंकी निवृत्ति करणेवास्तै व्रीहीयोंकूं मुसलसैं अवहनन करे हैं यह नियम विधि है। तहां व्रीहीयोंके तुषोंकी निवृत्ति नखविदलन, मुसलावहनन आदिक नानाउपायों करिकै सिद्ध होवै है। तहाँ यह पुरुष ता मुसलावहननरूप उपायकूं छोडिकै जबी नखविदलनादिक दूसरे उपायके ग्रहण करणेका

आरंभ करे है । तिस पक्षविषे सो मुसलावहनन अप्राप्त होवै है । इस प्रकार पक्षविषे अप्राप्तहूए मुसलावहननका ता उक्तविधिनै विधान करीता है । अर्थात् अप्राप्तअंशका पूरण करीता है । यातै सो उक्तविधि नियमविधि कह्या जावै है इति ।

तहां परिसंख्याविधि—उभयोश्च युगपत्प्राप्ताावितरव्यावृत्तिपरो विधिः परिसंख्याविधिः । अर्थ यह—एक कालविषे दो अर्थोंके प्राप्तहूए इतर अर्थकी निवृत्तिका बोधक जो विधि है सो विधि परिसंख्याविधि कह्या जावै है । जैसे 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' अर्थ यह—पंचनखोंवाले पंच जंतु भक्ष्य हैं यह विधि परिसंख्याविधि कह्या जावै है । तहां शशक शल्लकी गोधा खड्गी कूर्म यह पंचजंतु पंचनखोंवाले होवै हैं तथा इन पांचोंतै भिन्न मनुष्य वानरादिक भी पंचनखोंवाले होवै हैं । तिन दोनोंके रागतै भक्षणके प्राप्तहूए यह उक्त विधि तिन पंचनखोंवाले शशकादिक पंचजन्तुवोंतै भिन्न नरवानरादिक जंतुवोंके भक्षणकी निवृत्तिकूं हीं बोधन करे है । कोई तिन शशकादिक पंचजंतुवोंके भक्षणका विधान करता नहीं जिस कारणतै तिन शशकादिकोंका भक्षण लोकोंकूं आगे राग करिकै प्राप्त हीं है । यातै सो उक्तविधि परिसंख्याविधि कह्या जावै है इति ।

अब मंत्रका लक्षण—कहे हैं प्रयोगसमवेतार्थस्मारको वाक्यविशेषः मन्त्रः । अर्थ यह—यज्ञादिक कर्मके प्रयोगविषे उपयोगी जो द्रव्यदेवतादिक अर्थ है, ता अर्थका स्मरण करावणेहारा जो वाक्यविशेष है सो वाक्य मंत्र कह्या जावै है, ते मंत्र ऋगादिक वेदोंविषे प्रसिद्ध है इति ।

अब अर्थवादका निरूपण—करे हैं तहां लक्षण—प्राशस्त्यनिन्दान्यतरं वाक्यं अर्थवादः । अर्थ यह विहित अर्थकी स्तुतिपर जो वाक्य है अथवा निषिद्ध अर्थकी निन्दापर जो वाक्य है सो वाक्य अर्थवाद कह्या जावै है । सो अर्थवाद विहित अर्थकी स्तुति करता हूआ इस अधिकारी पुरुषकूं शीघ्र हीं ता विहित अर्थविषे प्रवृत्त करे है । तथा सो अर्थवाद निषिद्ध अर्थकी निन्दा करता हूआ इस पुरुषकूं शीघ्र हीं ता निषिद्ध अर्थतै निवृत्त करे हैं इति । अर्थवादके भेद—सो अर्थवाद गुणवाद १, अनुवाद २, भूतार्थवाद ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां गुणवाद—प्रमाणान्तरविरुद्धार्थज्ञापकः शब्दः गुणवादः । अर्थ यह—प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै विरुद्ध जो अर्थ है ता अर्थका बोधक जो वाक्य है सो वाक्य गुणवाद कह्या जावै है । जैसे 'आदित्यो यूपः, यजमानः प्रस्तरः' यह वाक्य गुणवाद है । तहां यह वाक्य काष्ठमयस्तंभरूप यूपके तथा आदित्यके अभेदकूं प्रतिपादन करे है, तथा दर्भमुष्टिरूप प्रस्तरके तथा यजमानके अभेदकूं प्रतिपादन करे है सो तिन दोनोंका अभेद प्रत्यक्षप्रमाण करिकै बाधित है ऐसे प्रत्यक्षप्रमाण करिकै विरुद्ध अभेद अर्थका बोधक होणेतै सो वाक्य गुणवाद कह्या जावै है इति । तहां अनुवाद—प्रमाणान्तरेण निर्णीतार्थज्ञापकः शब्दः अनुवादः । अर्थ यह—प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै निर्णीत जो अर्थ है ता अर्थका

बोधक जो वाक्य है। सो वाक्य अनुवाद कह्या जावै है । जैसे ' अग्निर्हिमस्य भेषजम्' अर्थ यह—अग्नि हिमके निवृत्तिका उपाय है, यह वाक्य अनुवाद कह्या जावै है । तहां अग्निविषे हिमके निवृत्तिका उपायपणा सर्वलोकोंकूं प्रत्यक्षप्रमाण करिकै निश्चित हीं है ऐसे प्रत्यक्ष-प्रमाण करिकै निर्णीत अर्थका बोधक होणतैं सो वाक्य अनुवाद कह्या जावै इति ।

तहां भूतार्थ वाद—तत्काले तद्गुणज्ञापकः शब्दः भूतार्थवादः । अर्थ यह--तिस गुणके विद्यमानकालविषे तिस गुणका बोधक जो वाक्य है सो वाक्य भूतार्थवाद कह्या जावै है ' जैसे जरायामप्ययं शूरः ' अर्थ यह--यह पुरुष जरा अवस्थाविषे भी शूर है, यह वाक्य ता जरा अवस्थाविषे विद्यमान शूरताकूं कथन करे है । यातैं यह वाक्य भूतार्थवाद कह्या जावै है इति । इस प्रकारके उक्तवाक्यरूप शब्दकूं हीं प्राचीननैयायिक शाब्दीप्रमाका करण माने हैं ।

शाब्दी प्रमाके करणपर नवीननैयायिक--तौ यह कहे हैं । ता शाब्दी प्रमाका सो ज्ञायमानशब्द करण नहीं है किंतु ता शब्दज्ञान हीं करण है । काहेतैं ? जो कदाचित् ता शब्दरूप पदकूं हीं ता शाब्दीप्रमाका करण मानिये तौं मौनिपुरुषलिखित श्लोकतैं लोकोंकूं शाब्दबोध नहीं होणा चाहिये । काहेतैं ? मुखतैं उच्चारण कन्येहूए अर्थवाले ककारादिक वर्णोंका नाम पद है सो पद ता मौनिलिखित श्लोकविषे है नहीं इस प्रकार द्वित्वादिक अर्थका बोधक जो हस्तकी विजातीय चेष्टा है ता चेष्टातैं भी लोकोंकूं ता द्वित्वादिक अर्थका शाब्दबोध होवै है । सो भी नहीं होणा चाहिये । जिस कारणतैं तहां सो पदरूप करण है नहीं । किंवा वीणादिकोंके ध्वनिरूप शब्दविषे ता पदरूपताके अभावहूए भी जिस पुरुषकूं ताकेविषे पदत्वकी भ्रांति होवै है । तिस पुरुषकूं भी ता पदके ज्ञानतैं शाब्दबोध होवै है । सो भी नहीं होणा चाहिये । और ता पदके ज्ञानकूं जो शाब्दीप्रमाका करण मानिये तौं सो पूर्वउक्त दोष प्राप्त होता नहीं । जिसकारणतैं ता उक्तस्थलविषे भी ता मौनिलिखित लिपिकूं देखिकै तथा ता विजातीय हस्तचेष्टाकूं देखिकै तिस तिस अर्थके वाचक पदोंका स्मरणादिरूप ज्ञान सम्भवै है । यातैं पदका ज्ञान हीं ता शाब्दीप्रमाका करण मान्या चाहिये । सो पदका ज्ञान कहां तौं श्रावण-प्रत्यक्षरूप होवै है और कहां स्मरणादिरूप होवै है। और तिस तिस पदके ज्ञानहूएतैं अनंतर इस पुरुषकूं जो तिस तिस पदके अर्थका स्मरण होवै है । सो अर्थका स्मरण ता पदज्ञानरूप करणका व्यापार होवै है, और शाब्दी प्रमा फल होवै है । इसी शाब्दी प्रमाकूं शाब्दबोध भी कहे है तथा वाक्यार्थज्ञान भी कहे हैं । जैसे ' नीलो घटः ' इस वचनके उच्चारण कीयेहूए श्रोता पुरुषकूं प्रथम नीलपदका तथा घटपदका श्रावणप्रत्यक्ष होवै है । तिसतैं अनंतर ता नीलपदके नीलगुणविशिष्ट अर्थकी स्मृति होवै है । तथा ता घटपदके घटरूप अर्थकी स्मृति होवै है । तिसतैं अनंतर नीलगुणविशिष्टतैं अभिन्न घट है या प्रकारका शाब्दबोध होवै है ।

शाब्दबोधका लक्षण–तहां **एकपदार्थेऽपरपदार्थसंसर्गविषयकं ज्ञानं शाब्दबोधः** । अर्थ यह–एक पदार्थविषे दूसरे पदार्थके सम्बन्धकूं विषय करणेहारा जो ज्ञान है सो ज्ञान शाब्दबोध कह्या जावै है । जैसे 'नीलो घटः' इस वाक्यजन्य ज्ञान घटपदार्थविषे नीलपदार्थके अभेदसम्बन्धकूं विषय करे है । यातैं सो ज्ञान शाब्दबोध कह्या जावै है इति ।

शाब्दबोधकी रीति–तहां एकसंबंधीका ज्ञान संस्कारके उद्बोधद्वारा दूसरे सम्बन्धीका स्मारक होवै है । यह वार्त्ता पूर्वतृतीयपरिच्छेदविषे संस्कारगुणके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं । तैसे ईहां भी पदरूप एकसम्बन्धीका ज्ञान संस्कारके उद्बोधद्वारा अर्थरूप दूसरे सम्बन्धीका स्मारक होवै है । यातैं सो पदार्थस्मरण ता पदज्ञान करिकै जन्य होणेतैं तथा ता पदज्ञानजन्य शाब्दबोधका जनक होणेतैं व्यापाररूप है ।

**शंका**–ता पदजन्य पदार्थस्मरणकूं जो व्यापार मानोंगे तौ जहां घटादिक पदतैं समवायसम्बन्ध करिकै आकाशरूप अर्थका स्मरण हूआ है तहां ता घटपदतैं आकाशका भी शाब्दबोध होणा चाहिये । **समाधान**–पदका जो अर्थके साथि वृत्तिरूप सबंन्ध है ता वृत्तिरूप सम्बन्ध करिकै जो तिस तिस पदजन्य तिस तिस पदार्थका स्मरण है सो स्मरणज्ञान हीं ता पदज्ञानका व्यापार होवै है । तहां घटादिक पदोंका सो वृत्तिरूप सम्बन्ध घटादिक अर्थके साथि हीं होवै है । ता आकाशके साथि होता नहीं । किंतु आकाशपदका हीं ता आकाशरूप अर्थके साथि सो वृत्तिरूप संबंध होवै है । यातैं घटादिक पदोंतैं आकाशका शाब्दबोध होता नहीं इति । अब ता वृत्तिरूप सम्बन्धका लक्षण–कहे हैं । **शाब्दबोधहेतुपदार्थोपस्थित्यनुकूलः पदपदार्थयोः सम्बन्धः वृत्तिः** । अर्थ यह–शाब्दबोधका हेतु जा पदार्थकी उपस्थिति कहीये स्मृति है, ता स्मृत्तिके अनुकूल जो पद पदार्थ दोनोंका सम्बन्ध है ता सम्बन्धका नाम वृत्ति है । जैसे घटादिक पदार्थोंके शाब्दबोधका हेतु जो घटादिक पदार्थोंकी स्मृति है ता स्मृतिका जनक जो घटादिक पदोंका घटादिक अर्थोंके साथि शक्ति आदिक सम्बन्ध है सो सम्बन्ध वृत्ति कह्या जावै है । ता वृत्तिरूप सम्बन्धका ज्ञान जिस पुरुषकूं पूर्व होवै है तिसी पुरुषकूं ता घटादिक पदके श्रवणतैं ता घटादिरूप अर्थकी स्मृति होवै है । और जिस पुरुषकूं ता वृत्तिरूप सम्बन्धका ज्ञान पूर्व नहीं होवै है तिस पुरुषकूं ता घटादिक पदके श्रवणहूए भी ता घटादिक अर्थकी स्मृति होती नहीं । इस प्रकारके अन्वयव्यतिरेक करिकै सो वृत्तिज्ञान ता पदजन्य पदार्थकी स्मृतिविषे उपयोगी होवै है इति । वृत्तिके भेद–तहां सा पदकी वृत्ति शक्ति १, लक्षणा २, इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है ।

ताके विषे प्रथम शक्तिवृत्तिका निरूपण–करे हैं । **अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्यः इतीश्वरेच्छा शक्तिः** । अर्थ यह–यह घटादिरूप अर्थ इस घटादिक पदजन्य बोधका विषय होवो

या प्रकारकी जा घटादिपदजन्यबोधविषयत्वप्रकारक घटादिअर्थविशेष्यक ईश्वरकी इच्छा है ता इच्छाका नाम शक्ति है, सा ईश्वरकी इच्छारूपशक्ति ता घटादिक पद करिकै निरूपित होवै है यातैं सा शक्ति निरूपकतासंबंध करिकै तौं ता घटादिक पदविषे रहे है और विषयतासंबंध करिकै ता घटादिक अर्थविषे रहे है। तहां ता शक्तिका निरूपकपणा हीं तिन घटादिक पदोंविषे शक्तपणा है और विषयतासंबंध करिकै ता शक्तिका आश्रयपणा हीं तिन घटादिक अर्थोंविषे शक्यपणा है इति।

**शंका**—यह उक्त ईश्वरकी इच्छारूपशक्ति यद्यपि घटादिक वैदिक पदोंविषे तौं संभवै है तथापि इदानींकालविषे पितादिकोंनैं आपणे पुत्रादिकोंके जे चैत्रमैत्रादिक नाम राखीते हैं तिन चैत्रमैत्रादिक नामोंविषे सा ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति संभवती नहीं। यातैं तिन चैत्रमैत्रादिक नामोतैं लोकोंकूं तिन चैत्रमैत्रादिक अर्थोंकी स्मृति नहीं होणी चाहिये तथा शाब्दबोध भी नहीं होणा चाहिये। **समाधान**—तिन चैत्रमैत्रादिक नामोंविषे भी सा ईश्वरकी इच्छारूपशक्ति विद्यमान हीं है। काहेतैं? **एकादशेऽहनि पिता नाम कुर्यात्**। अर्थ यह एकादशे दिनविषे पिता पुत्रका कोई चैत्रमैत्रादिरूप नाम राखे। इस श्रुति करिकै प्रतिपादित सा ईश्वरकी इच्छारूपशक्ति तिन चैत्रमैत्रादिक नामोंविषे भी सामान्यरूप करिकै विद्यमान हीं है, यातैं लोकोंकूं तिन चैत्रमैत्रादिक पदोंतैं अर्थकी स्मृति तथा शाब्दबोध संभवै है इति।

ईहां सांप्रदायिक नैयायिक—तौं यह कहे हैं। आधुनिक पुरुषोंनैं तिस तिस अर्थके बोध करावणे वास्तैं संकेत कऱ्ये जे पद हैं जैसे वैयाकरणोंनैं नदी वृद्धि आदिक पद संकेत कऱ्ये हैं, तिन पदोंविषे सा ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति रहती नहीं इति। ईहां नवीननैयायिकोंका—मत तौं यह है—केवल ईश्वरकी इच्छा हीं शक्ति नहीं है किंतु इच्छामात्रका नाम शक्ति है। तहां कोईक पदोंविषे तौं सा ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति रहे है। और कोईक पदोंविषे जीवकी इच्छारूपशक्ति रहे है। यातैं आधुनिक पुरुषोंनैं संकेत कऱ्येहूए पदोंविषे भी तिस तिस पुरुषकी इच्छारूप शक्ति विद्यमान हीं है। जो कदाचित् ता ईश्वरकी इच्छामात्रकूं हीं शक्ति मानिये तौं तिन आधुनिक पुरुषसंकेतित पदोंतैं लोकोंकूं शाब्दबोध नहीं होणा चाहिये और तिन संकेतित पदोंतैं भी सो शाब्दबोध तौं अनुभवसिद्ध है। यातैं इच्छामात्रकूं हीं शक्ति मान्या चाहिये। ईहां पूर्वउक्त दोनों मतोंविषे गगरीआदिक अपभ्रंशपदोंकी घटादिक अर्थविषे शक्ति होती नहीं। किंतु शक्तिके भ्रमतैं तिन गगरीआदिक पदोंतैं लोकोंकूं घटादिक अर्थका बोध होवै है इति। शक्तिके भेद—तहां सा उक्तशक्ति योग १, रूढि २, योगरूढि ३, यौगिकरूढि ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारकी होवै है। तहां—योग—अवयवशक्तिः योगः। अर्थ यह—पदके घटक जे प्रकृतिप्रत्ययरूप अवयव हैं ता प्रत्येक अवयवविषे रही हूई जा शक्ति है सा शक्ति योगशक्ति कही जावै है। जैसे 'पच्' इस धातुरूप प्रकृतितैं उत्तर 'अक' यह प्रत्यय

आईके पाचक यह शब्द सिद्ध होवै है ता पाचकपदके 'पच्' इस अवयवकी तौं पाकरूप अर्थविषे शक्ति है। और 'अक' इस अवयवकी कर्त्ताविषे शक्ति है सा अवयवशक्ति योगशक्ति कही जावै है, ता योगशक्तिमात्र करिकै अर्थका प्रतिपादक जो पद है सो पद यौगिक-पद कह्या जावै है। जैसे पाचक यह पद ता अवयवशक्तिमात्र करिकै पाककर्त्ता पुरुषका प्रतिपादक होणेतैं यौगिकपद कह्या जावै है इति। तहां रूढि–**समुदायशक्तिः रूढिः।** अर्थ यह–पदके प्रकृतिप्रत्ययरूप अवयवसमुदायविषे रही जा शक्ति है सा शक्ति रूढिशक्ति कही जावै है। जैसे 'गोमण्डल घट' इत्यादिक पदोंके प्रकृतिप्रत्ययरूप अवयवोंके समुदाय-विषे रही हूई शक्ति रूढि शक्ति कही जावै है। ता रूढिशक्ति मात्र करिकै अर्थका प्रति-पादक जो पद है सो पद रूढ पद कह्या जावै है। जैसे ते गोमण्डलादिक पद ता रूढि शक्तिमात्र करिकै गोमण्डलादिक अर्थका प्रतिपादक होणेतैं रूढपद कहे जावै हैं इति।

तहां योगरूढि–**योगार्थवृत्तिरूढिः योगरूढिः।** अर्थ यह–ता योगशक्तिके अर्थविषे वर्त्त-णेहारी जा रूढिशक्ति है ताका नाम योगरूढि है। जैसे पंकज इस पदविषे सा योगरूढि शक्ति है। तहां पंकतैं जिसकी उत्पत्ति होवै है सो पंकज कह्या जावै है। और पंकतैं कमलकी उत्पत्ति होवै है यातैं पंकजनाम कमलका है। इस प्रकार ता पंकजपदके प्रकृतिप्रत्ययरूप अवयवोंविषे पंकतैं उत्पत्तिका कर्त्तारूप करिकै ता कमलके बोधकरणेकी योगशक्ति रही है। और ता कमलकी न्यांई कुमुदादिकोंका भी पंकतैं उत्पत्ति होवै है। यातैं ता पंकज पदकी अवयवशक्ति करिकै तिन कुमुदादिकोंका भी बोध होणा चाहिये सो होता नहीं। यातैं ता पंकज पदके अवयवसमुदायविषे कमलत्वरूप करिकै ता कमलके बोध करणेकी रूढशक्ति भी रहे है। इस प्रकार ता योगार्थकमलविषे वर्त्तणेहारी रूढिशक्ति योगरूढिशक्ति कही जावै है, ता योगरूढि शक्ति करिकै अर्थका प्रतिपादक जो पद है सो पद योगरूढपद कह्या जावै है जैसे पंकजादिक पद है सो पंकजपद ता योगशक्तितैं तौं पंकजनिकर्तृत्वरूप करिकै तथा ता रूढिशक्तितैं कमलत्वरूप करिकै ता एक हीं कमलरूप अर्थका प्रतिपादक होवै है। यातैं सो पंकजपद योगरूढ पद कह्या जावै है इति। तहां यौगिकरूढि–**योगार्थभिन्नार्थवृत्ति रूढिः यौगिकरूढिः।** अर्थ यह–योगशक्ति अर्थतैं भिन्न अर्थविषे वर्त्तणेहारी जा रूढिशक्ति है ताका नाम यौगिकरूढि है। जैसे उद्भिद इस पदविषे यौगिकरूढि शक्ति है, तहां उद्भिद इस पदके अवयवोंकी योगशक्ति तौं उद्भेदनकर्त्ता तरुगुल्मादिक अर्थविषे है। और ता उद्भिदपदके अवयवसमुदायकी रूढि शक्ति तौं यागविशेषविषे है इस प्रकार ता उद्भिदपदकी योगशक्ति तथा समदायशक्ति भिन्न भिन्न अर्थविषे वृत्ति है एक अर्थविषे वृत्ति नहीं। यातैं सा उद्भिद पदकी शक्ति यौगिकरूढि कही जावै है। ऐसी यौगिकरूढि शक्ति करिकै भिन्न भिन्न अर्थका प्रतिपादक जो पद है सो पद यौगिकरूढ कह्या जावै है जैसे उद्भिद पद है। तहां सो उद्भिदपद ता

योगशक्ति करिकै तरुगुल्मादिकोंका प्रतिपादक होणेतैं तथा ता रूढिशक्ति करिकै याग-विशेषका प्रतिपादक होणेतैं यौगिकरूढ कह्या जावै है इति ॥

अब अन्य मतोंकी रीतिसैं शक्तिका स्वरूप–वर्णन करे हैं। तहां मीमांसक तौं ता शक्तिकूं इच्छारूप मानते नहीं, किंतु ता शक्तिकूं द्रव्यादिक पदार्थोंतैं एक भिन्न पदार्थ माने हैं, ता शक्ति विषे भिन्न पदार्थपणेकी सिद्धि तथा ता शक्तिका खण्डन पूर्व चतुर्थपरिच्छेदविषे विस्तारतैं कथन करिकै आये हैं इति। और व्याकरणके तथा पातंजलके मतविषे–वाच्यवाचक भावका मूलभूत जो पद अर्थका तादात्म्यसंबंध है सो ईहां शक्ति है।

और वेदांतमतविषे–तौं सर्व पदार्थोंविषे आपणे आपणे कार्य करणेका जो सामर्थ्य है सोई हीं शक्ति है। जैसे तंतुविषे पटरूप कार्यके करणेका सामर्थ्यरूप शक्ति है और मृत्तिका विषे घटरूप कार्यके करणेका सामर्थ्यरूप शक्ति है। तैसे पदविषे भी आपणे अर्थके बोध करणेका सामर्थ्य ही शक्ति है, परन्तु इतना भेद है–पदकी शक्तितौं ज्ञात हूई आपणे कार्यकूं करे है और दूसरी शक्ति अज्ञात हूई भी आपणे कार्यकूं करे है इति। तहां इतनैं पर्यंत शक्तिके स्वरूपका निरूपण कऱ्या। शक्य–अब ता शक्तिके विषयरूप शक्यका निरूपण करे हैं। जातिआकृति विशिष्ट व्यक्तिमें शक्तिवादी गौतम–तहां 'जात्याकृतिव्यक्तयःपदार्थः' इस न्याय सूत्रविषे गौतममुनिनैं जाति आकृतिविशिष्ट व्यक्तिविषे पदकी शक्ति कथन करी है।

संघटना–इहां अवयवोंके संयोगका नाम आकृति है। जैसे घटत्वजाति तथा कपालसंयोग रूप आकृति दोनों करिकै विशिष्ट घटव्यक्तिविषे घटपदकी शक्ति है, इस प्रकार पटत्वजाति तथा तंतुसंयोगरूप आकृति इन दोनों करिकै विशिष्ट पटव्यक्तिविषे पटपदकी शक्ति है। यातैं ता जातिआकृतिविशिष्ट घटादिक व्यक्ति हीं ता घटादिक पदका वाच्य अर्थ है तथा शक्य अर्थ है। और ता घटादिक पदतैं ता जातिआकृतिविशिष्ट घटादिक व्यक्तिका हीं स्मरण होवै है तथा शाब्दबोध होवै है इति। केईकनैयायिक--तौं यह कहे हैं। ता घटादिक पदतैं ता अवयवसंयोगरूप आकृतिके नहीं स्मरणहूए भी ता घटत्वादिक जातिरूप करिकै तिन घटादिकोंका शाब्दबोध होइ जावै है। यातैं घटादिक पदोंकी ता आकृतिविषे शक्ति नहीं है किंतु जातिविशिष्टव्यक्तिविषे हीं शक्ति है। यातैं घटपदका तौं घटत्वजाति विशिष्ट घट शक्य है तथा पटपदका पटत्वजातिविशिष्ट पट शक्य है। और तिस तिस पदतैं तिस तिस जातिविशिष्ट व्यक्तिका हीं स्मरण होवै है तथा शाब्दबोध होवै है इति। नवीननैयायिक–तौं यह कहे हैं। घटादिक पदोंकी केवल घटादिक व्यक्तिमात्रविषे हीं शक्ति है। घटत्वादिक जातिविषे तथा अवयवसंयोगरूप आकृतिविषे घटादिक पदोंकी शक्ति नहीं है। यातैं घटादिक पदोंका केवल घटादिक व्यक्ति हीं शक्य है। शंका--ता घटत्वादिक जातिविषे जो घटादिक पदकी शक्ति नहीं मानोंगे तौं ता घटादिक पदतैं श्रोता पुरुषकूं ता घटत्वादिक जातिका बोध नहीं होवैगा। काहेतैं? ता पदके

अवाच्य अर्थका। ता पदकी लक्षणातैं विना बोध होता नहीं। जो कदाचित् ता जातिरूप अवाच्य अर्थका ता पदकी लक्षणातैं विना हीं बोध मानोंगे तौं जैसे घटपदका अवाच्य घटत्वजाति है तैसे पटादिक भी अवाच्य हीं हैं। यातैं ता घटपदतैं घटत्वजातिकी न्यांई तिन पटादिकोंका भी बोध होणा चाहिये। **समाधान**--पदके वाच्य अर्थविषे रहणेहारी तथा ता वाच्यताका अवच्छेदक ऐसी जा जाति है ता जातितैं भिन्न अवाच्य अर्थका ता पदकी लक्षणातैं विना बोध होता नहीं। और सा वाच्यताका अवच्छेदक जाति तौं अवाच्य हूई भी ता पदतैं प्रतीत होवै है। यातैं घटादिक पदतैं ता घटत्वादिक जातिका बोध संभवै है और पटादिकोंका बोध संभवता नहीं और ता घटवृत्ति पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिक जाति ता घटपदकी वाच्यतातैं अधिक देशवृत्ति होणेतैं ता घटमात्रवृत्ति घटपदकी वाच्यताका अवच्छेदक होवै नहीं। यातैं ता घट पदतैं तिन पृथिवीत्वादिक जातियोंका बोध होवै नहीं। इस प्रकार घटादिक पदोंकी केवल घटादिक व्यक्तिविषे शक्तिके अंगीकार कीयेहूए भी ता घटत्वादिक जातिका बोध संभवै है इति।

केईकग्रन्थकार--तौं यह कहे हैं। घटादिक पदोंतैं जैसे जातिविशिष्ट व्यक्तिका बोध होवै है। तैसे ता घटत्वादिक जातिका जो ता घटादिक व्यक्तिविषे समवायसंबंध है ता संबंधका भी बोध होवै है। यातैं जाति व्यक्ति संबंध इन तीनोंविषे घटादिक पदकी शक्ति है इति।

मीमांसकोंका मत—तौं यह है। घटादिक पदोंकी घटत्वादिक जातिविषे हीं शक्ति है। घटादिक व्यक्तिविषे शक्ति नहीं है। जो कदाचित् घटादिक पदोंकी घटादिक व्यक्तिविषे शक्ति अंगीकार करिये तौं अज्ञातघटादिक व्यक्तिका ता घटादिक पदतैं शाब्दबोध नहीं होवैगा। और अज्ञातव्यक्तिका भी शाब्दबोध होवै है। यातैं घटादिक पदोंका घटत्वादिक जाति हीं शक्य है व्यक्ति शक्य नहीं है। **शंका**—घटादिक पदोंकी जो घटादिक व्यक्तिविषे शक्ति नहीं अंगीकार करोंगे तौं 'घटमानय' इत्यादिक वाक्यतैं श्रोतापुरुषकूं घटादिक व्यक्तिका बोध नहीं होणा चाहिये। किंतु ता घटत्वादिक जातिमात्रका हीं बोध होणा चाहिये। और ता घटव्यक्तिके बोधतैं विना ता घटव्यक्तिका ले आवणा भी संभवता नहीं। **समाधान**—ता घटादिक पदतैं तौं ता घटत्वादिक जातिमात्रका हीं शाब्द बोध होवै है, घटादिक व्यक्तिका शाब्दबोध होता नहीं। परंतु ता घटत्वादिक जातिके शाब्दबोधतैं अनंतर ता घटादिक व्यक्तिका आक्षेपतैं बोध होवै है। ईहां केईकमीमांसक—तौं ता आक्षेपशब्द करिकै अनुमान प्रमाणका ग्रहण करे हैं अर्थात् अनुमानप्रमाण करिकै हीं ता घटादिक व्यक्तिका बोध होवै है। ता अनुमानका यह आकार है। **घटत्वं व्यक्त्याश्रितं जातित्वात् पटत्ववत्।** अर्थ यह--घटत्वजाति व्यक्तिके आश्रित है, जातिरूप होणेतैं; जा जा जाति होवै है सा सा व्यक्तिके आश्रित हीं होवै है, जैसे पटत्वजाति जातिरूप होणेतैं पटव्यक्तिके आश्रित है, तैसे यह घटत्व-जाति भी जातिरूप होणेतैं घटव्यक्तिके आश्रित हीं होवैगी, इस प्रकारके अनुमानरूप आक्षेप

करिकै हीं ता घटादिक व्यक्तिका ज्ञान होवै है इति । भट्टपाद—तौं ता आक्षेप पद करिकै अर्थापत्तिप्रमाणका ग्रहण करे है अर्थात् घटपदतैं ता घटत्वजातिके शाब्दबोधतैं अनंतर अर्थापत्तिरूप आक्षेपतैं ता घटव्यक्तिका ज्ञान होवै है । तहां जैसे दिनविषे नहीं भोजन करणेहारे पुरुषके शरीरका पीनत्व ता पुरुषके रात्रिभोजनतैं विना अनुपपन्न हूआ ता रात्रि भोजनकी कल्पना करावै है तैसे सा घटत्वजाति भी आपणे घटव्यक्तिरूप आश्रयतैं विना अनुपपन्न हूई ता घटव्यक्तिकी कल्पना करावै है । इस प्रकारके अर्थापत्तिरूप आक्षेप करिकै ता घटादिक व्यक्तिका ज्ञान होवै है इति । गुरु—तौं ता आक्षेप पद करिकै समानवित्तिवेद्यत्वका ग्रहण करे है तहां जातिव्यक्ति दोनोंविषे जो एकज्ञानकी विषयता है ताका नाम समानवित्तिवेद्यत्व है, तात्पर्य यह—जा जा बुद्धि जातिकूं विषय करे है सा सा बुद्धि ता जातिके आश्रयभूत व्यक्तिकूं भी अवश्य करिकै विषय करे है । ता व्यक्तिकूं छोडिकै सा बुद्धि केवलजातिमात्रकूं विषय करती नहीं । जैसे—' अयं घटः ' यह प्रत्यक्षज्ञान ता घटत्वजातिकूं विषय करता हूआ ता घटत्वजातिके आश्रयभूत घटव्यक्तिकूं भी विषय करे है । तैसे घटपदतैं उत्पन्न हूआ शाब्दबोध भी ता घटत्वजातिकूं विषय करता हूआ ता घटव्यक्तिकूं भी विषय करे है । या प्रकारके समानवित्तिवेद्यत्वरूप आक्षेपतैं हीं ता घटादिक व्यक्तिका बोध होवै है इति । इहां मंडनमिश्रका मत—तो यह है । घटादिक पदकी घटत्वादिक जातिविषे तौं शक्ति है और घटादिक व्यक्तिविषे लक्षणा है । तहां—' घटमानय ' इस वचनकूं श्रवण करिकै श्रोता पुरुषकूं ता घटपदतैं घटत्वजातिका बोध होवै है परंतु ता घटत्वजातिका ता घटव्यक्तितैं विना आनयन संभवता नहीं और वक्तापुरुषका ता घटव्यक्तिके आनयनविषे हीं तात्पर्य है, घटत्वजातिके आनयनविषे तत्पर्य है नहीं । ता तात्पर्यकी अनुपपत्तितैं सो श्रोतापुरुष ता घटपदकी ता घटव्यक्तिविषे लक्षणा करे है । यातैं ता श्रोतापुरुषकूं ता एक हीं घटपदतैं शक्तिवृत्ति करिकै तौं घटत्वजातिका बोध तथा लक्षणावृत्ति करिकै घटव्यक्तिका बोध संभवै है इति । ईहां केईकग्रंथकार—तौं घटादिक पदोंकी घटत्वादिक जातिविषे कुब्जशक्ति माने हैं तिनोंका यह अभिप्राय है—घटपदकी घटत्वजातिविषे तथा घटव्यक्तिविषे दोनोंविषे शक्ति है परंतु सा जातिनिष्ठ शक्ति ता ' घटत्वं घटपदशक्यम् ' या प्रकारके ज्ञानका विषय हूई हीं ता घटत्वजातिविशिष्ट घटव्यक्तिके स्मरणका तथा शाब्दबोधका कारण होवैहै और ता घटव्यक्तिनिष्ठ शक्ति तौं ज्ञातहूई ता पदार्थस्मरणविषे तथा शाब्दबोधविषे कारण होती नहीं, किंतु सा व्यक्तिनिष्ठ शक्ति स्वरूपतैं हीं ता पदार्थस्मरणविषे तथा शाब्दबोधविषे कारण होवै है । जो कदाचित् ता घटादिकव्यक्तिविषे घटादिक पदकी शक्ति नहीं मानिये तौं जैसे घटपदतैं घटरूप अशक्य अर्थका बोध होवै है तैसे पटादिक अशक्य अर्थका भी बोध होणा चाहिये । यातैं ता घटपदकी ता घटव्यक्तिविषे भी शक्ति मानी चाहिये इति । इहां भट्टपादका मत—यह है जैसे

घटादिक पदार्थोंका शाब्दबोधविषे भान होवै है तैसे तिन घटादिक पदार्थोंके संबंधका भी ता शाब्दबोधविषे भान होवै है । जैसे—' नीलो घटः ' इस वाक्यतैं घटपदार्थविषे नील पदार्थका अभेदसंबंध प्रतीत होवै है और तिस तिस वस्तुविषयक शाब्दबोधके प्रति पदकी शक्ति आदिक वृत्तिज्ञान जन्य तिस तिस वस्तुकी स्मृति हीं कारण होवै है । यातैं ता संबंधके बोध वास्तैं ता संबंधविषे भी घटादिक पदोंकी शक्ति माननी चाहिये । जो कदाचित् ता संबंधविषे घटादिक पदोंकी शक्ति नहीं मानिये तौं ता संबंधका शाब्दबोधविषे भान नहीं होवैगा, यातैं घटादिक पदोंकी इतरान्वित घटादिक व्यक्तिविषे शक्ति है अर्थात् दूसरे पदार्थके अन्वयरूप संबंधवाले घटादिक व्यक्तिविषे घटादिकपदकी शक्ति है और " इतरान्वितो घटो घटपदवाच्यः " या प्रकारका शक्तिज्ञान हीं ता इतरान्वित घटके शाब्दबोधका हेतु होवै है इति । इहां प्रभाकरका मत—यह है बालककूं प्रथम वृद्धव्यवहारतैं कृतिसाध्य आनयनादिरूप कार्यअन्वित घटादिकोंविषे हीं घटादिक पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है यातैं ता कार्य अन्वित घटादिकोंविषे हीं ता घटादिक पदकी शक्ति है । यातैं " घटमानय " इत्यादिक कार्यवाक्योंतैं हीं घटादिकोंका शाब्दबोध होवै है ' भूतले घटः ' इत्यादिक सिद्धवाक्यतैं तिन घटादिकोंका शाब्दबोध होता नहीं; ईहां यह तात्पर्य है—आनुभाविक १, स्मारक २ इस भेद करिकै सा शक्ति दो प्रकारकी होवै है । तहां जा शक्ति वस्तुके शाब्दबोधमात्रका हेतु होवै है ता वस्तुके स्मरणका हेतु होती नहीं सा शक्ति आनुभाविकशक्ति कही जावै है और जा शक्ति वस्तुके स्मरणका हेतु होवै है सा शक्ति स्मारक शक्ति कही जावै है । तहां घटादिक पदोंकी कार्य अन्वित घटादिकोंविषे तौं आनुभाविक शक्ति है और घटत्वादिक जातिविषे स्मारकशक्ति है यातैं घटादिक पदोंविषे ता कार्यत्वके शाब्दबोधकी हेतुताके हूए भी ता स्मारकशक्तिके अभावतैं तिन घटादिक पदोंतैं ता कार्यत्वका स्मरण होता नहीं, किंतु लिङ्लोटादिक विधिप्रत्ययतैं हीं ता कार्यत्वका स्मरण होवै है सो कार्यत्वका वाचकप्रत्यय जिस वाक्यविषे होवै है तिस वाक्यतैं हीं शाब्दबोध होवै है जैसे " घटमानय " इत्यादिक लौकिकवाक्य तथा " स्वर्गकामो यजेत " इत्यादिक वैदिकवाक्य ता विधिप्रत्यय करिकै घटित हैं । यातैं तिन वाक्योंतैं शाब्दबोध होवै है और " भूतले घटः " इत्यादिक लौकिकवाक्य तथा ' तत्त्वमसि ' इत्यादिक वैदिकवाक्य ता कार्यत्वके वाचक लिङादिक पद करिकै घटित नहीं है । यातैं तिन सिद्धवाक्योंतैं शाब्दबोध होता नहीं इति । तहां इस शक्तिके निरूपणविषे जितनैंकी मत पूर्वकथन करे हैं तिन मतोंका खंडन यद्यपि न्यायग्रंथोंविषे लिख्या है तथापि ईहां ग्रंथवृद्धिके भयतैं लिख्या नहीं किंतु केवल तिन वादीयोंके मतमात्र दिखाये हैं इति । तहां इतनैं पर्यंत शक्तिवृत्तिका निरूपण कर्‍या ।

शक्तिज्ञानके उपाय—अब जिस उपायतैं ता शक्तिका ज्ञान होवै है ता उपायका वर्णन करे है । ते शक्तिज्ञानके उपाय वृद्धपुरुषोंनैं यह कहे हैं । तहां श्लोक—शक्तिग्रहं व्याकरणोपमा-

नकोशाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च । वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः । अर्थ यह—व्याकरण १, उपमान २, कोश ३, आप्तवाक्य ४, व्यवहार ५, वाक्यशेष ६, विवरण ७, सिद्धपदकी समीपता ८ इन अष्ट उपायोंतैं ता उक्त शक्तिका ज्ञान होवै है । इस प्रकार वृद्धपुरुष कहे हैं । अब इन अष्ट उपायोंके स्वरूपका यथाक्रमतैं वर्णन करे हैं। व्याकरण—तहां धातु, प्रकृति, प्रत्यय आदिकोंके शक्तिका ज्ञान व्याकरणतैं होवै है । जैसे 'भू सत्तायां' इस व्याकरणसूत्रतैं भूधातुकी सत्ता अर्थविषे शक्ति जानी जावै है। और 'वर्त्तमाने लट्' इस व्याकरणसूत्रतैं लट् प्रत्ययकी वर्त्तमान कालविषे शक्ति जानी जावै है परंतु जिस स्थलविषे किसी गौरवादिक दोषकी प्राप्ति होवै है तिस स्थलविषे सा व्याकरणतैं निश्चय करीहूई भी शक्ति परित्याग करी जावै है। जैसे 'चैत्रः पचति' इस वाक्यके अन्त्यविषे स्थित जो 'तिप्' यह आख्यातप्रत्यय है ता आख्यातकी वैयाकरणोंनैं कर्त्ताविषे शक्ति मानी है, ता आख्यातार्थकर्त्ताका चैत्रपुरुषके साथि अभेदरूपतैं अन्वय होवै है। अर्थात् पाककर्त्तातैं अभिन्न चैत्र है या प्रकारका बोध तिनोंके मतविषे ता वाक्यतैं होवै है । परंतु इस वैयाकरणोंके मतविषे गौरव है । काहेतैं ? ता आख्यातकी जो कर्ताविषे शक्ति मानिये तौं ता आख्यातपदके शक्यताका अवच्छेदक कृति होवैंगी ते कृतियां नाना हैं और ता आख्यातकी जो कृतिविषे शक्ति मानिये तौं शक्यताका अवच्छेदक कृतित्वजाति होवैंगी, सा कृतित्वजाति एक है । यातैं ता वैयाकरणोंके मतविषे गौरवदोषकूं देखिकै नैयायिकोंनैं लाघवतैं ता आख्यातकी कृतिविषे हीं शक्ति मानी है, ता आख्यातार्थ कृतिका ता चैत्रपुरुषविषे आश्रयतासंबंध करिकै अन्वय होवै है । अर्थात् 'पाकानुकूलकृतिमान् चैत्रः' या प्रकारका ता वाक्यतैं शाब्दबोध होवै है इति ॥ १ ॥ उपमान—और कहां उपमानतैं भी पदके शक्तिका ज्ञान होवै है। जैसे—गवयादिक पदोंकी गवयादिरूप अर्थविषे शक्ति उपमानतैं ग्रहण होवै है सो उपमानतैं शक्तिग्रहणका प्रकार पूर्व उपमाननिरूपणविषे कथन करि आये हैं इति ॥ २ ॥ कोश—कहां कोशतैं भी पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है । जैसे—'अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदरगजाननाः' इस कोशके वचनतैं एकदन्त हेरंब लम्बोदर गजानन इन पदोंकी गणेशविषे शक्ति निश्चय होवै है, इस प्रकार कोशतैं दूसरे भी अनेक पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है सो अमरकोशादिकोंविषे प्रसिद्ध है, परंतु कोई स्थलविषे कोशतैं ग्रहण हूई भी शक्तिका गौरवदोषतैं त्याग कीया जावै है। जैसे—'गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति' अर्थ यह शुक्लनीलादिक पद जबी तौं शुक्लनीलादिकरूप गुणके वाचक होवै हैं तबी तौं नियमतैं पुल्लिंग हीं होवै हैं और जबी ते शुक्लनीलादिक पद ता शुक्लनीलादिक रूपगुणवाले गुणी द्रव्यके वाचक होवै हैं तबी तौं ता गुणीद्रव्यके समानलिङ्गवाले होवै हैं, इस कोशवचननैं शुक्लनीलादिक पदोंकी गुण गुणी दोनोंविषे शक्ति कथन करी है, तथापि तिन शुक्लनीलादिक पदोंकी गुणी द्रव्यविषे शक्ति माननेमें गौरव है

अर्थात् शुक्लवत्त्व नीलवत्त्व इत्यादिक गुरुधर्मोंविषे तिन शुक्लादिक पदोंकी शक्यताका अवच्छेदकपणा मानणा होवै है और तिन शुक्लादिक पदोंकी जो तिन शुक्लादिक गुणोंविषे शक्ति मानिये तौं तिन शुक्लादिक पदोंकी शक्यताका अवच्छेदकपणा शुक्लत्व, नीलत्व, आदिक जातियोंविषे मानणा होवै है। तहां शुक्लवत्त्व नीलवत्त्व आदिक धर्मकी अपेक्षा करिकै शुक्लत्व-नीलत्वादिक जातियोंविषे तिन शुक्लनीलादिक पदोंकी शक्यताका अवच्छेदकपणा माननेमें लाघव है, यातैं गौरवदोषकूं देखिकै तिन शुक्लनीलादिक पदोंकी गुणी द्रव्यविषे शक्तिका परित्याग करिकै नैयायिक लाघववैं तिन शुक्लनीलादिक पदोंकी केवल शुक्लनीलादिक गुणमात्रविषे हीं शक्ति अंगीकार करे हैं। और 'नीलो घटः' इत्यादिक वाक्योंविषे नीलादिक पदतैं जो नीलादिक गुणवाले घटादिक द्रव्यका बोध होवै है सो नीलादिक पदोंकी निरूढलक्षणा करिकै होवै है। तहां अनादि तात्पर्यके विषयभूत अर्थविषे जा पदकी लक्षणा है ताकूं निरूढलक्षणा कहे हैं इति ॥ ३ ॥

आप्तवाक्य—और कहां आप्तपुरुषके वचनतैं भी पदके शक्तिका ज्ञान होवै है। जैसे—'कोकिलः पिकपदवाच्यः' इस आप्तपुरुषके वचनतैं पिकपदकी कोकिलविषे शक्ति जानी जावै है। तथा 'नीरूपः स्पर्शवान् वायुः' इस आप्तवचनतैं रूपरहित स्पर्शवाले द्रव्यविषे वायुपदकी शक्ति जानी जावै है। तथा 'निःस्पर्शमूर्त्तिमत् मनः' इस आप्तवचनतैं स्पर्शरहित मूर्त्तद्रव्यविषे मनपदकी शक्ति जानी जावै है इति ॥ ४ ॥ व्यवहार—और कहां व्यवहारतैं भी पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है। जैसे प्रयोजकवृद्धपुरुषनैं प्रयोज्यवृद्धपुरुषके प्रति 'गामानय' या प्रकारका वाक्य कथन कन्या ता वाक्यकूं श्रवण करिकै सो प्रयोज्यवृद्धपुरुष गौकूं ले आवता भया तिसतैं अनन्तर 'गां बधान' इस प्रयोजकवृद्धके वचनकूं श्रवण करिकै सो प्रयोज्यवृद्ध ता गौकूं बान्धता भया। तिसतैं अनन्तर 'अश्वमानय' इस प्रयोजक वृद्धके वचनकूं श्रवण करिकै सो प्रयोज्यवृद्ध अश्वकूं ले आवता भया। इस प्रकारके व्यवहारकूं देखिकै ता प्रयोज्यवृद्धके समीपस्थित बालककूं तिन गोअश्वादिक अर्थोंविषे तिन गोअश्वादिक पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है इति॥५॥

वाक्यशेष—और कहां वाक्यशेषतैं भी पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है। जैसे 'यवमयश्चरुर्भवति' इस वचनविषे स्थित जो यवपद है ता यवपदकूं श्रवण करिकै इस पुरुषकूं या प्रकारका संशय होवै है। आर्यपुरुष तौं दीर्घशूकविशिष्ट अन्नविशेषकूं यव कहे हैं और म्लेच्छलोक तौं कंगुनामा अन्नविशेषकूं यव कहे हैं। यातैं ता उक्तवाक्यविषे स्थित यवपद ता दीर्घशूक विशिष्ट अन्नका वाचक है। अथवा ता कंगुनामा अन्नविशेषका वाचक है। इस प्रकारके संशयहूएतैं अनंतर ता पुरुषकूं वाक्यशेषतैं ता यवपदकी दीर्घशूकविशिष्ट अन्नविषे शक्तिका ज्ञान होवै है। सो वाक्यशेष यह है—वसन्ते सर्वसस्यानां जायते पत्रशातनम्। मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः। अर्थ यह—वसन्तऋतुविषे सर्व-वनस्पतिके पत्र सूखिके पडि जावै हैं और दीर्घशूकवाले यव तौं प्रफुल्लितहूए स्थित होवै हैं।

इस वाक्यशेषतैं ता पुरुषकूं ता यवपदकी ता दीर्घशूकविशिष्ट अन्नविषे शक्तिका ज्ञान होवै है और जैसे गगरीआदिक अपभ्रंश पदोंका शक्तिके भ्रमतैं घटादिकोंविषे प्रयोग होवै है। तैसे ता यवपदका भी शक्तिके भ्रमतैं ता कंगुविषे प्रयोग होवै है इति ६ ॥ विवरण—और कहां विवरणतैं भी पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है। तहां **तत्समानार्थकपदान्तरेण तदर्थकथनं विवरणम्** । अर्थ यह—तिस पदके समान अर्थवाला जो दूसरा पद है तिस दूसरे पद करिकै जो तिस पदके अर्थका कथन है ताकूं विवरण कहे हैं इसी विवरणकूं विवृत्ति भी कहे हैं। जैसे घट, कलश यह दोनों पद एक हीं घटरूप अर्थके वाचक हैं। तहां जिस पुरुषकूं कलशपदके शक्तिका ज्ञान तौं है परन्तु घटपदके शक्तिका ज्ञान नहीं है। तिस पुरुषके प्रति 'घटोऽस्ति' या प्रकारका वचन प्रथम कहिकै, पश्चात् 'कलशोऽस्ति' या प्रकारका वचन जबी कह्या जावै है तबी तिस पुरुषकूं कलश हीं घटपदका वाच्य अर्थ है या प्रकारका कलशविषे घटपदके शक्तिका ज्ञान होवै है। तहां घटपदके समान अर्थवाले कलश पद करिकै जो ता घटपदके अर्थका कथन है यह हीं विवरण है इति ॥ ७ ॥

प्रसिद्धका सामीप्य—और कहां प्रसिद्धअर्थके वाचक पदकी समीपतातैं भी पदके शक्तिका ज्ञान होवै है। जैसे 'इह सहकारतरौ मधुरं पिको रौति' अर्थ यह—इस आम्रवृक्षविषे पिक मधुरशब्दकूं करैहै इस वचनकूं श्रवण करिकै इस पुरुषकूं कोकिलविषे पिक शब्दके शक्तिका ज्ञान होवै है। तहां आम्रवृक्षविषे कोकिल मधुरशब्दकूं करे है। इस प्रकारका ज्ञान ता पुरुषकूं पूर्व हीं है परंतु कोकिलकूं हीं पिक कहे हैं या प्रकारका ज्ञान तिस पुरुषकूं पूर्व है नहीं। ता उक्तवचनकूं श्रवण करिकै सहकारतरु मधुरशब्दकर्तृत्व इन प्रसिद्ध अर्थवाले पदोंकी समीपतातैं ता पुरुषकूं ता कोकिलविषे पिकशब्दके शक्तिका ज्ञान होवै है इति ॥ ८ ॥ तहां पूर्व शक्ति लक्षणा यह दो प्रकारकी पदवृत्ति कही थी। ताके विषे प्रथम शक्ति वृत्तिका पूर्वविस्तारतैं निरूपण कर्‌या।

लक्षणावृत्तिका निरूपण—करे हैं। तहां लक्षणा—**शक्यसंबन्धः लक्षणा**। अर्थ यह—जिस पदकी लक्षणावृत्तितैं जिस अर्थका बोध होवै है तिस पदके शक्यअर्थका जो तिस अर्थके साथि सम्बन्ध है ताका नाम लक्षणा है। जैसे 'गंगायां घोषः' इस वचनविषे गंगापदकी लक्षणावृत्तितैं श्रोताकूं तीरका बोध होवै है। तहां गंगापदका शक्य अर्थ जो जलका प्रवाह है ता शक्यअर्थका तीरविषे संयोगसम्बन्ध है सो शक्यसंबन्ध हीं ता गंगापदकी तीरविषे लक्षणा है। इस प्रकारकी लक्षणावृत्तिके ज्ञानवाले पुरुषकूं ता गंगापदके श्रवणतैं अनंतर ता तीररूप अर्थका स्मरण होवै है तथा 'तीरवृत्तिघोषः' या प्रकारका ता तीररूप अर्थका शाब्दबोध होवै है इति। तहां 'गंगायां घोषः' इस वचनकूं श्रवण करिकै सो श्रोतापुरुष ता गंगापदकी तीरविषे लक्षणा क्युं करे है। ऐसी शंकाके प्राप्तहूए, अब मतभेदतैं ता लक्षणाके बीजका वर्णन करे है। प्राचीनोंके मतविषे लक्षणाका बीज—तहां प्राचीननैयायिक तौं

अन्वयानुपपत्तिकूं हीं लक्षणाका बीज माने हैं । ईहां पदोंके शक्य अर्थोंका जो सम्बन्ध है ताका नाम अन्वय है । ता सम्बन्धरूप अन्वयकी जो अनुपपत्ति कहीये नहीं बनना है ताका नाम अन्वयानुपपत्ति है । जैसे 'गङ्गायां घोषः' इस वचनविषे गङ्गापदका शक्य अर्थ जलका प्रवाह है और घोषपदका शक्य अर्थ गोपालोंका ग्राम है । तिन दोनों शक्य अर्थोंका परस्पर आधार आधेयभाव संबंध ता उक्तवाक्यतैं प्रतीत होवै है सो संभवता नहीं । अर्थात् जलके प्रवाहविषे ता घोषकी आधारता संभवती नहीं; किन्तु तीरविषे हीं ता घोषकी आधारता संभवै है । इस प्रकारतैं अन्वयानुपपत्तिकूं विचार करिकै सो श्रोतापुरुष ता गङ्गा पदकी तीरविषे लक्षणा करे है । यातैं सा अन्वयानुपपत्ति हीं ता लक्षणाका बीज है इति ।

तात्पर्य्यानुपपत्तिको बीज मानणेहारे नवीननैयायिक-तौं यह कहे हैं । वक्तापुरुषके तात्पर्यकी जो अनुपपत्ति है सोई हीं ता लक्षणाका बीज है । सो उक्त अन्वयानुपपत्ति ता लक्षणाका बीज नहीं हैं । काहेतैं ? जो कदाचित् ता अन्वयानुपपत्तिकूं ही लक्षणाका बीज मानिये तौं 'यष्टीः प्रवेशय' इस वाक्यविषे यष्टिपदकी यष्टिधर पुरुषोंविषे लक्षणा नहीं होणी चाहिये, तहां पाकशालाविषे सर्वअन्नके पाकहूएतैं अनंतर गृहवाले पुरुषनैं 'यष्टीः प्रवेशय' या प्रकारका वचन किसी पुरुषके प्रति कह्या, ता वचनकूं श्रवण करिकै सो पुरुष ता यष्टिपदकी ता यष्टिके धारण करणेहारे पुरुषोंविषे लक्षणा करे है सो नहीं होवैगी । जिस कारणतैं बिन काष्ठरूप यष्टियोंका प्रवेशनरूप क्रियाविषे संबंधरूप अन्वय अनुपपन्न नहीं है, किंतु सो अन्वय संभवता है परंतु ता पुरुषका अन्नके भोजन करावणेविषे तात्पर्य है सो वक्ताका तात्पर्य ता पाकशालाविषे यष्टियोंके प्रवेश करणेतैं अनुपपन्न होवै है । इस प्रकारतैं ता वक्ताके तात्पर्यकी अनुपपत्तिका विचार करिकै सो वाक्य श्रोतापुरुष ता यष्टिपदकी यष्टिधरपुरुषों विषे लक्षणा करे है और जहां 'गङ्गायां घोषः' इत्यादिक स्थलोंविषे अन्वयानुपपत्ति है तहां भी सा वक्तापुरुषके तात्पर्यकी अनुपपत्ति संभव होइ सके है यातैं सर्वत्र वक्तापुरुषके तात्पर्यकी अनुपपत्ति हीं लक्षणाका बीज है इति ।

लक्षणाके भेद-सा उक्तलक्षणा जहत्‌लक्षणा १, अजहत्‌लक्षणा २, जहत्‌अजहत्‌लक्षणा ३ लक्षितलक्षणा ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारकी होवै है । अब यथाक्रमतैं इन च्यारोंका स्वरूपवर्णन करे हैं । तहां जहल्लक्षणा-**लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यमात्रबोधप्रयोजिका लक्षणा जहल्लक्षणा** । अर्थ यह-लक्ष्यता अवच्छेदकरूप करिकै लक्ष्यमात्रके बोधका हेतुभूत जा लक्षणा है सा लक्षणा जहत्‌लक्षणा कही जावै है । जैसे 'गङ्गायां घोषः' इस वचन विषे गङ्गापदकी जा शक्यसंबंधरूप तीरविषे लक्षणा है सा लक्षणा तीरत्वरूप लक्ष्यतावच्छेदकरूप करिकै ता तीररूप लक्ष्यमात्रके बोधका हेतु होवै है । यातैं सा गङ्गापदकी तीरविषे लक्षणा जहत्‌लक्षणा कही जावै है । तैसे 'मञ्चाः क्रोशन्ति' अर्थ यह-मंच शब्दकूं करे हैं ।

ईहां जडमञ्चोंविषे शब्दका कर्त्तापणा संभवता नहीं यातैं मंचपदकी मंचस्थपुरुषविषे लक्षणा होवै है सा लक्षणा भी जहत्लक्षणा कही जावै है इति । अजहत्लक्षणाका वर्णन—करै हैं। तहां **लक्ष्यतावच्छेकरूपेण लक्ष्यशक्योभयबोधप्रयोजिका लक्षणा अजहल्लक्षणा** । अर्थ यह—लक्ष्यतावच्छेदकरूप करिकै लक्ष्य शक्य दोनोंके बोधका हेतु जा लक्षणा है सा लक्षणा अजहत्लक्षणा कही जावै है । जैसे किसी पुरुषनैं भोजन करणे वासतै राखेहूए दधिकूं काक-बिडालादिक जन्तुवेंतैं रक्षण करणे वासतै किसी पुरुषके प्रति 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यतां' या प्रकारका वचन कह्या ता वचनकूं श्रवण करिकै सो पुरुष काकपदकी दधिके उपघातकविषे लक्षणा करिकै करे है । तहां जिनोंके स्पर्शहूए सो दधि भक्षण करणेयोग्य नहीं होवै है । तिनोंका नाम दधिउपघातक है । ऐसे काक, बिडाल, श्वान आदिक हैं । तिन दधिउपघातक काक बिडालादिक लक्ष्योंविषे रही हूई जा काकपदकी लक्ष्यता है ता लक्ष्यताका अवच्छेदक दधिउपघातकत्व धर्म है, ता दधिउपघातकत्वरूप लक्ष्यतावच्छे-दकरूप करिकै काकबिडालश्वानादिक सर्वशक्यलक्ष्यपदार्थोंका बोध ता श्रोतापुरुषकूं ता काकपदकी लक्षणातैं होवै है । यातैं सा काकपदकी दधिउपघातकविषे लक्षणा अजहत् लक्षणा कही जावै है । तैसे 'छत्रिणो गच्छन्ति' इस वचनविषे भी छत्रीपदकी एक सार्थवाही पुरुषोंविषे लक्षणा होवै है ता लक्षणातैं एक सार्थवाहित्वरूप लक्ष्यताअवच्छेदक रूप करिकै छत्रवाले पुरुषोंका तथा छत्ररहित पुरुषोंका बोध होवै है । यातैं ता छत्रीपदकी जा एकसार्थवाही पुरुषोंविषे लक्षणा है सा लक्षणा भी अजहत्लक्षणा कही जावै है इति । जहत्अजहत्लक्षणाका वर्णन—करे है । तहां **शक्यतावच्छेदकपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधप्रयो-जिका लक्षणा जहदजहल्लक्षणा** । अर्थ यह—पदकी शक्यताका अवच्छेदक जो धर्म है ताका परित्याग करिकै व्यक्तिमात्रके बोधका हेतु जा लक्षणा है सा लक्षणा जहत्अजहत् लक्षणा कही जावै है। इसी जहत्अजहत्लक्षणाकूं भागत्याग लक्षणा भी कहे हैं । जैसे वेदां-तियोंके मतविषे 'तत्त्वमसि' इस वचनविषे जहत्अजहत् लक्षणा होवै है । तहां सर्वज्ञत्व-विशिष्ट चेतन तत्पदका शक्य अर्थ है । और अल्पज्ञत्व विशिष्ट चेतन त्वंपदका शक्य अर्थ है । तिन दोनों शक्य अर्थोंका अभेद बनि सकता नहीं । यातैं सर्वज्ञत्वरूप शक्यता अवच्छेदक धर्मका परित्याग करिकै तत्पदकी चेतनमात्रविषे लक्षणा होवै है । इस प्रकार अल्पज्ञत्वरूप शक्यता अवच्छेदक धर्मका परित्याग करिकै त्वंपदकी भी चेतनमात्रविषे लक्षणा होवै है । तिन चेतनोंका परस्पर अभेद संभवै है । यातैं ता तत्पदकी तथा त्वंपदकी जा चेतनमात्रविषे लक्षणा है सा लक्षणा जहत्अजहत्लक्षणा कही जावै है । नैयायिकोंके मतविषे तौ इस जहत्अजहत्लक्षणाका उदाहरण 'सोऽयं देवदत्तः' यह वाक्य है । ईहां भी तत् देशकाल-विशिष्ट देवदत्त स शब्दका शक्य अर्थ है । और एतत्देशकाल विशिष्ट देवदत्त, अयं शब्दका

शक्य अर्थ है। तिन दोनों विशिष्टोंकी एकताके असंभवहूए ता विशेषणअंशका परित्याग करिकै तिन दोनों पदोंकी ता देवदत्तनामा पुरुषव्यक्तिविषे लक्षणा करी जावै है। इति।

लक्षितलक्षणाका वर्णन—करे हैं। तहां **शक्यार्थपरम्परासम्बन्धरूपालक्षणा लक्षितलक्षणा।** अर्थ यह—पदके शक्य अर्थका जो परम्परासंबंध रूप लक्षणा है सा लक्षणा लक्षितलक्षणा कही जावै है। जैसे 'द्विरेफो रौति। अर्थ यह—द्विरेफ शब्दकूं करे है। ईहां द्विरेफ इस पदका शक्य अर्थ दो रकार हैं तिन दोरकारोंविषे शब्दका कर्त्तापणा संभवता नहीं। यातैं ता वाक्यकूं श्रवण करिकै श्रोतापुरुष ता द्विरेफपदकी मधुपव्यक्तिविषे लक्षणा करे है। तहां ता द्विरेफपदके शक्यअर्थरूप दोरकारोंका ता मधुपव्यक्तिविषे साक्षात्संबंध तौ है नहीं, किंतु स्वघटितपदवाच्यत्वरूप परंपरासम्बन्ध है। ईहां स्वशब्द करिकै तिन दोरकारोंका ग्रहण करणा ता दोरकारों करिकै घटित जो भ्रमर पद है ता भ्रमरपदका वाच्यत्व ता मधुपव्यक्तिविषे है यातैं ता द्विरेफपदकी ता मधुपव्यक्तिविषे जा उक्त परम्परासम्बन्धरूप लक्षणा है सा लक्षणा लक्षित लक्षणा कही जावै है इति। ईहां केईकग्रन्थकार—इस लक्षित लक्षणाकूं पृथक् मानते नहीं किन्तु जहत् लक्षणाके अन्तर्भूत माने हैं इति। दूसरोंके यहां लक्षणाके भेद—और केईकग्रन्थकार तौं ता लक्षणाकूं केवललक्षणा १, लक्षितलक्षणा २ इस भेद करिकै दो प्रकारका माने हैं। तहां केवललक्षणा शक्यअर्थके साक्षात् सम्बन्धकूं कहे है। लक्षित लक्षणा—शक्य अर्थके परम्परासम्बन्धकूं लक्षितलक्षणा कहे है। केवल लक्षणाके भेद—जहत्लक्षणा १, अजहत्लक्षणा २, जहत्अजहत्लक्षणा ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारके माने हैं इति।

गौणी और शुद्धा—केईकग्रन्थकार तौं ता लक्षणाकूं गौणी १, शुद्धा २ इस भेद करिकै दो प्रकारका माने हैं। शुद्धाके भेद—तहां शुद्धालक्षणाकूं जहत्लक्षणा १, अजहत्लक्षणा २ जहत्अजहत्लक्षणा ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका माने हैं इति। किंवा सा उक्तलक्षणा, निरूढलक्षणा १, स्वारसिकलक्षणा २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारकी होवै है।

निरूढ लक्षणा—तहां **अनादितात्पर्यविषयीभूतार्थनिष्ठा लक्षणा निरूढलक्षणा।** अर्थ यह—अनादि तात्पर्यका विषयभूत अर्थविषे रहीहूई जा लक्षणा है सा लक्षणा निरूढ लक्षणा कही जावै है। जैसे 'नीलो घटः' इस वाक्यविषे नीलपदकी नीलगुणविशिष्ट द्रव्यविषे निरूढलक्षणा होवै है। सा निरूढलक्षणा शक्तिके सदृश हीं होवै है इति।

स्वारसिक लक्षणा—और **अधुनातनतात्पर्यविषयीभूतार्थनिष्ठालक्षणा स्वारसिकलक्षणा।** अर्थ यह—इदानींकालके पुरुषके तात्पर्यका विषयभूत जो अर्थ है ता अर्थविषे रहीहूई जा लक्षणा है सा लक्षणा स्वारसिक लक्षणा कही जावै है। जैसे किसी पुरुषनैं गंगाविषे महान् मत्स्यकूं देखिकै किसी पुरुषके प्रति 'गंगायां घोषः' या प्रकारका वचन कह्या, ता वचनकूं श्रवण करिकै सो पुरुष ता घोषपदकी मत्स्यविषे लक्षणा करे है। सा लक्षणा

स्वारसिकलक्षणा कही जावै है इति । लक्षणा पदविषे है वाक्यविषे नहीं—सा पूर्वउक्त सर्वप्रकारकी लक्षणा पदविषे हीं होवै है वाक्यविषे होती नहीं । काहेतें ? शक्तिवाला पद होवै है यातैं पदका हीं शक्य अर्थ होवै है और वाक्यविषे शक्ति होती नहीं । यातैं वाक्यका कोई शक्य अर्थ भी होता नहीं । और पूर्व शक्य अर्थके संबंधकूं हीं लक्षणा कह्या है । यातैं सा शक्यसंबंध-रूप लक्षणा पदविषे हीं संभवै है वाक्यविषे संभवती नहीं । यातैं वाक्यविषे लक्षणा मानणेहारे मीमांसकादिकोंका मत असंगत है इति । गौणीवृत्तिवादी—ईहां केईकशास्त्रवाले तौ यह कहे हैं जैसे पदकी पूर्वउक्त शक्तिवृत्ति तथा लक्षणावृत्ति होवै है तैसे ता पदकी तीसरी गौणी वृत्ति भी होवै है । लक्षणा—तहां शक्यार्थसादृश्यरूपेणाशक्यार्थबोधप्रयोजिकावृत्तिः गौणीवृत्तिः । अर्थ यह—पदके शक्य अर्थका जो सादृश्य है । ता सादृश्यरूप करिकै अशक्य अर्थके बोधका हेतु जा वृत्ति है सा वृत्ति गौणी वृत्ति कही जावै है । जैसे 'सिंहो देवदत्तः' इस वचनतैं सिंहका तथा देवदत्तनामा पुरुषका अभेदप्रतीत होवै है सो संभवता नहीं । यातैं सिंहपदकी गौणीवृत्तितैं ता श्रोतापुरुषकूं सिंहके सदृशदेवदत्त है या प्रकारका बोध होवै है । तहां सिंहपदका शक्य अर्थ जो मृगराजपशु है तिसविषे रहेहूए जे शूरताक्रूरतादिक धर्म हैं ते धर्म ता देवदत्तनामा पुरुषविषे भी रहे हैं । यह हीं ता देवदत्तनामा पुरुषविषे ता सिंहका सादृश्य है, ता सादृश्यरूप करिकै ता देवदत्तपुरुषका बोध ता सिंहशब्दकी गौणीवृत्तितैं हीं होवै है ता सिंहशब्दकी शक्तिवृत्तितैं वा लक्षणावृत्तितैं होवै नहीं । यातैं सा गौणीवृत्ति ता शक्तिलक्षणातैं भिन्न हीं मानी चाहिये इति । गौणीवृत्तिवादीके मतका खण्डन—सो यह मत भी समीचीन नहीं है । काहेतें ? सा गौणीवृत्ति लक्षणातैं पृथक् नहीं है किंतु ता लक्षणाके अंतर्भूत हीं है । तहां ता सिंहपदके शक्यअर्थका यद्यपि ता देवदत्तपुरुषविषे साक्षात्संबंध नहीं है । तथापि जैसे पूर्वउक्त द्विरेफ पदके शक्य अर्थका मधुपव्यक्तिविषे परंपरासंबंध है तैसे ईहां भी ता सिंहपदके शक्यअर्थका ता देवदत्तपुरुषविषे स्ववृत्तिशूरतादिमत्त्वरूप परंपरासंबंध संभवै है । यातैं ता गौणीवृत्तिका लक्षितलक्षणाविषे हीं अंतर्भाव है इति । व्यञ्जनावृत्ति—ईहां आलंकारिक चतुर्थी व्यंजनावृत्ति भी अंगीकार करे हैं तिनोंका यह अभिप्राय है 'तीरे घोषः' इस प्रकारके वचन कहणेतैं श्रोतापुरुषकूं सुखै नहीं तीरवृत्तिघोषका बोध होइ सकता था ता वचनकूं न कहिकै 'गंगायां घोषः' इस वचनका जो कथन है सो कथन ता गंगातीरविषे शीतपावनतादिकोंके बोधन करणे वासतै है । तहां सा शीतपावनतादिकोंकी प्रतीति गंगापदकी लक्षणावृत्ति करिकै तौ होइ सकती नहीं । काहेतें ? वक्ताके तात्पर्यकी अनुपपत्तितैं लक्षणा होवै है सो तात्पर्यकी अनुपपत्तिका परिहार तौ केवल तीरमात्रविषे लक्षणा करणेतैं हीं होइ सके है । यातैं शीतपावनतादिविशिष्ट तीरविषे लक्षणा करणेमें कोई भी प्रमाण नहीं है । यातैं ता शीतपावनतादिविशिष्ट तीरके बोध वासतै ता गंगापदकी ता शीतपावनतादिविशिष्ट तीरविषे सा व्यंजनावृत्ति अवश्य अंगीकार

करी चाहिये इति । इसका खण्डन—सो यह मत भी असंगत है । काहेतैं ? ता उक्त गौणी वृत्तिकी न्यांई इस व्यंजनावृत्तिका भी लक्षणाविषे हीं अंतर्भाव संभवै है । तहां जहां वक्ता पुरुषनैं शीतपावनत्वविशिष्ट तीरके बोध करावणे वासतै 'गंगायां घोषः' या प्रकारका वचन उच्चारण कऱ्या है । तहां ता वक्ताके तात्पर्यकी अनुपपत्तितैं सो श्रोतापुरुष ता गंगापदकी शीतपावनतादिविशिष्ट तीरविषे ही लक्षणा करे है । ता लक्षणातैं तिस पुरुषकूं ता गंगापदतैं शीतपावनतादिविशिष्ट तीरका ही बोध होवै है । अथवा ता गंगापदकी लक्षणातैं ता पुरुषकूं तीरमात्रका हीं शाब्दबोध होवै है । तिसतैं अनंतर—**गङ्गातीरं शीतपावनत्वादिमत् गङ्गापदबोध्यत्वात् गङ्गावत्** । इस अनुमान करिकै तिन शीतपावनतादिकोंका अनुमितिज्ञान होवै है । यातैं सा व्यञ्जनावृत्ति लक्षणाके हीं अंतर्भूत है । यातैं शक्ति, लक्षणा यह दो प्रकारकी हीं पदकी वृत्ति होवै है ता शक्तिलक्षणारूप वृत्तिका ज्ञान पदार्थकी स्मृतिद्वारा शाब्दबोधका हेतु होवै है इति । **शङ्का**—जो वृत्तिज्ञान हीं शाब्दबोधका हेतु होवै तौं 'गौः अश्वः' इस वाक्यतैं भी लोकोंकूं शाब्दबोध होणा चाहिये । जिस कारणतैं गौरूप अर्थविषे गोपदके शक्तिका ज्ञान तथा अश्वरूप अर्थविषे अश्वपदके शक्तिका ज्ञान लोकोंकूं विद्यमान हीं है और ता उक्तवाक्यतैं लोकोंकूं शाब्दबोध होता नहीं । **समाधान**—जैसे ता उक्तवृत्तिका ज्ञान शाब्दबोधका हेतु होवै है । तैसे आकांक्षा १, योग्यता २, आसत्ति ३, तात्पर्य ४ इन-च्यारोंका ज्ञान भी ता शाब्दबोधका हेतु होवै है 'गौः अश्वः' इस वाक्यविषे पदोंकूं परस्पर आकांक्षा है नहीं यातैं ता वाक्यतैं शाब्दबोध होता नहीं ।

आकांक्षादिक च्यारोंका स्वरूप—यथा क्रमतैं वर्णन करे हैं । तहां आकांक्षाका लक्षण—**येन पदेन विना यत्पदस्याननुभावकत्वं तत्पदे तत्पदसमभिव्याहारः आकांक्षा** । अर्थ यह—जिस पदतैं विना जिस पदकूं शाब्दबोधकी जनकता नहीं होवै है तिस पदविषे जो तिस पदकी समीपता है ताका नाम आकांक्षा है । जैसे 'घटमानय' इस वचनविषे घट इस पदतैं उत्तर 'अम्' यह विभक्तिपद है । तहां केवल घटपदके उच्चारण कीये हूए भी घटीया कर्मता या प्रकारका शाब्दबोध होता नहीं तथा केवल अम्पदके उच्चारण कीयेहूए भी सो शाब्दबोध होता नहीं । यातैं घटपदकूं आपणेतैं अव्यवहित उत्तरवृत्ति 'अम्' पदकी आकांक्षा है तैसे 'अम्'पदकूं भी आपणेतैं अव्यवहित पूर्ववृत्ति घटपदकी आकांक्षा है । इस प्रकार 'आनय' इस वचनविषे भी आपूर्व नी धातुकूं स्वउत्तरवृत्ति आख्यातपदकी आकांक्षा है । तथा ता आख्यातपदकूं स्वपूर्ववृत्ति आपूर्व नीधातुकी आकांक्षा है ता आकांक्षाका ज्ञान शाब्दबोधका हेतु होवै है अर्थात् अमादिक विभक्तिपद अव्यवहित उत्तरत्व संबंध करिकै घटादिक पदवाला है तथा आख्यातपद अव्यवहितउत्तरत्व संबंध करिकै ता धातुपदवाला है या प्रकारका आकांक्षाज्ञान यथाक्रमतैं घटीया कर्मता आनयनानुकूला कृति या प्रकारके शाब्दबोधका हेतु होवै है ।

और 'घटमानय' इस वाक्यविषे स्थित घटादिकपद जिस जिस घटादिरूप अर्थके वाचक हैं तिस तिस घटादिरूप अर्थके वाचक 'घटः कर्मत्वम् आनयनं कृतिः' इस वाक्यविषे स्थित पद भी हैं परंतु इन पदोंविषे सा उक्त आकांक्षा है नहीं। यातैं जैसे 'घटमानय' इस उक्त वाक्यतैं श्रोतापुरुषकूं शाब्दबोध होवै है तैसे 'घटः कर्मत्वं आनयनं कृतिः' इस वाक्यतैं श्रोतापुरुषकूं सो शाब्दबोध होता नहीं। यातैं ता आकांक्षाज्ञानकूं शाब्दबोधका हेतु अवश्य मान्या चाहिये इति।

योग्यताका वर्णन—करे हैं । तहां लक्षण—एकपदार्थे परपदार्थसम्बन्धः योग्यता । अर्थ यह--एक पदार्थविषे दूसरे पदार्थका जो संबंध है ताका नाम योग्यता है । जैसे 'घटमानय त्वम्' इस वाक्यविषे घटपदके अर्थका अम्पदके कर्मतारूप अर्थविषे आधेयता संबंध है । और ता कर्मतारूप अर्थका आपूर्व नी धातुके आनयनरूप अर्थविषे निरूपकता संबंध है और ता आनयनरूप अर्थका आख्यातप्रत्ययके कृतिरूप अर्थविषे अनुकूलतासंबंध है और ता कृतिरूप अर्थका त्वंपदार्थपुरुषविषे आश्रयतासंबंध है ता संबंधका नाम योग्यता है । ता योग्यताके ज्ञानवाले पुरुषकूं 'घटमानय त्वम्' या वचनके श्रवणतैं अनंतर 'घटवृत्तिकर्मतानिरूपक आनयनानुकूलकृति आश्रयः त्वंपदार्थः' या प्रकारका शाब्दबोध होवै है । यद्यपि ता उक्त पदार्थोंके सम्बन्धविषे किसी पदकी शक्तिवृत्ति वा लक्षणावृत्ति नहीं है और पदकी शक्तिवृत्तितैं वा लक्षणावृत्तितैं स्मरणहुए अर्थका हीं शाब्दबोधविषे भान होवै है । तथापि यह उक्तनियम पदार्थोंके बोधविषे है सम्बन्धके बोधविषे नहीं । ता पदार्थोंके सम्बन्धका तौं शक्तिलक्षणारूप वृत्तितैं विना हीं पदोंकी समीपताके वशतैं शाब्दबोधविषे भान होवै है । यातैं ता सम्बन्धविषे भी पदकी शक्ति मानणेहारे मीमांसकोंका मत गौरवदोषवाला होणेतैं असंगत है । जो कदाचित् ता योग्यताज्ञानकूं शाब्दबोधका हेतु नहीं मानिये तौं जैसे 'पयसा सिञ्चति' इस वाक्यतैं शाब्दबोध होवै है। तैसे 'वह्निना सिञ्चति' इस वाक्यतैं भी शाब्दबोध होणा चाहिये । तहां जलविषे तौं ता सिञ्चनकी करणता होवै है परन्तु वह्निविषे ता सिञ्चनकी करणता होती नहीं । यातैं ता उक्तयोग्यताके अभावतैं 'वह्निना सिञ्चति' इस वाक्यतैं शाब्दबोध होता नहीं इति । आसत्तिका निरूपण—करे हैं। तहां यत्पदार्थेन सह यत्पदार्थस्यान्वयोऽपेक्षितस्तयोः पदयोरव्यवधानं आसत्तिः । अर्थ यह—जिस पदके अर्थका जिस पदके अर्थसाथि सम्बन्धरूप अन्वय अपेक्षित होवै है तिन दोनों पदोंका जो अव्यवधान है अर्थात् व्यवधानतैं रहित समीपपणा है ताका नाम आसत्ति है । जैसे 'घटमानय त्वम्' इस वचनविषे घटादिक पदके अर्थका आनयादिक पदके अर्थसाथि अन्वय अपेक्षित होवै है। यातैं तिन घटादिक पदोंका जो अव्यवधान है सोई हीं आसत्ति है ता आसत्तिका ज्ञान भी शाब्दबोधका हेतु होवै है । जो कदाचित् ता आसत्तिज्ञानकूं शाब्दबोधका हेतु नहीं मानिये तौं जैसे 'गिरिर्वह्निमान् भुक्तं देवदत्तेन'

इस वचनतैं गिरिवह्निवाला है देवदत्तनैं भोजन कऱ्या है या प्रकारका शाब्दबोध होवै है । तैसे 'गिरिर्भुक्तं वह्निमान् देवदत्तेन' इस वचनतैं भी सो उक्त शाब्दबोध होणा चाहिये । परन्तु इस वचनतैं ता उक्त आसत्तिके अभावतैं सो उक्त शाब्दबोध होता नहीं । यातैं ता आसत्तिज्ञानकूं शाब्दबोधका हेतु अवश्य मान्या चाहिये इति ॥

तात्पर्यका वर्णन—करे हैं । तहां लक्षण—वक्तुरिच्छा तात्पर्यम् । अर्थ यह—इस पदतैं श्रोता पुरुषकूं इस अर्थका बोध होवो या प्रकारकी जा वक्ता पुरुषकी इच्छा है ताका नाम तात्पर्य है । तिस तात्पर्यका ज्ञान भी शाब्दबोधका हेतु होवै है । जो कदाचित् तिस तात्पर्यके ज्ञानकूं शाब्दबोधका हेतु नहीं मानिये तौ 'सैंधवमानय' इस प्रकारके वाक्यतैं किसी स्थलविषे तौ श्रोता पुरुषकूं सैंधवपदतैं लवणका बोध होवै है और किसी स्थलविषे ता सैंधवपदतैं अश्वका बोध होवै है सो नहीं होणा चाहिये किंतु सर्वत्र ता लवणका ही बोध होणा चाहिये वा सर्वत्र ता अश्वका हीं बोध होणा चाहिये । यातैं ता विलक्षण बोधकी सिद्धि वासतैं ता तात्पर्यज्ञानकूं शाब्दबोधका हेतु अवश्य मान्या चाहिये । तिस तात्पर्यका ज्ञान इस श्रोता पुरुषकूं प्रकरणतैं होवै है । जैसे भोजनप्रकरणतैं ता सैंधवपदका लवणविषे तात्पर्य जान्या जावै है और गमन प्रकरणतैं ता सैंधवपदका अश्वविषे तात्पर्य जान्या जावै है । इस प्रकार तात्पर्यज्ञानकूं शाब्दबोधकी कारणताके सिद्ध हूए वेदस्थलविषे तिस तात्पर्यके ज्ञानवासतैं ता वेदका कर्त्ता ईश्वर कल्पना कऱ्या जावै है । अर्थात् ता ईश्वरकी इच्छारूप तात्पर्यके ज्ञानतैं हीं वैदिक वाक्योंतैं श्रोतापुरुषोंकूं शाब्दबोध होवै है । यद्यपि शुकादिक पक्षीयोंके वाक्यतैं भी लोकोंकूं अर्थका बोध होवै है । और तिन शुकादिकोंविषे सो इच्छारूप तात्पर्य है नहीं । तथापि रामकृष्णादिक साधु पदों करिकै घटित जो शुकादिकोंका वाक्य है ता वाक्यविषे तौ ईश्वरका तात्पर्य हीं जानणा । और गगरीआदिक अपभ्रंश पदों करिकै घटित जो शुकका वाक्य है ता वाक्यविषे सिखावणेहारे पुरुषका तात्पर्य जानणा । तिस तात्पर्यके ज्ञानतैं श्रोता पुरुषकूं ता शुकादिक पक्षीके वाक्यतैं भी शाब्दबोध संभवै है इति ।

ईहा केईक ग्रन्थकार—तौं यह कहे हैं । सर्व शाब्दबोधके प्रति तात्पर्यज्ञानकूं कारणता नहीं है किंतु नानाअर्थवाले पद करिकै घटित वाक्यतैं उत्पन्नहूए शाब्दबोधके प्रति हीं ता तात्पर्य ज्ञानकूं कारणता होवै है । जैसे सैंधवपद लवण अश्व दोनोंका वाचक होणेतैं नानाअर्थवाला है । ता सैंधवपदघटित 'सैंधवमानय' इस वाक्यतैं जन्य शाब्दबोधविषे तिस तात्पर्यज्ञानकूं कारणता है परंतु 'घटमानय' इत्यादिक वाक्यजन्य शाब्दबोधविषे तिस तात्पर्य ज्ञानकूं कारणता है नहीं । इस प्रकार शुकादिकोंके वाक्यजन्य शाब्दबोधविषे भी तात्पर्यज्ञानकूं कारणता है नहीं इति ।

शब्दप्रमाणको अनुमानमें गतार्थ करणेवाले काणाद—ईहां वैशेषिकशास्त्रवाले शब्दकूं अनुमानप्रमाणतैं पृथक्प्रमाण मानते नहीं किंतु ता शब्दकूं अनुमानके अंतर्भूत माने हैं। तिन वैशेषिकोंका यह अभिप्राय है 'घटमानय' या प्रकारके वचनकूं श्रवण करिकै श्रोतापुरुष या प्रकारका अनुमान करे है। **एतानि पदानि स्मारितार्थसंसर्गज्ञानपूर्वकाणि आकांक्षादिमत्पदकदम्बकत्वात् गामानय इतिमद्वाक्यवत्।** अर्थ यह—'घटमानय' इस वाक्यविषे स्थित जे घटादिक पद हैं ते घटादिकपद घटादिक पदोंतैं स्मरणहूए घटादिक अर्थोंके संसर्गकूं विषय करणेहारे ज्ञानपूर्वक हैं। आकांक्षा, योग्यता, आसत्तिवाले पदोंका समूहरूप होणेतैं, जे जे पद आकांक्षादिमत्पदकदंबकरूप होवै हैं ते ते पद स्मारितपदार्थोंके संसर्गविषयक ज्ञानपूर्वक हीं होवै है। जैसे अन्यपुरुषके प्रति हमनैं उच्चारण कऱ्या जो 'गामानय' यह पदोंका समूह है सो पदोंका समूह आकांक्षादिमत्पदकदंबकरूप होणेतै हमारे स्मारित गौ आदिक पदार्थोंके संसर्गविषयकज्ञानपूर्वक हीं होवै है इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै हीं तिन घटादिक पदार्थोंके संसर्गका ज्ञान होवै है। यातैं सो शब्दप्रमाण अनुमानप्रमाणके हीं अंतर्भूत है इति। उनका खण्डन—सो यह वैशेषिकोंका मत समीचीन नहीं है। काहेतैं? 'घटमानय' इत्यादिक वाक्यके श्रवणतैं अनंतर घटादिक पदार्थोंके संबंधका ज्ञान जो कदाचित् उक्त अनुमानप्रमाण करिकै हीं होता होवै तौं ता ज्ञानतैं अनंतर तिस वाक्यश्रोतापुरुषकूं ता अनुमितिज्ञानकूं विषय करणेहारा 'अनुमिनोमि' या प्रकारका मानसप्रत्यक्षरूप अनुव्यवसायज्ञान हीं होणा चाहिये सो ऐसा अनुव्यवसायज्ञान तिस श्रोतापुरुषकूं होता नहीं किंतु 'शब्दात्प्रत्येमि' या प्रकारका शाब्दबोधकूं विषयकरणेहारा हीं अनुव्यवसायज्ञान होवै है, ता विलक्षण अनुव्यवसायरूप अनुभवके वशतैं ता शाब्दी प्रमाकूं अनुमितितैं पृथक् हीं मानणा होवैगा। ता शाब्दीप्रमाके पृथक्सिद्ध हूए ता शाब्दी प्रमाका करणरूप शब्दप्रमाण भी ता अनुमान प्रमाणतैं पृथक् हीं मानणा होवैगा। यातैं प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान, शाब्द यह पूर्वउक्त च्यारि हीं प्रमाण सिद्ध होवै हैं इति।

इति शब्दप्रमाणनिरूपणं समाप्तम्।

---

अर्थापत्ति आदिक।

अब अर्थापत्तिकूं पंचमा प्रमाण मानणेहारे प्रभाकरके मतका निरूपण करे हैं। तहां लक्षण—**उपपादककल्पनाहेतुभूतोपपाद्यज्ञानं अर्थापत्तिप्रमाणम्।** अर्थ यह—उपपादकके ज्ञानका हेतुभूत जो उपपाद्यका ज्ञान है सो उपपाद्यका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण कह्या जावै है। जैसे दिनविषे नहीं भोजन करणेहारे देवदत्त नामा पुरुषके शरीरकी स्थूलतारूप पीनत्वकूं देखिकै अथवा किसीके मुखतैं श्रवण करिकै यह पुरुष ता देवदत्तपुरुषके रात्रिभोजनकी कल्पना

करे है। जिस कारणतैं अन्नके भोजनतैं विना शरीरका पीनत्व होता नहीं। तहां सो रात्रिभोजन तौ उपपादक है और सो पीनत्व उपपाद्य है। तहां जिस पदार्थ विना जो पदार्थ कदाचित् भी संभवता नहीं तिस पदार्थका सो पदार्थ उपपाद्य कह्या जावै है। जैसे रात्रि भोजनतैं विना दिवा अभोजी पुरुषविषे पीनत्व कदाचित् भी संभवता नहीं। यातैं ता रात्रिभोजनका सो पीनत्व उपपाद्य कह्या जावै है। और जिस पदार्थके अभावतैं जा पदार्थका अभाव होवै है सो पदार्थ ता पदार्थका उपपादक कह्या जावै है। जैसे रात्रिभोजनके अभावतैं दिवा अभोजी पुरुषविषे पीनत्वका भी अभाव होवै है। यातैं सो रात्रिभोजन ता पीनत्वका उपपादक कह्या जावै है। तहां 'अयं देवदत्तः रात्रिभोजी' या प्रकारका जो रात्रिभोजनरूप उपपादकका ज्ञान है सो ज्ञान तौं अर्थापत्तिप्रमा कह्या जावै है। और 'दिवा अभुञ्जानस्य पीनत्वं रात्रिभोजनं विना अनुपपन्नं' अर्थ यह—दिवा अभोजी पुरुषका पीनत्व रात्रिभोजनतैं विना अनुपपन्न है या प्रकारका जो पीनत्वरूप उपपाद्यका ज्ञान है सो ज्ञान अर्थापत्तिप्रमाण कह्या जावै है। तहां सो रात्रिभोजनका ज्ञान ता अर्थापत्तिप्रमाणतैं भिन्न किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै संभवता नहीं। यातैं सो अर्थापत्ति प्रमाण अवश्य मान्या चाहिये इति। इसका खण्डन—सो यह प्रभाकरका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं? ता रात्रिभोजनका ज्ञान केवलव्यतिरेकी अनुमान करिकै हीं संभवै है ता अनुमानका यह आकार है। **देवदत्तः रात्रिभोजी दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा दिवारात्रि अभोजी।** अर्थ यह—यह देवदत्त रात्रिविषे भोजनकूं करे है दिनविषे भोजनकूं नहीं करता हूआ पीन होणेतैं जो पुरुष रात्रिभोजनवाला नहीं होवै है सो पुरुष दिवा अभोजी हूआ पीन भी नहीं होवै है। जैसे रात्रिविषे तथा दिनविषे नहीं भोजन करणेहारा पुरुष पीन भी नहीं होवै है। इस प्रकारके केवलव्यतिरेकी अनुमान करिकै हीं ता रात्रिभोजनका ज्ञान होइ सके है। यातैं ता अर्थापत्ति प्रमाणकूं अनुमानप्रमाणतैं पृथक् प्रमाण मानणा असंगत है इति। अनुपलब्धि—ईहां मीमांसक भट्टपाद तथा वेदांती अभावके प्रत्यक्षवासतै षष्ठ अनुपलब्धि प्रमाणकूं भी पृथक् प्रमाण मानै हैं ता अनुपलब्धिका स्वरूप तथा ता अनुपलब्धिविषे प्रमाणरूपताका खण्डन पूर्व प्रत्यक्षनिरूपणविषे कथन करि आये हैं सो ईहां भी जानि लेणा इति। सम्भव—ईहां पौराणिक संभवकूं तथा ऐतिह्यकूं भी पृथक् प्रमाण मानै हैं। तहां लक्षण—**अविनाभाविनोऽर्थस्य सत्ता ग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणं संभवः।** अर्थ यह—जो पदार्थ जिस पदार्थतैं विना रहता नहीं सो पदार्थ तिस पदार्थके अविनाभाववाला होवै है ऐसे अविनाभावी पदार्थके सद्भावज्ञानतैं जो तिस अन्यपदार्थके सद्भावका ज्ञान है ताका नाम संभव है। जैसे पंचासतैं विना शत होता नहीं किंतु सो शत पंचास करिकै घटित ही होवै है यातैं सो शत पंचासके अविनाभाववाला है। ता शतके ज्ञानतैं अनंतर इस पुरुषकूं ता पंचासका ज्ञान अवश्य होवै है। तहां यह शतवाला है या प्रकारका ज्ञान तौं संभवप्रमाण है

और यह पंचासवाला है या प्रकारका ज्ञान प्रमारूप फल है । तहां सो संभव संभावनारूप १, निर्णयरूप २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां यह ब्राह्मण है या प्रकारके ज्ञानतैं अनंतर इस ब्राह्मणविषे चतुर्दशविद्यावोंका वेत्तापणा संभवै है या प्रकारका जो ज्ञान होवै है सो सम्भवनारूप सम्भव कह्या जावै है। और जहां शतके ज्ञानतैं अनंतर पंचासका ज्ञान होवै है सो निर्णयरूप सम्भव कह्या जावै है इति । इसका खण्डन—सो यह मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? प्रथम सम्भावनारूप सम्भव तौं नियम करिकै यथार्थज्ञानका जनक होता नहीं । यातैं सो संभावनारूप सम्भव प्रमाणरूप होता नहीं । और दूसरा निर्णयरूप सम्भव तौं अनुमानके हीं अंतर्भूत होवै है । अनुमानप्रमाणतैं पृथक् होता नहीं । तात्पर्य यह—जहां जहां शत होवै है तहां तहां पंचास अवश्य होवै है । या प्रकारके सहचार दर्शनतैं ता शतविषे पंचासकी व्याप्तिके निश्चयवाले पुरुषकूं ता शतरूप हेतुके ज्ञानतैं ता पंचासरूप साध्यकी अनुमिति हीं होवै है । यातैं सो निर्णयरूप सम्भव अनुमानके हीं अंतर्भूत है इति ।

ऐतिह्यप्रमाणका निरूपण--करे हैं । लक्षण--**विशिष्यानिर्णीतप्रथमवक्तृकः शब्दविशेषः ऐतिह्यम्** । अर्थ यह—विशेष करिकै नहीं निर्णयहूआ है प्रथमवक्ता जिसका ऐसा जो शब्द विशेष है ताका नाम ऐतिह्य है । जैसे इस बटविषे यक्ष रहे है इत्यादिक लौकिक इतिहास ऐतिह्य कह्या जावै है। तहां इस पुरुषनैं इस बटविषे यक्षकूं देखिकै 'इह वटे यक्षस्तिष्ठति' या प्रकारका वचन कह्या था । इस प्रकारतैं ता वचनके प्रथमवक्ता पुरुषका निर्णय होता नहीं किंतु लोकपरम्परातैं सो प्रवाद चल्या आवै है । ऐसे ऐतिह्य प्रमाणतैं हीं ता बटविषे लोकोंकूं यक्षका ज्ञान होवै है इति । इसका खण्डन—सो यह मत भी असङ्गत है । काहेतैं ? जो ऐतिह्य यथार्थज्ञानका जनक होवै है सो ऐतिह्य तौं शब्द प्रमाणके हीं अन्तर्भूत है। और जो ऐतिह्य यथार्थ ज्ञानका जनक नहीं है सो ऐतिह्य प्रमाणरूप हीं नहीं है । दोनों प्रकारतैं ता ऐतिह्यकूं पृथक् प्रमाणता सिद्ध होवै नहीं इति । संकेतप्रमाण—ईहां तांत्रिक चेष्टाकूं भी पृथक् प्रमाण माने हैं तिनोंका यह अभिप्राय है । जे पुरुष परस्परमिलिकै इस हस्तादिकोंकी चेष्टातैं तुमनैं यह अर्थ जानणा या प्रकारतैं चेष्टाका संकेत करे हैं तिन पुरुषोंकूं ता चेष्टातैं तिस तिस अर्थका ज्ञान होइ जावै है ता विजातीय ज्ञानका सा चेष्टा हीं करण है । यातैं ता विजातीय प्रमाका करण होणेतैं सा चेष्टा पृथक् हीं प्रमाण है इति। इसका खण्डन—सो यह तिनोंका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ? सा चेष्टा भी पृथक्प्रमाण नहीं है किंतु ता विलक्षण चेष्टातैं तिस तिस अर्थके वाचक पदोंका स्मरण होइकै तिस तिस अर्थका शाब्द बोध हीं होवै है अथवा ता चेष्टारूप हेतुतैं तिस तिस अर्थका अनुमितिज्ञान होवै है। यातैं ता चेष्टाविषे पृथक् प्रमाणरूपता संभव नहीं इति । यातैं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४ यह पूर्व उक्त च्यारि हीं प्रमाण संभवै हैं । इन च्यारोंतैं न्यून प्रमाण वा अधिक प्रमाण संभवै नहीं यह सिद्ध भया इति ।

सबमतोंके प्रमाण—अब मतभेदतैं तिन प्रमाणोंका न्यून अधिकभाव दिखावैं हैं। तहां चार्वाक तौं एक प्रत्यक्षप्रमाणकूं हीं माने हैं। और वैशेषिक तथा बौद्ध तथा आर्हत यह तीनों प्रत्यक्ष १, अनुमान २ इन दो प्रमाणोंकूं माने हैं। शब्द उपमान इन दो प्रमाणोंकूं अनुमानके अन्तर्भूत माने हैं। और आनन्दतीर्थाचार्य तौं प्रत्यक्ष १, शब्द २ इन दो प्रमाणोंकूं माने है। इनोंके मतविषे अनुमान स्वतंत्र प्रमाण नहीं होवै है किंतु श्रुतिके अनुसारी हूआ प्रमाण होवै है। और सांख्यशास्त्रवाले तौं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, शब्द ३, यह तीन हीं प्रमाण माने हैं और नैयायिकोंके एकदेशी तौं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३ यह तीन हीं प्रमाण माने हैं। और नैयायिक तौं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४ यह च्यारि-प्रमाण माने हैं। और प्रभाकर तौं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४, अर्थापत्ति ५, यह पंचप्रमाण माने हैं। और भट्टपाद तथा वेदांती तौं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४, अर्थापत्ति ५, अनुपलब्धि ६ यह षट्प्रमाण माने हैं। और पौराणिक तौं तिन उक्त षट्प्रमाणोंविषे संभव ऐतिह्य इन दोप्रमाणोंकूं मिलाइकै अष्टप्रमाण माने हैं। और तांत्रिक तिन उक्त अष्टप्रमाणोंविषे चेष्टारूपप्रमाणकूं मिलाइकै नवप्रमाण माने हैं इति।

अयथार्थ अनुभवका निरूपण—तहां पूर्व यथार्थ अयथार्थ इस भेद करिकै दो प्रकारका अनुभव कह्या था ताकेविषे प्रत्यक्ष अनुमिति उपमिति शाब्द यह च्यारि प्रकारका यथार्थअनुभव पूर्वविस्तारतैं निरूपण कर्‍या। अब दूसरे अयथार्थ अनुभवका निरूपण करे हैं। तहां अयथार्थ अनुभवका लक्षण पूर्व कथन करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा।

अयथार्थके भेद—सो अयथार्थ अनुभव भी संशय १, विपर्यय २, तर्क ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। संशय—ताके विषे प्रथम संशयका निरूपण करे हैं। तहां लक्षण—**एकधर्मिणिविरुद्धभावाभावप्रकारकज्ञानं संशयः।** अर्थ यह—एक हीं धर्मीविषे परस्परविरुद्ध भावअभावकूं विषयकरणेहारा जो ज्ञान है सो ज्ञान संशय कह्या जावै है। जैसे मन्दअन्धकारविषे स्थित स्थाणुविषे इस पुरुषकूं 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' या प्रकारका जो ज्ञान होवै है सो ज्ञान ता पुरोवर्त्तिस्थाणुरूप एक धर्मीविषे स्थाणुत्वकूं तथा स्थाणुत्वके अभावकूं, पुरुषत्वकूं तथा पुरुषत्वके अभावकूं विषय करे है। और स्थाणुत्व तथा स्थाणुत्वका अभाव यह दोनों तथा पुरुषत्व पुरुषत्वका अभाव यह दोनों परस्परविरोधी भी हैं अर्थात् एक अधिकरणविषे रहते नहीं। यातैं एकधर्मीविषे विरुद्धभावअभावप्रकारक होणेतैं सो ज्ञान संशय कह्या जावै है इति। संशयके भेद—तहां सो उक्तसंशय साधारणधर्मज्ञानजन्य १, असाधारणधर्मज्ञानजन्य २, विप्रतिपत्तिवाक्यज्ञानजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। साधारण धर्मजन्य—तहां 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह उक्त संशय तौं स्थाणुविषे तथा पुरुषविषे रह्या जो उच्चैस्तरत्वरूप साधारणधर्म है ता साधारणधर्मके ज्ञान

करिकै जन्य होणेतैं साधारणधर्मज्ञान जन्य संशय कह्या जावै है। असाधारण धर्मज्ञानजन्य शब्दत्व-धर्म आकाशादिक नित्य पदार्थोंविषे भी नहीं रहे है। तथा घटादिक अनित्य पदार्थोंविषे भी नहीं रहे हैं, किंतु केवल शब्दमात्रविषे हीं सो शब्दत्वधर्म रहे है । या प्रकारके ज्ञानतैं अनन्तर इस पुरुषकूं 'शब्दो नित्यो नवा' या प्रकारका शब्दविषे नित्यत्व नित्यत्वाभाव प्रकारक संशय होवे है, सो संशय ता शब्दत्वरूप असाधारणधर्मके ज्ञान करिकै जन्य होणेतैं असाधारणधर्म ज्ञानजन्य संशय कह्या जावै है। और पूर्वउक्त यथार्थअनुभवरूप प्रमाविषे रह्या-हूआ जो प्रमात्वधर्म है तिस प्रमात्वकूं मीमांसक स्वतोग्राह्य कहे हैं और नैयायिक परतो-ग्राह्य कहे हैं। तिन दोनों प्रकारके वचनोंकूं श्रवण करिकै इस पुरुषकूं 'प्रमात्वं स्वतो ग्राह्यं परतो ग्राह्यं वा' या प्रकारका जो संशय होवै है सो संशय विप्रतिपत्तिवाक्यज्ञानजन्य संशय कह्या जावै है। प्रमात्वविषे स्वतोग्राह्यत्व तथा परतोग्राह्यत्व आगे निरूपण करेंगे इति।

पुनः दो भेद—किंवा सो उक्त संशय बहिर्विषयक १, अंतर्विषयक २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। बहिर्विषयक—तहां बाह्यवस्तुकूं विषय करणेहारा जो संशय है सो बहि र्विषयक कह्या जावै है। अन्तर्विषयक—और अन्तर्वस्तुकूं विषय करणेहारा जो संशय है सो अंतर्विषयक कह्या जावै। बहिर्विषयकके भेद—किंवा सो बहिर्विषयक संशय भी दृश्यमानधर्मिक १, अदृश्यमानधर्मिक २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। दृश्यमान धर्मिक—तहां ऊर्ध्वत्वविशिष्टधर्मीके दर्शनतैं 'अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा' या प्रकारका जो संशय होवै है सो संशय दृश्यमानधर्मिक कह्या जावै है। अदृश्यमान धर्मिक—वनविषे वृक्षकी शाखादिकों करिकै आवृत्त जो गौ पिंड है अथवा गवयपिंड है। ताके शृंगमात्रके दर्शनतैं इस पुरुषकूं 'अयं-गौर्गवयो वा' या प्रकारका जो संशय होवै है सो संशय अदृश्यमानधर्मिक कह्या जावै है। और इस पुरुषकूं आपणे ज्ञानादिकोंविषे जो सम्यक्असम्यक्पणेका संशय होवै है सो संशय अंतर्विषयक—कह्या जावै है इति । तहां विशेषका अदर्शन तथा दोनों कोटियोंका स्मरण पूर्वउक्त सर्वसंशयोंविषे कारण होवै है तिसतैं विना कोई भी संशय होता नहीं। तहां जिसके ज्ञानतैं संशयनिवृत्त होइ जावै है ताका नाम विशेष है। जैसे स्थाणुपणेका निश्चय करावणेहारा वक्रकोटरादिमत्त्व है तथा पुरुषपणेके निश्चय—करावणेहारा करादिमत्त्व है ता विशेषके ज्ञानहूए सो संशय होता नहीं। यातैं ता विशेषके अदर्शनकूं संशयकी कारणता सम्भवै है। इस प्रकार जिस संशयविषे जे भावअभावरूप विरुद्धकोटि प्रतीत होवै हैं । तिन दोनों कोटियोंका स्मरण भी ता संशयका कारण होवै है इति। विपर्यय—अब दूसरे विपर्य-यरूप अयथार्थअनुभवका निरूपण करे हैं। तहां लक्षण—मिथ्याज्ञानापरपर्यायोऽयथार्थ-निश्चयः विपर्ययः। अर्थ यह—मिथ्याज्ञान है नाम जिसका ऐसा जो अयथार्थनिश्चय है सो विपर्यय कह्या जावै है। जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह ज्ञान है तथा रज्जुविषे 'अयं-

सर्पः ' यह ज्ञान है तथा देहविषे ' गौरोऽहं स्थूलोऽहं ब्राह्मणोऽहं ' या प्रकारका आत्मत्वज्ञान है ।तथा शंखविषे ' पीतः शंखः ' तथा मरुभूमिविषे ' इदं जलम् ' इस प्रकारका जो ज्ञान है । ते सर्वज्ञान मिथ्याज्ञानरूप होणेतैं विपर्यय कहे जावै हैं । इसी मिथ्याज्ञानरूप विपर्ययकूं भ्रम भी कहे हैं तथा भ्रांति भी कहे हैं तथा अप्रमा भी कहे हैं ।

विपय्यर्ययज्ञानके कारण—तिस विपर्ययविषे सामान्यरूपतैं धर्मीका ज्ञान तथा विशेषरूपका अदर्शन तथा एककोटिका स्मरण तथा दोष यह च्यारों कारण होवै हैं । जैसे शुक्तिविषे ' इदं रजतम् ' या प्रकारके विपर्ययज्ञानविषे शुक्तिरूप धर्मीका इदंतारूपतैं ज्ञान कारण होवै है १, तथा शुक्तित्व, नीलपृष्ठत्व, त्रिकोणत्व, आदिक विशेषरूपका अदर्शन भी कारण होवै है २, तथा रजतरूप एककोटिका स्मरण भी कारण होवै है ३, तथा ता शुक्तिविषे रह्या जो रजतका सादृश्य है सो सादृश्य दोष भी कारण होवै है । सो विपर्ययका कारणीभूत दोष एक प्रकारका नहीं होवै है किंतु सादृश्य दूरत्व पित्त काचकामल इत्यादिक भेदतैं नानाप्रकारका दोष होवै है इन उक्त च्यारि कारणोंतैं कोई भी विपर्ययज्ञान होता नहीं इति ।

तर्करूप अयथार्थ अनुभव—अब तीसरे तर्करूप अयथार्थ अनुभवका निरूपण करे हैं। तहां लक्षण—व्याप्यारोपेण व्यापकारोपः तर्कः । अर्थ यह—व्याप्यका आरोप करिकै जो व्यापकका आरोप है ताका नाम तर्क है । जैसे पर्वतविषे धूमकूं देखताहूआ भी जो पुरुष ता पर्वतविषे वह्निकूं नहीं अंगीकार करे है । तिस पुरुषकूं ता पर्वतविषे वह्निके अंगीकार करावणे वासतै ता पर्वतविषे वह्निके ज्ञानवाला पुरुष या प्रकारका तर्क करे है । **पर्वते यदि वह्निर्न स्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यात्** । अर्थ यह—इस पर्वतविषे जो वह्नि नहीं होवैंगा तौं धूम भी नहीं होवैंगा । काहेतैं ? धूम वह्निका कार्य होवै है, कारणतैं विना कार्य होता नहीं, या प्रकारके तर्ककूं श्रवण करिकै सो पुरुष ता धूमवाले पर्वतविषे वह्निकूं अंगीकार करे है । तहां जहां जहां वह्निका अभाव रहे है । तहां तहां धूमका अभाव रहे है । जैसे ह्रदादिकोंविषे है ईहां वह्निका अभाव तौं व्याप्य है और धूमका अभाव व्यापक है । तहां ता पर्वतविषे ता वह्नि अभावरूप व्याप्यका आरोप करिकै ता धूमाभावरूप व्यापकका आरोप कऱ्या जावै है । यातैं सो उक्त आरोप तर्क कह्या जावै है इति । यद्यपि इस तर्कका पूर्वउक्त विपर्ययविषे हीं अंतर्भाव होइ सके है यातैं तर्कका विपर्ययतैं पृथक् कथन करणा अनुचित है तथापि पूर्वउक्त विपर्यय, अनुमानप्रमाणका, अनुग्राहक नहीं होता और यह तर्क तौं व्यभिचारशंकाकी निवृत्तिद्वारा अनुमान प्रमाणका अनुग्राहक होवै है या कारणतैं ता तर्कका विपर्ययतैं पृथक् कथन कऱ्या इति । तर्कके भेद—सो उक्त तर्क विषयपरिशोधक १, व्याप्तिग्राहक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां ' यद्ययं निर्वह्निः स्यात्तदानिर्धूमः स्यात् ' अर्थ यह—यह पर्वत जो वह्निके अभाववाला होवैंगा तौं धूमके

भी अभाववाला होवैंगा इत्यादिक तर्क तौं विषयपरिशोधक तर्क कह्या जावै है । और 'धूमो यदि वह्नि व्यभिचारी स्यात् तर्हि वह्निजन्यो न स्यात्' अर्थ यह–धूम जो कदाचित् वह्निके व्यभिचारवाला होवैंगा तौं वह्नि करिकै जन्य नहीं होवैंगा इत्यादिक तर्क व्याप्ति-ग्राहक तर्क कह्या जावै है अर्थात् यह उक्त तर्क धूमविषे वह्निके व्यभिचारकी शंकाकूं निवृत्त करिकै वह्निके व्याप्तिका निश्चय करावै है इति । तर्क भेदपर मतान्तर–और केईक ग्रंथकार तौं ता उक्त तर्ककूं आत्माश्रय १, अन्योन्याश्रय २, चक्रिका ३, अनवस्था ४, प्रमाणबाधितार्थ प्रसंग ५ इस भेद करिकै पंचप्रकारका माने हैं तहां पूर्वउक्त व्याप्तिग्राहक तर्ककूं प्रमाण-बाधितार्थ प्रसंग कहे हैं इति । केईक ग्रंथकार–तौं ता तर्ककूं व्याघात १, आत्माश्रय २, इतरे-तराश्रय ३, चक्रिका ४, अनवस्था ५, प्रतिबन्दी ६, कल्पना लाघव ७, कल्पनागौरव ८, उत्सर्ग ९, अपवाद १०, वैयात्य ११ इस भेद करिकै एकादश प्रकारका माने हैं ।

उदाहरण–अब यथाक्रमतैं इन एकादशप्रकारके तर्कके लक्षण तथा उदाहरण निरूपण करे हैं । तहां व्याघात–**विरुद्धसमुच्चयः व्याघातः** । अर्थ यह–परस्परविरुद्ध धर्मोंका जो एक अधि-करणविषे समुच्चय है ताका नाम व्याघात है । जैसे–**विवादाध्यासितं जगत् प्रयत्नजन्यं कार्यत्वात् घटवत्** । अर्थ यह–विवादका विषयभूत क्षिति अङ्कुरादिक जगत् किसी प्रयत्न करिकै जन्य है कार्यरूप होणेतैं जो जो कार्य होवै है सो सो प्रयत्न करिकै हीं जन्य होवै है जैसे घट कार्यरूप होणेतैं कुलालके प्रयत्न करिकै जन्य है तैसे यह जगत् भी कार्यरूप होणेतैं किसीके प्रयत्न करिकै अवश्य जन्य होवैंगा । तहां जीवके प्रयत्नकूं तौं सर्वजगत्की कारणता संभवती नहीं । यातैं इस उक्त अनुमान करिकै ईश्वरका प्रयत्न ही सर्वजगत्का कारणरूप करिकै सिद्ध होवै है । तहां इस उक्त अनुमानविषे प्रतिवादीकी जगत् विषे कार्यत्वरूप हेतु रहो प्रयत्नजन्यत्वरूप साध्य मत रहो याकेविषे कौन बाधक है या प्रकारकी शंकाके प्राप्तहूए; ता व्याघातरूप तर्कतैं हीं ता शंकाकी निवृत्ति होवै है । तहां कार्यत्व तथा प्रयत्नजन्यत्वाभाव यह दोनों धर्म परस्परविरुद्ध हैं । जैसे घट घटका प्रागभाव तथा घट घटका प्रध्वंस यह दोनों परस्परविरुद्ध होवै है । तिन विरुद्धधर्मोंका एक वस्तुविषे समुच्चय कथन कीयेहूए व्याघातकी प्राप्ति होवै है । तैसे कार्यत्व प्रयत्नजन्यत्वाभाव इन विरोधी धर्मोंका भी एकवस्तुविषे समुच्चय कथन कीयेहूए व्याघातकी हीं प्राप्ति होवै है इति ॥ १ ॥
आत्माश्रय–तहां घट घटका प्रागभाव इन दोनोंका तौं एकत्र समुच्चय नहीं होवै है परंतु कार्यत्व प्रयत्नजन्यत्वाभाव इन दोनोंका एकत्र समुच्चय होवै है । ऐसी जो वादी शंका करे ता वादीसैं यह पूछा चाहिये घट घटका प्रागभाव इन दोनोंतैं कार्यत्व प्रयत्नजन्यत्वाभाव इन दोनों विषे किंचित् विशेष है अथवा नहीं है । जो कहो विशेष नहीं है तौं घट घटका प्रागभाव इन दोनोंका जैसे एकत्र समुच्चय नहीं होवै है तैसे कार्यत्व प्रयत्नजन्यत्वाभाव

इन दोनोंका भी एकत्र समुच्चय नहीं होवैगा। और जो कहो ईहां विशेष है तौं जिस विशेषके बलतैं कार्यत्व प्रयत्नजन्यत्वाभाव इन दोनों विरुद्धधर्मोंका एकत्र समुच्चय होवै है तिस विशेष विषे सो विशेष हीं प्रमाण है अथवा अन्यविशेष प्रमाण है तहां तिस विशेषविषे जो सो विशेष हीं प्रमाण मानोंगे तौं आत्माश्रय होवैंगा । तहां लक्षण—अव्यवधानेन स्वापेक्षणं आत्माश्रयः । अर्थ यह—व्यवधानतैं विना जो आपणेकूं आपणी अपेक्षा है ताका नाम आत्माश्रय है । तहां सो विशेष आपणी सिद्धिविषे जो आपहीं प्रमाण होवैंगा तौं आत्माश्रय होवैंगा । तहां सो उक्त आत्माश्रय आपणी अधिकरणताविषे आपणी अपेक्षा तथा आपणे ज्ञानविषे आपणी अपेक्षा तथा आपणी उत्पत्तिविषे आपणी अपेक्षा तथा आपणे स्वामीपणेविषे आपणी अपेक्षा तथा आपणी उपमाविषे आपणी अपेक्षा । इस भेद करिकै नानाप्रकारका होवै है । इस प्रकार वक्ष्यमाण इतरेतराश्रय चक्रिका भी नानाप्रकारका जानिलेणा इति ॥ २ ॥ इतरेतराश्रय—और जो कहो तिस विशेषविषे दूसराविशेष प्रमाण है । तौं ता दूसरे विशेषविषे कौन प्रमाण है । तहां ता दूसरे विशेषविषे सो दूसराविशेष हीं प्रमाण है । अथवा सो प्रथम विशेष प्रमाण है । तहां प्रथमपक्षविषे तौं पूर्वकी न्यांई आत्माश्रयरूप दोषकी प्राप्ति होवैंगी । और द्वितीयपक्षविषे इतरेतराश्रय दोषकी प्राप्ति होवैंगी । तहां द्वयोरन्योन्यापेक्षणं इतरेतराश्रयः । अर्थ यह—दोनोंकूं जो परस्पर अपेक्षा है ताका नाम इतरेतराश्रय है । इसी इतरेतराश्रयकूं अन्योन्याश्रय भी कहे हैं । जैसे प्रसंगविषे प्रथमविशेषकूं आपणी सिद्धिविषे द्वितीय विशेषकी अपेक्षा है । और ता द्वितीय विशेषकूं आपणी सिद्धिविषे प्रथमविशेषकी अपेक्षा हैं । इति ॥ ३ ॥ चक्रक—और जो कहो ता द्वितीयविशेषविषे तृतीयविशेष प्रमाण है । तौं ता तृतीयविशेषविषे सो तृतीयविशेष हीं प्रमाण है । अथवा सो द्वितीयविशेष प्रमाण है । अथवा सो प्रथमविशेष प्रमाण है । तहां प्रथमपक्षविषे तौं पूर्वकी न्यांई आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवैंगी और द्वितीयपक्षविषे पूर्वकी न्यांई इतरेतराश्रय दोषकी प्राप्ति होवैंगी । और तृतीयपक्षविषे चक्रिकादोषकी प्राप्ति होवैंगी। तहां लक्षण-पूर्वस्य पूर्वापेक्षितमध्यमापेक्षितोत्तरापेक्षितत्वं चक्रम्। अर्थ यह—पूर्वकूं अपेक्षित जो मध्यम है तिस मध्यमकूं अपेक्षित जो उत्तर है । तिस उत्तरकूं जो पूर्वकी अपेक्षा है ताका नाम चक्रिका है । जैसे ईहां प्रसंगविषे प्रथमविशेषकूं आपणी सिद्धिविषे द्वितीयविशेष अपेक्षित है और ता द्वितीयविशेषकूं आपणी सिद्धिविषे तृतीयविशेष अपेक्षित है ता तृतीयविशेषकूंआपणी सिद्धिमें चौथाविशेष अपेक्षित है याहींका नाम चक्रिका है इति ॥ ४ ॥ अनवस्था—और जो वादी यह कहै ता तृतीयविशेषविषे चतुर्थविशेष प्रमाण है और ता चतुर्थविशेषविषे पंचमविशेष प्रमाण है इस प्रकार आगे आगे भी पूर्वपूर्वविशेषविषे उत्तरउत्तरविशेषकूं प्रमाणता माननेविषे सो पूर्वउक्त चक्रिका दोष प्राप्त होवै नहीं । सो यह वादीका कहणा संभवता नहीं । काहेतैं ? ऐसा माननेविषे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैंगी ।

तहां लक्षण—पूर्वस्योत्तरोत्तरापेक्षितत्वं अनवस्था। अर्थ यह—पूर्वकूं जो उत्तरउत्तरका अपेक्षितपणा है ताका नाम अनवस्था है। जैसे ईहां प्रसंगविषे प्रथमविशेषकूं आपणी सिद्धिविषे दूसरे विशेषकी अपेक्षा, ता दूसरे विशेषकूं तीसरे विशेषकी अपेक्षा, ता तीसरे विशेषकूं चतुर्थ विशेषकी अपेक्षा, ता चतुर्थ विशेषकूं पंचमविशेषकी अपेक्षा, इस प्रकार पूर्वपूर्वविशेषकूं उत्तरउत्तर विशेषकी अपेक्षा मानणेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैंगी इति ॥ ५ ॥

प्रतिवन्दी—तहां सो पंचमविशेष स्वतः प्रमाण है, यातैं आपणी सिद्धिविषे अन्यविशेषकी अपेक्षा करै नहीं। यातैं पूर्वउक्त अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवै नहीं ऐसी जो वादी शंका करै तौं ता शंकाकी निवृत्ति प्रतिवंदीरूप तर्कतैंकरणी। तहां—नोद्यपरिहारसाम्यं प्रतिवन्दी। अर्थ यह—वादी प्रतिवादी दोनोंके पक्षविषे जा शंकासमाधानकी तुल्यता है ताका नाम प्रतिवंदी है। जैसे ईहां प्रसंगविषे पंचमविशेषकूं जैसे स्वतः प्रमाणता है तैसे प्रथमविशेषकूं भी स्वतः प्रमाणता संभवै है। यातैं ता प्रथमविशेषविषे द्वितीयविशेषकूं प्रमाणता मानणी निष्फल है। नियामकके अभावकी सामग्रीकूं दोनोंविषे तुल्य होणेतैं जहां तुल्यसामग्री होवै है तहां कार्य भी तुल्य हीं होवै है। जैसे तुल्यस्वभाववाले तंतु आदिक कारणोंविषे पटादिक कार्य भी तुल्य हीं होवै हैं और सो वादी ता पंचमविशेषकी स्वतः प्रमाणताविषे जो किंचित् परिहाररूप विशेष कल्पना करै तौं ता परिहारकी भी पूर्वउक्त रीतिसैं ता पंचम, प्रथम दोनों विशेषोंविषे तुल्यता हीं होवैंगी। इस रीतिसैं दोनों पक्षोंविषे जा शंकासमाधानकी तुल्यता है ताका नाम प्रतिवंदी है इति ॥ ६ ॥ कल्पना लाघव—तहां पूर्वउक्त अनुमान करिकै सर्वजगत्का कर्त्तारूप करिकै एक ईश्वरकी सिद्धि करी ताकेविषे वादीकी यह शंका प्राप्त भई, इस पृथिवी आदिक महास्थूल कार्यका एक कर्त्ता कैसे सिद्ध होवैंगा किंतु नाना ईश्वर सिद्ध होवैंगे; ता शंकाकी कल्पनालाघवरूप तर्कतैं निवृत्ति होवै है। तहां लक्षण—समर्थाल्पककल्पना कल्पनालाघवम्। अर्थ यह—कार्यके उत्पन्न करणेविषे समर्थवस्तुके अल्पताकी जा कल्पना है ताका नाम कल्पनालाघव है। जैसे—प्रसंगविषे सर्वजगत्का कर्त्तारूप करिकै कल्पना कऱ्या जो ईश्वर है ता ईश्वरकूं जो एक अंगीकार करीये तौं सो कल्पनालाघव है और ता ईश्वरका जो एकत्व नहीं कल्पना करीये तौं सो कल्पनालाघव नहीं होवैंगा। काहेतैं? जहां एक हीं वस्तुतैं कार्यकी सिद्धि होइ सकै है तहां ता एककी नहीं कल्पना कीये हूए कल्पनालाघवकी सार्थकता नहीं होवै है। जैसे—कन्याके एक हीं वरतैं कार्यकी सिद्धि होइ सकै है ता कन्याके एकवरकी नहीं कल्पना कीयेहूए कल्पनालाघवकी सार्थकता नहीं होवै है इति ॥७॥ कल्पना गौरव—और कार्यकी सिद्धि करणेहारे एक समर्थ वस्तुके विद्यमानहूए भी जो अनेकवस्तुवोंकी कल्पना करीये तौं कल्पनागौरवकी प्राप्ति होवै है। तहां लक्षण—समर्थानल्पककल्पना कल्पनागौरवम्। अर्थ यह—कार्यकरणेविषे समर्थकारणके अल्पताकी जो नहीं कल्पना है ताका नाम

कल्पनागौरव है। जैसे कन्याके एक समर्थवरके सिद्धहूए भी अनेकवरोंकी कल्पनाविषे कल्पना-गौरव होवै है। तैसे सर्वजगत्की उत्पत्ति करणेविषे समर्थ एक ईश्वर करिकै हीं सर्वजगत्की उत्पत्तिके सिद्धहूए भी अनेकईश्वरोंकी कल्पनाविषे कल्पनागौरव हीं प्राप्त होवै है इति ॥ ८॥

उत्सर्ग—ईश्वर शरीरतैं रहित है। यातैं ता ईश्वरविषे कर्त्तापणा हीं सम्भवता नहीं तौं सर्वजगत्का कर्त्तापणा ता ईश्वरविषे कैसे संभवैगा किन्तु नहीं संभवैगा । ऐसी वादीके शंकाकी निवृत्ति उत्सर्गरूप तर्कतैं होवै है। तहां लक्षण—**भूयोदर्शनम् उत्सर्गः** । अर्थ यह—पुनःपुनः दर्शनका नाम उत्सर्ग है। जैसे जहां जहां चेतनत्व रहे है तहां तहां कर्तृत्व रहे है। जैसे कुलालतन्तुवायादिकोंविषे चेतनत्व रहे है, यातैं घटपटादिककार्योंका कर्तृत्व भी रहे है। तैसे ईश्वरविषे भी सो चेतनत्वधर्म रहे है। यातैं ता ईश्वरविषे भी सो जगत्का कर्त्तापणा संभावना कन्या जावै है। जो कदाचित् ता ईश्वरविषे ता कर्तृत्वकी संभावना नहीं करीये तौं ता ईश्वरविषे सो चेतनत्व भी नहीं होवैगा। जैसे घटादिकोंविषे सो कर्तृत्व असंभावित है, यातैं चेतनत्व भी नहीं है। तैसे ईश्वरविषे भी जो कर्तृत्वकी संभावना नहीं करीये तौं ता ईश्वरविषे चेतनत्व भी नहीं होवैगा इति॥ ९॥ अपवाद—जैसे अस्मदादिक जीवोंविषे ता चेतनत्वतैं कर्तृत्वका निश्चय हीं होवै है। तैसे—ता ईश्वरविषे भी ता चेतनत्वतैं कर्तृत्वका निश्चय हीं क्युं नहीं होवै। ता चेतनत्वतैं कर्तृत्वकी संभावना करणेका कछु प्रयोजन नहीं है । ऐसी वादीके शंकाकी निवृत्ति अपवादरूप तर्कतैं होवै है। तहां लक्षण—**तस्योत्सर्गस्यैकदेशे बाधः अपवादः** । अर्थ यह—ता पूर्वउक्त उत्सर्गका जो किसी एकदेशविषे बाध है ताका नाम अपवाद है। जैसे मुक्तआत्मावोंविषे ता चेतनत्वके हूए भी सो कर्तृत्व है नहीं। जो कदाचित् चेतनत्व करिकै कर्तृत्वका निश्चय हीं होता होवै तौं तिन मुक्तपुरुषोंविषे भी ता चेतनत्व करिकै कर्तृत्वका निश्चय होणा चाहिये और मुक्तपुरुषोंविषे ता चेतनत्वके विद्यमानहूए भी सो कर्तृत्व होता नहीं । यातैं तिन मुक्तपुरुषोंविषे ता पूर्वउक्त उत्सर्गका अपवाद है और जिसका जहां अपवाद होवै है तिस करिकै तिस अर्थका निश्चय होता नहीं। जैसे प्रमेयत्व करिकै अनित्यत्वका निश्चय होता नहीं यातैं ता चेतनत्वतैं ता ईश्वरविषे कर्तृत्वकी संभावना होवै है कर्तृत्वका निश्चय होवै नहीं इति॥ १०॥ वैयात्य—ईश्वरविषे सो पूर्वउक्त अनुमान प्रमाण रहो परंतु ता ईश्वरसाधकप्रमाणविषे कौनप्रमाण है? तथा ता प्रमाणके साधकप्रमाणविषे भी कौन प्रमाण है? इस प्रकारकी वादीके शंकाकी निवृत्ति वैयात्यरूप तर्कतैं होवै है। तहां लक्षण—**अप्रतिसमाधेयप्रश्नपरम्परायां मौनं वैयात्यम्** । अर्थ यह—समाधान करणेकूं अशक्य ऐसी जा वादीके प्रश्नोंकी परंपरा है ताके प्राप्तहूए जो मौन है ताका नाम वैयात्य है। तहां जिस स्थलविषे वादीके प्रश्नोंकी परंपरा उत्तर करणेकूं शक्य होवै है तिस स्थलविषे हीं उत्तर कहणा होवै है और जहां सा प्रश्नोंकी परंपरा उत्तर करणेकूं शक्य नहीं होवै है तहां

मौनरूप अनुत्तर हीं उत्तर होवै है। इसीका नाम वैयात्य है इति ॥ ११ ॥ सात दोष—इस पूर्व उक्त तर्कविषे यह सप्तदूषण होवै हैं। आपाद्यासिद्धि १, आपादकासिद्धि २, उभयासिद्धि ३, प्राशिथिलमूलता ४, मिथस्तर्कविरोध ५, इष्टापत्ति ६, विपर्ययापर्यवसान ७ इन सप्त दूषणोंके उदाहरण तर्कनिरूपक ग्रंथोंविषे लिख्ये है ते ईहां ग्रंथविस्तारभयतैं लिख्ये नहीं इति।

स्वप्नका मानस विपर्ययविषे अन्तर्भाव—तहां पूर्व संशय, विपर्यय, तर्क इस भेद करिकै तीन प्रकारका अयथार्थ अनुभव निरूपण कऱ्या। इस मतविषे स्वप्नज्ञानका मानसविपर्ययविषे हीं अन्तर्भाव है, तहां पुरीतत्‌देशविषे मनके स्थितहूए सुषुप्ति होवै है और ता पुरीतत् देशतैं बाह्यदेशविषे मनके स्थित हूए जाग्रत् होवै है। और पुरीतत्‌देश तथा बाह्यदेश दोनोंकी संधिविषे मनके स्थितहूए स्वप्न होवै है सो स्वप्न पुण्यपापरूप अदृष्टविशेष करिकै भी जन्य होवै है। तथा जाग्रत्‌की चिंताविशेष करिकै भी जन्य होवै है। तथा वात, पित्त कफरूप धातुके दोष करिकै भी जन्य होवै है इति। अयथार्थ अनुभवको चार तरहका मानणेहारे—और केईकग्रंथकार तौं ता अयथार्थ अनुभवकूं संशय १, विपर्यय २, स्वप्न ३, अनध्यवसाय ४ इस भेद करिकै च्यारिप्रकारका माने हैं।

अनध्यवसाय—तहां वस्तुके विशेषरूपके अदर्शन करिकै जन्य जो 'किंचित् इदं' या प्रकारका ज्ञान है ता ज्ञानकूं अनध्यवसाय कहे हैं। इस मतकी विशेषता—इस मतविषे पूर्वउक्त तर्कका विपर्ययविषे हीं अन्तर्भाव है इति। केईकग्रन्थकार—तौं ता उक्त अयथार्थअनुभवकूं संशय १, विपर्यय २ इस भेद करिकै दो प्रकारका हीं माने हैं॥

इसकी विशेषता—इनोंके मतविषे तर्क स्वप्न अनध्यवसाय इन तीनोंका विपर्ययविषे हीं अंतर्भाव है इति। सब ज्ञानोंको यथार्थवादी मीमांसक—और मीमांसक प्रभाकरके मतविषे तौं सर्वज्ञान यथार्थ होवै हैं कोई भी ज्ञान अयथार्थ होता नहीं। और जहां शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह ज्ञान होवै है तहां भी 'इदं रजतम्' यह एक विशिष्टज्ञान नहीं है किंतु दो ज्ञान होवै हैं। तहां 'इदम्' यह तौं पुरोवर्त्ती शुक्तिविषयक अनुभवरूप ज्ञान होवै है और 'रजतम्' यह पूर्वदृष्टरजतविषयक स्मृतिज्ञान होवै है, ते दोनों ज्ञान यथार्थ हीं हैं। तिन दोनोंके भेदके अग्रहणतैं तथा तिन दोनों ज्ञानोंके विषयोंके भेदके अग्रहणतैं इस पुरुषकी पुरोवर्त्ती देशविषे प्रवृत्ति होवै है इति। तहां इस षष्ठे परिच्छेदके आदिविषे अनुभव, स्मृति इस भेद करिकै दो प्रकारकी बुद्धि कथन करी थी, ताकेविषे अनुभवका इतनैं पर्यंत निरूपण कऱ्या॥

स्मृति।

अब स्मृतिका निरूपण करे हैं। तहां लक्षण—संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। अर्थ यह—संस्कारमात्र करिकै जन्य जो ज्ञान है सो ज्ञान स्मृति कह्या जावै है। जैसे पूर्व अनु-

भव कऱ्येहूए मातापितादिकोंका इस पुरुषकूं ता अनुभवजन्य संस्कारतैं ' सा मे माता स मे पिता ' या प्रकारका कालान्तरविषे स्मरण होवै है । स्मरण स्मृति यह दोनों पद एक हीं अर्थके वाचक होवे हैं । पदकृत्य—तहां ' ज्ञानं स्मृतिः ' इतनामात्र हीं जो ता स्मृतिका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' संस्कारमात्रजन्यम् ' यह पद नहीं कथन करते तौं पूर्वउक्त अनुभवज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे ' संस्करमात्रजन्यम् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो अनुभवज्ञान संस्कारमात्रजन्य होता नहीं, किंतु इंद्रियअनुमानादिकों करिकै जन्य होवै है । यातैं ता अनुभवविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' संस्कारजन्यं स्मृतिः ' इतनामात्र हीं जो ता स्मृधिका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' ज्ञानम् ' यह पद नहीं कथन करते तौं संस्कारके ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो संस्कारका ध्वंस भी ता संस्काररूप प्रतियोगी करिकै जन्य हीं होवै है, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे ' ज्ञानम् ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो संस्कारका ध्वंस ज्ञानरूप नहीं है । यातैं ता ध्वंसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । किंवा ' संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः ' इतनामात्र हीं जो ता स्मृतिका लक्षण करते ता लक्षणविषे ' मात्र ' यह पद नहीं कथन करते तौं ' सोऽयं देवदत्तः ' या प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान भी संस्कार करिकै जन्य हीं होवै है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे ' मात्र ' यह पद कथन कऱ्या है तहां सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान केवल संस्कारमात्र करिकै हीं जन्य नहीं होवै है, किंतु ता देवदत्तपिंडके साथि चक्षुइंद्रियके संयोग करिकै भी जन्य होवै है । यातैं ता प्रत्यभिज्ञाज्ञानविषे ता स्मृतिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । स्मृतिके भेद—तहां इस उक्त लक्षण करिकै लक्षित सा स्मृति भी पूर्वउक्त अनुभवकी न्यांई यथार्थ १, अयथार्थ २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां पूर्व अनुभव स्वजन्यसंस्कारद्वारा स्मृतिका कारण होवै है । सो अनुभव यथार्थ अयथार्थ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । यातैं यथार्थ अनुभवजन्य स्मृति तौं यथार्थ कही जावै है और अयथार्थ अनुभवजन्यस्मृति अयथार्थ कही जावै है । अनुभवजन्य संस्कारसैं स्मृतिकी उत्पत्तिवादी—तहां केईकग्रन्थकार तौं स्मृतिके हेतुभूत संस्कारोंकी उत्पत्ति अनुभवज्ञानतैं हीं माने हैं । स्मृतिज्ञानतैं संस्कारोंकी उत्पत्ति मानते नहीं, तिनोंके मतविषे ते अनुभवजन्यसंस्कार अनेकस्मृतियोंकूं उत्पन्न करते हूए भी नाश होवै नहीं । किंतु अंत्यस्मृति करिकै ते संस्कार नाश होवै हैं ।

स्मृतिज्ञानजन्य संस्कारोंसैं स्मृति उत्पत्तिके वादी—और केईक ग्रंथकार तौं स्मृतिज्ञानतैं भी तिन संस्कारोंकी उत्पत्ति माने हैं । तिनोंके मतविषे ते अनुभवजन्यसंस्कार प्रथमस्मृतिकूं उत्पन्न

करिकै नष्ट होइ जावै है। पुनः ता स्मृतिज्ञानतैं दूसरे संस्कारोंकी उत्पत्ति होवै है। इस प्रकार आगे आगे भी स्मृतितैं पूर्वसंस्कारोंका नाश उत्तरसंस्कारोंकी उत्पत्ति होती जावै है। इन दोनों मतोंका विस्तारतैं निरूपण पूर्व तृतीयपरिच्छेदविषे संस्कारगुणके निरूपणविषे करि आये हैं। सो तहांतैं जानिलेणा इति।

प्रामाण्यवादका निरूपण।

तहां पूर्वकथन करी जा प्रत्यक्ष अनुमिति आदिक यथार्थानुभवरूप प्रमा है ता प्रमाविषे रह्या जो तिस धर्मवाले पदार्थविषे तद्धर्मप्रकारकज्ञानत्वरूप प्रमात्व है। जिस प्रमात्वकूं शास्त्रविषे प्रामाण्य भी कहे हैं। स्वतस्त्व—ता प्रमात्वविषे मीमांसक तथा वेदांती तौं स्वतस्त्व माने हैं। परतस्त्व—और नैयायिक तौं ता प्रमात्वविषे परतस्त्व माने हैं। स्वतस्त्वके भेद—तहां सो स्वतस्त्व भी उत्पत्तिस्वतस्त्व १, ज्ञप्तिस्वतस्त्व २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है।

उत्पत्तिस्वतस्त्व—तहां ता प्रमात्वकी उत्पत्तिविषे जो स्वतस्त्व है ताका नाम उत्पत्तिस्वतस्त्व है। ज्ञप्तिस्वतस्त्व—ता प्रमात्वके ज्ञानविषे जो स्वतस्त्व है ताका नाम ज्ञप्तिस्वतस्त्व है। परतस्त्वके भेद—इस प्रकार सो परतस्त्व भी उत्पत्तिपरतस्त्व १, ज्ञप्तिपरतस्त्व २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। उत्पत्तिपरतस्त्व—तहां ता प्रमात्वकी उत्पत्तिविषे जो परतस्त्व है ताका नाम उत्पत्तिपरतस्त्व है। ज्ञप्तिपरतस्त्व—ता प्रमात्वके ज्ञानविषे जो परतस्त्व है ताका नाम ज्ञप्तिपरतस्त्व है। तहां प्रथम ता प्रमात्वके उत्पत्तिस्वतस्त्वका निरूपण—करे हैं। लक्षण—तहां **दोषाभावसहकृतज्ञानसामान्यसामग्रीप्रयोज्यत्वम् उत्पत्तिस्वतस्त्वम्**। अर्थ यह—भ्रमज्ञानका कारणीभूत जो दोष है ता दोषके अभाव करिकै सहकृत जा ज्ञानमात्रके उत्पत्तिकी सामग्री है ता सामग्रीकरिकै जो प्रयोज्यत्व है यह हीं ता प्रमात्वविषे उत्पत्तिस्वतस्त्व है। सा ज्ञानसामान्यकी सामग्रीआत्मा, आत्म मनका संयोग, इंद्रिय, अनुमान इत्यादिक हैं। तहां पदकृत्य—ता सामग्रीका 'दोषाभावसहकृत' यह विशेषण जो नहीं कथन करते तौं अप्रमाज्ञान भी ता ज्ञानसामान्यकी सामग्रीकरिकै हीं जन्य होवै है। यातैं ता अप्रमाज्ञानविषे भी सो प्रमात्व होणा चाहिये। ताके निवृत्त करणेवास्तै ता सामग्रीका 'दोषाभावसहकृतत्व' विशेषण कथन कऱ्या है। तहां अप्रमाज्ञानकी दोषतैं विना उत्पत्ति होती नहीं। यातैं सा अप्रमाज्ञानकी उत्पादक सामग्री दोषाभावसहकृत नहीं है किंतु दोषसहकृत हीं है। यातैं ता अप्रमाज्ञानविषे प्रमात्व होवै नहीं इति।

अब ता प्रमात्वके ज्ञप्तिस्वतस्त्वका वर्णन-करे हैं तहां लक्षण—**दोषाभावसहकृतयावत्स्वाश्रयग्राहकसामग्रीग्राह्यत्वं ज्ञप्तिस्वतस्त्वम्**। अर्थ यह—ईहां स्वशब्दकरिकै प्रमात्वका ग्रहण करणा; ता प्रमात्वका आश्रयभूत जो प्रमाज्ञान है ता प्रमाज्ञानका ग्राहक जितनीकी सामग्री है अर्थात् ता प्रमात्वके आश्रयभूत प्रमाज्ञानकूं विषय करणेहारे ज्ञानका जनक जितनीकी दोषाभावसहकृत सामग्री है ता सामग्री करिकै जो ग्राह्यत्व है अर्थात् ता सामग्रीजन्य ज्ञानका

जो विषयत्व है यह हीं ता प्रमात्वविषे ज्ञप्तिस्वतस्त्व है । तात्पर्य यह—दोषाभावसहकृत सामग्री करिकै जन्य जितनैंकी ज्ञान ता प्रमात्वके आश्रयभूत प्रमाज्ञानकूं विषय करे हैं ते सर्वज्ञान ता प्रमात्वकूं भी विषय करे हैं । यह हीं ता प्रमात्वविषे स्वतो ग्राह्यत्व है तथा ज्ञप्तिस्वतस्त्व है । पदकृत्य--तहां इस उक्त लक्षणविषे 'दोषाभावसहकृत' यह पद जो नहीं कथन करते तौं जिस प्रमाज्ञानविषे दोषके वशतैं 'इदं ज्ञानं अप्रमा' या प्रकारका अप्रमात्वका निश्चय हूआ है । अथवा 'इदं ज्ञानं अप्रमा न वा' या प्रकारका अप्रमात्वका संशय हूआ है । तिस प्रमाज्ञानवृत्तिप्रमात्वविषे ता स्वाश्रयग्राहक सामग्री करिकै ग्राह्यत्व हैं नहीं । अर्थात् सो अप्रमात्वविषयक निश्चय तथा संशय ता प्रमात्वके आश्रयभूत ज्ञानकूं विषय करे है । परंतु ता ज्ञानवृत्ति प्रमात्वकूं विषय करता नहीं । यातैं ता प्रमात्वविषे सो उक्त स्वतोग्राह्यत्व नहीं होवैगा । ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतै ता लक्षणविषे 'दोषाभावसहकृत' यह सामग्रीका विशेषण कथन कर्‍या है । तहां ता भ्रमसंशयका जनक सामग्री दोषाभावसहकृत नहीं है किंतु दोषसहकृत हीं है । यातैं ता प्रमात्वविषे ता सामग्री करिकै अग्राह्यत्वहूए भी ता स्वतोग्राह्यत्वका बाध होवै नहीं । किंवा ता उक्तलक्षणविषे 'यावत्' यह पद जो नहीं कथन करते तौं सिद्धसाधनदोषकी प्राप्ति होती । काहेतैं ? जे नैयायिक ता प्रमात्वकूं परतोग्राह्य माने हैं ते नैयायिक भी ता प्रमात्वके आश्रयभूत ज्ञानका ग्राहक अनुमानादिक सामग्री करिकै ता प्रमात्वका ज्ञान माने हैं यातैं नैयायिकोंकूं सिद्ध अर्थकी सिद्धि करणेतैं स्वतस्त्ववादी मीमांसकोंकूं सिद्धसाधनदोषकी प्राप्ति होवैंगी ता सिद्धसाधनदोषकी निवृत्ति करणे वासतै ता सामग्रीका अथवा ता सामग्रीजन्य ज्ञानका 'यावत्' यह विशेषण कथन कर्‍या है । तहां नैयायिकोंके मतविषे अनुव्यवसायज्ञान ता प्रमात्वके आश्रयभूत ज्ञानकूं ग्रहण करताहूआ भी ता प्रमात्वकूं ग्रहण करता नहीं । यातैं नैयायिकोंके मतविषे ता प्रमात्वविषे यावत्स्वाश्रयग्राहक सामग्री ग्राह्यत्व नहीं है यातैं सिद्धसाधनदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति । तहां इस उक्त प्रमात्वके स्वतोग्राह्यत्वविषे मीमांसकोंके तीन मत हैं । तहां प्रभाकरका मत—तौं यह है घटपटादिकोंकूं विषय करणेहारा जो जो प्रमारूप व्यवसायज्ञान उत्पन्न होवैं है सो सो व्यवसायज्ञान 'घटत्वेन घटमहं जानामि' अर्थ यह घटत्वरूपसैं घटकूं मैं जानताहूं या प्रकारका ही उत्पन्न होवै है । यातैं तिन सर्वव्यवसायज्ञानोंविषे मिति, मातृ, मेय यह तीनों हीं प्रतीत होवै हैं । मिति—तहां ता व्यवसायज्ञानका नाम है । मातृ—ता ज्ञानके आश्रयभूत आत्माका नाम है । मेय—ता ज्ञानके विषयभूत घटादिकोंका नाम है । इस प्रकार सो उक्त व्यवसायज्ञान आपणे स्वरूपकूं ग्रहण करता हूआ स्वनिष्ठप्रमात्वकूं भी ग्रहण करे है । यातैं ता प्रमात्वविषे सो यावत्स्वाश्रयग्राहक सामग्रीग्राह्यत्वरूप स्वतोग्राह्यत्व संभवै है इति । मुरारिमिश्रकामत—तौं यह है प्रथम 'अयं घटः' या प्रकारका

व्यवसायज्ञान उत्पन्न होवै है । तिसतैं अनंतर ता व्यवसायज्ञानकूं विषय करणेहारा ' घटत्वेन घटमहं जानामि ' या प्रकारका मानसप्रत्यक्षरूप अनुव्यवसायज्ञान उत्पन्न होवै है सो अनुव्यवसायज्ञान हीं ता व्यवसायज्ञानकूं तथा ता व्यवसायज्ञानवृत्तिप्रमात्वकूं ग्रहण करे है। यातैं ता प्रमात्वविषे सो यावत् स्वाश्रयग्राहक सामग्रीग्राह्यत्वरूप स्वतोग्राह्यत्व संभवै है इति ।

भट्टपादका मत—तौं यह है । सर्वज्ञान अतिइंद्रिय होवै हैं । यातैं ता ज्ञानका प्रत्यक्षज्ञान संभवता नहीं किंतु 'अयं घटः' इत्यादिक ज्ञानतैं अनंतर घटादिक विषयविषे एकज्ञातता नामा फल उत्पन्न होवै है तिसतैं अनंतर ' ज्ञातो घटः ' इस प्रकारका ता ज्ञातताकूं विषय करणेहारा प्रत्यक्ष होवै है । तिसतैं अनंतर ता ज्ञाततारूप हेतु करिकै ता ज्ञानका अनुमान होवै है। ता अनुमानका आकार—यह है । घटः घटत्ववद्विशेष्यकघटत्वप्रकारकज्ञानविषयः घटत्वप्रकारकज्ञाततावत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा पटः । अर्थ यह—यह घट घटत्ववाला घट है विशेष्य जिसविषे, तथा घटत्व है प्रकार जिस विषे ऐसे ज्ञानका विषय है । घटत्वप्रकारकज्ञाततावाला होणेतैं । जो पदार्थ ता उक्तज्ञानका विषय नहीं है सो पदार्थ ता उक्तज्ञानतावाला भी नहीं है । जैसे पट है । यह अनुमान 'अयं घटः' इस ज्ञानकूं तथा ता ज्ञानवृत्तिप्रमात्वकूं ग्रहण करे है । यातैं ता प्रमात्वविषे सो यावत्स्वाश्रयग्राहकसामग्रीग्राह्यत्वरूप स्वतो ग्राह्यत्व सम्भवै है इति । यहाँ वेदांतमतविषे—तौं ' अयंघटः ' इत्यादिक वृत्तिज्ञान हीं ता प्रमात्वका आश्रय है। ता वृत्तिज्ञानका ग्राहक साक्षीज्ञान होवै है । सो साक्षीज्ञान ता वृत्तिज्ञानकूं ग्रहण करता हूआ ता वृत्तिज्ञानके प्रमात्वकूं भी ग्रहण करे है । यह हीं ता प्रमात्वविषे स्वतोग्राह्यत्व है इति ॥

प्रमात्वकूं परतोग्राह्य मानणेहारे नैयायिकोंके मतका निरूपण—करे हैं। तहां मीमांसकोंनैं प्रमात्वविषे जो स्वतोग्राह्यत्व कह्या है । सो संभवता नहीं । काहेतें ? जो कदाचित् पूर्वउक्त रीतिसैं ता प्रमात्वविषे स्वतोग्राह्यत्व मानिये तौं जिस स्थलविषे पूर्व कबी जलका ज्ञान नहीं हूआ हैं, किंतु प्रथम हीं ' इदं जलम् ' या प्रकारका जलज्ञान हूआ है तिस ज्ञानविषे ' इदं जलज्ञानं प्रमा नवा ' या प्रकारका प्रमात्वका संशय होवै है सो संशय स्वतोग्राह्यत्ववादीके मतविषे नहीं होणा चाहिये, जिस कारणतैं ता स्वतस्त्ववादीके मतविषे ता जलज्ञानतैं अनंतर ता ज्ञानके प्रमात्वका ता उक्त अनुव्यवसायादिकों करिकै ग्रहण हीं हूआ है सो प्रमात्वका निश्चय ता प्रमात्वके संशयका प्रतिबंधक है । यातैं सो प्रमात्वका संशय नहीं होणा चाहिये । और ता उक्तस्थलविषे सो प्रमात्वका संशय सर्वलोकोंकूं अनुभवसिद्ध है । यातैं ' इदं जलम् ' या व्यवसायज्ञानतैं उत्तर उत्पन्नभया जो ' जलमहं जानामि' या प्रकारका अनुव्यवसायज्ञान है सो अनुव्यवसायज्ञान ता व्यवसायज्ञानके प्रमात्वकूं विषय करता नहीं, किंतु केवल ता व्यवसायज्ञानमात्रकूं हीं विषय करे है, तिस जलज्ञानतैं

अनंतर इस पुरुषकी ता जलविषयक इच्छा होवै है । ता इच्छातैं अनंतर इस पुरुषकी ता जलविषयक प्रवृत्ति होवै है ता प्रवृत्तितैं अनंतर जबी इस पुरुषकूं ता जलकी प्राप्ति होवै है तबी सो पुरुष ता पूर्वउत्पन्नहुए जलज्ञानविषे प्रमात्वका अनुमान करे है । अनुमानका आकार—यह है । पूर्वोत्पन्नं जलज्ञानं प्रमा सफलप्रवृत्तिजनकत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा अप्रमा । अर्थ यह—पूर्व जो हमोरकूं 'इदं जलम्' यह ज्ञान उत्पन्न भया था सो ज्ञान प्रमा है, जलकी प्राप्तिरूप फलवाली प्रवृत्तिका जनक होणेतैं ? जो जो ज्ञान प्रमा नहीं होवै है सो सो ज्ञान सफलप्रवृत्तिका जनक भी नहीं होवे है । जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह अप्रमाज्ञान है इति ! परतोग्राह्यत्व—इस प्रकारके अनुमानप्रमाण करिकै ता प्रमात्वका ग्रहण होवै है । यह हीं ता प्रमात्वविषे परतोग्राह्यत्व है, तथा ज्ञप्तिपरतस्त्व है । यातैं नैयायिकोंके मतविषे ता परतोग्राह्यत्वका यह लक्षण सिद्ध होवै है । लक्षण—ज्ञानमात्रग्राहकसामग्रीभिन्नसामग्रीग्राह्यत्वं ज्ञप्तिपरतस्त्वम् । अर्थ यह—केवल ज्ञानमात्रका ग्राहक जा सामग्री है ता सामग्रीतैं भिन्न सामग्री करिकै जो ग्राह्यत्व है यह हीं ता प्रमात्वविषे ज्ञप्तिपरतस्त्व है तथा परतोग्राह्यत्व है । जैसे प्रसंगविषे 'इदं जलम्' इस व्यवसायज्ञानकूं विषय करणेहारा 'जलमहं जानामि' या प्रकारका मानसप्रत्यक्षरूप अनुव्यवसायज्ञान होवै है सो अनुव्यवसायज्ञान आत्माकूं भी विषय करे है तथा ता आत्माविषे समवायसंबंध करिकै रह्या हूआ जो 'इदं जलम्' यह व्यवसायज्ञान है ता व्यवसायज्ञानकूं भी विषय करे है । तथा ता व्यवसायज्ञानका विषय जो जल है ता जलकूं भी विषय करे है, तहां विषय इंद्रियके संबंधतैं विना प्रत्यक्षज्ञान होता नहीं । यातैं ता मनरूप इंद्रियका तिन विषयोंके साथि कोई संबंध मान्या चाहीये । तहां ता मनका आत्माके साथि तौं संयोगसंबंध है और ता व्यवसायज्ञानके साथि संयुक्तसमवायसंबंध है और बाह्यपदार्थोंके साथि ता मनका संयोगादिरूप लौकिकसंबंध तौं संभवता नहीं । यातैं ता मनका ता बाह्यजलके साथि ज्ञानलक्षणरूप अलौकिकसंबंध है । अर्थात् 'इदं जलम्' यह व्यवसायज्ञान हीं ता मनका ता बाह्यजलके साथि संबंध है । यद्यपि सो व्यवसायज्ञान समवायसंबंध करिकै आत्माविषे हीं रहे है मनविषे रहता नहीं । यातैं ता व्यवसायज्ञानविषे मनकी संबंधरूपता संभवती नहीं तथापि ता ज्ञानलक्षणशब्द करिकै स्वसंयुक्तसमवेतज्ञान हीं विवक्षित हैं । ईहां स्वशब्द करिकै मनका ग्रहण करणा, ता मनसंयुक्तआत्मा है, ता आत्माविषे समवेत 'इदं जलम्' यह व्यवसायज्ञान है सो व्यवसायज्ञान विषयतासंबंधकरिकै ता जलविषे रहे है । इस प्रकारतैं ता अनुव्यवसायज्ञानके उत्पत्तिका कारणभूत जा मनःसंयोगादिरूप सामग्री है सा सामग्री ज्ञानमात्रग्राहकसामग्री कही जावै है । ता ज्ञानमात्रग्राहक सामग्रीतैं ता प्रमात्वका ज्ञान होता नहीं किंतु ता ज्ञानमात्रग्राहक सामग्रीतैं भिन्न जो उक्त अनुमानरूप सामग्री है ता अनुमानतैं हीं ता प्रमात्वका अनुमितिज्ञान होवै है । यह हीं ता प्रमात्वविषे परतोग्राह्यत्व है ।

ईहां ज्ञानमात्रग्राहकसामग्रीतैं भिन्न सामग्री हीं परशब्दका अर्थ है इति । उत्पत्तिपरतस्त्व—अब ता प्रमात्व विषे उत्पत्तिपरतस्त्वका वर्णन करे हैं । तहां लक्षण—**ज्ञानमात्रजनकसामग्र्यतिरिक्तकारणप्रयोज्यत्वं उत्पत्तिपरतस्त्वम्** । अर्थ यह—केवल ज्ञानमात्रका जनक जा सामग्री है ता सामग्रीतैं भिन्नकारण करिकै जो प्रयोज्यत्व है यह हीं ता प्रमात्वविषे उत्पत्तिपरतस्त्व है। तहां केवल ज्ञानमात्रका जनक सामग्री आत्मा आत्ममनका संयोग इंद्रिय अनुमान इत्यादिक है । ता ज्ञानमात्रके जनक सामग्रीतैं हीं जो ज्ञानविषे प्रमात्व होता होवै तौं ता सामग्री करिकै जन्य होणेतैं सर्वज्ञान प्रमा हीं होणे चाहिये, कोई भी ज्ञान अप्रमा नहीं होणा चाहिये । और ता इंद्रियादिक सामग्रीतैं उत्पन्नहूए भी शुक्तिविषे 'इदं रजतं' इत्यादिक ज्ञान अप्रमा हीं होवै हैं, यातैं ता ज्ञानमात्रके जनक सामग्रीतैं भिन्न कारणतैं हीं सो प्रमात्व उत्पन्न होवै है । सो ज्ञानमात्रकी सामग्रीतैं भिन्न कारणगुण है । ता गुण करिकै जन्यज्ञानविषे हीं सो प्रमात्व होवै है । अर्थात् गुणसहकृत ता उक्त सामग्रीतैं जन्यज्ञानविषे हीं सो प्रमात्व होवै है तहां प्रत्यक्षप्रमाविषे तौं विशेषणवाले विशेष्यके साथि इंद्रियका सन्निकर्षरूप गुण हीं कारण होवै है । जैसे घटत्वरूप विशेषणवाले घटके साथि चक्षुइंद्रियका संयोगसम्बन्धरूप गुण 'अयं घटः' या प्रकारकी प्रत्यक्षप्रमाविषे कारण होवै है, और अनुमितिप्रमाविषे तौं व्यापकवाले विषे व्याप्यका ज्ञानरूप गुण हीं कारण होवै है । जैसे धूमरूप हेतुका व्यापक जो वह्नि है ता वह्निवाले पर्वतविषे ता वह्निके व्याप्य धूमका जो ज्ञान है सो ज्ञानरूप गुण हीं 'पर्वतो वह्निमान्' या प्रकारकी अनुमिति प्रमाविषे कारण होवै है । और उपमितिप्रमाविषे तौं यथार्थसादृश्यज्ञानरूप गुण हीं कारण होवै है । और शाब्दीप्रमाविषे तौं यथार्थ योग्यतादिज्ञानरूप गुण हीं कारण होवै है । इस प्रकार जो जो प्रमाज्ञान होवै है सो सो गुण करिकै हीं जन्य होवै है । और सो उक्त गुण ता उक्तज्ञानमात्रके जनक सामग्रीतैं भिन्न है । ऐसे गुणरूप कारण करिकै जो प्रयोज्यत्व है यह हीं ता प्रमात्वविषे उत्पत्ति परतस्त्व है इति। अप्रमाका उत्पत्तिपरतस्त्व तथा ज्ञप्तिपरतस्त्व—किंवा जैसे प्रमाज्ञान वृत्ति प्रमात्वविषे उत्पत्तिपरतस्त्व तथा ज्ञप्तिपरतस्त्व है तैसे अप्रमाज्ञानवृत्ति अप्रमात्वविषे भी सो उत्पत्तिपरतस्त्व तथा ज्ञप्तिपरतस्त्व हीं है । तहां जैसे प्रमाज्ञानका असाधारणकारण सो उक्तगुण होवै है तैसे ता अप्रमाज्ञानका असाधारणकारण दोष होवै है । यातैं सो दोष भी ता ज्ञानमात्रकी सामग्रीतैं भिन्न है । ऐसे दोषरूप कारण करिकै जो प्रयोज्यत्व है यह हीं ता अप्रमात्वविषे उत्पत्तिपरतस्त्व है । और ता प्रमात्वकी न्यांई अप्रमात्वका भी ज्ञानमात्रग्राहकसामग्रीके भिन्न अनुमानरूप सामग्रीतैं ज्ञानरूप होवै है । यह हीं ता अप्रमात्वविषे परतोग्राह्यत्व है । तहां शुक्ति-

विषे ' इदं रजतं ' या प्रकारके ज्ञानतैं अनन्तर ता रजतकी इच्छा करिकै प्रवृत्तहूए पुरुषकूं जबी ता रजतकी प्राप्ति नहीं होवै है तबी सो पुरुष ता रजतज्ञानविषे अप्रमात्वका अनुमान करे है। ता अनुमानका यह आकार है—**पूर्वोत्पन्नं रजतज्ञानं अप्रमा निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा प्रमा।** अर्थ यह—हमारेकूं पूर्व उत्पन्नभया जो ' इदं रजतं' यह ज्ञान है सो ज्ञान अप्रमा है; निष्फलप्रवृत्तिका जनक होणेतैं; जो जो ज्ञान अप्रमा नहीं होवै है; सो सो ज्ञान निष्फलप्रवृत्तिका जनक भी नहीं होवै है। जैसै सत्यरजतविषे ' इदं रजतं ' यह प्रमाज्ञान है। इस प्रकारके अनुमान करिकै हीं ता अप्रमात्वका ज्ञान होवै है। यह हीं ता अप्रमात्वविषे परतोग्राह्यत्व है इति।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानन्दगिरिणा विरचिते न्यायप्रकाशे प्रत्यक्षादिप्रमाणचतुष्टय निरूपणं नाम षष्ठः परिच्छेदः वैशेषिक पदार्थनिरूपणविषयश्च समाप्तः ॥ ६ ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥



ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः ॥

श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः ।

# अथ न्यायप्रकाश ।

## सप्तमपरिच्छेदः ।

षोडशोंका सप्तपदार्थोंमें अन्तर्भाव ।

तहां द्वितीयपरिच्छेदतैं आदि लैके षष्ठे परिच्छेदपर्यंत कणादमुनिउक्त वैशेषिकशास्त्रके द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंका विस्तारतैं निरूपण कऱ्या। अब इस सप्तमपरिच्छेदविषे गौतममुनि उक्त न्यायशास्त्रके प्रमाणादिक षोडशपदार्थोंका निरूपण करे हैं तथा तिन षोडशपदार्थोंका पूर्वउक्त द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंविषे अन्तर्भावका प्रकार वर्णन करे हैं ।

निरूपणके साथ २ अन्तर्भाव ।

प्रमाण १, प्रमेय २; संशय ३, प्रयोजन ४, दृष्टांत ५, सिद्धांत ६, अवयव ७, तर्क ८, निर्णय ९, वाद १० जल्प ११, वितण्डा १२, हत्वाभास १३, छल १४, जाति १५, निग्रहस्थान १६, यह षोडशपदार्थ गौतममुनिनैं न्यायशास्त्रविषे कथन करे हैं। अब इन षोडशपदार्थोंका यथाक्रमतैं निरूपण करे हैं ।

प्रमाण—तहां प्रथम प्रमाणपदार्थ तौं प्रत्यक्ष १, अनुमान २, उपमान ३, शब्द ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। प्रत्यक्ष—तिन च्यारिप्रमाणोंके मध्यविषे प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण तौं बाह्य १, अंतर २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां सो बाह्यप्रत्यक्ष भी घ्राण १, रसन २, चक्षु ३, त्वक् ४, श्रोत्र ५, इस भेद करिकै पांच प्रकारका होवै है। और मन अन्तरप्रत्यक्ष कह्या जावै है। विशेष कथन—तहां घ्राण, रसन, चक्षु त्वक्, श्रोत्र, मन इन षट्इंद्रियोंका स्वरूप द्वितीयपरिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । तथा तिन षट्इंद्रियोंविषे प्रत्यक्षप्रमाणरूपता षष्ठे परिच्छेदविषे प्रत्यक्षनिरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं। सो ईहां भी जानिलेणा। तिस घ्राणादिषट्इंद्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाणका यथाक्रमतैं पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन इन षट्द्रव्योंविषे अन्तर्भाव है। अनुमान—और दूसरा अनुमानप्रमाण भी पूर्ववत् १, शेषवत् २, सामान्यतोदृष्ट ३, इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । सो तीनप्रकारका अनुमान भी स्वार्थ १, परार्थ २ इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है। इस अनुमानप्रमाणका विस्तारतैं निरूपण पूर्व षष्ठे परिच्छेदविषे अनुमाननिरूपणविषे करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस व्याप्तिज्ञानरूप अनुमानप्रमाणका ज्ञानगुणविषे अन्तर्भाव है। उपमान—तीसरा उपमानप्रमाण भी सादृश्यविशिष्ट पिंडज्ञान १, वैधर्म्यविशिष्ट पिंडज्ञान २, असाधारणधर्मविशिष्ट पिंडज्ञान ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका

होवै है। इस उपमानप्रमाणका विस्तारतैं निरूपण षष्ठे परिच्छेदविषे उपमाननिरूपणविषे करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस उपमानप्रमाणका भी ज्ञानगुणविषे अन्तर्भाव है।

शब्द—और चतुर्थ शब्दप्रमाण तौं दृष्टार्थक १, अदृष्टार्थक २, इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां 'ओदनकामः, पचेत' इत्यादिक दृष्टअर्थका प्रतिपादकशब्द तौं दृष्टार्थक कह्या जावै है। और 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिक अदृष्टअर्थका प्रतिपादकशब्द तौं अदृष्टार्थक कह्या जावै है। इस शब्दप्रमाणका विस्तारतैं निरूपण पूर्व षष्ठे परिच्छेदविषे शब्दप्रमाणके निरूपणविषे करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। तहां पदके ज्ञानका नाम शब्दप्रमाण है, इस मतविषे तौं ता शब्दप्रमाणका ज्ञानगुणविषे अंतर्भाव है और ज्ञातपदका नाम शब्दप्रमाण है इस मतविषे ता शब्दप्रमाणका शब्दगुणविषे अन्तर्भाव है इति १॥

प्रमेय—और दूसरा प्रमेयपदार्थ तौं आत्मा १, शरीर २, इंद्रिय ३, अर्थ ४, बुद्धि ५, मन ६, प्रवृत्ति ७, दोष ८, प्रेत्यभाव ९, फल १०, दुःख ११, अपवर्ग १२ इस भेद करिकै द्वादशप्रकारका होवै है। आत्मा—तहां प्रथम आत्मारूप प्रमेय तौं जीवात्मा १, ईश्वरात्मा २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। ता आत्माका विस्तारतैं निरूपण पूर्वद्वितीयपरिच्छेदविषे आत्मनिरूपणविषे करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस आत्मारूप प्रमेयका आत्मारूप द्रव्यविषे अंतर्भाव है। शरीर—और दूसरा शरीररूप प्रमेय तौं योनिज १, अयोनिज २, इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां प्रथम योनिज शरीर भी जरायुज १, अंडज २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। और दूसरा अयोनिज शरीर तौं स्वेदज १, उद्भिज्ज २, अदृष्टविशेषजन्य ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। इस शरीरका विस्तारतैं निरूपण द्वितीयपरिच्छेदविषे पृथिवीके निरूपणविषे करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस शरीररूप प्रमेयका द्रव्यपदार्थविषे अंतर्भाव है। अर्थात् पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय इन च्यारिप्रकारके शरीरोंका यथाक्रमतैं तिन पृथिवीआदिक च्यारि द्रव्योंविषे अन्तर्भाव है। इन्द्रिय—और तीसरा इंद्रियरूप प्रमेय तौं घ्राण १, रसन २, चक्षु ३, त्वक् ४, श्रोत्र ५, मन ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है। इस इंद्रियरूप प्रमेयका भी पूर्वउक्त रीतिसैं पृथिवीआदिक द्रव्यविषे हीं यथाक्रमतैं अन्तर्भाव है। अर्थ—और एकैकेन्द्रियमात्रग्राह्यविशेषगुणः अर्थः। अर्थ यह—एकएक इंद्रियमात्र करिकै ग्राह्य जो विशेषगुण है सो अर्थ कह्या जावै है, सो अर्थरूप प्रमेय—रूप १, रस, २, गंध ३, स्पर्श ४, शब्द ५, बुद्धि ६, सुख ७, दुःख ८, इच्छा ९, द्वेष १०, प्रयत्न ११, इस भेद करिकै एकादशप्रकारका होवै है। तिन रूपादिकोंका स्वरूप पूर्वतृतीयपरिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस अर्थरूप प्रमेयका यथा-

योग्य गुणपदार्थविषे अन्तर्भाव है। अथवा सो अर्थरूप प्रमेय द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६, इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है। तिन द्रव्यादिक षट्अर्थोंका स्वरूप पूर्वद्वितीयादिक परिच्छेदोंविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस द्रव्यादिरूप अर्थका यथाक्रमतैं तिन द्रव्यादिक षट्पदार्थोंविषे हीं अंतर्भाव है। बुद्धि—और पञ्चमा बुद्धिरूप प्रमेय तौं नित्य १, अनित्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां ईश्वरकी बुद्धि तौं नित्य होवै है और जीवकी बुद्धि अनित्य होवै है। सा अनित्य बुद्धि भी अनुभव १, स्मृति २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। सा दोनों प्रकारकी अनित्यबुद्धि यथार्थ १, अयथार्थ २, ईस भेद करिकै पुनः दो प्रकारकी होवै है। तहां यथार्थअनुभव तौं प्रत्यक्ष १, अनुमिति २, उपमिति ३, शाब्द ४ इस भेद करिकै च्यारि प्रकारका होवै है। और अयथार्थ अनुभव तौं संशय १, विपर्यय २ तर्क ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। इस बुद्धिरूप प्रमेयका पूर्वषष्ठे परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस बुद्धिरूप प्रमेयका ज्ञानगुणविषे अंतर्भाव है। मन—और षष्ठे मनरूप प्रमेयका तौं पूर्व द्वितीयपारिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस मनरूप प्रमेयका ता मनरूप द्रव्यविषे अन्तर्भाव है। प्रवृत्ति—और सप्तमा प्रवृत्तिरूप प्रमेय तौं वागारंभ १, बुद्ध्यारंभ २, शरीरारंभ ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां। **वचनानुकूलो यत्नः वागारम्भः चेष्टानुकूलो यत्नः शरीरारम्भः एतद्द्वयभिन्नो यत्नः बुद्ध्यारम्भः।** अर्थ यह—इस पुरुषका वचन उच्चारणके अनुकूल जो प्रयत्न है ताका नाम वागारंभ है और इस पुरुषका शरीरकी चेष्टाके अनुकूल जो प्रयत्न है ताका नाम शरीरारंभ है। और तिन दोनों प्रकारके प्रयत्नोंतैं भिन्न जो प्रयत्न है ताका नाम बुद्ध्यारंभ है, सो बुद्ध्यारंभ नामा प्रयत्न ध्यानादिकोंके अनुकूल होवै है इस प्रवृत्तिरूप प्रमेयका प्रयत्नगुणविषे अंतर्भाव है। दोष—और अष्टमा दोषरूप प्रमेय तौं राग १, द्वेष २, मोह ३, इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। रागदोषके भेद—तहां प्रथम रागरूप दोष तौं काम १, मत्सर २, स्पृहा ३, तृष्णा ४, लोभ ५, माया ६, दंभ ७ इस भेद करिकै सप्तप्रकारका होवै हैं। तहां मैथुनकी इच्छाका नाम काम है। और आपणे प्रयोजनके विचारतैं विना हीं दूसरे पुरुषके वांछित अर्थके निवारणकी जा इच्छा है ताका नाम मत्सर है। और धर्मतैं अविरुद्ध जा वस्तुके प्राप्तिकी इच्छा है ताका नाम स्पृहा है। और यह हमारा वस्तु कोईकालविषे भी नाश नहीं होवै, या प्रकारकी जा इच्छा है ताका नाम तृष्णा है। और जिस कार्यविषे जितना धन अवश्य करिकै खरच करणा उचित है तिस कार्यविषे तितनैं धनकूं न खरच करिकै जो धनके रक्षणकी इच्छा है ताका नाम कार्पण्य है, सा कृपणता भी तृष्णाविशेष हीं है। और धर्मके विरोध करिकै जा परद्रव्यकी इच्छा है ताका नाम लोभ है। और दूसरे पुरुषके वंचन करणेकी जा इच्छा है

ताका नाम माया है । और अंतरतैं धार्मिकपणेतैं रहित हूए भी बाह्यतैं धार्मिकपणे करिकै आपणे उत्कृष्टता जनावणेकी जा इच्छा है ताका नाम दंभ है; यह सप्तप्रकारका राग इच्छागुणविषे अंतर्भूत है इति । द्वेषदोषके भेद—और दूसरा द्वेषरूप दोष तौं क्रोध १, ईर्ष्या २, असूया ३, द्रोह ४, अमर्ष ५, अभिमान ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारका होवै है । तहां नेत्रोंकी लौहित्यादिकोंका हेतुभूत जो द्वेषविशेष है ताका नाम क्रोध है । और कोई साधारणवस्तुविषे परके स्वत्वतैं ता वस्तुके ग्रहण करणेहारे पुरुषविषे जो द्वेष है ताका नाम ईर्ष्या है । और अन्यपुरुषके विद्यादिक गुणोंविषे जो द्वेष है ताका नाम असूया है । और अन्यपुरुषके नाश करणे वासतै जो द्वेष है ताका नाम द्रोह है । और हिंसा तौं ता द्रोह करिकै जन्य होवै है । और केईकग्रन्थकार—तौं ता हिंसाकूं हीं द्रोह कहे हैं । और अपराध करणेहारे पुरुषविषे असमर्थ पुरुषका जो द्वेष है ताका नाम अमर्ष है । और अपकारी पुरुषविषे किञ्चित्मात्र भी अनिष्ट करणेकूं असमर्थ पुरुषका जो आपणे आत्माविषे द्वेष है ताका नाम अभिमान है । इस षट्प्रकारके द्वेषका द्वेषगुणविषे अंतर्भाव है इति । मोहदोषके भेद—और तीसरा मोहरूप दोष तौं विपर्यय १, संशय २, तर्क ३, मान ४, प्रमाद ५, भय ६, शोक ७ इस भेद करिकै सप्तप्रकारका होवै । तहां विपर्यय, संशय, तर्क इन तीनोंका स्वरूप तौं पूर्वषष्ठे परिच्छेदविषे अयथार्थ अनुभवके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा । और आपणे आत्माविषे अविद्यमानगुणोंका आरोपण करिकै जो उत्कृष्टता बुद्धि है ताका नाम मान है । और गुणवान् पुरुषविषे गुणरहित बुद्धिका नाम स्मय है ता स्मयका भी उक्तमानविषे हीं अंतर्भाव है और पूर्व कर्त्तव्यतारूप करिकै निश्चय कऱ्येहूए भी अर्थविषे जा अकर्त्तव्यताबुद्धि है ताका नाम प्रमाद है । इस प्रकार पूर्व अकर्त्तव्यतारूप करिकै निश्चय कऱ्येहूए भी अर्थविषे जा पुनः कर्त्तव्यताबुद्धि है ताका नाम प्रमाद है । और अनिष्टकरणेहारे किसी कारणके प्राप्तहूए ताके परित्याग करणेकी अयोग्यताका जो ज्ञान है ताका नाम भय है । और इष्टवस्तुके वियोग हुए तिस इष्टवस्तुके पुनः लाभकी अयोग्यताका जो ज्ञान है ताका नाम शोक है । इस सप्तप्रकारके मोहका ज्ञानगुणविषे अन्तर्भाव है इति । प्रेत्यभाव—और मरणतैं उत्तरजन्मका नाम प्रेत्यभाव है । तहां शरीरप्राणके अन्त्यसंयोगका जो ध्वंस है ताका नाम मरण है । और शरीरप्राणका जो आद्यसंयोग है ताका नाम जन्म है । ता प्रेत्यभावरूप प्रमेयका ध्वंसविषे तथा संयोगगुणविषे अन्तर्भाव है । फल—और दशम फलरूप प्रमेय तौं मुख्य १, गौण २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां सुखके साक्षात्कारकूं वा दुःखके साक्षात्कारकूं मुख्यफल कहे हैं । और जन्यवस्तुमात्रका नाम गौणफल है । तहां मुख्यफलका तौं ज्ञानगुणविषे अन्तर्भाव है । और गौणफलका यथायोग्य द्रव्यादिकोंविषे अन्तर्भाव है । दुःख-और एकादशे दुःखरूप प्रमेयका तौं दुःखगुणविषे अन्तर्भाव है । ता दुःखका

तृतीय परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। अपवर्ग—और एकविंशति दुःखोंकी जा आत्यन्तिकी निवृत्ति है ताका नाम अपवर्ग है ता अपवर्गका प्रथम परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं। सो ईहां भी जानिलेणा; ता अपवर्गरूप प्रमेयका अभाव पदार्थविषे अन्तर्भाव है इति ॥ २ ॥

संशय—तीसरा संशयपदार्थ तौं साधारण धर्मवत् धर्मिज्ञान जन्य १, असाधारणधर्मवत्-धर्मिज्ञान जन्य २, विप्रत्तिपतिवाक्यजन्य ३ इस भेद करिकैं तीन प्रकारका होवै है। और सो संशय बहिर्विषयक १, अन्तर्विषयक २ इस भेद करिकैं पुनः दो प्रकारका होवै है। तहां बहिर्विषयक संशय भी दृश्यमानधर्मिक १, अदृश्यमानधर्मिक २ इस भेद करिकैं पुनः दो प्रकारका होवै हैं। इस संशय पदार्थका षष्ठे परिच्छेदविषे अयथार्थअनुभवके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस संशयपदार्थका ज्ञानगुणविषे अन्तर्भाव है इति ॥ ३ ॥

प्रयोजन—और चतुर्थ प्रयोजन पदार्थ तौं मुख्य १, गौण २ इस भेद करिकैं दो प्रकारका होवै है। तहां सुखदुःखाभाव इन दोनोंका नाम मुख्यप्रयोजन है। और ता मुख्यप्रयोजनके साधनोंका नाम गौणप्रयोजन है। इस प्रयोजन पदार्थका प्रथमपरिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। तहां सुखरूप प्रयोजनका तौं सुखगुणविषे अन्तर्भाव है और दुःखाभावरूप प्रयोजनका अभावपदार्थविषे अन्तर्भाव है। और गौणप्रयोजनका तौं यथायोग्य द्रव्यादिक पदार्थोंविषे अन्तर्भाव है इति ॥ ४ ॥

दृष्टांत—और पञ्चमा दृष्टांतपदार्थ तौं साधर्म्य १, वैधर्म्य २ इस भेद करिकैं दो प्रकारका होवै है। ता दृष्टांतपदार्थका षष्ठ परिच्छेदविषे अनुमाननिरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस दृष्टांत पदार्थका यथायोग्य द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंविषे अन्तर्भाव है। अर्थात् द्रव्यरूप दृष्टान्तका द्रव्यविषे अन्तर्भाव है। और गुणरूप दृष्टांतका गुणपदार्थविषे अन्तर्भाव है। इस प्रकार कर्म सामान्यादिरूप दृष्टांतका द्रव्यविषे इस प्रकार कर्मसामान्यादिक पदार्थविषे अन्तर्भाव है इति ॥ ५ ॥

सिद्धान्त—और षष्ठा सिद्धांतपदार्थ है। तहां प्रामाणिकत्वेनाभ्युपगतोऽर्थः सिद्धान्तः। अर्थ यह—शास्त्रवेत्ता पुरुषोंनैं प्रामाणिकतारूप करिकैं अंगीकार कऱ्या जो अर्थ है ताका नाम सिद्धांत है। सो सिद्धांत सर्वतंत्रसिद्धांत १, प्रतितंत्रसिद्धांत २, अधिकरणसिद्धांत ३, अभ्युपगमसिद्धांत ४ इस भेद करिकैं च्यारिप्रकारका होवै है। तहां सर्वशास्त्रोंतैं अविरुद्ध ऐसा जो आपणे शास्त्रविषे अंगीकार कऱ्या सिद्धांत है ताका नाम सर्वतंत्रसिद्धांत है। जैसे घ्राणादिकोंविषे इंद्रियपणेका अंगीकार, तथा गंधादिकोंविषे घ्राणादिक इंद्रियोंके अर्थपणेका अंगीकार तथा पृथिवी आदिक पांचोंविषे भूतपणेका अंगीकार, इत्यादिक सर्वतंत्रसिद्धांत

कह्या जावै है और जो अर्थ वादीनैं वा प्रतिवादीनैं एकनैं हीं अंगीकार कन्या है दूसरेनैं अंगीकार कन्या नहीं सो अर्थ प्रतितंत्रसिद्धांत कह्या जावै है। जैसे मीमांसकोंके मतविषे शब्दके नित्यपणेका अंगीकार प्रतितंत्रसिद्धांत कह्या जावै है। और जिस अर्थकी सिद्धिके हूए हीं प्रस्तुत अर्थकी सिद्धि होवै है सो अधिकरणसिद्धांत कह्या जावै है। जैसे द्व्यणुकादिरूप कार्यकूं पक्ष राखिके उपादानगोचर अपरोक्षज्ञान, चिकीर्षा कृतिवाले पुरुष करिकै जन्यत्वके सिद्ध कीये हूए ता ईश्वरका सर्वज्ञपणा सिद्ध होवै है सो अधिकरणसिद्धांत कह्या जावै है। और साक्षात्सूत्रविषे नहीं कथन कन्येहूए अर्थका जो अंगीकार है सो अभ्युपगमसिद्धांत कह्या जावै है। जैसे मन विषे इंद्रियपणेका अंगीकार अभ्युपगमसिद्धांत कह्या जावै है। इस सिद्धांतपदार्थका यथायोग्य द्रव्यादिक पदार्थोंविषे अंतर्भाव है इति ॥ ६ ॥

अवयव—और सप्तमा अवयवपदार्थ तौं प्रतिज्ञा १, हेतु २, उदाहरण ३, उपनय ४, निगमन ५ इस भेद करिकै पंचप्रकारका होवै है। तहांसो दूसरा हेतु अवयव भी अज्ञातव्यतिरेक व्याप्तिक हेतु बोधक १ अप्रतीतान्वयव्याप्तिक हेतुबोधक २, प्रतीतान्वयव्यतिरेकव्याप्तिक हेतुबोधक ३ इस भेद करिकै तीनप्रकारका होवै है। और तीसरा उदाहरण अवयव तौं अन्वय व्याप्तिबोधक १, व्यतिरेकव्याप्तिबोधक २ इस भेद करिकै दोप्रकारका होवै है। और चतुर्थ उपनयरूपअवयव भी अन्वयी १, व्यतिरेकी २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। इस अवयवपदार्थका पूर्व षष्ठेपरिच्छेदविषे अनुमाननिरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं। सो ईहां भी जानिलेणा। यह अवयवपदार्थ शब्द स्वरूप होणेतैं शब्दगुणविषे अंतर्भूत है इति॥ ७॥

तर्क—और अष्टमा तर्क पदार्थ तौं आत्माश्रय १, अन्योन्याश्रय २, चक्रिका ३, अनवस्था ४, प्रमाणबाधितार्थप्रसंग ५ इस भेद करिकै पंचप्रकारका होवै है। तहां आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रिका यह तीन तर्क तौं उत्पत्ति, स्थिति २ ज्ञप्ति ३ इस भेद करिकै तीन तीन प्रकारके होवै हैं और कोईग्रंथकारके मतविषे सो तर्कपदार्थ व्याघात १, आत्माश्रय २, इतरेतराश्रय ३, चक्रिका ४, अनवस्था ५, प्रतिबंदी ६, कल्पनालाघव ७, कल्पनागौरव ८, उत्सर्ग ९ अपवाद १० वैयात्य ११ इस भेद करिकै एकादशप्रकारका होवै है और सो तर्कपदार्थ विषय परिशोधक १, व्याप्तिग्राहक २, इस भेद करिकै पुनः दो प्रकारका होवै है इस तर्क पदार्थका पूर्व षष्ठे परिच्छेदविषे तर्कके निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानिलेणा। इस तर्कपदार्थका ज्ञानगुणविषे अंतर्भाव है इति ॥ ८ ॥

निर्णय—और प्रमाणका फलभूत जो निश्चयरूप ज्ञान है ताका नाम निर्णय है। इस निर्णयपदार्थका ज्ञानगुणविषे अंतर्भाव है इति ॥ ९ ॥

वाद—और तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः। अर्थ यह—तत्त्ववस्तुके बोधनकी इच्छावाले दो पुरुषोंकी परस्पर प्रश्न उत्तररूप कथा है ताका नाम वाद है इस वादपदार्थका शब्दगुणविषे अंतर्भाव है इति ॥ १० ॥

जल्प--और उभयपक्षस्थापनवती विजिगीषुकथा जल्पः । अर्थ यह—वादीका पक्ष तथा प्रतिवादीका पक्ष इन दोनों पक्षोंके स्थापन करणेहारी ऐसी जा परस्पर जीतणेकी इच्छावान् वादी प्रतिवादी दोनोंकी प्रश्न उत्तररूप कथा है ताका नाम जल्प है । इस जल्प पदार्थका भी शब्दगुणविषे अंतर्भाव है इति ॥ ११ ॥

वितण्डा—और स्वपक्षस्थापनहीना विजिगीषुकथा वितण्डा । अर्थ यह—आपणे पक्षके स्थापनतैं रहित ऐसी जा जीतणेकी इच्छावाले पुरुषोंकी परस्पर कथा है ताका नाम वितंडा है । इस वितंडा पदार्थका भी शब्दगुणविषे अंतर्भाव है इति ॥ १२ ॥

हेत्वाभास—और हेत्वाभासपदार्थ तौं व्यभिचारि १, विरुद्ध २, असिद्ध ३, सत्प्रतिपक्ष ४, बाधित ५ इस भेद करिकै पांच प्रकारका होवै है । तहां प्रथम व्यभिचारी हेत्वाभास तौं साधारण १, असाधारण २, अनुपसंहारी ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है और तीसरा असिद्धहेत्वाभास भी स्वरूपासिद्ध १, आश्रयासिद्ध २, व्याप्यत्वासिद्ध ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । इस हेत्वाभासपदार्थका पूर्व षष्ठे परिच्छेदविषे अनुमान निरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं सो ईहां भी जानि लेणा । इस हेत्वाभासपदार्थका यथायोग्य द्रव्यादिक सप्तपदार्थो विषे अंतर्भाव जानणा इति ॥ १३ ॥

छल—और वक्तृतात्पर्याविषयार्थकल्पनेन दूषणाभिधानं छलम् । अर्थ यह—वक्तापुरुषके तात्पर्यका अविषयभूत अर्थकी कल्पना करिकै ता वक्तापुरुषके प्रति जो दूषणका कथन है ताका नाम छल है । जैसे—अयं पुरुषः नेपालादागतः नवकम्बलवत्त्वात् । अर्थ यह—यह पुरुष नेपालतैं आया है नव कंबलवाला होणेतैं ईहां 'नवकम्बलवत्त्वात्' इस वचनविषे स्थित जो नव यह पद है ता नवपदतैं कंबलविषे नवीनपणेके बोधनविषे ता वक्तापुरुषका तात्पर्य है । तिन कंबलोंकी नवत्वसंख्याके बोधन करणेविषे ता वक्तापुरुषका तात्पर्य नहीं है । ता वक्ताके तात्पर्यका अविषयभूत नवत्वसंख्यारूप अर्थकी कल्पना करिकै ता वक्तापुरुषके प्रति इस दरिद्रीपुरुषके पास नवकंबल नहीं हैं किंतु एक हीं कंबल है या प्रकारके असिद्धि दोषका जो कथन है ताका नाम छल है सो छल पदार्थ वाक्छल १, सामान्यछल २, उपचारछल ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां जिस पदके दो शक्य अर्थ संभवते होवैं और एकशक्य अर्थके निर्णय करावणेहारे विशेषके अभावतैं वक्ताके तात्पर्यके अविषयभूत शक्य अर्थकी कल्पना करिकै ता वक्ताके प्रति जो दूषणका कथन है ताका नाम वाक्छल है । जैसे पूर्वउक्त उदाहरणविषे नवपदका नवीनता भी शक्य अर्थ है तथानवत्वसंख्या भी शक्य अर्थ है । तहां ता वक्तापुरुषका ता नवपदके नवीनतारूप अर्थविषे तात्पर्य है नवत्वसंख्याविषे तात्पर्य नहीं है । ता नवपदतैं नवत्वसंख्यारूप अर्थकी कल्पना करिकै ता वक्तापुरुषके प्रति जो उक्त दूषणका कथन है ताका नाम वाक्छल है । और सामान्यविशिष्टसंभवत् अर्थके अभिप्राय करिकै कथन कऱ्या जो

वचन है ता वचनके अतिसामान्ययोगतैं 'असंभवत्' अर्थकत्वकी कल्पना करिकै ता वक्ता-पुरुषके प्रति जो दूषणका कथन है ताका नाम सामान्यछल है। जैसे किसी पुरुषनैं 'ब्राह्मणोऽयं विद्याचरणसंपन्नः' अर्थ यह–यह ब्राह्मण विद्याआचरण करिकै संपन्न है या प्रकारका वचन कह्या ता वचनकूं श्रवण करिकै कोईक पुरुष यह वक्तापुरुष ब्राह्मणत्वरूप हेतु करिकै विद्या-आचरणकूं सिद्ध करता है या प्रकारके अर्थकी कल्पना करिकै ता वक्तापुरुषके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। ब्राह्मणत्वरूपहेतु करिकै विद्या आचरणकी सिद्धि संभवती नहीं। जिस कारणतैं उपनयनसंस्कारतैं रहित व्रात्यब्राह्मणविषे ता ब्राह्मणत्वके विद्यमान हूए भी ता विद्याआचरणका अभाव हीं देखणेविषे आवै है। इसका नाम सामान्यछल है और शक्तिवृत्ति करिकै वा लक्षणावृत्तिकरिकै प्रयोगकऱ्येहूए शब्दविषे तिसतैं अन्यवृत्ति करिकै जो प्रतिषेध है ताका नाम उपचारछल है। जैसे मंचपदकी मंचस्थपुरुषविषे लक्षणावृत्तिके अभिप्राय करिकै उच्चारण कऱ्या जो 'मञ्चाः क्रोशन्ति' या प्रकारका वचन है ता वचनविषे मंचपदकी मंचविषे शक्तिवृत्तिकूं अंगीकार करिकै श्रोतापुरुष ता वक्तापुरुषके प्रति या प्रकारका प्रतिषेध करे है। मंचस्थपुरुष हीं शब्द करे हैं कोई मंच शब्द करते नहीं। इस प्रकार अहं शब्दकी आत्माविषे शक्तिवृत्तिके अभिप्राय करिकै उच्चारण कऱ्या जो 'अहं नित्यः' या प्रकारका शब्द है ता अहंशब्दकी शरीरविषे लक्षणावृत्तिकल्पना करिकै श्रोतापुरुष ता वक्तापुरुषके प्रति असुकपितामातातैं उत्पन्नहूआ तूं कैसे नित्य होवैंगा या प्रकारका प्रतिषेध करे है। याका नाम उपचारछल है। इस उक्त तीन प्रकारके छलका शब्दगुणविषे अंतर्भाव है इति ॥ १४ ॥

जाति–**असदुत्तरं जातिः**। अर्थ यह–असत्उत्तरका नाम जाति है। तहां स्वपक्षसाधक ताकी न्यांई परपक्षकी साधकता करिकै जो स्वव्याघातकपणा है यह हीं ता उत्तरविषे असत्पणा है। यातैं 'स्वव्याघातकं उत्तरं जातिः' यह जातिका लक्षण सिद्ध होवै है।

जातिके भेद–सो जातिपदार्थ साधर्म्यसमा १, वैधर्म्यसमा २, उत्कर्षसमा ३, अपकर्षसमा ४, वर्ण्यसमा ५, अवर्ण्यसमा ६, विकल्पसमा ७साध्यसमा ८, प्राप्तिसमा ९, अप्राप्तिसमा १०, प्रसंगसमा ११, प्रतिदृष्टांतसमा १२, अनुत्पत्तिसमा १३, संशयसमा १४, प्रकरणसमा १५, हेतुसमा १६, अर्थापत्तिसमा १७, अविशेषसमा १८, उपपत्तिसमा १९, उपलब्धिसमा २०, अनुपलब्धिसमा २१, नित्यसमा २२, अनित्यसमा २३, कार्यसमा २४ इस भेद करिकै चौवीसप्रकारका होवै है। तहां साधर्म्यसमा–**साधर्म्येण स्थापना हेतुदूषकमुत्तरं साधर्म्यसमा**। अर्थ यह–समानधर्मकूं लेके स्थापनाहेतुका दूषक जो उत्तर है ताका नाम साधर्म्यसमा है। जैसे–**आत्मा सक्रियः क्रियाहेतुगुणवत्त्वात् लोष्टवत्**। अर्थ यह–आत्मा क्रियावाला है क्रियाके हेतुभूत गुणवाला होणेतैं जो जो द्रव्य क्रियाके हेतुभूत गुणवाला होवै है सो सो द्रव्य क्रियावाला हीं होवै है जैसे लोष्ट है। तहां क्रियाका जनक जो वायुसंयोग-

दिक है सोई हीं क्रियाका हेतुभूत गुण जानणा या प्रकारके अनुमान करिकै किसी वादीनैं आत्माविषे सक्रियत्व स्थापन कन्या तिस वादीके प्रति कोई अन्यवादी या प्रकारका उत्तर कहता भया। जो कदाचित् सक्रियलोष्टके साधर्म्यतैं आत्मा सक्रिय होवै तौं आकाशादिक निष्क्रिय द्रव्यके विभुत्वरूप साधर्म्यतैं सो आत्मा निष्क्रिय हीं क्युं नहीं होवै इन दोनों पक्षोंविषे एक पक्षका साधक कोई युक्ति नहीं है । इस प्रकारके उत्तरका नाम साधर्म्यसमा जाति है इति ।

वैधर्म्यसमा—**वैधर्म्येण स्थापनाहेतुदूषकमुत्तरं वैधर्म्यसमा** । अर्थ यह—वैधर्म्येकूं लैके स्थापनाहेतुका दूषक जो उत्तर है ताका नाम वैधर्म्यसमा है जैसे पूर्वउक्त स्थापना अनुमान-विषे हीं कोई या प्रकारका उत्तर कहे है । जो कदाचित् ता क्रियावाले लोष्टके साधर्म्यतैं सो आत्मा क्रियावाला होवै तौं ता लोष्टके विभुत्वरूप वैधर्म्यतैं सो आत्मा निष्क्रिय हीं क्युं नहीं होवै। तहां ता लोष्टके साधर्म्यतैं आत्मा क्रियावाला तौं होवै है परंतु ता लोष्टके वैधर्म्यतैं सो आत्मा निष्क्रिय नहीं होवै है । इस अर्थविषे किंचित्‌मात्र भी नियामक नहीं है इस प्रकारके उत्तरका नाम वैधर्म्यसमा जाति है। इति ते जाति उत्तर सर्व असत् हीं होवै हैं। इस प्रकारतैं चौवीस जाति उत्तरोंके लक्षण तथा उदाहरण बृहत्‌न्याय ग्रंथोंविषे लिख्ये हैं ते सर्व ग्रंथ-विस्तारके भयतैं ईहां लिख्ये नहीं, किंतु संक्षेपतैं रीतिमात्र जनाई है इस असत्‌उत्तररूप-इसका अन्तर्भाव जातिका शब्दगुणविषे अंतर्भाव है इति ॥ १५ ॥

निग्रहस्थान—अब निग्रहस्थानका निरूपण करे हैं। तहां—**वादिनोऽपजयहेतुः निग्रहस्थानम्** । अर्थ यह—वादीके अपजयका जो हेतु होवै सो निग्रहस्थान कह्या जावै है अर्थात् जिसके प्राप्तहूए वादीका सभाविषे पराजय होवै है सो निग्रहस्थान कह्या जावै है इति । सो निग्रहस्थान पदार्थ प्रतिज्ञाहानि १, प्रतिज्ञांतर २, प्रतिज्ञानिरोध ३, प्रतिज्ञासंन्यास ४, हेत्वंतर ५, अर्थांतर ६, निरर्थक ७, अपार्थक ८, अविज्ञातार्थ ९, अप्राप्तकाल १०, न्यून ११, अधिक १२, पुनरुक्त १३, अननुभाषण १४, अज्ञान १५, अप्रतिभा १६, विक्षेप १७, मतानुज्ञा १८, पर्य्यनुयोज्योपेक्षण १९, निरनुयोज्यानुयोग २०, अपसिद्धांत २१, हेत्वाभास २२ इस भेद करिकै बावीस प्रकारका होवै है। अब इन बाईस प्रकारके निग्रहस्थानोंके लक्षणोंकूं तथा उदाहरणोंकूं यथाक्रमतैं वर्णन करे हैं। तहां प्रतिज्ञा हानि—**प्रतिज्ञातार्थपरित्यागः प्रतिज्ञाहानिः** । अर्थ यह—पूर्व प्रतिज्ञा कन्ये हूए अर्थका जो परित्यागकरणा है ताका नाम प्रतिज्ञाहानि है। जैसे 'शब्दो नित्यः प्रत्यक्षगुणत्वात्' इस प्रकारके अनुमान करिकै शब्दविषे अनित्यत्वकूं सिद्ध करणेहारे वादीके प्रति दूसरे प्रतिवादीनैं 'सोऽयं गकार' इत्यादिक प्रत्यभिज्ञाके बलतैं ता शब्दविषे नित्यत्वके सिद्ध कीयेहूए सो वादी शब्द नित्य हीं रहो या प्रकारतैं ता शब्दके नित्यत्वकूं अंगीकार करता हूआ ता शब्दके अनित्यत्वकी प्रतिज्ञाकूं परित्याग करि देवै है याका नाम प्रतिज्ञाहानि है इति ॥ १॥ प्रतिज्ञान्तर—**परोक्तदोषो-**

द्दिधीर्षया पूर्वानुक्तविशेषणविशिष्टतया प्रतिज्ञातार्थकथनं प्रतिज्ञान्तरम्। अर्थ यह–प्रतिवादी उक्त दोषके उद्धारकी इच्छा करिकै पूर्व नहीं कथन कऱ्ये हूए विशेषणकी विशिष्टता करिकै जो प्रतिज्ञा कऱ्ये हूए अर्थका कथन है ताका नाम प्रतिज्ञान्तर है। जैसे 'क्षित्यादिकं गुणजन्यं कार्यत्वात्' अर्थ यह–पृथिवीआदिक गुणकरिकै जन्य है कार्यरूप होणेतैं। इस अनुमान करिकै वादीनैं पृथिवीआदिकोंविषे ईश्वरके ज्ञानइच्छादिक गुण करिकै जन्यत्व सिद्ध कऱ्या और दूसरे प्रतिवादीनैं तिन पृथिवीआदिकोंविषे अदृष्टरूप गुणजन्यत्वकूं लैके सिद्धसाधनदोष कथन कऱ्या। ता दोषके उद्धार करणे वासतैं सो वादी ता गुणका सविषयत्वविशेषण कहता भया। तहां जैसे ज्ञानादिकोंविषैं सविषयत्व होवै है। तैसे ता धर्म अधर्मरूप अदृष्टविषे सविषयत्व होता नहीं। यातैं ता गुणका सविषयत्वविशेषणके कहणेतैं ता सिद्धसाधनदोषकी निवृत्ति होइ जावै है, परंतु सो गुणका सविषयत्वविशेषण पूर्वकथन नहीं कऱ्या था याका नाम प्रतिज्ञांतर है इति ॥ २ ॥ प्रतिज्ञाविरोध–स्वोक्तसाध्यविरुद्धहेतुकथनं प्रतिज्ञाविरोधः। अर्थ यह–स्वउक्तसाध्यतैं विरुद्ध हेतुका जो कथन है ताका नाम प्रतिज्ञाविरोध है। जैसे 'द्रव्यं गुणभिन्नं रूपादितः पृथक्त्वेनानुपलभ्यमानत्वात्' अर्थ यह–द्रव्य गुणतैं भिन्न है रूपादिकोंतैं पृथक्तारूप करिकै नहीं प्रतीत होणेतैं। ईहां गुणभिन्नत्व रूप साध्यतैं सो रूपादिकोंतैं पृथक्त्वरूप करिकै अनुपलभ्यमानत्वरूप हेतु विरुद्ध है अर्थात् ता उक्त साध्यकी व्याप्तिवाला सो हेतु नहीं है। ऐसे ता साध्यविरुद्ध हेतुका जो कथन है ताका नाम प्रतिज्ञाविरोध है इति ॥ ३ ॥ प्रतिज्ञा सन्यास–स्वोक्तेर्थे परेण दूषिते तदपलापः प्रतिज्ञासंन्यासः। अर्थ यह–वादी उक्त अर्थविषे दूसरे प्रतिवादीनैं दूषण दीयेहूए जो वादीकृत तिस अर्थका अपलाप है ताका नाम प्रतिज्ञासंन्यास है। जैसे 'शब्दो नित्यः ऐन्द्रियकत्वात्' अर्थ यह–शब्द अनित्य है इंद्रियजन्यज्ञानका विषय होणेतैं। इस प्रकारके अनुमान करिकै वादीनैं शब्दविषे अनित्यत्व सिद्ध कऱ्या और दूसरे प्रतिवादीनैं ता ऐंद्रियकत्वहेतुका जातिरूप सामान्यविषे व्यभिचार कथन कऱ्या। अर्थात् ता जातिरूप सामान्यविषे ता अनित्यत्वरूप साध्यके अभावहूए भी सो ऐंद्रियकत्वरूप हेतु रहे है। इस प्रकारके व्यभिचारदोष करिकै ता अनुमानकूं दूषित कीयेहूए सो वादी शब्दअनित्य है ऐसा किसनैं कह्या है इस प्रकारतैं जो स्वउक्त अर्थका अपलाप करे है ताका नाम प्रतिज्ञासंन्यास है इति ॥ ४ ॥

हेत्वन्तर–परोक्तदूषणोद्दिधीर्षया पूर्वोक्तहेतुकोटौ विशेषणान्तरोपादानं हेत्वन्तरम्। अर्थ यह–प्रतिवादीनैं कथन कऱ्या जो दूषण है ता दूषणके उद्धार करणेकी इच्छा करिकै पूर्वउक्त हेतुकोटिविषे जो अन्यविशेषणका ग्रहण है ताका नाम हेत्वंतर है। जैसे 'शब्दोऽनित्यः प्रत्यक्षत्वात्' अर्थ यह–शब्द अनित्य है प्रत्यक्ष होणेतैं। इस अनुमान करिकै वादीनैं शब्दविषे अनित्यत्व सिद्ध कऱ्या और दूसरे प्रतिवादीनैं ता प्रत्यक्षत्वहेतुका सामान्यविषे

व्यभिचार कथन कऱ्या अर्थात् ता जातिरूप सामान्यविषे ता अनित्यत्वरूप साध्यके अभाव हूए भी सो प्रत्यक्षत्वरूप हेतु रहे है । यातैं सो प्रत्यक्षत्वहेतु व्यभिचारी है ता व्यभिचार दोषके निवृत्त करणे वासतै सो वादी ता हेतुकोटिविषे 'जातिमत्त्वे सति' यह विशेषण कथन करता भया । अर्थात् 'जातिमत्त्वे सति प्रत्यक्षत्वात्' या प्रकारका हेतु कथन करता भया तहां ता सामान्यविषे प्रत्यक्षत्वके हूए भी सो जातिमत्त्वविशेषण है नहीं । यातैं ता सामान्यविषे ता हेतुका व्यभिचार होवै नहीं । इस प्रकारतैं प्रतिवादी उक्त दोषके निवृत्त करणे वासतै ता हेतुकोटिविषे जो विशेषणांतरका कथन है ताका नाम हेत्वंतर है इति ॥ ५ ॥ अर्थान्तर--**प्रकृतानुपयुक्तार्थकथनं अर्थान्तरम्** अर्थ यह--प्रसंगविषे प्राप्त जो अर्थ है ताका नाम प्रकृत है । ऐसे प्रकृत अर्थविषे अनुपयोगी अर्थका जो कथन है ताका नाम अर्थांतर है । जैसे 'शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात्' अर्थ यह—शब्द अनित्य है कार्यरूप होणेतैं या प्रकारके अनुमानतैं शब्दविषे अनित्यत्वसिद्ध करिकै पश्चात् शब्द गुण है सो गुण भी आकाशका हीं है । या प्रकारका जो कथन है अथवा 'कृतकत्वात्' यह हेतु पद है सो हेतुपद 'हिनोति' धातुतैं उत्तर 'तुनि' प्रत्ययके प्राप्तहूए सिद्ध होवै है । और सुप्प्रत्ययांत वा तिङ्प्रत्ययांत पद होवै है । या प्रकारका जो कथन है सो कथन ता शब्दकी अनित्यतारूप प्रकृत अर्थविषे अनुपयोगी हीं है । ऐसे प्रकृतअर्थविषे अनुपयोगी अर्थका जो कथन है ताका नाम अर्थांतर है इति ॥ ६ ॥ निरर्थक—**अवाचकशब्दप्रयोगः निरर्थकम्** । अर्थ यह—जो शब्द किसी भी अर्थका वाचक नहीं होवै है ता शब्दकूं अवाचक कहे हैं ऐसे अवाचकशब्दका जो प्रयोग है ताका नाम निरर्थक है । जैसे 'शब्दो नित्यः जबगडदश्त्वात्' ईहां जबगडदश् यह शब्द किसी भी अर्थका वाचक नहीं है । ऐसे अवाचकशब्दके प्रयोगकूं निरर्थक कहे हैं इति ॥ ७ ॥ अविज्ञातार्थ—**परिषत्प्रतिवाद्यबोधप्रयोजकपदप्रयोगः अविज्ञातार्थम्** । अर्थ यह—जिस पदतैं परिषत् पुरुषकूं तथा प्रतिवादी पुरुषकूं अर्थका बोध नहीं होवै, ऐसे पदका जो प्रयोग है ताका नाम अविज्ञातार्थ है । तहां जिस पदका अन्वय अतिक्लिष्ट होवै है तथा जिस पदका अर्थ अप्रसिद्ध होवै है । तथा जो पद अतिशीघ्रतातैं उच्चारण कऱ्या होवै है सो पद परिषत्पुरुषके तथा प्रतिवादी पुरुषके बोधका जनक होता नहीं, ऐसे पदके प्रयोगका नाम अविज्ञातार्थ है इति ॥ ८ ॥ अपार्थक—**परस्परानन्वितार्थकपदसमूहः अपार्थकम्** । अर्थ यह—जिन पदोंके अर्थका परस्पर अन्वय नहीं होवै है ऐसे पदोंका जो समूह है ताका नाम अपार्थक है । जैसे 'शब्दं घटः पटः नित्यं अनित्यं च प्रमेयत्वात्' इत्यादिक पदोंका समूह अपार्थक कह्या जावै है इति ॥ ९ ॥ अप्राप्तकाल—**अवयवानां व्युत्क्रमेण कथनं अप्राप्तकालम्** । अर्थ यह—परार्थ अनुमानके हेतुभूत जे प्रतिज्ञा १, हेतु २, उदाहरण ३, उपनय ४, निगमन ५ यह पंचअवयव हैं तिन अवयवोंके ता उक्त

क्रमका परित्याग करिकै जो व्युत्क्रम करिकै कथन है ताका नाम अप्राप्तकाल है जैसे 'घटवत् कृतकत्वात् शब्दो नित्यः' इत्यादिक स्थलविषे प्रथम कथन करणेयोग्य 'शब्दो नित्यः' इस प्रतिज्ञाअवयवका पश्चात् कथन है और पश्चात् कथन करणेयोग्य 'घटवत्' इस उदाहरण अवयवका प्रथम कथन है और प्रतिज्ञातैं उत्तर कथन करणेयोग्य 'कृतकत्वात्' इस हेतु अवयवका ता प्रतिज्ञातैं पूर्व कथन है इस प्रकारतैं प्रतिज्ञादिक अवयवोंका जो व्युत्क्रम करिकै कथन है ताका नाम अप्राप्तकाल है इति ॥ १० ॥ न्यून—यत्किञ्चिदवयवशून्यावयवाभिधानं न्यूनम् । अर्थ यह--तिन प्रतिज्ञादिक पंचअवयवोंविषे यत्किंचित् प्रतिज्ञादिरूप अवयवतैं शून्य अवयवोंका जो कथन है ताका नाम न्यून है इति ॥ ११ ।

अधिक—अधिकहेत्वादिकथनं अधिकम् । अर्थ यह—एक हेतु करिकै तथा एकदृष्टांत करिकै साध्यकी सिद्धिके संभवहूए भी जो अधिकहेतुका वा अधिकदृष्टांतका कथन है ताका नाम अधिक है। जैसे 'पर्वतो वह्निमान् धूमात् आलोकात् महानसवत् चत्वरवत्' इस अनुमानविषे एक धूमरूपहेतु करिकै तथा एक महानसरूप दृष्टांत करिकै पर्वतविषे वह्निरूप साध्यकी सिद्धके संभवहूए भी जो अधिक आलोकरूप हेतुका तथा चत्वररूप दृष्टांतका कथन है ताका नाम अधिक है । गृहके अंगणकूं चत्वर कहे हैं इति॥ १२॥ पुनरुक्त—अनुवादं विना कथितस्य पुनःकथनं पुनरुक्तम् । अर्थ यह—अनुवादतैं विना हीं कथन कऱ्येहूए अर्थका जो पुनः कथन है ताका नाम पुनरुक्त है। जैसे 'शब्दो नित्यः शब्दोऽनित्यः' इत्यादिक वचनका कथन पुनरुक्त कह्या जावै है इति॥ १३॥ अननुभाषण—परिषदात्रिरभिहितस्याप्यननुवादः अननुभाषणम् । अर्थ यह—परिषत् पुरुषनैं तीन वार कहे हूए अर्थका भी जो नहीं अनुवाद करणा है ताका नाम अननुभाषण है इति॥ १४॥ अज्ञान—परिषदाविज्ञातस्य वादिना त्रिरभिहितस्यापि वाक्यार्थस्याबोधः अज्ञानम् । अर्थ यह—परिषत्पुरुष करिकै जान्या हूआ तथा वादीनैं तीनवार कथन कऱ्या हूआ ऐसा जो वाक्यार्थ है ता वाक्यार्थका जो बोध नहीं होणा ताका नाम अज्ञान है इति॥ १५॥ अप्रतिभा—उत्तरार्हपरोक्तं बुध्वापि उत्तरस्यास्फूर्त्तिवशात्तूर्ष्णीभावः अप्रतिभा । अर्थ यह—प्रतिवादीके प्रश्नवाक्यकूं उत्तर देणेयोग्य जानिकै भी ता उत्तरकी अस्फूर्त्तिके वशतैं जो तूर्ष्णींभाव है ताका नाम अप्रतिभा है इति ॥ १६ ॥ कार्यव्यासङ्गमुद्भाव्य कथाविच्छेदः विक्षेपः। अर्थ यह--अबी यह कार्य हमारेकूं कर्त्तव्य है या प्रकारके कार्यव्यासङ्गकूं कथन करिकै जो कथाका विच्छेद करणा है ताका नाम विक्षेप है इति ॥ १७॥ मतानुज्ञा—स्वपक्षे दोषमनुद्धृत्य परक्षे दोषाभिधानं मतानुज्ञा। अर्थ यह—आपणे पक्षविषे प्राप्तहूए दोषका न उद्धार करिकै जो परपक्षविषे दोषका कथन है ताका नाम मतानुज्ञा है इति ॥ १८ ॥ पर्य्यनुज्योपेक्षण—उद्भावनार्हपरकीयनिग्रहस्थानानुद्भावनं पर्य्यनुयोज्योपेक्षणम् । अर्थ यह—निग्रहस्थानकूं प्राप्तभया जो प्रतिवादी है ता प्रतिवा-

टीका सो निग्रहस्थानवादीकूं कथन करणेयोग्य है ता निग्रहस्थानका जो नहीं कथनकरणा है ताका नाम पर्य्यनुयोज्योपेक्षण है इति॥ १९॥ निरनुयोज्यानुयोग–**निग्रहस्थानरहिते निग्रहस्थानोद्भावनं निरनुयोज्यानुयोगः।** अर्थ यह–निग्रहस्थानतैं रहित प्रतिवादीविषे जो निग्रहस्थानका कथन है ताका नाम निरनुयोज्यानुयोग है इति ॥२०॥ अपसिद्धान्त–**एकसिद्धान्तमतमाश्रित्य कथाप्रवृत्तौ तद्विरुद्धसिद्धान्तमतमालम्ब्योत्तरदानं अपसिद्धान्तः।** अर्थ यह–एकसिद्धांतमतकूं आश्रयण करिकै कथाकि प्रवृत्तहूए तिस सिद्धांतमततैंविरुद्ध सिद्धान्तमतकूं आश्रयण करिकै जो प्रतिवादीके प्रति उत्तर देणा है ताका नाम अपसिद्धान्त है इति ॥ २१॥ हेत्वाभास–और हेत्वाभास तौं पूर्व षष्ठे परिच्छेदविषे अनुमाननिरूपणविषे जे कथन कये हैं ते हेत्वाभास ईहां भी जानिलेणे इति॥ २२॥ अन्तर्भाव्य निग्रहस्थान–तहां प्रतिज्ञाहानि, अननुभाषण, अज्ञान अप्रतिभा, विक्षेप पर्य्यनुयोज्योपेक्षण इन निग्रहस्थानोंका तौं अभावविषे अन्तर्भाव है। और इनोंतैं भिन्न तथा हेत्वाभासतैं भिन्न दूसरे निग्रहस्थानोंका यथायोग्य गुण पदार्थविषे अन्तर्भाव है। और हेत्वाभासका तौं यथायोग्य द्रव्यादिक पदार्थोंविषे अन्तर्भात है इति ॥ ॥ १६ ॥ इति न्यायशास्त्रउक्तषोडशतदन्तर्भावपदार्थनिरूपणम् ।

### वैशेषिक पदार्थोंके विषयमें दीधितिकारका न्यूनाधिक्य ।

अब दीधितिकार शिरोमणिभट्टाचार्यनैं कणादमुनिउक्त द्रव्यादिक सप्तपदार्थोंविषे कितनैंकी पदार्थोंकूं खण्डन करिकै जितनैंकी पदार्थ अधिक मानैं हैं ते सर्व पदार्थ संक्षेपतैं निरूपण करे हैं।

द्रव्यविषे--तहां पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आत्मा ५ यह पांच हीं होवै हैं और आकाश, काल, दिक् इन तीन द्रव्योंका ईश्वरात्माविषे हीं अन्तर्भाव है । और मन भी पृथक् द्रव्य नहीं है, किंतु अदृष्टविशेष करिकै उपगृहीत त्र्यणुकात्मक भूतरूप हीं मन है। और पृथिवीआदिक भूतोंके परमाणुवोंविषे तथा द्व्यणुकोंविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। और अवयवोंके धाराका भी त्र्यणुकविषे हीं विश्राम होवै है और ईश्वरविषे कोई भी परिमाण रहता नहीं। और रूप, रस, गंध, स्पर्श यह च्यारोंगुण अनुद्भूत होते नहीं, किंतु उद्भूत हीं होवै हैं। और पृथक्त्व भी कोई भिन्नगुण नहीं है किंतु सो पृथकत्व अन्योन्याभावरूप हीं है। इस प्रकार परत्व, अपरत्व भी भिन्नगुण नहीं है, किंतु विप्रकृष्टत्वका नाम दैशिकपरत्व है। और सन्निकृष्टत्वका नाम दैशिकअपरत्व है। इस प्रकार ज्येष्ठत्वका नाम कालिकपरत्व है और कनिष्ठत्वका नाम कालिकअपरत्व है। इस प्रकार विशेष भी कोई भिन्न पदार्थ नहीं है किन्तु ता विशेषतैं विना हीं ते परमाणुआकाशादिक नित्यद्रव्य स्वतः हीं व्यावृत्त होवै हैं। और रूप, रस, गंध, स्पर्श, यह च्यारोंगुण अव्याप्यवृत्ति भी होवै हैं। जिस कारणतैं बाहरितैं रक्तरूपवाले घटके भग्नहूए अन्तरतैं श्यामरूप प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है और नीलपीतादिक रूपोंतैं चित्ररूप भिन्न होता नहीं । किन्तु विजातीयनीलपीतादिक

रूपोंके समूहकूं लेके हीं चित्रव्यवहार होवै है । किंवा जैसे रूपरसादिक गुण अव्याप्यवृत्ति होवै है तैसे कर्म भी अव्याप्यवृत्ति होवै है । जिस कारणतैं सर्वशाखावोंके चलायमानहूए निश्चलमूलवाले वृक्षविषे 'वृक्षः चलति' या प्रकारकी चलनरूप कर्मकी प्रतीति होवै है और एकत्वसंख्याका कोई भी समवायिकारण नहीं होता । सर्व भावकार्यकूं असमवायिकारण करिकै जन्यताविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । यातैं सा एकत्वसंख्या असमवायिकारणतैं विना हीं उत्पन्न होवै है और द्रव्यनाशके प्रति असमवायिकारणका नाश हीं कारण होवै है । समवायिकारणका नाश कारण होता नहीं और द्रव्यके त्वाचप्रत्यक्षविषे स्पर्शवत्त्व हीं कारण होवै है, रूपवत्त्व कारण होता नहीं । इस प्रकार द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षविषे रूपवत्त्व हीं कारण होवै हैं । स्पर्शवत्त्व कारण होता नहीं । और द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंविषे रहणेहारी तथा प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सिद्ध ऐसी एकसत्ताजातिविषे भी कोई प्रमाण नहीं है । जिस कारणतैं धर्मादिक अतिइंद्रिय पदार्थोंविषे ता सत्ताका प्रत्यक्ष संभवता नहीं और ता सत्ताजातितैं शून्य सामान्यादिक पदार्थोंविषे भी सत्सत्व्यवहार देखणेविषे आवै है । यातैं ता सत्सत्व्यवहारका सा सत्ताजाति विषय नहीं है, किंतु वर्त्तमानत्व हीं ता सत्व्यवहारका विषय है । इस प्रकार रूपादिक चौवीसगुणोंविषे वर्त्तणेहारी तथा प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सिद्ध ऐसी एकगुणत्वजातिविषे भी कोई प्रमाण नहीं है । जिसकारणतैं धर्मादिक अतिइंद्रिय गुणोंविषे ता गुणत्वजातिका प्रत्यक्ष सम्भवता नहीं और तुरंगादिवृत्ति उत्कृष्टगतिमत्त्वविषे तथा ब्राह्मणादिवृत्ति द्वेषादिकोंके अभावविषे भी 'गुणवान् अयं अश्वः गुणवान् अयं ब्राह्मणः' या प्रकारका गुणत्वव्यवहार देखणेविषे आवे है, इस प्रकार प्रत्यक्षअनुमितिआदिकोंविषे साधारण एक अनुभवत्वजाति भी नहीं है । किंतु प्रत्यक्षज्ञानवृत्ति साक्षात्कारित्व हीं अनुभवत्वजाति है और अनुमितिआदिक ज्ञानोंविषे जो अनुभवत्वका व्यवहार होवै है ता व्यवहारका अनुभवत्वजाति विषय नहीं है, किन्तु स्मृतिअन्यज्ञानत्व हीं विषय है । और घटके अभावका अभाव प्रतियोगीघटस्वरूप नहीं होवै है । किन्तु ता घटतैं भिन्न हीं होवै है और तृतीयअभाव प्रथमअभावरूप होवै है । यातैं तिन अभावोंकी अनवस्था होवै नहीं, इस प्रकार ध्वंसका प्रागभाव भी प्रतियोगीरूप तथा प्रतियोगीके प्रागभावरूप नहीं होता और द्रव्यादिकपदार्थोंकी न्यांई स्वत्व भी एकभिन्नपदार्थ होवै है । तहां 'परस्वं नाददीत' इत्यादिक शास्त्रप्रमाणतैं सो स्वत्वपदार्थ सिद्ध है सो स्वत्व प्रतिग्रह क्रय पितृमरण इत्यादिकों करिकै जन्य होवै है । तहां ब्राह्मणका गौआदिक पदार्थोंविषे प्रतिग्रहतैं स्वत्व उत्पन्न होवै है । और क्षत्रियवैश्यादिकका तिन गौआदिकोंविषे क्रयतैं स्वत्वउत्पन्न होवै है । मूल्य देके वस्तुके लेणेका नाम क्रय है । और पुत्रादिकोंका पितादिकोंके मरणेतैं धनादिकोंविषे स्वत्व उत्पन्न होवै है । इस प्रकार मृत्तिकादिक कारणोंविषे घटादिक कार्यके

उत्पन्न करणेकी शक्ति भी एक भिन्न हीं पदार्थ होवै है। इस प्रकार संख्या भी एक भिन्न हीं पदार्थ है सा संख्या गुणरूप नहीं है। जिस कारणतैं 'एकं रूपम्' इस प्रतीतितैं रूपादिक गुणोंविषे भी सा संख्या प्रतीत होवै है और समवाय भी एक नहीं है। किंतु नानासमवाय हैं। जो कदाचित् एक हीं समवाय होवै तौं जलादिकोंविषे भी गंधादिमत्त्व होना चाहिये। इस प्रकार वैशिष्ट्य भी एक भिन्न हीं पदार्थ है। तहां जैसे रूपादिकोंकी प्रतीतिका निमित्त-रूप करिकै समवायकी सिद्धि होवै है तैसे अभाववत्ता प्रतीतिका निमित्तरूप करिकै ता वैशिष्ट्यकी भी सिद्धि संभवै है। इस प्रकार कारणत्व भी एक भिन्न हीं पदार्थ होवै है सो कारणत्व कार्यके भेदतैं तथा अवच्छेदक धर्मके भेदतैं भेदवाला होवै है। और कारणत्वत्वरूप करिकै सर्वकारणोंविषे अनुगत होवै है। और सो कारणत्वपदार्थ कहां तौं प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सिद्ध होवै है और कहां शास्त्रप्रमाण करिकै सिद्ध होवैहै। तहां वह्निआदिकोंविषे धूमादिकोंका कारणत्व प्रत्यक्षप्रमाण करिकै सिद्ध है। और यागादिकोंविषे स्वर्गादिकोंका कारणत्व शास्त्रप्रमाण करिकै सिद्ध है। इस प्रकार कार्यत्व भी एक भिन्न हीं पदार्थ होवै है। इस प्रकार दीधितिकार शिरोमणिभट्टाचार्यनें पदार्थतत्त्वनिरूपणग्रंथविषे कणादमुनिउक्त पदा-र्थोंविषे कितनैंकी पदार्थोंका खंडन करिकै कितनैंकी पदार्थ अधिक माने हैं और तिन पदा--र्थोंके खण्डनविषे तथा तिन अधिक पदार्थोंकी सिद्धि विषे युक्तियां तिस ग्रंथविषे विस्ता-रतैं निरूपण करीयां हैं, ते सर्व युक्तियां ईहां ग्रंथ विस्तारभयतैं लिखीयां नहीं इति ॥

अब सङ्गतिका निरूपण—करे हैं तहां 'नासङ्गतं प्रयुञ्जीत' अर्थ यह—इस विद्वान् पुरुषनैं संबंधरूप संगतितैं रहित अर्थका निरूपण नहीं करणा, किंतु पूर्व निरूपण कीयेहूए अर्थके साथि संगतिवाले अर्थका हीं निरूपण करणा। विद्वानोंके इस वचनतैं कोईक अर्थके निरूपणविषे संग-तिका उपयोग सिद्ध होवै है। और जो अर्थ जिस अर्थतैं अनन्तर निरूपण कऱ्या जावै है सो अर्थ तिस संगतिवाला हीं होवै है। तहां लक्षण—**अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजन-कज्ञानविषयानुकूलसम्बन्धः निरूपणीयनिष्ठासङ्गतिः।** अर्थ यह—पूर्व अर्थतैं अनन्तर अर्थके कथनका प्रयोजक जा शिष्यकी जिज्ञासा है ता जिज्ञासाका जनक जो ज्ञान है ता ज्ञानका जो विषय है ता विषयके अनुकूल जो संबंध है सो सम्बन्ध हीं ता अनन्तरनिरू-पणीय अर्थनिष्ठ संगति है। जैसे प्रत्यक्षनिरूपणतैं अनन्तर अनुमानके निरूपणविषे प्रयोजक जा 'अनुमानज्ञानं मे भवतु' या प्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासा है ता जिज्ञासाका जनक 'अनु-मानज्ञानं मदिष्टसाधनम्' या प्रकारका ज्ञान है ता ज्ञानका विषय सो अनुमान है ता अनुमानविषे

जो प्रत्यक्षका कार्यत्वरूप अनुकूलसम्बन्ध है सोई हीं ता अनुमानविषे ता प्रत्यक्षकी संगति है इति। सङ्गतिके भेद। सा उक्त संगति—प्रसंगसंगति १, उपोद्घातसंगति २, उपजीव्यउपजीवकभावसंगति ३, अवसरसंगति ४, निर्वाहकैक्यसंगति ५, कार्यैक्यसंगति ६ इस भेद करिकै षट्प्रकारकी होवै है। तहां उपोद्घातादिभिन्नस्मरणप्रयोजकसंबन्धः प्रसङ्गसङ्गतिः। अर्थ यह—उपोद्घातादिकोंतैं भिन्न ऐसा जो अर्थके स्मरणका प्रयोजकसम्बन्ध है ताका नाम प्रसंगसंगति है। जैसे—यथार्थ अनुभवरूप प्रमाके प्रत्यक्षअनुमितिआदिक विभागतैं अनन्तर ता प्रत्यक्षादिक प्रमाके प्रत्यक्षअनुमानादिक प्रमाणोंके विभागनिरूपणविषे प्रसंगसंगति है इति॥ १॥

उपोद्घातसंगति—प्रकृतोपसाधकत्वं उपोद्घातसङ्गतिः। अर्थ यह—प्रकृतअर्थका जो साधकपणा है ताका नाम उपोद्घातसंगति है। जैसे—प्रमाकरणरूप प्रमाणके निरूपणविषे उपोद्घातसंगति करिकै करणका निरूपण है। तहां—'प्रमाकरणं प्रमाणम्' यह प्रमाणका लक्षण करण करिकै घटित है। यातैं ता प्रकृतप्रमाणका उपसाधकपणा ता करणविषे होणेतैं ता प्रमाणनिरूपणविषे उपोद्घातसंगति करिकै ता करणका निरूपण संभवै है इति॥ २॥

प्रत्यक्षसे अनुमानका सम्बन्ध—और प्रत्यक्षप्रमाणके निरूपणतैं अनन्तर जो अनुमानप्रमाणका निरूपण है ताके विषे उपजीव्यउपजीवकभाव संगति है। उपजीवक—तहां व्याप्तिज्ञानरूप अनुमानकी उत्पत्ति चक्षुआदिक प्रत्यक्षप्रमाण करिकै हीं होवै है। यातैं ता अनुमानविषे जो प्रत्यक्षप्रमाणका कार्यपणा है सोई हीं उपजीवकपणा है। उपजीव्यत्व—ता प्रत्यक्षप्रमाणविषे जो ता अनुमानका कारणपणा है सोई हीं उपजीव्यपणा है। इस प्रकारकी उपजीव्यउपजीवकभावसंगति—करिकै हीं प्रत्यक्षप्रमाणतैं अनन्तर अनुमानप्रमाणका निरूपण है इति॥ ३॥

अवसर सङ्गति—प्रतिबन्धकीभूतशिष्यजिज्ञासानिवृत्त्या अनन्तरवक्तव्यत्वं अवसरसङ्गतिः। अर्थ यह—अर्थके निरूपणविषे प्रतिबन्धक जा शिष्यकी जिज्ञासा है ता जिज्ञासाके निवृत्तहूए जो अनन्तर वक्तव्यपणा है ताका नाम अवसरसंगति है। जैसे अनुमानके निरूपणतैं अनन्तर अवसरसंगति करिकै उपमानका निरूपण है। तहां प्रत्यक्षप्रमाणकी कार्यरूपता जैसे व्याप्तिज्ञानरूप अनुमानका विषे है तैसे सादृश्यज्ञानरूप उपमानविषे भी है। यातैं ता प्रत्यक्षप्रमाणके निरूपणतैं अनन्तर ता अनुमान उपमान दोनोंका निरूपण प्राप्त भया। तहां उपमानकी अपेक्षा करिकै अनुमान प्रमाण बहुत वादियोंकूं संमत है। यातैं प्रत्यक्षनिरूपणतैं अनंतर शिष्यकी प्रथम ता अनुमानविषे हीं जिज्ञासा होवै है सा शिष्यकी अनुमानविषयक जिज्ञासा ता उपमानके निरूपणविषे प्रतिबन्धक होवै है। सा जिज्ञासा अनुमानके निरूपण

कीयेहूए निवृत्त होई जावै है । तिसतैं अनन्तर ता उपमानका हीं वक्तव्यपणा प्राप्त होवै है । यातैं अनुमानके निरूपणतैं अनन्तर अवसरसंगति करिकै उपमानका निरूपण संभवै है इति॥ ४॥

निर्वाहैक्यसङ्गति—**एकप्रयोजकप्रयोज्यत्वं निर्वाहकैक्यसङ्गतिः** । अर्थ यह—एकप्रयोजक करिकै जो प्रयोज्यपणा है ताका नाम निर्वाहकैक्यसंगति है । अर्थात् जहां एक हीं कारण करिकै दो तीन कार्य उत्पन्न होवै हैं तहां यह निर्वाहकैक्यसंगति होवै है । जैसे प्रत्यक्षप्रमाणके निरूपणतैं अनन्तर परामर्श, अनुमिति दोनोंके निरूपणविषे निर्वाहकैक्यसङ्गति है इति ॥ ५ ॥

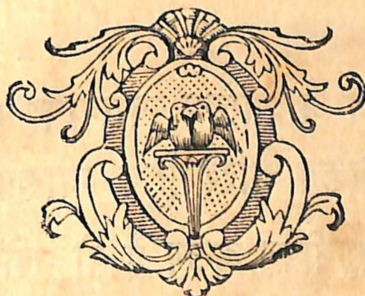
कार्यैक्यसंगति—**एककार्यानुकूलत्वं कार्यैक्यसङ्गतिः** । अर्थ यह—एककार्यका जो अनुकूलपणा है ताका नाम कार्यैक्यसंगति है । जैसे व्याप्ति तथा पक्षधर्मता यह दोनों एक हीं अनुमितिरूप कार्यके जनक होवै हैं यातैं व्याप्तिके निरूपणतैं अनन्तर जो पक्षधर्मताका निरूपण है सो कार्यैक्यसंगति करिकै है । इस प्रकार पूर्वउक्त सर्वपदार्थोंके निरूपणविषे बुद्धिमान् पुरुषोंनें यथायोग्य संगति जानिलेणी इति ॥ ६ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानन्दगिरिणाविरचिते न्यायप्रकाशे प्रमाणादिषोडशपदार्थनिरूपणं नाम सप्तम परिच्छेदः ॥ समाप्तः ॥ ७ ॥

---

ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः ॥
श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः ।

**समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥**



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

**गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,**
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
**कल्याण–मुंबई.**

**खेमराज श्रीकृष्णदास,**
" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
**खेतवाडी–मुंबई.**